

श्री--महर्षि--व्यास--प्रणीत

महाभारत ।

(१३) अनुशासनपर्व ।

(भाषाभाष्य समेत ।)

सम्पादक और प्रकाशक
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
स्वाध्यायमण्डल, औंध (जि० सातारा)

संवत् १९८८
शके १८५३
सन १९३१

पौरुष प्रयत्नसे उन्नति।

शुभेन कर्मणा सौख्यं दुःखं पापेन कर्मणा।
कृतं फलति सर्वत्र नाकृतं भुज्यते क्वचित् ॥ १० ॥
कृती सर्वत्र लभते प्रतिष्ठां भाग्यसंयुताम्।
अकृती लभते भ्रष्टः क्षते क्षारावसेचनम् ॥ ११ ॥
तपसा रूपसौभाग्यं रत्नानि विविधानि च।
प्राप्यते कर्मणा सर्वं न दैवादकृतात्मना ॥ १२ ॥

म० भा० अनुशासनपर्व अ० ६

पुण्य कर्मसे सुख और पापकर्मसे दुःख होता है, किये हुये कर्म सर्वत्र ही फलित होते हैं और कर्म न करनेपर शुभ फल कहीं भी नहीं प्राप्त हो सकता। सब उद्योगी पुरुषही भाग्यके अनुसार प्रतिष्ठा पाते हैं और निरुद्योगी मनुष्य प्रतिष्ठासे भ्रष्ट होकर क्षतपर क्षार सींचनेके समान दुःख लाभ करता है। मनुष्य तपस्यारूपी कर्मके सहारे रूप, सौभाग्य और विविध रत्नोंको पाता है और अकृतात्मा पुरुष दैव वशसे उसको नहीं पा सकता।

मुद्रक तथा प्रकाशक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्यायमंडल, भारतमुद्रणालय, औंध, (जि० सातारा.)



श्रीमहर्षिव्यासप्रणीतम्

महाभारतम्।



अनुशासनपर्व।

श्रीगोपालकृष्णाय नमः।

श्रीवेदव्यासाय नमः।

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥
युधिष्ठिर उवाच- शमो बहुविधाकारः सूक्ष्म उक्तः पितामह।
न च मे हृदये शान्तिरस्ति श्रुत्वेदमीदृशम् ॥ १ ॥
अस्मिन्नर्थे बहुविधा शान्तिरुक्ता पितामह।
स्वकृते का नु शान्तिः स्याच्छमाद्बहुविधादपि ॥ २ ॥
शराचितशरीरं हि तीव्रव्रणमुदीक्ष्य च।

अनुशासनपर्वमें १ अध्याय।

नारायण, पुरुषोत्तम नर और सरस्वती देवीको प्रणाम करके जय शब्द उच्चारण करे। (१)

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! शोकसे पार होनेके उपाय स्वरूप सूक्ष्म शम अनेक तरहका रूप धरता है, इसे आपने कहा है, परन्तु शांतिका ऐसा प्रभाव सुनके भी स्वजनोंके वधरूपी शोकसे मेरा अन्तःकरण शान्त नहीं होता है। हे पितामह! इस विषयमें आपने अनेक प्रकार शान्तिके विषय कहे हैं, अनेक प्रकार शम जाननेसे किये हुए पापोंकी शान्ति किस प्रकार हो? हे वीर! आपका शरीर बाणोंसे सब प्रकार परिपूरित और तीव्र घावोंसे युक्त देखकर

शर्म नोपलभे वीर दुष्कृतान्येव चिन्तयन् ॥ ३ ॥
रुधिरेणावसिक्ताङ्गं प्रस्रवन्तं यथाऽचलम्।
त्वां दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्र सीदे वर्षास्विवाम्बुजम् ॥ ४ ॥
अतः कष्टतरं किं नु मत्कृते यत्पितामहः।
इमामवस्थां गमितः प्रत्यमित्रै रणाजिरे ॥ ५ ॥
तथा चान्ये नृपतयः सहपुत्राः सबान्धवाः।
मत्कृते निधनं प्राप्ताः किं नु कष्टतरं ततः ॥ ६ ॥
वयं हि धार्तराष्ट्राश्च कालमन्युवशं गताः।
कृत्वेदं निन्दितं कर्म प्राप्स्यामः कां गतिं नृप ॥ ७ ॥
इदं तु धार्तराष्ट्रस्य श्रेयो मन्ये जनाधिप।
इमामवस्थां संप्राप्तं यदसौ त्वां न पश्यति ॥ ८ ॥
सोऽहं तव ह्यन्तकरः सुहृद्वधकरस्तथा।
न शान्तिमधिगच्छामि पश्यंस्त्वां दुःखितं क्षितौ ॥ ९ ॥
दुर्योधनो हि समरे सहसैन्यः सहानुजः।
निहतः क्षत्रधर्मेऽस्मिन्दुरात्मा कुलपांसनः ॥ १० ॥
न स पश्यति दुष्टात्मा त्वामद्य पतितं क्षितौ।

निज पापोंको सोचके मैं सुख लाभ करनेमें असमर्थ होरहा हूं। हे पुरुषप्रवर! झरनेवाला पर्वतकी भांति आपके रुधिरसे परिपूरिताङ्गको देखकर मैं वर्षाकालके बादलकी भांति अवसन्न होता हूं। (१-४)

हे पितामह! इससे बढके और क्या कष्ट होगा, कि हमारे लिये शत्रुओंके विरुद्ध खडे होनेपर मेरी ओरके अर्जुन और शिखण्डी आदिसे आप इस अवस्थामें युक्त पडें और दूसरे राजा लोग भी पुत्र तथा बान्धवोंके सहित मेरे ही लिये मारे जावें, उससे बढके और दुःख क्या है? हे राजन्! हम लोग तथा धृतराष्ट्रके पुत्र कालक्रोधके वशमें होकर इस निन्दित कर्मके करनेसे कैसी गति पावेंगे। हे प्रजानाथ! दुर्योधनके पक्षमें यह कल्याणकारी बोध होता है, कि वह आपकी ऐसी अवस्थामें पडे हुए नहीं देखता है। (५-८)

मैं आपका नाशक और सुहृदोंका वध करानेवाला होकर आपको पृथ्वीपर पडे और दुःखित देखकर किसी प्रकार भी शान्ति लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता हूं। दुष्टात्मा कुलनाशक दुर्योधन युद्धमें सब सेना और सहोदर भाइयोंके

अतः श्रेयो मृतं मन्ये नेह जीवितमात्मनः ॥ ११ ॥
अहं हि समरे वीर गमितः शत्रुभिः क्षयम् ।
अभविष्यं यदि पुरा सह भ्रातृभिरच्युत ॥ १२ ॥
न त्वामेवं सुदुःखार्तमद्राक्षं सायकार्दितम् ।
नूनं हि पापकर्माणो धात्रा सृष्टाः स्म हे नृप ॥ १३ ॥
अन्यस्मिन्नपि लोके वै यथा मुच्येम किल्बिषात् ।
तथा प्रशाधि मां राजन्मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥१४॥

भीष्म उवाच- परतन्त्रं कथं हेतुमात्मानमनुपश्यसि ।
कर्मणां हि महाभाग सूक्ष्मं ह्येतदतीन्द्रियम् ॥ १५ ॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
संवादं मृत्युगौतम्योः काललुब्धकपन्नगैः ॥ १६ ॥
गौतमी नाम कौन्तेय स्थविरा शमसंयुता ।
सर्पेण दष्टं स्वं पुत्रमपश्यद्गतचेतनम् ॥ १७ ॥
अथ तं स्नायुपाशेन बद्ध्वा सर्पममर्षितः ।

सहित, इस क्षत्रधर्ममें मरा है; वह दुष्टात्मा इस समय आपको पृथ्वीपर पडे हुए नहीं देखता है, इसलिये मैं मरना ही कल्याणकारी समझता हूं, जीवनको इस समय उत्तम नहीं समझता। हे वीर! हे अच्युत! पहले यदि मैं भाइयोंके सहित मारा जाता, तो आपको इस प्रकार बाणोंसे पीडित और दुःखसे आर्त्त न देखता। इसलिये, हे नरनाथ! मुझे निश्चय बोध होता है, कि विधाताने हम लोगोंको पापकर्म करनेके ही लिये उत्पन्न किया है। हे राजन्! आप यदि मेरी प्रियकामना करते हो, तो उपदेश करिये कि जन्मान्तरमें किस प्रकार इस पापसे मुक्त हूंगा। (९-१४)

भीष्म बोले, हे महाभाग! काल, प्रारब्ध और ईश्वरके आधीनमें रहनेवाले आत्माको तुम किस लिये पाप-पुण्यका कारण समझते हो? आत्माका अकर्तृत्व सूक्ष्म है, इससे वह मनसे प्रत्यक्ष नहीं होता, इसलिये अतीन्द्रिय है। प्राचीन लोग इस विषयमें काल, व्याध, सर्पके सहित मृत्यु और गौतमीके संवादयुक्त इस पुराने इतिहासको कहा करते हैं। हे कुन्तीपुत्र! गौतमी नामी एक शम गुणसे युक्त बूढी ब्राह्मणीने निज पुत्रको सांपके काटनेसे चेतनारहित देखा। अनन्तर अर्जुन नाम किसी व्याधने क्रोधके

लुब्धकोऽर्जुनको नाम गौतम्याः समुपानयत् ॥ १८॥
स चाब्रवीदयं ते स पुत्रहा पन्नगाधमः।
ब्रूहि क्षिप्रं महाभागे वध्यतां केन हेतुना ॥ १९॥
अग्नौ प्रक्षिप्यतामेष च्छिद्यतां खण्डशोऽपि वा।
न ह्ययं बालहा पापश्चिरं जीवितुमर्हति ॥ २०॥
गौतम्युवाच- विसृजैनमबुद्धिस्त्वमवध्योऽर्जुनक त्वया।
को ह्यात्मानं गुरुं कुर्यात्प्राप्तव्यमविचिन्तयन् ॥ २१॥
प्लवन्ते धर्मलघवो लोकेऽम्भसि यथा प्लवाः।
मज्जन्ति पापगुरवः शस्त्रं स्कन्नमिवोदके ॥ २२॥
हत्वा चैनं नामृतः स्यादयं मे जीवत्यस्मिन्कोऽत्ययः स्यादयं ते।
अस्योत्सर्गे प्राणयुक्तस्य जन्तोर्मृत्योर्लोकं को नु गच्छेदनन्तम् ॥२३॥
लुब्धक उवाच- जानाम्यहं देवि गुणागुणज्ञे सर्वार्तियुक्ता गुरवो भवन्ति।
स्वस्थस्यैते तूपदेशा भवन्ति तस्मात्क्षुद्रं सर्पमेनं हनिष्ये ॥ २४॥
शमार्थिनः कालगतिं वदन्ति सद्यः शुचं त्वर्थविदस्त्यजन्ति।

वशमें होकर उस सांपको तांतके जालसे बांधके गौतमीके समीप लाकर कहा; हे महाभागे! यह अधम सर्प तुम्हारे पुत्रका नाशक है, इसलिये किस प्रकार इसका वध करूं, सो शीघ्र कहो। इसको आगमें डालूं अथवा टुकडे टुकडे करके काटूं? यह बालकका नाशक पापात्मा बहुत समय तक जीवित रहनेके योग्य नहीं है। (१९—२०)

गौतमी बोली, हे अर्ज्जुन! तुम इसे छोड दो तुम्हें बुद्धि नहीं है, तुम इसका वध न करना। कौन पुरुष प्राप्त होनेवाली लोकचिन्ता न करके अपनेको पापभारसे नरकमें डाला करता है। इस लोकमें धर्म्मसे जो लोग हलके हुए हैं, वेही जलके बीच नौकाकी भांति दुःखरूपी समुद्रसे पार होते हैं, और जो लोग पापके द्वारा भारी हुए हैं, वे जलके बीच गिरे हुए शस्त्रकी भांति डूब जाते हैं। इसे मारनेसे मेरा मरा हुआ पुत्र जीवित न होगा, और इस सर्पके जीते रहनेसे ही तुम्हारी कौनसी बुराई होगी? इस प्राणयुक्त जीवको मारके कौन पुरुष अनन्त नरकमें जायगा। (२१—२३)

व्याधा बोला, हे गुण और अगुणोंकी जाननेवाली देवी! मैं जानता हूं, बडे लोग सबकीही पीडासे पीडित हुआ करते हैं; परन्तु ये सब उपदेश भले चङ्गेके लिये हैं, दुःखितके वास्ते नहीं

श्रेयःक्षयं शोचति नित्यमोहात्तस्माच्छुचं मुञ्च हते भुजङ्गे ॥ २५ ॥
गौतम्युवाच- आर्तिर्नैवं विद्यतेऽस्मद्विधानां धर्मात्मानः सर्वदा सज्जना हि ।
नित्यायस्तो बालकोऽप्यस्य तस्मादीशे नाहं पन्नगस्य प्रमाथे ॥ २६ ॥
न ब्राह्मणानां कोपोऽस्ति कुतः कोपाच्च यातनाम् ।
मार्दवात्क्षम्यतां साधो मुच्यतामेष पन्नगः ॥ २७ ॥
लुब्धक उवाच- हत्वा लाभः श्रेय एवाव्ययः स्या—
लुभ्यो लाभ्यः स्याद्बलिभ्यः प्रशस्तः ।
कालाल्लाभो यस्तु सत्यो भवेत श्रेयोलाभः कुत्सितेऽस्मिन्न ते स्यात् ॥२८॥
गौतम्युवाच- का नु प्राप्तिर्गृह्य शत्रुं निहत्य का कामाप्तिः प्राप्य शत्रुं न मुक्त्वा ।
कस्मात्सौम्याऽहं न क्षमे नो भुजङ्गे मोक्षार्थं वा कस्य हेतोर्न कुर्याम् ॥२९॥

हैं, इसलिये इस क्षुद्र सर्पको मैं मारता हूं । श्रमयुक्त मनुष्य 'कालके सहारेही इस पुरुषका नाश हुआ है" ऐसा समझकर शोक नहीं करते और प्रतिकार करनेवाले पुरुष उस ही समय शत्रु को मारके शोक परित्याग किया करते हैं, दूसरे लोग नित्य मोह निबन्धसे कल्याणका नाश होता है, ऐसा जानके शोक प्रकाश करते हैं, इसलिये मेरे हाथसे इस सांपके मरनेसे तुम शोक परित्याग करो । (२४—२५)

गौतमी बोली, मेरे समान लोगोंको इस प्रकार पुत्रशोकजनित पीडा नहीं होती, क्यों कि सज्जन लोग सदा ही धर्मपरायण हुआ करते हैं; इस बालककी मृत्युका यही समय निर्दिष्ट था । इसलिये इस सांपके नाश करनेमें असमर्थ हूं । ब्राह्मणोंमें क्रोध न होना चाहिये क्यों कि कोपके कारण दुःख हुआ करता है । हे साधु ! इसलिये तुम मृदुता अवलम्बन करके क्षमा करो और इस सर्पको छोड दो । (२६-२७)

व्याधा बोला, इसे मारनेसे परलोक की हितकर अविनश्वर गति प्राप्त होगी जैसे यजमान पशुओंको मारके अपने सङ्ग पशुओंको भी स्वर्गमें लेजाता है, वैसे ही शूर पुरुषोंको बलिदानसे बढाई मिलती है । इस निन्दित अपकारी शत्रुके मरनेसे जो लाभ होगा, वह क्या तुम्हारे सम्बन्धमें शाश्वत, सत्य और कल्याणकारी नहीं है । (२८)

गौतमी बोली, शत्रुको पराजित कर के मारनेसे क्या लाभ है ? और शत्रुको अपने वशमें करके फिर उसे छोड देनेसे क्या इष्टसिद्धि नहीं होती ? हे प्रिय दर्शन ! इसलिये किस निमित्त इस सर्प के विषयमें क्षमा न करूंगी और किस कारणसे ही इसके छुडानेके निमित्त

लुब्धक उवाच-अस्मादेकाद्बहवो रक्षितव्या नैको बहुभ्यो गौतमि रक्षितव्यः।
कृतागसं धर्मविदस्त्यजन्ति सरीसृपं पापमिमं जहि त्वम् ॥ ३० ॥
गौतम्युवाच- नास्मिन् हते पन्नगे पुत्रको मे संप्राप्स्यते लुब्धक जीवितं वै।
गुणं चान्यं नास्य वधे प्रपश्ये तस्मात्सर्पं लुब्धक मुञ्च जीवम् ॥३१॥
लुब्धक उवाच- वृत्रं हत्वा देवराट् श्रेष्ठभाग्वै यज्ञं हत्वा भागमवाप चैव।
शूली देवो देववृत्तं चर त्वं क्षिप्रं सर्पं जहि मा भूत्ते विशङ्का ॥३२॥
भीष्म उवाच-असकृत्प्रोच्यमानाऽपि गौतमी भुजगं प्रति।
लुब्धकेन महाभागा पापे नैवाकरोन्मतिम् ॥ ३३ ॥
ईषदुच्छ्वसमानस्तु कृच्छ्रात्संस्तभ्य पन्नगः।
उत्ससर्ज गिरं मन्दां मानुषीं पाशपीडितः ॥ ३४ ॥
सर्प उवाच— को न्वर्जुनक दोषोऽत्र विद्यते मम बालिश।
अस्वतन्त्रं हि मां मृत्युर्विवशं यदचूचुदत् ॥ ३५ ॥
तस्यायं वचनाद्दष्टो न कोपेन न काम्यया।

यत्नवती न हूंगी ? (२९)

व्याध बोला, हे गौतमी ! इस एक जीवसे अनेक प्राणियोंकी रक्षा करनी उचित और अनेकको त्यागके एककी रक्षा करना योग्य नहीं है। धर्म जाननेवाले मनुष्य अपराधीको नष्ट किया करते हैं, इसलिये तुम इस पापी सांपका वध करो। (३०)

गौतमी बोली, हे व्याध ! इस सर्पके मारनेसे मेरा पुत्र जीवित न होगा और इसका वध करनेसे और कुछ पुण्य भी नहीं दीखता है, इसलिये इस सर्पको जीते ही छोड दो। (३१)

व्याध बोला, इन्द्रने वृत्रासुरको मारके श्रेष्ठ भाग लाभ किया है, महादेवने यज्ञ नष्ट करके यज्ञ-भाग पाया है, इसलिये देवताओंके व्यवहारका आचरण करना योग्य है; शीघ्र ही इस सर्पको मार डालो, इसमें कुछ भी शङ्का मत करो। (३२)

भीष्म बोले, व्याधने सांपको मारनेके लिये गौतमीको बार बार उत्तेजित किया, परन्तु उस महाभागाने पापकार्यमें मन नहीं लगाया। अनन्तर पाश पीडित सर्प लम्बी स्वांस छोडके अत्यन्त कष्टसे धीरज धरके मृदुस्वरसे मनुष्य वाक्य बोलने लगा। (३३-३४)

सर्प बोला, हे मूर्ख अर्जुन ! इस विषयमें मेरा क्या दोष है ? मैं पराधीन और परवश हूं, इसलिये मृत्युने ही मुझे प्रेरणा की है, मैंने मृत्यु की आज्ञानुसार इसे काटा है, कोप अथवा

तस्य तत्किल्बिषं लुब्ध विद्यते यदि किल्बिषम् ॥ ३६ ॥
लुब्धक उवाच- यद्यन्यवशगेनेदं कृतं ते पन्नगाशुभम् ।
कारणं वै त्वमप्यत्र तस्मात्त्वमपि किल्बिषी ॥ ३७ ॥
मृत्पात्रस्य क्रियायां हि दण्डचक्रादयो यथा ।
कारणत्वे प्रकल्प्यन्ते तथा त्वमपि पन्नग ॥ ३८ ॥
किल्बिषी चापि मे वध्यः किल्बिषी चासि पन्नग ।
आत्मानं कारणं ह्यत्र त्वमाख्यासि भुजंगम ॥ ३९ ॥
सर्प उवाच— सर्वे एते ह्यस्ववशा दण्डचक्रादयो यथा ।
तथाऽहमपि तस्मान्मे नैष दोषो मतस्तव ॥ ४० ॥
अथ वा मतमेतत्ते तेऽप्यन्योऽन्यप्रयोजकाः ।
कार्यकारणसंदेहो भवत्यन्योऽन्यचोदनात् ॥ ४१ ॥
एवं सति न दोषो मे नास्मि वध्यो न किल्बिषी ।
किल्बिषं समवाये स्यान्मन्यसे यदि किल्बिषम् ॥ ४२ ॥

कामानुसार दंशन नहीं किया है, इसमें यदि पाप हो, तो जिसने मुझे प्रेरणा किया है, वह पाप उसे ही लगेगा। (३५-३६)

व्याध बोला, हे भुजङ्ग! तुम यदि दूसरेके वशमें होकर यह अशुभ कर्म्म किया करते हो, तौभी तुम इस विषयमें कारण हो, इसलिये तुम भी पापभागी हो। हे सर्प! जैसे मट्टीके पात्र बनानेमें दण्ड, चक्र, जल और सूत कारण रूपसे कल्पित होते हैं, वैसे ही तुमभी इस विषयमें कारण होनेसे पापभागी हो। हे पन्नग! पाप करनेवाले मेरे वध्य हैं, तुम भी पापी मालूम होते हो और इस विषयमें अपनेको ही कारण कहते हो। (३७-३८)

सर्प बोला, दण्ड, चक्र प्रभृतिकी भांति सब ही अस्वतन्त्र हैं, इसलिये मैं भी अवश हूं, इससे मेरा यह दोष तुम्हारे समीप युक्ति-सम्मत नहीं हो सकता, अथवा यदि तुम्हें ऐसा ही सम्मत हो, तो दण्डचक्र प्रभृति परस्परकी प्रयोजक हो सकते हैं और परस्पर की प्रेरणावशसे कार्य्य कारणमें सन्देह हुआ करता है; यदि ऐसा ही माना जावे, तौभी मेरा दोष नहीं है, मैं वध करनेके योग्य अथवा पापी नहीं हूं, यदि तुम इसमें पाप होना समझते हो, तो समवायकोही पाप हो सकता है, अर्थात् यदि चेतनत्वनिबन्धनसे मेरा वध करना ही तुम्हें सम्मत है, तो एकमात्र वध-कार्य्यमें साक्षात् और

लुब्धक उवाच– कारणं यदि न स्याद्वै न कर्ता स्यास्त्वमप्युत ।
विनाशकारणं त्वं च तस्माद्वध्योऽसि मे मतः ॥ ४३ ॥
असत्यपि कृते कार्ये नेह पन्नग लिप्यते ।
तस्मान्नात्रैव हेतुः स्याद्वध्यः किं बहु मन्यसे ॥ ४४ ॥
सर्प उवाच— कार्याभावे क्रिया न स्यात्सत्यसत्यपि कारणे ।
तस्मात्समेऽस्मिन्हेतौ मे वाच्यो हेतुर्विशेषतः ॥४५॥
यद्यहं कारणत्वेन मतो लुब्धक तत्त्वतः ।
अन्यः प्रयोगे स्यादत्र किल्बिषी जन्तुनाशने ॥ ४६ ॥
लुब्धक उवाच- वध्यस्त्वं मम दुर्बुद्धे बालघाती नृशंसकृत् ।
भाषसे किं बहु पुनर्वध्यः सन्पन्नगाधम ॥ ४७ ॥

परंपरासम्बन्धसे अनेकोंकी प्रयोजकता है,इसलिये विभागके अनुसार सबको ही पाप लगेगा, केवल मैं ही पापी नहीं हूं। (४०–४२)

व्याध बोला,तुम यदि विनाश कार्य्य में अपनेको कारण अथवा कर्त्ता नहीं समझते हो, तोभी इस विनाशके विषयमें साक्षात् सम्बन्धसे तुम ही कारण हो, इसलिये मेरे विचारमें तुम वध करनेके योग्य हो। हे भुजङ्ग! पाप कार्य्य करके भी यदि कर्त्ता अपनेको उससे लिप्त न समझे, तब तो इस विषयमें कोई भी कारण नहीं होसकता, इसलिये उपस्थित विषयमें तुम ही कर्त्ता हो, इसीसे वध्य मालूम होते हो, क्यों तुम बडीबोल बोलते हो ? (४३-४४)

सर्प बोला, कर्ताके रहनेपर कुठारोद्यमन आदि कार्य्यसे छेदन क्रिया हुआ करती है, और कर्त्ताके न रहनेपर भी वृक्षोंकी डालियोंका आपसमें संघर्षण होनेसे कार्य्यवशसे उसहीसे अग्नि प्रगट होके वनको जला देती है; इसलिये कारणके रहने अथवा न रहने पर भी जैसे कार्य्यकी उत्पत्ति होती है, वैसे ही इस तुल्य हेतुके स्थलमें मेरा कारणत्व विशेष रीतिसे विचारना चाहिये । हे व्याध! यदि मैं कारण अर्थात् प्रयोज्य कर्त्तृरूपसे यथार्थमें ही तुम्हारे समीप युक्तिसंमत होऊं, तो शाखाके प्रयोजक वायुकी भांति मेरा प्रयोजक दूसरा कोई कर्त्ता अवश्य है, इस जीवके नाश विषयमें वही पापी हो सकता है। (४५–४६)

व्याध बोला, रे नीचबुद्धि अधम सर्प! तू जानकर इस बालकका प्राणनाशरूपी अत्यन्त नृशंस कार्य्य करके वध्य हुआ है; वध्य होके भी बार बार बडी बात करता है। (४७)

सर्प उवाच— यथा हवींषि जुह्वाना मखे वै लुब्धकार्त्विजः ।
न फलं प्राप्नुवन्त्यत्र फलयोगे तथा ह्यहम् ॥ ४८ ॥
भीष्म उवाच- तथा ब्रुवति तस्मिंस्तु पन्नगे मृत्युचोदिते ।
आजगाम ततो मृत्युः पन्नगं चाब्रवीदिदम् ॥ ४९ ॥
मृत्युरुवाच— प्रचोदितोऽहं कालेन पन्नग त्वामचूचुदम् ।
विनाशहेतुर्नास्य त्वमहं न प्राणिनः शिशोः ॥ ५० ॥
यथा वायुर्जलधरान्विकर्षति ततस्ततः ।
तद्वज्जलदवत्सर्प कालस्याहं वशानुगः ॥ ५१ ॥
सात्त्विका राजसाश्चैव तामसा ये च केचन ।
भावाः कालात्मकाः सर्वे प्रवर्तन्ते ह जन्तुषु ॥ ५२ ॥
जङ्गमाः स्थावराश्चैव दिवि वा यदि वा भुवि ।
सर्वे कालात्मकाः सर्प कालात्मकमिदं जगत् ॥ ५३ ॥
प्रवृत्तयश्च लोकेऽस्मिंस्तथैव च निवृत्तयः ।
तासां विकृतयो याश्च सर्वं कालात्मकं स्मृतम् ॥ ५४ ॥
आदित्यश्चन्द्रमा विष्णुरापो वायुः शतक्रतुः ।
अग्निः खं पृथिवी मित्रः पर्जन्यो वसवोऽदितिः ॥ ५५ ॥

सर्प बोला, हे व्याध ! जैसे ऋत्विक् लोग यज्ञमें घृतकी आहुति देनेसे उसके फलभागी नहीं होते, इस विषयके फल सम्बन्धमें मैं भी वैसा ही हूं । (४८)

भीष्म बोले, मृत्यु-प्रेरित सर्पके ऐसा कहते रहने पर मृत्यु स्वयं उस स्थान-पर उपस्थित हुई और उस सर्पसे कहने लगी । (४९)

मृत्यु बोली, हे सर्प ! मैंने कालके द्वारा प्रेरित होकर तुम्हें प्रेरणा की थी, इसलिये तुम इस बालकके विनाश विषयमें कारण नहीं हो, मैं भी इसके नाशका कारण नहीं हूं । हे सर्प ! जैसे वायु बादलोंको इधर उधर कर देता है, वैसे ही मैं भी बादलकी भांति कालके वशमें हूं, जो सब सात्विक, राजसिक और तामसिक भाव हैं, वे सभी कालात्मक होकर प्राणिमात्रमें निवास करते हैं । हे भुजंग द्युलोक वा भूलोकमें जितने स्थावरजंगम जीव हैं, वे सभी कालात्मक हैं, इसलिये यह जगत् कालस्वरूप कहा जाता है; इस लोकमें प्रवृत्ति निवृत्ति अथवा जो कुछ प्राणियोंकी विकृति होती है, वह सब कालात्मकरूपसे वर्णित हुआ करती है, हे पन्नग ! सूर्य, चन्द्रमा, विष्णु, जल,

सरितः सागराश्चैव भावाभावौ च पन्नग।
सर्वे कालेन सृज्यन्ते ह्रियन्ते च पुनः पुनः ॥ ५६ ॥
एवं ज्ञात्वा कथं मां त्वं सदोषं सर्प मन्यसे।
अथ चैवं गते दोषे मयि त्वमपि दोषवान् ॥ ५७ ॥
सर्प उवाच- निर्दोषं दोषवन्तं वा न त्वं मृत्यो ब्रवीम्यहम्।
त्वयाऽहं चोदित इति ब्रवीम्येतावदेव तु ॥ ५८ ॥
यदि काले तु दोषोऽस्ति यदि तत्रापि नेष्यते।
दोषो नैव परीक्ष्यो मे न ह्यत्राधिकृता वयम् ॥ ५९ ॥
निर्मोक्षस्त्वस्य दोषस्य मया कार्यो यथा तथा।
मृत्योरपि न दोषः स्यादिति मेऽत्र प्रयोजनम् ॥६०॥
भीष्म उवाच- सर्पोऽथार्जुनकं प्राह श्रुतं ते मृत्युभाषितम्।
नानागसं मां पाशेन संतापयितुमर्हसि ॥ ६१ ॥
लुब्धक उवाच- मृत्योः श्रुतं मे वचनं तव चैव भुजंगम।
नैव तावददोषत्वं भवति त्वयि पन्नग ॥ ६२ ॥
मृत्युस्त्वं चैव हेतुर्हि बालस्यास्य विनाशने।

वायु, इन्द्र, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, मित्र, पर्जन्य, वसु, अदिति, नदी, समुद्र, ऐश्वर्य और अनैश्वर्य, ये सब ही कालके सहारे बार बार उत्पन्न और संहृत होते हैं। हे सर्प! ऐसा जानके भी तुम मुझे क्यों दोषी समझते हो? यदि इसमें मुझे दोष लगे, तो तुम भी दोषी हो। (५०—५७)

सर्प बोला, हे मृत्यु! मैं तुम्हें सदोष वा निर्दोष नहीं कहता हूं, मैं केवल तुम्हारे द्वारा प्रेरित हुआ हूं, इतनाही कहता हूं। यदि कालको दोष लगता हो अथवा उसमें दोष लगना अभिलषित न हो; उस दोषकी परीक्षा करना मेरा कार्य नहीं है, क्यों कि उस विषयमें मैं अधिकारी नहीं हूं, इस दोषको निर्मोचन करना जैसे मेरा कर्त्तव्य है, वैसे ही इस विषयमें जिस प्रकार मृत्युका भी दोष न हो, वह भी मेरा प्रयोजन है। (५८—६०)

भीष्म बोले, अनन्तर सर्प अर्जुनसे बोला, हे व्याध! तुमने मत्युका वचन सुना, अब मैं निरपराधी हूं, मुझे पाश-बन्धनके द्वारा दुःखित करना तुम्हें उचित नहीं है। (६१)

व्याध बोला, हे भुजंग! मैंने मृत्यु-का और तुम्हारा वचन सुना है, परंतु इससे तुम्हारी निर्दोषता सिद्ध नहीं

उभयं कारणं मन्ये न कारणमकारणम् ॥ ६३ ॥
धिङ्मृत्युं च दुरात्मानं क्रूरं दुःखकरं सताम् ।
त्वां चैवाहं वधिष्यामि पापं पापस्य कारणम् ॥ ६४ ॥
मृत्युरुवाच— विवशौ कालवशगावावां निर्दिष्टकारिणौ ।
नावां दोषेण गन्तव्यौ यदि सम्यक्प्रपश्यसि ॥ ६५ ॥
लुब्धक उवाच- युवामुभौ कालवशौ यदि मे मृत्युपन्नगौ ।
हर्षक्रोधौ यथा स्यातामेतदिच्छामि वेदितुम् ॥ ६६ ॥
मृत्युरुवाच— या काचिदेव चेष्टा स्यात्सर्वा कालप्रचोदिता ।
पूर्वमेवैतदुक्तं हि मया लुब्धक कालतः ॥ ६७ ॥
तस्मादुभौ कालवशावावां निर्दिष्टकारिणौ ।
नावां दोषेण गन्तव्यौ त्वया लुब्धक कर्हिचित् ॥६८॥
भीष्म उवाच- अथोपगम्य कालस्तु तस्मिन् धर्मार्थसंशये ।
अब्रवीत्पन्नगं मृत्युं लुब्धं चार्जुनकं तथा ॥ ६९ ॥

होती है, मृत्यु और तुम इस बालकके विनाश विषयमें कारण हो, मैं तुम दोनोंको ही कारण समझता हूं, जो कारण नहीं है,उसे कारण नहीं कहता। साधुओंको दुःख देनेवाली क्रूर दुष्टात्मा मृत्युको धिक्कार है और पापके हेतु पापात्मा तुम्हें भी धिक्कार है; मैं तुम्हारा अवश्य वध करूंगा।(६२-६४)

मृत्यु बोली,हम निर्दिष्ट कर्म करनेवाले, परवश तथा कालके वशमें हैं, इसलिये यदि तुम पूरी रीतिसे विचार करोगे, तो हम लोगोंको दोषमुक्त न कह सकोगे। (६५)

व्याध बोला, हे मृत्यु ! हे सर्प ! यदि तुम दोनों ही कालके वशमें हो, तब हम लोगोंको परोपकारके विषयमें जिस प्रकार द्वेष उत्पन्न होता है, उसे स्पष्ट रूपसे प्रकट करो, मैं इसे जानने की इच्छा करता हूं। (६६)

मृत्यु बोली, इस जगत्के बीच प्राणियोंमें जो कुछ कार्य संघटित होते हैं, काल ही उन सबका प्रयोजक है। हे व्याध! कालकी प्रेरणानुसार जो सब कार्य हुआ करते हैं, उन्हें मैंने पहले ही कहा है, ईश्वरके वशमें रहनेवाला पुरुष सत् वा असत् कर्म करके स्तुतियुक्त अथवा निन्दनीय नहीं होता; इस लिये हम दोनों ही कालके वशमें होकर यथानिर्दिष्ट कार्य करते हैं। हे व्याध! इसलिये तुम हम लोगोंको किसी विषय में दोषी नहीं सिद्ध कर सकते। ६७-६८

भीष्म बोले, अनन्तर उस धर्मार्थ-

काल उवाच– न ह्यहं नाप्ययं मृत्युर्नायं लुब्धक पन्नगः।
किल्बिषी जन्तुमरणे न वयं हि प्रयोजकाः ॥ ७० ॥
अकरोद्यदयं कर्म तन्नोऽर्जुनक चोदकम्।
विनाशहेतुर्नान्योऽस्य वध्यतेऽयं स्वकर्मणा ॥ ७१ ॥
यदनेन कृतं कर्म तेनायं निधनं गतः।
विनाशहेतुः कर्मास्य सर्वे कर्मवशा वयम् ॥ ७२ ॥
कर्मदायादवाँल्लोकः कर्मसम्बन्धलक्षणः।
कर्माणि चोदयन्तीह यथान्योऽन्यं तथा वयम् ॥ ७३॥
यथा मृत्पिण्डतः कर्ता कुरुते यद्यदिच्छति।
एवमात्मकृतं कर्म मानवः प्रतिपद्यते ॥ ७४ ॥
यथा छायातपौ नित्यं सुसंबद्धौ निरन्तरम्।
तथा कर्म च कर्ता च संबद्धावात्मकर्मभिः ॥ ७५ ॥
एवं नाहं न वै मृत्युर्न सर्पो न तथा भवान्।
न चेयं ब्राह्मणी वृद्धा शिशुरेवात्र कारणम् ॥ ७६ ॥

संशयके स्थलमें काल स्वयं उपस्थित होकर सर्प, मृत्यु और अर्जुन नामक व्याधसे यह वचन कहने लगा। (६९)

काल बोला, हे व्याध! मृत्यु, मैं और सर्प, हम तीनों ही जीवोंकी मृत्युके विषयमें निष्पाप हैं, क्यों कि हम लोग केवल प्रयोजकमात्र हैं, हे अर्जुन! इस बालकने जैसा कर्म किया था, वह कर्म ही हम लोगोंका प्रयोजक है, इसके विनाशका कारण दूसरा कोई भी नहीं है, यह बालक निज कर्मवशसे मरा है, इस पुरुषने जो कर्म किया था, उसहीके द्वारा मृत्युको प्राप्त हुआ; इसलिये कर्म ही इसके विनाशका कारण है, हम सब लोग कर्मके वशीभूत हैं, कर्मसेही लोगोंको उत्तम गति मिलती है अर्थात् कर्म पुत्रकी भांति लोगोंका उद्धार करता है, कर्मफलके मिलनेसे ही लोगोंका पुण्य पाप जाना जाता है; जैसे सब कर्म परस्परके प्रयोजक होते हैं, हम लोगभी वैसे ही हैं। (७०–७३)

जैसे कर्त्ता मट्टीके पिण्डसे जैसी इच्छा करता है, वैसाही पात्र बनाता है, मनुष्य भी उस ही प्रकार अपने किये हुए कर्मफलको पाता है। जैसे छाया और धूपका सदा सम्बन्ध है, वैसे ही कर्म और कर्त्ता सदा ही आत्मकर्मोंके द्वारा सम्बन्धविशिष्ट हैं। इसलिये मैं, मृत्यु,सर्प,तुम अथवा बूढी ब्राह्मणी,

तस्मिंस्तथा ब्रुवाणे तु ब्राह्मणी गौतमी नृप ।
स्वकर्मप्रत्ययाँल्लोकान्मत्वाऽर्जुनकमब्रवीत् ॥ ७७ ॥

गौतम्युवाच— नैव कालो न भुजगो न मृत्युरिह कारणम् ।
स्वकर्मभिरयं बालः कालेन निधनं गतः ॥ ७८ ॥
मया च तत्कृतं कर्म येनायं मे मृतः सुतः ।
यातु कालस्तथा मृत्युर्मुञ्चार्जुनक पन्नगम् ॥ ७९ ॥

भीष्म उवाच— ततो यथागतं जग्मुर्मृत्युः कालोऽथ पन्नगः ।
अभूद्विशोकोऽर्जुनको विशोका चैव गौतमी ॥ ८० ॥
एतच्छ्रुत्वा शमं गच्छ मा भूः शोकपरो नृप ।
स्वकर्मप्रत्ययाँल्लोकान् सर्वे गच्छन्ति वै नृप ॥ ८१ ॥
नैव त्वया कृतं कर्म नापि दुर्योधनेन वै ।
कालेनैतत्कृतं विद्धि निहता येन पार्थिवाः ॥ ८२ ॥

वैशंपायन उवाच— इत्येतद्वचनं श्रुत्वा बभूव विगतज्वरः ।
युधिष्ठिरो महातेजाः पप्रच्छेदं च धर्मवित् ॥ ८३ ॥ [८३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे गौतमीलुब्धकव्यालमृत्युकालसंवादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

हम लोग कोई भी इस बालककी मृत्युके कारण नहीं हैं, बालक ही इस विषयमें कारण है। हे राजन्! कालके ऐसा कहते रहनेपर 'सब लोग अपने कर्मसे ही स्वर्ग नरक भोग करते हैं' ब्राह्मणी गौतमी ऐसा निश्चय करके अर्जुनसे कहने लगी। (७४-७७)

गौतमी बोली, काल, सर्प और मृत्यु, इनमेंसे कोई भी इस बालकके मरनेके विषयमें कारण नहीं है, इस बालकने निज कर्मोंके द्वाराही मृत्यु लाभ की है। मैंने भी पुत्रशोकप्रद कर्म किया था, जिससे कि मेरा यह पुत्र पञ्चत्वको प्राप्त हुआ है; इस समय काल और मृत्यु गमन करें, हे अर्जुन! तुम भी सर्पको छोड दो। (७८-७९)

भीष्म बोले, अनन्तर काल, मृत्यु और सर्पके चले जानेपर अर्जुनका शोक छूटा और गौतमी भी शोकरहित हुई। हे महाराज! इसे सुनके तुम शान्ति अवलम्बन करो, शोक मत करो। हे महाराज! सब कोई निजकर्म निबन्धनसे स्वर्ग और नरकलोकमें गमन किया करते हैं। राजा लोग जिन कर्म्मोंके सहारे मारे गये, वे तुम्हारा अथवा दुर्योधनके कृत कर्म नहीं थे; जानना

युधिष्ठिर उवाच- पितामह महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद।
श्रुतं मे महदाख्यानमिदं मतिमतां वर ॥ १ ॥
भूयस्तु श्रोतुमिच्छामि धर्मार्थसहितं नृप।
कथ्यमानं त्वया किंचित्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥
केन मृत्युर्गृहस्थेन धर्ममाश्रित्य निर्जितः।
इत्येतत्सर्वमाचक्ष्व तत्त्वेनापि च पार्थिव ॥ ३ ॥
भीष्म उवाच- अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
यथा मृत्युर्गृहस्थेन धर्ममाश्रित्य निर्जितः ॥ ४ ॥
मनोः प्रजापते राजन्निक्ष्वाकुरभवत्सुतः।
तस्य पुत्रशतं जज्ञे नृपतेः सूर्यवर्चसः ॥ ५ ॥
दशमस्तस्य पुत्रस्तु दशाश्वो नाम भारत।
माहिष्मत्यामभूद्राजा धर्मात्मा सत्यविक्रमः ॥ ६ ॥
दशाश्वस्य सुतस्त्वासीद्राजा परमधार्मिकः।
सत्ये तपसि दाने च यस्य नित्यं रतं मनः ॥ ७ ॥

चाहिये, कि वे कालके द्वारा विहित हुए थे। (८०—८२)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महातेजस्वी धर्मज्ञ युधिष्ठिर भीष्मका ऐसा वचन सुनके शोकरहित हुए और उन से यह वक्ष्यमाण वचन कहने लगे। (८३)

अनुशासनपर्वमें १ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें २ अध्याय।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ, सब शास्त्रोंके जाननेवाले महाप्राज्ञ पितामह! मैंने यह महत् आख्यान सुना, अब फिर आप धर्मार्थयुक्त जो इतिहास कहे, उसे मैं सुननेकी अभिलाष करता हूं,इस लिये आपको उसकी व्याख्या करनी उचित है। हे नरपाल! किस गृहस्थने धर्मके सहारे मृत्युको पराजित किया है, इस वृत्तान्त को आप यथार्थ रूपसे वर्णन करिये। (१—३)

भीष्म बोले, गृहस्थ मनुष्यने धर्मके सहारे मृत्युको पराजित किया है, इस विषयमें प्राचीन लोग इस पुराने इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। हे राजन्! प्रजापति मनुके इक्ष्वाकु नामक एक पुत्र था, उस सूर्य समान तेजस्वी राजाके एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए थे। हे भारत! उसके दसवें पुत्रका नाम दशाश्व था, वह सत्यपराक्रमी धर्मात्मा माहिष्मती नगरीका राज,

मदिराश्व इति ख्यातः पृथिव्यां पृथिवीपतिः ।
धनुर्वेदे च वेदे च निरतो योऽभवत्सदा ॥ ८ ॥
मदिराश्वस्य पुत्रस्तु द्युतिमान्नाम पार्थिवः ।
महाभागो महातेजा महासत्त्वो महाबलः ॥ ९ ॥
पुत्रो द्युतिमतस्त्वासीद्राजा परमधार्मिकः ।
सर्वलोकेषु विख्यातः सुवीरो नाम नामतः ॥ १० ॥
धर्मात्मा कोषवांश्चापि देवराज इवापरः ।
सुवीरस्य तु पुत्रोऽभूत्सर्वसंग्रामदुर्जयः ॥ ११ ॥
स दुर्जय इति ख्यातः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
दुर्जयस्येन्द्रवपुषः पुत्रोऽग्निसदृशद्युतिः ॥ १२ ॥
दुर्योधनो नाम महान् राजा राजर्षिसत्तमः ।
तस्येन्द्रसमवीर्यस्य संग्रामेष्वनिवर्तिनः ॥ १३ ॥
विषये वासवस्तस्य सम्यगेव प्रवर्षति ।
रत्नैर्धनैश्च पशुभिः सस्यैश्चापि पृथग्विधैः ॥ १४ ॥
नगरं विषयश्चास्य प्रतिपूर्णस्तदाऽभवत् ।
न तस्य विषये चाभूत्कृपणो नापि दुर्गतः ॥ १५ ॥

हुआ था । दशाश्वका पुत्र परम धर्मात्मा मदिराश्व नामक राजा पृथ्वी मण्डल भरमें प्रसिद्ध हुआ था । सत्य, तपस्या और दान विषयमें उसका चित्त सदा रत रहता था और वह धनुर्वेद तथा वेदमें भी अनुरक्त था । मदिराश्व के पुत्रका नाम द्युतिमान था, वह महाबलिष्ठ, महातेजस्वी, महाभाग्यशाली और महासत्त्वशाली था । द्युतिमानका पुत्र परम धर्मके आचरणमें रत सुवीर नाम राजा सब लोकोंमें विख्यात हुआ, वह धर्मात्मा अधिक धन-संपत्तिशाली और दूसरे इन्द्रके समान कोषवान् था । सुवीरका पुत्र सर्वसंग्रामदुर्जय, सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ सुदुर्जय नामसे विख्यात था । (४-१२)

दुर्जयके इन्द्रके समान शरीरसे युक्त अग्निसदृस तेजस्वी महाराज दुर्योधन नामक पुत्र हुआ । उस इन्द्रके समान पराक्रमशाली,युद्धमें अपराङ्मुख राजाके राज्यमें देवराज पूरी रीतिसे जल की वर्षा करते थे । अनेक प्रकार के शस्य, पशु, धन और अनेक प्रकारके रत्नसे उस समय उसका राज्य तथा नगर परिपूर्ण था । (१३—१५)

व्याधितो वा कृशो वाऽपि तस्मिन्नाभून्नरः क्वचित् ।
सुदक्षिणो मधुरवागनसूयुर्जितेन्द्रियः ।
धर्मात्मा चानृशंसश्च विक्रान्तोऽथाविकत्थनः ॥ १६ ॥
यज्वा च दान्तो मेधावी ब्रह्मण्यः सत्यसंगरः ।
न चावमन्ता दाता च वेदवेदाङ्गपारगः ॥ १७ ॥
तं नर्मदा देवनदी पुण्या शीतजला शिवा ।
चकमे पुरुषव्याघ्रं स्वेन भावेन भारत ॥ १८ ॥
तस्यां जज्ञे तदा नद्यां कन्या राजीवलोचना ।
नाम्ना सुदर्शना राजन् रूपेण च सुदर्शना ॥ १९ ॥
तादृग्रूपा न नारीषु भूतपूर्वा युधिष्ठिर ।
दुर्योधनसुता यादृगभवद्वरवर्णिनी ॥ २० ॥
तामग्निश्चकमे साक्षाद्राजकन्यां सुदर्शनाम् ।
भूत्वा च ब्राह्मणो राजन्वरयामास तं नृपम् ॥ २१ ॥
दरिद्रश्चासवर्णश्च ममायमिति पार्थिवः ।
न दित्सति सुतां तस्मै तां विप्राय सुदर्शनाम् ॥२२ ॥

उसके राज्यमें कोई कृपण वा दरिद्र नहीं था, और उसके राज्य शासनके समयमें कोई पुरुष रोगी अथवा कृश नहीं हुआ था। हे भारत ! उस मृदु-भाषी, असूयारहित, जितेन्द्रिय, धर्मा-त्मा, अनृशंस, पराक्रमी, अनात्मश्लाघा-परायण, विधिपूर्वक यज्ञ करनेवाले, अन्तरिन्द्रियनिग्रहशील, मेधावी, ब्रह्म-निष्ठ, सत्यसङ्कर, अनवमन्ता, वदा-न्यवर, वेदवेदान्तके जाननेवाले उत्तम दक्षिणा देनेवाले पुरुषप्रवर पृथ्वीपाल की शीतल जलसे युक्त कल्याणदायिनी पुण्यतमा देवनदी नर्मदाने स्वाभाविक कामना की थी। (१५—१८)

हे महाराज ! राजा दुर्योधनने उस नर्मदा नदीसे एक सुदर्शना नामकी राजीवलोचना कन्या उत्पन्न की, वह कन्या केवल नामसे ही नहीं, रूपसे भी सुदर्शना थी। हे युधिष्ठिर ! दुर्योधनकी कन्या जैसी सुन्दरी थी, स्त्रियोंके बीच वैसी सुन्दरी स्त्री पहले कभी उत्पन्न नहीं हुई थी। हे राजन् ! अग्निने स्वयं ब्राह्मणका वेष धरके उस राजकन्या सुदर्शनाकी कामनासे राजाके निकट उसे पानेके लिये प्रार्थना की थी। ब्राह्मण मेरा असवर्ण और दरिद्र है, ऐसा समझके राजाने उस विप्रको सुदर्शना कन्या दान करनेकी अभिलाष

ततोऽस्य वितते यज्ञे नष्टोऽभूद्धव्यवाहनः ।
ततः सुदुःखितो राजा वाक्यमाह द्विजांस्तदा ॥ २३ ॥
दुष्कृतं मम किं नु स्याद्भवतां वा द्विजर्षभाः ।
येन नाशं जगामाग्निः कृतं कुपुरुषेष्विव ॥ २४ ॥
न ह्यल्पं दुष्कृतं नोऽस्ति येनाग्निर्नाशमागतः ।
भवतां चाथ वा मह्यं तत्त्वेनैतद्विमृश्यताम् ॥ २५ ॥
तत्र राज्ञो वचः श्रुत्वा विप्रास्ते भरतर्षभ ।
नियता वाग्यताश्चैव पावकं शरणं ययुः ॥ २६ ॥
तान् दर्शयामास तदा भगवान् हव्यवाहनः ।
स्वं रूपं दीप्तिमत्कृत्वा शरदर्कसमद्युतिः ॥ २७ ॥
ततो महात्मा तानाह दहनो ब्राह्मणर्षभान् ।
वरयाम्यात्मनोऽर्थाय दुर्योधनसुतामिति ॥ २८ ॥
ततस्ते कल्यमुत्थाय तस्मै राज्ञे न्यवेदयन् ।
ब्राह्मणा विस्मिताः सर्वे यदुक्तं चित्रभानुना ॥ २९ ॥
ततः स राजा तच्छ्रुत्वा वचनं ब्रह्मवादिनाम् ।

नहीं की। अनन्तर उस भूपतिके त्रेताग्निसाध्य यज्ञ में हव्यवाहन अग्नि-देव अन्तर्द्धान हुए, राजा उस समय अत्यन्त दुःखित होकर ब्राह्मणोंसे यह वचन बोला। (१९-२३)

हे द्विजश्रेष्ठगण! मुझसे अथवा आप लोगोंसे ऐसा कौनसा पापकर्म हुआ है, जिससे कि कुपुरुषके उपकारकी भांति अग्निदेव अदृश्य हुए? हम लोगोंका अल्प पाप नहीं है; क्यों कि अग्नि विनष्ट हुई। यह हमारा अथवा आपका पाप है, उसे यथार्थ रीतिसे विचारिये, हे भरतप्रवर! उस समय ये सब ब्राह्मण राजाका वचन सुनके नियमनिष्ठ और वाक्संयत होकर अग्निदेवके शरणागत हुए। शरत्-कालके सूर्यके समान तेजस्वी भगवान हव्यवाहनने उस समय निज रूपको प्रकाशित करके ब्राह्मणोंको दर्शन दिया। अनन्तर महानुभाव अग्नि उन ब्राह्मणोंसे बोले, मैं अपने लिये दुर्योधनकी कन्या को चाहता हूं। इस वचनको सुनके ब्राह्मण लोग विस्मित हुए और अग्निने जो कुछ कहा था, भोरके समय उठके वह सब वृत्तान्त राजाके समीप वर्णन किया। (२४-२९)

उस बुद्धिमान् राजाने ब्रह्मवादियोंके मुखसे ऐसा वचन सुनके परम हर्षित

अवाप्य परमं हर्षं तथेति प्राह बुद्धिमान् ॥ १० ॥
अयाचत च तं शुल्कं भगवन्तं विभावसुम् ।
नित्यं सान्निध्यमिह ते चित्रभानो भवेदिति ॥ ११ ॥
तमाह भगवानग्निरेवमस्त्विति पार्थिवम् ।
ततः सान्निध्यमद्यापि माहिष्मत्यां विभावसोः ॥१२॥
दृष्टं हि सहदेवेन दिशं विजयता तदा ।
ततस्तां समलंकृत्य कन्यामाहतवाससम् ॥ २३ ॥
ददौ दुर्योधनो राजा पावकाय महात्मने ।
प्रतिजग्राह चाग्निस्तु राजकन्यां सुदर्शनाम् ॥ २४ ॥
विधिना वेददृष्टेन वसोर्धारामिवाध्वरे ।
तस्या रूपेण शीलेन कुलेन वपुषा श्रिया ॥ १५ ॥
अभवत्प्रीतिमानग्निर्गर्भं चास्या मनो दधे ।
तस्याः समभवत्पुत्रो नाम्नाऽऽग्नेयः सुदर्शनः ॥ २६ ॥
सुदर्शनस्तु रूपेण पूर्णेन्दुसदृशोपमः ।
शिशुरेवाध्यगात्सर्वं परं ब्रह्म सनातनम् ॥ १७ ॥
अथौघवान्नाम नृपो नृगस्यासीत्पितामहः ।
तस्याथौघवती कन्या पुत्रश्चौघरथोऽभवत ॥ २८ ॥

होके कहा, कि ऐसा ही होगा और भगवान् अग्निके निकट शुल्कस्वरूप यह वर मांगा कि, हे विभावसु ! इस स्थान में आप सदा निवास करिये, भगवान अग्निदेव राजाका वचन सुनके बोले, कि " ऐसा ही होवे । " तभीसे माहिष्मती नगरीमें अग्नि सदा विद्यमान है, जब सहदेवने दक्षिण दिशा जीतनेके लिये प्रस्थान किया था, तब उन्हें प्रत्यक्ष दीख पडा था । अनन्तर राजा दुर्योधनने उस कन्याको नवीन वस्त्र पहराके सब आभूषणोंसे भूषित करके महात्मा अग्निको प्रदान किया । अग्निने भी अध्वरमें वसुधाराकी भांति उस राजकन्या सुदर्शनाको प्रतिग्रह किया । उसके कुल-शील, शरीरकी सुघराई और श्री देखके अग्निदेव प्रसन्न होके उसे पुत्र प्रदान करनेमें मनोयोगी हुए । अग्निके द्वारा उस राजकन्याके गर्भसे सुदर्शन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ; सुदर्शन सुघराई और रूप गुणमें पूर्णचन्द्रके समान हुआ, उसने बालक अवस्थामें ही संपूर्ण सनातन वेद अध्ययन किया । (१०-२७)

तामोघवान् ददौ तस्मै स्वयमोघवतीं सुताम् ।
सुदर्शनाय विदुषे भार्यार्थे देवरूपिणीम् ॥ ३९ ॥
स गृहस्थाश्रमरतस्तया सह सुदर्शनः ।
कुरुक्षेत्रेऽवसद्राजन्नोघवत्या समन्वितः ॥ ४० ॥
गृहस्थश्चावजेष्यामि मृत्युमित्येव स प्रभो ।
प्रतिज्ञामकरोद्धीमान् दीप्ततेजा विशाम्पते ॥ ४१ ॥
तामथौघवतीं राजन् स पावकसुतोऽब्रवीत् ।
अतिथेः प्रतिकूलं ते न कर्तव्यं कथंचन ॥ ४२ ॥
येन येन च तुष्येत नित्यमेव त्वयाऽतिथिः ।
अप्यात्मनः प्रदानेन न ते कार्या विचारणा ॥ ४३ ॥
एतद्व्रतं मम सदा हृदि संपरिवर्तते ।
गृहस्थानां च सुश्रोणि नातिथेर्विद्यते परम् ॥ ४४ ॥
प्रमाणं यदि वामोरु वचस्ते मम शोभने ।
इदं वचनमव्यग्रा हृदि त्वं धारयेः सदा ॥ ४५ ॥
निष्क्रान्ते मयि कल्याणि तथा संनिहितेऽनघे ।
नातिथिस्तेऽवमन्तव्यः प्रमाणं यद्यहं तव ॥ ४६ ॥

नृग राजाके पितामह ओघवान् नामके राजा थे, उनके ओघवती नाम की कन्या और ओघरथ नामका पुत्र था, ओघवानने स्वयं विद्वान् सुदर्शनके साथ अपनी देवरूपिणी कन्याका विवाह किया। हे महाराज! सुदर्शनने उस ओघवतीके साथ गृहस्थाश्रममें रत होके कुरुक्षेत्रमें निवास किया था। हे नरनाथ! महातेजस्वी, धीमान सुदर्शन गृहस्थ होके मृत्युको जय करूंगा ऐसी ही प्रतिज्ञा करके पत्नीसे बोले, कि तुम भी अतिथियोंके विषयमें किसी प्रकारसे प्रतिकूल आचरण न करना; प्रतिदिन अतिथि जिस प्रकार तुम्हारे द्वारा प्रसन्न हो, तुम आत्मप्रदान करके भी उस कार्यको सिद्ध करना, इस विषयमें कुछ भी विचार न करना। (३८-४३)

हे सुश्रोणि! मेरे हृदयमें सदा यह व्रत विद्यमान है, कि गृहस्थ मनुष्योंके निमित्त अतिथिसे बढके और कुछ भी नहीं है। हे शोभने! हे वामोरु! यदि तुम मेरे वचनको मानो, तो सन्देह-रहित होके सदा इस ही वचनको हृदयमें धारण करो। हे कल्याणि! हे पापरहिते! मैं चाहे घरसे बाहर रहूं, अथवा घरमें ही रहूं, मेरा वचन यदि तुम्हें प्रमाण

तमब्रवीदोघवती तथा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ।
न मे त्वद्वचनात्किंचिन्न कर्तव्यं कथंचन ॥ ४७ ॥
जिगीषमाणस्तु गृहे तदा मृत्युः सुदर्शनम् ।
पृष्ठतोऽन्वगमद्राजन्रन्ध्रान्वेषी तदा सदा ॥ ४८ ॥
इध्मार्थं तु गते तस्मिन्नग्निपुत्रे सुदर्शने ।
अतिथिर्ब्राह्मणः श्रीमांस्तामाहौघवतीं तदा ॥ ४९ ॥
आतिथ्यं कृतमिच्छामि त्वयाऽद्य वरवर्णिनि ।
प्रमाणं यदि धर्मस्ते गृहस्थाश्रमसंमतः ॥ ५० ॥
इत्युक्ता तेन विप्रेण राजपुत्री यशस्विनी ।
विधिना प्रतिजग्राह वेदोक्तेन विशाम्पते ॥ ५१ ॥
आसनं चैव पाद्यं च तस्मै दत्त्वा द्विजातये ।
प्रोवाचौघवती विप्रं केनार्थः किं ददामि ते ॥ ५२ ॥
तामब्रवीत्ततो विप्रो राजपुत्रीं सुदर्शनाम् ।
त्वया ममार्थः कल्याणि निर्विशङ्कैतदाचर ॥ ५३ ॥
यदि प्रमाणं धर्मस्ते गृहस्थाश्रमसंमतः ।
प्रदानेनात्मनो राज्ञि कर्तुमर्हसि मे प्रियम् ॥ ५४ ॥

हो, तुम अतिथिकी अवमानना न करना । ओघवती उस समय हाथ जोडके पतिसे बोली, तुम्हारी आज्ञा हर प्रकारसे मुझे पालन करना उचित है। हे राजन्! उस समय मृत्यु उस गृहस्थ सुदर्शनके जिगीषापरवश और छिद्रान्वेषी होकर सदा उसके पीछे पीछे घूमने लगी । जब अग्निपुत्र सुदर्शनने काष्ठ लानेके निमित्त गमन किया, तब यमने ब्राह्मणका वेष धरके अतिथि होकर उस ओघवतीसे कहा, हे वरवर्णिनि! गृहस्थाश्रम-सम्मत धर्म यदि तुम्हें प्रमाण हो, तो मेरा तुम आतिथ्य करो, मेरी यही अभिलाषा है। (४४-५०)

हे नरनाथ! यशस्विनी राजपुत्री उस ब्राह्मणका ऐसा वचन सुनके वेद-विहित विधिके अनुसार उसका सत्कार करने लगी, तथा ब्राह्मणको आसन और पाद्य देकर बोली, हे विप्रवर! आपका कौनसा प्रयोजन है ? तब ब्राह्मण उस सुन्दरी राजकन्यासे बोला, हे कल्याणि! मैं तुम्हें ही चाहता हूं, तुम निःशङ्क होकर ऐसा ही आचरण करो । हे राजकन्या! गृहस्थाश्रम-सम्मत धर्म यदि तुम्हें प्रमाण हो, तो

स तया छन्द्यमानोऽन्यैरीप्सितैर्नृपकन्यया ।
नान्यमात्मप्रदानात्स तस्या वव्रे वरं द्विजः ॥ ५५ ॥
सा तु राजसुता स्मृत्वा भर्तुर्वचनमादितः ।
तथेति लज्जमाना सा तमुवाच द्विजर्षभम् ॥ ५६ ॥
ततो विहस्य विप्रर्षिः सा चैवाथ विवेश ह ।
संस्मृत्य भर्तुर्वचनं गृहस्थाश्रमकाङ्क्षिणः ॥ ५७ ॥
अथेध्मानमुपादाय स पावकिरुपागमत् ।
मृत्युना रौद्रभावेन नित्यं बन्धुरिवान्वितः ॥ ५८ ॥
ततस्त्वाश्रममागम्य स पावकसुतस्तदा ।
तां व्याजहारौघवतीं क्वासि यातेति चासकृत् ॥५९ ॥
तस्मै प्रतिवचः सा तु भर्त्रे न प्रददौ तदा ।
कराभ्यां तेन विप्रेण स्पृष्टा भर्तृव्रता सती ॥ ६० ॥
उच्छिष्टास्मीति मन्वाना लज्जिता भर्तुरेव च ।
तूष्णींभूताऽभवत्साध्वी न चोवाचाथ किंचन ॥ ६१ ॥
अथ तां पुनरेवेदं प्रोवाच स सुदर्शनः ।
क्व सा साध्वी क्व सा याता गरीयः किमतो मम ॥ ६२ ॥

तुम आत्मप्रदान करके मेरा प्रियकार्य सिद्ध करो। राजपुत्रीने अन्य अन्य अभिलषित वस्तु देनेका ब्राह्मणको लोभ दिखाया, तो भी उसने उसके आत्मप्रदानके अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु न मांगी। तब राजकन्याने पति-का वचन स्मरण करके लज्जापूर्वक ब्राह्मणसे कहा, कि "ऐसा ही होवे।" अनन्तर उस राजकन्याने गृहस्थाश्रमकी इच्छा करनेवाले पतिका वचन स्मरण करके हंसकर उस ब्राह्मणके साथ निर्जन गृहमें बैठी; अनन्तर अग्निपुत्र सुदर्शन काठ लेकर घरपर आके उपस्थित हुए। रौद्रभावयुक्त मृत्यु अदृश्य भावसे सदा उनके निकटवर्त्ती थी। (५१-५८)

अनन्तर अग्निपुत्र उस समय अपने आश्रममें आके उस ओघवतीको 'कहां गई' ऐसा कहके बार बार आह्वान करने लगे। पतिव्रता सती उस समय उस ब्राह्मणके दोनों हाथोंसे आलिङ्गित रहनेसे पतिको कुछभी उत्तर न दे सकी मैं पतिके समीप उच्छिष्ट हुई, ऐसा विचारती हुई लज्जित होकर वह साध्वी चुप होरही, तथा कुछ भी न बोली, अनन्तर सुदर्शनने फिर उसे पुकार कर

पतिव्रता सत्यशीला नित्यं चैवार्जवे रता।
कथं न प्रत्युदेत्यद्य स्मयमाना यथा पुरा ॥ ६३ ॥
उटजस्थस्तु तं विप्रः प्रत्युवाच सुदर्शनम्।
अतिथिं विद्धि संप्राप्तं ब्राह्मणं पावके च माम् ॥ ६४ ॥
अनया छन्द्यमानोऽहं भार्यया तव सत्तम।
तैस्तैरतिथिसत्कारैर्ब्रह्मन्नेषा वृता मया ॥ ६५ ॥
अनेन विधिना सेयं मामर्चति शुभानना।
अनुरूपं यदत्रान्यत्तद्भवान्कर्तुमर्हति ॥ ६६ ॥
कूटमुद्गरहस्तस्तु मृत्युस्तं वै समन्वगात्।
हीनप्रतिज्ञमत्रैनं वधिष्यामीत्यचिन्तयन् ॥ ६७ ॥
सुदर्शनस्तु मनसा कर्मणा चक्षुषा गिरा।
त्यक्तेर्ष्यस्त्यक्तमन्युश्च स्मयमानोऽब्रवीदिदम् ॥ ६८ ॥
सुरतं तेऽस्तु विप्राग्र्य प्रीतिर्हि परमा मम।
गृहस्थस्य हि धर्मोऽग्र्यः संप्राप्तातिथिपूजनम् ॥ ६९ ॥

कहा, 'वह साध्वी कहां है? वह कहां चली गई?' इससे बढके और गुरुतर विषय दूसरा कौनसा होगा? पतिव्रता, सत्यशीला, सदा सरल स्वभाववाली वह प्रियतमा किस निमित्त विस्मययुक्त होकर आज पहलेकी भांति प्रकाशित नहीं होती है। (५९—६३)

सुदर्शन ऐसा ही वचन कह रहे थे, उस समय कुटीमें स्थित ब्राह्मणने उन्हें उत्तर दिया, कि हे अग्निपुत्र! तुम्हें विदित हो, कि मैं अतिथि उपस्थित हुआ हूं। हे सत्तम! मैं तुम्हारी भार्याके द्वारा अनेक प्रकारके सत्कारोंसे प्रलोभित होने पर भी केवल इसकी ही प्रार्थना की है, यह वही शुभानना विधिपूर्वक मेरा संमान करती है, इस विषयमें दूसरा जो कुछ कार्य तुम्हें उपयुक्त बोध हो, अर्थात् स्त्रीदूषणके अनुसार यदि दण्ड देना उचित हो, तो तुम उसका अनुष्ठान करो। "अतिथिव्रत परित्याग करके जो प्रतिज्ञासे भ्रष्ट होता है, उसका वध करूंगा", ऐसा विचार कर मृत्यु देव लोहदण्ड धारण करके उस पुरुषकी अनुगामी हुए हैं। (६४—६७)

सुदर्शन ऐसा वचन सुनके कर्म, मन, नेत्र और वचनसे ईर्षा तथा क्रोध परित्याग करके विस्मित होकर यह वचन बोले, हे विप्रवर! आपका सुरत हो, मुझे उससे परम प्रसन्नता होगी;

अतिथिः पूजितो यस्य गृहस्थस्य तु गच्छति ।
नान्यस्तस्मात्परो धर्म इति प्राहुर्मनीषिणः ॥ ७० ॥
प्राणा हि मम दाराश्च यच्चान्यद्विद्यते वसु ।
अतिथिभ्यो मया देयमिति मे व्रतमाहितम् ॥ ७१ ॥
निःसंदिग्धं यथा वाक्यमेतन्मे समुदाहृतम् ।
तेनाहं विप्र सत्येन स्वयमात्मानमालभे ॥ ७२ ॥
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ।
बुद्धिरात्मा मनः कालो दिशश्चैव गुणा दश ॥ ७३ ॥
नित्यमेव हि पश्यन्ति देहिनां देहसंश्रिताः ।
सुकृतं दुष्कृतं चापि कर्म धर्मभृतां वर ॥ ७४ ॥
यथैषा नानृता वाणी मयाऽद्य समुदीरिता ।
तेन सत्येन मां देवाः पालयन्तु दहन्तु वा ॥ ७५ ॥
ततो नादः समभवद्दिक्षु सर्वासु भारत ।
असकृत्सत्यमित्येवं नैतन्मिथ्येति सर्वतः ॥ ७६ ॥
उटजात्तु ततस्तस्मान्निश्चक्राम स वै द्विजः ।
वपुषा द्यां च भूमिं च व्याप्य वायुरिवोद्यतः ॥ ७७ ॥

अतिथि-सत्कार ही गृहस्थका परम धर्म है। जिस गृहस्थके घरमें अतिथि आकर पूजित होके गमन करता है, उससे बढके दूसरा कोई भी श्रेष्ठ धर्म नहीं है, ऐसा पण्डित लोग कहा करते हैं। मेरा प्राण, पत्नी और दूसरा जो कुछ धन है, वह सब अतिथियोंको दान करूंगा, यही मेरा सङ्कल्पित व्रत है। हे विप्र! मैंने सन्देहरहित होकर जिस प्रकार यह वचन कहा है, वैसे ही सत्यके सहारे स्वयं आत्माको अवलम्बन करता हूं। (६८—७२)

हे धार्मिकप्रवर! पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि ये पांच और बुद्धि, आत्मा, मन, काल तथा दिशा, ये दस सदा देहधारियोंके शरीरमें स्थित रहके सुकृत और दुष्कृत कर्मोंको अवलोकन करते हैं। आज मैंने जो यह वचन कहा है, उस सत्यके सहारे देवता लोग मुझे पालन करें, अथवा भस्म करें। हे भारत! अनन्तर "यही सत्य है, इसमें कुछ भी झूट नहीं है" ऐसा ही शब्द सब ओरसे प्रकट हुआ। अनन्तर उदयशील वायुकी भांति शरीरके सहारे वह ब्राह्मण उस कुटीसे बाहर निकला और उदात्तादि धर्म-

स्वरेण विप्रः शैक्षेण त्रीन् लोकाननुनादयन्।
उवाच चैनं धर्मज्ञं पूर्वमामन्त्र्य नामतः ॥ ७८ ॥
धर्मोऽहमस्मि भद्रं ते जिज्ञासार्थं तवानघ।
प्राप्तः सत्यं च ते ज्ञात्वा प्रीतिर्मे परमा त्वयि॥ ७९ ॥
विजितश्च त्वया मृत्युर्योऽयं त्वामनुगच्छति।
रन्ध्रान्वेषी तव सदा त्वया धृत्या वशीकृतः ॥८०॥
न चास्ति शक्तिस्त्रैलोक्ये कस्यचित्पुरुषोत्तम।
पतिव्रतामिमां साध्वीं तवोद्वीक्षितुमप्युत ॥ ८१ ॥
रक्षिता त्वद्गुणैरेषा पतिव्रतगुणैस्तथा।
अधृष्या यदियं ब्रूयात्तथा तन्नान्यथा भवेत् ॥ ८२ ॥
एषा हि तपसा स्वेन संयुक्ता ब्रह्मवादिनी।
पावनार्थं च लोकस्य सरिच्छ्रेष्ठा भविष्यति ॥ ८३ ॥
अर्धेनौघवती नाम त्वमर्धेनानुयास्यति।
शरीरेण महाभागा योगो ह्यस्या वशे स्थितः ॥८४॥
अनया सह लोकांश्च गन्तासि तपसाऽर्जितान्।

विशिष्ट स्वरसे प्रथम उस धर्मज्ञ सुदर्शनका नाम लेके उन्हें आमन्त्रण करके यह वचन बोला, हे पापरहित! तुम्हारा मङ्गल हो, मैं धर्म हूं, मैं तुम्हारी परीक्षा करनेके लिये इस स्थानमें आया था। (७३–७९)

हे सत्यज्ञ! सत्य जाननेसे अब तुम्हारे उपर मेरी अत्यन्त प्रीति हुई। छिद्रान्वेषी मृत्यु जो कि सदा तुम्हारा पीछा कर रही है, तुमने उसे जय किया है और धैर्य गुणसे वशीभूत किया है। हे पुरुषोत्तम! तुम्हारे इस पतिव्रता साध्वीको स्पर्श करनेकी बात तो दूर है, इसकी ओर देखनेकी भी तीनों लोकोंके बीच किसीको सामर्थ्य नहीं है। यह तुम्हारे गुणसे तथा पतिव्रता गुणसे रक्षित हुई है। यह अधृष्या साध्वी जो कहेगी, वह मिथ्या न होगा। यह ब्रह्मवादिनी निज तपस्यासे संयुक्त होकर लोकको पवित्र करनेके लिये श्रेष्ठ नदी होगी। (७९—८३)

तुम इस जन्ममें इस ही शरीरसे सब लोकोंमें गमन करोगे, और यह महाभागा अर्द्ध शरीरसे ओघवती नामकी नदी होगी और आधे शरीरसे तुम्हारा अनुगमन करेगी, योगबलसे यह दो शरीर धारण कर सकेगी, क्यों कि योग इसके वशमें है, तुमने तपोबल

यत्र नावृत्तिमभ्येति शाश्वतांस्तान्सनातनान् ॥ ८५ ॥
अनेन चैव देहेन लोकांस्त्वमभिपत्स्यसे ।
निर्जितश्च त्वया मृत्युरैश्वर्यं च तवोत्तमम् ॥ ८६ ॥
पञ्च भूतान्यतिक्रान्तः स्ववीर्याच्च मनोजवः ।
गृहस्थधर्मेणानेन कामक्रोधौ च ते जितौ ॥ ८७ ॥
स्नेहो रागश्च तन्द्री च मोहो द्रोहश्च केवलः ।
तव शुश्रूषया राजन् राजपुत्र्या विनिर्जिताः ॥ ८८ ॥
भीष्म उवाच—शुक्लानां तु सहस्रेण वाजिनां रथमुत्तमम् ।
युक्तं प्रगृह्य भगवान् वासवोऽप्याजगाम तम् ॥ ८९ ॥
मृत्युरात्मा च लोकाश्च जिता भूतानि पञ्च च ।
बुद्धिः कालो मनो व्योम कामक्रोधौ तथैव च ॥ ९० ॥
तस्माद्गृहाश्रमस्थस्य नान्यद्दैवतमस्ति वै ।
ऋतेऽतिथिं नरव्याघ्र मनसैतद्विचारय ॥ ९१ ॥
अतिथिः पूजितो यद्धि ध्यायते मनसा शुभम् ।
न तत्क्रतुशतेनापि तुल्यमाहुर्मनीषिणः ॥ ९२ ॥

से जिन लोगोंको प्राप्त किया है, इसके सहित उन्हीं लोकोंमें जाओगे; जहांपर जानेसे फिर मर्त्यलोकमें नहीं आना होता, तुम इस ही शरीरसे उस शाश्वत सनातन लोकमें गमन करोगे। मृत्यु तुमसे निर्जित हुई है, तुमने उत्तम ऐश्वर्य पाया है, तुमने निज वीर्यबलसे मनोजव होकर पञ्चभूतोंको अतिक्रम किया है। तुमने इस गृहस्थधर्मके सहारे काम और क्रोधको जीता है। हे ऋषि-राज! इस राजपुत्रीने तुम्हारी सेवाके सहारे स्नेह, राग, तन्द्रा, मोह और द्रोहको विशेष रूपसे जय किया है। (८४-८८)

भीष्म बोले, अनन्तर देवराज इन्द्र सफेद रंगवाले हजार घोडोंसे युक्त उत्तम रथ लेकर उस ब्राह्मणके निकट उपस्थित हुए। हे नरनाथ! उस ब्राह्मणने अतिथिके विषयमें भक्तिवशसे मृत्यु, आत्मा, सब लोक, पञ्चभूत, बुद्धि, काल, मन, व्योम, काम क्रोधको जय किया था, इसलिये गृह-स्थाश्रमी पुरुषके लिये अतिथिके समान दूसरा कोई भी देवता नहीं है, इसे मन-ही मन विचारो। अतिथि पूजित होनेसे मन ही मन जो शुभचिन्ता करता है, उसकी समानता सौ यज्ञके फल भी नहीं कर सकते, इसलिये पण्डित लोग

पात्रं त्वतिथिमासाद्य शीलाढ्यं यो न पूजयेत्।
स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ॥ ९३ ॥
एतत्ते कथितं पुत्र मयाऽऽख्यानमनुत्तमम्।
यथा हि विजितो मृत्युर्गृहस्थेन पुराऽभवत् ॥ ९४ ॥
धन्यं यशस्यमायुष्यमिदमाख्यानमुत्तमम्।
बुभूषताऽभिमन्तव्यं सर्वदुश्चरितापहम् ॥ ९५ ॥
इदं यः कथयेद्विद्वानहन्यहनि भारत।
सुदर्शनस्य चरितं पुण्याँल्लोकानवाप्नुयात् ॥ ९६ ॥ [१७९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे सुदर्शनोपाख्याने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

युधिष्ठिर उवाच—ब्राह्मण्यं यदि दुष्प्राप्यं त्रिभिर्वर्णैर्नराधिप।
कथं प्राप्तं महाराज क्षत्रियेण महात्मना ॥ १ ॥
विश्वामित्रेण धर्मात्मन् ब्राह्मणत्वं नरर्षभ।
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २ ॥
तेन ह्यमितवीर्येण वसिष्ठस्य महात्मनः।

कहा करते हैं कि अतिथि सत्कारका फल उससे भी अधिक हुआ करता है। (८९-९२)

शीलवान् सत्पात्र अतिथिके उपस्थित होनेसे जो पुरुष उसका सत्कार नहीं करता, उसे वह अतिथि अपना पापका फल देकर उसके पुण्यफलको लेकर चल देता है। हे तात! पहले समयमें गृहस्थ पुरुषके द्वारा मृत्यु जिस प्रकार पराजित हुई थी, यह वही उत्तम आख्यान मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया है। यह उत्तम आख्यान धन, यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला है। एश्वर्यकी इच्छा करनेवाले मनुष्य इसे सब पापोंको नष्ट करनेवाला समझते हैं। हे भारत! जो विद्वान् पुरुष नित्य इस सुदर्शनचरितको कहता है, वह पुण्यलोक पाता है। (९३-९६)

अनुशासनपर्वमें २ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ३ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे नरनाथ! क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन तीनों वर्णोंको यदि ब्राह्मणत्व प्राप्त होना दुष्प्राप्य है, तो महानुभाव विश्वामित्रने क्षत्रिय होके किस प्रकार ब्राह्मणत्व लाभ किया था। इसे मैं यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं। हे पुरुषश्रेष्ठ धर्मात्मा पितामह! आप मेरे समीप इस विषयका

हतं पुत्रशतं सद्यस्तपसाऽपि पितामह ॥ ३ ॥
यातुधानाश्च बहवो राक्षसास्तिग्मतेजसः ।
मन्युनाऽऽविष्टदेहेन सृष्टाः कालान्तकोपमाः ॥ ४ ॥
महान्कुशिकवंशश्च ब्रह्मर्षिशतसंकुलः ।
स्थापितो नरलोकेऽस्मिन्विद्वद्ब्राह्मणसंस्तुतः ॥ ५ ॥
ऋचीकस्यात्मजश्चैव शुनःशेपो महातपाः ।
विमोक्षितो महासत्रात्पशुतामभ्युपागतः ॥ ६ ॥
हरिश्चन्द्रः क्रतौ देवांस्तोषयित्वात्मतेजसा ।
पुत्रतामनुसंप्राप्तो विश्वामित्रस्य धीमतः ॥ ७ ॥
नाभिवादयते ज्येष्ठं देवरातं नराधिप ।
पुत्राः पञ्चाशदेवापि शप्ताः श्वपचतां गताः ॥ ८ ॥
त्रिशंकुर्बन्धुभिर्मुक्त ऐक्ष्वाकः प्रीतिपूर्वकम् ।
अवाक्शिरा दिवं नीतो दक्षिणामाश्रितो दिशम् ॥ ९ ॥
विश्वामित्रस्य विपुला नदी देवर्षिसेविता ।
कौशिकी च शिवा पुण्या ब्रह्मर्षिसुरसेविता ॥ १० ॥

वर्णन करिये । हे पितामह ! उस अत्यन्त वीर्यशाली विश्वामित्रने तपस्या के प्रभावसे महात्मा वसिष्ठके एक सौ पुत्रोंका नाश किया था । उनके शरीरमें क्रोध उत्पन्न होनेपर उन्होंने कालान्तक-समान बहुतेरे महातेजस्वी यातुधान राक्षसोंको उत्पन्न किया था । (१-४)

एक सौ ब्रह्मर्षियोंसे युक्त, विद्यावान, अत्यन्त महान् कुशिक वंश इस मनुष्य-लोकमें ब्राह्मणोंके द्वारा स्तुतियुक्त होकर स्थापित हुआ है; ऋचीकके पुत्र महातपस्वी शुनःशेप पशुत्वको प्राप्त होकर महायज्ञसे विमोक्षित हुए; हरि-श्चन्द्रने निज तेजके सहारे यज्ञमें देवता-ओंको सन्तुष्ट करके बुद्धिमान् विश्वामि-त्रका पुत्रत्व लाभ किया । देवताओंने विश्वामित्रको देवरात नामक जो पुत्र प्रदान किया था, उसके ज्येष्ठ तथा राजा होनेपर भी उनके अन्य पुत्रोंने उसे प्रणाम नहीं किया, इसीसे उन्होंने उन पचास पुत्रोंको शाप दिया, वे सब चाण्डाल होगये । (५-८)

इक्ष्वाकुका पुत्र त्रिशंकु वसिष्ठके शापसे चाण्डाल होगया, इसीसे उसके बान्धवोंने उसे परित्याग किया । अन-न्तर उनके दक्षिण दिशाको अवलम्बन करके अवाक्शिरा होनेपर विश्वामित्रने उसे स्वर्गमें भेजा । विश्वामित्रकी

तपोविघ्नकरी चैव पञ्चचूडा सुसंमता।
रम्भा नामाप्सराः शापाद्यस्य शैलत्वमागता ॥११॥
तथैवास्य भयाद्बद्ध्वा वसिष्ठः सलिले पुरा।
आत्मानं मज्जयन्श्रीमान् विपाशः पुनरुत्थितः ॥१२॥
तदा प्रभृति पुण्या हि विपाशाऽभून्महानदी।
विख्याता कर्मणा तेन वसिष्ठस्य महात्मनः ॥ १३ ॥
वाग्भिश्च भगवान्येन देवसेनाग्रगः प्रभुः।
स्तुतः प्रीतमनाश्चासीच्छापाच्चैनममुञ्चत ॥ १४ ॥
ध्रुवस्यौत्तानपादस्य ब्रह्मर्षीणां तथैव च।
मध्ये ज्वलति यो नित्यमुदीचीमाश्रितो दिशम् ॥१५॥
तस्यैतानि च कर्माणि तथाऽन्यानि च कौरव।
क्षत्रियस्येत्यतो जातमिदं कौतूहलं मम ॥ १६ ॥

कौशिकी नामकी देवर्षियोंसे सेवित एक बडी नदी थी, उस कल्याणी पुण्यसलिलवाली श्रेष्ठ नदीकी देवता और ब्रह्मर्षि लोग सेवा करते थे। पञ्चवलयवती, उत्तम और प्रसिद्ध रम्भा नामकी अप्सरा उसकी तपस्यामें विघ्न करनेसे शापवशसे शिला होगई थी। इस ही ऋषिके भयसे पहले समयमें वसिष्ठ मुनि पत्थरखण्डके सहित जलमें डूबे थे और विपाश होकर फिर जलसे ऊपर उठे थे, तभीसे उस पुण्य सलिल-वाली महानदी महात्मा वसिष्ठके उस ही कर्मसे विपाशा नामसे विख्यात हुई है। (९—१३)

जब विश्वामित्र त्रिशंकुके यज्ञ करनेमें प्रवृत्त हुए, तब वसिष्ठ मुनिके पुत्रोंने उन्हें यह कहके शाप दिया, कि "जब तुम चाण्डालके पुरोहित हुए हो, तो स्वयं चाण्डाल होजाओगे।" इस ही शापके सत्य होनेके निमित्त किसी आपत्कालमें विश्वामित्रने चौर्यवृत्तिसे कुत्तेका निकृष्ट मांस चुराकर उसे पकाना आरम्भ किया था, इतने ही समयमें इन्द्रने बाजपक्षीका रूप धरके उस मांसको हरण किया। उस समय विश्वामित्रने वचनसे भगवान् इन्द्रकी स्तुति की, इन्द्रने प्रसन्न होकर उन्हें शापसे मुक्त कर दिया। उत्तानपाद राजाके पुत्र ध्रुव और ब्रह्मर्षियोंके बीच जो उदीची दिशाको अवलम्बन करके सदा नक्षत्र रूपसे प्रकाशित होरहे हैं, हे कौरव! उस विश्वामित्रके ये सब तथा अन्यान्य कर्मोंको सुनके, कि क्षत्रियके द्वारा यह सब घटना हुई थी, इसमें

किमेतदिति तत्त्वेन प्रब्रूहि भरतर्षभ ।
देहान्तरमनासाद्य कथं स ब्राह्मणोऽभवत ॥ १७ ॥
एतत्तत्त्वेन मे तात सर्वमाख्यातुमर्हसि ।
मतङ्गस्य यथातत्त्वं तथैवैतद्वदस्व मे ॥ १८ ॥
स्थाने मतङ्गो ब्राह्मण्यं नालभद्भरतर्षभ ।
चण्डालयोनौ जातो हि कथं ब्राह्मण्यमाप्तवान् ॥१९॥ [१९८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि विश्वामित्रोपाख्याने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

भीष्म उवाच—श्रूयतां पार्थ तत्त्वेन विश्वामित्रो यथा पुरा ।
ब्राह्मणत्वं गतस्तात ब्रह्मर्षित्वं तथैव च । ॥ १ ॥
भरतस्यान्वये चैवाजमीढो नाम पार्थिवः ।
बभूव भरतश्रेष्ठ यज्वा धर्मभृतां वरः ॥ २ ॥
तस्य पुत्रो महानासीज्जह्नुर्नाम नरेश्वरः ।
दुहितृत्वमनुप्राप्ता गङ्गा यस्य महात्मनः ॥ ३ ॥
तस्यात्मजस्तुल्यगुणः सिन्धुद्वीपो महायशाः ।

मुझे अत्यन्त आश्चर्य उत्पन्न हुआ है।(१४—१६)

हे भरतश्रेष्ठ! यह घटना किस प्रकार हुई थी, आप उसे वर्णन करिये। विश्वामित्र विना दूसरा शरीर धारण किये ही किस प्रकार ब्राह्मण हुए। हे तात! हमारे समीप इन समस्त वृत्तान्तोंको वर्णन करनेके योग्य आप ही हैं, जैसा मतङ्गका वृत्तान्त है, वैसे ही इसे भी आप मेरे निकट वर्णन करिये। हे भरतप्रवर! मतङ्गने शूद्रके सहारे ब्राह्मणीके गर्भसे उत्पन्न होके कठिन तपस्या करनेपर भी ब्राह्मणत्व लाभ नहीं किया, वह युक्तिसङ्गत है, परन्तु विश्वामित्रने किस प्रकार ब्राह्मणत्व लाभ किया। (१७-१९)

अनुशासनपर्वमें ३ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ४ अध्याय।

भीष्म बोले, हे तात पृथापुत्र! पहले समयमें विश्वामित्रने जिस प्रकार ब्राह्मणत्व और ब्रह्मर्षित्व प्राप्त किया था। उसे यथार्थ रीतिसे कहता हूं, सुनो। हे भरतप्रवर! भरतवंशमें आजमीढ नामक यज्ञ करनेवाला, धार्मिकोंमें श्रेष्ठ एक राजा था। गङ्गा जिसकी पुत्री कहाती हैं वही जन्हु उसके मुख्य पुत्र थे; उनके महायशस्वी सिन्धुद्वीप, गुणोंमें उन्हींके सदृश पुत्र हुआ, सिन्धु-

सिन्धुद्वीपाच्च राजर्षिर्बलाकाश्वो महाबलः ॥ ४ ॥
वल्लभस्तस्य तनयः साक्षाद्धर्म इवापरः ।
कुशिकस्तस्य तनयः सहस्राक्षसमद्युतिः ॥ ५ ॥
कुशिकस्यात्मजः श्रीमान् गाधिर्नाम जनेश्वरः ।
अपुत्रः प्रसवेनार्थी वनवासमुपावसत् ॥ ६ ॥
कन्या जज्ञे सुतात्तस्य वने निवसतः सतः ।
नाम्ना सत्यवती नाम रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ ७ ॥
तां वव्रे भार्गवः श्रीमांश्च्यवनस्यात्मसंभवः ।
ऋचीक इति विख्यातो विपुले तपसि स्थितः ॥ ८ ॥
स तां न प्रददौ तस्मै ऋचीकाय महात्मने ।
दरिद्र इति मत्वा वै गाधिः शत्रुनिबर्हणः ॥ ९ ॥
प्रत्याख्याय पुनर्यातमब्रवीद्राजसत्तमः ।
शुल्कं प्रदीयतां मह्यं ततो वत्स्यसि मे सुताम् ॥१०॥
ऋचीक उवाच-किं प्रयच्छामि राजेन्द्र तुभ्यं शुल्कमहं नृप ।
दुहितुर्ब्रूह्यसंसक्तो मा भूत्तत्र विचारणा ॥ ११ ॥
गाधिरुवाच—चन्द्ररश्मिप्रकाशानां हयानां वातरंहसाम् ।

द्वीपसे महाबली बलाकाश्व राजर्षि उत्पन्न हुआ। साक्षात् धर्मसमान उसके वल्लभ नाम पुत्र हुआ। इन्द्रके समान तेजस्वी उसका पुत्र कुशिक हुआ; कुशिकका पुत्र श्रीमान् गाधि नामक राजा था, वह अपुत्र होनेसे वनवासी हुआ था। (१-६)

जब वह वनमें निवास कर रहा था, तब उसके एक कन्या उत्पन्न हुई। उसका सत्यवती नाम रखा, पृथ्वी-मण्डलमें वैसी रूपवती और कोई स्त्री नहीं थी। महातपस्वी भृगुवंशी च्यवन मुनिके पुत्र जो कि ऋचीक नामसे विख्यात हैं, उन्होंने राजासे उस कन्याके निमित्त प्रार्थना की, शत्रुनाशन गाधिराज पहले महानुभाव ऋचीकको दरिद्र समझके अपनी कन्या देनेमें सम्मत नहीं हुए। अनन्तर जब ऋचीक मुनि वहांसे लौटकर चलने लगे, तब नृपसत्तम गाधिराजने उनसे कहा, कि तुम मुझे शुल्क प्रदान करो, तो मेरी कन्याका पाणिग्रहण कर सकोगे।(७-१०)

ऋचीक मुनि बोले, मैं तुम्हारी कन्याका क्या शुल्क प्रदान करूं, उसे तुम निःसन्देह मुझसे कहो। (११)

महाराज गाधि बोले, हे भार्गव !

एकतः श्यामकर्णानां सहस्रं देहि भार्गव ॥ १२ ॥
भीष्म उवाच—ततः स भृगुशार्दूलश्च्यवनस्यात्मजः प्रभुः ।
अब्रवीद्वरुणं देवमादित्यं पतिमम्भसाम् ॥ १३ ॥
एकतः श्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसाम् ।
सहस्रं वातवेगानां भिक्षे त्वां देवसत्तम ॥ १४ ॥
तथेति वरुणो देव आदित्यो भृगुसत्तमम् ।
उवाच यत्र ते च्छन्दस्तत्रोत्थास्यन्ति वाजिनः ॥१५॥
ध्यातमात्रमृचीकेन हयानां चन्द्रवर्चसाम् ।
गङ्गाजलात्समुत्तस्थौ सहस्रं विपुलौजसाम् ॥ १६ ॥
अदूरे कान्यकुब्जस्य गङ्गायास्तीरमुत्तमम् ।
अश्वतीर्थं तदद्यापि मानवैः परिचक्ष्यते ॥ १७ ॥
ततो वै गाधये तात सहस्रं वाजिनां शुभम् ।
ऋचीकः प्रददौ प्रीतः शुल्कार्थं तपतां वरः ॥ १८ ॥
ततः स विस्मितो राजा गाधिः शापभयेन च ।
ददौ तां समलंकृत्य कन्यां भृगुसुताय वै ॥ १९ ॥

चन्द्रमाकी किरण समान प्रकाशमान, वायुके सदृश वेगशाली और जिनके एक कान श्यामवर्ण हैं, वैसे एक हजार घोडे मुझे दो । (१२)

भीष्म बोले, अनन्तर उस भृगुवंशीय च्यवन मुनिके पुत्र ऋचीकने अदिति-पुत्र बलाधिपति वरुणदेवसे कहा कि, हे देवसत्तम ! एकवर्ण श्यामकर्ण और चन्द्रकिरण समान सफेद, वायुसमान वेगशाली एक हजार घोडे पानेके लिये मैं आपके समीप भिक्षा मांगता हूं। अदितिपुत्र वरुणदेवने भृगुसत्तम ऋचीक मुनिसे कहा " बहुत अच्छा " तुम्हें जिस स्थानपर उन घोडोंके निमित्त अभिलाषा होगी, उस ही स्थानमें ऐसे लक्षणोंसे युक्त एक हजार घोडे प्रकट होजायगे । अनन्तर ऋचीक मुनिके ध्यान करते ही महातेजस्वी चन्द्रमा समान सफेद एक हजार श्यामकर्ण घोडे गङ्गाजलसे प्रकट हुए; कान्यकुब्ज देशके समीप जिस स्थानमें ये घोडे प्रकट हुए थे, अबतक भी मनुष्य उसे अश्वतीर्थ कहा करते हैं। (१३-१७)

हे तात। अनन्तर तपस्विश्रेष्ठ ऋचीक मुनिने प्रसन्न होकर शुल्कके निमित्त महाराज गाधिको वेही एक हजार उत्तम श्यामकर्ण घोडे प्रदान किये, गाधिराज उसे देखकर विस्मित

जग्राह विधिवत्पाणिं तस्या ब्रह्मर्षिसत्तमः ।
सा च तं पतिमासाद्य परं हर्षमवाप ह ॥ २० ॥
स तुतोष च ब्रह्मर्षिस्तस्या वृत्तेन भारत ।
छन्दयामास चैवैनां वरेण वरवर्णिनीम् ॥ २१ ॥
मात्रे तत्सर्वमाचख्यौ सा कन्या राजसत्तम ।
अथ तामब्रवीन्माता सुतां किञ्चिदवाङ्मुखीम् ॥२२॥
ममापि पुत्रि भर्ता ते प्रसादं कर्त्तुमर्हति ।
अपत्यस्य प्रदानेन समर्थश्च महातपाः ॥ २३ ॥
ततः सा त्वरितं गत्वा तत्सर्वं प्रत्यवेदयत् ।
मातुश्चिकीर्षितं राजन् ऋचीकस्तामथाब्रवीत् ॥ २४ ॥
गुणवन्तमपत्यं सा अचिराज्जनयिष्यति ।
मम प्रसादात्कल्याणि मा भूत्ते प्रणयोऽन्यथा ॥२५॥
तव चैव गुणश्लाघी पुत्र उत्पत्स्यते महान् ।
अस्मद्वंशकरः श्रीमान्सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ २६ ॥
ऋतुस्नाता च साश्वत्थं त्वं च वृक्षमुदुम्बरम् ।

हुए और शापभयसे डरके अपनी कन्याको सब आभूषणोंसे भूषित करके ऋचीक मुनिको प्रदान किया। ब्रह्मर्षि-सत्तम ऋचीक मुनिने विधिपूर्वक उस कन्याका पाणिग्रहण किया, वह भी उन्हें पतिरूपसे पाके परम हर्षित हुई। हे भारत। ब्रह्मर्षि ऋचीक उसके चरित्र से हर्षित हुए और उससे कहा, कि तुम्हें पुत्र दान करूंगा, इस प्रकार वर देके उस वरवर्णिनीको प्रलोभित किया। हे भारत! कन्याने वह सब वृत्तान्त अपनी मातासे कह दिया। (१८-२२)

अनन्तर माताने उस अधोवदनवाली अपनी पुत्रीसे कहा, हे पुत्री! तुम्हारा पति मुझपर भी कृपा कर सकता है, वह महातपस्वी पुत्र देनेमें समर्थ है। हे राजन्! इतनी बात सुनके उसने शीघ्र ही पतिके निकट जाके माताका सब अभिप्राय कह सुनाया। तब ऋचीक मुनिने उससे कहा, हे कल्याणि! मेरे प्रसादसे तुम्हारी माताके शीघ्रही गुणवान पुत्र जन्मेगा। तुम्हारे भी गुणवान और यशस्वी हमारे वंशकी वृद्धि करनेवाला श्रीमान् महान् पुत्र उत्पन्न होगा; यह मैं तुमसे सत्य ही कहता हूं। हे कल्याणि! तुम और तुम्हारी माता जब ऋतुमती होकर स्नान करने पर अश्वत्थ और उदुम्बर

परिष्वजेथाः कल्याणि तत एवमवाप्स्यथः ॥ २७ ॥
चरुद्वयमिदं चैव मन्त्रपूतं शुचिस्मिते ।
त्वं च सा चोपभुञ्जीतं ततः पुत्राववाप्स्यथः॥ २८ ॥
ततः सत्यवती हृष्टा मातरं प्रत्यभाषत ।
यदृचीकेन कथितं तच्चाचख्यौ चरुद्वयम् ॥ २९ ॥
तामुवाच ततो माता सुतां सत्यवतीं तदा ।
पुत्रि पूर्वोपपन्नायाः कुरुष्व वचनं मम ॥ ३० ॥
भर्त्रा य एष दत्तस्ते चरुर्मन्त्रपुरस्कृतः ।
एनं प्रयच्छ मह्यं त्वं मदीयं त्वं गृहाण च ॥ ३१ ॥
व्यत्यासं वृक्षयोश्चापि करवाव शुचिस्मिते ।
यदि प्रमाणं वचनं मम मातुरनिन्दिते ॥ ३२ ॥
स्वमपत्यं विशिष्टं हि सर्व इच्छत्यनाविलम् ।
व्यक्तं भगवता चात्र कृतमेवं भविष्यति ॥ ३३ ॥
ततो मे त्वच्चरौ भावः पादपे च सुमध्यमे ।
कथं विशिष्टो भ्राता मे भवेदित्येव चिन्तय ॥ ३४ ॥

वृक्षको आलिङ्गन करोगे, तब मेरे वचनके अनुसार तुम दोनोंको पुत्र लाभ होगा । (२२-२७)

हे शुचिस्मिते । वह और तुम इस मन्त्रयुक्त दो चरु भोजन करना, तब तुम दोनोंको ऐसे ही गुणोंसे युक्त दो पुत्र होंगे । अनन्तर सत्यवती अत्यन्त हर्षित होके माताके निकट गई, और ऋचीक मुनिने जो कुछ कहा था, वह सब वृत्तान्त तथा चरुके विषयको वर्णन किया । तब उसकी माता निज पुत्री सत्यवतीसे बोली, हे पुत्री ! मैं तुम्हारे पतिसे भी तुम्हारे समीप माननीय हूं इसलिये तुम मेरा वचन प्रतिपालन करो, तुम्हारे पतिने तुम्हें जो मन्त्रयुक्त चरु दिया है, वह मुझे दो और जो चरु मुझे दिया है, उसे तुम लो । (२८-३१)

हे शुचिस्मिते ! हे अनन्दिते ! मैं तुम्हारी माता हूं, यदि मेरा वचन तुम्हें प्रमाण हो, तो हम दोनों उन दो वृक्षोंको बदलके आलिङ्गन करें । सब कोई अपने लिये उत्तम और निर्मल पुत्रकी कामना करते हैं, भगवान् ऋचीकने भी अवश्य इस ही प्रकार किया होगा यह शेषमें मालूम होजायगा । हे सुमध्यमे ! इस ही निमित्त तुम्हारे वृक्ष और चरुमें मेरी अभिरुचि हुई है । जिस प्रकार तुम्हारा भाई श्रेष्ठ हो, तुम

तथा च कृतवत्यौ ते माता सत्यवती च सा।
अथ गर्भावनुप्राप्ते उभे ते वै युधिष्ठिर ॥ ३५ ॥
दृष्ट्वा गर्भमनुप्राप्तां भार्यां स च महानृषिः।
उवाच तां सत्यवतीं दुर्मना भृगुसत्तमः ॥ ३६ ॥
व्यत्यासेनोपयुक्तस्ते चरुर्व्यक्तं भविष्यति।
व्यत्यासः पादपे चापि सुव्यक्तं ते कृतः शुभे ॥३७॥
मया हि विश्वं यद् ब्रह्म त्वच्चरौ संनिवेशितम्।
क्षत्रवीर्यं च सकलं चरौ तस्या निवेशितम् ॥ ३८ ॥
त्रैलोक्यविख्यातगुणं त्वं विप्रं जनयिष्यसि।
सा च क्षत्रं विशिष्टं वै तत एतत्कृतं मया ॥ ३९ ॥
व्यत्यासस्तु कृतो यस्मात्त्वया मात्रा च ते शुभे।
तस्मात्सा ब्राह्मणं श्रेष्ठं माता ते जनयिष्यति ॥ ४० ॥
क्षत्रियं तूग्रकर्माणं त्वं भद्रे जनयिष्यसि।
न हि ते तत्कृतं साधु मातृस्नेहेन भाविनि ॥ ४१ ॥
सा श्रुत्वा शोकसंतप्ता पपात वरवर्णिनी।

वैसीही चिन्ता करो। (३२-३४)

हे युधिष्ठिर! सत्यवती और उसकी माताने ऊपर कहे हुए वचनसे उस ही प्रकार आचरण किया। अनन्तर वे दोनों गर्भवती हुई, भृगुसत्तम ऋचीक मुनिने अपनी भार्या सत्यवतीको गर्भवती देखकर दुःखित होकर कहा, हे कल्याणि! चरु अदल बदल करना तुम्हारा उपयुक्त कार्य नहीं हुआ है, यह पीछे मालूम होगा और तुमने जो वृक्षमें उलट फेर किया है, वह स्पष्ट ही मालूम होरहा है। मैंने तुम्हारे चरुमें विश्वब्रह्मतेज परिपूरित किया था और तुम्हारी माताके चरुमें सम्पूर्ण क्षत्रिय तेज भरा हुआ था। (३५-३८)

तुम्हारे तीनों लोकोंके बीच निज गुणोंसे विख्यात ब्राह्मण पुत्र हो। और तुम्हारी माताके क्षत्रिय पुत्र होवे, इस ही लिये मैंने ऐसा किया था। हे शुभे! तुम दोनोंने जब उसमें हेर फेर किया है, तब तुम्हारी माताके एक उत्तम ब्राह्मण पुत्र उत्पन्न होगा और तुम्हारे प्रचण्ड कर्म करनेवाला एक क्षत्रिय पुत्र होगा। हे भद्रे! हे भाविनि! तुमने मातृस्नेहके वशमें होकर इस प्रकार वृक्ष और चरुको बदलके उत्तम कार्य नहीं किया। (३९—४१)

हे महाराज! वह वरवर्णिनि सत्य-

भूमौ सत्यवती राजंश्छिन्नेव रुचिरा लता ॥ ४२ ॥
प्रतिलभ्य च सा संज्ञां शिरसा प्रणिपत्य च ।
उवाच भार्या भर्त्तारं गाधेयी भार्गवर्षभम् ॥ ४३ ॥
प्रसादयन्त्यां भार्यायां मयि ब्रह्मविदां वर ।
प्रसादं कुरु विप्रर्षे न मे स्यात्क्षत्रियः सुतः ॥ ४४ ॥
कामं ममोग्रकर्मा वै पौत्रो भवितुमर्हति ।
न तु मे स्यात्सुतो ब्रह्मन्नेष मे दीयतां वरः ॥ ४५ ॥
एवमस्त्विति होवाच स्वां भार्यां सुमहातपाः ।
ततः सा जनयामास जमदग्निं सुतं शुभम् ॥ ४६ ॥
विश्वामित्रं चाजनयद्गाधिभार्या यशस्विनी ।
ऋषेः प्रसादाद्राजेन्द्र ब्रह्मर्षेर्ब्रह्मवादिनम् ॥ ४७ ॥
ततो ब्राह्मणतां यातो विश्वामित्रो महातपाः ।
क्षत्रियः सोऽप्यथ तथा ब्रह्मवंशस्य कारकः ॥ ४८ ॥
तस्य पुत्रा महात्मानो ब्रह्मवंशविवर्धनाः ।
तपस्विनो ब्रह्मविदो गोत्रकर्त्तार एव च ॥ ४९ ॥
मधुच्छन्दश्च भगवान् देवरातश्च वीर्यवान् ।

वती ऐसा वचन सुनके शोकित तथा दुःखित होकर टूटी हुई मनोहारिणी लताकी भांति पृथ्वीपर गिर पडी। कुछ समयके अनन्तर गाधिराजपुत्री सावधान होके हाथ जोडके सिर झुकाकर भार्गवश्रेष्ठ पतिको प्रणाम करके कहने लगी। हे वेदज्ञवर विप्रर्षि! मैं तुम्हारी भार्या हूं, इससे प्रसन्न होके आप मुझपर कृपा करिये, जिससे कि मेरे क्षत्रिय पुत्र न हो। यदि आपकी इच्छा हो, तो मेरा पौत्र उग्र कर्म करनेवाला क्षत्रिय होसकेगा, परन्तु जिसमें मेरा पुत्र क्षत्रिय न हो, वही करिये। हे ब्रह्मन्! आप मुझे यही वर दीजिये, महातपस्वी ऋचीकमुनि अपनी भार्यासे बोले, 'ऐसा ही होगा।' हे राजेन्द्र! अनन्तर सत्यवतीके शुभलक्षणसे युक्त जमदग्नि नाम पुत्र उत्पन्न हुआ और यशस्विनी गाधिराजकी भार्या ऋषिके प्रसादसे ब्रह्मर्षि विश्वामित्रकी जननी हुई। महातपस्वी विश्वामित्रने क्षत्रिय होके भी ब्राह्मणत्व लाभ किया और नीचे लिखे ब्राह्मण वंशके कर्त्ता हुए। (४२-४८)

उनके महानुभाव सब पुत्र ब्राह्मण वंशकी वृद्धि करनेवाले, तपस्वी, ब्रह्म-

अक्षीणश्च शकुन्तश्च बभ्रुः कालपथस्तथा ॥ ५० ॥
याज्ञवल्क्यश्च विख्यातस्तथा स्थूणो महाव्रतः ।
उलूको यमदूतश्च तथर्षिः सैन्धवायनः ॥ ५१ ॥
वल्गुजङ्घश्च भगवान् गालवश्च महानृषिः ।
ऋषिर्वज्रस्तथा ख्यातः सालङ्कायन एव च ॥ ५२ ॥
लीलाढ्यो नारदश्चैव तथा कूर्चामुखः स्मृतः ।
वादुलिर्मुसलश्चैव वक्षोग्रीवस्तथैव च ॥ ५३ ॥
आङ्घ्रिको नैकदृक्चैव शिलायूपः शितः शुचिः ।
चक्रको मारुतंतव्यो वातघ्नोऽथाश्वलायनः ॥ ५४ ॥
श्यामायनोऽथ गार्ग्यश्च जाबालिः सुश्रुतस्तथा ।
कारीषिरथ संश्रुत्यः परपौरवतन्तवः ॥ ५५ ॥
महानृषिश्च कपिलस्तथर्षिस्ताडकायनः ।
तथैव चोपगहनस्तथर्षिश्चासुरायणः ॥ ५६ ॥
मार्दमर्षिर्हिरण्याक्षो जंगारिर्बाभ्रवायणिः ।
भूतिर्विभूतिः सूतश्च सुरकृत्तु तथैव च ॥ ५७ ॥
अरालिर्नाचिकश्चैव चाम्पेयोज्जयनौ तथा ।
नवतन्तुर्बकनखः सेयनो यतिरेव च ॥ ५८ ॥
अम्भोरुहश्चारुमत्स्यः शिरीषी चाथ गार्दभिः ।
ऊर्जयोनिरुदापेक्षी नारदी च महानृषिः ॥ ५९ ॥

वित् और गोत्रकर्त्ता हुए थे; उनके ये नाम हैं,—भगवान् मधुच्छन्द, वीर्यवान् देवरात, अक्षीण, शकुन्त, बभ्रु, कालपथ, विख्यात याज्ञवल्क्य, महाव्रत स्थूण, यमदूत उलूक, ऋषि सैन्धवायन, भगवान् वल्गुजङ्घ, महर्षि गालव, ऋषि विख्यात वज्र, सालंकायन, लीलाढय, नारद, कूर्चामुख, वादुलि, मुसल, वक्षोग्रीव, नैकदृक् आंघ्रिक, शित, शुचि, शिलायूप, चक्रक, मारुतन्तव्य, वातघ्न, आश्वलायन, श्यामायन, गार्ग्य, जाबालि, सुश्रुत, कारीषि, संश्रुत्य, परपौरवतन्तव, महर्षि कपिल, ताडकायन ऋषि, उपगहन, आसुरायणि ऋषि, मार्दमऋषि, हिरण्याक्ष, जंगारि, बाभ्रवायणि, भूति, विभूति, सूत, सुरकृत्, अरालि, नाचिक, चाम्पेय, उज्जयन, नवतन्तु, बकनख, सेयन, यति, अम्भोरुह, चारुमत्स्य, शिरीषी, गार्दभि, ऊर्जयोनि, उदापेक्षी और महर्षि

विश्वामित्रात्मजाः सर्वे मुनयो ब्रह्मवादिनः ।
तथैव क्षत्रियो राजन्विश्वामित्रो महातपाः ॥ ६० ॥
ऋचीकेनाहितं ब्रह्म परमेतद्युधिष्ठिर ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं तत्त्वेन भरतर्षभ ॥ ६१ ॥
विश्वामित्रस्य वै जन्म सोमसूर्याग्नितेजसः ।
यत्र यत्र च संदेहो भूयस्ते राजसत्तम ।
तत्र तत्र च मां ब्रूहि च्छेतास्मि तव संशयान् ॥६२॥ [२६०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे विश्वामित्रोपाख्याने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

युधिष्ठिर उवाच—आनृशंस्यस्य धर्मज्ञ गुणान् भक्तजनस्य च ।
श्रोतुमिच्छामि धर्मज्ञ तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥
भीष्म उवाच- अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
वासवस्य च संवादं शुकस्य च महात्मनः ॥ २ ॥
विषये काशिराजस्य ग्रामान्निष्क्रम्य लुब्धकः ।
सविषं काण्डमादाय मृगयामास वै मृगम् ॥ ३ ॥

नारदी, ये सब विश्वामित्रके पुत्र ब्रह्मवादी मुनि थे । (४९-६०)

हे महाराज युधिष्ठिर ! महातपस्वी विश्वामित्रके क्षत्रिय होनेपर भी ऋचीक मुनिके द्वारा जो पहले ब्रह्मतेज प्रवेशित किया गया था, उस ही निमित्त उन्होंने क्षत्रियवीर्यसे उत्पन्न होके भी ब्राह्मणत्व लाभ किया था । हे भरतश्रेष्ठ ! यह मैंने तुम्हारे समीप चन्द्रमा, सूर्य तथा अग्निके समान तेजस्वी विश्वामित्रकी उत्पत्तिका वृत्तान्त यथार्थ रूपसे वर्णन किया । हे नृपसत्तम ! फिर जिन विषयोंमें तुम्हें सन्देह हो, वह मुझसे कहो, मैं तुम्हारा सब सन्देह मिटा दूंगा । (६०-६२)

अनुशासनपर्वमें ४ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें ५ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे धर्मज्ञ पितामह ! मैं आनृशंस्य धर्म और भक्तोंके गुणको सुननेकी इच्छा करता हूं, आप मेरे समीप इसे ही वर्णन करिये । (१)

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें महानुभाव शुक और इन्द्रके संवादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं । काशिराजके राज्यमें कोई व्याध गांवसे निकलकर विषमें बुझे हुए बाण ग्रहण करके हरिनोंकी खोजमें घूम रहा था । मृगया

तत्र चामिषलुब्धेन लुब्धकेन महावने ।
अविदूरे मृगान्दृष्ट्वा बाणः प्रतिसमाहितः ॥ ४ ॥
तेन दुर्वारितास्त्रेण निमित्तचपलेषुणा ।
महान्वनतरुस्तत्र विद्धो मृगजिघांसया ॥ ५ ॥
स तीक्ष्णविषदिग्धेन शरेणातिबलात्क्षतः ।
उत्सृज्य फलपत्राणि पादपः शोषमागतः ॥ ६ ॥
तस्मिन् वृक्षे तथाभूते कोटरेषु चिरोषितः ।
न जहाति शुको वासं तस्य भक्त्या वनस्पतेः॥ ७ ॥
निष्प्रचारो निराहारो ग्लानः शिथिलवागपि ।
कृतज्ञः सह वृक्षेण धर्मात्मा सोऽप्यशुष्यत ॥ ८ ॥
तमुदारं महासत्त्वमतिमानुषचेष्टितम् ।
समदुःखसुखं दृष्ट्वा विस्मितः पाकशासनः ॥ ९ ॥
ततश्चिन्तामुपगतः शक्रः कथमयं द्विजः ।
तिर्यग्योनावसंभाव्यमानृशंस्यमवस्थितः ॥ १० ॥
अथवा नात्र चिन्त्यं हि अभवद्वासवस्य तु ।
प्राणिनामपि सर्वेषां सर्वं सर्वत्र दृश्यते ॥ ११ ॥

के समय महावनमें उस मांसलोभी व्याधने थोडी दूरपर हरिणोंका झुण्ड देखकर बाण साधा ! दुर्वारितास्त्र व्याधने मृग मारनेके लिये बाण चलाया, वह बाण निशानेसे विचलकर वनमें एक बृहत् वृक्षमें विद्ध हुआ। वह वृक्ष विषमें बुझे हुए तीक्ष्ण बाणसे बलपूर्वक वेधित होनेसे फल और पत्तोंको त्यागके सूखने लगा। (२-६)

उस वृक्षकी ऐसी अवस्था होनेपर भी उसके कोटरमें बहुत समयसे निवास करनेवाला एक शुकपक्षी भक्तिवशसे वहांसे पृथक् न हुआ। धर्मात्मा कृतज्ञ शुक निष्प्रचार, निराहार, ग्लानियुक्त और शिथिल वचन होकर वृक्षके सहित सूखने लगा। इन्द्र उस अतिमानुषी बुद्धिवाले उदार और सुखदुःखको समान माननेवाले महाप्राणी शुकको देखकर विस्मित हुए। (७-९)

उन्होंने सोचा, कि इस पक्षीने किस प्रकार तिर्यग् योनिमें असम्भाव्य पराये दुःखसे दुःखितभाव अवलम्बन किया है ? अथवा इन्द्रको इस विषयमें कुछ आश्चर्य नहीं मालूम हुआ, क्यों कि मनुष्य, पशु,पक्षी आदि सब प्राणी तथा सब जातिमें ही दया और निष्ठुरता

ततो ब्राह्मणवेषेण मानुषं रूपमास्थितः ।
अवतीर्य महीं शक्रस्तं पक्षिणमुवाच ह ॥ १२ ॥
शुक भोः पक्षिणां श्रेष्ठ दाक्षेयी सुप्रजा त्वया ।
पृच्छे त्वां शुकमेनं त्वं कस्मान्न त्यजसि द्रुमम् ॥१३॥
अथ पृष्टः शुकः प्राह मूर्ध्ना समभिवाद्य तम् ।
स्वागतं देवराज त्वं विज्ञातस्तपसा मया ॥ १४ ॥
ततो दशशताक्षेण साधु साध्विति भाषितम् ।
अहो विज्ञानमित्येवं मनसा पूजितस्ततः ॥ १५ ॥
तमेवं शुभकर्माणं शुकं परमधार्मिकम् ।
विजानन्नपि तां प्रीतिं पप्रच्छ बलसूदनः ॥ १६ ॥
निष्पत्रमफलं शुष्कमशरण्यं पतत्त्रिणाम् ।
किमर्थं सेवसे वृक्षं यदा महदिदं वनम् ॥ १७ ॥
अन्येऽपि बहवो वृक्षाः पत्रसंछन्नकोटराः ।
शुभाः पर्याप्तसंचारा विद्यन्तेऽस्मिन्महावने ॥ १८ ॥
गतायुषमसामर्थ्यं क्षीणसारं हतश्रियम् ।

प्रभृति दीख पडती हैं । अनन्तर इन्द्र ब्राह्मणवेषसे मनुष्य रूप धारण कर पृथ्वीपर उतरके उस शुक पक्षीसे बोले, हे विहङ्गवर शुक ! दक्षदौहित्री शुकी तुम्हारे द्वारा उत्तम प्रजायुक्त हुई है, मैं तुमसे पूछता हूं, कि तुम किस लिये इस वृक्षको परित्याग नहीं करते ? (१०—१३)

अनन्तर शुक पूछनेपर सिर झुकाके उन्हें प्रणाम करके बोला, देवराज ! आपने सुखसे आगमन किया है न ? मैंने ज्ञानदृष्टिके सहारे आपको पहचाना है । अनन्तर इन्द्रने 'साधु साधु' ऐसा वचन कहा और क्या ही आश्चर्ययुक्त विज्ञान है ? ऐसा विचारके मनही मन उसकी प्रशंसा करने लगे । बलसूदन इन्द्रने उस शुभ कर्म करनेवाले परम धार्मिक शुकको ऐसा जानके भी वृक्षके विषयमें उसकी सुहृदताका विषय पूछा। यह वृक्ष पत्तारहित, फलहीन, सूखा और पक्षियोंका अनाश्रय है, इसलिये इस महावनके बीच दूसरे, सजीव वृक्षोंके विद्यमान रहते किस निमित्त तुम इस सूखे वृक्षमें वास करते हो ? इस महावनमें दूसरे बहुतेरे वृक्ष हैं, उनका कोटर पत्रोंसे परिपूर्ण है, देखनेमें सुन्दर हैं, तुम उन वृक्षोंपर सहजहीमें उडके जासकते हो । हे धीर !

विमृश्य प्रज्ञया धीर जहीमं स्थविरं द्रुमम् ॥ १९ ॥
भीष्म उवाच— तदुपश्रुत्य धर्मात्मा शुकः शक्रेण भाषितम् ।
सुदीर्घमतिनिःश्वस्य दीनो वाक्यमुवाच ह ॥ २० ॥
अनतिक्रमणीयानि दैवतानि शचीपते ।
यत्राभवत्तव प्रश्नस्तन्निबोध सुराधिप ॥ २१ ॥
अस्मिन्नहं द्रुमे जातः साधुभिश्च गुणैर्युतः ।
बालभावेन संगुप्तः शत्रुभिश्च न धर्षितः ॥ २२ ॥
किमनुक्रोशवैफल्यमुत्पादयसि मेऽनघ ।
आनृशंस्याभियुक्तस्य भक्तस्यानन्यगस्य च ॥ २३ ॥
अनुक्रोशो हि साधूनां महद्धर्मस्य लक्षणम् ।
अनुक्रोशश्च साधूनां सदा प्रीतिं प्रयच्छति ॥ २४ ॥
त्वमेव दैवतैः सर्वैः पृच्छ्यसे धर्मसंशयात् ।
अतस्त्वं देव देवानामाधिपत्ये प्रतिष्ठितः ॥ २५ ॥
नार्हसे मां सहस्राक्ष द्रुमं त्याजयितुं चिरात् ।
समर्थमुपजीव्येमं त्यजेयं कथमद्य वै ॥ २६ ॥

इसलिये तुम बुद्धिके सहारे विचार करके इस निर्जीव, सामर्थ्यरहित, सारहीन, श्रीरहित सूखे वृक्षको परित्याग करो। (१४—१९)

भीष्म बोले, धर्मात्मा शुक इन्द्रका वचन सुनके लम्बी सांस छोडते हुए दुःखित होके कहने लगा। हे शचीपति सुरराज! देव वचन अनतिक्रमणीय है, जिस विषयमें आपने प्रश्न किया है, उसका उत्तर सुनिये। मैंने इस वृक्षपर जन्म लिया है, बाल्य अवस्थासे प्रतिपालित और सद्गुणयुक्त हुआ हूं, शत्रुओंसे कभी आक्रान्त नहीं हुआ। हे पापरहित! मैं पराये दुःखसे दुःखित, अभियुक्त, भक्त और अनन्य गतिसे युक्त हूं, आप क्यों करुणा करके मुझमें जन्मका शोक उत्पन्न करते हैं? दया ही साधुओंके महत् धर्मका लक्षण है, वही उन्हें सदा प्रसन्न किया करती है। (२०-२४)

देवता लोग सन्देहयुक्त होनेसे आपसे ही उस विषयमें प्रश्न करते हैं। हे देव! इस ही निमित्त आप देवताओंके आधिपत्य पर प्रतिष्ठित हुए हैं। हे सहस्रलोचन! मुझे सदाके लिये इस वृक्षको त्यागना उचित नहीं है। जब यह वृक्ष समर्थ था, तब इसे उपजीव्य करके इस समय किस प्रकार इसे

तस्य वाक्येन सौम्येन हर्षितः पाकशासनः।
शुकं प्रोवाच धर्मात्मा आनृशंस्येन तोषितः ॥ २७ ॥
वरं वृष्णीष्वेति तदा स च वव्रे वरं शुकः।
आनृशंस्यपरो नित्यं तस्य वृक्षस्य सम्भवम् ॥ २८ ॥
विदित्वा च दृढां भक्तिं तां शुके शीलसम्पदम्।
प्रीतः क्षिप्रमथो वृक्षममृतेनावसिक्तवान् ॥ २९ ॥
ततः फलानि पत्राणि शाखाश्चापि मनोहराः।
शुकस्य दृढभक्तित्वाच्छ्रीमत्तां प्राप स द्रुमः ॥ ३० ॥
शुकश्च कर्मणा तेन आनृशंस्यकृतेन वै।
आयुषोऽन्ते महाराज प्राप शक्रसलोकताम् ॥ ३१ ॥
एवमेव मनुष्येन्द्र भक्तिमन्तं समाश्रितः।
सर्वार्थसिद्धिं लभते शुकं प्राप्य यथा द्रुमः ॥ ३२ ॥ [२९२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे शुकवासवसंवादे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

युधिष्ठिर उवाच—पितामह महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद।
दैवे पुरुषकारे च किंस्विच्छ्रेष्ठतरं भवेत् ॥ १ ॥

परित्याग करूं। धर्मात्मा इन्द्र शुकका प्रिय वचन सुनके हर्षित होकर उससे बोले, मैं तुम्हारी अनृशंसतासे अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हूं, तुम वर मांगो। सदा परदुःखसे दुःखित शुकने उस समय उस वृक्षके हरे होनेके लिये वर मांगा। (२५—२८)

देवराज उस शुककी उस वृक्षपर दृढभक्ति और शील सम्पत्ति मालूम करके प्रसन्न हुए और शीघ्र ही अमृत छिडकके उस वृक्षको हरा कर दिया। अनन्तर वह वृक्ष शुकके दृढ भक्ति निबन्धनसे फल, पत्र और मनोहर शाखासे युक्त होकर श्रीमान् हुआ हे महाराज! शुकने भी उस अनृशंस कर्मके सहारे आयु शेष होनेपर इन्द्रके समान लोक प्राप्त किया। हे मनुजेन्द्र! जैसे वृक्षने शुकको आश्रय देकर सिद्धि लाभ की, वैसे ही जो लोग भक्तिमान पुरुषको आश्रय देते हैं, वे सब प्रयोजनोंमें सिद्धि लाभ करते हैं। (२९-३२)

अनुशासनपर्वमें ५ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ६ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्वशास्त्रविशारद महाप्राज्ञ पितामह! दैव (भाग्य)और पुरुषकार (उद्योग) इन दोनोंमेंसे

भीष्म उवाच- अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
वसिष्ठस्य च संवादं ब्रह्मणश्च युधिष्ठिर ॥ २ ॥
दैवमानुषयोः किंस्वित्कर्मणोः श्रेष्ठमित्युत।
पुरा वसिष्ठो भगवान् पितामहमपृच्छत ॥ ३ ॥
ततः पद्मोद्भवो राजन् देवदेवः पितामहः।
उवाच मधुरं वाक्यमर्थवद्धेतुभूषितम् ॥ ४ ॥
ब्रह्मोवाच— नाबीजं जायते किंचिन्न बीजेन विना फलम्।
बीजाद्बीजं प्रभवति बीजादेव फलं स्मृतम् ॥ ५ ॥
यादृशं वपते बीजं क्षेत्रमासाद्य कर्षकः।
सुकृते दुष्कृते वापि तादृशं लभते फलम् ॥ ६ ॥
यथा बीजं विना क्षेत्रमुप्तं भवति निष्फलम्।
तथा पुरुषकारेण विना दैवं न सिध्यति ॥ ७ ॥
क्षेत्रं पुरुषकारस्तु दैवं बीजमुदाहृतम्।

कौन श्रेष्ठ कहा जायगा? भाग्य सब विषयोंका मूल होनेपर भी विना पुरुषार्थके कोई कार्य सिद्ध नहीं होता; इसलिये भोग और मोक्षकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंको अवश्य ही पुरुषार्थ करना उचित है। इसमें यदि दोनों विषय ही श्रेष्ठ हुए, तब इन दोनोंके बीच अधिक श्रेष्ठ कौन होगा? (१)

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! प्राचीन लोग इस विषयमें ब्रह्मा और वसिष्ठ मुनिके संवादयुक्त इस पुराने इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। पहिले समयमें भगवान् वसिष्ठ मुनिने सोचा, कि दैव अर्थात् पूर्वकर्म और मानुष अर्थात् वर्त्तमान कर्म, इन दोनोंमेंसे श्रेष्ठ कौन है? अनन्तर उन्होंने यह विषय पितामहसे पूछा था। हे महाराज! अनन्तर कमलसे उत्पन्न भये देवोंके देव पितामह ब्रह्मा अर्थ तथा युक्तियुक्त मधुर वचन कहने लगे। (२-४)

ब्रह्मा बोले, विना बीजके कोई वस्तु उत्पन्न नहीं होती और विना बीजके फलकी भी उत्पत्ति नहीं होती; बीजसे ही बीज उत्पन्न हुआ करता है; इसलिये यह निश्चित है, कि बीजसे ही फल होता है। कृषक खेतमें जैसा बीज बोता है, वैसा ही फल पाता है, वैसे ही सुकृत रूपी बीजको बोके लोग उस ही भांति फल पाते हैं। जैसे विना क्षेत्रके उक्त बीज निष्फल होते हैं, वैसे ही पुरुषार्थके विना भाग्यकी कदापि सिद्धि नहीं होती; इसलिये पण्डित

क्षेत्रबीजसमायोगात्ततः सस्यं समृद्ध्यते ॥ ८ ॥
कर्मणः फलनिर्वृत्तिं स्वयमश्नाति कारकः ।
प्रत्यक्षं दृश्यते लोके कृतस्यापकृतस्य च ॥ ९ ॥
शुभेन कर्मणा सौख्यं दुःखं पापेन कर्मणा ।
कृतं फलति सर्वत्र नाकृतं भुज्यते क्वचित् ॥ १० ॥
कृती सर्वत्र लभते प्रतिष्ठां भाग्यसंयुताम् ।
अकृती लभते भ्रष्टः क्षते क्षारावसेचनम् ॥ ११ ॥
तपसा रूपसौभाग्यं रत्नानि विविधानि च ।
प्राप्यते कर्मणा सर्वं न दैवादकृतात्मना ॥ १२ ॥
तथा स्वर्गश्च भोगश्च निष्ठा या च मनीषिता ।
सर्वं पुरुषकारेण कृतेनेहोपलभ्यते ॥ १३ ॥
ज्योतींषि त्रिदशा नागा यक्षाश्चन्द्रार्कमारुताः ।
सर्वे पुरुषकारेण मानुष्याद्देवतां गताः ॥ १४ ॥
अर्थो वा मित्रवर्गो वा ऐश्वर्यं वा कुलान्वितम् ।
श्रीश्चापि दुर्लभा भोक्तुं तथैवाकृतकर्मभिः ॥ १५ ॥
शौचेन लभते विप्रः क्षत्रियो विक्रमेण तु ।

लोग पुरुषार्थको क्षेत्र और भाग्यको बीज रूपसे उदाहरण दिया करते हैं, क्षेत्र और बीजके सम्बन्ध निबन्धनसे शस्यों की वृद्धि हुआ करती है। (५-८)

यह लोकमें प्रत्यक्ष दीख पडता है, कि कर्त्ता स्वयं अपने सुकृत वा दुष्कृत कर्मोंका फल भोगता है। पुण्यकर्मसे सुख और पापकर्मसे दुःख होता है। किये हुए कर्म सर्वत्र ही फलित होते हैं और अकृत कर्मोंका फल कहीं भी नहीं दीख पडता। सब कृती पुरुष ही भाग्यके अनुसार प्रतिष्ठा पाते हैं और अकृती मनुष्य भ्रष्ट होकर क्षतमें क्षार सेचन लाभ किया करता है, मनुष्य तपस्यारूपी कर्मके सहारे रूप, सौभाग्य और विविध रत्नोंको पाता है, अकृतात्मा पुरुष दैववशसे उसे नहीं पा सकता। इसके अतिरिक्त समस्त भोग, स्वर्ग और मनोकामना युक्त जो कुछ निष्ठा हैं, उन सबको विहित कर्म करनेवाला पुरुष प्रयत्नके सहारे पाता है। (९-१३)

पुरुषार्थसे ही नक्षत्रों, देवताओं, नागों, यक्षों, चन्द्रमा, सूर्य और मरुद्गणोंने मनुष्यत्व उल्लंघन करके देवत्व लाभ किया है। अर्थ, मित्र और कुल परम्परासे प्रचलित ऐश्वर्य तथा श्री-

वैश्यः पुरुषकारेण शूद्रः शुश्रूषया श्रियम् ॥ १६ ॥
नादातारं भजन्त्यर्था न क्लीबं नापि निष्क्रियम्।
नाकर्मशीलं नाशूरं तथा नैवातपस्विनम् ॥ १७ ॥
येन लोकास्त्रयः सृष्टा दैत्याः सर्वाश्च देवताः।
स एष भगवान्विष्णुः समुद्रे तप्यते तपः ॥ १८ ॥
स्वं चेत्कर्मफलं न स्यात्सर्वमेवाफलं भवेत्।
लोको दैवं समालक्ष्य उदासीनो भवेन्नतु ॥ १९ ॥
अकृत्वा मानुषं कर्म यो दैवमनुवर्तते।
वृथा श्राम्यति संप्राप्य पतिं क्लीबमिवाङ्गना ॥ २० ॥
न तथा मानुषे लोके भयमस्ति शुभाशुभे।
यथा त्रिदशलोके हि भयमन्येन जायते ॥ २१ ॥
कृतः पुरुषकारस्तु दैवमेवानुवर्तते।
न दैवमकृते किञ्चित्कस्यचिद्दातुमर्हति ॥ २२ ॥
यथा स्थानान्यनित्यानि दृश्यन्ते दैवतेष्वपि।

सम्पत्ति अकृतकर्मा मनुष्योंको प्राप्त होनी अत्यन्त दुर्लभ है। ब्राह्मण पवित्रतासे श्री लाभ करता है, क्षत्रिय पराक्रमसे सम्पत्तिवान होता है, वैश्य पुरुषार्थके सहारे धनी होता और शूद्र सेवासे ही श्रीसम्पन्न हुआ करता है। सब अर्थ अदाताकी सेवा नहीं करते और कादर, क्रियारहित, निषिद्ध कर्म करनेवाले, निर्बल और जो पुरुष तपस्वी नहीं हैं, वेभी अर्थवान नहीं होते। (१४-१७)

जिसने तीनों लोकोंकी सृष्टि की है और देवता तथा दैत्य जिससे उत्पन्न हुए हैं, वह यही भगवान विष्णु समुद्र-गर्भमें तपस्या करता है। यदि अपने किये हुए कर्मोंका फल न रहे, तो सब लाभ ही निष्फल होजावें, भाग्यको लक्ष्य करके उदासीन होना न चाहिये। विना पुरुषार्थ किये जो पुरुष भाग्यका अनुवर्त्तन करता है, स्त्रीके निकट क्लीब पतिकी भांति वह पुरुष भी वृथा परिश्रम किया करता है। पापकर्मसे देवलोकमें जैसा भय उत्पन्न होता है, मनुष्य लोकमें शुभाशुभ कर्मोंसे वैसा भय नहीं होता। उत्तम रीतिसे पुरुषका विहित प्रयत्न भाग्यके ही अनुसार किया करता है; विना कर्म किये दैव किसीको भी कुछ देनेमें समर्थ नहीं होता, अकस्मात् निधि प्राप्त होनेपर भी उसमें किञ्चित् कर्मकी सहायता है। (१८-२२)

कथं कर्म विना दैवं स्थास्यति स्थापयिष्यतः ॥ २३ ॥
न दैवतानि लोकेऽस्मिन् व्यापारं यान्ति कस्यचित् ।
व्यासङ्गं जनयन्त्युग्रमात्माभिभवशङ्कया ॥ २४ ॥
ऋषीणां देवतानां च सदा भवति विग्रहः ।
कस्य वाचा ह्यदैवं स्याद्यतो दैवं प्रवर्त्तते ॥ २५ ॥
कथं तस्य समुत्पत्तिर्यतो दैवं प्रवर्तते ।
एवं त्रिदशलोकेऽपि प्राप्यन्ते बहवो गुणाः ॥ २६ ॥
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।
आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी कृतस्याप्यकृतस्य च ॥२७॥
कृतं चाप्यकृतं किंचित्कृते कर्मणि सिद्ध्यति ।

जब कि देव लोकमें इन्द्रादि स्थान भी अनित्य दीख पडते हैं, तब विना पुण्य कर्मके देवता लोग ही किस प्रकार स्थित रहेंगे और कैसे अन्य प्राणियोंको स्थापित करेंगे। देवता लोग इस लोकमें किसी पुरुषके पुण्यकर्मका अनुमोदन नहीं करते, धर्ममें विघ्न करनेवाले उग्र-कर्म आत्माभिभवकी शंकासे विशेष आसङ्ग उत्पन्न करते हैं । ऋषिवृन्द और देवताओंकी सदा ही शत्रुता उत्पन्न हुआ करती है अर्थात् ऋषियोंकी तपस्याके समय देवता लोग विघ्न आच-रण करते हैं और यह प्रसिद्ध है, कि च्यवन आदि ऋषियोंने इन्द्रादि देवता-ओंको पराजित किया था। इसलिये यदि देवर्षियोंका भी इस प्रकार कर्म-परत्व हुआ है, तौभी यह नहीं कहा जासकता कि "भाग्य नहीं है," क्यों कि भाग्य ही पुरुषको कर्ममें प्रवृत्त कराया करता है । (२३-२५)

जब दैव ही कर्मका प्रवर्त्तक हुआ, तब भाग्यके विना किस प्रकार कर्मकी उत्पत्ति हो सकती है । पुण्यवान पुरुष निज धर्ममें प्रवृत्त होता है, धर्मसे पुण्य बढता है, नहीं तो सभी धर्ममें प्रवृत्त न होते। जैसे इस लोकमें अत्यन्त धनवान पुरुष वाणिज्यका फैलाव करके अतुल अर्थ उपार्जन करता है, वैसे ही पुण्यवान पुरुष स्वर्ग लोकमें पुण्यके सहारे बहुतसा भोग उपभोग किया करता है। जीव आप ही अपना बन्धु और आप ही अपना शत्रु है, आप ही अपने कृत और अकृत कर्मफलका साक्षी है । (२६-२७)

कर्म करनेसे ही पाप पुण्य प्रकाशित होता है; सुकृत अथवा दुष्कृत कर्म यथार्थरूपसे फलदायक नहीं होते, उसका कारण यह है, कि पुण्यके द्वारा

सुकृतं दुष्कृतं कर्म न यथार्थं प्रपद्यते ॥ २८ ॥
देवानां शरणं पुण्यं सर्वं पुण्यैरवाप्यते ।
पुण्यशीलं नरं प्राप्य किं दैवं प्रकरिष्यति ॥ २९ ॥
पुरा ययातिर्विभ्रष्टश्च्यावितः पतितः क्षितौ ।
पुनरारोपितः स्वर्गं दौहित्रैः पुण्यकर्मभिः ॥ ३० ॥
पुरूरवाश्च राजर्षिर्द्विजैरभिहितः पुरा ।
ऐल इत्यभिविख्यातः स्वर्गं प्राप्तो महीपतिः ॥ ३१ ॥
अश्वमेधादिभिर्यज्ञैः सत्कृतः कोसलाधिपः ।
महर्षिशापात्सौदासः पुरुषादत्वमागतः ॥ ३२ ॥
अश्वत्थामा च रामश्च मुनिपुत्रौ धनुर्धरौ ।
न गच्छतः स्वर्गलोकं सुकृतेनेह कर्मणा ॥ ३३ ॥
वसुर्यज्ञशतैरिष्ट्वा द्वितीय इव वासवः ।
मिथ्याभिधानेनैकेन रसातलतलं गतः ॥ ३४ ॥
बलिर्वैरोचनिर्बद्धो धर्मपाशेन दैवतैः ।
विष्णोः पुरुषकारेण पातालसदनः कृतः ॥ ३५ ॥

पाप और पापसे पुण्य नष्ट होके दोनोंके फल स्वर्ग और नरकका भोग नहीं प्राप्त होता। पुण्य ही देवताओंका गृह-स्वरूप है, पुण्यसे सब कुछ प्राप्त हो सकता है, पुण्यवान् मनुष्यके निकट दैव क्या कर सकता है; पुण्यकी अधिकता होनेसे दैव कर्म भी नष्ट हुआ करता है। (२८-२९)

पहले समयमें राजा ययाति स्वर्गसे भ्रष्ट होके पृथ्वीपर गिरे और पुण्य कर्म करनेवाले दौहित्रोंके द्वारा फिर स्वर्ग लोकमें चले गये, राजऋषि पुरूरवा जो इलाका पुत्र कहके विख्यात है, वह राजा पहले समयमें ब्राह्मणोंसे अभिहित होकर स्वर्गमें गया। अयोध्याके राजा सौदास अश्वमेध आदि यज्ञोंके द्वारा सत्कृत होके भी महर्षिके शापवशसे मनुष्यभक्षी राक्षस हुए थे। अश्वत्थामा और परशुराम दोनों ही मुनिपुत्र और महाधनुर्द्धर होके भी इस लोकमें अपने किये हुए कर्मोंके द्वारा स्वर्ग लोकमें न जासके। दूसरे इन्द्रके समान वसुने सौ यज्ञ पूरा करके भी एक ही बार मिथ्या वचन कहनेसे रसातलमें गमन किया है। (३०-३४)

विरोचनका पुत्र राजा बलि देवताओंके धर्मपाशमें बद्ध होकर विष्णुके पुरुषार्थसे पातालमें निवास करता है।

शक्रस्योद्गम्य चरणं प्रस्थितो जनमेजयः ।
द्विजस्त्रीणां वधं कृत्वा किं दैवेन न वारितः ॥ ३६ ॥
अज्ञानाद् ब्राह्मणं हत्वा स्पृष्टो बालवधेन च ।
वैशम्पायनविप्रर्षिः किं दैवेन न वारितः ॥ ३७ ॥
गोप्रदानेन मिथ्या च ब्राह्मणेभ्यो महामखे ।
पुरा नृगश्च राजर्षिः कृकलासत्वमागतः ॥ ३८ ॥
धुन्धुमारश्च राजर्षिः सत्रेष्वेव जरां गतः ।
प्रीतिदायं परित्यज्य सुष्वाप स गिरिव्रजे ॥ ३९ ॥
पाण्डवानां हृतं राज्यं धार्त्तराष्ट्रैर्महाबलैः ।
पुनः प्रत्याहृतं चैव न दैवाद्भुजसंश्रयात् ॥ ४० ॥
तपोनियमसंयुक्ता मुनयः संशितव्रताः ।
किं ते दैवबलाच्छापमुत्सृजन्ते न कर्मणा ॥ ४१ ॥
पापमुत्सृजते लोके सर्वं प्राप्य सुदुर्लभम् ।
लोभमोहसमापन्नं न दैवं त्रायते नरम् ॥ ४२ ॥

और तेजस्वी पुरुषोंका पाप भी दोषका कारण नहीं होता। हे जनमेजय! देवराजके द्विज-स्त्री-दूषणको जानके प्रस्थान करनेके समय ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंका वध करते हुए क्या दैवके द्वारा निवारित नहीं हुए थे। ब्रह्मर्षि वैशम्पायन अज्ञानवशसे ब्रह्महत्या करके भी बालकके वध निबन्धनसे क्या दैवके द्वारा निवारित नहीं हुए थे। और पुण्य भी किसी किसी पुरुषके परित्राणका हेतु नहीं होता, पहले समयमें राजऋषि नृग महायज्ञमें ब्राह्मणोंको गोदान करके भी गिरगिट योनिको प्राप्त हुए थे। (३५-३८)

धुन्धुमार राजऋषि यज्ञ करते ही करते जराग्रस्त हुए, वह देवताओंके दिये हुए वरको परित्याग करके गिरिव्रजमें निद्रित हुए थे, यज्ञका फल नहीं पाया। महाबली पराक्रमी धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन आदिने पाण्डवोंका राज्य हर लिया था, परन्तु पाण्डवोंने अपने भुजबलसे उस हृत राज्यको फिर ले लिया; उसमें दैव कुछ भी कारण नहीं है। तप नियमसे युक्त, संशितव्रती मुनि लोग क्या दैवबलसे ही शाप दिया करते हैं? क्या कर्मवशसे वे लोग अभिशाप नहीं देते? लोकमें अत्यन्त दुर्लभ सहस्र वस्तु पापी पुरुषोंको प्राप्त होके फिर उसे परित्याग किया करती हैं; लोभ मोहसे युक्त मनुष्योंका दैव

यथाग्निः पवनोद्धूतः सुसूक्ष्मोऽपि महान्भवेत् ।
तथा कर्मसमायुक्तं दैवं साधु विवर्धते ॥ ४३ ॥
यथा तैलक्षयाद्दीपः प्रह्रासमुपगच्छति ।
तथा कर्मक्षयाद्दैवं प्रह्रासमुपगच्छति ॥ ४४ ॥

विपुलमपि धनौघं प्राप्य भोगान् स्त्रियो वा पुरुष इह न शक्तः कर्महीनो हि भोक्तुम् । सुनिहितमपि चार्थं दैवतै रक्ष्यमाणं पुरुष इह महात्मा प्राप्नुते नित्ययुक्तः ॥ ४५ ॥ व्ययगुणमपि साधुं कर्मणा संश्रयन्ते भवति मनुजलोकाद्देवलोको विशिष्टः । बहुतरसुसमृद्ध्या मानुषाणां गृहाणि पितृवनभवनाभं दृश्यते चामराणाम् ॥ ४६ ॥ न च फलति विकर्मा जीवलोके न दैवं व्यपनयति विमार्गं नास्ति दैवे प्रभुत्वम् । गुरुमिव कृतमग्र्यं कर्म संयाति दैवं नयति पुरुषकारः

कभी परित्राण नहीं कर सकता जैसे बहुत थोडी अग्नि वायुके द्वारा बढके महान् होती है, वैसे ही कर्मसे संयुक्त दैव उत्तम रीतिसे वर्द्धित हुआ करता है। (३९-४३)

जैसे तेलके नष्ट होनेसे दीपकका नाश होता है,वैसे ही कर्म नष्ट होनेसे भाग्य भी नष्ट होजाता है। इस लोकमें कर्महीन मनुष्य बहुतसा धन, उपभोग-विषय और स्त्रियोंको पाके भी उपभोग करनेमें समर्थ नहीं होते, और सदा उद्योगी मनुष्य भाग्यके सहारे रक्ष्यमाण पृथ्वीमें पडी हुई निधि भी पाते हैं। श्रद्धाप्रिय देवता लोग व्ययशाली साधु पुरुषोंके सदाचारके निमित्त संश्रय करते हैं, अर्थात् अपना भोग ग्रहण करनेके लिये उसे ही उपजीव्य किया करते हैं। मनुष्यलोकसे देवलोकको उत्तम देखकर साधु लोग श्रेष्ठ फल पानेके लिये सर्वस्व व्यय करके भी यज्ञ करनेमें प्रवृत्त होते हैं; और मनुष्योंका गृह अनेक प्रकारकी समृद्धियोंसे परिपूरित होनेपर भी यदि उसमें यज्ञ आदि कर्म न हों, तो देवता लोग उस स्थानको श्मशानके समान देखते हैं। (४४-४६)

जीवलोकमें कर्महीन मनुष्यको तृप्ति-लाभ नहीं होती और केवल दैव कुमार्गी मनुष्योंको निवारित करके नहीं रख सकता; इसलिये दैवकी कुछ भी प्रभुता नहीं है। परन्तु जैसे शिष्य गुरुका अनुसरण करता है, वैसे ही दैवकर्म पुरुषार्थ जिन जिन विषयोंमें उत्तम रीतिसे अनुष्ठित होता है, उन्हीं विषयोंमें भाग्यकी उत्पत्ति हुआ करती है। जब यत्नके सहारे पुरुषकी कार्यसिद्धि होती है, तब लोग कहते हैं, कि

संचितस्तत्र तत्र ॥ ४७ ॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं मया वै मुनिसत्तम।
फलं पुरुषकारस्य सदा संदृश्य तत्त्वतः ॥ ४८ ॥
अभ्युत्थानेन दैवस्य समारब्धेन कर्मणा।
विधिना कर्मणा चैव स्वर्गमार्गमवाप्नुयात् ॥ ४९ ॥ [३४१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे दैवपुरुषकारनिर्देशे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

युधिष्ठिर उवाच— कर्मणां च समस्तानां शुभानां भरतर्षभ।
फलानि महतां श्रेष्ठ प्रब्रूहि परिपृच्छतः ॥ १ ॥
भीष्म उवाच— हन्त ते कथयिष्यामि यन्मां पृच्छसि भारत।
रहस्यं यदृषीणां तु तच्छृणुष्व युधिष्ठिर
या गतिः प्राप्यते येन प्रेत्यभावे चिरेप्सिता ॥ २ ॥
येन येन शरीरेण यद्यत्कर्म करोति यः।
तेन तेन शरीरेण तत्तत्फलमुपाश्नुते ॥ ३ ॥
यस्यां यस्यामवस्थायां यत्करोति शुभाशुभम्।

"दैवकी अनुकूलतासे यह कार्य सिद्ध हुआ है।" हे मुनिसत्तम! मैंने यथार्थ रूपसे योगयुक्त दृष्टिके द्वारा अनुभव करके तुम्हारे समीप यह सब पुरुषार्थका फल वर्णन किया है। भाग्यके उदय होने तथा पूरी रीतिसे कर्म आरम्भ करने अर्थात् शास्त्रविहित कर्मसे लोकमें स्वर्ग-पथ प्राप्त हुआ करता है। (४७–४९)

अनुशासनपर्वमें ६ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ७ अध्याय।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ पितामह! मैं आपसे प्रश्न करता हूं आप शुभ कर्मोंका फल मेरे समीप वर्णन करिये। (१)

भीष्म बोले, हे भरतकुलधुरन्धर युधिष्ठिर! बहुत अच्छा, तुमने मुझसे जो पूछा है, मैं तुम्हारे समीप वही विषय कहता हूं। मरनेके अनन्तर दूसरा शरीर मिलनेपर जिस कर्मसे जो चिरेप्सित फल प्राप्त होता है, ऋषि-योंके उस रहस्य विषयको सुनो। जो पुरुष जिस जिस शरीरसे जो जो कर्म करता है, वह उस ही शरीरसे उन कर्मोंका फल भोग किया करता है। अर्थात् मनके द्वारा किये हुए कर्मोंके फल स्वप्नकालमें मनके ही सहारे भोगे जाते हैं और शरीरके द्वारा जो कर्म किये जाते हैं, वे जाग्रत् अवस्थामें शरी-

तस्यां तस्यामवस्थायां भुङ्क्ते जन्मनि जन्मनि ॥ ४ ॥
न नश्यति कृतं कर्म सदा पञ्चेन्द्रियैरिह ।
ते ह्यस्य साक्षिणो नित्यं षष्ठ आत्मा तथैव च ॥ ५ ॥
चक्षुर्दद्यान्मनो दद्याद्वाचं दद्याच्च सूनृताम् ।
अनुव्रजेदुपासीत स यज्ञः पञ्चदक्षिणः ॥ ६ ॥
यो दद्यादपरिक्लिष्टमन्नमध्वनि वर्तते ।
श्रान्तायादृष्टपूर्वाय तस्य पुण्यफलं महत् ॥ ७ ॥
स्थण्डिलेषु शयानानां गृहाणि शयनानि च ।
चीरवल्कलसंवीते वासांस्याभरणानि च ॥ ८ ॥
वाहनानि च यानानि योगात्मनि तपोधने ।
अग्नीनुपशयानस्य राज्ञः पौरुषमेव च ॥ ९ ॥
रसानां प्रतिसंहारे सौभाग्यमनुगच्छति ।
आमिषप्रतिसंहारे पशून्पुत्रांश्च विन्दति ॥ १० ॥
अवाक्शिरास्तु यो लम्बेदुदवासं च यो वसेत् ।

रसे ही भोगे जाते हैं। (२-३)

मनुष्य, बालक, युवा अथवा आपद वा निरापद अवस्थामें जो शुभाशुभ कर्म करता है, जन्म जन्म उस ही अवस्थामें उन कर्मोंका फल भोग किया करता है। इस जन्ममें पञ्च इन्द्रियोंके द्वारा नित्यके किये हुए कर्म कभी निष्फल नहीं होते; वे पांचों इन्द्रियें और छठवां आत्मा सदा उस कर्म करनेवालेके साक्षी हुआ करते हैं। अभ्यागत पुरुषके विषयमें कोमल दृष्टि करे, सत्य और प्रिय वचन कहे, उसका अनुगमन करे और उसकी उपासना करनी चाहिये, यही पञ्च दक्षिणायुक्त यज्ञ है। जो लोग अनचीन्हे तथा मार्गके थके हुए पथिकको उत्तम अन्नदान करते हैं उन्हें अपरिमित पुण्यफल मिलता है। (४-७)

वानप्रस्थ व्रताचारी कुशापर शयन करनेवाले मनुष्योंको गृह तथा शय्या आदि प्राप्त होती है और चीरवल्कलधारी योगयुक्त तपस्वियोंको वस्त्र, आभूषण, वाहन, यान आदि फलस्वरूपसे प्राप्त हुआ करते हैं, अग्निके समीप शयन करनेवाले लोगोंको राजाका पौरुष प्राप्त होता है; रसोंको प्रतिसंहार करनेसे सौभाग्य हुआ करता है। मांसको प्रतिसंहार करनेसे पशु और पुत्र प्राप्त होते हैं, जो अवाक्शिरा होकर लटकते रहते हैं और जो लोग

सततं चैकशायी यः स लभेतेप्सितां गतिम् ॥ ११ ॥
पाद्यमासनमेवाथ दीपमन्नं प्रतिश्रयम् ।
दद्यादतिथिपूजार्थं स यज्ञः पञ्चदक्षिणः ॥ १२ ॥
वीरासनं वीरशय्यां वीरस्थानमुपागतः ।
अक्षयास्तस्य वै लोकाः सर्वकामगमास्तथा ॥ १३ ॥
धनं लभेत दानेन मौनेनाज्ञां विशाम्पते ।
उपभोगांश्च तपसा ब्रह्मचर्येण जीवितम् ॥ १४ ॥
रूपमैश्वर्यमारोग्यमहिंसाफलमश्नुते ।
फलमूलाशिनो राज्यं स्वर्गः पर्णाशिनां भवेत् ॥ १५ ॥
प्रायोपवेशिनो राजन्सर्वत्र सुखमुच्यते ।
गवाढ्यः शाकदीक्षायां स्वर्गगामी तृणाशनः ॥ १६ ॥
स्त्रियस्त्रिषवणं स्नात्वा वायुं पीत्वा क्रतुं लभेत् ।
स्वर्गं सत्येन लभते दीक्षया कुलमुत्तमम् ॥ १७ ॥

जलमें निवास करते हैं, तथा जो पुरुष सदा अकेले ही शयन करते अर्थात् ब्रह्मचर्य व्रत अवलम्बन किया करते हैं, वे लोग अभिलषित गति पाते हैं। (८–११)

जो लोग अतिथिपूजाके लिये पाद्य, अर्घ, आसन, दीपक, अन्न, अवलम्ब-स्थान दान करते हैं, वे पञ्चदक्षिणा यज्ञके फलभागी होते हैं, जो लोग रणभूमिमें वीरासन और वीरशय्यापर शयन करते हैं, उनके सर्वकामप्रद लोक अक्षय होते हैं। हे महाराज! दान करनेसे धन लाभ होता है; मौन रहनेसे अविच्छिन्न आज्ञा प्राप्त हुआ करती है, तपस्यासे उपभोग और ब्रह्मचर्यके द्वारा दीर्घजीवन लाभ होता है; अहिंसासे ऐश्वर्य और आरोग्य भोग प्राप्त होता है; फलमूल भोजन करनेवालोंको राज्य और पत्ता खानेवालोंको स्वर्ग मिलता है। हे महाराज! योगयुक्त होके बैठनेवालोंके लिये सर्वत्र सुख वर्णित हुआ करता है। जो लोग केवल शाक भोजन करके नियम अवलम्बन करते हैं, वे लोग गोसमूहसे पूजित होते हैं। तृणभोजी मनुष्य स्वर्गगामी हुआ करते हैं। (१२–१६)

स्त्रीसहवास परित्याग करके जो लोग नियमपूर्वक तीन बार स्नान करते तथा वायु पीके रहते हैं, वे सत्यसंकल्पत्व लाभ करते हैं। सत्यके द्वारा स्वर्ग मिलता है, और यज्ञके सहारे उत्तम कुलमें जन्म हुआ करता है। जो

सलिलाशी भवेद्यस्तु सदाग्निः संस्कृतो द्विजः ।
मन्त्रं साधयतो राज्यं नाकपृष्ठमनाशके ॥ १८ ॥
उपवासं च दीक्षायामभिषेकं च पार्थिव ।
कृत्वा द्वादश वर्षाणि वीरस्थानाद्विशिष्यते ॥ १९ ॥
अधीत्य सर्ववेदान्वै सद्यो दुःखाद्विमुच्यते ।
मानसं हि चरन् धर्मं स्वर्गलोकमुपाश्नुते ॥ २० ॥
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः ।
योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ॥ २१ ॥
यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम् ।
एवं पूर्वकृतं कर्म कर्त्तारमनुगच्छति ॥ २२ ॥
अचोद्यमानानि यथा पुष्पाणि च फलानि च ।
स्वकालं नातिवर्तन्ते तथा कर्म पुरा कृतम् ॥ २३ ॥
जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ।
चक्षुःश्रोत्रे च जीर्येते तृष्णैका न तु जीर्यते ॥ २४ ॥

संस्कारयुक्त ब्राह्मण जलशायी होते हैं उनके अविच्छिन्न अग्निहोत्र सम्पन्न हुआ करते हैं। जो लोग गायत्री आदि मन्त्रोंको सिद्ध करते हैं उन्हें राज्य मिलता है। अनशन व्रत अवलम्बन करनेसे स्वर्गलोकमें वास होता है। हे राजन्! बारह वर्षके यज्ञमें उपवास व्रतके लिये ब्राह्मणको दूध आदि पीना व्रत है,और क्षत्रियको यवागूका आहार ही व्रत है, वैश्यको आमिक्षा आहार ही व्रत और अभिषेक अर्थात् बारह वर्षकाल तीर्थोंमें भ्रमण व्रत करनेसे वीर स्थान स्वर्गसे भी श्रेष्ठ ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। (१७-१९)

मनुष्य सब वेदोंको पढनेसे सदाके लिये दुःखोंसे छूट जाता है; मानसिक धर्माचरण करनेसे स्वर्ग लोक मिलता है। नीचबुद्धि पुरुषोंसे जो दुस्त्याज्य है, पुरुषके बूढे होनेपर भी जो जीर्ण नहीं होता तथा जो प्राणान्तिक रोग स्वरूप है, उस तृष्णाको जो लोग त्यागते हैं, वे सुखी हुआ करते हैं। जैसे सहस्र गौओंके बीच बछडा अपनी माताको खोज लेता है, वैसे ही पहलेके किये हुए कर्म कर्त्ताका अनुगमन किया करते हैं। जैसे अप्रेरित फल और फूल अपने समयको अतिक्रम नहीं करते, पहलेके किये हुए कर्म भी वैसे ही हैं। (२०-२३)

बूढे पुरुषोंके केश झड जाते, दांत

येन प्रीणाति पितरं तेन प्रीतः प्रजापतिः ।
प्रीणाति मातरं येन पृथिवी तेन पूजिता ।
येन प्रीणात्युपाध्यायं तेन स्याद् ब्रह्म पूजितम् ॥२५॥
सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः ।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ॥ २६ ॥
वैशम्पायन उवाच— भीष्मस्यैतद्वचः श्रुत्वा विस्मिताः कुरुपुङ्गवाः ।
आसन् प्रहृष्टमनसः प्रीतिमन्तोऽभवंस्तदा ॥ २७ ॥
यन्मन्त्रे भवति वृथोपयुज्यमाने यत्सोमे भवति वृथाभिषूयमाणे ।
यच्चाग्नौ भवति वृथाभिहूयमाने तत्सर्वं भवति वृथाभिधीयमाने ॥२८॥
इत्येतदृषिणा प्रोक्तमुक्तवानस्मि यद्विभो ।
शुभाशुभफलप्राप्तौ किमतः श्रोतुमिच्छसि ॥ २९ ॥ [३७०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे कर्मफलिकोपाख्याने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

गिर जाते, दोनों नेत्र और दोनों कान जीर्ण होजाते हैं, परन्तु एकमात्र तृष्णा कभी जीर्ण नहीं होती। जिन कर्मोंसे पिताको प्रसन्न किया जाता है, उसहीके द्वारा प्रजापति प्रसन्न होते हैं, और जिसके द्वारा माताको प्रसन्न किया जाता है, उसहीके सहारे पृथ्वी पूजित होती है। जिन कर्मोंसे गुरुको प्रीति-युक्त किया जाता है, उससे ब्रह्म पूजित होता है; पिता, माता और गुरु, ये तीनों ही जिससे आदरयुक्त होते हैं, उसके सब धर्म ही आदृत होते हैं, और ये तीनों जिससे अनादृत होते हैं, उसकी समस्त क्रिया ही निष्फल होती हैं। (२४-२६)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कुरुप्रवीर पुरुष भीष्मके ऐसे वचनको सुनके विस्मित हुए और उस समय वे लोग प्रसन्नचित्त तथा प्रीतियुक्त हुए थे। जैसे जिगीषा आदिके निमित्त मन्त्रका उच्चारण निष्फल होता है, जैसे विना दक्षिणाके सोमयाग निष्फल होजाता है, जैसे विना मन्त्रके होमसे कोई कार्य सिद्ध नहीं होता अर्थात् इन तीनोंसे जो पाप हुआ करता है, मिथ्या बोलने-वालेको वह सब पाप प्राप्त होता है। हे महाराज! शुभाशुभ फलकी प्राप्तिके निमित्त यह मैंने ऋषियोंके कहे हुए समस्त विषय वर्णन किया अब कौनसा विषय सुननेकी इच्छा करते हो? २७-२९

अनुशासनपर्वमें ७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर उवाच- के पूज्याः के नमस्कार्याः कान्नमस्यासि भारत।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व येभ्यः स्पृहयसे नृप ॥ १ ॥
उत्तमापद्गतस्यापि यत्र ते वर्तते मनः।
मनुष्यलोके सर्वस्मिन् यदमुत्रेह चाप्युत ॥ २ ॥
भीष्म उवाच—स्पृहयामि द्विजातिभ्यो येषां ब्रह्म परं धनम्।
येषां स्वप्रत्ययः स्वर्गस्तपः स्वाध्यायसाधनम् ॥ ३ ॥
येषां बालाश्च वृद्धाश्च पितृपैतामहीं धुरम्।
उद्वहन्ति न सीदन्ति तेभ्यो वै स्पृहयाम्यहम् ॥ ४ ॥
विद्यास्वभिविनीतानां दान्तानां मृदुभाषिणाम्।
श्रुतवृत्तोपपन्नानां सदाक्षरविदां सताम् ॥ ५ ॥
संसत्सु वदतां तात हंसानामिव संघशः।
मङ्गल्यरूपा रुचिरा दिव्यजीमूतनिःस्वनाः ॥ ६ ॥
सम्यगुच्चरिता वाचः श्रूयन्ते हि युधिष्ठिर।
शुश्रूषमाणे नृपतौ प्रेत्य चेह सुखावहाः ॥ ७ ॥

अनुशासनपर्वमें ८ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! पूज्य कौन है? किसे नमस्कार करना चाहिये; आप किन लोगोंको नमस्कार करते हैं। यह सब तथा आप जिन लोगोंकी स्पृहा करते हैं, वह सब वृत्तान्त मेरे समीप वर्णन करिये; अत्यन्त आपदा-युक्त होनेपर भी आपका मन जिसमें अनुरक्त रहता है, मनुष्य लोक तथा परलोकमें जो कुछ हितकर हो, उसे ही वर्णन करिये। (१–२)

भीष्म बोले, जिन लोगोंका, आत्म-प्रत्यय ही स्वर्ग, स्वाध्यायसाधन ही तपस्या और ब्रह्म ही परम धन है, मैं उन ब्राह्मणोंकी ही सदा स्पृहा किया करता हूं; जिनके बालक और बूढे पितर, पितामहके भारको उठाया करते हैं और अवसन्न नहीं होते, मैं उन्हीं लोगोंकी स्पृहा किया करता हूं। हे तात युधि-ष्ठिर! विद्याविनयसे सम्पन्न, दान्त, कोमल वचन कहनेवाले, शास्त्र–ज्ञान और सच्चरित्रसे युक्त ब्रह्मवित् साधु पुरुषोंकी सभाके बीच हंसके जल परित्याग करके दूध पीनेकी भांति आत्मानात्म विचार करके वचन बोलते रहनेपर उनके मङ्गलमय मनोहर बादलके दिव्य शब्दसमान पूरी रीतिसे कहे हुए सब वचन सुनाई देते हैं, सेवायुक्त राजाके समीप कहे हुए वे सब वचन इस लोक और परलोकमें सुख-

ये चापि तेषां श्रोतारः सदा सदसि संमताः ।
विज्ञानगुणसंपन्नास्तेभ्यश्च स्पृहयाम्यहम् ॥ ८ ॥
सुसंस्कृतानि प्रयताः शुचीनि गुणवन्ति च ।
ददत्यन्नानि तृप्त्यर्थं ब्राह्मणेभ्यो युधिष्ठिर ॥ ९ ॥
ये चापि सततं राजंस्तेभ्यश्च स्पृहयाम्यहम् ।
शक्यं ह्येवाहवे योद्धुं न दातुमनसूयितम् ॥ १० ॥
शूरा वीराश्च शतशः सन्ति लोके युधिष्ठिर ।
येषां संख्यायमानानां दानशूरो विशिष्यते ॥ ११ ॥
धन्यः स्यां यद्यहं भूयः सौम्य ब्राह्मणकोऽपि वा ।
कुले जातो धर्मगतिस्तपोविद्यापरायणः ॥ १२ ॥
न मे त्वत्तः प्रियतरो लोकेऽस्मिन् पाण्डुनन्दन ।
त्वत्तश्चापि प्रियतरा ब्राह्मणा भरतर्षभ ॥ १३ ॥
यथा मम प्रियतमास्त्वत्तो विप्राः कुरूत्तम ।
तेन सत्येन गच्छेयं लोकान्यत्र स शान्तनुः ॥ १४ ॥
न मे पिता प्रियतरो ब्राह्मणेभ्यस्तथाभवत् ।

दायक हुआ करते हैं । (३-७)

विज्ञानगुणसे युक्त सभाके बीच सम्मानभाजन जो सब मनुष्य सदा साधुओंके कहे हुए वचनोंको सुनते हैं, मैं उन लोगोंकी भी बडाई किया करता हूं । हे युधिष्ठिर ! जो लोग श्रद्धापूर्वक उन ब्राह्मणोंको तृप्त करनेके निमित्त उत्तम, पवित्र और सुगन्धयुक्त अन्न दान करते हैं, मैं उन लोगोंकी स्पृहा किया करता हूं । रणभूमिमें संग्राम करनेमें अनायास ही सामर्थ्य होती है, परन्तु असूयारहित भावसे दान करना सहज नहीं है । हे युधिष्ठिर ! इस लोकमें सैकडों शूरवीर पुरुष हैं, जिनकी गिनती करनेके समय दानवीर ही सबसे श्रेष्ठ होता है, हे प्रियदर्शन ! तप और विद्यामें रत, धर्मकी गति, सत्कुलमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणोंका तो कहना ही क्या है, मैं जन्मान्तरमें कुत्सित ब्राह्मणकुलमें जन्म पानेसे भी धन्य हूंगा, हे भरतश्रेष्ठ पाण्डुपुत्र ! इस लोकमें तुमसे बढके मेरे दूसरा कोई भी प्रिय नहीं है, परन्तु ब्राह्मण लोग तुमसे भी मेरे अधिक प्रिय हैं । (८—१३)

हे कुरुसत्तम ! जब ब्राह्मण लोग तुमसे भी मेरे अधिक प्रिय हैं तो इस ही सत्यके प्रभाव से मैं उन लोकोंमें

न मे पितुः पिता वापि ये चान्येऽपि सुहृज्जनाः ॥१५॥
न हि मे वृजिनं किञ्चिद्विद्यते ब्राह्मणेष्विह ।
अणु वा यदि वा स्थूलं विद्यते साधुकर्मसु ॥ १६ ॥
कर्मणा मनसा वापि वाचा वापि परन्तप ।
यन्मे कृतं ब्राह्मणेभ्यस्तेनाद्य न तपाम्यहम् ॥ १७ ॥
ब्रह्मण्य इति मामाहुस्तया वाचाऽस्मि तोषितः ।
एतदेव पवित्रेभ्यः सर्वेभ्यः परमं स्मृतम् ॥ १८ ॥
पश्यामि लोकानमलाञ्छुचीन् ब्राह्मणयायिनः ।
तेषु मे तात गन्तव्यमह्नाय च चिराय च ॥ १९ ॥
यथा भर्त्राश्रयो धर्मः स्त्रीणां लोके युधिष्ठिर ।
स देवः सा गतिर्नान्या क्षत्रियस्य तथा द्विजाः ॥ २० ॥
क्षत्रियः शतवर्षी च दशवर्षी द्विजोत्तमः ।
पितापुत्रौ च विज्ञेयौ तयोर्हि ब्राह्मणो गुरुः ॥ २१ ॥

गमन करूंगा, जहांपर मेरे पिता शान्तनु विराज मान हैं। ब्राह्मणोंसे बढके पिता, पितामह और दूसरे सुहृद लोग भी मेरे अधिक प्रिय नहीं हैं। इस लोकमें ब्राह्मणोंके निकट मुझे किसी फल पानेकी आशा नहीं है, पूज्य समझके ही देवताओंकी भांति मैं उनकी पूजा किया करता हूं; साधुकार्यमें मैं तनिक तथा अधिक परिमाणसे फलकी आशा नहीं करता। (१४—१६)

हे शत्रुतापन! कर्म, मन और वचन से मैंने ब्राह्मणोंकी जो कुछ आराधना की है, इस समय शरशय्यामें पडे रहनेपर भी मैं उस ही ब्राह्मणपूजाके प्रभावसे दुःखित नहीं हुआ। प्राचीन लोगोंने मुझे ब्राह्मण जातिका हित करनेमें तत्पर कहा है, मैं उसही वचनसे सन्तुष्ट हुआ हूं, यह समस्त पवित्रतासे भी परम पवित्रता कहके वर्णित हुआ है। हे तात! मैं सब लोकोंको ही पवित्र और निर्मल देखता हूं, मैं ब्राह्मणोंका दास हूं, इसलिये शीघ्र ही सदाके लिये उन पवित्र लोकोंमें गमन करूंगा। (१७-१९)

हे युधिष्ठिर! जैसे इस लोकमें पति ही स्त्रियोंके लिये धर्म और देवता है, वैसे ही ब्राह्मण ही क्षत्रियोंके देवता और ब्राह्मण ही क्षत्रियोंकी गति है; इसके अतिरिक्त क्षत्रियोंके लिये दूसरी कोई गति नहीं है। सौ वर्षकी अवस्थावाला क्षत्रिय और दश वर्षकी अवस्थावाला उत्तम ब्राह्मण पिता पुत्र रूपसे

नारी तु पत्यभावे वै देवरं कुरुते पतिम् ।
पृथिवी ब्राह्मणालाभे क्षत्रियं कुरुते पतिम् ॥ २२ ॥
पुत्रवच्च ततो रक्ष्या उपास्या गुरुवच्च ते ।
अग्निवच्चोपचर्या वै ब्राह्मणाः कुरुसत्तम ॥ २३ ॥
ऋजून्सतः सत्यशीलान्सर्वभूतहिते रतान् ।
आशीविषानिव क्रुद्धान् द्विजान्परिचरेत्सदा ॥ २४ ॥
तेजसस्तपसश्चैव नित्यं बिभ्येद्युधिष्ठिर ।
उभे चैते परित्याज्ये तेजश्चैव तपस्तथा ॥ २५ ॥
व्यवसायस्तयोः शीघ्रमुभयोरेव विद्यते ।
हन्युः क्रुद्धा महाराज ब्राह्मणा ये तपस्विनः ॥ २६ ॥
भूयः स्यादुभयं दत्तं ब्राह्मणाद्यदकोपनात् ।
कुर्यादुभयतः शेषं दत्तशेषं न शेषयेत् ॥ २७ ॥
दण्डपाणिर्यथा गोषु पालो नित्यं हि रक्षयेत् ।
ब्राह्मणा ब्रह्म च तथा क्षत्रियः परिपालयेत् ॥ २८ ॥

मालूम होते हैं, इन दोनोंके बीच ब्राह्मण ही गुरु है । जैसे स्त्री पतिके अभावमें देवरको पतितुल्य मानती है वैसे ही पृथ्वी ब्राह्मणके अभावमें क्षत्रियको अपना स्वामी समझती है । हे कुरुसत्तम ! इसलिये क्षत्रियोंको चाहिये कि पुत्रकी भांति ब्राह्मणोंकी रक्षा करें, ब्राह्मण गुरु-समान पूजनीय और अग्निकी भांति उपचारके योग्य हैं, इसलिये सरल, साधु, सत्यशील, सब प्राणियोंके हितमें रत रहनेवाले, क्रुद्ध विषीले सर्पके समान ब्राह्मणोंकी सदा सेवा करनी योग्य है । (२०—२४)

हे युधिष्ठिर ! तेज और तपस्यासे सदा भय करना उचित है, तपोबल और तेजोबल दोनों ही परित्याज्य हैं । क्षत्रियोंके तेज और ब्राह्मणोंकी तपस्या इन दोनोंके फल अत्यन्त तीव्र हैं । हे महाराज ! परन्तु तेजस्वी क्षत्रियकी अपेक्षा तपस्वी ब्राह्मण क्रुद्ध होने पर शीघ्रही मनुष्योंका नाश करते हैं । अक्रोधी ब्राह्मणके निकट प्रयोग किया हुआ तेज और तप, ये दोनों ही अधिक होने पर भी खण्डित होते हैं, और दोनों ही यदि शेष करें, तो क्षमावानके द्वारा खण्डित तेजका जो कुछ अंश शेष रहेगा, वह निःशेष न करनेपर भी अवश्य ही निःशेष होगा । जैसे गोपाल सदा हाथमें दण्ड लेकर गौवोंको पालन करता है, वैसेही क्षत्रिय राजा ब्राह्मण

पितेव पुत्रान् रक्षेथा ब्राह्मणान् धर्मचेतसः।
गृहे चैषामवेक्षेथाः किंस्विदस्तीति जीवनम् ॥ २९ ॥ [३९९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

युधिष्ठिर उवाच-ब्राह्मणानां तु ये लोकाः प्रतिश्रुत्य पितामह।
न प्रयच्छन्ति मोहात्ते के भवन्ति महाद्युते ॥ १ ॥
एतन्मे तत्त्वतो ब्रूहि धर्मं धर्मभृतां वर।
प्रतिश्रुत्य दुरात्मानो न प्रयच्छन्ति ये नराः ॥ २ ॥
भीष्म उवाच-यो न दद्यात्प्रतिश्रुत्य स्वल्पं वा यदि वा बहु।
आशास्तस्य हताः सर्वाः क्लीबस्येव प्रजाफलम् ॥ ३ ॥
यां रात्रिं जायते जीवो यां रात्रिं च विनश्यति।
एतस्मिन्नन्तरे यद्यत्सुकृतं तस्य भारत ॥ ४ ॥
यच्च तस्य हुतं किंचिद्दत्तं वा भरतर्षभ।
तपस्तप्तमथो वापि सर्वं तस्योपहन्यते ॥ ५ ॥
अथैतद्वचनं प्राहुर्धर्मशास्त्रविदो जनाः।

और वेदोंकी सब प्रकारसे रक्षा करे। जैसे पिता पुत्रोंको पालन करता है, वैसे ही धर्मनिष्ठ ब्राह्मणोंकी रक्षा करे और उन उन लोगोंके गृह तथा जीविका निर्वाहके योग्य कोई वस्तु है वा नहीं, उसे जान लिया करे, यदि कोई वस्तु न हो, तो उसे दान करे। (२५-२९)

अनुशासनपर्वमें ८ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ९ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे महातेजस्वी धार्मिक-श्रेष्ठ पितामह! जो सब दुराचारी मनुष्य ब्राह्मणोंको दान देनेका सङ्कल्प करके फिर मोहके वशमें होकर नहीं देते हैं, भविष्यमें उनकी कैसी दशा होती है, आप यथार्थ रीतिसे यह धर्म मेरे समीप वर्णन करिये। (१-२)

भीष्म बोले, जो पुरुष थोडी अथवा अधिक वस्तु दान करनेका सङ्कल्प करके फिर उसे दान नहीं करता, उसकी सब आशा इस प्रकार नष्ट हो जाती है, जैसे नपुंसक पुरुषके पुत्रकी लालसा नष्ट होती है। हे भारत! जीव जिस समय जन्मता और जिस समय नष्ट होता है, उस जन्म और मृत्युके मध्यकाल अर्थात् जीवनके समयमें उसका जो कुछ सुकृत होता है, तथा वह जो कुछ होम, दान और तपस्या करता है, उस पुरुषके वे सभी कर्म

निशम्य भरतश्रेष्ठ बुद्ध्या परमयुक्तया ॥ ६ ॥
अपि चोदाहरन्तीमं धर्मशास्त्रविदो जनाः ।
अश्वानां श्यामकर्णानां सहस्रेण स मुच्यते ॥ ७ ॥
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
शृगालस्य च संवादं वानरस्य च भारत ॥ ८ ॥
तौ सखायौ पुरा ह्यास्तां मानुषत्वे परन्तप ।
अन्यां योनिं समापन्नौ शार्गालीं वानरीं तथा ॥ ९ ॥
ततः परासून्खादन्तं शृगालं वानरोऽब्रवीत् ।
श्मशानमध्ये संप्रेक्ष्य पूर्वजातिमनुस्मरन् ॥ १० ॥
किं त्वया पापकं पूर्वं कृतं कर्म सुदारुणम् ।
यस्त्वं श्मशाने मृतकान्पूतिकानत्सि कुत्सितान् ॥११॥
एवमुक्तः प्रत्युवाच शृगालो वानरं तदा ।
ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुत्य न मया तदुपाहृतम् ॥ १२ ॥
तत्कृते पापकीं योनिमापन्नोऽस्मि प्लवंगम ।
तस्मादेवंविधं भक्ष्यं भक्षयामि बुभुक्षितः ॥ १३ ॥

निष्फल हुआ करते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! धर्मशास्त्र जाननेवाले पुरुष परम युक्तिवती बुद्धिसे विचार करके उक्त वचन कहा करते हैं और वे लोग यह भी कहते हैं, कि एक हजार श्यामकर्ण घोडे दान करनेसे इसका प्रायश्चित्त होता है, इस अशक्य कार्यका अनुष्ठान असाध्य है, इसीसे पाप नष्ट नहीं होता। (३-७)

हे भरतनन्दन! प्राचीन लोग इस विषयमें सियार और बन्दरके संवाद-युक्त यह पुराना इतिहास कहते हैं, हे शत्रुतापन! पहले मनुष्य जन्ममें वे दो भाई थे। इस समय दूसरे जन्ममें एक सियार योनि और दूसरा बन्दर योनिमें उत्पन्न हुआ था। अनन्तर बन्दरने सियारको श्मशानके बीच मरे मनुष्योंका मांस भक्षण करते हुए देखकर पूर्वजाति स्मरण करके कहा, कि तुमने पहले जन्ममें ऐसा कौनसा दारुण पापकर्म किया था, जिसके फलसे इस श्मशानमें निन्दनीय मृतक शरीरको भक्षण करते हो। सियार उस समय ऐसा वचन सुनके बन्दरसे बोला, मैंने ब्राह्मणोंको देनेको कहके उन्हें दान नहीं किया था। हे शाखाविहारी! इस ही निमित्त मैं पापयोनिको प्राप्त हुआ हूं और उसही कारणसे भूखा होकर इस

भीष्म उवाच– शृगालो वानरं प्राह पुनरेव नरोत्तम।
किं त्वया पातकं कर्म कृतं येनासि वानरः ॥ १४ ॥
वानर उवाच— सदा चाहं फलाहारो ब्राह्मणानां प्लवंगमः।
तस्मान्न ब्राह्मणस्वं तु हर्तव्यं विदुषा सदा।
समं विवादो मोक्तव्यो दातव्यं च प्रतिश्रुतम् ॥१५॥
भीष्म उवाच–इत्येतद् ब्रुवतो राजन्ब्राह्मणस्य मया श्रुतम्।
कथां कथयतः पुण्यां धर्मज्ञस्य पुरातनीम् ॥ १६ ॥
श्रुतश्चापि मया भूयः कृष्णस्यापि विशाम्पते।
कथां कथयतः पूर्वं ब्राह्मणं प्रति पाण्डव ॥ १७ ॥
न हर्तव्यं विप्रधनं क्षन्तव्यं तेषु नित्यशः।
बालाश्च नावमन्तव्या दरिद्राः कृपणा अपि ॥ १८ ॥
एवमेव च मां नित्यं ब्राह्मणाः संदिशन्ति वै।
प्रतिश्रुत्य भवेद्देयं नाशा कार्या द्विजोत्तमे ॥ १९ ॥

प्रकार निन्दित भक्ष्य भक्षण करता हूं। (८—१३)

भीष्म बोले, हे नरोत्तम! सियारने फिर बन्दरसे कहा, तुमने क्या पाप-कर्म किया था, जिसके फलसे बन्दर हुए हो। (१४)

बन्दर बोला, मैं सदा ब्राह्मणोंका फल खाया करता था, इस ही कारण बन्दर योनिमें उत्पन्न हुआ हूं, इसलिये विद्वान् पुरुषोंको उचित है, कि ब्राह्मणोंकी वस्तुको हरण न करे। ब्राह्मणोंके सङ्ग विवाद करना योग्य नहीं है और उन्हें देनेको कहके अवश्य दान देना उचित है। (१५)

भीष्म बोले, हे महाराज! पहले जब मेरे गुरु यह ब्राह्मणकी कथा कह रहे थे, तब उनके मुखसे मैंने इस विषयको सुना था। हे नरनाथ! जब धर्मज्ञ व्यासदेव पवित्र और प्राचीन इतिहास कह रहे थे, तब उनके मुखसे भी मैंने यह कथा सुनी थी। हे पाण्डव! फिर ब्राह्मणोंके विषयमें श्रीकृष्णके मुखसे भी मैंने यह कथा सुनी है, ब्राह्मणोंका धन हरना उचित नहीं है; सदा उन लोगोंके विषयमें क्षमा करनी चाहिये। चाहे ब्राह्मण बालक हो, दरिद्र हो अथवा कृपण ही होवे, उसकी कदापि अवमानना न करनी चाहिये ब्राह्मण लोग मुझे सदा ऐसा ही उपदेश दिया करते हैं, ब्राह्मणोंके समीप देनेका सङ्कल्प करके उन्हें दान देना ही उचित है, ब्राह्मणोंकी आशाको निष्फल करना

ब्राह्मणो ह्याशया पूर्वं कृतया पृथिवीपते।
सुसमिद्धो यथा दीप्तः पावकस्तद्विधः स्मृतः ॥ २० ॥
यं निरीक्षेत संक्रुद्ध आशया पूर्वजातया।
प्रदहेच्च हि तं राजन्कक्षमक्षय्यभुग्यथा ॥ २१ ॥
स एव हि यदा तुष्टो वचसा प्रतिनन्दति।
भवत्यगदसंकाशो विषये तस्य भारत ॥ २२ ॥
पुत्रान्पौत्रान्पशूंश्चैव बान्धवान्सचिवांस्तथा।
पुरं जनपदं चैव शान्तिरिष्टेन पोषयेत् ॥ २३ ॥
एतद्धि परमं तेजो ब्राह्मणस्येह दृश्यते।
सहस्रकिरणस्येव सवितुर्धरणीतले ॥ २४ ॥
तस्माद्दातव्यमेवेह प्रतिश्रुत्य युधिष्ठिर।
यदीच्छेच्छोभनां जातिं प्राप्तुं भरतसत्तम ॥ २५ ॥
ब्राह्मणस्य हि दत्तेन ध्रुवं स्वर्गो ह्यनुत्तमः।
शक्यः प्राप्तुं विशेषेण दानं हि महती क्रिया ॥ २६ ॥
इतो दत्तेन जीवन्ति देवताः पितरस्तथा।

योग्य नहीं है। (१६—१९)

हे पृथ्वीपाल ! ब्राह्मण लोग पहलेकी की हुई आशासे जलती हुई अग्निकी भांति समृद्ध हुआ करते हैं। हे महाराज! वे पहलेकी आशासे संयुक्त होके क्रोधपूर्वक जिसकी ओर देखते हैं, उसे इस प्रकार भस्म किया करते हैं, जैसे अग्नि तृण काठ प्रभृतिको जला देती है। और जब वेही प्रसन्न होकर प्रशान्त वचनसे जिसे अभिनन्दित करते हैं, उसका राज्य चिकित्सकके समान होता है,उसके निकट कोई आपदा नहीं रहती, पुत्र, पौत्र, बन्धु, बान्धव, मन्त्री; पुर और प्रजा, सबको ही वह पुरुष शक्तिके अनुसार उत्तम रीतिसे पालन करता है; पृथ्वीपर सहस्र किरणवाले सूर्यके तेज समान ब्राह्मणोंका यह परम तेज दीख पडता है। हे भरतसत्तम युधिष्ठिर ! यदि कोई उत्तम जाति प्राप्त होनेकी इच्छा करे, तो उसे योग्य है, कि ब्राह्मणोंके निकट देनेका सङ्कल्प करके दान करे। (२०-२५)

ब्राह्मणोंको दान देनेसे अत्यन्त उत्तम अक्षय स्वर्ग प्राप्त करनेमें समर्थ होता है, इसलिये दानके समान महत् कार्य और कुछ भी नहीं है। इस लोकमें दान करनेसे देवता और पितर लोग जीवन धारण किया करते हैं, इसलिये

तस्माद्दानानि देयानि ब्राह्मणेभ्यो विजानता॥ २७॥
महद्धि भरतश्रेष्ठ ब्राह्मणस्तीर्थमुच्यते।
वेलायां न तु कस्यां चिद्गच्छेद्विप्रो ह्यपूजितः॥ २८॥ [४२७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे शृगालवानरसंवादे नवमोऽध्यायः॥ ९॥

युधिष्ठिर उवाच- मित्रसौहार्दयोगेन उपदेशं करोति यः।
जात्याऽधरस्य राजर्षे दोषस्तस्य भवेन्न वा ॥ १॥
एतदिच्छामि तत्त्वेन व्याख्यातुं वै पितामह।
सूक्ष्मा गतिर्हि धर्मस्य यत्र मुह्यन्ति मानवाः ॥ २॥
भीष्म उवाच- अत्र ते वर्तयिष्यामि शृणु राजन् यथाक्रमम्।
ऋषीणां वदतां पूर्वं श्रुतमासीद्यथा पुरा ॥ ३॥
उपदेशो न कर्तव्यो जातिहीनस्य कस्यचित्।
उपदेशे महान् दोष उपाध्यायस्य भाष्यते ॥ ४॥
निदर्शनमिदं राजन् शृणु मे भरतर्षभ।

ज्ञानवान् मनुष्य ब्राह्मणोंको देने योग्य वस्तु दान करे; क्यों कि ब्राह्मण ही दानका पात्र है, हे भरतश्रेष्ठ! ब्राह्मण ही महत् तीर्थरूपसे वर्णित होते हैं; इस लिये किसी समयमें ही ब्राह्मण अपूजित होकर गमन न करें। (२६-२८)

अनुशासनपर्वमें ९ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १० अध्याय।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे राजऋषि! उपकारकी इच्छा करके जो लोग उपकार करते हैं, वैसी मित्रता और उपकारकी इच्छा न करके जो पुरुष उपकर्त्ता बनते हैं, वैसी मित्रता-सम्बन्धके वशमें होकर यदि कोई पुरुष नीचजातिको उपदेश करे, तो उसे कुछ दोष होता है; वा नहीं? हे पितामह! जिससे मनुष्य लोग मोहित होते हैं, वह धर्मकी गति अत्यन्त सूक्ष्म है; इसलिये ऊपर कहे हुए विषयमें यथार्थ रूपसे मैं सुननेकी इच्छा करता हूं।(१-२)

भीष्म बोले, हे महाराज! पहले ऋषियोंने इस विषयको वर्णन किया था, मैंने जिस प्रकार सुना है, उसको तुम्हारे समीप कहता हूं, सुनो। किसी नीच जातिको उपदेश करना उचित नहीं है, क्यों कि ऐसा शास्त्रमें वर्णित है, कि वैसे मनुष्यको उपदेश करनेसे उपदेश करनेवालेको महान् दोष होता है। हे भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिर! पहले समयमें दुःखस्थ नीचके विषयमें उक्त

दुरुक्तवचने राजन् यथापूर्वं युधिष्ठिर ॥ ५ ॥
ब्रह्माश्रमपदे वृत्तं पार्श्वे हिमवतः शुभे।
तत्राश्रमपदं पुण्यं नानावृक्षगणायुतम् ॥ ६ ॥
नानागुल्मलताकीर्णं मृगद्विजनिषेवितम्।
सिद्धचारणसंयुक्तं रम्यं पुष्पितकाननम् ॥ ७ ॥
व्रतिभिर्बहुभिः कीर्णं तापसैरुपसेवितम्।
ब्राह्मणैश्च महाभागैः सूर्यज्वलनसन्निभैः ॥ ८ ॥
नियमव्रतसंपन्नैः समाकीर्णं तपस्विभिः।
दीक्षितैर्भरतश्रेष्ठ यताहारैः कृतात्माभिः ॥ ९ ॥
तपोऽध्ययनघोषैश्च नादितं भरतर्षभ।
वालखिल्यैश्च बहुभिर्यतिभिश्च निषेवितम् ॥ १० ॥
तत्र कश्चित्समुत्साहं कृत्वा शूद्रो दयान्वितः।
आगतो ह्याश्रमपदं पूजितश्च तपस्विभिः ॥ ११ ॥
तांस्तु दृष्ट्वा मुनिगणान्देवकल्पान्महौजसः।
विविधां वहतो दीक्षां संप्राहृष्यत भारत ॥ १२ ॥

वचनका यह प्रमाण है, मैं कहता हूं, तुम सुनो। हिमालयके पवित्र स्थानमें ब्रह्माश्रमके निकट एक पवित्र आश्रम है, वह अनेक प्रकारके वृक्ष, गुल्म और लतासे परिपूरित, हरिण और पक्षियोंसे सेवित, सिद्धचारणोंसे युक्त और फूले हुए वनसे शोभित रहनेसे अत्यन्त रमणीय था; वह स्थान बहुतेरे ब्रह्मचारी और वानप्रस्थ पुरुषोंसे परिपूर्ण था, सूर्य तथा अग्निके समान तेजस्वी ब्राह्मण लोग वहां सदा निवास करते हैं। (३-८)

हे भरतश्रेष्ठ ! वह आश्रम नियमव्रतसंयुक्त, दीक्षित, मिताहारी, शुद्धचित्तवाले तपस्वियोंसे परिपूरित था। हे भरतप्रवर ! वह तपस्या और अध्ययनके शब्दसे निनादित तथा बहुतेरे वालखिल्य वा संन्यासियोंसे निषेवित था। पहले समयमें प्राणियोंके अभय निबन्धनसे दयायुक्त होकर कोई शूद्र संन्यास धर्म अवलम्बन करके भली भांति उत्साहपूर्वक उस आश्रममें उपस्थित हुआ। शूद्र संन्यासीको आश्रममें आया हुआ देखके तपस्वियोंने उसका बहुत आदर किया। (९-११)

हे भारत ! वह उन मुनियोंको देवताओंके समान महातेजस्वी और अनेक प्रकारके नियमोंसे युक्त देखके

अथास्य बुद्धिरभवत्तपस्ये भरतर्षभ।
ततोऽब्रवीत्कुलपतिं पादौ संगृह्य भारत ॥ १३ ॥
भवत्प्रसादादिच्छामि धर्मं वक्तुं द्विजर्षभ।
तन्मां त्वं भगवन्वक्तुं प्रव्राजयितुमर्हसि ॥ १४ ॥
वर्णावरोऽहं भगवन् शूद्रो जात्याऽस्मि सत्तम।
शुश्रूषां कर्तुमिच्छामि प्रपन्नाय प्रसीद मे ॥ १५ ॥
कुलपतिरुवाच– न शक्यमिह शूद्रेण लिङ्गमाश्रित्य वर्तितुम्।
आस्यतां यदि ते बुद्धिः शुश्रूषानिरतो भव ॥ १६ ॥
शुश्रूषया पराँल्लोकानवाप्स्यसि न संशयः ॥ १७ ॥
भीष्म उवाच— एवमुक्तस्तु मुनिना स शूद्रो चिन्तयन्नृप।
कथमत्र मया कार्यं श्रद्धा धर्मपरा च मे ॥ १८ ॥
विज्ञातमेवं भवतु करिष्ये प्रियमात्मनः।
गत्वाऽऽश्रमपदाद् दूरमुटजं कृतवांस्तु सः ॥ १९ ॥
तत्र वेदीं च भूमिं च देवतायतनानि च।
निवेश्य भरतश्रेष्ठ नियमस्थोऽभवन्मुनिः ॥ २० ॥

अत्यन्त हर्षित हुआ। हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर उसके मनमें यह विचार हुआ कि "मैं तपस्या करूं"। हे भारत! तब वह कुलपतिके दोनों चरणोंको पकडके बोला, हे द्विजवर! मैं आपकी कृपासे धर्म जाननेकी अभिलाष करता हूं, हे भगवन्! इसलिये आप मुझसे धर्म कहने और सर्वसंग परित्याग करानेके उपयुक्त हैं। हे सत्तम! मैं नीचवर्ण शूद्र जाति हूं, इससे आपकी सेवा करनेकी इच्छा करता हूं, आप मुझ दीनके ऊपर प्रसन्न होइये। (१३-१५)

कुलपति बोले, संन्यासी चिन्ह धारण करके शूद्र इस स्थानमें निवास करनेमें समर्थ नहीं होता, यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो इस आश्रममें वास करो और सेवा करनेमें तत्पर रहो, सेवाके सहारे निःसन्देह उत्तम लोकोंको पाओगे। (१६-१७)

भीष्म बोले, हे महाराज! जब मुनिने उस शूद्रसे ऐसा कहा, तब उसने सोचा, कि "मैं इस स्थानमें क्या करूंगा? मुझे धर्मनिष्ठामें श्रद्धा है, मैं अपना प्रियकार्य करूंगा, इस ही प्रकार मालूम होवे" अनन्तर उसने उस आश्रमसे दूर जाके एक कुटी बनाई और वहां पूजाके निमित्त वेदी, शयन करनेका स्थान तथा देवताओंका स्थान

अभिषेकांश्च नियमान् देवतायतनेषु च ।
बलिं च कृत्वा हुत्वा च देवतां चाप्यपूजयत् ॥ २१ ॥
संकल्पनियमोपेतः फलाहारो जितेन्द्रियः ।
नित्यं संनिहिताभिस्तु ओषधीभिः फलैस्तथा ॥ २२॥
अतिथीन्पूजयामास यथावत्समुपागतान् ।
एवं हि सुमहान्कालो व्यत्यक्रामत तस्य वै ॥ २३ ॥
अथास्य मुनिरागच्छत्संगत्या वै तमाश्रमम् ।
संपूज्य स्वागतेनर्षिं विधिवत्समतोषयत् ॥ २४ ॥
अनुकूलाः कथाः कृत्वा यथागतमपृच्छत ।
ऋषिः परमतेजस्वी धर्मात्मा संशितव्रतः ॥ २५ ॥
एवं सुबहुशस्तस्य शूद्रस्य भरतर्षभ ।
सोऽगच्छदाश्रममृषिः शूद्रं द्रष्टुं नरर्षभ ॥ २६ ॥
अथ तं तापसं शूद्रः सोऽब्रवीद्भरतर्षभ ।
पितृकार्यं करिष्यामि तत्र मेऽनुग्रहं कुरु ॥ २७ ॥
बाढमित्येव तं विप्र उवाच भरतर्षभ ।
शुचिर्भूत्वा स शूद्रस्तु तस्यर्षेः पाद्यमानयत् ॥ २८ ॥

बनाया । हे भरतश्रेष्ठ ! उसने उस ही कुटीमें प्रवेश करके नियमनिष्ठ होकर मौनव्रत अवलम्बन किया । वह शूद्र संन्यासी त्रिकाल स्नान करके देवस्थान में नियमपूर्वक बलि और होम करके उनकी पूजा करता था, संकल्पित, नियमनिष्ठ और जितेन्द्रिय होके फल भोजन करता तथा औषधि और फलसे सदा निकटवर्त्ती अतिथियोंकी यथावत् पूजा करता था । इस ही प्रकार उसका बहुत समय व्यतीत हुआ । (१८-२३)

अनन्तर कोई मुनि उस शूद्र संन्यासीको देखनेके लिये उसके आश्रममें उपस्थित हुए । उसने उस ऋषिसे स्वागत प्रश्न करके भली भांति विधिपूर्वक पूजा करके उन्हें सन्तुष्ट किया । परम तेजस्वी संशितव्रती धर्मात्मा ऋषि उसके सङ्ग अनुकूल वचन कहके जिस निमित्त आये थे, वह उसके समीप वर्णन किया, हे भरतश्रेष्ठ नरनाथ ! इस ही प्रकार वह ऋषि उस शूद्र संन्यासीको देखनेके लिये बार बार उसके आश्रम पर आते थे । हे भरतश्रेष्ठ ! अनन्तर शूद्र उस तपस्वीसे बोला, मैं पितृकार्य करूंगा, आप उस विषयमें मेरे ऊपर कृपा करिये । (२४—२७)

अथ दर्भांश्च वन्याश्च ओषधीर्भरतर्षभ ।
पवित्रमासनं चैव बृसीं च समुपानयत् ॥ २९ ॥
अथ दक्षिणमावृत्य बृसीं चरमशैर्षिकीम् ।
कृतामन्यायतो दृष्ट्वा तं शूद्रमृषिरब्रवीत् ॥ ३० ॥
कुरुष्वैतां पूर्वशीर्षां भवांश्चोदङ्मुखः शुचिः ।
स च तत्कृतवान् शूद्रः सर्वं यदृषिरब्रवीत् ॥ ३१ ॥
यथोपदिष्टं मेधावी दर्भार्घादि यथातथम् ।
हव्यकव्यविधिं कृत्स्नमुक्तं तेन तपस्विना ॥ ३२ ॥
ऋषिणा पितृकार्ये च स च धर्मपथे स्थितः ।
पित्रकार्ये कृते चापि विसृष्टः स जगाम ह ॥ ३३ ॥
अथ दीर्घस्य कालस्य स तप्यन् शूद्रतापसः ।
वने पञ्चत्वमगमत्सुकृतेन च तेन वै ॥ ३४ ॥
अजायत महाराजवंशे स च महाद्युतिः ।
तथैव स ऋषिस्तात कालधर्ममवाप ह ॥ ३५ ॥
पुरोहितकुले विप्र आजातो भरतर्षभ ।

हे भारत ! ब्राह्मणने उसका वचन स्वीकार किया, तब शूद्र पवित्र होकर ऋषिके निमित्त पाद्य ले आया। हे भरतश्रेष्ठ ! अनन्तर दर्भ और वनकी औषधि, पवित्र आसन तथा व्रती पुरुषोंके लिये आसन लाया। अनन्तर दक्षिण दिशाको आवरण करके अन्यायपूर्वक व्रतीका आसन पश्चिमाग्र रूपसे रखा गया था, उसे देख कर ऋषिने उस शूद्रसे कहा, "इस आसनको पूर्वशीर्ष करो और तुम पवित्र तथा उदङ्मुख होकर बैठो।" जब ऋषिने ऐसा कहा तब शूद्रने वैसाही किया। धर्ममार्गमें गमन करनेवाला मेधावी शूद्र दर्भ, अर्घ, हव्यकव्यआदिसे जिस प्रकार पितर कार्य करना योग्य था, वह सब उस तपस्वी ऋषिके वचनके अनुसार पूरा किया, जब उसका पितृकार्य पूरा हुआ, तब ब्राह्मणने उसके समीपसे बिदा होकर प्रस्थान किया। (२८-३३)

अनन्तर वह शूद्र तपस्वी बहुत समयतक तपस्याचरण करके उनके बीच पञ्चत्वको प्राप्त हुआ। हे तात ! महातेजस्वी शूद्र उस पूर्वजन्मके पुण्यसञ्चयसे महाराजवंशमें उत्पन्न हुआ और वह विप्रर्षि उस ही समयमें मरके पुरोहित कुलमें उत्पन्न हुए। हे भरत-

एवं तौ तत्र संभूतावुभौ शूद्रमुनी तदा ॥ ३६ ॥
क्रमेण वर्धितौ चापि विद्यासु कुशलावुभौ।
अथर्ववेदे वेदे च बभूवर्षिः सुनिष्ठितः।
कल्पप्रयोगे चोत्पन्ने ज्योतिषे च परं गतः ॥ ३७ ॥
सांख्ये चैव परा प्रीतिस्तस्य चैवं व्यवर्धत।
पितर्युपरते चापि कृतशौचस्तु पार्थिवः ॥ ३८ ॥
अभिषिक्तः प्रकृतिभी राजपुत्रः स पार्थिवः।
अभिषिक्तेन स ऋषिरभिषिक्तः पुरोहितः ॥ ३९ ॥
स तं पुरोधाय सुखमवसद्भरतर्षभ।
राज्यं शशास धर्मेण प्रजाश्च परिपालयन् ॥ ४० ॥
पुण्याहवाचने नित्यं धर्मकार्येषु चासकृत्।
उत्स्मयन्प्राहसच्चापि दृष्ट्वा राजा पुरोहितम् ॥ ४१ ॥
एवं स बहुशो राजन्पुरोधसमुपाहसत।
लक्षयित्वा पुरोधास्तु बहुशस्तं नराधिपम् ॥ ४२ ॥
उत्स्मयन्तं च सततं दृष्ट्वाऽसौ मन्युमाविशत्।
अथ शून्ये पुरोधास्तु सह राज्ञा समागतः ॥ ४३ ॥
कथाभिरनुकूलाभी राजानं चाभ्यरोचयत्।

श्रेष्ठ! इस ही प्रकार वह शूद्र और मुनि उस स्थानमें उत्पन्न होके दोनों ही धीरे धीरे वर्द्धित होकर विद्याविषयमें दक्ष होगये। ऋषि अथर्ववेद तथा ऋक्, यजु और साम, इन तीनों वेदोंमें सुशिक्षित हुए, तथा सूत्रोक्त यज्ञ प्रयोग और ज्योतिषशास्त्रके भी पारदर्शी हुए, सांख्य शास्त्रमें भी उनकी परम प्रीति विशेषरूपसे वृद्धिको प्राप्त हुई। इधर पिताके परलोकमें गमन करनेपर राजपुत्र भी पवित्र चरित्रवाली प्रजासमूहसे अभिषिक्त होकर पृथ्वीपति हुआ। उसने अभिषिक्त होकर उस ऋषिको अपना पुरोहित बनाया। (३४-३९)

हे भरतश्रेष्ठ! राजा उसे पुरोहित बनाके परम सुखसे वास करने लगा, वह धर्मपूर्वक प्रजापालन करते हुए राज्य शासन करता था, वह राजा सदा धर्मकर्ममें पुण्याहवाचनके समय पुरोहितको देखकर उपहास करके हंसता था। पुरोहित बार बार उस राजाको उपहास करते हुए देखकर क्रुद्ध हुआ। अनन्तर पुरोहितने एक

ततोऽब्रवीन्नरेन्द्रं स पुरोधा भरतर्षभ　　॥ ४४ ॥
वरमिच्छाम्यहं त्वेकं त्वया दत्तं महाद्युते　　॥ ४५ ॥
राजोवाच— वराणां ते शतं दद्यां किं बतैकं द्विजोत्तम ।
स्नेहाच्च बहुमानाच्च नास्त्यदेयं हि मे तव　　॥ ४६ ॥
पुरोहित उवाच- एकं वै वरमिच्छामि यदि तुष्टोऽसि पार्थिव ।
प्रतिजानीहि तावत्त्वं सत्यं यद्वद नानृतम्　　॥ ४७ ॥
भीष्म उवाच- बाढमित्येव तं राजा प्रत्युवाच युधिष्ठिर ।
यदि ज्ञास्यामि वक्ष्यामि अजानन्न तु संवदे ॥ ४८ ॥
पुरोहित उवाच- पुण्याहवाचने नित्यं धर्मकृत्येषु चासकृत् ।
शान्तिहोमेषु च सदा किं त्वं हससि वीक्ष्य माम् ॥४९॥
सव्रीडं वै भवति हि मनो मे हसता त्वया ।
कामया शापितो राजन्नान्यथा वक्तुमर्हसि　　॥ ५० ॥
सुव्यक्तं कारणं ह्यत्र न ते हास्यमकारणम् ।
कौतूहलं मे सुभृशं तत्त्वेन कथयस्व मे　　॥ ५१ ॥

समय एकान्त स्थानमें राजाके सङ्ग मिलके अनुकूल वचनसे उसे प्रसन्न किया । हे भरतर्षभ ! फिर उस पुरोहितने राजासे कहा, हे महातेजस्वी ! मेरी यह इच्छा है, कि आप मुझे एक वरदान करिये । राजा बोला, हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं आपको एक सौ वर प्रदान करूं, अथवा एक ही वर क्यों ? प्रीति और बहुमान इनसे आपको देनेके लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है । (४०-४६)

पुरोहित बोला, हे महाराज ! यदि आप प्रसन्न हुए हों, तो मैं एक वर मांगता हूं, आप प्रतिज्ञा करके सत्य वचन कहना, मिथ्या न बोलना । (४७)

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर ! राजाने उससे कहा 'ऐसा ही होगा' परन्तु यदि मुझे मालूम होगा, तो मैं कहूंगा और यदि न मालूम होगा, तो न कह सकूंगा । (४८)

पुरोहित बोला, प्रतिदिन धर्मकार्यके उपलक्षमें पुण्याहवचनके समय और शान्ति तथा होमके समयमें आप मेरी ओर देखके किस निमित्त हंसते हैं । आपके हंसनेसे मेरा मन अत्यन्त लज्जित होता है । हे महाराज ! मैं इसका कारण जाननेके लिये अपना अङ्ग स्पर्श कराके आपसे शपथ कराता हूं, कि आप मिथ्या न कहें । आपकी हंसी अकारण न होती होगी, इसमें अवश्य ही कुछ स्पष्ट कारण है; इसलिये इस

राजोवाच— एवमुक्ते त्वया विप्र यदवाच्यं भवेदपि ।
अवश्यमेव वक्तव्यं शृणुष्वैकमना द्विज ॥ ५२ ॥
पूर्वदेहे यथा वृत्तं तन्निबोध द्विजोत्तम ।
जातिं स्मराम्यहं ब्रह्मन्नवधानेन मे शृणु ॥ ५३ ॥
शूद्रोऽहमभवं पूर्वं तापसो भृशसंयुतः ।
ऋषिरुग्रतपास्त्वं च तदाऽभूर्द्विजसत्तम ॥ ५४ ॥
प्रीयता हि तदा ब्रह्मन्ममानुग्रहबुद्धिना ।
पितृकार्ये त्वया पूर्वमुपदेशः कृतोऽनघ ॥ ५५ ॥
बृस्यां दर्भेषु हव्ये च कव्ये च मुनिसत्तम ।
एतेन कर्मदोषेण पुरोधास्त्वमजायथाः ॥ ५६ ॥
अहं राजा च विप्रेन्द्र पश्य कालस्य पर्ययम् ।
मत्कृतस्योपदेशस्य त्वयाऽवाप्तमिदं फलम् ॥ ५७ ॥
एतस्मात्कारणाद्ब्रह्मन्प्रहसे त्वां द्विजोत्तम ।
न त्वां परिभवन्ब्रह्मन्प्रहसामि गुरुर्भवान् ॥ ५८ ॥

विषयमें मुझे अत्यन्त ही कौतूहल हुआ है; आप यथार्थ रीतिसे इस विषयको मेरे समीप वर्णन करिये। (४९-५१)

राजा बोला, हे विप्र! आपने जब इस प्रकार कहा है, तब मेरे पक्षमें यह विषय न कहने योग्य होनेपर भी मैं अवश्य कहूंगा, आप चित्त एकाग्र करके सुनिये। हे द्विजश्रेष्ठ! पूर्वजन्ममें जो कुछ हुआ था, उसे कहता हूं, सुनो। हे द्विजसत्तम! पूर्वजन्ममें मैं अत्यन्त तपस्यायुक्त शूद्र था, उस समयमें आप भी उग्र तपस्यावाले ऋषि थे। हे पाप-रहित ब्रह्मन्! उस समय आपने प्रसन्न होकर पितृकार्यके निमित्त मुझे उपदेश दिया था। (५२-५५)

हे मुनिसत्तम! पहले मेरे उस पितृ-कार्यके विषयमें व्रतीके आसन, दर्भ और हव्य-कव्य आदि सब वस्तुओंका आपने जिस प्रकार मुझे उपदेश दिया था, मैंने उसहीके अनुसार सब कार्य किया था, इस ही कर्मदोषसे आप मेरे पुरोहित कुलमें उत्पन्न हुए हैं और मैं राजा हुआ हूं। हे विप्रवर! इससे कालकी उलटी गति देखिये, मैं शूद्र होके भी जातिस्मर हुआ हूं और आप मुनि होनेपर भी पुरोहित हुए हैं; आपने जो मुझे उपदेश दिया था, उसका यही फल प्राप्त हुआ है। (५६-५७)

हे द्विजश्रेष्ठ! इस ही कारणसे मैं आपको देखकर हंसता हूं, आपका

विपर्ययेण मे मन्युस्तेन संतप्यते मनः।
जातिं स्मराम्यहं तुभ्यमतस्त्वां प्रहसामि वै ॥ ५९ ॥
एवं तवोग्रं हि तप उपदेशेन नाशितम्।
पुरोहितत्वमुत्सृज्य यतस्व त्वं पुनर्भवे ॥ ६० ॥
इतस्त्वमधमामन्यां मा योनिं प्राप्स्यसे द्विज।
गृह्यतां द्रविणं विप्र पूतात्मा भव सत्तम ॥ ६१ ॥
भीष्म उवाच— ततो विसृष्टो राज्ञा तु विप्रो दानान्यनेकशः।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तं भूमिं ग्रामांश्च सर्वशः ॥६२॥
कृच्छ्राणि चीर्त्वा च ततो यथोक्तानि द्विजोत्तमैः।
तीर्थानि चापि गत्वा वै दानानि विविधानि च ॥ ६३ ॥
दत्त्वा गाश्चैव विप्रेभ्यः पूतात्माभवदात्मवान्।
तमेव चाश्रमं गत्वा चचार विपुलं तपः ॥ ६४ ॥
ततः सिद्धिं परां प्राप्तो ब्राह्मणो राजसत्तम।
संमतश्चाभवत्तेषामाश्रमे तन्निवासिनाम् ॥ ६५ ॥
एवं प्राप्तो महत्कृच्छ्रमृषिः सन्नृपसत्तम।

उपहास करनेके लिये मैं नहीं हंसता; क्यों कि आप मेरे गुरु हैं। इस उल्टी गतिको देखकर मुझे जो दीनता हुई है, उसहीसे मेरा अन्तःकरण दुःखित होता है, मैं जातिको स्मरण करता हूं, इस ही लिये आपको देखकर हंसता हूं। इस ही प्रकार उपदेश करनेसे आपकी दारुण तपस्या नष्ट हुई है, इस-लिये आप पुरोहितका कार्य परित्याग करके अगाडीके वास्ते प्रयत्न करिये। हे द्विज! जिससे कि आप इससे भी बढके दूसरी कोई अधम योनि न पावें। हे सत्तम! आप इस विपुल वित्तको ग्रहण करके पुण्यात्मा हो-इये। (५८-६१)

भीष्म बोले, अनन्तर वह विप्र राजाके समीपसे बिदा मांगके ब्राह्मणोंको बहुतसा धन, भूमि और ग्राम दान किया। ब्राह्मणोंके कहे हुए कृच्छ्र व्रतका अनुष्ठान करके तीर्थोंमें गमन करके ब्राह्मणोंको गोदान तथा अनेक भांतिकी वस्तु दान देकर पवित्र चित्त होकर आत्मवान हुआ और उस ही आश्रममें जाकर बृहत् तपस्याचरण करने लगा। हे राजसत्तम! अनन्तर उस ब्राह्मणने उन आश्रमवासी ऋषि-योंमें सम्मत होकर परम सिद्धि पाई। हे नृपसत्तम! इस ही प्रकार वह ऋषि

ब्राह्मणेन न वक्तव्यं तस्माद्वर्णावरे जने ॥ ६६ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्त्रयो वर्णा द्विजातयः ।
एतेषु कथयन्राजन्ब्राह्मणो न प्रदुष्यति ॥ ६७ ॥
तस्मात्सद्भिर्न वक्तव्यं कस्यचित्किंचिदग्रतः ।
सूक्ष्मा गतिर्हि धर्मस्य दुर्ज्ञेया ह्यकृतात्मभिः ॥ ६८ ॥
तस्मान्मौनेन मुनयो दीक्षां कुर्वन्ति चादृताः ।
दुरुक्तस्य भयाद्राजन्नाभाषन्ते च किंचन ॥ ६९ ॥
धार्मिका गुणसंपन्नाः सत्यार्जवसमन्विताः ।
दुरुक्तवाचाभिहितैः प्राप्नुवन्तीह दुष्कृतम् ॥ ७० ॥
उपदेशो न कर्तव्यः कदाचिदपि कस्यचित् ।
उपदेशाद्धि तत्पापं ब्राह्मणः समवाप्नुयात् ॥ ७१ ॥
विमृश्य तस्मात्प्राज्ञेन वक्तव्यं धर्ममिच्छता ।
सत्यानृतेन हि कृत उपदेशो हिनस्ति हि ॥ ७२ ॥
वक्तव्यमिह पृष्टेन विनिश्चित्य विनिश्चयम् ।
स चोपदेशः कर्तव्यो येन धर्ममवाप्नुयात् ॥ ७३ ॥

परम कृच्छ्रको प्राप्त हुआ था, इसलिये ब्राह्मणोंको उचित है, कि किसी नीच वर्णके पुरुषको उपदेश न दें। (५२-६६)

हे महाराज! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, ये तीनों वर्ण द्विजाति हैं, इन्हें उपदेश करनेसे ब्राह्मण कदापि दूषित नहीं होता है; परन्तु किसीके निकट कुछ भी न कहना साधुओंका मुख्य कर्त्तव्य कार्य है, क्यों कि धर्मकी गति अत्यन्त सूक्ष्म है; इसहीसे वह अकृतात्म पुरुषोंको नहीं मालूम होती, इसही कारणसे मुनि लोग आदरयुक्त होके भी मौनव्रत अवलम्बन करते हैं; यदि कुछ वचन कहनेसे दोषी होना पडे, इस ही भयसे वे लोग कुछ भी नहीं कहते। धार्मिक, गुण तथा सत्य और सरलतायुक्त मनुष्य भी न कहने योग्य वचन कहनेसे पापभागी होते हैं। (६७-७०)

इसलिये कदापि किसीके विषयमें उपदेश करना उचित नहीं है, ब्राह्मण लोग जिसे उपदेश करते हैं, उसके पापके फलभागी होते हैं, इसलिये धर्मकी इच्छा करनेवाले बुद्धिमान् पुरुषको उचित है, कि विचारके वचन कहे। वाणिज्य और धनके लाभसे जो उपदेश किया जाता है, वह उपदेश करनेवालेको अवश्य ही नष्ट करता है। पूछने पर विशेष निश्चय करके बोलना

एतत्ते सर्वमाख्यातमुपदेशकृते मया।
महान् क्लेशो हि भवति तस्मान्नोपदिशेदिह ॥ ७४ ॥ [५०१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे शूद्रमुनिसंवादे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

युधिष्ठिर उवाच– कीदृशे पुरुषे तात स्त्रीषु वा भरतर्षभ।
श्रीः पद्मा वसते नित्यं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥
भीष्म उवाच— अत्र ते वर्णयिष्यामि यथावृत्तं यथाश्रुतम्।
रुक्मिणी देवकीपुत्रसन्निधौ पर्यपृच्छत ॥ २ ॥
नारायणस्याङ्कगतां ज्वलन्तीं दृष्ट्वा श्रियं पद्मसमानवर्णाम्।
कौतूहलाद्विस्मितचारुनेत्रा पप्रच्छ माता मकरध्वजस्य ॥ ३ ॥
कानीह भूतान्युपसेवसे त्वं संतिष्ठसे कानि च सेवसे त्वम्।
तानि त्रिलोकेश्वरभूतकान्ते तत्त्वेन मे ब्रूहि महर्षिकल्पे ॥ ४ ॥
एवं तदा श्रीरभिभाष्यमाणा देव्या समक्षं गरुडध्वजस्य।
उवाच वाक्यं मधुराभिधानं मनोहरं चन्द्रमुखी प्रसन्ना ॥ ५ ॥

उचित है। जिससे धर्म प्राप्त हो, वैसा ही उपदेश करना चाहिये! यह मैंने तुम्हारे प्रश्नके अनुसार सब वृत्तान्त कहा और उपदेश भी किया, अधम पुरुषको उपदेश देनेसे अत्यन्त क्लेश प्राप्त होता है, इसलिये इस लोकमें वैसे पुरुषोंको उपदेश करना उचित नहीं है।(७१-७४)

अनुशासनपर्वमें १० अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ११ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! कैसे पुरुष अथवा कैसी स्त्रीमें कमला लक्ष्मी सदा निवास करती है? आप मुझसे यही कहिये। (१)

भीष्म बोले, इस विषयमें जैसी घटना हुई थी और मैंने जिस प्रकार सुना है, तथा श्रीकृष्णके निकट रुक्मिणीने लक्ष्मीसे जो प्रश्न किया था, उसे तुम्हारे समीप कहता हूं, सुनो। प्रद्युम्न की माता रुक्मिणी नारायणके अङ्कवासिनी कमलवर्ण, प्रकाशमान लक्ष्मी को उत्तम प्रकार नेत्रसे देखकर कौतूहलवशसे प्रश्न किया। हे महर्षिकल्पे! त्रिलोकेश्वर भूत कान्ते! इस लोकमें तुम कैसे मनुष्यके निकट हाथी घोडेके रूप से तथा धीरज, सुन्दरताई वा पराक्रम आदि रूपसे निवास करती हो और कैसे लोगोंके समीप नहीं जाती? इस विषयको मेरे समीप यथार्थ रीतिसे वर्णन करो। जब गरुडध्वजके सम्मुखमें

श्रीरुवाच- वसामि नित्यं सुभगे प्रगल्भे दक्षे नरे कर्मणि वर्तमाने।
अक्रोधने देवपरे कृतज्ञे जितेन्द्रिये नित्यमुदीर्णसत्त्वे ॥ ६ ॥
नाकर्मशीले पुरुषे वसामि न नास्तिके सांकरिके कृतघ्ने।
न भिन्नवृत्ते न नृशंसवर्णे न चापि चौरे न गुरुष्वसूये ॥ ७ ॥
ये चाल्पतेजोबलसत्त्वमानाः क्लिश्यन्ति कुप्यन्ति च यत्र तत्र।
न चैव तिष्ठामि तथाविधेषु नरेषु संगुप्तमनोरथेषु ॥ ८ ॥
यश्चात्मनि प्रार्थयते न किंचिद्यश्च स्वभावोपहतान्तरात्मा।
तेष्वल्पसंतोषपरेषु नित्यं नरेषु नाहं निवसामि सम्यक् ॥ ९ ॥
स्वधर्मशीलेषु च धर्मवित्सु वृद्धोपसेवानिरते च दान्ते।
कृतात्मनि क्षान्तिपरे समर्थे क्षान्तासु दान्तासु यथाऽबलासु ॥ १० ॥
सत्यस्वभावार्जवसंयुतासु वसामि देवद्विजपूजिकासु।
प्रकीर्णभाण्डामनपेक्ष्य कारिणीं सदा च भर्तुः प्रतिकूलवादिनीम् ॥११॥

रुक्मिणी देवीने लक्ष्मीसे ऐसा प्रश्न किया, तब वह चन्द्रमुखी प्रसन्न होकर उत्तम और मधुरवचन कहने लगी। (२—५)

लक्ष्मी बोली, हे सुभगे! मैं प्रतिभावान, निरालसी, कार्यदक्ष, क्रोधरहित, देवताओंकी आराधनामें निष्ठावान, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय और उद्योगी, पराक्रमी पुरुषके निकट सदा निवास किया करती हूं, और जो पुरुष कार्य करनेमें समर्थ नहीं है, जो नास्तिक, वर्णसङ्कर करनेवाले, कृतघ्न, भिन्न चरित्री निष्ठुर वचन बोलनेवाले, चोर और गुरुजनोंकी असूया करनेवाले हैं; उनके निकट कदापि निवास नहीं करती। (६-७)

और जो लोग अल्पपराक्रमी, अल्प बलवाले, अल्प बुद्धि तथा अल्प मानयुक्त हैं, जो किसी विशिष्ट पुरुषके निकट क्लेश पाते और क्रोध करते हैं, वैसे गुप्त मनोरथी अर्थात् जो एक विषयकी चिन्ता करते हुए दूसरे विषयमें जा पडते हैं, वैसे मनुष्योंके समीपमें कभी स्थित नहीं होती। इसके अतिरिक्त जो पुरुष अपनी किसी प्रकारकी उन्नतिकी इच्छा नहीं करते, जिनकी अन्तरात्मा स्वभावहीसे उपहत हुई है, उन अल्प सन्तोषवाले मनुष्योंके निकट मैं पूरीरीतिसे निवास नहीं करती। स्वधर्ममें निष्ठावान्, धर्मज्ञ, वृद्धोंकी सेवामें रत रहनेवाली, दान्त, कृतात्मा, क्षमाशील, सत्यस्वभाव, सरल, देवता ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाली स्त्रियोंमें मैं निवास करती हूं। (८-१०)

जिसके गृहकी सामग्रियें इधर उधर

परस्य वेश्माभिरतामलज्जामेवंविधां तां परिवर्जयामि ।
पापामचोक्षामवलेहिनीं च व्यपेतधैर्यां कलहप्रियां च ॥ १२ ॥
निद्राभिभूतां सततं शयानामेवंविधां तां परिवर्जयामि ।
सत्यासु नित्यं प्रियदर्शनासु सौभाग्ययुक्तासु गुणान्वितासु ॥१३॥
वसामि नारीषु पतिव्रतासु कल्याणशीलासु विभूषितासु ।
यानेषु कन्यासु विभूषणेषु यज्ञेषु मेघेषु च वृष्टिमत्सु ॥ १४ ॥
वसामि फुल्लासु च पद्मिनीषु नक्षत्रवीथीषु च शारदीषु ।
गजेषु गोष्ठेषु तथाऽऽसनेषु सरःसु फुल्लोत्पलपङ्कजेषु ॥ १५ ॥
नदीषु हंसस्वननादितासु क्रौञ्चावघुष्टस्वरशोभितासु ।
विकीर्णकूलद्रुमराजितासु तपस्विसिद्धद्विजसेवितासु ॥ १६ ॥
वसामि नित्यं सुबहूदकासु सिंहैर्गजैश्चाकुलितोदकासु ।
मत्ते गजे गोवृषभे नरेन्द्रे सिंहासने सत्पुरुषेषु नित्यम् ॥ १७ ॥
यस्मिन् जनो हव्यभुजं जुहोति गोब्राह्मणं चार्चति देवताश्च ।
काले च पुष्पैर्बलयः क्रियन्ते तस्मिन् गृहे नित्यमुपैमि वासम् ॥१८॥

बिखरी रहती हैं जो स्त्री बिना विचारे कार्य करती है, सदा पतिके विषयमें प्रतिकूलवादिनी हुआ करती है, जो पराये गृहमें वास करनेमें अनुरक्त और दयारहित, अपवित्र, अवलेहिनी अर्थात् सदा क्रुद्ध, भीरु और कलहप्रिय तथा लज्जाहीन होती है, मैं वैसी स्त्रीको परित्याग किया करती हूं। और पतिव्रता, कल्याणशीला, विभूषित, सत्यवादिनी, प्रियदर्शना, सौभाग्ययुक्त और गुणमयी स्त्रीके निकट मैं सदा निवास करती हूं। निद्राभिभूत, सदा शयन करनेवाली स्त्रीको मैं परित्याग किया करती हूं। सब प्रकारकी सवारियें, कन्यासमूह, विभूषण, यज्ञस्थान, वृष्टियुक्त मेघमण्डल, फूले हुए कमलदलों, शरत्कालके नक्षत्रों, गजयूथ, गोसमूह, आसन और प्रकाशमान उत्पल और कमलयुक्त तालावों, अधिक कहांतक कहूं, समस्त रमणीय वस्तुओंमें ही मैं निवास किया करती हूं। (११—१५)

हंस और सारस आदिके शब्दसे निनादित, वृक्षोंसे शोभित, तपस्वी, सिद्ध और ब्राह्मणोंसे निषेवित, अधिक जलयुक्त सिंह तथा हाथियोंसे परिपूरित नादियों में मैं सदा निवास करती हूं। मतवाले हाथियों, गऊ, वृषभ, राजसिंहासन, सत्पुरुषों और जिस स्थानमें मनुष्य अग्निमें होम करते हैं; अथवा गऊ ब्राह्मण वा देवताओंकी पुष्पोंसे पूजा

स्वाध्यायनित्येषु सदा द्विजेषु क्षत्रे च धर्माभिरते सदैव ।
वैश्ये च कृष्याभिरते वसामि शूद्रे च शुश्रूषणनित्ययुक्ते ॥ १९ ॥
नारायणे त्वेकमना वसामि सर्वेण भावेन शरीरभूता ।
तस्मिन् हि धर्मः सुमहान्निविष्टो ब्रह्मण्यता चात्र तथा प्रियत्वम् ॥२०॥
नाहं शरीरेण वसामि देवि नैवं मया शक्यमिहाभिधातुम् ।
भावेन यस्मिन्निवसामि पुंसि स वर्धते धर्मयशोऽर्थकामैः ॥२१॥ [५२२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे श्रीरुक्मिणीसंवादे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

युधिष्ठिर उवाच— स्त्रीपुंसयोः संप्रयोगे स्पर्शः कस्याधिको भवेत् ।
एतस्मिन् संशये राजन् यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥
भीष्म उवाच— अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
भङ्गास्वनेन शक्रस्य यथा वैरमभूत्पुरा ॥ २ ॥
पुरा भङ्गास्वनो नाम राजर्षिरतिधार्मिकः ।
अपुत्रः पुरुषव्याघ्र पुत्रार्थं यज्ञमाहरत ॥ ३ ॥

करते हैं, उस स्थानमें मैं सदा निवास करती हूं । (१६—१८)

सदा स्वाध्यायमें रत रहनेवाले ब्राह्मणों, सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाले क्षत्रिय, कृषिकार्यमें अनुरक्त वैश्यों और प्रतिदिन सेवाकार्यमें रत शूद्रोंके निकट मैं निवास किया करती हूं । मैं नारायणके निकट एकाग्रचित्त और मूर्त्तिमती होकर आदरके सहित सदा निवास किया करती हूं, उन्हींमें उत्तम महान् धर्म, ब्रह्मण्यता और प्रियत्व सदा प्रतिष्ठित है । हे देवि ! मैं नारायणके अतिरिक्त दूसरे स्थानमें मूर्त्तिमयी होकर निवास नहीं करती, इस समय यह नहीं कह सकती, कि मैं जिस पुरुषके निकट आदरके सहित निवास करती हूं वह धर्म, अर्थ और कामसे वर्धित होता है । (१९-२१)

अनुशासनपर्वमें ११ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें १२ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे राजन् ! स्त्रीपुरुषोंके परस्पर संयोगमें वैषयिक सुख किसे अधिक होता है, इस संशयके विषयको आप यथावत् कहनेमें समर्थ हैं । (१)

भीष्म बोले, पहले समयमें भङ्गास्वन राजाके सहित इन्द्रकी जो शत्रुता हुई थी, प्राचीन लोग इस विषयमें उस ही पुराने इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं । हे पुरुषप्रवर ! पहले समयमें भङ्गा-

अग्निष्टुतं स राजर्षिरिन्द्रद्विष्टं महाबलः ।
प्रायश्चित्तेषु मर्त्यानां पुत्रकामेषु चेष्यते ॥ ४ ॥
इन्द्रो ज्ञात्वा तु तं यज्ञं महाभागः सुरेश्वरः ।
अन्तरं तस्य राजर्षेरन्विच्छन्नियतात्मनः ॥ ५ ॥
न चैवास्यान्तरं राजन् स ददर्श महात्मनः ।
कस्यचित्त्वथ कालस्य मृगयां गतवान्नृपः ॥ ६ ॥
इदमन्तरमित्येव शक्रो नृपममोहयत् ।
एकाश्वेन च राजर्षिर्भ्रान्त इन्द्रेण मोहितः ॥ ७ ॥
न दिशोऽविन्दत नृपः क्षुत्पिपासार्दितस्तदा ।
इतश्चेतश्च वै राजन् श्रमतृष्णान्वितो नृपः ॥ ८ ॥
सरोऽपश्यत्सुरुचिरं पूर्णं परमवारिणा ।
सोऽवगाह्य सरस्तात पाययामास वाजिनम् ॥ ९ ॥
अथ पीतोदकं सोऽश्वं वृक्षे बद्ध्वा नृपोत्तमः ।
अवगाह्य ततः स्नातस्तत्र स्त्रीत्वमवाप्तवान् ॥ १० ॥

स्वन नामक अत्यन्त धार्मिक एक राजर्षि था वह पुत्ररहित था, इसलिये पुत्रके निमित्त यज्ञ किया था। उस महाबलवान् राजऋषिने इन्द्रके द्वेषी अग्निष्टुत यज्ञ करना आरम्भ किया अर्थात् इस यज्ञमें इन्द्रकी प्रधानता न रहनेसे उनका इस यज्ञमे द्वेष था। त्रिगुणित अग्निष्टोम यज्ञमें अग्निदेव ही केवल स्तुत होकर पुत्र प्रदान करते हैं, इस ही निमित्त इसका नाम वेदमें अग्निष्टुत कहके प्रसिद्ध है। मनुष्योंको पुत्रकी कामनासे प्रायश्चित करनेके समय अग्निष्टुत ही इष्ट हुआ करता है। (२-४)

हे राजन्! महाभाग सुरेश्वर इन्द्र उस यज्ञको होता हुआ जानके सावधान चित्तसे उस राजर्षिका छिद्र अन्वेषण करनेमें प्रवृत्त हुए; परन्तु किसी प्रकार भी उस महात्माका कोई छिद्र न देख सके। कुछ समयके अनन्तर राजा मृगया खेलने गया, तब इन्द्रने वही उत्तम समय समझके उसे मोहित करना आरम्भ किया। राजा इन्द्रके द्वारा मोहित होकर अकेले ही घोडेके सहारे भ्रमण करते हुए भूख प्याससे पीडित होकर दिशाको न जान सका। महाराजने परिश्रमसे प्यासा होकर इधर उधर भ्रमण करके निर्मल जलसे पूरित एक मनोहर तालाव देखा। उसने उस ही तालावपर जाके पहले घोडेको जल

आत्मानं स्त्रीकृतं दृष्ट्वा व्रीडितो नृपसत्तमः ।
चिन्तानुगतसर्वात्मा व्याकुलेन्द्रियचेतनः ॥ ११ ॥
आरोहिष्ये कथं त्वश्वं कथं यास्यामि वै पुरम् ।
इष्टेनाग्निष्टुता चापि पुत्राणां शतमौरसम् ॥ १२ ॥
जातं महाबलानां मे तान्प्रवक्ष्यामि किं त्वहम् ।
दारेषु चात्मकीयेषु पौरजानपदेषु च ॥ १३ ॥
मृदुत्वं च तनुत्वं च विक्लवत्वं तथैव च ।
स्त्रीगुणा ऋषिभिः प्रोक्ता धर्मतत्त्वार्थदर्शिभिः ॥१४॥
व्यायामे कर्कशत्वं च वीर्यं च पुरुषे गुणाः ।
पौरुषं विप्रनष्टं वै स्त्रीत्वं केनापि मेऽभवत् ॥ १५ ॥
स्त्रीभावात्पुनरश्वं तं कथमारोढुमुत्सहे ।
महता त्वथ यत्नेन आरुह्याश्वं नराधिपः ॥ १६ ॥
पुनरायात्पुरं तात स्त्रीकृतो नृपसत्तमः ।
पुत्रा दाराश्च भृत्याश्च पौरजानपदाश्च ते ॥ १७ ॥
किं त्विदं त्विति विज्ञाय विस्मयं परमं गताः ।

पिलाया और पानी पिलाके घोडेको एक वृक्षमें बांधकर जलमें स्वयं स्नान किया, स्नान करते ही स्त्री होगया। (५–१०)

राजा अपनेको स्त्रीरूपधारी देखके राजाकी इन्द्रियें और मन उस समय अत्यन्त व्याकुल हुआ। चिन्ता करने लगा, "मैं किस प्रकार घोडेपर चढूं, कैसे नगरमें जाऊं, अग्निष्टुत यज्ञके सहारे मेरे महाबलवान एक सौ औरस पुत्र उत्पन्न हुए हैं, मैं उनसे क्या कहूंगा और स्त्रियों, पुरवासी तथा जनपदवासियोंसे ही क्या कहूंगा?" उस समय वह इन्हीं सब विषयोंको विचारने लगा। "धर्मतत्वार्थदर्शी ऋषि लोग कहते हैं, कि मृदुत्व, तनुत्व तथा विक्लवत्व, ये तीन स्त्रियोंके गुण हैं और व्यायाम, कठोरताई और वीर्य ये तीन पुरुषोंके गुण हैं; इस समय मेरा सब पौरुष विनष्ट हुआ, न जाने किस कारणसे स्त्रीत्व उत्पन्न हुआ? स्त्रीत्वके कारण अब फिर घोडेपर चढनेका मैं किस प्रकार उत्साह करूं।" यह सब विचारके राजा अत्यन्त यत्नपूर्वक घोडेपर चढके फिर स्त्रीरूपसे नगरमें आया। उसके पुत्र, स्त्रियें, पुरवासी तथा जनपद वासियोंने यह क्या हुआ? ऐसा ही सोचकर विस्मययुक्त हुए। (११-१८)

अथोवाच स राजर्षिः स्त्रीभूतो वदतां वरः ॥ १८ ॥
मृगयामस्मि निर्यातो बलैः परिवृतो दृढम् ।
उद्भ्रान्तः प्राविशं घोरामटवीं दैवचोदितः ॥ १९ ॥
अटव्यां च सुघोरायां तृष्णार्तो नष्टचेतनः ।
सरः सुरुचिरप्रख्यमपश्यं पक्षिभिर्वृतम् ॥ २० ॥
तत्रावगाढः स्त्रीभूतो दैवेनाहं कृतः पुरा ।
नामगोत्राणि चाभाष्य दाराणां मन्त्रिणां तथा ॥२१॥
आह पुत्रांस्ततः सोऽथ स्त्रीभूतः पार्थिवोत्तमः ।
संप्रीत्या भुज्यतां राज्यं वनं यास्यामि पुत्रकाः ॥२२॥
एवमुक्त्वा पुत्रशतं वनमेव जगाम ह ।
गत्वा चैवाश्रमं सा तु तापसं प्रत्यपद्यत ॥ २३ ॥
तापसेनास्य पुत्राणामाश्रमेष्वभवच्छतम् ।
अथ साऽऽदाय तान्सर्वान् पूर्वपुत्रानभाषत ॥ २४ ॥
पुरुषत्वे सुता यूयं स्त्रीत्वे चेमे शतं सुताः ।
एकत्र भुज्यतां राज्यं भ्रातृभावेन पुत्रकाः ॥ २५ ॥

अनन्तर उस स्त्रीरूपी वक्तृप्रवर राजर्षि ने कहा, मैं सेनाके सहित मृगयाके लिये गया था, दैववशसे मार्ग भूलकर एक घोर वनमें प्रविष्ट हुआ, उस भयङ्कर वनके बीच मैं प्याससे आर्त्त हुआ था, अनन्तर वहांपर पक्षियोंसे परिपूरित एक मनोहर तालाव दीख पडा; उसमें स्नान करते ही दैववशसे मेरा ऐसा रूप होगया है। वह राजा पत्नी और मन्त्रियोंको अपना नाम गोत्र सुनाकर अन्तमें कुमार बालकोंसे बोला हे पुत्र-गण! मैंने राजा होके स्त्रीत्व लाभ किया है, इसलिये वनमें गमन करता हूं, अब तुम लोग परस्पर प्रीतिपूर्वक राज्यभोग करो। (१८—२२)

उसने अपने एक सौ पुत्रोंसे ऐसा कहके वनमें गमन किया; वनमें जाके वह एक तपस्वीके आश्रममें पहुंचके उसके समीप निवास करने लगा। उस आश्रममें तपस्वीके द्वारा उसके गर्भसे एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए। अनन्तर उसने उन पुत्रोंको सङ्ग लेके पहलेके पुत्रोंके निकट आके कहा। तुम लोग मेरी पुरुष अवस्थाके पुत्र हो और मेरे स्त्रीत्व प्राप्त होनेपर ये सौ पुत्र उत्पन्न हुए हैं। हे पुत्रगण! इसलिये तुम लोग इनके सङ्ग मिलके राज्य भोग करो। (२३-२५)

सहिता भ्रातरस्तेऽथ राज्यं बुभुजिरे तदा।
तान् दृष्ट्वा भ्रातृभावेन भुञ्जानान् राज्यमुत्तमम् ॥ २६ ॥
चिन्तयामास देवेन्द्रो मन्युनाथ परिप्लुतः।
उपकारोऽस्य राजर्षेः कृतो नापकृतं मया ॥ २७ ॥
ततो ब्राह्मणरूपेण देवराजः शतक्रतुः।
भेदयामास तान् गत्वा नगरं वै नृपात्मजान् ॥ २८ ॥
भ्रातॄणां नास्ति सौभ्रात्रं येऽप्येकस्य पितुः सुताः।
राज्यहेतोर्विवदिताः कश्यपस्य सुरासुराः ॥ २९ ॥
यूयं भङ्गास्वनापत्यास्तापसस्येतरे सुताः।
कश्यपस्य सुराश्चैव असुराश्च सुतास्तथा ॥ ३० ॥
युष्माकं पैतृकं राज्यं भुज्यते तापसात्मजैः।
इन्द्रेण भेदितास्ते तु युद्धेऽन्योन्यमपातयन् ॥ ३१ ॥
तच्छ्रुत्वा तापसी चापि संतप्ता प्ररुरोद ह।
ब्राह्मणच्छद्मनाभ्येत्य तामिन्द्रोऽथान्वपृच्छत ॥ ३२ ॥
केन दुःखेन संतप्ता रोदिषि त्वं वरानने।

अनन्तर वे सब भाई मिलके उस समय राज्य भोग करने लगे। देवराजने उन लोगोंको भ्रातृभावसे उत्तम प्रकार राज्यभोग करते हुए देखकर क्रुद्ध होके मनमें सोचा, कि मैंने तो इस राजऋषिका उपकार ही किया है, इसका अपकार तो कुछ भी न हुआ। अनन्तर शतक्रतु इन्द्र ब्राह्मणका रूप धरके उस नगरमें जाकर राजपुत्रोंको भेदित करनेमें प्रवृत्त हुए। उन्होंने कहा, जो लोग एक पिताके पुत्र हैं, वैसे भाइयोंमें भी सौभ्रात्र नहीं रहता, कश्यपके पुत्र देवता और असुर लोग परस्पर विवाद किया करते हैं। (२६-२९)

तुम लोग भङ्गास्वन राजाके पुत्र हो, और ये लोग तपस्वीके पुत्र हैं; जब कि देवता और असुर दोनों कश्यपके पुत्र होनेपर भी राज्यके निमित्त विवाद किया करते हैं, तब तपस्वीके पुत्र जो तुम्हारे पैतृक राज्यको भोग करते हैं, यह अत्यन्त ही आश्चर्य है। राजपुत्र लोग इन्द्रके द्वारा भेदित होनेपर युद्धमें परस्पर एक दूसरेका नाश करते हुए सब नष्ट होगये। तपस्विनी यह वृत्तान्त सुनकर अत्यन्त दुःखित होके रोदन करने लगी। इन्द्र ब्राह्मणवेष धरके उस तापसीके निकट आकर बोले, हे

ब्राह्मणं तं ततो दृष्ट्वा सा स्त्री करुणमब्रवीत् ॥ ३३ ॥
पुत्राणां द्वे शते ब्रह्मन् कालेन विनिपातिते ।
अहं राजाऽभवं विप्र तत्र पूर्वं शतं मम ॥ ३४ ॥
समुत्पन्नं स्वरूपाणां पुत्राणां ब्राह्मणोत्तम ।
कदाचिन्मृगयां यात उद्भ्रान्तो गहने वने ॥ ३५ ॥
अवगाढश्च सरसि स्त्रीभूतो ब्राह्मणोत्तम ।
पुत्रान् राज्ये प्रतिष्ठाप्य वनमस्मि ततो गतः ॥ ३६ ॥
स्त्रियाश्च मे पुत्रशतं तापसेन महात्मना ।
आश्रमे जनितं ब्रह्मन्नीतं तन्नगरं मया ॥ ३७ ॥
तेषां च वैरमुत्पन्नं कालयोगेन वै द्विज ।
एतच्छोचाम्यहं ब्रह्मन् दैवेन समभिप्लुता ॥ ३८ ॥
इन्द्रस्तां दुःखितां दृष्ट्वा अब्रवीत्परुषं वचः ।
पुरा सुदुःसहं भद्रे मम दुःखं त्वया कृतम् ॥ ३९ ॥
इन्द्रद्विष्टेन यजता मामनाहूय धिष्ठितम् ।
इन्द्रोऽहमस्मि दुर्बुद्धे वैरं ते पातितं मया ॥ ४० ॥

वरानने ! तुम किस दुःखसे सन्तापित होकर रोदन कर रही हो ? उस अबलाने उस समय ब्राह्मणको देखकर महाकरुणायुक्त स्वरसे कहा, हे ब्रह्मन् ! मेरे दो सौ पुत्र कालवशसे नष्ट होगये हैं। (३०-३४)

हे विप्रवर ! पहले मैं राजा था, उस समय मेरे समान रूपवान एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए थे, अनन्तर किसी समय मैं मृगयाके निमित्त गृहसे निकलके घने वनमें मार्ग भूल गया, हे द्विजोत्तम ! उस वनके बीच एक तालावमें स्नान करनेसे मैं स्त्री होगया। अनन्तर पुत्रोंको राज्य देकर जब मैं स्त्री होकर वनके बीच इस आश्रममें आई, तब महानुभाव तपस्वीके द्वारा मेरे एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए, मैं उन्हें नगरमें लेगई थी। हे द्विजवर ! कालक्रमसे मेरे उन सब पुत्रोंमें वैर उत्पन्न हुआ; मैं दैवके द्वारा पुत्ररहित होकर इस समय शोक कर रही हूं। (३४-३८)

इन्द्रने उसे दुःखित देखकर कठोर वचन कहा, हे भद्रे ! पहले मेरे अधिष्ठित रहनेपर भी मुझे आह्वान न करके इन्द्रद्विष्ट अग्निष्टोम यज्ञ करके तुमने मेरे चित्तमें अत्यन्त दुःख उत्पन्न किया था। हे दुर्बुद्धे ! मैं वही इन्द्र हूं मैंही तुम्हारे विषयमें वैरका पल्टा ले रहा

इन्द्रं दृष्ट्वा तु राजर्षिः पादयोः शिरसा गतः।
प्रसीद त्रिदशश्रेष्ठ पुत्रकामेन स क्रतुः ॥ ४१ ॥
इष्टस्त्रिदशशार्दूल तत्र मे क्षन्तुमर्हसि।
प्रणिपातेन तस्येन्द्रः परितुष्टो वरं ददौ ॥ ४२ ॥
पुत्रास्ते कतमे राजन् जीवन्त्वेतत्प्रचक्ष्व मे।
स्त्रीभूतस्य हि ये जाताः पुरुषस्याथ येऽभवन् ॥ ४३ ॥
तापसी तु ततः शक्रमुवाच प्रयताञ्जलिः।
स्त्रीभूतस्य हि ये पुत्रास्ते मे जीवन्तु वासव ॥ ४४ ॥
इन्द्रस्तु विस्मितो दृष्ट्वा स्त्रियं पप्रच्छ तां पुनः।
पुरुषोत्पादिता ये ते कथं द्वेष्याः सुतास्तव ॥ ४५ ॥
स्त्रीभूतस्य हि ये जाताः स्नेहस्तेभ्योऽधिकः कथम्।
कारणं श्रोतुमिच्छामि तन्मे वक्तुमिहार्हसि ॥ ४६ ॥
स्त्र्युवाच — स्त्रियास्त्वभ्यधिकः स्नेहो न तथा पुरुषस्य वै।
तस्मात्ते शक्र जीवन्तु ये जाताः स्त्रीकृतस्य वै ॥४७॥
भीष्म उवाच- एवमुक्तस्ततस्त्विन्द्रः प्रीतो वाक्यमुवाच ह।

हूं। उस समय राजऋषि इन्द्रको देख उनके दोनों चरणोंपर अपना सिर रखके बोले, हे देवश्रेष्ठ! आप प्रसन्न होइये, मैंने पुत्रकी इच्छासे यज्ञ किया था, उस विषयमें मुझपर क्षमा करनी उचित है। इन्द्र उसकी विनतीसे सन्तुष्ट होके वरदान करनेके लिये उद्यत होके बोले, हे राजन्! तुम्हारे स्त्रीशरीरसे जो सब पुत्र उत्पन्न हुए थे, अथवा पुरुषदेहसे जिन पुत्रोंने जन्म ग्रहण किया था उनके बीच कौनसे पुत्र जीवित होवें वह तुम मुझसे कहो। ३९-४३

अनन्तर तापसी सावधान होकर हाथ जोड़के इन्द्रसे बोली, हे इन्द्र! मेरे स्त्री होनेपर जो एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए हैं, वेही जीवित होवें। तब इन्द्रने विस्मित होके उस स्त्रीसे पूछा, कि पुरुष शरीरके उत्पन्न हुए पुत्र तुम्हें अप्रिय क्यों हुए? और स्त्री होनेपर जो सब पुत्र जन्मे हैं, उनके ऊपर तुम्हारा अधिक स्नेह क्यों है? मैं उसका कारण सुननेकी इच्छा करता हूं, इसलिये इस विषयको तुम्हें मेरे समीप वर्णन करना उचित है। (४४-४६)

स्त्री बोली, हे देवराज! स्त्रीका स्नेह अधिक होता है, पुरुषका वैसा नहीं होता, इसही लिये मेरी स्त्री अवस्थामें जो सब पुत्र उत्पन्न हुए हैं वेही

सर्व एवेह जीवन्तु पुत्रास्ते सत्यवादिनि ॥ ४८ ॥
वरं च वृणु राजेन्द्र यं त्वमिच्छासि सुव्रत ।
पुरुषत्वमथ स्त्रीत्वं मत्तो यदभिकाङ्क्षसे ॥ ४९ ॥
स्त्र्युवाच— स्त्रीत्वमेव वृणे शक्र पुंस्त्वं नेच्छामि वासव ।
एवमुक्तस्तु देवेन्द्रस्तां स्त्रियं प्रत्युवाच ह ॥ ५० ॥
पुरुषत्वं कथं त्यक्त्वा स्त्रीत्वं चोदयसे विभो ।
एवमुक्तः प्रत्युवाच स्त्रीभूतो राजसत्तमः ॥ ५१ ॥
स्त्रियाः पुरुषसंयोगे प्रीतिरभ्यधिका सदा ।
एतस्मात्कारणाच्छक्र स्त्रीत्वमेव वृणोम्यहम् ॥ ५२ ॥
रमिताभ्यधिकं स्त्रीत्वे सत्यं वै देवसत्तम ।
स्त्रीभावेन हि तुष्यामि गम्यतां त्रिदशाधिप ॥ ५३ ॥
एवमस्त्विति चोक्त्वा तामापृच्छ्य त्रिदिवं गतः ।
एवं स्त्रिया महाराज अधिका प्रीतिरुच्यते ॥ ५४ ॥ [५७१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे भंगास्वनोपाख्याने द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

जीवित होवें। (४७)

भीष्म बोले, इन्द्र उस तापसीका वचन सुनके प्रीतिपूर्वक बोले, हे सत्यवादिनी! तुम्हारे सब पुत्र ही जीवित होवें। हे उत्तम व्रत करनेवाले राजेन्द्र! पुरुषत्व अथवा स्त्रीत्व इन दोनोंमेंसे जो इच्छा हो, वह वर मांग लो। (४८—४९)

स्त्री बोली, हे इन्द्र! मैं स्त्रीत्वको ही अभिलाष करती हूं, पुरुषत्वकी इच्छा नहीं करती। देवराजने ऐसा वचन सुनके फिर उससे कहा, हे महाराज! तुमने पुरुषत्वको परित्याग करके किस लिये स्त्रीत्वकी इच्छा की? स्त्रीरूपधारी राजाने देवराजका ऐसा वचन सुनके उत्तर दिया, हे देवेन्द्र! पुरुषके संयोगसे स्त्रीको ही अधिक प्रसन्नता हुआ करती है, यह सत्य है, कि स्त्रीशरीरमें ही रतिका अधिक सुख मिलता है, मैं स्त्रीभावमें ही सन्तुष्ट हूं। हे देवराज! आपकी जहां इच्छा हो, वहां जाइये इन्द्र बोले, 'ऐसा ही हो' यह वचन कहके उस तापसीको आमन्त्रण करके देवलोकमें चले गये। हे महाराज! इसी प्रकार स्त्रीका पुरुषमें अधिक वैषयिक सुख वर्णित हुआ है। (५०—५४)

अनुशासनपर्वमें १२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर उवाच- किं कर्तव्यं मनुष्येण लोकयात्राहितार्थिना ।
कथं वै लोकयात्रां तु किंशीलश्च समाचरेत् ॥ १ ॥
भीष्म उवाच- कायेन त्रिविधं कर्म वाचा चापि चतुर्विधम् ।
मनसा त्रिविधं चैव दश कर्मपथांस्त्यजेत् ॥ २ ॥
प्राणातिपातः स्तैन्यं च परदारानथापि च ।
त्रीणि पापानि कायेन सर्वतः परिवर्जयेत् ॥ ३ ॥
असत्प्रलापं पारुष्यं पैशुन्यमनृतं तथा ।
चत्वारि वाचा राजेन्द्र न जल्पेन्नानुचिन्तयेत् ॥ ४ ॥
अनभिध्या परस्वेषु सर्वसत्त्वेषु सौहृदम् ।
कर्मणां फलमस्तीति त्रिविधं मनसा चरेत् ॥ ५ ॥
तस्माद्वाक्कायमनसा नाचरेदशुभं नरः ।
शुभाशुभान्याचरन् हि तस्य तस्याश्नुते फलम् ॥ ६ ॥ [५८२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे लोकयात्राकथने त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

युधिष्ठिर उवाच- त्वयाऽऽपगेय नामानि श्रुतानीह जगत्पतेः ।

अनुशासनपर्वमें १३ अध्याय ।

महाराज युधिष्ठिर बोले, लोकयात्राके हितार्थी अर्थात् ऐहिक शिष्ट व्यवहार और पारलौकिक कल्याणकी इच्छा करनेवाले हितैषी मनुष्यको इस विषयमें क्या करना चाहिये और कैसे स्वभावसे युक्त होके लोकयात्रा निवाहे ? (१)

भीष्म बोले, शरीरसे तीन, वचनसे चार और मानससे तीन इन दश प्रकारके कर्मोंको परित्याग करे । प्राणिहिंसा, चोरी और परस्त्रीहरण ये तीनों शारीरिक पाप परित्यागके योग्य हैं । हे राजेन्द्र ! ग्राम्यवार्त्तादि, निष्ठुर वचन कहना, राजद्वारमें पराये दोष प्रकट करना, असत्प्रलाप वा मिथ्या अर्थात् दूसरेको पीडित करनेवाला मिथ्या वचन, इन चार प्रकारके पापोंकी जल्पना और चिन्ता न करे अर्थात् 'ऐसा कहूंगा' यह मनमें भी न सोचे । परधनकी चिन्ता, दूसरेकी बुराईकी चिन्ता करना और वाद विषयमें नास्तिकता, ये तीनों पाप कर्मोंको मनसे परित्याग करना चाहिये । परस्व विषयकी चिन्ता न करनी, सब जीवोंमें सुहृद्भाव और कर्मफलका अस्तित्व स्वीकार मन ही मन इन त्रिविध विषयोंका आचरण करे । इसलिये मनुष्य वचन, शरीर और मनके द्वारा अशुभ

पितामहेशाय विभो नामान्याचक्ष्व शंभवे ॥ १ ॥
बभ्रवे विश्वरूपाय महाभाग्यं च तत्त्वतः।
सुरासुरगुरौ देवे शंकरेऽव्यक्तयोनये ॥ २ ॥
भीष्म उवाच- अशक्तोऽहं गुणान्वक्तुं महादेवस्य धीमतः।
यो हि सर्वगतो देवो न च सर्वत्र दृश्यते ॥ ३ ॥
ब्रह्मविष्णुसुरेशानां स्रष्टा च प्रभुरेव च।
ब्रह्मादयः पिशाचान्ता यं हि देवा उपासते ॥ ४ ॥
प्रकृतीनां परत्वेन पुरुषस्य च यः परः।
चिन्त्यते यो योगविद्भिर्ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
अक्षरं परमं ब्रह्म असच्च सदसच्च यः ॥ ५ ॥
प्रकृतिं पुरुषं चैव क्षोभयित्वा स्वतेजसा।
ब्रह्माणमसृजत्तस्माद्देवदेवः प्रजापतिः ॥ ६ ॥
को हि शक्तो गुणान्वक्तुं देवदेवस्य धीमतः।

आचरण न करे, शुभ वा अशुभ कर्म करनेसे उसका फल भोगना पडता है। (२-६)

अनुशासनपर्वमें १३ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १४ अध्याय।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे गङ्गानन्दन पितामह! आपने जगत्पति महेश्वरके नामोंको सुना है, इसलिये इस समय उस ही जगन्नियन्ता अन्तर्यामी विशाल विश्वरूप महाभाग सुरासुरगुरु, जगत्की उत्पत्ति और लयके कारण, स्वयम्भू देवके नामोंको यथार्थ रीतिसे वर्णन करिये। (१—२)

भीष्म बोले, जो देव सर्व उपादान निबन्धनसे सर्वगत होके भी सर्वत्र नहीं दीख पडता, उस धीमान् महादेवके गुणोंको वर्णन करनेमें मैं असमर्थ हूं। जो विराट सूत्रात्मा वा प्राज्ञका उपादान तथा निमित्त कारण है, ब्रह्मा आदि देवता और पिशाच प्रभृति जिसकी उपासना करते हैं, पञ्चतन्मात्र, अहङ्कार, महत्, अव्यक्त, विश्वकारण प्रकृतिके परम हेतु भोक्ता पुरुषसे भी परतर रूपसे योगवित् तत्वदर्शी ऋषि लोग जिसका ध्यान किया करते हैं। जो अपरिणामी परब्रह्म, अव्याकृत कारण, रज्जुसर्पवत् भासमान होके भी अनिर्वचनीय है, जिसने अपने तेजः-प्रभावसे माया और उसमें प्रतिबिम्बित चैतन्यको प्राणिकर्मानुरोधसे साम्यावस्थामें स्थापित करते हुए निज सत्तामें स्फूर्ति प्रदान करके ब्रह्माको उत्पन्न

गर्भजन्मजरायुक्तो मर्त्यो मृत्युसमन्वितः ॥ ७ ॥
को हि शक्तो भवं ज्ञातुं मद्विधः परमेश्वरम्।
ऋते नारायणात्पुत्र शङ्खचक्रगदाधरात् ॥ ८ ॥
एष विद्वान् गुणश्रेष्ठो विष्णुः परमदुर्जयः।
दिव्यचक्षुर्महातेजा वीक्ष्यते योगचक्षुषा ॥ ९ ॥
रुद्रभक्त्या तु कृष्णेन जगद्व्याप्तं महात्मना।
तं प्रसाद्य तदा देवं बदर्यां किल भारत ॥ १० ॥
अर्थात्प्रियतरत्वं च सर्वलोकेषु वै तदा।
प्राप्तवानेव राजेन्द्र सुवर्णाक्षान्महेश्वरात् ॥ ११ ॥
पूर्णं वर्षसहस्रं तु तप्तवानेष माधवः।
प्रसाद्य वरदं देवं चराचरगुरुं शिवम् ॥ १२ ॥
युगे युगे तु कृष्णेन तोषितो वै महेश्वरः।
भक्त्या परमया चैव प्रीतश्चैव महात्मनः ॥ १३ ॥
ऐश्वर्यं यादृशं तस्य जगद्योनेर्महात्मनः।
तदयं दृष्टवान् साक्षात्पुत्रार्थे हरिरच्युतः ॥ १४ ॥
यस्मात्परतरं चैव नान्यं पश्यामि भारत।

किया है। जब कि उस देवोंके देवसे प्रजापति उत्पन्न हुए हैं, तब गर्भ जन्म जरायुक्त मृत्युसम्पन्न कौन मनुष्य उस धीमान् महादेवके गुणोंको वर्णन करनेमें समर्थ होगा? (३—७)

हे तात! शङ्खचक्र गदाधारी नारायणके अतिरिक्त मेरे समान कोई मनुष्य उस परमेश्वरको नहीं जान सकता। ये गुणोंमें श्रेष्ठ, परमदुर्जय, दिव्यदृष्टि महातेजस्वी विद्वान् विष्णु योगनेत्रके सहारे उसे देख सकते हैं। रुद्रभक्तिके हेतु महात्मा कृष्णके द्वारा समस्त जगत् व्याप्त होरहा है। हे भारत! बदरिकाश्रममें इन्होंने उस ही देवको प्रसन्न करके दिव्यदृष्टि महेश्वरके प्रभावसे उस समय सब लोकोंके बीच भोग्य वस्तुओंसे भी प्रियतरत्व प्राप्त किया है। (८—११)

इस ही कृष्णने पूरी रीतिसे एक हजार वर्षतक तपस्या की थी, चराचरगुरु वरददेव शिवको प्रसन्न करके कृष्णने युगयुगमें महेश्वरको सन्तोषयुक्त किया है और इस महात्माकी परम भक्तिसे महादेव प्रसन्न हुए हैं। जगद्योनि महादेवका जैसा ऐश्वर्य है, उसको इस अच्युत हरिने पुत्रके निमित्त साक्षात्

व्याख्यातुं देवदेवस्य शक्तो नामान्यशेषतः ॥ १५ ॥
एष शक्तो महाबाहुर्वक्तुं भगवतो गुणान् ।
विभूतिं चैव कात्स्न्र्येन सत्यां माहेश्वरीं नृप ॥ १६ ॥
वैशम्पायन उवाच- एवमुक्त्वा तदा भीष्मो वासुदेवं महायशाः ।
भवमाहात्म्यसंयुक्तमिदमाह पितामहः ॥ १७ ॥
भीष्म उवाच- सुरासुरगुरो देव विष्णो त्वं वक्तुमर्हसि ।
शिवाय विष्णुरूपाय यन्मां पृच्छद्युधिष्ठिरः ॥ १८ ॥
नाम्नां सहस्रं देवस्य तण्डिना ब्रह्मयोनिना ।
निवेदितं ब्रह्मलोके ब्रह्मणो यत्पुराऽभवत् ॥ १९ ॥
द्वैपायनप्रभृतयस्तथा चेमे तपोधनाः ।
ऋषयः सुव्रता दान्ताः शृण्वन्तु गदतस्तव ॥ २० ॥
ध्रुवाय नन्दिने होत्रे गोप्त्रे विश्वसृजेऽग्नये ।
महाभाग्यं विभोर्ब्रूहि मुण्डिनेऽथ कपर्दिने ॥ २१ ॥
वासुदेव उवाच- न गतिः कर्मणां शक्या वेत्तुमीशस्य तत्त्वतः ।
हिरण्यगर्भप्रमुखा देवाः सेन्द्रा महर्षयः ॥ २२ ॥

दर्शन किया है। हे भारत! उससे परे मैं और किसीको भी नहीं देखता; ये महाबाहु कृष्ण ही उस महादेवके नामोंको अशेषरूपसे कह सकते हैं, येही उस भगवान्के गुणोंको वर्णन करनेमें समर्थ हैं, हे महाराज! येही महेश्वरकी सत्यविभूतिको विस्तारपूर्वक वर्णन करनेके उपयुक्त हैं। (१२--१६)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महायशस्वी भीष्म पितामह उस समय भवमाहात्म्य विषयमें ऐसा कहके वासुदेवसे कहने लगे। (१७)

भीष्म बोले, हे सुरासुरगुरु विष्णु देव! विश्वरूप शिवके उद्देश्यसे युधिष्ठिरने मुझसे जो प्रश्न किया है, तुम उस विषयको वर्णन करनेमें समर्थ हो। शिवके एक हजार नाम जो कि पहले ब्रह्मलोकमें ब्रह्माके समीप ब्रह्मयोनि तण्डीके द्वारा वर्णित हुए थे, द्वैपायन आदि उत्तम व्रत करनेवाले दान्त तपस्वी ऋषि लोग तुम्हारे मुखसे उन नामोंको सुनें, कूटस्थ आनन्दमय कर्त्तृस्वरूप कर्मफल दान करके रक्षा करनेवाले विश्वस्रष्टा गार्हपत्य अग्निस्वरूप मुण्डी अर्थात् यथार्थमें निश्चूड कपर्दी उपाधिवशसे चूडाविशिष्ट विश्वेश्वरका ऐश्वर्य वर्णन करिये। (१८—२१)

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हिरण्यगर्भ आदि

न विदुर्यस्य भवनमादित्याः सूक्ष्मदर्शिनः ।
स कथं नरमात्रेण शक्यो ज्ञातुं सतां गतिः ॥ २३ ॥
तस्याहमसुरघ्नस्य कांश्चिद्भगवतो गुणान् ।
भवतां कीर्तयिष्यामि व्रतेशाय यथातथम् ॥ २४ ॥
वैशम्पायन उवाच— एवमुक्त्वा तु भगवान् गुणांस्तस्य महात्मनः ।
उपस्पृश्य शुचिर्भूत्वा कथयामास धीमतः ॥ २५ ॥
वासुदेव उवाच— शुश्रूषध्वं ब्राह्मणेन्द्रास्त्वं च तात युधिष्ठिर ।
त्वं चापगेय नामानि शृणुष्वेह कपर्दिने ॥ २६ ॥
यदवाप्तं च मे पूर्वं साम्बहेतोः सुदुष्करम् ।
यथावद्भगवान् दृष्टो मया पूर्वं समाधिना ॥ २७ ॥
शम्बरे निहते पूर्वं रौक्मिणेयेन धीमता ।
अतीते द्वादशे वर्षे जाम्बवत्यब्रवीद्धि माम् ॥ २८ ॥
प्रद्युम्नचारुदेष्णादीन् रुक्मिण्या वीक्ष्य पुत्रकान् ।
पुत्रार्थिनी मामुपेत्य वाक्यमाह युधिष्ठिर ॥ २९ ॥
शूरं बलवतां श्रेष्ठं कान्तरूपमकल्मषम् ।

तथा इन्द्रके सहित समस्त देवता लोग और महर्षिवृन्द ईश्वरके कर्मोंकी गतिको यथार्थ रूपसे जाननेमें समर्थ नहीं हैं। सूक्ष्मदर्शी इन्द्रादि देववृन्द जिसका हृदयाकाशाख्य स्थानको नहीं जान सकते, वह साधुओंकी गतिस्वरूप ईश्वर मनुष्योंको किस प्रकार मालूम होगा। इसलिये मैं आपके निकट उस व्रतपूर्वक किये हुए यज्ञोंके फल देनेवाले असुर-नाशक भगवानके कुछ गुणोंको यथार्थ रीतिसे वर्णन करूंगा। (२२—२४)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, भगवान् कृष्ण इस ही प्रकार उस धीमान् महात्माके गुणोंका वर्णन कर जल स्पर्श करके पवित्र होकर कहने लगे। (२५)

श्रीकृष्ण बोले, हे द्विजेन्द्रगण ! हे तात धर्मराज ! हे गाङ्गेय ! आप भी इस समय कपर्द्दीके नामोंको सुनिये। पहले मैंने साम्बके निमित्त जिन सब अत्यन्त दुष्कर नामोंको प्राप्त किया था, उसे ही वर्णन करूंगा। पहले मैंने समाधिके द्वारा उस भगवानका दर्शन किया था। बुद्धिमान् रुक्मिणीपुत्र प्रद्युम्नके हाथसे शम्बरासुरके मारे जाने पर बारह वर्षके अनन्तर जाम्बवतीने मुझसे कुछ कहनेकी इच्छा की। हे धर्मराज ! वह रुक्मिणीपुत्र प्रद्युम्न और चारुदेष्ण आदिको देखकर पुत्रकी

आत्मतुल्यं मम सुतं प्रयच्छाच्युत मा चिरम् ॥३०॥
न हि तेऽप्राप्यमस्तीह त्रिषु लोकेषु किंचन ।
लोकान् सृजेस्त्वमपरानिच्छन्यदुकुलोद्वह ॥ ३१ ॥
त्वया द्वादश वर्षाणि व्रतीभूतेन शुष्यता ।
आराध्य पशुभर्तारं रुक्मिण्यां जनिताः सुताः ॥ ३२ ॥
चारुदेष्णः सुचारुश्च चारुवेशो यशोधरः ।
चारुश्रवाश्चारुयशाः प्रद्युम्नः शंभुरेव च ॥ ३३ ॥
यथा ते जनिताः पुत्रा रुक्मिण्यां चारुविक्रमाः ।
तथा ममापि तनयं प्रयच्छ मधुसूदन ॥ ३४ ॥
इत्येवं चोदितो देव्या तामवोचं सुमध्यमाम् ।
अनुजानीहि मां राज्ञि करिष्ये वचनं तव ॥ ३५ ॥
सा च मामब्रवीद्गच्छ शिवाय विजयाय च ।
ब्रह्मा शिवः काश्यपश्च नद्यो देवा मनोऽनुगाः ॥ ३६॥
क्षेत्रौषध्यो यज्ञवाहाश्छन्दांस्यृषिगणाध्वराः ।
समुद्रा दक्षिणास्तोभा ऋक्षाणि पितरो ग्रहाः ॥ ३७ ॥

कामना करके मेरे निकट आके बोली, हे अच्युत ! तुम थोडे ही समयके बीच शीघ्र ही मुझे शूर, बलवान् कान्तरूप और अकल्मष अपने समान पुत्र प्रदान करो। (२६-३०)

हे यदुकुलधुरन्धर ! तीनों लोकोंके बीच तुम्हें कुछ भी अप्राप्य नहीं है, इच्छा करनेसे तुम दूसरे लोकोंकी सृष्टि कर सकते हो। तुमने बारह वर्षका व्रत करके शरीर सुखाकर महादेवकी आराधना करके रुक्मिणीमें जिन पुत्रोंको उत्पन्न किया है अर्थात् चारुदेष्ण, सुचारु, चारुवेश, यशोधर, चारुश्रवा, चारुयशा, प्रद्युम्न और शम्भु, ये सब सुन्दर तथा पराक्रमी पुत्र जैसे रुक्मिणीके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं; हे मधुसूदन! वैसे ही मुझे भी एक पुत्र प्रदान करो। (३१-३४)

जाम्बवतीका ऐसा वचन सुनके मैंने उस सुन्दरीसे कहा, हे रानी ! तुम अनुमति दो, मैं तुम्हारे वचनको प्रतिपालन करूंगा, उसने मुझसे कहा, तुम विजय और मङ्गलके निमित्त प्रस्थान करो। हे यादव ! ब्रह्मा, शिव, काश्यप, नदियें, मनके अनुगामी सब देवता, अग्नि, यज्ञिय ओषधि, छन्दःसमूह ऋषिवृन्द, सब पर्वत, समुद्र, दक्षिणा, सामपूरण स्तोमवाक्य, तारासमूह, पितर,

देवपत्न्यो देवकन्या देवमातर एव च।
मन्वन्तराणि गावश्च चन्द्रमाः सविता हरिः ॥ ३८ ॥
सावित्री ब्रह्मविद्या च ऋतवो वत्सरास्तथा।
क्षणा लवा मुहूर्ताश्च निमेषा युगपर्ययाः ॥ ३९ ॥
रक्षन्तु सर्वत्र गतं त्वां यादवसुखाय च।
अरिष्टं गच्छ पन्थानमप्रमत्तो भवानघ ॥ ४० ॥
एवं कृतस्वस्त्ययनस्तयाऽहं ततोऽभ्यनुज्ञाय नरेन्द्रपुत्रीम्।
पितुः समीपं नरसत्तमस्य मातुश्च राज्ञश्च तथाऽऽहुकस्य ॥४१॥
गत्वा समावेद्य यदब्रवीन्मां विद्याधरेन्द्रस्य सुता भृशार्ता।
तानभ्यनुज्ञाप्य तदाऽतिदुःखाद्गदं तथैवातिबलं च रामम् ॥
अथोचतुः प्रीतियुतौ तदानीं तपःसमृद्धिर्भवतोऽस्त्वविघ्नम् ॥४२॥
प्राप्यानुज्ञां गुरुजनादहं तार्क्ष्यमचिन्तयम्।
सोऽवहद्धिमवन्तं मां प्राप्य चैनं व्यसर्जयम् ॥ ४३ ॥
तत्राहमद्भुतान् भावानपश्यं गिरिसत्तमे।
क्षेत्रं च तपसां श्रेष्ठं पश्याम्यद्भुतमुत्तमम् ॥ ४४ ॥

ग्रह, देवपत्नी, देवकन्या और देवमातृवृन्द, मन्वन्तर, गऊ, चन्द्रमा, सूर्य, हरि, सावित्री वा ब्रह्मविद्या, ऋतु, वर्ष, क्षण,लव,मुहूर्त, निमेष और युगपर्याय, ये सब जहां तुम जाओ, उस ही स्थानमें तुम्हारी रक्षा करें और तुम्हारी रक्षाके कारण होवें। (३८-४०)

हे पापरहित! तुम अप्रमत्त होके निर्विघ्न मार्गमें गमन करो। जब उसने मेरा ऐसा स्वस्त्ययन किया; तब मैंने ऋक्षराजपुत्रीकी अनुमति लेकर फिर पुरुषसत्तम पिता तथा माता और राजा आहुकके निकट जाके जाम्बवतीने अत्यन्त दुःखित होके मुझसे जो कुछ कहा था, उसे निवेदन करके अतिकष्टसे उनकी आज्ञासे गद और महाबलवान बलदेवके निकट सब वृत्तान्त वर्णन करके उनकी अनुमति मांगी। उस समय उन्होंने प्रसन्न होके कहा, तुम्हारे तपकी निर्विघ्न वृद्धि होवे, अनन्तर मैंने गुरुजनोंकी आज्ञा पाके गरुडको स्मरण किया। गरुडपर चढके मैं हिमालय पहाडपर गया और वहां पहुंचके मैंने उसे बिदा किया।(४०-४३)

अनन्तर उस पर्वतपर आश्चर्यमय विषयोंको देखने लगा। वैयाघ्रपद्यगोत्र महानुभाव उपमन्युका दिव्य आश्रम जो तपस्वियोंका क्षेत्र कहके

दिव्यं वैयाघ्रपद्यस्य उपमन्योर्महात्मनः ।
पूजितं देवगन्धर्वैर्ब्राह्म्या लक्ष्म्या समावृतम् ॥ ४५ ॥
धवककुभकदम्बनारिकेलैः कुरबककेतकजम्बुपाटलाभिः ।
वटवरुणकवत्सनाभबिल्वैः सरलकपित्थप्रियालसालतालैः ॥४६॥
बदरीकुन्दपुन्नागैरशोकाम्रातिमुक्तकैः ।
मधूकैः कोविदारैश्च चम्पकैः पनसैस्तथा ॥ ४७ ॥
अन्यैर्बहुविधैर्वृक्षैः फलपुष्पप्रदैर्युतम् ।
पुष्पगुल्मलताकीर्णं कदलीषण्डशोभितम् ॥ ४८ ॥
नानाशकुनिसंभोज्यैः फलैर्वृक्षैरलंकृतम् ।
यथास्थानविनिक्षिप्तैर्भूषितं भस्मराशिभिः ॥ ४९ ॥
रुरुवानरशार्दूलसिंहद्वीपिसमाकुलम् ।
कुरङ्गबर्हिणाकीर्णं मार्जारभुजगावृतम् ।
पूगैश्च मृगजातीनां महिषर्क्षनिषेवितम् ॥ ५० ॥
सकृत्प्रभिन्नैश्च गजैर्विभूषितं प्रहृष्टनानाविधपक्षिसेवितम् ।
सुपुष्पितैरम्बुधरप्रकाशैर्महीरुहाणां च वनैर्विचित्रैः ॥ ५१ ॥
नानापुष्परजोमिश्रो गजदानाधिवासितः ।
दिव्यस्त्रीगीतबहुलो मारुतोऽभिमुखो ववौ ॥ ५२ ॥

विख्यात था, मैंने उस अद्भुत और उत्तम स्थानको देखा। वह आश्रम देवताओं और गन्धर्वोंसे पूजित तथा ब्राह्मी लक्ष्मीसे समावृत था; धव, ककुभ, कदम्ब, नारियल, कुरबक, केतकी, जामुन, पाटल, वट, वरुण, वत्सनाभ, बेल, सरल, कपित्थ, प्रियाल, साल, ताल, बदरी, कुन्द, पुन्नाग, अशोक, आम्र, अतिमुक्त, मधूक, कोविदार, चम्पक, पनस और दूसरे अनेक प्रकारके फल और फूलोंसे युक्त वृक्षोंसे घिरा हुआ था। वह आश्रम पुष्प, गुल्म और लताओंसे परिपूरित, केलेके खम्भसे शोभित, विविध पक्षियोंके भोज्य फल और वृक्षोंसे अलंकृत, यथायोग्य स्थानमें रखी हुई भस्मसे ढकी हुई अग्निसे विभूषित, रुरु, बन्दर, शार्दूल, सिंह, हरिन, बर्हिण, मार्जार, भुजगवृन्द और तेंदुओंसे परिपूर्ण, अनेक प्रकारके मृगसमूह, भैंसे और वृक्षोंसे निषेवित, सकृत्प्रभिन्न हाथियोंसे विभूषित अनेक प्रकारके प्रहृष्ट पक्षियोंसे सेवित और बादलके समान उत्तम फूले हुए वृक्षोंसे विचित्र बोध होता था। (४४-५१)

धारानिनादैर्विहगप्रणादैः शुभैस्तथा बृंहितैः कुञ्जराणाम्।
गीतैस्तथा किन्नराणामुदारैः शुभैः स्वनैः सामगानां च वीर ॥५३॥
अचिन्त्यं मनसाऽप्यन्यैः सरोभिः समलंकृतम्।
विशालैश्चाग्निशरणैर्भूषितं कुसुमावृतैः ॥ ५४ ॥
विभूषितं पुण्यपवित्रतोयया सदा च जुष्टं नृपजह्नुकन्यया।
विभूषितं धर्मभृतां वरिष्ठैर्महात्मभिर्वह्निसमानकल्पैः ॥ ५५ ॥
वाय्वाहारैरम्बुपैर्जप्यनित्यैः संप्रक्षालैर्योगिभिर्ध्याननित्यैः।
धूमप्राशैरूष्मपैः क्षीरपैश्च संजुष्टं च ब्राह्मणेन्द्रैः समन्तात् ॥ ५६ ॥
गोचारिणोऽथाश्मकुट्टा दन्तोलूखलिकास्तथा।
मरीचिपाः फेनपाश्च तथैव मृगचारिणः ॥ ५७ ॥
अश्वत्थफलभक्षाश्च तथा ह्युदकशायिनः।
चीरचर्माम्बरधरास्तथा वल्कलधारिणः ॥ ५८ ॥
सुदुःखान्नियमांस्तांस्तान्वहतः सुतपोधनान्।
पश्यन् मुनीन्बहुविधान् प्रवेष्टुमुपचक्रमे ॥ ५९ ॥

वहाँपर विविध पुष्पोंकी सुगन्धि-युक्त, गजमदसे सुवासित, दिव्य स्त्रियोंके संगीत समान, सुखस्पर्शयुक्त वायु बह रही थी। हे वीर! वह स्थान जलधारा-निनाद, पक्षियोंकी बोली, हाथियोंके मनोहर चिग्घाड, किन्नरोंके उदार गीत और सामगान करनेवाले ब्राह्मणोंकी पवित्र ध्वनिसे अलंकृत था; दूसरे पुरु-षोंको मनसे भी अचिन्तनीय, तडागोंसे अलंकृत और विशाल तथा कुसुमावृत अग्निगृहोंके द्वारा उत्तम शोभासे युक्त था। (५२-५४)

हे महाराज! वह आश्रम पवित्र जलवाहिनी जन्हुनन्दिनीसे सदा सेवित और विभूषित तथा अग्निके समान तेजस्वी महात्माओंसे अलंकृत था। वायु तथा जल पीनेवाले, जपमें रत, मैत्री प्रभृति निश्चय करके शोधन करनेवाले ध्याननिष्ठ योगी जन और धूमप्राश ऊष्मप और क्षीरप ब्राह्मणे-न्द्रोंके द्वारा सब भांतिसे सेवित था। गोचारी अर्थात् जो लोग गऊके समान मुखसे आहार किया करते हैं; अश्मकुट्ट, दन्तोलूखलिक, मरीचिप अर्थात् चन्द्र-किरण पान करके जीवन धारण करने-वाले, फेनप, मृगचारी अश्वत्थफल-भोजी, जलमें शयन करनेवाले, चीर और चर्माम्बरधारी तथा वल्कलधारी और अत्यन्त कष्टसे जो लोग उन सब नियमोंमें तत्पर रहते हैं, वैसे अनेक

सुपूजितं देवगणैर्महात्मभिः शिवादिभिर्भारतपुण्यकर्मभिः ।
रराज तत्राश्रममण्डलं सदा दिवीव राजन् शशिमण्डलं यथा ॥ ६० ॥
क्रीडन्ति सर्पैर्नकुला मृगैर्व्याघ्राश्च मित्रवत् ।
प्रभावाद्दीप्ततपसां सन्निकर्षान्महात्मनाम् ॥ ६१ ॥
तत्राश्रमपदे श्रेष्ठे सर्वभूतमनोरमे ।
सेविते द्विजशार्दूलैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ ६२ ॥
नानानियमविख्यातैर्ऋषिभिः सुमहात्मभिः ।
प्रविशन्नेव चापश्यं जटाचीरधरं प्रभुम् ॥ ६३ ॥
तेजसा तपसा चैव दीप्यमानं यथाऽनलम् ।
शिष्यैरनुगतं शान्तं युवानं ब्राह्मणर्षभम् ॥ ६४ ॥
शिरसा वन्दमानं मामुपमन्युरभाषत ॥ ६५ ॥
स्वागतं पुण्डरीकाक्ष सफलानि तपांसि नः ।
यः पूज्यः पूजयसि मां द्रष्टव्यो द्रष्टुमिच्छसि ॥ ६६ ॥
तमहं प्राञ्जलिर्भूत्वा मृगपक्षिष्वथाग्निषु ।
धर्मे च शिष्यवर्गे च समपृच्छमनामयम् ॥ ६७ ॥

प्रकारके तपस्वी मुनियोंका दर्शन करके मैंने उस स्थानमें प्रवेश करनेकी इच्छा की। (५८—५९)

हे भारत ! हे राजन् ! आकाशमण्डलमें चन्द्रमण्डलकी भांति वह आश्रममण्डल पुण्यकर्म करनेवाले महानुभाव भव आदि देवताओंसे सदा उत्तम रीतिसे पूजित होकर विराजमान था। महातपस्वी महात्माओंके सहवास और प्रभावसे वहांपर नेवले विषधर सांपोंके साथ और बाघ मृगयूथोंके सङ्ग मित्रकी भांति क्रीडा करते थे। वेदवेदान्त जाननेवाले, विविध नियमोंसे विख्यात द्विजवर्य महानुभाव महर्षियोंसे सेवित उस सर्वभूतमनोरम, श्रेष्ठ आश्रमस्थलमें प्रवेश करते ही मैंने जटाचीरधारी तेज और तपस्याके द्वारा अग्निके समान प्रकाशमान, शिष्योंसे अनुगत, शान्त, यौवनसम्पन्न, निग्रहानुग्रहमें समर्थ, द्विजवर उपमन्युका दर्शन किया। जब मैंने सिर नीचा करके उनकी वन्दना की, तब वह मुझसे बोले, हे पुण्डरीकाक्ष ! तुमने सुखसे आगमन किया है न ? हम लोगोंकी तपस्या सफल हुई, क्यों कि तुम पूज्य होके भी हमारी पूजा करते हो और हमारे दर्शनीय होनेपर भी हम लोगोंके दर्शनकी इच्छा करते हो। मैंने हाथ जोडके उनसे मृग,

ततो मां भगवानाह साम्ना परमवल्गुना ।
लप्स्यसे तनयं कृष्ण आत्मतुल्यमसंशयम् ॥ ६८ ॥
तपः सुमहदास्थाय तोषयेशानमीश्वरम् ।
इह देवः सपत्नीकः समाक्रीडत्यधोक्षज ॥ ६९ ॥
इहैनं दैवतश्रेष्ठं देवाः सर्षिगणाः पुरा ।
तपसा ब्रह्मचर्येण सत्येन च दमेन च ॥ ७० ॥
तोषयित्वा शुभान्कामान् प्राप्तवन्तो जनार्दन ।
तेजसां तपसां चैव निधिः स भगवानिह ॥ ७१ ॥
शुभाशुभान्वितान्भावान्विसृजन् संक्षिपन्नपि ।
आस्ते देव्या सदाचिन्त्यो यं प्रार्थयसि शत्रुहन् ॥ ७२ ॥
हिरण्यकशिपुर्योऽभूद्दानवो मेरुकम्पनः ।
तेन सर्वामरैश्वर्यं शर्वात्प्राप्तं समार्बुदम् ॥ ७३ ॥
तस्यैव पुत्रप्रवरो मन्दारो नाम विश्रुतः ।
महादेववराच्छक्रं वर्षार्बुदमयोधयत ॥ ७४ ॥
विष्णोश्चक्रं च तद्घोरं वज्रमाखण्डलस्य च ।

पक्षी, अग्नि, धर्म, और शिष्योंके विषयमें अनामय प्रश्न किया । (६०–६७)

अनन्तर भगवान उपमन्यु मुझसे परम मनोहर शान्त वचनसे बोले, हे कृष्ण ! तुम अपने समान पुत्र निःसन्देह प्राप्त करोगे । तुम उत्तम महत् तपस्या अवलम्बन करके सर्व-नियन्ता महादेवको सन्तुष्ट करो । हे अधोक्षज ! वह देव सपत्नीक होके इस ही स्थानमें विराजमान हैं । हे जनार्दन ! पहिले समयमें ऋषियोंके सहित देवताओंने इस ही स्थानमें तपस्या, ब्रह्मचर्य, सत्य और इन्द्रिय-निग्रहके द्वारा उस महादेवको सन्तुष्ट करके शुभवासनाओंको प्राप्त किया था । हे शत्रुनाशन ! तुम जिसकी प्रार्थना करते हो, वह तपोनिधि और तेजके आधार अचिन्तनीय भगवान इस ही स्थानमें शुभाशुभ और संहार करते हुए अभिप्रायको उत्पन्न करनेवाली देवीके सहित विराजमान हैं । (६८–७२)

सुमेरु पर्वतको कंपानेवाला जो हिरण्यकशिपु नामक दानव था, उसने महादेवकी कृपासे अर्बुद वर्ष पर्यन्त सब देवताओंका ऐश्वर्य पाया था । उसहीका मुख्य पुत्र मन्दर नामसे विख्यात है, उसने महादेवके वरप्रभावसे अर्बुद वर्षतक इन्द्रके सङ्ग युद्ध किया

शीर्णं पुराऽभवत्तात ग्रहस्याङ्गेषु केशव ॥ ७५ ॥
यत्तद्भगवता पूर्वं दत्तं चक्रं तवानघ।
जलान्तरचरं हत्वा दैत्यं च बलगर्वितम् ॥ ७६ ॥
उत्पादितं वृषाङ्केन दीप्तज्वलनसन्निभम्।
दत्तं भगवता तुभ्यं दुर्धर्षं तेजसाऽद्भुतम् ॥ ७७ ॥
न शक्यं द्रष्टुमन्येन वर्जयित्वा पिनाकिनम्।
सुदर्शनं भवत्येवं भवेनोक्तं तदा तु तत् ॥ ७८ ॥
सुदर्शनं तदा तस्य लोके नाम प्रतिष्ठितम्।
तज्जीर्णमभवत्तात ग्रहस्याङ्गेषु केशव ॥ ७९ ॥
ग्रहस्यातिबलस्याङ्गे वरदत्तस्य धीमतः।
न शस्त्राणि वहन्त्यङ्गे चक्रवज्रशतान्यपि ॥ ८० ॥
अर्द्यमानाश्च विबुधा ग्रहेण सुबलीयसा।
शिवदत्तवरान् जघ्नुरसुरेन्द्रान् सुरा भृशम् ॥ ८१ ॥

था। हे तात केशव! विष्णुका वह घोरचक्र और इन्द्रका भयङ्कर वज्र पहिले समयमें उस मन्दरके अङ्गमें लगनेसे विफल हुआ था। (७३-७५)

हे पापरहित! पहिले समयमें भगवानने जलान्तरचर बलगर्वित दैत्यको मारके तुम्हें जो चक्र दिया था, तथा उस दैत्यको मारनेके लिये वृषभध्वजने जो अग्निके समान प्रकाशमान चक्र उत्पन्न किया था, भगवानने जो तुम्हें अद्भुत तेजसे युक्त दुर्द्धर्ष चक्र प्रदान किया था, पिनाकीके अतिरिक्त दूसरा कोई पुरुष उसका दर्शन नहीं कर सकता। इस ही निमित्त महादेवने उस समय कहा था, कि यह सुदर्शन होवे; तभीसे लोकके बीच वह सुदर्शन नामसे प्रतिष्ठित होरहा है। हे तात केशव! वह चक्र मन्दरके अङ्गमें लगके जीर्ण तृणके समान व्यर्थ हुआ था। (७६-७९)

महादेवने उस मन्दर असुरको यह वर दिया था, कि तुम सब शस्त्रोंसे अवध्य होगे, इस ही वरके प्रभावसे वह धीमान् प्रबल बलशाली असुर निज अङ्गपर चक्र और सैकडों वज्र आदि शस्त्रोंकी चोट सहजमें ही सह सकता था। जब बलवान मन्दरने देवताओंको अत्यन्त पीडित किया, तब देवताओंने महादेवके दिये हुए वरके प्रभावसे गर्वित दानवोंके दलको नष्ट किया था, देवताओंके बुद्धिकौशलसे वे लोग आपसमें कलह करके विनष्ट हुए। (८०-८१)

तुष्टो विद्युत्प्रभस्यापि त्रिलोकेश्वरतां ददौ ।
शतं वर्षसहस्राणां सर्वलोकेश्वरोऽभवत ॥ ८२ ॥
ममैवानुचरो नित्यं भवितासीति चाब्रवीत् ।
तथा पुत्रसहस्राणामयुतं च ददौ प्रभुः ॥ ८३ ॥
कुशद्वीपं च स ददौ राज्येन भगवानजः ।
तथा शतमुखो नाम धात्रा सृष्टो महासुरः ॥ ८४ ॥
येन वर्षशतं साग्रमात्ममांसैर्हुतोऽनलः ।
तं प्राह भगवांस्तुष्टः किं करोमीति शंकरः ॥ ८५ ॥
तं वै शतमुखः प्राह योगो भवतु मेऽद्भुतः ।
बलं च दैवतश्रेष्ठ शाश्वतं संप्रयच्छ मे ॥ ८६ ॥
तथेति भगवानाह तस्य तद्वचनं प्रभुः ।
स्वायंभुवः क्रतुश्चापि पुत्रार्थमभवत्पुरा ॥ ८७ ॥
आविश्य योगेनात्मानं त्रीणि वर्षशतान्यपि ।
तस्य चोपददौ पुत्रान्सहस्रं क्रतुसंमितान् ॥ ८८ ॥
योगेश्वरं देवगीतं वेत्थ कृष्ण न संशयः ।

महादेवने विद्युत्प्रभ दानवके ऊपर प्रसन्न होके उसे तीनों लोकोंका ऐश्वर्य दान किया था, वह सौ हजार वर्षतक सब लोकोंका ईश्वर हुआ था। भगवानने उसे कहा था, कि तू सदा मेरा ही अनुचर होगा और उसे सहस्र अयुत पुत्र प्रदान किया था। जन्मरहित भगवानने उसे राज्यके सहित कुशद्वीप दान किया। (८२-८४)

अनन्तर शतमुख नामक जो महासुर ब्रह्माके द्वारा उत्पन्न हुआ था और जिसने एक सौ वर्ष तक निज मांससे अग्निको तृप्त किया था, भगवान शङ्कर उसपर प्रसन्न होके बोले, मैं तुम्हारे लिये क्या करूं ? शतमुखने उनसे कहा, हे देवोंके देव ! आपकी कृपासे मुझे चन्द्रमा, सूर्य, पर्जन्य पृथ्वी आदिकी सृष्टिकी सामर्थ्यशाली अद्भुत योग होवे और आप मुझे ब्रह्मविद्यासे उत्पन्न शाश्वत बल प्रदान करिये। निग्रहानुग्रहमें समर्थ भगवानने उसका वह वचन सुनके कहा, 'ऐसा ही होगा।' (८४—८७)

स्वायम्भुवक्रतु भी पुत्रके निमित्त योगके सहारे तीन सौ वर्षतक हिरण्यगर्भमें आविष्ट हुए थे। भगवानने उसे क्रतुपरिमित सहस्र पुत्र प्रदान किया। हे कृष्ण ! वेदमें वर्णित योगेश्वरको तुम

याज्ञवल्क्य इति ख्यात ऋषिः परमधार्मिकः ॥ ८९ ॥
आराध्य स महादेवं प्राप्तवानतुलं यशः।
वेदव्यासश्च योगात्मा पराशरसुतो मुनिः ॥ ९० ॥
सोऽपि शंकरमाराध्य प्राप्तवानतुलं यशः।
वालखिल्या मघवता ह्यवज्ञाताः पुरा किल ॥ ९१ ॥
तैः क्रुद्धैर्भगवान् रुद्रस्तपसा तोषितो ह्यभूत्।
तांश्चापि दैवतश्रेष्ठः प्राह प्रीतो जगत्पतिः ॥ ९२ ॥
सुपर्णं सोमहर्तारं तपसोत्पादयिष्यथ।
महादेवस्य रोषाच्च आपो नष्टाः पुराऽभवन् ॥ ९३ ॥
ताश्च सप्तकपालेन दैवैरन्याः प्रवर्तिताः।
ततः पानीयमभवत्प्रसन्ने त्र्यम्बके भुवि ॥ ९४ ॥
अत्रेर्भार्याऽपि भर्तारं संत्यज्य ब्रह्मवादिनी।
नाहं तस्य मुनेर्भूयो वशगा स्यां कथंचन ॥ ९५ ॥
इत्युक्त्वा सा महादेवमगच्छच्छरणं किल।
निराहारा भयादत्रेस्त्रीणि वर्षशतान्यपि ॥ ९६ ॥
अशेत मुसलेष्वेव प्रसादार्थं भवस्य सा।

निःसन्देह जानते हो। परम धार्मिक ऋषि जो याज्ञवल्क्य नामसे विख्यात हैं; वह महादेवकी आराधना करके अतुल यशस्वी हुए हैं। (८७–९०)

पराशरपुत्र महामुनि योगिवर वेद-व्यासने भी शङ्करकी आराधना करके अशेष यशलाभ किया है। पहले समय में वालखिल्य मुनियोंने देवराजके द्वारा अवज्ञात होनेसे क्रुद्ध होकर तपस्याके सहारे महादेवको सन्तुष्ट किया। जग-त्पति महादेव प्रसन्न होके उनसे बोले, तुम लोग तपस्याके द्वारा सोम हरने-वाले गरुडको उत्पन्न करोगे। (९०-९३)

पहले समयमें महादेवके क्रोधवशसे समस्त जल नष्ट हुआ था। महेश्वरने सप्त कपाल अर्थात् त्र्यम्बक दैवत मन्त्रके सहारे जलको फिर उत्पन्न किया। अनन्तर महादेवके प्रसन्न होनेपर पृथ्वीमण्डलपर समस्त जल पीने योग्य हुआ था। (९३–९४)

अत्रिमुनिकी ब्रह्मवादिनी भार्याने पतिको परित्याग करके प्रतिज्ञा की, कि मैं अब फिर कभी किसी प्रकारसे भी उस मुनिकी वशवर्त्ती न हूंगी; ऐसा कहके वह महेश्वरकी शरणागत हुई थी। उसने अत्रिके भयसे निराहारी

तामब्रवीद्धसन्देवो भविता वै सुतस्तव ॥ ९७ ॥
विना भर्त्रा च रुद्रेण भविष्यति न संशयः ।
वंशे तवैव नाम्ना तु ख्यातिं यास्यति चेप्सिताम् ॥ ९८ ॥
विकर्णश्च महादेवं तथा भक्तसुखावहम् ।
प्रसाद्य भगवान्सिद्धिं प्राप्तवान्मधुसूदन ॥ ९९ ॥
शाकल्यः संशितात्मा वै नव वर्षशतान्यपि ।
आराधयामास भवं मनोयज्ञेन केशव ॥ १०० ॥
तं चाह भगवांस्तुष्टो ग्रन्थकारो भविष्यसि ।
वत्साक्षया च ते कीर्तिस्त्रैलोक्ये वै भविष्यति ॥ १०१ ॥
अक्षयं च कुलं तेऽस्तु महर्षिभिरलंकृतम् ।
भविष्यति द्विजश्रेष्ठः सूत्रकर्ता सुतस्तव ॥ १०२ ॥
सावर्णिश्चापि विख्यात ऋषिरासीत्कृते युगे ।
इह तेन तपस्तप्तं षष्टिवर्षशतान्यथ ॥ १०३ ॥
तमाह भगवान् रुद्रः साक्षात्तुष्टोऽस्मि तेऽनघ ।
ग्रन्थकृल्लोकविख्यातो भवितास्यजरामरः ॥ १०४ ॥
शक्रेण तु पुरा देवो वाराणस्यां जनार्दन ।

होके तीन सौ वर्षतक महादेवकी कृपाके निमित्त मुसल अर्थात् लौह हलके अग्रभागमें शयन किया। महेश्वरने हंसके उससे कहा, कि रुद्रमन्त्रके प्रभावसे विना पतिके ही तुम्हारे निःसन्देह पुत्र होगा, और वंशके बीच वह तुम्हारे ही नामसे प्रसिद्ध होगा। (९५-९८)

हे मधुसूदन ! भगवान भक्तिमान विकर्णने महादेवको प्रसन्न करके सिद्धि लाभ की थी। हे केशव ! संशितचित्त शाकल्यने नव सौ वर्षतक मनोयज्ञसे महादेवकी आराधना की थी। भगवान प्रसन्न होके उससे बोले, हे तात ! तुम ग्रंथकर्ता होगे। और तीनों लोकोंके बीच तुम्हारी अक्षय कीर्ति होगी, महर्षि कुलके द्वारा अलंकृत तुम्हारा वंश अक्षय होगा और तुम्हारा पुत्र द्विजश्रेष्ठ तथा सूत्रकर्ता होगा। (९९-१०२)

सत्ययुगमें सावर्णि नाम एक विख्यात ऋषि थे, उन्होंने इस स्थानमें छः हजार वर्षतक तपस्या की थी; भगवान रुद्रदेव स्वयं उनसे बोले, हे अनघ ! मैं तुमपर प्रसन्न हुआ हूं, तुम अजर और अमर होके लोकमें प्रसिद्ध ग्रन्थकर्ता होगे। (१०३-१०४)

हे जनार्दन ! पहले समयमें दिग्वासा

आराधितोऽभूच्छक्रेण दिग्वासा भस्मगुण्ठितः ॥ १०५ ॥
आराध्य स महादेवं देवराज्यमवाप्तवान् ।
नारदेन तु भक्त्याऽसौ भव आराधितः पुरा ॥१०६॥
तस्य तुष्टो महादेवो जगौ देवगुरुर्गुरुः ।
तेजसा तपसा कीर्त्या त्वत्समो न भविष्यति ॥ १०७॥
गीतेन वादितव्येन नित्यं मामनुयास्यसि ।
मयापि च तथा दृष्टो देवदेवः पुरा विभो ॥ १०८ ॥
साक्षात्पशुपतिस्तात तच्चापि शृणु माधव ।
यदर्थं च मया देवः प्रयतेन तथा विभो ॥ १०९ ॥
प्रबोधितो महातेजास्तं चापि शृणु विस्तरम् ।
यदवाप्तं च मे पूर्वं देवदेवान्महेश्वरात् ॥ ११० ॥
तत्सर्वं निखिलेनाद्य कथयिष्यामि तेऽनघ ।
पुरा कृतयुगे तात ऋषिरासीन्महायशाः ॥ १११ ॥
व्याघ्रपाद इति ख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः ।
तस्याहमभवं पुत्रो धौम्यश्चापि ममानुजः ॥ ११२ ॥
कस्यचित्त्वथ कालस्य धौम्येन सह माधव ।
आगच्छमाश्रमं क्रीडन्मुनीनां भावितात्मनाम् ॥११३॥

भस्मगुण्ठीत भगवान काशीधाममें भक्तवर इन्द्रके द्वारा पूजित हुए थे, उन्होंने महादेवकी आराधना करके देवराज्य पाया। (१०५-१०६)

पहले समयमें नारद मुनिने भक्ति भावसे महादेवकी आराधना की थी, देवगुरु महादेव प्रसन्न होके उनसे बोले; तेज, तपस्या और कीर्त्तिके द्वारा तुम्हारे समान कोई भी न होगा, गीत और बाजेके द्वारा तुम सदा मेरे अनुगत रहोगे। हे तात! हे विभु माधव! मैंने जिस प्रकार पहले समयमें देवोंके देव पशुपतिका साक्षात् दर्शन किया था, उसे भी तुम विस्तारके सहित सुनो। हे अनघ! पहले देवोंके देव महादेवसे मैंने सावधान होके जिस प्रकार उन्हें प्रबोधित किया था, इस समय उसे पूरी रीतिसे कहता हूं। हे तात! पहले सत्ययुगमें वेदवेदाङ्ग जाननेवाले महायशस्वी व्याघ्रपाद नामसे विख्यात एक ऋषि थे, मैं उनका पुत्र था और धौम्य मेरा भाई था। हे माधव! किसी समय मैं धौम्यके सङ्ग खेलते हुए आत्मज्ञ मुनियोंके आश्रममें उपस्थित

तत्रापि च मया दृष्टा दुह्यमाना पयस्विनी।
लक्षितं च मया क्षीरं स्वादुतो ह्यमृतोपमम् ॥ ११४ ॥
ततोऽहमब्रुवं बाल्याज्जननीमात्मनस्तथा।
क्षीरोदनसमायुक्तं भोजनं हि प्रयच्छ मे ॥ ११५ ॥
अभावाच्चैव दुग्धस्य दुःखिता जननी तदा।
ततः पिष्टं समालोड्य तोयेन सह माधव ॥ ११६ ॥
आवयोः क्षीरमित्येव पानार्थं समुपानयत्।
अथ गव्यं पयस्तात कदाचित्प्राशितं मया ॥ ११७ ॥
पित्राऽहं यज्ञकाले हि नीतो ज्ञातिकुलं महत्।
तत्र सा क्षरते देवी दिव्या गौः सुरनन्दिनी ॥११८॥
तस्याहं तत्पयः पीत्वा रसेन ह्यमृतोपमम्।
ज्ञात्वा क्षीरगुणांश्चैव उपलभ्य हि संभवम् ॥ ११९ ॥
स च पिष्टरसस्तात न मे प्रीतिमुपावहत्।
ततोऽहमब्रुवं बाल्याज्जननीमात्मनस्तदा ॥ १२० ॥
नेदं क्षीरोदनं मातर्यत्त्वं मे दत्तवत्यसि।
ततो मामब्रवीन्माता दुःखशोकसमन्विता ॥ १२१ ॥
पुत्रस्नेहात्परिष्वज्य मूर्ध्नि चाघ्राय माधव।

हुआ। वहाँपर मैंने किसी दूध देनेवाली गऊका दूध दूहना देखा वह दूध अमृतके समान स्वादयुक्त मालूम हुआ। (१०९—११४)

अनन्तर बाल्यकालकी सुलभ चपलतासे मैंने अपनी मातासे कहा, हे माता! मुझे क्षीरयुक्त भोजन प्रदान करो। उस समय मेरी माताने दूधके अभावसे दुःखित होकर चावल पीसकर उसका पिष्ट बनाया और जलमें घोलके हमें पीनेको दिया। हे तात माधव! मैंने पहले एक बार गऊका दूध पीया था, यज्ञके समय पिता मुझे एक महत् ज्ञातिकुलमें लेगये थे, वहां दिव्य गऊ सुरनन्दिनीका दूध झरता था, मैंने उसका वही अमृत समान दूध पीके दूधका गुण और जिस प्रकार उसकी उत्पत्ति होती है, उसे जानता था, इसलिये वह पिष्टरस मुझे रुचिकर न हुआ। (११५—१२०)

हे तात! अनन्तर मैंने बाल-स्वभावके वशमें होकर उस समय अपनी मातासे कहा, हे माता! तुमने मुझे जो दिया है, वह दूध नहीं है। हे

कुतः क्षीरोदनं वत्स मुनीनां भावितात्मनाम् ॥१२२॥
वने निवसतां नित्यं कन्दमूलफलाशिनाम् ।
आस्थितानां नदीं दिव्यां वालखिल्यैर्निषेविताम् ॥१२३॥
कुतः क्षीरं वनस्थानां मुनीनां गिरिवासिनाम् ।
पावनानां वनाशानां वनाश्रमनिवासिनाम् ॥ १२४ ॥
ग्राम्याहारनिवृत्तानामारण्यफलभोजिनाम् ।
नास्ति पुत्र पयोऽरण्ये सुरभीगोत्रवर्जिते ॥ १२५ ॥
नदीगह्वरशैलेषु तीर्थेषु विविधेषु च ।
तपसा जप्यनित्यानां शिवो नः परमा गतिः ॥१२६ ॥
अप्रसाद्य विरूपाक्षं वरदं स्थाणुमव्ययम् ।
कुतः क्षीरोदनं वत्स सुखानि वसनानि च ॥ १२७ ॥
तं प्रपद्य सदा वत्स सर्वभावेन शंकरम् ।
तत्प्रसादाच्च कामेभ्यः फलं प्राप्स्यसि पुत्रक ॥ १२८ ॥
जनन्यास्तद्वचः श्रुत्वा तदाप्रभृति शत्रुहन् ।
प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा इदमम्बामचोदयम् ॥ १२९ ॥

माधव! अनन्तर दुःख शोकसे युक्त माताने पुत्रस्नेहवश मुझे गोदीमें मस्तक सूंघकर बोली, हे पुत्र! सदा वनवासी कन्दमूलफल भोजन करनेवाले आत्मज्ञ ऋषियोंके आश्रममें क्षीरोदन कहां है? जो लोग वालखिल्यगणसे निषेवित दिव्य नदीको अवलम्बन किये हुए हैं, उन वनवासी और पर्वतनिवासी मुनियोंके निकट दूध कहांसे आवेगा? (१२०—१२४)

हे पुत्र! आश्रमनिवासी, वायु और जल पीनेवाले तथा ग्राम्य आहारसे विरत, जङ्गलके फल खानेवाले ऋषियोंके सुरभीगोत्रसे रहित वनमें दूध नहीं है। नदी गुफा पर्वत और विविध तीर्थोंमें हम लोग तपस्याके द्वारा जपमें रत हुआ करते हैं, इसलिये देवोंके देव महेश्वर ही हम लोगोंकी परम गति हैं। हे पुत्र! अव्यय, स्थाणु, वरद विरूपाक्षको विना प्रसन्न किये क्षीरोदन और सुखसाधन वस्त्र आदि कहांसे प्राप्त होंगे? हे पुत्र! इसलिये तुम्हें सब भांतिसे चित्त लगाके उस ही महादेवके शरणागत होना उचित है, उनकी कृपासे तुम सब वाञ्छनीय फल पाओगे। (१२४—१२८)

हे शत्रुनाशन! माताका ऐसा वचन सुनके उस समय हाथ जोडके विनय-

कोऽयममम्ब महादेवः स कथं च प्रसीदति ।
कुत्र वा वसते देवो द्रष्टव्यो वा कथंचन ॥ १३० ॥
तुष्यते वा कथं शर्वो रूपं तस्य च कीदृशम् ।
कथं ज्ञेयः प्रसन्नो वा दर्शयेज्जननी मम ॥ १३१ ॥
एवमुक्ता तदा कृष्ण माता मे सुतवत्सला ।
मूर्धन्याघ्राय गोविन्द सबाष्पाकुललोचना ॥ १३२ ॥
प्रमार्जन्ती च गात्राणि मम वै मधुसूदन ।
दैन्यमालम्ब्य जननी इदमाह सुरोत्तम ॥ १३३ ॥
अम्बोवाच— दुर्विज्ञेयो महादेवो दुराधारो दुरन्तकः ।
दुराबाधश्च दुर्ग्राह्यो दुर्दृश्यो ह्यकृतात्मभिः ॥ १३४ ॥
यस्य रूपाण्यनेकानि प्रवदन्ति मनीषिणः ।
स्थानानि च विचित्राणि प्रसादाश्चाप्यनेकशः ॥१३५॥
को हि तत्त्वेन तद्वेद ईशस्य चरितं शुभम् ।
कृतवान्यानि रूपाणि देवदेवः पुरा किल ।

पूर्वक मैंने उससे यह वचन कहा, हे माता ! वह महादेव कौन हैं ? और वह किस प्रकार प्रसन्न होते हैं ? वह देव किस स्थानमें निवास करता है और किस प्रकारसे उसका दर्शन किया जाता है, किस भांति वह महेश्वर सन्तुष्ट होता है; उसका कैसा रूप है ? किस प्रकार लोग उसे प्रसन्न हुआ जान सकते हैं ? हे माता ! तुम मेरे निकट यह सब वृत्तान्त वर्णन करो । (१२९-१३१)

हे कृष्ण ! उस समय जब मैंने पुत्र-वत्सला मातासे ऐसा वचन कहा, तब वह मेरा मस्तक सूंघकर आंसू भरे हुए नेत्रसे युक्त होकर शरीरपर हाथ फेरकर दीनता अवलम्बन करके बोली । (१३२-१३३)

माता बोली, महादेव दुर्विज्ञेय (शास्त्रसे जानना अशक्य है) दुराधार (शास्त्रसे ज्ञान होने पर भी मनमें धारण करना अयोग्य) है। दुरबाधि (ध्रियमाण होनेपर भी लय विक्षेपके द्वारा सङ्कट-युक्त है,) क्यों कि वह दुरन्तक है, (अर्थात् उसमें सब बन्ध दूषित हुआ करते हैं,) विघ्नाभावमें भी वह दुर्ग्राह्य है । वह सहजमें नहीं जाना जाता और पुण्यहीन मनुष्योंको दुर्दृश्य है (वैराग्यसे भी वह किसीके दृष्टिगोचर नहीं होता) मनीषी लोग उसके अनेक प्रकारके रूप, विचित्र स्थान और अनेक भांतिकी

क्रीडते च तथा शर्वः प्रसीदति यथा च वै ॥ १३६ ॥
हृदिस्थः सर्वभूतानां विश्वरूपो महेश्वरः ।
भक्तानामनुकम्पार्थं दर्शनं च यथाश्रुतम् ॥ १३७ ॥
मुनीनां ब्रुवतां दिव्यमीशानचरितं शुभम् ।
कृतवान्यानि रूपाणि कथितानि दिवौकसैः ॥ १३८ ॥
अनुग्रहार्थं विप्राणां शृणु वत्स समासतः ।
तानि ते कीर्तयिष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ १३९ ॥
अम्बोवाच— ब्रह्मविष्णुसुरेन्द्राणां रुद्रादित्याश्विनामपि ।
विश्वेषामपि देवानां वपुर्धारयते भवः ॥ १४० ॥
नराणां देवनारीणां तथा प्रेतपिशाचयोः ।
किरातशबराणां च जलजानामनेकशः ॥ १४१ ॥
करोति भगवान् रूपमाटव्यशबराण्यपि ।
कूर्मो मत्स्यस्तथा शङ्खः प्रवालाङ्कुरभूषणः ॥ १४२ ॥
यक्षराक्षससर्पाणां दैत्यदानवयोरपि ।
वपुर्धारयते देवो भूयश्च बिलवासिनाम् ॥ १४३ ॥

प्रसन्नताके विषय कहा करते हैं, उस ईश्वरके शुभचरितोंको कौन जाननेमें समर्थ होता है ? (१३४-१३६)

पहले समयमें देवोंके देव महेश्वरने जिन रूपोंको धारण किया था, तथा वह जिस प्रकार क्रीडा करते, जैसे प्रसन्न होते, विश्वरूप महेश्वर सब प्राणियोंके हृदयस्थ होनेपर भी भक्तोंपर कृपा करके जिस प्रकार रूप धारण करते हैं, जिस भांति उनका दर्शन किया जा सकता है, महादेवके पवित्र चरित्र कहनेवाले मुनियोंके मुखसे उनके शुभ चरित्रोंको मैंने जिस प्रकार सुना है, हे तात ! ब्राह्मणोंपर अनुग्रह करनेके निमित्त उन्होंने जो सब रूप धारण किये थे, देवताओंसे कहे हुए उन सब विषयोंको संक्षेपमें सुनो । तुमने मुझसे जो प्रश्न किया है, वह सब वृत्तान्त मैं तुमसे कहती हूं । (१३६-१३९)

माता बोली, भगवान महेश्वर, ब्रह्मा, विष्णु, महेन्द्र, रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार और विश्वदेवगणके रूपको धारण करते हैं । पुरुष, स्त्री, प्रेत, पिशाच, किरात, शबर और विविध जलचर तथा वनचर जीवोंका रूप धारण किया करते हैं । वह कूर्म, शङ्ख और प्रवालांकुर-भूषण वसन्तकाल स्वरूप होते हैं । वह देव यक्ष, राक्षस,

व्याघ्रसिंहमृगाणां च तरक्षृक्षपतत्रिणाम्।
उलूकश्वशृगालानां रूपाणि कुरुतेऽपि च ॥ १४४ ॥
हंसकाकमयूराणां कृकलासकसारसाम्।
रूपाणि च बलाकानां गृध्रचक्राङ्गयोरपि ॥ १४५ ॥
करोति वा सरूपाणि धारयत्यपि पर्वतम्।
गोरूपं च महादेवो हस्त्यश्वोष्ट्रखराकृतिः ॥ १४६ ॥
छागशार्दूलरूपश्च अनेकमृगरूपधृक्।
अण्डजानां च दिव्यानां वपुर्धारयते भवः ॥ १४७ ॥
दण्डी छत्री च कुण्डी च द्विजानां वारणस्तथा।
षण्मुखो वै बहुमुखस्त्रिनेत्रो बहुशीर्षकः ॥ १४८ ॥
अनेककटिपादश्च अनेकोदरवक्त्रधृत्।
अनेकपाणिपार्श्वश्च अनेकगणसंवृतः ॥ १४९ ॥
ऋषिगन्धर्वरूपश्च सिद्धचारणरूपधृत्।
भस्मपाण्डुरगात्रश्च चन्द्रार्धकृतभूषणः ॥ १५० ॥
अनेकरावसंघुष्टश्चानेकस्तुतिसंस्कृतः।

सर्प, दैत्य, दानव और बिलवासिगणके रूपको धारण करते हैं। वाघ, सिंह, हरिन, तेंदुआ, भालू, पक्षी, उल्लू और सियारोंके रूपको अवलम्बन करते हैं; वह हंस, कौआ, मोर, कृकलास, सारस, बक, गिद्ध, चक्रवाक, स्वर्णचातक तथा पर्वत आदिके रूपको भी धारण किया करते हैं। महादेव गऊ, हाथी, घोडे, और खरकी आकृति भी अवलम्बन करते हैं। (१४०—१४६)

वह बकरे और शार्दूलके रूपको धारण करते तथा अनेक प्रकारके मृगोंका रूप अवलम्बन किया करते हैं। महेश्वर दिव्य अण्डजोंकी आकृति धारण करते हैं, तथा वह दण्ड, छत्र और कुण्डल धारण करके द्विजोंको अवलम्बन किया करते हैं। वह षण्मुख और अनेक मुखवाले, त्रिलोचन और बहुशीर्षक हैं। वह अनेक कटि, अनेक चरण, अनेक उदर और शरीर धारण करते हैं। वह अनेक हाथ, अनेक पार्श्व और अनेकों गणोंसे युक्त रहते हैं। वह ऋषिरूप, गन्धर्वरूप और सिद्धचारणोंका रूप धारण किया करते हैं। उनका शरीर भस्मके द्वारा पाण्डुर वर्ण और अर्द्धचन्द्रसे विभूषित है; वह विविध शब्दोंसे घोषित और अनेक स्तोत्रोंसे संस्कारयुक्त है। (१४७-१५१)

सर्वभूतान्तकः सर्वः सर्वलोकप्रतिष्ठितः ॥ १५१ ॥
सर्वलोकान्तरात्मा च सर्वगः सर्वव्याप्यपि ।
सर्वत्र भगवान् ज्ञेयो हृदिस्थः सर्वदेहिनाम् ॥ १५२ ॥
यो हि यं कामयेत्कामं यस्मिन्नर्थेऽर्च्यते पुनः ।
तत्सर्वं वेत्ति देवेशस्तं प्रपद्य यदीच्छसि ॥ १५३ ॥
नन्दते कुप्यते चापि तथा हुंकारयत्यपि ।
चक्री शूली गदापाणिर्मुसली खड्गपट्टिशी ॥ १५४ ॥
भूधरो नागमौञ्जी च नागकुण्डलकुण्डली ।
नागयज्ञोपवीती च नागचर्मोत्तरच्छदः ॥ १५५ ॥
हसते गायते चैव नृत्यते च मनोहरम् ।
वादयत्यपि वाद्यानि विचित्राणि गणैर्युतः ॥ १५६ ॥
वल्गते जृम्भते चैव रुदते रोदयत्यपि ।
उन्मत्तमत्तरूपं च भाषते चापि सुस्वरः ॥ १५७ ॥
अतीव हसते रौद्रस्त्रासयन्नयनैर्जनम् ।
जागर्ति चैव स्वपिति जृम्भते च यथासुखम् ॥१५८॥

वह सब भूतोंके नाशक होके सब लोकोंमें प्रतिष्ठित हैं; सर्व स्वरूप, सब प्राणियोंकी अन्तरात्मा, सर्वग और सर्वव्यापी वह भगवान सर्वत्र विद्यमान है, और देहधारियोंके हृदयमें निवास करता है। जो लोग जिस विषयकी अभिलाषा करके जिस निमित्त उसकी पूजा किया करते हैं, वह देवेश महेश्वर उन सब विषयोंको जानता है; इसलिये यदि इच्छा हो, तो तुम उसकी शरणमें जाओ। वह आनन्दित होता, कुपित होता और हुङ्कार प्रकाश किया करता है। वह चक्र, शूल, गदा, मुसल, खड्ग और पट्टिश धारण किया करता है; वह पर्वत होके नागकी बनी हुई मौञ्जी मेखला धारण करता है; वह सांपोंका जनेऊ पहरता और गजाम्बर धारण किया करता है। वह हंसता, गाता, मनोहर रीतिसे नाचता और भूतोंमें घिरकर विचित्र बाजा बजाया करता है। (१५१—१५६)

वह बात करता, जम्हाई लेता, रोता और रुलाता है। वह उन्मत्तरूप वा मत्त स्वरूप और उत्तम स्वरसे वार्त्तालाप किया करता है। वह रौद्र रूपसे तीनों नेत्रोंके द्वारा लोगोंको त्रासित करके अत्यन्त भयङ्कर हास्य किया करता है; वह जागता, सोता और

जपते जप्यते चैव तपते तप्यते पुनः ।
ददाति प्रतिगृह्णाति युञ्जते ध्यायतेऽपि च ॥ १५९ ॥
वेदीमध्ये तथा यूपे गोष्ठमध्ये हुताशने ।
दृश्यतेऽदृश्यते चापि बालो वृद्धो युवा तथा ॥ १६० ॥
क्रीडते ऋषिकन्याभिर्ऋषिपत्नीभिरेव च ।
ऊर्ध्वकेशो महाशेफो नग्नो विकृतलोचनः ॥ १६१ ॥
गौरः श्यामस्तथा कृष्णः पाण्डुरो धूमलोहितः ।
विकृताक्षो विशालाक्षो दिग्वासाः सर्ववासकः ॥१६२॥
अरूपस्याद्यरूपस्य अतिरूपाद्यरूपिणः ।
अनाद्यं तमजस्यान्तं वेत्स्यते कोऽस्य तत्त्वतः ॥१६३॥
हृदि प्राणो मनो जीवो योगात्मा योगसंज्ञितः ।
ध्यानं तत्परमात्मा च भावग्राह्यो महेश्वरः ॥ १६४ ॥
वादको गायनश्चैव सहस्रशतलोचनः ।
एकवक्त्रो द्विवक्त्रश्च त्रिवक्त्रोऽनेकवक्त्रकः ॥ १६५ ॥

सुखपूर्वक जमुहाई लेता है । वह जप करता है, और सब लोग उसका जप किया करते हैं; वह तप करता है, और उसके निमित्त लोग तपस्या किया करते हैं । वह दान करता और प्रतिग्रह ग्रहण किया करता है, योग करता और ध्यान करता है । वेदी, यूप, गोसमूहके बीच और अग्निमें कभी दीख पडता तथा कभी अदृश्य होता है । वही बालक, वृद्ध और युवा है, वही ऋषि-कन्या तथा ऋषिपत्नियोंके सङ्ग क्रीडा करता है । वह उर्ध्वकेश, महालिङ्ग, नग्न और विकृतनेत्र है । (१५७-१६१)

वह गौर, श्याम, कृष्ण, पाण्डुर, धूम्र और लालवर्णसे युक्त है; वह विकृताक्ष, विशालाक्ष, दिगम्बर और सर्वाम्बर अर्थात् सबका आच्छादक है; उस रूपरहित अर्थात् आद्यरूपी, निष्कल मायावी, अतिरूप, नाशकार्यके कारण, आद्यरूप, हिरण्यगर्भ, अनादि, अनन्त, जन्मरहित महेश्वरका अन्त यथार्थ रीतिसे कौन जान सकता है ? जो हृदयके बीच प्राण, मन और जीवस्वरूप अर्थात् अन्नमय, मनोमय और विज्ञान-मय कोषरूपसे वर्णित होता है, जो योगात्मा तथा आनन्दमय है, वही योगसंज्ञित योगी कहा जाता है, वह परम शुद्ध योगस्वरूप परमात्मा महेश्वर सूक्ष्म मनोवृत्तिके द्वारा भी मालूम होने योग्य नहीं है । (१६२—१६४)

तद्भक्तस्तद्गतो नित्यं तन्निष्ठस्तत्परायणः ।
भज पुत्र महादेवं ततः प्राप्स्यसि चेप्सितम् ॥ १६६ ॥
जनन्यास्तद्वचः श्रुत्वा तदाप्रभृति शत्रुहन् ।
मम भक्तिर्महादेवे नैष्ठिकी समपद्यत ॥ १६७ ॥
ततोऽहं तप आस्थाय तोषयामास शंकरम् ।
एकं वर्षसहस्रं तु वामाङ्गुष्ठाग्रविष्ठितः ॥ १६८ ॥
एकं वर्षशतं चैव फलाहारस्ततोऽभवम् ।
द्वितीयं शीर्णपर्णाशी तृतीयं चाम्बुभोजनः ॥ १६९ ॥
शतानि सप्त चैवाहं वायुभक्षस्तदाभवम् ।
एकं वर्षसहस्रं तु दिव्यमाराधितो मया ॥ १७० ॥
ततस्तुष्टो महादेवः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ।
एकभक्त इति ज्ञात्वा जिज्ञासां कुरुते तदा ॥ १७१ ॥
शक्ररूपं स कृत्वा तु सर्वैर्देवगणैर्वृतः ।
सहस्राक्षस्तदा भूत्वा वज्रपाणिर्महायशाः ॥ १७२ ॥

वही वादक, गीत गानेवाला, सहस्र-शतलोचन, एकवक्त्र, आनण्दभुक्, द्विजिह्व, लिङ्गदेह और जीवस्वरूप है, त्रिवक्त्र स्थूल शरीरके सहित पूर्वोक्त दोनों शरीर स्वरूप और अनेकवक्त्र अर्थात् विराट होता है। हे पुत्र! तुम उसहीका भक्त होके उसीमें चित्त लगाओ, उसीमें निष्ठा करो और उसही में रत होके महादेवकी ही आराधना करो; तब तुम अभिलषित विषयोंको प्राप्त करोगे। (१६५–१६६)

हे शत्रुनाशन! माताका ऐसा वचन सुनके उस ही समय महादेवके विषयमें मेरी नैष्ठिकी भक्ति उत्पन्न हुई। अनन्तर मैंने तपस्या करके महादेवको सन्तुष्ट किया; बायें अंगुठेके सहारे स्थित होकर एक हजार वर्ष बिताये, एक सौ वर्ष-तक फल भोजन करके रहा; दूसरी बार एक सौ वर्षतक सूखे पत्तोंको खाके रहा, फिर एक सौ वर्षतक जल पीके समय बिताया; अनन्तर सात सौ वर्ष-तक वायु पीके रहा; इस ही प्रकार देव परिमाणसे एक सहस्र वर्षतक महेश्वर मेरे द्वारा पूजित हुए। (१६७–१७०)

अनन्तर सब लोकोंके ईश्वर प्रभु महादेव प्रसन्न हुए। उस समय उन्होंने मुझे अपना मुख्य भक्त समझके जान-नेकी इच्छा की। उन्होंने इन्द्रका रूप धरके सब देवताओंके सहित महायशस्वी वज्रधारी सहस्राक्षके वेषसे मुझको

सुधावदातं रक्ताक्षं स्तब्धकर्णं मदोत्कटम् ।
आवेष्टितकरं घोरं चतुर्दंष्ट्रं महागजम् ॥ १७३ ॥
समास्थितः स भगवान् दीप्यमानः स्वतेजसा ।
आजगाम किरीटी तु हारकेयूरभूषितः ॥ १७४ ॥
पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि ।
सेव्यमानोऽप्सरोभिश्च दिव्यगन्धर्वनादितैः ॥ १७५ ॥
ततो मामाह देवेन्द्रस्तुष्टस्तेऽहं द्विजोत्तम ।
वरं वृणीष्व मत्तस्त्वं यत्ते मनसि वर्तते ॥ १७६ ॥
शक्रस्य तु वचः श्रुत्वा नाहं प्रीतमनाऽभवम् ।
अब्रुवं च तदा हृष्टो देवराजमिदं वचः ॥ १७७ ॥
नाहं त्वत्तो वरं काङ्क्षे नान्यस्मादपि दैवतात् ।
महादेवादृते सौम्य सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ १७८ ॥
सत्यं सत्यं हि नः शक्र वाक्यमेतत्सुनिश्चितम् ।
न यन्महेश्वरं मुक्त्वा कथान्या मम रोचते ॥ १७९ ॥
पशुपतिवचनाद्भवामि सद्यः कृमिरथवा तरुरप्यनेकशाखः ।
अपशुपतिवरप्रसादजा मे त्रिभुवनराज्यविभूतिरप्यनिष्टा ॥१८०॥

भांति अवदात, लालनेत्र, स्तब्धकर्ण, मदोत्कट, विशालभुज, घोररूपी चार दांतवाले महामातङ्गपर चढके अपने तेजसे प्रकाशमान होकर हार, किरीट और कुण्डल विभूषित शरीरसे आगमन किया। उनके सिरपर पाण्डुर आतपत्र शोभित था, वह दिव्य गन्धर्वोंकी सङ्गीतध्वनि और अप्सराओं द्वारा सेव्यमान थे। (१७१-१७५)

अनन्तर देवराजरूपी भगवानने कहा, हे द्विजोत्तम ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं, तुम्हारे मनमें जो कुछ अभिलाष हो, वह वर मुझसे मांगो। इन्द्रका वचन सुनके मैं प्रसन्नचित्त नहीं हुआ। हे कृष्ण ! उस समय मैंने देवराजसे यह वचन कहा, मैं तुमसे तथा महादेवके अतिरिक्त दूसरे किसी देवतासे भी वरकी अभिलाष नहीं करता, यह मैं तुम्हारे समीप सत्य ही कहता हूं। हे शक्र ! मेरा यह भली भांति निश्चित वचन अत्यन्त सत्य है; क्यों कि महेश्वरके अतिरिक्त मेरी दूसरे किसीके वचनमें भी रुचि नहीं होती है। (१७६-१७९)

पशुपतिके वचनके अनुसार मैं उस ही समय कृमि अथवा अनेक शाखायुक्त

जन्म श्वपाकमध्येऽपि मेऽस्तु हरचरणवन्दनरतस्य ।
मा वानीश्वरभक्तो भवानि भवनेऽपि शक्रस्य ॥ १८१ ॥
वाय्वम्बुभुजोऽपि सतो नरस्य दुःखक्षयः कुतस्तस्य ।
भवति हि सुरासुरगुरौ यस्य न विश्वेश्वरे भक्तिः ॥ १८२ ॥
अलमन्याभिस्तेषां कथाभिरप्यन्यधर्मयुक्ताभिः ।
येषां न क्षणमपि रुचितो हरचरणस्मरणाविच्छेदः ॥ १८३ ॥
हरचरणनिरतमतिना भवितव्यमनार्जवं युगं प्राप्य ।
संसारभयं न भवति हरभक्तिरसायनं पीत्वा ॥ १८४ ॥
दिवसं दिवसार्धं वा मुहूर्तं वा क्षणं लवम् ।
न ह्यलब्धप्रसादस्य भक्तिर्भवति शंकरे ॥ १८५ ॥
अपि कीटः पतङ्गो वा भवेयं शंकराज्ञया ।
न तु शक्र त्वया दत्तं त्रैलोक्यमपि कामये ॥ १८६ ॥
श्वापि महेश्वरवचनाद्भवामि स हि नः परः कामः ।
त्रिदशगणराज्यमपि खलु नेच्छाम्यमहेश्वराज्ञप्तम् ॥ १८७ ॥

वृक्ष हूंगा और महादेवके अतिरिक्त मैं दूसरेके वर वा कृपासे तीनों लोकके राज्य तथा ऐश्वर्यकी भी इच्छा नहीं करता। शिवचरणमें रत होकर मेरा चाण्डालकुलमें जन्म हो, तौभी उत्तम है और अनीश्वरभक्त होके इन्द्रभवनमें भी मेरा जन्म न होवे। सुरासुरगुरु विश्वेश्वरमें जिसकी भक्ति नहीं है, उस पुरुषके वायु भक्षण वा प्राशन करके निवास करनेपर भी किस प्रकार उसका दुःख नष्ट होगा? हरके चरणके स्मरण विच्छेदमें जिसकी अल्प समय भी रुचि न हो, उसे दूसरेके वचन तथा अन्य धर्मयुक्त वाक्यसे क्या प्रयोजन है? अनार्जव कलियुग उपस्थित होनेपर मनुष्योंको शिवचरणमें सदा रत होना उचित है, हरभक्ति रसायनको पीनेसे मनुष्यको संसारका भय नहीं होता। (१८०—१८४)

दिन, दिनका अर्द्ध भाग, मुहूर्त, क्षण और लवमात्र समयमें भी जो शंकरके प्रसाद पानेमें समर्थ नहीं है, उसकी उनमें भक्ति नहीं होती। महादेवकी आज्ञानुसार चाहे कीट वा पतङ्ग योनिमें भले ही उत्पन्न होऊं। हे देवराज! परन्तु तुम्हारे दिये हुए तीनों लोकोंकी भी मैं कामना नहीं करता; महेश्वरके वचनसे चाहे कुत्ता भलेही बनूं। क्योंकि वेही मेरे परम प्रार्थनीय हैं; और उनकी आज्ञा न

न नाकपृष्ठं न च देवराज्यं न ब्रह्मलोकं न च निष्कलत्वम् ।
न सर्वकामानखिलान् वृणोमि हरस्य दासत्वमहं वृणोमि ॥१८८॥
यावच्छशाङ्कधवलामलबद्धमौलिर्न प्रीयते पशुपतिर्भगवान्ममेशः ।
तावज्जरामरणजन्मशताभिघातैर्दुःखानि देहविहितानि समुद्वहामि ॥१८९॥
दिवसकरशशाङ्कवह्निदीप्तं त्रिभुवनसारमसारमाद्यमेकम् ।
अजरममरमप्रसाद्य रुद्रं जगति पुमानिह को लभेत शान्तिम् ॥१९०॥
यदि नाम जन्म भूयो भवति मदीयैः पुनर्दोषैः ।
तस्मिंस्तस्मिन् जन्मनि भवे भवेन्मेऽक्षया भक्तिः ॥१९१॥
शक्र उवाच– कः पुनर्भवने हेतुरीशे कारणकारणे ।
येन शर्वादृतेऽन्यस्मात्प्रसादं नाभिकाङ्क्षसि ॥ १९२ ॥
उपमन्युरुवाच– सदसद्व्यक्तमव्यक्तं यमाहुर्ब्रह्मवादिनः ।

पानेसे देवताओंके राज्यकी भी इच्छा नहीं करता । मैं स्वर्गलोककी अभिलाष नहीं करता, देवराज्यकी इच्छा नहीं करता, ब्रह्मलोककी वाञ्छा नहीं है, निष्कलत्वकी स्पृहा नहीं करता और समस्त काम्य विषयोंकी भी कामना नहीं करता; केवल हरके दासत्वप्राप्तिकी इच्छा करता हूं । (१८७—१८८)

जबतक शशाङ्कधवल, अमल, बद्ध मौलि भगवान महेश पशुपति प्रसन्न नहीं होते, तब तक जरा, मरण और सैकड़ों जन्मोंके अभिघातके देह विहित क्लेशोंको ढोता रहूंगा । सूर्य, चन्द्रमा और अग्निके द्वारा प्रकाशमान त्रिभुवन-सारभूत और जिससे बढके सारभूत और कुछ भी नहीं है, उस एकमात्र आदि पुरुष, अजर, अमर रुद्रदेवको विना प्रसन्न किये इस जगत्में कौन पुरुष शान्ति लाभ करनेमें समर्थ होगा? मेरे दोषसे यदि मेरा पुनर्वार जन्म हो, तो उन जन्मोंमें भी महादेवके विषयमें मेरी अक्षय भक्ति उत्पन्न होवे । (१८९—१९१)

इन्द्र बोले, जब तुम महेश्वरके अतिरिक्त दूसरे किसी देवताके प्रसन्नताकी इच्छा नहीं करते हो, तब उस कारणके भी कारण ईश्वरकी सत्ताके विषयमें कौनसी युक्ति है । जो प्रलयकालमें समस्त जगत्का नाश करता है, तापकी शान्तिके निमित्त अग्निके निकट गमन करनेकी भांति उसके निकट वरकी इच्छा करनी तुम्हारा मूढताका कार्य होरहा है । (१९२)

उपमन्यु बोले ब्रह्मवादी लोग जिसे सत्प्रवाह वा अनादि; असत् शून्य, व्यक्त परमाणु और अव्यक्त प्रकृति

नित्यमेकमनेकं च वरं तस्माद् वृणीमहे ॥ १९३ ॥
अनादिमध्यपर्यन्तं ज्ञानैश्वर्यमचिन्तितम् ।
आत्मानं परमं यस्माद्वरं तस्माद् वृणीमहे ॥ १९४ ॥
ऐश्वर्यं सकलं यस्मादनुत्पादितमव्ययम् ।
अबीजाद्बीजसंभूतं वरं तस्माद् वृणीमहे ॥ १९५ ॥
तमसः परमं ज्योतिस्तपस्तद् वृत्तिनां परम् ।
यं ज्ञात्वा नानुशोचन्ति वरं तस्माद् वृणीमहे ॥१९६॥
भूतभावन भावज्ञं सर्वभूताभिभावनम् ।
सर्वगं सर्वदं देवं पूजयामि पुरन्दर ॥ १९७ ॥
हेतुवादैर्विनिर्मुक्तं सांख्ययोगार्थदं परम् ।
यमुपासन्ति तत्त्वज्ञा वरं तस्माद् वृणीमहे ॥ १९८ ॥
मघवन्मघवात्मानं यं वदन्ति सुरेश्वरम् ।
सर्वभूतगुरुं देवं वरं तस्माद् वृणीमहे ॥ १९९ ॥
यत्पूर्वमसृजद्देवं ब्रह्माणं लोकभावनम् ।

कहते हैं, जो नित्य, असंहत कार्य कारणात्मक है, उस परम शिवाख्य परमेश्वरसे मैं वर पानेकी इच्छा करता हूं। जिसका आदि, मध्य और अन्त नहीं है, जो ज्ञान, ऐश्वर्यमय और अचिन्तित परमात्मा है, उसहीसे मैं वर पानेकी इच्छा करता हूं। जिससे सब ऐश्वर्य उत्पन्न हुए हैं, जो अव्यय है, जिसका बीज नहीं है, इसके अतिरिक्त जिससे सब बीज उत्पन्न हुए हैं, मैं उसहीसे वर पानेकी इच्छा करता हूं। जो अन्धकारको दूर करनेवाला परम ज्योति और अपनेमें निष्ठावान लोगोंके निमित्त परम तपस्वरूप है, जिसे जाननेसे पण्डित लोग शोक नहीं करते, उसहीसे मैं वर पानेकी इच्छा करता हूं। (१९३-१९६)

हे पुरन्दर! जो आकाश आदि भूतों और जीवोंको उत्पन्न करता है और जो सबके अभिप्रायको जानता है, तथा जो सब प्राणियोंका नाश करनेमें समर्थ है, मैं उस ही सर्वगत, सर्वद देवकी पूजा करता हूं। तत्वज्ञ लोग हेतुवादोंसे विनिर्मुक्त जिस उपास्यकी उपासना किया करते हैं उसके निकट मैं वर पानेकी इच्छा करता हूं। हे देवराज! पण्डित लोग जिसे मघवात्मा सुरेश्वर कहते हैं, उस गुरुदेवके निकट मैं वर पानेकी इच्छा करता हूं। जिसने बीजभूत अव्याकृत आकाशमें ब्रह्माण्ड

अण्डमाकाशमापूर्य वरं तस्माद् वृणीमहे ॥ २०० ॥
अग्निरापोऽनिलः पृथ्वी खं बुद्धिश्च मनो महान् ।
स्रष्टा चैषां भवेद्योऽन्यो ब्रूहि कः परमेश्वरात् ॥ २०१ ॥
मनो मतिरहङ्कारस्तन्मात्राणीन्द्रियाणि च ।
ब्रूहि चैषां भवेच्छक्र कोऽन्योऽस्ति परमं शिवात् ॥२०२॥
स्रष्टारं भुवनस्येह वदन्तीह पितामहम् ।
आराध्य स तु देवेशमश्नुते महतीं श्रियम् ॥ २०३ ॥
भगवत्युत्तमैश्वर्यं ब्रह्मविष्णुपुरोगमम् ।
विद्यते वै महादेवाद् ब्रूहि कः परमेश्वरात् ॥ २०४ ॥
दैत्यदानवमुख्यानामाधिपत्यारिमर्दनात् ।
कोऽन्यः शक्नोति देवेशाद्दितेः संपादितुं सुतान् ॥२०५॥
दिक्कालसूर्यतेजांसि ग्रहवाय्विन्दुतारकाः ।
विद्धि त्वेते महादेवाद् ब्रूहि कः परमेश्वरात् ॥ २०६॥

रूपसे पूरण करके पहले लोकभावन प्रजापतिको उत्पन्न किया है। अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश, अहङ्कार, मन और महत्तत्व, इन सबको परमेश्वरके अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष उत्पन्न कर सकता है ? (१९७-२०१)

हे देवराज ! मन शब्द वाच्य अव्यक्त और मति शब्दसे अभिधेय महत्तत्त्व तथा अहङ्कार तत्त्व, पञ्चतन्मात्र और इन्द्रियें, इन सबके परम अवलम्ब शिवके अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष हो सकता है, उसे तुमही वर्णन करो। इस लोकमें सब कोई पितामहको जगत्-स्रष्टा कहा करते हैं, परन्तु वह प्रजापति देवेश्वर महेश्वरकी आराधना करके महती समृद्धि भोग किया करता है, एक एक गुणके प्रधान उपाधिक ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रदेवके सृष्टिकर्त्ता तुरीय मूर्त्तिवाले भगवानके निकटसे जो उत्तम ऐश्वर्य विद्यमान हैं, वह भी उन्हें महादेवके द्वारा प्राप्त हुए हैं, इसलिये कहो तो सही, परमेश्वरसे श्रेष्ठ और दूसरा कौन ईश्वर है ? दैत्यदानवोंके बीच जिन्होंने प्रधानता लाभ की है, उन्हें आधिपत्य प्रदान और शत्रुओंको मर्द्दन करके दितिनन्दन हिरण्यकशिपु प्रभृतिको ऐश्वर्ययुक्त करनेमें देवेश्वर महादेवके अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष समर्थ होसकता है। (२०२-२०५)

दिशा, काल, सूर्य, तेज, ग्रह, वायु, चन्द्रमा और नक्षत्रों तथा दैत्योंको जो परपीडा और दूसरेको निग्रह करनेकी

अथोत्पत्तिविनाशे वा यज्ञस्य त्रिपुरस्य वा।
दैत्यदानवमुख्यानामाधिपत्यारिमर्दनः ॥ २०७ ॥
किं चात्र बहुभिः सूक्तैर्हेतुवादैः पुरन्दर।
सहस्रनयनं दृष्ट्वा त्वामेव सुरसत्तम ॥ २०८ ॥
पूजितं सिद्धगन्धर्वैर्देवैश्चतुर्भिर्ऋषिभिस्तदा।
देवदेवप्रसादेन तत्सर्वं कुशिकोत्तम ॥ २०९ ॥
अव्यक्तमुक्तकेशाय सर्वगस्येदमात्मकम्।
चेतनाचेतनाद्येषु शक्र विद्धि महेश्वरात् ॥ २१० ॥
भुवाद्येषु महान्तेषु लोकालोकान्तरेषु च।
द्वीपस्थानेषु मेरोश्च विभवेष्वन्तरेषु च ॥ २११ ॥
भगवन् मघवन् देवं वदन्ते तत्त्वदर्शिनः।
यदि देवाः सुराः शक्र पश्यन्त्यन्यां भवाकृतिम् ॥२१२॥
किं न गच्छन्ति शरणं मर्दिताश्चासुरैः सुराः।

सामर्थ्य है, वह सब ही ईश्वरके वशमें जानना योग्य है; इसलिये परमेश्वर महादेवसे श्रेष्ठ दूसरा कौन प्रभु है? यज्ञ और त्रिपुरासुरकी उत्पत्ति तथा विनाशके विषयमें तथा दैत्य-दानवोंके बीच मुख्य मुख्य पुरुषोंके आधिपत्य प्रदान करनेमें शत्रुओंको मर्दनेवाले परमेश्वरके सिवा दूसरा और कौन समर्थ होसकता है? हे सुरसत्तम पुरन्दर! अब मैं महेश्वरकी कृपासे तुम्हें ही देवताओंमें पूजित देखता हूं। (२०६-२०८)

हे कौशिक! महादेवकी कृपासे सिद्ध, गन्धर्व, देवता और ऋषि लोग जब सहस्राक्षकी पूजा किया करते हैं, तब इस विषयमें अधिक हेतुवादका क्या प्रयोजन है? यह सब कार्य महादेवके ही कृपासे होरहा है। हे देवराज! अचेतन समस्त पदार्थोंमें सर्वव्यापक ईश्वरका व्याप्य इदमात्मक सब वस्तुओंमें दिखाई देता है। जो कोई जीव जो कुछ भोग्यवस्तु भोग करता है, वह सब वस्तु महेश्वरसे ही प्राप्त हुई जानो। हे भगवन् इन्द्र! भूर्भुवः स्वः महः प्रभृति सब लोकोंमें, लोकालोक पर्वतके भीतर, दिव्य स्थानोंमें सुमेरुके बीच, द्वीपस्थानों और चन्द्र सूर्य आदिसे युक्त ब्रह्माण्डकी अन्तरालमें तत्वदर्शी पुरुष उस देवोंके देवकी वन्दना किया करते हैं। (२०९-२१२)

हे शक्र! देवता और सुर लोग यदि महादेवके समान दूसरी आकृति

अभिघातेषु देवानां सयक्षोरगरक्षसाम् ॥ २१३ ॥
परस्परविनाशेषु स्वस्थानैश्वर्यदो भवः ।
अन्धकस्याथ शुक्रस्य दुन्दुभेर्महिषस्य च ॥ २१४ ॥
यक्षेन्द्रबलरक्षःसु निवातकवचेषु च ।
वरदानावघाताय ब्रूहि कोऽन्यो महेश्वरात् ॥ २१५ ॥
सुरासुरगुरोर्वक्त्रे कस्य रेतः पुरा हुतम् ।
कस्य वान्यस्य रेतस्तत्येन हैमो गिरिः कृतः ॥ २१६ ॥
दिग्वासाः कीर्त्यते कोऽन्यो लोके कश्चोर्ध्वरेतसः ।
कस्य चार्धे स्थिता कान्ता अनङ्गः केन निर्जितः ॥२१७ ॥
ब्रूहीन्द्र परमं स्थानं कस्य देवैः प्रशस्यते ।
श्मशाने कस्य क्रीडार्थं नृत्ये वा कोऽभिभाष्यते ॥२१८ ॥
यस्यैश्वर्यं समानं च भूतैः को वापि क्रीडते ।
कस्य तुल्यबला देवगणाश्चैश्वर्यदर्पिताः ॥ २१९ ॥
घुष्यते ह्यचलं स्थानं कस्य त्रैलोक्यपूजितम् ।

अवलोकन करते, तो वे लोग तथा असुरकुलके द्वारा अर्दित सुर लोग क्या उसके शरणापन्न न होते? यक्ष, राक्षस, सर्प और देवताओंके परस्पर विनाशरूप अभिघातके समय महादेव ही यथायोग्य स्वस्थानस्वरूप ऐश्वर्य प्रदान किया करते हैं। भला कहो तो सही; अन्धक, शुक्र, दुन्दुभी, महिष, यक्ष, इन्द्र, बल, राक्षस और निवात-कवचोंको वरदान तथा उनके नाश करनेके विषयमें महेश्वरके सिवाय दूसरा कौन समर्थ होसकता है? किस पुरुषके मुखमें पहले समय सुरासुरगुरुके रेत हुत हुए थे? दूसरे किस पुरुषका इस प्रकार रेत है, जिसके द्वारा हिमगिरि निर्मित हुआ है। इसके सिवाय किसको दिगंबर कहते हैं और इसके सिवाय ऊर्ध्वरेता कौन है? किसके अर्द्धाङ्गमें कान्ता निवास करती है? किस पुरुषके द्वारा अनङ्ग निर्जित हुआ था? (२१२-२१७)

हे देवराज! कहो तो सही; किसके परम स्थानकी देवता लोग प्रशंसा किया करते हैं? श्मशानके बीच क्रीडाके निमित्त नृत्य विषयमें कौन अभिलषित होता है? किसका ऐश्वर्य समान भावसे रहता है? कौन पुरुष भूतगणके सङ्ग क्रीडा करता है? देवता लोग किसके बलसे बलवान होके ऐश्वर्यका अभिमान किया करते हैं? किसके

वर्षते तपते कोऽन्यो ज्वलते तेजसा च कः ॥ २२० ॥
कस्मादोषधिसंपत्तिः को वा धारयते वसु ।
प्रकामं क्रीडते को वा त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ २२१ ॥
ज्ञानसिद्धिक्रियायोगैः सेव्यमानश्च योगिभिः ।
ऋषिगन्धर्वसिद्धैश्च विहितं कारणं परम् ॥ २२२ ॥
कर्मयज्ञक्रियायोगैः सेव्यमानः सुरासुरैः ।
नित्यं कर्मफलैर्हीनं तमहं कारणं वदे ॥ २२३ ॥
स्थूलं सूक्ष्ममनौपम्यमग्राह्यं गुणगोचरम् ।
गुणहीनं गुणाध्यक्षं परं माहेश्वरं पदम् ॥ २२४ ॥
विश्वेशं कारणगुरुं लोकालोकान्तकारणम् ।
भूताभूतभविष्यच्च जनकं सर्वकारणम् ॥ २२५ ॥
अक्षराक्षरमव्यक्तं विद्याविद्ये कृताकृते ।
धर्माधर्मौ यतः शक्र तमहं कारणं ब्रुवे ॥ २२६ ॥
प्रत्यक्षमिह देवेन्द्र पश्य लिङ्गं भगाङ्कितम् ।
देवदेवेन रुद्रेण सृष्टिसंहारहेतुना ॥ २२७ ॥

अचल स्थानकी त्रैलोक्यपूजित कहके लोग घोषणा करते हैं? उसके अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष जल वर्षाता है? कौन तेजसे प्रज्वलित होता है? किसके द्वारा ओषधिसम्पत्ति हुआ करती है? कौन वसुको धारण करता है? स्थावर-जङ्गमात्मक तीनों लोकोंके बीच कौन पुरुष यथेष्ट क्रीडा करता है? हे देवराज! ऋषि, गन्धर्व, सिद्ध और योगी लोग ज्ञानसिद्धि और क्रियायोगके सहारे जिसकी सेवा किया करते हैं, उसे ही कारण जानो। (२१८—२२२)

सुरासुरोंसे जो पुरुष कर्म योग्य क्रियायोगके निमित्त सेव्यमान होता है, उस कर्मफलरहितको ही मैं कारण कहा करता हूं। स्थूल, सूक्ष्म, अनुपम, अज्ञेय, गुणगोचर, गुणहीन, और गुणाध्यक्ष महेश्वर पद ही परमपद है। जो स्थिति और उत्पत्तिका कारण है, जो सब लोकोंका कारण है, जो वर्त्तमान, भूत और भविष्यको जाननेवाला तथा सबका कारण है; जो अक्षय, अक्षर और अव्यक्त है, जिससे विद्या, अविद्या, कृताकृत, धर्म, अधर्म प्रवर्त्तित होते हैं, हे देवराज! मैं उसको ही कारण कहा करता हूं। हे देवराज! सृष्टि और संहारके हेतु, देवोंके देव रुद्रके द्वारा भगाङ्कित लिङ्ग इस समय प्रत्यक्ष अव-

मात्रा पूर्वं ममाख्यातं कारणं लोकलक्षणम् ।
नास्ति चेशात्परं शक्र तं प्रपद्य यदीच्छसि ॥ २२८ ॥

प्रत्यक्षं ननु ते सुरेश विदितं संयोगलिङ्गोद्भवं त्रैलोक्यं सविकार-
निर्गुणगणं ब्रह्मादिरेतोद्भवम् । यद्ब्रह्मेन्द्रहुताशविष्णुसहिता देवाश्च
दैत्येश्वरा नान्यत्कामसहस्रकल्पितधियः शंसन्ति ईशात्परम् । तं देवं
सचराचरस्य जगतो व्याख्यातवेद्योत्तमं कामार्थी वरयामि संयतमना
मोक्षाय सद्यः शिवम् ॥ २२९ ॥

हेतुभिर्वा किमन्यैस्तैरीशः कारणकारणम् ।
न शुश्रुम यदन्यस्य लिङ्गमभ्यर्चितं सुरैः ॥ २३० ॥
कस्यान्यस्य सुरैः सर्वैर्लिङ्गं मुक्त्वा महेश्वरम् ।
अर्च्यतेऽर्चितपूर्वं वा ब्रूहि यद्यस्ति ते श्रुतिः ॥ २३१ ॥
यस्य ब्रह्मा च विष्णुश्च त्वं चापि सह दैवतैः ।
अर्चयध्वं सदा लिङ्गं तस्माच्छ्रेष्ठतमो हि सः ॥ २३२ ॥

लोकन करो। (२२४-२२७)

हे शक्र! पहले माताने मुझसे कहा था, "लोककारण महेश्वर सबके ही कारण हैं, महादेवसे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है, इसलिये यदि इच्छा हो, तो उनके शरणमें जाओ।" हे सुरेश्वर! यह भी तुम्हें प्रत्यक्ष मालूम है, कि सविकार, निर्गुणगणयुक्त तीनों लोक, जो कि ब्रह्मादि रेतसे उत्पन्न हुआ कहा जाता है, वह योनिसंयोगविशिष्ट लिङ्गसे उत्पन्न है; क्यों कि ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि और विष्णुके सहित सब देवता, दैत्य और राक्षस लोग सहस्रों काम-नासे छन्दित बुद्धि होकर भी जिससे बढके दूसरा कोई भी नहीं है, ऐसा कहा करते हैं, वह चराचरोंमें विदित विख्यात देवोत्तम कल्याणदाता महा-देवकी मैं कामार्थी और सावधानचित्त होकर मोक्षके निमित्त प्रार्थना किया करता हूं। (२२८--२२९)

अन्यान्य युक्तियोंका क्या प्रयोजन है? ईश्वर ही सब कारणोंका कारण है, देवताओंके द्वारा दूसरेके लिङ्गका पूजित होना मैंने कभी नहीं सुना। महेश्वरको छोडके देवता लोग दूसरे किसी देवताके लिंगकी पूजा करते वा किये हों, उसे यदि तुमने सुना हो, तो वर्णन करो। ब्रह्मा, विष्णु और समस्त देवताओंके सहित तुम भी सदा जिसके लिंगकी पूजा किया करते हो, उससे बढके और श्रेष्ठ दूसरा कौन है? इसलिये वही सब लोगोंका आत्यन्तिक

न पद्माङ्का न चक्राङ्का न वज्राङ्का यतः प्रजा ।
लिङ्गाङ्का च भगाङ्का च तस्मान्माहेश्वरी प्रजा ॥ २३३ ॥

देव्याः कारणरूपभावजनिताः सर्वा भगाङ्काः स्त्रियो लिङ्गेनापि हरस्य सर्वपुरुषाः प्रत्यक्षचिन्हीकृताः । योऽन्यत्कारणमीश्वरात्प्रवदते देव्या च यन्नाङ्कितं त्रैलोक्ये सचराचरे स तु पुमान्बाह्यो-भवेद् दुर्मतिः ॥ २३४ ॥

पुंल्लिङ्गं सर्वमीशानं स्त्रीलिङ्गं विद्धि चाप्युमाम् ।
द्वाभ्यां तनुभ्यां व्याप्तं हि चराचरमिदं जगत् ॥२३५॥
तस्माद्वरमहं काङ्क्षे निधनं वापि कौशिक ।
गच्छ वा तिष्ठ वा शक्र यथेष्टं बलसूदन ॥ २३६ ॥
काममेष वरो मेऽस्तु शापो वाथ महेश्वरात् ।
न चान्यां देवतां काङ्क्षे सर्वकामफलामपि ॥ २३७ ॥
एवमुक्त्वा तु देवेन्द्रं दुःखादाकुलितेन्द्रियः ।
न प्रसीदति मे देवः किमेतदिति चिन्तयन् ॥ २३८ ॥
अथापश्यं क्षणेनैव तमेवैरावतं पुनः ।

इष्ट है । (२३०—२३२)

जब कि प्रजासमूह पद्मचिन्ह, चक्र-चिन्ह और वज्रचिन्हसे युक्त नहीं है, केवल लिङ्ग चिन्हित और योनि-चिन्हित हुई है, तब अवश्य ही वह महेश्वरसम्बन्धीय है । देवीके कारण रूप भावजनित समस्त स्त्रियें योनि-चिन्हसे युक्त और सब पुरुष महादेवके लिंगके द्वारा प्रत्यक्ष चिन्हित होरहे हैं। जो दुर्बुद्धि मनुष्य ईश्वरके अतिरिक्त दूसरेको कारण कहता है, तथा जो देवी चिन्हसे अङ्कित नहीं है, उसे कारण कहता है वह पुरुष चराचरयुक्त तीनों लोकके बाहर हुआ करता है । पुंल्लिंगमात्र ही महादेव और स्त्रीलिंग-मात्रको ही भगवती जानो; स्त्री-पुरुष, इन दो शरीरोंके द्वारा स्थावर जंगमात्मक यह जगत् व्याप्त होरहा है।(२३३-२३५)

हे बलसूदन सुरराज ! मैं उस ही महेश्वरसे वर अथवा मृत्युकी कामना करता हूं । तुम इच्छानुसार गमन करो अथवा निवास करो । मेरी यह अभि-लाषा है, कि महेश्वरके द्वारा मुझे वर मिले अथवा शाप ही प्राप्त होवे परन्तु दूसरे देवताओंके सर्वकामफलप्रद होनेपर भी मैं उनकी आकांक्षा नहीं करता। देवराजसे ऐसा कहके मैं दुःख-पूर्वक व्याकुलेन्द्रिय हुआ; महादेव किस

हंसकुन्देन्दुसदृशं मृणालरजतप्रभम् ॥ २३९ ॥
वृषरूपधरं साक्षात्क्षीरोदमिव सागरम्।
कृष्णपुच्छं महाकायं मधुपिङ्गललोचनम् ॥ २४० ॥
वज्रसारमयैः शृङ्गैर्निष्टप्तकनकप्रभैः।
सुतीक्ष्णैर्मृदुरक्ताग्रैरुत्किरन्तमिवावनिम् ॥ २४१ ॥
जाम्बूनदेन दाम्ना च सर्वतः समलंकृतम्।
सुवक्त्रं खुरनासं च सुवर्णं सुकटीतटम् ॥ २४२ ॥
सुपार्श्वं विपुलस्कन्धं सुरूपं चारुदर्शनम्।
ककुदं तस्य चाभाति स्कन्धमापूर्य धिष्ठितम् ॥२४३॥
तुषारगिरिकूटाभं सिताभ्रशिखरोपमम्।
तमास्थितश्च भगवान्देवदेवः सहोमया ॥ २४४ ॥
अशोभत महादेवः पौर्णमास्यामिवोडुराट्।
तस्य तेजोभवो वह्निः समेघः स्तनयित्नुमान् ॥२४५॥
सहस्रमिव सूर्याणां सर्वमापूर्य धिष्ठितः।
ईश्वरः सुमहातेजाः संवर्तक इवानलः ॥ २४६ ॥
युगान्ते सर्वभूतानां दिधक्षुरिव चोद्यतः।

लिये मुझपर प्रसन्न नहीं होते हैं, ऐसी ही चिन्ता करके क्षणभरके बीच फिर उस ही ऐरावतको हंस, कुन्द और इन्दुसदृश, मृणाल और रजत समान प्रकाशमान साक्षात् क्षीरसागरकी भांति वृषरूपधारी देखा। उस महाकाय वृषकी पूंछ कृष्णवर्ण थी, नेत्र मधुकी भांति पिंगलवर्ण थे। (२३९-२४०)

वह वृषभ तपाये हुए सुवर्ण समान प्रकाशमान, उत्तम तीक्ष्ण, मृदु और रक्ताग्र, वज्रसारमय था, सींगसे मानो पृथ्वीको विदीर्ण करता था; वह वृष सुवर्णके बने हुए दावेंसे सब प्रकार अलंकृत था, उसके मुख, कान, नासिका कटि, कोखे अत्यन्त सुन्दर थे, कन्धा विशाल था। उस सुन्दर मनोहर वृषभका ककुद स्कन्धपूरण करके अधिष्ठित था। (२४१-२४३)

देवोंके देव भगवान महादेव उमादेवीके सहित उस सिताभ्रशिखर तथा तुषार गिरिकूट सदृश बैलपर चढके पौर्णमासीकी रात्रिके चन्द्रमाकी भांति शोभित हुए थे। उनके शरीरकी तेज बादलयुक्त अग्नि तथा सहस्र सूर्य समान दीप्ति सब दिशाओंमें व्याप्त होरही थी। उस समय ईश्वरका तेज

तेजसा तु तदा व्याप्तं दुर्निरीक्ष्यं समन्ततः ॥ २४७ ॥
पुनरुद्विग्नहृदयः किमेतदिति चिन्तयम् ।
मुहूर्तमिव तत्तेजो व्याप्य सर्वा दिशो दश ॥ २४८ ॥
प्रशान्तं दिक्षु सर्वासु देवदेवस्य मायया ।
अथापश्यं स्थितं स्थाणुं भगवन्तं महेश्वरम् ॥ २४९ ॥
नीलकण्ठं महात्मानमसक्तं तेजसां निधिम् ।
अष्टादशभुजं स्थाणुं सर्वाभरणभूषितम् ॥ २५० ॥
शुक्लाम्बरधरं देवं शुक्लमाल्यानुलेपनम् ।
शुक्लध्वजमनाधृष्यं शुक्लयज्ञोपवीतिनम् ॥ २५१ ॥
गायद्भिर्नृत्यमानैश्च वादयद्भिश्च सर्वशः ।
वृतं पार्श्वचरैर्दिव्यैरात्मतुल्यपराक्रमैः ॥ २५२ ॥
बालेन्दुमुकुटं पाण्डुं शरच्चन्द्रमिवोदितम् ।
त्रिभिर्नेत्रैः कृतोद्योतं त्रिभिः सूर्यैरिवोदितैः ॥२५३॥
अशोभतास्य देवस्य माला गात्रे सितप्रभे ।
जातरूपमयैः पद्मैर्ग्रथिता रत्नभूषिता ॥ २५४ ॥
मूर्तिमन्ति तथाऽस्त्राणि सर्वतेजोमयानि च ।

प्रलय कालके संवर्तक अनलकी भांति मानो सब भूतोंको जलानेका इच्छुक होकर उदित हुआ। उस समय दशों दिशा उसके तेजसे व्याप्त होकर दुर्निरीक्ष्य होगईं। मैं उद्विग्नचित्त होकर चिन्ता करने लगा, कि यह क्या है? इतने ही समयमें जो तेज दशों दिशामें व्याप्त हुआ था, महादेवकी मायाके प्रभावसे मुहूर्तकालके बीचमें सब दिशाओंमें प्रशान्त हुआ। (२४४-२४९)

अनन्तर मैं धूमरहित अग्निकी भांति सौम्यदर्शन मनोहर सर्वांगी पार्वतीके सहित सौरभेय बैलपर स्थित नीलकण्ठ महानुभाव असक्त तेजके निधि अष्टादश भुज सब आभूषणोंसे भूषित सफेद अम्बर और श्वेतमालाधारी, सफेद ध्वजा, अनाधृष्ट शुक्लयज्ञोपवीती भगवान् स्थाणु महेश्वर परमेश्वरका दर्शन किया। वह आत्मतुल्यपराक्रम, नृत्य, गीत और बाजा बजानेवाले दिव्य अनुचरोंके द्वारा सब भांतिसे परिवृत थे, बालेन्दु-मुकुटवाले पाण्डुरवर्ण देव मानों शरच्चन्द्रकी भांति उदित हुए। तीन उदित सूर्योंकी भांति उनके तीनों नेत्र प्रकाशमान थे। (२४९-२५३)

उस देवके सितप्रभायुक्त शरीरमें

मया दृष्टानि गोविन्द भवस्यामिततेजसः ॥ २५५ ॥
इन्द्रायुधसवर्णाभं धनुस्तस्य महात्मनः ।
पिनाकमिति विख्यातमभवत्पन्नगो महान् ॥ २५६ ॥
सप्तशीर्षो महाकायस्तीक्ष्णदंष्ट्रो विषोल्बणः ।
ज्यावेष्टितमहाग्रीवः स्थितः पुरुषविग्रहः ॥ २५७ ॥
शरश्च सूर्यसंकाशः कालानलसमद्युतिः ।
एतदस्त्रं महाघोरं दिव्यं पाशुपतं महत ॥ २५८ ॥
अद्वितीयमनिर्देश्यं सर्वभूतभयावहम् ।
सस्फुलिङ्गं महाकायं विसृजन्तमिवानलम् ॥ २५९ ॥
एकपादं महादंष्ट्रं सहस्रशिरसोदरम् ।
सहस्रभुजजिह्वाक्षमुद्गिरन्तमिवानलम् ॥ २६० ॥
ब्राह्मान्नारायणाच्चैन्द्रादाग्नेयादपि वारुणात् ।
यद्विशिष्टं महाबाहो सर्वशस्त्रविघातनम् ॥ २६१ ॥
येन तत्त्रिपुरं दग्ध्वा क्षणाद्भस्मीकृतं पुरा ।
शरेणैकेन गोविन्द महादेवेन लीलया ॥ २६२ ॥
निर्दहेत च यत्कृत्स्नं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।

सुवर्णमय पद्मके द्वारा ग्रथित रत्नभूषित माला थी। हे गोविंद ! मैंने अमित-तेजस्वी महेश्वरके सर्वतेजोमय मूर्तिमान अस्त्रोंको अवलोकन किया। उस महात्माकी इन्द्रायुध समान वर्णवाला धनुष जो पिनाक नामसे विख्यात है, मैंने देखा, कि वह सातसिर, महाकाय, तीक्ष्णदन्त, विषोल्बण ज्या–वेष्टित महाग्रीव पुरुषविग्रह महान् पन्नगरूपसे स्थित है; और प्रलयकालकी अग्नि तथा सूर्यके समान प्रकाशमान बाण निरीक्षण किया। उसहीका नाम दिव्य, महत्, पाशुपत अस्त्र है, वह अद्वितीय, अनिर्देश्य, सर्वभूतभयावह, महाकाय है और मानो अङ्गारके सहित अग्निविसर्जन कर रहा था। (२५४—२५९)

वह एक चरणवाला महादंष्ट्र सहस्र-शिर, सहस्रोदर, सहस्रभुज, सहस्र-जिह्व और सहस्राक्षरूपसे अग्नि उद्गीरण कर रहा था। हे महाबाहो ! वह ब्राह्म, नारायण, ऐन्द्र, आग्नेय और वारुण अस्त्रसे श्रेष्ठ और सर्वशस्त्रविघातक था। हे गोविन्द ! महादेवने लीलाके क्रमसे एक मात्र जिस बाणके सहारे उस त्रिपुरको जलाके भस्मीभूत किया था, वही अस्त्र यदि महादेवकी भुजासे

महेश्वरभुजोत्सृष्टं निमेषार्धान्न संशयः ॥ २६३ ॥
नावध्यो यस्य लोकेऽस्मिन् ब्रह्मविष्णुसुरेष्वपि।
तदहं दृष्टवांस्तत्र आश्चर्यमिदमुत्तमम् ॥ २६४ ॥
गुह्यमस्त्रवरं नान्यत्तत्तुल्यमधिकं हि वा।
यत्तच्छूलमिति ख्यातं सर्वलोकेषु शूलिनः ॥ २६५ ॥
दारयेद्यां महीं कृत्स्नां शोषयेद्वा महोदधिम्।
संहरेद्वा जगत्कृत्स्नं विसृष्टं शूलपाणिना ॥ २६६ ॥
यौवनाश्वो हतो येन मान्धाता सबलः पुरा।
चक्रवर्ती महातेजास्त्रिलोकविजयी नृपः ॥ २६७ ॥
महाबलो महावीर्यः शक्रतुल्यपराक्रमः।
करस्थेनैव गोविन्द लवणस्येह रक्षसः ॥ २६८ ॥
तच्छूलमतितीक्ष्णाग्रं सुभीमं लोमहर्षणम्।
त्रिशिखां भ्रुकुटिं कृत्वा तर्जमानमिव स्थितम् ॥२६९॥
विधूमं सार्चिषं कृष्णं कालसूर्यमिवोदितम्।
सर्पहस्तमनिर्देश्यं पाशहस्तमिवान्तकम् ॥ २७० ॥
दृष्टवानस्मि गोविन्द तदस्त्रं रुद्रसन्निधौ।

छूटे तो अर्द्धनिमेषमें चराचर सहित, त्रिलोकके सहित समस्त जगत्को निःसन्देह भस्म करे। इस लोकमें ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंके बीच जिससे कोई भी अवध्य नहीं है। हे तात! मैंने उस आश्चर्य और अद्भुत अस्त्रको देखा था, उसके समान अथवा उससे श्रेष्ठ, गुह्यतर और एक दूसरा परम अस्त्र देखा, जो कि सब लोकोंमें महादेवका त्रिशूल कहके विख्यात है। (२६०—२६५)

वह महादेवके हाथसे छूटनेपर स्वर्ग तथा समस्त पृथ्वीमण्डलको विदारण, समुद्रको शोषण और समस्त जगत्को नष्ट कर सकता है। पहले समयमें जिस शूलके लवण राक्षसके हाथमें स्थित होनेपर युवनाश्व और त्रिलोकविजयी महातेजस्वी बलवान इन्द्रके समान पराक्रमी चक्रवर्ती राजा मान्धाता सेनाके सहित मारे गये थे। अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाला भयङ्कर वह लोमहर्षण शूल, त्रिशिखा भ्रुकुटी करके तर्जन करते हुए स्थित था। हे कृष्ण! प्रलय-कालके सूर्यकी भांति उदित उस विधूम अर्चियुक्त, अनिर्देश्य, पाशधारी, अन्तक समान सर्प हस्त अस्त्रको मैंने रुद्रके

परशुस्तीक्ष्णधारश्च दत्तो रामस्य यः पुरा ॥ २७१ ॥
महादेवेन तुष्टेन क्षत्रियाणां क्षयंकरः ।
कार्तवीर्यो हतो येन चक्रवर्ती महामृधे ॥ २७२ ॥
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी येन निःक्षत्रिया कृता ।
जामदग्न्येन गोविन्द रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ २७३ ॥
दीप्तधारः सुरौद्रास्यः सर्पकण्ठाग्रधिष्ठितः ।
अभवच्छूलिनोऽभ्याशे दीप्तवह्निशतोपमः ॥ २७४ ॥
असंख्येयानि चास्त्राणि तस्य दिव्यानि धीमतः ।
प्राधान्यतो मयैतानि कीर्तितानि तवानघ ॥ २७५ ॥
सव्यदेशे तु देवस्य ब्रह्मा लोकपितामहः ।
दिव्यं विमानमास्थाय हंसयुक्तं मनोजयम् ॥ २७६ ॥
वामपार्श्वगतश्चापि तथा नारायणः स्थितः ।
वैनतेयं समारुह्य शङ्खचक्रगदाधरः ॥ २७७ ॥
स्कन्दो मयूरमास्थाय स्थितो देव्याः समीपतः ।
शक्तिघण्टे समादाय द्वितीय इव पावकः ॥ २७८ ॥
पुरस्ताच्चैव देवस्य नन्दिं पश्याम्यवस्थितम् ।
शूलं विष्टभ्य तिष्ठन्तं द्वितीयमिव शङ्करम् ॥ २७९ ॥

निकट देखा । (२६३—२७१)

हे गोविन्द ! इसके अतिरिक्त पहले महादेवने प्रसन्न होके रामको जो क्षत्रियोंका नाशक तीक्ष्ण धारवाला परशु प्रदान किया था, जिसके द्वारा महासंग्राममें चक्रवर्ती राजा कार्तवीर्य मारा गया, उसे भी मैंने उनके निकट देखा। हे गोविन्द ! अक्लिष्टकर्मा जामदग्न्य रामने जिसके सहारे इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय किया था, वह तीक्ष्ण धारवाला रौद्रमुख सर्प-कण्ठाग्रमें अधिष्ठित जलती हुई अग्निकी शिखा समान परशु महादेवके समीप था । हे अनघ ! उस धीमानके निकट और भी अनगिनत अस्त्र थे, मुख्य करके तुमसे मैंने इन तीन अस्त्रोंका विषय वर्णन किया है । उस देवके दाहिनी ओर लोकपितामह ब्रह्मा हंसयुक्त मनोजव दिव्य विमानमें स्थित थे, बाईं ओर शंखचक्रगदाधारी नारायण गरुडपर चढके विराजमान थे । (२७१—२७७)

देवीके निकट द्वितीय अग्निकी भांति स्कन्ध शक्ति और घण्टा धारण करके मयूरपर निवास करते थे । महादेवके

स्वायम्भुवाद्या मनवो भृग्वाद्या ऋषयस्तथा ।
शक्राद्या देवताश्चैव सर्व एव समभ्ययुः ॥ २८० ॥
सर्वभूतगणाश्चैव मातरो विविधाः स्थिताः ।
तेऽभिवाद्य महात्मानं परिवार्य समन्ततः ॥ २८१ ॥
अस्तुवन्विविधैः स्तोत्रैर्महादेवं सुरास्तदा ।
ब्रह्मा भवं तदाऽस्तौषीद्रथंतरमुदीरयन् ॥ २८२ ॥
ज्येष्ठसाम्ना च देवेशं जगौ नारायणस्तदा ॥ २८३ ॥
गृणन्ब्रह्म परं शक्रः शतरुद्रियमुत्तमम् ।
ब्रह्मा नारायणश्चैव देवराजश्च कौशिकः ॥ २८४ ॥
अशोभन्त महात्मानस्त्रयस्त्रय इवाग्नयः ।
तेषां मध्यगतो देवो रराज भगवाञ्छिवः ॥ २८५ ॥
शरदभ्रविनिर्मुक्तः परिधिस्थ इवांशुमान् ।
अयुतानि च चन्द्रार्कानपश्यं दिवि केशव ॥ २८६ ॥
ततोऽहमस्तुवं देवं विश्वस्य जगतः पतिम् ।
उपमन्युरुवाच-नमो देवाधिदेवाय महादेवाय ते नमः ॥ २८७ ॥
शक्ररूपाय शक्राय शक्रवेषधराय च ।

सम्मुख द्वितीय शङ्करकी भाँति शूल ग्रहण करके खड़े हुए नन्दीको देखा। स्वायम्भुव आदि मनु, भृगु आदि ऋषि और इन्द्र आदि सब देवता उस स्थानमें उपस्थित थे। समस्त भूत और विविध मातृकागण उस महात्माको सब प्रकारसे घेरके और प्रणाम करके स्थित थीं। देवताओंने उस समय विविध स्तोत्रोंसे महादेवकी स्तुति की थी; अनन्तर ब्रह्मा रथन्तर साम उच्चारण करते हुए महेश्वरकी स्तुति करने लगे। (२७८-२८२)

नारायणने देवेश्वरको अत्यन्त प्रसन्न करनेके लिये ज्येष्ठ साम गान किया। देवराज उत्कृष्ट शतरुद्रियका पाठ करते हुए परब्रह्मकी स्तुति करने लगे। ब्रह्मा, नारायण और देवराज कौशिक, ये तीनों महानुभाव तीनों अग्निकी भाँति शोभित हुए। देवोंके देव भगवान् महेश्वर बीचमें शरत्कालके बादलोंसे रहित सूर्यकी भाँति विराजमान थे। हे केशव! उस समय मैंने आकाशमण्डलमें दश सहस्रके परिमाणसे चन्द्रमा और सूर्य देखे। अनन्तर मैं समस्त जगत्के प्रभु महादेवकी स्तुति करनेमें प्रवृत्त हुआ। (२८३-२८७)

नमस्ते वज्रहस्ताय पिङ्गलायारुणाय च ॥ २८८ ॥
पिनाकपाणये नित्यं शङ्खशूलधराय च ।
नमस्ते कृष्णवासाय कृष्णकुंचितमूर्धजे ॥ २८९ ॥
कृष्णाजिनोत्तरीयाय कृष्णाष्टमिरताय च ।
शुक्लवर्णाय शुक्लाय शुक्लाम्बरधराय च ॥ २९० ॥
शुक्लभस्मावलिप्ताय शुक्लकर्मरताय च ।
नमोऽस्तु रक्तवर्णाय रक्ताम्बरधराय च ॥ २९१ ॥
रक्तध्वजपताकाय रक्तस्रगनुलेपिने ।
नमोऽस्तु पीतवर्णाय पीताम्बरधराय च ॥ २९२ ॥
नमोऽस्तूच्छ्रितछत्राय किरीटवरधारिणे ।
अर्धहारार्धकेयूरअर्धकुण्डलकर्णिने ॥ २९३ ॥
नमः पवनवेगाय नमो देवाय वै नमः ।
सुरेन्द्राय मुनीन्द्राय महेन्द्राय नमोऽस्तु ते ॥ २९४ ॥
नमः पद्मार्धमालाय उत्पलैर्मिश्रिताय च ।
अर्धचन्दनलिप्ताय अर्धस्रगनुलेपिने ॥ २९५ ॥
नम आदित्यवक्त्राय आदित्यनयनाय च ।

उपमन्यु बोले, तुम देवादिदेव हो इसलिये तुम्हें नमस्कार है; तुम शक्र-रूप, शक्र, शक्रवेषधारी महादेव हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम वज्रहस्त, पिंगल, अरुण, पिनाकपाणि, सदा शंखशूलधर, कृष्णवासा, कृष्णकुञ्चित-केश, कृष्णाजिनवस्त्रधारी, कृष्णाष्टमी-रत हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम शुक्लवर्ण, शुक्ल,शुक्लाम्बरधर, श्वेतभस्म-धारी और शुक्ल कर्ममें रत हो इससे तुम्हें प्रणाम है; रक्तवर्ण रक्ताम्बरधारी, रक्तध्वज पताका और लालमालाधारी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम पीताम्बरधारी, पीतवर्ण ध्वज पताका-युक्त और पीली माला धारण करनेवाले हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। (२८७-२९२)

तुम उच्छ्रितच्छत्र, किरीटवरधारी, अर्द्धहार, अर्द्धकेयूर और अर्द्ध-कुण्डल-कर्णी हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम ही वायुवेग हो, इसलिये तुम्हें नमस्कार है; हे देव ! तुम्हें नमस्कार है; तुम सुरेन्द्र, मुनीन्द्र और महेन्द्र हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम उत्पलमिश्रित, पद्मार्द्ध-मालाधारी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम अर्द्धचन्दनलिप्त, अर्द्धमाल्यानुलेपी, आदित्यवक्त्र और

नम आदित्यवर्णाय आदित्यप्रतिमाय च ॥ २९६ ॥
नमः सोमाय सौम्याय सौम्यवक्त्रधराय च।
सौम्यरूपाय मुख्याय सौम्यदंष्ट्राविभूषिणे ॥ २९७ ॥
नमः श्यामाय गौराय अर्धपीतार्धपाण्डवे।
नारीनरशरीराय स्त्रीपुंसाय नमोऽस्तु ते ॥ २९८ ॥
नमो वृषभवाहाय गजेन्द्रगमनाय च।
दुर्गमाय नमस्तुभ्यमगम्यागमनाय च ॥ २९९ ॥
नमोऽस्तु गणगीताय गणवृन्दरताय च।
गणानुयातमार्गाय गणनित्यव्रताय च ॥ ३०० ॥
नमः श्वेताभ्रवर्णाय संध्यारागप्रभाय च।
अनुद्दिष्टाभिधानाय स्वरूपाय नमोऽस्तु ते ॥ ३०१ ॥
नमो रक्ताग्रवासाय रक्तसूत्रधराय च।
रक्तमालाविचित्राय रक्ताम्बरधराय च ॥ ३०२ ॥
मणिभूषितमूर्धाय नमश्चन्द्रार्धभूषिणे।
विचित्रमणिमूर्द्धाय कुसुमाष्टधराय च ॥ ३०३ ॥
नमोऽग्निमुखनेत्राय सहस्रशशिलोचने।
अग्निरूपाय कान्ताय नमोऽस्तु गहनाय च ॥ ३०४ ॥

आदित्यनयन हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम आदित्यवर्ण, आदित्यप्रतिम हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम सोम, सोमवक्त्रधर, सौम्यरूप, मुख्य, सोमदन्त-विभूषित हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम श्याम, गौर, अर्द्धपीत और पाण्डु-वर्ण हो इससे तुम्हें प्रणाम है; नर नारीरूप, स्त्री-पुरुष स्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम वृषभवाहन, गजेन्द्रगमन, दुर्गम और अगम्यागमन हो, इससे तुम्हें प्रणाम है, गणगीत, गणवृन्दरत, गणानुयातमार्ग और गणनित्यव्रत हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम श्वेताभ्रवर्ण, सन्ध्यारागप्रभ, अनु-द्दिष्टाभिधान स्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। (२९२—३०१)

तुम रक्ताग्रवासा, रक्तसूत्रधर, लाल-माला विचित्र, रक्ताम्बरधारी, मणिभू-षितमूर्द्धा और अर्द्धचन्द्रभूषित हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम विचित्र मणिमण्डित मस्तकपर अष्टकुसुमधारी, अग्निमुख, अग्निनेत्र और सहस्रशशि-नेत्र हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम अग्निरूप, कान्त, गहन हो, इससे तुम्हें

खचराय नमस्तुभ्यं गोचराभिरताय च ।
भूचराय भुवनाय अनन्ताय शिवाय च ॥ ३०५ ॥
नमो दिग्वाससे नित्यमधिवाससुवाससे ।
नमो जगन्निवासाय प्रतिपत्तिसुखाय च ॥ ३०६ ॥
नित्यमुद्बद्धमुकुटे महाकेयूरधारिणे ।
सर्पकण्ठोपहाराय विचित्राभरणाय च ॥ ३०७ ॥
नमस्त्रिनेत्रनेत्राय सहस्रशतलोचने ।
स्त्रीपुंसाय नपुंसाय नमः सांख्याय योगिने ॥३०८॥
शंयोरभिस्रवन्ताय अथर्वाय नमो नमः ।
नमः सर्वार्त्तिनाशाय नमः शोकहराय च ॥ ३०९ ॥
नमो मेघनिनादाय बहुमायाधराय च ।
बीजक्षेत्राभिपालाय स्रष्टाराय नमो नमः ॥ ३१० ॥
नमः सुरासुरेशाय विश्वेशाय नमो नमः ।
नमः पवनवेगाय नमः पवनरूपिणे ॥ ३११ ॥
नमः काञ्चनमालाय गिरिमालाय वै नमः ।
नमः सुरारिमालाय चण्डवेगाय वै नमः ॥ ३१२ ॥

नमस्कार है; तुम खेचर और गोचराभिरत हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम भूचर, भुवन, अनन्त, शिव, दिगम्बर पुष्पादिगन्धवासित और उत्तम वस्त्रधारी हो इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम जगन्निवास, ज्ञान और सुखस्वरूप हो, सदा उद्बद्धमुकुट, महाकेयूरधारी सर्वकण्ठोपहार, विचित्र आभूषण, लोकयात्रानिर्वाहक अग्नि, सूर्य, चन्द्र रूप तीनों नेत्रोंके नेत्रस्वरूप और सहस्रशतलोचन हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम स्त्रीपुरुष और नपुंसक हो, तुम ही सांख्य और योगी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। (३०२—३०८)

तुम शंयुसंज्ञक, यज्ञषाड्गुण्यकर्त्ता देवताओंके प्रसाद स्वरूप हो, अथवा तुम सर्वार्त्ति नाशकर और शोक हरनेवाले हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम ही बादलोंके बीच गर्जना शब्द और बहु मायाधारी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है, तुम बीजपाल, क्षेत्रपाल और स्रष्टा हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम सब देवताओंके ईश और विश्वेश्वर हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम पवनवेग पवनरूपी, काञ्चनमाल और गिरिमाल अर्थात् पर्वतके बीच क्रीडापरायण हो,

ब्रह्मशिरोपहर्ताय महिषघ्नाय वै नमः।
नमः स्त्रीरूपधाराय यज्ञविध्वंसनाय च ॥ ३१३ ॥
नमस्त्रिपुरहर्ताय यज्ञविध्वंसनाय च।
नमः कामाङ्गनाशाय कालदण्डधराय च ॥ ३१४ ॥
नमः स्कन्दविशाखाय ब्रह्मदण्डाय वै नमः।
नमो भवाय शर्वाय विश्वरूपाय वै नमः ॥ ३१५ ॥
ईशानाय भवघ्नाय नमोऽस्त्वन्धकघातिने।
नमो विश्वाय मायाय चिन्त्याचिन्त्याय वै नमः ॥३१६॥
त्वं नो गतिश्च श्रेष्ठश्च त्वमेव हृदयं तथा।
त्वं ब्रह्मा सर्वदेवानां रुद्राणां नीललोहितः ॥ ३१७ ॥
आत्मा च सर्वभूतानां सांख्ये पुरुष उच्यते।
ऋषभस्त्वं पवित्राणां योगिनां निष्कलः शिवः ॥३१८॥
गृहस्थस्त्वमाश्रमिणामीश्वराणां महेश्वरः।
कुबेरः सर्वयक्षाणां क्रतूनां विष्णुरुच्यते ॥ ३१९ ॥
पर्वतानां भवान्मेरुर्नक्षत्राणां च चन्द्रमाः।
वसिष्ठस्त्वमृषीणां च ग्रहाणां सूर्य उच्यते ॥ ३२० ॥

इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम सुरारिमाल, चण्डवेग, ब्रह्माके सिरको हरनेवाले और महिषघ्न हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम मेघनिनाद, बहुमायाधारी हो; इससे तुम्हें नमस्कार है; त्रिमूर्तिधारी, सर्वरूपधारी, त्रिपुरहर और यज्ञविध्वंसकारी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम कामाङ्गनाशक कालदण्डधारी, स्कन्दविशाख और ब्रह्मदण्ड हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम भव, शर्व, विश्वरूप, ईशान, भवघ्न और अन्धकान्तक हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम विश्वमायावी, चिन्त्य, अचिन्त्य हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। (३०९—३१६)

तुम हमारे लिये श्रेष्ठ तथा गतिरूप हो, तुम ही हम लोगोंके हृदयस्वरूप हो, तुम सब देवताओंके बीच ब्रह्मा, रुद्रगणोंके बीच नीललोहित, सर्व प्राणियोंकी आत्मा और सांख्ययोगमें पुरुष रूपसे वर्णित हुआ करते हो; तुम पवित्र लोगोंके बीच ऋषभ, योगियोंमें निष्कल शिव, आश्रमी पुरुषोंमें गृहस्थ और ईश्वरोंमें महेश्वर हो; तुम यक्षोंके बीच कुबेर हो, यज्ञोंमें विष्णु कहके वर्णित होते हो, तुम पर्वतोंमें मेरु और नक्षत्रोंके बीच चन्द्रमा हो, ऋषियोंमें वासिष्ठ

आरण्यानां पशूनां च सिंहस्त्वं परमेश्वरः।
ग्राम्याणां गोवृषश्चासि भवाँल्लोकप्रपूजितः ॥ ३२१ ॥
आदित्यानां भवान्विष्णुर्वसूनां चैव पावकः।
पक्षिणां वैनतेयस्त्वमनन्तो भुजगेषु च ॥ ३२२ ॥
सामवेदश्च वेदानां यजुषां शतरुद्रियम्।
सनत्कुमारो योगानां सांख्यानां कपिलो ह्यसि ॥३२३॥
शक्रोऽसि मरुतां देव पितॄणां हव्यवाडसि।
ब्रह्मलोकश्च लोकानां गतीनां मोक्ष उच्यसे ॥ ३२४ ॥
क्षीरोदः सागराणां च शैलानां हिमवान् गिरिः।
वर्णानां ब्राह्मणश्चासि विप्राणां दीक्षितो द्विजः ॥३२५॥
आदिस्त्वमसि लोकानां संहर्ता काल एव च।
यच्चान्यदपि लोके वै सर्वतेजोऽधिकं स्मृतम् ॥ ३२६ ॥
तत्सर्वं भगवानेव इति मे निश्चिता मतिः।
नमस्ते भगवन् देव नमस्ते भक्तवत्सल ॥ ३२७ ॥
योगेश्वर नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वसंभव।
प्रसीद मम भक्तस्य दीनस्य कृपणस्य च ॥ ३२८ ॥

और ग्रहोंके बीच सूर्य कहके अभिहित हुआ करते हो; तुम जङ्गली पशुओंके परम ईश्वर सिंह हो और ग्रामवासी पशुओंके बीच लोकपूजित गऊ वृषभ-स्वरूप हो, तुम आदित्योंके बीच विष्णु, वसुओंमें अग्नि, पक्षियोंमें गरुड,सर्पोंके बीच अनन्त, वेदोंमें सामवेद, यजुर्वेदके बीच शतरुद्रिय,योगियोंमें सनत्कुमार और सांख्योंके बीच कपिलस्वरूप हो। (३१७—३२३)

हे देव ! तुम देवताओंमें इन्द्र तथा पितरोंमें अग्नि हो, तुम लोकोंके बीच ब्रह्मलोक और गतियोंके बीच मोक्षरूप से वर्णित हुआ करते हो। तुम समुद्रोंमें क्षीरसागर, पर्वतोंके बीच हिमालय, वर्णोंमें ब्राह्मण, विप्रोंके बीच दीक्षित ब्राह्मण हो; तुम सब लोकोंके आदि-कर्ता और कालक्रमसे संहर्ता हो; लोकमें जो कुछ अधिक तेजसे युक्त वस्तु दीख पडती है, वह सब ही भगवानका स्वरूप है, ऐसा ही मेरी बुद्धिमें निश्चय हुआ है। हे भगवन् ! हे देव ! तुम्हें नमस्कार है; हे भक्तवत्सल ! तुम्हें प्रणाम है; हे योगेश्वर ! तुम्हें नमस्कार है। हे जगत्की सृष्टि करनेवाले ! तुम्हें प्रणाम करता हूं; मैं दीन कृपण तुम्हा-

अनैश्वर्येण युक्तस्य गतिर्भव सनातन।
यच्चापराधं कृतवानज्ञात्वा परमेश्वर ॥ ३२९ ॥
मद्भक्त इति देवेश तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि।
मोहितश्चास्मि देवेश त्वया रूपविपर्ययात् ॥ ३३० ॥
नार्घ्यं तेन मया दत्तं पाद्यं चापि महेश्वर।
एवं स्तुत्वाऽहमीशानं पाद्यमर्घ्यं च भक्तितः ॥३३१॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा सर्वं तस्मै न्यवेदयम्।
ततः शीताम्बुसंयुक्ता दिव्यगन्धसमन्विता ॥ ३३२ ॥
पुष्पवृष्टिः शुभा तात पपात मम मूर्धनि।
दुन्दुभिश्च तदा दिव्यस्ताडितो देवकिंकरैः।
ववौ च मारुतः पुण्यः शुचिगन्धः सुखावहः॥ ३३३ ॥
ततः प्रीतो महादेवः सपत्नीको वृषध्वजः।
अब्रवीत्त्रिदशांस्तत्र हर्षयन्निव मां तदा ॥ ३३४ ॥
पश्यध्वं त्रिदशाः सर्वे उपमन्योर्महात्मनः।
मयि भक्तिं परां नित्यमेकभावादवस्थिताम् ॥ ३३५ ॥
एवमुक्तास्तदा कृष्ण सुरास्ते शूलपाणिना।

रा भक्त हूं, आप मुझपर प्रसन्न होइये। (३२४--३२८)

हे सनातन! इस अनैश्वर्ययुक्त भक्त के गति होइये। हे परमेश्वर! हे देवेश! मैंने अज्ञानके वशमें होकर जो कुछ अपराध किया है, आपको मुझे अपना भक्त समझकर उन अपराधोंकी क्षमा करना उचित है। हे देवेश्वर! मैं तुम्हारे रूपविपर्यय वशसे मोहित हुआ था, इसही निमित्त मैं तुम्हें पाद्य, अर्घ प्रदान नहीं कर सका। इस ही प्रकार मैंने महादेवकी स्तुति करके भक्ति-भावसे हाथ जोडके पाद्य, अर्घ आदि प्रदान किया। हे तात! अनन्तर मेरे सिरपर शीतल जलसे पूरित दिव्य गन्धयुक्त शुभ पुष्पवृष्टि होने लगी। देवताओंके सेवक दिव्य दुन्दुभी बजाने लगे। पवित्र गन्धवाली सुखदायक पुण्यजनक वायु बहने लगी। उसके अनन्तर सपत्नीक वृषभध्वज महादेव प्रसन्न होकर उस समय मानो मुझे हर्षित करते हुए देवताओंसे बोले, हे देव-वृन्द! मेरे विषयमें महात्मा उपमन्युकी एकाग्र भावसे स्थित परम भक्ति अव-लोकन करो। (३२९–३३५)

हे कृष्ण! जब शूलपाणिने देवता-

ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे नमस्कृत्वा वृषध्वजम् ॥ ३३६ ॥
भगवन् देवदेवेश लोकनाथ जगत्पते ।
लभतां सर्वकामेभ्यः फलं त्वत्तो द्विजोत्तमः ॥३३७॥
एवमुक्तस्ततः शर्वः सुरैर्ब्रह्मादिभिस्तथा ।
आह मां भगवानीशः प्रहसन्निव शंकरः ॥ ३३८ ॥
भगवानुवाच- वत्सोपमन्यो तुष्टोऽस्मि पश्य मां मुनिपुङ्गव ।
दृढभक्तोऽसि विप्रर्षे मया जिज्ञासितो ह्यसि ॥ ३३९॥
अनया चैव भक्त्या ते अत्यर्थं प्रीतिमानहम् ।
तस्मात्सर्वान् ददाम्यद्य कामांस्तव यथेप्सितान् ॥३४०॥
एवमुक्तस्य चैवाथ महादेवेन धीमता ।
हर्षादश्रूण्यवर्तन्त रोमहर्षस्त्वजायत ॥ ३४१ ॥
अब्रुवं च तदा देवं हर्षगद्गदया गिरा ।
जानुभ्यामवनीं गत्वा प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ ३४२ ॥
अद्य जातो ह्यहं देव सफलं जन्म चाद्य मे ।
सुरासुरगुरुर्देवो यत्तिष्ठति ममाग्रतः ॥ ३४३ ॥
यं न पश्यन्ति चैवाद्धा देवा ह्यमितविक्रमम् ।

ओंसे ऐसा कहा, तब वे लोग हाथ जोडके वृषभध्वजको नमस्कार करके बोले, हे भगवन्! हे देवदेवेश जगत्पति लोकनाथ! यह द्विजवर आपके निकटसे सब काम्यमान फल लाभ करें। भगवान् शङ्कर ब्रह्मा प्रभृति देवताओंका ऐसा वचन सुनके हंसकर मुझसे कहने लगे। (३३६—३३८)

भगवान बोले, हे पुत्र मुनिपुंगव उपमन्यु! मैं तुमपर प्रसन्न हुआ हूं, तुम मेरा दर्शन करो। हे विप्रर्षि! तुम मेरे दृढ भक्त हो, इस ही निमित्त मैं तुमसे पूछता हूं। तुम्हारी भक्तिके वश में होकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं, इसलिये इस समय तुम्हारी जो कुछ अभिलाष होगा, उन सब काम्य विषयोंको प्रदान करूंगा। धीमान महादेव का ऐसा वचन सुनके हर्षपूर्वक मेरे नेत्रोंसे आंसू गिरने लगे और रोएं खडे होगये। उस समय मैं दोनों जानु पृथ्वीपर स्थापितकर उस देवको बार बार प्रणाम करके हर्षित होकर गद्गद वचनसे कहने लगा, कि जब सुरासुर-गुरु महादेव मेरे अगाडी निवास करते हैं तब आज मेरा जन्म ग्रहण करना सफल हुआ। (३३९—३४३)

तमहं दृष्टवान् देवं कोऽन्यो धन्यतरो मया ॥ ३४४ ॥
एवं ध्यायन्ति विद्वांसः परं तत्त्वं सनातनम् ।
तद्विशेषमतिख्यातं यदजं ज्ञानमक्षरम् ॥ ३४५ ॥
स एष भगवान् देवः सर्वसत्त्वादिरव्ययः ।
सर्वतत्त्वविधानज्ञः प्रधानपुरुषः परः ॥ ३४६ ॥
योऽसृजद्दक्षिणादङ्गाद्ब्रह्माणं लोकसंभवम् ।
वामपार्श्वात्तथा विष्णुं लोकरक्षार्थमीश्वरः ॥ ३४७ ॥
युगान्ते चैव संप्राप्ते रुद्रमीशोऽसृजत्प्रभुः ।
स रुद्रः संहरन् कृत्स्नं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ३४८ ॥
कालो भूत्वा महातेजाः संवर्तक इवानलः ।
युगान्ते सर्वभूतानि ग्रसन्निव व्यवस्थितः ॥ ३४९ ॥
एष देवो महादेवो जगत्सृष्ट्वा चराचरम् ।
कल्पान्ते चैव सर्वेषां स्मृतिमाक्षिप्य तिष्ठति ॥३५०॥
सर्वगः सर्वभूतात्मा सर्वभूतभवोद्भवः ।
आस्ते सर्वगतो नित्यमदृश्यः सर्वदैवतैः ॥ ३५१ ॥
यदि देयो वरो मह्यं यदि तुष्टोऽसि मे प्रभो ।

देवता लोग आराधना करके भी जिस देवेश्वरका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होते मैंने उसका दर्शन किया; इसलिये मेरे समान और कौन धन्य पुरुष है ? विद्वान् लोग इस ही सम्मुखवर्त्ती मूर्त्तिरूप सनातन परम तत्त्वका ध्यान किया करते हैं। यह मूर्त्तिही देवान्तरकी अपेक्षा विशिष्ट मूर्त्ति होके भी नित्य,अक्षर, उत्पत्तिरहित ज्ञान स्वरूपसे विख्यात है। यह वही भगवान् सत्वादि, अव्यय देव, सर्वतत्त्वविधानज्ञ प्रधान परम पुरुष है, जिसने दक्षिण अङ्गसे लोक-विधाता पितामहको और वाम अंगसे लोकरक्षाके निमित्त विष्णुको उत्पन्न किया है और प्रलयकाल उपस्थित होनेपर ईश्वर रुद्रको उत्पन्न करता है, वही रुद्र स्थावर जंगममय समस्त जगत्को संहार करते हुए संवर्त्तक अग्निकी भांति महातेजस्वी कालस्वरूपसे युगके अंतमें सब भूतोंको ग्रास करके स्थित होता है। (३४४—३४९)

यह महादेव सचराचर जगत्की सृष्टि करता और कल्पान्तमें सबकी स्मृति लोप करके निवास करता है। यही सर्वग, सर्वभूतात्मा, सर्वभूतभवोद्भव, सदा सर्वगत होके भी सब

भक्तिर्भवतु मे नित्यं त्वयि देव सुरेश्वर ॥ ३५२ ॥
अतीतानागतं चैव वर्तमानं च यद्विभो ।
जानीयामिति मे बुद्धिः प्रसादात्सुरसत्तम ॥ ३५३ ॥
क्षीरोदनं च भुञ्जीयामक्षयं सह बान्धवैः ।
आश्रमे च सदाऽस्माकं सान्निध्यं परमस्तु ते ॥३५४॥
एवमुक्तः स मां प्राह भगवाँल्लोकपूजितः ।
महेश्वरो महातेजाश्चराचरगुरुः शिवः ॥ ३५५ ॥
श्रीभगवानुवाच- अजरश्चामरश्चैव भव त्वं दुःखवर्जितः ।
यशस्वी तेजसा युक्तो दिव्यज्ञानसमन्वितः ॥ ३५६ ॥
ऋषीणामभिगम्यश्च मत्प्रसादाद्भविष्यसि ।
शीलवान् गुणसंपन्नः सर्वज्ञः प्रियदर्शनः ॥ ३५७ ॥
अक्षयं यौवनं तेऽस्तु तेजश्चैवानलोपमम् ।
क्षीरोदः सागरश्चैव यत्र यत्रेच्छसि प्रियम् ॥ ३५८ ॥
तत्र ते भविता कामं सान्निध्यं पयसो निधेः ।
क्षीरोदनं च भुङ्क्ष्व त्वममृतेन समन्वितम् ॥ ३५९ ॥
बन्धुभिः सहितः कल्पं ततो मामुपयास्यसि ।

देवताओंको नहीं दीख पडता। हे देव! हे सुरेश्वर! यदि तुम मुझपर प्रसन्न हुए हो, और मुझे वरदान करना उचित समझते हो, तो मैं यही वर मांगता हूं, कि तुम्हारे ऊपर मेरी सदा भक्ति बनी रहे। हे विभु! हे सुरसत्तम! भूत, वर्त्तमान और जो कुछ भविष्य विषय हैं, उसे मैं तुम्हारी कृपासे जान सकूं, यही मेरी प्रार्थना है और मैं बान्धवोंके सहित अक्षय क्षीरोदन भोजन करूं तथा मेरे आश्रमके निकट आपका निवास रहे। लोकपूजित चराचर-गुरु महातेजस्वी भगवान् महेश्वर मेरी ऐसी प्रार्थना सुनके मुझसे बोले। (३५०-३५५)

भगवान् बोले, हे द्विजवर! तुम मेरी कृपासे अजर, अमर, दुःखरहित, यशस्वी और दिव्य ज्ञानसे संयुक्त होकर ऋषियोंमें आदरणीय होगे। तुम शील-वान्, गुणवान्, सर्वज्ञ और प्रियदर्शन होगे। तुम्हारा अग्निके समान तेज और यौवन अक्षय होवे। तुम जिस स्थानको प्रिय समझोगे, उस ही स्थानमें तुम्हारी इच्छाके अनुसार क्षीरोदसागर निकटवर्त्ती होगा, तुम बान्धवोंके सहित अमृत समान क्षीरोदन भक्षण

अक्षया बान्धवाश्चैव कुलं गोत्रं च ते सदा ॥ ३६० ॥
भविष्यति द्विजश्रेष्ठ मयि भक्तिश्च शाश्वती ।
सान्निध्यं चाश्रमे नित्यं करिष्यामि द्विजोत्तम ॥३६१॥
तिष्ठ वत्स यथाकामं नोत्कण्ठां च करिष्यसि ।
स्मृतस्त्वया पुनर्विप्र करिष्यामि च दर्शनम् ॥ ३६२ ॥
एवमुक्त्वा स भगवान् सूर्यकोटिसमप्रभः ।
ईशानः स वरान् दत्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३६३ ॥
एवं दृष्टो मया कृष्ण देवदेवः समाधिना ।
तदवाप्तं च मे सर्वं यदुक्तं तेन धीमता ॥ ३६४ ॥
प्रत्यक्षं चैव ते कृष्ण पश्य सिद्धान्व्यवस्थितान् ।
ऋषीन् विद्याधरान् यक्षान् गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥३६५॥
पश्य वृक्षलतागुल्मान् सर्वपुष्पफलप्रदान् ।
सर्वर्तुकुसुमैर्युक्तान्सुखपत्रान् सुगन्धिनः ॥ ३६६ ॥
सर्वमेतन्महाबाहो दिव्यभावसमन्वितम् ।
प्रसादाद्देवदेवस्य ईश्वरस्य महात्मनः ॥ ३६७ ॥
वासुदेव उवाच– एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य प्रत्यक्षमिव दर्शनम् ।

करो । अनन्तर कल्पान्तकालमें मेरे निकट गमन करोगे । हे द्विजश्रेष्ठ ! तुम्हारे बान्धवोंका कुल और गोत्र सदा अक्षय होगा और मुझमें तुम्हारी शाश्वती भक्ति रहेगी । हे द्विजोत्तम ! मैं सदा तुम्हारे आश्रमके निकट रहूंगा। हे पुत्र ! तुम इच्छानुसार निवास करो, उत्कण्ठित न होना । पुनर्वार स्मरण करनेसे भी मैं तुम्हें दर्शन दूंगा। कोटि-सूर्य समान प्रकाशसे युक्त भगवान ईशान ऐसा कहके वरदान देकर उस ही स्थानमें अन्तर्द्धान होगये। (३६१-३६३)

हे कृष्ण ! इस ही प्रकार समाधिके द्वारा मैंने देवोंके देव महादेवका दर्शन किया था । उन्होंने जो कुछ कहा था, मुझे वह सब प्राप्त हुआ है । हे कृष्ण ! प्रत्यक्ष देखो; सिद्ध, ऋषि, विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व और अप्सरावृन्द स्थित हैं । सर्वपुष्पफलप्रद वृक्ष, लता और गुल्म अवलोकन करो, ये सब ऋतुओंमें ही पुष्पयुक्त, सुखपत्र और सुगन्धमय होरहे हैं । हे महाबाहो ! महानुभाव देवोंके देव ईश्वरकी कृपासे ये सब दिव्य भावसे सम्पन्न हैं । (३६४-३६७)

श्रीकृष्ण बोले, मैंने प्रत्यक्ष दर्शनकी भांति उस महामुनिका वाक्य सुनके

विस्मयं परमं गत्वा अब्रुवं तं महामुनिम् ॥ ३६८ ॥
धन्यस्त्वमसि विप्रेन्द्र कस्त्वदन्योऽस्ति पुण्यकृत्।
यस्य देवाधिदेवस्य सान्निध्यं कुरुतेऽऽश्रमे ॥ ३६९ ॥
अपि तावन्ममाप्येवं दद्यात्स भगवाञ्छिवः।
दर्शनं मुनिशार्दूल प्रसादं चापि शंकरः ॥ ३७० ॥
उपमन्युरुवाच- द्रक्ष्यसे पुण्डरीकाक्ष महादेवं न संशयः।
अचिरेणैव कालेन यथा दृष्टो मयाऽनघ ॥ ३७१ ॥
चक्षुषा चैव दिव्येन पश्याम्यमितविक्रमम्।
षष्ठे मासि महादेवं द्रक्ष्यसे पुरुषोत्तम ॥ ३७२ ॥
षोडशाष्टौ वरांश्चापि प्राप्स्यसि त्वं महेश्वरात्।
सपत्नीकाद्यदुश्रेष्ठ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ३७३ ॥
अतीतानागतं चैव वर्तमानं च नित्यशः।
विदितं मे महाबाहो प्रसादात्तस्य धीमतः ॥ ३७४ ॥
एतान्सहस्रशश्चान्यान्समनुध्यातवान्हरः।
कस्मात्प्रसादं भगवान्न कुर्यात्तव माधव ॥ ३७५ ॥
त्वादृशेन हि देवानां श्लाघनीयः समागमः।
ब्रह्मण्येनानृशंसेन श्रद्दधानेन चाप्युत ॥ ३७६ ॥

अत्यन्त विस्मययुक्त होकर उनसे कहा, हे विप्रेन्द्र ! तुम ही धन्य हो, तुम्हारे अतिरिक्त और पुण्यवान् दूसरा कौन है ? क्यों कि देवोंके देव तुम्हारे आश्रमके निकटवर्त्ती हैं । हे मुनिपुङ्गव ! कल्याणदाता भगवान् शङ्कर प्रसन्न होके मुझे भी दर्शन और प्रसाद दे सकते हैं ? (३६८-३७०)

उपमन्यु बोले, हे अनघ पुण्डरीकाक्ष ! मैंने जिस प्रकार दर्शन किया था, तुम थोडे ही समयमें उस ही भांति महादेवका दर्शन करोगे। हे अमितविक्रम पुरुषोत्तम ! मैं दिव्य नेत्रके सहारे देखता हूं, कि तुम छठवें महीनेमें महादेवका दर्शन करोगे। हे यदुश्रेष्ठ ! सपत्नीक महादेवके निकट तुम चौवीस वर पाओगे, यह मैं तुमसे सत्य ही कहता हूं। हे महाबाहो ! उस महेश्वरके प्रसादसे भूत, वर्त्तमान और भविष्य विषय सदा मुझे विदित होते हैं। हे माधव ! भगवान् भवानीपतिने इन सब तथा दूसरे सहस्रों पुरुषोंपर कृपा की है, तब तुम पर कृपा क्यों न करेंगे ? विशेष करके तुम्हारे समान श्रद्धावान्,

जप्यं तु ते प्रदास्यामि येन द्रक्ष्यसि शंकरम् ।
श्रीकृष्ण उवाच- अब्रुवं तमहं ब्रह्मन् त्वत्प्रसादान्महामुने ॥ ३७७ ॥
द्रक्ष्ये दितिजसंघानां मर्दनं त्रिदशेश्वरम् ।
एवं कथयतस्तस्य महादेवाश्रितां कथाम् ॥ ३७८ ॥
दिनान्यष्टौ ततो जग्मुर्मुहूर्तमिव भारत ।
दिनेऽष्टमे तु विप्रेण दीक्षितोऽहं यथाविधि ॥ ३७९ ॥
दण्डी मुण्डी कुशी चीरी घृताक्तो मेखलीकृतः ।
मासमेकं फलाहारो द्वितीयं सलिलाशनः ॥ ३८० ॥
तृतीयं च चतुर्थं च पञ्चमं चानिलाशनः ।
एकपादेन तिष्ठंश्च ऊर्ध्वबाहुरतन्द्रितः ॥ ३८१ ॥
तेजः सूर्यसहस्रस्य अपश्यं दिवि भारत ।
तस्य मध्यगतं चापि तेजसः पाण्डुनन्दन ॥ ३८२ ॥
इन्द्रायुधपिनद्धाङ्गं विद्युन्मालागवाक्षकम् ।
नीलशैलचयप्रख्यं बलाकाभूषिताम्बरम् ॥ ३८३ ॥
तत्र स्थितश्च भगवान् देव्या सह महाद्युतिः ।

ब्रह्मण्य और अनृशंस पुरुषके सङ्ग समागम होना देवताओंमें श्लाघनीय है । मैं तुम्हें जपका फल प्रदान करता हूं, उसहीके द्वारा तुम महादेवका दर्शन करनेमें समर्थ होगे । (३७१—३७७)

विष्णु बोले, मैंने उनसे कहा, हे ब्रह्मन्! हे महामुनि! मैं आपकी कृपासे दितिजदलको मर्दनेवाले त्रिदशेश्वरका दर्शन करूंगा । हे भारत! अनन्तर इस ही प्रकार महादेवाश्रित कथा कहते कहते मुहूर्तकालकी भांति आठ दिन बीत गया । आठवे दिन मैंने उस विप्रसे विधिपूर्वक दीक्षा पाई । दण्डधारी मुण्डित सिर, कुशचीरधारी और घृताक्त होकर मेखला धारण किया । एक महीनेतक फलाहार करके रहा, दूसरे महीनेमें जल पीके और तीसरे चौथे तथा पांचवें महीनेतक वायु पीके निवास किया । हे भारत! मैं ऊर्ध्वबाहु और अतन्द्रित होकर एक पदसे स्थित था, अनन्तर मैंने आकाशमण्डलमें सहस्र सूर्यका तेज अवलोकन किया । हे पाण्डुनन्दन! उस तेजके बीचमें इन्द्रायुधपिनद्धाङ्ग, विद्युन्माला रूपगवाक्ष समन्वित, नीलगिरिके निकट बकपंक्ति विभूषित पर्वत मण्डल की भांति स्थित था । (३७७–३८३)

तपसा तेजसा कान्त्या दीप्तया सह भार्यया ॥१८४॥
रराज भगवांस्तत्र देव्या सह महेश्वरः ।
सोमेन सहितः सूर्यो यथा मेघस्थितस्तथा ॥ १८५ ॥
संहृष्टरोमा कौन्तेय विस्मयोत्फुल्ललोचनः ।
अपश्यं देवसंघानां गतिमार्तिहरं हरम् ॥ १८६ ॥
किरीटिनं गदिनं शूलपाणिं व्याघ्राजिनं जटिलं दण्डपाणिम् ।
पिनाकिनं वज्रिणं तीक्ष्णदंष्ट्रं शुभाङ्गदं व्यालयज्ञोपवीतम् ॥ १८७॥
दिव्यां मालामुरसाऽनेकवर्णां समुद्वहन्तं गुल्फदेशावलम्बाम् ।
चन्द्रं यथा परिविष्टं ससन्ध्यं वर्षात्यये तद्वदपश्यमेनम् ॥ १८८ ॥
प्रमथानां गणैश्चैव समन्तात्परिवारितम् ।
शरदीव सुदुष्प्रेक्ष्यं परिविष्टं दिवाकरम् ॥ १८९ ॥
एकादश शतान्येवं रुद्राणां वृषवाहनम् ।
अस्तुवं नियतात्मानं कर्मभिः शुभकर्मिणम् ॥१९० ॥
आदित्या वसवः साध्या विश्वेदेवास्तथाऽश्विनौ ।
विश्वाभि स्तुतिभिर्देवं विश्वदेवं समस्तुवन् ॥ १९१ ॥
शतक्रतुश्च भगवान् विष्णुश्चादितिनन्दनौ ।

महातेजस्वी भगवान् महेश्वर देवीके सहित उसही नीरदमण्डलमें स्थित रहके तप, तेज, कान्ति और दीप्यमान उमाके सहित मेघमण्डलमें स्थित चन्द्रमासे युक्त सूर्यकी भांति विराजते थे। हे कुन्तीनन्दन ! मैंने रोमाञ्चित शरीर और विस्मयोत्फुल्ल नेत्रसे देवताओंकी गति तथा आर्त्तिहर महादेवका दर्शन किया। मैंने देखा, कि ये ही किरीट मण्डित, गदा हाथमें लिये हुए, शूलपाणि, व्याघ्राम्बरधारी, जटिल, दण्डपाणि, पिनाकी, वज्री, तीक्ष्णदन्त, शुभाङ्गद, व्यालयज्ञोपवीती देव वर्षोंके समाप्तिमें सन्ध्याके सहित घिरे हुए चन्द्रमाकी भांति वक्षःस्थलमें गुल्फ पर्यन्त अनेक वर्णकी दिव्यमाला धारण करके निवास करते हैं। शरत्कालमें निर्मल, दुष्प्रेक्ष्य, प्रकाशमान सूर्यकी भांति भूतगणोंसे सब प्रकार घिरे हुए थे, ग्यारह सौ रुद्रगण मन और कर्मसे सदा शुभ कर्मशील उस वृषभवाहन महेश्वरकी स्तुति करते थे। (३८४-३९०)

आदित्य गण, वसु, साध्य, विश्वदेव और दोनों अश्विनीकुमार विश्वस्तुतिके सहारे उस विश्वेश्वरकी आराधना करते थे। अदिति-नन्दन इन्द्र, विष्णु और

ब्रह्मा रथन्तरं साम ईरयन्ति भवान्तिके ॥ ३९२ ॥
योगीश्वराः सुबहवो योगदं पितरं गुरुम् ।
ब्रह्मर्षयश्च ससुतास्तथा देवर्षयश्च वै ॥ ३९३ ॥
पृथिवी चान्तरिक्षं च नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ।
मासार्धमासा ऋतवो रात्रिः संवत्सराः क्षणाः ॥३९४॥
मुहूर्ताश्च निमेषाश्च तथैव युगपर्ययाः ।
दिव्या राजन्नमस्यन्ति विद्याः सत्त्वविदस्तथा ॥३९५॥
सनत्कुमारो देवाश्च इतिहासास्तथैव च ।
मरीचिरङ्गिरा अत्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ ३९६ ॥
मनवः सप्त सोमश्च अथर्वा सबृहस्पतिः ।
भृगुर्दक्षः कश्यपश्च वसिष्ठः काश्य एव च ॥ ३९७ ॥
छन्दांसि दीक्षा यज्ञाश्च दक्षिणाः पावको हविः ।
यज्ञोपगानि द्रव्याणि मूर्तिमन्ति युधिष्ठिर ॥ ३९८ ॥
प्रजानां पालकाः सर्वे सरितः पन्नगा नगाः ।
देवानां मातरः सर्वा देवपत्न्यः सकन्यकाः ॥ ३९९ ॥
सहस्राणि मुनीनां च अयुतान्यर्बुदानि च ।
नमस्यन्ति प्रभुं शान्तं पर्वताः सागरा दिशः ॥४००॥
गन्धर्वाप्सरसश्चैव गीतवादित्रकोविदाः ।
दिव्यतालेषु गायन्तः स्तुवन्ति भवमद्भुतम् ॥४०१ ॥

ब्रह्मा महादेवके निकट रथन्तर सामगान करते थे। हे राजन्! बहुतेरे योगेश्वरवृन्द पुत्रोंके सहित ब्रह्मर्षि, देवर्षि पृथ्वी, आकाश, नक्षत्र, ग्रह, मास, पक्ष, सब ऋतु, रात्रि, संवत्सर क्षण, मुहूर्त्त, निमेष, युगपर्यय, दिव्य विद्या और सत्त्ववित् सब प्राणी उस योगदाता, पिता तथा गुरुको नमस्कार करते थे। सनत्कुमार, समस्त देव, इतिहास, मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, सप्तमनु, सोम, अथर्वा, बृहस्पति, भृगु, दक्ष, कश्यप, वसिष्ठ, काश्य, समस्त छन्द, दीक्षा, यज्ञ, दक्षिणा, अग्नि, हवि, मूर्त्तिमत् यज्ञके उपकरण तथा सब सामग्री समस्त प्रजापालगण, नदियें, पन्नग और नगगण, देवगणोंकी माता, कन्या और समस्त स्त्रियें, सहस्र अयुत और अर्बुद संख्यक मुनिवृन्द, पर्वत, समुद्र, और सब दिशा, गीतवाद्यके

विद्याधरा दानवाश्च गुह्यका राक्षसास्तथा।
सर्वाणि चैव भूतानि स्थावराणि चराणि च।
नमस्यन्ति महाराज वाङ्मनःकर्मभिर्विभुम् ॥ ४०२ ॥
पुरस्ताद्धिष्ठितः शर्वो ममासीत्त्रिदशेश्वरः।
पुरस्ताद्धिष्ठितं दृष्ट्वा ममेशानं च भारत ॥ ४०३ ॥
सप्रजापतिशक्रान्तं जगन्मामभ्युदैक्षत।
ईक्षितुं च महादेवं न मे शक्तिरभूत्तदा ॥ ४०४ ॥
ततो मामब्रवीद्देवः पश्य कृष्ण वदस्व च।
त्वया ह्याराधितश्चाहं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४०५ ॥
त्वत्समो नास्ति मे कश्चित्त्रिषु लोकेषु वै प्रियः।
शिरसा वन्दिते देवे देवी प्रीता ह्युमा तदा।
ततोऽहमब्रुवं स्थाणुं स्तुतं ब्रह्मादिभिः सुरैः ॥ ४०६ ॥
कृष्ण उवाच– नमोऽस्तु ते शाश्वत सर्वयोने ब्रह्माधिपं त्वामृषयो वदन्ति।
तपश्च सत्त्वं च रजस्तमश्च त्वामेव सत्यं च वदन्ति सन्तः ॥ ४०७ ॥
त्वं वै ब्रह्मा च रुद्रश्च वरुणोऽग्निर्मनुर्भवः।

जाननेवाले गन्धर्व तथा अप्सरागण दिव्य तालके सहित गान करती हुई शान्त विभुभवको प्रणाम और अद्भुत-भावसे स्तुति कर रही थीं।।(३९१ ४०१)

हे महाराज! विद्याधर, दानव, गुह्यक, राक्षस और स्थावर जङ्गम समस्त प्राणी वचन, मन और कर्मसे उस महेश्वरको प्रणाम करते थे; देवेश्वर महादेव मेरे अगाडी स्थित थे। हे भारत! मेरे अगाडी महादेवको खडे हुए देखके ब्रह्मा और इन्द्र पर्यन्त सब लोग मुझे देखने लगे। उस समय महादेवकी ओर देखनेमें मेरी सामर्थ्य न हुई। अनन्तर महेश्वर मुझसे बोले हे "कृष्ण! तुम मेरा दर्शन करो और जो कुछ अभिलाष हो, वह मुझसे कहो, तुमने सैकडों सहस्रों बार मेरी आराधना की है, तीनों लोकोंके बीच तुम्हारे समान प्रियपात्र मेरा कोई भी नहीं है।" मैंने जब सिर नीचा करके महादेवकी वन्दना की, तब उमादेवी प्रसन्न हुई। अनन्तर मैंने ब्रह्मादि देवताओंके स्तवनीय महादेवसे कहा।(४०२-४०६)

विष्णु बोले, हे अपरिणामिन् सर्व योनि शङ्कर! तुम्हें प्रणाम है, ऋषि लोग तुम्हें सब वेदोंके स्तवनीय कहते हैं, साधु लोग तुम्हें ही तप, सत्त्व,

धाता त्वष्टा विधाता च त्वं प्रभुः सर्वतोमुखः ॥४०८॥
त्वत्तो जातानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
त्वया सृष्टमिदं कृत्स्नं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥४०९॥
यानीन्द्रियाणीह मनश्च कृत्स्नं ये वायवः सप्त तथैव चाग्नयः ।
ये देवसंस्था स्तवदेवताश्च तस्मात्परं त्वामृषयो वदन्ति ॥४१०॥
वेदाश्च यज्ञाः सोमश्च दक्षिणा पावको हविः ।
यज्ञोपगं च यत्किञ्चिद्भगवांस्तदसंशयम् ॥ ४११ ॥
इष्टं दत्तमधीतं च व्रतानि नियमाश्च ये ।
ह्रीः कीर्तिः श्रीर्द्युतिस्तुष्टिः सिद्धिश्चैव तदर्पणी ॥४१२॥
कामः क्रोधो भयं लोभो मदः स्तम्भोऽथ मत्सरः ।
आधयो व्याधयश्चैव भगवंस्तनवस्तव ॥ ४१३ ॥
कृतिर्विकारः प्रणयः प्रधानं बीजमव्ययम् ।
मनसः परमा योनिः प्रभावश्चापि शाश्वतः ॥ ४१४ ॥
अव्यक्तः पावनोऽचिन्त्यः सहस्रांशुर्हिरण्मयः ।

रज, तम और सत्यस्वरूप कहा करते हैं। तुम ही ब्रह्मा, रुद्र, वरुण, अग्नि, मनु, भव, धाता (ईश्वर), त्वष्टा (रूपनिर्माता), विधाता (धर्माधर्मरूपी कर्मफल देनेवाले) और तुम सर्वतोमुख प्रभु हो। स्थावर जङ्गम समस्त प्राणी तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं, ये चराचरोंके सहित तीन लोक तुमसे प्रकट हुए हैं। इस शरीरमें जो सब इन्द्रियें, मन और प्राण आदि पञ्चवायु हैं, और गार्हपत्य, दक्षिण, आवहनीय, सभ्य, आवसथ्य, ये पांचों श्रौत, छठवीं स्मार्त्त, सातवीं लौकिक, ये सात प्रकारकी अग्नि और देव अर्थात् सूत्रात्मामें जिनकी समाप्ति हुई हैं, तथा जो स्तुतिके योग्य देवता हैं, उन सबके नेत्र और वचनसे ऋषि लोग तुम्हें अगोचर कहा करते हैं। (४०७—४१०)

सब वेद, यज्ञ, सोम दक्षिणाग्नि, हवि तथा जो कुछ यज्ञकी सामग्री हैं, भगवान् ही निःसंदेह उन सबके स्वरूप हैं। इष्ट, दत्त,अधीत,व्रत, नियम,लज्जा, कीर्ति, श्री, द्युति, तुष्टि और सिद्धि ये सभी तुम्हारे स्वरूप प्राप्तिके कारण हैं। हे भगवन्! काम, क्रोध, भय, लोभ, मद, स्तम्भ, मत्सरता आधि और व्याधि, ये सब तुम्हारे अंश हैं। क्रिया, विकार अर्थात् क्रिया फलभूत हर्ष आदि,उसके अभाव प्रणय,वासना-बीज प्रधान, मनकी परमयोनि, शाश्वत

आदिर्गणानां सर्वेषां भवान्वै जीविताश्रयः ॥ ४१५ ॥
महानात्मा मतिर्ब्रह्मा विश्वः शम्भुः स्वयंभुवः ।
बुद्धिः प्रज्ञोपलब्धिश्च संवित्ख्यातिर्धृतिः स्मृतिः ॥४१६॥
पर्यायवाचकैः शब्दैर्महानात्मा विभाव्यते ।
त्वां बुद्ध्वा ब्राह्मणो वेदात्प्रमोहं विनियच्छति॥४१७॥
हृदयं सर्वभूतानां क्षेत्रज्ञस्त्वमृषिस्तुतः ।
सर्वतः पाणिपादस्त्वं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः॥ ४१८ ॥
सर्वतः श्रुतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठसि ।
फलं त्वमसि तिग्मांशोर्निमेषादिषु कर्मसु ॥ ४१९ ॥
त्वं वै प्रभार्चिः पुरुषः सर्वस्य हृदि संश्रितः ।
अणिमा महिमा प्राप्तिरीशानो ज्योतिरव्ययः ॥४२०॥
त्वयि बुद्धिर्मतिर्लोकाः प्रपन्नाः संश्रिताश्च ये ।
ध्यानिनो नित्ययोगाश्च सत्यसत्त्वा जितेन्द्रियाः॥४२१॥
यस्त्वां ध्रुवं वेदयते गुहाशयं प्रभुं पुराणं पुरुषं च विग्रहम् ।

प्रभाव, अज्ञान, अव्यक्त, पावन, अचिन्त्य, चित्तमें ज्योतिरूपी सूर्य, तथा अव्यक्तादि तत्वोंकी आदि हो, आप ही उन सबके जीविताश्रय अर्थात् नदियोंके निमित्त समुद्रकी भांति प्राप्य स्थान, महान्, आत्मा, मति, ब्रह्मा, विश्व, शम्भु, स्वयम्भु, बुद्धि, प्रज्ञा, उपलब्धि, संवित्, ख्याति, धृति, स्मृति, आदि पर्याय-वाचक शब्दोंके द्वारा वेदार्थ जाननेवाले पुरुषोंसे तुम ही वेदमें महान् आत्मा कहके वर्णित हुआ करते हो। विद्वान् ब्राह्मण लोग तुम्हें जानके मोहजनक अज्ञान निवारण करते हैं। ४११-४१७

तुम सब प्राणियोंके हृदयमें वास करनेवाले क्षेत्रज्ञ और मन्त्रोंके स्तवनीय हो। तुम्हारे पाणि और पादका अन्त सर्वत्र विद्यमान है। तुम्हारे नेत्र, सिर और मुख सब ठौर विराजमान है; तुम सर्वत्र श्रुतिमान होकर सारे जगत्को परिपूर्ण कर रहे हो, तुम ही सूर्यकी प्रभा तथा किरण और निमेष आदि कर्मोंके फल हो; तुम सबके हृदयस्थ पुरुष हो। तुम अणिमा (दुर्लक्ष्यतन्मात्र) हो, तुम लघिमा (त्रिविध परिच्छेदसे रहित) हो, तुम प्राप्तिस्वरूप ईशान और अव्यय ज्योति हो, तुममें बुद्धि, मति और समस्त लोक स्थित होरहे हैं। जो लोग ध्याननिष्ठ, नित्य योगमें रत, सत्य-सन्ध और जितेन्द्रिय हैं, वे तुममें ही संश्रित होरहे हैं। (४१८-४२१)

हिरण्मयं बुद्धिमतां परां गतिं स बुद्धिमान् बुद्धिमतीत्य तिष्ठति ॥४२२॥
विदित्वा सप्त सूक्ष्माणि षडङ्गं त्वां च मूर्तितः।
प्रधानविधियोगस्थस्त्वामेव विशते बुधः ॥ ४२३ ॥
एवमुक्ते मया पार्थ भवे चार्तिविनाशने।
चराचरं जगत्सर्वं सिंहनादं तदाऽकरोत् ॥ ४२४ ॥
तं विप्रसंघाश्च सुरासुराश्च नागाः पिशाचाः पितरो वयांसि।
रक्षोगणा भूतगणाश्च सर्वे महर्षयश्चैव तदा प्रणेमुः ॥ ४२५ ॥
मम मूर्ध्नि च दिव्यानां कुसुमानां सुगन्धिनाम्।
राशयो निपतन्ति स्म वायुश्च सुसुखो ववौ ॥ ४२६ ॥
निरीक्ष्य भगवान् देवीं ह्युमां मां च जगद्धितः।
शतक्रतुं चाभिवीक्ष्य स्वयं मामाह शंकरः ॥ ४२७ ॥
विद्मः कृष्ण परां भक्तिमस्मासु तव शत्रुहन्।
क्रियतामात्मनः श्रेयः प्रीतिर्हि त्वयि मे परा ॥४२८॥

जो तुम्हें न चलनेवाले, गुहामें शयन करनेवाले, प्रभु, पुराण पुरुष, विशिष्टानुभव स्वरूप निष्कल ज्ञप्तिमात्र, हिरण्यका बना हुआ और बुद्धिमान पुरुषोंकी परम गतिको जानते हैं, अथवा जानके शिष्योंको जनाते हैं, वे महाबुद्धिमान पुरुष बुद्धिको अतिक्रम करके निवास किया करते हैं। विद्वान् पुरुष सातों सूक्ष्म विषयों अर्थात् महत्, अहङ्कार तथा पञ्चतन्मात्र और षडङ्ग अर्थात् सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादि बोध, स्वतन्त्रता, नित्य अलुप्तशक्ति और अत्यन्त शक्तियुक्त तुम्हें मूर्त्तिमान रूपसे जानके और चित्तसत्त्वके आत्मभिन्नत्व रूपसे ज्ञापनरूपी विधिके अनुसार योगयुक्त होकर तुममें ही प्रवेश करते हैं। (४२२-४२३)

हे पार्थ! सब दुखोंको दूर करनेवाले महादेवसे जब मैंने ऐसा कहा, उस समय चराचरोंसे युक्त समस्त जगत् सिंहनाद करने लगा। उस समय ब्राह्मण, देवता, असुर, सर्प, पिशाच, पितर, पक्षीवृन्द राक्षसों, समस्त प्राणियों तथा महर्षियोंने उन्हें प्रणाम किया। मेरे सिरपर दिव्य सुगन्धियुक्त फूलोंकी वर्षा हुई और महा सुखस्पर्श वायु बहने लगी। अखिल जगत् का हित करनेवाला भगवान शङ्कर और उमादेवी, मुझे और इन्द्रको देखके स्वयं मुझसे कहने लगे। हे शत्रुनिषूदन कृष्ण! यह मैं जानता हूं कि मुझपर तुम्हारी परम भक्ति है, तुम अपना

वृणीष्वाष्टौ वरान् कृष्ण दातास्मि तव सत्तम ।
ब्रूहि यादवशार्दूल यानिच्छसि सुदुर्लभान् ॥ ४२९ ॥ [१०११]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि मेघवाहनपर्वाख्याने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

कृष्ण उवाच- मूर्ध्ना निपत्य नियतस्तेजःसन्निचये ततः ।
परमं हर्षमागत्य भगवन्तमथाब्रुवम् ॥ १ ॥
धर्मे दृढत्वं युधि शत्रुघातं यशस्तथाऽग्र्यं परमं बलं च ।
योगप्रियत्वं तव सन्निकर्षं वृणे सुतानां च शतं शतानि ॥ २ ॥
एवमस्त्विति तद्वाक्यं मयोक्तः प्राह शंकरः ।
ततो मां जगतो माता धारिणी सर्वपावनी ॥ ३ ॥
उवाचोमा प्रणिहिता शर्वाणी तपसां निधिः ।
दत्तो भगवता पुत्रः साम्बो नाम तवानघ ॥ ४ ॥
मत्तोऽप्यष्टौ वरानिष्टान् गृहाण त्वं ददामि ते ।
प्रणम्य शिरसा सा च मयोक्ता पाण्डुनन्दन ॥ ५ ॥
द्विजेष्वकोपं पितृतः प्रसादं शतं सुतानां परमं च भोगम् ।
कुले प्रीतिं मातृतश्च प्रसादं शमप्राप्तिं प्रवृणे चापि दाक्ष्यम् ॥ ६ ॥

कल्याण साधन करो, तुमपर मेरी परम प्रीति उत्पन्न हुई है । हे सत्तम कृष्ण ! तुम वर मांगो मैं तुम्हें आठ वर दूंगा । हे यादवश्रेष्ठ ! तुम जिन सब दुर्लभ वरोंके निमित्त इच्छा करते हो उन्हें मांगो । (४२४—४२९)

अनुशासनपर्वमें १४ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें १५ अध्याय ।

श्रीकृष्ण बोले, अनन्तर मैंने परम हर्षसे सिर झुकाके उन्हें प्रणाम किया और तेजःपुञ्जमें स्थित भगवान्से कहा। हे भगवन् ! मैं धर्ममें दृढबन्धन, युद्धमें शत्रुहनन, श्रेष्ठ यश, अत्यन्त बल, योगके सहित प्रियत्व और सैकडों पुत्र पानेके लिये आपके निकट प्रार्थना करता हूं । महादेव मेरी ऐसी प्रार्थना सुनके बोले, "ऐसा ही होवे ।" अनन्तर जगन्माता, सर्वधारिणी, सर्व-पावनी, तपस्याकी निधि, शर्वाणी उमा देवीने मुझसे कहा, हे पापरहित कृष्ण! भगवानने तुम्हें सांब नामक पुत्र प्रदान किया । अब तुम निज अभि-लषित आठ वर मुझसे मांगो, मैं तुम्हें वर देती हूं । हे पाण्डुनन्दन ! मैंने उस समय सिर झुकाके देवीको प्रणाम करके कहा, हे माता! ब्राह्मणोंके विषयमें

उमोवाच— एवं भविष्यत्यमरप्रभाव नाहं मृषा जातु वदे कदाचित् ।
भार्यासहस्राणि च षोडशैव तासु प्रियत्वं च तथाऽक्षयं च ॥ ७ ॥
प्रीतिं चाग्र्यां बान्धवानां सकाशाद्ददामि तेऽहं वपुषः काम्यतां च ।
भोक्ष्यन्ते वै सप्ततिं वै शतानि गृहे तुभ्यमतिथीनां च नित्यम् ॥ ८ ॥
वासुदेव उवाच- एवं दत्त्वा वरान् देवो मम देवी च भारत ।
अन्तर्हितः क्षणे तस्मिन् स गणो भीमपूर्वज ॥ ९ ॥
एतदत्यद्भुतं पूर्वं ब्राह्मणायातितेजसे ।
उपमन्यवे मया कृत्स्नं व्याख्यातं पार्थिवोत्तम ।
नमस्कृत्वा तु स प्राह देवदेवाय सुव्रत ॥ १० ॥
उपमन्युरुवाच- नास्ति शर्वसमो देवो नास्ति शर्वसमा गतिः ।
नास्ति शर्वसमो दाने नास्ति शर्वसमो रणे ॥ ११ ॥ [१०२२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि मेघवाहनपर्वाख्याने पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

उपमन्युरुवाच-ऋषिरासीत्कृते तात तण्डिरित्येव विश्रुतः ।

अक्रोध, पिताकी प्रसन्नता, शतपुत्र, परम भोग, कुलमें प्रीति, माताकी कृपा, शमप्राप्ति और दक्षताकी मैं प्रार्थना करता हूं। (१—६)

उमा बोली, हे परमप्रभाव ! तुमने जो वर मांगा वह तुम्हें प्राप्त होगा; इसके अतिरिक्त मैं और भी आठ वर देती हूं, मैं कदापि मिथ्या नहीं कहती, इसलिये तुम भी महाप्रभावयुक्त होगे और मिथ्या न कहोगे, तुम्हारे सोलह हजार भार्या होंगी, उनपर तुम्हारा प्रियत्व और धनधान्य आदिका अक्षयत्व रहेगा, तुम गन्धर्वोंके निकट परम प्रीति प्राप्त करोगे; तुम्हारे शरीरकी कमनीयता होगी और तुम्हारे गृह में प्रतिदिन सत्तर सौ अतिथि भोजन करेंगे, मैंने तुम्हें यह आठ वर और प्रदान किया। (७-८)

श्रीकृष्ण बोले,हे भीमाग्रज भारत ! महादेव और देवी इस ही प्रकार चौबीस वर देके उस ही समय निजगणके सहित अन्तर्द्धान हुए। हे नृपवर ! यह अत्यन्त अद्भुत समस्त विषय पहले मैंने ब्राह्मणश्रेष्ठ तेजस्वी उपमन्युके समीप वर्णन किया। हे सुव्रत ! उन्होंने महादेवको नमस्कार करके कहा। (९-१०)

उपमन्यु बोले, महादेवके समान देवता नहीं है, न महादेवके समान गति है, दानविषयमें महादेवके समान

दश वर्षसहस्राणि तेन देवः समाधिना ॥ १ ॥
आराधितोऽभूद्भक्तेन तस्योदर्कं निशामय।
स दृष्टवान्महादेवमस्तौषीच्च स्तवैर्विभुम् ॥ २ ॥
इति तण्डिस्तपोयोगात्परमात्मानमव्ययम्।
चिन्तयित्वा महात्मानमिदमाह सुविस्मितः ॥ ३ ॥
यं पठन्ति सदा सांख्याश्चिन्तयन्ति च योगिनः।
परं प्रधानं पुरुषमधिष्ठातारमीश्वरम् ॥ ४ ॥
उत्पत्तौ च विनाशे च कारणं यं विदुर्बुधाः।
देवासुरमुनीनां च परं यस्मान्न विद्यते ॥ ५ ॥
अजं तमहमीशानमनादिनिधनं प्रभुम्।
अत्यन्तसुखिनं देवमनघं शरणं व्रजे ॥ ६ ॥
एवं ब्रुवन्नेव तदा ददर्श तपसां निधिम्।
तमव्ययमनौपम्यमचिन्त्यं शाश्वतं ध्रुवम् ॥ ७ ॥
निष्कलं सकलं ब्रह्म निर्गुणं गुणगोचरम्।

कोई नहीं है और न कोई पुरुष संग्राम में ही महादेवके समान है। (११)

अनुशासनपर्वमें १५ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १६ अध्याय।

उपमन्यु बोले, हे तात! सत्ययुगमें तण्डिनामसे विख्यात एक ऋषि था, उस भक्तने दस हजार वर्षतक ध्यान योगके सहारे एकाग्र होकर महादेवकी आराधना की थी, तपस्या पूर्ण होनेपर उन्हें जो फल प्राप्त हुआ उसे सुनो, उन्होंने विभु महादेवका दर्शन करके स्तुतियुक्त वचनसे उनका स्तव किया था, तण्डि मुनि तपोयोग निबन्धनसे अव्यय महात्मा परमात्माका इस ही प्रकार ध्यान करके अत्यन्त विस्मययुक्त होकर यह वक्ष्यमाण वचन बोले, सांख्यादि लोक जिस परमप्रधान पुरुष अधिष्ठाता ईश्वरकी स्तुति किया करते हैं, योगीजन जिसका सदा ध्यान करते हैं, ज्ञानी लोग जिसे उत्पत्ति और विनाशका कारण कहते हैं, देवता, असुर और मुनियोंके बीच जिससे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है, मैं उस जन्मरहित, अनादिनिधन, सर्व शक्तिमान, अत्यन्त सुखी, पापरहित रुद्रदेवका शरणागत होता हूं। (१—६)

तण्डि मुनिने ऐसा वचन कहते कहते उस अव्यय, तपोनिधि, अनुपम, अचिन्तनीय, शाश्वत, कूटस्थ, निष्कल और निर्गुण, गुणगोचर ब्रह्माका दर्शन

योगिनां परमानन्दमक्षरं मोक्षसंज्ञितम् ॥ ८ ॥
मनोरिन्द्राग्निमरुतां विश्वस्य ब्रह्मणो गतिम् ।
अग्राह्यमचलं शुद्धं बुद्धिग्राह्यं मनोमयम् ॥ ९ ॥
दुर्विज्ञेयमसंख्येयं दुष्प्रापमकृतात्मभिः ।
योनिं विश्वस्य जगतस्तमसः परतः परम् ॥ १० ॥
यः प्राणवन्तमात्मानं ज्योतिर्जीवस्थितं मनः ।
तं देवं दर्शनाकाङ्क्षी बहून्वर्षगणानृषिः ॥ ११ ॥
तपस्युग्रे स्थितो भूत्वा दृष्ट्वा तुष्टाव चेश्वरम् ।
तण्डिरुवाच- पवित्राणां पवित्रस्त्वं गतिर्गतिमतां वर ॥ १२ ॥
अत्युग्रं तेजसां तेजस्तपसां परमं तपः ।
विश्वावसुहिरण्याक्षपुरुहूतनमस्कृत ॥ १३ ॥
भूरिकल्याणद विभो परं सत्यं नमोऽस्तु ते ।
जातीमरणभीरूणां यतीनां यततां विभो ॥ १४ ॥
निर्वाणद सहस्रांशो नमस्तेऽस्तु सुखाश्रय ।
ब्रह्मा शतक्रतुर्विष्णुर्विश्वे देवा महर्षयः ॥ १५ ॥

किया। वही योगियोंका परम आनन्द अविनाशी और मोक्षसंज्ञित है; वही मनु, इन्द्र, अग्नि, वायु, जगत् और देवताओंका अवलम्ब है। वह अग्राह्य, अचल, शुद्ध बुद्धिसे मालूम होने योग्य और मनोमय है। वह दुर्विज्ञेय, असंख्येय और अकृतात्म लोगोंको दुष्प्राप्य है; वह समस्त जगत्‌की योनि है, तमोगुणके परे स्थित पुराण पुरुष और श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ देवता है, जो आत्माको प्राणविशिष्ट करके उसमें आवृत जीव तथा मनोरूप ज्योति स्वरूपसे स्थित रहता है, उस ही देवके दर्शनकी इच्छा करके तण्डि ऋषि अनेक वर्ष पर्यन्त उग्र तपस्या करनेके अनन्तर ईश्वरका दर्शन करके स्तुति करने लगे। (७-१२)

तण्डि बोले, हे गतिमत्प्रवर! तुम गङ्गा आदि पवित्र पदार्थोंसे भी पवित्र और श्रेष्ठगति हो, नेत्र आदि तेजस्वी पदार्थोंके तेज अर्थात् प्रकाशक और समस्त तपस्याकी भी परम तपस्या हो। तुम विश्वावसु, हिरण्याक्ष और पुरुहूतके नमस्कृत हो; हे मोक्षदाता विभु! तुम परम सत्य हो इससे तुम्हें प्रणाम है। हे विभु! तुम जन्म मरण-भीरु यतमान यतियोंके निर्वाणदाता हो। हे सहस्रांशु! हे सुखाश्रय! तुम्हें प्रणाम है। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, विश्वदेव और

न विदुस्त्वां तु तत्त्वेन कुतो वेत्स्याम्यहं वयम् ।
त्वत्तः प्रवर्तते सर्वं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १६ ॥
कालाख्यः पुरुषाख्यश्च ब्रह्माख्यश्च त्वमेव हि ।
तनवस्ते स्मृतास्तिस्रः पुराणज्ञैः सुरर्षिभिः ॥ १७ ॥
अधिपौरुषमध्यात्ममधिभूताधिदैवतम् ।
अधिलोकाधिविज्ञानमधियज्ञस्त्वमेव हि ॥ १८ ॥
त्वां विदित्वाऽऽत्मदेहस्थं दुर्विदं दैवतैरपि ।
विद्वांसो यान्ति निर्मुक्ताः परं भावमनामयम् ॥ १९ ॥
अनिच्छतस्तव विभो जन्ममृत्युरनेकतः ।
द्वारं तु स्वर्गमोक्षाणामाक्षेप्ता त्वं ददासि च ॥ २० ॥
त्वं वै स्वर्गश्च मोक्षश्च कामः क्रोधस्त्वमेव च ।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव अधश्चोर्ध्वं त्वमेव हि ॥ २१ ॥
ब्रह्मा भवश्च विष्णुश्च स्कन्देन्द्रौ सविता यमः ।

महर्षि लोग तुम्हें यथार्थ रूपसे नहीं जानते तब मैं तुम्हें किस प्रकार जान सकूंगा ? तुमसे ही जगत् उत्पन्न होता और उत्पन्न होके तुमहीमें प्रतिष्ठित रहता है । तुम ही काल, तुम ही पुरुष और तुम ही ब्रह्म हो । पुराण जाननेवाले देवर्षि लोग तुम्हारा कालाख्य, पुरुषाख्य और ब्रह्माख्य अथवा ब्रह्मा, विष्णु और रुद्राख्य इन तीनों रूपोंको स्मरण किया करते हैं । (१२-१७)

शिरश्चरणादिमान् देहपर अधिकार करके जो विज्ञान प्रवृत्त होता है, तुम ही वह अधिपौरुष विज्ञान स्वरूप हो; देहमें अधर और हनुरूप वाक्सन्धिको अधिकार करके विवेक उत्पन्न होता है, तुम ही वह अध्यात्म स्वरूप हो । देहारम्भक भूतगण और प्राण तथा नेत्र आदि इन्द्रियोंको अवलम्बन करके जो विज्ञान होता है, तुम ही वह अधिभूत और अधिदैवत हो; तुम ही अधिलोकमें अधिविज्ञान और अधियज्ञ स्वरूप हो; विद्वान् पुरुष तुम्हें देवताओंमे भी दुर्विज्ञेय, शरीरमें स्थित जानके निर्मुक्त होके अनामय परम भावको प्राप्त होते हैं । हे विभु ! स्वर्ग और मोक्षके द्वारस्वरूप तुम्हें जो लोग जाननेकी इच्छा नहीं करते, तुम उन्हें आकर्षण करके बार बार जन्म और मृत्युके मुखमें प्रेरण किया करते हो । तुम ही स्वर्ग और मोक्ष हो; तुम ही काम और क्रोधस्वरूप हो, तुम ही सत्व, रज और तमोगुणस्वरूप हो, तुम ही

वरुणेन्दू मनुर्धाता विधाता त्वं धनेश्वरः ॥ २२ ॥
भूर्वायुः सलिलाग्निश्च खं वाग्बुद्धिः स्थितिर्मतिः।
कर्म सत्यानृते चोभे त्वमेवास्ति च नास्ति च ॥ २३ ॥
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च प्रकृतिभ्यः परं ध्रुवम्।
विश्वाविश्वपरो भावश्चिन्त्याचिन्त्यस्त्वमेव हि ॥ २४ ॥
यच्चैतत्परमं ब्रह्म यच्च तत्परमं पदम्।
या गतिः सांख्ययोगानां स भवान्नात्र संशयः ॥२५॥
नूनमद्य कृतार्थाः स्म नूनं प्राप्ताः सतां गतिम्।
यां गतिं प्रार्थयन्तीह ज्ञाननिर्मलबुद्धयः ॥ २६ ॥
अहो मूढाः स्म सुचिरमिमं कालमचेतसा।
यन्न विद्मः परं देवं शाश्वतं यं विदुर्बुधाः ॥ २७ ॥
सेयमासादिता साक्षात्त्वद्भक्तिर्जन्मभिर्मया।
भक्तानुग्रहकृद्देवो यं ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ॥ २८ ॥
देवासुरमुनीनां तु यच्च गुह्यं सनातनम्।

अध और ऊर्ध्वरूप हो। (१८–२१)

तुम ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु, स्कन्द, इंद्र, सूर्य, यम, वरुण, चन्द्रमा, मनु, धाता, विधाता और कुबेर हो। तुम ही पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि,आकाश, वचन, बुद्धि, स्थिति और मतिस्वरूप हो; तुम ही सत्यानृत दोनों कर्म हो और तुम ही रज्जुसर्पकी भांति मालूम होते हो, परन्तु स्वयं वैसे जगत्कारण अज्ञानरूप से विद्यमान नहीं हो, तुम ही इन्द्रियां, इन्द्रियोंके विषय प्रकृतिसे भी श्रेष्ठ और निश्चल हो। तुम कार्यकारणके भिन्नभाव सत्तामात्र स्वरूप हो; तुम सोपाधिक रूपसे चिन्तनीय और निरुपाधिभावसे अचिन्त्य हो। जिसे परब्रह्म तथा जिसे परम पद कहते हैं और जो सांख्ययोग की परम गति है, वह तुम ही हो; इस में सन्देह नहीं है, कि ज्ञानके सहारे जिनकी बुद्धि निर्मल हुई है, वे जिस गतिकी अभिलाष करते हैं, मुझे वही साधुओंकी गति प्राप्त हुई है, अब मैं निश्चय ही कृतार्थ हुआ। (२२–२६)

पण्डित लोग जिसे शाश्वत कहते हैं, मैंने जो इतने समयतक उस परम देव-को नहीं जाना, इससे मैं अवश्य ही अचेतन और मूढ था। भक्तोंपर कृपा करनेवाले, जिस देवके जाननेसे लोग अमृतत्वलाभ करते हैं,मैंने अनेक जन्म-में उस देवके विषयमें यह भक्तिलाभ की है। देवता, असुर और मुनियोंकी

गुहायां निहितं ब्रह्म दुर्विज्ञेयं मुनेरपि ॥ २९ ॥
स एष भगवान् देवः सर्वकृत्सर्वतोमुखः ।
सर्वात्मा सर्वदर्शी च सर्वगः सर्ववेदिता ॥ ३० ॥
देहकृद्देहभृद्देही देहभुग्देहिनां गतिः ।
प्राणकृत्प्राणभृत्प्राणी प्राणदः प्राणिनां गतिः ॥ ३१ ॥
अध्यात्मगतिरिष्टानां ध्यायिनामात्मवेदिनाम् ।
अपुनर्भवकामानां या गतिः सोऽयमीश्वरः ॥ ३२ ॥
अयं च सर्वभूतानां शुभाशुभगतिप्रदः ।
अयं च जन्ममरणे विदध्यात्सर्वजन्तुषु ।
अय संसिद्धिकामानां या गतिः सोऽयमीश्वरः ॥३३॥
भूराद्यान्सर्वभुवनानुत्पाद्य सदिवौकसः ।
दधाति देवस्तनुभिरष्टाभिर्यो बिभर्ति च ॥ ३४ ॥
अतः प्रवर्तते सर्वमस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
अस्मिंश्च प्रलयं याति अयमेकः सनातनः ॥ ३५ ॥
अयं स सत्यकामानां सत्यलोकः परं सताम् ।
अपवर्गश्च मुक्तानां कैवल्यं चात्मवेदिनाम् ॥ ३६ ॥

हृदय कन्दरके बीच स्थित जो गुह्य सनातन ब्रह्म मुनियोंको भी दुर्विज्ञेय है, यह वही भगवान है। यह देव सर्वकृत्, सर्वतोमुख, सर्वात्मा, सर्वदर्शी, सर्वग, सर्ववेदिता, देहकृत्, देहभृत्, देही, देहभुक् और देहधारियोंकी गति है, यही प्राणकृत, प्राणभृत्, प्राणी, प्राणद् और प्राणियोंकी गति है। अभिलषित विषयोंकी अध्यात्म गति और ध्याननिष्ठ आत्मज्ञ तथा अपुनर्मरणकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंकी जो गति है, यह वही ईश्वर है। (२७-३२)

यही सब प्राणियोंको शुभाशुभ गतिदाता है और यही सब जीवोंके जन्ममृत्युका विधान करता है। सम्यक् सिद्धिकाम मनुष्योंका जो गम्यस्थान है, यह ईश्वर ही वह गतिस्वरूप है। जो देव देवताओंके सहित पृथ्वी आदि सब लोकोंको उत्पन्न करके आठ मूर्तिके द्वारा उसे धारण और पालन करता है, इसहीसे सब जगत् उत्पन्न होके इसहीमें प्रतिष्ठित है और इसहीमें प्रलयके समय लीन होता है, केवल यह ईश्वर ही नित्य है। अव्यभिचारी सत्य अर्थात् वेदोक्त कर्मफल स्वरूप जो स्वर्ग हैं, उन स्वर्गकाम साधुओंके येही केवल

अयं ब्रह्मादिभिः सिद्धैर्गुहायां गोपितः प्रभुः।
देवासुरमनुष्याणामप्रकाशो भवेदिति ॥ ३७ ॥
तं त्वां देवासुरनरास्तत्त्वेन न विदुर्भवम्।
मोहिताः खल्वनेनैव हृदिस्थेनाप्रकाशिना ॥ ३८ ॥
ये चैनं प्रतिपद्यन्ते भक्तियोगेन भाविताः।
तेषामेवात्मनाऽऽत्मानं दर्शयत्येष हृच्छयः ॥ ३९ ॥
यं ज्ञात्वा न पुनर्जन्म मरणं चापि विद्यते।
यं विदित्वा परं वेद्यं वेदितव्यं न विद्यते ॥ ४० ॥
यं लब्ध्वा परमं लाभं नाधिकं मन्यते बुधः।
यां सूक्ष्मां परमां प्राप्तिं गच्छन्नव्ययमक्षयम् ॥ ४१ ॥
यं सांख्या गुणतत्त्वज्ञाः सांख्यशास्त्रविशारदाः।
सूक्ष्मज्ञानतराः सूक्ष्मं ज्ञात्वा मुच्यन्ति बन्धनैः ॥४२॥
यं च वेदविदो वेद्यं वेदान्ते च प्रतिष्ठितम्।
प्राणायामपरा नित्यं यं विशन्ति जपन्ति च ॥ ४३ ॥

सत्य लोक हैं और येही योगियोंके अपवर्ग और आत्मवित् पुरुषोंके कैवल्य स्वरूप हैं। यह प्रभु देवता और असुरोंके बीच अप्रकाशित रहता है, इस ही लिये ब्रह्मा आदि मन्त्रव्याख्याता सिद्धोंके द्वारा शास्त्र स्वरूप गुहामें स्थित है। देवता, असुर और मनुष्य लोग यथार्थ रूपसे इसे जाननेमें समर्थ नहीं हैं। हृदयस्थ और अप्रकाश इस ईश्वरके द्वारा सभी मोहित होरहे हैं। (३३—३८)

जो लोग भक्तिभावसे ध्यान करके इसका दर्शन करनेकी इच्छा करते हैं, यह हृदयरूपी गुफामें शयन करनेवाला भगवान उन्हें स्वयं ही दर्शन देता है। जिसे जाननेसे फिर जन्म वा मृत्यु नहीं होती, जिस परम वेद्य परमेश्वरके जाननेसे फिर कुछ भी जाननेके लिये शेष नहीं रहता, जिसे पाके विद्वान् पुरुष फिर किसी लाभको अधिक नहीं समझते, जिसे सूक्ष्म और परम प्राप्ति समझके विद्वान् पुरुष अक्षय तथा अव्यय होते हैं, जिन्होंने ज्ञानके द्वारा लिङ्ग अतिक्रम किया है, वेही सांख्य शास्त्र जाननेवाले गुणतत्वज्ञ सांख्यमतवाले पण्डित लोग सूक्ष्म पुरुषको जानके बन्धनसे छूट जाते हैं। (३९-४२)

वेद जाननेवाले विद्वान् लोग जिसे वेद्य कहके जानते हैं, जो वेदान्त शास्त्रके बीच प्रतिष्ठित हो रहा है।

ओङ्काररथमारुह्य ते विशन्ति महेश्वरम् ।
अयं स देवयानानामादित्यो द्वारमुच्यते ॥ ४४ ॥
अयं च पितृयानानां चन्द्रमा द्वारमुच्यते ।
एष काष्ठा दिशश्चैव संवत्सरयुगादि च ॥ ४५ ॥
दिव्यादिव्यः परो लाभ अयने दक्षिणोत्तरे ।
एनं प्रजापतिः पूर्वमाराध्य बहुभिः स्तवैः ॥ ४६ ॥
प्रजार्थं वरयामास नीललोहितसंज्ञितम् ।
ऋग्भिर्यमनुशासन्ति तत्त्वे कर्माणि बह्वृचाः ॥ ४७ ॥
यजुर्भिर्यत्त्रिधा वेद्यं जुह्वत्यध्वर्यवोऽध्वरे ।
सामभिर्यं च गायन्ति सामगाः शुद्धबुद्धयः ॥ ४८ ॥
ऋतं सत्यं परं ब्रह्म स्तुवन्त्याथर्वणा द्विजाः ।
यज्ञस्य परमा योनिः पतिश्चायं परः स्मृतः ॥ ४९ ॥
रात्र्यहःश्रोत्रनयनः पक्षमासशिरोभुजः ।
ऋतुवीर्यस्तपोधैर्यो ह्यब्दगुह्योरुपादवान् ॥ ५० ॥

सदा प्राणायाममें रत रहनेवाले मनुष्य जिसमें प्रवेश करते तथा जिसका जप करते हैं, वे लोग ओंकार रूपी रथमें चढके जिस महेश्वरमें प्रवेश किया करते हैं, यह वही देवयान पथका द्वार आदित्यरूपसे कहा गया है; यही पितृयानका द्वार चन्द्रमारूपसे अभिहित हुआ करता है। येही काष्ठा, दिशा, संवत्सर और युगादि हैं, येही दिव्यादिव्य अर्थात् इन्द्र और सार्वभौमत्व लाभ तथा दक्षिणोत्तर अयन स्वरूप हैं। पहले प्रजापतिने इसी नीललोहित की अनेक भांतिसे आराधना करके प्रजाके निमित्त वर मांगा था। (४३—४७)

ब्रह्मज्ञ ब्राह्मण लोग अनारोपित रूप विषयमें ऋङ्मन्त्रोंसे जिसका वर्णन करते हैं; यजुर्वेद जाननेवाले अध्वर्युगण श्रौत, स्मार्त्त और ध्यान, इन त्रिविध यज्ञोंसे वेद्य, जिसके निमित्त अध्वरमें यजुर्मन्त्रके द्वारा होम किया करते हैं; शुद्धबुद्धि सामवेदी ब्राह्मण सामवेदके मन्त्रोंसे जिसका यश गाते तथा अथर्ववेदी ब्राह्मण जिस यज्ञके फल सत् स्वरूप परब्रह्मकी स्तुति किया करते हैं, येही वह यज्ञयोनि और यज्ञफल कहके स्मृत होते हैं। रात्रि तथा दिन जिसके कर्ण और नेत्र हैं, पक्ष तथा महीना जिसके शिर और भुजा हैं; ऋतु जिसका वीर्य, तपस्या धैर्य और वर्ष जिसके गुह्य, ऊरु और चरण हैं; येही

मृत्युर्यमो हुताशश्च कालः संहारवेगवान्।
कालस्य परमा योनिः पतिश्चायं सनातनः ॥ ५१ ॥
चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ ग्रहाश्च सह वायुना।
ध्रुवः सप्तर्षयश्चैव भुवनाः सप्त एव च ॥ ५२ ॥
प्रधानं महदव्यक्तं विशेषान्तं सवैकृतम्।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं भूतादि सदसच्च यत् ॥ ५३ ॥
अष्टौ प्रकृतयश्चैव प्रकृतिभ्यश्च यः परः।
अस्य देवस्य यद्भागं कृत्स्नं संपरिवर्तते ॥ ५४ ॥
एतत्परममानन्दं यत्तच्छाश्वतमेव च।
एषा गतिर्विरक्तानामेष भावः परः सताम् ॥ ५५ ॥
एतत्पदमनुद्विग्नमेतद्ब्रह्म सनातनम्।
शास्त्रवेदाङ्गविदुषामेतद्ध्यानं परं पदम् ॥ ५६ ॥
इयं सा परमा काष्ठा इयं सा परमा कला।
इयं सा परमा सिद्धिरियं सा परमा गतिः ॥ ५७ ॥
इयं सा परमा शान्तिरियं सा निर्वृतिः परा।
यं प्राप्य कृतकृत्याः स्म इत्यमन्यन्त योगिनः ॥५८॥

मृत्यु, यम, अग्नि, संहारवेगवान् काल, कालकी परम योनि और सनातन काल स्वरूप हैं। (४७—५१)

येही सनक्षत्र चन्द्रमा, सूर्य, वायुके सहित समस्त ग्रह, ध्रुव, सप्तर्षि और सातों भुवन स्वरूप हैं। येही प्रधान, महत्, अव्यक्त, सवैकृत विशेषान्त ब्रह्मादि स्तम्ब पर्यन्त सद्रूप भूमि, जल, अग्नि और असद्रूप वायु तथा आकाश स्वरूप हैं। येही भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहङ्कार, इन अष्ट प्रकृति स्वरूप और प्रकृतिसे भी मायावी तथा मायावीके अंश समस्त प्रपञ्च स्वरूप हैं। येही आनन्दमय ईश्वरसे भी परम शुद्ध आनन्द स्वरूप और समस्त नित्य वस्तुओंसे भी नित्य हैं; येही विरक्तोंकी गति और साधुओंके परमभाव हैं। (५२--५५)

येही अनुद्विग्नपद स्वरूप तथा येही सनातन ब्रह्म हैं। शास्त्र और वेदाङ्ग जाननेवाले पुरुषोंके येही परमपदप्रापक ध्यानस्वरूप हैं। येही श्रुतिप्रसिद्ध परम काष्ठा हैं, येही परम कला हैं, येही परम सिद्धि और येही परम गति हैं। येही परम शान्ति तथा परम निर्वृति हैं; योगी लोग जिसे

इयं तुष्टिरियं सिद्धिरियं श्रुतिरियं स्मृतिः।
अध्यात्मगतिरिष्टानां विदुषां प्राप्तिरव्यया ॥ ५९ ॥
यजतां कामयानानां मखैर्विपुलदक्षिणैः।
या गतिर्यज्ञशीलानां सा गतिस्त्वं न संशयः ॥ ६० ॥
सम्यग्योगजपैः शान्तिर्नियमैर्देहतापनैः।
तप्यतां या गतिर्देव परमा सा गतिर्भवान् ॥ ६१ ॥
कर्मन्यासकृतानां च विरक्तानां ततस्ततः।
या गतिर्ब्रह्मसदने सा गतिस्त्वं सनातन ॥ ६२ ॥
अपुनर्भवकामानां वैराग्ये वर्तताँ च या।
प्रकृतीनां लयानां च सा गतिस्त्वं सनातन ॥ ६३ ॥
ज्ञानविज्ञानयुक्तानां निरुपाख्या निरञ्जना।
कैवल्या या गतिर्देव परमा सा गतिर्भवान् ॥ ६४ ॥
वेदशास्त्रपुराणोक्ताः पञ्चैता गतयः स्मृताः।
त्वत्प्रसादाद्धि लभ्यन्ते न लभ्यन्तेऽन्यथा विभो ॥६५॥

पाके यह समझते हैं, कि "मैं कृतकृत्य हुआ हूं"-ये वही तुष्टि, सिद्धि, श्रुति अर्थात् श्रोत्रादि जनित अनुभूति और स्मृतिस्वरूप हैं। येही योगियोंकी अध्यात्मगति अर्थात् प्रत्येक प्रबल-रूपवाली गतिस्वरूप हैं। येही विद्वान पुरुषोंकी अपुनरावर्त्तिनी प्राप्तिस्वरूप हैं। बहुतसी दक्षिणाओंसे युक्त यज्ञके सहारे यजनशील कामनावान मनुष्योंका जो गम्यस्थान है, यज्ञ करनेवाले पुरुषोंकी निःसंदेह तुम वह गति हो। (५९-६०)

हे देव! पूरी रीतिसे जप, योग, शान्ति, नियम और देहको तपाते हुए तपस्या करनेवाले मनुष्योंको जो गति प्राप्त होती है, तुम ही वह परम गति हो। (६१)

हे सनातन! कर्मसंन्यासकारी विरक्त पुरुषोंकी ब्रह्मलोकमें जो गति होती है, तुम ही वह गम्यस्थान हो,जो लोग पुनः जन्मकी कामना नहीं करते और सदा वैराग्य अवलम्बन किया करते हैं, उन्हें अपुनरावृत्तिरूपी जो गति प्राप्त होती है, हे सनातन! तुम ही वह गतिस्वरूप हो। (६२-६३)

हे देव! ज्ञानविज्ञानसे युक्त पुरुषोंकी निरुपाख्य, निरञ्जन, कैवल्य-रूपी जो गति हुआ करती है, तुम ही वह परम गतिस्वरूप हो। वेद, शास्त्र और पुराणमें कही हुई ये पांच प्रकारकी

इति तण्डिस्तपोराशिस्तुष्टावेशानमात्मना।
जगौ च परमं ब्रह्म यत्पुरा लोककृज्जगौ ॥ ६६ ॥
उपमन्युरुवाच-एवं स्तुतो महादेवस्तण्डिना ब्रह्मवादिना।
उवाच भगवान्देव उमया सहितः प्रभुः ॥ ६७ ॥
ब्रह्मा शतक्रतुर्विष्णुर्विश्वे देवा महर्षयः।
न विदुस्त्वामिति ततस्तुष्टः प्रोवाच तं शिवः ॥६८ ॥
श्रीभगवानुवाच-अक्षयश्चाव्ययश्चैव भविता दुःखवर्जितः।
यशस्वी तेजसा युक्तो दिव्यज्ञानसमन्वितः ॥ ६९ ॥
ऋषीणामभिगम्यश्च सूत्रकर्ता सुतस्तव।
मत्प्रसादाद् द्विजश्रेष्ठ भविष्यति न संशयः ॥ ७० ॥
कं वा कामं ददाम्यद्य ब्रूहि यद्वत्स काङ्क्षसे।
प्राञ्जलिः स उवाचेदं त्वयि भक्तिर्दृढाऽस्तु मे ॥ ७१ ॥
उपमन्युरुवाच- एतान्दत्त्वा वरान्देवो वन्द्यमानः सुरर्षिभिः।
स्तूयमानश्च विबुधैस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ७२ ॥

गति स्मृत हुआ करती है, हे विभु! तुम्हारी कृपासे ही वे सब गति प्राप्त होती हैं, अन्यथा प्राप्त नहीं होतीं। तपस्विश्रेष्ठ तण्डिमुनिने स्वयं इस ही प्रकार ईशानदेवकी स्तुति की थी! पहिले समयमें प्रजापतिने जिस प्रकार परब्रह्मका यश गाया था, इन्होंने भी उसे ही अवलम्बन करके उस ही प्रकार यश गान किया। (६४-६६)

उपमन्यु बोले, उमाके सहित देवप्रभु भगवान् महादेव ब्रह्मवादी तण्डि मुनिके द्वारा इस ही प्रकार स्तुतियुक्त होकर अर्थात् ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, विश्व-देव और महर्षि लोग भी तुम्हें नहीं जानते, इस ही वचनसे महादेव प्रसन्न होकर तण्डिसे कहने लगे। (६७-६८)

भगवान् बोले, हे द्विजश्रेष्ठ! तुम मेरे प्रसादसे अक्षय, अव्यय, दुःख-रहित, यशस्वी, तेज और दिव्यज्ञानसे युक्त होगे और तुम्हारा पुत्र ऋषियोंका अभिगम्य तथा सूत्रकर्ता होगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हे तात! कहो, तुम्हें कौनसी अभिलाषा है, मैं इस समय तुम्हें वरदान करूंगा। तण्डि मुनि हाथ जोडके उस समय यह वचन बोले, हे देव! तुममें मेरी दृढ भक्ति रहे। (६९--७१)

उपमन्यु बोले, देवर्षियोंसे वन्दनीय और देवताओंसे स्तूयमान महादेव तण्डि मुनिको यह सब वरदान करके

अन्तर्हिते भगवति सानुगे यादवेश्वर।
ऋषिराश्रममागम्य ममैतत्प्रोक्तवानिह ॥ ७३ ॥
यानि च प्रथितान्यादौ तण्डिराख्यातवान्मम।
नामानि मानवश्रेष्ठ तानि त्वं शृणु सिद्धये ॥ ७४ ॥
दश नामसहस्राणि देवेष्वाह पितामहः।
शर्वस्य शास्त्रेषु तथा दश नामशतानि च ॥ ७५ ॥
गुह्यानीमानि नामानि तण्डिर्भगवतोऽच्युत।
देवप्रसादाद्देवेशः पुरा प्राह महात्मने ॥ ७६ ॥ [१०९८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि मेघवाहनपर्वाख्याने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

वासुदेव उवाच- ततः स प्रयतो भूत्वा मम तात युधिष्ठिर।
प्राञ्जलिः प्राह विप्रर्षिर्नामसंग्रहमादितः ॥ १ ॥
उपमन्युरुवाच- ब्रह्मप्रोक्तैर्ऋषिप्रोक्तैर्वेदवेदाङ्गसंभवैः।
सर्वलोकेषु विख्यातं स्तुत्यं स्तोष्यामि नामभिः ॥ २ ॥
महद्भिर्विहितैः सत्यैः सिद्धैः सर्वार्थसाधकैः।

उस ही स्थानमें अन्तर्धान होगये। हे यादवेश्वर! जब भगवान सेवकोंके सहित अन्तर्हित हुए तब महर्षि तण्डिने इस आश्रममें आके मुझसे यह सब वृत्तान्त कहा था। पहले जो कुछ विदित हुआ था, तण्डि मुनिने यह सब मुझसे कहा। हे मनुजश्रेष्ठ! उन्होंने भगवानके जिन नामोंका वर्णन किया था, तुम सिद्धिलाभके निमित्त वह सब सुनो। पितामहने देवताओंके समीप भगवानके दस हजार नामको वर्णन किया था, परन्तु शास्त्रके बीच महादेव के सहस्र नाम विख्यात हैं। हे अच्युत! हे देवेश! पहले समयमें तण्डि मुनिने इस गुप्त नामोंको उन्हींकी कृपासे महानुभाव महेश्वरकी कृपाप्रसादसे प्राप्त किया था। (७२—७६)

अनुशासनपर्वमें १६ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १७ अध्याय।

श्रीकृष्ण बोले, हे तात युधिष्ठिर! अनन्तर वह विप्रर्षि हाथ जोडके सावधान होकर मेरे समीप आदिसे नामसंग्रह कहने लगे। (१)

उपमन्यु बोले, मैं ब्रह्मा और ऋषियोंके द्वारा वेदवेदाङ्गोंमें वर्णित नामोंसे सब लोकोंमें विख्यात, स्तुतियोग्य महेश्वरकी स्तुति करूंगा। जो सब स्तुतिके वचन सर्वार्थसाधक, सिद्ध, सत्य,

ऋषिणा तण्डिना भक्त्या कृतैर्वेदकृतात्मना ॥ ३ ॥
यथोक्तैः साधुभिः ख्यातैर्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
प्रवरं प्रथमं स्वर्ग्यं सर्वभूतहितं शुभम् ॥ ४ ॥
श्रुतैः सर्वत्र जगति ब्रह्मलोकावतारितैः ।
सत्यैस्तत्परमं ब्रह्म ब्रह्मप्रोक्तं सनातनम् ॥ ५ ॥
वक्ष्ये यदुकुलश्रेष्ठ शृणुष्वावहितो मम ।
वरयैनं भवं देवं भक्तस्त्वं परमेश्वरम् ॥ ६ ॥
तेन ते श्रावयिष्यामि यत्तद्ब्रह्म सनातनम् ।
न शक्यं विस्तरात्कृत्स्नं वक्तुं सर्वस्य केनचित् ॥७॥
युक्तेनापि विभूतीनामपि वर्षशतैरपि ।
यस्यादिर्मध्यमन्तं च सुरैरपि न गम्यते ॥ ८ ॥
कस्तस्य शक्नुयाद्वक्तुं गुणान् कार्त्स्न्येन माधव ।
किं तु देवस्य महतः संक्षिप्तार्थपदाक्षरम् ॥ ९ ॥
शक्तितश्चरितं वक्ष्ये प्रसादात्तस्य धीमतः ।
अप्राप्य तु ततोऽनुज्ञां न शक्यः स्तोतुमीश्वरः ॥१०॥

महत् और सुविहित हैं, जिसे तण्डि महर्षिने वेदोंसे विभिन्न करके ग्रथित किया है; तत्त्वदर्शी विख्यात साधु और मुनियोंके द्वारा जो वर्णित हुआ है, सर्वत्र प्रसिद्ध ब्रह्मलोकसे प्रकट उस अन्वर्थ वचनसे सबमें श्रेष्ठ, प्रथम, स्वर्ग्य सब भूतोंके हितैषी शुभ स्वरूप शंकरकी स्तुति करूंगा। हे यदुकुलश्रेष्ठ! वेदमें वर्णित उस सनातन परब्रह्मके नामोंका वर्णन करता हूं, तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। तुम परमेश्वरमें भक्ति करते हो, इसलिये उस भवानीपति महादेवको वरण करो। (२-६)

तुम उसके भक्त हो, इसहीसे मैं तुम्हें उस सनातन परब्रह्मका नाम सुनाऊंगा, कोई पुरुष भी महादेवकी समस्त महिमा विस्तारपूर्वक वर्णन करनेमें समर्थ नहीं है। हे माधव! विभूतियुक्त पुरुष एक सौ वर्षमें भी उसे नहीं जान सकता। देवता लोग जिसकी आदि, मध्य और अन्त जाननेमें अशक्त हैं, उसके सब गुणोंको वर्णन करनेमें कौन समर्थ होगा? परन्तु उस बुद्धिशक्तिसे युक्त महादेवकी कृपासे मैं निज शक्तिके अनुसार संक्षिप्त अर्थ, पद और अक्षरयुक्त चरित वर्णन करूंगा। (७—९)

विना उसकी कृपासे कोई उसकी

यदा तेनाभ्यनुज्ञातः स्तुतो वै स तदा मया ।
अनादिनिधनस्याहं जगद्योनेर्महात्मनः ॥ ११ ॥
नाम्नां कंचित्समुद्देशं वक्ष्याम्यव्यक्तयोनिनः ।
वरदस्य वरेण्यस्य विश्वरूपस्य धीमतः ॥ १२ ॥
शृणु नाम्नां चयं कृष्ण यदुक्तं पद्मयोनिना ।
दश नामसहस्राणि यान्याह प्रपितामहः ॥ १३ ॥
तानि निर्मथ्य मनसा दध्नो घृतमिवोद्धृतम् ।
गिरेः सारं यथा हेम पुष्पसारं यथा मधु ॥ १४ ॥
घृतात्सारं यथा मण्डस्तथैतत्सारमुद्धृतम् ।
सर्वपापापहमिदं चतुर्वेदसमन्वितम् ॥ १५ ॥
प्रयत्नेनाधिगन्तव्यं धार्यं च प्रयतात्मना ।
माङ्गल्यं पौष्टिकं चैव रक्षोघ्नं पावनं महत् ॥ १६ ॥
इदं भक्ताय दातव्यं श्रद्दधानास्तिकाय च ।
नाश्रद्दधानरूपाय नास्तिकायाजितात्मने ॥ १७ ॥
यश्चाभ्यसूयते देवं कारणात्मानमीश्वरम् ।
स कृष्ण नरकं याति सह पूर्वैः सहात्मजैः ॥ १८ ॥

स्तुति करनेमें समर्थ नहीं होता। जब मैं उससे अनुज्ञात हुआ हूं, तभी स्तुति किया है। मैं आदि अन्तसे रहित, जगद्योनि, महानुभाव, अव्यक्तयोनिके नामोंका किञ्चित् उद्देश कहूंगा। हे कृष्ण! वरदाता, वरणीय, विश्वरूपी, धीमान् शङ्करके जो सब नाम ब्रह्माके द्वारा वर्णित हुए हैं, उसे सुनो। पितामह ब्रह्माने जो दश सहस्र नाम कहा है, वह सब मनहीमन मथके उसके बीचसे यह सार रूपसे इस प्रकार निकाला गया है, जैसे दहीसे घृत, पहाडसे सुवर्ण, फूलसे मधु और दूधसे मक्खन निकाला जाता है। (१०—१५)

यह सब पापोंको दूर करनेवाला, चारों वेदोंसे युक्त नामोंको सावधानचित्त होकर लोगोंको जानना तथा धारण करना उचित है। इन मङ्गलजनक, पुष्टिकर, रक्षोघ्न, महत्, पावन नामोंको श्रद्धावान् आस्तिक भक्तोंको सुनाना चाहिये; अश्रद्धावान्, नास्तिक और अजितेन्द्रिय पुरुषोंको कदापि उपदेश करना उचित नहीं है। हे कृष्ण! कारणस्वरूप देवोंके देव ईश्वरके विषयमें जो लोग असूया करते हैं, वे पूर्व पुरुषों तथा पुत्रोंके सहित नरकमें डूबते

इदं ध्यानमिदं योगमिदं ध्येयमनुत्तमम् ।
इदं जप्यमिदं ज्ञानं रहस्यमिदमुत्तमम् ॥ १९ ॥
यं ज्ञात्वा अन्तकालेऽपि गच्छेत परमां गतिम् ।
पवित्रं मङ्गलं मेध्यं कल्याणमिदमुत्तमम् ॥ २० ॥
इदं ब्रह्मा पुरा कृत्वा सर्वलोकपितामहः ।
सर्वस्तवानां राजत्वे दिव्यानां समकल्पयत् ॥ २१ ॥
तदाप्रभृति चैवायमीश्वरस्य महात्मनः ।
स्तवराज इति ख्यातो जगत्यमरपूजितः ॥ २२ ॥
ब्रह्मलोकादयं स्वर्गे स्तवराजोऽवतारितः ।
यतस्तण्डिः पुरा प्राप तेन तण्डिकृतोऽभवत् ॥ २३ ॥
स्वर्गाच्चैवात्र भूर्लोकं तण्डिना ह्यवतारितः ।
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २४ ॥
निगदिष्ये महाबाहो स्तवानामुत्तमं स्तवम् ।
ब्रह्मणामपि यद्ब्रह्म पराणामपि यत्परम् ॥ २५ ॥
तेजसामपि यत्तेजस्तपसामपि यत्तपः ।

हैं। इन नामोंका जप कर सकनेसे ही ध्यान आदिके फल प्राप्त होते हैं, यह योग और अनुत्तम ध्येय है, यही जप, यही ज्ञान तथा यही श्रेष्ठ रहस्य है। (१५—१९)

अन्तकालमें जिसके जाननेसे परम गति प्राप्त होती है, यह पापनाशक, अभ्युदयकारी, यज्ञफलदायक और परमानन्द स्वरूप है। पहले समयमें सर्वलोकपितामह ब्रह्माने इस स्तोत्रको समस्त दिव्य स्तोत्रोंके राजत्व पर अभिषिक्त किया। उस ही समयसे महानुभाव देवताओंसे पूजित यह स्तोत्र जगत्‌में स्तवराज नामसे विख्यात हुआ है। यह स्तवराज ब्रह्मलोकसे स्वर्गमें उतरा और स्वर्गसे पहले समयमें इसे तण्डि मुनिने पाया, इस ही निमित्त यह तण्डिकृत कहके प्रसिद्ध हुआ है। तण्डिके द्वारा यह स्वर्गसे भूलोकमें उतरा है। (२०-२४)

हे महाबाहो ! समस्त मङ्गलोंका मङ्गलकारी, सर्व पापोंका नाश करनेवाला, सब स्तोत्रोंके बीच उत्तम स्तोत्र वर्णन करूंगा। जो वेदोंका भी वेद अर्थात् वाक्यका भी वाक्य स्वरूप है, सब श्रेष्ठ वस्तुओं अर्थात् इन्द्रियार्थ, मन, बुद्धि, महत्, अव्यक्तसे भी श्रेष्ठ पुरुष है, तेजस्वी पदार्थों अर्थात् नेत्र आदिका

शान्तानामपि यः शान्तो द्युतीनामपि या द्युतिः ॥२६॥
दान्तानामपि यो दान्तो धीमतामपि या च धीः ।
देवानामपि यो देव ऋषीणामपि यस्त्वृषिः ॥ २७ ॥
यज्ञानामपि यो यज्ञः शिवानामपि यः शिवः ।
रुद्राणामपि यो रुद्रः प्रभा प्रभवतामपि ॥ २८ ॥
योगिनामपि यो योगी कारणानां च कारणम् ।
यतो लोकाः संभवन्ति न भवन्ति यतः पुनः ॥२९ ॥
सर्वभूतात्मभूतस्य हरस्यामिततेजसः ।
अष्टोत्तरसहस्रं तु नाम्नां शर्वस्य मे शृणु ।
यच्छ्रुत्वा मनुजव्याघ्र सर्वान्कामानवाप्स्यसि ॥३०॥
स्थिरः स्थाणुः प्रभुर्भीमः प्रवरो वरदो वरः ।
सर्वात्मा सर्वविख्यातः सर्वः सर्वकरो भवः ॥ ३१ ॥ (११)

तेज स्वरूप है, तपस्या गङ्गा आदि पुण्य तीर्थोंका भी पुण्यस्वरूप है, उपरतचित्तोंकी भी आत्यन्तिक उपरति है, द्युतिमण्डलीका भी तेजस्वरूप है, जो दान्त पुरुषोंमें अत्यन्त जितेन्द्रिय, ज्ञानियोंके बीच आत्मानुभवरूपी ज्ञानस्वरूप है, जो देवताओंका देवता, ऋषियोंका भी ऋषिस्वरूप है, जो यज्ञोंका यज्ञ और कल्याणस्वरूप है, जो रुद्रगणोंका रुद्र और प्रभायुक्त वस्तुओंमें प्रभारूप है । (२४—२८)

जो योगियोंका योगी और सब कारणोंका कारण है, जिससे सब लोग उत्पन्न होते हैं और जिसमें लीन होनेसे पुनर्जन्म नहीं होता, उस सब भूतोंके आत्मभूत, अमिततेजस्वी, सर्वव्यापी हरके अष्टोत्तर सहस्र नाम मेरे समीप सुनो । हे मनुजश्रेष्ठ ! उसे सुननेसे समस्त कामना प्राप्त होंगी । वह अचञ्चल है इस ही निमित्त उसका नाम स्थिर है १, कूटस्थ नित्य है इसहीसे स्थाणु २, अन्तर्यामी ईश्वर है इसहीसे प्रभु ३, जगत्संहर्ता है, जगत् उससे भीत होता है इस ही लिये उसका नाम भीम है ४, भोग, मोक्ष और कामकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंका वरणीय है, इस ही निमित्त प्रवर ५, अभिलषित वस्तु प्रदान करता है, इसहीसे वरद ६, समस्त जगत्को परिपूरित कर रहा है, इस ही लिये वर ७, सर्वात्मा ८, सर्वविख्यात ९, प्रत्येक रूपसे सबमें व्याप्त होरहा है, इसहीसे सर्व १०, विश्वकर्ता है, इस ही निमित्त सर्वकर ११, सबकी उत्पत्ति और प्रलयका कारण

जटी चर्मी शिखण्डी च सर्वाङ्गः सर्वभावनः ।
हरश्च हरिणाक्षश्च सर्वभूतहरः प्रभुः ॥ ३२ ॥
प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च नियतः शाश्वतो ध्रुवः ।
श्मशानवासी भगवान् खचरो गोचरोऽर्दनः ॥ ३३ ॥
अभिवाद्यो महाकर्मा तपस्वी भूतभावनः ।
उन्मत्तवेषप्रच्छन्नः सर्वलोकप्रजापतिः ॥ ३४ ॥
महारूपो महाकायो वृषरूपो महायशाः ।
महात्मा सर्वभूतात्मा विश्वरूपो महाहनुः ॥ ३५ ॥ (४७)

है इस ही निमित्त भव है। १२(२९-३१)

जटा धारण करनेसे जटी १३, व्याघ्र वा गज चर्म पहरनेसे चर्मी १४, मयूर-शिखाकी भांति जटा बांधनेसे शिखण्डी १५, समस्त जगत् उनका अवयव स्वरूप है, इसहीसे सर्वाङ्ग १६, विश्व-कर्त्ता होनेसे सर्वभावन १७, सर्वसंहार-कारी होनेसे हर १८, मृगके नेत्रकी भांति नेत्रविशिष्ट है, इसहीसे हरिणाक्ष १९, सर्वभूतहर २०, सर्वभोक्ता होनेसे प्रभु २१, प्रकृष्टरूप कुर्वद्भावसे वर्तमान है, इस ही निमित्त प्रवृत्ति २२, निरुद्यमभावसे निवास करता है, इस ही लिये निवृत्ति २३, विषय ग्रहण करनेके लिये स्वयं प्रवृत्त होता है, इस ही निमित्त नियत २४, नित्य होनेसे शाश्वत २५, अचल है, इसलिये ध्रुव २६, पुनरुत्थानसे रहित होके लोग जिस स्थानमें शयन करते हैं, उस वाराणसी क्षेत्रमें वास करता है, इस ही लिये श्मशानवासी २७, समस्त ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री ज्ञान और समग्र वैराग्यविशिष्ट होनेसे भगवान २८, हार्दाकाशचारी होनेसे खचर २९ इन्द्रियोंमें विषयरूपसे विचरता है, इस ही लिये गोचर ३०, पापियोंको पीडित करता है, इस ही निमित्त अर्दन है। ३१. (३२—३३)

सबके नमस्कार योग्य और स्तवनीय होनेसे अभिवाद्य ३२, पृथ्वी आदि महत् कार्योंका कर्ता है, इस ही लिये महाकर्मा ३३, तपरूप निजधनसे युक्त है, इसीसे तपस्वी ३४, आकाश आदि भूतोंको सङ्कल्प मात्रसे उत्पन्न करता है, इसहीसे भूतभावन ३५, दिगम्बर रूपसे दुर्ज्ञेय होनेसे उन्मत्त वेश प्रच्छ-न्न है ३६, समस्त भुवन तथा समस्त प्रजाका स्वामी है, इसहीसे सर्वलोक-प्रजापति ३७, उसका रूप अपरिच्छेद्य है, इसलिये महारूप ३८, वैराज स्थूल देहधारी है, इसहीसे महाकाय ३९, धर्मस्वरूप होनेसे वृषरूप ४०, महत्

लोकपालोऽन्तर्हितात्मा प्रसादो हयगर्दभिः।
पवित्रं च महांश्चैव नियमो नियमाश्रितः ॥ ३६ ॥
सर्वकर्मा स्वयंभूत आदिरादिकरो निधिः।
सहस्राक्षो विशालाक्षः सोमो नक्षत्रसाधकः ॥३७॥
चन्द्रः सूर्यः शनिः केतुर्ग्रहो ग्रहपतिर्वरः।
अत्रिरत्र्या नमस्कर्ता मृगबाणार्पणोऽनघः ॥ ३८ ॥ (७३)

यशस्वरूप है, इसहीसे महायशा ४१, महामना है इसहीसे महात्मा ४२, उसके रक्षणमात्रसे सब भूत प्रकट हुए हैं, इस ही निमित्त सर्वभूतात्मा ४३, जगत्‌के बीच प्रकाशित है, इसीसे विश्वरूप ४४, उसका हनु विश्व ग्रास करनेमें समर्थ है, इस ही लिये महाहनु है। ४५ (३४—३५)

इन्द्रादि स्वरूप होनेसे लोकपाल ४६, अविद्याकल्पित अहंकारादिसे तिरोहितात्मा, अखण्ड, एकरसस्वभाव है, इस ही निमित्त अन्तर्हितात्मा ४७, आनन्द स्वरूप होनेसे प्रसाद ४८, रथस्थ होनेपर अग्निरूपी, उसके रथको अश्वतरी खींचती हैं, इस ही कारणसे हयगर्दभी ४९, संसार वज्रपातसे त्राण करता है, इस ही निमित्त पवित्र ५०, पूज्य है, इसलिये महान् ५१, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान आदि नियमके सहारे वह प्राप्त होता है, इस ही निमित्त नियम ५२, और उक्त नियमोंके आश्रित है, इस ही लिये नियमाश्रित है। ५३ (३६)

समस्त शिल्पाचार्य विश्वकर्मा है, इसहीसे सर्वकर्मा ५४, नित्य सिद्ध होनेसे स्वयम्भूत ५५, सबसे प्रथम होनेसे आदि ५६, हिरण्यगर्भस्रष्टा है, इसीसे आदिकर ५७, पद्म, शंख प्रभृति अक्षय ऐश्वर्यरूप है, इस ही निमित्त निधि ५८, अनन्त करचरणनयनादिमान् अर्थात् देवेन्द्र स्वरूप होनेसे सहस्राक्ष ५९, अतीत अनागतके प्रकाशक नेत्रसम्पन्न है, इसहीसे विशालाक्ष ६०, चन्द्र वा यज्ञिय स्वरूप होनेसे सोम ६१, आकाशमें प्रकाशमान शरीरसे नक्षत्रोंके कारण होनेसे नक्षत्रसाधक ६२, चन्द्र ६३, सूर्य ६४, शनि ६५, केतु ६६, राहु ६७, ग्रहपति (क्रूरत्वनिबन्धन) मङ्गल ६८, वर(वरणीय, पूज्य, बृहस्पति) ६९, अत्रि अर्थात् अत्रिगोत्रापत्य बुध है, इसलिये सर्व ग्रहस्वरूप ७०, दुर्वासारूपसे अत्रिपत्नी अनुसूयाका पुत्र होके उसे नमस्कार करनेसे अत्रीनमस्कर्त्ता ७१, मृगरूपधारी यज्ञमें बाण चलाया था, इसीसे मृगबाणार्पण ७२, यज्ञग्न होनेपर भी तेजस्वी और

महातपा घोरतपा अदीनो दीनसाधकः ।
संवत्सरकरो मन्त्रः प्रमाणं परमं तपः ॥ ३९ ॥
योगी योज्यो महाबीजो महारेता महाबलः ।
सुवर्णरेताः सर्वज्ञः सुबीजो बीजवाहनः ॥ ४० ॥
दशबाहुस्त्वनिमिषो नीलकण्ठ उमापतिः ।
विश्वरूपः स्वयं श्रेष्ठो बलवीरोऽबलो गणः ॥ ४१ ॥
गणकर्ता गणपतिर्दिग्वासाः काम एव च । (१०२)

स्वतन्त्र होके निष्पाप है इसहीसे अनघ है। ७३ (३७-३८)

जगत्सृष्टिक्षम आलोचना की थी, इसहीसे महातपा ७४, विश्वसंहारक्षम आलोचनाविशिष्ट है, इसलिये घोरतपा ७५, महामना होनेसे अदीन ७६, शरणागतोंका इष्टसाधक है, इसलिये दीनसाधक ७७, कालचक्रके प्रवर्तक ध्रुव आदि ज्योतिर्गणस्वरूप है, इसहीसे संवत्सरकर ७८, मननहेतु, त्राणकारी प्रणवादिरूप है, इसहीसे मन्त्र ७९, वेदशास्त्रादिरूप होनेसे प्रमाण ८०, और योगके द्वारा आत्मदर्शनस्वरूप होनेसे परमतप ८१, योगनिष्ठ है, इसलिये योगी ८२, योगके सहारे ब्रह्ममें प्रविलापनीय है, इस ही निमित्त योज्य ८३, कारणका कारण है, इसलिये महाबीज ८४, अव्यक्तकी स्फूर्ति सत्ताप्रद है, इसलिये महारेता ८५, श्रेष्ठ सामर्थ्यवान है, इसीसे महाबल ८६, हिरण्यमय ब्रह्माण्डका स्रष्टा है, इसही निमित्त सुवर्णरेता ८७, मायावृत्तिसे सबको ही जानता है इसलिये सर्वज्ञ ८८, अधिकारी होके बीजभूत है, इसहीसे सुबीज ८९, अविद्याकामकर्मात्मक बीजही उसका इस लोक और परलोक सञ्चार के निमित्त वाहनस्वरूप है, इस ही लिये बीजवाहन है। ९० (४०)

दशबाहु ९१, अनिमिष ९२, नीलकण्ठ ९३, उमापति ९४, विश्वरूप ९५, स्वयं श्रेष्ठ ९६, सामर्थ्यके सहारे विक्रान्त होनेसे बलवीर ९७, विना चेतनप्रयोगके चलनेकी सामर्थ्यसे युक्त नहीं है, इसलिये अबल; अव्यक्त, महत्, अहङ्कार, पञ्चतमात्र, ग्यारह इन्द्रिय और पञ्चमहाभूत, ये चौवीस तत्त्व, पचीसवां भोक्ता तथा स्वयं षड्विंश है इसहीसे गण ९८, इस ही भांति गणोंका कर्ता है, इसी कारण गणकर्ता ९९, और गणपति कहके वर्णित होता है १००, दारुकावनमें मुनिपत्नियोंको मोहित करनेके लिये दिगम्बर हुए थे अथवा अनन्त दिशाओंके आच्छादक हैं, इस ही लिये दिग्वासा १०१, अभिलाष

मन्त्रवित्परमो मन्त्रः सर्वभावकरो हरः ॥ ४२ ॥
कमण्डलुधरो धन्वी बाणहस्तः कपालवान् ।
अशनी शतघ्नी खड्गी पट्टिशी चायुधी महान् ॥४३॥
स्रुवहस्तः सुरूपश्च तेजस्तेजस्करो निधिः ।
उष्णीषी च सुवक्त्रश्च उदग्रो विनतस्तथा ॥ ४४ ॥
दीर्घश्च हरिकेशश्च सुतीर्थः कृष्ण एव च ।
शृगालरूपः सिद्धार्थो मुण्डः सर्वशुभङ्करः ॥ ४५ ॥
अजश्च बहुरूपश्च गन्धधारी कपर्द्यपि ।
ऊर्ध्वरेता ऊर्ध्वलिङ्ग ऊर्ध्वशायी नभःस्थलः ॥४६॥ (१४०)

स्वरूप होनेसे काम १०२, पाठ और अर्थके अनुसार मन्त्रोंको जानता है, इसही लिये मन्त्रवित् १०३, आत्मतत्वानुशोचनरूप विचार स्वरूप होनेसे परम मन्त्र १०४, अखिलकारण होनेसे सर्वभावकर १०५, सबके नाशके कारण होनेसे हर है। १०६ (४१-४२)

कमण्डलुधर १०७, धन्वी १०८, बाणहस्त १०९, कपालवान ११०, अशनी १११, शतघ्नी ११२, खड्गी ११३, पट्टिशी ११४, आयुधी ११५, महान् ११५ हाथमें यज्ञपात्र धारण किया करते हैं, इस ही निमित्त स्रुवहस्त ११७, शोभायमानरूपसे युक्त हैं, इस ही लिये सुरूप ११८, तेजस्वी होनेसे तेजनिधि ११९, भक्तोंके कान्तिप्रद होनेसे तेजस्कर निधि १२०, उष्णीषी १२१, सुवक्त्र, १२२, ऊर्जित रूप होनेसे उदग्र १२३, विनयवान् है, इसीसे विनत १२४, दीर्घ १२५, इन्द्रियोंके द्वारा तत्त्वदर्थका प्रकाशक है, इस ही निमित्त हरिकेश १२६, उत्तम तीर्थ स्वरूप है, इस ही निमित्त सुतीर्थ १२७, भूवाचक कृषि शब्द और निर्वृति वाचक ण शब्द है, इन दोनोंके ऐक्यसे परब्रह्म अर्थ होता है, इस ही निमित्त कृष्ण १२८, वणिक्के द्वारा अवमानित ब्राह्मणके योगयुक्त होके मरनेके लिये बैठनेपर उसे धीरज देनेके लिये इन्द्रने जो सियारका रूप धरा था, उसके सङ्ग अभिन्न होनेसे शृगालरूप १२९, सिद्धगण ही उसके अर्थनीय पदार्थ हैं, इस ही निमित्त सिद्धार्थ १३०, परिव्राट् होनेसे मुण्ड १३१ और सर्व शुभङ्कर है। १३२ (४३-४५)

जन्मरहित होनेसे अज १३३, बहुरूप १३४, कुसुम कस्तुरी प्रभृति सुगंधित वस्तु धारण करते हैं इस ही निमित्त गन्धधारी १३५, जटाजूट धारण करनेसे कपर्दी १३६, अखण्डित

त्रिजटी चीरवासाश्च रुद्रः सेनापतिर्विभुः ।
अहश्चरो नक्तंचरस्तिग्ममन्युः सुवर्चसः ॥ ४७ ॥
गजहा दैत्यहा कालो लोकधाता गुणाकरः ।
सिंहशार्दूलरूपश्च आर्द्रचर्माम्बरावृतः ॥ ४८ ॥
कालयोगी महानादः सर्वकामश्चतुष्पथः ।
निशाचरः प्रेतचारी भूतचारी महेश्वरः ॥ ४९ ॥
बहुभूतो बहुधरः स्वर्भानुरमितो गतिः । (१६९)

ब्रह्मचर्य करनेसे ऊर्ध्वरेता १३७, ऊर्द्ध लिङ्ग १३८, उत्तान-शयन करनेसे उत्तानशायी १३९, नभ अर्थात् आकाश-संज्ञक शक्ति ही उसका स्थल है, इस ही निमित्त नभस्थल १४०, त्रिजटी १४१, चीरवासा १४२, प्राणरूपसे सबको रुलाता है, अर्थात् सबका प्राण स्वरूप है, इस ही निमित्त रुद्र १४३, सेनापति १४४, सर्वव्यापी होनेसे विभु १४५, देवादि स्वरूप होनेसे अहश्चर १४६, राक्षसादि स्वरूप है, इसीसे नक्तंचर १४७, तीक्ष्णबोध है, इसलिये तिग्ममन्यु १४८, जीवोंके अध्ययन और तपस्याका तेज स्वरूप है, इस ही निमित्त सुवर्चस है। १४९ (४६-४७)

वाराणसीमें गजासुरको मारा था, इससे गजहा १५०, दैत्यहा १५१, मृत्यु अथवा संवत्सर स्वरूप होनेसे काल १५२, सब लोकोंका ईश्वर है, इस ही लिये लोकधाता १५३, दीनदयालुता और ज्ञानैश्वर्य प्रभृतिकी खान है, इस ही लिये गुणाकर १५४, समस्त हिंसक पशु स्वरूप होनेसे सिंह शार्दूलरूप १५५, आर्द्रगजचर्मधारी है, इस ही निमित्त आर्द्रचर्माम्बरावृत १५६, काल वञ्चक योगी है, इसही निमित्त कालयोगी १५७, अनाहत ध्वनि स्वरूप होनेसे महानाद १५८, सर्वकामना उसमें समाप्त होती हैं, इसलिये सर्वकाम १५९, उसकी उपासनाके लिये विश्व, तैजस, प्राज्ञ और शिव ध्यानरूपी चार उपाय हैं इस ही निमित्त चतुष्पथ १६०, वेतालादि स्वरूप होनेसे निशाचर १६१, प्रेतोंके सङ्ग विचरनेसे प्रेतचारी १६२, भूतचारी १६३, इन्द्र आदि ईश्वरसे भी महान् है, इस ही निमित्त महेश्वर है। १६४, (४८-४९)

सदसत् रूपसे अनेक हुआ है, इस ही लिये बहुभूत १६५, महत् प्रपञ्च धारण कर रहा है, इस लिये बहुधर १६६, मूलाज्ञानरूप तम शब्दसे युक्त राहु होनेसे स्वर्भानु १६७, परिमाण नहीं है, इस ही निमित्त अमित १६८,

नृत्यप्रियो नित्यनर्त्तो नर्तकः सर्वलालसः ॥ ५० ॥
घोरो महातपाः पाशो नित्यो गिरिरुहो नभः ।
सहस्रहस्तो विजयो व्यवसायो ह्यतन्द्रितः ॥५१॥
अधर्षणो धर्षणात्मा यज्ञहा कामनाशकः ।
दक्षयागापहारी च सुसहो मध्यमस्तथा ॥ ५२ ॥
तेजोऽपहारी बलहा मुदितोऽर्थोऽजितोऽवरः ।
गम्भीरघोषो गम्भीरो गंभीरबलवाहनः ॥ ५३ ॥
न्यग्रोधरूपो न्यग्रोधो वृक्षकर्णस्थितिर्विभुः । (२०३)

मुक्त पुरुषोंके प्राप्य होनेसे गति १६९, नृत्यप्रिय १७०, सदा नृत्यमें रत रहता है, इस लिये नित्यनर्त्त १७१, नर्त्तक १७२, विश्वबन्धु होनेसे सर्वलालस १७३,महादेवकी दो प्रकारकी मूर्त्ति है, एक क्षुधातृष्णारूपी घोर और दूसरी सन्तोषादि रूप अघोर है इसलिये घोरा मूर्त्तिविशिष्ट होनेसे घोर १७४, उसकी सृष्टि संहाररूपी आलोचना है इसलिये महातपा १७५, अपनी मायासे सबको बांधता है, इस ही कारण पाश १७६, नाशरहित है, इसलिये नित्य १७७, कैलासशैलवासी होनेसे गिरिरुह १७८, आकाशकी भांति अभंग है, इसलिये नभ १७९, सहस्रहस्त १८०, विजय १८१, जयके हेतु होनेसे व्यवसाय १८२, प्रवृत्तिको रोकनेवाली मोहमयी वृत्तिसे रहित है, इसलिये अतन्द्रित है । १८३ (५०--५१)

अप्रकम्प्य है इस निमित्त अधर्षण १८४, भयरूप है इसलिये धर्षणात्मा १८५, बौद्धावतार रूपसे यज्ञघ्न है, इस ही निमित्त यज्ञहा १८६, कामनाशक १८७, दक्षयज्ञापहारी १८८, प्रियदर्शन होनेसे सुसह १८९, मृदुप्रिय दर्शन है, इसलिये मध्यम १९०, तेजोपहारी १९१ इन्द्ररूपसे बलनामक असुरको पराजित करते हैं, इसीसे बलहा १९२, कारण रूपसे नित्य आनन्दयुक्त है, इस ही लिये मुदित १९३, धनरूपसे अर्थनीय है, इस ही निमित्त अर्थ १९४, अजित १९५, उससे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है, इसलिये अवर १९६, गम्भीरघोष १९७, गम्भीर १९८, गम्भीरबलवाहन है । १९९ (५२—५३)

ऊर्ध्वमूल नीची साखावाला अश्वत्थ रूपसे संसार वृक्ष स्वरूप है, इस ही निमित्त न्यग्रोधरूप २००, वट निकटवासी दक्षिण मूर्त्ति अथवा मार्कण्डेयदृष्ट,समुद्रमें वट पत्रपर शयन करनेवाले बालक रूपधारी महाविष्णु स्वरूप है, इस ही निमित्त न्यग्रोध २०१, वृक्षके

सुतीक्ष्णदशनश्चैव महाकायो महाननः ॥ ५४ ॥
विष्वक्सेनो हरिर्यज्ञः संयुगापीडवाहनः ।
तीक्ष्णतापश्च हर्यश्वः सहायः कर्मकालवित् । ॥५५॥
विष्णुप्रसादितो यज्ञः समुद्रो वडवामुखः ।
हुताशनसहायश्च प्रशान्तात्मा हुताशनः ॥ ५६ ॥
उग्रतेजा महातेजा जन्यो विजयकालवित् ।
ज्योतिषामयनं सिद्धिः सर्वविग्रह एव च ॥ ५७ ॥
शिखी मुण्डी जटी ज्वाली मूर्तिजो मूर्द्धगो बली । (२३५)

कर्णकी भांति पत्रपर प्रलय कालमें स्थित था, इस ही लिये वृक्षकर्णस्थिति २०२, हरि, हर, दुर्गा, गणेश आदि विविध रूपसे भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त उत्पन्न होता है, इस ही निमित्त विभु २०३,अनेक ब्रह्माण्ड-चणकचर्वणक्षम दांतोंसे युक्त है, इस ही निमित्त सुतीक्ष्णदशन २०४,महा काय २०५,महानन है।२०६ (५४)

उसके प्रयाण करनेपर समस्त दैत्यसेना सब भांतिसे पलायन करती है, अर्थात् उसकी सारी सेना सब प्रकारसे पूज्य है, इस ही निमित्त विष्वक्सेन २०७, वह आपदोंको हरता है, अथवा सर्वसंहारक है, इसलिये हरि २०८, सृष्टिका बीज स्वरूप है,इस ही निमित्त यज्ञ २०९, संग्राममें ध्वजभूत वृष ही उसका वाहन है, इसलिये संयुगापीड-वाहन २१०, अग्निस्वरूप होनेसे तीक्ष्ण-ताप २११, सूर्य स्वरूप होनेसे हर्यश्व २१२, जीवका सखा है, इसलिये सहाय २१३, दश आदिकर्मोंका समयज्ञ है, इस निमित्त कर्मकालवित् २१४, चक्र पानेके निमित्त विष्णुने उसे प्रसन्न किया था, इस ही लिये विष्णुप्रसादित २१५, विष्णुरूपी होनेसे यज्ञ २१६, सागर स्वरूप है, इसलिये समुद्र २१७, जो अग्नि समुद्रके जलको प्रतिदिन भस्म कर रही है, तत्स्वरूप होनेसे वडवामुख २१८, वायु स्वरूप होनेसे हुताशन-सहाय २१९, निस्तरङ्ग सागरके सदृश होनेसे प्रशान्तात्मा २२०, अग्निरूप होनेसे हुताशन है। २२१(५५—५६)

दुःसह स्पर्श है, इसलिये उग्रतेजा २२२, सब ठौर प्रकाशित है, इसलिये महातेजा २२३, संग्रामनिपुण होनेसे जन्य २२४,विजयकालवित् २२५,जिस शास्त्रमें ग्रह-नक्षत्रोंका गमन वर्णित है, उसका नाम ज्योतिष है, उस शास्त्रके आश्रय होनेसे ज्योतिषामयनं २२६, नाम है। जयरूपी है, इसलिये सिद्धि २२७, काल प्रभृति सभी उसका शरीर

वेणवी पणवी ताली खली कालकटंकटः ॥ ५८ ॥
नक्षत्रविग्रहमतिर्गुणबुद्धिर्लयोऽगमः ।
प्रजापतिर्विश्वबाहुर्विभागः सर्वगोऽमुखः ॥ ५९ ॥
विमोचनः सुसरणो हिरण्यकवचोद्भवः ।
मेढ्रजो बलचारी च महीचारी स्रुतस्तथा ॥ ६० ॥
सर्वतूर्यनिनादी च सर्वातोद्यपरिग्रहः ।
व्यालरूपो गुहावासी गुहो माली तरङ्गवित् ॥ ६१ ॥ (२६३)

है इस निमित्त सर्वविग्रह २२८, शिखावान गृहस्थ है, इसलिये शिखी २२९, शिखारहित संन्यासी है, इसलिये मुण्डी २३०, जटावान् वानप्रस्थ है, इसलिये जटी २३१, ज्वालावान् आर्चिरादि मार्ग है, इस ही निमित्त ज्वाली २३२, मूर्तिमें प्रकट होता है, इसलिये मूर्तिज २३३, सहस्रारमें गमन करनेसे मूर्धग २३४, बलवान होनेसे बली २३५ बांसुरी, ढोल, तानाख्य वाद्यविशेष विशिष्ट है, इसलिये वेणवी २३६, पणवी २३७, ताली २३८, धान्यस्थानसम्पन्न हैं, इसलिये खली २३९, कालको आवरण करनेवाली ईश्वरी माया है, उसे भी आवरण कर रहा है, इसलिये कालकटङ्कट है। २४० (५७-५८)

उसकी मति ग्रहतारा प्रभृति विग्रहविशिष्ट कालचक्रानुसारिणी है, इसलिये नक्षत्रविग्रहमति २४१, गुणकार्य बुद्धि विशिष्ट जीव रूपी है, इस ही लिये गुणबुद्धि २४२, उसमें सब वस्तु लय होती हैं, इस ही निमित्त लय २४३, अचञ्चल कूटस्थ चिन्मात्र है, इसलिये आगम २४४, विराट है इसही निमित्त प्रजापति २४५, जगत्के प्राणियोंकी भुजा ही उसके बाहु हैं, इसहीसे विश्वबाहु २४६, व्यष्टिकार्य रूप होनेसे विभाग २४७, समष्टि कार्य स्वरूप है, इसलिये सर्वग २४८, भोगसाधनरहित अभोक्ता है, इसलिये अमुख है। २४९(५९)

संसारमोचक होनेसे विमोचन २५०, अनायास ही प्राप्य है, इस ही निमित्त सुशरण २५१, जो रहता है, वह हिरण्य है अर्थात् मायासे विकारभूत कवचकी भांति आवरक शरीरमें उसकी उत्पत्ति होती है, इस ही लिये हिरण्यकवचोद्भव २५२, मेढ़ अर्थात् लिङ्गमें उसकी उत्पत्ति होती है, इस ही निमित्त मेढ़ज २५३, शबररूपसे बल शब्दवाची वनमें विचरता है, इसलिये बलचारी २५४, समस्त पृथ्वीपर विचरता है, इसलिये महीचारी २५५, सर्वत्र गत है, इस निमित्त स्रुत है। २५६ (६०)

सर्वतूर्यनिनादी २५७, सब जीव

त्रिदशास्त्रिकालधृक्कर्मसर्वबन्धविमोचनः ।
बन्धनस्त्वसुरेन्द्राणां युधि शत्रुविनाशनः ॥ ६२ ॥
सांख्यप्रसादो दुर्वासाः सर्वसाधुनिषेवितः ।
प्रस्कन्दनो विभागज्ञो अतुल्यो यज्ञभागवित् ॥६३॥
सर्ववासः सर्वचारी दुर्वासा वासवोऽमरः ।
हैमो हेमकरोऽयज्ञः सर्वधारी धरोत्तमः ॥ ६४ ॥
लोहिताक्षो महाक्षश्च विजयाक्षो विशारदः । (२८९)

ही उसके कुटुम्ब हैं, इसलिये सर्वातोद्यपरिग्रह अर्थात् पशुपति २५८, शेषनाग रूप होनेसे व्यालरूप २५९, योगीरूपसे गुहावासी २६०, कार्तिकेय स्वरूपसे गुह २६१, वनमालाधारी होनेसे माली २६२, विषयसुखोंको तरङ्गसमान जानता है, इस ही लिये तरङ्गवित् २६३ प्राणियोंकी जन्म, स्थिति और नाश, ये तीनों दशा उसहीसे प्रकट होती हैं, इसीसे त्रिदश २६४, त्रिकालजात वस्तुओंको धारण करता है, इसलिये त्रिकालधृक् २६५, सञ्चित, क्रियमाण और अविद्याकामात्मक कर्मोंके बन्धनको विमोचन करता है; इसीसे सर्व–कर्म–बन्धविमोचन २६६, असुरेंद्रगणोंके बन्धन २६७, युद्धमें शत्रुविनाशन है। २६८ (६१—६२)

आत्मानात्मविवेकसे बहुत प्रसन्न होता है, इस निमित्त सांख्यप्रसाद २६९, रुद्रांशरूपसे उत्पन्न दुर्वासा २७०, सर्वसाधुनिषेवित २७१, ब्रह्मादि देवताओंके भी प्रच्युतिकारक होनेसे प्रस्कन्दन २७२, प्राणियोंके कर्मफलोंको यथोचित विभक्त करता है, इसलिये विभागज्ञ २७३, उसके समान कोई भी नहीं है, इसलिये अतुल्य २७४, यज्ञिय हवि प्रभृतिके विभागाभिज्ञ है, इस ही कारण यज्ञभागवित् है।२७५(६३)

उसका सर्वत्र वासस्थान है, इसलिये सर्ववास २७६, सर्वत्र विचरता है, इस ही निमित्त सर्वचारी २७७, दुःस्थ आर्द्र गजचर्म उसका वस्त्र है, इस ही कारण दुर्वासा २७८, इन्द्रस्वरूप होनेसे वासव २७९, अमर २८०, हिमालयरूपी है, इसलिये हैम २९१, सुवर्णकर्त्ता है, इसलिये हेमकर २८२, निष्कर्मा है, इसलिये अयज्ञ२८३, समस्त कर्मफलोंको धारण करता है, इस ही निमित्त सर्वधारी २८४, दिग्गज कूर्म और शेष प्रभृतिको धारण करनेवाला है तथा स्वयं अनन्याधार है, इस ही निमित्त धरोत्तम है । २८५ (६४)

लोहिताक्ष २८६, महाक्ष २८७, विजयके उपलक्षित रथविशिष्ट है, इस-

संग्रहो निग्रहः कर्त्ता सर्पचीरनिवासनः ॥ ६५ ॥
मुख्योऽमुख्यश्च देहश्च काहलिः सर्वकामदः ।
सर्वकालप्रसादश्च सुबलो बलरूपधृत् ॥ ६६ ॥
सर्वकामवरश्चैव सर्वदः सर्वतोमुखः ।
आकाशनिर्विरूपश्च निपाती ह्यवशः खगः ॥६७॥
रौद्ररूपोंऽशुरादित्यो बहुरश्मिः सुवर्चसी ।
वसुवेगो महावेगो मनोवेगो निशाचरः ॥ ६८ ॥
सर्ववासी श्रिया वासी उपदेशकरोऽकरः ।
मुनिरात्मनिरालोकः संभग्नश्च सहस्रदः ॥ ६९ ॥ (३२५)

लिये विजयाक्ष २८८, पण्डित है, इस ही निमित्त विशारद २८९, बाणासुर प्रभृतिको दासरूपसे स्वीकार किया था, इसीसे संग्रह २९०, इन्द्र आदि देवताओंको उत्सिक्त होनेपर दण्ड करता है, इसलिये निग्रह २९१, कर्त्ता २९२, सर्पचीरनिवासन २९३, देवताओंके बीच अष्टम अग्नि और नवम विष्णु रूपसे सर्वदेवमय है, इसलिये मुख्य २९४, अमुख्य २९५, अत्यन्त पुष्ट है, इस निमित्त देह २९६, काहल नाम वाद्य विशेषविशिष्ट हैं, इसलिये काहली २९७, सर्वकामद २९८, सर्वफलप्रसाद २९९, सुबल ३००, बलरूपधृत् है। ३०१ (६५—६६)

सर्वकामवर ३०२, सर्वद ३०३, सर्वतोमुख ३०४, आकाशवत् है, उससे विविध विचित्ररूप प्रकट होते हैं, इस निमित्त निर्विरूप ३०५, देहगर्तमें आत्माको निपातित करता है, इसलिये निपाती ३०६, देहसम्बन्धानिबन्धन अपरिहार्य होनेसे दुःखादि सम्बन्धवश से अवश ३०७, हार्दाकाशमें शुद्ध चैतन्यरूपसे स्थित रहनेसे खग ३०८, रौद्ररूप ३०९, देवभेदसे अंशु ३१०, आदित्य ११, बहुरश्मि १२, उत्तम तेजशाली है, इसलिये सुवर्चसी १३, वायुकी भान्ति वेगवान है, इस निमित्त वसु-वेग १४, महावेग १५, मनोवेग १६, अविद्याकी भांति विषय भोग करता है, इसी लिये निशाचर है। ३१७ (६७—६८)

सर्वशरीरमें वास करता है, इसहीसे सर्ववासी १८, ऋग्मन्त्रोंमें निवास करता है, इसलिये श्रियावासी १९, उपदेशकर ३२०, मौनभावसे स्थित होकर उपदेश करता है, इसलिये अकर २१, मुनि २२, आत्माकोही निश्चय करके देहादि उपाधिसे निकलकर अवलोकन करता है इसलिये आत्मनिरा-

पक्षी च पक्षरूपश्च अतिदीप्तो विशाम्पतिः ।
उन्मादो मदनः कामो ह्यश्वत्थोऽर्थकरो यशः ॥७०॥
वामदेवश्च वामश्च प्राग्दक्षिणश्च वामनः ।
सिद्धयोगी महर्षिश्च सिद्धार्थः सिद्धसाधकः ॥ ७१ ॥
भिक्षुश्च भिक्षुरूपश्च विपणो मृदुरव्ययः ।
महासेनो विशाखश्च षष्टिभागो गवां पतिः ॥ ७२ ॥
वज्रहस्तश्च विष्कम्भी चमूस्तम्भन एव च ।
वृत्तावृत्तकरस्तालो मधुर्मधुकलोचनः ॥ ७३ ॥ (३६०)

लोक २३, सम्यक् सेवित होनेसे संमग्र २४, अनन्त धनदाता होनेसे सहस्रद २५, गरुडस्वरूप है इसीसे पक्षी २६, मित्ररूपसे सहाय है, इस ही निमित्त पक्षरूप २७, शुक्र तेज अभिभवके कारण कोटि सूर्य सदृश है इस लिये अतिदीप्त २८, प्रजासमूहका पति है. इसलिये विशाम्पति २९, उन्मादकारक है, इस ही लिये उन्माद ३३०, मोहक होनेसे मदन ३१, काम्यमान है, इसलिये काम ३२, संसारवृक्ष है, इस निमित्त अश्वत्थ ३३, धनप्रद है, इसलिये अर्थ-कर ३४, कीर्तिदाता है, इसलिये यश है। ३३५ (६९—७०)

कर्मफलोंका विभाजक है, इसलिये वामदेव ३६, कर्मफलरूप है, इसलिये वाम ३७, सबका आदि होनेसे प्राक् ३८, तीनों लोकोंको आक्रमण करनेमें समर्थ हैं, इस ही निमित्त दक्षिण ३९, बालिके ध्वंस करनेवाले होनेसे वामन ३४०, सनत्कुमार आदि रूपसे सिद्ध-योगी ४१, वशिष्ठ आदिरूपसे महर्षि ४२, दत्तात्रेय आदि रूपसे सिद्धार्थ ४३, याज्ञवल्क्य आदि रूपसे विद्वत्सं-न्यासी है, इसलिये सिद्ध साधक ४४, लिंगधारी हंस है, इसलिये भिक्षु ४५, लिंगहीन परमहंस है, इसलिये भिक्षुरूप ४६, निर्व्यवहार है, इसहीसे विपण ४७, सब प्राणियोंका अभयदाता है, इसलिये मृदु ४८, निर्विकार अर्थात् मान अपमानमें हर्ष विषादसे रहित है, इसलिये अव्यय ४९, देव सेनापति कार्तिकेय स्वरूप होनेसे महासेन ३५०, विशाख ५१, षष्टितत्त्व उसके भोज्य हैं, इसलिये षष्टिभाग ५२, इन्द्रियोंका चालक है, इसलिये गवांपति है। ३५३ ७२-७२

इन्द्रस्वरूप है, इस निमित्त वज्र हस्त ५४, विस्तारवान होनेसे विष्कम्भी ५५, दैत्यसेनाको स्तम्भन करनेवाला है, इसलिये चमूस्तम्भन ५६, युद्धमें रथके द्वारा मण्डली करण वृत्त और

वाचस्पत्यो वाजसनो नित्यमाश्रमपूजितः ।
ब्रह्मचारी लोकचारी सर्वचारी विचारवित् ॥ ७४ ॥
ईशान ईश्वरः कालो निशाचारी पिनाकवान् ।
निमित्तस्थो निमित्तं च नन्दिर्नन्दिकरो हरिः ॥७५॥
नन्दीश्वरश्च नन्दी च नन्दनो नन्दिवर्धनः ।
भगहारी निहन्ता च कालो ब्रह्मा पितामहः ॥ ७६ ॥
चतुर्मुखो महालिङ्गश्चारुलिङ्गस्तथैव च । (३८९)

परसेनाको भेद करके अक्षत शरीरसे उसमेंसे आगमन करनेमें अप्रवृत्त, इन दोनोंका कर्त्ता है, इसलिये वृत्तावृत्तकर ५७, संसारसिन्धुतल अथवा आधार है, इस ही कारण ताल ५८, वसन्त-रूप होनेसे मधु ५९, मधुककी भांति पिङ्गल नेत्र है, इसलिये मधुकलोचन ३६०, वृहस्पतिकी भांति पुरोहित कर्म करता है, इसलिये वाचस्पत्य ६१, शाखा विशेषका प्रवर्त्तक अध्वर्युकर्म कर्त्ता है इस ही कारण वाजसन ६२, नित्य आश्रम पूजित ६३, ब्रह्मचारी ६४, लोकचारी ६५, सर्वचारी ६६, विचारवित् है । ३६७ (७३-७४)

अन्तर्यामी रूपसे नियन्ता है, इस ही निमित्त ईशान ६८, सर्वव्यापी होनेसे ईश्वर ६९, लोगोंके पुण्य-पापके फल देनेके लिये गिनती करता है इसलिये काल ७०, ब्राह्मी निशा महाप्रलयकालमें प्रत्यगानन्द अनुभव करता है, इस ही निमित्त निशाचारी ७१, रक्षाकारी धनुर्द्धारी होनेसे पिनाकवान् ७२, दैत्यरूप लक्ष्यमें अन्तर्यामी रूपसे स्थित है, इसलिये निमित्तस्थ ७३, विश्वरूप होनेसे लक्ष्य स्वरूप है, इस ही लिये निमित्त ७४, ज्ञान-सम्पत्तियुक्त है, इसलिये नन्दी ७५, सम्पत्तिकर होनेसे नन्दिकर ७६, हनुमान रूपसे रामके सहाय होनेसे हरि है । ३७७ (७५)

निजवाहन नन्दीका ईश्वर है, इस-लिये नन्दीश्वर ७८, गण रूपसे नंदी ७९, आनंददाता होनेसे नंदन ८०, दी हुई सम्पत्तिकी वृद्धि करता है, इसलिये नंदिवर्द्धन ८१, इन्द्रादिकोंका भी ऐश्वर्य हरण करता है, इस ही लिये भगहारी ८२, मृत्यु रूप होनेसे निहन्ता ८३, चौसठ कलाके आश्रय होनेसे काल ८४, अत्यन्त बृहत् है इसलिये ब्रह्मा ८५, जगतपिता विष्णुकाभी पिता है, इस ही निमित्त पितामह ८६, विधातृरूप चतुर्मुख है । ३८७ (७६)

सुरासुर प्रभृति समस्त महत् प्राणी उसके लिङ्गकी पूजा करते हैं, इस ही

लिङ्गाध्यक्षः सुराध्यक्षो योगाध्यक्षो युगावहः ॥ ७७ ॥
बीजाध्यक्षो बीजकर्ता अध्यात्मानुगतो बलः ।
इतिहासः सकल्पश्च गौतमोऽथ निशाकरः ॥ ७८ ॥
दम्भो ह्यदम्भो वैदम्भो वश्यो वशकरः कलिः ।
लोककर्ता पशुपतिर्महाकर्ता ह्यनौषधः ॥ ७९ ॥
अक्षरं परमं ब्रह्म बलवच्छक्र एव च ।
नीतिर्ह्यनीतिः शुद्धात्मा शुद्धो मान्यो गतागतः ॥८०॥
बहुप्रसादः सुस्वप्नो दर्पणोऽथ त्वमित्रजित् । (४२५)

लिये महालिङ्ग ८८, रमणीय वेषधारी होनेसे चारुलिंग ८९, प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंका अध्यक्ष अर्थात् प्रवृत्तिनिवृत्तिका नियामक है, इस ही लिये लिंगाध्यक्ष ३९०, सुराध्यक्ष ९१, योगाध्यक्ष ९२, पुण्य-पापके तारतम्य विशिष्ट सत्य,त्रेता,द्वापर और कलियुगका प्रवर्त्तक है इसलिये युगावह ९३, धर्माधर्मका फलदाता है, इसहीसे बीजाध्यक्ष ९४, बीजकर्ता ९५, आत्माको अधिकार करके प्रवृत्त शास्त्रोंका अनुसरण करनेसे साधक है, इस ही निमित्त अध्यात्मानुगत ९६, धृति प्रभृति सब बल उसमें वर्तमान रहते हैं, इसलिये बल९७, भारतादि रूपी होनेसे इतिहास ९८, यज्ञकल्प प्रयोगविधिके सहित सम्बन्धविशिष्ट है, इसलिये सङ्कल्प ९९, तर्कशास्त्रका प्रणेता होनेसे गौतम ४००, चन्द्ररूप है; इसलिये निशाकर है। ४०१ (७१—७८)

शत्रुओंको दमन करता है, इसलिये दम्भ ४०२, अदम्भ ४०३, धर्मध्वजित्वसे रहित है, इसलिये वैदम्भ, ४०४ भक्ताधीन होनेसे वश्य ४०५, दूसरेको वशीभूत करनेमें समर्थ है, इसलिये वशकर ४०६, देवासुर परस्परके वैरकर्ता होनेसे कलि ४०७, चौदहों भुवनोंकी सृष्टि करनेवाला है, इसलिये लोककर्ता ४०८, ब्रह्मादि स्तम्बपर्यन्त बीज और पशुओंका पालक है, इस निमित्त पशुपति ४०९, पञ्चभूतोंका स्रष्टा होनेसे महाकर्ता ४१०, अभोक्ता होनेसे अनौषध ११, क्षरणहीन अक्षर १२, अश्नादि और ब्रह्मासे भी श्रेष्ठ आनन्दमय हैं, इसलिये परब्रह्म १३, बलके अभिमानी देवतारूप होनेसे बलवत् १४, शतक्रतु रूप होनेसे शक्र १५, नीति १६, अनीति १७, शुद्धात्मा १८, शुद्ध १९, मान्य ४२०, गमनशील संसारस्वरूप है, इसलिये गतागत है। ४२१ (७९-८०)

बहुप्रसाद २२, सुस्वप्न २३,

वेदकारो मन्त्रकारो विद्वान्समरमर्दनः ॥ ८१ ॥
महामेघनिवासी च महाघोरो वशी करः।
अग्निज्वालो महाज्वालो अतिधूम्रो हुतो हविः ॥८२॥
वृषणः शंकरो नित्यं वर्चस्वी धूमकेतनः।
नीलस्तथाङ्गलुब्धश्च शोभनो निरवग्रहः ॥ ८३ ॥
स्वस्तिदः स्वस्तिभावश्च भागी भागकरो लघुः।
उत्सङ्गश्च महाङ्गश्च महागर्भपरायणः ॥ ८४ ॥
कृष्णवर्णः सुवर्णश्च इन्द्रियं सर्वदेहिनाम्।
महापादो महाहस्तो महाकायो महायशाः ॥ ८५ ॥
महामूर्धा महामात्रो महानेत्रो निशालयः। (४६५)

बिम्ब प्रतिबिम्ब दर्शनास्पद है, इस ही निमित्त दर्पण २४, अमित्रजित् २५, वेदकार २६, मन्त्रकार २७, विद्वान् २८, समरमर्दन २९, प्रलयकालके महामेघमण्डलमें अधिष्ठाता रूपसे वास करता है, इस ही लिये महामेघनिवासी ४३०, प्रलयकर्त्तृत्वके निमित्त महाघोर ३१, सभी उसके वशमें है, इसलिये वशी ३२, संहारकर्त्ता है, इसलिये कर ३३ अग्निकी भांति तेजस्वी है, इसलिये अग्निज्वाल ३४, महाज्वाल ३५, कालाग्निरूपसे सबको जलानेके समय अत्यन्त धूम्रमय होनेसे अतिधूम्र ३६, होमसे प्रसन्न होता है, इसलिये हुत ३७, पय प्रभृतिस्वरूप है, इस लिये हवि है। ४३८ (८१--८२)

कर्मफल बरसानेवाला धर्म है, इस निमित्त वृषण ३९, सुखदाता होनेसे शङ्कर ४४०, नित्यवर्चस्वी ४१, वह्निरूप होनेसे धूमकेतन ४२, मरकत वर्ण होनेसे नील ४३, नील वा अनील लिङ्गमें नित्य सन्निहित रहता है, इसलिये अङ्गलुब्ध ४४, कल्याणका हेतु है, इसलिये शोभन ४५, प्रतिबन्धरहित मनोरथोंकी वृष्टि करनेवाला है, इस ही लिये निरवग्रह ४६, स्वस्तिद ४७, अस्तिभाव है, इस ही लिये स्वस्ति भाव ४८, यज्ञमें भगवान कहाता है, इसलिये भागी ४९, भागकर ४५०, लघु ५१, असंगरूप होनेसे उत्संग ५२, महांग ५३ प्रजननात्मक कन्दर्प है, इस ही लिये महागर्भपरायण है। ४५४ (८३-८४)

विष्णुरूप है, इसलिये कृष्णवर्ण ५५, साम्बरूप होनेसे श्वेतवर्ण और सुवर्ण ५६, समस्त प्राणियोंकी इन्द्रिय ५७, महापाद ५८, महाहस्त ५९,

महान्तको महाकर्णो महोष्ठश्च महाहनुः ॥ ८६ ॥
महानासो महाकम्बुर्महाग्रीवः श्मशानभाक् ।
महावक्षा महोरस्को ह्यन्तरात्मा मृगालयः ॥ ८७ ॥
लम्बनो लम्बितोष्ठश्च महामायः पयोनिधिः ।
महादन्तो महादंष्ट्रो महाजिह्वो महामुखः ॥ ८८ ॥
महानखो महारोमा महाकेशो महाजटः ।
प्रसन्नश्च प्रसादश्च प्रत्ययो गिरिसाधनः ॥ ८९ ॥
स्नेहनोऽस्नेहनश्चैव अजितश्च महामुनिः ।
वृक्षाकारो वृक्षकेतुरनलो वायुवाहनः ॥ ९० ॥
गण्डली मेरुधामा च देवाधिपतिरेव च ।
अथर्वशीर्षः सामास्य ऋक्सहस्रामितेक्षणः ॥ ९१ ॥
यजुःपादभुजो गुह्यः प्रकाशो जङ्गमस्तथा । (५११)

महाकाय ४६०, महायशा ४६१, महामूर्द्धा ४६२, महाप्रमाण है, इसलिये महामात्र ४६३, महानेत्र ४६४, निशाकी भांति अविद्या उसमें लीन होती है, इस ही कारण निशालय ४६५, महान्तक ४६६, महाकर्ण ४६७, महोष्ठ ४६८, महाहनु है। ४६९ (८५—८६)

महानास ४७०महाकम्बु४७१,महाग्रीव ४७२, श्मशानभाक् ४७३, महावक्षा ७४, महोरस्क ७५ अन्तरात्मा ४७६, अङ्काधिरोपित मृगचन्द्र रूपसे मृगालय ७७, जैसे वृक्षोंके फल लटके रहते हैं, वैसे ही ब्रह्माण्ड उसे अवलम्बन कर रहा है, इस ही निमित्त लम्बन ७८, प्रलयकालमें विश्वग्रास करनेके निमित्त लम्बित ओष्ठ ७९, महामाय ४८०, क्षीरोदसमुद्र रूप होनेसे पयोनिधि ८१, महादन्त ८२, महादंष्ट्र ८३, महाजिह्व ८४, महामुख ८५, नृसिंह रूप होनेसे महानख ८६, वराहरूप होनेसे महारोमा ८७, महाकेश ८८, महाजट ८९, प्रसन्न ४९०, प्रसाद ९१, प्रत्यय ९२, युद्धमें पर्वत ही उसके जयके कारण हैं इस ही लिये गिरिसाधन है। ९३ (८७—८९)

पिताकी भांति प्रजासमूहके ऊपर स्नेह करता है, इसलिये स्नेहन ९४, स्नेह न करनेसे अस्नेहन ९५, अजित ९६, महामुनि ९७, संसार वृक्ष ही उसका आकार है, इसलिये वृक्षाकार ९८, वृक्षकेतु ९९, अनल ५००, वायुवाहन १, क्षुद्र पर्वतोंमें गमनशील होनेसे गण्डली २, मेरुधामा ३, देवाधिपति ४,अथर्वशीर्ष ५, सामास्य ६,

अमोघार्थः प्रसादश्च अभिगम्यः सुदर्शनः ॥ ९२ ॥
उपकारः प्रियः सर्वः कनकः काञ्चनच्छविः ।
नाभिर्नन्दिकरो भावः पुष्करस्थपतिः स्थिरः ॥ ९३ ॥
द्वादशस्त्रासनश्चाद्यो यज्ञो यज्ञसमाहितः ।
नक्तं कलिश्च कालश्च मकरः कालपूजितः ॥ ९४ ॥
सगणो गणकारश्च भूतवाहनसारथिः ।
भस्मशयो भस्मगोप्ता भस्मभूतस्तरुर्गणः ॥ ९५ ॥ (५४३)

ऋक्सहस्रामितेक्षण ७, यजुःपादभुज ८, गुह्य (उपनिषदेश) ९, कर्मकाण्ड रूपसे प्रकाश १०, मनुष्य पशु आदि रूप है, इसलिये जंगम ११, उसके निकट प्रार्थना करनेसे निष्फल नहीं होती, इस ही निमित्त अमोघार्थ १२ दयालु है, इस ही लिये प्रसाद १३ सुखप्राप्य होनेसे अभिगम्य १४, सुदर्शन है। ५१५ (९०—९२)

प्रीणन रूप होनेसे उपकार १६, सुखदायी रूप होनेसे प्रिय १७, सम्मुख आगमन करनेसे सर्व १८, स्वर्गादि प्रियवस्तु रूप होनेसे कनक ५१९ काञ्चनच्छवि ५२०, जगत्का मध्यस्थल होनेसे नाभि २१, यज्ञ फलकी वृद्धि करता है, इसलिये नन्दिकर २२, यज्ञश्रद्धा रूपसे भाव २३, ब्रह्माण्डकी रचना करता है, इसलिये पुष्करस्थ पति २४, पर्वतादि स्थावररूप होनेसे स्थिर २५, मनुष्योंके गर्भवासादि दश प्रकारकी अवस्थाके बीच मृत्यु दशम है, स्वर्ग एकादश और मोक्ष द्वादश है, तत्स्वरूप होनेसे द्वादश २६, त्रासन २७, आद्य २८, जीव ब्रह्मकी संगति करणरूपी योग है, इसलिये यज्ञ २९, योगके द्वारा प्राप्त होता है, इसलिये यज्ञसमाहित ५३०, अप्रकाश है, इसलिये नक्त ३१, कलिके कार्य काम क्रोधादि रूप होनेसे कलि ३२, जन्ममरण प्रवाहको सञ्चालन करता है, इसलिये काल ३३, मकराकार शिशुमारचक्र कालके ज्ञापक और तत्स्वरूप होनेसे मकर ३४, मृत्युके द्वारा पूजित है, इसलिये कालपूजित है। ५३५ (९३–९४)

प्रमथादियुक्त होनेसे सगण ५३६, बाणादिको अपना भक्त किया था, इस लिये गणकार ३७, भूतगणोंके योगक्षेम निर्वाह कर्त्ता ब्रह्मा उसका सारथि कहा जाता है, इसही निमित्त भूतवाहनसारथि ३८, पापोंका भर्त्सन करता है, इस ही लिये भस्मशय ३९, भस्मसे जगत्की रक्षा करता है, इस ही निमित्त भस्मगोप्ता ५४०, मंकणक नामक मुनि

लोकपालस्तथाऽलोको महात्मा सर्वपूजितः।
शुक्लस्त्रिशुक्लः संपन्नः शुचिर्भूतनिषेवितः ॥ ९६ ॥
आश्रमस्थः क्रियावस्थो विश्वकर्ममतिर्वरः।
विशालशाखस्ताम्रोष्ठो ह्यम्बुजालः सुनिश्चलः ॥ ९७ ॥
कपिलः कपिशः शुक्ल आयुश्चैव परोऽपरः।
गन्धर्वो ह्यदितिस्तार्क्ष्यः सुविज्ञेयः सुशारदः ॥ ९८ ॥
परश्वधायुधो देव अनुकारी सुबान्धवः।
तुम्बवीणो महाक्रोध ऊर्ध्वरेता जलेशयः ॥ ९९ ॥
उग्रो वंशकरो वंशो वंशनादो ह्यनिन्दितः। (५८४)

निज हाथसे बाहर हुए शाकरसको देखकर नाचने लगे, उनके नृत्यकी शान्तिके लिये महादेवने अपनी अंगुली काटके उसमेंसे भस्म दिखाया था, इसलिये उसका शरीर केवल भस्ममय होनेसे भस्मभूत ४१, कल्पवृक्ष स्वरूप है, इसलिये तरु ४२, भृंगिरिटि नन्दिकेश्वर प्रभृति गण स्वरूप है, इसलिये गण है। ४३ (९५)

चौदह भुवनोंका पालक होनेसे लोकपाल ४४, लोकातीत होनेसे अलोक ४५, पूर्ण है, इस ही निमित्त महात्मा ४६, सर्वपूजित ४७, शुद्ध है इसलिये शुक्ल ४८, काय, मन और वचन ये तीनों ही उसके पवित्र हैं इस ही कारण त्रिशुक्ल ४९, कैवल्य प्राप्त होनेसे सम्पन्न ५५०, असङ्ग होनेसे शुचि ५१, पूर्वाचार्योंसे सेवित है, इस लिये भूतनिषेवित है। ५५२ (९६)

चारों आश्रमोंमें धर्मरूपसे स्थित है, इस ही निमित्त आश्रमस्थ ५३, धर्मके पूर्वरूप यज्ञादिकर्म और अवस्थासे युक्त होनेसे क्रियावस्थ ५४, विश्वकर्माका कौशलस्वरूप है, इसलिये विश्वकर्ममति ५५, लक्ष्मी स्वरूपसे प्रार्थनीय है, इस लिये वर ५६, दीर्घबाहु होनेसे विशालशाख ५७, ताम्रोष्ठ ५८, जलस्वरूप होनेसे अम्बुजाल ५९, पर्वतादिरूप है, इसलिये सुनिश्चल ५६०, कपिल ६१, कपिश ६२, शुक्ल ६३, जीवन कालस्वरूप होनेसे आयु ६४, प्राचीनरूपसे पर ६५, अर्वाचीन रूपसे अपर ६६, चित्ररथ आदि रूपसे गन्धर्व ६७, देवमाता वा पृथिवी रूपसे अदिति ६८, गरुडरूपसे तार्क्ष्य ६९, सुविज्ञेय ५७० शोभनवाक् होनेसे सुशारद है। ५७१ (९७--९८)

परश्वधायुध ७२, देव ७३, अनुकारी ७४, सुबान्धव ७५, तुम्बवीण ७६, महाक्रोध ७७, ऊर्ध्वरेता ७८, जले

सर्वाङ्गरूपो मायावी सुहृदो ह्यनिलोऽनलः ॥ १०० ॥
बन्धनो बन्धकर्ता च सुबन्धनविमोचनः।
सयज्ञारिः सकामारिर्महादंष्ट्रो महायुधः ॥ १०१ ॥
बहुधानिन्दितः शर्वः शंकरः शंकरोऽधनः।
अमरेशो महादेवो विश्वदेवः सुरारिहा ॥ १०२ ॥
अहिर्बुध्न्योऽनिलाभश्च चेकितानो हविस्तथा।
अजैकपाच्च कापाली त्रिशंकुरजितः शिवः ॥ १०३ ॥
धन्वन्तरिर्धूमकेतुः स्कन्दो वैश्रवणस्तथा।
धाता शक्रश्च विष्णुश्च मित्रस्त्वष्टा ध्रुवो धरः ॥ १०४ ॥
प्रभावः सर्वगो वायुरर्यमा सविता रविः।
उषंगुश्च विधाता च मान्धाता भूतभावनः ॥ १०५ ॥ (६३४)

शय ७९, उग्र ५८०, वंशकर ५८१, वंश ८२, वंशनाद, ८३, अनिन्दित ८४, सर्वाङ्गरूप ८५, मायावी ८६, सुहृद ८७, अनिल ८८, अनल ८९, बन्धन ५९०, बन्धकर्त्ता ९१,सुबन्धन-विमोचन ९२, यज्ञशत्रु दैत्योंके सङ्ग वास करता है, इस लिये सयज्ञारी ९३, कामविजयी योगियोंके संग निवास करता है, इस निमित्त सकामारि ९४, महादंष्ट्र९५,महायुध है।९६ (९९-१०१)

दारुकावनमें अत्यन्त मनोहर रूप धरके दिगम्बर होकर ऋषिपत्नियोंके चित्तको मोहित करनेमें प्रवृत्त होनेपर ऋषियोंने उसकी अनेक प्रकारसे निन्दा की थी, इस ही निमित्त बहुधानिन्दित ५९७, मुनियोंको मोहित किया था, इस ही निमित्त शर्व ९८, मुनियोंका कल्याण उसकी मुट्ठीमें था, इसलिये शङ्कर ९९, उन लोगोंकी शङ्का हरण की थी, इस ही कारण शङ्कर ६००, अधन१, अमरेश२,महादेव ३,विश्वदेव ४, सुरारिहा ५, पातालमें शेषरूपसे वर्त्तमान है,इसलिये अहिर्बुध्न्य६,वायुकी भांति अप्रत्यक्ष है, इसलिये अनिलाभ ७, अत्यन्त ज्ञानवान् है,इसलिये चेकि-तान ८,भोक्ताकी भोग्यवस्तुस्वरूप है, इस निमित्त हवि ९, एकादश रुद्रोंके बीच अन्यतम है, इस ही कारण अजै-कपात् ६१० ब्रह्माण्डके अधीश्वर होनेसे कापाली ११, सर्व जीवस्व-रूपसे त्रिशङ्कु १२, अजित १३ और शिव है। १४ (१०२-१०३)

धन्वन्तरि ६१५, धूमकेतु १६, स्कन्द १७, वैश्रवण १८, धाता १९, शक्र ६२०, विष्णु २१, मित्र २२, त्वष्टा २३, ध्रुव २४, धर २५, प्रभाव

विभुर्वर्णविभावी च सर्वकामगुणावहः ।
पद्मनाभो महागर्भश्चन्द्रवक्त्रोऽनिलोऽनलः ॥ १०६ ॥
बलवांश्चोपशान्तश्च पुराणः पुण्यचञ्चुरी ।
कुरुकर्ता कुरुवासी कुरुभूतो गुणौषधः ॥ १०७ ॥
सर्वाशयो दर्भचारी सर्वेषां प्राणिनां पतिः ।
देवदेवः सुखासक्तः सदसत्सर्वरत्नवित् ॥ १०८ ॥
कैलासगिरिवासी च हिमवद्गिरिसंश्रयः ।
कूलहारी कूलकर्ता बहुविद्यो बहुप्रदः ॥ १०९ ॥
वणिजो वर्धकी वृक्षो बकुलश्चन्दनश्छदः ।
सारग्रीवो महाजत्रुरलोलश्च महौषधः ॥ ११० ॥
सिद्धार्थकारी सिद्धार्थश्छन्दोव्याकरणोत्तरः ।
सिंहनादः सिंहदंष्ट्रः सिंहगः सिंहवाहनः ॥ १११ ॥ (६८१)

२६, सर्वग वायु २७, अर्यमा २८, सविता २९, रवि ६३०, नृपति विशेषरूपसे उषंगु ३१, विधाता ३२, मान्धाता (नृपविशेष) ३३, भूतभावन ३४, विभु ३५, श्वेत पीत आदि वर्णोंको विविधरूपसे उत्पन्न किया है, इसलिये वर्ण–विभावी ३६, सर्वकामवह ३७, पद्मनाभ ३८, महागर्भ ३९, चन्द्रवक्त्र ६४०, अनिल ४१, अनल वायु और अग्निके अधिष्ठात्री देवता स्वरूप है। ६४२ (१०४–१०६)

बलवान् ४३, उपशान्त ४४, पुराण ४५, पुण्यचञ्चु ४६, लक्ष्मीरूप ४७, कुरुक्षेत्रके निर्माता होनेसे कुरुकर्त्ता ४८, कुरुवासी ४९, कुरुभूत ६५०, ऐश्वर्यज्ञान वैराग्य प्रभृतिके भी औषधका उद्दीपक है, इस ही निमित्त गुणौषध ५१, सबका सुषुप्ति स्थान है, इसलिये सर्वाश्रय ५२, अन्तर्वेदिस्थ कुशरूपसे हवि भक्षण करता है, इसीसे दर्भचारी ५३, समस्त प्राणियोंका पति ५४ देवदेव ५५, सुखासक्त ५६, कारण ५७ और कार्य रूपसे सदसत् ५८, सर्वरत्नवित् ५९, कैलासगिरिवासी ६६०, हिमवद्गिरिसंश्रय ६१, महाप्रवाह रूपसे कूलहारी ६२, पुष्कर आदि महातडागोंका कर्त्ता है, इसलिये कूलकर्त्ता ६३, बहुविद्य ६४, बहुप्रद है। ६५ (१०७–१०९)

वणिज ६६, तक्ष रूपसे वर्द्धकी ६७ तक्षणीय संसारवृक्ष है, इसलिये वृक्ष ६८, बकुल (वृक्षविशेष) ६९, चन्दन ६७०, छद (सप्तपर्ण) ७१, सारग्रीव (दृढकन्धर) ७२, महाजत्रु ७३, अलोल ७४, व्रीहियवादि रूपसे

प्रभावात्मा जगत्कालस्थालो लोकहितस्तरुः ।
सारङ्गो नवचक्राङ्गः केतुमाली सभावनः ॥ ११२ ॥
भूतालयो भूतपतिरहोरात्रमनिन्दितः ॥ ११३ ॥
वाहिता सर्वभूतानां निलयश्च विभुर्भवः ।
अमोघः संयतो ह्यश्वो भोजनः प्राणधारणः ॥ ११४ ॥
धृतिमान्मतिमान् दक्षः सत्कृतश्च युगाधिपः ।
गोपालिर्गोपतिर्ग्रामो गोचर्मवसनो हरिः ॥ ११५ ॥
हिरण्यबाहुश्च तथा गुहापालः प्रवेशिनाम् ।
प्रकृष्टारिर्महाहर्षो जितकामो जितेन्द्रियः ॥ ११६ ॥
गान्धारश्च सुवासश्च तपःसक्तो रतिर्नरः ।
महागीतो महानृत्यो ह्यप्सरोगणसेवितः ॥ ११७ ॥ (७२६)

महौषध ७५, सिद्धार्थकारी ७६, वेद व्याख्यान-सिद्धार्थ ७७, सिंहनाद ७८, सिंहदंष्ट्र ७९, सिंहग ६८०, सिंहवाहन ८१, प्रभावात्मा ८२, जगत्कालस्थाल (जगद्ग्रासकर्त्ता) ८३, लोकहित ८४, तारण कर्त्ता होनेसे तरु ८५, सारंग (पक्षिविशेष) ८६, नवचक्रांग (नवीन हंस) ८७, केतुमाली (मयूर कुक्कुट आदि पक्षिरूप) ८८, धर्मपरीक्षाके स्थानकी रक्षा करता है, इसलिये सभावन ८९, भूतालय ६९०, भूतपति ६९१, अहोरात्र ६९२, अनिन्दित है। ६९३, (११०-११३)

समस्त भूतोंको वहन करता है, इसही निमित्त सर्वभूतवाहिता ९४, सर्वभूतनिलय ९५, विभु ९६, वर्त्तमान है, इसलिये भव ९७, अमोघ(नैष्फल्य-रहित) ९८, संयत (धारणा ध्यान समाधिमान्) ९९, उच्चैःश्रवादि स्वरूपसे अश्व ७००, भोजन (अन्नदाता) १, प्राणधारण २, धृतिमान् ३, मतिमान् ४, दक्ष (उत्साही) ५, सत्कृत(आदर-युक्त) ६ धर्माधर्मका फल देनेवाला है, इस ही निमित्त युगाधिप ७, इन्द्रियोंका पालयिता है, इसलिये गोपाली ८, किरणोंका पति सूर्यादि है, इस ही निमित्त गोपति ९, ग्राम (समूह) १०, गोचर्मवसन ११, भक्तोंके दुःख हरनेसे हरि १२, हिरण्यबाहु १३, योगियोंके शरीरकी रक्षा करता है, इस ही निमित्त गुहापाल १४, प्रकृष्टारि(उत्तम साधक) १५, महाहर्ष १६, जितकाम १७, जितेन्द्रिय १८ (११४—११६)

गान्धार (स्वरविशेष) १९, सुवास २०, तपःसक्त २१, रति (प्रीतिरूप) २२, नर (विराटरूपसे ब्रह्माण्डप्रापक)

महाकेतुर्महाधातुर्नैकसानुचरश्चलः ।
आवेदनीय आदेशः सर्वगन्धसुखावहः ॥ ११८ ॥
तोरणस्तारणो वातः परिधीपतिखेचरः ।
संयोगो वर्धनो वृद्धो अतिवृद्धो गुणाधिकः ॥ ११९ ॥
नित्य आत्मसहायश्च देवासुरपतिः पतिः ।
युक्तश्च युक्तबाहुश्च देवो दिवि सुपर्वणः ॥ १२० ॥
आषाढश्च सुषाढश्च ध्रुवोऽथ हरिणो हरः ।
वपुरावर्तमानेभ्यो वसुश्रेष्ठो महापथः ॥ १२१ ॥
शिरोहारी विमर्शश्च सर्वलक्षणलक्षितः ।
अक्षश्च रथयोगी च सर्वयोगी महाबलः ॥ १२२ ॥
समाम्नायोऽसमाम्नायस्तीर्थदेवो महारथः । (७६५)

२३, महागीत २४, महानृत्य २५, अप्सराओंसे सेवित २६, वृषही उसका केतु अर्थात् ध्वजा है, इस ही निमित्त महाकेतु २७, मेरु पर्वतरूपी महाधातु २८, अनेक शिखर प्रचारी होनेसे नैकसानुचर २९, दुर्ग्रह है, इसलिये चल ३०, वचनके अगोचर होनेसे भी गुरुओंके द्वारा उपदेशके योग्य है, इसलिये आवेदनीय ३१, साक्षात् उपदेश स्वरूप है,इसलिये आदेश ३२,सर्वगन्ध सुखावह ३३, पुरद्वार आदि रूपसे तोरण ३४, तारण ३५, वात ३६, परिधिदुर्गादि स्वरूप ३७, पति तथा खेचर गरुड आदि रूप ३८, संयोगवर्धन (स्त्रीपुरुषोंका सम्बन्ध)३९, वृद्ध ७४०, अतिवृद्ध४१,ज्ञानैश्वर्य आदियुक्त होनेसे गुणाधिक है। ४२ (११७—११९)

नित्य आत्मसहाय ४३, देवासुरपति ४४, पति ४५, समरमें सन्नद्ध है, इसलिये युक्त ४६, शत्रुमर्दन बाहु-विशिष्ट है, इसलिये युक्तबाहु ४७, स्वर्गमें इन्द्र का आराधनीय है, इसलिये देव ४८, सर्वसहन सामर्थ्यप्रद है, इस ही लिये आषाढ४९, सुषाढ५०,ध्रुव (अचञ्चल) ५१, श्वेत है इससे हरिण५२,और संहार कर्त्ता होनेसे हर ५३, स्वर्गच्युत पुरुषोंको वपुःप्रदाता है,इसलिये वपुः ५४, धनसेभी अधिक प्रिय है, इसलिये वसुश्रेष्ठ ५५, शिष्टाचार स्वरूप वा महापथ ५६, विचारपूर्वक ब्रह्माका सिर हरण किया था, इस ही निमित्त शिरोहारी ५७, सर्वलक्षणलक्षित (सामुद्रिकमें कहे हुए सब लक्षणोंसे युक्त) ५८, रथ सन्धान दारु अक्ष होनेसे रथयोगी ५९, सर्वयोगी ७६० महाबल है। ७६१,(१२०-१२२)

निर्जीवो जीवनो मन्त्रः शुभाक्षो बहुकर्कशः ॥ १२३ ॥
रत्नप्रभूतो रत्नाङ्गो महार्णवनिपानवित् ।
मूलं विशालो ह्यमृतो व्यक्ताव्यक्तस्तपोनिधिः ॥१२४॥
आरोहणोऽधिरोहश्च शीलधारी महायशाः ।
सेनाकल्पो महाकल्पो योगो युगकरो हरिः ॥ १२५ ॥
युगरूपो महारूपो महानागहनो वधः ।
न्यायनिर्वपणः पादः पण्डितो ह्यचलोपमः ॥ १२६ ॥
बहुमालो महामालः शशी हरसुलोचनः ।
विस्तारो लवणः कूपस्त्रियुगः सफलोदयः ॥ १२७ ॥
त्रिलोचनो विषण्णाङ्गो मणिविद्धो जटाधरः ।
बिन्दुर्विसर्गः सुमुखः शरः सर्वायुधः सहः ॥ १२८ ॥ (८११)

देवस्वरूप होनेसे समाम्नाय ६२, स्मृति इतिहास पुराण और आगम आदि रूपसे असमाम्नाय ६३, तीर्थदेव ६४, महारथ ६५, अचेतन प्रपञ्च रूपसे निर्जीव ६६, अचेतन देहादिके चैतन्यप्रदाता होनेसे जीवन ६७, प्रणवादि रूपसे मन्त्र ६८, शान्तदृष्टि है, इसलिये शुभाक्ष ६९, संहर्तृ रूपसे बहुकर्कश ७०, प्रचुर रत्न समन्वित है, इसलिये रत्नप्रभूत ७१, रत्नाङ्ग ७२, महार्णवनिपातवित् ७३, संसार वृक्षका मूल ७४, अत्यन्त शोभायमान है, इसलिये विशाल ७५, अमृत ७६, कार्य कारण रूपसे व्यक्ताव्यक्त ७७, तपोनिधि है।७८, १२३-१२४

परम पदमें आरोहण करनेके वास्ते इच्छुक है, इसलिये आरोहण ७९, और उसमें अधिरूढ होनेसे अधिरोह ८०, सदाचारसम्पन्न है, इसलिये शीलधारी ८१, महायशा ८२, समस्त सेनाका अलङ्कार स्वरूप है, इसलिये सेनाकल्प ८३, दिव्यभूषण है, इसलिये महाकल्प ८४, योग (चित्तवृत्ति-निरोध) ८५, सब युग उसके हाथमें विद्यमान हैं, इसलिये युगकर ८६, पदाभिमानी देवता होनेसे हरि ८७, युगरूप ८८, महारूप ८९, महानागहन (गजासुरघ्न) ९०, वध (मृत्यु,) ९१, न्याययुक्त दाता होनेसे न्यायनिर्वपण ९२, त्रिविक्रम है, इस ही लिये पाद ९३, परोक्षज्ञानी है, इसलिये पण्डित ९४, अचलोपम (निश्चल) है । ७९५ (१२५—१२६)

बहुमाल ९६, महामाल ९७, शशीहरसुलोचन ९८, विस्तीर्ण लवण समुद्र रूप होनेसे विस्तार लवणकूप ९९, कालिके बहिर्भूत होनेसे त्रियुग ८००, सफलोदय १, शास्त्र, आचार्य, ध्यान, ये

निवेदनः सुखाजातः सुगन्धारो महाधनुः ।
गन्धपाली च भगवानुत्थानः सर्वकर्मणाम् ॥ १२९ ॥
मन्थानो बहुलो वायुः सकलः सर्वलोचनः ।
तलस्तालः करस्थाली ऊर्ध्वसंहननो महान् ॥ १३० ॥
छत्रं सुच्छत्रो विख्यातो लोकः सर्वाश्रयः क्रमः ।
मुण्डो विरूपो विकृतो दण्डी कुण्डी विकुर्वणः ॥१३१॥
हर्यक्षः ककुभो वज्री शतजिह्वः सहस्रपात् ।
सहस्रमूर्धा देवेन्द्रः सर्वदेवमयो गुरुः ॥ १३२ ॥
सहस्रबाहुः सर्वाङ्गः शरण्यः सर्वलोककृत् ।
पवित्रं त्रिककुन्मन्त्रः कनिष्ठः कृष्णपिङ्गलः ॥ १३३ ॥
ब्रह्मदण्डविनिर्माता शतघ्नी पाशशक्तिमान् । (८५२)

तीनों उसके नेत्र सदृश हैं, इसलिये त्रिनेत्र २, भूम्यादि अष्टमूर्त्तियोंका विशेष रूपसे निरन्वय है, इस ही निमित्त विषण्णाङ्ग ३, कानमें कुण्डल धारण करता है, इस ही लिये मणिविद्ध ४, जटाधर ५, बिन्दु ६, विसर्ग ७, रूपसे व्यक्त-वर्ण है, इसलिये सुमुख ८, शर ९, सर्वायुध १०, सब कुछ सहता है, इसलिये सह है। ८११ (१२७-१२८)

निवेदन १२, सुखाजात १३, सुगन्धार १४, महाधनु १५, गन्धपाली भगवान्, १६, समस्त कर्मोंके उत्थान ८१७, जगत्को आलोडित करनेमें समर्थ होनेसे महाप्रलयानिल है, इसलिये मन्थान बहुलवायु १८, पूर्ण है, इसलिये सकल १९, सर्वलोचन ८२०, तलस्ताल (करतल वाद्य विशेष) २१, करस्थाली (हाथ ही भोजनका पात्र है) २२, दृढ शरीर है इसलिये ऊर्ध्व-संहनन २३, महान् २४, छत्र २५, सुछत्र २६, विख्यात लोक २७, त्रिविक्रम इससे पदके सहारे तीनों लोकोंको आक्रमण किया था, इस ही निमित्त सर्वाश्रयक्रम २८, मुण्ड २९, विरूप ८३०, विकृत ३१, दण्डी ३२, कुण्डी ३३, कर्मके द्वारा अप्राप्य है, इसलिये विकुर्वण है। ८३४ (१२९—१३१)

सिंहरूपसे हर्यक्ष ३५, सर्वदिक् रूपसे ककुभ ३६, वज्री ३७, शतजिह्व ३८, सहस्रपात् ३९, सहस्रमूर्द्धा ४०, देवेन्द्र ४१, सर्वदेवमय ३५, गुरु ४२, सहस्रबाहु ४३, वह सर्वत्र प्राप्त हो सकता है, इसलिये सर्वांग ४४, शरण्य ४५, सर्वलोककृत् ४६, पवित्र ४७, ककुद उच्च स्थानोंकी भांति बीज शक्ति और कीलक, ये तीनों ही उसके मन्त्र

पद्मगर्भो महागर्भो ब्रह्मगर्भो जलोद्भवः ॥ १३४ ॥
गभस्तिर्ब्रह्मकृद्ब्रह्मी ब्रह्मविद्ब्राह्मणो गतिः ।
अनन्तरूपो नैकात्मा तिग्मतेजाः स्वयंभुवः ॥ १३५ ॥
ऊर्ध्वगात्मा पशुपतिर्वातरंहा मनोजवः ।
चन्दनी पद्मनालाग्रः सुरभ्युत्तरणो नरः ॥ १३६ ॥
कर्णिकारमहास्रग्वी नीलमौलिः पिनाकधृत् ।
उमापतिरुमाकान्तो जाह्नवीधृदुमाधवः ॥ १३७ ॥
वरो वराहो वरदो वरेण्यः सुमहास्वनः । (८८४)

हैं, इस ही निमित्त त्रिककुन्मन्त्र ४८, अदितिके कनिष्ठ पुत्र वामनरूपी विष्णु स्वरूप है, इसलिये कनिष्ठ ४९, हरिहर मूर्त्ति रूपसे कृष्ण पिंगल है । ८५० (१३२—१३३)

ब्रह्मदण्डविनिर्माता ५१, शतघ्नीपाश शक्तिमान् ५२, ब्रह्मारूपसे पद्मगर्भ ५३, महागर्भ ५४, ब्रह्मगर्भ ५५, वह समुद्रसे प्रकट हुआ था इसलिये जलोद्भव ५६, रश्मि स्वरूपसे गभस्ति ५७, वेदकर्त्ता होनेसे ब्रह्मकृत् ५८, वेदाध्यायी है, इसलिये ब्रह्मी ५९, वेदार्थवित् है, इसलिये ब्रह्मवित् ६०, ब्रह्मनिष्ठ है, इस लिये ब्राह्मण ६१, ब्रह्मनिष्ठोंका परम अयन है, इसलिये गति ६२, अनन्तरूप ६३, नैकात्मा ६४, ब्रह्माके विषयमें दृष्टि रखता है, इसलिये तिग्मतेजा है । ८६५ (१३४—१३५)

ऊर्ध्वगात्मा ६६, पशुपति ६७, वातरंहा ६८, मनोजव ६९, शरीरमें चन्दन लगानेसे चन्दनी ७०, किसी समयमें ब्रह्मा निज आश्रय पद्मनालकी जड देखनेकी इच्छासे उस मार्गसे गमन करके उसकी आदि न देख सके, इसलिये उसका अनन्तरूप होनेसे पद्मनालाग्र ७१, किसी समय ब्रह्माने विष्णुके विषयमें स्पर्द्धा करके गऊसे कहा तुम साक्षी दो, कि मैंने महादेवका शिरस्थल देखा है, सुरभीने ब्रह्माके भयसे मिथ्या साक्षी दी थी । अनन्तर महादेवने उसे यह कहके शाप दिया, कि तेरी सब सन्तति अपवित्र वस्तु भक्षण करेगी । इस ही शापके कारण कामधेनुको ऊर्ध्वपदसे अधःपदमें लेआनेसे सुरभ्युत्तरण ७२, सब जीवोंका नाश करता है, इसलिये नर है । ८७३, (१३६)

कर्णिकारमहास्रग्वी ७४, नीलमौलि (नीलमणिमय किरीट शोभित मौलि) ७५, पिनाकधृत् ७६, उमानामी ब्रह्मविद्याके यथेष्ट विनियोगके हेतु स्वामी है, इसलिये उमापति ७७, ब्रह्मविद्यासे वशीकृत होनेसे उमा-

महाप्रसादो दमनः शत्रुहा श्वेतपिङ्गलः ॥ १३८ ॥
पीतात्मा परमात्मा च प्रयतात्मा प्रधानधृत् ।
सर्वपार्श्वमुखस्त्र्यक्षो धर्मसाधारणो वरः ॥ १३९ ॥
चराचरात्मा सूक्ष्मात्मा अमृतो गोवृषेश्वरः ।
साध्यर्षिर्वसुरादित्यो विवस्वान्सवितामृतः ॥ १४० ॥
व्यासः सर्गः सुसंक्षेपो विस्तरः पर्ययो नरः ।
ऋतुः संवत्सरो मासः पक्षः संख्यासमापनः ॥१४१॥
कला काष्ठा लवा मात्रा मुहूर्ताहःक्षपाः क्षणाः । (९१५)

कान्त ७८, जान्हवीधृत् ७९, पार्वतीका पति है, इसलिये उमाधव ८०, आद्य भूमिका उद्धारकर्त्ता है, इस ही निमित्त वरवराह ८१, अनेक अवतारोंके द्वारा जगत्को पालन करता है, इस ही निमित्त वरद ८२, जगत्पालक होनेसे वरेण्य ८३, हयग्रीव रूपसे वेदमन्त्रोंका उच्चारण किया था, इस ही लिये सुमहास्वन ८४, महाप्रसाद ८५, दमन, ८६, शत्रुहा ८७, अर्द्धनारी नटेश्वर रूपसे दक्षिणार्द्धमें कर्पूरगौर और वामार्द्धमें कनकपिंगल है, इस ही निमित्त श्वेतपिंगल है। ८८८, (१३७—१३८)

पीतात्मा८९, अन्नमय, प्राणमय मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय, इन पांचों आत्मासे पृथक् आनन्द मात्र स्वरूप है, इस ही निमित्त परमात्मा ९०, निर्मल शुद्धचित्त होनेसे प्रयतात्मा ९१, त्रिगुणात्मक जगत्कारण प्रधानाख्य अज्ञानका अधिष्ठान है, इसलिये प्रधानधृत् ९२, पञ्चवक्त्र रूपसे सर्वपार्श्वमुख ९३, चन्द्र, सूर्य और अग्निरूप तीनों नेत्रोंसे युक्त है, इसलिये त्र्यक्ष ९४, पुण्यानुरूप प्रसाद स्वरूप है, इसहीसे सर्वसाधारण वर ९५, चराचरात्मा ९६, सूक्ष्मात्मा ९७, अमृत पृथ्वीपति धर्मका ईश्वर है, इस ही निमित्त अमृत गो-वृषेश्वर ९८, देवोंका देवता और साध्योंका ऋषि है, इसलिये साध्यर्षि ९९, अदितिके पुत्र वसु स्वरूप होनेसे आदित्यवसु ९००, अंशुजालवान होनेसे विवस्वान जगत्प्रसव कर्त्ता होनेसे सविता और यज्ञीय सोम स्वरूप है, इसलिये अमृत है। ९०१(१३९-१४०)

पुराण इतिहासोंका कर्त्ता है, इसलिये व्यास २, उसके बनाये हुए पुराण आदिमें सर्गसूत्र तथा भाष्यादि रूपसे सुसंक्षेप वा विस्तर ३, समष्टिरूप वैश्वानर है, इसलिये पर्ययनर ४, ऋतु ९०५, संवत्सर ६, मास ७, पक्ष ९०८ ऋतुओंकी संख्या समाप्त करनेवाली संक्रान्ति दर्शपौर्णमासादि रूपसे

विश्वक्षेत्रं प्रजाबीजं लिङ्गमाद्यस्तु निर्गमः ॥ १४२ ॥
सदसद्व्यक्तमव्यक्तं पिता माता पितामहः ।
स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम् ॥ १४३ ॥
निर्वाणं ह्लादनश्चैव ब्रह्मलोकः परा गतिः ।
देवासुरविनिर्माता देवासुरपरायणः ॥ १४४ ॥
देवासुरगुरुर्देवो देवासुरनमस्कृतः ।
देवासुरमहामात्रो देवासुरगणाश्रयः ॥ १४५ ॥
देवासुरगणाध्यक्षो देवासुरगणाग्रणीः ।
देवातिदेवो देवर्षिर्देवासुरवरप्रदः ॥ १४६ ॥
देवासुरेश्वरो विश्वो देवासुरमहेश्वरः ।
सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो देवतात्माऽऽत्मसंभवः ॥१४७॥
उद्भित्त्रिविक्रमो वैद्यो विरजो नीरजोऽमरः ।
ईड्यो हस्तीश्वरो व्याघ्रो देवसिंहो नरर्षभः ॥ १४८ ॥ (९६४)

संख्यासमापन ९,कला१०,काष्ठा११,लव १२,मात्रा १३,मुहूर्त्त अहःक्षपा१४,क्षण १५, विश्वक्षेत्र १६,प्रजाबीज १७,लिंग १८, आद्यनिर्गम (अंकुर रूपी) है । ९१९ (१४१—१४२)

सत् ९२०असत् २१,व्यक्त(इन्द्रिय-ग्राह्य) २२,मैं नहीं जानता, यह अनुभववेद्य अज्ञान होनेसे अव्यक्त २३, पिता २४,माता २५,पितामह२६,तपरूपसे स्वर्गद्वार२७,रागरूपसे प्रजाद्वार२८ वैराग्य रूपसे मोक्ष द्वार२९,स्वर्ग स्वरूपसे त्रिविष्टप३०,मोक्षरूपसे निर्वाण३१, आनंदजनक होनेसे ह्लादन ३२, ब्रह्मलोक३३,सत्य लोक परागति३४,देवासुरविनिर्माता३५,देवासुरपरायण३६देवासुरगुरु ३७, देव ३८, देवासुरनमस्कृत ३९,देवासुरमहामात्र ४०, देवासुरगणाश्रय ४१,देवासुरगणाध्यक्ष४२, देवासुरगणाग्रणी ४३, इन्द्रादिको अतिक्रम करके स्वयं प्रकाशमान है,इसलिये देवातिदेव ४४, देवर्षि ४५, देवासुरवरप्रद है । ९४६ (१४३—१४६)

अन्तर्यामी रूपसे देवासुरेश्वर ९४७, जगत्गर्भाशय होनेसे विश्व ४८, अंतर्यामी ईश्वरका अधिष्ठान है, इसलिये देवासुरमहेश्वर ४९, सर्वदेवमय ५०, अचिन्त्य, ५१ , देवतात्मा ५२, आत्मसम्भव (स्वतःसिद्ध) ५३ , उद्भिद् ५४, त्रिविक्रम ५५, विद्यावान है, इसलिये वैद्य ५६ , निर्मल होनेसे विरज ९५७, रजोगुणसे रहित है, इसलिये नीरज ५८, अविनाशी होनेसे

विबुधोऽग्रवरः सूक्ष्मः सर्वदेवस्तपोमयः।
सुयुक्तः शोभनो वज्री प्रासानां प्रभवोऽव्ययः ॥१४९॥
गुहः कान्तो निजः सर्गः पवित्रं सर्वपावनः।
शृङ्गी शृङ्गप्रियो बभ्रु राजराजो निरामयः ॥ १५० ॥
अभिरामः सुरगणो विरामः सर्वसाधनः।
ललाटाक्षो विश्वदेवो हरिणो ब्रह्मवर्चसः ॥ १५१ ॥
स्थावराणां पतिश्चैव नियमेन्द्रियवर्धनः।
सिद्धार्थः सिद्धभूतार्थोऽचिन्त्यः सत्यव्रतः शुचिः ॥१५२॥
व्रताधिपः परं ब्रह्म भक्तानां परमा गतिः। (१००३)

अमर ५९, स्तवनीय होनेसे ईड्य ६०, कालहस्तीश्वर नाम वायव्यलिंग रूपसे हस्तीश्वर ६१, व्याघ्रेश्वर नामक लिंग स्वरूपसे व्याघ्र ६२, देवताओंके बीच पराक्रमी है, इस ही निमित्त देवसिंह ६३, मनुष्योंके बीच श्रेष्ठ है, इस ही लिये नरर्षभ ६४, विशेष प्राज्ञ है, इसलिये विबुध ६५, सबसे अगाडी यज्ञ भाग वरण करता है, इस ही लिये अग्रवर ६६, दुर्लक्ष्य रूपसे सूक्ष्म ९६७, सर्वदेव ६८, तपोमय ६९, सुयुक्त ७०, शोभन ७१, वज्री ७२, प्रास आदि अस्त्रोंकी उत्पत्तिका कारण है,इसलिये प्रासप्रभव ७३,अव्यय है। ७४,१४७-१४९

कुमार रूपसे गुह ७५, आनंदकी पराकाष्ठा स्वरूप है, इसलिये कान्त ७६, अपनेसे अभिन्न है, इसलिये निजसर्ग ९७७, मृत्युके क्लेशसे परित्राण करता है, इस निमित्त पवित्र ७८, सर्वपावन ७९, वृषादि रूपसे शृंगी ८०, शैल शृंगाश्रय है, इसलिये शृंगप्रिय ८१, शनैश्वर होनेसे बभ्रु ८२, राजराज (कुबेर) ८३, निर्दोष है, इस लिये निरामय ८४, अभिराम ८५, सुरगण ८६, सर्वोपरम रूपसे विराम ९८७, सर्वसाधन ८८, ललाटाक्ष ८९, विश्वदेव ९०, मृगरूप होनेसे हरिण ९१, दिव्य तपसे युक्त तेजस्वी है, इसलिये ब्रह्मवर्चस ९२, हिमाचल आदि रूपसे स्थावर पति ९३, नियमेन्द्रियवर्द्धन ९४, सिद्धार्थ ९५, सिद्धभूतार्थ (द्विविध मोक्ष स्वरूप) ९६, साधारण उपास्यसे पृथक् है,इसलिये अचिन्त्य ९९७, ब्रह्मनिष्ठ होनेसे सत्यव्रत ९८, निर्मलचित्त है, इसलिये शुचि है। ९९(१५०-१५२)

समस्त व्रतोंका फलदाता है, इस निमित्त व्रताधिप १०००,विश्वतैजस प्राज्ञ नाम अपर ब्रह्मासे श्रेष्ठ तुरीय शिवाख्य श्रुति-प्रसिद्ध है, इसलिये पर १, देश-काल और वस्तुओंसे परिच्छेदरहित

विमुक्तो मुक्ततेजाश्च श्रीमान् श्रीवर्धनो जगत् ॥१५३॥(१००८)
यथाप्रधानं भगवानिति भक्त्या स्तुतो मया ।
यन्न ब्रह्मादयो देवा विदुस्तत्त्वेन नर्षयः ॥ १५४ ॥
स्तोतव्यमर्च्यं वन्द्यं च कः स्तोष्यति जगत्पतिम् ।
भक्त्या त्वेवं पुरस्कृत्य मया यज्ञपतिर्विभुः ॥ १५५ ॥
ततोऽभ्यनुज्ञां संप्राप्य स्तुतो मतिमतां वरः ।
शिवमेभिः स्तुवन् देवं नामभिः पुष्टिवर्धनैः ॥१५६॥
नित्ययुक्तः शुचिर्भक्तः प्राप्नोत्यात्मानमात्मना ॥१५७॥
एतद्धि परमं ब्रह्म परं ब्रह्माधिगच्छति ।
ऋषयश्चैव देवाश्च स्तुवन्त्येते न तत्परम् ॥ १५८ ॥
स्तूयमानो महादेवस्तुष्यते नियतात्मभिः ।
भक्तानुकम्पी भगवानात्मसंस्थाकरो विभुः ॥ १५९ ॥
तथैव च मनुष्येषु ये मनुष्याः प्रधानतः ।
आस्तिकाः श्रद्धानाश्च बहुभिर्जन्मभिः स्तवैः ॥१६०॥

अखण्ड एक रस तन्मात्र रूपसे ब्रह्म है २, भक्तोंकी परमगति ३, मुक्ततेजा होनेसे विमुक्त (लिङ्ग शरीरसे रहित) ४, मुक्ततेजा ५, श्रीमान ६, श्रीवर्द्धन ७,नित्य रूपान्तर प्राप्त होनेसे जगत् है । १००८ (१५३)

मैंने प्रधानताके अनुसार भक्तिपूर्वक इस ही प्रकार भगवानकी स्तुति की थी; ब्रह्मादि देवता और महर्षि लोग जिसे यथार्थ रूपसे नहीं जानते, उस स्तवनीय, वन्दनीय और पूजनीय जगदीश्वरकी दूसरा कौन स्तुति कर सकेगा ? मैंने भक्तिपूर्वक यज्ञपति मतिमतांवर विभुको पुरस्कार करके उनसे सब भांतिसे अनुज्ञात होके स्तुति की थी । नित्य युक्त शुद्धचित्तवाले, भक्तजन यदि इन पुष्टिवर्द्धन नामोंसे महादेवकी स्तुति करें, तो वे स्वयं ही आत्मलाभ करनेमें समर्थ होवें । यही ब्रह्मप्राप्तिके विषयमें श्रेष्ठ साधनयुक्त विद्या है, इसे जपनेसे कैवल्य प्राप्ति होती है, इस ही लिये ऋषि तथा देववृन्द इन नामोंसे महादेवकी स्तुति किया करते हैं । (१५४—१५८)

आत्मसंस्थाकर अर्थात् मोक्षदाता, भक्तोंपर कृपा करनेवाले भगवान् विभु महादेव एकाग्र चित्तवाले भक्तोंके द्वारा इस स्तोत्रसे स्तुतियुक्त होके प्रसन्न होते हैं । मनुष्योंके बीच जो लोग आस्तिक तथा श्रद्धावान् हैं, वे अनेक

भक्त्या ह्यनन्यमीशानं परं देवं सनातनम् ।
कर्मणा मनसा वाचा भावेनामिततेजसः ॥ १६१ ॥
शयाना जाग्रमाणाश्च व्रजन्नुपविशंस्तथा ।
उन्मिषन्निमिषंश्चैव चिन्तयन्तः पुनः पुनः ॥ १६२ ॥
शृण्वन्तः श्रावयन्तश्च कथयन्तश्च ते भवम् ।
स्तुवन्तः स्तूयमानाश्च तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥१६३॥
जन्मकोटिसहस्रेषु नानासंसारयोनिषु ।
जन्तोर्विगतपापस्य भवे भक्तिः प्रजायते ॥ १६४ ॥
उत्पन्ना च भवे भक्तिरनन्या सर्वभावतः ।
भाविनः कारणे चास्य सर्वयुक्तस्य सर्वथा ॥ १६५ ॥
एतद्देवेषु दुष्प्रापं मनुष्येषु न लभ्यते ।
निर्विघ्ना निश्चला रुद्रे भक्तिरव्यभिचारिणी ॥ १६६ ॥
तस्यैव च प्रसादेन भक्तिरुत्पद्यते नृणाम् ।
येन यान्ति परां सिद्धिं तद्भागवतचेतसः ॥ १६७ ॥
ये सर्वभावानुगताः प्रपद्यन्ते महेश्वरम् ।
प्रपन्नवत्सलो देवः संसारात्तान्समुद्धरेत् ॥ १६८ ॥

जन्ममें इस स्तवके द्वारा अनन्य साधारण सनातन परम देवकी वचन, मन, कर्मसे सब प्रकार आराधना करनेसे अत्यन्त तेजस्वी होते हैं। सोने, जागने, चलने, बैठने, पलक खोलने और बंद करनेके समय वे लोग महेश्वरका बार-बार ध्यान करके उनके गुणोंको सुनने, कहने और गाकर स्तुति करनेपर स्तूयमान होकर सन्तुष्ट और सुखी होते हैं। सहस्र कोटि जन्म तक अनेक संसार-योनिमें भ्रमण करनेसे जब जीवके पाप दूर होते हैं, तब महादेवमें भक्ति उत्पन्न होती है। (१५९—१६४)

सब साधनोंसे युक्त मनुष्योंमें भाग्यवशसे सब प्रकार महेश्वरमें अनन्यभक्ति अर्थात् भवसे आत्माको अभिन्न जानके उनमें जो भक्ति हुआ करती है, वही उत्पन्न होती है। रुद्रमें अव्यभिचारी, निर्विघ्न और निर्मल भक्ति देवताओंको भी दुर्लभ है, वह मनुष्य मण्डलमें नहीं प्राप्त होती; उसकी कृपासे ही मनुष्योंमें भक्ति उत्पन्न होती है, जिसके सहारे उसके ध्यानमें तत्पर रहनेवाले पुरुष परम सिद्धि पाते हैं। जो लोग सब प्रकारसे अनुगत होकर महेश्वरके शरणापन्न होते हैं, भक्तवत्सल महादेव उन्हें

एवमन्ये विकुर्वन्ति देवाः संसारमोचनम् ।
मनुष्याणामृते देवं नान्या शक्तिस्तपोबलम् ॥१६९ ॥
इति तेनेन्द्रकल्पेन भगवान्सदसत्पतिः ।
कृत्तिवासाः स्तुतः कृष्ण तण्डिना शुभबुद्धिना ॥१७०॥
स्तवमेतं भगवतो ब्रह्मा स्वयमधारयत ।
गीयते च स बुद्धयेत ब्रह्मा शङ्करसन्निधौ ॥ १७१ ॥
इदं पुण्यं पवित्रं च सर्वदा पापनाशनम् ।
योगदं मोक्षदं चैव स्वर्गदं तोषदं तथा ॥ १७२ ॥
एवमेतत्पठन्ते य एकभक्त्या तु शंकरम् ।
या गतिः सांख्ययोगानां व्रजन्त्येतां गतिं तदा ॥१७३॥
स्तवमेतं प्रयत्नेन सदा रुद्रस्य सन्निधौ ।
अब्दमेकं चरेद्भक्तः प्राप्नुयादीप्सितं फलम् ॥ १७४ ॥
एतद्रहस्यं परमं ब्रह्मणो हृदि संस्थितम् ।
ब्रह्मा प्रोवाच शक्राय शक्रः प्रोवाच मृत्यवे ॥ १७५ ॥
मृत्युः प्रोवाच रुद्रेभ्यो रुद्रेभ्यस्तण्डिमागमत् ।
महता तपसा प्राप्तस्तण्डिना ब्रह्मसद्मनि ॥ १७६ ॥

संसारसे पार करते हैं। संसारसे मुक्त करनेवाले महादेवके अतिरिक्त अन्य-देवता मनुष्योंके तपोबलको नष्ट किया करते हैं, क्यों कि मनुष्योंको तपस्याके अतिरिक्त और दूसरी कोई भी शक्ति नहीं है। (१६५ – १६९)

हे कृष्ण! इस ही प्रकारसे वह इन्द्र-कल्प शुद्धबुद्धि तण्डि मुनिने सदा सत्पति भगवान् शङ्करकी स्तुति की थी और उन्हींके द्वारा महादेवके निकट यह स्तव गाया गया था, तुम ब्राह्मण हो इसलिये इसे समझ सकोगे। यह स्तोत्र पुण्यप्रद पवित्र सदा पापोंको नष्ट करनेवाला योगद, मोक्षद, स्वर्ग और सन्तोषप्रद है; इस ही प्रकार जो लोग एकमात्र महादेवमें भक्ति करके इसका पाठ करते हैं, उन्हें सांख्य योगियोंकी गति प्राप्त होती है। यदि भक्त लोग एक वर्षतक महादेवके समीप इस स्तोत्रका पाठ करें, तो ईप्सित फल प्राप्त कर सकते हैं। यह परम रहस्य ब्रह्माके हृदयमें स्थित था, अनन्तर ब्रह्माने इन्द्रसे कहा, इन्द्रने मृत्युसे कहा और मृत्युने रुद्रगणोंके निकट वर्णन किया, रुद्रगणोंके द्वारा यह स्तोत्र तण्डिमुनिको मालूम हुआ। तण्डिने

तण्डिः प्रोवाच शुक्राय गौतमाय च भार्गवः ।
वैवस्वताय मनवे गौतमः प्राह माधव ॥ १७७ ॥
नारायणाय साध्याय समाधिष्ठाय धीमते ।
यमाय प्राह भगवान् साध्यो नारायणोऽच्युतः ॥१७८॥
नाचिकेताय भगवानाह वैवस्वतो यमः ।
मार्कण्डेयाय वार्ष्णेय नाचिकेतोऽभ्यभाषत ॥ १७९ ॥
मार्कण्डेयान्मया प्राप्तो नियमेन जनार्दन ।
तवाप्यहममित्रघ्न स्तवं दद्यां ह्यविश्रुतम् ॥ १८० ॥
स्वर्ग्यमारोग्यमायुष्यं धन्यं वेदेन संमितम् ।
नास्य विघ्नं विकुर्वन्ति दानवा यक्षराक्षसाः ॥ १८१ ॥
पिशाचा यातुधाना वा गुह्यका भुजगा अपि ।
यः पठेत शुचिः पार्थ ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
अभग्नयोगो वर्षं तु सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ १८२ ॥ [१२८०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे महादेवसहस्रनामस्तोत्रे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

वैशम्पायन उवाच- महायोगी ततः प्राह कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।

ब्रह्मस्थानमें महत् तपस्याके सहारे इसे पाया । (१७०-१७३)

हे माधव ! तण्डिने शुक्रसे कहा, शुक्रने गौतमसे और गौतमने वैवस्वत मनुके निकट इसे वर्णन किया; वैवस्वत मनुने नारायण नामक बुद्धिमान् प्रियपात्र साध्यको इस स्तोत्रका उपदेश किया, अच्युत साध्य नारायणने यमसे कहा, सूर्यपुत्र भगवान् यमने नाचिकेतासे कहा । हे वृष्णिवंशप्रसूत ! नचिकेताने मार्कण्डेय मुनिके समीप वर्णन किया । हे जनार्दन ! यह स्तोत्र नियमपूर्वक मुझे मार्कण्डेय ऋषिके समीप प्राप्त हुआ है । (१७७--१८०)

हे शत्रुनाशन ! मैं तुम्हें यह अभिश्रुत स्तोत्र प्रदान करूंगा । यह स्वर्ग और आरोग्य जनक आयुष्कर धनप्रद तथा वेद तुल्य है; यक्ष, राक्षस, दानव, पिशाच, यातुधान वा सर्पादि इसमें विघ्न नहीं कर सकते । हे पार्थ ! जो पुरुष पवित्र ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय और अखण्डित योगसे युक्त होकर एक वर्ष-तक सदा इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है । (१८०—१८२)

अनुशासनपर्वमें १७ अध्याय समाप्त ।

पठस्व पुत्र भद्रं ते प्रीयतां ते महेश्वरः ॥ १ ॥
पुरा पुत्र मया मेरौ तप्यता परमं तपः ।
पुत्रहेतोर्महाराज स्तव एषोऽनुकीर्तितः ॥ २ ॥
लब्धवानीप्सितान्कामानहं वै पाण्डुनन्दन ।
तथा त्वमपि शर्वाद्धि सर्वान्कामानवाप्स्यसि ॥ ३ ॥
कपिलश्च ततः प्राह सांख्यर्षिर्देवसंमतः ।
मया जन्मान्यनेकानि भक्त्या चाराधितो भवः ॥४॥
प्रीतश्च भगवान् ज्ञानं ददौ मम भवान्तकम् ।
चारुशीर्षस्ततः प्राह शक्रस्य दयितः सखा ।
आलम्बायन इत्येवं विश्रुतः करुणात्मकः ॥ ५ ॥
मया गोकर्णमासाद्य तपस्तप्त्वा शतं समाः ।
अयोनिजानां दान्तानां धर्मज्ञानां सुवर्चसाम् ॥ ६ ॥
अजराणामदुःखानां शतवर्षसहस्रिणाम् ।
लब्धं पुत्रशतं शर्वात्पुरा पाण्डुनृपात्मज ॥ ७ ॥
वाल्मीकिश्चाह भगवान्युधिष्ठिरमिदं वचः ।

अनुशासनपर्वमें १८ अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर महायोगी कृष्णद्वैपायन मुनि कहने लगे, हे तात ! तुम स्तोत्र पाठ करो, तुम्हारा कल्याण होगा और महादेव तुमपर प्रसन्न होंगे । हे तात महाराज ! पहले जब मैंने पुत्रके निमित्त सुमेरु पर्वतपर परम तपस्या की थी, उस समयमें इस ही स्तोत्रका पाठ किया था । हे पाण्डुनन्दन ! मैंने इस ही स्तोत्रका पाठ करके अभिलषित वस्तुओंको पाया था, वैसे ही तुम्हारी भी सब कामना महादेव पूरी करेंगे । (१–३)

अनन्तर सांख्य शास्त्र बनानेवाले देवसंमत कपिल मुनि बोले, मैंने अनेक जन्मतक भक्तिपूर्वक महादेवकी आराधना की थी, तब भगवान्‌ने मुझपर प्रसन्न होकर संसारविनाशन ज्ञान दान किया । (४—५)

अनन्तर इन्द्रके प्रिय मित्र आलंबायन गोत्री करुणामय विख्यात चारुशीर्ष बोले, हे पाण्डुनृपनन्दन ! पहले समयमें मैंने गोकर्ण तीर्थमें जाके एक सौ वर्षतक तपस्या करके महादेवसे अयोनिज, दान्त, धर्मज्ञ, अत्यन्त तेजस्वी, अजर और दुःखरहित सौ हजार वर्षकी परमायु विशिष्ट एक सौ पुत्र प्राप्त किया था । (५—७)

विवादे साग्निमुनिभिर्ब्रह्मघ्नो वै भवानिति ॥ ८ ॥
उक्तः क्षणेन चाविष्टस्तेनाधर्मेण भारत।
सोऽहमीशानमनघममोघं शरणं गतः ॥ ९ ॥
मुक्तश्चास्मि ततः पापैस्ततो दुःखविनाशनः।
आह मां त्रिपुरघ्नो वै यशस्तेऽग्र्यं भविष्यति ॥१०॥
जामदग्न्यश्च कौन्तेयमिदं धर्मभृतां वरः।
ऋषिमध्ये स्थितः प्राह ज्वलन्निव दिवाकरः ॥ ११ ॥
पितृविप्रवधेनाहमार्तो वै पाण्डवाग्रज।
शुचिर्भूत्वा महादेवं गतोऽस्मि शरणं नृप ॥ १२ ॥
नामभिश्चास्तुवं देवं ततस्तुष्टोऽभवद्भवः।
परशुं च ततो देवो दिव्यान्यस्त्राणि चैव मे ॥ १३ ॥
पापं च ते न भविता अजेयश्च भविष्यसि।
न ते प्रभविता मृत्युरजरश्च भविष्यसि ॥ १४ ॥
आह मां भगवानेवं शिखण्डी शिवविग्रहः।
तदवाप्तं च मे सर्वं प्रसादात्तस्य धीमतः ॥ १५ ॥
विश्वामित्रस्तदोवाच क्षत्रियोऽहं तदाभवम्।

भगवान् वाल्मीकि मुनि राजा युधिष्ठिरसे बोले, वेद विपरीत वादविषयमें साग्निक मुनियोंने मुझे "ब्रह्म हत्यारा" कहा था। हे भारत! क्षणभरमें मैं उस अधर्मसे आविष्ट हुआ था, अनन्तर ब्रह्महत्या पापसे युक्त होकर उस समय मैं अनघ अमोघ ईशान देवका शरणागत हुआ उनका शरणागत होके मैं पापसे छूटा, उसहीसे मेरा दुःख नष्ट हुआ। उस समय महादेवने मुझसे कहा, तुम्हें श्रेष्ठ यश प्राप्त होगा। (८–१०)

धार्मिक प्रवर जामदग्न्य (परशुराम) ऋषियोंके बीच प्रकाशमान सूर्यकी भांति निवास करते हुए कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरसे बोले, हे पाण्डवाग्रज! मैं पितृतुल्य ब्राह्मणोंका वध करनेसे अत्यन्त आर्त हुआ था। हे राजन्! अनन्तर पवित्र होकर महादेवकी शरणमें गया और इन्हीं नामोंसे उनकी स्तुति की। अनन्तर महादेव मुझपर प्रसन्न हुए और मुझे दिव्य अस्त्रोंमें श्रेष्ठ परशु प्रदान किया; फिर बोले, कि तुम्हें पाप न होगा तुम सबसे अजेय होगे, मृत्यु तुम्हें ले नहीं सकेगी, शिवविग्रह शिखंडि मुझे ऐसा ही कहते हैं, उस धीमानकी कृपासे मैंने यह सब पाया है। ११–१५

ब्राह्मणोऽहं भवानीति मया चाराधितो भवः ॥ १६ ॥
तत्प्रसादान्मया प्राप्तं ब्राह्मण्यं दुर्लभं महत् ।
असितो देवलश्चैव प्राह पाण्डुसुतं नृपम् ॥ १७ ॥
शापाच्छक्रस्य कौन्तेय विभो धर्मोऽनशत्तदा ।
तन्मे धर्मं यशश्चाग्र्यमायुश्चैवाददत्प्रभुः ॥ १८ ॥
ऋषिर्गृत्समदो नाम शक्रस्य दयितः सखा ।
प्राहाजमीढं भगवान् बृहस्पतिसमद्युतिः ॥ १९ ॥
वरिष्ठो नाम भगवांश्चाक्षुषस्य मनोः सुतः ।
शतक्रतोरचिन्त्यस्य सत्रे वर्षसहस्रिके ॥ २० ॥
वर्तमानेऽब्रवीद्वाक्यं साम्नि ह्युच्चारिते मया ।
रथन्तरे द्विजश्रेष्ठ न सम्यगिति वर्तते ॥ २१ ॥
समीक्षस्व पुनर्बुद्ध्या पापं त्यक्त्वा द्विजोत्तम ।
अयज्ञवाहिनं पापमकार्षीस्त्वं सुदुर्मते ॥ २२ ॥
एवमुक्त्वा महाक्रोधः प्राह शंभुं पुनर्वचः ।
प्रज्ञया रहितो दुःखी नित्यभीतो वनेचरः ॥ २३ ॥

अनन्तर विश्वामित्र मुनि बोले, मैं जब क्षत्रिय था, तब ब्राह्मण बननेकी इच्छासे महेश्वरकी आराधना की थी, उनकी कृपासे मैंने अत्यन्त दुर्लभ ब्राह्मणत्व पाया है। (१६–१७)

असित देवल मुनि पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरसे बोले, हे विभु कौन्तेय! पहले धर्मशास्त्रके किसी विषयको अन्यथा करनेसे इन्द्रने क्रुद्ध होकर मुझे शाप दिया, शापके प्रभावसे मेरा धर्म नष्ट होगया, अनन्तर प्रभु महादेवने मुझे वह धर्म, उत्तम यश और परमायु प्रदान किया। (१७-१८)

बृहस्पतिके समान तेजस्वी इन्द्रके प्रियमित्र भगवान् गृत्समद अजमीढवंशीय राजा युधिष्ठिरसे बोले, चाक्षुष मनुके पुत्र भगवान् वरिष्ठ अचिन्तनीय शतक्रतुके सहस्रवार्षिक यज्ञके वर्त्तमान कालमें मैंने विपरीत रीतिसे साम उच्चारण किया, तब वह मुझसे बोले, हे द्विजश्रेष्ठ! यह रथन्तर साम पूर्णरूपसे उच्चारित नहीं हुआ। हे द्विजोत्तम! तुम मिथ्याभिनिवेश रूप पाप परित्याग करके फिर बुद्धिके सहारे विचार करो। रे अत्यन्त नीच बुद्धिवाले! तैंने अयज्ञवाही पाप अर्थात् अन्यथा रीतिसे सामपाठ रूपी अपराध किया है।(१९-२२)

वह ऐसा कहके महाक्रोधसे रुष्ट

दश वर्षसहस्राणि दशाष्टौ च शतानि च ।
नष्टपानीयपवने मृगैरन्यैश्च वर्जिते ॥ २४ ॥
अयज्ञियद्रुमे देशे रुरुसिंहनिषेविते ।
भविता त्वं मृगः क्रूरो महादुःखसमन्वितः ॥ २५ ॥
तस्य वाक्यस्य निधने पार्थ जातो ह्यहं मृगः ।
ततो मां शरणं प्राप्तं प्राह योगी महेश्वरः ॥ २६ ॥
अजरश्चामरश्चैव भविता दुःखवर्जितः ।
साम्यं ममास्तु ते सौख्यं युवयोर्वर्धतां क्रतुः ॥ २७ ॥
अनुग्रहानेवमेष करोति भगवान् विभुः ।
परं धाता विधाता च सुखदुःखे च सर्वदा ॥ २८ ॥
अचिन्त्य एष भगवान्कर्मणा मनसा गिरा ।
न मे तात युधि श्रेष्ठ विद्यया पण्डितः समः ॥ २९ ॥
वासुदेवस्तदोवाच पुनर्मतिमतां वरः ।
सुवर्णाक्षो महादेवस्तपसा तोषितो मया ॥ ३० ॥
ततोऽथ भगवानाह प्रीतो मां वै युधिष्ठिर ।
अर्थात्प्रियतरः कृष्ण मत्प्रसादाद्भविष्यसि ॥ ३१ ॥

होकर फिर बोले, 'तुम बुद्धिहीन, दुःखयुक्त, भीत, वनचारी, क्रूर मृग होकर जल और वायुसे रहित अन्य हरिणोंसे वर्जित अयज्ञीय वृक्षोंसे युक्त रुरु मृग तथा सिंहोंसे निषेवित वनके बीच महादुःखसे संयुक्त होकर दश हजार तीन सौ अस्सी वर्षतक वास करोगे' हे पार्थ ! उनका वचन शेष होते ही मैं मृग हुआ। (२३—२६)

अनन्तर जब मैं शिवका शरणागत हुआ तब महायोगी महेश्वर मुझसे बोले, तुम अजर, अमर और दुःख-रहित होगे । इन्द्रके सङ्ग तुम्हारा अवैषम्य तथा सुखसमृद्धि प्राप्त हो और यज्ञ भी वर्द्धित होता रहे। भगवान् महेश्वर इस ही प्रकार अनुग्रह किया करते हैं। येही सदा सुखदुःखके विधाता हैं। ये भगवान् वचन, मन और कर्मसे अगोचर हैं। हे तात युधिष्ठिर ! उसकी कृपासे विद्या विषयमें मेरे समान पण्डित कोई भी नहीं है। (२६-२९)

अनन्तर मतिमत्प्रवर श्रीकृष्णचन्द्र फिर कहने लगे, कि मैंने सुवर्णाक्ष महादेवको तपस्याके सहारे सन्तुष्ट किया था। हे धर्मराज ! अन्तमें सर्वज्ञाता भगवान् प्रसन्न होकर मुझसे बोले,

अपराजितश्च युद्धेषु तेजश्चैवानलोपमम्।
एवं सहस्रशश्चान्यान्महादेवो वरं ददौ ॥ ३२ ॥
मणिमन्थेऽथ शैले वै पुरा संपूजितो मया।
वर्षायुतसहस्राणां सहस्रं शतमेव च ॥ ३३ ॥
ततो मां भगवान्प्रीत इदं वचनमब्रवीत्।
वरं वृणीष्व भद्रं ते यस्ते मनसि वर्तते ॥ ३४ ॥
ततः प्रणम्य शिरसा इदं वचनमब्रुवम्।
यदि प्रीतो महादेवो भक्त्या परमया प्रभुः ॥ ३५ ॥
नित्यकालं तवेशान भक्तिर्भवतु मे स्थिरा।
एवमस्त्विति भगवांस्तत्रोक्त्वान्तरधीयत ॥ ३६ ॥
जैगीषव्य उवाच– ममाष्टगुणमैश्वर्यं दत्तं भगवता पुरा।
यत्नेनान्येन बलिना वाराणस्यां युधिष्ठिर ॥ ३७ ॥
गर्ग उवाच– चतुःषष्ट्यङ्गमददत्कलाज्ञानं ममाद्भुतम्।
सरस्वत्यास्तटे तुष्टो मनोयज्ञेन पाण्डव ॥ ३८ ॥

हे कृष्ण! धर्मका फल और कामका मूल अर्थ ही सबसे प्रिय है, तुम उस अर्थसे भी सबको अधिक प्रिय होगे, अर्थात् मेरे प्रसादसे तुम सबको अन्तरात्माकी भांति प्रिय हुआ करोगे और तुम युद्धमें पराजित न होगे, तुम्हारा तेज अग्निकी भांति होगा। इस ही प्रकार महादेवने मुझे सहस्र बार वर दान किया है; पहले अवतारमें मणिमन्थ पर्वतपर अयुत सहस्र और सौ हजार वर्षतक महादेव मेरे द्वारा पूजित हुए थे। (३०—३३)

अनन्तर भगवान्‌ने प्रसन्न होकर मुझसे यह वचन कहा, कि तुम्हारा मङ्गल हो, तुम्हारे अन्तःकरणमें जो अभिलाष हो, वह वर मांगो। तब मैंने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करके कहा, हे सर्वभूतसंयोगी महादेव! आप यदि मेरी परम भक्तिसे प्रसन्न हुए हैं। तो यही वर दीजिये कि सदा तुम्हारे विषयमें मेरी भक्ति स्थिर रहे, भगवान् "एवमस्तु" ऐसा कहके उसही स्थानमें अन्तर्द्धान होगये। (३४—३६)

जैगीषव्य बोले, हे युधिष्ठिर! पहले समयमें काशीपुरीमें बलशालियोंमें श्रेष्ठ भगवानने यत्नपूर्वक मुझे अष्टगुण ऐश्वर्य दान किया था। (३७)

गर्ग बोले, हे पाण्डव! भगवानने सरस्वती नदीके तट पर मेरे मनोयज्ञके द्वारा सन्तुष्ट होकर मुझे चौसठ अंग-

तुल्यं मम सहस्रं तु सुतानां ब्रह्मवादिनाम् ।
आयुश्चैव सपुत्रस्य संवत्सरशतायुतम् ॥ ३९ ॥
पराशर उवाच- प्रसाद्येह पुरा शर्वं मनसाऽचिन्तयं नृप ।
महातपा महातेजा महायोगी महायशाः ॥ ४० ॥
वेदव्यासः श्रिया वासो ब्राह्मणः करुणान्वितः ।
अप्यसावीप्सितः पुत्रो मम स्याद्वै महेश्वरात् ॥ ४१ ॥
इति मत्वा हृदि मतं प्राह मां सुरसत्तमः ।
मयि संभावना यास्याः फलात्कृष्णो भविष्यति ॥ ४२ ॥
सावर्णस्य मनोः सर्गे सप्तर्षिश्च भविष्यति ।
वेदानां च स वै वक्ता कुरुवंशकरस्तथा ॥ ४३ ॥
इतिहासस्य कर्ता च पुत्रस्ते जगतो हितः ।
भविष्यति महेन्द्रस्य दयितः स महामुनिः ॥ ४४ ॥
अजरश्चामरश्चैव पराशरसुतस्तव ।
एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४५ ॥
युधिष्ठिर महायोगी वीर्यवानक्षयोऽव्ययः ।
माण्डव्य उवाच-अचौरश्चौरशङ्कायां शूले भिन्नो ह्यहं तदा ॥ ४६ ॥

विशिष्ट अद्भुत कलाज्ञान दान किया और मेरे समान ब्रह्मवादी एक हजार पुत्र तथा पुत्रोंके सहित दस हजार एक सौ वर्षकी परमायु प्रदानकी है । (३८-३९)

पराशर बोले, हे महाराज ! पहले मैंने महेश्वरको प्रसन्न करनेके लिये मन ही मन ध्यान किया था, कि महातपस्वी, महातेजस्वी, महायोगी, महायशस्वी वेदव्यास श्रीसंपन्न, करुणान्वित महादेवकी कृपासे मेरा अभीप्सित पुत्र हो। अनन्तर सुरसत्तम महादेव मेरे हृदयका अभिप्राय जानके बोले, मुझमें जो तुम भक्ति रखते हो, उसके फलसे तुम्हारे कृष्ण नामक पुत्र होगा, वह सावर्णिक मनुका सप्तर्षि होगा, वेदोंका वक्ता और कुरुवंशका रक्षाकर्त्ता होगा; जगत्‌का हितैषी इतिहासकर्ता तुम्हारा वह पुत्र इन्द्रका दयित वा महामुनि होगा । हे पराशर ! तुम्हारा पुत्र अजर तथा अमर होगा । हे युधिष्ठिर ! वह महायोगी वीर्यवान अक्षय और अव्यय भगवान् इस ही प्रकार कहके उसी स्थानमें अन्तर्द्धान होगये । (४०-४६)

माण्डव्य बोले, मैं चोर न होनेपर भी चोराशंकाके हेतु शूलीपर चढाया

तत्रस्थेन स्तुतो देवः प्राह मां वै नरश्वरे ।
मोक्षं प्राप्स्यसि शूलाच्च जीविष्यसि समार्बुदम् ॥ ४७ ॥
रुजा शूलकृता चैव न ते विप्र भविष्यति ।
आधिभिर्व्याधिभिश्चैव वर्जितस्त्वं भविष्यसि ॥४८॥
पादाच्चतुर्थात्संभूत आत्मा यस्मान्मुने तव ।
त्वं भविष्यस्यनुपमो जन्म वै सफलं कुरु ॥ ४९ ॥
तीर्थाभिषेकं सकलं त्वमविघ्नेन चाप्स्यसि ।
स्वर्गं चैवाक्षयं विप्र विदधामि तवोर्जितम् ॥ ५० ॥
एवमुक्त्वा तु भगवान् वरेण्यो वृषवाहनः ।
महेश्वरो महाराज कृत्तिवासा महाद्युतिः ॥ ५१ ॥
सगणो दैवतश्रेष्ठस्तत्रैवान्तरधीयत ।
गालव उवाच- विश्वामित्राभ्यनुज्ञातो ह्यहं पितरमागतः ॥ ५२ ॥
अब्रवीन्मां ततो माता दुःखिता रुदती भृशम् ।
कौशिकेनाभ्यनुज्ञातं पुत्रं वेदविभूषितम् ॥ ५३ ॥
न तात तरुणं दान्तं पिता त्वां पश्यतेऽनघ ।
श्रुत्वा जनन्या वचनं निराशो गुरुदर्शने ॥ ५४ ॥

गया था, उस समय शूलीपर रहके भी मैंने महेश्वरकी स्तुति की तब वह मुझसे बोले, हे विप्र! तुम शूलीसे छूट जाओगे और अर्बुद वर्षतक जीवित रहोगे, तथा तुम्हें इस शूलीसे कुछ भी पीडा न होगी, तुम आधि व्याधिसे रहित होगे। हे मुनि! तुम्हारा यह शरीर जब धर्मके चौथे चरण सत्यसे उत्पन्न हुआ है, तब तुम अवश्यही अनुपम होगे, इसलिये अपना जन्म सफल करो। तुम विना विघ्नके सब तीर्थोंके अभिषेकजनित फल पाओगे। हे विप्र! तुम्हारे निमित्त उर्ज्जस्वल अक्षय स्वर्गका विधान करता हूं। हे महाराज! कृत्तिवासा, महातेजस्वी, देवश्रेष्ठ वृषवाहन वरणीय भगवान् महेश्वर ऐसा कहके उस ही स्थानमें अपने गणोंके सहित अन्तर्द्धान हुए। (४६—५२)

गालव मुनि बोले, मैंने विश्वामित्रकी आज्ञा पाके पिताके समीप गमन किया; अनन्तर माता अत्यन्त दुःखित होके रोदन करती हुई मुझसे बोली, हे निष्पाप पुत्र! तुम विश्वामित्रकी आज्ञा पाके घर आये हो, परन्तु तुम्हारे पिता तुम्हें नहीं देखते हैं। मैंने माताका वचन सुनके पितृदर्शनसे निराश होकर

नियतात्मा महादेवमपश्यं सोऽब्रवीच माम् ।
पिता माता च ते त्वं च पुत्र मृत्युविवर्जिताः ॥ ५५ ॥
भविष्यथ विश क्षिप्रं द्रष्टासि पितरं क्षये ।
अनुज्ञातो भगवता गृहं गत्वा युधिष्ठिर ॥ ५६ ॥
अपश्यं पितरं तात इष्टिं कृत्वा विनिःसृतम् ।
उपस्पृश्य गृहीत्वेध्मं कुशांश्च शरणाकुरून् ॥ ५७ ॥
तान्विसृज्य च मां प्राह पिता सास्राविलेक्षणः ।
प्रणमन्तं परिष्वज्य मूर्ध्न्युपाघ्राय पाण्डव ॥ ५८ ॥
दिष्ट्या दृष्टोऽसि मे पुत्र कृतविद्य इहागतः ।
वैशम्पायन उवाच—एतान्यत्यद्भुतान्येव कर्माण्यथ महात्मनः ॥ ५९ ॥
प्रोक्तानि मुनिभिः श्रुत्वा विस्मयामास पाण्डवः ।
ततः कृष्णोऽब्रवीद्वाक्यं पुनर्मतिमतां वरः ॥ ६० ॥
युधिष्ठिरं धर्मनिधिं पुरुहूतमिवेश्वरः ।
वासुदेव उवाच— उपमन्युर्मयि प्राह तपन्निव दिवाकरः ॥ ६१ ॥
अशुभैः पापकर्माणो ये नराः कलुषीकृताः ।
ईशानं न प्रपद्यन्ते तमोराजसवृत्तयः ॥ ६२ ॥

संयतचित्तसे महादेवका दर्शन किया, वह मुझसे बोले, हे पुत्र ! तुम पिता-माताके सहित मृत्युरहित होगे, इसलिये शीघ्र गृहमें प्रवेश करो । हे तात युधिष्ठिर ! मैंने भगवानकी आज्ञानुसार फिर गृहमें जाके देखा । पिता यज्ञ करके कुशकाठ लेकर तथा वृक्षके स्वयं गिरे हुए अन्नफलोंको स्पर्श करते हुए गृहसे आ रहे हैं । हे पाण्डव ! पिताको देखके मैंने प्रणाम किया, उन्होंने हाथ में स्थित कुशकाष्ठ परित्याग करके आखोंमें आंसू भरके मुझे आलिङ्गन किया और मेरा मस्तक सूंघके बोले, हे पुत्र ! भाग्यसे ही मैंने तुम्हें कृतविद्य होकर घरमें आया हुआ देखा । ५२-५९

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर मुनियोंके कहे हुए महानुभाव महादेवके यह सब अत्यन्त अद्भुत कर्म सुनके विस्मित हुए; अनन्तर सर्वनियन्ता मतिमतांवर श्रीकृष्णचन्द्र महेन्द्र-सदृश धर्मनिधि युधिष्ठिरसे फिर कहने लगे । (५९–६१)

श्रीकृष्ण बोले, तपनशील सूर्यकी भांति उपमन्यु मुझसे कहने लगे, कि जो सब पापी मनुष्य अशुभ कर्मोंसे दूषित हुए हैं, वे तामस तथा राजस

ईश्वरं संप्रपद्यन्ते द्विजा भावितभावनाः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि यो भक्तः परमेश्वरे ॥ ६३ ॥
सदृशोऽरण्यवासीनां मुनीनां भावितात्मनाम् ।
ब्रह्मत्वं केशवत्वं वा शक्रत्वं वा सुरैः सह ॥ ६४ ॥
त्रैलोक्यस्याधिपत्यं वा तुष्टो रुद्रः प्रयच्छति ।
मनसापि शिवं तात ये प्रपद्यन्ति मानवाः ॥ ६५ ॥
विधूय सर्वपापानि देवैः सह वसन्ति ते ।
भित्त्वा भित्त्वा च कूलानि हुत्वा सर्वमिदं जगत् ॥६६॥
यजेद्देवं विरूपाक्षं न स पापेन लिप्यते ।
सर्वलक्षणहीनोऽपि युक्तो वा सर्वपातकैः ॥ ६७ ॥
सर्वं तुदति तत्पापं भावयञ्छिवमात्मना ।
कीटपक्षिपतङ्गानां तिरश्चामपि केशव ॥ ६८ ॥
महादेवप्रपन्नानां न भयं विद्यते क्वचित् ।
एवमेव महादेवं भक्ता ये मानवा भुवि ॥ ६९ ॥
न ते संसारवशगा इति मे निश्चिता मतिः ।
ततः कृष्णोऽब्रवीद्वाक्यं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ७० ॥

वृत्तिसे युक्त पुरुष महादेवको नहीं पाते और जो सब ब्राह्मण सदा उनका ध्यान किया करते हैं, वेही ईश्वरको पाते हैं; जो भक्त परमेश्वरमें सब प्रकारसे चित्त लगाता है, वह शुद्धचित्तवाले वनवासी मुनियोंके सदृश है। रुद्रदेव प्रसन्न होने· पर ब्रह्मत्व, केशवत्व, देवताओंके सहित इन्द्रत्व अथवा तीनों लोकोंका राज्य प्रदान करते हैं । जो मनुष्य मनसे भी शिवके शरणापन्न होते हैं, वे सब पापों से छूटके देवताओंके सङ्ग निवास किया करते हैं । (६१—६६)

जो लोग गृह, तडाग आदि भेदके तथा समस्त जगत्का विध्वंस करते हुए विरूपाक्ष देवकी पूजा करते हैं, वेभी पापमें लिप्त नहीं होते । सब लक्षणोंसे रहित तथा समस्त पापोंसे युक्त होकर भी यदि कोई मनही मन महेश्वरका ध्यान करे, तो वह ध्यान ही उसके पापोंको खण्डन करता है । हे केशव ! कीट पक्षी, पतंग आदि तिर्यग् योनि-वाले भी यदि महादेवके शरणागत हों तो उन्हें भी कहींपर भय न हो। भूमण्डलके बीच जो लोग एकमात्र महेश्वरमें भक्ति करते हैं, वे संसारके वशगामी नहीं होते, यही मेरे मनमें

विष्णुरुवाच- आदित्यचन्द्रावनिलानलौ च द्यौर्भूमिरापो वसवोऽथ विश्वे।
धातार्यमा शुक्रबृहस्पती च रुद्राः ससाध्या वरुणोऽथ गोपः॥७१॥
ब्रह्मा शक्रो मारुतो ब्रह्म सत्यं वेदा यज्ञा दक्षिणा वेदवाहाः।
सोमो यष्टा यच्च हव्यं हविश्च रक्षा दीक्षा संयमा ये च केचित्॥७२॥
स्वाहा वौषट् ब्राह्मणाः सौरभेयी धर्मं चाग्र्यं कालचक्रं बलं च।
यशो दमो बुद्धिमतां स्थितिश्च शुभाशुभं ये मुनयश्च सप्त॥७३॥
अग्र्या बुद्धिर्मनसा दर्शने च स्पर्शश्चाग्र्यः कर्मणां या च सिद्धिः।
गणा देवानामूष्मपाः सोमपाश्च लेखाः सुयामास्तुषिता ब्रह्मकायाः ७४
आभासुरा गन्धपा धूमपाश्च वाचाविरुद्धाश्च मनोविरुद्धाः।
शुद्धाश्च निर्माणरताश्च देवाः स्पर्शाशना दर्शपा आज्यपाश्च॥७५॥
चिन्त्यद्योता ये च देवेषु मुख्या ये चाप्यन्ये देवताश्चाजमीढ।
सुपर्णगन्धर्वपिशाचदानवा यक्षास्तथा चारणपन्नगाश्च॥७६॥
स्थूलं सूक्ष्मं मृदु चाप्यसूक्ष्मं दुःखं सुखं दुःखमनन्तरं च।
सांख्यं योगं तत्पराणां परं च शर्वाज्जातं विद्धि यत्कीर्तितं मे॥७७॥

निश्चय है। अनन्तर श्रीकृष्ण धर्मपुत्र युधिष्ठिरसे कहने लगे। (६६-७०)

विष्णु बोले, हे महाराज! सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, जल, वसुगण, विश्वगण, धाता, अर्यमा, शुक्र, बृहस्पति, रुद्रगण, साध्य, वरुण, गोप, ब्रह्मा, इन्द्र, मरुद्गण, सत्य स्वरूप ब्रह्मा, वेद, यज्ञ, दक्षिणा, वेद पढनेवाले, सोम, यजमान, हव्य वा हवि, रक्षा, दीक्षा तथा जो कोई संयमशील हैं, स्वाहा, वौषट्, ब्राह्मणवृन्द, सौरभेयी, श्रेष्ठ धर्म, कालचक्र, बल, यश, दम, बुद्धिमानोंकी स्थिति और शुभाशुभ, सप्तर्षि, उत्तम बुद्धि, मन, दर्शन, स्पर्श, कार्यसिद्धि, देवगण, ऊष्मप, सोमप, मेघ, उत्तम साम, स्तुपितगण, ब्रह्मकायगण, आभासुरगण, गन्धपगण, धूमपगण वाणी और मनके अविरुद्ध, शुद्ध, निर्माणरत, देवगण, स्पर्शाशन, दर्शप और आज्यपगण, हे आजमीढवंशीय महाराज! इनके अतिरिक्त जो सब चिन्त्यद्योत अर्थात् सङ्कल्पमात्रसे जिनके सम्मुख सब वस्तु प्रकाशित होती हैं, देवताओंके बीच जो ऐसे मुख्य देवता हैं और गरुड, गन्धर्व, पिशाच, दानव, यक्ष, चारण, पन्नगगण, स्थूल, अतिसूक्ष्म, मृदु, असूक्ष्म, दुःख, सुख, अनन्तर दुःख तथा श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ सांख्य योग इत्यादि जो कुछ वर्णित हुए हैं, वे सभी महेश्वरसे उत्पन्न

तत्संभूता भूतकृतो वरेण्याः सर्वे देवा भुवनस्यास्य गोपाः।
आविश्येमां धरणीं येऽभ्यरक्षन्पुरातनीं तस्य देवस्य सृष्टिम् ॥७८॥
विचिन्वन्तस्तपसा तत्स्थवीयः किंचित्तत्त्वं प्राणहेतोर्नतोऽस्मि।
ददातु देवः स वरानिहेष्टानभिष्टुतो नः प्रभुरव्ययः सदा ॥ ७९ ॥
इमं स्तवं सन्नियतेन्द्रियश्च भूत्वा शुचिर्यः पुरुषः पठेत।
अभग्नयोगो नियतो मासमेकं संप्राप्नुयादश्वमेधे फलं यत ॥८०॥
वेदान् कृत्स्नान् ब्राह्मणः प्राप्नुयात्तु जयेन्नृपः पार्थ महीं च कृत्स्नाम्।
वैश्यो लाभं प्राप्नुयान्नैपुणं च शूद्रो गतिं प्रेत्य तथा सुखं च ॥८१॥
स्तवराजमिमं कृत्वा रुद्राय दधिरे मनः।
सर्वदोषापहं पुण्यं पवित्रं च यशस्विनः ॥ ८२ ॥
यावन्त्यस्य शरीरेषु रोमकूपाणि भारत।
तावन्त्यब्दसहस्राणि स्वर्गे वसति मानवः ॥ ८३ ॥ [१३६३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे मेघवाहनपर्वाख्याने अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

युधिष्ठिर उवाच- यदिदं सहधर्मेति प्रोच्यते भरतर्षभ।

भये हैं। (७१-७७)

भूतसृष्टिकारी आकाश आदि उस आनन्दमात्र शरीरवाले महेश्वरसे उत्पन्न हुए हैं; ये शुद्धतत्त्व-प्रेप्सु उपासकोंके वरणीय हैं, येही देव स्वरूपसे जगत्‌का पालन किया करते हैं। जो इस पृथ्वीमें आविष्ट होकर उस देवके इस पुरातनी सृष्टिकी रक्षा करते हैं, तपस्याके सहारे जिनकी आलोचना की जाती है, वह उनसे भी वृद्ध और प्राणका हेतु है, मैं उसहीको प्रणाम करता हूं; वह सर्वशक्तिमान अविनाशी महेश्वर मुझसे सन्तुष्ट होकर हमें सदा अभिलषित वर प्रदान करे। (७८—७९)

जो मनुष्य संयतेन्द्रिय, योगयुक्त और पवित्र होकर एक महीनेतक सदा इस स्तोत्रका पाठ करते हैं, वे अश्वमेध यज्ञका फल पाते हैं। हे पार्थ! ब्राह्मण इस स्तोत्रका पाठ करनेसे समस्त वेदपाठका फल पाते, क्षत्रिय अखण्ड भूमण्डलको जय करते, वैश्योंको लाभ, निपुणता प्राप्त होती और शूद्र मरनेके अनन्तर सद्गति तथा सुख लाभ करनेमें समर्थ होता है। यशस्वी पुरुष इस सर्वदोषनाशक, पवित्र और पुण्ययुक्त स्तवराज पाठ कर रुद्रके विषयमें मन स्थिर करते हैं। हे भारत! इस शरीरमें जितने रोमकूप हैं, इस स्तवराजको

पाणिग्रहणकाले तु स्त्रीणामेतत्कथं स्मृतम् ॥ १ ॥
आर्ष एष भवेद्धर्मः प्राजापत्योऽथवाऽऽसुरः।
यदेतत्सहधर्मेति पूर्वमुक्तं महर्षिभिः ॥ २ ॥
संदेहः सुमहानेष विरुद्ध इति मे मतिः।
इह यः सहधर्मो वै प्रेत्यायं विहितः क्व नु ॥ ३ ॥
स्वर्गो मृतानां भवति सहधर्मः पितामह।
पूर्वमेकस्तु म्रियते क्व चैकस्तिष्ठते वद ॥ ४ ॥
नानाधर्मफलोपेता नानाकर्मनिवासिताः।
नानानिरयनिष्ठान्ता मानुषा बहवो यदा ॥ ५ ॥
अनृताः स्त्रिय इत्येवं सूत्रकारो व्यवस्यति।
यदानृताः स्त्रियस्तात सहधर्मः कुतः स्मृतः ॥ ६ ॥
अनृताः स्त्रिय इत्येवं वेदेष्वपि हि पठ्यते।
धर्मोऽयं पूर्विका संज्ञा उपचारः क्रियाविधिः ॥ ७ ॥

पाठ करनेसे मनुष्य उतने ही सहस्र वर्षके परिमाणसे स्वर्गलोकमें निवास करता है। (८०—८३)

अनुशासनपर्वमें १८ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १९ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! स्त्रियोंके पाणिग्रहणके समय जो सहधर्म शब्द उच्चारित होता है, यह क्या ऋषियोंके बनाये हुए मन्त्रके द्वारा प्रकाशित धर्म है अथवा प्रजापतिके सहारे सन्तानके लिये प्रसिद्ध हुआ है, अथवा आसुर अर्थात् केवल इन्द्रियप्रीतिके निमित्त साहित्य है। पहले महर्षियोंने जिसे सहधर्म कहा है, वह मेरे विचारमें विरुद्ध मालूम होनेसे उसमें मुझे बहुत ही सन्देह हुआ है। इस लोकमें जो सहधर्म शब्दसे वर्णित होता है, परलोकमें वह किस प्रकार विहित हुआ करता है? हे पितामह! सहधर्माचरणके द्वारा मृतलोगोंको स्वर्ग मिलता है, पहले एक व्यक्तिके मरनेसे दूसरा कहां रहता है? । (१—४)

जब कि मनुष्य धर्मके अनेक फलों तथा अनेक भांतिके कर्मोंसे युक्त हैं और अन्तमें अनेक निरयनिष्ठ होते हैं; इसके अतिरिक्त धर्मप्रवक्ता ऋषियोंने स्त्रीको अनृत कहके वर्णन किया है, इसलिये जब स्त्रियां अनृत (मिथ्या) हुईं, तब सहधर्म किस प्रकार हो सकता है? और वेदमें भी स्त्रियां अनृतरूपसे वर्णित हुई हैं, धर्म प्रथम संज्ञामात्र है, पाणिग्रहण आदि विधि वेदविहित होने

गह्वरं प्रतिभात्येतन्मम चिन्तयतोऽनिशम्।
निःसंदेहमिदं सर्वं पितामह यथाश्रुति ॥ ८ ॥
यदेतद्यादृशं चैतद्यथा चैतत्प्रवर्तितम्।
निखिलेन महाप्राज्ञ भवानेतद्ब्रवीतु मे ॥ ९ ॥
भीष्म उवाच- अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
अष्टावक्रस्य संवादं दिशया सह भारत ॥ १० ॥
निर्वेष्टुकामस्तु पुरा अष्टावक्रो महातपाः।
ऋषेरथ वदान्यस्य वव्रे कन्यां महात्मनः ॥ ११ ॥
सुप्रभां नाम वै नाम्ना रूपेणाप्रतिमां भुवि।
गुणप्रभावशीलेन चारित्रेण च शोभनाम् ॥ १२ ॥
सा तस्य दृष्ट्वैव मनो जहार शुभलोचना।
वनराजी यथा चित्रा वसन्ते कुसुमाचिता ॥ १३ ॥
ऋषिस्तमाह देया मे सुता तुभ्यं हि तच्छृणु।
गच्छ तावद्दिशं पुण्यामुत्तरां द्रक्ष्यसे ततः ॥ १४ ॥
अष्टावक्र उवाच- किं द्रष्टव्यं मया तत्र वक्तुमर्हति मे भवान्।

पर भी पुरुषकी इच्छाके अनुरोधसे ही हुआ करती है, यथार्थमें वह धर्म नहीं, केवल उपचारमात्र है। हे महाप्राज्ञ पितामह! सदा इस विषयकी चिन्ता करनेसे यह मुझे अत्यन्त गहन बोध होता है, इसलिये आपने जिस प्रकार सुना हो, निःसन्दिग्ध रूपसे वह सब वृत्तान्त तथा यह विषय जिस प्रकार प्रवर्तित हुआ है, वह मेरे निकट वर्णन करिये। (५-९)

भीष्म बोले, हे भारत! प्राचीन लोग इस विषयमें अष्टावक्र और दिगभिमानी देवीके संवादयुक्त इस पुराने इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। पहले समयमें महातपस्वी अष्टावक्रने दारपरिग्रह करनेकी अभिलाष करके महानुभाव वदान्य नामक ऋषिकी सुप्रभा नामी कन्या पानेके लिये प्रार्थना की थी, वह कन्या पृथ्वीमण्डलमें अत्यन्त सुन्दरी और गुण, प्रभाव, शील तथा चरित्रके द्वारा परम श्रेष्ठ थी। वसन्तकालमें पुष्पयुक्त वनशोभासे युक्त उस उत्तम नेत्रवाली कन्याने अष्टावक्रकी ओर दृष्टि करते ही उनके मनको हरण किया था। वदान्य ऋषि उनसे बोले, मैं जिस प्रकार तुम्हें अवश्य कन्या प्रदान करूंगा, उसे सुनो। इस समय तुम पवित्र उत्तर दिशामें गमन

तथेदानीं मया कार्यं यथा वक्ष्यति मां भवान् ॥१५॥
वदान्य उवाच- धनदं समतिक्रम्य हिमवन्तं च पर्वतम् ।
रुद्रस्यायतनं दृष्ट्वा सिद्धचारणसेवितम् ॥ १६ ॥
संहृष्टैः पार्षदैर्जुष्टं नृत्यद्भिर्विविधाननैः ।
दिव्याङ्गरागैः पैशाचैरन्यैर्नानाविधैः प्रभोः ॥ १७ ॥
पाणितालसुतालैश्च शम्पातालैः समैस्तथा ।
संहृष्टैः प्रनृत्यद्भिः शर्वस्तत्र निषेव्यते ॥ १८ ॥
इष्टं किल गिरौ स्थानं तद्दिव्यमिति शुश्रुम ।
नित्यं संनिहितो देवस्तथा ते पार्षदाः स्मृताः ॥१९॥
तत्र देव्या तपस्तप्तं शङ्करार्थं सुदुश्चरम् ।
अतस्तदिष्टं देवस्य तथोमाया इति श्रुतिः ॥ २० ॥
पूर्वे तत्र महापार्श्वे देवस्योत्तरतस्तथा ।
ऋतवः कालरात्रिश्च ये दिव्या ये च मानुषाः ॥२१॥
देवं चोपासते सर्वे रूपिणः किल तत्र ह ।

करो, तब तुम देखोगे । (१०-१४)

अष्टावक्र बोले, वहां मैं क्या देखूंगा? आप मुझसे वह विषय वर्णन करिये आप मुझे जो कहेंगे इस समय मुझे वही करना योग्य है । (१५)

वदान्य ऋषि बोले, हिमालय पर्वत और कुबेरको अतिक्रम करके सिद्धचारणोंसे सेवित रुद्रका स्थान देखोगे । वह स्थान हर्षयुक्त, नाचनेवाले, अनेक मुखवाले पार्षदों और दिव्याङ्ग रागसे संयुक्त पिशाच तथा दूसरे अनेक प्रकारके प्रमथगणोंसे परिसेवित है । पाणिताल, सुताल अर्थात् कांस्यमय भाण्ड, शम्पाताल अर्थात् विद्युतकी भांति अत्यन्त चपल भ्रमणादिघटित नृत्यक्रियामान विशेष और भ्रमणादिरहित समतालके द्वारा प्रसन्नचित्त नृत्य करनेवालोंसे महादेव वहांपर सेवित होते हैं । उस पहाडपर निवास करना ईश्वरको अभिलषित है, इसीसे वह दिव्य लोक कहाता है, मैंने ऐसा ही सुना है । महादेव सदा वहांपर उपस्थित रहते हैं और उनके पारिषद लोग सदा उस स्थानमें निवास किया करते हैं । (१६-१९)

देवीने वहां महादेवके निमित्त अत्यन्त दुश्चर तपस्या की थी, मैंने सुना है, उस ही लिये वह महादेव और उमादेवीका इष्टस्थान है । पहले समयमें वहांपर देवके उत्तर भागमें महापार्श्व पर्वतपर

तदतिक्रम्य भवनं त्वया यातव्यमेव हि ॥ २२ ॥
ततो नीलं वनोद्देशं द्रक्ष्यसे मेघसन्निभम्।
रमणीयं मनोग्राहि तत्र वै द्रक्ष्यसे स्त्रियम् ॥ २३ ॥
तपस्विनीं महाभागां वृद्धां दीक्षामनुष्ठिताम्।
द्रष्टव्या सा त्वया तत्र संपूज्या चैव यत्नतः ॥ २४ ॥
तां दृष्ट्वा विनिवृत्तस्त्वं ततः पाणिं ग्रहीष्यसि।
यद्येष समयः सर्वः साध्यतां तत्र गम्यताम् ॥ २५ ॥
अष्टावक्र उवाच- तथास्तु साधयिष्यामि तत्र यास्याम्यसंशयम्।
यत्र त्वं वदसे साधो भवान् भवतु सत्यवाक् ॥ २६ ॥
भीष्म उवाच- ततोऽगच्छत्स भगवानुत्तरामुत्तरां दिशम्।
हिमवन्तं गिरिश्रेष्ठं सिद्धचारणसेवितम् ॥ २७ ॥
स गत्वा द्विजशार्दूलो हिमवन्तं महागिरिम्।
अभ्यगच्छन्नदीं पुण्यां बाहुदां धर्मशालिनीम् ॥ २८ ॥
अशोके विमले तीर्थे स्नात्वा वै तर्प्य देवताः।
तत्र वासाय शयने कौशे सुखमुवास ह ॥ २९ ॥
ततो रात्र्यां व्यतीतायां प्रातरुत्थाय स द्विजः।

समस्त धातु कालरात्रि और दिव्य मनुष्य इत्यादि सबकी ही मूर्ति धारण करके महादेवकी उपासना करती थीं, तुम उस स्थानको अतिक्रम करके गमन करोगे। अनन्तर मेघवर्ण, मनोहर, रमणीय वन देखोगे। वहां महाभाग तपस्विनी दीक्षानुष्ठानकारिणी एक वर्षीयसी स्त्रीका दर्शन करोगे। वह तुम्हारी यत्नपूर्वक दर्शनीय और पूजनीय है। जब उसे देखके तुम निवृत्त होगे, तब मेरी कन्याका पाणिग्रहण कर सकोगे, तुम यदि ऐसा नियम करना चाहते हो, तो वहां जाके सब विषयोंको साधन करो। (२०-२५)

अष्टावक्र बोले, हे साधु! ऐसा ही होगा, आपने जिस प्रकार कहा है, मैं अवश्य ही वहां जाके सब विषयोंको साधन करूंगा, आपका वचन सत्य होवे। (२६)

भीष्म बोले, अनन्तर भगवानने उत्कर्षशाली उत्तर दिशामें सिद्धचारणोंसे सेवित हिमालय पहाडपर गमन किया। उस द्विजश्रेष्ठने महागिरि हिमालयपर जाके बाहुदानामी धर्मशालिनी पवित्र नदीमें प्रवेश किया। अनन्तर शोकरहित विमल तीर्थमें स्नान और

स्नात्वा प्रादुश्चकाराग्निं स्तुत्वा चैनं प्रधानतः ॥ ३० ॥
रुद्राणीं रुद्रमासाद्य ह्रदे तत्र समाश्वसत्।
विश्रान्तश्च समुत्थाय कैलासमभितो ययौ ॥ ३१ ॥
सोऽपश्यत्काञ्चनद्वारं दीप्यमानमिव श्रिया।
मन्दाकिनीं च नलिनीं धनदस्य महात्मनः ॥ ३२ ॥
अथ ते राक्षसाः सर्वे येऽभिरक्षन्ति पद्मिनीम्।
प्रत्युत्थिता भगवन्तं मणिभद्रपुरोगमाः ॥ ३३ ॥
स तान्प्रत्यर्चयामास राक्षसान् भीमविक्रमान्।
निवेदयत मां क्षिप्रं धनदायेति चाब्रवीत् ॥ ३४ ॥
ते राक्षसास्तथा राजन् भगवन्तमथाब्रुवन्।
असौ वैश्रवणो राजा स्वयमायाति तेऽन्तिकम् ॥ ३५ ॥
विदितो भगवानस्य कार्यमागमनस्य यत्।
पश्यैनं त्वं महाभागं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ ३६ ॥
ततो वैश्रवणोऽभ्येत्य अष्टावक्रमनिन्दितम्।
विधिवत्कुशलं पृष्ट्वा ततो ब्रह्मर्षिमब्रवीत् ॥ ३७ ॥

तर्पण करके वहांपर सुखपूर्वक कुश-शय्यापर निवास करने लगे। अनन्तर रात्रि बीतनेपर उस द्विजवरने प्रातःकाल में उठके स्नान किया और वेदमन्त्रोंसे स्तुति करके अग्नि प्रकट की। महादेव और पार्वतीकी पूजा करके उस ही ह्रदपर विश्राम करने लगे। विश्राम करनेके अनन्तर उठके कैलास पर्वतकी ओर गमन किया। वहां जाके परम शोभासे दीप्यमान एक काञ्चनद्वार देखा और महानुभाव कुबेरकी नलिनी तथा मन्दाकिनीका दर्शन किया। अनन्तर मणिभद्र आदि राक्षसों जो कि उस नलिनी की सदा रक्षा करते हैं, वे लोग भगवान् अष्टावक्रको देखके उठ खडे हुए, उन्होंने भी उन भीमविक्रमी राक्षसोंको प्रत्यभिनन्दित करके कहा, कि कुबेरके पास जाके शीघ्र मेरे आनेका समाचार दो। (२७-३४)

हे राजन्! उन राक्षसोंने भगवान अष्टावक्रसे कहा, ये राजाओंके राजा, धनके स्वामी स्वयं ही आपके समीप आ रहे हैं, भगवान कुबेरको आपके आगमनका कारण मालूम है। आप इस तेजस्विताके द्वारा प्रज्वलित महाभागको अवलोकन करिये। अनन्तर धनेश्वर अनिन्दित ब्रह्मर्षि अष्टावक्रके निकट आके विधिपूर्वक कुशलप्रश्न

सुखं प्राप्तो भवान् कच्चित् किं वा मत्तश्चिकीर्षसि ।
ब्रूहि सर्वं करिष्यामि यन्मां वक्ष्यसि वै द्विज ॥ ३८ ॥
भवनं प्रविश त्वं मे यथाकामं द्विजोत्तम ।
सत्कृतः कृतकार्यश्च भवान् यास्यत्यविघ्नतः ॥ ३९ ॥
प्राविशद्भवनं स्वं वै गृहीत्वा तं द्विजोत्तमम् ।
आसनं स्वं ददौ चैव पाद्यमर्घ्यं तथैव च ॥ ४० ॥
अथोपविष्टयोस्तत्र मणिभद्रपुरोगमाः ।
निषेदुस्तत्र कौबेरा यक्षगन्धर्वकिन्नराः ॥ ४१ ॥
ततस्तेषां निषण्णानां धनदो वाक्यमब्रवीत् ।
भवच्छन्दं समाज्ञाय नृत्येरन्नप्सरोगणाः ॥ ४२ ॥
आतिथ्यं परमं कार्यं शुश्रूषा भवतस्तथा ।
संवर्ततामित्युवाच मुनिर्मधुरया गिरा ॥ ४३ ॥
अथोर्वरा मिश्रकेशी रम्भा चैवोर्वशी तथा ।
अलम्बुषा घृताची च चित्रा चित्राङ्गदा रुचिः ॥४४ ॥
मनोहरा सुकेशी च सुमुखी हासिनी प्रभा ।
विद्युता प्रशमी दान्ता विद्योता रतिरेव च ॥ ४५ ॥
एताश्चान्याश्च वै बह्व्यः प्रनृत्ताप्सरसः शुभाः ।

करके बोले, हे द्विजवर ! आपने सुखसे आगमन किया है न ? मेरे समीप आप क्या अभिलाष करते हैं, आप जो कहेंगे, मैं उसे पूर्ण करूंगा। हे द्विजोत्तम ! आप इच्छापूर्वक मेरे गृहमें प्रवेश करिये। यहांपर सत्कृत और कृतकार्य होकर निर्विघ्नताके सहित गमन करना। कुबेरने उस द्विजवरको सङ्ग लेकर निज गृहमें प्रवेश किया और वहां जाके उन्हें आसन, पाद्य और अर्घ प्रदान किया। (३८-४०)

उन दोनोंके बैठनेके अनन्तर मणिभद्र प्रभृति यक्ष, राक्षस और किन्नर आदि कुबेरके सब गण बैठ गये। अनन्तर सबके बैठनेपर कुबेरने कहा, यदि आपकी इच्छा हो, तो अप्सरागण नृत्य करनेमें प्रवृत्त हों, आपकी सेवा तथा आतिथ्य करना मेरा कर्त्तव्य कार्य है। तब मुनिने मृदु वचनसे कहा, "नृत्य आरम्भ होवे।" अनन्तर उर्वरा, मिश्रकेशी, रम्भा, उर्वशी, अलम्बुषा घृताची, मित्रा, चित्रांगदा,रुचि, मनोहरा, सुकेशी, सुमुखी, हासिनी, प्रभा, विद्युता, प्रशमी, दान्ता, विद्योता, रति

अवादयंश्च गन्धर्वा वाद्यानि विविधानि च ॥ ४६ ॥
अथ प्रवृत्ते गान्धर्वे दिव्ये ऋषिरुपाविशत् ।
दिव्यं संवत्सरं तत्रारमतैष महातपाः ॥ ४७ ॥
ततो वैश्रवणो राजा भगवन्तमुवाच ह ।
साग्रः संवत्सरो जातो विप्रेह तव पश्यतः ॥ ४८ ॥
हार्योऽयं विषयो ब्रह्मन् गान्धर्वो नाम नामतः ।
छन्दतो वर्ततां विप्र यथा वदति वा भवान् ॥ ४९ ॥
अतिथिः पूजनीयस्त्वमिदं च भवतो गृहम् ।
सर्वमाज्ञाप्यतामाशु परवन्तो वयं त्वयि ॥ ५० ॥
अथ वैश्रवणं प्रीतो भगवान्प्रत्यभाषत ।
अर्चितोऽस्मि यथान्यायं गमिष्यामि धनेश्वर ॥ ५१ ॥
प्रीतोऽस्मि सदृशं चैव तव सर्वं धनाधिप ।
तव प्रसादाद्भगवन् महर्षेश्च महात्मनः ॥ ५२ ॥
नियोगादद्य यास्यामि वृद्धिमानृद्धिमान् भव ।
अथ निष्क्रम्य भगवान् प्रययावुत्तरामुखः ॥ ५३ ॥

और दूसरीं अनेक अप्सरा नृत्य करनेमें प्रवृत्त हुईं। गन्धर्वगण विविध बाजे बजाने लगे। (४१—४६)

दिव्य गीतवाद्य आरम्भ हुआ, महात्मा महातपस्वी अष्टावक्र देवपरिमाणके एक वर्षतक वहां बैठे रहे और अत्यन्त आनन्दित हुए। अनन्तर राजा वैश्रवण भगवान अष्टावक्रसे बोले, हे विप्र! देखते देखते इस स्थानमें ही आपको कुछ अधिक एक वर्ष बीत गया, हे ब्रह्मन्! इसलिये अब यह नृत्य-गीतादि परित्याग करना उचित है, इस समय आप इच्छानुसार निवास करिये; अथवा आप जैसा कहें, वैसा ही होवे। आप पूजनीय अतिथि हैं, और यह गृह भी आपका है, इसलिये आपकी जैसी आज्ञा हो, वैसा ही किया जाय, हम सब कोई आपके अधीन हैं। (४७—५०)

अनन्तर भगवान् अष्टावक्र प्रसन्न होके कुबेरसे बोले, हे धनेश्वर! मैं यथायोग्य पूजित हुआ; अब यहांसे गमन करूंगा। हे धनाधिप! मैं तुमसे प्रसन्न हुआ हूं, तुमने जो किया है, यह तुम्हारे ही योग्य है, तुम्हारी कृपा और महानुभाव भगवान् वदान्य ऋषिके आज्ञानुसार अब मैं जाता हूं तुम बुद्धिमान और समृद्धिमान बने रहो। अनन्तर भगवान

कैलासं मन्दरं हैमं सर्वाननुचचार ह ।
तानतीत्य महाशैलान् कैरातं स्थानमुत्तमम् ॥ ५४ ॥
प्रदक्षिणं तथा चक्रे प्रयतः शिरसा नतः ।
धरणीमवतीर्याथ पूतात्माऽसौ तदाऽभवत् ॥ ५५ ॥
स तं प्रदक्षिणं कृत्वा त्रिः शैलं चोत्तरामुखः ।
समेन भूमिभागेन ययौ प्रीतिपुरस्कृतः ॥ ५६ ॥
ततोऽपरं वनोद्देशं रमणीयमपश्यत ।
सर्वर्तुभिर्मूलफलैः पक्षिभिश्च समन्वितैः ॥ ५७ ॥
रमणीयैर्वनोद्देशैस्तत्र तत्र विभूषितम् ।
तत्राश्रमपदं दिव्यं ददर्श भगवानथ ॥ ५८ ॥
शैलांश्च विविधाकारान् काञ्चनान् रत्नभूषितान् ।
मणिभूमौ निविष्टाश्च पुष्करिण्यस्तथैव च ॥ ५९ ॥
अन्यान्यपि सुरम्याणि पश्यतः सुबहून्यथ ।
भृशं तस्य मनो रेमे महर्षेर्भावितात्मनः ॥ ६० ॥
स तत्र काञ्चनं दिव्यं सर्वरत्नमयं गृहम् ।
ददर्शाद्भुतसंकाशं धनदस्य गृहाद्वरम् ॥ ६१ ॥

अष्टावक्र कुबेरके स्थानसे बाहर होके उत्तर दिशाकी ओर चले; कैलास, मन्दर और सुमेरु पर्वतपर विचरते हुए उन सब महापर्वतोंको अतिक्रम करके अत्यन्त उत्कृष्ट किरातस्थलमें पहुंचे। (५१—५४)

उन्होंने प्रयत और नतशिर होके उस स्थानकी प्रदक्षिणा की। अनन्तर पृथ्वीपर उतरके वह उस समय हर्षित हुए और उस पर्वतकी तीन बार प्रदक्षिणा करके प्रसन्न चित्तसे उत्तरकी ओर समतल भूमिपर चलने लगे। अनन्तर उन्होंने और एक वनस्थल देखा। वह बन सब ऋतुओंके फूल, फल, मूल और पक्षियोंसे युक्त था और जगह जगह रमणीय शोभासे विभूषित था। भगवान अष्टावक्रने उस स्थानमें एक दिव्य आश्रम देखा। वहांपर विविध रत्नोंसे भूषित सुवर्णमय पर्वत और मणिमय भूमिपर मनोहर तालाव विद्यमान थे; तथा दूसरे बहुतेरे विषयोंको देखकर वह शुद्धचित्त महर्षि अत्यन्त प्रसन्न हुए। (५५—६०)

उन्होंने उस स्थानमें कुबेरके गृहसे भी श्रेष्ठ अद्भुत सङ्काश सर्व रत्नमय एक दिव्य सुवर्णसे बना हुआ भवन

महान्तो यत्र विविधा मणिकाञ्चनपर्वताः ।
विमानानि च रम्याणि रत्नानि विविधानि च ॥६२॥
मन्दारपुष्पैः संकीर्णां तथा मन्दाकिनीं नदीम् ।
स्वयंप्रभाश्च मणयो वज्रैर्भूमिश्च भूषिता ॥ ६३ ॥
नानाविधैश्च भवनैर्विचित्रमणितोरणैः ।
मुक्ताजालविनिक्षिप्तैर्मणिरत्नविभूषितैः ॥ ६४ ॥
मनोदृष्टिहरै रम्यैः सर्वतः संवृतं शुभैः ।
ऋषिभिश्चावृतं तत्र आश्रमं तं मनोहरम् ॥ ६५ ॥
ततस्तस्याभवच्चिन्ता कुत्र वासो भवेदिति ।
अथ द्वारं समभितो गत्वा स्थित्वा ततोऽब्रवीत् ॥६६॥
अतिथिं समनुप्राप्तमभिजानन्तु येऽत्र वै ।
अथ कन्याः परिवृता गृहात्तस्माद्विनिर्गताः ॥ ६७ ॥
नानारूपाः सप्त विभो कन्याः सर्वा मनोहराः ।
यां यामपश्यत्कन्यां वै सा सा तस्य मनोऽहरत्॥६८॥
न च शक्तो वारयितुं मनोऽस्याथावसीदति ।
ततो धृतिः समुत्पन्ना तस्य विप्रस्य धीमतः ॥ ६९ ॥
अथ तं प्रमदाः प्राहुर्भगवान्प्रविशत्विति ।

देखा। जिस स्थानमें उत्तम महत् मणिकाञ्चनमय विविध पर्वत, अनेक प्रकारके रत्न और समस्त रमणीय विमान विद्यमान थे; मन्दार पुष्पोंसे परिपूरित मन्दाकिनी नदी, स्वयं प्रभायुक्त मणियों और हीरोंसे सब भूमि भूषित थी। अनेक प्रकारके मुक्ता-जालसे खचित, मणिरत्नोंसे विभूषित मणिमय तोरणों और मनोहर, दर्शनीय, रमणीय, पवित्र वस्तुओंसे युक्त तथा वह मनोहर आश्रम ऋषियोंसे आवृत था। अनन्तर अष्टावक्रके अन्तःकरणमें यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि कहां "निवास करूं ?" अन्तमें वह उस गृहके द्वारपर जाके खडे होकर बोले, इस स्थानमें जो हो, उसे मालूम होवे, कि "मैं अतिथि यहांपर आया हूं।" हे विभु ! अनन्तर अनेक रूपधारिणी, मनको हरनेवाली सात कन्या उस घरसे बाहर हुईं। (६१—६७)

उन्होंने जिस कन्याको देखा, उसीने उनके मनको हरण किया। निवारण करनेमें अशक्त होनेसे उनका मन अवसन्न हुआ। अनन्तर उस धीमान्

स च तासां सुरूपेण तस्यैव भवनस्य हि ॥ ७० ॥
कौतूहलं समाविष्टः प्रविवेश गृहं द्विजः।
तत्रापश्यज्जरायुक्तामरजोम्बरधारिणीम् ॥ ७१ ॥
वृद्धां पर्यङ्कमासीनां सर्वाभरणभूषिताम्।
स्वस्तीति तेन चैवोक्ता सा स्त्री प्रत्यवदत्तदा ॥ ७२ ॥
प्रत्युत्थाय च तं विप्रमास्यतामित्युवाच ह।
अष्टावक्र उवाच- सर्वाः स्वानालयान् यान्तु एका मामुपतिष्ठतु ॥७३॥
प्रज्ञाता या प्रशान्ता या शेषा गच्छन्तु छन्दतः।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य कन्यास्तास्तमृषिं तदा ॥ ७४ ॥
निश्चक्रमुर्गृहात्तस्मात्सा वृद्धाथ व्यतिष्ठत।
अथ तां संविशन् प्राह शयने भास्वरे तदा ॥ ७५ ॥
त्वयापि सुप्यतां भद्रे रजनी ह्यतिवर्तते।
संलापात्तेन विप्रेण तथा सा तत्र भाषिता ॥ ७६ ॥
द्वितीये शयने दिव्ये संविवेश महाप्रभे।
अथ स वेपमानाङ्गी निमित्तं शीतजं तदा ॥ ७७ ॥
व्यपादिश्य महर्षेर्वै शयनं व्यवरोहत।

विप्रके धृति उत्पन्न हुई, तब प्रमदागणोंने उनसे कहा, 'हे भगवान! भीतर चलिये।' उन्होंने उन सुन्दरियों तथा भवनको देखके कौतूहलयुक्त होकर गृहके भीतर प्रवेश किया। भीतर जाके उन्होंने जरायुक्त अरञ्जित अम्बर-धारिणी सब आभूषणोंसे भूषित एक वर्षीयसी स्त्रीको पलङ्गपर बैठी हुई देखा; देखते ही उन्होंने उससे कहा, "स्वस्ति है", उसने भी उस समय वैसा ही प्रत्युत्तर दिया और उठके उस विप्रवरको बैठनेको कहा। (६८—७३)

अष्टावक्र बोले, सब कोई अपने स्थान पर जावें, जो अत्यन्त ज्ञानवती और प्रशान्त चित्तवाली हो, वही अकेली मेरे निकट उपस्थित रहे, शेष सब अपने अभिप्राय और इच्छानुसार स्थानान्तरमें गमन करें, अनन्तर वे सब कन्या उस समय ऋषिको प्रदक्षिणा करके घरसे निकल गई, केवल वह वृद्धा वहांपर निवास करने लगी, ऋषि सफेद शय्यापर शयन करके वृद्धासे बोले, हे भद्रे! रात्रि बीती जाती है, इसलिये तुम भी शयन करो। परस्पर कथाप्रसंगसे जब ब्राह्मणने ऐसा कहा, तब वर्षीयसीने प्रकाशमान दूसरी

स्वागतेनागतां तां तु भगवानभ्यभाषत ॥ ७८ ॥
सोपागूहद्भुजाभ्यां तु ऋषिं प्रीत्या नरर्षभ ।
निर्विकारमृषिं चापि काष्ठकुड्योपमं तदा ॥ ७९ ॥
दुःखिता प्रेक्ष्य संजल्पमकार्षीदृषिणा सह ।
ब्रह्मन्नकामतोऽन्यास्ति स्त्रीणां पुरुषतो धृतिः ॥ ८० ॥
कामेन मोहिता चाहं त्वां भजन्ती भजस्व माम् ।
प्रहृष्टो भव विप्रर्षे समागच्छ मया सह ॥ ८१ ॥
उपगूह च मां विप्र कामार्ताऽहं भृशं त्वयि ।
एतद्धि तव धर्मात्मंस्तपसः पूज्यते फलम् ॥ ८२ ॥
प्रार्थितं दर्शनादेव भजमानां भजस्व माम् ।
मम चेदं धनं सर्वं यच्चान्यदपि पश्यसि ॥ ८३ ॥
प्रभुस्त्वं भव सर्वत्र मयि चैव न संशयः ।
सर्वान् कामान्विधास्यामि रमस्व सहितो मया ॥८४॥
रमणीये वने विप्र सर्वकामफलप्रदे ।
त्वद्वशाहं भविष्यामि रंस्यसे च मया सह ॥ ८५ ॥

शय्यापर शयन किया। अन्तमें वह शीतच्छलसे कांपती हुई महर्षिकी शय्यापर जा चढी। (७३—७८)

हे राजन्! भगवानने उस आगत अबलासे स्वागत प्रश्न किया, उसने प्रीतिपूर्वक दोनों भुजासे ऋषिको आलिंगन किया। ऋषिको काष्ठकी भांति निर्विकार देखके दुःखित होकर उस वृद्धाने उनके संग उस समय वार्त्तालाप आरम्भ किया। वह बोली, हे विप्रवर! पुरुषको पाके स्त्रियोंको स्वभावसे ही धैर्य नहीं रहता, इसलिये कामसे मोहित होकर मैं तुम्हें आलिंगन करती हूं, तुम मेरा मनोरथ सफल करो। हे विप्रर्षि! तुम प्रसन्न होके मेरे संग संगत होकर मुझे आलिंगन करो, मैं तुम्हें देखके अत्यन्त ही कामार्त्त हुई हूं। हे धर्मात्मन्! यह तुम्हारी तपस्याका प्रार्थित फल प्रशंसनीय है, कि देखते ही मैं तुम्हारी सेवामें तत्पर हुई हूं, इसलिये मुझे अङ्गीकार करो। मेरा यह सब धन तथा दूसरी वस्तु जो देख रहे हो, तुम उन सबके स्वामी तथा मेरे भी निःसंदेह स्वामी हो, तुम मेरे संग संगम करो, मैं तुम्हारी सब कामना पूरी करूंगी। (७८—८४)

हे विप्र! सर्वकामफलप्रद इस रमणीय वनमें तुम मेरे संग क्रीडा करोगे,

सर्वान्कामानुपाश्नीमो ये दिव्या ये च मानुषाः ।
नातः परं हि नारीणां विद्यते च कदाचन ॥ ८६ ॥
यथा पुरुषसंसर्गः परमेतद्धि नः फलम् ।
आत्मच्छन्देन वर्तन्ते नार्यो मन्मथचोदिताः ॥ ८७ ॥
न च दह्यन्ति गच्छन्त्यः सुतप्तैरपि पांसुभिः ।
अष्टावक्र उवाच- परदारानहं भद्रे न गच्छेयं कथंचन ॥ ८८ ॥
दूषितं धर्मशास्त्रज्ञैः परदाराभिमर्शनम् ।
भद्रे निर्वेष्टुकामं मां विद्धि सत्येन वै शपे ॥ ८९ ॥
विषयेष्वनभिज्ञोऽहं धर्मार्थं किल संततिः ।
एवं लोकान् गमिष्यामि पुत्रैरिति न संशयः ॥ ९० ॥
भद्रे धर्मं विजानीहि ज्ञात्वा चोपरमस्व ह ।
स्त्र्युवाच— नानिलोऽग्निर्न वरुणो न चान्ये त्रिदशा द्विज ॥ ९१ ॥
प्रियाः स्त्रीणां यथा कामो रतिशीला हि योषितः ।
सहस्रे किल नारीणां प्राप्यैतैका कदाचन ॥ ९२ ॥
तथा शतसहस्रेषु यदि काचित्पतिव्रता ।
नैता जानन्ति पितरं न कुलं न च मातरम् ॥ ९३ ॥

मैं तुम्हारे वशमें होकर रहूंगी और दिव्य, मानुष काम विषयोंको उपभोग करोगे, पुरुषके संसर्गसे हमें जैसा परम फल है, स्त्रियोंको इससे बढके कदाचित् और कुछ भी सुख नहीं है। कामप्रेरित स्त्रियें सुखस्वच्छन्दतासे निवास करती हैं, वे सन्तप्त पांसुमय मार्गमें गमन करनेपर भी नहीं जलतीं (८५-८८)

अष्टावक्र बोले, हे भद्रे ! मैं कदापि परस्त्रीगमन नहीं करता; धर्मशास्त्रज्ञ पण्डितोंके द्वारा परदाराभिगमन अत्यन्त दूषित कहके वर्णित हुआ है। हे कल्याणि ! मैं सत्यके द्वारा शपथ करता हूं, कि इस संसार-आश्रममें प्रवेश करने की मैंने इच्छा की है। मैं विषयसे अनभिज्ञ हूं, केवल धर्मार्थ सन्ततिकी अभिलाष की है, अपत्य उत्पन्न करनेसे निःसंदेह श्रेष्ठ लोकोंमें गमन करूंगा। हे भद्रे ! तुम धर्मको जानो तथा जानके दूर रहो। (८८—९१)

स्त्री बोली, हे द्विज ! वायु, अग्नि, वरुण अथवा दूसरे कोई देवता स्त्रियोंको वैसे प्रिय नहीं हैं, जैसे रतिशील नारियोंको एकमात्र रतिपति प्रियतम है। हजार स्त्रियोंके बीच कदाचित् कोई एकाकिनी पाई जाती है और कहा नहीं

न भ्रातॄन्न च भर्तारं न च पुत्रान्न देवरान् ।
लीलायन्त्यः कुलं घ्नन्ति कूलानीव सरिद्वराः ।
दोषान्सर्वांश्च मत्वाऽऽशु प्रजापतिरभाषत ॥ ९४ ॥
भीष्म उवाच— ततः स ऋषिरेकाग्रस्तां स्त्रियं प्रत्यभाषत ।
आस्यतां रुचितश्छन्दः किं च कार्यं ब्रवीहि मे ॥९५॥
सा स्त्री प्रोवाच भगवन् द्रक्ष्यसे देशकालतः ।
वस तावन्महाभाग कृतकृत्यो भविष्यसि ॥ ९६ ॥
ब्रह्मर्षिस्तामथोवाच स तथेति युधिष्ठिर ।
वत्स्येऽहं यावदुत्साहो भवत्या नात्र संशयः ॥ ९७ ॥
अथर्षिरभिसंप्रेक्ष्य स्त्रियं तां जरयाऽर्दिताम् ।
चिन्तां परमिकां भेजे संतप्त इव चाभवत् ॥ ९८ ॥
यद्यदङ्गं हि सोऽपश्यत्तस्या विप्रर्षभस्तदा ।
नारमत्तत्र तत्रास्य दृष्टी रूपविरागिता ॥ ९९ ॥
देवतेयं गृहस्यास्य शापात्किं नु विरूपिता ।

जा सकता, कि सौ हजार स्त्रियोंके बीच भी कोई पतिव्रता है। ये पिताको नहीं जानतीं, कुलको नहीं मानतीं, माताको भी मान्य नहीं करतीं, भाइयोंके शासन में भी नहीं रहतीं, भर्त्तापर भक्ति, पुत्रोंमें स्नेह और देवरोंका समादर नहीं करतीं; जैसे नदियें तटको निर्मूल करती हैं, वैसे ही ये भी लीलाक्रमसे कुल नष्ट किया करती हैं; प्रजापतिने इनके सब दोषोंको जानके यह वार्त्ता कही थी। (९१ – ९४)

भीष्म बोले, अनन्तर अष्टावक्र एकाग्र होकर उस वर्षीयसीसे बोले, तुम इच्छानुसार बैठो और मुझे क्या करना योग्य है वह कहो। वृद्धा बोली, हे भगवन्! देशकालके अनुसार सब देखोगे। हे महाभाग! बैठिये, कृतकृत्य होइयेगा। (९५–९६)

हे युधिष्ठिर! अनन्तर ब्रह्मर्षिने उससे कहा, "ऐसा ही होगा।" मेरा जबतक उत्साह रहेगा, तब तक मैं तुम्हारे समीप निःसन्देह निवास करूंगा। अन्तमें ऋषि उस स्त्रीको जराजीर्ण देखकर अत्यन्त चिन्ता करके मानो सन्तापित हुए। उस विप्रवरने उस अंगनाके जिस जिस अंगको अवलोकन किया, उनकी रूप विरागवती दृष्टि उस समय उसमें अनुरागवान् नहीं हुई। उन्होंने सोचा, यह इस गृहकी अधिष्ठात्री देवी है, किसीके

अस्याश्च कारणं वेत्तुं न युक्तं सहसा मया ॥ १०० ॥
इति चिन्ताविविक्तस्य तमर्थं ज्ञातुमिच्छतः ।
व्यगच्छत्तदहःशेषं मनसा व्याकुलेन तु ॥ १०१ ॥
अथ सा स्त्री तथोवाच भगवन्पश्य वै रवेः ।
रूपं संध्याभ्रसंरक्तं किमुपस्थाप्यतां तव ॥ १०२ ॥
स उवाच ततस्तां स्त्रीं स्नानोदकमिहानय ।
उपासिष्ये ततः संध्यां वाग्यतो नियतेन्द्रियः ॥१०३॥[१४६६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि अष्टावक्रदिक्संवादे ऊनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

भीष्म उवाच— अथ सा स्त्री तमुवाच बाढमेवं भवत्विति ।
तैलं दिव्यमुपादाय स्नानशाटीमुपानयत् ॥ १ ॥
अनुज्ञाता च मुनिना सा स्त्री तेन महात्मना ।
अथास्य तैलेनाङ्गानि सर्वाण्येवाभ्यमृक्षत ॥ २ ॥
शनैश्चोत्सादितस्तत्र स्नानशालामुपागमत् ।
भद्रासनं ततश्चित्रं ऋषिरन्वगमन्नवम् ॥ ३ ॥
अथोपविष्टश्च यदा तस्मिन्भद्रासने तदा ।
स्नापयामास शनकैस्तमृषिं सुखहस्तवत् ॥ ४ ॥

आपसे कुरूपा हुई है । मैं सहसा इसका कारण जाननेमें समर्थ नहीं होता हूं; इस विषयको जाननेके निमित्त इस ही भांति चिन्ता करते हुए व्याकुल चित्तसे ऋषिका वह दिन शेष हुआ । अनन्तर वह स्त्री बोली हे भगवन् ! सूर्यका सन्ध्यारागरञ्जितरूप अवलोकन करिये, इस समय आपके निकट क्या लाऊं । वह उस स्त्रीसे बोले, इस समय यहां मेरे स्नान करनेके लिये जल लाओ । इसके अनन्तर मैं एकाग्र और संयतेन्द्रिय होकर सन्ध्या उपासना करूंगा । (९७-१०३)

अनुशासनपर्वमें १९ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें २० अध्याय ।

भीष्म बोले, अनन्तर उस स्त्रीने कहा, बहुत अच्छा, ' ऐसा ही होगा ' यह कहके वह दिव्य तेल और स्नानका वस्त्र ले आई । उस समय वर्षीयसीने उस महानुभाव मुनिकी आज्ञानुसार उनके शरीरमें तेल लगाया और धीरे धीरे जाके स्नानागारमें उपस्थित हुई । अनन्तर ऋषिवर अभिनव उत्तम आसनपर बैठनेके लिये वहां गये, जब वह

दिव्यं च विधिवच्चक्रे सोपचारं मुनेस्तदा ।
स तेन सुसुखोष्णेन तस्या हस्तसुखेन च ॥ ५ ॥
व्यतीतां रजनीं कृत्स्नां नाजानात्स महाव्रतः ।
तत उत्थाय स मुनिस्तदा परमविस्मितः ॥ ६ ॥
पूर्वस्यां दिशि सूर्यं च सोऽपश्यदुदितं दिवि ।
तस्य बुद्धिरियं किं तु मोहस्तत्त्वमिदं भवेत् ॥ ७ ॥
अथोपास्य सहस्रांशुं किं करोमीत्युवाच ताम् ।
सा चामृतरसप्रख्यमृषेरन्नमुपाहरत ॥ ८ ॥
तस्य स्वादुतयाऽन्नस्य न प्रभूतं चकार सः ।
व्यगमच्चाप्यहःशेषं ततः संध्याऽगमत्पुनः ॥ ९ ॥
अथ सा स्त्री भगवन्तं सुप्यतामित्यचोदयत् ।
तत्र वै शयने दिव्ये तस्य तस्याश्च कल्पिते ॥ १० ॥
पृथक्चैव तथा सुप्तौ सा स्त्री स च मुनिस्तदा ।
तथार्धरात्रे सा स्त्री तु शयनं तदुपागमत् ॥ ११ ॥
अष्टावक्र उवाच- न भद्रे परदारेषु मनो मे संप्रसज्जति ।

उत्तम आसन पर बैठे, तब उस स्त्रीने धीरे धीरे सुखस्पर्श हाथके द्वारा ऋषि‑को स्नान करा दिया और उनके संमुख विधिपूर्वक दिव्य उपचारोंको लाके उपस्थित किया। महाव्रती मुनि उस स्त्रीके अत्यन्त सुखजनक तथा उष्ण हाथके सहारे सुखसे सेवित होकर यह न जान सके, कि सारी रात बीत गई। अनन्तर मुनि उठके अत्यन्त विस्मित हुए और पूर्व ओर आकाशमण्डलमें सूर्यको उदित देखा। उस समय उन्हें ऐसा मालूम हुआ, कि 'क्यों यह मोह है, अथवा यथार्थ होगा?' (१—७)

अन्तमें वह सूर्यकी उपासना करके उस स्त्रीसे बोले, इस समय मैं क्या करूं? तब वर्षीयसी उनके लिये अमृत रसके सदृश अन्न ले आई। ऋषि उस अन्न की अति स्वादुतानिबन्धनसे अधिक भोजन न कर सके। उस दिनके बीतने पर फिर सन्ध्या उपस्थित हुई। अनन्तर उस स्त्रीने भगवान् अष्टावक्रको शयन करनेके लिये कहा, उन दोनोंकी अलग अलग दिव्य शय्या कल्पित हुई। मुनि और वह वृद्धा स्त्री अपनी अपनी शय्यापर जा सोये; आधी रात्रके समय वह स्त्री मुनिके समीप उपस्थित हुई, अष्टावक्र बोले, हे भद्रे! मेरा अन्तः‑करण परस्त्रीमें आसक्त नहीं होता,

उत्तिष्ठ भद्रे भद्रं ते स्वयं वै विरमस्व च ॥ १२ ॥

भीष्म उवाच— सा तदा तेन विप्रेण तथा धृत्या निवर्तिता ।
स्वतन्त्राऽस्मीत्युवाचर्षिं न धर्मच्छलमस्ति ते ॥ १३ ॥

अष्टावक्र उवाच– नास्ति स्वतन्त्रता स्त्रीणामस्वतन्त्रा हि योषितः ।
प्रजापतिमतं ह्येतन्न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥ १४ ॥

स्त्र्युवाच— बाधते मैथुनं विप्र मम भक्तिं च पश्य वै ।
अधर्मं प्राप्स्यसे विप्र यन्मां त्वं नाभिनन्दसि ॥१५॥

अष्टावक्र उवाच– हरन्ति दोषजातानि नरं जातं यथेच्छकम् ।
प्रभवामि सदा धृत्या भद्रे स्वशयनं व्रज ॥ १६ ॥

स्त्र्युवाच— शिरसा प्रणमे विप्र प्रसादं कर्तुमर्हसि ।
भूमौ निपतमानायाः शरणं भव मेऽनघ ॥ १७ ॥
यदि वा दोषजातं त्वं परदारेषु पश्यसि ।
आत्मानं स्पर्शयाम्यद्य पाणिं गृह्णीष्व मे द्विज ॥१८।
न दोषो भविता चैव सत्येनैतद्ब्रवीम्यहम् ।
स्वतन्त्रां मां विजानीहि यो धर्मः सोऽस्तु वै मयि ।

हे कल्याणि ! तुम उठो और स्वयं विरत रहो तुम्हारा मंगल होगा । (८–१२)

भीष्म बोले, उस समय वह वृद्धा धीरजके सहारे निवार्त्तित होके बोली, मैं स्वतन्त्रा हूं, तुम्हें धर्मच्छल अर्थात् परपुरुष प्रलोभन नहीं है । (१३)

अष्टावक्र बोले, स्त्रियोंकी स्वाधीनता नहीं है, स्त्रियें निश्चय ही पराधीन हैं, प्रजापतिका ऐसा मत है, कि स्त्रियें कभी स्वाधीनताके योग्य नहीं हैं । (१४)

स्त्री बोली, हे विप्र ! कन्दर्पपीडा मुझे व्याकुल कर रही है, तुम मेरी भक्ति देखो, यदि तुम मुझे अभिनन्दित न करोगे, तो तुम्हें अधर्म होगा । (१५)

अष्टावक्र बोले, यथेच्छाचार मनुष्यके दोषोंको हरता है । हे कल्याणि ! मैं सदा धीरज धारण करनेमें समर्थ हूं, अपनी शय्या पर जाओ । (१६)

स्त्री बोली, हे विप्र ! मैं सिर झुकाके तुम्हें प्रणाम करती हूं, मुझ पर तुम्हें कृपा करनी उचित है । हे निष्पाप ! तुम पृथ्वीमें पडी हुई मुझ शरणागताकी रक्षा करो । यदि तुम परस्त्रीविषयक दोष देखते हो, तो मैं तुम्हें आत्मसमर्पण करती हूं, हे द्विज! तुम मेरा पाणिग्रहण करो । मैं सत्य

त्वय्यावेशितचित्ता च स्वतन्त्राऽस्मि भजस्व माम् ॥१९॥
अष्टावक्र उवाच- स्वतन्त्रा त्वं कथं भद्रे ब्रूहि कारणमत्र वै।
नास्ति त्रिलोके स्त्री काचिद्या वै स्वातन्त्र्यमर्हति ॥२०॥
पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
पुत्राश्च स्थाविरे काले नास्ति स्त्रीणां स्वतन्त्रता ॥२१॥
स्त्र्युवाच— कौमारं ब्रह्मचर्यं मे कन्यैवास्मि न संशयः।
पत्नीं कुरुष्व मां विप्र श्रद्धां विजहि मा मम ॥ २२ ॥
अष्टावक्र उवाच- यथा मम तथा तुभ्यं यथा तुभ्यं तथा मम।
जिज्ञासेयमृषेस्तस्य विघ्नः सत्यं न किं भवेत् ॥ २३ ॥
आश्चर्यं परमं हीदं किं तु श्रेयो हि मे भवेत्।
दिव्याभरणवस्त्रा हि कन्येयं मामुपस्थिता ॥ २४ ॥
किंत्वस्याः परमं रूपं जीर्णमासीत्कथं पुनः।

कहती हूं, कि तुम्हें कुछ भी दोष न होगा; मुझे तुम आत्म-प्रदान करनेमें स्वाधीना समझो; इसमें जो अधर्म होगा, वह मुझे ही होगा। मैंने तुम्हें मन समर्पण किया है, मैं स्वतन्त्रा हूं, इसलिये तुम मुझे अङ्गीकार करो। (१७—१९)

अष्टावक्र बोले, हे भद्रे! तुम किस प्रकार स्वाधीना होसकती हो? इसका क्या कारण है वह कहो। जगत्में कोई भी स्त्री स्वतंत्र है, ऐसा नहीं कहा जासकता। कौमार अवस्थामें पिता रक्षा करता है, युवा अवस्थामें पति रक्षा किया करता है, वृद्धावस्थामें पुत्रगण रक्षा करते हैं, इसलिये स्त्रियोंकी कभी स्वतन्त्रता नहीं रहती है।(२०-२१)

स्त्री बोली, मैं कौमार ब्रह्मचर्य अवलम्बन करनेके हेतु निःसन्देह कन्या ही हूं, हे विप्र! इसलिये तुम मुझे अपनी पत्नी करो, मेरी श्रद्धा निष्फल मत करो। (२२)

अष्टावक्र बोले, मैं आत्मदृष्टान्तके सहारे तुम्हें स्मरातुरा जानता हूं, तुम भी निज संगमश्रद्धा प्रकाश करके अपना अभिप्राय प्रकट करती हो, वदान्य ऋषि मुझे जाननेके लिये जो परीक्षा करते हैं, क्यों सत्य ही उसमें विघ्न न होगा? इस स्त्रीको पहले अत्यन्त जीर्णरूपसे देखा था, अब इसे कन्या देखता हूं, इससे यह परम आश्चर्यका विषय है! क्यों मैं पूर्व परिगृहीता कन्याको परित्याग करूंगा अथवा इसे ही स्वीकार करूंगा? क्या करनेसे मेरा कल्याण होगा? यह दिव्याभरण वसन-

कन्यारूपमिहाद्यैवं किमिवात्रोत्तरं भवेत् ॥ २५ ॥
यथा परं शक्तिधृतेर्न व्युत्थास्ये कथञ्चन।
न रोचते हि व्युत्थानं सत्येनासादयाम्यहम् ॥ २६ ॥ [१४०९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि अष्टावक्रदिक्संवादे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

युधिष्ठिर उवाच- न बिभेति कथं सा स्त्री शापाच्च परमद्युतेः।
कथं निवृत्तो भगवांस्तद्भवान् प्रब्रवीतु मे ॥ १ ॥
भीष्म उवाच- अष्टावक्रोऽन्वपृच्छत्तां रूपं विकुरुषे कथम्।
न चानृतं ते वक्तव्यं ब्रूहि ब्राह्मणकाम्यया ॥ २ ॥
स्त्र्युवाच— द्यावापृथिव्योर्यत्रैषा काम्या ब्राह्मणसत्तम।
शृणुष्वावहितः सर्वं यदिदं सत्यविक्रम ॥ ३ ॥
जिज्ञासेयं प्रयुक्ता मे स्थिरीकर्तुं तवानघ।
अव्युत्थानेन ते लोका जिताः सत्यपराक्रम ॥ ४ ॥

धारिणी कन्या मेरे निकट उपस्थित हुई है, इसका यह परम सुन्दर रूप पहले किस प्रकार जीर्ण हुआ था। इस समय तो इसे कन्या रूपसे देखता हूं, इसके अनन्तर न जाने क्या होगा? मुझे जो काम दमन करनेकी सामर्थ्य है उस धीरजसे मैं किसी प्रकार विचलित न होकर पहले प्राप्त हुई कन्याको परित्याग न करूंगा, पूर्वप्राप्तको परित्याग करनेमें मेरी रुचि नहीं होती; इसलिये मैं सत्य धर्मके सहारे दारपरिग्रह करूंगा। (२३—२६)

अनुशासनपर्वमें २० अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें २१ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! वह स्त्री परमतेजस्वी अष्टावक्रके शापसे क्यों न डरी और भगवान् अष्टावक्र किस प्रकार वहांसे निवृत्त हुए, यह वृत्तान्त आप मेरे समीप वर्णन करिये। (१)

भीष्म बोले, अष्टावक्रने उस स्त्रीसे पूछा, कि तुम किस प्रकार रूप पलटती हो? मिथ्या न कहना, ब्राह्मणके मान रखनेके लिये सत्य कहो। (२)

स्त्री बोली, हे ब्राह्मणसत्तम! द्युलोक अथवा भूलोकके जिस किसी स्थानमें निवास करे, उस ही स्थानमें स्त्री-पुरुषोंका परस्पर ऐसा ही अभिप्राय है। हे सत्यविक्रम! सावधान होकर यह समस्त विषय सुनो। हे निष्पाप! तुम्हें स्थिर करनेके लिये मैं इस प्रकार परीक्षा करती थी। हे सत्यपराक्रम! पूर्वप्रतिज्ञा

उत्तरां मां दिशं विद्धि दृष्टं स्त्रीचापलं च ते ।
स्थविराणामपि स्त्रीणां बाधते मैथुनज्वरः ॥ ५ ॥
तुष्टः पितामहस्तेऽद्य तथा देवाः सवासवाः ।
स त्वं येन च कार्येण संप्राप्तो भगवानिह ॥ ६ ॥
प्रेषितस्तेन विप्रेण कन्यापित्रा द्विजर्षभ ।
तवोपदेशं कर्तुं वै तच्च सर्वं कृतं मया ॥ ७ ॥
क्षेमैर्गमिष्यसि गृहं श्रमश्च न भविष्यति ।
कन्यां प्राप्स्यसि तां विप्र पुत्रिणी च भविष्यति ॥ ८ ॥
काम्यया पृष्टवांस्त्वं मां ततो व्याहृतमुत्तमम् ।
अनतिक्रमणीया सा कृत्स्नैर्लोकैस्त्रिभिः सदा ॥ ९ ॥
गच्छस्व सुकृतं कृत्वा किं चान्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।
यावद्ब्रवीमि विप्रर्षे अष्टावक्र यथातथम् ॥ १० ॥
ऋषिणा प्रसादिता चाऽस्मि तव हेतोर्द्विजर्षभ ।
तस्य संमाननार्थं मे त्वयि वाक्यं प्रभाषितम् ॥ ११ ॥

भीष्म उवाच- श्रुत्वा तु वचनं तस्याः स विप्रः प्राञ्जलिः स्थितः ।

का परित्याग न करनेसे तुमने सब लोकोंको जय किया है। मुझे उत्तर दिशा जानो; स्त्रियोंकी चपलता भी तुम्हें प्रत्यक्ष मालूम हुई। मैथुनज्वर वृद्धा स्त्रियोंको भी पीडित करता है। इस समय प्रजापति तुमपर प्रसन्न हुए तथा इन्द्रके सहित सब देवता तुम पर प्रसन्न हैं। हे द्विजवर! तुम जिस कार्य के लिये इस स्थानमें आये तथा उस कन्याके पिता वदान्य विप्रके द्वारा जिस निमित्त मेरे समीप आये हो, तुम्हें उपदेश करनेके लिये मैंने उन्हीं कार्यों का अनुष्ठान किया। (३—७)

तुम उत्तम रीतिसे मङ्गलपूर्वक घर जाओ, तुम्हें कुछ भी श्रम न होगा, हे विप्र! तुम उस कन्याको पाओगे और वह पुत्रवती होगी। तुमने मान-लिप्साके निमित्त मुझसे प्रश्न किया, इस ही लिये मैंने उत्तम रीतिसे वर्णन किया; ब्राह्मण कामना तीनों लोकमें सब लोगोंको ही सदा अनतिक्रमणीय है। हे विप्रर्षि अष्टावक्र! इस समय पुण्यसञ्चय करके गमन करो और क्या सुननेकी अभिलाष है, मैं वह भी यथार्थ रीतिसे कहती हूं। हे द्विजवर! मैं तुम्हारे निमित्त ऋषिके द्वारा प्रसादिता हुई हूं, उनके सम्मानके लिये तुमसे यह कथा कही है। (८—११)

अनुज्ञातस्तया चापि स्वगृहं पुनराव्रजत् ॥ १२ ॥
गृहमागत्य विश्रान्तः स्वजनं परिपृच्छय च ।
अभ्यगच्छच तं विप्रं न्यायतः कुरुनन्दन ॥ १३ ॥
पृष्टश्च तेन विप्रेण दृष्टं त्वेतन्निदर्शनम् ।
प्राह विप्रं तदा विप्रः सुप्रीतेनान्तरात्मना ॥ १४ ॥
भवता समनुज्ञातः प्रस्थितो गन्धमादनम् ।
तस्य चोत्तरतो देशे दृष्टं मे दैवतं महत् ॥ १५ ॥
तया चाहमनुज्ञातो भवांश्चापि प्रकीर्तितः ।
श्राविनश्चापि तद्वाक्यं गृहं चाभ्यागतः प्रभो ॥ १६ ॥
तमुवाच तदा विप्रः सुतां प्रतिगृहाण मे ।
नक्षत्रविधियोगेन पात्रं हि परमं भवान् ॥ १७ ॥
भीष्म उवाच- अष्टावक्रस्तथेत्युक्त्वा प्रतिगृह्य च तां प्रभो ।
कन्यां परमधर्मात्मा प्रीतिमांश्चाभवत्तदा ॥ १८ ॥
कन्यां तां प्रतिगृह्यैव भार्यां परमशोभनाम् ।
उवास मुदितस्तत्र स्वाश्रमे विगतज्वरः ॥ १९ ॥ [१५११]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि अष्टावक्रदिक्संवादे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

भीष्म बोले, कि वह विप्रवर! उसका वचन सुनके हाथ जोडके खडा हुए और उसकी आज्ञा पाके फिर अपने स्थानमें लौट आये। हे कुरुनन्दन! उन्होंने घरमें आके विश्राम कर स्वजनोंसे कुशल प्रश्न करके न्यायपूर्वक उस ब्राह्मणके समीप गमन किया। उस समय वह वदान्य विप्रको देखकर पूछने पर समस्त वृत्तान्त कहने लगे। उन्होंने कहा, मैं आपकी आज्ञानुसार गन्धमादन पर्वत पर जाके उसकी उत्तर ओर एक उत्तम महती देवीका दर्शन किया। मैंने उससे अनुज्ञात होकर आपका नाम सुनाया। हे प्रभु! उसका वचन सुनके फिर निज स्थान पर लौट आया। तब विप्रवर वदान्य उनसे बोले, तुम उत्तम पात्र हो, इसलिये नक्षत्र और वेदविधिके अनुसार मेरी कन्याका पाणि ग्रहण करो। (१२-१७)

भीष्म बोले, हे महाराज! परम धर्मात्मा अष्टावक्र उस समय " ऐसा ही होवे " यह कहके उस कन्याको ग्रहण करके अत्यन्त प्रीतियुक्त हुए। वह द्विजवर उस परम सुन्दरी कन्या-

युधिष्ठिर उवाच— किमाहुर्भरतश्रेष्ठ पात्रं विप्राः सनातनाः।
ब्राह्मणं लिङ्गिनं चैव ब्राह्मणं वाऽप्यलिङ्गिनम् ॥ १ ॥
भीष्म उवाच– स्ववृत्तिमभिपन्नाय लिङ्गिने चेतराय च।
देयमाहुर्महाराज उभावेतौ तपस्विनौ ॥ २ ॥
युधिष्ठिर उवाच- श्रद्धया परयाऽपूतो यः प्रयच्छेद् द्विजातये।
हव्यं कव्यं तथा दानं को दोषः स्यात्पितामह ॥ ३ ॥
भीष्म उवाच– श्रद्धापूतो नरस्तात दुर्दान्तोऽपि न संशयः।
पूतो भवति सर्वत्र किमुत त्वं महाद्युते ॥ ४ ॥
युधिष्ठिर उवाच- न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवेषु सततं नरः।
कव्यप्रदाने तु बुधाः परीक्ष्यं ब्राह्मणं विदुः ॥ ५ ॥
भीष्म उवाच— न ब्राह्मणः साधयते हव्यं दैवात्प्रसिद्ध्यति।

को भार्यारूपसे प्रतिग्रह करके शोक-रहित और प्रसन्न होके अपने आश्रममें सुखपूर्वक वास करने लगे। १८-१९

अनुशासनपर्वमें २१ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें २२ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! सनातन ब्राह्मण लोग यति, ब्रह्मचारी ब्रह्मवित् ब्राह्मणको अथवा दण्डादि चिन्हधारी संन्यासीको पात्र कहा करते हैं। (१)

भीष्म बोले, हे महाराज! प्राचीन लोग जीविकानिर्वाहके लिये निज वृत्ति अवलम्बन करनेवाले दण्डादि चिन्हधारी वा अचिन्हित स्वधर्मजीवी ब्राह्मण इन दोनोंको ही दानके पात्र कहते हैं, क्यों कि ये दोनों ही तपस्वी हैं। (२)

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! अपवित्र पुरुष यदि परम श्रद्धापूर्वक द्विजातिको हव्यकव्य दान करे, तो उस दानमें क्या दोष होता है, उसे आप वर्णन करिये। (३)

भीष्म बोले, हे महातेजस्वी तात! नीच मनुष्य भी यदि श्रद्धाके द्वारा पवित्र हो, तब वह अवश्य ही सब ठौर पवित्र है, इसमें सन्देह नहीं है; श्रद्धाही उसे पवित्र करती है। (४)

युधिष्ठिर बोले, मनुष्य सदा देवकर्ममें ब्राह्मणकी परीक्षा न करे, हव्यप्रदानके समय अर्थात् पितृकर्ममें ब्राह्मणकी परीक्षा करनी चाहिये; पण्डित लोग ऐसा ही कहा करते हैं; देवताओंकी श्रद्धाप्रियत्व निबन्धनसे दैवकर्म देवताओंकी कृपासेही पूर्ण होता है, और पितृकर्म ब्राह्मणकी कृपासे सिद्ध हुआ करता है। (५)

भीष्म बोले, ब्राह्मण कभी देवकार्य

देवप्रसादादिज्यन्ते यजमानैर्न संशयः ॥ ६ ॥
ब्राह्मणान् भरतश्रेष्ठ सततं ब्रह्मवादिनः ।
मार्कण्डेयः पुरा प्राह इति लोकेषु बुद्धिमान् ॥ ७ ॥
युधिष्ठिर उवाच- अपूर्वोऽप्यथवा विद्वान् संबन्धी वा यथा भवेत् ।
तपस्वी यज्ञशीलो वा कथं पात्रं भवेत्तु सः ॥ ८ ॥
भीष्म उवाच- कुलीनः कर्मकृद्वैद्यस्तथैवाप्यानृशंस्यवान् ।
ह्रीमानृजुः सत्यवादी पात्रं पूर्वं च ये त्रयः ॥ ९ ॥
तत्रेमं शृणु मे पार्थ चतुर्णां तेजसां मतम् ।
पृथिव्याः काश्यपस्याग्नेर्मार्कण्डेयस्य चैव हि ॥ १० ॥
पृथिव्युवाच— यथा महार्णवे क्षिप्तः क्षिप्रं लेष्टुर्विनश्यति ।
तथा दुश्चरितं सर्वं त्रिवृत्त्यां च निमज्जति ॥ ११ ॥
काश्यप उवाच- सर्वे च वेदाः सह षड्भिरङ्गैः सांख्यं पुराणं च कुले च जन्म।
नैतानि सर्वाणि गतिर्भवन्ति शीलव्यपेतस्य नृप द्विजस्य ॥ १२ ॥

सिद्ध नहीं करते; वह देवताओंकी कृपासे ही सिद्ध होता है, देवताओंके प्रसादसे यजमान यज्ञ किया करते हैं; इसमें सन्देह नहीं है। हे भरतश्रेष्ठ! पितर पितामह आदि पूजनीय ब्रह्मिष्ठ लोगोंके बीच धी-शक्तिसम्पन्न मार्कण्डेयने पहले समयमें ब्राह्मणोंको ही ब्रह्मवादी कहा था। (६—७)

युधिष्ठिर बोले, अपूर्व अर्थात् पूर्वापरिचित विद्वान्, सम्बन्धी, तपस्वी अथवा यज्ञशील, ये किस प्रकार दानके पात्र होंगे। (८)

भीष्म बोले, पहले जो तुमने तीन पात्रोंका उल्लेख किया है, अर्थात् अपूर्व विद्वान् और किसी प्रकारके सम्बन्धसे युक्त, ये यदि कुलीन, कर्मठ, वेदवित् अनृशंस, लज्जाशील, सरल और सत्यवादी हों, तभी दानके पात्र हुआ करते हैं, तपस्वी और यज्ञशील भी अवश्य ही दानके पात्र होंगे। हे पार्थ! इस विषयमें पृथ्वी, काश्यप, अग्नि और मार्कण्डेय, इन तेजस्वी अर्थात् सर्वज्ञ-चतुष्टयका मत सुनो। (९-१०)

पृथ्वीने कहा है, जैसे समुद्रमें फेंकनेसे पांसुपिण्ड शीघ्र ही विनष्ट होता है, वैसे ही जो याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह, इन तीनों वृत्तियोंके द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं, उनके समीप सब दुश्चरित निमग्न हुआ करते हैं। हे महाराज! काश्यपने कहा है, षडङ्गोंके सहित सब वेद, सांख्य, पुराण और सत्कुलमें जन्म इन सदा-

अग्निरुवाच- अधीयानः पण्डितं मन्यमानो यो विद्यया हन्ति यशः परेषाम्।
प्रभ्रश्यतेऽसौ चरते न सत्यं लोकास्तस्य ह्यन्तवन्तो भवन्ति ॥ १३ ॥
मार्कण्डेय उवाच—अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ।
नाभिजानामि यज्ञस्य सत्यस्यार्धमवाप्नुयात् ॥ १४ ॥
भीष्म उवाच— इत्युक्त्वा ते जग्मुराशु चत्वारोऽमिततेजसः ।
पृथिवी काश्यपोऽग्निश्च प्रकृष्टायुश्च भार्गवः ॥ १५ ॥
युधिष्ठिर उवाच- यदि ते ब्राह्मणा लोके व्रतिनो भुञ्जते हविः ।
दत्तं ब्राह्मणकामाय कथं तत्सुकृतं भवेत् ॥ १६ ॥
भीष्म उवाच- आदिष्टिनो ये राजेन्द्र ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
भुञ्जते ब्रह्मकामाय व्रतलुप्ता भवन्ति ते ॥ १७ ॥
युधिष्ठिर उवाच- अनेकान्तं बहुद्वारं धर्ममाहुर्मनीषिणः ।
किं निमित्तं भवेदत्र तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १८ ॥

चारोंसे भ्रष्ट द्विजोंमें प्रतिग्रह नहीं होता। अग्निने कहा है, जो पुरुष पढके अपनेको पण्डित समझता है और जो विद्याके सहारे दूसरेके यशको नष्ट करता है, वह पुरुष सत्य आचरण नहीं करता, इसहींसे भ्रष्ट होता है और उसके सब लोक नष्ट हुआ करते हैं। मार्कण्डेयने कहा है, सहस्र अश्वमेध और एकमात्र सत्य यदि तुलादण्डपर तौले जांय, तो सहस्र अश्वमेध सत्यके आधे फलके समान होगा, वा नहीं इसे मैं कह नहीं सकता; इसलिये इन गुणोंके एकतमके प्रभावसे पात्रत्व नहीं होता। (११-१४)

भीष्म बोले, अत्यन्त तेजस्वी पृथ्वी, काश्यप, अग्नि और चिरायु भृगुनन्दन मार्कण्डेय, इन चारोंने पूर्वोक्त वचन कहके गमन किया था। (१५)

युधिष्ठिर बोले, ब्रह्मचर्य व्रतमें रत रहनेवाले ब्राह्मण लोग जो यह हवि भोजन करते हैं, ब्राह्मणको कामार्थ प्रदत्त उस हविके द्वारा उसके व्रत नाशनिबन्धनसे किस प्रकार सुकृत होता है? (१६)

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र! बारह वर्षतक ब्रह्मचर्य व्रत करनेवाले, वेद-पारग विप्र यदि ब्राह्मणकी कामनावशसे श्राद्धका अन्न भोजन करे, तो उसका व्रत नष्ट होगा। (१७)

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! पण्डित लोग धर्मको अनेकान्त अर्थात् अनेक फलाकार और बहुद्वार कहा करते हैं, इसलिये इस विषयमें किस प्रकार निष्ठाकी जा सकती है। आप मुझसे

भीष्म उवाच– अहिंसा सत्यमक्रोध आनृशंस्यं दमस्तथा।
आर्जवं चैव राजेन्द्र निश्चितं धर्मलक्षणम् ॥ १९ ॥
ये तु धर्मं प्रशंसन्तश्चरन्ति पृथिवीमिमाम्।
अनाचरन्तस्तद्धर्मं संकरेऽभिरताः प्रभो ॥ २० ॥
तेभ्यो हिरण्यं रत्नं वा गामश्वं वा ददाति यः।
दश वर्षाणि विष्ठां स भुङ्क्ते निरयमास्थितः॥ २१ ॥
मेदानां पुल्कसानां च तथैवान्तेऽवसायिनाम्।
कृतं कर्माकृतं वापि रागमोहेन जल्पताम् ॥ २२ ॥
वैश्वदेवं च ये मूढा विप्राय ब्रह्मचारिणे।
ददते नेह राजेन्द्र ते लोकान् भुञ्जतेऽशुभान् ॥ २३ ॥
युधिष्ठिर उवाच– किं परं ब्रह्मचर्यं च किं परं धर्मलक्षणम्।
किं च श्रेष्ठतमं शौचं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २४ ॥
भीष्म उवाच— ब्रह्मचर्यात्परं तात मधुमांसस्य वर्जनम्।
मर्यादायां स्थितो धर्मः शमश्चैवास्य लक्षणम् ॥ २५ ॥

वही कहिये। (१८)

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र! अहिंसा, सत्य, अक्रोध, अनृशंसता, दम और आर्जव, ये कई एक धर्मके लक्षण कहके निश्चित हुए हैं। जो लोग धर्मकी प्रशंसा करते हुए इस पृथ्वीपर विचरते हैं, वे लोग यदि उस धर्मके अनाचरणमें प्रवृत्त होते हैं, तो सङ्करकार्यमें अभिरत कहके वर्णित हुआ करते हैं। जो निरयनिष्ठ मनुष्य उन्हें सुवर्ण, रत्न गऊ अथवा अश्वदान करता है, वह दश वर्षतक विष्ठा भक्षण किया करता है। जो ब्राह्मण होके भी राग अथवा मोहके वशमें होकर दूसरेके किये वा विना किये हुए पापकर्मको प्रकाशित करते हैं, वे मृत गऊ, भैंस आदिके मांसको भक्षण करनेवाले मेद जाति और स्वाभाविक ब्राह्मण आदिकी हिंसा करनेवाले पुल्कश जातिकी भांति गिने जाते हैं। हे राजेन्द्र! जो मूढ पुरुष ब्रह्मचारी विप्रको वैश्वदेव बलि प्रदान नहीं करते, वे अशुभ लोकोंको भोग किया करते हैं। (१९-२३)

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! ब्रह्मचर्यमें श्रेष्ठता क्या है? धर्मका उत्तम लक्षण कौनसा है? और श्रेष्ठ पवित्रता किसे कहते हैं? इसे ही आप मेरे निकट वर्णन करिये। (२४)

भीष्म बोले, हे तात! मधु–मांस परित्याग करना ही ब्रह्मचर्यमें श्रेष्ठ है,

युधिष्ठिर उवाच— कस्मिन्काले चरेद्धर्मं कस्मिन्कालेऽर्थमाचरेत्।
कस्मिन्काले सुखी च स्यात्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥२६॥
भीष्म उवाच— कल्यमर्थं निषेवेत ततो धर्ममनन्तरम्।
पश्चात्कामं निषेवेत न च गच्छेत्प्रसङ्गिताम् ॥ २७ ॥
ब्राह्मणांश्चैव मन्येत गुरूंश्चाप्यभिपूजयेत्।
सर्वभूतानुलोमश्च मृदुशीलः प्रियंवदः ॥ २८ ॥
अधिकारे यदनृतं यच्च राजसु पैशुनम्।
गुरोश्चालीककरणं तुल्यं तद्ब्रह्महत्यया ॥ २९ ॥
प्रहरेन्न नरेन्द्रेषु न हन्याद्गां तथैव च।
भ्रूणहत्यासमं चैव उभयं यो निषेविते ॥ ३० ॥
नाग्निं परित्यजेज्जातु न च वेदान् परित्यजेत्।
न च ब्राह्मणमाक्रोशेत्समं तद्ब्रह्महत्यया ॥ ३१ ॥
युधिष्ठिर उवाच— कीदृशाः साधवो विप्राः केभ्यो दत्तं महाफलम्।
कीदृशानां च भोक्तव्यं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ३२ ॥

विषयोंसे इन्द्रियोंको निवृत्त रखना ही सबसे श्रेष्ठ है, पवित्रता और मर्यादाके अन्तर्गत धर्मका लक्षण ही उत्कृष्ट है। (२५)

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! किस समय धर्माचरण करे? किस समय अर्थ व्यवहार करे और किस समयमें सुखी होवे? आप मुझसे येही विषय कहिये। (२६)

भीष्म बोले प्रातःकालमें अर्थसेवा करे, फिर धर्माचरण करे उसके अनन्तर कामकी सेवा करके सुखी हो, परन्तु उसमें आसक्त न होवे, ब्राह्मणोंका मान करे, गुरुओंका सम्मान करे, सब प्राणियोंके अनुकूल रहके मृदुस्वभाव और प्रियवादी होवे, अधिकारके बीच मिथ्या व्यवहार, राजकुलमें चुगली और गुरुजनोंके निकट अलीक व्यवहार करना ब्रह्महत्याके समान है। राजाके ऊपर प्रहार न करे, गऊको न मारे; जो पुरुष ऊपर कहे हुए दोनों कार्योंको करता है, उसे भ्रूणहत्याके समान पाप होता है। अग्निको कभी परित्याग न करे, वेदको कभी न त्यागे। ब्राह्मणोंके विषयमें डाह न करे, आक्रोश करनेसे ब्रह्महत्याके समान पाप होता है। (२७—३१)

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! कैसे ब्राह्मण साधु कहाते हैं? किन लोगोंको दान देनेसे महाफल होता है और किस

भीष्म उवाच- अक्रोधना धर्मपराः सत्यनित्या दमे रताः ।
ताहशाः साधवो विप्रास्तेभ्यो दत्तं महाफलम् ॥३३॥
अमानिनः सर्वसहा दृढार्था विजितेन्द्रियाः ।
सर्वभूतहिता मैत्रास्तेभ्यो दत्तं महाफलम् ॥ ३४ ॥
अलुब्धाः शुचयो वैद्या ह्रीमन्तः सत्यवादिनः ।
स्वकर्मनिरता ये च तेभ्यो दत्तं महाफलम् ॥ ३५ ॥
साङ्गांश्च चतुरो वेदानधीते यो द्विजर्षभः ।
षड्भ्यः प्रवृत्तः कर्मभ्यस्तं पात्रमृषयो विदुः ॥ ३६ ॥
ये त्वेवं गुणजातीयास्तेभ्यो दत्तं महाफलम् ।
सहस्रगुणमाप्नोति गुणार्हाय प्रदायकः ॥ ३७ ॥
प्रज्ञाश्रुताभ्यां वृत्तेन शीलेन च समन्वितः ।
तारयेत कुलं सर्वमेकोऽपीह द्विजर्षभः ॥ ३८ ॥
गामश्वं वित्तमन्नं वा तद्विधे प्रतिपादयेत ।
द्रव्याणि चान्यानि तथा प्रेत्यभावे न शोचति ॥३९॥

प्रकारके ब्राह्मणोंको भोजन कराना उचित है ? आप मुझे इस ही विषयका उपदेश करिये। (३२)

भीष्म बोले, जो लोग क्रोधरहित, धर्मपरायण, सत्यमें रत और इन्द्रियोंको दमन करनेमें तत्पर हैं, वेही उत्तम ब्राह्मण हैं, वैसे ही ब्राह्मणोंको दान करनेसे महत् फल होता है। जो लोग, अभिमानी नहीं हैं, सब कुछ सहते, दृढप्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय और सब प्राणियोंके हितमें रत रहते तथा सबकी शुभ-कामना किया करते हैं, उन्हें दान करनेसे महत् फल होता है। जो लोग लोभरहित, शुचि, वेदज्ञ लज्जाशील और सत्यवादी तथा निज कर्ममें रत रहते हैं, उन्हें ही दान करनेसे महाफल हुआ करता है। जो ब्राह्मण अङ्गसहित चारों वेदोंको पढते और यजन, याजन आदि षट्कर्मोंमें प्रवृत्त रहते हैं; ऋषि लोग उन्हें ही दानका पात्र कहा करते हैं। (३३—३६)

जो लोग ऊपर कहे हुए गुणोंसे युक्त हों, उन्हें दान करनेमें महाफल होता है। गुणी पात्रको दान करनेसे दाताको सहस्र गुण फल प्राप्त होता है। बुद्धि, शास्त्र, ज्ञान, सच्चरित्र और शील-सम्पन्न एक ब्राह्मण भी समस्त कुलका उद्धार करनेमें समर्थ है; वैसे ब्राह्मणको गऊ, घोडे, अर्थ, अन्न तथा दूसरी समस्त वस्तु दान करना चाहिये, ऐसा

तारयेत कुलं सर्वमेकोऽपीह द्विजोत्तमः ।
किमङ्ग पुनरेवैते तस्मात्पात्रं समाचरेत् ॥ ४० ॥
निशम्य च गुणोपेतं ब्राह्मणं साधुसंमतम् ।
दूरादानाय्य सत्कृत्य सर्वतश्चापि पूजयेत् ॥ ४१ ॥ [१५५२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि बहुप्राश्निके द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

युधिष्ठिर उवाच- श्राद्धकाले च दैवे च पित्र्येऽपि च पितामह ।
इच्छामीह त्वयाऽऽख्यातं विहितं यत्सुरर्षिभिः ॥१॥
भीष्म उवाच- दैवं पौर्वाह्णिकं कुर्यादपराह्णे तु पैतृकम् ।
मङ्गलाचारसंपन्नः कृतशौचः प्रयत्नवान् ॥ २ ॥
मनुष्याणां तु मध्याह्ने प्रदद्यादुपपत्तिभिः ।
कालहीनं तु यद्दानं तं भागं रक्षसां विदुः ॥ ३ ॥
लङ्घितं चावलीढं च काले पूर्वं च यत्कृतम् ।
रजस्वलाभिर्दृष्टं च तं भागं रक्षसां विदुः ॥ ४ ॥
अवघुष्टं च यद्भुक्तमव्रतेन च भारत ।

करनेसे परलोकमें शोक नहीं करना पडता । इस लोकमें जब एक ही उत्तम ब्राह्मण समस्त कुलका उद्धार करता है, तब जो अनेक ब्राह्मण उद्धार करेंगे, उसमें सन्देह ही क्या है ? इसलिये पात्रका विचार करके दान करना उचित है । साधुसंमत, गुणयुक्त ब्राह्मणका नाम सुननेसे ही उसे दूर देशसे लाके सत्कार करके सब प्रकार उसकी पूजा करे । (३७—४१)

अनुशासनपर्वमें २२ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें २३ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! दैव और पितर श्राद्धके समय देवर्षियोंके द्वारा जिस प्रकार विहित हुए हैं, उसे आप वर्णन करिये, मैं इसे ही सुननेकी अभिलाष करता हूं । (१)

भीष्म बोले, मङ्गलाचारसम्पन्न, पवित्रतायुक्त, यत्नवान् मनुष्य पूर्वाह्णमें देवकार्य और अपराह्णमें पितृकार्य करे और मध्यान्ह कालमें आदरयुक्त होके मनुष्योंको दान करे । जो दान समयसे रहित होता है, उसे पण्डित लोग राक्षसोंका भाग समझते हैं । जो पांवसे लंघित है, जीभसे चाटा जाता, कलहसे बनता और जिसे रजस्वला स्त्री देखती है, धीर लोग उसे राक्षसोंका अंश समझते हैं । हे भारत ! घोषणा (ढिंढोरा)

परामृष्टं शुना चैव तं भागं रक्षसां विदुः ॥ ५ ॥
केशकीटावपतितं क्षुतं श्वभिरवेक्षितम् ।
रुदितं चावधूतं च तं भागं रक्षसां विदुः ॥ ६ ॥
निरोङ्कारेण यद्भुक्तं सशस्त्रेण च भारत ।
दुरात्मना च यद्भुक्तं तं भागं रक्षसां विदुः ॥ ७ ॥
परोच्छिष्टं च यद्भुक्तं परिभुक्तं च यद्भवेत् ।
दैवे पित्र्ये च सततं तं भागं रक्षसां विदुः ॥ ८ ॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं यच्छ्राद्धं परिविष्यते ।
त्रिभिर्वर्णैर्नरश्रेष्ठ तं भागं रक्षसां विदुः ॥ ९ ॥
आज्याहुतिं विना चैव यत्किंचित्परिविष्यते ।
दुराचारैश्च यद्भुक्तं तं भागं रक्षसां विदुः ॥ १० ॥
ये भागा रक्षसां प्रोक्तास्त उक्ता भरतर्षभ ।
अत ऊर्ध्वं विसर्गस्य परीक्षां ब्राह्मणे शृणु ॥ ११ ॥
यावन्तः पतिता विप्रा जडोन्मत्तास्तथैव च ।

के द्वारा जो अन्न दान किया जाता है, जिसे व्रतहीन पुरुष भोजन किया करते हैं, और जिस अन्नको कुत्तेने स्पर्श किया हो, पण्डित लोग उस अन्नको राक्षसोंका भाग समझते हैं। (२-५)

जो अन्न केश, कीट आदिसे युक्त, क्षुतसे दूषित तथा अवज्ञाके हेतुसे बना हो, धीर पुरुष उसे राक्षसोंका भाग समझते हैं। हे भारत ! अननुज्ञात अथवा जो शूद्र, शस्त्रजीवी और दुष्टात्मा मनुष्योंके द्वारा उपभुक्त हुआ करता है, धीर पुरुषोंने उसे राक्षसोंका भाग कहा है। जो दूसरेका जूठा भोजन किया जाता है और जो देवता, अतिथि तथा बालकोंको न देकर स्वयं भोजन किया जाता है, दैव और पितृकार्यमें वह सदा राक्षसोंका भाग कहके विदित हुआ करता है, हे नरश्रेष्ठ ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन तीनों वर्णोंके द्वारा मन्त्रहीन और क्रियारहित जो श्राद्धकी वस्तु परिवेषित होती है, पण्डित लोग उसे राक्षसोंका भाग समझते हैं। घृतकी आहुतिके अतिरिक्त जो कुछ वस्तु परिवेषित होती है और जिसे दुराचारी मनुष्य भोजन किया करते हैं, उसे धीर पुरुषोंने राक्षसोंका भाग कहा है। हे भरतश्रेष्ठ ! राक्षसोंके जो भाग थे, वह सब कहे गये, अब पात्रभूत ब्राह्मणोंके विषयमें दानकी परीक्षा सुनिये। (६-११)

दैवे वाऽप्यथ पित्र्ये वा राजन्नार्हन्ति केतनम् ॥ १२ ॥
श्वित्री क्लीबश्च कुष्ठी च तथा यक्ष्महतश्च यः।
अपस्मारी च यश्चान्धो राजन्नार्हन्ति केतनम् ॥ १३ ॥
चिकित्सका देवलका वृथा नियमधारिणः।
सोमविक्रयिणश्चैव राजन्नार्हन्ति केतनम् ॥ १४ ॥
गायना नर्तकाश्चैव प्लवका वादकास्तथा।
कथका योधकाश्चैव राजन्नार्हन्ति केतनम् ॥ १५ ॥
होतारो वृषलानां च वृषलाध्यापकास्तथा।
तथा वृषलशिष्याश्च राजन्नार्हन्ति केतनम् ॥ १६ ॥
अनुयोक्ता च यो विप्र अनुयुक्तश्च भारत।
नार्हतस्तावपि श्राद्धं ब्रह्मविक्रयिणौ हि तौ ॥ १७ ॥
अग्रणीर्यः कृतः पूर्वं वर्णावरपरिग्रहः।
ब्राह्मणः सर्वविद्योऽपि राजन्नार्हति केतनम् ॥ १८ ॥
अनग्नयश्च ये विप्रा मृतनिर्यातकाश्च ये।
स्तेनाश्च पतिताश्चैव राजन्नार्हन्ति केतनम् ॥ १९ ॥

हे महाराज! जो सब ब्राह्मण पतित अर्थात् महापातक करनेसे जातिसे बाहर किये गये हैं, तथा जो जड वा उन्मत्त हैं, वे दैव अथवा पितृकार्यमें निमन्त्रण के योग्य नहीं हैं। हे महाराज! श्वेत-कुष्ठी, क्लीब, मण्डलकुष्ठी और जो पुरुष यक्ष्मारोगसे आक्रान्त, अपस्मार रोगसे ग्रस्त तथा अन्धे हैं, वे निमन्त्रणके योग्य नहीं हैं। हे राजन्! जो सब ब्राह्मण चिकित्सक, देवल अर्थात् देवार्चन वृत्तिजीवी, वृथा नियमधारी और सोमविक्रयी हैं, वे भी निमन्त्रण के योग्य नहीं हैं। गाने, नाचने, कूदने, बजानेवाले, कथक (वृथा-लापी) और योधक पुरुष भी निमन्त्रणके योग्य नहीं हैं। हे महाराज! जो ब्राह्मण शूद्रोंके याजक, अध्यापक तथा उनके सेवक हैं, वे भी निमन्त्रण-के योग्य नहीं हैं। हे भारत! जो ब्राह्मण अनुयोक्ता अर्थात् वेतन लेकर वेद पढे, वे दोनों ही वेद बेचनेवाले हैं। जो ब्राह्मण पहले सबमें अग्रणी रहे हों और पीछे हीन वर्णवाली शूद्रास्त्री-को परिग्रह करे, वह सर्वविद्या सम्पन्न होनेपर भी श्राद्धकालमें निमन्त्रणके योग्य नहीं हो सकता। (१२-१८)

हे महाराज! जो सब ब्राह्मण श्रौत-स्मार्त्त कर्मसे रहित हैं, जो मृतकोंका

अपरिज्ञानपूर्वाश्च गणपूर्वाश्च भारत ।
पुत्रिकापूर्वपुत्राश्च श्राद्धे नार्हन्ति केतनम् ॥ २० ॥
ऋणकर्ता च यो राजन्यश्च वार्धुषिको नरः ।
प्राणिविक्रयवृत्तिश्च राजन्नार्हन्ति केतनम् ॥ २१ ॥
स्त्रीपूर्वाः काण्डपृष्ठाश्च यावन्तो भरतर्षभ ।
अजपा ब्राह्मणाश्चैव श्राद्धे नार्हन्ति केतनम् ॥ २२ ॥
श्राद्धे दैवे च निर्दिष्टो ब्राह्मणो भरतर्षभ ।
दातुः प्रतिग्रहीतुश्च शृणुष्वानुग्रहं पुनः ॥ २३ ॥
चीर्णव्रता गुणैर्युक्ता भवेयुर्येऽपि कर्षकाः ।
सावित्रीज्ञाः क्रियावन्तस्ते राजन्केतनक्षमाः ॥ २४ ॥
क्षात्रधर्मिणमप्याजौ केतयेत्कुलजं द्विजम् ।
न त्वेव वणिजं तात श्राद्धे च परिकल्पयेत् ॥ २५ ॥
अग्निहोत्री च यो विप्रो ग्रामवासी च यो भवेत् ।

दान लेते और निज कर्मसे भ्रष्ट तथा पतित हैं, वे लोग भी निमन्त्रणके योग्य नहीं है। हे भारत ! जो मनुष्य पहले अपरिज्ञात, गणपूर्व अर्थात् नीच स्वभाव और पुत्रिकापुत्र अर्थात् "इस कन्यासे जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह मेरा कहावेगा," ऐसा नियम करके जो कन्या दान की जाती है, उससे जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह पितृगोत्रसे भ्रष्ट होकर मातृगोत्रोपजीवी होनेसे निन्दनीय होता है, इसलिये ऐसे पुरुष भी श्राद्धमें निमन्त्रणके योग्य नहीं हैं। हे राजन् ! जो मनुष्य ऋणकर्त्ता, कुसीदजीवी और प्राणियोंको बेचकर जीवनका समय बिताता है, वह श्राद्धकालमें निमन्त्रित नहीं हो सकता। हे भरतश्रेष्ठ! जो लोग स्त्रीजित तथा स्त्रीपण्योपजीवी, वेश्यापति और सन्ध्यावन्दनसे रहित हैं, वे ब्राह्मण श्राद्धमें निमन्त्रणके योग्य नहीं हैं। (१९-२२)

हे भरतश्रेष्ठ ! दैव और पितृश्राद्धके समय जो ब्राह्मण निर्दिष्ट होते तथा दाता और गृहीताके सम्बन्धमें जो अभ्यनुज्ञात हैं, इस समय उसे सुनो। हे महाराज ! जो व्रताचरण किया करते, गुणयुक्त और कर्षक, गायत्रीज्ञ और क्रियावान् हैं, वेही श्राद्धमें निमन्त्रणके योग्य हैं। युद्धमें क्षात्रधर्म युक्त होनेपर भी कुलीन ब्राह्मणको निमन्त्रण करे। हे तात ! परन्तु वणिक्वृत्तिवाले ब्राह्मणोंको श्राद्धमें निमन्त्रण न करे, जो ब्राह्मण अग्निहोत्री तथा जो ग्राम-

अस्तेनश्चातिथिज्ञश्च स राजन्केतनक्षमः ॥ २६ ॥
सावित्रीं जपते यस्तु त्रिकालं भरतर्षभ ।
भिक्षावृत्तिः क्रियावांश्च स राजन्केतनक्षमः ॥ २७ ॥
उदितास्तमितो यश्च तथैवास्तमितोदितः ।
अहिंस्रश्चाल्पदोषश्च स राजन्केतनक्षमः ॥ २८ ॥
अकल्कको ह्यतर्कश्च ब्राह्मणो भरतर्षभ ।
संसर्गे भैक्ष्यवृत्तिश्च स राजन्केतनक्षमः ॥ २९ ॥
अव्रती कितवः स्तेनः प्राणिविक्रयिको वणिक् ।
पश्चाच्च पीतवान्सोमं स राजन्केतनक्षमः ॥ ३० ॥
अर्जयित्वा धनं पूर्वं दारुणैरपि कर्मभिः ।
भवेत्सर्वातिथिः पश्चात्स राजन्केतनक्षमः ॥ ३१ ॥
ब्रह्मविक्रयनिर्दिष्टं स्त्रिया यच्चार्जितं धनम् ।
अदेयं पितृविप्रेभ्यो यच्च क्लैब्यादुपार्जितम् ॥ ३२ ॥
क्रियमाणेऽपवर्गे च यो द्विजो भरतर्षभ ।

वासी हुआ करते हैं और जो अस्तेय अर्थात् कभी दूसरोंकी वस्तु हरण नहीं करते तथा जो लोग अतिथिज्ञ हैं, वेही श्राद्धमें निमन्त्रणके योग्य हैं। जो ब्राह्मण त्रिकाल गायत्रीका जप करते और भिक्षावृत्ति अवलंबन करके भी क्रियावान हैं, वेही निमन्त्रणके योग्य हैं। हे राजन्! जो ब्राह्मण पहले दरिद्र रहके फिर समृद्धिमान हो, जो अहिंसक और अविद्यत्वादि दोषोंसे रहित हो, वही श्राद्धमें निमंत्रणके योग्य है। हे भरतश्रेष्ठ जो अदांभिक और अतर्की हैं, तथा सम्पत्तिसम्पन्न गृहमें भिक्षावृत्ति अवलम्बन करके जीवनका समय व्यतीत करते हैं, वेही श्राद्धके समय निमन्त्रणके योग्य हैं। (२३--२९)

हे भरतश्रेष्ठ! हे राजन्! जो ब्राह्मण अव्रती, धूर्त्त, अपहारक, प्राणिविक्रयी और वणिकवृत्तिसे युक्त होके भी देवताओंको दान करके पश्चात् सोमपान करता है, वह भी श्राद्धकालमें निमन्त्रणके योग्य हैं। हे राजन्! पहले दारुण कर्मोंसे धनोपार्जन करके पीछे सर्वातिथि होता है, वह भी श्राद्धकालमें निमन्त्रणके योग्य है। वेद बेचके जो धन प्राप्त होता है, जो धन स्त्रियोंके द्वारा उपार्जित हुआ करता है और दीन वचन तथा मिथ्या शपथ आदिके सहारे जो धन संग्रह किया जाता है, वह पितरोंको अदेय है। (३०-३२)

न व्याहरति यद्युक्तं तस्याधर्मे गवानृतम् ॥ ३३ ॥
श्राद्धस्य ब्राह्मणः कालः प्राप्तं दधि घृतं तथा ।
सोमक्षयश्च मांसं च यदारण्यं युधिष्ठिर ॥ ३४ ॥
श्राद्धापवर्गे विप्रस्य स्वधा वै मुदिता भवेत् ।
क्षत्रियस्यापि यो ब्रूयात्प्रीयन्तां पितरस्त्विति ॥ ३५ ॥
अपवर्गे तु वैश्यस्य श्राद्धकर्मणि भारत ।
अक्षय्यमभिधातव्यं स्वस्ति शूद्रस्य भारत ॥ ३६ ॥
पुण्याहवाचनं दैवं ब्राह्मणस्य विधीयते ।
एतदेव निरोङ्कारं क्षत्रियस्य विधीयते ॥ ३७ ॥
वैश्यस्य दैवे वक्तव्यं प्रीयन्तां देवता इति ।
कर्मणामानुपूर्व्येण विधिपूर्वं कृतं शृणु ॥ ३८ ॥
जातकर्मादिकाः सर्वास्त्रिषु वर्णेषु भारत ।
ब्रह्मक्षत्रे हि मन्त्रोक्ता वैश्यस्य च युधिष्ठिर ॥ ३९ ॥
विप्रस्य रशना मौञ्जी मौर्वी राजन्यगामिनी ।
बाल्वजी ह्येव वैश्यस्य धर्म एष युधिष्ठिर ॥ ४० ॥

हे भरतर्षभ ! श्राद्धकी समाप्ति होनेपर जो ब्राह्मण "अस्तु स्वधा" इत्यादि वचन नहीं कहते, उन्हें गोशपथ पापके समान अधर्म हुआ करता है। हे युधिष्ठिर ! अमावास्या, ब्राह्मण, दही, घृत और जङ्गली हरिनका मांस जब प्राप्त हो, वही श्राद्धका समय है। श्राद्धकी समाप्तिके समय प्रदाताके "स्वधोच्यताम्" वचन कहने पर ब्राह्मण यदि "अस्तु स्वधा" कहे, तो वह वचन पितरोंको प्रीतिकर होता है। क्षत्रियको भी श्राद्ध समाप्त होनेके समय "पितृगण प्रसन्न होइये" ऐसा वचन कहना होगा। हे भारत ! वैश्यका श्राद्धकर्म समाप्त होनेके समय "अक्षय्य" उच्चारण और शूद्रके श्राद्ध समाप्त होनेके समय "स्वस्ति" शब्दका प्रयोग करना चाहिये। (३३-३६)

ब्राह्मणके देवकार्यमें ओंकारयुक्त पुण्याह-वाचन विहित है, क्षत्रियोंके पक्षमें ओंकाररहित पुण्याहवाचन करना चाहिये और वैश्यके दैव कर्ममें केवल "देवतावृन्द प्रसन्न होवें" इतनाही कहना योग्य है। कर्मोंके आनुपूर्वी क्रमसे भी विधिपूर्वक जो कार्य करना होता है, उसे सुनो। हे भारत ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यके विषयमें ऊपर कही हुई सब क्रिया मन्त्रोक्त कहके निर्दिष्ट

दातुः प्रतिग्रहीतुश्च धर्माधर्माविमौ शृणु ।
ब्राह्मणस्यानृतेऽधर्मः प्रोक्तः पातकसंज्ञितः ।
चतुर्गुणः क्षत्रियस्य वैश्यस्याष्टगुणः स्मृतः ॥ ४१ ॥
नान्यत्र ब्राह्मणोऽश्नीयात्पूर्वं विप्रेण केतितः ।
यवीयान्पशुहिंसायां तुल्यधर्मो भवेत्स हि ॥ ४२ ॥
तथा राजन्यवैश्याभ्यां यद्यश्नीयात्तु केतितः ।
यवीयान्पशुहिंसायां भागार्धं समवाप्नुयात् ॥ ४३ ॥
दैवं वाऽप्यथ वा पित्र्यं योऽश्नीयाद्ब्राह्मणादिषु ।
अस्नातो ब्राह्मणो राजंस्तस्याधर्मो गवानृतम् ॥ ४४ ॥
आशौचो ब्राह्मणो राजन् योऽश्नीयाद्ब्राह्मणादिषु ।
ज्ञानपूर्वमथो लोभात्तस्याधर्मो गवानृतम् ॥ ४५ ॥
अर्थेनान्येन यो लिप्सेत्कर्मार्थं चैव भारत ।
आमन्त्रयति राजेन्द्र तस्याधर्मोऽनृतं स्मृतम् ॥ ४६ ॥

हैं। हे युधिष्ठिर! ब्राह्मणोंकी रशना मुञ्जमयी, क्षत्रियोंकी रशना मौर्वी और वैश्योंकी रशना बल्वज तृणमयी कही जाती है, यही धर्म है। अब दाता और प्रतिग्रहीताके धर्माधर्म सुनो। (३७—४१)

एक कार्षापणके निमित्त मिथ्यावादी ब्राह्मणको जितने परिमाणसे पातक संज्ञित अधर्म होता है, क्षत्रियको उस विषयमें चौगुना और वैश्यको आठगुणा हुआ करता है। ब्राह्मणको उचित है, कि विप्रके द्वारा पहले निमन्त्रित होकर दूसरेके यहां भोजन न करे, यदि करे, तो पहले निमन्त्रण देनेवालेके निकट वह निकृष्ट होता है, और पशुहिंसासे जो पाप हुआ करता है, उसे भी वही पाप लगता है। क्षत्रिय भी वैश्यसे यदि निमन्त्रित होके दूसरेके यहां भोजन करे, तो उसके समीप निन्दित होके पशुहिंसाके पापका अर्द्ध-भाग पाता है। हे राजन्! ब्राह्मण आदिके दैव अथवा पितृकार्यमें जो ब्राह्मण विना स्नान किये भोजन करता है, उसे मिथ्यावचन और गोवध-जनित अधर्म हुआ करता है। (४१—४४)

हे महाराज! जो ब्राह्मण जन्म मृत्यु आदिके आशौचसे युक्त होकर दूसरेके दैव और पितृकार्यमें जानके अथवा लोभ-वशसे भोजन करता है, उसे गोवध और मिथ्याभाषण जनित अधर्म हुआ करता है। हे भारत! जो पुरुष तीर्थयात्रा आदिके मिषसे जीविकार्थी होकर अर्थ-

अवेदव्रतचारित्रास्त्रिभिर्वर्णैर्युधिष्ठिर ।
मन्त्रवत्परिविष्यन्ते तस्याधर्मो गवानृतम् ॥ ४७ ॥
युधिष्ठिर उवाच- पित्र्यं वाऽप्यथवा दैवं दीयते यत्पितामह ।
एतदिच्छाम्यहं ज्ञातुं दत्तं केषु महाफलम् ॥ ४८ ॥
भीष्म उवाच- येषां दाराः प्रतीक्षन्ते सुवृष्टिमिव कर्षकाः ।
उच्छेषपरिशेषं हि तान्भोजय युधिष्ठिर ॥ ४९ ॥
चारित्रनिरता राजन्ये कृशाः कृशवृत्तयः ।
अर्थिनश्चोपगच्छन्ति तेषु दत्तं महाफलम् ॥ ५० ॥
तद्भक्तास्तद्गृहा राजंस्तद्बलास्तदपाश्रयाः ।
अर्थिनश्च भवन्त्यर्थे तेषु दत्तं महाफलम् ॥ ५१ ॥
तस्करेभ्यः परेभ्यो वा ये भयार्ता युधिष्ठिर ।

लाभकी इच्छा करता अथवा कार्यके लिये दाताके निकट धन मांगता है, हे राजेन्द्र ! उसे भी गोहत्या और मिथ्या भाषण जनित अधर्म होता है। जो पुरुष वेदाध्ययन, व्रताचरण और चारित्र-संशोधन नहीं करता, उसे यदि ब्राह्मण आदि तीनों वर्ण मन्त्रोच्चारणपूर्वक परिवेषण करें तो उन्हें भी गोवध और मिथ्यावचनजनित अधर्म हुआ करता है। (४५—४७)

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! पित्र्य और दैवकार्यमें जो कुछ दान किया जाता है, वह दानकी वस्तु कैसे पुरुषोंको दान करनेसे महत् फल हुआ करता है ? मैं इसे ही जाननेकी अभिलाष करता हूं। (४८)

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर ! जैसे कृषक लोग उत्तम वृष्टिकी प्रतीक्षा करते हैं, वैसे ही जिन लोगोंकी स्त्रियें भोजन-पात्रके शेष बचे हुए अन्नके सहित थालीमें स्थित परिशिष्ट अन्नकी प्रतीक्षा किया करती हैं, उन लोगोंको भोजन करावे। हे महाराज ! जो लोग चरित-निरत कृश और कृश वृत्तिवाले हैं, और जिनके निकट अतिथि गमन किया करते हैं, उन्हें दान करनेसे महत् फल होता है। हे राजन् ! चरित ही जिनका उपजीव्य है, चरित्र ही जिनका स्त्रीपुत्र आदि परिवारवर्ग है, चरित्र ही जिनका बल और परलोकगमनका अवलम्ब है, जो लोग अर्थका प्रयोजन होनेपर ही अर्थी बनते हैं, केवल अर्थसंग्रहके लिये नहीं जांचते, उन्हें दान करनेसे महत् फल हुआ करता है। (४९-५१)

हे युधिष्ठिर ! जो तस्कर अथवा शत्रुसे भयार्त्त होके याचक बनते अथवा

अर्थिनो भोक्तुमिच्छन्ति तेषु दत्तं महाफलम् ॥ ५२ ॥
अकल्कस्य विप्रस्य रौक्ष्यात्करकृतात्मनः ।
बटवो यस्य भिक्षन्ति तेभ्यो दत्तं महाफलम् ॥ ५३ ॥
हृतस्वा हृतदाराश्च ये विप्रा देशसंप्लवे ।
अर्थार्थमभिगच्छन्ति तेभ्यो दत्तं महाफलम् ॥ ५४ ॥
व्रतिनो नियमस्थाश्च ये विप्राः श्रुतसंमताः ।
तत्समाप्त्यर्थमिच्छन्ति तेभ्यो दत्तं महाफलम् ॥५५॥
अत्युत्क्रान्ताश्च धर्मेषु पाषण्डसमयेषु च ।
कृशप्राणाः कृशधनास्तेभ्यो दत्तं महाफलम् ॥ ५६ ॥
कृतसर्वस्वहरणा निर्दोषाः प्रभविष्णुभिः ।
स्पृहयन्ति च भुक्त्वाऽन्नं तेषु दत्तं महाफलम् ॥ ५७ ॥
तपस्विनस्तपोनिष्ठास्तेषां भैक्षचराश्च ये ।
अर्थिनः किंचिदिच्छन्ति तेषु दत्तं महाफलम् ॥ ५८ ॥
महाफलविधिर्दाने श्रुतस्ते भरतर्षभ ।

भोजन करनेकी इच्छा करते हैं, उन्हें दान करनेसे महाफल हुआ करता है। निष्पाप ब्राह्मण दरिद्रतावशसे हाथमें अन्न लिये हो और कोई भूखा ब्राह्मण उससे मांगे, तो उसे दान करनेसे महाफल होता है। जो ब्राह्मण देश-संप्लवके समय स्त्री आदि सर्वस्व हरे जानेपर धनके लिये सम्मुख आवे, तो उसे दान करनेसे महत् फल हुआ करता है। जो ब्राह्मण व्रतनिष्ठ, नियम-स्थ और श्रुतिसम्मत होकर व्रतादि-समाप्तिके निमित्त धनकी इच्छा करते हैं, उन्हें दान करनेसे महत् फल होता है। (५२—५५)

जो लोग पाषण्डमर्यादासे युक्त धर्मसे बहुत दूर निवास किया करते हैं, जो दुर्बल और धनहीन हैं, उन्हें दान करनेसे महाफल होता है। प्रभ-विष्णुगणने जिनका सर्वस्व हरण किया है, जो लोग निर्दोष हैं तथा जो किसी प्रकारसे पेट भरनेके लिये भोजनकी अभिलाष करते हैं, उन्हें दान करनेसे महत् फल होता है। जो लोग तपस्वी और तपमें निष्ठावान् हैं, जो पुरुष उनके निमित्त भैक्षचर्य किया करते हैं, तथा जो याचक होके किञ्चित् भीख मांगते हैं, उन्हें दान देनेसे महाफल होता है। हे भरतश्रेष्ठ! दान विषयमें यह महाफलकी विधि तुमने सुनी, अब जिसके द्वारा लोग नरक

निरयं येन गच्छन्ति स्वर्गं चैव हि तच्छृणु ॥ ५९ ॥
गुर्वर्थमभयार्थं वा वर्जयित्वा युधिष्ठिर ।
येऽनृतं कथयन्ति स्म ते वै निरयगामिनः ॥ ६० ॥
परदाराभिहर्तारः परदाराभिमर्शिनः ।
परदारप्रयोक्तारस्ते वै निरयगामिनः ॥ ६१ ॥
ये परस्वापहर्तारः परस्वानां च नाशकाः ।
सूचकाश्च परेषां ये ते वै निरयगामिनः ॥ ६२ ॥
प्रपाणां च सभानां च संक्रमाणां च भारत ।
अगाराणां च भेत्तारो नरा निरयगामिनः ॥ ६३ ॥
अनाथां प्रमदां बालां वृद्धां भीतां तपस्विनीम् ।
वञ्चयन्ति नरा ये च ते वै निरयगामिनः ॥ ६४ ॥
वृत्तिच्छेदं गृहच्छेदं दारच्छेदं च भारत ।
मित्रच्छेदं तथाऽऽशायास्ते वै निरयगामिनः ॥ ६५ ॥
सूचकाः सेतुभेत्तारः परवृत्त्युपजीवकाः ।
अकृतज्ञाश्च मित्राणां ते वै निरयगामिनः ॥ ६६ ॥
पाषण्डा दूषकाश्चैव समयानां च दूषकाः ।

और स्वर्गमें गमन करते हैं, उसे सुनो। (५६—५९)

हे युधिष्ठिर! गुरुके लिये अथवा अभयदानके निमित्त, इन दो प्रकारके प्रयोजनोंके अतिरिक्त जो लोग मिथ्या कहते हैं, वे नरकगामी होते हैं। जो परायी स्त्री हरता है, अथवा परस्त्री-गमन करता है, वा परनारी हरनेमें सहायता वा प्रस्ताव करता है, वह नरकगामी होता है। जो परस्वापहारी अर्थात् परस्वनाश करता है, वह दूसरेके दोषोंकी सूचना करता है, वह नरक में पडता है। हे भारत! जो मनुष्य पानीयशाला सभासंक्रमण अर्थात् सेतु और गृहभेद करते हैं; जो मनुष्य अनाथ, बाला, वर्षीयसी, डरी हुई और दुःखिनी स्त्रीको ठगते हैं, वे नरकगामी हुआ करते हैं। (६०—६४)

हे भारत! जो लोग वृत्तिच्छेद, दारच्छेद, मित्रच्छेद करते और आशा तोडते हैं, वे भी नरकमें गमन किया करते हैं। जो दूसरेके निकट राजाकी चुगली करते हैं, श्रेष्ठ पुरुषोंकी मर्यादा तोडते हैं, परवृत्तिको उपजीव्य किया करते और मित्रोंके निकट अकृतज्ञ हुआ करते हैं; जो लोग वेदविरोधी और

ये प्रत्यवसिताश्चैव ते वै निरयगामिनः ॥ ६७ ॥
विषमव्यवहाराश्च विषमाश्चैव वृद्धिषु ।
लाभेषु विषमाश्चैव ते वै निरयगामिनः ॥ ६८ ॥
द्यूतसंव्यवहाराश्च निष्परीक्षाश्च मानवाः ।
प्राणिहिंसाप्रवृत्ताश्च ते वै निरयगामिनः ॥ ६९ ॥
कृताशं कृतनिर्देशं कृतभक्तं कृतश्रमम् ।
भेदैर्ये व्यपकर्षन्ति ते वै निरयगामिनः ॥ ७० ॥
पर्यश्नन्ति च ये दारानग्निभृत्यातिथींस्तथा ।
उत्सन्नपितृदेवेज्यास्ते वै निरयगामिनः ॥ ७१ ॥
वेदविक्रयिणश्चैव वेदानां चैव दूषकाः ।
वेदानां लेखकाश्चैव ते वै निरयगामिनः ॥ ७२ ॥
चातुराश्रम्यबाह्याश्च श्रुतिबाह्याश्च ये नराः ।
विकर्मभिश्च जीवन्ति ते वै निरयगामिनः ॥ ७३ ॥
केशविक्रयिका राजन् विषविक्रयिकाश्च ये ।
क्षीरविक्रयिकाश्चैव ते वै निरयगामिनः ॥ ७४ ॥
ब्राह्मणानां गवां चैव कन्यानां च युधिष्ठिर ।

पाखण्डी हैं, और जो साधुओंकी निन्दा करते तथा धर्मसङ्केतकी भी निन्दा किया करते हैं, जो सन्मार्गसे पतित हैं, वे सभी नरकमें गमन किया करते हैं। जो लोग सबके विरोधी विषयोंका व्यवहार करते, जो परीक्षारहित हैं, तथा जो प्राणिहिंसामें प्रवृत्त रहते हैं, वे भी नरकमें गमन करते हैं। (६५-६९)

जो लोग आशावान, कृतनिर्देश, वेतनयुक्त और परिश्रम किये हुए पुरुषोंको भेदित करके स्वामीके समीपसे दूर कर देते हैं, वे नरकगामी हुआ करते हैं; जो पत्नी, अग्नि, सेवक और अतिथियोंको परित्याग करते हैं, तथा जिन लोगोंमें पितृपूजा और देवार्चना नष्ट हुई है, वे भी नरकमें जाते हैं। जो वेदोंको बेंचते हैं, वेदोंके दोष वर्णन करते हैं और जो वेदलेखक हैं, वेभी नरकगामी होते हैं। जो मनुष्य चारों आश्रमोंसे बाहर होके वेदविरुद्ध अकर्मके सहारे जीवन बिताते हैं, वे भी नरकमें गमन किया करते हैं। हे राजन्! जो लोग केश, विष और क्षीर बेचते हैं, वे भी नरकमें गमन करते हैं। (७०—७४)

हे युधिष्ठिर! ब्राह्मण, गऊ और

येऽन्तरं यान्ति कार्येषु ते वै निरयगामिनः ॥ ७५ ॥
शस्त्रविक्रयिकाश्चैव कर्तारश्च युधिष्ठिर।
शल्यानां धनुषां चैव ते वै निरयगामिनः ॥ ७६ ॥
शिलाभिः शङ्कुभिर्वापि श्वभ्रैर्वा भरतर्षभ।
ये मार्गमनुरुन्धन्ति ते वै निरयगामिनः ॥ ७७ ॥
उपाध्यायांश्च भृत्यांश्च भक्तांश्च भरतर्षभ।
ये त्यजन्त्यविकारां स्त्रींस्ते वै निरयगामिनः ॥ ७८ ॥
अप्राप्तदमकाश्चैव नासानां वेधकाश्च ये।
बन्धकाश्च पशूनां ये ते वै निरयगामिनः ॥ ७९ ॥
अगोप्तारश्च राजानो बलिषड्भागतस्कराः।
समर्थाश्चाप्यदातारस्ते वै निरयगामिनः ॥ ८० ॥
क्षान्तान् दान्तांस्तथा प्राज्ञान् दीर्घकालं सहोषितान्।
त्यजन्ति कृतकृत्या ये ते वै निरयगामिनः ॥ ८१ ॥
बालानामथ वृद्धानां दासानां चैव ये नराः।
अदत्त्वा भक्षयन्त्यग्रे ते वै निरयगामिनः ॥ ८२ ॥
एते पूर्वं विनिर्दिष्टाः प्रोक्ता निरयगामिनः।

कन्यागणके कार्य विषयमें जो विघ्नकारी होता है, वह नरकमें गमन करता है। हे धर्मराज! जो लोग शस्त्र बेचते और बनाते हैं, तथा शल्य और धनुषको बनाते तथा बेचते हैं, वे भी नरकगामी होते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! जो शिला, शंकु अथवा गढेके सहारे मार्ग रोकता है, वह नरकगामी होता है। हे भरतश्रेष्ठ जो उपाध्याय, सेवक, भक्त और निरपराधिनी स्त्रीका परित्याग करता है, वह नरकगामी हुआ करता है, जो अप्राप्त दम्यावस्थामें पशुओंकी नाक छेदता है और अण्डकोशको मर्दन करके उनके बलवीर्यको नष्ट करता है, वह भी नरकगामी होता है। (७५--७९)

जो राजा प्रजाकी रक्षा न करके छठवां भाग कर लेता है और समर्थ होके दान नहीं करता, वह भी नरकगामी हुआ करता है। जो कृतकार्य होकर क्षमाशील, दान्त, बुद्धिमान और बहुत समयके सहवासी मनुष्यको परित्याग करता है, वह भी नरकमें पडता है। जो मनुष्य बालक, बूढे और सेवकोंको अन्न न देकर स्वयं अगाडी भोजन करते हैं, वे नरकगामी होते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! जो लोग नरकमें

भागिनः स्वर्गलोकस्य वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥ ८३ ॥
सर्वेष्वेव तु कार्येषु दैवपूर्वेषु भारत।
हन्ति पुत्रान् पशून्कृत्स्नान्ब्राह्मणातिक्रमः कृतः ॥८४॥
दानेन तपसा चैव सत्येन च युधिष्ठिर।
ये धर्ममनुवर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ८५ ॥
शुश्रूषाभिस्तपोभिश्च विद्यामादाय भारत।
ये प्रतिग्रहनिःस्नेहास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ८६ ॥
भयात्पापात्तथा बाधाद्दारिद्र्याद्व्याधिधर्षणात्।
यत्कृते प्रतिमुच्यन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ८७ ॥
क्षमावन्तश्च धीराश्च धर्मकार्येषु चोत्थिताः।
मङ्गलाचारसंपन्नाः पुरुषाः स्वर्गगामिनः ॥ ८८ ॥
निवृत्ता मधुमांसेभ्यः परदारेभ्य एव च।
निवृत्ताश्चैव मद्येभ्यस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ८९ ॥
आश्रमाणां च कर्तारः कुलानां चैव भारत।
देशानां नगराणां च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ९० ॥
वस्त्राभरणदातारो भक्तपानान्नदास्तथा।

जाते हैं, उनका विषय कहा गया; अब जो मनुष्य स्वर्गलोकमें गमन करते हैं, उनका विषय कहता हूं। (८०-८३)

हे भारत! दैव आदि समस्त कार्योंमें ब्राह्मणोंको अतिक्रम करनेसे पुत्र, पशु प्रभृति विनष्ट होते हैं, इसलिये जो ब्राह्मणातिक्रम नहीं करते, वे स्वर्गगामी होते हैं, हे युधिष्ठिर! जो मनुष्य दान, तपस्या और सत्यके सहारे धर्मपूर्वक कार्य करते हैं, वे स्वर्गगामी हुआ करते हैं। जो मनुष्य गुरुसेवा और तपस्यासे विद्या उपार्जन करके प्रतिग्रहसे निवृत्त रहते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं। जिसके द्वारा लोग भय, पाप, सङ्कट, दरिद्रता और व्याधिसे मुक्त होते हैं, वे पुरुष भी स्वर्गगामी होते हैं। क्षमावान, धीर, सब कार्योंमें उद्यत रहनेवाले और मङ्गलाचारयुक्त पुरुष स्वर्गगामी होते हैं। (८४-८८)

जो पुरुष मधु, मांस और परस्त्रीगमनसे निवृत्त रहते तथा मद्यपान करनेमें प्रवृत्त नहीं होते, वे मनुष्य स्वर्गमें गमन करते हैं। हे भारत! जो सब आश्रमोंको पालन करनेवाले कुल, देश तथा नगरोंके रक्षाकर्ता हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो लोग

कुटुम्बानां च दातारः पुरुषाः स्वर्गगामिनः ॥ ९१ ॥
सर्वहिंसानिवृत्ताश्च नराः सर्वसहाश्च ये ।
सर्वस्याश्रयभूताश्च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ९२ ॥
मातरं पितरं चैव शुश्रूषन्ति जितेन्द्रियाः ।
भ्रातॄणां चैव सस्नेहास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ९३ ॥
आढ्याश्च बलवन्तश्च यौवनस्थाश्च भारत ।
ये वै जितेन्द्रिया धीरास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ९४ ॥
अपराधिषु सस्नेहा मृदवो मृदुवत्सलाः ।
आराधनसुखाश्चापि पुरुषाः स्वर्गगामिनः ॥ ९५ ॥
सहस्रपरिवेष्टारस्तथैव च सहस्रदाः ।
त्रातारश्च सहस्राणां ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ९६ ॥
सुवर्णस्य च दातारो गवां च भरतर्षभ ।
यानानां वाहनानां च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ९७ ॥
वैवाहिकानां द्रव्याणां प्रेष्याणां च युधिष्ठिर ।
दातारो वाससां चैव ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ९८ ॥
विहारावसथोद्यानकूपारामसभाप्रपाः ।

वस्त्र और आभूषण दान करते, अन्न, जल वितरण करते और कुटुम्बका प्रतिपालन करते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं। जो मनुष्य सर्वहिंसासे निवृत्त होकर सब कुछ सहते हैं और सबके अवलम्ब हैं, वे भी स्वर्गमें गमन करते हैं। जो सब मनुष्य जितेन्द्रिय होकर मातापिताकी सेवा करते हैं और भाइयोंके विषयमें स्नेहवान रहते हैं, वेभी स्वर्गमें गमन करते हैं। (८९-९३)

हे भारत! जो मनुष्य बलवान, यौवनसम्पन्न, आढ्य, जितेन्द्रिय और वीर होते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं। जो अपराधी पुरुषके ऊपर भी स्नेहयुक्त, कोमल स्वभाव और मृदुवत्सल होते हैं, तथा आराधनासे दूसरोंको सुखी करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो मनुष्य सहस्र पुरुषोंको परिवेशन करते तथा उनका त्राण करते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! जो लोग सुवर्ण और गऊ दान करते हैं, तथा यान और वाहन प्रदान किया करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। हे युधिष्ठिर! जो लोग वैवाहिक वस्तु वस्त्र, आभरण आदि तथा दास दासी प्रभृति दान करते हैं, वे भी स्वर्गगामी

वप्राणां चैव कर्तारस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ९९ ॥
निवेशनानां क्षेत्राणां वसतीनां च भारत ।
दातारः प्रार्थितानां च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥१००॥
रसानां चाथ बीजानां धान्यानां च युधिष्ठिर ।
स्वयमुत्पाद्य दातारः पुरुषाः स्वर्गगामिनः ॥ १०१ ॥
यस्मिंस्तस्मिन् कुले जाता बहुपुत्राः शतायुषः ।
सानुक्रोशा जितक्रोधाः पुरुषाः स्वर्गगामिनः ॥१०२॥
एतदुक्तममुत्रार्थं दैवं पित्र्यं च भारत ।
दानधर्मं च दानस्य यत्पूर्वमृषिभिः कृतम् ॥ १०३ ॥ [१६५५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे स्वर्गनरकगामिवर्णने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

युधिष्ठिर उवाच— इदं मे तत्त्वतो राजन् वक्तुमर्हसि भारत ।
अहिंसयित्वाऽपि कथं ब्रह्महत्या विधीयते ॥ १ ॥
भीष्म उवाच— व्यासमामन्त्र्य राजेन्द्र पुरा यत्पृष्टवानहम् ।
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि तदिहैकमनाः शृणु ॥ २ ॥

होते हैं । (९४—९८)

जो लोग विहार स्थान, आश्रम, बगीचा, कूप, आराम, सभा, पानीयशाला और क्षेत्र आदि निर्माण करते हैं, वे पुरुष स्वर्गगामी होते हैं। हे भारत ! जो मनुष्य निवेशगृहक्षेत्र और वासगृह दान तथा प्रार्थित विषय प्रदान करते हैं, वेभी स्वर्गगामी होते हैं । हे युधिष्ठिर ! जो पुरुष रस, बीज और धान्य आदि स्वयं उत्पन्न करके दान करते हैं, वेभी स्वर्गगामी होते हैं। जो पुरुष सत्कुलमें उत्पन्न होकर बहु पुत्रसे युक्त और शतायु होकर दयावान् तथा क्रोधजयी होते हैं, वे स्वर्ग में गमन करते हैं । हे भारत ! परलोकके निमित्त पहले ऋषियोंके द्वारा देव वा पितृकार्यमें जो दानधर्म वर्णित हुआ था, उसे ही मैंने कहा है । (९९-१०३)

अनुशासनपर्वमें २३ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें २४ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत ! हिंसा न करनेपर भी किस प्रकारसे ब्रह्महत्या विहित हुई है ? इसे आप मेरे निकट यथार्थ रीतिसे वर्णन करिये । (१)

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र ! पहले समयमें व्यासदेवको आमन्त्रण करके मैंने जो पूछा था, इस समय वह विषय तुमसे कहता हूं, तुम एकाग्रचित्त होकर

चतुर्थस्त्वं वसिष्ठस्य तत्त्वमाख्याहि मे मुने।
अहिंसयित्वा केनेह ब्रह्महत्या विधीयते ॥ ३ ॥
इति पृष्टो मया राजन् पराशरशरीरजः।
अब्रवीन्निपुणो धर्मे निःसंशयमनुत्तमम् ॥ ४ ॥
ब्राह्मणं स्वयमाहूय भिक्षार्थे कृशवृत्तिनम्।
ब्रूयान्नास्तीति यः पश्चात्तं विद्याद्ब्रह्मघातिनम् ॥ ५ ॥
मध्यस्थस्येह विप्रस्य योऽनूचानस्य भारत।
वृत्तिं हरति दुर्बुद्धिस्तं विद्याद्ब्रह्मघातिनम् ॥ ६ ॥
गोकुलस्य तृषार्तस्य जलार्थे वसुधाधिप।
उत्पादयति यो विघ्नं तं विद्याद्ब्रह्मघातिनम् ॥ ७ ॥
यः प्रवृत्तां श्रुतिं सम्यक् शास्त्रं वा मुनिभिः कृतम्।
दूषयत्यनभिज्ञाय तं विद्याद्ब्रह्मघातिनम् ॥ ८ ॥
आत्मजां रूपसंपन्नां महतीं सदृशे वरे।
न प्रयच्छति यः कन्यां तं विद्याद्ब्रह्मघातिनम् ॥ ९ ॥
अधर्मनिरतो मूढो मिथ्या यो वै द्विजातिषु।
दद्यान्मर्मातिगं शोकं तं विद्याद्ब्रह्मघातिनम् ॥ १० ॥

सुनो। (२)

मैंने व्यासदेवसे पूछा, हे मुनि! आप वसिष्ठके प्रपौत्र हैं, इसलिये यथार्थ विषय वर्णन करिये, कि हिंसा न करनेपर भी किस प्रकारसे ब्रह्महत्या विहित होती है? हे राजन्! पराशर-पुत्र व्यासदेव मेरा प्रश्न सुनके धर्म विषयमें निपुणभाव और निःसंशय रूपसे उत्तम वचन कहने लगे। जो मनुष्य गुणशाली ब्राह्मणको भिक्षा देनेके लिये स्वयं आह्वान करके फिर "नहीं" कहके लौटा देता है, उसे ब्रह्मघाती जानो। (३-५)

हे भारत! जो दुर्बुद्धिवाला पुरुष अङ्गसहित वेद पढनेवाले मध्यस्थ ब्राह्मणकी वृत्ति हरता है, उसे ब्रह्मघाती जानना चाहिये, तृषार्त, जलकी इच्छा करनेवाले गोसमूहको जल पीनेमें जो विघ्न करता है उसे ब्रह्मघ्न जानना चाहिये। जो मनुष्य समुच्चार्यमाण श्रुति अथवा मुनियोंके द्वारा पूर्ण रीतिसे बने हुए शास्त्रोंको अनभिज्ञ लोगोंके निमित्त दूषित करता है, उसे भी ब्रह्मघाती जानना होगा। जो पुरुष रूपवान बडी कन्या, सदृश वरको नहीं दान करता, उसे ब्रह्मघाती जानना

चक्षुषा विप्रहीणस्य पङ्गुलस्य जडस्य वा ।
हरेत यो वै सर्वस्वं तं विद्याद्ब्रह्मघातिनम् ॥ ११ ॥
आश्रमे वा वने वाऽपि ग्रामे वा यदि वा पुरे ।
अग्निं समुत्सृजेन्मोहात्तं विद्याद्ब्रह्मघातिनम् ॥ १२ ॥ [१६६७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे ब्रह्मघ्नकथने चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

युधिष्ठिर उवाच– तीर्थानां दर्शनं श्रेयः स्नानं च भरतर्षभ ।
श्रवणं च महाप्राज्ञ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ १ ॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यानि भरतर्षभ ।
वक्तुमर्हसि मे तानि श्रोताऽस्मि नियतं प्रभो ॥ २ ॥
भीष्म उवाच– इममङ्गिरसा प्रोक्तं तीर्थवंशं महाद्युते ।
श्रोतुमर्हसि भद्रं ते प्राप्स्यसे धर्ममुत्तमम् ॥ ३ ॥
तपोवनगतं विप्रमभिगम्य महामुनिम् ।
पप्रच्छाङ्गिरसं धीरं गौतमः संशितव्रतः ॥ ४ ॥
अस्ति मे भगवन्कश्चित्तीर्थेभ्यो धर्मसंशयः ।

चाहिये। जो अधर्ममें रत रहनेवाला मूढ मनुष्य द्विजातियोंको निरर्थक मर्मान्तिक शोक प्रदान करता है, उसे ब्रह्मघाती जानो। जो पुरुष नेत्रहीन जड और पंगुओंका सर्वस्व धन हरण करता है, उसे भी ब्रह्मघाती जानो। आश्रम, वन, ग्राम वा पुरमें जो अज्ञानसे अग्निको त्यागता है उसे ब्रह्मघाती समझो। (६—१२)

अनुशासनपर्वमें २४ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें २५ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे महाप्राज्ञ भरतश्रेष्ठ! तीर्थदर्शन, तीर्थस्नान और तीर्थमाहात्म्य सुनना अत्यन्त कल्याणकारी है, इसलिये मैं उसे यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं। हे प्रभु भरतर्षभ! पृथिवीपर जो सब तीर्थ पवित्र हों, वह आप मेरे समीप वर्णन करिये, मैं सदा उसके सुननेका अभिलाषी हूं। (१–२)

भीष्म बोले, हे महातेजस्वी! इस तीर्थ प्रसङ्गको अङ्गिरा मुनिने कहा है, उसे सुननेसे तुम्हारा कल्याण होगा तथा तुम्हें उत्तम धर्म प्राप्त होगा। संशितव्रती गौतमने तपोवनमें स्थित, धीर विप्र महामुनि अङ्गिराके निकट आके प्रश्न किया, हे भगवान् महामुनि! मुझे तीर्थविषयक धर्ममें कुछ सन्देह

तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि तन्मे शंस महामुने ॥ ५ ॥
उपस्पृश्य फलं किं स्यात्तेषु तीर्थेषु वै मुने ।
प्रेत्यभावे महाप्राज्ञ तद्यथाऽस्ति तथा वद ॥ ६ ॥
अङ्गिरा उवाच- सप्ताहं चन्द्रभागां वै वितस्तामूर्मिमालिनीम् ।
विगाह्य वै निराहारो निर्मलो मुनिवद्भवेत् ॥ ७ ॥
काश्मीरमण्डले नद्यो याः पतन्ति महानदम् ।
ता नदीः सिन्धुमासाद्य शीलवान्स्वर्गमाप्नुयात् ॥८॥
पुष्करं च प्रभासं च नैमिषं सागरोदकम् ।
देविकामिन्द्रमार्गं च स्वर्णबिन्दुं विगाह्य च ॥ ९ ॥
विबोध्यते विमानस्थः सोऽप्सरोभिरभिष्टुतः ।
हिरण्यबिन्दुं विक्षोभ्य प्रयतश्चाभिवाद्य च ॥ १० ॥
कुशेशयं च देवं तं धूयते तस्य किल्बिषम् ।
इन्द्रतोयां समासाद्य गन्धमादनसन्निधौ ॥ ११ ॥
करतोयां कुरङ्गे च त्रिरात्रोपोषितो नरः ।
अश्वमेधमवाप्नोति विगाह्य प्रयतः शुचिः ॥ १२ ॥
गङ्गाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते ।

है, इसलिये उसे सुननेकी इच्छा करता हूं, आप इस विषयको मेरे समीप वर्णन करिये। हे महाप्राज्ञ मुनिश्रेष्ठ! तीर्थोंमें स्नान करनेसे परलोकमें क्या फल मिलता है, आप मुझसे वही कहिये। (३—६)

अङ्गिरा बोले, सप्ताहभर निराहार रहके चन्द्रभागा और तरङ्गमालायुक्त वितस्ता नदीमें स्नान करनेसे मनुष्य मुनियोंकी भांति पवित्र होता है। काश्मीर राज्यसे जो नदियें महानद सिन्धुमें गिरती हैं, उनमें जाके स्नान करनेसे स्वर्ग प्राप्त होता है। पुष्कर, प्रभास, नैमिष, सागरोदक, देविका, इन्द्रमार्ग और स्वर्णबिन्दुमें स्नान करनेसे पुरुष विमानपर चढके अप्सराओंसे स्तुत और विबोधित होता है। हिरण्य बिन्दुमें स्नान करके प्रयत होकर उसे प्रणाम करने और कुशेशय नदमें स्नान करनेसे सब पाप नष्ट होजाते हैं। गन्धमादनके निकट इन्द्रतोया और कुरङ्ग देशकी करतोया नदीमें त्रिरात्र उपवास करके प्रयत और पवित्र होकर स्नान करनेसे मनुष्यको अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। (७-१२)

गङ्गाद्वार, कुशावर्त्त, बिल्वक नील-

तथा कनखले स्नात्वा धूतपाप्मा दिवं व्रजेत् ॥ १३ ॥
अपां ह्रद उपस्पृश्य वाजिमेधफलं लभेत् ।
ब्रह्मचारी जितक्रोधः सत्यसंधस्त्वहिंसकः ॥ १४ ॥
यत्र भागीरथी गङ्गा पतते दिशमुत्तराम् ।
महेश्वरस्य त्रिस्थाने यो नरस्त्वभिषिच्यते ॥ १५ ॥
एकमासं निराहारः स पश्यति हि देवताः ।
सप्तगङ्गे त्रिगङ्गे च इन्द्रमार्गे च तर्पयन् ॥ १६ ॥
सुधां वै लभते भोक्तुं यो नरो जायते पुनः ।
महाश्रम उपस्पृश्य योऽग्निहोत्रपरः शुचिः ॥ १७ ॥
एकमासं निराहारः सिद्धिं मासेन स व्रजेत् ।
महाह्रद उपस्पृश्य भृगुतुङ्गे त्वलोलुपः ॥ १८ ॥
त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया ।
कन्याकूप उपस्पृश्य बलाकायां कृतोदकः ॥ १९ ॥
देवेषु लभते कीर्त्तिं यशसा च विराजते ॥ २० ॥
देविकायामुपस्पृश्य तथा सुन्दरिकाह्रदे ।
अश्विन्यां रूपवर्चस्कं प्रेत्य वै लभते नरः ॥ २१ ॥

पर्वत और कनखलमें स्नान करनेसे मनुष्य पापरहित होकर सुरलोकमें गमन करता है। ब्रह्मचारी, जितक्रोध, सत्यसन्ध और अहिंसक मनुष्य जलह्रदमें स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल पाते हैं। जिस स्थानमें भागीरथी गङ्गा उत्तर दिशामें गिरती हैं, जो मनुष्य निराहार रहके एक महीनेतक उस महेश्वरके स्वर्ग, मर्त्य और पाताल, तीनों स्थानोंमें अभिषिक्त होता है, वह सब देवताओंका दर्शन करता है। सप्तगङ्ग, त्रिगङ्ग और इन्द्रमार्गमें तर्पण करके जो मनुष्य फिर जन्म ग्रहण करते हैं, वे सुधा भोजन करनेमें समर्थ होते हैं। जो लोग अग्निहोत्रपरायण, पवित्र और एक महीनेतक निराहारी होके महाश्रममें अभिषिक्त होते हैं, वे एक महीनेके बीच सिद्धि लाभ कर सकते हैं। जो पुरुष त्रिरात्र उपवास करके अलोलुप होकर महाह्रद भृगुतुण्डमें स्नान करता है, वह ब्रह्महत्यासे छूट जाता है। कन्याकूप और बलाकामें स्नान करनेसे देवताओंके बीच कीर्तिमान होकर मनुष्य यशोराशिसे विभूषित होता है। (१३–२०)

देविका और सुन्दरिका ह्रदमें

महागङ्गामुपस्पृश्य कृत्तिकाङ्गारके तथा।
पक्षमेकं निराहारः स्वर्गमाप्नोति निर्मलः ॥ २२ ॥
वैमानिक उपस्पृश्य किङ्किणीकाश्रमे तथा।
निवासेऽप्सरसां दिव्ये कामचारी महीयते ॥ २३ ॥
कालिकाश्रममासाद्य विपाशायां कृतोदकः।
ब्रह्मचारी जितक्रोधस्त्रिरात्रं मुच्यते भवात् ॥ २४ ॥
आश्रमे कृत्तिकानां तु स्नात्वा यस्तर्पयेत्पितॄन्।
तोषयित्वा महादेवं निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात् ॥ २५ ॥
महापुर उपस्पृश्य त्रिरात्रोपोषितः शुचिः।
त्रसानां स्थावराणां च द्विपदानां भयं त्यजेत् ॥ २६ ॥
देवदारुवने स्नात्वा धूतपाप्मा कृतोदकः।
देवलोकमवाप्नोति सप्तरात्रोषितः शुचिः ॥ २७ ॥
शरस्तम्बे कुशस्तम्बे द्रोणशर्मपदे तथा।
अपां प्रपतनासेवी सेव्यते सोऽप्सरोगणैः ॥ २८ ॥
चित्रकूटे जनस्थाने तथा मन्दाकिनीजले।
विगाह्य वै निराहारो राजलक्ष्म्या निषेव्यते ॥ २९ ॥

अश्विनी नक्षत्रमें स्नान करनेसे मनुष्य परलोकमें रूप और तेजोयुक्त हुआ करता है। एक पक्षतक निराहार रहके महागङ्गा और कृत्तिकाङ्गारकमें स्नान करनेसे मनुष्य पवित्र होकर स्वर्गमें जाते हैं, वैमानिक तथा किङ्किणीकाश्रममें स्नान करनेसे मनुष्य अप्सराओंके दिव्य निवासमें कामचारी होकर वास करता है। कालिकाश्रममें जाके विपाशा नदीमें त्रिरात्र स्नान करनेसे ब्रह्मचारी और जितक्रोध होकर मनुष्य संसारसे विमुक्त होता है। जो पुरुष कृत्तिकाश्रममें स्नान करके पितृतर्पण करता है, वह महादेवको सन्तुष्ट करके निर्मल होकर स्वर्गमें गमन किया करता है। (२१-२५)

त्रिरात्र उपवास करके पवित्र होकर महापुरमें स्नान करनेसे स्थावर, जंगम और द्विपदोंके भयसे छूटता है। सप्तरात्र उपवास करके देवदारुवनमें स्नान करके पवित्र होनेसे मनुष्य पापरहित और कृतोदक होकर देवलोक पाता है। शरस्तम्ब, कुशस्तम्ब और द्रोणशर्मपदमें जो मनुष्य जल गिरनेके समय स्नान करते हैं, वे अप्सराओंसे सेवित होते हैं। चित्रकूट, जनस्थान और

श्यामायास्त्वाश्रमं गत्वा उषित्वा चाभिषिच्य च।
एकपक्षं निराहारस्त्वन्तर्धानफलं लभेत् ॥ ३० ॥
कौशिकीं तु समासाद्य वायुभक्षस्त्वलोलुपः।
एकविंशतिरात्रेण स्वर्गमारोहते नरः ॥ ३१ ॥
मतङ्गवाप्यां यः स्नायादेकरात्रेण सिध्यति।
विगाहति ह्यनालम्बमन्धकं वै सनातनम् ॥ ३२ ॥
नैमिषे स्वर्गतीर्थे च उपस्पृश्य जितेन्द्रियः।
फलं पुरुषमेधस्य लभेन्मासं कृतोदकः ॥ ३३ ॥
गङ्गाह्रद उपस्पृश्य तथा चैवोत्पलावने।
अश्वमेधमवाप्नोति तत्र मासं कृतोदकः ॥ ३४ ॥
गंगायमुनयोस्तीर्थे तथा कालंजरे गिरौ।
दशाश्वमेधानाप्नोति तत्र मासं कृतोदकः ॥ ३५ ॥
षष्टिह्रद उपस्पृश्य चान्नदानाद्विशिष्यते।
दश तीर्थसहस्राणि तिस्रः कोट्यस्तथाऽपराः ॥ ३६ ॥
समागच्छन्ति माघ्यां तु प्रयागे भरतर्षभ।
माघमासं प्रयागे तु नियतः संशितव्रतः ॥ ३७ ॥

मन्दाकिनीके जलमें निराहारी होकर स्नान करनेसे मनुष्य राजलक्ष्मीके द्वारा निषेवित होता है। श्यामाके आश्रममें आगमन करके निराहारी होकर एक पक्ष वहां निवास करके जो पुरुष अभिषिक्त होता है, वह अन्तर्द्धानका फल अर्थात् गन्धर्वादि लोकोंको भोगता है। (२९–३०)

कौशिकी नदीमें जाके वायुभक्षी और अलोलुप होकर इक्कीस रात्रिमें स्वर्गलोकमें जा सकता है। जो पुरुष मतङ्गवापीमें एक रात्र स्नान करता है, वह सिद्ध होकर सहजमें ही सनातन अन्धक लोक पाता है। जितेन्द्रिय पुरुष नैमिष और स्वर्गतीर्थमें जलस्पर्श करके एक महीनेतक स्नान करनेसे पुरुषमेधका फल पानेमें समर्थ होता है। गङ्गाह्रद और उत्पलावनमें एक महीनेतक स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। गंगा यमुनाके तीर्थमें और कालञ्जर पर्वतपर एक महीनेतक स्नान करनेसे दश अश्वमेधका फल प्राप्त होता है। षष्टिह्रदमें स्नान करना अन्नदानसे भी श्रेष्ठ है। (३१—३६)

हे भरतश्रेष्ठ! माघके महीनेमें

स्नात्वा तु भरतश्रेष्ठ निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात् ।
मरुद्गण उपस्पृश्य पितृणामाश्रमे शुचिः ॥ ३८ ॥
वैवस्वतस्य तीर्थे च तीर्थभूतो भवेन्नरः ।
तथा ब्रह्मसरो गत्वा भागीरथ्यां कृतोदकः ॥ ३९ ॥
एकमासं निराहारः सोमलोकमवाप्नुयात् ॥ ४० ॥
उत्पातके नरः स्नात्वा अष्टावक्रे कृतोदकः ।
द्वादशाहं निराहारो नरमेधफलं लभेत् ॥ ४१ ॥
अश्मपृष्ठे गयायां च निरविन्दे च पर्वते ।
तृतीयां क्रौञ्चपद्यां च ब्रह्महत्यां विशुध्यते ॥ ४२ ॥
कलविङ्क उपस्पृश्य विद्याच्च बहुशो जलम् ।
अग्नेः पुरे नरः स्नात्वा अग्निकन्यापुरे वसेत् ॥ ४३ ॥
करवीरपुरे स्नात्वा विशालायां कृतोदकः ।
देवहृद उपस्पृश्य ब्रह्मभूतो विराजते ॥ ४४ ॥
पुनरावर्तनन्दां च महानन्दां च सेव्य वै ।
नन्दने सेव्यते दान्तस्त्वप्सरोभिरहिंसकः ॥ ४५ ॥

प्रयागमें तीन करोड दस हजार तीर्थ इकट्ठे होते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! माघमासमें प्रयागमें सदा संशितव्रत होकर स्नान करनेसे मनुष्य निष्पाप होकर स्वर्गलोक पाता है। मरुद्गण और पितृगणके आश्रम तथा वैवस्वत तीर्थमें पवित्र होकर स्नान करनेसे मनुष्य तीर्थ स्वरूप होता है। ब्रह्मसरोवर तथा भागीरथीमें जाकर निराहारी होकर एक महीनेतक स्नान करनेसे चन्द्रलोक प्राप्त होता है। (३८-४०)

उत्पातक और अष्टावक्र तीर्थमें बारह दिन अनाहारी होकर स्नान करनेसे मनुष्यको नरमेध यज्ञका फल मिलता है। गयाके अन्तर्गत अश्मपृष्ठमें स्नान करनेसे पहली ब्रह्महत्या, निरविन्द पर्वत पर दूसरी ब्रह्महत्या और क्रौञ्चपदीमें स्नान करनेसे मनुष्य तीसरी ब्रह्महत्यासे भी छूट जाता है। कलविंकमें स्नान करनेसे भूरिवारि विदित हो सकती है। अग्निपुरमें स्नान करनेसे मनुष्य अग्निकन्यापुरीमें निवास करता है। करवीरपुर और विशाला नदीमें स्नान करके देवह्रदमें स्नान करनेसे मनुष्य ब्रह्म होके विराजता है। फिर आवर्तनंदा और महानंदामें स्नान करनेसे मनुष्य नन्दनवनमें अप्सराओंसे सेवित और अहिंसक

उर्वशीं कृत्तिकायोगे गत्वा चैव समाहितः।
लौहित्ये विधिवत्स्नात्वा पुण्डरीकफलं लभेत् ॥ ४६ ॥
रामह्रद उपस्पृश्य विपाशायां कृतोदकः।
द्वादशाहं निराहारः कल्मषाद्विप्रमुच्यते ॥ ४७ ॥
महाह्रद उपस्पृश्य शुद्धेन मनसा नरः।
एकमासं निराहारो जमदग्निगतिं लभेत् ॥ ४८ ॥
विन्ध्ये संताप्य चात्मानं सत्यसन्धस्त्वहिंसकः।
विनयात्तप आस्थाय मासेनैकेन सिध्यति ॥ ४९ ॥
नर्मदायामुपस्पृश्य तथा शूर्पारकोदके।
एकपक्षं निराहारो राजपुत्रो विधीयते ॥ ५० ॥
जम्बूमार्गे त्रिभिर्मासैः संयतः सुसमाहितः।
अहोरात्रेण चैकेन सिद्धिं समधिगच्छति ॥ ५१ ॥
कोकामुखे विगाह्याथ गत्वा चाञ्जलिकाश्रमम्।
शाकभक्षश्चीरवासाः कुमारीर्विन्दते दश ॥ ५२ ॥
वैवस्वतस्य सदनं न स गच्छेत्कदाचन।
यस्य कन्याह्रदे वासो देवलोकं स गच्छति ॥ ५३ ॥

होता है। कार्त्तिकी पूर्णमासीको समाहित होकर उर्वशीतीर्थमें जाके लौहित्य नदमें विधिपूर्वक स्नान करनेसे मनुष्य पुण्डरीकफल पा सकता है। (४१-४६)

बारह दिन निराहार रहके राम-ह्रद और विपाशा नदीमें स्नान करनेसे मनुष्य पापोंसे छूठ जाता है। मनुष्य एक महीनेतक निराहारी रहके शुद्धचित्त से महाह्रदमें स्नान करे, तो जमदग्निकी गति पानेमें समर्थ होवे। सत्यसन्ध, अहिंसक मनुष्य विन्ध्य-तीर्थमें आत्मा को सन्तप्त करके विनयके सहित तपस्या अवलम्बन करनेसे एक महीनेमें सिद्धि लाभ कर सकता है। नर्मदा और शूर्पारकोदकमें एक पक्षतक निराहारी रहके स्नान करनेसे मनुष्य राजपुत्र होता है। जम्बूमार्गमें तीन महीनेतक संयत और उत्तम रीतिसे समाहित होकर रहनेसे मनुष्य एक दिनरातमें सिद्धिलाभ करता है। (४७—५१)

मनुष्य शाकभक्षी और चीरवासा होकर कोकामुखमें स्नान करके चाण्डालिकाश्रममें जानेसे कुमारीसंज्ञक दश तीर्थोंको पाता है, वह पुरुष कदापि यमपुरीमें नहीं जाता। कन्या-ह्रदमें वास करनेवाले देवलोकमें जाते हैं। हे

प्रभासे त्वेकरात्रेण अमावास्यां समाहितः ।
सिध्यते तु महाबाहो यो नरो जायतेऽमरः ॥ ५४ ॥
उज्जानक उपस्पृश्य आर्ष्टिषेणस्य चाश्रमे ।
पिङ्गायाश्चाश्रमे स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५५ ॥
कुल्यायां समुपस्पृश्य जप्त्वा चैवाघमर्षणम् ।
अश्वमेधमवाप्नोति त्रिरात्रोपोषितो नरः ॥ ५६ ॥
पिण्डारक उपस्पृश्य एकरात्रोषितो नरः ।
अग्निष्टोममवाप्नोति प्रभातां शर्वरीं शुचिः ॥ ५७ ॥
तथा ब्रह्मसरो गत्वा धर्मारण्योपशोभितम् ।
पुण्डरीकमवाप्नोति उपस्पृश्य नरः शुचिः ॥ ५८ ॥
मैनाके पर्वते स्नात्वा तथा संध्यामुपास्य च ।
कामं जित्वा च वै मासं सर्वयज्ञफलं लभेत ॥ ५९ ॥
कालोदकं नन्दिकुण्डं तथा चोत्तरमानसम् ।
अभ्येत्य योजनशताद् भ्रूणहा विप्रमुच्यते ॥ ६० ॥
नन्दीश्वरस्य मूर्तिं तु दृष्ट्वा मुच्येत किल्बिषैः ।
स्वर्गमार्गे नरः स्नात्वा ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥ ६१ ॥

महाबाहो ! प्रभास तीर्थमें अमावास्या तिथिकी एक रात्रि समाहित चित्तसे निवास करके जो लोग सिद्धि लाभ करते हैं, वे अमर होते हैं। आर्ष्टिषेणके आश्रम, उज्जानक और पिङ्गाके आश्रममें स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त होता है। कुल्या तीर्थमें स्नान कर तीन रात्र उपवास करके अघमर्षण मन्त्रका जप करनेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। (५२-५६)

पिण्डारकमें स्नान करके एक रात्र उपवास करनेसे मनुष्य पवित्र होकर रात्रि बीतनेपर अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता है। धर्मारण्यमें शोभित ब्रह्मसरोवरमें जाके स्नान करनेसे मनुष्य पवित्र होके पुण्डरीकफल पाता है। मैनाक पर्वतपर स्नान करके सन्ध्याकी उपासना करनेसे मनुष्य एक महीनेमें कामको जीतकर सर्वमेध यज्ञका फल पाता है। भ्रूणहत्या करनेवाला पुरुष एक सौ योजनसे कालोदक, नन्दिकुण्ड और उत्तरमानसमें जानेसे उक्त पापसे मुक्त होता है। नन्दीश्वरकी मूर्तिका दर्शन करनेसे पापसे छुटकारा मिलता है। मनुष्य स्वर्गमार्गमें स्नान करनेसे ब्रह्मलोकमें गमन करता है। (५७-६१)

विख्यातो हिमवान्पुण्यः शंकरश्वशुरो गिरिः ।
आकरः सर्वरत्नानां सिद्धचारणसेवितः ॥ ६२ ॥
शरीरमुत्सृजेत्तत्र विधिपूर्वमनाशके ।
अध्रुवं जीवितं ज्ञात्वा यो वै वेदान्तगो द्विजः ॥ ६३ ॥
अभ्यर्च्य देवतास्तत्र नमस्कृत्य मुनींस्तथा ।
ततः सिद्धो दिवं गच्छेद्ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ ६४ ॥
कामं क्रोधं च लोभं च यो जित्वा तीर्थमावसेत् ।
न तेन किंचिन्न प्राप्तं तीर्थाभिगमनाद्भवेत् ॥ ६५ ॥
यान्यगम्यानि तीर्थानि दुर्गाणि विषमाणि च ।
मनसा तानि गम्यानि सर्वतीर्थसमीक्षया ॥ ६६ ॥
इदं मेध्यमिदं पुण्यमिदं स्वर्ग्यमनुत्तमम् ।
इदं रहस्यं वेदानामाप्लाव्यं पावनं तथा ॥ ६७ ॥
इदं दद्याद् द्विजातीनां साधोरात्महितस्य च ।
सुहृदां च जपेत्कर्णे शिष्यस्यानुगतस्य च ॥ ६८ ॥
दत्तवान् गौतमस्यैतदङ्गिरा वै महातपाः ।
अङ्गिराः समनुज्ञातः काश्यपेन च धीमता ॥ ६९ ॥

महादेवका श्वशुर हिमवान् नाम विख्यात पर्वत सब रत्नोंकी खान तथा सिद्धचारणोंसे निषेवित है, उस स्थानमें अनशन व्रत अवलम्बन करके जो वेदान्तपारदर्शी ब्राह्मण जीवनको अनित्य समझकर विधिपूर्वक देवताओं और मुनियोंकी पूजा तथा उन्हें नमस्कार करके शरीर छोडते हैं, वे सिद्ध होकर स्वर्गमें गमन करते हैं और अन्त में सनातन ब्रह्मलोकमें जाते हैं। जो पुरुष काम, क्रोध और लोभको जीतके तीर्थमें वास करता है, तीर्थगमन निबन्धनसे उसके लिये कुछ भी अप्राप्य नहीं रहता। जो सब तीर्थ अगम्य, दुर्गम और विषम हैं, सर्वतीर्थोंकी समीक्षाके हेतु मनके सहारे उन तीर्थोंमें गमन करे; यही मेध्य, पवित्र और यही उत्तम स्वर्गजनक है; यह देवताओंका रहस्य है, इसलिये आप्लाव्य तथा अत्यन्त पावन है। (६२—६७)

यह द्विजातियोंको दान करे, आत्महितकर, साधु, सुहृद और अनुयायी शिष्योंके कानमें इसका जप करे। महातपस्वी अङ्गिरा मुनिने इसे गौतमको दान किया था, अङ्गिरा धीमान् काश्यपके द्वारा पूर्णरीतिसे अनुज्ञात हुए

महर्षीणामिदं जप्यं पावनानां तथोत्तमम् ।
जपंश्चाभ्युत्थितः शश्वन्निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात् ॥ ७० ॥
इदं यश्चापि शृणुयाद्रहस्यं त्वङ्गिरोमतम् ।
उत्तमे च कुले जन्म लभेज्जातीश्च संस्मरेत् ॥ ७१ ॥ [१७३८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे आंगिरसतीर्थयात्रायां पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

वैशम्पायन उवाच- बृहस्पतिसमं बुद्ध्या क्षमया ब्रह्मणः समम् ।
पराक्रमे शक्रसममादित्यसमतेजसम् ॥ १ ॥
गाङ्गेयमर्जुनेनाजौ निहतं भूरितेजसम् ।
भ्रातृभिः सहितोऽन्यैश्च पर्यपृच्छद्युधिष्ठिरः ॥ २ ॥
शयानं वीरशयने कालाकाङ्क्षिणमच्युतम् ।
आजग्मुर्भरतश्रेष्ठं द्रष्टुकामा महर्षयः ॥ ३ ॥
अत्रिर्वसिष्ठोऽथ भृगुः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
अङ्गिरा गौतमोऽगस्त्यः सुमतिः सुयतात्मवान् ॥ ४ ॥
विश्वामित्रः स्थूलशिराः संवर्तः प्रमतिर्दमः ।
बृहस्पत्युशनोव्यासाश्च्यवनः काश्यपो ध्रुवः ॥ ५ ॥
दुर्वासा जमदग्निश्च मार्कण्डेयोऽथ गालवः ।

थे; यह महर्षियोंका जप्य है, समस्त पवित्र वस्तुओंके बीच उत्तम है; मनुष्य उठकर नित्य इसे जपनेसे पापरहित होके स्वर्गलोक पाते हैं। जो लोग अंगिरासम्मत इस रहस्यको सुनते हैं, वे उत्तम कुलमें जन्म लेकर निज जातिस्मर हुआ करते हैं। (६८-७१)

अनुशासनपर्वमें २५ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें २६ अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, बुद्धिमें बृहस्पति, क्षमामें ब्रह्मा, पराक्रममें इन्द्र और तेजमें सूर्यके समान अत्यन्त तेजस्वी भीष्म जब युद्धक्षेत्रमें अर्जुनके द्वारा घायल होकर शरशय्यापर शयन करते थे, जिस समय युधिष्ठिर भाइयों तथा अन्य पुरुषोंके सहित उनसे धर्म-विषय पूछ रहे थे, उस समयमें उस कालाकांक्षी भरतश्रेष्ठको देखनेकी इच्छा करके महर्षि अत्रि, वसिष्ठ, भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरा, गौतम, अगस्त्य, सुयतात्मवान् सुमति, विश्वामित्र, स्थूलशिरा, संवर्त्त, प्रमति, दम, बृहस्पति, उशना, व्यास, च्यवन, काश्यप, ध्रुव, दुर्वासा, जमदग्नि,

भरद्वाजोऽथ रैभ्यश्च यवक्रीतस्त्रितस्तथा ॥ ६ ॥
स्थूलाक्षः शबलाक्षश्च कण्वो मेधातिथिः कृशः ।
नारदः पर्वतश्चैव सुधन्वाथैकतो द्विजः ॥ ७ ॥
नितंभूर्भुवनो धौम्यः शतानन्दोऽकृतव्रणः ।
जामदग्न्यस्तथा रामः कचश्चेत्येवमादयः ॥ ८ ॥
समागता महात्मानो भीष्मं द्रष्टुं महर्षयः ।
तेषां महात्मनां पूजामागतानां युधिष्ठिरः ॥ ९ ॥
भ्रातृभिः सहितश्चक्रे यथावदनुपूर्वशः ।
ते पूजिताः सुखासीनाः कथाश्चक्रुर्महर्षयः ॥ १० ॥
भीष्माश्रिताः सुमधुराः सर्वेन्द्रियमनोहराः ।
भीष्मस्तेषां कथाः श्रुत्वा ऋषीणां भावितात्मनाम् ॥ ११ ॥
मेने दिविष्ठमात्मानं तुष्ट्या परमया युतः ।
ततस्ते भीष्ममामन्त्र्य पाण्डवांश्च महर्षयः ॥ १२ ॥
अन्तर्धानं गताः सर्वे सर्वेषामेव पश्यताम् ।
तानृषीन्सुमहाभागानन्तर्धानगतानपि ॥ १३ ॥
पाण्डवास्तुष्टुवुः सर्वे प्रणेमुश्च मुहुर्मुहुः ।
प्रसन्नमनसः सर्वे गाङ्गेयं कुरुसत्तमम् ॥ १४ ॥

मार्कण्डेय, गालव, भरद्वाज, रैभ्य, यवक्रीत, त्रित, स्थूलाक्ष, शबलाक्ष, कण्व, मेधातिथि, कृश, नारद, पर्वत, सुधन्वा, एकत, द्वित, नितम्भू, भुवन, धौम्य, शतानन्द, अकृतब्रह्म जामदग्न्य राम और कच आदि महात्मा महर्षि लोग भीष्मको देखनेके लिये वहांपर उपस्थित हुए। भाइयोंके सहित युधिष्ठिरने उन आये हुए महानुभाव महर्षियोंकी विधिपूर्वक पूजा की। महर्षि लोग पूजित होकर सुखसे बैठके भीष्माश्रित, उत्तम, मधुर, सर्वेन्द्रियमनोहर कथा कहने लगे। भीष्मने उन भावितात्मा ऋषियोंका वचन सुनकर परम सन्तुष्ट होकर अपनेको स्वर्गमें पहुंचा हुआ समझा। (१—१२)

अनन्तर वे महर्षिवृन्द भीष्म और पाण्डवोंको आमन्त्रण करके सबके सम्मुखमें ही अन्तर्धान होगये। महाभाग महर्षियोंके अन्तर्हित होनेपर भी पाण्डवगण वारंवार उनकी स्तुति तथा प्रणति करने लगे। अनन्तर वे सब प्रसन्न होकर कुरुसत्तम गंगानन्दनके निकट इस प्रकार उपस्थित हुए, जैसे

उपतस्थुर्यथोद्यन्तमादित्यं मन्त्रकोविदाः ।
प्रभावात्तपसस्तेषामृषीणां वीक्ष्य पाण्डवाः ॥ १५ ॥
प्रकाशन्तो दिशः सर्वा विस्मयं परमं ययुः ।
महाभाग्यं परं तेषामृषीणामनुचिन्त्य ते ।
पाण्डवाः सह भीष्मेण कथाश्चक्रुस्तदाश्रयाः ॥ १६ ॥
वैशम्पायन उवाच— कथान्ते शिरसा पादौ स्पृष्ट्वा भीष्मस्य पाण्डवः ।
धर्म्यं धर्मसुतः प्रश्नं पर्यपृच्छद्युधिष्ठिरः ॥ १७ ॥
युधिष्ठिर उवाच— के देशाः के जनपदा आश्रमाः के च पर्वताः ।
प्रकृष्टाः पुण्यतः काश्च ज्ञेया नद्यः पितामह ॥ १८ ॥
भीष्म उवाच— अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
शिलोञ्छवृत्तेः संवादं सिद्धस्य च युधिष्ठिर ॥ १९ ॥
इमां कश्चित्परिक्रम्य पृथिवीं शैलभूषणाम् ।
असकृद् द्विपदां श्रेष्ठः श्रेष्ठस्य गृहमेधिनः ॥ २० ॥
शिलवृत्तेर्गृहं प्राप्तः स तेन विधिनाऽर्चितः ।
उवास रजनीं तत्र सुमुखः सुखभागृषिः ॥ २१ ॥
शिलवृत्तिस्तु यत् कृत्यं प्रातस्तत्कृतवाञ्छुचिः ।

मन्त्रकोविद ब्राह्मण उदयशील सूर्यके सम्मुख उपस्थित होते हैं। पाण्डव लोग ऋषियोंके प्रभावसे सब दिशाओंको प्रकाशमान देखके परम विस्मित हुए। उन लोगोंने ऋषियोंके योग ऐश्वर्य अर्थात् आकाशगमन और अन्तर्द्धान आदि महामहिमाके विषयकी चिन्ता करके भीष्मके संग उनके अवलम्बनकी कथाका प्रस्ताव किया। श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कथा समाप्त होनेपर धर्म-नन्दन पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने भीष्मके दोनों चरणोंको मस्तकसे स्पर्श करके धर्मयुक्त प्रश्न किया। (१२—१७)

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! कौन देश, जनपद, आश्रम, पर्वत और नदियें पुण्यप्रभावमें प्रकृष्ट तथा जानने योग्य हैं ? (१८)

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर ! इस विषयमें प्राचीन लोग शिलोञ्छवृत्ति और सिद्धके संवादयुक्त इस पुराने इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। कोई श्रेष्ठ पुरुष इस शैलभूषित पृथिवी की वारंवार परिक्रमा करके एक उत्तम शिलवृत्ति गृहस्थके गृहमें उपस्थित हुआ। वह सुमुख सुखभाक् नाम ऋषिने वहां उपस्थित होते ही उससे

कृतकृत्यमुपातिष्ठत् सिद्धं तमतिथिं तदा ॥ २२ ॥
तौ समेत्य महात्मानौ सुखासीनौ कथाः शुभाः ।
चक्रतुर्वेदसंबद्धास्तच्छेषकृतलक्षणाः ॥ २३ ॥
शिलवृत्तिः कथान्ते तु सिद्धमामन्त्र्य यत्नतः ।
प्रश्नं पप्रच्छ मेधावी यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ २४ ॥
शिलवृत्तिरुवाच- के देशाः के जनपदाः केऽऽश्रमाः के च पर्वताः ।
प्रकृष्टाः पुण्यतः काश्च ज्ञेया नद्यस्तदुच्यताम् ॥ २५ ॥
सिद्ध उवाच- ते देशास्ते जनपदास्तेऽऽश्रमास्ते च पर्वताः ।
येषां भागीरथी गङ्गा मध्येनैति सरिद्वरा ॥ २६ ॥
तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैस्त्यागेन वा पुनः ।
गतिं तां न लभेज्जन्तुर्गङ्गां संसेव्य यां लभेत् ॥ २७ ॥
स्पृष्टानि येषां गाङ्गेयैस्तोयैर्गात्राणि देहिनाम् ।
न्यस्तानि न पुनस्तेषां त्यागः स्वर्गाद्विधीयते ॥ २८ ॥
सर्वाणि येषां गाङ्गेयैस्तोयैः कार्याणि देहिनाम् ।
गां त्यक्त्वा मानवा विप्र दिवि तिष्ठन्ति ते जनाः ॥२९॥

विधिपूर्वक पूजित होकर एक रात्रि उस स्थानमें वास किया। शिलवृत्ति दूसरे दिन भोरके समय कर्त्तव्य कार्योंको समाप्त कर पवित्र होकर उस कृतकृत्य सिद्ध अतिथिके निकट उपस्थित हुआ। वे दोनों महात्मा सुखसे एकत्र बैठके वेद उपनिषत् सम्बन्धीय कथा कहने लगे। कथा शेष होनेपर बुद्धिमान् शिलवृत्तिने यत्नपूर्वक सिद्धको आमन्त्रण करके वही विषय पूछा, जो कि तुम मुझसे पूछ रहे हो। (१९-२४)

शिलवृत्ति बोला, कौन कौनसे देश, जनपद, आश्रम, पर्वत और नदियें पुण्यप्रभावमें उत्कृष्ट हैं, तथा किन्हें विशेष रूपसे जानना होता है? उसेही आप वर्णन करिये। (२५)

सिद्ध बोला, वेही देश, जनपद, आश्रम और पर्वत उत्तम हैं, जिनके बीचसे नदियोंमें श्रेष्ठ भागीरथी गंगा गमन करती है; तपस्या, ब्रह्मचर्य, यज्ञ और दानसे जीवको जो गति प्राप्त होती है, गंगाको सेवन करनेसे लोग उस ही गतिको पानेमें समर्थ होते हैं। जिन देहधारियोंका शरीर गंगाजलसे स्पर्श होके नष्ट होता है, उनके उस देहत्यागसे स्वर्गलोक विहित हुआ करता है। हे विप्र! जिन लोगोंके सब कार्य गंगाजलसे सम्पन्न होते हैं, वे

पूर्वे वयसि कर्माणि कृत्वा पापानि ये नराः ।
पश्चाद्गङ्गां निषेवन्ते तेऽपि यान्त्युत्तमां गतिम् ॥ ३० ॥
स्नातानां शुचिभिस्तोयैर्गाङ्गेयैः प्रयतात्मनाम् ।
व्युष्टिर्भवति या पुंसां न सा क्रतुशतैरपि ॥ ३१ ॥
यावदस्थि मनुष्यस्य गङ्गातोयेषु तिष्ठति ।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ३२ ॥
अपहत्य तमस्तीव्रं यथा भात्युदये रविः ।
तथाऽपहत्य पाप्मानं भाति गङ्गाजलोक्षितः॥ ३३ ॥
विसोमा इव शर्वर्यो विपुष्पास्तरवो यथा ।
तद्वद्देशा दिशश्चैव हीना गङ्गाजलैः शिवैः ॥ ३४ ॥
वर्णाश्रमा यथा सर्वे धर्मज्ञानविवर्जिताः ।
क्रतवश्च यथाऽसोमास्तथा गङ्गां विना जगत् ॥३५ ॥
यथा हीनं नभोऽर्केण भूः शैलैः खं च वायुना ।
तथा देशा दिशश्चैव गङ्गाहीना न संशयः ॥ ३६ ॥
त्रिषु लोकेषु ये केचित्प्राणिनः सर्व एव ते ।
तर्प्यमाणाः परां तृप्तिं यान्ति गंगाजलैः शुभैः ॥३७॥

मनुष्य पृथिवीको त्यागके स्वर्गमें निवास करते हैं । जो मनुष्य पहली अवस्थामें पापकार्य करके पीछे गंगातीरपर वास करते हैं, वे भी उत्तम गति पासकते हैं, पवित्र गंगाजलमें स्नान करके जो लोग प्रसन्नचित्त हुए हैं, उन मनुष्यों-का जितना पुण्य बढता है, सैकडों यज्ञोंसे भी वैसा पुण्य लाभ नहीं होता । (२९-३१)

मनुष्यकी हड्डी जितने समयतक गंगाजलमें स्थित रहती है, उतने सहस्र वर्षतक वह स्वर्गलोकमें वास किया करता है । जैसे सूर्य उदय होनेके समय घोर अन्धकारका नाश करके शोभित होता है, गंगाजलमें स्नान करनेवाले मनुष्य भी उस ही प्रकार पापोंको नष्ट करके प्रकाशित होते हैं । चन्द्रमासे रहित रात्रि और पुष्पहीन वृक्षोंकी भांति कल्याणकारी गंगाजलसे रहित दिशा और देश शोभाहीन हुआ करते हैं । धर्मज्ञानरहित आश्रम और सोम-रसरहित यज्ञकी भांति गंगाके विना जगत् शोभा नहीं पाता । सूर्यरहित आकाशमण्डल, पहाडरहित पृथ्वी तथा वायुहीन आकाशकी भांति सब देश और सब दिशा निःसन्देह प्रभाहीन

यस्तु सूर्येण निष्टप्तं गाङ्गेयं पिबते जलम् ।
गवां निर्हारनिर्मुक्ताद्यावकात्तद्विशिष्यते ॥ ३८ ॥
इन्दुव्रतसहस्रं तु यश्चरेत्कायशोधनम् ।
पिबेद्यश्चापि गंगाम्भः समौ स्यातां न वा समौ ॥ ३९ ॥
तिष्ठेद्युगसहस्रं तु पदेनैकेन यः पुमान् ।
मासमेकं तु गंगायां समौ स्यातां न वा समौ ॥ ४० ॥
लम्बतेऽवाक्शिरा यस्तु युगानामयुतं पुमान् ।
तिष्ठेद्यथेष्टं यश्चापि गंगायां स विशिष्यते ॥ ४१ ॥
अग्नौ प्रास्तं प्रधूयेत यथा तूलं द्विजोत्तम ।
तथा गंगावगाढस्य सर्वपापं प्रधूयते ॥ ४२ ॥
भूतानामिह सर्वेषां दुःखोपहतचेतसाम् ।
गतिमन्वेषमाणानां न गंगासदृशी गतिः ॥ ४३ ॥
भवन्ति निर्विषाः सर्पा यथा तार्क्ष्यस्य दर्शनात् ।
गंगाया दर्शनात्तद्वत्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४४ ॥

होती हैं। तीनों लोकोंके बीच जो सब प्राणी हैं, वे पवित्र गंगाजलसे तर्पित होकर परम तृप्ति लाभ करते हैं। (२१—३७)

जो पुरुष सूर्यमन्तप्त गंगाजल पीता है, उसे गौवोंके गोवरसे बाहर हुए यव विकारके भक्षण करने तथा यावकव्रताचरणसे भी अधिक फल प्राप्त होता है। जो पुरुष शरीर शुद्ध करनेके लिये सहस्र चान्द्रायण व्रत करता है और जो मनुष्य गंगाजल पीता है; नहीं कह सकते, कि वे दोनों समान होते हैं वा नहीं; यदि कोई पुरुष सहस्र युग पर्यन्त एक पदसे निवास करे और दूसरा पुरुष यदि एक महीनेतक गंगाके तीरपर वास करे, तो वे दोनों समान होसकते हैं और नहीं भी होसकते। जो पुरुष दश हजार युगतक अवाक्शिरा होकर लटकता रहता है और जो पुरुष गंगाके तटपर वास करता है वह पहले कहे हुए पुरुषसे श्रेष्ठ होता है। हे द्विजोत्तम! जैसे अग्निमें पडी हुई रुई भस्म होजाती है, वैसे ही जो पुरुष गंगामें स्नान करते हैं, उनके सब पाप नष्ट होते हैं। (३८—४२)

इस लोकमें दुःखयुक्त चित्त और उपायकी खोज करनेवाले प्राणियोंके लिये गंगाके समान और कोई भी गति नहीं है। जैसे सर्प तार्क्ष्यदर्शन निबन्धनसे विषरहित होते हैं, वैसेही मनुष्य भी

अप्रतिष्ठाश्च ये केचिद्धर्मशरणाश्च ये ।
तेषां प्रतिष्ठा गंगेह शरणं शर्म वर्म च ॥ ४५ ॥
प्रकृष्टैरशुभैर्ग्रस्ताननेकैः पुरुषाधमान् ।
पततो नरके गंगासंश्रितान्प्रेत्य तारयेत् ॥ ४६ ॥
ते संविभक्ता मुनिभिर्नूनं देवैः सवासवैः ।
येऽभिगच्छन्ति सततं गंगां मतिमतां वर ॥ ४७ ॥
विनयाचारहीनाश्च अशिवाश्च नराधमाः ।
ते भवन्ति शिवा विप्र ये वै गंगामुपाश्रिताः ॥ ४८ ॥
यथा सुराणाममृतं पितॄणां च यथा स्वधा ।
सुधा यथा च नागानां तथा गंगाजलं नृणाम् ॥ ४९ ॥
उपासते यथा बाला मातरं क्षुधयार्दिताः ।
श्रेयस्कामास्तथा गंगामुपासन्तीह देहिनः ॥ ५० ॥
स्वायंभुवं यथा स्थानं सर्वेषां श्रेष्ठमुच्यते ।
स्नातानां सरितां श्रेष्ठा गंगा तद्वदिहोच्यते ॥ ५१ ॥
यथोपजीविनां धेनुर्देवादीनां धरा स्मृता ।

गंगाका दर्शन करते ही पापोंसे छूट जाते हैं । जो लोग प्रतिष्ठारहित होके अधर्मको अवलम्बन किया करते हैं, इस लोकमें गंगा ही उन लोगोंके लिये सहारा है, गंगाही सुख और संरक्षण धर्मस्वरूप है । अनेक प्रकारके प्रकृष्ट, पापग्रस्त, अधम पुरुष नरकमें पडते पडते भी यदि गंगाका आश्रय करें, तो गंगा उन्हें परलोकमें भी उत्तीर्ण करती है । हे मतिमतांवर ! जो लोग सदा गंगाकी ओर गमन करते हैं, इन्द्रके सहित देवताओं और मुनियोंके द्वारा निश्चय ही वे संविभक्त हुआ करते हैं । (४३—४७)

हे विप्र ! जो सब विनयाचार और कल्याणरहित अधम पुरुष भी गंगाके निकट आश्रित हुआ करते हैं, वे शिवस्वरूप हैं । जैसे देवताओंको अमृत, पितरोंको स्वधा और नागोंके लिये सुधा है, मनुष्योंके लिये गंगाजल भी वैसे ही है । जैसे भूखे बालक माताकी उपासना करते हैं; इस लोकमें कल्याणकी इच्छा करनेवाले पुरुष भी उस ही भांति गंगाकी आराधना किया करते हैं । जैसे स्वायम्भुव पद सबसे श्रेष्ठ कहा गया है, वैसे ही इस लोकमें स्नातक लोगोंके लिये नदियोंमें श्रेष्ठ गंगा ही सबसे उत्तम कहके वर्णित

तथोपजीविनां गंगा सर्वप्राणभृतामिह ॥ ५२ ॥
देवाः सोमार्कसंस्थानि यथा सत्रादिभिर्मखैः ।
अमृतान्युपजीवन्ति तथा गंगाजलं नराः ॥ ५३ ॥
जाह्नवीपुलिनोत्थाभिः सिकताभिः समुक्षितम् ।
आत्मानं मन्यते लोको दिविष्ठमिव शोभितम् ॥५४॥
जाह्नवीतीरसंभूतां मृदं मूर्ध्ना बिभर्ति यः ।
बिभर्ति रूपं सोऽर्कस्य तमोनाशाय निर्मलम् ॥ ५५ ॥
गंगोर्मिभिरथो दिग्धः पुरुषं पवनो यदा ।
स्पृशते सोऽस्य पाप्मानं सद्य एवापकर्षति ॥ ५६ ॥
व्यसनैरभितप्तस्य नरस्य विनशिष्यतः ।
गंगादर्शनजा प्रीतिर्व्यसनान्यपकर्षति ॥ ५७ ॥
हंसारावैः कोकरवै रवैरन्यैश्च पक्षिणाम् ।
पस्पर्ध गंगा गन्धर्वान् पुलिनैश्च शिलोच्चयान् ॥ ५८ ॥
हंसादिभिः सुबहुभिर्विविधैः पक्षिभिर्वृताम् ।
गंगां गोकुलसंबाधां दृष्ट्वा स्वर्गोऽपि विस्मृतः ॥ ५९ ॥
न सा प्रीतिर्दिविष्ठस्य सर्वकामानुपाश्नतः ।

हुआ करती है। जैसे उपजीवी लोगोंके लिये गऊ और देवताओंके लिये पृथ्वी है, वैसे ही प्राणियोंके पक्षमें गंगा है। जैसे देववृन्द सोम-सूर्य संस्थ-सत्रादिके सहारे अमृत उपभोग किया करते हैं, वैसे ही मनुष्य गंगाजलको उपजीव्य करके जीवन बिताते हैं। जान्हवीपुलिनमें उडते हुए वालूकणसे पूरित शरीरको लोग स्वर्गस्थके समान शोभित समझते हैं। (४८-५४)

जो लोग गंगाके तीरकी मृत्तिका सिर पर चढाते हैं, वे अन्धकारनाशके निमित्त सूर्यकी भांति निर्मल रूप लाभ करते हैं। गंगाकी तरंगसे युक्त वायु पुरुषको स्पर्श करते ही उसका पाप हरण किया करती है। विपदमें पडके जो मनुष्य विनष्ट होते हों, उनकी गंगादर्शन-जनित प्रीति विपदको नष्ट करती है। हंस, चक्रवाक और अन्य पक्षियोंके शब्दके सहारे गंगाने गन्धर्वों और पुलिनके द्वारा शिलासमूहकी स्पर्धा की है। हंस प्रभृति अनेक भांतिके पक्षीव्यूहसे परिपूरित और गोकुल सम्बाधशालिनी गंगाका दर्शन करनेसे स्वर्ग भी भूल जाता है। (५५-५९)

गंगातीरमें मनुष्योंको जैसी प्रीति

संभवेद्या परा प्रीतिर्गंगायाः पुलिने नृणाम् ॥ ६० ॥
वाङ्मनःकर्मजैर्ग्रस्तः पापैरपि पुमानिह ।
वीक्ष्य गंगां भवेत्पूतो अत्र मे नास्ति संशयः ॥६१॥
सप्तावरान् सप्त परान् पितॄंस्तेभ्यश्च ये परे ।
पुमांस्तारयते गंगां वीक्ष्य स्पृष्ट्वाऽवगाह्य च ॥ ६२ ॥
श्रुताऽभिलषिता पीता स्पृष्टा दृष्टावगाहिता ।
गंगा तारयते नृणामुभौ वंशौ विशेषतः ॥ ६३ ॥
दर्शनात्स्पर्शनात्पानात्तथा गंगेति कीर्तनात् ।
पुनात्यपुण्यान्पुरुषाञ्छतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६४ ॥
य इच्छेत्सफलं जन्म जीवितं श्रुतमेव च ।
स पितॄंस्तर्पयेद्गंगामभिगम्य सुरांस्तथा ॥ ६५ ॥
न सुतैर्न च वित्तेन कर्मणा न च तत्फलम् ।
प्राप्नुयात्पुरुषोऽत्यन्तं गंगां प्राप्य यदाप्नुयात् ॥ ६६ ॥
जात्यन्धैरिह तुल्यास्ते मृतैः पंगुभिरेव च ।
समर्था ये न पश्यन्ति गंगां पुण्यजलां शिवाम् ॥ ६७ ॥
भूतभव्यभविष्यज्ञैर्महर्षिभिरुपस्थिताम् ।

उत्पन्न होती है, सर्वकामफल भोगनेवाले स्वर्गवासी पुरुषोंकी भी वैसी प्रीति नहीं होती। वचन, मन और कर्मज पापग्रस्त मनुष्य इस लोकमें गंगाका दर्शन करनेसे ही पवित्र होते हैं, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है। जो पुरुष गंगाका दर्शन करता, गंगाजल स्पर्श करता तथा उसमें स्नान करता है, वह पहलेके सात और पीछेके सात पुरुषों तथा इसके अतिरिक्त जो सब पितर हैं, उन्हें भी उत्तीर्ण करता है। विशेष रीतिसे गंगामहात्म्य सुनना, गंगातीरमें जानेकी अभिलाष, गंगाजल पीने, स्पर्श करने, देखने तथा उसमें स्नान करनेसे मनुष्य पितृकुल और मातृकुल, दोनोंकाही उद्धार करता है। (६०-६३)

देखने, स्पर्श करने, पीने और गंगाका नाम लेनेसे भी वह एक सौ पुरुषोंको पवित्र करता है। जो लोग जन्म, जीवन और शास्त्रपाठ सफल करनेकी इच्छा करें, वे गंगामें जाकर पितरों और देवताओंका तर्पण करें। गंगामें गमन करनेसे पुरुष जो फल पाता है; पुत्र, वित्त और कर्मसे वह फल नहीं मिलता। जो समर्थ होके भी पुण्यजलवाली कल्याणदायिनी गंगाका दर्शन

देवैः सेन्द्रैश्च को गंगां नोपसेवेत मानवः ॥ ६८ ॥
वानप्रस्थैर्गृहस्थैश्च यतिभिर्ब्रह्मचारिभिः ।
विद्यावद्भिः श्रितां गंगां पुमान्को नाम नाश्रयेत् ॥६९॥
उत्क्रामद्भिश्च यः प्राणैः प्रयतः शिष्टसंमतः ।
चिन्तयेन्मनसा गंगां स गतिं परमां लभेत् ॥ ७० ॥
न भयेभ्यो भयं तस्य न पापेभ्यो न राजतः ।
आदेहपतनाद्गंगामुपास्ते यः पुमानिह ॥ ७१ ॥
महापुण्यां च गगनात्पतन्तीं वै महेश्वरः ।
दधार शिरसा गंगां तामेव दिवि सेविते ॥ ७२ ॥
अलंकृतास्त्रयो लोकाः पथिभिर्विमलैस्त्रिभिः ।
यस्तु तस्या जलं सेवेत्कृतकृत्यः पुमान् भवेत ॥ ७३ ॥
दिवि ज्योतिर्यथाऽऽदित्यः पितॄणां चैव चन्द्रमाः ।
देवेशश्च यथा नृणां गंगा च सरितां तथा ॥ ७४ ॥
मात्रा पित्रा सुतैर्दारैर्विमुक्तस्य धनेन वा ।
न भवेद्धि तथा दुःखं यथा गंगावियोगजम् ॥ ७५ ॥

नहीं करता, वह जन्मान्ध मृतक और पंगुके समान है । भूत-भविष्यको जाननेवाले महर्षियों और इन्द्र आदि देवताओंसे पूजित गंगाकी कौन मनुष्य सेवा न करेगा ? वानप्रस्थ, गृहस्थ, यति, ब्रह्मचारी और विद्यावान् पुरुषोंसे अवलम्बित गंगाका कौन मनुष्य आश्रय न करेगा ? (६४—६९)

प्राण निकलनेके समय जो मनुष्य एकाग्र और शिष्टसंमत होकर मन ही मन गंगाका ध्यान करता है, उसे परम गति प्राप्त होती है । इस लोकमें जो मनुष्य शरीर छूटनेतक गंगाकी उपासना करता है, उसे पाप तथा व्याघ्र आदि अथवा राजासे भी भय नहीं होता । आकाशसे पतनशील जिस महापवित्र गंगाको महेश्वरने सिर पर धारण किया था, स्वर्गमें सब कोई उसकी ही सेवा किया करते हैं। जिसके तीनों पवित्र मार्गसे त्रिभुवन अलंकृत होरहा है, जो पुरुष उस गंगाजलको सेवन करता है, वह कृतकृत्य होता है । जैसे देवताओंमें आदित्य, पितरोंमें चन्द्रमा और मनुष्योंमें राजा श्रेष्ठ है, नदियोंके बीच गंगाभी वैसी ही उत्तम है । (७०—७४)

गंगाके वियोगसे जैसा दुःख होता है, माता, पिता, पत्नी और धनके विर-

नारण्यैर्नेष्टविषयैर्न सुतैर्न धनागमैः ।
तथा प्रसादो भवति गंगां वीक्ष्य यथा भवेत् ॥ ७६ ॥
पूर्णमिन्दुं यथा दृष्ट्वा नृणां दृष्टिः प्रसीदति ।
तथा त्रिपथगां दृष्ट्वा नृणां दृष्टिः प्रसीदति ॥ ७७ ॥
तद्भावस्तद्गतमनास्तन्निष्ठस्तत्परायणः ।
गंगां योऽनुगतो भक्त्या स तस्याः प्रियतां व्रजेत् ॥७८॥
भूस्थैः खस्थैर्दिविष्ठैश्च भूतैरुच्चावचैरपि ।
गंगा विगाह्या सततमेतत्कार्यतमं सताम् ॥ ७९ ॥
विश्वलोकेषु पुण्यत्वाद्गंगायाः प्रथितं यशः ।
यत्पुत्रान्सगरस्येतो भस्माख्यानानयाद्दिवम् ॥ ८० ॥
वाय्वीरिताभिः सुमनोहराभिर्द्रुताभिरत्यर्थसमुत्थिताभिः ।
गंगोर्मिभिर्भानुमतीभिरिद्धाः सहस्ररश्मिप्रतिमा भवन्ति ॥ ८१ ॥
पयस्विनीं घृतिनीमत्युदारां समृद्धिनीं वेगिनीं दुर्विगाह्याम् ।
गंगां गत्वा यैः शरीरं विसृष्टं गता धीरास्ते विबुधैः समत्वम् ॥८२॥
अन्धान् जडान्द्रव्यहीनांश्च गंगा यशस्विनी बृहती विश्वरूपा ।

हमें वैसा दुःख नहीं होता। गंगाके दर्शनसे जैसी प्रसन्नता होती है, अरण्य, अभिलषित विषय, पुत्र और धन प्राप्तिसे वैसी प्रसन्नता नहीं प्राप्त होती। जैसे पूर्ण चन्द्रमाके दर्शनसे मनुष्योंके नेत्र प्रसन्न होते हैं, वैसे ही पृथ्वीगामिनी गंगाका दर्शन करनेसे नेत्र प्रसन्न हुआ करते हैं। जो लोग गंगाहीमें भावना करते, उसहीमें चित्त लगाके तथा उसीमें निष्ठावान् होके भक्तिपूर्वक गंगाके अनुगत होते हैं, वे लोग उसे प्रिय हुआ करते हैं। भूमिचर आकाशचर और स्वर्गवासी अनेक प्रकारके प्राणियोंको गंगामें सदा स्नान करना चाहिये; यह साधुओंका अवश्य कर्त्तव्य कार्य है। सब लोकोंमें गंगाकी कीर्त्ति विख्यात है, क्यों कि उन्होंने सगरके भस्मीभूत पुत्रोंको इस लोकसे स्वर्गमें भेजा था। (७९—८०)

वायुके बहनेसे उत्तम मनोहर अत्यन्त वेगसे उठती हुई तरंगोंसे युक्त होकर गंगामें निर्दोष रूपसे प्रकाशमान मनुष्य सहस्ररश्मिके सदृश होते हैं। पयस्विनी, घृतशालिनी, अत्यन्त उदार, वेगवती और दुर्विगाह्य गंगामें जाकर जो लोग शरीर परित्याग करते हैं, वे धीर पुरुष देवताओंकी समता लाभ करते हैं। इन्द्रके सहित देवताओं, मुनियों और

देवैः सेन्द्रैर्मुनिभिर्मानवैश्च निषेविता सर्वकामैर्युनक्ति ॥ ८३ ॥
ऊर्जावतीं महापुण्यां मधुमतीं त्रिवर्त्मगाम् ।
त्रिलोकगोप्त्रीं ये गंगां संश्रितास्ते दिवं गताः ॥८४॥
यो वत्स्यति द्रक्ष्यति वापि मर्त्यस्तस्मै प्रयच्छन्ति सुखानि देवाः ।
तद्भाविताः स्पर्शनदर्शनेन इष्टां गतिं तस्य सुरा दिशन्ति ॥८५॥
दक्षां पृश्निं बृहतीं विप्रकृष्टां शिवामृद्धां भागिनीं सुप्रसन्नाम् ।
विभावरीं सर्वभूतप्रतिष्ठां गंगां गता ये त्रिदिवं गतास्ते ॥ ८६ ॥
ख्यातिर्यस्याः खं दिवं गां च नित्यं पुरा दिशो विदिशश्चावतस्थे ।
तस्या जलं सेव्य सरिद्वराया मर्त्याः सर्वे कृतकृत्या भवन्ति ॥८७॥
इयं गंगेति नियतं प्रतिष्ठा गुहस्य रुक्मस्य च गर्भयोषा ।
प्रातस्त्रिवर्गा घृतवहा विपाप्मा गंगावतीर्णा वियतो विश्वतोया ॥८८॥

मनुष्योंसे सेवित यशस्विनी, बृहती, विश्वरूपा गंगा अन्ध, जड, और धनहीन पुरुषोंकी सब कामना पूरी करती है। (८१-८३)

जो लोग ऊर्जावती अर्थात् अन्न पश्वादिशालिनी, महापुण्य, मधुमती अर्थात् कर्म फलवती, त्रिपथगामिनी, त्रिलोकपावनी गंगाका आसरा करते हैं, वे स्वर्गमें गमन किया करते हैं। जो मनुष्य श्रीगंगाके तटपर निवास करते अथवा गङ्गाका दर्शन करते हैं, गंगाके दर्शन और उसके जलको स्पर्श करनेसे महत्त्व पाये हुए देवतावृन्द उसे समस्त सुख प्रदान करते तथा उसकी अभिलषित गति प्रदान किया करते हैं। तारनेमें समर्थ विष्णुजननी, वाक्यरूपसे बृहती, विप्रकृष्टा, कल्याणदायिनी, छहों ऐश्वर्योंसे युक्त, अत्यन्त प्रसन्न, प्रकाशात्मिका और सर्वभूत-प्रतिष्ठा गंगामें जिन्होंने गमन किया है, वे स्वर्ग लोक पाते हैं। (८४-८६)

जिसकी ख्याति अर्थात् पवित्र कीर्त्ति आकाशमण्डल, द्युलोक और दिशा विदिशामें सर्वत्र निवास करती है, गंगाजलको सेवन करके मनुष्य कृतकृत्य हुआ करते हैं। गंगाका दर्शन करके जो पुरुष दूसरेको "यह गंगा" इस वचनसे गंगाको दिखा देते हैं, उनके लिये गंगा ही मुक्तिका हेतु हुआ करती है। जो कार्त्तिकेय और सुवर्णकी गर्भधारिणी है, भोरके समय जिसमें स्नानकरनेसे त्रिवर्ग लाभ होता है; जो घृतस्वरूप जलसे युक्त होकर बहती है, वह पापसम्पर्कसे रहित जगत्के प्राणियोंके लिये प्रियजलवाली गंगा स्वर्गसे उतरी है। हे महाराज!

सुतावनीध्रस्य हरस्य भार्या दिवो भुवश्चापि कृतानुरूपा।
भव्या पृथिव्यां भागिनी चापि राजन् गंगा लोकानां पुण्यदा वै त्रयाणाम् ८९
मधुस्रवा घृतधारा घृतार्चिर्महोर्मिभिः शोभिता ब्राह्मणैश्च।
दिवश्च्युता शिरसाऽऽप्ता शिवेन गंगाऽवनीध्रात्त्रिदिवस्य माता ॥९०॥
योनिर्वरिष्ठा विरजा वितन्वी शय्या चिरा वारिवहा यशोदा।
विश्वावती चाकृतिरिष्टसिद्धा गंगोक्षितानां भुवनस्य पन्थाः ॥९१॥
क्षान्त्या मह्या गोपने धारणे च दीप्त्या कृशानोस्तपनस्य चैव।
तुल्या गंगा संमता ब्राह्मणानां गुहस्य ब्रह्मण्यतया च नित्यम् ॥९२॥
ऋषिष्टुतां विष्णुपदीं पुराणां सुपुण्यतोयां मनसाऽपि लोके।
सर्वात्मना जाह्नवीं ये प्रपन्नास्ते ब्रह्मणः सदनं संप्रयाताः ॥ ९३ ॥
लोकानवेक्ष्य जननीव पुत्रान् सर्वात्मना सर्वगुणोपपन्नान्।
तत्स्थानकं ब्राह्ममभीप्समानैर्गंगा सदैवात्मवशैरुपास्या ॥ ९४ ॥

जो मेरु और हिमालय पर्वतकी पुत्री, महादेवकी पत्नी और स्वर्ग अथवा पृथ्वीमण्डलकी भूषण रूपी है, पृथिवीमें कल्याणदायिनी, ऐश्वर्यशालिनी वह भागीरथी तीनों लोकोंकी पवित्रताका विधान करती है। (८७—८९)

धर्मद्रवमयी रूपसे मधु झरनेवाली घृतधारा अर्थात् तेजप्रवाहयुक्त घृतकी भांति जलमयी महातरङ्गमाला और ब्राह्मणोंसे शोभित गंगा स्वर्गसे महादेवके सिरपर भ्रमित होके हिमालय पर्वतसे पृथ्वीपर उतरकर त्रिदिवनिवासी देवताओंकी माता हुई। परमकारण-स्वरूपिणी, निर्मल, सूक्ष्म रूपवाली, मृत्युशय्यारूपिणी शीघ्रगामिनी जल-वहा, यशोदा, विश्वपालन-कर्त्री, सत्ता, सामान्य-स्वरूपिणी और सिद्धगणकी अभिलषित गंगा, स्नान करनेवाले मनुष्योंके लिये स्वर्गमें गमन करनेका पथस्वरूप है। (९०--९१)

क्षमा, गोपन और धारणा विषयमें पृथ्वीके समान, तेजमें अग्नि और सूर्य-सदृश गंगा ब्राह्मण जातिके विषयमें कृपा करके निषादों तथा ब्राह्मणोंमें अत्यन्त सम्मत हुई हैं। ऋषियोंमें स्तुतिसे युक्त, पवित्र, जलमयी, विष्णुके चरणसे उत्पन्न जन्हुपुत्रीका इस लोकमें प्रत्यक्ष दर्शन तो दूर रहे, शुद्धचित्तसे यदि मनुष्य मनसे भी गंगाका आसरा करें, तो वे ब्रह्मलोकमें गमन करते हैं। जैसे माता सन्तानोंको देखती है, वैसे ही गंगा सब गुणोंसे युक्त लोकोंको सब प्रकारसे नाशवान अवलोकन करती है, इसीसे ब्रह्मपदकी अभिलाष करने-

उस्रां पुष्टां मिषतीं विश्वभोज्यामिरावतीं धारिणीं भूधराणाम् ।
शिष्टाश्रयाममृतां ब्रह्मकान्तां गंगां श्रयेदात्मवान् सिद्धिकामः ॥९५॥
प्रसाद्य देवान सविभून्समस्तान् भगीरथस्तपसोग्रेण गंगाम् ।
गामानयत्तामभिगम्य शश्वत्पुंसां भयं नेह चामुत्र विद्यात् ॥९६॥
उदाहृतः सर्वथा ते गुणानां मयैकदेशः प्रसमीक्ष्य बुद्धया ।
शक्तिर्न मे काचिदिहास्ति वक्तुं गुणान्सर्वान्परिमातुं तथैव ॥९७॥
मेरोः समुद्रस्य च सर्वयत्नैः संख्योपलानामुदकस्य वापि ।
शक्यं वक्तुं नेह गंगाजलानां गुणाख्यानां परिमातुं तथैव ॥९८॥
तस्मादेतान्परया श्रद्धयोक्तान् गुणान् सर्वान् जाह्नवीयान् सदैव ।
भवेद्वाचा मनसा कर्मणा च भक्त्या युक्तः श्रद्धया श्रद्दधानः ॥९९॥
लोकानिमांस्त्रीन्यशसा वितत्य सिद्धिं प्राप्य महतीं तां दुरापाम् ।
गंगाकृतानचिरेणैव लोकान्यथेष्टमिष्टान् विहरिष्यसि त्वम् ॥१००॥
तव मम च गुणैर्महानुभावा जुषतु मतिं सततं स्वधर्मयुक्तैः ।
अभिमतजनवत्सला हि गंगा जगति युनक्ति सुखैश्च भक्तिमन्तम् १०१॥

वाले चित्तजयी पुरुष सदा उसकी उपासना किया करते हैं। सिद्धिकाम आत्मवान मनुष्य पुष्टि करनेवाली अमृतदुघा, सर्वज्ञा, अन्नवती, विश्वभोज्या शैलजननी शिष्टोंसे अवलम्बित अपरिमित ब्रह्माके मनको हरनेवाली गंगाका आसरा करते हैं। (९२-९५)

भागीरथी उग्र तपस्यासे ईश्वरके सहित समस्त देवताओंको प्रसन्न करके तब गंगाके संमुख जाकर उसे पृथ्वीपर लाये हैं, उनके समीपमें सदाके लिये मनुष्योंको कुछ भय नहीं है। मैंने बुद्धिसे सब प्रकार आलोचना करके तुम्हारे गुणोंका एक ही भाग वर्णन किया है, तुम्हारे गुणोंका वर्णन और परिमाण करनेमें मुझे कुछ भी सामर्थ्य नहीं है। वरन सुमेरुके पत्थरों और समुद्रके जलकी यत्नपूर्वक संख्या होसकती है, परन्तु गंगाजलके गुणोंको वर्णन और परिमाण करनेकी शक्ति नहीं होती। (९६—९८)

इस लिये मैंने परम श्रद्धाके सहित यह जो जान्हवीके गुणोंका वर्णन किया है, उसे सदा सुनके वचन, मन और कर्मके द्वारा अभियुक्त तथा श्रद्धावान् होना चाहिये। इन तीनों लोकोंमें यश फैलाकर दुष्प्राप्य महती श्री पाके तुम गंगाविनिर्मित लोकोंमें थोडे ही समयके बीच विहार करोगे। महानुभावा गंगा स्वधर्मयुक्त गुणोंसे तुम्हारी और

भीष्म उवाच- इति परममतिर्गुणानशेषान् शिलरतये त्रिपथानुयोगरूपान्।
बहुविधमनुशास्य तथ्यरूपान् गगनतलं द्युतिमान् विवेश सिद्धः १०२॥
शिलवृत्तिस्तु सिद्धस्य वाक्यैः संबोधितस्तदा।
गंगामुपास्य विधिवत्सिद्धिं प्राप सुदुर्लभाम् ॥१०३॥
तथा त्वमपि कौन्तेय भक्त्या परमया युतः।
गंगामभ्येहि सततं प्राप्स्यसे सिद्धिमुत्तमाम् ॥१०४॥
वैशम्पायन उवाच- श्रुत्वेतिहासं भीष्मोक्तं गंगायाः स्तवसंयुतम्।
युधिष्ठिरः परां प्रीतिमगच्छद्भ्रातृभिः सह ॥१०५॥
इतिहासमिमं पुण्यं शृणुयाद्यः पठेत वा।
गंगायाः स्तवसंयुक्तं स मुच्येत्सर्वकिल्बिषैः ॥१०६॥ [१८४४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे गंगामाहात्म्यकथने षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

युधिष्ठिर उवाच- प्रज्ञाश्रुताभ्यां वृत्तेन शीलेन च यथा भवान्।
गुणैश्च विविधैः सर्वैर्वयसा च समन्वितः ॥१॥
भवान् विशिष्टो बुद्ध्या च प्रज्ञया तपसा तथा।

मेरी बुद्धिको सदा संयुक्त करे, क्यों कि वह भक्तजनवत्सला भक्तिमान् पुरुषोंको सुखयुक्त किया करती है। (९९-१०१)

भीष्म बोले, द्युतिमान्, विद्वान्, परम बुद्धिमान् सिद्धने शिलवृत्तिको इस ही प्रकार गंगानुगत यथार्थ गुणोंको विस्तारपूर्वक वर्णन करके पृथ्वीपर प्रकाशित किया। शिलवृत्तिने उस समय सिद्धका वचन सुनकर विधिपूर्वक गंगा की उपासना करके दुर्लभ सिद्धि प्राप्त की। हे कौन्तेय! तुम उस ही भांति परम भक्तियुक्त होकर नित्य गंगाके निकट गमन करके परम सिद्धि प्राप्त करोगे। (१०२-१०४)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा युधिष्ठिर भाइयोंके सहित भीष्मके कहे हुए भागीरथीका स्तवसंयुक्त इतिहास सुनके परम प्रसन्न हुए। जो मनुष्य गंगाके स्तवयुक्त इस पवित्र इतिहासको सुनता अथवा पाठ करता है, वह सब पापोंसे छूट जाता है। (१०५-१०६)

अनुशासनपर्वमें २६ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें २७ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे धार्मिकप्रवर! आप जैसे प्रज्ञा, शास्त्रज्ञान, चरित्र, सद्वृत्त, विविध गुणों और अवस्थाक्रमसे संयुक्त हैं; वैसे ही बुद्धि, प्रज्ञा

तस्माद्भवन्तं पृच्छामि धर्मं धर्मभृतां वर ॥ २ ॥
नान्यस्त्वदन्यो लोकेषु प्रष्टव्योऽस्ति नराधिप।
क्षत्रियो यदि वा वैश्यः शूद्रो वा राजसत्तम ॥ ३ ॥
ब्राह्मण्यं प्राप्नुयाद्येन तन्मे व्याख्यातुमर्हसि।
तपसा वा सुमहता कर्मणा वा श्रुतेन वा।
ब्राह्मण्यमथ चेदिच्छेत्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ४ ॥
भीष्म उवाच- ब्राह्मण्यं तात दुष्प्राप्यं वर्णैः क्षत्रादिभिस्त्रिभिः।
परं हि सर्वभूतानां स्थानमेतद्युधिष्ठिर ॥ ५ ॥
बह्वीस्तु संसरन् योनीर्जायमानः पुनः पुनः।
पर्याये तात कस्मिंश्चिद्ब्राह्मणो नाम जायते ॥ ६ ॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
मतङ्गस्य च संवादं गर्दभ्याश्च युधिष्ठिर ॥ ७ ॥
द्विजातेः कस्यचित्तात तुल्यवर्णः सुतस्त्वभूत्।
मतंगो नाम नाम्ना वै सर्वैः समुदितो गुणैः ॥ ८ ॥
स यज्ञकारः कौन्तेय पित्रोत्सृष्टः परन्तप।

और तपस्या विषयमें भी विशिष्ट हैं, इस लिये मैं आपसे धर्मविषय पूछता हूं। हे नरनाथ! हे राजसत्तम! तीनों लोकोंमें क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्रके बीच आपके समान ऐसा कोई भी पुरुष नहीं है, जिससे धर्मजिज्ञासा किया जाय। इसलिये जिस धर्मके सहारे ब्राह्मणत्व प्राप्त होता है, आप मेरे निकट उसकी ही व्याख्या करिये। अत्यन्त महत् तपस्या, कर्म अथवा शास्त्रज्ञानसे यदि ब्राह्मणत्वकी इच्छा की जाय, तो वह किस प्रकार प्राप्त हो? हे पितामह! आप मुझसे वही कहिये। (१-४)

भीष्म बोले, हे तात युधिष्ठिर! क्षत्रिय आदि तीनों वर्णोंके द्वारा ब्राह्मणत्वप्राप्ति अत्यन्त दुष्प्राप्य है, परन्तु वह ब्राह्मणत्व सब प्राणियोंका अवलम्ब है। हे तात! जीव अनेक योनियोंमें भ्रमण करते हुए बार बार जन्म लेकर उसके अनन्तर किसी जन्ममें ब्राह्मण होकर जन्मता है। हे युधिष्ठिर! इस विषयमें प्राचीन लोग मतङ्ग और गर्दभीके संवादयुक्त पुराना इतिहास कहा करते हैं। किसी द्विजातिके मतंग नाम उत्तम विख्यात सब गुणोंसे युक्त और अन्य-वर्णज होके भी जातकर्मादि संस्कार निबन्धनसे तुल्यवर्ण एक पुत्र था। हे शत्रुतापन युधिष्ठिर! उस

प्रायाद्गर्दभयुक्तेन रथेनाप्याशुगामिना ॥ ९ ॥
स बालं गर्दभं राजन् वहन्तं मातुरन्तिके ।
निरविध्यत्प्रतोदेन नासिकायां पुनः पुनः ॥ १० ॥
तत्र तीव्रं व्रणं दृष्ट्वा गर्दभी पुत्रगृद्धिनी ।
उवाच मा शुचः पुत्र चाण्डालस्त्वधितिष्ठति ॥ ११ ॥
ब्राह्मणे दारुणं नास्ति मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ।
आचार्यः सर्वभूतानां शास्ता किं प्रहरिष्यति ॥ १२ ॥
अयं तु पापप्रकृतिर्बाले न कुरुते दयाम् ।
स्वयोनिं मानयत्येष भावो भावं नियच्छति ॥ १३ ॥
एतच्छ्रुत्वा मतङ्गस्तु दारुणं रासभीवचः ।
अवतीर्य रथात्तूर्णं रासभीं प्रत्यभाषत ॥ १४ ॥
ब्रूहि रासभि कल्याणि माता मे येन दूषिता ।
कथं मा वेत्सि चण्डालं क्षिप्रं रासभि शंस मे ॥ १५ ॥
कथं मां वेत्सि चण्डालं ब्राह्मण्यं येन नश्यते ।
तत्त्वेनैतन्महाप्राज्ञे ब्रूहि सर्वमशेषतः ॥ १६ ॥

पुत्रने यज्ञमें ऋत्विककर्म करते हुए पिताकी आज्ञासे शीघ्रगामी गर्दभयुक्त रथपर चढके अग्नि लानेके निमित्त प्रस्थान किया। हे महाराज! उसने माताके संग रथ खींचनेवाले अशिक्षित गधेकी नाकमें कोडा मारा। (५-१०)

पुत्रवत्सला गर्दभी पुत्रकी नाकमें तीव्र घाव देखकर उससे बोली, हे पुत्र! तुम शोक मत करो, तुम्हारे ऊपर चाण्डाल चढा हुआ है, ब्राह्मण दारुण कर्म नहीं करते, ब्राह्मण सब प्राणियोंके मित्र हैं, सब भूतोंके शास्ता आचार्य क्या कभी प्रहार किया करते हैं? यह पापप्रकृतिवाला बालकपर दया नहीं करता, यह स्वयोनिका समादर करता है, जातिस्वभाव बुद्धिको मार्गान्तरसे आकर्षण किया करता है। (११-१३)

मतंग गधीका ऐसा वचन सुनके शीघ्र ही रथसे उतरकर उससे बोला, हे कल्याणि रासभी! मेरी माता किसके द्वारा दूषित हुई है? तथा तुमने मुझे चाण्डाल किस प्रकार जाना? यह मुझसे शीघ्र कहो। लोकदृष्ट ब्राह्मणत्व जिसके द्वारा विनष्ट होता है, मैं वही चाण्डाल हूं, तुम्हें यह विषय किस प्रकार मालूम हुआ? हे महाबुद्धिमति! तुम यह विषय विशेष रूपसे यथार्थ कहो। (१४—१६)

गर्दभ्युवाच— ब्राह्मण्यां वृषलेन त्वं मत्तायां नापितेन ह।
जातस्त्वमसि चाण्डालो ब्राह्मण्यं तेन तेऽनशत् ॥१७॥
एवमुक्तो मतङ्गस्तु प्रतिप्रायाद्गृहं प्रति।
तमागतमभिप्रेक्ष्य पिता वाक्यमथाब्रवीत् ॥ १८ ॥
मया त्वं यज्ञसंसिद्धौ नियुक्तो गुरुकर्मणि।
कस्मात्प्रतिनिवृत्तोऽसि कच्चिन्न कुशलं तव ॥ १९ ॥
मतङ्ग उवाच— अन्त्ययोनिरयोनिर्वा कथं स कुशली भवेत्।
कुशलं तु कुतस्तस्य यस्येयं जननी पितः ॥ २० ॥
ब्राह्मण्यां वृषलाज्जातं पितर्वेदयतीव माम्।
अमानुषी गर्दभीयं तस्मात्तप्स्ये तपो महत् ॥ २१ ॥
एवमुक्त्वा स पितरं प्रतस्थे कृतनिश्चयः।
ततो गत्वा महारण्यमतपत्सुमहत्तपः ॥ २२ ॥
ततः स तापयामास विबुधांस्तपसाऽन्वितः।
मतङ्गः सुखसंप्रेप्सुः स्थानं सुचरितादपि ॥ २३ ॥
तं तथा तपसा युक्तमुवाच हरिवाहनः।

गर्दभी बोली, तुम प्रमत्ता ब्राह्मणीके गर्भसे चाण्डाल नाईके द्वारा उत्पन्न हुए हो, इसलिये तुम चाण्डाल हो, इस ही कारण तुम्हारा ब्राह्मणत्व विनष्ट हुआ है। (१७)

भीष्म बोले, मतंग गर्दभीका वचन सुनके घरमें लौट आया, पिताने उसे लौटा हुआ देखके कहा, मैंने यज्ञ-सिद्धिके निमित्त तुम्हें गुरुतर कार्यमें नियुक्त किया है, तब तुम किस कारणसे लौट आये ? क्या तुम्हारा कुशल नहीं है ? (१८-१९)

मतंग बोला, जो पुरुष अन्त्यज योनि अथवा अत्यन्त हीन योनिका होता है, वह किस प्रकार कुशली होसकता है ? हे पिता ! यह जिसकी माता है, उसे कुशल कहां ? हे पिता ! यह अमानुषी गर्दभी मुझे ब्राह्मणीमें चाण्डालसे उत्पन्न हुआ कहती है, इसलिये मैं अत्यन्त महत् तपस्या करूंगा। उसने पितासे ऐसा कहकर निश्चय करके प्रस्थान किया। (२० —२२)

अनन्तर महारण्यमें जाके अत्यन्त महत् तपस्या करने लगा। कालक्रमसे मतंगने उत्तम रीतिसे आचरित तपोबलसे अनायासही ब्राह्मणत्व लाभके निमित्त घोर तपस्यासे युक्त होकर देवताओंको सन्तापित किया। देवराज

मतङ्ग तप्स्यसे किं त्वं भोगानुत्सृज्य मानुषान् ॥ २४ ॥
वरं ददामि ते हन्त वृणीष्व त्वं यदिच्छसि ।
यच्चाप्यवाप्यं हृदि ते सर्वं तद् ब्रूहि मा चिरम् ॥२५॥
मतङ्ग उवाच– ब्राह्मण्यं कामयानोऽहमिदमारब्धवांस्तपः ।
गच्छेयं तदवाप्येह वर एष वृतो मया ॥ २६ ॥
भीष्म उवाच– एतच्छ्रुत्वा तु वचनं तमुवाच पुरन्दरः ।
मतङ्ग दुर्लभमिदं विप्रत्वं प्रार्थ्यते त्वया ॥ २७ ॥
ब्राह्मण्यं प्रार्थयानस्त्वमप्राप्यमकृतात्मभिः ।
विनशिष्यसि दुर्बुद्धे तदुपारम मा चिरम् ॥ २८ ॥
श्रेष्ठतां सर्वभूतेषु तपोऽर्थं नातिवर्त्तते ।
तदग्र्यं प्रार्थयानस्त्वमचिराद्विनशिष्यसि ॥ २९ ॥
देवतासुरमर्त्येषु यत्पवित्रं परं स्मृतम् ।
चण्डालयोनौ जातेन न तत्प्राप्यं कथञ्चन ॥ ३० ॥ [१८७४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे इन्द्रमतंगसंवादे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

इन्द्र उसे इस प्रकार तपयुक्त देखके बोले, हे मतंग ! तुम मनुष्यभोग परित्याग करके किस निमित्त तपस्या करते हो ? अच्छा, मैं तुम्हें वरदान करता हूं, तुम्हारी जो इच्छा हो, वह मांगो, तुम्हारे अन्तःकरणमें जो अप्राप्य मालूम होता है, वह सब कहो, विलम्ब मत करो। (२२—२५)

मतंग बोला, मैंने ब्राह्मणत्वकी कामना करके यह तपस्या आरम्भ की है, वह प्राप्त होनेसे ही इस स्थानसे गमन करूंगा, मैं यही वर मांगता हूं। (२६)

भीष्म बोले, इन्द्रने उसका वचन सुनके कहा, रे नीचबुद्धिवाले ! तू अकृतात्मा पुरुषोंसे अप्राप्य ब्राह्मणत्वकी इच्छा करता है, इसलिये विनष्ट होगा, इस कारण तू विरत होगा, देरी मत कर। तपस्या सब प्राणियोंके श्रेष्ठत्वको वशीभूत नहीं कर सकती । तू उस श्रेष्ठत्वकी इच्छा करनेसे शीघ्र ही नष्ट होगा। देवता, असुर और मनुष्योंके बीच जो परम पवित्र कहके वर्णित हुआ है, चण्डालयोनिमें उत्पन्न हुआ पुरुष उसे किसी प्रकार नहीं पा-सकता। (२७-३०)

अनुशासनपर्वमें २७ अध्याय समाप्त।

भीष्म उवाच- एवमुक्तो मतङ्गस्तु संशितात्मा यतव्रतः।
अतिष्ठदेकपादेन वर्षाणां शतमच्युतः ॥ १ ॥
तमुवाच ततः शक्रः पुनरेव महायशाः।
ब्राह्मण्यं दुर्लभं तात प्रार्थयानो न लप्स्यसे ॥ २ ॥
मतङ्ग परमं स्थानं प्रार्थयन्विनशिष्यसि।
मा कृथाः साहसं पुत्र नैष धर्मपथस्तव ॥ ३ ॥
न हि शक्यं त्वया प्राप्तुं ब्राह्मण्यमिह दुर्मते।
अप्राप्यं प्रार्थयानो हि न चिराद्विनशिष्यसि ॥ ४ ॥
मतङ्ग परमं स्थानं वार्यमाणोऽसकृन्मया।
चिकीर्षस्येव तपसा सर्वथा न भविष्यसि ॥ ५ ॥
तिर्यग्योनिगतः सर्वो मानुष्यं यदि गच्छति।
स जायते पुल्कसो वा चाण्डालो वाऽप्यसंशयः ॥६॥
पुल्कसः पापयोनिर्वा यः कश्चिदिह लक्ष्यते।
स तस्यामेव सुचिरं मतङ्ग परिवर्तते ॥ ७ ॥
ततो दशशते काले लभते शूद्रतामपि।

अनुशासनपर्वमें २८ अध्याय।

भीष्म बोले, हे अच्युत! संशितात्मा यतव्रती मतंग इन्द्रका ऐसा वचन सुनके एक सौ वर्षतक एक पांवसे खडा होकर निवास करने लगा। अनन्तर महायशस्वी पाकशासन इन्द्र फिर उससे बोले, हे तात! ब्राह्मणत्व अत्यन्त दुर्लभ है, तुम कोटिशः प्रार्थना करनेपर भी उसे नहीं पाओगे। हे मतंग! तुम परम स्थानकी प्रार्थना करके विनष्ट होगे। हे पुत्र! तुम साहस मत करो, यह तुम्हारे धर्मका पथ नहीं है। रे नीचबुद्धिवाले! तू इस लोकमें ब्राह्मणत्व लाभ करनेमें समर्थ न होगा, अप्राप्य विषयकी प्रार्थना करनेसे थोडे ही समयमें नष्ट होगा। हे मतङ्ग! तू बार बार मेरे निवारण करने पर भी सब प्रकारसे तपस्याके सहारे परम पद पानेकी इच्छा करता है, परन्तु उस विषयमें कृतकार्य न होसकेगा। १-५

तिर्यक्योनिके समस्त जीव यदि मनुष्यत्व प्राप्त करें, तो वे पहले पुल्कश अथवा चाण्डाल होके जन्म ग्रहण करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। हे मतङ्ग! इस लोकमें पुल्कश अथवा पापयोनिमें जो कोई जीव जन्मता है, वह उस ही योनिमें बहुत समय तक बार बार भ्रमण किया करता है। फिर सहस्र

शूद्रयोनावपि ततो बहुशः परिवर्तते ॥ ८ ॥
ततस्त्रिंशद्गुणे काले लभते वैश्यतामपि ।
वैश्यतायां चिरं कालं तत्रैव परिवर्तते ॥ ९ ॥
ततः षष्टिगुणे काले राजन्यो नाम जायते ।
ततः षष्टिगुणे काले लभते ब्रह्मबन्धुताम् ॥ १० ॥
ब्रह्मबन्धुश्चिरं कालं ततस्तु परिवर्तते ।
ततस्तु द्विशते काले लभते काण्डपृष्ठताम् ॥ ११ ॥
काण्डपृष्ठश्चिरं कालं तत्रैव परिवर्तते ।
ततस्तु त्रिशते काले लभते जपतामपि ॥ १२ ॥
तं च प्राप्य चिरं कालं तत्रैव परिवर्तते ।
ततश्चतुःशते काले श्रोत्रियो नाम जायते ।
श्रोत्रियत्वे चिरं कालं तत्रैव परिवर्तते ॥ १३ ॥
तदेवं शोकहर्षौ तु कामद्वेषौ च पुत्रक ।
अतिमानातिवादौ च प्रविशेते द्विजाधमम् ॥ १४ ॥

वर्षके अनन्तर शूद्रत्व लाभ करता है। शूद्रयोनिमें भी वह अनेक बार परिभ्रमण करता है, फिर तीस गुण समय बीतने पर वैश्यत्व प्राप्त होता है, वैश्ययोनिमें भी बहुत समयतक उसे बार बार जन्म लेना पडता है। अनन्तर साठगुण समय बीतनेपर क्षत्रिय होकर जन्म लेता है, क्षत्रिययोनिमें भी बहुत समयतक उसे परिभ्रमण करना होता है। (९-१०)

अनन्तर षष्टिगुण समय बीतनेपर ब्रह्मबन्धुता प्राप्त होती है, ब्रह्मबन्धु होनेपर भी उस ही योनिमें बहुत समय तक घूमना पडता है। अनन्तर उससे दो सौगुण समय बीतनेपर शस्त्रजीवित्व लाभ होती है। शस्त्रजीवी होके भी उसही योनिमें बहुत समय तक परिभ्रमण करता है। अनन्तर उससे तीन सौगुण समय बीतनेपर गायत्रीमात्र जप करनेवालोंके वंशमें जन्म लेता है, वैसा जन्म पाने पर भी उसे बहुत समयतक उस ही कुलमें बार बार उत्पन्न होना पडता है। अनन्तर चार सौ वर्ष बीतनेपर श्रोत्रियकुलमें जन्म होता है, श्रोत्रिय अर्थात् वेदाध्ययनशील होकर बहुत समयतक उस ही योनिमें परिभ्रमण करता है। (१०-१३)

हे तात ! इसलिये इस ही प्रकार काम, द्वेष, शोक, हर्ष, अभिमान और अतिवाद उस द्विजाधममें प्रविष्ट होते

तांश्चेज्जयति शत्रून्स तदा प्राप्नोति सद्गतिम्।
अथ ते वै जयन्त्येनं तालाग्रादिव पात्यते ॥ १५ ॥
मतङ्ग संप्रधार्यैवं यदहं त्वामचूचुदम्।
वृणीष्व काममन्यं त्वं ब्राह्मण्यं हि सुदुर्लभम् ॥१६॥ [१८९०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे इन्द्रमतङ्गसंवादे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

भीष्म उवाच- एवमुक्तो मतङ्गस्तु संशितात्मा यतव्रतः।
सहस्रमेकपादेन ततो ध्याने व्यतिष्ठत ॥ १ ॥
तं सहस्रवरे काले शक्रो द्रष्टुमुपागमत्।
तदेव च पुनर्वाक्यमुवाच बलवृत्रहा ॥ २ ॥
मतङ्ग उवाच- इदं वर्षसहस्रं वै ब्रह्मचारी समाहितः।
अतिष्ठमेकपादेन ब्राह्मण्यं नाप्नुयां कथम् ॥ ३ ॥
शक्र उवाच— चण्डालयोनौ जातेन नावाप्यं वै कथञ्चन।
अन्यं कामं वृणीष्व त्वं मा वृथा तेऽस्त्वयं श्रमः ॥४॥
एवमुक्तो मतङ्गस्तु भृशं शोकपरायणः।

हैं; यदि वह उन शत्रुओंको जीतनेमें समर्थ हो, तो सद्गति लाभ कर सकता है और यदि काम, द्वेष प्रभृति शत्रुगण उसे जय करें, तो वे तालवृक्षकी चोटीसे गिरनेकी भांति उसे अत्यन्त नीच योनिमें डाल देते हैं, हे मतंग! मैंने तुमसे जो कहा है, तुम उसकी भली भांति आलोचना करके दूसरे अभीष्ट विषयकी प्रार्थना करो। क्यों कि ब्राह्मणत्व अत्यन्त दुर्लभ है। (१४–१६)

अनुशासनपर्वमें २८ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें २९ अध्याय।

भीष्म बोले, संशितात्मा, यतव्रती मतंग देवराजका ऐसा वचन सुनके सहस्र वर्षतक एक पदसे निवास करके ध्यान करनेमें प्रवृत्त हुआ। इन्द्रने फिर उसे देखनेके लिये आगमन करके पुनर्वार उससे पूर्वोक्त वचन कहा। (१–२)

मतंग बोला, सहस्र वर्षतक मैंने समाहित तथा ब्रह्मचारी होकर एक पदसे निवास किया; परन्तु किस लिये ब्राह्मणत्व न पाया? (३)

इन्द्र बोले, जिस पुरुषने चाण्डालयोनिमें जन्म लिया है, उसे ब्राह्मणत्व किसी प्रकार भी नहीं प्राप्त हो सकता, तुम दूसरा वर मांगो, जिससे तुम्हारा यह परिश्रम निष्फल न हो। (४)

जब देवराजने ऐसा कहा, तब

अध्यतिष्ठद्गयां गत्वा सोऽङ्गुष्ठेन शतं समाः ॥ ५ ॥
सुदुर्वहं वहन्योगं कृशो धमनिसंततः ।
त्वगस्थिभूतो धर्मात्मा स पपातेति नः श्रुतम् ॥ ६ ॥
तं पतन्तमभिद्रुत्य परिजग्राह वासवः ।
वराणामीश्वरो दाता सर्वभूतहिते रतः ॥ ७ ॥
शक्र उवाच— मतङ्ग ब्राह्मणत्वं ते विरुद्धमिह दृश्यते ।
ब्राह्मण्यं दुर्लभतरं संवृतं परिपन्थिभिः ॥ ८ ॥
पूजयन्सुखमाप्नोति दुःखमाप्नोत्यपूजयन् ।
ब्राह्मणः सर्वभूतानां योगक्षेमसमर्पिता ॥ ९ ॥
ब्राह्मणेभ्योऽनुतृप्यन्ते पितरो देवतास्तथा ।
ब्राह्मणः सर्वभूतानां मतङ्ग पर उच्यते ॥ १० ॥
ब्राह्मणः कुरुते तद्धि यथा यद्यच्च वाञ्छति ।
बह्वीस्तु संविशन्योनीर्जायमानः पुनः पुनः ॥ ११ ॥
पर्याये तात कस्मिंश्चिद्ब्राह्मण्यमिह विन्दति ।
तदुत्सृज्येह दुष्प्रापं ब्राह्मण्यमकृतात्मभिः ॥ १२ ॥

मतंग शोकयुक्त होकर गया तीर्थमें जाके एक सौ वर्ष पर्यन्त अंगूठेके सहारे निवास करने लगा। मैंने सुना है, कि वह धर्मात्मा दुर्वह योग अवलम्बन करके धमनिसन्तत और अस्थिचर्म-सार होकर गिर पडा। सर्वभूतोंके हितमें रत रहनेवाले भगवान् इन्द्र उसे गिरा हुआ देखके दौडे और वहांपर जाके उसे धारण किया। (५-७)

इन्द्र बोले, हे मतंग! इस समय तुम्हारे पक्षमें ब्राह्मणत्व अत्यन्त विरुद्ध भावसे युक्त दीख पडता है, दुर्लभ ब्राह्मणत्व कामादि परिपन्थी गुणोंसे संवृत होरहा है। ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे सुखभोग प्राप्त होता है, पूजा न करनेसे दुःख हुआ करता है। ब्राह्मण ही सर्वभूतोंको योगक्षेम समर्पण करनेवाले हैं। पितर और देव-वृन्द ब्राह्मणोंसेही परितृप्त होते हैं। हे मतंग! ब्राह्मण सब भूतोंमें श्रेष्ठ कहके वर्णित हुआ करते हैं, क्योंकि जैसी इच्छा की जाती है, ब्राह्मण ही वह वाञ्छित सिद्धि करते हैं। हे तात! जीव अनेक योनिमें प्रवेश करते हुए बार बार जन्म ग्रहण करके इस लोकमें किसी पर्यायमें ब्राह्मणत्व लाभ करता है; इसलिये तुम अकृतात्मा पुरुषोंसे दुष्प्राप्य ब्राह्मणत्वलाभकी कामना

अन्यं वरं वृणीष्व त्वं दुर्लभोऽयं हि ते वरः।

मतङ्ग उवाच– किं मां तुदसि दुःखार्तं मृतं मारयसे च माम् ॥१३॥

त्वां तु शोचामि यो लब्ध्वा ब्राह्मण्यं न बुभूषसे।

ब्राह्मण्यं यदि दुष्प्रापं त्रिभिर्वर्णैः शतक्रतो ॥ १४॥

सुदुर्लभं सदाऽवाप्य नानुतिष्ठन्ति मानवाः।

यः पापेभ्यः पापतमस्तेषामधम एव सः ॥ १५॥

ब्राह्मण्यं यो न जानीते धनं लब्ध्वेव दुर्लभम्।

दुष्प्रापं खलु विप्रत्वं प्राप्तं दुरनुपालनम् ॥ १६॥

दुरवापमवाप्यैतन्नानुतिष्ठन्ति मानवाः।

एकारामो ह्यहं शक्र निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ॥ १७॥

अहिंसादममास्थाय कथं नार्हामि विप्रताम्।

दैवं तु कथमेतद्वै यदहं मातृदोषतः ॥ १८॥

एतामवस्थां संप्राप्तो धर्मज्ञः सन्पुरन्दर।

परित्याग करके अब दूसरा वर मांगो, क्यों कि यह वर तुम्हारे पक्षमें अत्यन्त दुर्लभ है। (८—१३)

मतंग बोला, मैं दुःखसे आर्त्त हुआ हूं, मुझे क्यों दुःखित करते हो? मरे हुएको मारते हो! जो पुरुष ब्राह्मणत्व लाभ करके भी मेरे समान तपस्वी पुरुषके विषयमें करुणा नहीं करता, उसने ब्राह्मणत्व पाके भी नहीं पाया है, इसलिये मैं तुम्हारे निमित्त शोक नहीं करता। हे इन्द्र! यदि क्षत्रिय आदि तीनों वर्णोंके लिये ब्राह्मणत्व दुष्प्राप्य हुआ है, तथापि मनुष्य उस अत्यन्त दुर्लभ ब्राह्मणत्वको पाके भी सदा उसका अनुष्ठान नहीं करते अर्थात् ब्राह्मणके योग्य शम, दम, तप, पवित्रता, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिक्य यह सब धर्माचरण नहीं करते। धन-सदृश दुर्लभ ब्राह्मणत्व लाभ करके जो पुरुष उसका अनुष्ठान करना नहीं जानता, वह पापियोंसे भी पापी तथा उससे भी अधम है। पहले तो ब्राह्मणत्व ही अत्यन्त दुष्प्राप्य है, प्राप्त होनेपर भी उसका अनुष्ठान करना अत्यन्त कठिन है। (१३—१६)

इस दुःखापह विषयको पाके भी मनुष्य इसका अनुष्ठान नहीं करते। हे इन्द्र! मैं एकाराम, निर्द्वन्द्व निष्परिग्रह अहिंसा और इन्द्रियदमन अवलम्बन करके भी किस निमित्त ब्राह्मणत्व पानेके योग्य नहीं हूं? हे पुरन्दर! मैं धर्मज्ञ होके भी मातृदोषके कारण ऐसी

नूनं दैवं न शक्यं हि पौरुषेणातिवर्तितुम् ॥ १९ ॥
यदर्थं यत्नवानेव न लभे विप्रतां विभो।
एवंगते तु धर्मज्ञ दातुमर्हसि मे वरम् ॥ २० ॥
यदि तेऽहमनुग्राह्यः किंचिद्वा सुकृतं मम।
वैशम्पायन उवाच– वृणीष्वेति तदा प्राह ततस्तं बलवृत्रहा ॥ २१ ॥
चोदितस्तु महेन्द्रेण मतङ्गः प्राब्रवीदिदम्।
यथाकामविहारी स्यां कामरूपी विहङ्गमः ॥ २२ ॥
ब्रह्मक्षत्राविरोधेन पूजां च प्राप्नुयामहम्।
यथा ममाक्षया कीर्तिर्भवेच्चापि पुरन्दर ॥ २३ ॥
कर्तुमर्हसि तद्देव शिरसा त्वां प्रसादये।
शक्र उवाच— छन्दोदेव इति ख्यातः स्त्रीणां पूज्यो भविष्यसि ॥२४॥
कीर्तिश्च तेऽतुला वत्स त्रिषु लोकेषु यास्यति।
एवं तस्मै वरं दत्त्वा वासवोऽन्तरधीयत ॥ २५ ॥
प्राणांस्त्यक्त्वा मतङ्गोऽपि संप्राप्तः स्थानमुत्तमम्।
एवमेतत्परं स्थानं ब्राह्मण्यं नाम भारत।
तच्च दुष्प्रापमिह वै महेन्द्रवचनं यथा ॥ २६ ॥ [१९१६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे इन्द्रमतङ्गसंवादे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

अवस्थामें पडा हूं, यह कैसा पूर्वकर्म है? हे प्रभु! पुरुषार्थसे दैवको अतिक्रम नहीं किया जासकता, जिसके निमित्त इस प्रकार यत्नवान होके भी कोई विप्रत्व लाभ नहीं कर सकता है। हे धर्मज्ञ! यदि ऐसा ही होवे और मैं तुम्हारा कृपापात्र होऊं, यदि मेरा कुछ सुकृत हो, तो आप मुझे वरदान कर सकते हैं। (१७--२१)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर बलवृत्रहन्ता इन्द्रने उस समय उससे कहा "वर मांगो" तब मतङ्ग इन्द्रकी आज्ञा पाके यह वचन कहने लगा। मैं कामरूपी पक्षी होकर स्वेच्छापूर्वक विहार करूं और मुझे ब्राह्मण क्षत्रियोंके अविरुद्ध पूजा प्राप्त होवे। हे पुरन्दर! हे देव! जिस प्रकार मेरी अक्षय कीर्ति हो, आप वैसा ही करिये, मैं प्रणत होके आपको प्रसन्न करता हूं। (२१–२४)

इन्द्र बोले, हे तात! तुम छन्दोदेव नामसे विख्यात होकर स्त्रियोंके पूजनीय होगे, और तुम्हारी अतुल कीर्त्ति तीनों

युधिष्ठिर उवाच- श्रुतं मे महदाख्यानमेतत्कुरुकुलोद्वह।
सुदुष्प्रापं यद्ब्रवीषि ब्राह्मण्यं वदतां वर ॥ १ ॥
विश्वामित्रेण च पुरा ब्राह्मण्यं प्राप्तमित्युत।
श्रूयते वदसे तच्च दुष्प्रापमिति सत्तम ॥ २ ॥
वीतहव्यश्च नृपतिः श्रुतो मे विप्रतां गतः।
तदेव तावद्गाङ्गेय श्रोतुमिच्छाम्यहं विभो ॥ ३ ॥
स केन कर्मणा प्राप्तो ब्राह्मण्यं राजसत्तमः।
वरेण तपसा वापि तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ४ ॥
भीष्म उवाच— शृणु राजन् यथा राजा वीतहव्यो महायशाः।
राजर्षिर्दुर्लभं प्राप्तो ब्राह्मण्यं लोकसत्कृतम् ॥ ५ ॥
मनोर्महात्मनस्तात प्रजा धर्मेण शासतः।
बभूव पुत्रो धर्मात्मा शर्यातिरिति विश्रुतः ॥ ६ ॥
तस्यान्ववाये द्वौ राजन् राजानौ संबभूवतुः।

लोकोंके बीच व्याप्त होगी। इन्द्र उसे ऐसा वर दान करके अन्तर्द्धान हुए। मतङ्गने भी प्राण त्यागके परम पद पाया। हे भारत! ब्राह्मणत्व अत्यन्त श्रेष्ठपद है, महेन्द्रके वचनानुसार दूसरे वर्णोंके लिये दुष्प्राप्य जानना चाहिये। (२४—२६)

अनुशासनपर्वमें २९ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ३० अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे कुरुकुलधुरन्धर वक्तृवर! आपने ब्राह्मणत्वको अत्यन्त दुष्प्राप्य कहा और यह महत् आख्यान मैंने आपके समीप सुना। हे सत्तम! आप ब्राह्मणत्वको दुष्प्राप्य कहते हैं, परन्तु ऐसा सुननेमें आता है, कि पहले समयमें विश्वामित्रने ब्राह्मणत्व लाभ किया था और मैंने सुना है, कि वीतहव्य राजाने भी ब्राह्मणत्व लाभ किया है। हे प्रभु गंगानन्दन! इसलिये मैं इस विषयको सुननेकी अभिलाष करता हूं, वे राजसत्तम वर अथवा तपस्यासे भी परे किस कर्मसे ब्राह्मणत्वको प्राप्त हुए? उसे आप मेरे समीप वर्णन करिये। (१-४)

भीष्म बोले, महायशस्वी राजा राजर्षि वीतहव्यने किस प्रकार लोकसत्कृत दुर्लभ ब्राह्मणत्व पाया था, उसे सुनो, हे तात! धर्मपूर्वक प्रजापालक महात्मा मनुके शर्याति नामक एक पुत्र था। हे महाराज! उस ही वत्सराज शर्यातिके वंशमें विजयी हैहय और तालजङ्घ नामक दो राजा हुए थे। हे

हैहयस्तालजङ्घश्च वत्सस्य जयतां वर ॥ ७ ॥
हैहयस्य तु राजेन्द्र दशसु स्त्रीषु भारत।
शतं बभूव पुत्राणां शूराणामनिवर्तिनाम् ॥ ८ ॥
तुल्यरूपप्रभावानां बलिनां युद्धशालिनाम्।
धनुर्वेदे च वेदे च सर्वत्रैव कृतश्रमाः ॥ ९ ॥
काशिष्वपि नृपो राजन् दिवोदासपितामहः।
हर्यश्व इति विख्यातो बभूव जयतां वरः ॥ १० ॥
स वीतहव्यदायादैरागत्य पुरुषर्षभ।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये संग्रामे विनिपातितः ॥ ११ ॥
तं तु हत्वा नरपतिं हैहयास्ते महारथाः।
प्रतिजग्मुः पुरीं रम्यां वत्सानामकुतोभयाः ॥ १२ ॥
हर्यश्वस्य च दायादः काशिराजोऽभ्यषिच्यत।
सुदेवो देवसंकाशः साक्षाद्धर्म इवापरः ॥ १३ ॥
स पालयामास महीं धर्मात्मा काशिनन्दनः।
तैर्वीतहव्यैरागत्य युधि सर्वैर्विनिर्जितः ॥ १४ ॥
तमथाजौ विनिर्जित्य प्रतिजग्मुर्यथागतम्।
सौदेवस्त्वथ काशीशो दिवोदासोऽभ्यषिच्यत॥ १५ ॥
दिवोदासस्तु विज्ञाय वीर्यं तेषां यतात्मनाम्।

भरतवंशावतंस राजेन्द्र! हैहयकी दश पत्नियोंसे एक सौ पुत्र हुए, वे सभी शूर, युद्धमें अपराजित, तुल्यरूप, तुल्यप्रभाव, बलवान, युद्धशाली, धनुर्वेद और वेदमें सर्वत्र परिश्रम किये हुए थे। (८-९)

हे महाराज! काशी-राज्यमें भी दिवोदासके पितामह विजयीप्रवर हर्यश्व नामक एक राजा था! हे पुरुषश्रेष्ठ! वह वीतहव्यके वंशधरोंके हाथसे गंगा-यमुनाके बीच युद्धमें मारा गया, भयसे रहित महारथ हैहयगणने उस राजाको मारके वत्सराजकी रमणीय पुरीमें प्रवेश किया। हर्यश्वके उत्तराधिकारी साक्षात् धर्मसदृश, देवसङ्काश काशिराज सुदेव उस राज्यपर अभिषिक्त हुआ। वह धर्मात्मा काशिराजका पुत्र पृथ्वी-पालन करने लगा। वीतहव्यके वंशवालोंने आके उसे भी पराजित किया, वे लोग उसे युद्धमें पराजित करके निज स्थान-पर लौट गये। अनन्तर काशिराज सुदेवका पुत्र दिवोदास उस राज्यपर

वाराणसीं महातेजा निर्ममे शक्रशासनात् ॥ १६ ॥
विप्रक्षत्रियसंबाधां वैश्यशूद्रसमाकुलाम् ।
नैकद्रव्योच्चयवतीं समृद्धविपणापणाम् ॥ १७ ॥
गङ्गाया उत्तरे कूले वप्रान्ते राजसत्तम ।
गोमत्या दक्षिणे कूले शक्रस्येवामरावतीम् ॥ १८ ॥
तत्र तं राजशार्दूलं निवसन्तं महीपतिम् ।
आगत्य हैहया भूयः पर्यधावन्त भारत ॥ १९ ॥
स निष्क्रम्य ददौ युद्धं तेभ्यो राजा महाबलः ।
देवासुरसमं घोरं दिवोदासो महाद्युतिः ॥ २० ॥
स तु युद्धे महाराज दिनानां दशतीर्दश ।
हतवाहनभूयिष्ठस्ततो दैन्यमुपागमत् ॥ २१ ॥
हतयोधस्ततो राजन् क्षीणकोशश्च भूमिपः ।
दिवोदासः पुरीं त्यक्त्वा पलायनपरोऽभवत् ॥ २२ ॥
गत्वाऽऽश्रमपदं रम्यं भरद्वाजस्य धीमतः ।
जगाम शरणं राजा कृताञ्जलिररिन्दम ॥ २३ ॥
तमुवाच भरद्वाजो ज्येष्ठः पुत्रो बृहस्पतेः ।

अभिषिक्त हुआ। (१०—१५)

महातेजस्वी दिवोदासने हैहयवंशियोंके बलको जानके इन्द्रकी आज्ञानुसार वाराणसी पुरी बसाई। वह पुरी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन तीनों वर्णों तथा अनेक प्रकारकी समृद्ध विपणि और आपणयुक्त गंगाके उत्तर तटके निकट तथा गोमतीके दक्षिण तटपर राजसत्तम दिवोदासके द्वारा इन्द्रकी अमरावतीकी भांति निर्मित हुई। हे भारत! पृथ्वीपति राजश्रेष्ठ दिवोदास जब वाराणसीमें वास करने लगे, तब हैहयगणने फिर आके उन्हें आक्रमण किया, महाबलवान महातेजस्वी दिवोदास पुरीसे निकलके हैहयगणके सङ्ग देवासुर सदृश घोर संग्राम करने लगे। (१६—२०)

हे महाराज! उन्होंने उस युद्धमें एक हजार दिनतक संग्राम करके अनेक वाहनोंके मारे जाने पर स्वयं दीनता अवलम्बन किया। हे महाराज! वह पृथ्वीपति दिवोदास सेना और कोष नष्ट होनेपर पुरी परित्याग करके भाग गये। हे शत्रुदमन! उस समय वह राजा बुद्धिशक्तिसे युक्त भरद्वाजके आश्रममें जाकर हाथ जोडके उनके

पुरोधाः शीलसंपन्नो दिवोदासं महीपतिम् ॥ २४ ॥
किमागमनकृत्यं ते सर्वं प्रब्रूहि मे नृप ।
यत्ते प्रियं तत्करिष्ये न मेऽत्रास्ति विचारणा ॥ २५ ॥
राजोवाच— भगवन्वैतहव्यैर्मे युद्धे वंशः प्रणाशितः ।
अहमेकः परिद्यूनो भवन्तं शरणं गतः ॥ २६ ॥
शिष्यस्नेहेन भगवंस्त्वं मां रक्षितुमर्हसि ।
एकशेषः कृतो वंशो मम तैः पापकर्मभिः ॥ २७ ॥
तमुवाच महाभागो भरद्वाजः प्रतापवान् ।
न भेतव्यं न भेतव्यं सौदेव व्येतु ते भयम् ॥ २८ ॥
अहमिष्टिं करिष्यामि पुत्रार्थं ते विशाम्पते ।
वीतहव्यसहस्राणि येन त्वं प्रहरिष्यसि ॥ २९ ॥
तत इष्टिं चकारर्षिस्तस्य वै पुत्रकामिकीम् ।
अथास्य तनयो जज्ञे प्रतर्दन इति श्रुतः ॥ ३० ॥
स जातमात्रो ववृधे समाः सद्यस्त्रयोदश ।
वेदं चापि जगौ कृत्स्नं धनुर्वेदं च भारत ॥ ३१ ॥
योगेन च समाविष्टो भरद्वाजेन धीमता ।

शरणागत हुआ। बृहस्पतिके ज्येष्ठपुत्र शीलसम्पन्न पुरोधा भरद्वाज राजा दिवोदाससे बोले, हे महाराज! तुम्हारे आगमनका क्या कारण है, वह सब मेरे निकट वर्णन करो। जो तुम्हें प्रिय होगा, मैं वही करूंगा, मुझे इस विषयमें विचार नहीं है। (२१-२५)

राजा बोला, हे भगवन्! वीतहव्यवंशीय शूरगणके द्वारा मेरा वंश नष्ट हुआ है, अकेला मैं अत्यन्त निराश होकर आपकी शरणमें आया हूं। हे भगवन्! आप शिष्यस्नेहवशसे मेरी रक्षा करनेमें समर्थ हैं, उन पापकर्मियोंने मेरे वंशको एक बारही शेष किया है। प्रतापवान महाभाग भरद्वाज ऋषि उससे बोले, "भय नहीं है! भय नहीं है।" हे सुदेवपुत्र! तुम्हारा भय दूर होवे। हे नरनाथ! मैं तुम्हारे पुत्रके निमित्त यज्ञ करूंगा, उसके द्वारा तुम सहस्र वीतहव्यको पराजित करोगे। अनन्तर भरद्वाज ऋषिने उसके लिये पुत्रकामनासे यज्ञ किया। उस यज्ञके प्रभावसे दिवोदासके प्रतर्दन नाम प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ। (२६—३०)

वह पुत्र उत्पन्न होते ही तेरह वर्षीय पुरुषकी भांति वर्द्धित हुआ। हे भारत!

तेजो लोकयं स संगृह्य तस्मिन्देशे समाविशत् ॥१२॥
ततः स कवची धन्वी स्तूयमानः सुरर्षिभिः।
बन्दिभिर्वन्द्यमानश्च बभौ सूर्य इवोदितः ॥ १३ ॥
स रथी बद्धनिस्त्रिंशो बभौ दीप्त इवानलः।
प्रययौ स धनुर्धुन्वन् खड्गी चर्मी शरासनी ॥ १४ ॥
तं दृष्ट्वा परमं हर्षं सुदेवतनयो ययौ।
मेने च मनसा दग्धान् वैतहव्यान्स पार्थिवः ॥ १५ ॥
ततोऽसौ यौवराज्ये च स्थापयित्वा प्रतर्दनम्।
कृतकृत्यं तदाऽऽत्मानं स राजा अभ्यनन्दत ॥ ३६ ॥
ततस्तु वैतहव्यानां वधाय स महीपतिः।
पुत्रं प्रस्थापयामास प्रतर्दनमरिन्दमम् ॥ १७ ॥
स रथः स तु संतीर्य गङ्गामाशु पराक्रमी।
प्रययौ वीतहव्यानां पुरीं परपुरञ्जयः ॥ ३८ ॥
वैतहव्यास्तु संश्रुत्य रथघोषं समुद्धतम्।
निर्ययुर्नगराकारै रथैः पररथारुजैः ॥ ३९ ॥
निष्क्रम्य ते नरव्याघ्रा दंशिताश्चित्रयोधिनः।

उसने जब सब वेद और धनुर्वेद पढ लिया, तब बुद्धिमान भरद्वाज योगबलसे उसके शरीरमें प्रविष्ट हुए, उन्होंने सार्वलौकिक तेजसंग्रह करके प्रतर्दन के शरीरमें प्रवेश किया। अनन्तर प्रतर्दन कवच और धनुष्य धारण करके देवर्षियोंसे स्तूयमान तथा बन्दीगणसे वन्दित होकर उदित सूर्यकी भांति शोभित हुए। वह बद्धपरिकर होकर रथपर चढके अग्निकी भांति प्रकाशित होने लगे; तलवार, ढाल और शरासन धारण करके धनुष्य कंपाते हुए गमन करनेमें प्रवृत्त हुए। सुदेवपुत्र राजा दिवोदास पुत्रको देखके परम हर्षित हुए और मनहीमन वीतहव्यके पुत्रोंको जले हुए जाना। (३१—३५)

अनन्तर राजा प्रतर्दनको युवराजपदपर स्थापित करके अपनेको कृतकृत्य समझके अभिनन्दन किया। फिर महीपति वीतहव्यका वध करनेके लिये निज पुत्र शत्रुदमन प्रतर्दनको भेजा। वह पराक्रमी परपुरविजयी प्रतर्दन रथके सहित शीघ्र ही गङ्गासे पार होके वीतहव्यकी पुरीमें जा पहुंचे। वीतहव्यके पुत्रोंने समुद्धत रथका शब्द सुनके पराये रथको पीडित करनेमें समर्थ

प्रतर्दनं समाजग्मुः शरवर्षैरुदायुधाः ॥ ४० ॥
शस्त्रैश्च विविधाकारै रथौघैश्च युधिष्ठिर ।
अभ्यवर्षन्त राजानं हिमवन्तमिवाम्बुदाः ॥ ४१ ॥
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य तेषां राजा प्रतर्दनः ।
जघान तान्महातेजा वज्रानलसमैः शरैः ॥ ४२ ॥
कृत्तोत्तमाङ्गास्ते राजन् भल्लैः शतसहस्रशः ।
अपतन् रुधिरार्द्रांगा निकृत्ता इव किंशुकाः ॥ ४३ ॥
हतेषु तेषु सर्वेषु वीतहव्यः सुतेष्वथ ।
प्राद्रवन्नगरं हित्वा भृगोराश्रममप्युत ॥ ४४ ॥
ययौ भृगुं च शरणं वीतहव्यो नराधिपः ।
अभयं च ददौ तस्मै राज्ञे राजन् भृगुस्तदा ॥ ४५ ॥
अथानुपदमेवाशु तत्रागच्छत्प्रतर्दनः ।
स प्राप्य चाश्रमपदं दिवोदासात्मजोऽब्रवीत् ॥ ४६ ॥
भो भोः केऽत्राश्रमे सन्ति भृगोः शिष्या महात्मनः ।
द्रष्टुमिच्छे मुनिमहं तस्याचक्षत मामिति ॥ ४७ ॥

नगराकार रथोंके द्वारा बाहर हुए। वे विचित्रयोधी, कवचधारी नरपुङ्गवगण नगरसे निकलकर बाणोंकी वर्षा करते हुए प्रतर्दनकी ओर गमन करनेमें प्रवृत्त हुए। हे युधिष्ठिर जैसे बादल हिमवान पर्वतपर जलकी वर्षा करते हैं, वैसे ही वे लोग प्रतर्दनके ऊपर अनेक प्रकारके शस्त्र चलाने लगे। (३९–४१)

महातेजस्वी राजा प्रतर्दनने निज अस्त्रोंसे उनके सब शस्त्रोंको निवारण करके वज्रानल सदृश बाणोंसे उनके शरीरमें प्रहार किया। हे महाराज! वे लोगभी सौ हजार भल्लास्त्रके द्वारा सिररहित होके तथा रुधिरसे भींगके कटे हुए फूले पलाशवृक्षकी भांति पृथ्वीपर गिर गये, उन समस्त पुत्रोंके मारे जानेपर राजा वीतहव्य नगर छोडके भागकर भृगुके आश्रममें जा छिपे। वह वीतहव्य राजा भृगुको शरण गया। हे महाराज! भृगु मुनिने भी उस राजाको अभय दान किया। (४१–४५)

अनन्तर उनके पश्चात् ही प्रतर्दनभी उस आश्रममें आके उपस्थित हुए। प्रतर्दन उस आश्रमपर पहुंचके बोले, महानुभाव भृगुके शिष्योंमेंसे कौन कौन इस आश्रममें हैं? मैं उस मुनिके दर्शनकी अभिलाष करता हूं। उनके

स तं विदित्वा तु भृगुर्निश्चक्रामाश्रमात्तदा ।
पूजयामास च ततो विधिना नृपसत्तमम् ॥ ४८ ॥
उवाच चैनं राजेन्द्र किं कार्यं ब्रूहि पार्थिव ।
स चोवाच नृपस्तस्मै यदागमनकारणम् ॥ ४९ ॥
राजोवाच— अयं ब्रह्मन्नितो राजा वीतहव्यो विसर्ज्यताम् ।
तस्य पुत्रैर्हि मे कृत्स्नो ब्रह्मन्वंशः प्रणाशितः ॥ ५० ॥
उत्सादितश्च विषयः काशीनां रत्नसञ्चयः ।
एतस्य वीर्यदृप्तस्य हतं पुत्रशतं मया ॥ ५१ ॥
अस्येदानीं वधादब्रह्मन् भविष्याम्यनृणः पितुः ।
तमुवाच कृपाविष्टो भृगुर्धर्मभृतां वरः ॥ ५२ ॥
नेहास्ति क्षत्रियः कश्चित्सर्वे हीमे द्विजातयः ।
एतत्तु वचनं श्रुत्वा भृगोस्तथ्यं प्रतर्दनः ॥ ५३ ॥
पादावुपस्पृश्य शनैः प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ।
एवमप्यस्मि भगवन् कृतकृत्यो न संशयः ॥ ५४ ॥
य एष राजवीर्येण स्वजातिं त्याजितो मया ।
अनुजानीहि मां ब्रह्मन् ध्यायस्व च शिवेन माम् ॥५५॥

समीप मेरी प्रार्थना निवेदन करो। भृगु मुनिने प्रतर्दनका आना सुनके उस ही समय आश्रमसे निकलकर उस राजसत्तमका विधिपूर्वक सत्कार किया। हे राजेन्द्र! भृगुने उनसे कहा, महाराज! किस प्रयोजनके निमित्त तुम इस स्थानमें आये हो? तब वह अपने आनेका कारण कहने लगे। (४८-४९)

राजा प्रतर्दन बोले, हे ब्रह्मन्! राजा वीतहव्य इस स्थानमें निवास कर रहे हैं, इसलिये आप उन्हें परित्याग करिये। हे ब्रह्मन्! उनके पुत्रोंके द्वारा मेरा समस्त वंश और काशीपुरीका राज्य तथा रत्नसंचय नष्ट हुआ है। इस वीर्यदृप्त राजाके एक सौ पुत्र मेरे हाथसे मारे गये हैं, अब इसका वध करके मैं पिताके समीप अऋण होऊंगा। (५०-५२)

धार्मिकश्रेष्ठ भृगु मुनि कृपायुक्त होकर उनसे बोले, यहांपर कोई क्षत्रिय नहीं है, क्यों कि ये सभी ब्राह्मण हैं। प्रतर्दन धीरे धीरे भृगु मुनिका सत्य वचन सुनके मुनिके दोनों चरण छूके प्रसन्न होकर बोले हे भगवन्! ऐसा होनेपर भी मैं निःसन्देह कृतकृत्य हुआ। क्यों कि यह राजा मेरे परा-

त्याजितो हि मया जातिमेव राजा भृगूद्वह ।
ततस्तेनाभ्यनुज्ञातो ययौ राजा प्रतर्दनः ॥ ५६ ॥
यथागतं महाराजमुक्त्वा विषमिवोरगः ।
भृगोर्वचनमात्रेण स च ब्रह्मर्षितां गतः ॥ ५७ ॥
वीतहव्यो महाराज ब्रह्मवादित्वमेव च ।
तस्य गृत्समदः पुत्रो रूपेणेन्द्र इवापरः ॥ ५८ ॥
शक्रस्त्वमिति यो दैत्यैर्निगृहीतः किलाभवत् ।
ऋग्वेदे वर्तते चाग्र्या श्रुतिर्यस्य महात्मनः ॥ ५९ ॥
यत्र गृत्समदो राजन् ब्राह्मणैः स महीयते ।
स ब्रह्मचारी विप्रर्षिः श्रीमान् गृत्समदोऽभवत् ॥६०॥
पुत्रो गृत्समदस्यापि सुतेजा अभवद् द्विजः ।
वर्चाः सुतेजसः पुत्रो विहव्यस्तस्य चात्मजः ॥ ६१ ॥
विहव्यस्य तु पुत्रस्तु वितत्यस्तस्य चात्मजः ।
वितत्यस्य सुतः सत्यः सन्तः सत्यस्य चात्मजः ॥६२ ॥
श्रवास्तस्य सुतश्चर्षिः श्रवसश्चाभवत्तमः ।
तमसश्च प्रकाशोऽभूत्तनयो द्विजसत्तमः ।
प्रकाशस्य च वागिन्द्रो बभूव जयतां वरः ॥ ६३ ॥

क्रमके द्वारा स्वजातिसे च्युत हुआ । हे ब्रह्मन् ! अब मुझे आज्ञा करिये मेरे कल्याणकी चिन्ता कीजिये। हे भृगुवंश-धुरन्धर ! इस राजाको मैंने जातित्याग कराई है । हे महाराज ! अनन्तर राजा प्रतर्दन भृगुकी आज्ञा पाके इस प्रकार निज स्थानपर चले गये, जैसे सांप विष उगलके चल देता है । हे राजन् ! वीतहव्यने भी भृगुके वचन मात्रसे ही ब्रह्मर्षित्व और ब्रह्मवादित्व लाभ किया । सुंदराईमें दूसरे इन्द्रके समान गृत्समद नाम उनका पुत्र था, जो कि इन्द्रके भ्रमसे दैत्योंके द्वारा निगृहीत हुआ था, हे ब्रह्मन् ! ऋग्वेदमें जिस महात्माकी श्रुति वर्त्तमान है, वह गृत्स-मद जिसके समीप रहते थे, वहां ही ब्राह्मणोंसे पूजित होते थे। ब्रह्मचारी श्रीमान् गृत्समद ब्रह्मर्षि हुए थे । गृत्समदका पुत्र सुतेजा भी ब्राह्मण हुआ था। (५२-६०)

सुतेजाका पुत्र वर्चा, वर्चाका पुत्र विहव्य, विहव्यका पुत्र वितत्य, वितत्यका पुत्र सत्य, सत्यका पुत्र सन्त, सन्तका पुत्र श्रवा ऋषि, श्रवाका पुत्र

तस्यात्मजश्च प्रमितिर्वेदवेदाङ्गपारगः।
घृताच्यां तस्य पुत्रस्तु रुरुर्नामोदपद्यत ॥ ६४ ॥
प्रमद्वरायां तु रुरोः पुत्रः समुदपद्यत।
शुनको नाम विप्रर्षिर्यस्य पुत्रोऽथ शौनकः ॥ ६५ ॥
एवं विप्रत्वमगमद्वीतहव्यो नराधिपः।
भृगोः प्रसादाद्राजेन्द्र क्षत्रियः क्षत्रियर्षभ ॥ ६६ ॥
तथैव कथितो वंशो मया गार्त्समदस्तव।
विस्तरेण महाराज किमन्यदनुपृच्छसि ॥ ६७ ॥ [१९८३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे वीतहव्योपाख्यानं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

युधिष्ठिर उवाच- के पूज्या वै त्रिलोकेऽस्मिन्मानवा भरतर्षभ।
विस्तरेण तदाचक्ष्व न हि तृप्यामि कथ्यतः ॥ १ ॥
भीष्म उवाच-अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
नारदस्य च संवादं वासुदेवस्य चोभयोः ॥ २ ॥
नारदं प्राञ्जलिं दृष्ट्वा पूजयानं द्विजर्षभान्।
केशवः परिपप्रच्छ भगवन् कान्नमस्यसि ॥ ३ ॥

तम, तमका पुत्र द्विजसत्तम प्रकाश, प्रकाशका पुत्र जापकश्रेष्ठ वागिन्द्र, वागिन्द्रका पुत्र प्रमिति जो कि वेद-वेदाङ्ग पारग थे। घृताची अप्सराके गर्भमें प्रमितिसे रुरु नामक विप्रर्षि पुत्र उत्पन्न हुआ था। प्रमद्वरासे रुरुके शुनक नाम विप्रर्षि पुत्र हुआ, जिसका पुत्र शौनक नामसे विख्यात है। हे क्षत्रिय-श्रेष्ठ! नरनाथ वीतहव्यने इस ही प्रकार भृगुकी कृपासे विप्रत्व लाभ किया था। हे महाराज! यह तुम्हारे समीप मैंने गृत्समदके वंशका विस्तार-पूर्वक वर्णन किया। अब और क्या पूछनेकी इच्छा है? (६०—६७)

अनुशासनपर्वमें ३० अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ३१ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! इन तीनों लोकोंके बीच कौन कौनसे मनुष्य पूज्य हैं? आप मेरे समीप इसे ही विस्तारपूर्वक वर्णन करिये। आपके वचन सुनके मुझे किसी प्रकार तृप्ति नहीं होता है। (१)

भीष्म बोले, प्राचीन लोग नारद ऋषि और श्रीकृष्णके संवादयुक्त यह इतिहास कहा करते हैं। ब्राह्मणोंकी पूजाके हेतु नारदको हाथ जोडे हुए

बहुमानपरस्तेषु भगवन्यान्नमस्यसि।
शक्यं चेच्छ्रोतुमस्माभिर्ब्रूह्येतद्धर्मवित्तम ॥ ४ ॥
नारद उवाच- शृणु गोविन्द यानेतान् पूजयाम्यरिमर्दन।
त्वत्तोऽन्यः कः पुमाँल्लोके श्रोतुमेतदिहार्हति ॥ ५ ॥
वरुणं वायुमादित्यं पर्जन्यं जातवेदसम्।
स्थाणुं स्कन्दं तथा लक्ष्मीं विष्णुं ब्रह्माणमेव च ॥ ६ ॥
वाचस्पतिं चन्द्रमसमपः पृथ्वीं सरस्वतीम्।
सततं ये नमस्यन्ति तान्नमस्याम्यहं विभो ॥ ७ ॥
तपोधनान्वेदविदो नित्यं वेदपरायणान्।
महार्हान्वृष्णिशार्दूल सदा संपूजयाम्यहम् ॥ ८ ॥
अभुक्त्वा देवकार्याणि कुर्वते येऽविकत्थनाः।
संतुष्टाश्च क्षमायुक्तास्तान्नमस्याम्यहं विभो ॥ ९ ॥
सम्यग्यजन्ति ये चेष्टीः क्षान्ता दान्ता जितेन्द्रियाः।
सत्यं धर्मं क्षितिं गाश्च तान्नमस्यामि यादव ॥ १० ॥

देखकर श्रीकृष्णने पूछा। हे भगवन्! आप किसे नमस्कार करते हैं? हे भगवन्! आप ब्राह्मणोंका बहुमान करते हुए किन लोगोंको नमस्कार करते हैं? हे धर्मवित्तम! यदि यह विषय मेरे सुननेके योग्य हो, तो मैं सुननेकी इच्छा करता हूं, आप वर्णन करिये। (१—४)

नारद मुनि बोले, हे अरिदमन गोविन्द! मैं जिनकी पूजा करता हूं, वह कहता हूं, सुनो। इस लोकमें तुम्हारे अतिरिक्त और कौन पुरुष यह विषय सुननेके योग्य होगा? जो लोग वरुण, वायु, आदित्य, पर्जन्य, अग्नि, स्थाणु, स्कन्द, लक्ष्मी, विष्णु, ब्रह्मा, वाचस्पति, चन्द्रमा, जल, पृथिवी और सरस्वतीको सदा नमस्कार करते हैं, हे विभु! मैं उन्हीं लोगोंको नमस्कार किया करता हूं। हे वृष्णिशार्दूल! तपोधन, वेद जाननेवाले, सदा वेद पढनेवाले श्रेष्ठ लोगोंकी मैं सदा पूजा करता हूं। हे प्रभु! जो अनात्मश्लाघा-परायण मनुष्य अभुक्त रहके देवकार्य करते तथा जो सन्तुष्ट और क्षमायुक्त हैं, मैं उन्हींको नमस्कार किया करता हूं। हे यादव! जो लोग क्षमाशील, दान्त और जितेन्द्रिय होकर पूर्णरीतिसे यज्ञ करते, सत्य और धर्मकी पूजा करते तथा ब्राह्मणोंको भूमि और गऊ दान करते हैं, मैं उन्हें ही नमस्कार करता हूं। (५—१०)

ये वै तपसि वर्तन्ते वने मूलफलाशनाः।
असंचयाः क्रियावन्तस्तान्नमस्यामि यादव ॥ ११ ॥
ये भृत्यभरणे शक्ताः सततं चातिथिव्रताः।
भुञ्जते देवशेषाणि तान्नमस्यामि यादव ॥ १२ ॥
ये वेदं प्राप्य दुर्धर्षा वाग्मिनो ब्रह्मचारिणः।
याजनाध्यापने युक्ता नित्यं तान्पूजयाम्यहम् ॥ १३ ॥
प्रसन्नहृदयाश्चैव सर्वसत्त्वेषु नित्यशः।
आपृष्ठतापात्स्वाध्याये युक्तास्तान्पूजयाम्यहम् ॥१४॥
गुरुप्रसादे स्वाध्याये यतन्तो ये स्थिरव्रताः।
शुश्रूषवोऽनसूयन्तस्तान्नमस्यामि यादव ॥ १५ ॥
सुव्रता मुनयो ये च ब्राह्मणाः सत्यसङ्गराः।
वोढारो हव्यकव्यानां तान्नमस्यामि यादव ॥ १६ ॥
भैक्ष्यचर्यासु निरताः कृशा गुरुकुलाश्रयाः।
निःसुखा निर्धना ये तु तान्नमस्यामि यादव ॥ १७ ॥

जो लोग वनके बीच फलमूल भोजन करके तपस्या करते और सञ्चय न करके कर्म किया करते हैं, हे यादव! मैं उन्हें ही नमस्कार किया करता हूं, जो सेवकोंको भरण करनेमें समर्थ हैं, सदा अतिथिव्रत और देवताओंसे शेष बचा हुआ अन्न आदि भोजन करते हैं, मैं उन्हींको नमस्कार किया करता हूं। जो सब वाग्मट ब्रह्मचारी वेदज्ञान लाभ करके अनभिभवनीय होते और जो लोग सदा याजन और अध्यापन कार्यमें नियुक्त रहते हैं, मैं उन्हींकी पूजा करता हूं। (११—१३)

जो सब जीवोंके विषयमें सदा प्रसन्नचित्त रहते और मध्यान्ह पर्यन्त स्वाध्याय पाठ तथा मन्त्रजप करनेमें नियुक्त रहते हैं, मैं उन लोगोंकी पूजा करता हूं। हे यादव! जो सब स्थिरव्रती मनुष्य गुरुके प्रसादसे स्वाध्यायपाठमें यत्नवान रहते, गुरुकी सेवा करते और किसीकी निन्दा नहीं करते, मैं उन्हें ही नमस्कार किया करता हूं। हे यादव! जो सब उत्तम व्रतवाले मुनि और सत्यप्रतिज्ञ ब्राह्मणगण हव्य-कव्य वहन किया करते हैं, मैं उन्हें ही नकस्कार करता हूं। हे यादव! जो लोग भैक्ष्यचर्यमें तत्पर रहते, कृश, गुरुकुलाश्रय, सुखरहित और निर्द्धन हैं, मैं उन्हें ही नमस्कार करता हूं। (१४-१७)

निर्ममा निष्प्रतिद्वन्द्वा निर्ह्रीका निष्प्रयोजनाः ।
ये वेदं प्राप्य दुर्धर्षा वाग्मिनो ब्रह्मवादिनः ॥ १८ ॥
अहिंसानिरता ये च ये च सत्यव्रता नराः ।
दान्ताः शमपराश्चैव तान्नमस्यामि केशव ॥ १९ ॥
देवतातिथिपूजायां युक्ता ये गृहमेधिनः ।
कपोतवृत्तयो नित्यं तान्नमस्यामि यादव ॥ २० ॥
येषां त्रिवर्गः कृत्येषु वर्तते नोपहीयते ।
शिष्टाचारप्रवृत्ताश्च तान्नमस्याम्यहं सदा ॥ २१ ॥
ब्राह्मणाः श्रुतसंपन्ना ये त्रिवर्गमनुष्ठिताः ।
अलोलुपाः पुण्यशीलास्तान्नमस्यामि केशव ॥ २२ ॥
अब्भक्षा वायुभक्षाश्च सुधाभक्षाश्च ये सदा ।
व्रतैश्च विविधैर्युक्तास्तान्नमस्यामि माधव ॥ २३ ॥
अयोनीनग्नियोनींश्च ब्रह्मयोनींस्तथैव च ।
सर्वभूतात्मयोनींश्च तान्नमस्याम्यहं सदा ॥ २४ ॥

जो सब मनुष्य ममतारहित, निष्प्रतिद्वन्द्व, दिगम्बर, निष्प्रयोजन और और वेदलाभ करके अनभिभवनीय, वाग्मी, ब्रह्मवादी, अहिंसारत, सत्यव्रत, दान्त और शमपरायण हैं, मैं उन्हें ही नमस्कार किया करता हूं। जो सब गृहस्थ पुरुष देवता तथा अतिथि पूजामें नियुक्त रहते और सदा कपोतवृत्ति अर्थात् कणग्रहणपूर्वक सञ्चय न करके जीवन व्यतीत करते हैं, मैं उन्हें ही नमस्कार किया करता हूं। जो लोग धर्म, अर्थ और काम इन त्रिवर्ग कार्योंमें वर्त्तमान रहते हैं, कदापि परित्यक्त नहीं होते तथा जो शिष्टाचारमें प्रवृत्त रहते हैं, मैं उन्हें ही सदा नमस्कार किया करता हूं। (१८-२१)

हे केशव! जो ब्राह्मण शास्त्रज्ञानसे युक्त होकर धर्म, अर्थ और कामका अनुष्ठान करते हैं, जो अलोलुप और और पुण्यशील हैं, मैं उन्हें ही नमस्कार करता हूं, जो लोग जल तथा वायु पीके निवास करते और जो सुधा अर्थात् वैश्वदेवसे अवशिष्ट अन्न भक्षण किया करते हैं, सदा विविध व्रतोंसे युक्त रहते हैं, मैं उन्हें ही नमस्कार करता हूं। जो लोग अकृतदार और जो स्त्रीके सहित अग्निहोत्र वा वेदके आश्रय तथा सर्वभूतात्मयोनि हैं, मैं उन्हें ही नमस्कार किया करता हूं। (२२-२४)

नित्यमेतान्नमस्यामि कृष्ण लोककरानृषीन् ।
लोकज्येष्ठान् कुलज्येष्ठांस्तमोघ्नान् लोकभास्करान् ॥२५॥
तस्मात्त्वमपि वार्ष्णेय द्विजान् पूजय नित्यदा ।
पूजिताः पूजनार्हा हि सुखं दास्यन्ति तेऽनघ ॥ २६ ॥
अस्मिन् लोके सदा ह्येते परत्र च सुखप्रदाः ।
चरन्ते मान्यमाना वै प्रदास्यन्ति सुखं तव ॥ २७ ॥
ये सर्वातिथयो नित्यं गोषु च ब्राह्मणेषु च ।
नित्यं सत्ये चाभिरता दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ २८ ॥
नित्यं शमपरा ये च तथा ये चानसूयकाः ।
नित्यस्वाध्यायिनो ये च दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ २९ ॥
सर्वान्देवान्नमस्यन्ति ये चैकं वेदमाश्रिताः ।
श्रद्दधानाश्च दान्ताश्च दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ ३० ॥
तथैव विप्रप्रवरान्नमस्कृत्य यतव्रताः ।
भवन्ति ये दानरता दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ ३१ ॥
तपस्विनश्च ये नित्यं कौमारब्रह्मचारिणः ।
तपसा भावितात्मानो दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ ३२ ॥
देवतातिथिभृत्यानां पितॄणां चार्चने रताः ।

हे कृष्ण ! जो लोकज्येष्ठ, कुलज्येष्ठ, तमोघ्न और लोकसत्तम हैं, मैं उन्हीं लोकप्रकाशक ऋषियोंको नमस्कार किया करता हूं। हे वार्ष्णेय ! इसलिये तुम भी सदा ब्राह्मणोंकी पूजा करो। हे अनघ ! वे पूजनीय पुरुष पूजित होनेसे सुख सम्पत्ति प्रदान किया करते हैं। इस लोक और परलोकमें ये लोग सुखप्रद होकर सदा विचरते रहते हैं, ये मान्ययुक्त होनेसे तुम्हारा उत्तम विधान करेंगे। (२५-२७)

जो लोग सदा सब लोगोंका आतिथ्य किया करते हैं, गऊ-ब्राह्मण और सत्यवचन कहनेमें रत रहते हैं, वे सब क्लेशोंसे पार होसकते हैं। जो लोग सदा शमपरायण, अनसूयक और नित्य स्वाध्यायशील हैं, वे क्लेशोंसे उत्तीर्ण होसकते हैं। जो श्रद्धावान सब देवोंकी पूजा करते, एक वेदका आसरा करते, इंद्रियनिग्रह करते हैं तथा विप्रश्रेष्ठोंको नमस्कार करके व्रताचरण करते, दानमें रत होते हैं वे सब क्लेशोंसे पार होसकते हैं। जिस तपस्वी तथा कुमार ब्रह्मचारीने सदा तपस्यामें रत रहके आत्माको

शिष्टान्नभोजिनो ये च दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ ३३ ॥
अग्निमाधाय विधिवत्प्रणता धारयन्ति ये ।
प्राप्ताः सोमाहुतिं चैव दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ ३४ ॥
मातापित्रोर्गुरुषु च सम्यग्वर्तन्ति ये सदा ।
यथा त्वं वृष्णिशार्दूलेत्युक्त्वैवं विरराम सः ॥ ३५ ॥
तस्मात्त्वमपि कौन्तेय पितृदेवद्विजातिथीन् ।
सम्यक् पूजयसे नित्यं गतिमिष्टामवाप्स्यसि ॥ ३६ ॥ [२०१९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे कृष्णनारदसंवादे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

युधिष्ठिर उवाच-पितामह महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
त्वत्तोऽहं श्रोतुमिच्छामि धर्मं भरतसत्तम ॥ १ ॥
शरणागतं ये रक्षन्ति भूतग्रामं चतुर्विधम् ।
किं तस्य भरतश्रेष्ठ फलं भवति तत्त्वतः ॥ २ ॥
भीष्म उवाच-इदं शृणु महाप्राज्ञ धर्मपुत्र महायशः ।
इतिहासं पुरावृत्तं शरणार्थं महाफलम् ॥ ३ ॥

जाना है, वह क्लेशोंसे पार हो सकता है। जो लोग देवता, अतिथि, पितर और सेवकोंकी अर्चनामें अनुरक्त तथा शिष्टान्नभोजी हैं, वेभी क्लेशोंसे छूट जाते हैं। (२८-३३)

जो अग्नि लाकर प्रणत होके उसे धारण करते और सोम आहुति प्राप्त करते हैं, वे क्लेशोंसे उत्तीर्ण होसकते हैं। हे वृष्णिशार्दूल! जो लोग तुम्हारी भांति माता, पिता और गुरुके निकट सदा पूर्णरूपसे निवास करते हैं, इतनी कथा कहके ही नारद मुनि चुप होगये। हे कौन्तेय ! इसलिये तुम भी पितरों, देवताओं, ब्राह्मणों और अतिथियोंकी सदा पूरी रीतिसे पूजा करते हो, इससे अभिलषित गति पाओगे। (३४—३६)

अनुशासनपर्वमें ३१ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ३२ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्वशास्त्रविशारद महाप्राज्ञ भरतसत्तम पितामह ! मैं आपके समीप धर्म सुननेकी इच्छा करता हूं। हे भरतश्रेष्ठ ! जो लोग स्वेदज, उद्भिज, अण्डज और जरायुज आदिके बीचसे किसीको शरणागत होनेपर उसकी रक्षा करते हैं, उस शरणागतकी रक्षा करनेका यथार्थ फल क्या है ? (१-२)

प्रपात्यमानः श्येनेन कपोतः प्रियदर्शनः ।
वृषदर्भं महाभागं नरेन्द्रं शरणं गतः ॥ ४ ॥
स तं दृष्ट्वा विशुद्धात्मा त्रासादङ्कमुपागतम् ।
आश्वास्याश्वसिहीत्याह न तेऽस्ति भयमण्डज ॥ ५ ॥
भयं ते सुमहत्कस्मात्कुत्र किं वा कृतं त्वया ।
येन त्वमिह संप्राप्तो विसंज्ञो भ्रान्तचेतनः ॥ ६ ॥
नवलीनोत्पलापीड चारुवर्ण सुदर्शन ।
दाडिमाशोकपुष्पाक्ष मा त्रसस्वाभयं तव ॥ ७ ॥
मत्सकाशमनुप्राप्तं न त्वां कश्चित्समुत्सहेत् ।
मनसा ग्रहणं कर्तुं रक्षाध्यक्षपुरस्कृतम् ॥ ८ ॥
काशिराज्यं तदद्यैव त्वदर्थं जीवितं तथा ।
त्यजेयं भव विस्रब्धः कपोत न भयं तव ॥ ९ ॥
श्येन उवाच—ममैतद्विहितं भक्ष्यं न राजंस्त्रातुमर्हसि ।
अतिक्रान्तं च प्राप्तं च प्रयत्नाच्चोपपादितम् ॥ १० ॥

भीष्म बोले, हे महाप्राज्ञ महायशस्वी धर्मनन्दन ! शरणागतकी रक्षाके विषयमें यह महाफलजनक प्राचीन इतिहास सुनो। कोई प्रियदर्शन कपोत बाजपक्षीके झपटनेसे आकाशसे गिरके महाभाग वृषदर्भ राजाके शरणमें गया। उस विशुद्धात्मा राजाने उसे भयवशसे निज गोदीमें छिपा हुआ देखके धीरज देके कहा। हे अण्डज ! तुम्हें भय नहीं है, तुम धीरज धरो, किस निमित्त तुम्हें महत् भय हुआ है; कहांपर तुमने कैसा कार्य किया है, जिससे संज्ञारहित और भ्रान्तचित्त होकर इस स्थानमें आये हो ? (३—६)

हे सुदर्शन ! हे नवनीलोत्पलनिर्मितभूषण सदृश उत्तम रूपवाले ! हे दाडिम और अशोक पुष्पसदृश नेत्रवाले! तुम भय मत करो, तुम्हें यहांपर कुछ भय नहीं है। जब तुम रक्षाध्यक्षपुरस्कृत मेरे समीप उपस्थित हुए हो, तब कोई पुरुष तुम्हें मनसे भी ग्रहण करनेका उत्साह न कर सकेगा। हे कपोत ! मैं आज ही तुम्हारे लिये काशिराज्य तथा जीवन परित्याग करूंगा, तुम विश्वासी होके रहो, तुम्हें कुछ भय नहीं है। (७—९)

बाज बोला, हे राजन् ! विधाताके द्वारा यह नष्टजीवितप्राय पक्षी मेरे भक्ष्यरूपसे विहित तथा प्रयत्नपूर्वक प्राप्त हुआ है, इसलिये आप इसका परित्राण

मांसं च रुधिरं चास्य मज्जा मेदश्च मेहितम् ।
परितोषकरो ह्येष मम माऽस्याग्रतो भव ॥ ११ ॥
तृष्णा मे बाधतेऽत्युग्रा क्षुधा निर्दहतीव माम् ।
मुञ्चैनं न हि शक्ष्यामि राजन्मन्दयितुं क्षुधाम् ॥१२॥
मया ह्यनुसृतो ह्येष मत्पक्षनखविक्षतः ।
किंचिदुच्छ्वासनिःश्वासं न राजन् गोप्तुमर्हसि ॥१३॥
यदि स्वविषये राजन् प्रभुस्त्वं रक्षणे नृणाम् ।
खेचरस्य तृषार्तस्य न त्वं प्रभुरथोत्तम ॥ १४ ॥
यदि वैरिषु भृत्येषु स्वजनव्यवहारयोः ।
विषयेष्विन्द्रियाणां च आकाशे मा पराक्रम ॥ १५ ॥
प्रभुत्वं हि पराक्रम्य सम्यक् पक्षहरेषु ते ।
यदि त्वमिह धर्मार्थी मामपि द्रष्टुमर्हसि ॥ १६ ॥
भीष्म उवाच—श्रुत्वा श्येनस्य तद्वाक्यं राजर्षिर्विस्मयं गतः ।
संभाव्य चैनं तद्वाक्यं तदर्थी प्रत्यभाषत ॥ १७ ॥

न कर सकेंगे। इसका रक्त, मांस, मज्जा, मेद मेरा हितकर है, यह मुझे परितोषकर है, इसलिये आप इसके अगाडी न आवें। हे राजन्! अत्यन्त उग्र तृष्णा मुझे पीडित और क्षुधा मानो निःशेष करके भस्म किया चाहती है। इसलिये आप इसे परित्याग करिये, मैं क्षुधाकी मन्दता नहीं कर सकता हूं। मेरे पंख और नखसे यह पक्षी घायल हुआ है, मैंने इसका अनुसरण किया है। इसका थोडासा श्वास वा निश्वास चल रहा है; हे राजन्! इसलिये आप इसकी रक्षा न कर सकेंगे। (१०—१३)

हे महाराज! आप निज राज्यमें मनुष्योंकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं, परन्तु तृषासे आर्त्त खेचरोंके रक्षाकार्यमें उत्तम रीतिसे प्रभु नहीं है। आप शत्रु, सेवक, स्वजन, व्यवहारविषय और इन्द्रियविषयमें त्रिक्रम प्रकाश करिये, आकाशचारियोंके ऊपर पराक्रम न कीजिये। आज्ञा भङ्ग करनेवाले, शत्रुओंके विषयमें आपको पूरी रीतिसे पराक्रम प्रकाश करके प्रभुता करना उचित है, आप यदि इस समय धर्मार्थी हों, तो मेरी ओर भी दृष्टि करनी योग्य है। भीष्म बोले, हे राजर्षि! बाजपक्षीका ऐसा वचन सुनके विस्मित हुए और उसके वचनका आदर करके उत्तर देने लगे। (१४—१७)

राजोवाच—गोवृषो वा वराहो वा मृगो वा महिषोऽपि वा ।
त्वदर्थमद्य क्रियतां क्षुधाप्रशमनाय ते ॥ १८ ॥
शरणागतं न त्यजेयमिति मे व्रतमाहितम् ।
न मुञ्चति ममाङ्गानि द्विजोऽयं पश्य वै द्विज ॥ १९ ॥
श्येन उवाच—न वराहं न चोक्षाणं नचान्यान्विविधान् द्विजान् ।
भक्षयामि महाराज किमन्नाद्येन तेन मे ॥ २० ॥
यस्तु मे विहितो भक्ष्यः स्वयं देवैः सनातनः ।
श्येनाः कपोतान् खादन्ति स्थितिरेषा सनातनी ॥ २१ ॥
उशीनर कपोते तु यदि स्नेहस्तवानघ ।
ततस्त्वं मे प्रयच्छाद्य स्वमांसं तुलया धृतम् ॥ २२ ॥
राजोवाच— महाननुग्रहो मेऽद्य यस्त्वमेवमिहात्थ माम् ।
बाढमेव करिष्यामीत्युक्त्वाऽसौ राजसत्तमः ॥ २३ ॥
उत्कृत्योत्कृत्य मांसानि तुलया समतोलयत् ।
अन्तःपुरे ततस्तस्य स्त्रियो रत्नविभूषिताः ॥ २४ ॥
हाहाभूता विनिष्क्रान्ताः श्रुत्वा परमदुःखिताः ।
तासां रुदितशब्देन मन्त्रिभृत्यजनस्य च ॥ २५ ॥

राजा बोला, गऊ, बैल, वराह, हरिन अथवा भैंसे आज तुम्हारी क्षुधाको शान्त करें, मैं शरणागतको परित्याग नहीं करता; यही मेरा निश्चित व्रत है। हे विहङ्ग ! देखो, यह कपोत मेरा अंग परित्याग नहीं करता है। (१८-१९)

बाज बोला, हे महाराज ! मैं वृष, वराह अथवा दूसरे विविध पक्षियोंको भक्षण न करूंगा, मुझे इन सब अन्न आदिसे क्या प्रयोजन है ? स्वयं देवताओंने मेरे सनातन भक्ष्यका जो कुछ विधान किया है, उसे ही भक्षण करूंगा। "बाजपक्षी कबूतरोंको भक्षण करते हैं, यह सनातन मर्यादा है।" हे पापरहित उशीनर ! इस कपोतके विषयमें यदि आप स्नेह करते हो, तो तुलादण्डपर इसहीके परिमाणसे निज मांस मुझे प्रदान करिये। (२० – २२)

राजा बोला, मुझपर तुम्हारी बहुत ही कृपा दीख पडती है, क्यों कि अब तुम मुझसे ऐसा कहते हो, बहुत अच्छा, मैं इस ही प्रकार करूंगा। उस राजसत्तमने ऐसा वचन कहके अपना मांस काटके तराजूपर तौला। अनन्तर उनके अंतःपुरनिवासकी रत्नभूषित स्त्रियें यह वृत्तान्त सुनके अत्यन्त दुःखित होकर

बभूव सुमहान्नादो मेघगम्भीरनिःस्वनः ।
निरुद्धं गगनं सर्वं व्यभ्रं मेघैः समन्ततः ॥ २६ ॥
मही प्रचलिता चासीत्तस्य सत्येन कर्मणा ।
स राजा पार्श्वतश्चैव बाहुभ्यामूरुतश्च यत् ॥ २७ ॥
तानि मांसानि संछिद्य तुलां पूरयतेऽशनैः ।
तथापि न समस्तेन कपोतेन बभूव ह ॥ २८ ॥
अस्थिभूतो यदा राजा निर्मांसो रुधिरस्रवः ।
तुलां ततः समारूढः स्वं मांसक्षयमुत्सृजन् ॥ २९ ॥
ततः सेन्द्रास्त्रयो लोकास्तं नरेन्द्रमुपस्थिताः ।
भेर्यश्चाकाशगैस्तत्र वादिता देवदुन्दुभिः ॥ ३० ॥
अमृतेनावसिक्तश्च वृषदर्भो नरेश्वरः ।
दिव्यैश्च सुसुखैर्माल्यैरभिवृष्टः पुनः पुनः ॥ ३१ ॥
देवगन्धर्वसंघातैरप्सरोभिश्च सर्वतः ।
नृत्तश्चैवोपगीतश्च पितामह इव प्रभुः ॥ ३२ ॥
हेमप्रासादसंबाधं मणिकाञ्चनतोरणम् ।
सवैदूर्यमणिस्तम्भं विमानं समधिष्ठितः ॥ ३३ ॥

हाहाकार करती हुई बाहर निकलीं। उन स्त्रियों, मन्त्रियों और सेवकोंके रोदनसे बादल गर्जनेकी भांति महान् शब्द होने लगा। निर्मल आकाश बादलोंसे परिपूरित होगया। उस राजाके सत्यकार्यसे पृथ्वी हिलने लगी। राजाने दोनों कोखे, दोनों भुजा और छातीका मांस काटके शीघ्र ही तराजूको पूरित किया, तौभी वह सारा मांस कपोतके सङ्ग न तुला। (२३—२८)

जब राजाका शरीर मांसरहित हुआ, केवल हड्डी ही रह गई और लोहू झरने लगा। तब वह निज मांस स्थान शरीरको छोडके कपोतके संग तुल्य-भावसे तराजूपर चढे, अनन्तर इन्द्रके सहित तीनों लोकके सब प्राणी उस राजाके निकट उपस्थित हुए। आकाश-चारी प्राणी भेरी और दुन्दुभी बजाने लगे। राजा वृषदर्भ अमृतसे अभिषिक्त हुए और उनके शरीरपर अत्यन्त सुख-कर दिव्य मालाकी बार बार वर्षा होने लगी। जैसे देवता, गन्धर्व और अप्सरा पितामहके निकट नृत्यगीत आरम्भ करती हैं, वैसेही उनके समीप नाच और गीत होने लगा। तब वह राजर्षि निज कर्मसे सुवर्णभूषित मणिकाञ्चनतोरण

स राजर्षिर्गतः स्वर्गं कर्मणा तेन शाश्वतम् ।
शरणागतेषु चैवं त्वं कुरु सर्वं युधिष्ठिर ॥ ३४ ॥
भक्तानामनुरक्तानामाश्रितानां च रक्षिता ।
दयावान्सर्वभूतेषु परत्र सुखमेधते ॥ ३५ ॥
साधुवृत्तो हि यो राजा सद्वृत्तमनुतिष्ठति ।
किं न प्राप्तं भवेत्तेन स्वव्याजेनेह कर्मणा ॥ ३६ ॥
स राजर्षिर्विशुद्धात्मा धीरः सत्यपराक्रमः ।
काशीनामीश्वरः ख्यातस्त्रिषु लोकेषु कर्मणा ॥ ३७ ॥
योऽप्यन्यः कारयेदेवं शरणागतरक्षणम् ।
सोऽपि गच्छेत तामेव गतिं भरतसत्तम ॥ ३८ ॥
इदं वृत्तं हि राजर्षे वृषदर्भस्य कीर्तयन् ।
पूतात्मा वै भवेल्लोके शृणुयाद्यश्च नित्यशः ॥ ३९ ॥ [२०५८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे श्येनकपोताख्याने द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

युधिष्ठिर उवाच- किं राज्ञः सर्वकृत्यानां गरीयः स्यात्पितामह ।
कुर्वन् किं कर्म नृपतिरुभौ लोकौ समश्नुते ॥ १ ॥

और वैदूर्य मणिके स्तम्भोंसे युक्त विमानपर चढके नित्य स्वर्गमें गये।(२९-३४)

हे युधिष्ठिर ! तुम भी शरणागत पुरुषोंके विषयमें ऐसा ही व्यवहार करो। भक्त, अनुरक्त और आश्रितोंकी जो मनुष्य रक्षा करते तथा जो लोग सब जीवोंके विषयमें दयावान् होते हैं, उन्हें परलोकमें सुख मिलता है। जो राजा सुशील होकर इस लोकमें सदाचारका अनुष्ठान करता है, उसे उस अनुष्ठित निष्कपट कर्मके सहारे कौन विषय नहीं प्राप्त होता। वह शुद्ध चित्तवाला, धीर और सत्यपराक्रमी काशिराज राजर्षि निज कर्मसे तीनों लोकमें विख्यात हुआ है। हे भरतसत्तम ! दूसरा जो पुरुष इस ही प्रकार शरणागत लोगोंकी रक्षा करता है, उसे भी सद्गति प्राप्त होती है। जो पुरुष राजर्षि वृषदर्भका यह चरित्र प्रतिदिन पाठ करता वा सुनता है, इस लोकमें उसका चित्त पवित्र होता है।(३४-३९)

अनुशासनपर्वमें ३२ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ३३ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! सब प्राणियोंके विषयमें राजाका गुरुतरकार्य क्या है और कैसा कार्य करनेसे राजा

भीष्म उवाच- एतद्राज्ञः कृत्यतममभिषिक्तस्य भारत।
ब्राह्मणानामनुष्ठानमत्यन्तं सुखमिच्छता ॥ २ ॥
कर्तव्यं पार्थिवेन्द्रेण तथैव भरतर्षभ।
श्रोत्रियान्ब्राह्मणान् वृद्धान्नित्यमेवाभिपूजयेत् ॥ ३ ॥
पौरजानपदांश्चापि ब्राह्मणांश्च बहुश्रुतान्।
सान्त्वेन भोगदानेन नमस्कारैस्तथाऽर्चयेत् ॥ ४ ॥
एतत्कृत्यतमं राज्ञो नित्यमेवोपलक्षयेत्।
यथाऽऽत्मानं यथा पुत्रांस्तथैतान्प्रतिपालयेत् ॥ ५ ॥
ये चाप्येषां पूज्यतमास्तान् दृढं प्रतिपूजयेत्।
तेषु शान्तेषु तद्राष्ट्रं सर्वमेव विराजते ॥ ६ ॥
ते पूज्यास्ते नमस्कार्या मान्यास्ते पितरो यथा।
तेष्वेव यात्रा लोकानां भूतानामिव वासवे ॥ ७ ॥
अभिचारैरुपायैश्च दहेयुरपि चेतसा।
निःशेषं कुपिताः कुर्युरुग्राः सत्यपराक्रमाः ॥ ८ ॥
नान्तमेषां प्रपश्यामि न दिशश्चाप्यपावृताः।

इस लोकमें तथा परलोकमें सुख भोग करता है? (१)

भीष्म बोले, हे भारत! अत्यन्त सुखकी इच्छा करनेवाले अभिषिक्त हुए राजाके लिये ब्राह्मणोंकी आराधना ही मुख्य कार्य है। हे नरेन्द्र! राजाको जो करना योग्य है, उसे तुम सुनो। राजा पूजनीय ब्राह्मणोंकी प्रतिदिन पूजा करे, पुरवासी और जनपदवासी बहुविद्याविशिष्ट ब्राह्मणोंकी सान्त्वना-वचन, भोगदान तथा नमस्कारके सहारे अर्चना करे। राजाका यह अवश्य कर्त्तव्य है, इसका सदा विचार करना चाहिये; जैसे राजा अपने पुत्रोंका प्रतिपालन करता है, वैसे ही ब्राह्मणोंका प्रतिपालन करे, उन लोगोंके बीच जो पूजनीय हो, उनकी दृढरूपसे पूजा करनी योग्य है, वे लोग जिस जिस राज्यमें शान्त रहते हैं, वही राज्य सब भांतिसे स्थिर रहता है। (२—६)

ये लोग पितरोंकी भांति पूजनीय, माननीय और नमस्कारके योग्य हैं। जैसे वर्षासे प्राणियोंकी जीवनयात्रा निभती है, वैसे ही ब्राह्मणोंसे समस्त लोकयात्रा हुआ करती है। सत्यपराक्रमी ब्राह्मण लोग कुपित तथा उग्रता अवलम्बन करके सङ्कल्पसे ही लौकिक शास्त्र-सिद्ध श्येनादि अभिचार उपायके सहारे

कुपिताः समुदीक्षन्ते दावेष्वग्निशिखा इव ॥ ९ ॥
बिभ्यत्येषां साहसिका गुणास्तेषामतीव हि ।
कूपा इव तृणच्छन्ना विशुद्धा द्यौरिवापरे ॥ १० ॥
प्रसह्यकारिणः केचित्कार्पासमृदवो परे ।
सन्ति चैषामतिशठास्तथैवान्ये तपस्विनः ॥ ११ ॥
कृषिगोरक्ष्यमप्येके भैक्ष्यमन्येऽप्यनुष्ठिताः ।
चौराश्चान्येऽनृताश्चान्ये तथान्ये नटनर्तकाः ॥ १२ ॥
सर्वकर्मसहाश्चान्ये पार्थिवेष्वितरेषु च ।
विविधाकारयुक्ताश्च ब्राह्मणा भरतर्षभ ॥ १३ ॥
नानाकर्मसु रक्तानां बहुकर्मोपजीविनाम् ।
धर्मज्ञानां सतां तेषां नित्यमेवानुकीर्तयेत् ॥ १४ ॥
पितॄणां देवतानां च मनुष्योरगरक्षसाम् ।

सबको जलाते तथा सभीको निःशेष कर सकते हैं, इनका अन्तःकरण जाना नहीं जाता, सब दिशा इनके निमित्त अनावृत हैं, ये क्रुद्ध होनेपर दावानल के मध्यमें स्थित अग्निशिखाकी भांति दीख पडते हैं। (७—९)

साहसिक पुरुष भी इनसे डरते हैं, इनके गुणकी सीमा नहीं है; इनके बीच कोई जडभरत आदिकी भांति तृणसे छिपे हुए कूएंके सदृश और कोई वसिष्ठ आदिकी भांति आकाशवत् विशुद्ध हैं,कोईकोई दुर्वासा आदिकी भांति असह्य पीडा देनेवाले और कोई गौतम आदिकी भांति कार्पासवत् मृदुता अवलम्बन करनेवाले हैं, इनके बीच बहुतेरे अगस्त्यकी भांति अत्यन्त शठ और बहुतेरे तपस्वी भी हुआ करते हैं,कितने ही कृषिकार्य और गोपालन करते हैं कोई कोई भिक्षावृत्ति अवलम्बन किया करते हैं। कोई कोई वाल्मीकि और विश्वामित्र आदिकी भांति चौर्यवृत्तिमें रत रहते और कितने ही नारद प्रभृतिकी भांति मिथ्या कलहप्रिय और कितने ही भरत आदि मुनियोंकी भांति नट नर्त्तक हैं। (१०—१२)

हे भरतश्रेष्ठ! दूसरे अनेक प्रकारके ब्राह्मणवृन्द राजा तथा अन्य लोगोंके समीप समस्त कार्य कर सकते हैं,अधिक क्या कहें वे लोग समुद्र सोखनेमें भी समर्थ हैं। शरीरप्रच्छादनके निमित्त अथवा लोकरक्षाके लिये निषिद्ध कर्मके सहारे अनेक विषयोंमें अनुरक्त तथा बहुतेरे कर्मोपजीवि, धर्मज्ञ, साधु ब्राह्मणोंका सदा नाम लेना उचित है। हे

पुराप्येते महाभागा ब्राह्मणा वै जनाधिप ॥ १५ ॥
नैते देवैर्न पितृभिर्न गन्धर्वैर्न राक्षसैः ।
नासुरैर्न पिशाचैश्च शक्या जेतुं द्विजातयः ॥ १६ ॥
अदैवं दैवतं कुर्युर्दैवतं चाप्यदैवतम् ।
यमिच्छेयुः स राजा स्याद्यो नेष्टः स पराभवेत् ॥ १७ ॥
परिवादं च ये कुर्युर्ब्राह्मणानामचेतसः ।
सत्यं ब्रवीमि ते राजन्विनश्येयुर्न संशयः ॥ १८ ॥
निन्दाप्रशंसाकुशलाः कीर्त्यकीर्तिपरायणाः ।
परिकुप्यन्ति ते राजन्सततं द्विषतां द्विजाः ॥ १९ ॥
ब्राह्मणा यं प्रशंसन्ति पुरुषः स प्रवर्धते ।
ब्राह्मणैर्यः पराकृष्टः पराभूयात्क्षणाद्धि सः ॥ २० ॥
शका यवनकाम्बोजास्तास्ताः क्षत्रियजातयः ।
वृषलत्वं परिगता ब्राह्मणानामदर्शनात् ॥ २१ ॥
द्राविडाश्च कलिङ्गाश्च पुलिन्दाश्चाप्युशीनराः ।
कोलिसर्पा महिषकास्तास्ताः क्षत्रियजातयः ॥ २२ ॥
वृषलत्वं परिगता ब्राह्मणानामदर्शनात् ।

जननाथ ! पहले समयमें महाभाग ब्राह्मण लोग पितर, देवता, मनुष्य, उरग और राक्षसोंके भी पूज्य थे। देवगण, पितर, गन्धर्व, राक्षस, असुर और पिशाचोंसे द्विजातिवृन्द कदापि पराजित नहीं होसकते, ये लोग अदैवको दैव और दैवको अदैव कर सकते हैं, ये जिसके निमित्त इच्छा करें, वह राजा होजावे, जो इनका इष्ट नहीं है वह पराभूत होता है। (१३—१७)

हे महाराज ! जो अज्ञानी मनुष्य ब्राह्मणोंकी निन्दा करते हैं, मैं सत्य ही कहता हूं, कि वे लोग निःसन्देह विनष्ट होते हैं। हे राजन् ! जो लोग निन्दा और प्रशंसा करनेमें निपुण तथा कीर्त्ति-अकीर्त्तिपरायण हैं, वे ब्राह्मणोंसे द्वेष करनेवाले पुरुषोंके ऊपर सदा कोपित हुआ करते हैं। ब्राह्मण लोग जिसकी प्रशंसा करते हैं, वह पुरुष वर्द्धित होता है और जिसको ब्राह्मण लोग निकृष्ट समझते हैं, वह क्षणभरमें पतित होता है। शक, यवन, काम्बोज आदि क्षत्रिय जाति ब्राह्मणोंके अनुग्रह निबन्धनसे चाण्डालत्वको प्राप्त हुई हैं। (१८—२१)

द्राविड, कलिङ्ग, पुलिन्द, उशीनर,

श्रेयान्पराजयस्तेभ्यो न जयो जयतां वर ॥ २३ ॥
यस्तु सर्वमिदं हन्याद्ब्राह्मणं च न तत्समम्।
ब्रह्मवध्या महान्दोष इत्याहुः परमर्षयः ॥ २४ ॥
परिवादो द्विजातीनां न श्रोतव्यः कथंचन।
आसीताधोमुखस्तूर्ष्णीं समुत्थाय व्रजेद्वा वा ॥ २५ ॥
न स जातोऽजनिष्यद्वा पृथिव्यामिह कश्चन।
यो ब्राह्मणविरोधेन सुखं जीवितुमुत्सहेत् ॥ २६ ॥
दुर्ग्राह्यो मुष्टिना वायुर्दुःस्पर्शः पाणिना शशी।
दुर्धरा पृथिवी राजन्दुर्जया ब्राह्मणा भुवि ॥ २७ ॥ [२०८५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे ब्राह्मणप्रशंसा नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

भीष्म उवाच– ब्राह्मणानेव सततं भृशं संपरिपूजयेत्।
एते हि सोमराजान ईश्वराः सुखदुःखयोः ॥ १ ॥
एते भोगैरलंकारैरन्यैश्चैव किमिच्छकैः।
सदा पूज्या नमस्कारै रक्ष्याश्च पितृवन्नृपैः ॥ २ ॥

कोलिसर्प और माहिषक प्रभृति क्षत्रिय जाति ब्राह्मणोंकी कृपाके अभावसे वृषलत्वको प्राप्त हुई हैं। हे विजयिवर! उनके निकट पराजय होना उत्तम है, जय कल्याणकारी नहीं है। इन समस्त प्राणियोंको मारना एक ब्राह्मणके तुल्य नहीं है, महर्षियोंने कहा है, कि ब्रह्महत्या महादोष है। द्विजातियोंकी निन्दा न सुननी चाहिये, उस समय सिर नीचा करके बैठा रहे अथवा मौनावलम्बन करके उठके दूसरे स्थानमें चला जावे। जो ब्राह्मणोंके सङ्ग विरोध करके सहजमें जीनेका उत्साह करता, इस भूमण्डलपर ऐसा कोई पुरुष नहीं उत्पन्न हुआ और न होगा। हे महाराज! जैसे वायु मुट्ठीमें ग्रहण नहीं की जाती, जैसे चन्द्रमाको हाथसे स्पर्श करना सम्भव नहीं है और जैसे पृथिवीको धारण नहीं किया जा सकता, वैसे ही इस पृथ्वीमण्डलपर ब्राह्मणोंको भी कोई जीतनेमें समर्थ नहीं होता। (२२–२७)

अनुशासनपर्वमें ३३ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ३४ अध्याय।

भीष्म बोले, ब्राह्मणोंकी सदा पूरी रीतिसे पूजा करे, येही सुखदुःखके नियन्ता और चन्द्रमा ही इनके राजा हैं। हे महाराज! ये लोग भोग, नम-स्कार, आभूषण तथा दूसरे अभिलषित

ततो राष्ट्रस्य शान्तिर्हि भूतानामिव वासवात् ।
जायतां ब्रह्मवर्चस्वी राष्ट्रे वै ब्राह्मणः शुचिः ॥ ३ ॥
महारथश्च राजन्य एष्टव्यः शत्रुतापनः ।
ब्राह्मणं जातिसंपन्नं धर्मज्ञं संशितव्रतम् ॥ ४ ॥
वासयेत गृहे राजन्न तस्मात्परमस्ति वै ।
ब्राह्मणेभ्यो हविर्दत्तं प्रतिगृह्णन्ति देवताः ॥ ५ ॥
पितरं सर्वभूतानां नैतेभ्यो विद्यते परम् ।
आदित्यश्चन्द्रमा वायुरापो भूरम्बरं दिशः ॥ ६ ॥
सर्वे ब्राह्मणमाविश्य सदाऽन्नमुपभुञ्जते ।
न तस्याश्नन्ति पितरो यस्य विप्रा न भुञ्जते ॥ ७ ॥
देवाश्चाप्यस्य नाश्नन्ति पापस्य ब्राह्मणद्विषः ।
ब्राह्मणेषु तु तुष्टेषु प्रीयन्ते पितरः सदा ॥ ८ ॥
तथैव देवता राजन्नात्र कार्या विचारणा ।
तथैव तेऽपि प्रीयन्ते येषां भवति तद्धविः ॥ ९ ॥
न च प्रेत्य विनश्यन्ति गच्छन्ति च परां गतिम् ।

विषयोंसे सदा पूजनीय और पितृवत् रक्षणीय हैं। जैसे इन्द्रके सहारे भूतोंकी शान्ति होती है, वैसे ही ब्राह्मणोंके द्वारा राज्यमें शान्ति हुआ करती है। राज्यमें पवित्र ब्राह्मण ब्रह्मवर्चस्वी होकर उत्पन्न हो और क्षत्रिय महारथ तथा शत्रुतापन होवें। हे महाराज ! सबके ऐश्वर्यके निमित्त गृहके बीच संशितव्रती, धर्म जाननेवाले, जातियुक्त ब्राह्मणोंका वास करावे, उससे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है। ब्राह्मणोंको जो हवि दिया जाता है देवता और पितर उसे ही ग्रहण करते हैं, सब प्राणियोंके बीच ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है ऐसा जानो। (१-६)

सूर्य, चन्द्रमा, वायु, जल, आकाश, पृथ्वी और सब दिशा ब्राह्मणोंसे आविष्ट होकर सदा अन्न उपभोग करती हैं। जिसके घरमें कोई ब्राह्मण भोजन नहीं करता, उसके पितर और देवतावृन्द भी उस पापाचारी ब्राह्मणद्वेषीका अन्न ग्रहण नहीं करते। ब्राह्मणोंके सन्तुष्ट रहनेसे पितर लोग सदा प्रसन्न रहते हैं और देवता लोग भी उसी भांति प्रसन्न होते हैं, हे महाराज ! इस विषयमें विचार करना उचित नहीं है। जिनकी दान की हुई वस्तुओंको देवता और पितरवृन्द ग्रहण करते हैं,

येन येनैव हविषा ब्राह्मणांस्तर्पयेन्नरः ॥ १० ॥
तेन तेनैव प्रीयन्ते पितरो देवतास्तथा।
ब्राह्मणादेव तद्भूतं प्रभवन्ति यतः प्रजाः ॥ ११ ॥
यतश्चायं प्रभवति प्रेत्य यत्र च गच्छति।
वेदैष मार्गं स्वर्गस्य तथैव नरकस्य च ॥ १२ ॥
आगतानागते चोभे ब्राह्मणो द्विपदां वरः।
ब्राह्मणो भरतश्रेष्ठ स्वधर्मं चैव वेद यः ॥ १३ ॥
ये चैनमनुवर्तन्ते ते न यान्ति पराभवम्।
न ते प्रेत्य विनश्यन्ति गच्छन्ति न पराभवम् ॥१४ ॥
यद्ब्राह्मणमुखात्प्राप्तं प्रतिगृह्णन्ति वै वचः।
भूतात्मानो महात्मानस्ते न यान्ति पराभवम् ॥१५॥
क्षत्रियाणां प्रतपतां तेजसा च बलेन च।
ब्राह्मणेष्वेव शाम्यन्ति तेजांसि च बलानि च ॥१६ ॥
भृगवस्तालजङ्घांश्च नीपानाङ्गिरसोऽजयन्।
भरद्वाजो वैतहव्यानैलांश्च भरतर्षभ ॥ १७ ॥

वे लोग भी प्रसन्न हुआ करते हैं, वेही परलोकमें जाके विनष्ट नहीं होते,बल्कि परम गति पाते हैं। मनुष्य जिन जिन वस्तुओंसे ब्राह्मणोंको तृप्त करता है, देवता और पितृगण उन्हीं वस्तुओंसे तृप्तिलाभ किया करते हैं। (७—११)

जिससे प्रजासमूहकी उत्पत्ति होती है, ब्राह्मणोंसे ही वे यज्ञादि उत्पन्न हुए हैं। यह जीव जिससे उत्पन्न होता है और परलोकमें जिस स्थानमें जाता है, उसे ही स्वर्ग और नरकका मार्ग जानो। हे भरतश्रेष्ठ! द्विपदोंके बीच ब्राह्मण ही श्रेष्ठ हैं, जो लोग आगत और अनागत विषयोंको जाननेमें समर्थ हैं तथा जो अपना धर्म जानते हैं, वेही ब्राह्मण हैं, जो निज धर्मका अनुष्ठान करते हैं, वे पतित नहीं होते, परलोकमें जाकर विनष्ट नहीं होते और न उनकी पराभव होती है। जो सब चित्तविजयी महात्मा लोग ब्राह्मणके मुखसे बाहिर हुए वचनको प्रतिग्रह करते हैं, उनका पराभव नहीं होता। (११—१५)

अपने तेज और बलसे दूसरोंको तपानेवाले क्षत्रियका बल और तेज ब्राह्मणके समीपही पराजित होता है। हे भरतश्रेष्ठ! भृगुवंशीय ब्राह्मणोंने काले हरिणकी छाल पहरकर भी ताल- जङ्घ नामक क्षत्रियोंको जीता था।

चित्रायुधांश्चाप्यजयन्नेते कृष्णाजिनध्वजाः ।
प्रक्षिप्याथ च कुम्भान्वै पारगामिनमारभेत् ॥ १८ ॥
यत्किंचित्कथ्यते लोके श्रूयते पठ्यतेऽपि वा ।
सर्वं तद्ब्राह्मणेष्वेव गूढोऽग्निरिव दारुषु ॥ १९ ॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
संवादं वासुदेवस्य पृथ्व्याश्च भरतर्षभ ॥ २० ॥
वासुदेव उवाच- मातरं सर्वभूतानां पृच्छे त्वां संशयं शुभे ।
केनस्वित्कर्मणा पापं व्यपोहति नरो गृही ॥ २१ ॥
पृथिव्युवाच- ब्राह्मणानेव सेवेत पवित्रं ह्येतदुत्तमम् ।
ब्राह्मणान्सेवमानस्य रजः सर्वं प्रणश्यति ।
अतो भूतिरतः कीर्तिरतो बुद्धिः प्रजायते ॥ २२ ॥
महारथश्च राजन्य एष्टव्यः शत्रुतापनः ।
इति मां नारदः प्राह सततं सर्वभूतये ॥ २३ ॥
ब्राह्मणं जातिसंपन्नं धर्मज्ञं संशितं शुचिम् ।
अपरेषां परेषां च परेभ्यश्चैव येऽपरे ॥ २४ ॥

अङ्गिराके पुत्र बृहस्पतिने नीपवंशीय क्षत्रियोंको जय किया और भरद्वाजने वैतहव्य, ऐल तथा चित्रायुध आदि राजाओंको जीता था, इसलिये पार गये हुए पुरुषको परित्याग करके जिसके सहारे पार जा सके, उसे ही अवलम्बन करे। इस लोकमें जो कुछ कहा, सुना वा पढा जाता है, वह सब लकडीके बीच छिपी हुई अग्निकी भांति ब्राह्मणोंमें विद्यमान है ! हे भरतश्रेष्ठ ! इस विषयमें श्रीकृष्ण और पृथ्वीके संवादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया जाता है। (१६–२०)

श्रीकृष्ण बोले, हे शुभे ! तुम सब प्राणियोंकी जननी हो, इसलिये तुमसे मैं यह सन्देहका विषय पूछता हूं, कि गृहस्थ मनुष्य किस कर्मके सहारे पापसे छूटते हैं ? (२१)

पृथ्वी बोली, ब्राह्मणकीही सेवा करे, यही उत्तम और पवित्र कर्म है, जो लोग ब्राह्मणोंकी सेवा करते हैं, उनके सब पाप नष्ट होते हैं। ब्राह्मणकी सेवा करनेसे ऐश्वर्य, कीर्त्ति और आत्मज्ञान प्राप्त होता है। शत्रुतापन महारथ क्षत्रिय वाञ्छनीय हैं। नारद मुनिने मुझसे यह कहा था, कि जाति-सम्पन्न संशितव्रती धर्मज्ञ ब्राह्मणको सबके ऐश्वर्यके निमित्त इच्छा करनी उचित

ब्राह्मणा यं प्रशंसन्ति स मनुष्यः प्रवर्धते।
अथ यो ब्राह्मणान् कुष्टः पराभवति सोऽचिरात् ॥२५॥
यथा महार्णवे क्षिप्ता सीतानेष्टुर्विनश्यति।
तथा दुश्चरितं सर्वं पराभावाय कल्पते ॥ २६ ॥
पश्य चन्द्रे कृतं लक्ष्म समुद्रो लवणोदकः।
तथा भगसहस्रेण महेन्द्रः परिचिह्नितः ॥ २७ ॥
तेषामेव प्रभावेन सहस्रनयनो ह्यसौ।
शतक्रतुः समभवत्पश्य माधव यादृशम् ॥ २८ ॥
इच्छन् कीर्तिं च भूतिं च लोकांश्च मधुसूदन।
ब्राह्मणानुमते तिष्ठेत्पुरुषः शुचिरात्मवान् ॥ २९ ॥
भीष्म उवाच—इत्येतद्वचनं श्रुत्वा मेदिन्या मधुसूदनः।
साधु साध्विति कौरव्य मेदिनीं प्रत्यपूजयत् ॥ ३० ॥
एतां श्रुत्वोपमां पार्थ प्रयतो ब्राह्मणर्षभान्।
सततं पूजयेथास्त्वं ततः श्रेयोऽभिपत्स्यसे ॥ ३१ ॥ [२११६]

इति श्रीमहाभारते०आनुशासनिकेपर्वणि दानधर्मे पृथिवीवासुदेवसंवादे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ३४

है। श्रेष्ठ और निकृष्टके बीच जो लोग श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ हैं, वे ब्राह्मण जिसकी प्रशंसा करते हैं, वह मनुष्य वर्द्धित होता है और जो पुरुष ब्राह्मणोंकी निन्दा करता है, वह शीघ्रही नष्ट हुआ करता है। (२२-२५)

जैसे महासागरमें फेंकनेसे कच्चे ढेले विनष्ट होते हैं, वैसे ही ब्राह्मणोंके निकट दुश्चरित्र पुरुषोंका पराभव हुआ करता है। देखिये, चन्द्रमा कलङ्कसे और समुद्र खारे पानीसे युक्त है और महेन्द्र सहस्र भगचिन्हसम्पन्न होकर फिर ब्राह्मणोंके प्रभावसे सहस्रनयवाले हुए हैं। उन लोगोंके प्रभावसे ही देवराज शतक्रतु हुए हैं। हे माधव! द्विजगणका समान प्रभाव अवलोकन करो। हे मधुसूदन! जो पुरुष कीर्त्ति, ऐश्वर्य और शुभ लोककी कामना करता है वह पवित्र तथा शुद्धचित्त होकर ब्राह्मणोंके अनुज्ञावर्त्ती होवे। (२६-२९)

भीष्म बोले, हे कुरुनन्दन! मधुसूदनने पृथ्वीका यह सब वचन सुनके साधु साधु कहके उसे अभिनन्दित किया। हे कुरुनन्दन! तुम इस ही उपमाको सुनके सावधान होकर ब्राह्मणोंकी सदा पूजा करो, तो तुम्हारा कल्याण होगा। (३०-३१)

अनुशासनपर्वमें ३४ अध्याय समाप्त।

भीष्म उवाच-जन्मनैव महाभागो ब्राह्मणो नाम जायते ।
नमस्यः सर्वभूतानामतिथिः प्रसृताग्रभुक् ॥ १ ॥
सर्वार्थाः सुहृदस्तात ब्राह्मणाः सुमनोमुखाः ।
गीर्भिर्मङ्गलयुक्ताभिरनुध्यायन्ति पूजिताः ॥ २ ॥
सर्वान्नो द्विषतस्तात ब्राह्मणा जातमन्यवः ।
गीर्भिर्दारुणयुक्ताभिरभिध्यासुरपूजिताः ॥ ३ ॥
अत्र गाथाः पुरा गीताः कीर्तयन्ति पुराविदः ।
सृष्ट्वा द्विजातीन् धाता हि यथापूर्वं समादधत् ॥ ४ ॥
न चान्यदिह कर्तव्यं किंचिदूर्ध्वं यथाविधि ।
गुप्तो गोपायते ब्रह्मा श्रेयो वस्तेन शोभनम् ॥ ५ ॥
स्वमेव कुर्वतां कर्म श्रीर्वो ब्राह्मी भविष्यति ।
प्रमाणं सर्वभूतानां प्रग्रहाश्च भविष्यथ ॥ ६ ॥
न शौद्रं कर्म कर्तव्यं ब्राह्मणेन विपश्चिता ।
शौद्रं हि कुर्वतः कर्म धर्मः समुपरुध्यते ॥ ७ ॥

अनुशासनपर्वमें ३५ अध्याय ।

भीष्म बोले, महानुभाव ब्राह्मणवृन्द संस्कार आदि न होनेपर भी जन्मतः ही सब प्राणियोंके नमस्य और अतिथि होकर भली भांति पके हुए अन्न आदिके प्रथम भोक्ता हैं । हे तात ! देवताओंके मुखस्वरूप ब्राह्मण लोग सबके ही मित्र हैं और उनके प्रभावसे ही धर्मादि अर्थ सिद्ध होते हैं, वे मङ्गलयुक्त वचनव्यूहसे पूजित होनेपर कल्याणकी कामना करते हैं । हे तात ! ब्राह्मणोंने हम लोगोंके विपक्षव्यूहके द्वारा कठोर वाक्यसे असम्मानित होनेपर क्रुद्ध होकर उन्हें अभिशाप दिया है । पुराण जाननेवाले, पण्डित लोग इस विषयमें जिस प्रकार पहले विधाताने द्विजातियोंको उत्पन्न करके नियमित किया था, उस ही प्रथम कही हुई अपूर्व गाथाको गाया करते हैं । (१-४)

इस लोकमें ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक निर्दिष्ट कर्मके अतिरिक्त और कुछ भी कर्त्तव्य नहीं है । हे ब्राह्मणवृन्द ! तुम लोग रक्षित होकर सबकी रक्षा करो, उससे तुम्हारा उत्तम कल्याण होगा । अपना कर्म करनेसे तुम लोगोंको ब्राह्मी श्री प्राप्त होगी, तुम लोग सब भूतोंके कर्त्तव्यके निश्चय करनेवाले और नियंता होगे । विद्वान् ब्राह्मणको शूद्रका कर्म करना उचित नहीं है । ब्राह्मण यदि शूद्रका कर्म करे, तो उसका धर्म नष्ट

श्रीश्च बुद्धिश्च तेजश्च विभूतिश्च प्रतापिनी।
स्वाध्याये चैव माहात्म्यं विपुलं प्रतिपत्स्यते ॥ ८ ॥
हुत्वा चाहवनीयस्थं महाभाग्ये प्रतिष्ठिताः।
अग्रभोज्याः प्रसूतीनां श्रिया ब्राह्म्याऽनुकल्पिताः ॥९॥
श्रद्धया परया युक्ता ह्यनभिद्रोहलब्धया।
दमस्वाध्यायनिरताः सर्वान्कामानवाप्स्यथ ॥ १० ॥
यच्चैव मानुषे लोके यच्च देवेषु किंचन।
सर्वं तु तपसा साध्यं ज्ञानेन नियमेन च ॥ ११ ॥
इत्येवं ब्रह्मगीतास्ते समाख्याता मयाऽनघ।
विप्राणामनुकम्पार्थं तेन प्रोक्तं हि धीमता ॥ १२ ॥
भूयस्तेषां बलं मन्ये यथा राज्ञस्तपस्विनः।
दुरासदाश्च चण्डाश्च रभसाः क्षिप्रकारिणः ॥ १३ ॥
सन्त्येषां सिंहसत्त्वाश्च व्याघ्रसत्त्वास्तथापरे।
वराहमृगसत्त्वाश्च जलसत्त्वास्तथापरे ॥ १४ ॥
सर्पस्पर्शसमाः केचित्तथान्ये मकरस्पृशः।
विभाष्य घातिनः केचित्तथा चक्षुर्हणोऽपरे ॥ १५ ॥

हुआ करता है। तुम लोग श्री, बुद्धि, तेज, प्रतापशालिनी विभूति और निज शाखोक्त वेद पाठमें विपुल माहात्म्यको प्राप्त होगे। (५-८)

महाऐश्वर्य प्रतिष्ठा लाभ करके आहवनीयस्थ देवताओंको आहुति देकर माता के निकट शिशु सन्तानोंकी भांति सब अग्रभोज्य और ब्राह्मी श्रीके पात्र होगे। अनभिद्रोहसे प्राप्त परम श्रद्धायुक्त और दम स्वाध्यायमें रत होकर समस्त काम्यवस्तु पाओगे। मनुष्यलोक और देवलोकमें जो कुछ है, वह सब ज्ञान, नियम और तपस्याके सहारे सिद्ध होता है। हे पापरहित ! यह मैंने ब्रह्मगीत समस्त वचन कहा है; ब्राह्मणोंके विषयमें अनुग्रहके लिये बुद्धिशक्तिसे युक्त प्रजापतिने यह गाथा कही थी। जैसा राजाका बल है, तपस्वियोंका भी वैसा ही बल समझा जाता है। ब्राह्मण लोग दुरासद, प्रचण्ड वेगशाली और क्षिप्रकारी होनेपर भी पूजनीय हैं। (९-१३)

इनके बीच कोई कोई सिंहके समान बलशाली हैं, कोई कोई शार्दूलके सदृश पराक्रमी हैं, कोई वराहके समान तेजस्वी, कोई मृगसदृश बलसे युक्त हैं, कितने ही जलसदृश बलसे सम्पन्न हैं, कोई कोई

सन्ति चाशीविषसमाः सन्ति मन्दास्तथा परे ।
विविधानीह वृत्तानि ब्राह्मणानां युधिष्ठिर ॥ १६ ॥
मेकला द्राविडा लाटाः पौण्ड्राः काण्वशिरास्तथा ।
शौण्डिका दरदा दार्वाश्चौराः शबरबर्बराः ॥ १७ ॥
किराता यवनाश्चैव तास्ताः क्षत्रियजातयः ।
वृषलत्वमनुप्राप्ता ब्राह्मणानाममर्षणात् ॥ १८ ॥
ब्राह्मणानां परिभवादसुराः सलिलेशयाः ।
ब्राह्मणानां प्रसादाच्च देवाः स्वर्गनिवासिनः ॥ १९ ॥
अशक्यं स्प्रष्टुमाकाशमचाल्यो हिमवान् गिरिः ।
अधार्या सेतुना गङ्गा दुर्जया ब्राह्मणा भुवि ॥ २० ॥
न ब्राह्मणविरोधेन शक्या शास्तुं वसुंधरा ।
ब्राह्मणा हि महात्मानो देवानामपि देवताः ॥ २१ ॥
तान्पूजयस्व सततं दानेन परिचर्यया ।
यदीच्छसि महीं भोक्तुमिमां सागरमेखलाम् ॥ २२ ॥
प्रतिग्रहेण तेजो हि विप्राणां शाम्यतेऽनघ ।

सर्पस्पर्श सदृश हैं, कोई मकरके समान स्पर्शमात्रसे ग्रहण करनेवाले, कोई वाक्यके सहारे नष्ट करते और कोई नेत्रसे ही जलाया करते हैं। कोई कोई विषधर सर्पके समान हैं और कोई कोई मन्द प्रभाववाले भी हैं। हे युधिष्ठिर! इस लोकमें द्विजोंका चरित्र अनेक प्रकार का है। (१४—१६)

मेकल, द्रविड, लाट, पौण्ड्र, काण्वशिरा, शौण्डिक, दरद, दार्व, चौर, शबर, बर्बर, किरात और यवन प्रभृति सब क्षत्रिय जाति ब्राह्मणोंके कोपको सहनेमें असमर्थ होनेसे चाण्डालत्वको प्राप्त हुई हैं। ब्राह्मणोंके सङ्ग द्वेष करनेसे असुरवृन्द पातालमें निवास करते हैं और देवगण ब्राह्मणोंकी कृपासे स्वर्गनिवासी हुए हैं। आकाशको स्पर्श नहीं किया जा सकता, हिमालय पहाडको हटानेमें किसीकी सामर्थ्य नहीं है, पुलसे गंगाको धारण नहीं किया जाता और इस भूमण्डलमें ब्राह्मणोंको जय नहीं किया जा सकता (१७-२०)

ब्राह्मणोंके सङ्ग विरोध करके इस पृथ्वीको शासन करनेमें किसीकी भी सामर्थ्य नहीं है। महानुभाव ब्राह्मणगण देवताओंके भी देवता हैं, इसलिये यदि इस सागरमेखला पृथ्वीको भोग करनेकी इच्छा करते हो, तो दान और

प्रतिग्रहं ये नेच्छेयुस्तेभ्यो रक्ष्यं त्वया नृप ॥ २३ ॥ [२१३९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे ब्राह्मणप्रशंसायां पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

भीष्म उवाच— अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
शक्रशम्बरसंवादं तन्निबोध युधिष्ठिर ॥ १ ॥
शक्रो ह्यज्ञातरूपेण जटी भूत्वा रजोगुणः ।
विरूपं रथमास्थाय प्रश्नं पप्रच्छ शम्बरम् ॥ २ ॥

शक्र उवाच- केन शम्बर वृत्तेन स्वजात्यानधितिष्ठसि ।
श्रेष्ठं त्वां केन मन्यन्ते तद्वै प्रब्रूहि तत्त्वतः ॥ ३ ॥

शम्बर उवाच- नासूयामि यदा विप्रान्ब्राह्ममेव च मे मतम् ।
शास्त्राणि वदतो विप्रान्संमन्यामि यथासुखम् ॥ ४ ॥
श्रुत्वा च नावजानामि नापराध्यामि कर्हिचित् ।
अभ्यर्च्याभ्यनुपृच्छामि पादौ गृह्णामि धीमताम् ॥ ५ ॥
ते विश्रब्धाः प्रभाषन्ते संपृच्छन्ते च मां सदा ।

सेवासे सदा उन लोगोंकी पूजा किया करो। हे पापरहित! प्रतिग्रहके द्वारा ब्राह्मणोंका तेज शान्त होता है। हे महाराज! इस लिये जो प्रतिग्रह करनेकी इच्छा न करें, उनकी तुम रक्षा करना। (२१-२३)

अनुशासनपर्वमें ३५ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ३६ अध्याय।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! इस विषयमें प्राचीन लोग इन्द्र और शम्बरके संवादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं, तुम सुनो। देवराजने वेष बदलके तथा जटी, रजोगुण होकर निकृष्ट रथपर चढके शम्बरसे प्रश्न किया था। (१—२)

इन्द्र बोले, हे शम्बर! तुम कैसे व्यवहारसे अपनी जातिके बीच श्रेष्ठ रूपसे निवास करते हो? किस लिये तुम्हें सब कोई श्रेष्ठ समझते हैं? इस विषयको यथार्थ रीतिसे वर्णन करो। (३)

शम्बर बोला, मैं ब्राह्मणोंकी निन्दा नहीं करता, मेरा मत ब्राह्मणोंके अनुगत है, जो सब ब्राह्मण शास्त्रीय कथा कहते हैं, मैं सुखपूर्वक उनका संमान किया करता हूं। शास्त्र सुनके मैं अवज्ञा नहीं करता, कभी किसीके समीप अपराधी नहीं होता, बुद्धिमान् द्विजातियोंकी पूजा करता, उनके चरण ग्रहण करता, तथा उन लोगोंके समीप प्रश्न

प्रमत्तेष्वप्रमत्तोऽस्मि सदा सुप्तेषु जागृमि ॥ ६ ॥
ते मां शास्त्रपथे युक्तं ब्रह्मण्यमनसूयकम् ।
समासिञ्चन्ति शास्तारः क्षौद्रं मध्विव माक्षिकाः ॥ ७ ॥
यच्च भाषन्ति संतुष्टास्तच्च गृह्णामि मेधया ।
समाधिमात्मनो नित्यमनुलोममचिन्तयम् ॥ ८ ॥
सोऽहं वागग्रमृष्टानां रसानामवलेहकः ।
स्वजात्यानधितिष्ठामि नक्षत्राणीव चन्द्रमाः ॥ ९ ॥
एतत्पृथिव्याममृतमेतच्चक्षुरनुत्तमम् ।
यद्ब्राह्मणमुखाच्छास्त्रमिह श्रुत्वा प्रवर्तते ॥ १० ॥
एतत्कारणमाज्ञाय दृष्ट्वा देवासुरं पुरा ।
युद्धं पिता मे हृष्टात्मा विस्मितः समपद्यत ॥ ११ ॥
दृष्ट्वा च ब्राह्मणानां तु महिमानं महात्मनाम् ।
पर्यपृच्छत्कथममी सिद्धा इति निशाकरम् ॥ १२ ॥
सोम उवाच- ब्राह्मणास्तपसा सर्वे सिध्यन्ते वाग्बलाः सदा ।

किया करता हूं। वे लोग विश्वासी होकर कहते और मुझसे सदा प्रश्न किया करते हैं, उनके असावधान रहनेपर भी मैं अप्रमत्त तथा उनके शयन करनेपर भी मैं सदा जाग्रत रहता हूं। जैसे मधुमक्खियें अपने छत्ते में मधु इकट्ठा करती हैं, वैसे ही वे नियन्ता ब्राह्मण शास्त्रपथमें सदा नियुक्त रहनेवाले मुझ ब्रह्मनिष्ठ, अनसूयक पूर्ण रीतिसे अमृतसमान विद्यासेचन किया करते हैं। (४—७)

वे लोग सन्तुष्ट होकर जो कुछ कहते हैं, मैं बुद्धिके सहारे उसे ग्रहण करता हूं, सदा अनुलोम भावसे अपनी ब्रह्मनिष्ठा सोचा करता हूं। जैसे चन्द्रमा नक्षत्रमण्डलीका स्वामी है, वैसे ही जिन लोगोंके वाग्यन्त्रके अग्रभाग जिह्वामें विद्यारूपी अमृत है, उस ही विद्यारूपी रसका पान करते हुए निज-जातिके बीच श्रेष्ठरूपसे निवास करता हूं। ब्राह्मणोंके मुखसे शास्त्र सुनके उसके अनुसार जैसा अनुष्ठान किया जाता है, इस लोकमें वही अमृत है और वही उत्तम नेत्रस्वरूप हैं। पहले समयमें मेरे पिता इस कारणको जानके तथा देवासुर युद्धको देखकर प्रसन्नचित्त और विस्मित हुए थे। उन्होंने महानुभाव ब्राह्मणोंकी महिमा देखकर चन्द्रमासे पूछा था, कि ये लोग किस प्रकार सिद्ध हुए हैं ? (८—१२)

भुजवीर्याश्च राजानो वागस्त्राश्च द्विजातयः ॥ १३ ॥
प्रणवं चाप्यधीयीत ब्राह्मीर्दुर्वसतीर्वसन् ।
निर्मन्युरपि निर्वाणो यतिः स्यात्समदर्शनः ॥ १४ ॥
अपि च ज्ञानसंपन्नः सर्वान्वेदान्पितुर्गृहे ।
श्लाघमान इवाधीयाद् ग्राम्य इत्येव तं विदुः ॥ १५ ॥
भूमिरेतौ निगिरति सर्पो बिलशयानिव ।
राजानं चाप्ययोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम् ॥ १६ ॥
अभिमानः श्रियं हन्ति पुरुषस्याल्पमेधसः ।
गर्भेण दुष्यते कन्या गृहवासेन च द्विजः ॥ १७ ॥
इत्येतन्मे पिता श्रुत्वा सोमादद्भुतदर्शनात् ।
ब्राह्मणान्पूजयामास तथैवाहं महाव्रतान् ॥ १८ ॥
भीष्म उवाच- श्रुत्वैतद्वचनं शक्रो दानवेन्द्रमुखाच्च्युतम् ।
द्विजान्संपूजयामास महेन्द्रत्वमवाप च ॥ १९ ॥ [२१५८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे ब्राह्मणप्रशंसायां इन्द्रशम्बरसंवादे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

चन्द्रमा बोले, ब्राह्मणोंको तपस्याके सहारे सदा वाग्बल सिद्ध होता है, राजा लोग बाहुबलशाली और ब्राह्मण लोग वाक्यरूपी बलसे सम्पन्न हैं । ब्राह्मण लोग गुरुके गृहमें निवास करके क्लेश सहते हुए वेदाध्ययन करें । निर्मन्यु, निर्वाण और समदर्शी होकर परिव्राजक धर्माचरण करें । यदि ज्ञान-सम्पन्न ब्राह्मण पितृगृहोंमें श्लाघनीय होकर समस्त वेद पढे, तौभी लोग ग्राम्य कहके उसकी निन्दा करते हैं । जैसे सर्प बिलमें रहनेवाले जीवोंको ग्रास करता है, वैसे ही भूमिका तेज युद्धकलारहित राजा और अप्रवासी ब्राह्मणको ग्रास किया करता है । अभिमान अल्पबुद्धि पुरुषकी श्री नष्ट करता है, गर्भके कारण कन्या दूषित होती है और गृहवास निबन्धनसे ब्राह्मण दूषित होता है । जैसे मेरे पिता अद्भुतदर्शन चन्द्रमाके निकट यह वृत्तान्त सुनकर महाव्रती ब्राह्मणोंकी जिस प्रकार पूजा करते थे, मैं भी उस ही भांति उन लोगोंकी पूजा किया करता हूं । १३-१८

भीष्म बोले, देवराजने दानवेन्द्र शम्बरके मुखसे निकले हुए सब वचन सुनकर पूर्णरीतिसे ब्राह्मणोंकी पूजा की थी, उसहीसे महेन्द्रत्व पाया है । (१९)

अनुशासनपर्वमें ३६ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर उवाच- अपूर्वश्च भवेत्पात्रमथवापि चिरोषितः।
दूराद्भ्यागतं चापि किं पात्रं स्यात्पितामह ॥ १ ॥
भीष्म उवाच— क्रिया भवति केषां चिदुपांशुव्रतमुत्तमम्।
यो यो याचेत यत्किंचित्सर्वं दद्याम इत्यपि ॥ २ ॥
अपीडयन्भृत्यवर्गमित्येवमनुशुश्रुम।
पीडयन्भृत्यवर्गं हि आत्मानमपकर्षति ॥ ३ ॥
अपूर्वं भावयेत्पात्रं यच्चापि स्याच्चिरोषितम्।
दूराद्भ्यागतं चापि तत्पात्रं च विदुर्बुधाः ॥ ४ ॥
युधिष्ठिर उवाच- अपीडया च भूतानां धर्मस्याहिंसया तथा।
पात्रं विद्यात्तु तत्त्वेन यस्मै दत्तं न संतपेत् ॥ ५ ॥
भीष्म उवाच- ऋत्विक्पुरोहिताचार्याः शिष्यसंबन्धिबान्धवाः।
सर्वे पूज्याश्च मान्याश्च श्रुतवन्तोऽनसूयकाः ॥ ६ ॥
अतोऽन्यथा वर्तमानाः सर्वे नार्हन्ति सत्क्रियाम्।

अनुशासनपर्वमें ३७ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! पहले का परिचित, चिरोषित और दूरदेशका अभ्यागत, इन तीनों पात्रोंके बीच कौन पात्र उत्तम है ? (१)

भीष्म बोले, अपूर्व, चिरोषित और दूरसे आया हुआ अभ्यागत, इन तीन प्रकारके पात्रोंमेंसे कोई कोई यज्ञ करने के निमित्त, कोई परिवारको पालन करनेके लिये जांचते हैं; कोई मौनव्रत वा संन्यास धर्म अवलम्बन किया करते हैं, उनके बीच जो जिस वस्तुके निमित्त प्रार्थना करें, सेवकोंको पीडित न करके उन्हें वही प्रदान करूंगा, ऐसाही अंगीकार करना चाहिये किसीको भी प्रत्याख्यान करना उचित नहीं है; मैंने ऐसा सुना है, कि सेवकोंको पीडित करनेसे अपनी ही बुराई होती है। यज्ञादि कर्म और मौनव्रत आदिके तारतम्यके अनुसार पात्रमें भी तारतम्य हुआ करता है। चिरोषित और दूरदेशके अभ्यागत पात्रके लिये अपूर्ववत् भावना करनी चाहिये, पण्डितोंने इस ही प्रकार पात्र कहे हैं। (२—४)

युधिष्ठिर बोले, जीवोंके अपीडन और धर्मकी अहिंसाके सहारे यथार्थ रीतिसे ऐसा पात्र निर्णय करे, जिसे दान करनेसे प्रदेयवस्त्वभिमानी देवता सन्तापित न हों, इसलिये वैसा पात्र कौन है ? (५)

भीष्म बोले, ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य, शिष्य, सम्बन्धी, बान्धव,

तस्मान्नित्यं परीक्षेत पुरुषान्प्रणिधाय वै ॥ ७ ॥
अक्रोधः सत्यवचनमहिंसा दम आर्जवम् ।
अद्रोहोऽनभिमानश्च ह्रीस्तितिक्षा दमः शमः ॥ ८ ॥
यस्मिन्नेतानि दृश्यन्ते न चाकार्याणि भारत ।
स्वभावतो निविष्टानि तत्पात्रं मानमर्हति ॥ ९ ॥
तथा चिरोषितं चापि संप्रत्यागतमेव च ।
अपूर्वं चैव पूर्वं च तत्पात्रं मानमर्हति ॥ १० ॥
अप्रामाण्यं च वेदानां शास्त्राणां चाभिलङ्घनम् ।
अव्यवस्था च सर्वत्र एतन्नाशनमात्मनः ॥ ११ ॥
भवेत्पण्डितमानीयो ब्राह्मणो वेदनिन्दकः ।
आन्वीक्षिकीं तर्कविद्यामनुरक्तो निरर्थिकाम् ॥ १२ ॥
हेतुवादान् ब्रुवन्सत्सु विजेताऽहेतुवादिकः ।
अक्रोष्टा चातिवक्ता च ब्राह्मणानां सदैव हि ॥ १३ ॥
सर्वाभिशङ्की मूढश्च बालः कटुकवागपि ।
बोद्धव्यस्तादृशस्तात नरं श्वानं हि तं विदुः ॥ १४ ॥

शास्त्रज्ञ और निन्दारहित पुरुष मात्र ही पूज्य और माननीय हैं और जो लोग इनके विपरीत हैं, वे सत्कारके योग्य नहीं हैं; इसलिये सदा प्रणिधानपूर्वक पुरुषोंकी परीक्षा करनी उचित है। हे भारत! जिस पुरुषमें अक्रोध, सत्यवचन, अहिंसा, तपस्या, सरलता, अनभिमान, लज्जा, तितिक्षा, शम और दम दीखते हैं और स्वभावसे ही समस्त अकार्य निविष्ट नहीं होते, वही पात्र संमानका भाजन है, चिरोषित, सम्प्रति आगत, पूर्वपरिचित और अपूर्व पात्र भी वैसे ही सम्मानका भाजन है। (६-१०)

वेदोंको अप्रमाणित करना, शास्त्रोंको उल्लङ्घन और सब विषयोंकी अव्यवस्था ही निज अपात्रताका लक्षण है। जो ब्राह्मण वेदनिन्दक और पाण्डित्याभिमानी होकर निरर्थक श्रुतिविरोधी मोक्षकी अनुपयोगी आन्वीक्षिकी तर्कविद्यामें अनुरक्त रहता है और साधुओंके बीच समस्त हेतुवाद प्रकट करते हुए शास्त्रसम्मत हेतुवादिक न होके भी विजेता बनता है, सदा ब्राह्मणोंके विषयमें ईर्षा किया करता है, तथा जो पुरुष अतिवक्ता, सर्वशङ्की, मूढ, बालस्वभाव और कटुभाषी हों, उन्हें श्वानसम जानना योग्य है, हे तात! क्यों कि

यथा श्वा भषितुं चैव हन्तुं चैवावसज्जते ।
एवं संभाषणार्थाय सर्वशास्त्रवधाय च ॥ १५ ॥
लोकयात्रा च द्रष्टव्या धर्मश्चात्महितानि च ।
एवं नरो वर्तमानः शाश्वतीर्वर्धते समाः ॥ १६ ॥
ऋणमुन्मुच्य देवानामृषीणां च तथैव च ।
पितॄणामथ विप्राणामतिथीनां च पञ्चमम् ॥ १७ ॥
पर्यायेण विशुद्धेन सुविनीतेन कर्मणा ।
एवं गृहस्थः कर्माणि कुर्वन्धर्मान्न हीयते ॥ १८ ॥ [२१७६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पात्रपरीक्षायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

युधिष्ठिर उवाच—स्त्रीणां स्वभावमिच्छामि श्रोतुं भरतसत्तम ।
स्त्रियो हि मूलं दोषाणां लघुचित्ता हि ताः स्मृताः ॥ १ ॥
भीष्म उवाच—अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
नारदस्य च संवादं पुंश्चल्या पञ्चचूडया ॥ २ ॥

वैसे पुरुषको बुद्धिमान लोग कुत्तेके समान समझते हैं। (११-१४)

जैसे कुत्ता काटने और भक्षण करनेके लिये सदा उद्यत रहता है, उस ही भांति सम्भाषण और सर्व शास्त्र विनष्ट करनेके लिये मूर्ख मनुष्य उद्योगी हुआ रहता है। लोकयात्रा निबाहनेके लिये शिष्टाचार आदि व्यवहार, श्रुति स्मृतिके द्वारा नियमित धर्म और आत्महितकर शम, दम आदिके विषयमें पुरुषको दृष्टि रखनी उचित है। जो पुरुष इस ही प्रकार जीवन व्यतीत करता है, वह सदा वर्द्धित होता है। यज्ञके सहारे देवऋण, वेदपाठसे ऋषिऋण, पुत्र उत्पन्न करनेसे पितृऋण, दान और मानके द्वारा विप्रऋण और वैश्वदेवके अन्तमें उपस्थित पुरुषोंका सत्कार करनेसे अतिथिऋण, इन पांचों ऋणोंसे अऋण होकर यथारीतिसे पवित्र और उत्तम विनीत कर्मके सहारे गृहस्थके कार्योंको निबाहनेसे पुरुष धर्महीन नहीं होता। (१५—१८)

अनुशासनपर्वमें ३७ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ३८ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतसत्तम ! मैं स्त्रियोंका स्वभाव सुननेकी इच्छा करता हूं, क्यों कि स्त्रियें सब दोषोंकी मूल हैं, वे वायुतुल्य लघुचित्तवाली कहके वर्णित हुआ करती हैं। (१)

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस

लोकाननुचरन् सर्वान् देवर्षिर्नारदः पुरा।
ददर्शाप्सरसं ब्राह्मीं पञ्चचूडामनिन्दिताम् ॥ ३ ॥
तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं पप्रच्छाप्सरसं मुनिः।
संशयो हृदि कश्चिन्मे ब्रूहि तन्मे सुमध्यमे ॥ ४ ॥
भीष्म उवाच— एवमुक्ताऽथ सा विप्रं प्रत्युवाचाथ नारदम्।
विषये सति वक्ष्यामि समर्थां मन्यसे च माम् ॥ ५ ॥
नारद उवाच— न त्वामविषये भद्रे नियोक्ष्यामि कथंचन।
स्त्रीणां स्वभावमिच्छामि त्वत्तः श्रोतुं वरानने ॥ ६ ॥
भीष्म उवाच— एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य देवर्षेरप्सरोत्तमा।
प्रत्युवाच न शक्ष्यामि स्त्री सती निन्दितुं स्त्रियः ॥७॥
विदितास्ते स्त्रियो याश्च यादृशाश्च स्वभावतः।
न मामर्हसि देवर्षे नियोक्तुं कार्य ईदृशे ॥ ८ ॥
तामुवाच स देवर्षिः सत्यं वद सुमध्यमे।
मृषावादे भवेद्दोषः सत्ये दोषो न विद्यते ॥ ९ ॥

विषयमें पञ्चचूडा पुंश्चलीके सङ्ग नारद मुनिके संवादयुक्त यह प्राचीन इतिहास कहा करते हैं। (२)

पहिले समय में देवर्षि नारदने सब लोकोंमें विचरते हुए ब्रह्मलोकवासिनी पञ्चचूडा नाम अप्सराको देखा, मुनिने उस सर्वाङ्गसुन्दरी अप्सराको देखकर पूछा,—हे सुमध्यमे! मेरे अन्तःकरण में कुछ संशय है, उसे तुम दूर करो। (३—४)

भीष्म बोले, उसने कहा, कि आप मुझे समर्थ समझते हैं, परन्तु यदि मुझमें कहनेकी योग्यता रहेगी तो अवश्य कहूंगी। (५)

नारद मुनि बोले, हे भद्रे! तुममें योग्यता न रहनेसे मैं कदापि तुम्हें इस विषयमें नियुक्त न करूंगा। हे वरानने! मैं तुम्हारे समीप स्त्रियोंके स्वभावका विषय सुननेकी इच्छा करता हूं। (६)

भीष्म बोले, अप्सराओंमें मुख्य पञ्चचूडाने देवर्षिका वचन सुनके उत्तर दिया, कि मैं स्त्री होकर किस प्रकार स्त्रियोंकी निन्दा कर सकूंगी। हे देवर्षि! स्त्रियें जैसी हैं और जैसा उनका स्वभाव है, वह आपको अविदित नहीं है; इसलिये मुझे ऐसे कार्यपर नियुक्त करना तुम्हें उचित नहीं है। (७-८)

देवर्षि नारदमुनिने उससे फिर कहा, हे सुमध्यमे! तुम जो कहती हो, वह सत्य है, परन्तु मिथ्या बोलनेमें ही

इत्युक्ता सा कृतमतिरभवच्चारुहासिनी ।
स्त्रीदोषाञ्छाश्वतान् सत्यान् भाषितुं संप्रचक्रमे ॥१०॥
पञ्चचूडोवाच- कुलीना रूपवत्यश्च नाथवत्यश्च योषितः ।
मर्यादासु न तिष्ठन्ति स दोषः स्त्रीषु नारद ॥ ११ ॥
न स्त्रीभ्यः किंचिदन्यद्वै पापीयस्तरमस्ति वै ।
स्त्रियो हि मूलं दोषाणां तथा त्वमपि वेत्थ ह ॥ १२॥
समाज्ञातानृद्धिमतः प्रतिरूपान्वशे स्थितान् ।
पतीनन्तरमासाद्य नालं नार्यः प्रतीक्षितुम् ॥ १३ ॥
असद्धर्मस्त्वयं स्त्रीणामस्माकं भवति प्रभो ।
पापीयसो नरान् यद्वै लज्जां त्यक्त्वा भजामहे ॥१४ ॥
स्त्रियं हि यः प्रार्थयते संनिकर्षं च गच्छति ।
ईषच्च कुरुते सेवां तमेवेच्छन्ति योषितः ॥ १५ ॥
अनर्थित्वान्मनुष्याणां भयात्परिजनस्य च ।
मर्यादायाममर्यादाः स्त्रियस्तिष्ठन्ति भर्तृषु ॥ १६ ॥
नासां कश्चिदगम्योऽस्ति नासां वयसि निश्चयः ।

दोष हुआ करता है, सत्य कहनेमें दोष नहीं है । चारुहासिनी पञ्चचूडा देवर्षि का ऐसा वचन सुनकर निश्चय करके स्त्रियोंका शाश्वत सत्य दोष कहनेके निमित्त उद्यत हुई । (९--१०)

पञ्चचूडा बोली, हे नारद ! सत्कुल में उत्पन्न हुई रूपवती और नाथवती जो स्त्रियें मर्यादाका अतिक्रम करती हैं, वही स्त्रियोंका दोष है । स्त्रियोंसे पापी और दूसरा कोई भी नहीं है, यह तुम जान रखो, कि स्त्रियें ही सब दोषोंकी मूल हैं । स्त्रियां आज्ञाकारी, समृद्धि-शाली, रूपवान और वशीभूत पतिको भी अवकाश पानेपर प्रतीक्षा करनेमें समर्थ नहीं होतीं । हे प्रभु ! हम स्त्री जाति हैं, इसलिये हमारा यह धर्म उत्तम नहीं है । हम जो लज्जा छोडके पापी पुरुषोंकी सेवा करती हैं, यह अत्यन्त ही असद्धर्म है । जो पुरुष स्त्रियोंकी प्रार्थना करता है और स्त्रियोंके निकट जाता है वा अधिक सेवा करता है, स्त्रियें उस पुरुषकी ही अभि-लाष किया करती हैं । पुरुषोंके प्रार्थना-भाव और परिजनोंके भयनिबन्धनसे मर्यादारहित स्त्रियें पतिके निकट मर्या-दाकी रक्षा करती हैं । (११-१६)

स्त्रियोंके लिये अगम्य कोई भी नहीं है, इन्हें आयुपर निश्चय नहीं

विरूपं रूपवन्तं वा पुमानित्येव भुञ्जते ॥ १७ ॥
न भयान्नाप्यनुक्रोशान्नार्थहेतोः कथञ्चन ।
न ज्ञातिकुलसंबन्धात्स्त्रियस्तिष्ठन्ति भर्तृषु ॥ १८ ॥
यौवने वर्तमानानां मृष्टाभरणवाससाम् ।
नारीणां स्वैरवृत्तीनां स्पृहयन्ति कुलस्त्रियः ॥ १९ ॥
याश्च शश्वद्बहुमता रक्ष्यन्ते दयिताः स्त्रियः ।
अपि ताः संप्रसज्जन्ते कुब्जान्धजडवामनैः ॥ २० ॥
पङ्गुष्वथ च देवर्षे ये चान्ये कुत्सिता नराः ।
स्त्रीणामगम्यो लोकेऽस्मिन्नास्ति कश्चिन्महामुने ॥२१॥
यदि पुंसां गतिर्ब्रह्मन् कथंचिन्नोपपद्यते ।
अप्यन्योऽन्यं प्रवर्तन्ते न हि तिष्ठन्ति भर्तृषु ॥ २२ ॥
अलाभात्पुरुषाणां हि भयात्परिजनस्य च ।
वधबन्धभयाच्चापि स्वयं गुप्ता भवन्ति ताः ॥ २३ ॥
चलस्वभावा दुःसेव्या दुर्ग्राह्या भावतस्तथा ।
प्राज्ञस्य पुरुषस्येह यथा वाचस्तथा स्त्रियः ॥ २४ ॥
नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः ।

है, कुरूप हो अथवा रूपवान् ही होवे, पुरुषको पानेसे ही उसे भोग किया करती हैं। स्त्रियें भय, दया, अर्थहेतु अथवा ज्ञातिकुल सम्बन्धसे पतिके निकट अनुगत नहीं रहतीं। यौवनवती, उत्तम वस्त्र आभूषणोंसे भूषित, स्वैरचारिणी स्त्रियोंकी कुलकामिनीवृन्द स्पृहा किया करती हैं। जो सब बहुमता स्त्रियें सदा रक्षिता होती हैं, वे भी कुबरे, अन्धे, जड और वामनोंके सङ्ग प्रीतिसे आसक्त हुआ करती हैं। हे देवर्षि! हे महामुनि! पंगुओंके बीच जो लोग कुत्सित मनुष्य हैं और दूसरे जो लोग चाहे कैसे ही बुरे क्यों न हों इस लोकमें स्त्रियोंके लिये उनके बीच कोई भी अगम्य नहीं है। (१७–२१)

हे ब्रह्मन्! यदि स्त्रियें किसी प्रकार पुरुषको नहीं पातीं, तो परस्पर ही स्त्री-पुरुष रूपसे प्रसक्त हुआ करती हैं, तथापि पतिके बहुत दूर रहनेपर उसकी उपेक्षा करके धीरज नहीं धरतीं। पुरुषको न पानेपर, परिजनोंके डर और वध बन्धनके भयसे स्त्रियें स्वयं रक्षित हुआ करती हैं। इस लोकमें बुद्धिमान् पुरुषोंके वचनकी भांति स्त्रियें चलस्वभाव, दुःसेव्य और स्वाभाविक दुर्ग्राह्य

नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचनाः ॥ २५ ॥
इदमन्यच्च देवर्षे रहस्यं सर्वयोषिताम् ।
दृष्ट्वैव पुरुषं हृद्यं योनिः प्रक्लिद्यते स्त्रियाः ॥ २६ ॥
कामानामपि दातारं कर्तारं मनसां प्रियम् ।
रक्षितारं न मृष्यन्ति स्वभर्तारमलं स्त्रियः ॥ २७ ॥
न कामभोगान्विपुलान्नालंकारान्न संश्रयान् ।
तथैव बहु मन्यन्ते यथा रत्यामनुग्रहम् ॥ २८ ॥
अन्तकः पवनो मृत्युः पातालं वडवामुखम् ।
क्षुरधारा विषं सर्पो वह्निरित्येकतः स्त्रियः ॥ २९ ॥
यतश्च भूतानि महान्ति पञ्च यतश्च लोका विहिता विधात्रा ।
यतः पुमांसः प्रमदाश्च निर्मितास्तदैव दोषाः प्रमदासु नारद ॥३०॥ [२२०६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पञ्चचूडानारदसंवादे अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

युधिष्ठिर उवाच-- इमे वै मानवा लोके स्त्रीषु सज्जन्त्यभीक्ष्णशः ।
मोहेन परमाविष्टा दैवसृष्टेन पार्थिव ॥ १ ॥
स्त्रियश्च पुरुषेष्वेव प्रत्यक्षं लोकसाक्षिकम् ।

हैं अर्थात् उनका अभिप्राय जाना नहीं जाता। काठसे अग्नि, जलसे समुद्र, समस्त भूतोंसे मृत्यु और पुरुषोंसे स्त्रियें तृप्त नहीं होतीं। हे देवर्षि! सारी स्त्रियों का यह भी एक रहस्य-विषय है, कि मनोहर पुरुषको देखतेही उनकी योनि क्लेदयुक्त होती है। २२-२६

स्त्रियें कामदाता, मनको प्रसन्न करनेवाले अपने पतिसे रक्षित होनेपर भी उसके विषयमें क्षमा नहीं करतीं। जैसे स्त्रियें रतिविषयमें पतिके अनुग्रहकी अभिलाष करती हैं, विपुल कामभोग, आभूषण और निवास स्थानका वैसा आदर नहीं करती। यम, पवन, मृत्यु, पाताल, वडवामुख, क्षुरधारा, विष और अग्निकी भांति अकेली स्त्री, विनाश साधन करती है। हे नारद! जिससे पञ्चमहाभूत विहित हुए हैं, जिससे विधाताने लोकरचना की है, जिससे पुरुष और स्त्रियें उत्पन्न हुई हैं; उसही स्वभावके द्वारा स्त्रियोंमें सब दोष विहित हुए हैं। (२७-३०)

अनुशासनपर्वमें ३८ अध्याय समाप्त

अनुशासनपर्वमें ३९ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे राजन्! जगत्के बीच ये सब मनुष्य दैवसृष्ट मोहसे

अत्र मे संशयस्तीव्रो हृदि संपरिवर्तते ॥ २ ॥
कथमासां नराः सङ्गं कुर्वते कुरुनन्दन ।
स्त्रियो वा केषु रज्यन्ते विरज्यन्ते च ताः पुनः ॥ ३ ॥
इति ताः पुरुषव्याघ्र कथं शक्यास्तु रक्षितुम् ।
प्रमदाः पुरुषेणेह तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ४ ॥
एता हि रममाणास्तु वञ्चयन्तीह मानवान् ।
न चासां मुच्यते कश्चित्पुरुषो हस्तमागतः ॥ ५ ॥
गावो नवतृणानीव गृह्णन्त्येता नवं नवम् ।
शम्बरस्य च या माया माया या नमुचेरपि ॥ ६ ॥
बलेः कुम्भीनसेश्चैव सर्वास्ता योषितो विदुः ।
हसन्तं प्रहसन्त्येता रुदन्तं प्ररुदन्ति च ॥ ७ ॥
अप्रियं प्रियवाक्यैश्च गृह्णते कालयोगतः ।
उशना वेद यच्छास्त्रं यच्च वेद बृहस्पतिः ॥ ८ ॥
स्त्रीबुद्ध्या न विशिष्येत तास्तु रक्ष्याः कथं नरैः ।
अनृतं सत्यमित्याहुः सत्यं चापि तथाऽनृतम् ॥ ९ ॥

अत्यन्त आविष्ट होकर स्त्रियोंमें बहुत ही आसक्त होते हैं और स्त्रियें भी पुरुषोंमें अत्यन्त अनुरक्त हुआ करती हैं, यह लोकसाक्षिक और प्रत्यक्ष है; इसलिये इस विषयमें मेरे हृदयमें तीव्र संशय विद्यमान है। हे कुरुनन्दन! पुरुष किस कारणसे इनका सङ्ग करते हैं और स्त्रियें किस पर अनुरक्त रहती हैं तथा फिर क्यों विरक्त होती हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! किस प्रकारसे पुरुषवृन्द उनकी रक्षा नहीं कर सकते, मुझसे यह विषय वर्णन करना आपको उचित है। ये स्वयं रममाण होके भी पुरुषोंको भी फंसाती हैं। इनके हाथमें पडा हुआ कोई भी पुरुष इनके हाथसे नहीं छूटता। जैसे गौवें नये नये तृणको ग्रहण करती हैं, ये भी वैसे ही नवीन नवीन पुरुषोंको अवलम्बन किया करती हैं। (१—६)

शम्बरासुर, नमुचि, बलि और कुम्भीनसी की जो माया थी, ये भी, काल क्रमसे उस ही मायाको अवलम्बन किया करती हैं। हंसनेवालेकी ओर देखके ये हंसती हैं। अप्रिय पुरुषकोभी मीठे वाक्योंसे वश करती हैं। शुक्राचार्य और बृहस्पति जो शास्त्र जानते हैं, स्त्रियोंकी बुद्धिसे वह श्रेष्ठ नहीं है, इसलिये मनुष्य ऐसी स्त्रियोंकी किस

इति यास्ताः कथं वीर संरक्ष्याः पुरुषैरिह ।
स्त्रीणां बुद्ध्यर्थनिष्कर्षादर्थशास्त्राणि शत्रुहन्॥ १० ॥
बृहस्पतिप्रभृतिभिर्मन्ये सद्भिः कृतानि वै ।
संपूज्यमानाः पुरुषैर्विकुर्वन्ति मनो नृषु ॥ ११ ॥
अपास्ताश्च तथा राजन् विकुर्वन्ति मनः स्त्रियः ।
इमाः प्रजा महाबाहो धार्मिक्य इति नः श्रुतम् ॥१२॥
सत्कृतासत्कृताश्चापि विकुर्वन्ति मनः सदा ।
कस्ताः शक्तो रक्षितुं स्यादिति मे संशयो महान् ॥१३॥
तथा ब्रूहि महाभाग कुरूणां वंशवर्धन ।
यदि शक्या कुरुश्रेष्ठ रक्षा तासां कदाचन ।
कर्तुं वा कृतपूर्वं वा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १४ ॥ [२२२०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे स्त्रीस्वभावकथने एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

भीष्म उवाच– एवमेव महाबाहो नात्र मिथ्याऽस्ति किंचन ।
यथा ब्रवीषि कौरव्य नारीं प्रति जनाधिप ॥ १ ॥

प्रकार रक्षा करेगा? हे वीर! जो मिथ्याको सत्य कहती और सत्यको मिथ्या कहती है, उसकी पुरुष किस प्रकार रक्षा करेगा? हे शत्रुनाशन! बोध होता है, बृहस्पति आदि साधु पुरुषोंने स्त्रियोंकी ही शक्तिके अर्थ-निष्कर्षसे अर्थशास्त्रोंकी रचना की है। (९—१०)

स्त्रियें पुरुषोंसे पूरी रीतिसे सत्कृत वा समादृत होनेपर भी उनका मन विकृत करती है और पुरुष जब स्त्रीको परित्याग करता है, तब उसके लिये भी चित्त विकृत किया करती हैं। हे महाबाहो! हमने यह सुना है, कि स्त्रीरूपी प्रजावृन्द धार्मिक हैं, ये सत्कृत वा असत्कृत होनेपर सदा मन विकृत करती हैं। हे कुरुवंशवर्धन महाभाग! कौन उनकी रक्षा करनेमें समर्थ होता है? इसमें मुझे अत्यन्त संशय है, इस लिये आप इसही विषयको वर्णन करिये, हे कुरुश्रेष्ठ! कदाचित् यदि उनकी रक्षा की जा सके, अथवा पहले यदि किसीने उनकी रक्षा की हो, तो आप मेरे समीप उसकी व्याख्या करिये। ११-१४

अनुशासनपर्वमें ३९ अध्याय समाप्त।

अनुशासपर्वमें ४० अध्याय।

भीष्म बोले, हे कुरुकुलधुरन्धर प्रजानाथ! तुमने स्त्रियोंके विषयमें जो कहा,

अत्र ते वर्तयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् ।
यथा रक्षा कृता पूर्वं विपुलेन महात्मना ॥ २ ॥
प्रमदाश्च यथा सृष्टा ब्रह्मणा भरतर्षभ ।
यदर्थं तच्च ते तात प्रवक्ष्यामि नराधिप ॥ ३ ॥
न हि स्त्रीभ्यः परं पुत्र पापीयः किंचिदस्ति वै ।
अग्निर्हि प्रमदा दीप्तो मायाश्च मयजा विभो ॥ ४ ॥
क्षुरधारा विषं सर्पो वह्निरित्येकतः स्त्रियः ।
प्रजा इमा महाबाहो धार्मिक्य इति नः श्रुतम् ॥ ५ ॥
स्वयं गच्छन्ति देवत्वं ततो देवानियाद्भयम् ।
अथाभ्यगच्छन् देवास्ते पितामहमरिन्दम ॥ ६ ॥
निवेद्य मानसं चापि तूष्णीमासन्नधोमुखाः ।
तेषामन्तर्गतं ज्ञात्वा देवानां स पितामहः ॥ ७ ॥
मानवानां प्रमोहार्थं कृत्या नार्योऽसृजत्प्रभुः ।
पूर्वसर्गे तु कौन्तेय साध्व्यो नार्य इहाभवन् ॥ ८ ॥
असाध्व्यस्तु समुत्पन्नाः कृत्याः सर्गात्प्रजापतेः ।
ताभ्यः कामान्यथाकामं प्रादाद्धि स पितामहः ॥ ९ ॥

वह सब यथार्थ है, इसमें कुछ भी मिथ्या नहीं है, पहले समयमें महात्मा विपुलने जिस प्रकार स्त्रीकी रक्षा की थी, इस विषयमें तुम्हारे समीप वही पुराना इतिहास वर्णन करूंगा। हे भरतश्रेष्ठ नरनाथ! प्रजापतिने जिस प्रकार और जिस लिये प्रजासमूहको उत्पन्न किया है, तुमसे वह भी कहता हूं। (१—३)

हे तात! स्त्रियोंसे पापी और कोई भी नहीं है। हे विभु! स्त्री जलती हुई अग्नि अथवा मायास्वरूप हैं, एक मात्र स्त्री ही क्षुरधारा, विष, सर्प और अग्नि स्वरूप है। हे महाबाहो! हमने सुना है, कि स्त्रीरूपी प्रजावृन्द पहले धार्मिक थीं, ये स्वयं देवत्व लाभ करती थीं, उस समय देवतावृन्द भयभीत हुए, हे शत्रुदमन! अनन्तर वे देववृन्द पितामहके निकट गये और अभिप्राय सुनाकर सिर नीचा करके खडे रहे। सर्वशक्तिमान् प्रजापतिने देवताओंका अन्तर्गत अभिप्राय जानके मनुष्योंके विनोदके लिये कृत्यारूपी स्त्रियोंको उत्पन्न किया। हे कुन्तीनन्दन! पहले स्वर्गमें स्त्रियें साध्वी थीं; फिर प्रजापतिकी कृत्यासृष्टिके अनन्तर असाध्वी

ताः कामलुब्धाः प्रमदाः प्रबाधन्ते नरान्सदा ।
क्रोधं कामस्य देवेशः सहायं चासृजत्प्रभुः ॥ १० ॥
असज्जन्त प्रजाः सर्वाः कामक्रोधवशं गताः ।
न च स्त्रीणां क्रियाः काश्चिदिति धर्मो व्यवस्थितः ॥११॥
निरिन्द्रिया ह्यशास्त्राश्च स्त्रियोऽनृतमिति श्रुतिः ।
शय्यासनमलंकारमन्नपानमनार्यताम् ॥ १२ ॥
दुर्वाग्भावं रतिं चैव ददौ स्त्रीभ्यः प्रजापतिः ।
न तासां रक्षणं शक्यं कर्तुं पुंसा कथञ्चन ॥ १३ ॥
अपि विश्वकृता तात कुतस्तु पुरुषैरिह ।
वाचा च वधबन्धैर्वा क्लेशैर्वा विविधैस्तथा ॥ १४ ॥
न शक्या रक्षितुं नार्यस्ता हि नित्यमसंयताः ।
इदं तु पुरुषव्याघ्र पुरस्ताच्छ्रुतवानहम् ॥ १५ ॥
यथा रक्षा कृता पूर्वं विपुलेन गुरुस्त्रियाः ।
ऋषिरासीन्महाभागो देवशर्मेति विश्रुतः ॥ १६ ॥
तस्य भार्या रुचिर्नाम रूपेणाऽसदृशी भुवि ।

रूपसे उत्पन्न हुई । पितामहने इच्छानुसार उनकी सब कामना पूरी की । वे कामलुब्ध स्त्रियें सदा पुरुषोंको बाधित करने लगीं । सर्वशक्तिमान् देवेशने क्रोधको कामकी सहायताके लिये उत्पन्न किया है । (४–१०)

प्रजासमूह काम क्रोधके वशमें होकर धर्माचरणमें असमर्थ हुई । स्त्रियोंके लिये कोई क्रिया नहीं है, ऐसा ही धर्म व्यस्थित हुआ । ऐसी जनश्रुति है, कि निरिन्द्रिय, शास्त्रवर्जित स्त्रियें मिथ्या स्वरूप है । प्रजापतिने स्त्रियोंको शय्या, आसन, आभूषण, अन्न, पान, अनार्यता, दुर्वाक्य और रति प्रदान किया । पुरुषगण किसी प्रकारसे भी उनकी रक्षा करनेमें समर्थ न होंगे । हे तात ! जब जगत्कर्ता स्वयं ही रक्षा नहीं कर सकते, तब इस लोकमें दूसरे पुरुष वाक्य, वध, बन्धन और विविधक्लेशके द्वारा किस प्रकार स्त्रियोंकी रक्षा करनेमें समर्थ होंगे ? क्यों कि वे सब सदा ही असंयत हैं । हे पुरुषश्रेष्ठ ! पहले समयमें विपुल नामक महर्षिने जिस प्रकार गुरुपत्नीकी रक्षा की थी, वह वृत्तान्त मैंने सुना है । (११—१६)

देवशर्मा नामसे विख्यात एक महाभाग ऋषि थे, उनकी भार्याका नाम रुचि था; पृथ्वीमण्डलमें उसके

तस्या रूपेण संमत्ता देवगन्धर्वदानवाः ॥ १७ ॥
विशेषेण तु राजेन्द्र वृत्रहा पाकशासनः ।
नारीणां चरितज्ञश्च देवशर्मा महामुनिः ॥ १८ ॥
यथाशक्ति यथोत्साहं भार्यां तामभ्यरक्षत ।
पुरन्दरं च जानीते परस्त्रीकामचारिणम् ॥ १९ ॥
तस्माद्बलेन भार्याया रक्षणं स चकार ह ।
स कदाचिदृषिस्तात यज्ञं कर्तुमनास्तदा ॥ २० ॥
भार्यासंरक्षणं कार्यं कथं स्यादित्यचिन्तयत् ।
रक्षाविधानं मनसा स संचिन्त्य महातपाः ॥ २१ ॥
आहूय दयितं शिष्यं विपुलं प्राह भार्गवम् ।
देवशर्मोवाच- यज्ञकारो गमिष्यामि रुचिं चेमां सुरेश्वरः ॥ २२ ॥
यतः प्रार्थयते नित्यं तां रक्षस्व यथाबलम् ।
अप्रमत्तेन ते भाव्यं सदा प्रति पुरन्दरम् ॥ २३ ॥
स हि रूपाणि कुरुते विविधानि भृगूत्तम ।
भीष्म उवाच- इत्युक्तो विपुलस्तेन तपस्वी नियतेन्द्रियः ॥ २४ ॥
सदैवोग्रतपा राजन्नग्न्यर्कसदृशद्युतिः ।
धर्मज्ञः सत्यवादी च तथेति प्रत्यभाषत ॥ २५ ॥

समान सुन्दरी कोई न थी। हे राजेन्द्र! देव, गन्धर्व, दानव, तथा विशेष करके वृत्रहन्ता इन्द्र उसकी सुघराई देखके मत्त हुए थे। स्त्रीचरित जाननेवाले महामुनि देवशर्मा शक्ति और उत्साहके अनुसार अपनी भार्याकी सब भांतिसे रक्षा करते थे। वह इन्द्रको परस्त्रीगामी जानते थे, इस ही निमित्त बलपूर्वक भार्याकी रक्षा करनेमें यत्नवान् थे। हे तात! किसी समय उस ऋषिने यज्ञ करनेकी इच्छा करके उस समय विचारा कि किस प्रकार भार्याकी रक्षा करनी चाहिये। उस महातपस्वीने मनही मन भार्याकी रक्षाका उपाय निश्चय करके भार्गवगोत्री निज शिष्य विपुलको आह्वान करके कहा। (१६-२२)

देवशर्मा बोले, हे भृगूत्तम! मैं यज्ञ करनेके लिये गमन करूंगा, इन्द्र सदा इस रुचिको चाहता है, इसलिये तुम शक्तिके अनुसार इसकी रक्षा करना; इन्द्रके विषयमें तुम सदा अप्रमत्त रहना, क्यों कि वह विविध रूप धारण किया करता है। (२२-२४)

भीष्म बोले, हे राजन्! अग्नि और

पुनश्चेदं महाराज पप्रच्छ प्रस्थितं गुरुम्।
विपुल उवाच- कानि रूपाणि शक्रस्य भवन्त्यागच्छतो मुने ॥ २६ ॥
वपुस्तेजश्च कीदृग्वै तन्मे व्याख्यातुमर्हसि।
भीष्म उवाच- ततः स भगवांस्तस्मै विपुलाय महात्मने ॥ २७ ॥
आचचक्षे यथातत्त्वं मायां शक्रस्य भारत।
देवशर्मोवाच- बहुमायः स विप्रर्षे भगवान्पाकशासनः ॥ २८ ॥
तांस्तान्विकुरुते भावान्बहूनथ मुहुर्मुहुः।
किरीटवज्रधृग्धन्वी मुकुटी बद्धकुण्डलः ॥ २९ ॥
भवत्यथ मुहूर्तेन चण्डालसमदर्शनः।
शिखी जटी चीरवासाः पुनर्भवति पुत्रक ॥ ३० ॥
बृहच्छरीरश्च पुनश्चीरवासाः पुनः कृशः।
गौरं श्यामं च कृष्णं च वर्णं विकुरुते पुनः ॥ ३१ ॥
विरूपो रूपवांश्चैव युवा वृद्धस्तथैव च।
ब्राह्मणः क्षत्रियश्चैव वैश्यः शूद्रस्तथैव च ॥ ३२ ॥

सूर्यके समान तेजस्वी, सदा उग्र तप करनेवाले, नियतेन्द्रिय धर्मज्ञ, सत्यवादी तपस्वी विपुलने गुरुका वचन सुनके उत्तर दिया, कि ऐसा ही करूंगा। हे महाराज ! जब गुरु चलनेको उद्यत हुए, तब उन्होंने उनसे फिर पूछा। (२४—२६)

विपुल बोले, हे मुनि ! देवराजके आगमन करनेपर उनका कैसा रूप होता है, उनका शरीर और तेज कैसा है ? आप मेरे निकट इस विषयकी व्याख्या करिये। (२६-२७)

भीष्म बोले, हे भारत ! अनन्तर भगवान् देवशर्मा महानुभाव विपुलसे इन्द्रकी मायाका यथार्थ तत्व कहने लगे। (२७-२८)

देवशर्मा बोले, हे विप्रर्षि ! भगवान् इन्द्र अनेक प्रकारकी माया जानते हैं, वह बार बार अनेक प्रकारके भाव उत्पन्न करते हैं; कभी किरीटी, वज्रधारी, धन्वी, मुकुटी और बद्धकुण्डली होते तथा मुहूर्त भरके बीच चाण्डालके सदृश दीख पडते हैं। हे तात ! वह कभी शिखावान् कभी जटावान् होते, कभी चीरवसन पहरते, कभी विपुल-शरीर और कृश हुआ करते हैं। वह श्वेत, श्याम तथा कृष्ण प्रभृति विविध वर्ण धारण करते हैं। वह कभी कुरूप कभी रूपवान्, कभी युवा, कभी वृद्ध कभी ब्राह्मण, कभी क्षत्रिय, कभी वैश्य

प्रतिलोमोऽनुलोमश्च भवत्यथ शतक्रतुः।
शुकवायसरूपी च हंसकोकिलरूपवान् ॥ ३३ ॥
सिंहव्याघ्रगजानां च रूपं धारयते पुनः।
दैवं दैत्यमथो राज्ञां वपुर्धारयतेऽपि च ॥ ३४ ॥
अकृशो वायुभग्नाङ्गः शकुनिर्विकृतस्तथा।
चतुष्पाद्बहुरूपश्च पुनर्भवति बालिशः ॥ ३५ ॥
मक्षिकामशकादीनां वपुर्धारयतेऽपि च।
न शक्यमस्य ग्रहणं कर्तुं विपुल केनचित् ॥ ३६ ॥
अपि विश्वकृता तात येन सृष्टमिदं जगत्।
पुनरन्तर्हितः शक्रो दृश्यते ज्ञानचक्षुषा ॥ ३७ ॥
वायुभूतश्च स पुनर्देवराजो भवत्युत।
एवं रूपाणि सततं कुरुते पाकशासनः ॥ ३८ ॥
तस्माद्विपुल यत्नेन रक्षेमां तनुमध्यमाम्।
यथा रुचिं नावलिहेद्देवेन्द्रो भृगुसत्तम ॥ ३९ ॥
क्रतावुपहिते न्यस्तं हविः श्वेव दुरात्मवान्।
एवमाख्याय स मुनिर्यज्ञकारोऽगमत्तदा ॥ ४० ॥

और कभी शूद्र होते हैं; शतक्रतु समस्त प्रतिलोम तथा अनुलोम होसकते हैं। वह शुक और कौवाका रूप धारण करते, कोकिल तथा हंसका रूप धारण कर सकते और सिंह, बाघ तथा हाथी आदिका रूप भी धारण किया करते हैं। (२८-३४)

देव, दैत्य और राजाओंका शरीर धारण करते तथा वह अकृश, वायु-भग्नाङ्ग, शकुनि, विकृत, चतुष्पाद, बहुरूप और पुनर्वार मूर्ख होते तथा मक्षिका मशक आदिका शरीर धारण करते हैं। हे विपुल! दूसरेकी बात तो दूर है, जिसने इस जगत्की रचना की है, वह विश्वकर्ता भी उसे जाननेमें समर्थ नहीं होते। इन्द्र अन्तर्हित होनेपर ज्ञाननेत्रसे दीख पडते और फिर वायु-रूप होकर देवराज होते। हे विपुल! इन्द्र इस ही भांति समस्त रूप धारण किया करते हैं, इसलिये इस क्षीणमध्या की यत्नपूर्वक रक्षा करो। हे भृगुसत्तम! उपस्थित यज्ञकी हविको कुत्ता खाता है, उसी भांति देवेन्द्र रुचिको अवलेहन न करे। (३४—४०)

हे भरतसत्तम अनन्तर उस महाभाग यज्ञकारी देवशर्मा मुनिने ऐसा वचन

देवशर्मा महाभागस्ततो भरतसत्तम ।
विपुलस्तु वचः श्रुत्वा गुरोश्चिन्तामुपेयिवान् ॥ ४१ ॥
रक्षां च परमां चक्रे देवराजान्महाबलात् ।
किं नु शक्यं मया कर्तुं गुरुदाराभिरक्षणे ॥ ४२ ॥
मायावी हि सुरेन्द्रोऽसौ दुर्धर्षश्चापि वीर्यवान् ।
नापिधायाश्रमं शक्यो रक्षितुं पाकशासनः ॥ ४३ ॥
उटजं वा तथा ह्यस्य नानाविधसरूपता ।
वायुरूपेण वा शक्रो गुरुपत्नीं प्रधर्षयेत् ॥ ४४ ॥
तस्मादिमां संप्रविश्य रुचिं स्थास्येऽहमद्य वै ।
अथवा पौरुषेणेयं न शक्या रक्षितुं मया ॥ ४५ ॥
बहुरूपो हि भगवाञ्छ्रूयते पाकशासनः ।
सोऽहं योगबलादेनां रक्षिष्ये पाकशासनात् ॥ ४६ ॥
गात्राणि गात्रैरस्याहं संप्रवेक्ष्ये हि रक्षितुम् ।
यद्युच्छिष्टामिमां पत्नीमद्य पश्यति मे गुरुः ॥ ४७ ॥
शप्स्यत्यसंशयं कोपाद्दिव्यज्ञानो महातपाः ।
न चेयं रक्षितुं शक्या यथाऽन्या प्रमदा नृभिः ॥४८॥

कहके गमन किया । विपुल भी गुरुका वचन सुनके चिन्ता करने लगे और महाबलवान् देवराजसे गुरुपत्नीकी रक्षा रक्षा करनेके लिये यत्नवान् रहे। उन्होंने सोचा कि सुरराज अत्यन्त वीर्यवान्, दुरभिभवनीय और मायावी है, इसलिये क्या मैं उससे गुरुपत्नीकी रक्षा कर सकूंगा ? आश्रम अथवा कुटीको विना बन्द किये इन्द्रको निवारण करना दुःसाध्य है; क्यों कि उसमें अनेक प्रकारके रूप धारण करनेकी योग्यता है, अथवा यदि देवराज वायुरूपसे गुरुपत्नीको धर्षण करे ! इसलिये मैं आजसे इसके शरीरमें प्रवेश करके रहूंगा नहीं तो मैं पौरुषसे इसकी रक्षा न कर सकूंगा । क्यों कि सुना है भगवान् इन्द्र अनेक प्रकारका रूप धारण किया करते हैं । इसलिये इसकी रक्षा करनेके लिये योगबलसे इसके शरीरमें प्रवेश करूंगा, तब इन्द्रसे इसकी रक्षा कर सकूंगा । (४०—४७)

दिव्य ज्ञानसे युक्त महातपस्वी मेरे गुरु यदि आज अपनी भार्याको उच्छिष्टा देखेंगे, तो क्रुद्ध होके निःसन्देह शाप देंगे । जैसे मनुष्य दूसरी स्त्रीकी रक्षा नहीं कर सकते, वैसे ही इसकी

मायावी हि सुरेन्द्रोऽसावहो प्राप्तोऽस्मि संशयम् ।
अवश्यं करणीयं हि गुरोरिह हि शासनम् ॥ ४९ ॥
यदि त्वेतदहं कुर्यामाश्चर्यं स्यात्कृतं मया ।
योगेनाथ प्रवेशो हि गुरुपत्न्याः कलेवरे ।
एवमेव शरीरेऽस्या निवत्स्यामि समाहितः ॥ ५० ॥
असक्तः पद्मपत्रस्थो जलबिन्दुर्यथा चलः ॥ ५१ ॥
निर्मुक्तस्य रजोरूपान्नापराधो भवेन्मम ।
यथा हि शून्यां पथिकः सभामध्यावसेत्पथि ॥ ५२ ॥
तथाद्यावासयिष्यामि गुरुपत्न्याः कलेवरम् ।
एवमेव शरीरेऽस्या निवत्स्यामि समाहितः ॥ ५३ ॥
इत्येवं धर्ममालोक्य वेदवेदांश्च सर्वशः ।
तपश्च विपुलं दृष्ट्वा गुरोरात्मन एव च ॥ ५४ ॥
इति निश्चित्य मनसा रक्षां प्रति स भार्गवः ।
अन्वतिष्ठत्परं यत्नं यथा तच्छृणु पार्थिव ॥ ५५ ॥
गुरुपत्नीं समासीनो विपुलः स महातपाः ।
उपासीनामनिन्द्याङ्गीं यथार्थे समलोभयत् ॥ ५६ ॥

रक्षा करनी मेरे लिये असाध्य कार्य है; क्यों कि देवेन्द्र अत्यन्त ही मायावी है। हाय ! मैं क्या ही संशयमें पडा हूं। इस समय गुरुकी आज्ञा मुझे अवश्य ही प्रतिपालन करनी उचित है, यदि मैं इसे प्रतिपालन कर सकूं, तो महत् आश्चर्यका कार्य होगा। योगबलसे मैं गुरुपत्नीके शरीरमें प्रवेश करूं और कमलके पत्तेपर स्थित जलकी बूंदकी भांति चञ्चल होकर भी आसक्त न होऊं। रजोरूपसे निर्मुक्त रहनेपर मेरा कुछ अपराध न होगा। जैसे पथिक मार्गमें सूने स्थानमें वास करता है, आज मैं उस ही भांति गुरुपत्नीके शरीरको वासस्थान करूंगा; इस ही भांति साव-धान होकर मैं इसके शरीरमें स्थित रहूंगा। (४७-५३)

हे राजन् ! भृगुवंशीय विपुलने इस ही प्रकार धर्मकी आलोचना वा सब भांतिसे वेदार्थकी पर्यालोचना की और गुरु तथा अपनी तपस्याको अवलोकन करनेपर निश्चय करके जिस रीतिसे अत्यन्त यत्नका अनुष्ठान किया था, वह सुनो। उस महातपस्वी विपुलने बैठकर समीपमें बैठी हुई अनिन्दिताङ्गी गुरुपत्नी-को यथार्थ विषयमें लाभ प्रदर्शित किया

नेत्राभ्यां नेत्रयोरस्या रश्मिं संयोज्य रश्मिभिः ।
विवेश विपुलः कायमाकाशं पवनो यथा ॥ ५७ ॥
लक्षणं लक्षणेनैव वदनं वदनेन च ।
अविचेष्टन्नतिष्ठद्वै छायेवान्तर्हितो मुनिः ॥ ५८ ॥
ततो विष्टभ्य विपुलो गुरुपत्न्याः कलेवरम् ।
उवास रक्षणे युक्तो न च सा तमबुद्ध्यत ॥ ५९ ॥
यं कालं नागतो राजन् गुरुस्तस्य महात्मनः ।
क्रतुं समाप्य स्वगृहं तं कालं सोऽभ्यरक्षत ॥ ६० ॥ [२२८०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे विपुलोपाख्याने चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

भीष्म उवाच– ततः कदाचिद्देवेन्द्रो दिव्यरूपवपुर्धरः ।
इदमन्तरमित्येवमभ्यगात्तमथाश्रमम् ॥ १ ॥
रूपमप्रतिमं कृत्वा लोभनीयं जनाधिपः ।
दर्शनीयतमो भूत्वा प्रविवेश तमाश्रमम् ॥ २ ॥
स ददर्श तमासीनं विपुलस्य कलेवरम् ।
निश्चेष्टं स्तब्धनयनं यथाऽऽलेख्यगतं तथा ॥ ३ ॥
रुचिं च रुचिरापाङ्गीं पीनश्रोणिपयोधराम् ।

था । विपुलने अपने नेत्रके तेजसे उसके दोनों नेत्रोंका तेज संयोजित करके इस प्रकार उसके शरीरमें प्रवेश किया, जैसे पवन आकाशमें प्रवेश करता है । मुनि छायाकी भांति अन्तर्हित होकर लक्षणसे लक्षण और शरीरसे शरीरको चेष्टारहित करके निवास करने लगे । अनन्तर विपुल गुरुपत्नीके शरीरको स्तम्भित करके उसकी रक्षामें नियुक्त होकर स्थित रहे, वह उन्हें न जान सकी । हे महाराज ! जबतक उस महात्माके गुरु यज्ञ समाप्त करके अपने गृहपर नहीं आये, तबतक वह सब भांतिसे गुरुपत्नीकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त रहे । (५४-६०)

अनुशासनपर्वमें ४० अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें ४१ अध्याय ।

अनन्तर किसी समयमें इन्द्रने दिव्य सौन्दर्ययुक्त शरीर धारण करके अवकाशका समय विचारके उस आश्रमकी ओर आगमन किया । हे प्रजानाथ ! वह परछांई रहित सुन्दर रूप धारण करके अत्यन्त दर्शनीय होकर उस आश्रममें प्रविष्ट हुए । उन्होंने उस समय चित्रलिखितकी भांति स्तब्धनेत्र

पद्मपत्रविशालाक्षीं संपूर्णेन्दुनिभाननाम् ॥ ४ ॥
सा तमालोक्य सहसा प्रत्युत्थातुमियेष ह ।
रूपेण विस्मिता कोऽसीत्यथ वक्तुमिवेच्छती ॥ ५ ॥
उत्थातुकामा तु सती विष्टब्धा विपुलेन सा ।
निगृहीता मनुष्येन्द्र न शशाक विचेष्टितुम् ॥ ६ ॥
तामाबभाषे देवेन्द्रः साम्ना परमवल्गुना ।
त्वदर्थमागतं विद्धि देवेन्द्रं मां शुचिस्मिते ॥ ७ ॥
क्लिश्यमानमनङ्गेन त्वत्संकल्पभवेन ह ।
तत्संप्राप्तं हि मां सुभ्रु पुरा कालोऽतिवर्तते ॥ ८ ॥
तमेवंवादिनं शक्रं शुश्राव विपुलो मुनिः ।
गुरुपत्न्याः शरीरस्थो ददर्श त्रिदशाधिपम् ॥ ९ ॥
न शशाक च सा राजन्प्रत्युत्थातुमनिन्दिता ।
वक्तुं च नाशकद्राजन्विष्टब्धा विपुलेन सा ॥ १० ॥
आकारं गुरुपत्न्यास्तु स विज्ञाय भृगूद्वहः ।
निजग्राह महातेजा योगेन बलवत्प्रभो ॥ ११ ॥

और चेष्टारहित होकर बैठा विपुलका शरीर देखा तथा निबिडनितम्ब, और पीन-पयोधर, पद्मपत्रके समान विशालनयनी, पूर्णचन्द्रसदृश मुख और उत्तम अंगवाली रुचिको अवलोकन किया। (१—४)

रुचिने इन्द्रको देखते ही सहसा उठनेकी इच्छा की और उनके रूपसे विस्मित होकर तुम कौन हो, मानो ऐसा वचन कहनेकी अभिलाषी हुई। हे नरनाथ! वह सती विपुलके द्वारा विष्टब्ध और निगृहीत रहनेसे उठनेकी इच्छा करके भी न उठ सकी। तब इन्द्रने उससे परम मनोहर प्रिय वचन कहे। हे शुचिस्मिते! मैं देवेन्द्र हूं, तुम्हारे ही निमित्त यहां आया हूं। हे सुभ्रु! मैं तुम्हारे संकल्पजनित कामसे क्लेशित होकर आया हूं, तुम समागत समझो; समय बीता जाता है। इन्द्र ऐसा कहरहे थे, उसे विपुलमुनिने सुना और गुरुपत्नीके शरीरमें रहके ही उन्हें देख लिया। (५—९)

हे महाराज! वह अनिन्दिता विपुल के द्वारा विष्टब्ध रहनेसे उठने अथवा कुछ कहने न सकी। हे प्रभु! उस भृगुकुलधुरन्धर महातेजस्वी विपुलने गुरुपत्नीका आशय जानके भली भांति बलपूर्वक योगके सहारे उसे निग्रह कर

बबन्ध योगबन्धैश्च तस्याः सर्वेन्द्रियाणि सः ।
तां निर्विकारां दृष्ट्वा तु पुनरेव शचीपतिः ॥ १२ ॥
उवाच व्रीडितो राजंस्तां योगबलमोहिताम् ।
एह्येहीति ततः सा तु प्रतिवक्तुमियेष तम् ॥ १३ ॥
स तां वाचं गुरोः पत्न्या विपुलः पर्यवर्तयत् ।
भोः किमागमने कृत्यमिति तस्यास्तु निःसृता ॥१४॥
वक्त्राच्छशाङ्कसदृशाद्वाणी संस्कारभूषणा ।
व्रीडिता सा तु तद्वाक्यमुक्त्वा परवशा तदा॥ १५ ॥
पुरन्दरश्च तत्रस्थो बभूव विमना भृशम् ।
स तद्वैकृतमालक्ष्य देवराजो विशाम्पते ॥ १६ ॥
अवैक्षत सहस्राक्षस्तदा दिव्येन चक्षुषा ।
स ददर्श मुनिं तस्याः शरीरान्तरगोचरम् ॥ १७ ॥
प्रतिबिम्बमिवादर्शे गुरुपत्न्याः शरीरगम् ।
स तं घोरेण तपसा युक्तं दृष्ट्वा पुरन्दरः ॥ १८ ॥
प्रावेपत सुसंत्रस्तः शापभीतस्तदा विभो ।
विमुच्य गुरुपत्नीं तु विपुलः सुमहातपाः ।
स्वकलेवरमाविश्य शक्रं भीतमथाब्रवीत् ॥ १९ ॥

रखा। हे महाराज! विपुलने उसकी सब इंद्रियां योगबन्धनसे बद्ध करदीं। इन्द्रने उसे योगबलसे मोहित और विकाररहित देखकर व्रीडित होकर फिर उससे कहा कि "आओ! आओ!" अनन्तर रुचिने उन्हें प्रत्युत्तर देनेकी इच्छा की, परन्तु विपुलने गुरुपत्नीका वह वचन परिवर्त्तन कर दिया। रुचिके चन्द्रसदृश वदनसे 'ऐ तुम्हारे आनेका क्या प्रयोजन है?' ऐसा ही संस्कारयुक्त वचन बाहर हुआ (१०-१५)

परवश होनेसे रुचि उस समय ऐसा वचन कहके लज्जित हुई, इन्द्र भी वहांपर अत्यन्त दुःखित होकर स्थित रहे। हे महाराज! देवराज इन्द्रने उसका वह विकृतभाव जानके उस समय दिव्य-दृष्टिके सहारे देखा, उन्होंने दर्पणमें प्रतिबिम्बकी भांति गुरुपत्नीके शरीरमें तथा शरीरान्तरगोचर विपुलका शरीर अवलोकन किया। इन्द्र उसे घोर तपस्यायुक्त देखके बहुत डरे और शापभयसे डरके उस समय कांपते हुए खडे रहे। तब महातपस्वी विपुल गुरुपत्नीको परित्याग करके निज शरीरमें

विपुल उवाच– अजितेन्द्रिय दुर्बुद्धे पापात्मक पुरन्दर ।
न चिरं पूजयिष्यन्ति देवास्त्वां मानुषास्तथा ॥ २० ॥
किं नु तद्विस्मृतं शक्र न तन्मनसि ते स्थितम् ।
गौतमेनासि यन्मुक्तो भगाङ्कपरिचिह्नितः ॥ २१ ॥
जाने त्वां बालिशमतिमकृतात्मानमस्थिरम् ।
मयेयं रक्ष्यते मूढ गच्छ पाप यथागतम् ॥ २२ ॥
नाहं त्वामद्य मूढात्मन्दहेयं हि स्वतेजसा ।
कृपायमानस्तु न ते दग्धुमिच्छामि वासव ॥ २३ ॥
स च घोरतमो धीमान्गुरुस्त्वां पापचेतसम् ।
दृष्ट्वा त्वां निर्दहेदद्य क्रोधदीप्तेन चक्षुषा ॥ २४ ॥
नैवं तु शक्र कर्तव्यं पुनर्मान्याश्च ते द्विजाः ।
मा गमः ससुतामात्यः क्षयं ब्रह्मबलार्दितः ॥ २५ ॥
अमरोऽस्मीति यद् बुद्धिं समास्थाय प्रवर्तसे ।
मावमंस्था न तपसा न साध्यं नाम किंचन ॥ २६ ॥
भीष्म उवाच– तच्छ्रुत्वा वचनं शक्रो विपुलस्य महात्मनः ।
अकिंचिदुक्त्वा व्रीडार्तस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ २७ ॥

प्रविष्ट होकर डरे हुए इन्द्रसे कहने-लगे। (१५-१९)

विपुल बोले, रे नीचबुद्धिवाले, अजितेन्द्रिय पापी पुरन्दर! देववृन्द और मनुष्य तेरा सदा संमान न करेंगे। हे शक्र! परन्तु गौतमके द्वारा भगाङ्कसे चिन्हित होकर जो तू मुक्त हुआ, क्या वह याद नहीं है? क्या उसे भूल गया? मैं तुझे मूढबुद्धि, अकृतात्मा अस्थिर जानता हूं। रे मूढ! रे पापी! यह मेरे द्वारा रक्षित होरही है, तू जिस स्थानसे आया है, वहां ही चला जा, रे मूढात्मा इन्द्र! आज मैंने अपने तेजसे तुझे नहीं जलाया, मैंने कृपा करके तुझे भस्म करनेकी इच्छा नहीं की; मेरे वह अत्यन्त बुद्धिमान् गुरु तुझ पापीको देखते ही क्रोधयुक्त नेत्रसे इस ही क्षणमें निःशेष करके भस्म करेंगे। हे इन्द्र! तू फिर ऐसा कर्म न करना; ब्राह्मणवृन्द तुम्हारे माननीय हैं, इसलिये ब्रह्मबलसे पीडित होकर पुत्र और सेवकोंके सहित विनष्ट न होना। अपनेको अमर समझके मेरी अवज्ञा मत करो, तपस्यासे कुछ भी असाध्य नहीं है। (२०-२६)

भीष्म बोले, इन्द्र महानुभाव विपुल

मुहूर्तयाते तस्मिंस्तु देवशर्मा महातपाः ।
कृत्वा यज्ञं यथाकाममाजगाम स्वमाश्रमम् ॥ २८ ॥
आगतेऽथ गुरौ राजन्विपुलः प्रियकर्मकृत् ।
रक्षितां गुरवे भार्यां न्यवेदयदनिन्दिताम् ॥ २९ ॥
अभिवाद्य च शान्तात्मा स गुरुं गुरुवत्सलः ।
विपुलः पर्युपातिष्ठद्यथापूर्वमशङ्कितः ॥ ३० ॥
विश्रान्ताय ततस्तस्मै सहासीनाय भार्यया ।
निवेदयामास तदा विपुलः शक्रकर्म तत् ॥ ३१ ॥
तच्छ्रुत्वा स मुनिस्तुष्टो विपुलस्य प्रतापवान् ।
बभूव शीलवृत्ताभ्यां तपसा नियमेन च ॥ ३२ ॥
विपुलस्य गुरौ वृत्तिं भक्तिमात्मनि तत्प्रभुः ।
धर्मे च स्थिरतां दृष्ट्वा साधु साध्वित्यभाषत ॥ ३३ ॥
प्रतिलभ्य च धर्मात्मा शिष्यं धर्मपरायणम् ।
वरेण च्छन्दयामास देवशर्मा महामतिः ॥ ३४ ॥
स्थितिं च धर्मे जग्राह स तस्माद्गुरुवत्सलः ।
अनुज्ञातश्च गुरुणा चचारानुत्तमं तपः ॥ ३५ ॥
तथैव देवशर्मापि सभार्यः स महातपाः ।

का ऐसा वचन सुनके लज्जासे आर्त्त होकर कुछ भी न कहके उस ही स्थानमें अन्तर्हित हुए। मुहूर्त्त भर समय बीतने-पर महातपस्वी देवशर्मा यज्ञ समाप्त करके इच्छानुसार अपने आश्रमपर आये। हे राजन् ! गुरुके आनेपर प्रियकार्य करनेवाले विपुलने अनिन्दिता गुरुपत्नीकी किस प्रकार रक्षा की थी, वह सब उनके समीप कह सुनाया। वह शान्तचित्त गुरुवत्सल विपुल गुरुको प्रणाम कर पहलेकी भांति अशङ्कित होकर गुरुकी सेवा करने लगे।(२७-३०)

जब वह विश्राम करके भार्याके सहित बैठे, तब विपुलने उनसे इन्द्रका सब कार्य सुना दिया। उस प्रतापवान् मुनिश्रेष्ठने विपुलका वचन सुनके उसका स्वभाव, चारित्र, तपस्या, नियम, गुरु-सेवा और गुरुके विषयमें भक्ति तथा धर्ममें स्थिरता देखकर 'साधु साधु' कहके उसे धन्यवाद दिया। महाबुद्धिमान् धर्मात्मा देवशर्माने शिष्यको धर्मपरायण जानके उससे कहा, कि वर मांगो। गुरुवत्सल विपुलने गुरुके समीप यह वर मांगा, कि धर्ममें मेरी स्थिति रहे,

निर्भयो बलवृत्रघ्नाच्चचार विजने वने ॥ ३६ ॥ [२३१६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे विपुलोपाख्याने एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

भीष्म उवाच- विपुलस्त्वकरोत्तीव्रं तपः कृत्वा गुरोर्वचः ।
तपोयुक्तमथात्मानममन्यत स वीर्यवान् ॥ १ ॥
स तेन कर्मणा स्पर्धन्पृथिवीं पृथिवीपते ।
चचार गतभीः प्रीतो लब्धकीर्तिवरो नृप ॥ २ ॥
उभौ लोकौ जितौ चापि तथैवामन्यत प्रभुः ।
कर्मणा तेन कौरव्य तपसा विपुलेन च ॥ ३ ॥
अथ काले व्यतिक्रान्ते कस्मिंश्चित् कुरुनन्दन ।
रुच्या भगिन्या आदानं प्रभूतधनधान्यवत् ॥ ४ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु दिव्या काचिद्वराङ्गना ।
बिभ्रती परमं रूपं जगामाथ विहायसा ॥ ५ ॥
तस्याः शरीरात्पुष्पाणि पतितानि महीतले ।
तस्याश्रमस्याविदुरे दिव्यगन्धानि भारत ॥ ६ ॥
तान्यगृह्णात्ततो राजन् रुचिर्ललितलोचना ।

वर पाके गुरुकी आज्ञासे उत्तम तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुए। वह महातपस्वी देवशर्मा भी इन्द्रसे निडर होकर भार्याके सहित निर्जन वनमें विचरने लगे। (३१—३६)

अनुशासनपर्वमें ४१ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ४२ अध्याय ।

भीष्म बोले, अनन्तर वीर्यवान् विपुलने गुरुका वचन प्रतिपालन करके तीव्र तपस्याचरणसे अपनेको तपयुक्त समझा। हे महाराज! वह निज कर्मसे कीर्ति और वर लाभ करके प्रसन्न होकर स्पर्द्धा करते हुए निर्भयचित्तसे पृथ्वी-मण्डलपर विचरने लगे। हे कौरव्य! उन्होंने पहले कहे हुए कार्य तथा अत्यन्त तपस्याचरणके सहारे जाना, कि मैंने इस लोक और परलोकको जय किया है। हे कुरुनन्दन! अनन्तर कुछ समय बीतनेपर रुचिके भगिनीका बहुतसे धनधान्यसे युक्त पाणिग्रहण सम्पन्न हुआ, उस ही समय कोई दिव्य वराङ्गनाने परम मनोहर रूप धारण करके आकाशमार्गसे गमन किया। हे भारत! उस आश्रमसे थोडी ही दूरपर उस दिव्याङ्गनाके अङ्गसे दिव्य-गन्धयुक्त बहुतसे फूल पृथ्वीपर

तदा निमन्त्रकस्तस्या अङ्गेभ्यः क्षिप्रमागमत् ॥ ७ ॥
तस्या हि भगिनी तात ज्येष्ठा नाम्ना प्रभावती।
भार्या चित्ररथस्याथ बभूवाङ्गेश्वरस्य वै ॥ ८ ॥
पिनह्य तानि पुष्पाणि केशेषु वरवर्णिनी।
आमन्त्रिता ततोऽगच्छद्रुचिरङ्गपतेर्गृहम् ॥ ९ ॥
पुष्पाणि तानि दृष्ट्वा तु तदाङ्गेन्द्रवराङ्गना।
भगिनीं चोदयामास पुष्पार्थे चारुलोचना ॥ १० ॥
सा भर्त्रे सर्वमाचष्ट रुचिः सुरुचिरानना।
भगिन्या भाषितं सर्वमृषिस्तच्चाभ्यनन्दत ॥ ११ ॥
ततो विपुलमानाय्य देवशर्मा महातपाः।
पुष्पार्थे चोदयामास गच्छ गच्छेति भारत ॥ १२ ॥
विपुलस्तु गुरोर्वाक्यमविचार्य महातपाः।
स तथेत्यब्रवीद्राजंस्तं च देशं जगाम ह ॥ १३ ॥
यस्मिन्देशे तु तान्यासन् पतितानि नभस्तलात्।
अम्लानान्यपि तत्रासन् कुसुमान्यपराण्यपि ॥ १४ ॥
स ततस्तानि जग्राह दिव्यानि रुचिराणि च।

गिरे। (१—६)

हे महाराज! अनन्तर ललितनयनी रुचि उन फूलोंको ग्रहणकर रही थी, उस ही समय अंगदेशसे शीघ्र ही उसके समीप एक निमन्त्रक आया। हे तात! प्रभावती नाम उसकी जेठी, बहिन अंगदेशके राजा चित्ररथकी भार्या थी, वरवर्णिनी रुचि आमन्त्रित होनेपर केशमें उन्हीं फूलोंको गुथके अंगराजके स्थानपर गई। उस समय अंगराजकी उत्तम नेत्रवाली स्त्री उन फूलोंको देखकर अपनी बहिनसे बोली मेरे लिये ऐसे ही फूल मंगा दो। सुन्दर मुखवाली रुचिने भगिनीका वचन पतिके निकट कह सुनाया, ऋषिने उसके वचनका समादर किया। हे भारत! अनन्तर महातपस्वी देव-शर्माने विपुलको आह्वान करके फूल लानेके निमित्त भेजा। (७-१२)

हे महाराज! महातपस्वी विपुल गुरुके वचनमें कुछ भी विचार न करके बोले, कि ऐसा ही करूंगा, फिर उस ही स्थानपर गमन किया। जिस स्थान-पर वे समस्त फूल आकाशसे गिरते थे, वहांपर और भी कितनेही ताजे पुष्प पडे थे। हे भारत! अनन्तर

प्राप्तानि स्वेन तपसा दिव्यगन्धानि भारत ॥ १५ ॥
संप्राप्य तानि प्रीतात्मा गुरोर्वचनकारकः ।
तदा जगाम तूर्णं च चम्पां चम्पकमालिनीम् ॥ १६ ॥
स वने निर्जने तात ददर्श मिथुनं नृणाम् ।
चक्रवत्परिवर्तन्तं गृहीत्वा पाणिना करम् ॥ १७ ॥
तत्रैकस्तूर्णमगमत्तत्पदे च विवर्तयन् ।
एकस्तु न तदा राजंश्चक्रतुः कलहं ततः ॥ १८ ॥
त्वं शीघ्रं गच्छसीत्येकोऽब्रवीन्नेति तथाऽपरः ।
नेति नेति च तौ राजन् परस्परमथोचतुः ॥ १९ ॥
तयोर्विस्पर्धतोरेवं शपथोऽयमभूत्तदा ।
सहसोद्दिश्य विपुलं ततो वाक्यमथोचतुः ॥ २० ॥
आवयोरनृतं प्राह यस्तस्याभूद् द्विजस्य वै ।
विपुलस्य परे लोके या गतिः सा भवेदिति ॥ २१ ॥
एतच्छ्रुत्वा तु विपुलो विषण्णवदनोऽभवत् ।
एवं तीव्रतपाश्चाहं कष्टश्चायं परिश्रमः ॥ २२ ॥

उन्होंने अपने तपोबलसे उन दिव्य गन्धवाले मनोहर पुष्पोंको पाके ग्रहण किया। गुरुके वचनको पालन करनेवाले विपुलने उस समय उन फूलोंको पाके प्रसन्नचित्त होकर शीघ्र ही चम्पकमालिनी चम्पानगरीकी ओर प्रस्थान किया। हे तात! उन्होंने उस निर्जन बनके बीच पाणिके द्वारा कर ग्रहण करके चक्रकी भांति परिवर्त्तनकारी नर-मिथुन देखा। हे राजन्! उन दोनोंके बीच एक शीघ्र गमन कर रहा था, दूसरा उसके पदमें विषमता प्रतिपादन करते हुए साथमें गमन करता था, अनन्तर उस समय वे दोनों कलह करने लगे। एक कहता था, तुमने शीघ्र गमन किया है, दूसरा कहने लगा, मैंने शीघ्र गमन नहीं किया है। (१३-१९)

हे राजन्! वे दोनों आपसमें नहीं, नहीं, ऐसा ही वचन कहने लगे। उस समय इस ही भांति विवाद होते रहनेपर उन दोनोंने विपुलको उद्देश्य करके यह शपथ किया, कि इस विपुल ब्राह्मणकी परलोकमें जो गति होगी, हम लोगोंके बीच जो मिथ्या कहता है, उसकी भी वही गति होगी। विपुलने ऐसा वचन सुनके खिन्न-वदन होकर सोचा, कि मैं ऐसा तपस्वी हूं, इसलिये मुझे उद्देश्य करके इस मिथुनने जो

मिथुनस्यास्य किं मे स्यात्कृतं पापं यथा गतिः।
अनिष्टा सर्वभूतानां कीर्तिताऽनेन मेऽद्य वै ॥ २३ ॥
एवं संचिन्तयन्नेव विपुलो राजसत्तम।
अवाङ्मुखो दीनमना दध्यौ दुष्कृतमात्मनः ॥ २४ ॥
ततः षडन्यान्पुरुषानक्षैः काञ्चनराजतैः।
अपश्यद्दीव्यमानान्वै लोभहर्षान्वितांस्तथा ॥ २५ ॥
कुर्वतः शपथं तेन यः कृतो मिथुनेन तु।
विपुलं वै समुद्दिश्य तेऽपि वाक्यमथाब्रुवन् ॥ २६ ॥
लोभमास्थाय योऽस्माकं विषमं कर्तुमुत्सहेत्।
विपुलस्य परे लोके या गतिस्तामवाप्नुयात् ॥ २७ ॥
एतच्छ्रुत्वा तु विपुलो नापश्यद्धर्मसंकरम्।
जन्मप्रभृति कौरव्य कृतपूर्वमथात्मनः ॥ २८ ॥
संप्रदध्यौ तथा राजन्नग्नावग्निरिवाहितः।
दह्यमानेन मनसा शापं श्रुत्वा तथाविधम् ॥ २९ ॥
तस्य चिन्तयतस्तात बह्व्यो दिननिशा ययुः।

वचन कहा है, इन दोनोंके लिये वह कष्टकर मात्र है, मैंने ऐसा कौनसा पाप किया है, जो इनकी भी वही गति होगी? इस समय इन लोगोंने मेरी जिस गतिका विषय कहा है, वह सब प्राणियोंको अनभिलषित है, हे राजसत्तम! विपुल इस ही भांति चिन्ता करते हुए दीनचित्त होकर सिर नीचा करके अपने दुष्कृति-विषयका ध्यान करने लगे। (१९—२४)

अनन्तर उन्होंने सोने और रूपेसे बने हुए अक्षके सहारे क्रीडा करनेवाले, लोभहर्षसेयुक्त और छः पुरुषोंको अवलोकन किया। पहले कहे हुए मिथुनने विपुलको उल्लेख करके जिस प्रकार शपथ किया था, वे भी उस ही भांति शपथ करते थे। अनन्तर वे लोग विपुलको उद्देश्य करके यह वचन बोले, हम लोगोंके बीच जो लोभवशसे विषम आचरण करेगा, वह उस ही गतिको प्राप्त होगा, जैसी विपुलकी परलोकमें असद्गति होगी। हे कौरव्य! ऐसा वचन सुनके विपुलने जन्म पर्यन्त विचारके देखा, परन्तु अपनेको धर्मसङ्करकारी नहीं समझा! हे राजन्! वह इस प्रकार शाप सुनके अग्निमें अर्पित काष्ठकी भांति दह्यमान होके चिन्ता करने लगे। (२५-२९)

इदमासीन्मनसि च रुच्या रक्षणकारितम् ॥ ३० ॥
लक्षणं लक्षणेनैव वदनं वदनेन च।
विधाय न मया चोक्तं सत्यमेतद्गुरोस्तथा ॥ ३१ ॥
एतदात्मनि कौरव्य दुष्कृतं विपुलस्तदा।
अमन्यत महाभाग तथा तच्च न संशयः ॥ ३२ ॥
स चम्पां नगरीमेत्य पुष्पाणि गुरवे ददौ।
पूजयामास च गुरुं विधिवत्स गुरुप्रियः ॥ ३३ ॥ [२३४९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे विपुलोपाख्याने द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

भीष्म उवाच— तमागतमभिप्रेक्ष्य शिष्यं वाक्यमथाब्रवीत्।
देवशर्मा महातेजा यत्तच्छृणु जनाधिप ॥ १ ॥
देवशर्मोवाच- किं ते विपुल दृष्टं वै तस्मिन् शिष्य महावने।
ते त्वां जानन्ति विपुल आत्मा च रुचिरेव च ॥ २ ॥
विपुल उवाच— ब्रह्मर्षे मिथुनं किं तत्के च ते पुरुषा विभो।
ये मां जानन्ति तत्त्वेन यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ३ ॥

हे तात! उनके चिन्ता करते रहनेपर अनेक दिन और रात्रि व्यतीत हुई, अनन्तर उनके अन्तःकरणमें गुरुपत्नी रुचिके विषयमें रक्षाजनित व्यवहार उदित हुआ। स्त्रीपुरुषके असाधारण लक्षणको लक्षणसे और शरीरको शरीरसे निगृहीत करके मैंने गुरुके निकट इस विषयको सत्य नहीं कहा है। हे कौरव्य! उस समय महातपस्वी विपुलने अपना ऐसा दुष्कृत जाना और वही निश्चय पाप था, इसमें सन्देह नहीं है। अनन्तर उन्होंने चम्पानगरीमें आकर गुरुको फूल दिया और उस गुरुप्रिय विपुलने विधिपूर्वक उनकी पूजा की। (३०—३३)

अनुशासनपर्वमें ४२ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ४३ अध्याय।

भीष्म बोले, हे प्रजानाथ! अनन्तर महातेजस्वी देवशर्माने उस शिष्यको आया हुआ देखकर जो वचन कहा था उसे सुनो। (१)

देवशर्मा बोले, हे शिष्य विपुल! तुमने उस महावनके बीच क्या देखा था? हे विपुल! वे मुझे, रुचिको, और तुम्हें जानते हैं? (२)

विपुल बोले, हे विभु ब्रह्मर्षि! जो लोग मुझे यथार्थ रीतिसे जानते हैं और जिनका विषय आप मुझसे पूछते हैं, वे

देवशर्मोवाच- यद्वै तन्मिथुनं ब्रह्मन्नहोरात्रं हि विद्धि तत्।
चक्रवत्परिवर्तेत तत्ते जानाति दुष्कृतम् ॥ ४ ॥
ये च ते पुरुषा विप्र अक्षैर्दीव्यन्ति हृष्टवत्।
ऋतूंस्तानभिजानीहि ते ते जानन्ति दुष्कृतम् ॥ ५ ॥
न मां कश्चिद्विजानीत इति कृत्वा न विश्वसेत्।
नरो रहसि पापात्मा पापकं कर्म वै द्विज ॥ ६ ॥
कुर्वाणं हि नरं कर्म पापं रहसि सर्वदा।
पश्यन्ति ऋतवश्चापि तथा दिननिशेऽप्युत ॥ ७ ॥
तथैव हि भवेयुस्ते लोकाः पापकृतो यथा।
कृत्वानाचक्षतः कर्म मम तच्च यथा कृतम् ॥ ८ ॥
ते त्वां हर्षस्मितं दृष्ट्वा गुरोः कर्मानिवेदकम्।
स्मारयन्तस्तथा प्राहुस्ते यथा श्रुतवान् भवान् ॥ ९ ॥
अहोरात्रं विजानाति ऋतवश्चापि नित्यशः।
पुरुषे पापकं कर्म शुभं वाशुभकर्मिणः ॥ १० ॥
तत्त्वया मम यत्कर्म व्यभिचाराद्भयात्मकम्।
नाख्यातमिति जानन्तस्ते त्वामाहुस्तथा द्विज ॥ ११ ॥

मिथुन कौन हैं और वे सब पुरुष ही कौन हैं ? (३)

देवशर्मा बोले, हे ब्रह्मन् ! तुमने जो मिथुन देखा है, जो कि चक्रकी भांति भ्रमण कर रहा है, उसे अहोरात्रि जानो; वे तुम्हारे पापककर्मको जानते हैं। हे विप्र ! जो सब पुरुष हर्षितकी भांति अक्षक्रीडा कर रहे हैं, उन्हें ऋतु जानो, वे तुम्हारा दुष्कृत जानते हैं। मुझे कोई नहीं जानता है, ऐसा विचार करके विश्वास करना योग्य नहीं है। पापात्मा मनुष्य निर्जनमें पापाचरण करता है, मनुष्यके सदा निर्जनमें पापाचरण करनेपर ऋतु और अहोरात्रि उसे देखा करती हैं। कर्म करके न कहनेपर तुमने मेरे समीप जैसा किया है, वैसे पाप करनेवालोंकी जैसी गति होती है, उसे भी वे सब अवलोकन करते हैं। (४—८)

ऋतु प्रभृतिने तुम्हें गुरुके निकट निज कर्म निवेदन न करके हर्षसे गर्वित देखके उस विषयको स्मरण करानेके लिये जो कहा है, वह तुमने सुना। अहोरात्र और छहों ऋतु अशुभ-कर्मशील पुरुषोंके शुभ वा अशुभ-कर्मोंको सदा जानते हैं। हे द्विज !

तेनैव हि भवेयुस्ते लोकाः पापकृतो यथा ।
कृत्वा नाचक्षतः कर्म मम यच्च त्वया कृतम् ॥ १२ ॥
त्वयाऽशक्यया च दुर्वृत्त्या रक्षितुं प्रमदा द्विज ।
न च त्वं कृतवान् किंचिदतः प्रीतोऽस्मि तेन ते ॥१३॥
यदि त्वहं त्वां दुर्वृत्तमद्राक्षं द्विजसत्तम ।
शपेयं त्वामहं क्रोधान्न मेऽत्रास्ति विचारणा ॥ १४ ॥
सज्जन्ति पुरुषे नार्यः पुंसां सोऽर्थश्च पुष्कलः ।
अन्यथा रक्षतः शापोऽभविष्यत्ते मतिश्च मे ॥ १५ ॥
रक्षिता च त्वया पुत्र मम चापि निवेदिता ।
अहं ते प्रीतिमांस्तात स्वस्थः स्वर्गं गमिष्यसि ॥१६॥
इत्युक्त्वा विपुलं प्रीतो देवशर्मा महानृषिः ।
मुमोद स्वर्गमास्थाय सहभार्यः सशिष्यकः ॥ १७ ॥
इदमाख्यातवांश्चापि ममाख्यानं महामुनिः ।
मार्कण्डेयः पुरा राजन् गङ्गाकूले कथान्तरे ॥ १८ ॥
तस्माद्ब्रवीमि पार्थ त्वां स्त्रियो रक्ष्याः सदैव च ।

तुमने जो मेरे समीप व्यभिचारवशसे भयात्मक कर्म प्रकाश नहीं किया, उसे ही जानके उन सबने तुमसे ऐसा कहा है। तुमने मेरे समीप जैसा कहा, वैसा कर्म करके न कहनेसे उस पापकारीकी परलोकमें जो गति होती है, तुम्हारी भी उक्त कर्मवशसे वैसी ही गति होगी। (९—१२)

हे द्विज ! तुम दुश्चरित्रा स्त्रीकी रक्षा करनेमें असमर्थ हो, उस विषयमें तुमने कुछ पाप नहीं किया, इस ही निमित्त मैं तुमपर प्रसन्न हुआ हूं। हे द्विजसत्तम ! यदि मैं तुम्हें दुर्वृत्त देखता, तो क्रोधवशसे अभिशाप देता; इस विषयमें मुझे विचार नहीं है। स्त्रियें जो पुरुषोंपर अनुरागवती होती हैं, पुरुषोंका वही पुष्कल अर्थ है; यदि तुम अन्यथाचरण करते, तो मैं उसे जानके अवश्य ही तुम्हें अभिशाप देता। हे तात ! तुमने यथार्थ रीतिसे रक्षा की है और वह वृत्तान्त मुझे सुनाया है। हे पुत्र ! इसलिये मैं तुमपर प्रसन्न हुआ हूं। तुम सुखी रहके स्वर्गमें गमन करोगे। महर्षि देवशर्माने प्रसन्न होकर विपुलसे इतनी कथा कहके भार्या और शिष्यके सहित स्वर्गमें जाकर अतिप्रीति लाभ की थी। (१३—१७)

हे राजन् ! पहले समयमें महामुनि

उभयं दृश्यते तासु सततं साध्वसाधु च ॥ १९ ॥
स्त्रियः साध्व्यो महाभागाः संमता लोकमातरः ।
धारयन्ति महीं राजन्निमां सवनकाननाम् ॥ २० ॥
असाध्व्यश्चापि दुर्वृत्ताः कुलघ्नाः पापनिश्चयाः ।
विज्ञेया लक्षणैर्दुष्टैः स्वगात्रसहजैर्नृप ॥ २१ ॥
एवमेतासु रक्षा वै शक्या कर्तुं महात्मभिः ।
अन्यथा राजशार्दूल न शक्या रक्षितुं स्त्रियः ॥ २२ ॥
एता हि मनुजव्याघ्र तीक्ष्णास्तीक्ष्णपराक्रमाः ।
नासामस्ति प्रियो नाम मैथुने संगमेति यः ॥ २३ ॥
एताः कृत्याश्च कार्याश्च कृताश्च भरतर्षभ ।
न चैकस्मिन् रमन्त्येताः पुरुषे पाण्डुनन्दन ॥ २४ ॥
नासां स्नेहो नरैः कार्यस्तथैवेर्ष्या जनेश्वर ।
खेदमास्थाय भुञ्जीत धर्ममास्थाय चैव ह ॥ २५ ॥
निहन्यादन्यथा कुर्वन्नरः कौरवनन्दन ।

मार्कण्डेयने कथा प्रसङ्गमें मेरे समीप यह उपाख्यान कहा था। हे पार्थ! इस ही लिये तुमसे कहता हूं, सदा स्त्रियोंकी रक्षा करनी चाहिये। स्त्रियें सदा साधु और दुष्ट दोनोंही दीख पडती हैं। हे महाराज! महाभाग वधूगण सब लोकोंकी माता हैं, येही वन और काननके सहित इस पृथ्वी-मण्डलका धारण किये हुई हैं। हे नर-पाल! असाध्वी, दुर्वृत्ता, कुलघ्नी, पाप कर्मवाली स्त्रियोंको शरीरमें उत्पन्न हुई हाथ पांवकी रेखा तथा दुष्ट लक्षणसे मालूम करना चाहिये। (१८-२१)

महानुभाव मनुष्य इसही प्रकार स्त्रियोंकी उत्तम रीतिसे रक्षा करनेमें समर्थ हैं। हे नृपश्रेष्ठ! अन्यथा स्त्रियें रक्षणीय नहीं हैं। हे मनुजश्रेष्ठ! ये तीक्ष्ण तथा तीक्ष्णपराक्रमशालिनी हैं, मैथुन-में जो इनके साथ सहवास करता है, वही इनके लिये प्रिय है,उसके अतिरिक्त और कोई भी प्रिय नहीं है। हे भरत-श्रेष्ठ! ये कृत्या अर्थात् प्राणघातिनी मृत्युरूपी हैं, व्यभिचारिणी होनेपर प्राण हरण किया करती हैं, कार्यरूपिणी और एक पुरुषकी अङ्गीकृत हैं। हे पाण्डुनन्दन! ये एक पुरुषमें रत नहीं होती, हे प्रजानाथ! स्त्रियोंके विषयमें मनुष्योंको स्नेह अथवा ईर्षा करनी उचित नहीं है। ऋतुकालके अनुरोधसे अप्रीतिपूर्वक इन्हें भोग करे। हे कौरव-

सर्वथा राजशार्दूल मुक्तिः सर्वत्र पूज्यते ॥ २६ ॥
तेनैकेन तु रक्षा वै विपुलेन कृता स्त्रियाः।
नान्यः शक्तस्त्रिलोकेऽस्मिन् रक्षितुं नृप योषितम् ॥२७॥२२७६

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे विपुलोपाख्याने त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

युधिष्ठिर उवाच– यन्मूलं सर्वधर्माणां स्वजनस्य गृहस्य च।
पितृदेवातिथीनां च तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥
अयं हि सर्वधर्माणां धर्मश्चिन्त्यतमो मतः।
कीदृशस्य प्रदेया स्यात्कन्येति वसुधाधिप ॥ २ ॥
भीष्म उवाच– शीलवृत्ते समाज्ञाय विद्यां योनिं च कर्म च।
सद्भिरेवं प्रदातव्या कन्या गुणयुते वरे ॥ ३ ॥
ब्राह्मणानां सतामेष ब्राह्मो धर्मो युधिष्ठिर।
आवाह्यमावहेदेवं यो दद्यादनुकूलतः ॥ ४ ॥
शिष्टानां क्षत्रियाणां च धर्म एष सनातनः।
आत्माभिप्रेतमुत्सृज्य कन्याभिप्रेत एव यः ॥ ५ ॥
अभिप्रेता च या यस्य तस्मै देया युधिष्ठिर।

नन्दन ! मनुष्य इसमें अन्यथा करनेसे निहत हुआ करता है। हे राजश्रेष्ठ ! योग सब भांतिसे सब ठौर समादरणीय है। एकमात्र उस विपुलने ही स्त्री की रक्षा की थी। हे नृप ! तीनों लोकोंके बीच कोई भी स्त्रियोंकी रक्षा करने में समर्थ नहीं है। (२२—२७)

अनुशासनपर्वमें ४३ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ४४ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले हे पितामह ! पितृलोक, देवता, अतिथि, स्वजन, गृह और सब धर्मोंका जो मूल है, आप मुझसे वही कहिये। हे पृथ्वीनाथ ! यही सब धर्मोंके बीच अत्यन्त चिन्तनीय कहके सम्मत है, कि कैसे वरको कन्या दान करे ? (१—२)

भीष्म बोले, स्वभाव, चरित्र, विद्या, योनि अर्थात् मातृकुल और पितृकुलकी शुद्धि तथा कर्मको भली भांति जानके साधु पुरुष गुणवान् वरको कन्यादान करें। उक्तगुणोंसे युक्त विवाहके योग्य वरको बुलाकर धनदानादिसे सन्तुष्ट करके जो कन्या दान की जाती है, साधु ब्राह्मणोंका यही ब्राह्मधर्म है और शिष्टक्षत्रियोंका भी यही सनातन क्षात्रधर्म है। हे युधिष्ठिर ! अपने अभिप्रायका

गान्धर्वमिति तं धर्मं प्राहुर्वेदविदो जनाः ॥ ६ ॥
धनेन बहुधा क्रीत्वा संप्रलोभ्य च बान्धवान् ।
असुराणां नृपैतं वै धर्ममाहुर्मनीषिणः ॥ ७ ॥
हत्त्वा छित्त्वा च शीर्षाणि रुदतां रुदतीं गृहात् ।
प्रसह्य हरणं तात राक्षसो विधिरुच्यते ॥ ८ ॥
पञ्चानां तु त्रयो धर्म्या द्वावधर्म्यौ युधिष्ठिर ।
पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्तव्यौ कथंचन ॥ ९ ॥
ब्राह्मः क्षात्रोऽथ गान्धर्व एते धर्म्या नरर्षभ ।
पृथग्वा यदि वा मिश्राः कर्तव्या नात्र संशयः ॥१०॥
तिस्रो भार्या ब्राह्मणस्य द्वे भार्ये क्षत्रियस्य तु ।
वैश्यः स्वजात्यां विन्देत तास्वपत्यं समं भवेत् ॥ ११ ॥
ब्राह्मणी तु भवेज्ज्येष्ठा क्षत्रिया क्षत्रियस्य तु ।
रत्यर्थमपि शूद्रा स्यान्नेत्याहुरपरे जनाः ॥ १२ ॥

परित्याग करके जिस वरको कन्या चाहती हो और जो वर कन्याको चाहता हो, उसहीको कन्या दान करने को वेद जाननेवाले पुरुष गान्धर्व विवाह कहा करते हैं। (३-६)

हे महाराज! बान्धवोंको लुमाके अथवा बहुतसे धनके सहारे मोल लेके जो विवाह होता है, पंडित लोग उसे आसुर विवाह कहते हैं। हे तात! रोते हुए मनुष्योंको मारके तथा उनका सिर काटके रोती हुई कन्या को गृहसे जबर्दस्तीसे हरके जो विवाह होता है, वह राक्षस विवाह कहा जाता है। राक्षस विवाहके अन्तर्गत पैशाच विवाह है, इन पांच प्रकारके विवाहोंमेंसे तीन धर्मसङ्गत हैं और दो धर्मविरुद्ध हैं, अर्थात् कन्या हरण करके जो विवाह होता है, वह और आसुर विवाह किसी प्रकार भी न करना चाहिये। (७-९)

हे राजन्! ब्राह्म, क्षात्र और गान्धर्व, ये तीन प्रकारके विवाह ही धर्मसंगत हैं, पृथक् अथवा मिश्रित रीतिसे ये तीन प्रकारके विवाह ही करने योग्य हैं, इस विषयमें सन्देह नहीं है। ब्राह्मणोंके लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जातीय तीन भार्या, क्षत्रियोंको क्षत्रिय तथा वैश्य जातीय दो भार्या और वैश्यके लिये स्वजातीय भार्या होवे, इन सब स्त्रियोंसे जो सन्तान उत्पन्न हो, वे सब संमानित होंगे। ब्राह्मणोंकी ब्राह्मणी भार्या और क्षत्रियोंकी क्षत्रिया पत्नी ज्येष्ठा कहाती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और

अपत्यजन्म शूद्रायां न प्रशंसन्ति साधवः ।
शूद्रायां जनयन्विप्रः प्रायश्चित्ती विधीयते ॥ १३ ॥
त्रिंशद्वर्षो दशवर्षां भार्यां विन्देत नग्निकाम् ।
एकविंशतिवर्षो वा सप्तवर्षामवाप्नुयात् ॥ १४ ॥
यस्यास्तु न भवेद्भ्राता पिता वा भरतर्षभ ।
नोपयच्छेत तां जातु पुत्रिकाधर्मिणी हि सा ॥ १५ ॥
त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कन्या ऋतुमती सती ।
चतुर्थे त्वथ संप्राप्ते स्वयं भर्तारमर्जयेत् ॥ १६ ॥
प्रजा न हीयते तस्या रतिश्च भरतर्षभ ।
अतोऽन्यथा वर्तमाना भवेद्वाच्या प्रजापतेः ॥ १७ ॥
असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ।
इत्येतामनुगच्छेत तं धर्मं मनुरब्रवीत् ॥ १८ ॥
युधिष्ठिर उवाच-शुल्कमन्येन दत्तं स्याद्ददानीत्याह चापरः ।
बलादन्यः प्रभाषेत धनमन्यः प्रदर्शयेत ॥ १९ ॥

वैश्योंको रतिके ही लिये शूद्रा भार्या होगी ऐसा कई लोग कहते हैं। रतिके लिये ब्राह्मणकी शूद्रा भार्या न होगी, ऐसा ही दूसरे लोग कहा करते हैं। शूद्रा स्त्रीसे सन्तान उत्पन्न करना साधु पुरुषोंके बीच प्रशंसित नहीं है; यदि ब्राह्मण शूद्रा स्त्रीमें पुत्र उत्पन्न करे, तो वह प्रायश्चित्त करनेके योग्य होता है। (१०—१३)

तीस वर्षका पुरुष अजातकुचोद्भव आदि लक्षणवाली दश वर्षकी कन्या और इक्कीश वर्षकी अवस्थावाला पुरुष सात वर्षकी कन्याको भार्यारूपसे ग्रहण करे। हे भरतश्रेष्ठ! जिस कन्याके भाई अथवा पिता न हो, उसे कदापि न ब्याहे, क्यों कि वह कन्या अपने पिताके पुत्रस्थानीय होसकती है। कन्या ऋतुमती होनेपर तीन वर्षतक उपेक्षा करे, चौथा वर्ष लगनेपर स्वयं स्वामी खोज लेवे। स्वयं पति खोज लेनेसे स्त्री सन्तानरहित वा रतिविहीन नहीं होती। जो नारी इनमें अन्यथा आचरण करती है, वह प्रजापतिके निकट निन्दनीय होती है। जो कन्या माताकी सपिण्ड और पिताकी सगोत्रा न हो, उसे ही ब्याहे, मनुने इसे ही सनातन धर्म कहा है। (१४–१८)

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! कोई शुल्क दान करे, दूसरा मैंने दान किया, ऐसा वचन कहे, कोई जबर्दस्तीसे हरनेको

पाणिग्रहीता चान्यः स्यात्कस्य भार्या पितामह।
तत्त्वं जिज्ञासमानानां चक्षुर्भवतु नो भवान् ॥ २० ॥
भीष्म उवाच– यत्किंचित्कर्म मानुष्यं संस्थानाय प्रदृश्यते।
मन्त्रवन्मन्त्रितं तस्य मृषावादस्तु पातकः ॥ २१ ॥
भार्यापत्यृत्विगाचार्याः शिष्योपाध्याय एव च।
मृषोक्ते दण्डमर्हन्ति नेत्याहुरपरे जनाः ॥ २२ ॥
न ह्यकामेन संवासं मनुरेवं प्रशंसति।
अयशस्यमधर्म्यं च यन्मृषा धर्मकोपनम् ॥ २३ ॥
नैकान्तो दोष एकस्मिंस्तदा केनोपपद्यते।
धर्मतो यां प्रयच्छन्ति यां च क्रीणन्ति भारत ॥ २४॥
बन्धुभिः समनुज्ञाते मन्त्रहोमौ प्रयोजयेत्।
तथा सिध्यन्ति ते मन्त्रा नादत्तायाः कथंचन ॥२५॥
यस्त्वत्र मन्त्रसमयो भार्यापत्योर्मिथः कृतः।

कहे, कोई पुरुष धन दिखावे, और कोई पाणिग्रहीता हो, तब उनमेंसे वह कन्या किसकी भार्या होगी ? हम तत्वजिज्ञासुओंके पक्षमें आप नेत्रस्वरूप हैं। (१९—२०)

भीष्म बोले, मनुष्योंके हित जनक "यह इसकी भार्या है" इत्यादि व्यवस्थाजनित जो कुछ कर्म मन्त्र जाननेवाले पुरुषोंके द्वारा मन्त्रित दीख पडता है, उसे मिथ्या करनेसे पाप हुआ करता है। भार्या, पुत्र, ऋत्विक्, आचार्य शिष्य और उपाध्याय मिथ्या कहनेपर प्रायश्चित्तके भागी होते हैं, दूसरे नहीं, ऐसाही कहा गया है। अकाम मनुष्योंके सङ्ग सहवास करनेकी मनु प्रशंसा नहीं करते, मिथ्या धर्म प्रकाश करना अयश और अधर्मयुक्त है; एक पुरुषमें एकान्त दोष उत्पन्न नहीं होता। पाणिग्रहण विधिके अनुसार बन्धु जन जो कन्या दान करें उसे हरनेमें दोष नहीं है। (२१-२४)

हे भारत! बन्धुजन कर्मके अनुसार जो कन्या प्रदान करें, अथवा जिसे बेंचें, बान्धवोंको अनुज्ञा होनेपर उसके सम्बन्धमें मन्त्र और होम प्रयोग करे, तब वे सब मन्त्र सिद्ध होते हैं, बान्धवोंके द्वारा अदत्ता कन्याके सम्बन्धमें मन्त्र प्रयोग करनेसे वह किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता। यद्यपि स्वजनोंका किया हुआ सम्प्रदान नियम गुरुतर है, परन्तु पण्डित लोग ऐसा कहा करते हैं कि बन्धुजनोंके सम्प्रदानके अनन्तर

तमेवाहुर्गरीयांसं यश्चासौ ज्ञातिभिः कृतः ॥ २६ ॥
देवदत्तां पतिर्भार्यां वेत्ति धर्मस्य शासनात् ।
स दैवीं मानुषीं वाचमनृतां पर्युदस्यति ॥ २७ ॥
युधिष्ठिर उवाच-कन्यायां प्राप्तशुल्कायां ज्यायांश्चेदावजेद्वरः ।
धर्मकामार्थसम्पन्नो वाच्यमत्रानृतं न वा ॥ २८ ॥
तस्मिन्नुभयतो दोषे कुर्वञ्छ्रेयः समाचरेत् ।
अयं नः सर्वधर्माणां धर्मश्चिन्त्यतमो मतः ॥ २९ ॥
तत्त्वं जिज्ञासमानानां चक्षुर्भवतु नो भवान् ।
तदेतत्सर्वमाचक्ष्व न हि तृप्यामि कथ्यताम् ॥ ३० ॥
भीष्म उवाच-नैव निष्ठाकरं शुल्कं ज्ञात्वाऽऽसीत्तेन नाहृतम् ।
न हि शुल्कपराः सन्तः कन्यां ददति कर्हिचित् ॥ ३१ ॥
अन्यैर्गुणैरुपेतं तु शुल्कं याचन्ति बान्धवाः ।
अलंकृत्वा वहस्वेति यो दद्यादनुकूलतः ॥ ३२ ॥

भार्या पति दोनोंके लिये निर्जन में मन्त्रके द्वारा किया हुआ नियम अत्यन्त गुरुतर है। पति धर्मके शासनवशसे भार्याको प्राक्तनकर्मदत्ता अथवा ईश्वरकी दी हुई जानके ग्रहण करता है; वह दैवी और मानुषी वाणीको मिथ्या समझके परित्याग करता है। (२४-२७)

युधिष्ठिर बोले, यदि कन्याके लिये किसी पुरुषने शुल्क दान किया हो, फिर धर्म, काम, अर्थ और कुलशील आदिसे युक्त दूसरा वर यदि उस कन्याको ग्रहण करे, तो वह निन्दनीय होगा, अथवा वह विवाह असिद्ध होगा? शिष्टातिक्रम और बन्धु सम्मतिपूर्वक विक्रयातिक्रम दोनों ओर दोष उपस्थित होनेपर कर्त्ता किस श्रेष्ठ पक्षको कल्याणकारी समझके अवलम्बन करे? यही हम लोगोंको सब धर्मोंके बीच अत्यन्त विचारणीय है। हम तत्त्व-जिज्ञासा कर रहे हैं आप हमारे नेत्रस्वरूप होइये, इन सब विषयोंको वर्णन करिये, आपका वचन सुनके हम लोगोंकी तृप्तिकी सीमा नहीं होती है। (२८--३०)

भीष्म बोले, शुल्क ग्रहण करनेसेही विवाहकी सिद्धि होती है, कर्त्ता ऐसा जानके कुछ शुल्क ग्रहण नहीं करता और साधु लोग शुल्क ग्रहण करके कदापि कन्या दान नहीं करते, इसलिये यादृच्छिक क्रयविक्रय व्यवहार कन्यापहरण दोषमें कारण नहीं होता। यदि वर अवस्थामें अधिक होता है, तो बान्धवगण शुल्क मांगते हैं। जो अनु-

यच्च तां च ददत्येवं न शुल्कं विक्रयो न सः।
प्रतिगृह्य भवेद्देयमेष धर्मः सनातनः ॥ ३३ ॥
दास्यामि भवते कन्यामिति पूर्वं न भाषितम्।
ये चाहुर्ये च नाहुर्ये ये चावश्यं वदन्त्युत ॥ ३४ ॥
तस्मादाग्रहणात्पाणेर्याचयन्ति परस्परम्।
कन्यावरः पुरा दत्तो मरुद्भिरिति नः श्रुतम् ॥ ३५ ॥
नानिष्टाय प्रदातव्या कन्या इत्यृषिचोदितम्।
तन्मूलं काममूलस्य प्रजनस्येति मे मतिः ॥ ३६ ॥
समीक्ष्य च बहून्दोषान्संवासाद्विद्धि पाणयोः।
यथा निष्ठाकरं शुल्कं न जात्वासीत्तथा शृणु ॥ ३७ ॥
अहं विचित्रवीर्यस्य द्वे कन्ये समुदावहम्।
जित्वा च मागधान्सर्वान्काशीनथ च कोसलान् ॥ ३८ ॥
गृहीतपाणिरेकाऽऽसीत्प्राप्तशुल्का पराऽभवत्।

कूल भावसे दान करता है वह कन्या को आभूषण देके विवाह करनेको कहता है। जो कन्याको इस प्रकार दान करता है, वैसा विवाह शुल्कग्रहणपूर्वक विक्रय नहीं होता। प्रतिग्रह करनेसे ही दान करना पडता है, यही सनातन धर्म है। (३१—३३)

मैं तुम्हें कन्यादान करूंगा, जो पहले ऐसा वचन कहे और जो पुरुष अवश्य दान करनेकी प्रतिज्ञा करता है, वे सब अनुक्त वचनके समान हैं, इसलिये जबतक पाणिग्रहण नहीं होता, तबतक कन्या और वर परस्पर प्रार्थना किया करते हैं। मैंने ऐसा सुना है, कि जबतक कन्या प्रदान नहीं की जाती, तबतक उसके निमित्त सभी प्रार्थना कर सकते हैं, देवताओंने कन्याके सम्बन्धमें ऐसा ही वरदान किया है, अनिष्ट पात्रको कन्या दान न करे, यह ऋषिवाक्य है। (३४—३६)

कन्या ही काम और अपत्यकी मूल है, इसलिये जो पुरुष उत्तम दौहित्रकी इच्छा करता है, वह कल्याणके निमित्त श्रेष्ठ पात्रको कन्या दान करे, मुझे ऐसा ही निश्चय है। चिरपरिचयवशसे क्रयविक्रयके बहुतेरे दोषोंको देखकर मालूम करे, शुल्क जो कभी विवाहसिद्धिके विषयमें कारण नहीं थी, उसे कहता हूं सुनो। (३६-३७)

पहले जब मैं मगध, काशी और कोसल देशीय राजाओंको जीतके विचित्रवीर्यके लिये दो कन्या हरण की

कन्या गृहीता तत्रैव विसर्ज्या इति मे पिता ॥ ३९ ॥
अब्रवीदितरां कन्यामावहेति स कौरवः।
अप्यन्यानन्वपृच्छं शङ्कमानः पितुर्वचः ॥ ४० ॥
अतीव ह्यस्य धर्मेच्छा पितुर्मेऽभ्यधिकाऽभवत्।
ततोऽहमब्रुवं राजन्नाचारेप्सुरिदं वचः।
आचारं तत्त्वतो वेत्तुमिच्छामि च पुनः पुनः ॥ ४१ ॥
ततो मयैवमुक्ते तु वाक्ये धर्मभृतां वरः।
पिता मम महाराज बाल्हीको वाक्यमब्रवीत् ॥४२ ॥
यदि वः शुल्कतो निष्ठा न पाणिग्रहणात्तथा।
लाजान्तरमुपासीत प्राप्तशुल्क इति स्मृतिः ॥ ४३ ॥
न हि धर्मविदः प्राहुः प्रमाणं वाक्यतः स्मृतम्।
येषां वै शुल्कतो निष्ठा न पाणिग्रहणात्तथा ॥ ४४ ॥
प्रसिद्धं भाषितं दाने नैषां प्रत्यायकं पुनः।
ये मन्यन्ते क्रयं शुल्कं न ते धर्मविदो नराः ॥ ४५ ॥
न चैतेभ्यः प्रदातव्या न वोढव्या तथाविधा।

थीं, उनमेंसे एकका पाणिग्रहण हुआ था, दूसरी पराक्रमसे निर्जित होके भी गृहीता नहीं हुई; क्यों कि मेरे तात कुरुवंशीय बाह्लिकने उसे विदा करके दूसरी कन्याके संग विवाह करनेके लिये कहा था। मैंने उनके वचनमें शङ्का करके दूसरे पुरुषोंसे यह विषय पूछा; पितृव्यके समीप धर्म जाननेके लिये मेरी अत्यन्त प्रबल इच्छा हुई थी; हे राजन्! अनन्तर आचार जाननेके लिये अभिलाषी होकर मैंने बार बार कहा, कि मैं यथार्थ रीतिसे आचार जाननेकी इच्छा करता हूं। (३८—४१)

हे महाराज! जब मैंने ऐसा कहा, तब धार्मिक-श्रेष्ठ मेरे पितृव्य बाह्लिक बोले, यदि तुम्हारे मतमें शुल्कसे ही विवाह सिद्ध हो, तो फिर पाणिग्रहणकी क्या आवश्यकता है, जिस कन्याके लिये शुल्क दिया गया है, उसके निमित्त लाजादि वस्तुओंको लानेका क्या प्रयोजन है? धर्म जाननेवाले पुरुष वाग्दानको कन्यादान विषयमें प्रमाण नहीं कहते, जिसका शुल्कदानसे ही विवाह सिद्ध होता हो, उसका पाणिग्रहण वैसा कार्यकारी नहीं है, ऐसा अभिप्राय है, कि दान विषयमें उनके वचन प्रसिद्ध नहीं है और इसमें लोगोंको विश्वास नहीं होता। शुल्कको जो

न ह्येव भार्या क्रेतव्या न विक्रय्या कथंचन ॥ ४६ ॥
ये च क्रीणन्ति दासीं च विक्रीणन्ति तथैव च ।
भवेत्तेषां तथा निष्ठा लुब्धानां पापचेतसाम् ॥ ४७ ॥
अस्मिन्नर्थे सत्यवन्तं पर्यपृच्छन्त वै जनाः ।
कन्यायाः प्राप्तशुल्कायाः शुल्कदः प्रशमं गतः ॥४८ ॥
पाणिग्रहीता वाऽन्यः स्यादत्र नो धर्मसंशयः ।
तन्नश्छिन्धि महाप्राज्ञ त्वं हि वै प्राज्ञसंमतः ॥ ४९ ॥
तत्त्वं जिज्ञासमानानां चक्षुर्भवतु नो भवान् ।
तानेवं ब्रुवतः सर्वान्सत्यवान्वाक्यमब्रवीत् ॥ ५० ॥
यत्रेष्टं तत्र देया स्यान्नात्र कार्या विचारणा ।
कुर्वते जीवतोऽप्येवं मृते नैवास्ति संशयः ॥ ५१ ॥
देवरं प्रविशेत्कन्या तप्येद्वाऽपि तपः पुनः ।
तमेवानुगता भूत्वा पाणिग्राहस्य काम्यया ॥ ५२ ॥

लोग क्रयमूल्य समझते हैं, वे धर्मज्ञ नहीं हैं, वैसे पुरुषोंको कन्यादान करना उचित नहीं है और इस प्रकारकी कन्याको भी ब्याहना अनुचित है। कदाचित् भार्याको क्रय अथवा विक्रय करना उचित नहीं है। (४२-४६)

जो लोग भार्याको दासीकी भांति क्रय विक्रय करते हैं, उन पापबुद्धि मनुष्योंकी उस ही भांति विवाह निष्पत्ति हुआ करती है, परन्तु उसमें भार्यात्व सिद्ध नहीं होता। पहले समयमें लोगोंने यही विषय सत्यवानसे पूछा था, कि जिस किसी कन्याके निमित्त किसी पुरुषने शुल्क प्रदान किया हो, उसके शरीर त्याग होनेपर दूसरा पुरुष पाणिग्रहण किया करता है, इसलिये इस विषयमें हम लोगोंको धर्ममें सन्देह होता है। हे महाप्राज्ञ! आप प्राज्ञसंमत हैं, इसलिये हम लोगोंका यह सन्देह दूर करिये, हम तत्व जिज्ञासा करते हैं आप हम लोगोंके निमित्त नेत्र स्वरूप होइये। (४७-५०)

उन सब लोगोंके ऐसा कहते रहनेपर सत्यवान बोले, जिसे इच्छा हो, उसे ही कन्या दान करे, इस विषयमें विचार करना उचित नहीं है; जीवित शुल्कदाताको भी अनादर करके शिष्ट लोग इस ही प्रकार इच्छानुसार दान किया करते हैं, इसलिये मरे हुएके विषयमें कुछ भी सन्देह नहीं है। शुल्कदाताके मरनेके पश्चात् कन्या देवरको वरण करे, अथवा उस पाणि-

लिखन्त्येव तु केषांचिदपरेषां शनैरपि।
इति ये संवदन्त्यत्र त एतं निश्चयं विदुः ॥ ५३ ॥
तत्पाणिग्रहणात्पूर्वमन्तरं यत्र वर्तते।
सर्वमङ्गलमन्त्रं वै मृषावादस्तु पातकः ॥ ५४ ॥
पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात्सप्तमे पदे।
पाणिग्रहस्य भार्या स्याद्यस्य चाद्भिः प्रदीयते ॥ ५५ ॥
इति देयं वदन्त्यत्र त एनं निश्चयं विदुः।
अनुकूलामनुवंशां भ्रात्रा दत्तामुपाग्निकाम्।
परिक्रम्य यथान्यायं भार्यां विन्देद् द्विजोत्तमः ॥ ५६ ॥ [२४३२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे विवाहधर्मकथने चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

युधिष्ठिर उवाच– कन्यायाः प्राप्तशुल्कायाः पतिश्चेन्नास्ति कश्चन।
तत्र का प्रतिपत्तिः स्यात्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

ग्रहीताकी कामनासे व्रत अवलम्बन करके तपस्याचरण करे। किसी किसी पुरुषके मतमें देवर प्रभृति अनुपभुक्त भ्रातृभार्याको सुरतकार्यमें प्रवृत्त करे, दूसरे लोगोंके मतमें यह प्रवृत्ति मन्थरा अर्थात् यह ऐच्छिकी प्रवृत्ति युक्त नहीं है। (५०—५३)

इस विषयमें जो लोक विवाद करते हैं, वे पूर्वोक्त रीतिसे निश्चय किया करते हैं, इसलिये पाणिग्रहणके पहले अथवा उसके बीच जो सब हरिद्रा-लेपन स्नान प्रभृति मङ्गल कार्य और मन्त्र पाठ आदि जिसमें निष्पन्न होते हैं, वैसा अवकाशकाल जिसमें रहता है, उसमें ही पूर्वोक्त नियम सङ्गत होते हैं और सङ्कल्पपूर्वक प्रदान की हुई कन्याको हरने तथा उसके लिये मिथ्या वचन कहनेसे पाप होता है। सात पद चलनेके अनन्तर पाणिग्रहणके मन्त्रोंकी निष्पत्ति हुआ करती है, जल स्पर्श करके जिसे कन्या दान की जाती है, उस ही पाणिग्रहीताकी भार्या हुआ करती है। वक्ष्यमाण रीतिसे कन्या सम्प्रदान करना योग्य है, पण्डित लोग इसे निश्चय ही जानते हैं, द्विजश्रेष्ठ अनुकूल स्ववंश और अनुरूप भ्रातृदत्ता कन्याको अग्निके निकट न्यायपूर्वक परिक्रमा देकर ग्रहण करे। (५३—५६)

अनुशासनपर्वमें ४४ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ४५ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! यदि कन्याका शुल्कप्रद पति प्रोषित हो,

भीष्म उवाच– याऽपुत्रकस्य ऋद्धस्य प्रतिपाल्या तदा भवेत् ।
अथ चेन्नाहरेच्छुल्कं क्रीता शुल्कप्रदस्य सा ॥ २ ॥
तस्यार्थेऽपत्यमीहेत येन न्यायेन शक्नुयात् ।
न तस्मान्मन्त्रवत्कार्यं कश्चित्कुर्वीत किंचन ॥ ३ ॥
स्वयं वृतेन साऽऽज्ञप्ता पित्रा वै प्रत्यपद्यत ।
तत्तस्यान्ये प्रशंसन्ति धर्मज्ञा नेतरे जनाः ॥ ४ ॥
एतत्तु नापरे चक्रुरपरे जातु साधवः ।
साधूनां पुनराचारो गरीयान्धर्मलक्षणः ॥ ५ ॥
अस्मिन्नेव प्रकरणे सुक्रतुर्वाक्यमब्रवीत् ।
नप्ता विदेहराजस्य जनकस्य महात्मनः ॥ ६ ॥
असदाचरिते मार्गे कथं स्यादनुकीर्तनम् ।
अत्र प्रश्नः संशयो वा सतामेवमुपालभेत् ॥ ७ ॥
असदेव हि धर्मस्य प्रदानं धर्म आसुरः ।

तब उस विषयमें उसे कैसा व्यवहार करना योग्य है, आप मुझसे वही कहिये ।(१)

भीष्म बोले, समृद्धिशाली अपुत्रक पिताकी प्रतिपालनीय कन्याके लिये जो शुल्क गृहीत हुआ था, यदि वह वरपक्षीय पुरुषोंको प्रत्यर्पित किया जाय, तो वह कन्या पिताकी ही प्रतिपाल्य रहेगी और यदि शुल्क प्रत्यर्पण न किया जाय, तो उसे शुल्कदाताकी मोल ली हुई होकर रहना होगा । उस शुल्कदाताके निमित्त जिस प्रकार होसके, सन्तानोत्पत्तिके लिये चेष्टा करे; इसलिये उस शुल्कदाताके अतिरिक्त और कोई भी उस कन्याके सङ्ग मन्त्र उच्चारण करके विवाह न करे । (२–३)

सावित्रीने पिताकी आज्ञानुसार जिसे स्वयं वरण किया था । उसहीके सङ्ग विवाह किया, उसके वैसे कार्यकी कोई प्रशंसा करते हैं, परन्तु धर्मज्ञ मनुष्य उस विषयका अनुमोदन नहीं करते, क्यों कि दूसरे साधु पुरुषोंने ऐसा आचरण नहीं किया है, साधुओंका आचार ही धर्मका गुरुतर लक्षण है । विदेहराज महाराज जनकके नाती सुक्रतुने इस प्रकरणमें ही वक्ष्यमाण वचन कहा है, कि दुष्टोंके आचरित पथमें किस प्रकार अनुवर्त्तन किया जा सकता है ? इस विषयमें साधुओंके निकट प्रश्न अथवा संशय करे । (४–७)

नानुशुश्रुम जात्वेतामिमां पूर्वेषु कर्मसु ॥ ८ ॥
भार्यापत्योर्हि संबन्धः स्त्रीपुंसोः स्वल्प एव तु।
रतिः साधारणो धर्म इति चाह स पार्थिवः ॥ ९ ॥
युधिष्ठिर उवाच- अथ केन प्रमाणेन पुंसामादीयते धनम्।
पुत्रवद्धि पितुस्तस्य कन्या भवितुमर्हति ॥ १० ॥
भीष्म उवाच- यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा।
तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत् ॥ ११ ॥
मातुश्च यौतकं यत्स्यात्कुमारीभाग एव सः।
दौहित्र एव तद्रिक्थमपुत्रस्य पितुर्हरेत् ॥ १२ ॥
ददाति हि स पिण्डान्वै पितुर्मातामहस्य च।
पुत्रदौहित्रयोरेव विशेषो नास्ति धर्मतः ॥ १३ ॥
अन्यत्र जामया सार्धं प्रजानां पुत्र ईहते।

स्त्रियोंके अस्वाधीनता–धर्मको खण्डन करना आसुरधर्म है, पहलेके बूढोंके विवाहकार्यमें स्त्रियोंकी स्वाधीनतापद्धति मैंने कदापि नहीं सुनी है। भार्या और पतिके अदृष्ट सन्धानरूपी धर्म अत्यन्त सूक्ष्म है, वह सर्वाङ्गसुन्दर न होनेपर सिद्ध नहीं होता, इसलिये वैसा सम्बन्ध उपस्थित न होनेपर केवल रतिके निमित्त कदापि दारपरिग्रह करना उचित नहीं है। उस राजाने यह भी कहा था, कि रति साधारण धर्म है। युधिष्ठिर बोले, जब पिताके निकट कन्या भी पुत्रके तुल्य है, तब किस प्रमाणके अनुसार अन्य पुरुष धन ग्रहण करते हैं? (८—१०)

भीष्म बोले जैसी आत्मा है, पुत्र भी वैसा ही है, पुत्री पुत्रके तुल्य है, इसलिये आत्मस्वरूपी पुत्रीके उपस्थित रहते किस प्रकार दूसरा पुरुष धन हरण कर सकता है? पुत्र रहे वा न रहे, माताका जो कुछ यौतक धन रहता है, उसमें कन्याका अधिकार है, उसमें पुत्रोंका अंश नहीं है; अपुत्रक पुरुषके धनको लेनेके लिये दौहित्र ही अधिकारी है, क्यों कि दौहित्र ही अपने पिता और मातामहको पिण्डदान किया करता है, इसलिये धर्मानुसार पुत्र और दौहित्रमें कुछ विशेष नहीं है। पुत्र उत्पन्न होनेके पहले यदि पुत्री उत्पन्न हो, तो वह यदि पुत्रीकरण नियमके अनुसार पुत्रस्थानीय की जावे, तब यदि उसके अनन्तर पुत्र उत्पन्न हो, तो पितृधनको पांच हिस्सेमें बांटके तीन भाग पुत्र ले और दो भाग कन्या

दुहिताऽन्यत्र जातेन पुत्रेणापि विशिष्यते ॥ १४ ॥
दौहित्रकेण धर्मेण नात्र पश्यामि कारणम् ।
विक्रीतासु हि ये पुत्रा भवन्ति पितुरेव ते ॥ १५ ॥
असूयवस्त्वधर्मिष्ठाः परस्वादायिनः शठाः ।
आसुराद्धिसंभूता धर्माद्विषमवृत्तयः ॥ १६ ॥
अत्र गाथा यमोद्गीताः कीर्तयन्ति पुराविदः ।
धर्मज्ञा धर्मशास्त्रेषु निबद्धा धर्मसेतुषु ॥ १७ ॥
यो मनुष्यः स्वकं पुत्रं विक्रीय धनमिच्छति ।
कन्यां वा जीवितार्थाय यः शुल्केन प्रयच्छति ॥ १८ ॥
सप्तावरे महाघोरे निरये कालसाह्वये ।
स्वेदं मूत्रं पुरीषं च तस्मिन्मूढः समश्नुते ॥ १९ ॥
आर्षे गोमिथुनं शुल्कं केचिदाहुर्मृषैव तत् ।
अल्पो वा बहु वा राजन् विक्रयस्तावदेव सः ॥ २० ॥
यद्यप्याचरितः कैश्चिन्नैष धर्मः सनातनः ।
अन्येषामपि दृश्यन्ते लोकतः संप्रवृत्तयः ॥ २१ ॥

ग्रहण करे, दत्तक प्रभृति पुत्रोंसे निज तनुसे उत्पन्न हुई कन्या श्रेष्ठ है, इसलिये पुत्रीकरण धर्ममें कुछ भी कारण नहीं दीख पडता। (११-१५)

औरसके अतिरिक्त कोई पुत्रके वर्त्तमान रहते बेची हुई कन्याके गर्भसे उत्पन्न हुआ पुत्र दायभागी न होगा। कन्याको बेचके जो लोग आसुर विवाह करते हैं, उनके असूयायुक्त अधर्मनिष्ठ और शठ प्रभृति विषम वृत्तिवाले पुत्र उत्पन्न होते हैं। धर्मशास्त्रके जाननेवाले धर्मपाशमें बंधे हुए इतिहासवेत्ता पण्डित लोग आसुर विवाहकी निन्दामें यमकी कही हुई कथा वर्णन किया करते हैं। जो मनुष्य पुत्रको बेचके धन लाभ करते हैं, अथवा जीविकाके लिये शुल्क ग्रहण करके कन्या प्रदान करते हैं, वे मूढ पुरुष कालसूत्र नामक घोर सातवें नरकके परिवर्त्ती निरयमें स्वेद, मूत्र और विष्ठा भोग किया करते हैं। (१५-१९)

हे राजन्! कोई कोई आर्ष विवाहमें गोमिथुन शुल्क कहा करते हैं, वह भी मिथ्या वचन है; क्यों कि चाहे शुल्क थोडा हो वा अधिक हो, लेनेसे ही बेचना सिद्ध होता है; यद्यपि किसी किसी पुरुषोंके द्वारा यह आचरित हुआ है, तौभी यह सनातन धर्म नहीं है। बलपूर्वक कन्या हरनेवाले, राक्षसों

वश्यां कुमारीं बलतो ये तां समुपभुञ्जते।
एते पापस्य कर्तारस्तमस्यन्धे च शेरते ॥ २२ ॥
अन्योऽप्यथ न विक्रेयो मनुष्यः किं पुनः प्रजाः।
अधर्ममूलैर्हि धनैस्तैर्न धर्मोऽथ कश्चन ॥ २३ ॥ [२४५५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे विवाहधर्मे यमगाथा नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

भीष्म उवाच—प्राचेतसस्य वचनं कीर्तयन्ति पुराविदः।
यस्याः किंचिन्नाददते ज्ञातयो न स विक्रयः ॥ १ ॥
अर्हणं तत्कुमारीणामानृशंस्यतमं च तत्।
सर्वं च प्रतिदेयं स्यात्कन्यायै तदशेषतः ॥ २ ॥
पितृभिर्भ्रातृभिश्चापि श्वशुरैरथ देवरैः।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥ ३ ॥
यदि वै स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत्।
अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजनो न प्रवर्धते ॥ ४ ॥
पूज्या लालयितव्याश्च स्त्रियो नित्यं जनाधिप।

की भी लोकमें इस ही भांति प्रवृत्ति दीख पडती है। जबरदस्तीसे वशमें करके जो लोग कुमारी कन्या उपभोग करते हैं, वे पापाचारी मनुष्य अन्धतामस नरकमें शयन किया करते हैं। जब कि अन्य पशुओंका बेचना भी योग्य नहीं है,तब मनुष्य-सन्तानका बेचना कदापि धर्मसङ्गत नहीं हो सकता, कन्याको बेचके अधर्ममूलक धनसे कुछ भी धर्म नहीं होता। (२०-२३)

अनुशासनपर्वमें ४५ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ४६ अध्याय।

भीष्म बोले, पुराण जाननेवाले मनुष्य प्राचेतस दक्षके वचनके अनुसार कहते हैं, कि कन्यादानके समय उसके पक्षवाले जातीय पुरुष यदि कुछ भी धन न लेकर कन्याके लिये आभूषण मांगे, तो कन्याका बेचना नहीं कहा जाता, कन्याके विषयमें नृशंस व्यवहार न करनेसे ही उसका सत्कार होता है, पुत्रीको सभी वस्तु दान करना उचित है। अधिक कल्याणकी इच्छा करनेवाला पिता, भाई, श्वशुर और देवर वृन्द स्त्रियोंका संमान तथा भूषण दान करें। यदि स्त्री पुरुषसे प्रीति नहीं करती, तो उसे प्रमुदित भी नहीं कर सकती, अप्रमोद-निबन्धनसे पुरुषकी प्रजनन शक्ति संकुचित होती है, इसही-

स्त्रियो यत्र च पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ॥ ५ ॥
अपूजिताश्च यत्रैताः सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ।
तदा चैतत्कुलं नास्ति यदा शोचन्ति जामयः ॥ ६ ॥
जामीशप्तानि गेहानि निकृत्तानीव कृत्यया ।
नैव भान्ति न वर्धन्ते श्रिया हीनानि पार्थिव ॥ ७ ॥
स्त्रियः पुंसां परिददे मनुर्जिगमिषुर्दिवम् ।
अबलाः स्वल्पकौपीनाः सुहृदः सत्यजिष्णवः ॥ ८ ॥
ईर्षवो मानकामाश्च चण्डाश्च सुहृदोऽबुधाः ।
स्त्रियस्तु मानमर्हन्ति ता मानयत मानवाः ॥ ९ ॥
स्त्रीप्रत्ययो हि वै धर्मो रतिभोगाश्च केवलाः ।
परिचर्या नमस्कारास्तदायत्ता भवन्तु वः ॥ १० ॥
उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ।
प्रीत्यर्थं लोकयात्रायाः पश्यत स्त्रीनिबन्धनम् ॥ ११ ॥
संमान्यमानाश्चैता हि सर्वकार्याण्यवाप्स्यथ ।
विदेहराजदुहिता चात्र श्लोकमगायत ॥ १२ ॥

से सन्तति नहीं होती। (१-४)

हे जननाथ! स्त्रियें सदा सत्कार और लालन करने योग्य हैं, जिस गृहमें स्त्रियोंका सत्कार होता है, वहांपर देववृन्द अनुरक्त रहते हैं, और जिन गृहोंमें स्त्रियोंका आदर नहीं होता, वहांपर सब कार्य ही विफल होते हैं। जिस समय स्त्रियें शोक प्रकाश करती हैं, उस ही समय वह कुल विनष्ट होता है, हे राजन्! जिस कुलको स्त्रियें अभिशाप देती हैं, वे सब गृह विच्छिन्न होते तथा श्रीहीन होके शोभा नहीं पाते और न उनकी वृद्धि ही होती है। स्वर्गमें जानेकी इच्छा करनेवाले मनुने पुरुषोंको स्त्री दान की है, स्त्रियोंके तन ढांपनेका वस्त्र थोडे ही परिश्रमसे छीना जाता है, इसकी सुहृत् तथा सत्याजिष्णु मनुष्य ईर्षायुक्त होकर कामना करते हैं, उग्र स्वभाववाले मनुष्य सुहृदता नहीं करते और कुछ भी नहीं समझते। (५-९)

हे मनुष्यवृन्द! स्त्रियें संमानभाजन हैं, इसलिये उनका संमान करो। स्त्रीसे ही धर्म और रतिभोग हुआ करता है, तुम्हारी परिचर्या तथा नमस्कार स्त्रियोंके वशमें होवे। देखिये, पुत्र उत्पन्न करने, उत्पन्न हुए पुत्रोंको पालने और लोकयात्राकी प्रीतिके विषयमें स्त्री ही कारण है। इनके सं-

नास्ति यज्ञक्रिया काचिन्न श्राद्धं नोपवासकम्।
धर्मः स्वभर्तृशुश्रूषा तया स्वर्गं जयन्त्युत ॥ १३ ॥
पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
पुत्राश्च स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥ १४ ॥
श्रिय एताः स्त्रियो नाम सत्कार्या भूतिमिच्छता।
पालिता निगृहिता च श्रीः स्त्री भवति भारत ॥ १५ ॥ [२४७०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे विवाहधर्मे स्त्रीप्रशंसा नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

युधिष्ठिर उवाच–सर्वशास्त्रविधानज्ञ राजधर्मविदुत्तम।
अतीव संशयच्छेत्ता भवान्वै प्रथितः क्षितौ ॥ १ ॥
कश्चित्तु संशयो मेऽस्ति तन्मे ब्रूहि पितामह।
जातेऽस्मिन्संशये राजन्नान्यं पृच्छेम कंचन ॥ २ ॥
यथा नरेण कर्तव्यं धर्ममार्गानुवर्तिना।
एतत्सर्वं महाबाहो भवान्व्याख्यातुमर्हति ॥ ३ ॥
चतस्रो विहिता भार्या ब्राह्मणस्य पितामह।

मान करनेसे सब कार्य प्राप्त होंगे, विदेहराजकी दुहिताने इस स्त्री–धर्मके विषयमें श्लोक कहा है, कि स्त्रियोंके लिये कोई यज्ञ, क्रिया, श्राद्ध तथा उपवास नहीं है; स्त्रियोंके लिये निज पतिकी सेवा ही धर्म है, उसहीसे वे स्वर्गको जीतती हैं। (९-१३)

बालकपनमें पिता कन्याकी रक्षा करता है, जवानीमें पति स्त्रीकी रक्षा किया करता है और बुढापेमें पुत्रगण रक्षा करते हैं, इसलिये स्त्रियें कभी स्वाधीनता पानेके योग्य नहीं हैं। स्त्रियें श्रीस्वरूप हैं; ऐश्वर्यकी इच्छा करनेवाले पुरुष उनका संमान करें। हे भारत! स्त्रियें पाली जाने तथा उत्तम रीतिसे रक्षित होनेपर लक्ष्मीस्वरूप होती हैं। (१४—१५)

अनुशासनपर्वमें ४६ अध्याय समाप्त।

अनुशासपर्वमें ४७ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्वशास्त्रविधानके जाननेवाले राजधर्मज्ञ श्रेष्ठ पितामह! आप अत्यन्त संशयच्छेता कहके पृथ्वी-पर विख्यात हैं, मुझे कुछ सन्देह है, उसे आप दूर करिये। हे राजन्! ऐसा संशय उपजनेपर हम लोग दूसरे किससे पूछेंगे? हे महाबाहो! धर्ममार्गमें गमन करनेवाले मनुष्यका जो कुछ कर्त्तव्य हो, आपको वह सब वर्णन करना

ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा च रतिमिच्छतः ॥ ४ ॥
तत्र जातेषु पुत्रेषु सर्वासां कुरुसत्तम ।
आनुपूर्व्येण कस्तेषां पित्र्यं दायादमर्हति ॥ ५ ॥
केन वा किं ततो हार्यं पितृवित्तात्पितामह ।
एतदिच्छामि कथितं विभागस्तेषु यः स्मृतः ॥ ६ ॥
भीष्म उवाच- ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ।
एतेषु विहितो धर्मो ब्राह्मणस्य युधिष्ठिर ॥ ७ ॥
वैषम्यादथ वा लोभात्कामाद्वापि परन्तप ।
ब्राह्मणस्य भवेच्छूद्रा नतु दृष्टान्ततः स्मृता ॥ ८ ॥
शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् ।
प्रायश्चित्तीयते चापि विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ९ ॥
तत्र जातेष्वपत्येषु द्विगुणं स्याद्युधिष्ठिर ।
आपद्यमानमृक्थं तु संप्रवक्ष्यामि भारत ॥ १० ॥
लक्षण्यं गोवृषो यानं यत्प्रधानतमं भवेत् ।
ब्राह्मण्यास्तद्धरेत्पुत्र एकांशं वै पितुर्धनात् ॥ ११ ॥

उचित है। हे पितामह! रतिकी कामनावाले ब्राह्मणके निमित्त ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा, ये चार प्रकारकी भार्या विहित हुई हैं। (१-४)

हे कुरुनन्दन! उन सबसे ही पुत्र उत्पन्न होनेसे उनमेंसे आनुपूर्विक क्रमसे कौन पैतृक अंश पानेके योग्य होगा? हे पितामह! उनके बीच कौन पुत्र कितने परिमाणसे उस पिताका धन लेगा? शास्त्रके अनुसार उन लोगोंका जैसा हिस्सा है, उसे आप वर्णन करिये, मैं यही सुननेकी अभिलाष करता हूं। (५—६)

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, ये तीनों वर्ण द्विजाति हैं, इन सबके लिये ब्राह्मणोंका धर्म विहित हुआ है। हे शत्रुतापन! वैषम्य अथवा लोभ तथा कामवशसे ब्राह्मणकी शूद्रा पत्नी होती है, शास्त्रके अनुसार वह नहीं होसकती। ब्राह्मण शूद्रा स्त्रीको निज शय्यापर सुलानेसे अधोगति पाता है और विधिदृष्ट कर्मके द्वारा प्रायश्चित्तार्ह हुआ करता है। हे युधिष्ठिर! शूद्रा स्त्रीमें सन्तान उत्पन्न होनेपर ब्राह्मणको द्विगुण प्रायश्चित्त करना पडता है। हे भारत! जो जैसा अंश पावेगा, वह कहता हूं। लक्षणयुक्त गऊ, वृषभ, सवारी तथा दूसरे जो कुछ

शेषं तु दशधा कार्यं ब्राह्मणस्वं युधिष्ठिर।
तत्र तेनैव हर्तव्याश्चत्वारोंऽशाः पितुर्धनात् ॥ १२ ॥
क्षत्रियायास्तु यः पुत्रो ब्राह्मणः सोऽप्यसंशयः।
स तु मातुर्विशेषेण त्रीनंशान्हर्तुमर्हति ॥ १३ ॥
वर्णे तृतीये जातस्तु वैश्यायां ब्राह्मणादपि।
द्विरंशस्तेन हर्तव्यो ब्राह्मणस्वाद्युधिष्ठिर ॥ १४ ॥
शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातो नित्यादेयधनः स्मृतः।
अल्पं चापि प्रदातव्यं शूद्रापुत्राय भारत ॥ १५ ॥
दशधा प्रविभक्तस्य धनस्यैष भवेत्क्रमः।
सवर्णासु तु जातानां समान् भागान्प्रकल्पयेत् ॥१६॥
अब्राह्मणं तु मन्यन्ते शूद्रापुत्रमनैपुणात्।
त्रिषु वर्णेषु जातो हि ब्राह्मणाद्ब्राह्मणो भवेत् ॥ १७ ॥
स्मृताश्च वर्णाश्चत्वारः पञ्चमो नाधिगम्यते।
हरेच्च दशमं भागं शूद्रापुत्रः पितुर्धनात ॥ १८ ॥

अत्यन्त उत्तम वस्तु रहेगी, ब्राह्मणीका पुत्र पितृधनमेंसे उस ही मुख्य हिस्सेको पावेगा। (७-११)

हे युधिष्ठिर! शेषमें जो कुछ ब्राह्मणस्व रहेगा, वह दस हिस्सेमें बटेगा, ब्राह्मणीका पुत्र उस पितृधनमेंसे चार भाग लेगा। क्षत्रिया स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न हुआ पुत्र भी निःसन्देह ब्राह्मण है, वह पुत्र माताकी विशिष्टताके अनुसार तीन हिस्सा पावेगा। हे युधिष्ठिर! तृतीय वर्णवाली वैश्या स्त्रीसे जो पुत्र ब्राह्मणके द्वारा उत्पन्न होता है, वह ब्राह्मणस्वमेंसे दो भाग ग्रहण करेगा। ब्राह्मणके द्वारा जो पुत्र शूद्रा स्त्रीसे उत्पन्न होता है, उसे नित्यादेयधन कहा जाता है अर्थात् उसे सब भांतिसे धन अदेय है। हे भारत! शूद्रा स्त्रीके पुत्रको एक अंश धन देना योग्य है। (१२—१५)

दश हिस्सेमें बटे हुए धनके विभाग क्रमसे इस ही प्रकार देना चाहिये और सवर्णा स्त्रीसे उत्पन्न हुए पुत्रोंमें समान हिस्सा देना योग्य है। विना समन्त्रक संस्कार हुए शूद्रा स्त्रीके गर्भसे ब्राह्मणके द्वारा उत्पन्न हुए पुत्रको अब्राह्मण समझा जाता है। ब्राह्मणी, क्षत्रिया और वैश्याके गर्भसे ब्राह्मणके द्वारा उत्पन्न हुए सन्तान ब्राह्मण हुआ करते हैं। चार वर्ण ही शास्त्र सिद्ध हैं, इनसे भिन्न पांचवां वर्ण नहीं है, शूद्राका पुत्र

तत्तु दत्तं हरेत्पित्रा नादत्तं हर्तुमर्हति ।
अवश्यं हि धनं देयं शूद्रापुत्राय भारत ॥ १९ ॥
आनृशंस्यं परो धर्म इति तस्मै प्रदीयते ।
यत्र तत्र समुत्पन्नं गुणायैवोपपद्यते ॥ २० ॥
यद्यप्येष सपुत्रः स्यादपुत्रो यदि वा भवेत् ।
नाधिकं दशमाद्दद्याच्छूद्रापुत्राय भारत ॥ २१ ॥
त्रैवार्षिकाद्यदा भक्तादधिकं स्याद् द्विजस्य तु ।
यजेत तेन द्रव्येण न वृथा साधयेद्धनम् ॥ २२ ॥
त्रिसहस्रपरो दायः स्त्रियै देयो धनस्य वै ।
भर्त्रा तच्च धनं दत्तं यथार्हं भोक्तुमर्हति ॥ २३ ॥
स्त्रीणां तु पतिदायाद्यमुपभोगफलं स्मृतम् ।
नापहारं स्त्रियः कुर्युः पतिवित्तात्कथंचन ॥ २४ ॥
स्त्रियास्तु यद्भवेद्वित्तं पित्रा दत्तं युधिष्ठिर ।
ब्राह्मण्यास्तद्धरेत्कन्या यथा पुत्रस्तथा हि सा ॥ २५ ॥
सा हि पुत्रसमा राजन्विहिता कुरुनन्दन ।

पितृधनमेंसे दसवां हिस्सा पावेगा शूद्रापुत्रको पिता जो कुछ दे, वह उसे ही लेवे। बिना दी हुई वस्तुको न ले सकेगा। हे भारत! शूद्रापुत्रको अवश्य धन दान करना उचित है, अनृशंसता ही परम धर्म है, इस ही निमित्त उसे देना पडता है। अनृशंसता जिस स्थानमें अनुष्ठित होती है, वहांपर ही गुणकी हेतु हुआ करती है। (१९-२०)

हे भारत! ब्राह्मण चाहे सपुत्र हो अथवा पुत्ररहित ही हो, शूद्रापुत्रको दसवें भागसे अधिक न देवे। ब्राह्मणके समीप त्रैवार्षिक अन्नसे जब अधिक धन इकट्ठा हो, तो उस ही धनसे यज्ञ करना होगा, यज्ञादि प्रयोजनके अतिरिक्त धनको वृथा व्यय करना योग्य नहीं है। अधिक वित्तवाला पुरुष भी स्त्रीको तीन सहस्रसे ज्यादा धन न देवे। पति भार्याको जो धन देता है, पत्नी यदि पतिको उस धनको भोगने न दे, तो वह उसे भोग नहीं कर सकता, स्त्री पतिके धन केवल उपभोग करें, किसी भांति विनष्ट न कर सकेगी। हे युधिष्ठिर! स्त्रियोंके समीप पिताका दिया हुआ जो धन रहे, ब्राह्मणीका होनेपर उसे कन्या लेगी, क्यों कि जैसा पुत्र है, कन्या भी उस ही भांति है। हे कुरुनन्दन भरतश्रेष्ठ महाराज! कन्या पुत्रके

एवमेव समुद्दिष्टो धर्मो वै भरतर्षभ।
एवं धर्ममनुस्मृत्य न वृथा साधयेद्धनम् ॥ २६ ॥

युधिष्ठिर उवाच- शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातो यद्यदेयधनः स्मृतः।
केन प्रतिविशेषेण दशमोऽप्यस्य दीयते ॥ २७ ॥
ब्राह्मण्यां ब्राह्मणाज्जातो ब्राह्मणः स्यान्न संशयः।
क्षत्रियायां तथैव स्याद्वैश्यायामपि चैव हि ॥ २८ ॥
कस्मात्तु विषमं भागं भजेरन्नृपसत्तम।
यदा सर्वे त्रयो वर्णास्त्वयोक्ता ब्राह्मणा इति ॥ २९ ॥

भीष्म उवाच- दारा इत्युच्यते लोके नाम्नैकेन परन्तप।
प्रोक्तेन चैव नाम्नाऽयं विशेषः सुमहान्भवेत् ॥ ३० ॥
तिस्रः कृत्वा पुरो भार्याः पश्चाद्विन्देत ब्राह्मणीम्।
सा ज्येष्ठा सा च पूज्या स्यात्सा च भार्या गरीयसी ॥३१॥
स्नानं प्रसाधनं भर्तुर्दन्तधावनमञ्जनम्।
हव्यं कव्यं च यच्चान्यद्धर्मयुक्तं गृहे भवेत् ॥ ३२ ॥
न तस्यां जातु तिष्ठन्त्यामन्या तत्कर्तुमर्हति।

समान कही गई है और ऐसा ही धर्म पूरी रीतिसे निर्दिष्ट है, इसलिये इस धर्मको स्मरण करके धनको वृथा संपादन न करे। (२१-२६)

युधिष्ठिर बोले, शूद्राके गर्भसे उत्पन्न हुए पुत्रको यदि धन अदेय है, तो किस प्रकारकी विशेषतासे उसे दसवां हिस्सा दिया जाता है। ब्राह्मणी स्त्रीमें ब्राह्मण से उत्पन्न हुआ पुत्र निःसन्देह ब्राह्मण होता है, क्षत्रिया और वैश्याके गर्भसे ब्राह्मणके द्वारा उत्पन्न हुआ सन्तान भी वैसा ही है। हे नृपसत्तम! इससे जब आपने इन तीनों वर्णोंको ब्राह्मण कहा है, तब ये किस लिये न्यून हिस्सा भोग करेंगे? (२७—२९)

भीष्म बोले, हे परन्तप! लोकसमाजके बीच धर्म कामकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंके आदरकी पात्र दारा हैं, इस ही एक मात्र नामसे भार्या नाम कहा जाता है, पहले कहे हुए नामसे यही अत्यन्त महान् विशेषता होती है, कि यदि ब्राह्मण पहले क्षत्रिया आदि तीन भार्याके साथ पाणिग्रहण करके पश्चात् ब्राह्मणीके सङ्ग विवाह करे, तब वह ब्राह्मणी कनिष्ठा होनेपर भी पितृगौरवके कारण जेठी पूजनीय तथा गरीयसी भार्या होती है। पतिके स्नान, प्रसाधन, दन्तधावन, अञ्जन और हव्य-

ब्राह्मणी त्वेव कुर्याद्वा ब्राह्मणस्य युधिष्ठिर ॥ ३३ ॥
अन्नं पानं च माल्यं च वासांस्याभरणानि च ।
ब्राह्मण्यैतानि देयानि भर्तुः सा हि गरीयसी ॥ ३४ ॥
मनुनाभिहितं शास्त्रं यच्चापि कुरुनन्दन ।
तत्राप्येष महाराज दृष्टो धर्मः सनातनः ॥ ३५ ॥
अथ चेदन्यथा कुर्याद्यदि कामाद्युधिष्ठिर ।
यथा ब्राह्मणचाण्डालः पूर्वदृष्टस्तथैव सः ॥ ३६ ॥
ब्राह्मण्याः सदृशः पुत्रः क्षत्रियायाश्च यो भवेत् ।
राजन्विशेषो यस्त्वत्र वर्णयोरुभयोरपि ॥ ३७ ॥
न तु जात्या समा लोके ब्राह्मण्याः क्षत्रिया भवेत् ।
ब्राह्मण्याः प्रथमः पुत्रो भूयान्स्याद्राजसत्तम ॥ ३८ ॥
भूयो भूयोऽपि संहार्यः पितृवित्ताद्युधिष्ठिर ।
यथा न सदृशी जातु ब्राह्मण्याः क्षत्रिया भवेत् ॥ ३९ ॥
क्षत्रियायास्तथा वैश्या न जातु सदृशी भवेत् ।
श्रीश्च राज्यं च कोशश्च क्षत्रियाणां युधिष्ठिर ॥ ४० ॥

कव्य आदि जो कुछ धर्मकार्य गृहमें करना योग्य हो, ब्राह्मणी घरमें उपस्थित रहते, क्षत्रिया प्रभृति दूसरी स्त्रियें उसे कदापि नहीं कर सकतीं। ३०-३२

हे युधिष्ठिर! ब्राह्मणीही ब्राह्मणके उन सब कार्योंको निबाहेगी, ब्राह्मणी ही पतिको अन्न, पान, वस्त्र, आभूषण और माला आदि देगी, क्यों कि वह पतिकी गरीयसी भार्या है। हे कुरुनन्दन महाराज! जो शास्त्र मनुके द्वारा वर्णित हुआ है, उसमें भी यही सनातन धर्म दीख पडता है। हे युधिष्ठिर! यदि कोई इसमें स्वेच्छापूर्वक अन्यथाचरण करे, तो पहले कहे हुए ब्राह्मण-क्षेत्रमें शूद्रसे उत्पन्न हुआ जैसा ब्राह्मण चण्डाल होता है, कर्मवशसे वह भी वैसा ही हो जाता है। (३३-३६)

हे राजन्! क्षत्रियाका पुत्र ब्राह्मणी के पुत्रके समान है, परन्तु दोनोंमें वर्णगत विशेषता रहती है, जगत्के बीच जातिमें क्षत्रिया ब्राह्मणीके समान नहीं होसकती। हे राजसत्तम युधिष्ठिर ब्राह्मणीका पुत्र पहला तथा जेठा होता है और वह पितृधनमेंसे अधिक अंश पानेका अधिकारी है, जैसे क्षत्रिया कभी ब्राह्मणीके समान नहीं होसकती, वैसे ही वैश्याभी कदापि क्षत्रियाके सदृश नहीं है। हे युधिष्ठिर! राज्य, सम्पत्ति,

विहितं दृश्यते राजन्सागरान्तां च मेदिनीम्।
क्षत्रियो हि स्वधर्मेण श्रियं प्राप्नोति भूयसीम् ॥ ४१ ॥
राजा दण्डधरो राजन् रक्षा नान्यत्र क्षत्रियात्।
ब्राह्मणा हि महाभागा देवानामपि देवताः।
तेषु राजन्प्रवर्तेत पूजया विधिपूर्वकम् ॥ ४२ ॥
प्रणीतमृषिभिर्ज्ञात्वा धर्मं शाश्वतमव्ययम्।
लुप्यमानं स्वधर्मेण क्षत्रियो ह्येष रक्षति ॥ ४३ ॥
दस्युभिर्ह्रियमाणं च धनं दारांश्च सर्वशः।
सर्वेषामेव वर्णानां त्राता भवति पार्थिवः ॥ ४४ ॥
भूयान्स्यात्क्षत्रियापुत्रो वैश्यापुत्रान्न संशयः।
भूयस्तेनापि हर्तव्यं पितृवित्ताद्युधिष्ठिर ॥ ४५ ॥
युधिष्ठिर उवाच- उक्तं ते विधिवद्राजन्ब्राह्मणस्य पितामह।
इतरेषां तु वर्णानां कथं वै नियमो भवेत् ॥ ४६ ॥
भीष्म उवाच- क्षत्रियस्यापि भार्ये द्वे विहिते कुरुनन्दन।
तृतीया च भवेच्छूद्रा न तु दृष्टान्ततः स्मृता ॥ ४७ ॥

खजाना और सागरमेखला पृथिवी क्षत्रियोंके ही निमित्त विहित हुई दीख पडती है, क्यों कि क्षत्रिय निज धर्मके सहारे बहुत सी सम्पत्ति प्राप्त करता है। (३७—४१)

हे राजन्! क्षत्रिय ही राजदण्ड धारण करता है, क्षत्रियके अतिरिक्त दूसरा कोई पुरुष रक्षा करनेमें समर्थ नहीं है। महाभाग ब्राह्मणवृन्द देवताओंके भी देवता हैं। हे राजन्! ऋषियोंके प्रणीत शाश्वत अव्यय धर्मकी आलोचना करके विधिपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा करनेमें प्रवृत्त रहे। डाकुओंसे धन लुटे जाने तथा स्त्री हरी जानेपर क्षत्रिय ही सब भांतिसे उसकी रक्षा किया करता है, राजा ही सब वर्णोंका त्राण-कर्त्ता होता है; इसलिये वैश्याके पुत्रसे क्षत्रियाके पुत्रकी श्रेष्ठताके विषयमें सन्देह नहीं है। हे युधिष्ठिर! पूर्वोक्त कारणसे ही क्षत्रियाका पुत्र पितृधन-मेंसे वैश्यापुत्रसे अधिक हिस्सा लेगा। (४२—४५)

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आपने ब्राह्मणके दायविभागके नियम विधि-पूर्वक कहे, दूसरे लोगोंके विषयमें उक्त नियम किस प्रकारका होगा? (४६)

भीष्म बोले, हे कुरुनन्दन! क्षत्रियके निमित्त क्षत्रिया और वैश्या, येही दो

एष एव क्रमो हि स्यात्क्षत्रियाणां युधिष्ठिर ।
अष्टधा तु भवेत्कार्यं क्षत्रियस्य जनाधिप ॥ ४८ ॥
क्षत्रियाया हरेत्पुत्रश्चतुरोंऽशान्पितुर्धनात् ।
युद्धावहारिकं यच्च पितुः स्यात्स हरेत्तु तत् ॥ ४९ ॥
वैश्यापुत्रस्तु भागांस्त्रीन् शूद्रापुत्रस्तथाऽष्टमम् ।
सोऽपि दत्तं हरेत्पित्रा नादत्तं हर्तुमर्हति ॥ ५० ॥
एकैव हि भवेद्भार्या वैश्यस्य कुरुनन्दन ।
द्वितीया तु भवेच्छूद्रा न तु दृष्टान्ततः स्मृता ॥ ५१ ॥
वैश्यस्य वर्तमानस्य वैश्यायां भरतर्षभ ।
शूद्रायां चापि कौन्तेय तयोर्विनियमः स्मृतः ॥ ५२ ॥
पञ्चधा तु भवेत्कार्यं वैश्यस्वं भरतर्षभ ।
तयोरपत्ये वक्ष्यामि विभागं च जनाधिप ॥ ५३ ॥
वैश्यापुत्रेण हर्तव्याश्चत्वारोंऽशाः पितुर्धनात् ।
पञ्चमस्तु स्मृतो भागः शूद्रापुत्राय भारत ॥ ५४ ॥
सोऽपि दत्तं हरेत्पित्रा नादत्तं हर्तुमर्हति ।

भार्या विहित हैं; तीसरी शूद्रा भार्या शास्त्रके अनुसार सम्भव नहीं होती, तब केवल कामभोगके लिये हुआ करती है। हे प्रजानाथ युधिष्ठिर ! क्षत्रियोंके दायविभागका यह नियम है, कि क्षत्रियस्व आठ हिस्सेमें विभक्त करना होगा, क्षत्रियाका पुत्र उस पितृ-धनमेंसे चार हिस्सा ग्रहण करे और पितासे रथ, हाथी, घोडे आदि जो कुछ युद्धकी उपयोगी वस्तु हों, उन्हें भी वही लेगा। वैश्याका पुत्र तीन भाग और शूद्राका पुत्र एक हिस्सा पावेगा, अन्यथा उसे अदत्त धन ग्रहण करनेकी योग्यता नहीं है। हे कुरु-नन्दन ! वैश्य जातिके लिये एक ही भार्या विहित है, दूसरी शूद्रा भार्या शास्त्रके अनुसार नहीं होसकती, किन्तु काम क्रीडाके निमित्त हुआ करती है। हे भरतश्रेष्ठ कुन्तीपुत्र ! वैश्या अथवा शूद्रा पत्नीमें वर्त्तमान वैश्यका समान नियम न होगा। हे प्रजानाथ भरतर्षभ ! वैश्यस्वको पांच हिस्सेमें विभक्त करना होगा। वैश्या और शूद्रा सन्तानके विषयमें जैसा हिस्सा मिलेगा, वह कहता हूं। (४७—५३)

हे भारत ! वैश्यका पुत्र पितृधनमेंसे चार हिस्सा लेगा और शूद्रासन्तानके लिये केवल पांचवां भाग कहा गया

त्रिभिर्वर्णैः सदा जातः शूद्रोऽदेयधनो भवेत् ॥ ५५ ॥
शूद्रस्य स्यात्सवर्णैव भार्या नान्या कथंचन ।
समभागाश्च पुत्राः स्युर्यदि पुत्रशतं भवेत् ॥ ५६ ॥
जातानां समवर्णायाः पुत्राणामविशेषतः ।
सर्वेषामेव वर्णानां समभागो धनात्स्मृतः ॥ ५७ ॥
ज्येष्ठस्य भागो ज्येष्ठः स्यादेकांशो यः प्रधानतः ।
एष दायविधिः पार्थ पूर्वमुक्तः स्वयंभुवा ॥ ५८ ॥
समवर्णासु जातानां विशेषोऽस्त्यपरो नृप ।
विवाहवैशिष्ट्यकृतः पूर्वपूर्वो विशिष्यते ॥ ५९ ॥
हरेज्ज्येष्ठः प्रधानांशमेकं तुल्यासुतेष्वपि ।
मध्यमो मध्यमं चैव कनीयांस्तु कनीयसम् ॥ ६० ॥
एवं जातिषु सर्वासु सवर्णः श्रेष्ठतां गतः ।
महर्षिरपि चैतद्वै मारीचः काश्यपोऽब्रवीत ॥ ६१ ॥ [२५३१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे रिक्थविभागो नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

है। शूद्रापुत्र पिताका दिया हुआ धन ले और यदि पिता उसे न दे तो वह उसे हरण न कर सकेगा, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णोंके द्वारा उत्पन्न हुआ शूद्रापुत्र पितृधनका अधिकारी नहीं होता, तब पिता इच्छा करनेसे उसे केवल एक हिस्सा दे सकता है। शूद्रके लिये केवल सवर्ण भार्या हुआ करती है, किसी भांति दूसरी भार्या नहीं होती। उसके यदि सौ पुत्र भी हों, तथापि वे समान हिस्सा पावेंगे। (५४—५६)

समान वर्णवाली भार्याके गर्भसे उत्पन्न हुए सब पुत्र ही पितृधनके सममागी होंगे, किन्तु जेठे पुत्रकी प्रधानताके हेतु उसके लिये एक भाग पृथक् देना होगा, हे पार्थ! पहले स्वयम्भुके द्वारा यह विधि वर्णित हुई है। हे राजन्! सवर्णा भार्यासे उत्पन्न हुए पुत्रोंमें अन्य कुछ भी विशेष नहीं है, केवल विवाहकी विशिष्टतानिबन्धनसे पहले पहलेके पुत्रही श्रेष्ठ होते हैं, सवर्णा भार्यासे उत्पन्न हुए पुत्रोंके समान होने पर भी जेठा पुत्र प्रधान हिस्सा लेगा, मझला मध्यम अंश और छोटा पुत्र न्यून हिस्सा पावेगा। इस ही प्रकार सब जातिमें ही सवर्णज सन्तानोंको श्रेष्ठता प्राप्त हुई है, महर्षि

युधिष्ठिर उवाच– अर्थाल्लोभाद्वा कामाद्वा वर्णानां चाप्यनिश्चयात् ।
अज्ञानाद्वापि वर्णानां जायते वर्णसंकरः ॥ १ ॥
तेषामेतेन विधिना जातानां वर्णसंकरे ।
को धर्मः कानि कर्माणि तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २ ॥
भीष्म उवाच– चातुर्वर्ण्यस्य कर्माणि चातुर्वर्ण्यं च केवलम् ।
असृजत्स हि यज्ञार्थे पूर्वमेव प्रजापतिः ॥ ३ ॥
भार्याश्चतस्रो विप्रस्य द्वयोरात्मा प्रजायते ।
आनुपूर्व्याद् द्वयोर्हीनौ मातृजात्यौ प्रसूयतः ॥ ४ ॥
परं शवाद्ब्राह्मणस्यैव पुत्रः शूद्रापुत्रं पारशवं तमाहुः ।
शुश्रूषकः स्वस्य कुलस्य स स्यात्स्वचारित्रं नित्यमथो न जह्यात् ॥५॥
सर्वानुपायानथ संप्रधार्य समुद्धरेत् स्वस्य कुलस्य तन्त्रम् ।

मरीचिके पुत्र कश्यपने ऐसा ही कहा है । (५७-६१)

अनुशासनपर्वमें ४७ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें ४८ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! लोभ अथवा कामवशसे तथा सब वर्णोंके निश्चय न होनेपर अर्थात् प्रसिद्ध है कि उत्तम वर्णवाली स्त्री नीचगामिनी होती है, इस ही कारण गूढोत्पत्ति सम्भव निबन्धनसे वर्णका निश्चय नहीं होता, तब वर्णको न जाननेसे वर्णसंकरकी उत्पत्ति होती है । ऐसी ही विधिके अनुसार सङ्करवर्णमें उत्पन्न हुए पुरुषोंके लिये कौनसे धर्म और कर्म हैं ? वह विषय आप मेरे समीप वर्णन करिये । (१-२)

भीष्म बोले, पहले समयमें प्रजापतिने यज्ञके निमित्त चारों वर्णोंके कर्म और केवल चारों वर्णोंको उत्पन्न किया था, तिसके बीच शूद्रके लिये साक्षात् सम्बन्धमें यज्ञकार्य नहीं है, सेवासे ही उसे सिद्धि प्राप्त हुआ करती है । ब्राह्मणोंके लिये चार भार्या हैं, उनमेंसे ब्राह्मणी पत्नीसे जो पुत्र उत्पन्न होते हैं, वे ब्राह्मण हैं और क्षत्रिया भार्यासे जो पुत्र होते हैं, वे उनसे किञ्चित् हीन हैं; क्रमसे मातृजातीय वैश्याके पुत्र पहले कहे हुए दोनों पत्नियोंके पुत्रोंसे हीन कहे गये हैं । (३--४)

ब्राह्मणके द्वारा शूद्राके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह शव अर्थात् शवस्थान श्मशान तुल्य शूद्रसे परे अर्थात् श्रेष्ठ है, इस ही निमित्त पण्डित लोग शूद्रापुत्रको पारशव कहा करते हैं। वह पुत्र अपने कुलका सेवक होवे और सदा अपने चारित्रको परित्याग न करे।

ज्येष्ठो यवीयानपि यो द्विजस्य शुश्रूषया दानपरायणः स्यात् ॥ ६ ॥
तिस्रः क्षत्रियसंबन्धाद् द्वयोरात्माऽस्य जायते ।
हीनवर्णास्तृतीयायां शूद्रा उग्रा इति स्मृतिः ॥ ७ ॥
द्वे चापि भार्ये वैश्यस्य द्वयोरात्माऽस्य जायते ।
शूद्रा शूद्रस्य चाप्येका शूद्रमेव प्रजायते ॥ ८ ॥
अतोऽविशिष्टस्त्वधमो गुरुदारप्रधर्षकः ।
बाह्यं वर्णं जनयति चातुर्वर्ण्यविगर्हितम् ॥ ९ ॥
विप्रायां क्षत्रियो बाह्यं सूतं स्तोमक्रियापरम् ।
वैश्यो वैदेहकं चापि मौद्गल्यमपवर्जितम् ॥ १० ॥
शूद्रश्चाण्डालमत्युग्रं वध्यघ्नं बाह्यवासिनम् ।
ब्राह्मण्यां संप्रजायन्त इत्येते कुलपांसनाः ।
एते मतिमतां श्रेष्ठ वर्णसंकरजाः प्रभो ॥ ११ ॥
बन्दी तु जायते वैश्यान्मागधो वाक्यजीवनः ।

वह सब उपायका निश्चय करके अपने कुलकी सामाग्रियोंका पूर्णरीतिसे उद्धार करे, पारशव ब्राह्मणसे अवस्थामें जेठा होनेपर भी ब्राह्मणके निकट कनिष्ठकी भांति व्यवहार करे और सेवाके सहित दानपरायण होवे। क्षत्रियकी तीनों भार्याके बीच क्षत्रिया और वैश्यासे क्षत्रिय पुत्र उत्पन्न होता है और यह स्मरण है, कि शूद्रा पत्नीसे हीनवर्ण उग्रनाम शूद्रजाति उत्पन्न होती है। वैश्यके लिये दो भार्या हैं, दोनों स्त्रियोंसे ही वैश्यपुत्र जन्मता है। शूद्रके लिये केवल शूद्रा भार्या है, उससे शूद्र-जातीय पुत्र उत्पन्न होता है। (५-८)

निज पितासे अविशिष्ट, अधम शूद्र यदि ब्राह्मणीगमन करे, तो चारों वर्णोंसे बहिर्भूत चाण्डाल आदि बाह्यवर्ण उत्पन्न किया करता है। क्षत्रियके द्वारा ब्राह्मणीके गर्भसे चारों वेदोंसे पृथक् राजाओंकी स्तुति करनेवाला सूत जातीय पुत्र उत्पन्न होता है। वैश्य ब्राह्मणीके गर्भसे अन्तःपुरके रक्षण-कार्य करनेवाले संस्काररहित वैदेह जातीय सन्तान उत्पन्न किया करता है। शूद्रके द्वारा ब्राह्मणीके गर्भसे अत्यन्त उग्रस्वभाव वधाई चोर प्रभृतिके सिरको काटना प्रभृति कार्योंको करनेवाला और ग्रामके बाहिरी भागमें निवास करनेवाला चाण्डाल सन्तान उत्पन्न होता है, ये प्रतिलोम जात सब जातियें कुलपांसन हैं। (९-११)

हे मतिमान् विभु ! येही वर्णसङ्कर

शूद्रान्निषादो मत्स्यघ्नः क्षत्रियायां व्यतिक्रमात् ॥१२॥
शूद्रादायोगवश्चापि वैश्यायां ग्राम्यधर्मिणः ।
ब्राह्मणैरप्रतिग्राह्यस्तक्षा स्वधनजीवनः ॥ १३ ॥
एतेऽपि सदृशान् वर्णान् जनयन्ति स्वयोनिषु ।
मातृजात्याः प्रसूयन्ते ह्यवरा हीनयोनिषु ॥ १४ ॥
यथा चतुर्षु वर्णेषु द्वयोरात्मास्य जायते ।
आनन्तर्यात्प्रजायन्ते तथा बाह्याः प्रधानतः ॥ १५ ॥
ते चापि सदृशं वर्णं जनयन्ति स्वयोनिषु ।
परस्परस्य दारेषु जनयन्ति विगर्हितान् ॥ १६ ॥
यथा शूद्रोऽपि ब्राह्मण्यां जन्तुं बाह्यं प्रसूयते ।
एवं बाह्यतराद्बाह्यश्चातुर्वर्ण्यात्प्रजायते ॥ १७ ॥
प्रतिलोमं तु वर्धन्ते बाह्याद्बाह्यतरात्पुनः ।
हीनाद्धीनाः प्रसूयन्ते वर्णाः पञ्चदशैव तु ॥ १८ ॥
अगम्यागमनाच्चैव जायते वर्णसंकरः ।

जाति है। वैश्यके द्वारा क्षत्रिया स्त्रीसे वाक्यजीवी बन्दी मागध जातीय सन्तान जन्मता है। शूद्रके द्वारा क्षत्रियामें व्यतिक्रम होनेपर मत्स्यघाती निषाद सन्तान उत्पन्न होता है, वैश्यासे ग्राम्यधर्मविशिष्ट सन्तान जन्मता है, उसे अयोगव कहा जाता है, वह स्वधनजीवी तथा ब्राह्मणोंके अप्रतिग्राह्य है। अम्बष्ठ, पारशव, उग्र सूत, वैदेहक, चाण्डाल, मागध, निषाद और अयोगव, ये लोग स्वयोनि और अनन्तर योनि अर्थात् व्यवहित नीच योनिमें सदृशवर्ण तथा मातृजातीय सन्तान उत्पन्न करते हैं। चारों वर्णोंके बीच ब्राह्मणी आदि दो भार्यामें सजातीय सन्तान उत्पन्न होती है, स्वजातिके प्रधानताके अनुसार बाह्य वर्णोंकी उत्पत्ति हुआ करती है, वे भी स्वयोनिसे सदृश वर्णवाले सन्तान उत्पन्न करते हैं और परस्परमें अन्य स्त्रियोंसे निन्दनीय सन्तानोंका जन्म हुआ करता है। (११—१६)

जैसे शूद्रके द्वारा ब्राह्मणीके गर्भसे अत्यन्त नीचवर्ण चाण्डाल उत्पन्न होता है, वैसे ही चारों वर्णोंसे पृथक् हीन वर्णोंसे अत्यन्त नीच वर्णों की उत्पत्ति हुआ करती है। हीन वर्णोंसे प्रतिलोमजात वर्णोंकी वृद्धि होती है। नीच वर्णसे दास आदि पन्द्रह निकृष्ट वर्ण उत्पन्न हुआ करते हैं। अगम्या-

बाह्यानामनुजायन्ते सैरन्ध्र्यां मागधेषु च ।
प्रसाधनोपचारज्ञमदासं दासजीवनम् ॥ १९ ॥
अतश्चायोगवं सूते वागुराबन्धजीवनम् ।
मैरेयकं च वैदेहः संप्रसूतेऽथ माधुकम् ॥ २० ॥
निषादो मद्गुरं सूते दासं नावोपजीविनम् ।
मृतपं चापि चाण्डालः श्वपाकमिति विश्रुतम् ॥ २१ ॥
चतुरो मागधी सूते क्रूरान्मायोपजीविनः ।
मांसं स्वादुकरं क्षौद्रं सौगन्धमिति विश्रुतम् ॥ २२ ॥
वैदेहकाच्च पापिष्ठा क्रूरं मायोपजीविनम् ।
निषादान्मद्रनाभं च खरयानप्रयायिनम् ॥ २३ ॥
चाण्डालात्पुल्कसं चापि खराश्वगजभोजिनम् ।
मृतचैलप्रतिच्छन्नं भिन्नभाजनभोजिनम् ॥ २४ ॥
आयोगवीषु जायन्ते हीनवर्णास्तु ते त्रयः ।

गमन निबन्धनसे वर्णसङ्करोंकी उत्पत्ति होती है । चारों वर्णोंसे पृथक् सब वर्णोंके बीच सैरन्ध्री और मागध जातिसे राजाओंसे प्रसाधन कार्यज्ञ तथा दिव्य अङ्गराग घर्षण और स्तुति आदिसे सन्तुष्ट करनेवाला अदास वा दास-जीवन जाति उत्पन्न होती है । मागध-विशेषसे सैरन्ध्रयोनिमें वागुराबन्धजीवी अयोगव जातिकी उत्पत्ति होती है। मागधीमें वैदेहके द्वारा मद्यकर मैरेयक नामकी सन्तान उत्पन्न हुआ करती है। (१७—२०)

निषाद जातिसे मद्गुर अर्थात् मद्गुनाम मत्स्योपजीवी नौकोपजीवी दास सन्तान उत्पन्न होती है और चाण्डाल श्वपाक नामसे विख्यात मृतप अर्थात् श्मशानाधिकारी सन्तान उत्पन्न किया करता है। मागधीसे वागुरोपजीवी चार प्रकारके क्रूर पुत्र उत्पन्न होते हैं, उनका कार्य मांस बेचना है। और मांस संस्कारवशसे उनका मांस तथा स्वादुकर नाम हुआ है। अन्य दो क्षौद्र और सौगन्ध नामसे वर्णित हुए हैं, इसलिये मागध जातिके निमित्त चार प्रकारकी वृत्ति निर्दिष्ट हुई है। (२१—२२)

अयोगवीसे पापी वैदेहके द्वारा मायोपजीवी, क्रूर निषादके द्वारा गधेके सवारी पर चलनेवाले मद्रनाभ और चांडालके द्वारा गऊ घोडे तथा हाथियोंके मांस खानेवाली पुल्कश जाति उत्पन्न होती है, यह जाति मृतकका वस्त्र पहिरती

क्षुद्रो वैदेहकादन्ध्रो बहिर्ग्रामप्रतिश्रयः　　॥ २५ ॥
कारावरो निषाद्यां तु चर्मकारः प्रसूयते ।
चाण्डालात्पाण्डुसौपाकस्त्वक्सारव्यवहारवान् ॥२६॥
आहिण्डको निषादेन वैदेह्यां संप्रसूयते ।
चण्डालेन तु सौपाकश्चण्डालसमवृत्तिमान्　॥ २७ ॥
निषादी चापि चाण्डालात्पुत्रमन्तेवसायिनम् ।
श्मशानगोचरं सूते बाह्यैरपि बहिष्कृतम्　॥ २८ ॥
इत्येते संकरे जाताः पितृमातृव्यतिक्रमात् ।
प्रच्छन्ना वा प्रकाशा वा वेदितव्याः स्वकर्मभिः ।
चतुर्णामेव वर्णानां धर्मो नान्यस्य विद्यते　॥ २९ ॥
वर्णानां धर्महीनेषु संख्या नास्तीह कस्यचित् ॥ ३० ॥

और भिन्न पात्रमें भोजन किया करती है, अयोगवीसे तीन नीच वर्ण उत्पन्न होते हैं । निषादीसे वैदेहके द्वारा क्षुद्र, अन्ध्र और जङ्गली पशुओंके मांससे जीविका निबाहनेवाले कौमार नामक चर्मकार, ये तीन प्रकारके पुत्र उत्पन्न होते हैं, ये लोग ग्रामसे बाहिरी हिस्सेमें निवास किया करते हैं । निषादीके गर्भसे चर्मकारके द्वारा कारावर और चाण्डालसे वेणुव्यवहारोपजीवी पाण्डु-सौपाकजाति उत्पन्न होती है। (२३-२६)

वैदेहीके गर्भसे निषादके द्वारा आहिण्डक नाम पुत्र उत्पन्न होता है । चाण्डालके द्वारा सौपाकीमें चाण्डाल-सदृश व्यवहारयुक्त पुत्र उत्पन्न हुआ करता है, निषादीके गर्भसे चाण्डालके द्वारा बाह्यवर्णोंसे पृथक् श्मशानवासी अन्तेवसायी सन्तान उत्पन्न होती है । माता पिताके रद-बदलसे येही सब सङ्कर जाति उत्पन्न होती हैं । ये चाहे छिपी रहें अथवा प्रकाश भावसे ही रहें, इन्हें इनके स्वकर्मके सहारे जाना जाता है । शास्त्रमें ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके धर्म कहे गये हैं, अन्य धर्म हीनजाति भेदके बीच किसीके धर्मका नियम अथवा विधि नहीं है । (२७—२९)

ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंसे छः अनुलोमजात और छः विलोमजात हुए हैं । इन बारह प्रकारके संकीर्ण वर्णोंसे छाछठ अनुलोम और छाछठ प्रतिलोम हुए हैं; इसके अतिरिक्त एक सौ बत्तीस वर्णसङ्कर जाति हुई हैं, फिर उनके अनुलोम और प्रतिलोमकी गिनती करनेसे अनन्त भेद होजाते हैं, इसलिये इनमें ही प्रागुक्त पन्दरह भेदके बीच अन्तर्भाव हुआ करता है, इस ही लिये

यदृच्छयोपसंपन्नैर्यज्ञसाधुबहिष्कृतैः ।
बाह्या बाह्यैश्च जायन्ते यथावृत्ति यथाश्रयम् ॥ ३१ ॥
चतुष्पथश्मशानानि शैलांश्चान्यान्वनस्पतीन् ।
कार्ष्णायसमलंकारं परिगृह्य च नित्यशः ॥ ३२ ॥
वसेयुरेते विज्ञाता वर्तयन्तः स्वकर्मभिः ।
युञ्जन्तो वाप्यलंकारांस्तथोपकरणानि च ॥ ३३ ॥
गोब्राह्मणाय साहाय्यं कुर्वाणा वै न संशयः ।
आनृशंस्यमनुक्रोशः सत्यवाक्यं तथा क्षमा ॥ ३४ ॥
स्वशरीरैरपि त्राणं बाह्यानां सिद्धिकारणम् ।
भवन्ति मनुजव्याघ्र तत्र मे नास्ति संशयः ॥ ३५ ॥
यथोपदेशं परिकीर्तितासु नरः प्रजायेत विचार्य बुद्धिमान् ।
निहीनयोनिर्हि सुतोऽवसादयेत्तितीर्षमाणं हि यथोपलो जले ॥ ३६ ॥
अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः ।
नयन्ति ह्युत्पथं नार्यः कामक्रोधवशानुगम् ॥ ३७ ॥
स्वभावश्चैव नारीणां नराणामिह दूषणम् ।

सबकी संख्या नहीं कही गई। यदृच्छाक्रम अर्थात् जातिका नियम न रहनेपर मिथुनीभावसे प्राप्त यज्ञ तथा साधुओंसे पृथक् बाह्य सब वर्णसङ्कर जातियें स्वेच्छानुरूप कर्मके अनुसार जीविका और जाति विशेषको प्राप्त हुआ करती हैं। (३०—३१)

ये चतुष्पथ, श्मशान, पर्वत और वृक्षोंके निकट सदा लोहमयी काले आभूषणोंको पहरकर निज कर्मोंसे जीविका निर्वाह करती हुई सबकी जानकारीमें वास करें, आभूषण और गृहके योग्य सब सामग्री तैयार करती रहें; वे सब गऊ और ब्राह्मणोंकी निःसन्देह सहायता करेंगी। अनृशंसता, दया, सत्यवचन, क्षमा और निज शरीरसे विपदमें पडे हुए लोगोंको उबारना बाह्य वर्णोंकी सिद्धिका कारण है। हे पुरुषश्रेष्ठ! इस विषयमें मुझे सन्देह नहीं है। (३२—३५)

बुद्धिमान् मनुष्य उपदेशके अनुसार कही हुई हीनजातिको विचारके पुत्र उत्पन्न करे, क्यों कि जैसे जलमें तैरनेकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको भंवर अवसन्न करती है, वैसे ही अत्यन्त हीनयोनिमें उत्पन्न हुआ पुत्र वंशको नष्ट किया करता है। इस लोकमें स्त्रियें विद्वान अथवा अविद्वान पुरुषोंको काम-

अत्यर्थं न प्रसज्जन्ते प्रमदासु विपश्चितः ॥ ३८ ॥
युधिष्ठिर उवाच—वर्णापेतमविज्ञाय नरं कलुषयोनिजम् ।
आर्यरूपमिवानार्यं कथं विद्यामहे वयम् ॥ ३९ ॥
भीष्म उवाच—योनिसङ्कलुषे जातं नानाभावसमान्वितम् ।
कर्मभिः सज्जनाचीर्णैर्विज्ञेया योनिशुद्धता ॥ ४० ॥
अनार्यत्वमनाचारः क्रूरत्वं निष्क्रियात्मता ।
पुरुषं व्यञ्जयन्तीह लोके कलुषयोनिजम् ॥ ४१ ॥
पित्र्यं वा भजते शीलं मातृजं वा तथोभयम् ।
न कथंचन संकीर्णः प्रकृतिं स्वां नियच्छति ॥ ४२ ॥
यथैव सदृशो रूपे मातापित्रोर्हि जायते ।
व्याघ्रश्चित्रैस्तथा योनिं पुरुषः स्वां नियच्छति ॥ ४३ ॥
कुले स्रोतसि संच्छन्ने यस्य स्याद्योनिसङ्करः ।
संश्रयत्येव तच्छीलं नरोऽल्पमथवा बहु ॥ ४४ ॥
आर्यरूपसमाचारं चरन्तं कृतके पथि ।

क्रोधके वशमें करके अति ही कुपथमें ले जाती हैं। स्त्रियोंका स्वभाव ही दोषकी खान है, इसलिये विपश्चित् पुरुष स्त्रियों में अधिक आसक्त नहीं होते। (३६-३८)

युधिष्ठिर बोले, पापयोनिमें उत्पन्न हुए पुरुषको विशेष रीतिसे जानके श्रेष्ठ गृहमें जन्मनेसे आर्यरूपी तथा उत्पत्तिवशसे अनार्य पुरुषको हम किस प्रकार जाननेमें समर्थ होंगे। (३९)

भीष्म बोले, अनार्योंके पृथक् पृथक् भाव तथा चेष्टायुक्त मनुष्योंको सङ्करयोनिज जानना चाहिये और सज्जनोंके आचरित कर्मके सहारे योनि-शुद्धता जाने। इस लोकमें अनार्यता, अनाचार, क्रूरता और निष्क्रियात्मता दूषित योनिमें उत्पन्न हुए पुरुषको प्रकाशित कर देती है। नीचजाति पितृस्वभाव अथवा माताके चरित्र तथा पिता माता दोनोंके ही स्वभावको प्राप्त होता है, वह कदापि निज प्रकृतिको गुप्त नहीं रख सकता। जैसे तिर्यग्योनिमें उत्पन्न हुए व्याघ्र आदि विचित्र वर्णके सहित माता पिताके रूपसदृश होके जन्मते हैं, वैसे ही पुरुष निज योनिको प्राप्त होता है। (४०—४३)

वंशस्रोतके डगमगानेपर जिसकी योनिसङ्कर होती है, वह मनुष्य जिस पुरुषके औरससे उत्पन्न होता है, उसके थोडे अथवा अधिक चरित्र अवश्य ही

सुवर्णमन्यवर्णं वा स्वशीलं शास्ति निश्चये ॥ ४५ ॥
नानावृत्तेषु भूतेषु नानाकर्मरतेषु च।
जन्म वृत्तसमं लोके सुश्लिष्टं न विरज्यते ॥ ४६ ॥
शरीरमिह सत्त्वेन न तस्य परिकृष्यते।
ज्येष्ठमध्यावरं सत्त्वं तुल्यसत्त्वं प्रमोदते ॥ ४७ ॥
ज्यायांसमपि शीलेन विहीनं नैव पूजयेत्।
अपि शूद्रं च धर्मज्ञं सद्वृत्तमभिपूजयेत् ॥ ४८ ॥
आत्मानमाख्याति हि कर्मभिर्नरः सुशीलचारित्रकुलैः शुभाशुभैः।
प्रनष्टमप्याशु कुलं तथा नरः पुनः प्रकाशं कुरुते स्वकर्मतः ॥ ४९ ॥
योनिष्वेतासु सर्वासु सङ्कीर्णास्वितरासु च।
यत्रात्मानं न जनयेद् बुधस्तां परिवर्जयेत् ॥ ५० ॥ [२५८१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे विवाहधर्मे वर्णसंकरकथने अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

उसमें दीख पडते हैं। आर्यरूपसे कृत्रिम पथमें विचरनेवाले पुरुषके उत्तम वा निकृष्ट वर्णके निश्चय विषयमें उसके स्वभाव ही उसे प्रकाश करते हैं। जैसे सुवर्ण कठिन होनेपर भी कार्यके समय कोमल होता है और दुर्वर्ण अर्थात् रूपा जैसे सदा कोमल रहके भी कार्यके समय कठोर हो जाता है, सुजात और कुजात पुरुषोंके चरित्र भी वैसे ही हैं। विविध कर्मोंमें रत, अनेक प्रकारके जीवोंके चरित्र उपचित व्यवहारको परित्याग करके अन्यथा रूपसे निवास करता है। (४४-४६)

सङ्करवर्ण चरित्र शास्त्रीय बुद्धिके सहारे आकृष्ट नहीं होते, बीजगुणकी प्रबलताके कारण कालभेदसे बुद्धिवृत्ति-की प्रधानता होनेपर भी शरीरकी ज्येष्ठता, मध्यता और अवरताके अनुसार जो तुल्य होता है, वही आनन्दित हुआ करता है, अन्य स्वत्व उत्पन्न होते ही शरत्कालके बादलकी भांति लीन होजाते हैं। वर्णज्येष्ठ पुरुष यदि सदाचारसे रहित हो, तो उसका सम्मान करना योग्य नहीं और शूद्र यदि सदाचारसे युक्त तथा धर्मज्ञ हो, तो उसका सम्मान करना चाहिये। (४७—४८)

मनुष्य शुभाशुभ कर्म, सुशीलता, सच्चरित्र और कुलके द्वारा अपनेको प्रकाशित करता है, कुल नष्ट होनेपर पुरुष निज कर्मके सहारे फिर शीघ्र ही उसका उद्धार किया करता है। इन सब सङ्कीर्ण और इतर योनियोंके बीच

युधिष्ठिर उवाच–ब्रूहि तात कुरुश्रेष्ठ वर्णानां त्वं पृथक् पृथक्।
कीदृश्यां कीदृशाश्चापि पुत्राः कस्य च के च ते॥ १॥
विप्रवादाः सुबहवः श्रूयन्ते पुत्रकारिताः।
अत्र नो मुह्यतां राजन्संशयं छेत्तुमर्हसि ॥ २॥
भीष्म उवाच–आत्मा पुत्रश्च विज्ञेयस्तस्यानन्तरजश्च यः।
निरुक्तजश्च विज्ञेयः सुतः प्रसृतजस्तथा ॥ ३॥
पतितस्य तु भार्यायां भर्त्रा सुसमवेतया।
तथा दत्तकृतौ पुत्रावध्यूढश्च तथाऽपरः ॥ ४॥
षडपध्वंसजाश्चापि कानीनापसदास्तथा।
इत्येते वै समाख्यातास्तान्विजानीहि भारत ॥ ५॥
युधिष्ठिर उवाच– षडपध्वंसजाः के स्युः के वाप्यपसदास्तथा।

जिससे सन्तान उत्पन्न करना योग्य न हो, पण्डित पुरुष वैसी स्त्रीको परित्याग करें। (४९—५०)

अनुशासनपर्वमें ४८ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ४९ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतकुलश्रेष्ठ! आप सब वर्णोंके पृथक् पृथक् विषय वर्णन करिये। कैसी पत्नीसे कैसे पुत्र होंगे। वे सब पुत्र किसके तथा क्या कहे जांयगे? हे राजन्! पुत्र विषयमें विविध प्रवाद सुना जाता है, इसहीसे इस विषयमें हम मुग्ध होते हैं, इसलिये आप ही हमारे सन्देहको छुडाने योग्य हैं। (१-२)

भीष्म बोले, आत्मा ही पुत्र रूपसे कहा गया है, उसके बीच [illegible]न्तरज (औरस) निज क्षेत्रमें दूसरेका वीर्य डालनेके लिये नियुक्त करनेपर उससे जो पुत्र उत्पन्न होता है, उसे निरुक्तज जानो और अनिरुक्त अर्थात् नियुक्त न होने पर भी कोई यदि चपलताईसे दूसरेके क्षेत्रमें वीर्य डाले, तो उससे जो सन्तान उत्पन्न हो, उसका नाम प्रसृतज है। निज भार्यामें पतित पुरुषके द्वारा उत्पन्न हुआ पुत्र, दत्तक, मोल लिया हुआ और अध्यूढ अर्थात् जिसकी माता गर्भवती होनेपर ब्याही गई थी, वह और नीचे कहे हुए छः प्रकारके अपध्वंसज कानीन अर्थात् विवाहके पहले कन्याके गर्भसे उत्पन्न सन्तान तथा छः प्रकारके अपसद, येही बीस प्रकारकी सन्तान कही जाती हैं। हे भारत! इसलिये उन्हें विशेषरीतिसे मालूम करो। (३–५)

युधिष्ठिर बोले, छः प्रकारके अपध्वंसज कौन हैं और छः प्रकारके अपसद

एतत्सर्वं यथातत्त्वं व्याख्यातुं मे त्वमर्हसि ॥ ६ ॥

भीष्म उवाच— त्रिषु वर्णेषु ये पुत्रा ब्राह्मणस्य युधिष्ठिर ।
वर्णयोश्च द्वयोः स्यातां यौ राजन्यस्य भारत ॥ ७ ॥
एको विड्वर्ण एवाथ तथाऽत्रैवोपलक्षितः ।
षडपध्वंसजास्ते हि तथैवापसदान् शृणु ॥ ८ ॥
चाण्डालो व्रात्यवेद्यौ च ब्राह्मण्यां क्षत्रियासु च ।
वैश्यायां चैव शूद्रस्य लक्ष्यन्तेऽपसदास्त्रयः ॥ ९ ॥
मागधो वामकश्चैव द्वौ वैश्यस्योपलक्षितौ ।
ब्राह्मण्यां क्षत्रियायां च क्षत्रियस्यैक एव तु ॥ १० ॥
ब्राह्मण्यां लक्ष्यते सूत इत्येतेऽपसदाः स्मृताः ।
पुत्रा ह्येते न शक्यन्ते मिथ्या कर्तुं नराधिप ॥ ११ ॥

युधिष्ठिर उवाच- क्षेत्रजं केचिदेवाहुः सुतं केचित्तु शुक्रजम् ।
तुल्यावेतौ सुतौ कस्य तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १२ ॥

भीष्म उवाच- रेतजो वा भवेत्पुत्रस्त्यक्तो वा क्षेत्रजो भवेत् ।

ही किनके होते हैं, वह आपको कहना उचित है, मेरे समीप इस विषयकी यथार्थ रीतिसे व्याख्या करिये। (६)

भीष्म बोले, हे भारत युधिष्ठिर ! ब्राह्मणसे अन्य तीन वर्णोंमें अनुलोम-जात जो तीन प्रकारकी सन्तान होती हैं, क्षत्रियसे अन्य दो वर्णोंमें अनुलोम-जात दो प्रकारकी सन्तान हुआ करती हैं और वैश्यसे दूसरे वर्णसे जो एक प्रकारकी सन्तान जन्मती हैं, इन छहोंको अपध्वंसज जानो; अब अपसद-का विषय सुनो। शूद्रसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न हुई सन्तान चाण्डाल, क्षत्रियामें व्रात्य अर्थात् संस्काररहित और वैश्यामें वैद्य, ये तीन प्रकारके अपसद जाने जाते हैं, फिर वैश्यके द्वारा ब्राह्मणीके गर्भसे मागध तथा क्षत्रियासे वामक ये दो, सन्तान दीख पडती हैं, और क्षत्रि-यके द्वारा ब्राह्मणीके गर्भसे केवल अकेला सूत जातीय सन्तान दीखता है, इसलिये येही छः प्रकारकी सन्तान अपसद नामसे वर्णित हुए हैं। हे नर-नाथ ! इन्हें सन्तान मिथ्या करने अर्थात् ये सन्तान नहीं हैं, ऐसा कोई भी नहीं कह सकता। (७-११)

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! किसी किसी सन्तानको क्षेत्रज और किसी किसीको शुक्रज कहते हैं, ये सन्तानत्व रूपसे तुल्य होनेपर भी किसके कहाते हैं, इसे ही आप मेरे समीप वर्णन

अध्यूढः समयं भित्त्वेत्येतदेव निबोध मे ॥ १३ ॥

युधिष्ठिर उवाच- रेतजं विद्म वै पुत्रं क्षेत्रजस्यागमः कथम् ।
अध्यूढं विद्म वै पुत्रं भित्त्वा तु समयं कथम् ॥ १४ ॥

भीष्म उवाच- आत्मजं पुत्रमुत्पाद्य यस्त्यजेत्कारणान्तरे ।
न तत्र कारणं रेतः स क्षेत्रस्वामिनो भवेत् ॥ १५ ॥
पुत्रकामो हि पुत्रार्थे यां वृणीते विशाम्पते ।
क्षेत्रजं तु प्रमाणं स्यान्न वै तत्रात्मजः सुतः ॥ १६ ॥
अन्यत्र क्षेत्रजः पुत्रो लक्ष्यते भरतर्षभ ।
न ह्यात्मा शक्यते हन्तुं दृष्टान्तोपगतो ह्यसौ ॥ १७ ॥
क्वचिच्च कृतकः पुत्रः संग्रहादेव लक्ष्यते ।
न तत्र रेतः क्षेत्रं वा यत्र लक्ष्येत भारत ॥ १८ ॥

करिये । (१२)

भीष्म बोले, रेतज अर्थात् औरस और बीजके लिये परित्यक्त पत्नीसे जो सन्तान होती है, वह क्षेत्रज है, औरस तथा क्षेत्रज सन्तान तुल्य हैं, और नियम भङ्ग करके गर्भवतीको ब्याहने-पर उससे जो सन्तान होती है, उसे अध्यूढ कहा जाता है, मेरे समीप इस विषयको सुनो । (१३)

युधिष्ठिर बोले, हम औरस सन्तान-को ही सन्तान कहके जानते हैं, परन्तु सन्तानके विषयमें सन्तानत्व किस प्रकार सिद्ध होता है, और समयको भङ्ग करके अध्यूढ किस प्रकार सन्तान हो सकता है ? मैं इसे जाननेकी इच्छा करता हूं । (१४)

भीष्म बोले, जो पुरुष आत्मज स-न्तान उत्पन्न करके लोकापवादवशसे उसे परित्याग करता है, उसमें वीर्य कारण नहीं है, उस पुत्रका क्षेत्रस्वामी अधिकारी होता है । हे नरनाथ ! पुत्रकी इच्छा करनेवाला पुरुष पुत्रके निमित्त जिस गर्भवती कन्याको ग्रहण करता है, उसके गर्भसे जो पुत्र होता है, वह परिणेताका क्षेत्रज कहके माना जाता है, वीर्य डालनेवालेका न कहा जावेगा । हे भरतश्रेष्ठ ! पराये क्षेत्रमें उत्पन्न पुत्र अमुकके सदृश कहलाके उसहीके रूप अनुसार जाना जाता है, अपनेको छिपाया नहीं जा सकता, वह प्रत्यक्ष ही मालूम हुआ करता है, इस-लिये अध्यूढ पुत्र अप्रकाशित नहीं रहता, परिणेताको पुत्रकी इच्छा न हो, तो अध्यूढ पुत्र वीर्य डालनेवालेका ही हुआ करता करता है । हे भारत ! शुक्र और क्षेत्र इन दोनोंमें जब पुत्रत्व

युधिष्ठिर उवाच– कीदृशः कृतकः पुत्रः संग्रहादेव लक्ष्यते ।
शुक्रं क्षेत्रं प्रमाणं वा यत्र लक्ष्यं न भारत ॥ १९ ॥
भीष्म उवाच– मातापितृभ्यां यस्त्यक्तः पथि यस्तं प्रकल्पयेत् ।
न चास्य मातापितरौ ज्ञायेतां स हि कृत्रिमः ॥ २० ॥
अस्वामिकस्य स्वामित्वं यस्मिन्संप्रति लक्ष्यते ।
यो वर्णः पोषयेत्तं च तद्वर्णस्तस्य जायते ॥ २१ ॥
युधिष्ठिर उवाच– कथमस्य प्रयोक्तव्यः संस्कारः कस्य वा कथम् ।
देया कन्या कथं चेति तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २२ ॥
भीष्म उवाच– आत्मवत्तस्य कुर्वीत संस्कारं स्वामिवत्तथा ।
त्यक्तो मातापितृभ्यां यः सवर्णं प्रतिपद्यते ॥ २३ ॥
तद्गोत्रबन्धुजं तस्य कुर्यात्संस्कारमच्युत ।
अथ देया तु कन्या स्यात्तद्वर्णस्य युधिष्ठिर ॥ २४ ॥

त्वका प्रमाण नहीं मालूम होता, तब किसी स्थलमें संग्रहवशसे कृतक पुत्र कहा जाता है। (१५—१८)

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! जब शुक्र और क्षेत्रका परिमाण नहीं मालूम होता, तब संग्रहवशसे कृतक पुत्र जाना जाता है, वह कैसा है? (१९)

भीष्म बोले, माता-पिताके द्वारा जो पुत्र मार्गमें परित्यक्त होता है, उसे ही कृतक पुत्र जानना चाहिये। उसके पितामाता ऐसा न जाने कि वह कृत्रिम हुआ है। जिसका कोई स्वामी न हो, उसका जो मालिक बने, तथा जिस वर्णका मनुष्य उसे प्रतिपालन करे, वह उस ही प्रतिपालकके वर्णको प्राप्त होगा। (२०—२१)

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! जो पुरुष पितामातासे परित्यक्त हुआ हो, उसका किसके द्वारा किस प्रकार संस्कार होगा और वह किसका पुत्र कहावेगा, किस भांतिसे उसे कन्या दान की जावेगी? आप मेरे समीप इस विषयको वर्णन करिये। (२२)

भीष्म बोले, पितामातासे त्यागे जानेपर अस्वामिक पुरुष जब स्वामीके वर्णको प्राप्त होता है, तब स्वामीकी भांति उसका संस्कार करना योग्य है। हे अचञ्चल युधिष्ठिर! जब उसका दूसरा वर्ण निश्चय होवे, तब स्वामी उस ही वर्ण और गोत्रके अनुसार उसका संस्कार करे तथा उसही वर्णके योग्य कन्या प्रदान करे। संस्कारकी सामर्थ्यके अनुसार वर्ण हुआ करता है, भिन्न वर्ण तथा भिन्न गोत्र-

संस्कर्तुं वर्णगोत्रं च मातृवर्णविनिश्चये ।
कानीनाध्यूढजौ वापि विज्ञेयौ पुत्रकिल्बिषौ ॥ २५ ॥
तावपि स्वाविव सुतौ संस्कार्याविति निश्चयः ।
क्षेत्रजो वाप्यपसदो येऽध्यूढास्तेषु चाप्युत ॥ २६ ॥
आत्मवद्वै प्रयुञ्जीरन्संस्कारान्ब्राह्मणादयः ।
धर्मशास्त्रेषु वर्णानां निश्चयोऽयं प्रदृश्यते ॥ २७ ॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ २८ ॥ [२३०९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे विवाहधर्मे पुत्रप्रतिनिधिकथने एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

युधिष्ठिर उवाच– दर्शने कीदृशः स्नेहः संवासे च पितामह ।
महाभाग्यं गवां चैव तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥
भीष्म उवाच– हन्त ते कथयिष्यामि पुरावृत्तं महाद्युते ।
नहुषस्य च संवादं महर्षेश्च्यवनस्य च ॥ २ ॥
पुरा महर्षिश्च्यवनो भार्गवो भरतर्षभ ।
उदवासकृतारम्भो बभूव स महाव्रतः ॥ ३ ॥

होनेपर भी संस्कार कर्त्ताके वर्ण और गोत्रको प्राप्त होता है। संस्कार करनेके निमित्त वर्ण और गोत्रका प्रयोजन हुआ करता है। मातृवर्णका निश्चय होनेपर कानीन और अध्यूढ पुत्रको निकृष्ट जाने। यह निश्चय है, कि अपने पुत्रकी भांति उनका भी संस्कार करना चाहिये। क्षेत्रज, अपसद अथवा जो अध्यूढ पुत्र हों ब्राह्मण आदिको चाहिये अपने समान उनका संस्कार करें। धर्मशास्त्रोंमें सब वर्णोंका ऐसा ही निश्चय दीख पडता है। मैंने यह समस्त विषय तुमसे कहा, अब किस विषयको सुननेकी इच्छा करते हो? (२३-२८)

अनुशासनपर्वमें ४९ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें ५० अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! दूसरेकी पीडा देखके कैसा स्नेह करना चाहिये तथा दूसरोंके सङ्गमें किस भांति अनृशंसताका अनुष्ठान करना योग्य है और गौवोंका कैसा माहात्म्य है, इस विषयको आप मेरे समीप वर्णन करिये। (१)

भीष्म बोले, हे महाद्युति! बहुत अच्छा, मैं तुम्हारे समीप नहुष राजा और च्यवन महर्षिके संवादयुक्त प्राचीन इतिहास कहता हूं। हे भरतश्रेष्ठ! पहले समयमें भृगुवंशमें उत्पन्न हुए महाव्रती च्यवन महर्षिने जलमें

निहत्य मानं क्रोधं च प्रहर्षं शोकमेव च।
वर्षाणि द्वादश मुनिर्जलवासे धृतव्रतः ॥ ४ ॥
आदधत्सर्वभूतेषु विश्रम्भं परमं शुभम्।
जलेचरेषु सर्वेषु शीतरश्मिरिव प्रभुः ॥ ५ ॥
स्थाणुभूतः शुचिर्भूत्वा दैवतेभ्यः प्रणम्य च।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये जलं संप्रविवेश ह ॥ ६ ॥
गङ्गायमुनयोर्वेगं सुभीमं भीमनिःस्वनम्।
प्रतिजग्राह शिरसा वातवेगसमं जवे ॥ ७ ॥
गङ्गा च यमुना चैव सरितश्च सरांसि च।
प्रदक्षिणमृषिं चक्रुर्न चैनं पर्यपीडयन् ॥ ८ ॥
अन्तर्जलेषु सुष्वाप काष्ठभूतो महामुनिः।
ततश्चोर्ध्वस्थितो धीमानभवद्भरतर्षभ ॥ ९ ॥
जलौकसां स सत्त्वानां बभूव प्रियदर्शनः।
उपाजिघ्रन्त च तदा तस्योष्ठं हृष्टमानसाः ॥ १० ॥
तत्र तस्यासतः कालः समतीतोऽभवन्महान्।
ततः कदाचित्समये कस्मिंश्चिन्मत्स्यजीविनः ॥ ११ ॥

वास करना आरम्भ किया, वह अभिमान, क्रोध, हर्ष और शोकको नष्ट करके बारह वर्षतक मौनावलम्बी होकर जलवास व्रतधारी हुए थे। सर्वशक्तिमान चन्द्रमाकी भांति सब जलचर जीवोंके विषयमें परम पवित्र विश्वास स्थापित करते हुए स्थाणुभूत और पवित्र होके देवताओंको प्रणाम करनेके अनन्तर गङ्गा और यमुनाके बीच जलके भीतर प्रवेश किया था। गङ्गा-यमुनाके वायुसदृश वेगवान अत्यन्त भयङ्कर शब्दके सहित वेगको सिरपर धारण किया था। (२-७)

गङ्गायमुना प्रभृति सब नदियें और तालाब ऋषिकी प्रदक्षिणा करते थे, कदापि उन्हें पीडित नहीं करते थे, महा मुनि काष्ठरूपी होके जलके बीच सो रहते थे। हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर वह धीमान मुनि वहां बैठके स्थित रहते थे और वे जलवासी जीवोंके प्रीतिपात्र हुए थे। उस समय सब जलचर प्रसन्न-चित्त होकर उनके ओठको सूंघते थे। उनके उस जलमें निवास करते रहनेपर बहुत समय बीतगया। हे महातेजस्वी! अनन्तर किसी समय में किसी देशके मछुवाहे हाथमें जाल लेकर उस स्थानमें

तं देशं समुपाजग्मुर्जालहस्ता महाद्युते ।
निषादा बहवस्तत्र मत्स्योद्धरणनिश्चयाः ॥ १२ ॥
व्यायता बलिनः शूराः सलिलेष्वनिवर्तिनः ।
अभ्याययुश्च तं देशं निश्चिता जालकर्मणि ॥ १३ ॥
जालं ते योजयामासुर्निःशेषेण जनाधिप ।
मत्स्योदकं समासाद्य तदा भरतसत्तम ॥ १४ ॥
ततस्ते बहुभिर्योगैः कैवर्ता मत्स्यकाङ्क्षिणः ।
गङ्गायमुनयोर्वारि जालैरभ्यकिरंस्ततः ॥ १५ ॥
जालं सुविततं तेषां नवसूत्रकृतं तथा ।
विस्तारायामसंपन्नं यत्तत्र सलिलेऽक्षिपन् ॥ १६ ॥
ततस्ते सुमहच्चैव बलवच्च सुवर्तितम् ।
अवतीर्य ततः सर्वे जालं चकृषिरे तदा ॥ १७ ॥
अभीतरूपाः संहृष्टा अन्योऽन्यवशवर्तिनः ।
बबन्धुस्तत्र मत्स्यांश्च तथाऽन्यान् जलचारिणः ॥१८॥
तथा मत्स्यैः परिवृतं च्यवनं भृगुनन्दनम् ।
आकर्षयन्महाराज जालेनाथ यदृच्छया ॥ १९ ॥
नदीशैवलदिग्धाङ्गं हरिश्मश्रुजटाधरम् ।
लग्नैः शङ्खनखैर्गात्रे क्रोडैश्चित्रैरिवार्पितम् ॥ २० ॥

गये। मच्छलियोंके धरनेका निश्चय करके बलवान, शूर, जलमें भ्रमण करनेमें अपरांमुख, बडे शरीरवाले निषादोंने वहां जाल फैलानेका निश्चय किया। हे भरत-सत्तम प्रजानाथ! वे उस ही स्थानमें मछलियोंसे परिपूरित जल पाके लगातार जाल फैलाने लगे। (८—१४)

अनन्तर उन मछलियोंके अभिलाषी मल्लाहोंने अनेक प्रकारसे उपाय रचके जालके सहारे गङ्गा और यमुनाके जलको रोका, उन लोगोंने उन स्थानमें जो जाल छोडा था, वह अत्यन्त दृढ, नये सूतोंसे बना हुआ, लम्बा और चौडा था। अनन्तर वे लोग जलमें उतरकर महत् और बलवत् जालको खींचने लगे। वे सब निर्भय, प्रसन्न और परस्परमें वशवर्ती होकर मछलियों तथा अन्य जलचरोंको बांधने लगे। हे महाराज! उन लोगोंने यदृच्छाक्रमसे मछलियोंसे घिरे हुए भृगुनन्दन च्यवन मुनिको जालके सहारे आकर्षण किया। १५-१९

उस हरिश्मश्रु जटाधारी, अङ्गमें नदी

तं जालेनोद्धृतं दृष्ट्वा ते तदा वेदपारगम् ।
सर्वे प्राञ्जलयो दाशाः शिरोभिः प्रापतन्भुवि ॥ २१ ॥
परिखेदपरित्रासाज्जालस्याकर्षणेन च ।
मत्स्या बभूवुर्व्यापन्नाः स्थलसंस्पर्शनेन च ॥ २२ ॥
स मुनिस्तत्तदा दृष्ट्वा मत्स्यानां कदनं कृतम् ।
बभूव कृपयाऽऽविष्टो निःश्वसंश्च पुनः पुनः ॥ २३ ॥
निषादा ऊचुः– अज्ञानाद्यत्कृतं पापं प्रसादं तत्र नः कुरु ।
करवाम प्रियं किं ते तन्नो ब्रूहि महामुने ॥ २४ ॥
इत्युक्तो मत्स्यमध्यस्थश्च्यवनो वाक्यमब्रवीत् ।
यो मेऽद्य परमः कामस्तं शृणुध्वं समाहिताः ॥ २५ ॥
प्राणोत्सर्गं विसर्गं वा मत्स्यैर्यास्याम्यहं सह ।
संवासान्नोत्सहे त्यक्तुं सलिलेऽध्युषितानहम् ॥ २६ ॥
इत्युक्तास्ते निषादास्तु सुभृशं भयकम्पिताः ।
सर्वे विवर्णवदना नहुषाय न्यवेदयन् ॥ २७ ॥ [२६३६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे च्यवनोपाख्याने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

के सिवार लिपटे, तथा शङ्ख नाम जलजन्तुओंके नख लिपटे हुए शरीरसे युक्त, वेद जाननेवाले मुनिको जालके द्वारा खिंचे हुए देखके वे सब हाथ जोडकर सिर नीचा करके पृथ्वीपर गिरे। जालके द्वारा खिंचे जानेसे शोक तथा भयसे सब मछलियें स्थल स्पर्श करते ही विपद्ग्रस्त हुईं। मुनि उस समय उन मछलियोंकी महत् पीडा देखकर बार बार लम्बी सांस छोडते हुए अत्यन्त कृपायुक्त हुए। (२०–२३)

निषादोंने कहा, हे महामुनि ! हम लोगोंने विना जाने जो पाप किया है, उस विषयमें आप क्षमा कीजिये। हम लोग आपका कौनसा प्रियकार्य करें, उसके लिये हमें आज्ञा करिये। मछलियोंके बीचमें च्यवन मुनि मल्लाहोंका ऐसा वचन सुनके बोले, इस समय मेरी जो महत् अभिलाषा है, उसे तुम लोग सावधान होकर सुनो। मैं मछलियोंके सहित प्राणत्याग वा इनके सङ्ग अपनेको बेचूंगा, जलके बीच एकत्र सहवासके कारण इन्हें परित्याग न कर सकूंगा, जब मुनिने ऐसा कहा, तब निषादोंने भयसे कांपते तथा दुःखित होके नहुष राजाके निकट जाके समस्त

भीष्म उवाच– नहुषस्तु ततः श्रुत्वा च्यवनं तं तथागतम् ।
त्वरितः प्रययौ तत्र सहामात्यपुरोहितः ॥ १ ॥
शौचं कृत्वा यथान्यायं प्राञ्जलिः प्रयतो नृपः ।
आत्मानमाचचक्षे च च्यवनाय महात्मने ॥ २ ॥
अर्चयामास तं चापि तस्य राज्ञः पुरोहितः ।
सत्यव्रतं महात्मानं देवकल्पं विशाम्पते ॥ ३ ॥
नहुष उवाच– करवाणि प्रियं किं ते तन्मे ब्रूहि द्विजोत्तम ।
सर्वं कर्तास्मि भगवन्यद्यपि स्यात्सुदुष्करम् ॥ ४ ॥
च्यवन उवाच– श्रमेण महता युक्ताः कैवर्ता मत्स्यजीविनः ।
मम मूल्यं प्रयच्छैभ्यो मत्स्यानां विक्रयैः सह ॥ ५ ॥
नहुष उवाच– सहस्रं दीयतां मूल्यं निषादेभ्यः पुरोहित ।
निष्क्रयार्थे भगवतो यथाऽऽह भृगुनन्दनः ॥ ६ ॥
च्यवन उवाच– सहस्रं नाहमर्हामि किं वा त्वं मन्यसे नृप ।
सदृशं दीयतां मूल्यं स्वबुध्या निश्चयं कुरु ॥ ७ ॥

वृत्तान्त कह सुनाया। (२४–२७)

अनुशासनपर्वमें ५० अध्याय समाप्त।

अनुशासपर्वमें ५१ अध्याय।

भीष्म बोले, अनन्तर राजा नहुष च्यवन मुनिको वैसी अवस्थामें सुनके मन्त्री और पुरोहितके सहित शीघ्र ही वहां गये। राजाने यथा रीतिसे शरीर-शुद्धि करके हाथ जोडकर और सिरसे प्रणाम करके च्यवन मुनिके निकट अपना नाम कहा। हे महाराज! राजाका पुरोहित उस सत्यव्रती देव-सदृश महात्माकी पूजा करमेनें प्रवृत्त हुआ। (१—३)

नहुष बोले, हे द्विजश्रेष्ठ! कहिये मैं आपका कौनसा प्रिय कार्य करूं? हे भगवन्! यदि कर्त्तव्य कार्य अत्यन्त दुष्कर भी होगा, तौभी मैं उसे सिद्ध करनेमें समर्थ हूं। (४)

च्यवन बोले, मत्स्यजीवी मल्लाहवृन्द बहुत थक गये हैं, इसलिये इन लोगों-को मछलियोंके मूल्यके सहित मेरा भी मूल्य दो। (५)

नहुष बोले, हे पुरोहित! भगवान् भृगुनन्दनने जिस प्रकार कहा, उन्हें मोल लेनेके लिये निषादोंको एक सहस्र मुद्रा दो। (६)

च्यवन बोले, हे महाराज! मैं सहस्र मुद्रा मूल्यके योग्य नहीं हूं, भला तुम ही क्या विचार करते हो? अपनी बुद्धिके सहारे निश्चय करके मेरा योग्य

नहुष उवाच– सहस्राणां शतं विप्र निषादेभ्यः प्रदीयताम्।
स्यादिदं भगवन्मूल्यं किं वाऽन्यन्मन्यते भवान् ॥८॥
च्यवन उवाच– नाहं शतसहस्रेण निमेयः पार्थिवर्षभ।
दीयतां सदृशं मूल्यममात्यैः सह चिन्तय ॥ ९ ॥
नहुष उवाच– कोटिः प्रदीयतां मूल्यं निषादेभ्यः पुरोहित।
यदेतदपि नो मूल्यमतो भूयः प्रदीयताम् ॥ १० ॥
च्यवन उवाच– राजन्नार्हाम्यहं कोटिं भूयो वाऽपि महाद्युते।
सदृशं दीयतां मूल्यं ब्राह्मणैः सह चिन्तय ॥ ११ ॥
नहुष उवाच– अर्धं राज्यं समग्रं वा निषादेभ्यः प्रदीयताम्।
एतन्मूल्यमहं मन्ये किं वाऽन्यन्मन्यसे द्विज ॥ १२ ॥
च्यवन उवाच– अर्धं राज्यं समग्रं च मूल्यं नार्हामि पार्थिव।
सदृशं दीयतां मूल्यमृषिभिः सह चिन्त्यताम् ॥ १३ ॥
भीष्म उवाच– महर्षेर्वचनं श्रुत्वा नहुषो दुःखकर्शितः।
स चिन्तयामास तदा सहामात्यपुरोहितः ॥ १४ ॥
तत्र त्वन्यो वनचरः कश्चिन्मूलफलाशनः।

मूल्य दो। (७)

नहुष बोले, हे विप्र! निषादोंको एक लाख मुद्रा दो। हे भगवन्! यही मूल्य हुआ न ? अथवा आप क्या समझते हैं ? (८)

च्यवन बोले, हे सत्तम! मैं एक लक्ष मुद्राके मोलमें बिकने योग्य नहीं हूं, मन्त्रियोंके साथ विचार करके मेरा योग्य मूल्य दीजिये। (९)

नहुष बोले, हे पुरोहित! निषादोंको एक करोड मुद्रा दो, यदि यह भी मूल्य न होता हो, इससे भी अधिक मूल्य प्रदान करो। (१०)

च्यवन बोले, हे महातेजस्वी महाराज! करोड अथवा उससे अधिक धनके भी मैं योग्य नहीं हूं, ब्राह्मणोंके सङ्ग विचार करके मेरे सदृश मूल्य दो। (११)

नहुष बोले, निषादोंको अर्द्ध राज्य अथवा समग्र राज्य दे दो, मैं यही मूल्य समझता हूं, हे द्विजवर! आपके विचारमें क्या आता है ? (१२)

च्यवन बोले, हे महाराज! आधा अथवा सारा राज्य मेरे योग्य नहीं है, ऋषियोंके सङ्ग विचार करके मेरे सदृश मूल्य प्रदान करो। (१३)

भीष्म बोले, वह नहुष राजा च्यवन महर्षिका वचन सुनके दुःखित होकर

नहुषस्य समीपस्थो गविजातोऽभवन्मुनिः ॥ १५ ॥
स तमाभाष्य राजानमब्रवीद् द्विजसत्तमः।
तोषयिष्याम्यहं क्षिप्रं यथा तुष्टो भविष्यति ॥ १६ ॥
नाहं मिथ्या वचो ब्रूयां स्वैरेष्वपि कुतोऽन्यथा।
भवतो यदहं ब्रूयां तत्कार्यमविशङ्कया ॥ १७ ॥
नहुष उवाच- ब्रवीतु भगवान्मूल्यं महर्षेः सदृशं भृगोः।
परित्रायस्व मामस्मद्विषयं च कुलं च मे ॥ १८ ॥
हन्याद्धि भगवान् क्रुद्धस्त्रैलोक्यमपि केवलम्।
किं पुनर्मां तपोहीनं बाहुवीर्यपरायणम् ॥ १९ ॥
अगाधाम्भसि मग्नस्य सामात्यस्य सऋत्विजः।
प्लवो भव महर्षे त्वं कुरु मूल्यविनिश्चयम् ॥ २० ॥
भीष्म उवाच-नहुषस्य वचः श्रुत्वा गविजातः प्रतापवान्।
उवाच हर्षयन्सर्वानमात्यान्पार्थिवं च तम् ॥ २१ ॥
अनर्घेया महाराज द्विजा वर्णेषु चोत्तमाः।

उस समय मन्त्री और पुरोहितके सहित चिन्ता करने लगा, उस समय गवीके गर्भसे उत्पन्न फल, मूल भोजन करनेवाले अन्य एक वनवासी मुनि नहुष राजाके निकट आया, उस द्विज-सत्तमने राजा नहुषसे कहा, आप जिस प्रकार तुष्ट होंगे, मैं उसही भावसे शीघ्रही इन्हें प्रसन्न करूंगा। मैं स्वेच्छा-पूर्वक कभी मिथ्या वचन नहीं कहता। दूसरेकी प्रवर्त्तनामें उसे क्यों कहूंगा, शङ्कारहित होके उस विषयको तुम्हें प्रतिपालन करना योग्य है। (१४-१७)

नहुष बोले, हे भगवन्! आप कहिये महर्षि भृगुनन्दनके सदृश कितना मूल्य होगा? मुझे और मेरे राज्य तथा वंशका परित्राण करिये। भगवान भार्गव क्रुद्ध होनेपर तीनों लोकोंको नष्टकर सकते हैं, मैं केवल बाहुबलसे युक्त तपस्यासे रहित हूं, इसलिये मुझे जो विनष्ट करेंगे, उसमें कौनसी विचित्रता है? हे विप्रर्षि! मैं मन्त्री और पुरोहितके सहित अगाध जलमें डूब रहा हूं, आप हमारे लिये नौका स्वरूप होइये, महर्षिका मूल्य विशेष रीतिसे निश्चय करिये। (१८-२०)

भीष्म बोले, प्रतापशाली गविजने नहुषका वचन सुनके मन्त्रियोंके सहित उस राजाको हर्षयुक्त करते हुए कहा, हे पुरुषश्रेष्ठ महाराज! वर्णोंके बीच ब्राह्मण और गऊ श्रेष्ठ तथा अनर्घेय हैं

गावश्च पुरुषव्याघ्र गौर्मूल्यं परिकल्प्यताम् ॥ २२ ॥
नहुषस्तु ततः श्रुत्वा महर्षेर्वचनं नृप ।
हर्षेण महता युक्तः सहामात्यपुरोहितः ॥ २३ ॥
अभिगम्य भृगोः पुत्रं च्यवनं संशितव्रतम् ।
इदं प्रोवाच नृपते वाचा सन्तर्पयन्निव ॥ २४ ॥
नहुष उवाच-उत्तिष्ठोत्तिष्ठ विप्रर्षे गवा क्रीतोऽसि भार्गव ।
एतन्मूल्यमहं मन्ये तव धर्मभृतां वर ॥ २५ ॥
च्यवन उवाच-उत्तिष्ठाम्येष राजेन्द्र सम्यक् क्रीतोऽस्मि तेऽनघ ।
गोभिस्तुल्यं न पश्यामि धनं किंचिदिहाच्युत ॥२६ ॥
कीर्तनं श्रवणं दानं दर्शनं चापि पार्थिव ।
गवां प्रशस्यते वीर सर्वपापहरं शिवम् ॥ २७ ॥
गावो लक्ष्म्याः सदा मूलं गोषु पाप्मा न विद्यते ।
अन्नमेव सदा गावो देवानां परमं हविः ॥ २८ ॥
स्वाहाकारवषट्कारौ गोषु नित्यं प्रतिष्ठितौ ।
गावो यज्ञस्य नेत्र्यो वै तथा यज्ञस्य ता मुखम् ॥ २९ ॥
अमृतं ह्यव्ययं दिव्यं क्षरन्ति च वहन्ति च ।

अर्थात् गऊ और ब्राह्मणका मोल नहीं है, इसलिये गऊका मूल्य समझिये । हे महाराज ! अनन्तर नहुष महर्षिका वचन सुनके मन्त्री और पुरोहितके सहित अत्यन्त हर्षित होकर संशितव्रती भृगुनन्दन च्यवन के समीप जाके उन्हें वचनसे प्रसन्न करके कहने लगे। नहुष बोले, हे भृगुनन्दन विप्रर्षि ! आप उठिये, आप गऊके द्वारा मोल लिये गये । हे धार्मिकश्रेष्ठ ! मैंने यही आपका मूल्य विचारा है । (२१—२५)

च्यवन मुनि बोले, हे पापरहित राजेन्द्र ! अब मैं उठता हूं, तुमने यथार्थमें मुझे मोल लिया, हे नाशरहित ! मैं इस लोकमें गऊके सदृश कुछ भी धन नहीं देखता । हे राजन् ! गौवोंकी कथा कहना, सुनना और उनका दान दर्शन सब पापोंको हरने तथा कल्याण साधन करनेसे प्रसंशित हुआ करता है । गऊ ही लक्ष्मीका मूल है, गौवोंमें पाप नहीं है, गौवेंही सदा देवताओंके हविरूप परम अन्न हैं । गौवोंसेही स्वाहा और वषट्कार सदा प्रतिष्ठित हो रहा है, गौवेंही यज्ञोंको सिद्ध करती हैं और वेही यज्ञके मुख-स्वरूप हैं, गौवोंमें ही दिव्य अव्यय अमृत बहता तथा झरता

अमृतायतनं चैताः सर्वलोकनमस्कृताः ॥ ३० ॥
तेजसा वपुषा चैव गावो वह्निसमा भुवि।
गावो हि सुमहत्तेजः प्राणिनां च सुखप्रदाः ॥ ३१ ॥
निविष्टं गोकुलं यत्र श्वासं मुञ्चति निर्भयम्।
विराजयति तं देशं पापं चास्यापकर्षति ॥ ३२ ॥
गावः स्वर्गस्य सोपानं गावः स्वर्गेऽपि पूजिताः।
गावः कामदुहो देव्यो नान्यत्किंचित्परं स्मृतम्॥३३ ॥
इत्येतद्गोषु मे प्रोक्तं माहात्म्यं भरतर्षभ।
गुणैकदेशवचनं शक्यं पारायणं न तु ॥ ३४ ॥
निषादा ऊचुः-दर्शनं कथनं चैव सहास्माभिः कृतं मुने।
सतां साप्तपदं मैत्रं प्रसादं नः कुरु प्रभो ॥ ३५ ॥
हवींषि सर्वाणि यथा ह्युपभुङ्क्ते हुताशनः।
एवं त्वमपि धर्मात्मन्पुरुषाग्निः प्रतापवान् ॥ ३६ ॥
प्रसादयामहे विद्वन्भवन्तं प्रणता वयम्।
अनुग्रहार्थमस्माकमियं गौः प्रतिगृह्यताम् ॥ ३७ ॥

है। सब लोकोंकी नमस्कृत ये सब गौवें अमृतके स्थान हैं। (२९—३०)

भूलोकमें तेज और तनके सहारे गोवृन्द अग्निसदृश हैं, गऊ ही प्राणियोंके लिये उत्तम महत् तेज और सुख देनेवाली हैं, गौवें जिस स्थानमें स्थित होकर निर्भय होके सांस लेती हैं, उस स्थानको भूषित करती हुई उसका पाप दूर किया करती हैं। गऊ ही स्वर्गके लिये सोपान स्वरूप हैं, गौवोंका समूह स्वर्गमें भी पूजित हुआ करता है, गऊ देवी स्वरूप हैं, वे काम दोहन किया करती हैं। यह स्मरण है, कि दूसरी कुछ भी वस्तु गौवोंसे श्रेष्ठ नहीं है। हे भरतश्रेष्ठ! यह गौवोंका माहात्म्य कहा गया, इनके एकही गुणको आदिसे अन्ततक वर्णन करना असाध्य है, सब गुणोंको वर्णन करना तो बहुत दूरकी बात है। (३१—३४)

निषादवृन्द बोले, हे मुनि! आपका हम लोगोंके सङ्ग दर्शन और वार्त्तालाप हुआ है, साधुओंको सात पग उच्चारण निबन्धनसे मित्रता होती है, हे प्रभु! इसलिये आप हम लोगोंपर प्रसन्न हूजिये। जैसे अग्नि समस्त हवि उपभोग करती है, वैसे ही आप भी धर्मात्मा प्रतापवान पुरुषाग्नि हैं। हे विद्वन्! हम लोग प्रणत होके आपको प्रसन्न करते

च्यवन उवाच-कृपणस्य च यच्चक्षुर्मुनेराशीविषस्य च ।
नरं समूलं दहति कक्षमग्निरिव ज्वलन् ॥ ३८ ॥
प्रतिगृह्णामि वो धेनुं कैवर्ता मुक्तकिल्बिषाः ।
दिवं गच्छत वै क्षिप्रं मत्स्यैः सह जलोद्भवैः ॥ ३९ ॥
भीष्म उवाच-ततस्तस्य प्रभावात्ते महर्षेर्भावितात्मनः ।
निषादास्तेन वाक्येन सह मत्स्यैर्दिवं ययुः ॥ ४० ॥
ततः स राजा नहुषो विस्मितः प्रेक्ष्य धीवरान् ।
आरोहमाणांस्त्रिदिवं मत्स्यांश्च भरतर्षभ ॥ ४१ ॥
ततस्तौ गाविजश्चैव च्यवनश्च भृगूद्वहः ।
वराभ्यामनुरूपाभ्यां छन्दयामासतुर्नृपम् ॥ ४२ ॥
ततो राजा महावीर्यो नहुषः पृथिवीपतिः ।
परमित्यब्रवीत्प्रीतस्तदा भरतसत्तम ॥ ४३ ॥
ततो जग्राह धर्मे स स्थितिमिन्द्रनिभो नृपः ।
तथेति चोदितः प्रीतस्तावृषी प्रत्यपूजयत् ॥ ४४ ॥
समाप्तदीक्षश्च्यवनस्ततोऽगच्छत्स्वमाश्रमम् ।

हैं, हमपर कृपा करके आप इस गऊको प्रतिग्रह कीरये । (३५—३७)

च्यवन बोले, जैसे प्रज्वलित अग्नि सूखे तृणोंको जलाती है, वैसे ही दीन हीन कृपण, मुनि और विषधर सर्पके नेत्र मनुष्योंको मूलके सहित भस्म किया करते हैं । हे कैवर्त्तवृन्द ! मैंने तुम लोगोंको गऊ प्रतिग्रह किया, तुम लोग पापरहित होके जलसे उत्पन्न हुई मछलियोंके सहित शीघ्र ही स्वर्गमें गमन करो । (३८–३९)

भीष्म बोले, अनन्तर निषादोंने उस पवित्र चित्तवाले महर्षिके प्रभावसे उनके वचनके अनुसार मछलियोंके सहित स्वर्गमें गमन किया । हे भरतश्रेष्ठ ! अनन्तर राजा नहुष मछलियोंके सहित मल्लाहोंको स्वर्गमें जाते देखके विस्मित हुए । अन्तमें वह गविज और भृगुनन्दन च्यवन मुनि राजा नहुषको यथोचित दो वर देनेके लिये सम्मान करनेमें प्रवृत्त हुए । हे भरतसत्तम ! अनन्तर महापराक्रमी पृथ्वीपति राजा नहुषने उस समय प्रसन्न होके कहा, उत्तम वार्त्ता है । (४०—४३)

उस इन्द्रतुल्य राजाने धर्ममें निष्ठा रहनेके निमित्त वर मांगा, उन्होंने भी कहा, कि ऐसा ही होवे । तब राजाने प्रसन्न होके दोनों ऋषियोंकी पूजा की ।

गविजश्च महातेजाः स्वमाश्रमपदं ययौ ॥ ४५ ॥
निषादाश्च दिवं जग्मुस्ते च मत्स्या जनाधिप ।
नहुषोऽपि वरं लब्ध्वा प्रविवेश स्वकं पुरम् ॥ ४६ ॥
एतत्ते कथितं तात यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
दर्शने यादृशः स्नेहः संवासे वा युधिष्ठिर ॥ ४७ ॥
महाभाग्यं गवां चैव तथा धर्मविनिश्चयम् ।
किं भूयः कथ्यतां वीर किं ते हृदि विवक्षितम् ॥४८॥ [२६८४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे च्यवनोपाख्याने एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

युधिष्ठिर उवाच–संशयो मे महाप्राज्ञ सुमहान्सागरोपमः ।
तं मे शृणु महाबाहो श्रुत्वा व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥
कौतूहलं मे सुमहज्जामदग्न्यं प्रति प्रभो ।
रामं धर्मभृतां श्रेष्ठं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥
कथमेष समुत्पन्नो रामः सत्यपराक्रमः ।
कथं ब्रह्मर्षिवंशोऽयं क्षत्रधर्मा व्यजायत ॥ ३ ॥
तदस्य सम्भवं राजन्निखिलेनाऽनुकीर्तय ।

च्यवन मुनि दीक्षा समाप्त करनेके अनन्तर अपने आश्रमपर गये, महातेजस्वी गविजने भी निज आश्रमकी ओर गमन किया। राजा नहुष वर पाके अपने नगरमें आये। हे तात युधिष्ठिर! दर्शन और सहवाससे जैसा स्नेह होता है तथा गौवोंका माहात्म्य और धर्मनिश्चय विषयमें तुमने जो मुझसे प्रश्न किया था, वह सब मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया। हे वीर! फिर क्या कहूं? तुम्हारे अन्तःकरणमें किस विषयके जाननेकी अभिलाषा है? (४४—४८)

अनुशासनपर्वमें ५१ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ५२ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे महाप्राज्ञ महाबाहो! मुझे समुद्र समान महान् सन्देह है, आप उसे सुनिये और सुननेपर उस विषयकी व्याख्या करनेके लिये आप ही उपयुक्त हैं। हे प्रभु! धार्मिकश्रेष्ठ जामदग्न्य रामके विषयमें मुझे अत्यन्त आश्चर्य होरहा है। आप मेरे समीप इस ही विषयको वर्ण करिये। वह सत्यपराक्रमी राम किस प्रकार उत्पन्न हुए थे? ब्रह्मर्षिके वंशमें उत्पन्न होके यह क्षत्रियोंके धर्मका आचरण करनेवाला

कौशिकाच्च कथं वंशात्क्षत्राद्वै ब्राह्मणो भवेत् ॥ ४ ॥
अहो प्रभावः सुमहानासीद्वै सुमहात्मनः।
रामस्य च नरव्याघ्र विश्वामित्रस्य चैव हि ॥ ५ ॥
कथं पुत्रानतिक्रम्य तेषां नप्तृष्वथाभवत्।
एष दोषः सुतान् हित्वा तत्त्वं व्याख्यातुमर्हसि ॥ ६ ॥
भीष्म उवाच–अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
च्यवनस्य च संवादं कुशिकस्य च भारत ॥ ७ ॥
एतं दोषं पुरा दृष्ट्वा भार्गवश्च्यवनस्तदा।
आगामिनं महाबुद्धिः स्ववंशे मुनिसत्तमः ॥ ८ ॥
निश्चित्य मनसा सर्वं गुणदोषबलाबलम्।
दग्धुकामः कुलं सर्वं कुशिकानां तपोधनः ॥ ९ ॥
च्यवनः समनुप्राप्य कुशिकं वाक्यमब्रवीत्।
वस्तुमिच्छा समुत्पन्ना त्वया सह ममानघ ॥ १० ॥
कुशिक उवाच–भगवन्सहधर्मोऽयं पण्डितैरिह धार्यते।
प्रदानकाले कन्यानामुच्यते च सदा बुधैः ॥ ११ ॥
यत्तु तावदतिक्रान्तं धर्मद्वारं तपोधन।

कैसा हुआ ? उनकी उत्पत्तिका विषय आप विस्तारपूर्वक वर्णन करिये। हे महाराज ! क्षत्रिय कौशिकवंशमें किस प्रकार ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति हुई ? हे पुरुषश्रेष्ठ ! महानुभाव राम और विश्वामित्रमें अत्यन्त महत् आश्चर्य प्रभाव था, पुत्रोंको छोडके नातियोंमें यह दोष किस प्रकार सम्भव हुआ, आप उसे यथार्थ रीतिसे वर्णन करिये। (१—६)

भीष्म बोले, हे भारत ! प्राचीन लोग इस विषय में च्यवन और कुशिकके संवादयुक्त पुराना इतिहास कहा करते हैं। महाबुद्धिमान् मुनिसत्तम तपोधन भृगुनन्दन च्यवनने उस समय निज वंशमें इस भविष्य दोषको पहले ही देखके मन ही मन समस्त गुण, दोष और बलाबलका निश्चय करके कुशिककुलको भस्म करने की इच्छा की। च्यवन मुनि कुशिकके समीप पहुंचके बोले, हे पापरहित ! तुम्हारे सङ्ग एकत्र वास करनेकी मुझे इच्छा हुई है। (७—१०)

कुशिक बोले, हे भगवन् ! बुद्धिमान पण्डितोंके द्वारा कन्यादान करनेके समय यह सहधर्म निश्चित हुआ करता है। हे तपोधन ! उस ही धर्मके सहारे

तत्कार्यं प्रकरिष्यामि तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ १२ ॥

भीष्म उवाच-अथासनमुपादाय च्यवनस्य महामुनेः।

कुशिको भार्यया सार्धमाजगाम यतो मुनिः ॥ १३ ॥

प्रगृह्य राजा भृङ्गारं पाद्यमस्मै न्यवेदयत्।

कारयामास सर्वाश्च क्रियास्तस्य महात्मनः ॥ १४ ॥

ततः स राजा च्यवनं मधुपर्कं यथाविधि।

ग्राहयामास चाव्यग्रो महात्मा नियतव्रतः ॥ १५ ॥

सत्कृत्य तं तथा विप्रमिदं पुनरथाब्रवीत्।

भगवन्परवन्तौ स्वो ब्रूहि किं करवावहे ॥ १६ ॥

यदि राज्यं यदि धनं यदि गाः संशितव्रत।

यज्ञदानानि च तथा ब्रूहि सर्वं ददामि ते ॥ १७ ॥

इदं गृहमिदं राज्यमिदं धर्मासनं च ते।

राजा त्वमसि शाध्युर्वीमहं तु परवांस्त्वयि ॥ १८ ॥

एवमुक्ते ततो वाक्ये च्यवनो भार्गवस्तदा।

कुशिकं प्रत्युवाचेदं मुदा परमया युतः ॥ १९ ॥

न राज्यं कामये राजन्न धनं न च योषितः।

जो अतिक्रान्त हुआ है, उसे कर्त्तव्य समझके करूंगा, इसलिये उस विषय में आज्ञा करिये। (११—१२)

भीष्म बोले, अनन्तर भार्याके सहित कुशिक महामुनि च्यवनके लिये आसन लेकर जिस स्थानमें वह खडे थे, वहां आये। राजाने भृङ्गार (जलपात्रविशेष) ग्रहण करके मुनिको पैर धोनेके लिये जल दिया और उस महात्माके सब कार्योंको पूरा कर दिया। अनन्तर महानुभाव, नियतव्रती राजाने सावधानीके सहित च्यवनको विधिपूर्वक मधुपर्क दिया। उसने इस प्रकार उस विप्रका सत्कार करके फिर उनसे कहा, हे भगवन्! हम आपके अधीन हैं, इसलिये कहिये क्या करें? हे संशितव्रती! यदि राज्य, धन, पशु, यज्ञ, दान प्रभृतिका प्रयोजन हो, तो मुझे आज्ञा करिये, मैं आपको सब दान करता हूं, यह गृह, राज्य और धर्मासन सब आपका ही है, आप ही राजा होके पृथ्वीका शासन करिये, मैं आपके अधीन हुआ हूं। (१३—१८)

कुशिकके ऐसा कहनेपर भृगुनन्दन च्यवन अत्यन्त हर्षित होके उनसे कहने लगे। च्यवन बोले, हे महाराज!

न च गा न च वै देशान्न यज्ञं श्रूयतामिदम् ॥ २० ॥
नियमं किंचिदारप्स्ये युवयोर्यदि रोचते ।
परिचर्योऽस्मि यत्ताभ्यां युवाभ्यामविशङ्कया ॥ २१ ॥
एवमुक्ते तदा तेन दम्पती तौ जहर्षतुः ।
प्रत्यब्रूतां च तमृषिमेवमस्त्विति भारत ॥ २२ ॥
अथ तं कुशिको हृष्टः प्रावेशयदनुत्तमम् ।
गृहोद्देशं ततस्तस्य दर्शनीयमदर्शयत् ॥ २३ ॥
इयं शय्या भगवतो यथाकाममिहोष्यताम् ।
प्रयतिष्यावहे प्रीतिमाहर्तुं ते तपोधन ॥ २४ ॥
अथ सूर्योऽतिचक्राम तेषां संवदतां तथा ।
अथर्षिश्चोदयामास पानमन्नं तथैव च ॥ २५ ॥
तमपृच्छत्ततो राजा कुशिकः प्रणतस्तदा ।
किमन्नजातमिष्टं ते किमुपस्थापयाम्यहम् ॥ २६ ॥
ततः स परया प्रीत्या प्रत्युवाच नराधिपम् ।
औपपत्तिकमाहारं प्रयच्छस्वेति भारत ॥ २७ ॥
तद्वचः पूजयित्वा तु तथेत्याह स पार्थिवः ।

मैं राज्य, धन, स्त्री, पुत्र, परिवार, पशु, देश अथवा यज्ञकी इच्छा नहीं करता; मुझे जो अभिलाषा है, वह कहता हूं, सुनो। मैं कोई नियम आरम्भ करूंगा, यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो तुम दोनों निःशङ्क हृदयसे प्रणत होकर मेरी सेवा करो। हे भारत! च्यवनके ऐसा कहने-पर राजा और रानी दोनोंने अत्यन्त हर्षित होके ऋषिको उत्तर दिया 'ऐसा ही होगा'। अनन्तर कुशिक प्रसन्न होकर उन्हें अत्यन्त रमणीय मन्दिरमें लेगये और देखने योग्य सब वस्तुओंको उन्हें दिखाके बोले, हे भगवन्! यही आपकी शय्या है, आप इच्छानुसार इस स्थानमें निवास करिये। हे तपोधन हम आपकी प्रीति पूरी करनेके लिये प्रयत्न करेंगे, उन लोगोंके इस ही प्रकार वार्त्तालाप करते रहनेपर सूर्यदेवने अस्ताचलपर गमन किया। (१९-२५)

अनन्तर महर्षि च्यवनने अन्नजल लानेके लिये आज्ञा की, राजा कुशिकने उस समय प्रणत होके ऋषिसे पूछा, हे भगवन्! कैसे अन्न आपको रुचते हैं? मैं कैसी भोजनकी सामग्री मंगाऊं। हे भारत! अनन्तर उस महर्षिने परम हर्षके सहित राजाको उत्तर दिया, कि

यथोपपन्नमाहारं तस्मै प्रादाज्जनाधिप ॥ २८ ॥
ततः स भुक्त्वा भगवान्दम्पती प्राह धर्मवित् ।
स्वप्तुमिच्छाम्यहं निद्रा बाधते मामिति प्रभो ॥ २९ ॥
ततः शय्यागृहं प्राप्य भगवानृषिसत्तमः ।
संविवेश नरेशस्तु सपत्नीकः स्थितोऽभवत् ॥ ३० ॥
न प्रबोध्योऽस्मि संसुप्त इत्युवाचाथ भार्गवः ।
संवाहितव्यौ मे पादौ जागृतव्यं च तेऽनिशम् ॥ ३१ ॥
अविशङ्कस्तु कुशिकस्तथेत्येवाह धर्मवित् ।
न प्रबोधयतां तौ च दम्पती रजनीक्षये ॥ ३२ ॥
यथादेशं महर्षेस्तु शुश्रूषापरमौ तदा ।
बभूवतुर्महाराज प्रयतावथ दंपती ॥ ३३ ॥
ततः स भगवान्विप्रः समादिश्य नराधिपम् ।
सुष्वापैकेन पार्श्वेन दिवसानेकविंशतिम् ॥ ३४ ॥
स तु राजा निराहारः सभार्यः कुरुनन्दन ।
पर्युपासत तं हृष्टश्च्यवनाराधने रतः ॥ ३५ ॥

युक्तिसंगत अन्न प्रदान करो। राजा कुशिक च्यवनके वचनका आदर करके बोले, कि 'ऐसा ही होगा।' नरनाथ कुशिकने उन्हें युक्तियुक्त अन्न प्रदान किया। धर्म जाननेवाले भगवान् च्यवन भोजनके अनन्तर राजदम्पतीसे बोले, हे राजन्! निद्रा मुझे बाधा देरही है, इसलिये मैं सोनेकी इच्छा करता हूं। अनन्तर ऋषिसत्तम भगवानने शय्या-गृहमें जाके शयन किया। राजा भार्याके सहित वहां स्थित रहा। (२५-३०)

अनन्तर भृगुनन्दनने कहा, मेरे निद्रित होनेपर मुझे न जगाना, तुम लोग मेरे चरणकी सेवा करते हुए सदा जाग्रत् अवस्थामें स्थित रहो; धर्म जाननेवाले राजा कुशिकने शङ्कारहित होके कहा, 'ऐसाही होगा।' फिर रात बीतनेपर भी उन दोनोंने उन्हें न जगाया, हे महाराज! वे दम्पती उस समय महर्षिकी आज्ञाके अनुसार प्रयत्न-वान होकर उनकी सेवा करने लगे। अनन्तर उस विप्र भगवानने राजाको इसही प्रकार आज्ञा करके इक्कीस दिन-तक एक पार्श्वसे सोके निद्रावस्थामें समय व्यतीत किया। (३१—३४)

हे कुरुनन्दन! राजा कुशिक पत्नीके सहित निराहार होके च्यवनकी आराध-नामें अनुरक्त और प्रसन्न रहके

भार्गवस्तु समुत्तस्थौ स्वयमेव तपोधनः ।
अकिंचिदुक्त्वा तु गृहान्निश्चक्राम महातपाः ॥ ३६ ॥
तमन्वगच्छतां तौ च क्षुधितौ श्रमकर्शितौ ।
भार्यापती मुनिश्रेष्ठस्तावेतौ नावलोकयत् ॥ ३७ ॥
तयोस्तु प्रेक्षतोरेव भार्गवाणां कुलोद्वहः ।
अन्तर्हितोऽभूद्राजेन्द्र ततो राजाऽपतत्क्षितौ ॥ ३८ ॥
स मुहूर्तं समाश्वस्य सह देव्या महाद्युतिः ।
पुनरन्वेषणे यत्नमकरोत्परमं तदा ॥ ३९ ॥ [२७२३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे च्यवनकुशिकसंवादे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

युधिष्ठिर उवाच- तस्मिन्नन्तर्हिते विप्रे राजा किमकरोत्तदा ।
भार्या चास्य महाभागा तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥
भीष्म उवाच- अदृष्ट्वा स महीपालस्तमृषिं सह भार्यया ।
परिश्रान्तो निववृते व्रीडितो नष्टचेतनः ॥ २ ॥
स प्रविश्य पुरीं दीनो नाभ्यभाषत किंचन ।
तदेव चिन्तयामास च्यवनस्य विचेष्टितम् ॥ ३ ॥

सब भांतिसे उनकी उपासना करने लगे, तपोधन भृगुनन्दन स्वयंही उठे, वह महातपस्वी कुछ भी वचन न कहके गृहसे बाहर निकले। राजा और रानी दोनोंनेही भूखे, श्रमयुक्त होके भी उनके पीछे चले। उनके आनेपर भी मुनिने उनकी ओर न देखा, हे राजेन्द्र! भार्याके सहित राजा कुशिकने देखते रहनेपर भी भृगुकुलोद्वह च्यवन अन्तर्द्धान हुए, उनके अन्तर्हित होते ही राजा पृथ्वीपर गिर पडा। महातेजस्वी राजाने भार्याके सहित मुहूर्त भरके अनन्तर धीरज धरके उस समय उन्हें अन्वेषण करनेमें अत्यन्त यत्न किया। (३७—३९)

अनुशासनपर्वमें ५२ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ५३ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, उस विप्रके अदृश्य होनेपर वह राजा और रानी क्या करती थीं, वह आप मुझसे कहिये। (१)

भीष्म बोले, भार्याके सहित वह राजा ऋषिको न देखनेपर बहुत थकके लज्जित तथा चेतनारहित होके निवृत्त हुआ। वह दुःखित होके नगरमें प्रवेश करके कुछ भी न बोला, केवल च्यवनके उसही कार्यकी चिन्ता करने लगा।

अथ शून्येन मनसा प्रविश्य स्वगृहं नृपः ।
ददर्श शयने तस्मिन् शयानं भृगुनन्दनम् ॥ ४ ॥
विस्मितौ तमृषिं दृष्ट्वा तदाश्चर्यं विचिन्त्य च ।
दर्शनात्तस्य तु तदा विश्रान्तौ संबभूवतुः ॥ ५ ॥
यथास्थानं च तौ स्थित्वा भूयस्तं संववाहतुः ।
अथापरेण पार्श्वेन सुष्वाप स महामुनिः ॥ ६ ॥
तेनैव च स कालेन प्रत्यबुद्ध्यत वीर्यवान् ।
न च तौ चक्रतुः किंचिद्विकारं भयशङ्कितौ ॥ ७ ॥
प्रतिबुद्धस्तु स मुनिस्तौ प्रोवाच विशाम्पते ।
तैलाभ्यङ्गो दीयतां मे स्नास्येऽहमिति भारत ॥ ८ ॥
तौ तथेति प्रतिश्रुत्य क्षुधितौ श्रमकर्शितौ ।
शतपाकेन तैलेन महार्हेणोपतस्थतुः ॥ ९ ॥
ततः सुखासीनमृषिं वाग्यतौ संववाहतुः ।
न च पर्याप्तमित्याह भार्गवः सुमहातपाः ॥ १० ॥
यदा तौ निर्विकारौ तु लक्षयामास भार्गवः ।
तत उत्थाय सहसा स्नानशालां विवेश ह ॥ ११ ॥

अनन्तर राजा चुपचाप निज भवनमें प्रवेश करके भृगुनन्दन च्यवनको उसही शय्यापर सोये हुए देखा। दम्पती उस समय ऋषिको देखके विस्मित हुए और उस विषयको आश्चर्य समझके उनके दर्शन निबन्धनसे विश्राम करने लगे। वे यथास्थानमें स्थित होके फिर ऋषिकी चरणसेवा करनेमें प्रवृत्त रहे। महामुनि दूसरी करवट होके निन्द्रा-सुख भोगने लगे। वीर्यवान च्यवन जितने दिनतक एक पार्श्वसे निद्रित थे, उतने ही समयतक दूसरी करवट निद्रित रहके जागे। भार्याके सहित राजाने भयसे शङ्कित होकर किसी प्रकार विकार नहीं किया। (२-७)

हे भारत नरनाथ! उस मुनिने सावधान होके उनसे कहा, मेरे समस्त शरीरमें तेल लगाओ, मैं स्नान करूंगा। भार्याके सहित राजा भूखे और श्रमयुक्त होनेपर भी उनका वचन अङ्गीकार करके महामूल्यवान शतपाक तेल ले आया। अनन्तर वे दोनों वाक्संयम करके उस सुखके बैठे मुनिके शरीरमें तेल मलने लगे। महातपस्वी भार्गवने कहा यह पर्याप्त न हुआ। अनन्तर जब भृगुनन्दन ने उस राजा और राजरानीको निर्विकार

क्लृप्तमेव तु तत्रासीत्स्नानीयं पार्थिवोचितम्।
असत्कृत्य च तत्सर्वं तत्रैवान्तरधीयत ॥ १२ ॥
स मुनिः पुनरेवाथ नृपतेः पश्यतस्तदा।
नासूयां चक्रतुस्तौ च दम्पती भरतर्षभ ॥ १३ ॥
अथ स्नातः स भगवान्सिंहासनगतः प्रभुः।
दर्शयामास कुशिकं सभार्यं कुरुनन्दनः ॥ १४ ॥
संहृष्टवदनो राजा सभार्यः कुशिको मुनिम्।
सिद्धमन्नमिति प्रह्वो निर्विकारो न्यवेदयत् ॥ १५ ॥
आनीयतामिति मुनिस्तं चोवाच नराधिपम्।
स राजा समुपाजह्रे तदन्नं सह भार्यया ॥ १६ ॥
मांसप्रकारान्विविधान् शाकानि विविधानि च।
वेसवारविकारांश्च पानकानि लघूनि च ॥ १७ ॥
रसालापूपकांश्चित्रान्मोदकानथ खाण्डवान्।
रसान्नानाप्रकारांश्च वन्यं च मुनिभोजनम् ॥ १८ ॥
फलानि च विचित्राणि राजभोज्यानि भूरिशः।
बदरेङ्गुदकाश्मर्यभल्लातकफलानि च ॥ १९ ॥

देखा, तब सहसा उठके स्नानगृहमें गये, स्नानशालामें राजाके योग्य स्नानीय जल आदि सब वस्तु तैयार थीं, वह राजाके सम्मुखमें ही उन सबका निरादर करके उसही स्थानमें फिर अन्तर्द्धान हुए। (८—१२)

हे भरतश्रेष्ठ! राजदम्पतीने उस विषयमें कुछ भी असूया न की। हे कुरुनन्दन! अनन्तर निग्रहानुग्रहमें समर्थ च्यवन भगवान्‌ने स्नान करके सिंहासनपर बैठके सपत्नीक कुशिक राजाका दर्शन दिया। प्रज्ञायुक्त राजा कुशिकने भार्याके सहित प्रसन्नवदन और निर्विकारचित्त होके मुनिसे कहा, कि भोजन तैयार है, मुनिने भी राजासे कहा, लाओ; तब राजा भार्याके सहित वह प्रस्तुत अन्न मुनिके समीप ले आया। (१३—१६)

अनेक प्रकारके मांस, विविध शाक, अनेक भांतिके पानीय, रसमिश्रित पिष्टक, विचित्र लड्डू, रसाल अपूप, खाण्डव, अनेक प्रकारके रस, मुनिभोजनके योग्य वनके फल, उसके अतिरिक्त सब राज्य-भोग, बहुतसे विचित्र फल, बदर, इंगुद, काश्मर्य, भल्लातक आदि गृहस्थ और वनवासियोंके खाने योग्य जो सब फल

गृहस्थानां च यद्भोज्यं यच्चापि वनवासिनाम् ।
सर्वमाहारयामास राजा शापभयात्ततः ॥ २० ॥
अथ सर्वमुपन्यस्तमग्रतश्च्यवनस्य तत् ।
ततः सर्वं समानीय तच्च शय्यासनं मुनिः ॥ २१ ॥
वस्त्रैः शुभैरवच्छाद्य भोजनोपस्करैः सह ।
सर्वमादीपयामास च्यवनो भृगुनन्दनः ॥ २२ ॥
न च तौ चक्रतुः क्रोधं दम्पती सुमहामती ।
तयोः संप्रेक्षतोरेव पुनरन्तर्हितोऽभवत् ॥ २३ ॥
तथैव च स राजर्षिस्तस्थौ तां रजनीं तदा ।
सभार्यो वाग्यतः श्रीमान्न च कोपं समाविशत् ॥२४॥
नित्यं संस्कृतमन्नं तु विविधं राजवेश्मनि ।
शयनानि च मुख्यानि परिषेकाश्च पुष्कलाः ॥ २५ ॥
वस्त्रं च विविधाकारमभवत्समुपार्जितम् ।
न शशाक ततो द्रष्टुमन्तरं च्यवनस्तदा ॥ २६ ॥
पुनरेव च विप्रर्षिः प्रोवाच कुशिकं नृपम् ।
सभार्यो मां रथेनाशु वह यत्र ब्रवीम्यहम् ॥ २७ ॥
तथेति च प्राह नृपो निर्विशङ्कस्तपोधनम् ।
क्रीडारथोऽस्तु भगवन्नुत सांग्रामिको रथः ॥ २८ ॥

हैं, मुनिके शापभयसे राजाने वह सब मंगाया था, अनन्तर च्यवनके अगाडी समस्त भोजनकी सामग्री रखी गई। भृगुनन्दन च्यवन मुनि उन सब भोजनके पात्रोंके सहित शय्या और आसन मंगाकर उसे सफेद वस्त्रसे ढाकके जला दिया। महाबुद्धिमान दंपती उस से भी क्रुद्ध न हुए। (१७-२३)

उनके देखते ही देखते वह मुनि फिर अन्तर्द्धान हुए, राजर्षि श्रीमान् कुशिकने भार्याके सहित वाक्संयत होकर उस रात्रिमें उस ही भावसे निवास किया, उस समय वह क्रुद्ध नहीं हुए। राजभवनमें प्रतिदिन विविध अन्न और उत्तम शय्या उपस्थित रहती थीं, बहुत से स्नानयोग्य तथा अनेक प्रकारके वस्त्र सज्जित रहते थे, इसीसे च्यवन कोई त्रुटि नहीं देखते थे। विप्रर्षिने फिर राजा कुशिकसे कहा, मैं जिस स्थानमें कहूं, वहांपर तुम भार्याके सहित मुझे रथपर ले चलो। उस समय राजाने निःशङ्क होकर महर्षिसे कहा,

इत्युक्तः स मुनी राज्ञा तेन हृष्टेन तद्वचः ।
च्यवनः प्रत्युवाचेदं हृष्टः परपुरञ्जयम् ॥ २९ ॥
सज्जीकुरु रथं क्षिप्रं यस्ते सांग्रामिको मतः ।
सायुधः सपताकश्च शक्तीकनकयष्टिमान् ॥ ३० ॥
किङ्किणीस्वननिर्घोषो युक्तस्तोरणकल्पनैः ।
जाम्बूनदनिबद्धश्च परमेषुशतान्वितः ॥ ३१ ॥
ततः स तं तथेत्युक्त्वा कल्पयित्वा महारथम् ।
भार्यां वामे धुरि तदा चात्मानं दक्षिणे तथा ॥ ३२ ॥
त्रिदण्डं वज्रसूच्यग्रं प्रतोदं तत्र चादधत् ।
सर्वमेतत्तथा दत्त्वा नृपो वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ३३ ॥
भगवन्क्व रथो यातु ब्रवीतु भृगुनन्दन ।
यत्र वक्ष्यसि विप्रर्षे तत्र यास्यति ते रथः ॥ ३४ ॥
एवमुक्तस्तु भगवान्प्रत्युवाचाथ तं नृपम् ।
इतः प्रभृति यातव्यं पदकं पदकं शनैः ॥ ३५ ॥
श्रमो मम यथा न स्यात्तथा मच्छन्दचारिणौ ।
सुसुखं चैव वोढव्यो जनः सर्वश्च पश्यतु ॥ ३६ ॥

कि 'ऐसा ही होगा'। हे भगवन्! हम क्रीडारथ अथवा सांग्रामिक रथमें आपको ले चलें? (२३—२८)

राजाने जब प्रसन्नचित्त होकर मुनिसे ऐसा कहा, तब च्यवन हर्षित होके उस परपुरञ्जय राजासे बोले, तुम्हारा जो सांग्रामिक रथ है, उसे ही शीघ्र सज्जित करो। जो रथ शस्त्र, पताका, शक्ति, स्वर्णयष्टियुक्त किङ्किणीशब्दसे सम्पन्न, सोनेके तोरण और सैंकडों उत्तम अस्त्रोंसे युक्त है, उसे ही लाओ। अनन्तर राजाने 'ऐसा ही होवे' यह वचन कहके उस महारथको सजाकर धुरीकी बांई तरफ प्रियभार्याको और दहिनी ओर अपनेको योजित करते हुए त्रिदण्ड और वज्रसूच्यग्र प्रतोद स्थापित किया। राजाने यह सब सामग्री रथमें स्थापित करके कहा, हे हे भगवन् भृगुनन्दन! कहिये, रथ कहांपर ले चले? हे विप्रर्षि! आप जिस स्थानमें कहेंगे, वहां ही आपका रथ जावेगा। (२९—३४)

भगवान् च्यवनने ऐसा वचन सुनके उस राजासे कहा, इस स्थानसे धीरे धीरे एक एक पग चलना होगा, जिससे मुझे बहुत श्रम न हो, उस ही

नोत्सार्याः पथिकाः केचित्तेभ्यो दास्ये वसु ह्यहम् ।
ब्राह्मणेभ्यश्च ये कामानर्थयिष्यन्ति मां पथि ॥ ३७ ॥
सर्वान्दास्याम्यशेषेण धनं रत्नानि चैव हि ।
क्रियतां निखिलेनैतन्मा विचारय पार्थिव ॥ ३८ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजा भृत्यांस्तथाऽब्रवीत् ।
यद्यद् ब्रूयान्मुनिस्तत्तत्सर्वं देयमशङ्कितैः ॥ ३९ ॥
ततो रत्नान्यनेकानि स्त्रियो युग्यमजाविकम् ।
कृताकृतं च कनकं गजेन्द्राश्चाचलोपमाः ॥ ४० ॥
अन्वगच्छन्त तमृर्षिं राजामात्याश्च सर्वशः ।
हाहाभूतं च तत्सर्वमासीन्नगरमार्तवत् ॥ ४१ ॥
तौ तीक्ष्णाग्रेण सहसा प्रतोदेन प्रतोदितौ ।
पृष्ठे विद्धौ कटे चैव निर्विकारौ तमूहतुः ॥ ४२ ॥
वेपमानौ निराहारौ पञ्चाशद्रात्रकर्शितौ ।
कथंचिदूहतुर्वीरौ दम्पती तं रथोत्तमम् ॥ ४३ ॥
बहुशो भृशविद्धौ तौ स्रवन्तौ च क्षतोद्भवम् ।

भांति मेरे अभिप्रायके अनुसार तुम दोनों चलोगे । तुम लोग परम सुख से मुझे ले चलो और सब लोग देखे । मार्गसे पथिकोंको न हटाओ, क्योंकि मैं उन्हें धन दान करूंगा । मार्गमें ब्राह्मण लोग मेरे समीप जिस वस्तुके लिये प्रार्थना करेंगे, मैं बहुताके सहित उन्हें वही धन, रत्न प्रदान करूंगा । हे राजन् ! मैंने जो कहा, वह सब तुम सिद्ध करो, इस विषयमें कुछ भी विचार मत करो । राजा उनका वचन सुनके सेवकोंसे बोला, मुनि जो कुछ कहें, तुम लोग शङ्कारहित होकर वह सब प्रदान करना । (३५-३९)

अनन्तर विविध रत्न, स्त्रीवृन्द, सवारी, बकरे, भेढे, शुद्ध तथा अविशुद्ध सुवर्ण, पर्वतसदृश हाथियोंके समूह और समस्त राजसेवक उस ऋषिके पीछे पीछे गमन करने लगे । नगरवासी सब लोग आर्त होके हाहाकार करने लगे । राजा और राजमहिषी तीक्ष्णाग्र कोडेके द्वारा ताडित तथा पुरोवर्त्ती गण्डस्थल विद्ध होनेपर भी निर्विकार भावसे रथ खींचने लगे । वे वीरदम्पती पचास रात्रितक थके हुए तथा भूखे रहने पर भी कांपते शरीरसे किसी प्रकार उस उत्तम रथको खींचने लगे । (४०-४३)

हे महाराज ! वे दोनों बार बार

ददृशाते महाराज पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ४४ ॥
तौ दृष्ट्वा पौरवर्गस्तु भृशं शोकसमाकुलः ।
अभिशापभयत्रस्तो न च किंचिदुवाच ह ॥ ४५ ॥
द्वन्द्वशश्चाब्रुवन्सर्वे पश्यध्वं तपसो बलम् ।
क्रुद्धा अपि मुनिश्रेष्ठं वीक्षितुं नेह शक्नुमः ॥ ४६ ॥
अहो भगवतो वीर्यं महर्षेर्भावितात्मनः ।
राज्ञश्चापि सभार्यस्य धैर्यं पश्यत यादृशम् ॥ ४७ ॥
श्रान्तावपि हि कृच्छ्रेण रथमेनं समूहतुः ।
न चैतयोर्विकारं वै ददर्श भृगुनन्दनः ॥ ४८ ॥
भीष्म उवाच- ततः स निर्विकारौ तु दृष्ट्वा भृगुकुलोद्वहम् ।
वसु विश्राणयामास यथा वैश्रवणस्तथा ॥ ४९ ॥
तत्रापि राजा प्रीतात्मा यथादिष्टमथाकरोत् ।
ततोऽस्य भगवान्प्रीतो बभूव मुनिसत्तमः ॥ ५० ॥
अवतीर्य रथश्रेष्ठाद्दम्पती तौ मुमोच ह ।
विमोच्य चैतौ विधिवत्ततो वाक्यमुवाच ह ॥ ५१ ॥
स्निग्धगम्भीरया वाचा भार्गवः सुप्रसन्नया ।

अत्यन्त विद्ध होनेपर घावोंसे रुधिर झरनेसे फूले हुए किंशुक वृक्षकी भांति दिखाई देने लगे, पुरवासीवृन्द उन्हें देखके शोकसे व्याकुल होनेपर भी शाप-भयसे डरके कुछ भी न कह सके, सब कोई आपसमें कहने लगे, " तपस्याका फल देखो " हम लोग क्रुद्ध होके भी मुनिश्रेष्ठकी ओर देखनेमें भी समर्थ नहीं हैं। इस भावितात्मा महर्षिका क्या ही आश्चर्य बल है, और भार्याके सहित राजाका जैसा आश्चर्यमय धीरज है, वह भी अवलोकन करो। ये दोनों थकनेपर भी अत्यन्त कष्टसे इस रथको खींच रहे हैं, भृगुनन्दनने इनमें कुछ भी विकार नहीं देखा। (४४-४८)

भीष्म बोले, अनन्तर भृगुकुलधुरन्धर च्यवन उन्हें निर्विकार देखके कुबेरकी भांति बहुत धन दान किया, तौभी राजा प्रसन्नचित्त होकर उनके कहे हुए कार्यको करनेमें कुण्ठित नहीं हुआ। अन्तमें मुनिसत्तम भगवान च्यवन उनपर प्रसन्न हुए और उस श्रेष्ठ रथसे उतरकर उन्हें छोड दिया। हे भारत! भृगुनन्दन उस राजा और राजमहिषीको विधिपूर्वक रथसे मुक्त करके प्रसन्न-चित्तसे उत्तम, कोमल, गम्भीर यह वचन

ददानि वां वरं श्रेष्ठं तं ब्रूतामिति भारत ॥ ५२ ॥
सुकुमारौ च तौ विद्धौ कराभ्यां मुनिसत्तमः ।
पस्पर्शामृतकल्पाभ्यां स्नेहाद्भरतसत्तम ॥ ५३ ॥
अथाब्रवीन्नृपो वाक्यं श्रमो नास्त्यावयोरिह ।
विश्रान्तौ च प्रभावात्ते ऊचतुस्तौ तु भार्गवम् ॥५४॥
अथ तौ भगवान्प्राह प्रहृष्टश्च्यवनस्तदा ।
न वृथा व्याहृतं पूर्वं यन्मया तद्भविष्यति ॥ ५५ ॥
रमणीयः समुद्देशो गङ्गातीरमिदं शुभम् ।
किंचित्कालं व्रतपरो निवत्स्यामीह पार्थिव ॥ ५६ ॥
गम्यतां स्वपुरं पुत्र विश्रान्तः पुनरेष्यसि ।
इहस्थं मां सभार्यस्त्वं द्रष्टासि श्वो नराधिप ।
न च मन्युस्त्वया कार्यः श्रेयस्ते समुपस्थितम् ॥५७॥
यत्काङ्क्षितं हृदिस्थं ते तत्सर्वं हि भविष्यति ।
इत्येवमुक्तः कुशिकः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ५८ ॥
प्रोवाच मुनिशार्दूलमिदं वचनमर्थवत् ।
न मे मन्युर्महाभाग पूतौ स्वो भगवंस्त्वया ॥ ५९ ॥

बोले, मैं तुम्हें अत्यन्त उत्तम वर दूंगा जो इच्छा हो वह मांगो । हे भरतसत्तम ! उस मुनिसत्तमने स्नेहवशसे अमृतमय हाथसे अत्यन्त विद्ध सुकुमार दम्पतीका शरीरस्पर्श किया।(४९-५३)

अनन्तर राजाने भार्गवसे कहा, आपकी कृपासे हमें श्रम नहीं हुआ, अब हम श्रमरहित हुए हैं, शेषमें भगवान च्यवन अत्यन्त हर्षित होकर उस समय उनसे बोले, जब मैंने पहले कभी वृथा वचन नहीं कहा है, तब वह अवश्य ही सिद्ध होगा । हे महाराज ! पवित्र गङ्गाका तट अत्यन्त रमणीय स्थल है, कुछ समयतक व्रतनिष्ठ होकर इस ही स्थलमें निवास करूंगा, तुम अपने नगरमें जाओ, वहां विश्राम करके फिर इस ही स्थानमें आना । हे नरनाथ ! कलह तुम भार्याके सहित आके मुझे यहां ही देखोगे । तुम क्रोध अथवा शोक मत करो, तुम्हारे कल्याणका समय उपस्थित हुआ है, तुम्हारे हृदयमें जो अभिलाष है, वह निश्चय ही सिद्ध होगी । (५४—५८)

कुशिक ऐसा वचन सुनके प्रसन्नचित्त होकर उस मुनिश्रेष्ठसे यह अर्थयुक्त वचन बोले, हे महाभाग ! हमें

संवृतौ यौवनस्थौ स्वो वपुष्मन्तौ बलान्वितौ।
प्रतोदेन व्रणा ये मे सभार्यस्य त्वया कृताः ॥ ६० ॥
तान्न पश्यामि गात्रेषु स्वस्थोऽस्मि सह भार्यया।
इमां च देवीं पश्यामि वपुषाऽप्सरसोपमाम् ॥ ६१ ॥
श्रिया परमया युक्तां तथा दृष्टा पुरा मया।
तव प्रसादसंवृत्तमिदं सर्वं महामुने ॥ ६२ ॥
नैतच्चित्रं तु भगवंस्त्वयि सत्यपराक्रम।
इत्युक्तः प्रत्युवाचैनं कुशिकं च्यवनस्तदा ॥ ६३ ॥
आगच्छेथाः सभार्यश्च त्वमिहेति नराधिप।
इत्युक्तः समनुज्ञातो राजर्षिरभिवाद्य तम् ॥ ६४ ॥
प्रययौ वपुषा युक्तो नगरं देवराजवत्।
तत एनमुपाजग्मुरमात्याः सपुरोहिताः ॥ ६५ ॥
बलस्था गणिकायुक्ताः सर्वाः प्रकृतयस्तथा।
तैर्वृतः कुशिको राजा श्रिया परमया ज्वलन् ॥ ६६ ॥
प्रविवेश पुरं हृष्टः पूज्यमानोऽथ बन्दिभिः।
ततः प्रविश्य नगरं कृत्वा पौर्वाह्णिकीः क्रियाः।

क्रोध अथवा शोक नहीं है, हम आपके प्रसादसे पवित्र हुए। हम तेज और बलसे युक्त होकर यौवनस्थ हुए हैं। आपने कोडेसे हमारे शरीरमें जो सब घाव उत्पन्न किये थे, उसे अब नहीं देखता हूं, इस समय मैं भार्याके सहित स्वस्थ हुआ हूं। इस देवीको मैंने पहले जिस प्रकार देखा था, उससे भी बढके श्रीसंपन्न और शरीरकी सुघराईमें अप्सरासदृश देखता हूं। हे महामुनि! आपके प्रसादसे ही यह सब हुआ है। हे सत्यपराक्रमी भगवन्! आपमें ये सब आश्चर्य नहीं हैं, च्यवन उस समय ऐसा सुनके कुशिकसे बोले, हे नरनाथ! तुम भार्याके सहित इस ही स्थानमें आना। राजर्षि कुशिकने महर्षिका ऐसा वचन सुनके उन्हें प्रणाम करके उनकी आज्ञानुसार बिदा होके सौन्दर्ययुक्त शरीरसे देवराजकी भांति नगरमें गमन किया। (५८—६५)

अनन्तर पुरोहितके सङ्ग अमात्यवृन्द, सेना और गणिकाओंके सहित समस्त प्रजा उनके निकट उपस्थित हुई। कुशिकने उस समस्त प्रजासमूहसे घिरके परम श्रीसम्पन्न और बन्दिजनोंसे पूजित होकर नगरमें प्रवेश किया।

भुक्त्वा सभार्यो रजनीमुवास स महाद्युतिः ॥ ६७ ॥
ततस्तु तौ नवमभिवीक्ष्य यौवनं परस्परं विगतरुजाविवामरौ ।
ननन्दतुः शयनगतौ वपुर्धरौ श्रिया युतौ द्विजवरदत्तया तदा ॥६८॥
अथाप्यृषिर्भृगुकुलकीर्तिवर्धनस्तपोधनो वनमभिराममृद्धिमत् ।
मनीषया बहुविधरत्नभूषितं ससर्ज यन्न पुरि शतक्रतोरपि ॥ ६९ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे च्यवनकुशिकसंवादे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ [२७९२]

भीष्म उवाच– ततः स राजा राज्यन्ते प्रतिबुद्धो महामनाः ।
कृतपूर्वाह्णिकः प्रायात्सभार्यस्तद्वनं प्रति ॥ १ ॥
ततो ददर्श नृपतिः प्रासादं सर्वकाञ्चनम् ।
मणिस्तम्भसहस्राढ्यं गन्धर्वनगरोपमम् ।
तत्र दिव्यानभिप्रायान्ददर्श कुशिकस्तदा ॥ २ ॥
पर्वतान् रूप्यसानूंश्च नलिनीश्च सपङ्कजाः ।
चित्रशालाश्च विविधास्तोरणानि च भारत ।
शाद्वलोपचितां भूमिं तथा काञ्चनकुट्टिमाम् ॥ ३ ॥

अनन्तर महातेजस्वी राजा नगरमें प्रविष्ट होकर पूर्वाह्णिकी किया क्रिया समाप्त करनेके अनन्तर भोजन करके भार्याके सहित रात्रि बिताने लगा । उस समय वे शोकरहित होके देवसदृश परस्परका नवयौवन देखके द्विजश्रेष्ठके दिये हुए श्रीसम्पन्न शरीर धारण करके सोकर आनन्दित हुए । अनन्तर भृगुकुलकी कीर्ति बढानेवाले तपस्वी च्यवनने मनीषाके द्वारा अनेक प्रकारके रत्नभूषित, समृद्धियुक्त, अत्यन्त रमणीय ऐसा बगीचा रचा कि जिसका इन्द्रकी अमरावती नगरीमें भी दर्शन होना दुर्लभ है । (६५–६९)

अनुशासनपर्वमें ५३ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें ५४ अध्याय ।

भीष्म बोले, अनन्तर महात्मा राजा कुशिक रात्रि बीतनेपर सावधान होके पूर्वान्हिक कार्योंको समाप्त करके भार्याके सहित उस बगीचेमें गये । हे भारत ! अनन्तर राजा कुशिकने गन्धर्वनगर-सदृश सहस्र मणिमय स्तम्भोंसे युक्त एक सुवर्णमय प्रासाद देखा । वह उस समय वहांपर सब दिव्य अभिप्राय देखने लगे । रमणीय सानुमय पर्वत, कमलोंके सहित नलिनीदल, अनेक प्रकारकी चित्रशाला और विचित्र तोरण अवलोकन किया । सुवर्ण प्रासादके

सहकारान्प्रफुल्लांश्च केतकोद्दालकान्वरान्।
अशोकान्सहकुन्दांश्च फुल्लांश्चैवातिमुक्तकान् ॥ ४ ॥
चम्पकांस्तिलकान् भव्यान्पनसान्वञ्जुलानपि।
पुष्पितान्कर्णिकारांश्च तत्र तत्र ददर्श ह ॥ ५ ॥
श्यामान्वारणपुष्पांश्च तथाऽष्टपदिकालताः।
तत्र तत्र परिक्लृप्ता ददर्श स महीपतिः ॥ ६ ॥
रम्यान्पद्मोत्पलधरान्सर्वर्तुकुसुमांस्तथा।
विमानप्रतिमांश्चापि प्रासादान्शैलसन्निभान् ॥ ७ ॥
शीतलानि च तोयानि क्वचिदुष्णानि भारत।
आसनानि विचित्राणि शयनप्रवराणि च ॥ ८ ॥
पर्यङ्कान् रत्नसौवर्णान्परार्ध्यास्तरणावृतान्।
भक्ष्यं भोज्यमनन्तं च तत्र तत्रोपकल्पितम् ॥ ९ ॥
वाणीवादाञ्छुकांश्चैव सारिकान्भृङ्गराजकान्।
कोकिलाञ्छतपत्रांश्च सकोयष्टिककुक्कुभान् ॥ १० ॥
मयूरान्कुक्कुटांश्चापि दात्यूहान् जीवजीवकान्।
चकोरान्वानरान्हंसान्सारसांश्चक्रसाह्वयान् ॥ ११ ॥
समन्ततः प्रमुदितान्ददर्श सुमनोहरान्।
क्वचिदप्सरसां संघान् गन्धर्वाणां च पार्थिव ॥ १२ ॥

नीचेके हिस्सेमें शाद्वल शस्योंसे युक्त भूमि प्रफुल्लित केतकी, उद्दालक, धव, अशोक, कुन्द, फले हुए अतिमुक्तक, चम्पक, तिलक, सुन्दर पनस, वञ्जुल और फूले हुए कर्णिकारके वृक्ष उस स्थान में देखे, श्यामवर्ण वारणपुष्प और अष्टपदिका लताओंको राजाने उस स्थानमें फैली हुई देखा। (१- ६)

हे भारत ! किसी स्थलमें सब ऋतुके पद्मोत्पलधर आदि सब वृक्ष, विमानकी भांति पर्वत सदृश ऊंचे समस्त प्रासाद, उत्तम शीतल जल, किसी किसी स्थलमें गर्म जल, किसी स्थानमें विचित्र उत्तम शय्या, बहुमूल्य आस्तरणयुक्त रत्नसुवर्णमय पलङ्ग और अनेक प्रकारके भक्षण और भोजनकी सामग्री उस स्थानमें उत्तम रीतिसे सज्जित तथा प्रस्तुत थी। वाक्पटु शुक, सारिका, भृङ्गराज, कोकिल, सारस, टिट्टिभक, वनकुक्कट, मयूर, कुक्कुट, दात्यूह, जीवजीव, चकोर, वानर, हंस और सारस, चक्रवाक आदि अत्यन्त

कान्ताभिरपरांस्तत्र परिष्वक्तान्ददर्श ह ।
न ददर्श च तान्भूयो ददर्श च पुनर्नृपः ॥ १३ ॥
गीतध्वनिं सुमधुरं तथैवाऽध्यापनध्वनिम् ।
हंसान्सुमधुरांश्चापि तत्र शुश्राव पार्थिवः ॥ १४ ॥
तं दृष्ट्वाऽत्यद्भुतं राजा मनसाचिन्तयत्तदा ।
स्वप्नोऽयं चित्तविभ्रंश उताहो सत्यमेव तु ॥ १५ ॥
अहो सह शरीरेण प्राप्तोऽस्मि परमां गतिम् ।
उत्तरान्वा कुरून्पुण्यानथवाप्यमरावतीम् ॥ १६ ॥
किं चेदं महदाश्चर्यं संपश्यामीत्यचिन्तयत् ।
एवं संचिन्तयन्नेव ददर्श मुनिपुङ्गवम् ॥ १७ ॥
तस्मिन्विमाने सौवर्णे मणिस्तम्भसमाकुले ।
महार्हे शयने दिव्ये शयानं भृगुनन्दनम् ॥ १८ ॥
तमभ्ययात्प्रहर्षेण नरेन्द्रः सह भार्यया ।
अन्तर्हितस्ततो भूयश्च्यवनः शयनं च तत् ॥ १९ ॥
ततोऽन्यस्मिन्वनोद्देशे पुनरेव ददर्श तम् ।
कौश्यां बृस्यां समासीनं जपमानं महाव्रतम् ॥ २० ॥

मनोहर पक्षियों और वानरोंके समूहको राजाने चारों ओर प्रमुदित देखा। ७-१२

किसी किसी स्थलमें अप्सरा और गन्धर्ववृन्द, कहींपर स्त्रियोंके संग रत अन्यान्य पुरुषोंको देखा; देखके फिर उनकी ओर दृष्टि नहीं की, राजाने उस स्थानमें उत्तम मधुर संगीत शब्द, अध्ययनध्वनि और हंसोंका शब्द सुना। राजाने उस अद्भुत कार्यको देखकर उस समय मन ही मन चिन्ता किया, कि यह स्वप्न अथवा चित्त-विभ्रम है वा सत्य ही होगा? क्या ही! आश्चर्य है, मैं सशरीर ही परम गतिको प्राप्त हुआ, अथवा पवित्र उत्तर कुरुदेश वा अमरावतीमें पहुंचा हूं। ओहो! क्या ही महत् आश्चर्य देख रहा हूं, इस ही प्रकार चिन्ता करने लगा। उसने इस ही प्रकार चिन्ता करते करते ही उस मणिस्तम्भसे युक्त सुवर्णके विमानमें महार्ह दिव्य शय्यापर सोये हुए मुनिश्रेष्ठ भृगुनन्दनका दर्शन किया। देखतेही राजा हर्षित होकर भार्याके सहित उस महर्षिके सामने गया। तब च्यवन उस शय्याके सहित फिर अंतर्द्धान हुए। (१२-१९)

अनन्तर राजाने किसी दूसरे वन-

एवं योगबलाद्विप्रो मोहयामास पार्थिवम् ।
क्षणेन तद्वनं चैव ते चैवाप्सरसां गणाः ॥ २१ ॥
गन्धर्वाः पादपाश्चैव सर्वमन्तरधीयत ।
निःशब्दमभवच्चापि गङ्गाकूलं पुनर्नृप ॥ २२ ॥
कुशवल्मीकभूयिष्ठं बभूव च यथा पुरा ।
ततः स राजा कुशिकः सभार्यस्तेन कर्मणा ॥ २३ ॥
विस्मयं परमं प्राप्तस्तद्दृष्ट्वा महदद्भुतम् ।
ततः प्रोवाच कुशिको भार्यां हर्षसमन्वितः ॥ २४ ॥
पश्य भद्रे यथा भावाश्चित्रा दृष्टाः सुदुर्लभाः ।
प्रसादाद्भृगुमुख्यस्य किमन्यत्र तपोबलात् ॥ २५ ॥
तपसा तदवाप्यं हि यत्तु शक्यं मनोरथैः ।
त्रैलोक्यराज्यादपि हि तप एव विशिष्यते ॥ २६ ॥
तपसा हि सुतप्तेन शक्यो मोक्षस्तपोबलात् ।
अहो प्रभावो ब्रह्मर्षेश्च्यवनस्य महात्मनः ॥ २७ ॥
इच्छयैष तपोवीर्यादन्याँल्लोकान्सृजेदपि ।
ब्राह्मणा एव जायेरन्पुण्यवाग्बुद्धिकर्मणः ॥ २८ ॥

स्थलमें कुशासनपर बैठे, उस महाव्रती, जपमें रत मुनिका फिर दर्शन किया। विप्रवर च्यवन मुनि इस ही प्रकार योगबलसे राजाको मोहित करने लगे, क्षणभरके बीच उस बगीचेमें अप्सरा गन्धर्वोंके सहित सब वृक्ष अन्तर्हित हुए। हे महाराज! गंगाका तट फिर निःशब्द हुआ जैसे पहले उसमें बहुतसे कुश और वाल्दके कण थे, वैसे ही रहे। अनन्तर राजा भार्याके सहित महत् अद्भुतकार्य देखके अत्यन्त विस्मित हुआ। अन्तमें हर्षयुक्त होके भार्यासे बोला, हे कल्याणी! हमने भृगुनन्दनके प्रसादसे अत्यन्त दुर्लभ विचित्र व्यापार अवलोकन किया, यह क्या तपोबलके अतिरिक्त अन्य कारणसे हो सकता है? (२०—२५)

जो मनोरथसे प्राप्त नहीं होता, वह तपस्याके सहारे प्राप्त हुआ करता है; तीनों लोकोंके राज्यसे तपस्या ही श्रेष्ठ है। उत्तम रीतिसे तपस्या करनेसे उस ही तपोबलसे मोक्षलाभकी सामर्थ्य होती है। महानुभाव ब्रह्मर्षि च्यवनका कैसा आश्चर्य प्रभाव है। ये इच्छा करनेसे ही तपोबलसे दूसरी सृष्टि कर सकते हैं। ब्राह्मण ही पुण्यवाक्, पूतबुद्धि

उत्सहेदिह कृत्वैव कोऽन्यो वै च्यवनादृते ।
ब्राह्मण्यं दुर्लभं लोके राज्यं हि सुलभं नरैः ॥ २९ ॥
ब्राह्मण्यस्य प्रभावाद्धि रथे युक्तौ स्वधुर्यवत् ।
इत्येवं चिन्तयानः स विदितश्च्यवनस्य वै ॥ ३० ॥
संप्रेक्ष्योवाच नृपतिं क्षिप्रमागम्यतामिति ।
इत्युक्तः सहभार्यस्तु सोऽभ्यगच्छन्महामुनिम् ॥ ३१॥
शिरसा वन्दनीयं तमवन्दत च पार्थिवः ।
तस्याशिषः प्रयुज्याथ स मुनिस्तं नराधिपम् ।
निषीदेत्यब्रवीद्धीमान्सान्त्वयन्पुरुषर्षभः ॥ ३२ ॥
ततः प्रकृतिमापन्नो भार्गवो नृपते नृपम् ।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा तर्पयन्निव भारत ॥ ३३ ॥
राजन्सम्यग्जितानीह पञ्च पञ्च स्वयं त्वया ।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि कृच्छ्रान्मुक्तोऽसि तेन वै ॥ ३४ ॥
सम्यगाराधितः पुत्र त्वया प्रवदतां वर ।
न हि ते वृजिनं किंचित्सुसूक्ष्ममपि विद्यते ॥ ३५ ॥
अनुजानीहि मां राजन्गमिष्यामि यथागतम् ।

और पवित्रकर्मा होकर जन्मते हैं। इस लोकमें च्यवनके अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष ऐसा कार्य करनेके लिये उत्साहवान हुआ करता है? इस लोकमें मनुष्योंके लिये ब्राह्मणत्व अत्यन्त दुर्लभ है, राज्य बहुत सहजमें प्राप्त होता है, ब्राह्मणके प्रभावसे ही हम निज रथकी धुरीमें जुते थे। राजाने इस ही प्रकार चिन्ता करते करते च्यवनको देखा। (२९–३०)

महर्षिने राजाको देखके कहा, जलदी आओ। राजा महर्षिकी ऐसी आज्ञा सुनके भार्याके सहित उस महामुनिके संमुख उपस्थित हुआ और उस वन्दनीय मुनिको सिर नीचा करके वन्दना की। हे पुरुषश्रेष्ठ! बुद्धिमान मुनि उस राजाको आशीर्वाद देकर उसे धीरज देते हुए बैठाकर मधुर वाणीसे बोले, हे राजन्! तुमने स्वयं मनके सहित सब इन्द्रियोंको पूरी रीतिसे जय किया है, इस ही निमित्त इस क्लेशसे मुक्त हुए। हे तात! वक्तृवर! मैं तुम्हारे द्वारा पूर्ण रीतिसे पूजित हुआ हूं तुममें सूक्ष्म परिमाणसे भी किञ्चिन्मात्र पाप नहीं है। हे महाराज! अब मुझे निज स्थानपर जानेके लिये अनुमति दो। हे

प्रीतोऽस्मि तव राजेन्द्र वरश्च प्रतिगृह्यताम् ॥ ३६ ॥
कुशिक उवाच- अग्निमध्ये गतेनेव भगवन्सन्निधौ मया ।
वर्तितं भृगुशार्दूल यन्न दग्धोऽस्मि तद्बहु ॥ ३७ ॥
एष एव वरो मुख्यः प्राप्तो मे भृगुनन्दन ।
यत्प्रीतोऽसि मया ब्रह्मन् कुलं त्रातं च मेऽनघ ॥ ३८॥
एष मेऽनुग्रहो विप्र जीविते च प्रयोजनम् ।
एतद्राज्यफलं चैव तपसश्च फलं मम ॥ ३९ ॥
यदि त्वं प्रीतिमान्विप्र मयि वै भृगुनन्दन ।
अस्ति मे संशयः कश्चित्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ४० ॥ [२८१२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे च्यवनकुशिकसंवादे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

च्यवन उवाच- वरश्च गृह्यतां मत्तो यश्च ते संशयो हृदि ।
तं प्रब्रूहि नरश्रेष्ठ सर्वं संपादयामि ते ॥ १ ॥
कुशिक उवाच- यदि प्रीतोऽसि भगवंस्ततो मे वद भार्गव ।
कारणं श्रोतुमिच्छामि मद्गृहे वासकारितम् ॥ २ ॥
शयनं चैकपार्श्वेन दिवसानेकविंशतिम् ।

राजेन्द्र ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं, तुम वर मांगो । (३१—३६)

कुशिक बोले, हे भृगुश्रेष्ठ ! मैं आपके समीप अग्निके बीच पडे हुए पुरुषकी भांति विद्यमान रहके जो भस्म नहीं हुआ, यही बहुत है। हे ब्रह्मन् पापरहित भृगुनन्दन ! यही मैंने मुख्य वर पाया, कि आप मुझपर प्रसन्न हुए और मेरे कुलकी रक्षा हुई है, यही मेरे ऊपर कृपा हुई है, यही मेरे जीवनका प्रयोजन है और यही मेरे राज्य और तपस्याका फल है । हे विप्र भृगुनन्दन ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हुए हों, तो मुझे कुछ सन्देह है, उस विषयकी आपको व्याख्या करनी उचित है ! (३७—४०)

अनुशासनपर्वमें ५४ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें ५५ अध्याय ।

च्यवन बोले, हे राजन् ! मेरे समीप वर ग्रहण करो और तुम्हारे मनमें जो सन्देह हो, वह भी कहो, मैं तुम्हारी सब कामना सिद्ध करूंगा । (१)

कुशिक बोले, हे भगवन् भार्गव ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हुए हैं, तो आपने मेरे गृहमें जिस लिये निवास किया था, उसका कारण कहिये, मैं

अकिंचिदुक्त्वा गमनं बहिश्च मुनिपुङ्गव ॥ ३ ॥
अन्तर्धानमकस्माच्च पुनरेव च दर्शनम् ।
पुनश्च शयनं विप्र दिवसानेकविंशतिम् ॥ ४ ॥
तैलाभ्यक्तस्य गमनं भोजनं च गृहे मम ।
समुपानीय विविधं यद्दग्धं जातवेदसा ॥ ५ ॥
निर्याणं च रथेनाशु सहसा यत्कृतं त्वया ।
धनानां च विसर्गश्च वनस्यापि च दर्शनम् ॥ ६ ॥
प्रासादानां बहूनां च काञ्चनानां महामुने ।
मणिविद्रुमपादानां पर्यङ्काणां च दर्शनम् ॥ ७ ॥
पुनश्चादर्शनं तस्य श्रोतुमिच्छामि कारणम् ।
अतीव ह्यत्र मुह्यामि चिन्तयानो भृगूद्वह ॥ ८ ॥
न चैवात्राधिगच्छामि सर्वस्यास्य विनिश्चयम् ।
एतदिच्छामि कार्त्स्न्येन सत्यं श्रोतुं तपोधन ॥ ९ ॥
च्यवन उवाच– शृणु सर्वमशेषेण यदिदं येन हेतुना ।
न हि शक्यमनाख्यातुमेवं पृष्टेन पार्थिव ॥ १० ॥
पितामहस्य वदतः पुरा देवसमागमे ।
श्रुतवानस्मि यद्राजंस्तन्मे निगदतः शृणु ॥ ११ ॥

उसे सुननेकी इच्छा करता हूं। हे मुनिश्रेष्ठ! आप एक पार्श्वसे सोये रहके कुछ भी न कहके बाहर निकले और अकस्मात् अन्तर्द्धान हुए, फिर दर्शन दिया। फिर इक्कीस दिनतक सोये रहे, तेल लगाके गमन किया, मेरे भवनमें विविध भोजनकी सामग्री मंगाके अग्निके सहारे उसे भस्म कराया, सहसा रथपर चढके नगरमें घूमे, धन दान किया और वन प्रदर्शित करके अनेक प्रकारके सुवर्णमय प्रासाद, मणि और विद्रुमनिर्मित पलंग आदि प्रदर्शित किया, फिर उन सब वस्तुओंका अदर्शन हुआ। हे महामुनि! इन सबके कारणको मैं सुननेकी इच्छा करता हूं। हे भृगुकुलधुरन्धर! मैं इन सब विषयोंकी चिन्ता करते हुए अत्यन्त मुग्ध होरहा हूं। हे तपोधन! इसलिये मैं यह समस्त विषय सत्य तथा यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं। (२—९)

च्यवन बोले, हे महाराज! ये सब विषय जिस कारणसे हुए हैं, उसे सुनो। जिसने इसे देखा है, वह इन सब विषयोंको नहीं कह सकता। पहले

ब्रह्मक्षत्रविरोधेन भविता कुलसंकरः ।
पौत्रस्ते भविता राजंस्तेजोवीर्यसमन्वितः ॥ १२ ॥
ततस्ते कुलनाशार्थमहं त्वां समुपागतः ।
चिकीर्षन्कुशिकोच्छेदं संदिधक्षुः कुलं तव ॥ १३ ॥
ततोऽहमागम्य पुरे त्वामवोचं महीपते ।
नियमं कंचिदारप्स्ये शुश्रूषा क्रियतामिति ॥ १४ ॥
न च ते दुष्कृतं किंचिदहमासादयं गृहे ।
तेन जीवसि राजर्षे न भवेथास्त्वमन्यथा ॥ १५ ॥
एवं बुद्धिं समास्थाय दिवसानेकविंशतिम् ।
सुप्तोऽस्मि यदि मां कश्चिद्बोधयेदिति पार्थिव ॥ १६ ॥
यदा त्वया सभार्येण संसुप्तो न प्रबोधितः ।
अहं तदैव ते प्रीतो मनसा राजसत्तम ॥ १७ ॥
उत्थाय चास्मि निष्क्रान्तो यदि मां त्वं महीपते ।
पृच्छेः क्व यास्यसीत्येवं शपेयं त्वामिति प्रभो ॥ १८ ॥
अन्तर्हितः पुनश्चास्मि पुनरेव च ते गृहे ।

समयमें देवताओंके इकठे होनेपर पितामहने जो कथा कही थी, उसे मैंने सुना था। हे राजन्! इस समय उसे कहता हूं, सुनो। ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके परस्पर विरोधके कारण कुलसङ्कर होगा। हे महाराज! तेज और पराक्रमसे युक्त तुम्हारे एक पौत्र जन्मेगा। इस ही लिये मैं तुम्हारा वंश नाश करनेके निमित्त तुम्हारे समीप आया था, कुशिकवंशके नाश करनेकी कामना करते हुए तुम्हारे वंशको जलानेके लिये मेरी इच्छा थी। (१०—१३)

उस ही निमित्त मैंने तुम्हारे गृहमें आके पहलेही यह वचन कहा था, कि मैं कोई नियम आरम्भ करूंगा, तुम लोग मेरी सेवा करो। मैंने तुम्हारे गृहमें कोई दुष्कर कार्य नहीं देखा; हे राजर्षि! इस ही लिये तुम जीवित हो, तुम्हारी प्रकृतिमें कुछ विकृति नहीं हुई है। मैं यही विचारके इक्कीस दिनतक गृहमें सोया था, कि यदि कोई इतने समयके बीच मुझे जगावे। हे नृपसत्तम! परन्तु मेरे सोनेपर जब भार्याके सहित तुमने मेरी सेवा करते हुए निद्रा भङ्ग नहीं की, उस ही समय मैं तुम्हारे ऊपर मन ही मन प्रसन्न हुआ था। हे महाराज! जब मैं उठके बाहर निकला, उस समय यदि तुम मुझसे पूछते, कि

योगमास्थाय संसुप्तो दिवसानेकविंशतिम् ॥ १९ ॥
क्षुधितौ मामसूयेथां श्रमाद्वेति नराधिप ।
एवं बुद्धिं समास्थाय कर्शितौ वां क्षुधा मया ॥ २० ॥
न च तेऽभूत्सुसूक्ष्मोऽपि मन्युर्मनसि पार्थिव ।
सभार्यस्य नरश्रेष्ठ तेन ते प्रीतिमानहम् ॥ २१ ॥
भोजनं च समानाय्य यत्तदा दीपितं मया ।
क्रुद्ध्येथा यदि मात्सर्यादिति तन्मर्षितं च मे ॥ २२ ॥
ततोऽहं रथमारुह्य त्वामवोचं नराधिप ।
सभार्यो मां वहस्वेति तच्च त्वं कृतवांस्तथा ॥ २३ ॥
अविशङ्को नरपते प्रीतोऽहं चापि तेन ह ।
धनोत्सर्गेऽपि च कृते न त्वां क्रोधः प्रधर्षयत् ॥ २४ ॥
ततः प्रीतेन ते राजन् पुनरेतत्कृतं तव ।
सभार्यस्य वनं भूयस्तद्विद्धि मनुजाधिप ॥ २५ ॥
प्रीत्यर्थं तव चैतन्मे स्वर्गसंदर्शनं कृतम् ।

'कहां जाओगे ?' तो मैं तुम्हें शाप देता। हे महाराज! अनन्तर मैं अन्तर्द्धान होकर तुम्हारे गृहमें योग अवलम्बन करके फिर इक्कीस दिन सोता था। (१४—१९)

हे नरनाथ! तुम लोग भूखे अथवा परिश्रमसे थककर मेरे विषयमें असूया करो, ऐसा ही विचारके मैंने तुम्हें क्षुधासे कर्षित किया था। हे नरश्रेष्ठ महाराज! भार्याके सहित तुम्हारे अन्तःकरणमें अत्यन्त सूक्ष्म परिमाणसे भी विकार नहीं हुआ, इसहीसे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं। भोजनकी सारी सामग्री मंगाके उस समय मैंने जो भस्म कराई थी, उसका यही तात्पर्य था, कि यदि तुम लोग मत्सरताके वशमें होकर मेरे विषयमें क्रोध करते, तो मैं तुम्हें शाप देता; परन्तु उस समय तुमने मेरे विषयमें क्षमा की थी। (२०—२२)

हे नरनाथ! अनन्तर मैंने रथपर चढके तुमसे कहा कि तुम भार्याके सहित " रथमें जुतकर मुझे ले चलो " तुमने शङ्कारहित होके वही किया। हे राजन्! उस कारणसे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं। मैं जब तुम्हारा धन लोगोंको दे रहा था, तब भी क्रोध तुम्हें आक्रमण न कर सका। हे नरनाथ महाराज जान रखो, कि इन्हीं कारणोंसे भार्याके सहित तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होकर मैंने फिर उस वनको

यत्ते वनेऽस्मिन्नृपते दृष्टं दिव्यं निदर्शनम् ॥ २६ ॥
स्वर्गोद्देशस्त्वया राजन् सशरीरेण पार्थिव ।
मुहूर्तमनुभूतोऽसौ सभार्येण नृपोत्तम ॥ २७ ॥
निदर्शनार्थं तपसो धर्मस्य च नराधिप ।
तत्र याऽऽसीत्स्पृहा राजंस्तच्चापि विदितं मया ॥ २८॥
ब्राह्मण्यं काङ्क्षसे हि त्वं तपश्च पृथिवीपते ।
अवमन्य नरेन्द्रत्वं देवेन्द्रत्वं च पार्थिव ॥ २९ ॥
एवमेतद्यथाऽऽत्थ त्वं ब्राह्मण्यं तात दुर्लभम् ।
ब्राह्मणे सति चर्षित्वमृषित्वे च तपस्विता ॥ ३० ॥
भविष्यत्येष ते कामः कुशिकात्कौशिको द्विजः ।
तृतीयं पुरुषं तुभ्यं ब्राह्मणत्वं गमिष्यति ॥ ३१ ॥
वंशस्ते पार्थिवश्रेष्ठ भृगूणामेव तेजसा ।
पौत्रस्ते भविता विप्र तपस्वी पावकद्युतिः ॥ ३२ ॥
यः स देवमनुष्याणां भयमुत्पादयिष्यति ।
त्रयाणामेव लोकानां सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ३३ ॥
वरं गृहाण राजर्षे यत्ते मनसि वर्तते ।

उत्पन्न किया था। मैंने तुम्हारी प्रसन्नताके लिये तुम्हें स्वर्ग दिखाया है। हे राजन्! इस वनके बीच तुमने दिव्यदर्शन देखा है, उसहीसे भार्याके सहित मुहूर्तभर तुम्हें स्वर्गसुख अनुभव हुआ है। हे नरनाथ! तपस्या और धर्मके निदर्शनके विषयमें उस समय तुम्हारे मनमें जो स्पृहा हुई थी, वह भी मुझे अविदित नहीं है। (२३—२८)

हे पृथ्वीनाथ! तुमने नरेन्द्रत्व तथा देवेन्द्रपदकी भी अवज्ञा करके ब्राह्मणत्व तथा तपस्याकी आकांक्षा की है। हे तात! तुमने जो ब्राह्मणत्वको अत्यन्त दुर्लभ कहा, वह यथार्थ है। ब्राह्मणत्व होनेपर ऋषित्व दुर्लभ है, ऋषित्व पदकी प्राप्ति होनेपर तपस्विता अत्यन्त दुर्लभ है। जो हो, तुम्हारी यह कामना सफल होगी। कुशिकसे कौशिक द्विज जन्मेगा; तुम्हारी तीसरी पीढीमें ब्राह्मणत्व संक्रान्त होगा। हे नृपश्रेष्ठ! भृगुवंशके तेजसे तुम्हारा वंश वर्द्धित होगा, तुम्हारा पौत्र ब्राह्मण, तपस्वी और अग्निके समान तेजस्वी होगा, वह तीनों लोकोंके बीच सदा ही देववृन्द और मनुष्योंको भय उत्पन्न करेगा; यह मैं तुमसे सत्य ही कहता

तीर्थयात्रां गमिष्यामि पुरा कालोऽभिवर्तते ॥ ३४ ॥
कुशिक उवाच- एष एव वरो मेऽद्य यस्त्वं प्रीतो महामुने ।
भवत्वेतद्यथाऽऽत्थ त्वं भवेत्पौत्रो ममानघ ॥ ३५ ॥
ब्राह्मण्यं मे कुलस्यास्तु भगवन्नेष मे वरः ।
पुनश्चाख्यातुमिच्छामि भगवन्विस्तरेण वै ॥ ३६ ॥
कथमेष्यति विप्रत्वं कुलं मे भृगुनन्दन ।
कश्चासौ भविता बन्धुर्मम कश्चापि संमतः ॥ ३७ ॥ [२८३९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे च्यवनकुशिकसंवादे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

च्यवन उवाच- अवश्यं कथनीयं मे तवैतन्नरपुङ्गव ।
यदर्थं त्वाहमुच्छेत्तुं संप्राप्तो मनुजाधिप ॥ १ ॥
भृगूणां क्षत्रिया याज्या नित्यमेतज्जनाधिप ।
ते च भेदं गमिष्यन्ति दैवयुक्तेन हेतुना ॥ २ ॥
क्षत्रियाश्च भृगून्सर्वान्वधिष्यन्ति नराधिप ।
आगर्भादनुकृन्तन्तो दैवदण्डनिपीडिताः ॥ ३ ॥
तत उत्पत्स्यतेऽस्माकं कुले गोत्रविवर्धनः ।

हूं । हे राजर्षि ! तुम्हारे अन्तःकरणमें जो अभिलाष हो, वह वर मांगो, मैं सब तीर्थोंमें घूमनेके लिये जाऊंगा, समय बीत रहा है । (२९—३४)

कुशिक बोले, हे महामुनि ! आप जो मुझपर प्रसन्न हुए, यही मेरे लिये वर है । हे पापरहित ! आप जैसा कहते हैं, मेरा पौत्र वैसाही होवे । हे भगवन् ! मेरा वंश ब्राह्मण होवे, यही मेरे लिये वर है । मेरी यह अभिलाषा है, कि इस विषयको आप फिर विस्तार-पूर्वक वर्णन करें । हे भृगुनन्दन ! किस प्रकार मेरे कुलमें ब्राह्मणत्व आवेगा ? कौन मुझसे सम्मत मेरा बन्धु होगा ? (३५—३७)

अनुशासनपर्वमें ५५ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें ५६ अध्याय ।

च्यवन बोले, हे नरनाथ ! जिस निमित्त मैं तुम्हारा नाश करनेके लिये आया था, वह तुमसे अवश्य कहना योग्य है । हे प्रजानाथ ! क्षत्रिय लोग भृगुवंशियोंके सदासे यजमान हैं, दैववश उनमें विभिन्नता होगी । हे नरनाथ ! सारे दैवदण्डसे निपीडित होकर गर्भ पर्यन्त नष्ट करते हुए भृगुवंशियोंका वध करेंगे । अनन्तर हमारे कुल और

ऊर्वो नाम महातेजा ज्वलनार्कसमद्युतिः ॥ ४ ॥
स त्रैलोक्यविनाशाय कोपाग्निं जनयिष्यति ।
महीं सपर्वतवनां यः करिष्यति भस्मसात् ॥ ५ ॥
कंचित्कालं तु वन्हिं च स एव शमयिष्यति ।
समुद्रे वडवावक्त्रे प्रक्षिप्य मुनिसत्तमः ॥ ६ ॥
पुत्रं तस्य महाराज ऋचीकं भृगुनन्दनम् ।
साक्षात्कृत्स्नो धनुर्वेदः समुपस्थास्यतेऽनघ ॥ ७ ॥
क्षत्रियाणामभावाय दैवयुक्तेन हेतुना ।
स तु तं प्रतिगृह्यैव पुत्रे संक्रामयिष्यति ॥ ८ ॥
जमदग्नौ महाभागे तपसा भावितात्मनि ।
स चापि भृगुशार्दूलस्तं वेदं धारयिष्यति ॥ ९ ॥
कुलात्तु तव धर्मात्मन्कन्यां सोऽभिगमिष्यति ।
उद्भावनार्थं भवतो वंशस्य भरतर्षभ ॥ १० ॥
गाधेर्दुहितरं प्राप्य पौत्रीं तव महातपाः ।
ब्राह्मणं क्षत्रधर्माणं पुत्रमुत्पादयिष्यति ॥ ११ ॥
क्षत्रियं विप्रकर्माणं बृहस्पतिमिवौजसा ।

गोत्रकी वृद्धि करनेवाले अग्निदेव तथा सूर्यके समान तेजसे युक्त ऊर्व नाम एक महातेजस्वी पुरुष उत्पन्न होगा। वह तीनों लोकोंको नष्ट करनेके लिये कोपानल उत्पन्न करेगा, पर्वतों और वनोंके सहित पृथ्वीमण्डलको भस्मीभूत करेगा। वह मुनिसत्तम समुद्रके बीच वडवामुखमें उस अग्निको डाल कर कुछ समयके लिये शान्त रखेगा। हे पापरहित महाराज! उनके पुत्र भृगुनन्दन ऋचीकके समीप समस्त धनुर्वेद प्रत्यक्षमेंही उपस्थित होगा। (१–७)

दैव कारणसे क्षत्रियोंके अभावके हेतु वह उस धनुर्वेदको ग्रहण करके तपस्याके सहारे शुद्ध चित्तवाले निज पुत्र जमदग्निमें उसे स्थापित करेंगे। हे भृगुश्रेष्ठ! जमदग्नि उसही धनुर्वेदको धारण करेंगे। हे धर्मात्मन्! वही जमदग्नि तुम्हारे वंशसे कन्या ग्रहण करके उससे वंशकी उत्पत्तिके निमित्त विवाह करे। महातपस्वी जमदग्नि तुम्हारे पौत्र गाधिकी पुत्रीको पाके उसके गर्भसे क्षत्रिय-धर्मयुक्त ब्राह्मण पुत्र उत्पन्न करेगा और वही तुम्हारे वंशमें गाधिके वीर्यसे महातेजस्वी, तेजमें बृहस्पतिके समान, अत्यन्त धार्मिक,

विश्वामित्रं तव कुले गाधेः पुत्रं सुधार्मिकम् ॥ १२ ॥
तपसा महता युक्तं प्रदास्यति महाद्युते।
स्त्रियौ तु कारणं तत्र परिवर्ते भविष्यतः ॥ १३ ॥
पितामहनियोगाद्वै नान्यथैतद्भविष्यति।
तृतीये पुरुषे तुभ्यं ब्राह्मणत्वमुपैष्यति।
भविता त्वं च संबन्धी भृगूणां भावितात्मनाम् ॥१४॥
भीष्म उवाच– कुशिकस्तु मुनेर्वाक्यं च्यवनस्य महात्मनः।
श्रुत्वा हृष्टोऽभवद्राजा वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ १५ ॥
एवमस्त्विति धर्मात्मा तदा भरतसत्तम।
च्यवनस्तु महातेजाः पुनरेव नराधिपम् ॥ १६ ॥
वरार्थं चोदयामास तमुवाच स पार्थिवः।
बाढमेवं करिष्यामि कामं त्वत्तो महामुने ॥ १७ ॥
ब्रह्मभूतं कुलं मेऽस्तु धर्मे चास्य मनो भवेत् ॥ १८ ॥
एवमुक्तस्तथेत्येवं प्रत्युक्त्वा च्यवनो मुनिः।
अभ्यनुज्ञाय नृपतिं तीर्थयात्रां ययौ तदा ॥ १९ ॥
एतत्ते कथितं सर्वमशेषेण मया नृप।
भृगूणां कुशिकानां च अभिसंबन्धकारणम् ॥ २० ॥
यथोक्तमृषिणा चापि तदा तदभवन्नृप।

महातपस्याशाली, विप्रकर्म करनेवाला विश्वामित्र नामक क्षत्रिय पुत्र प्रदान करेगा। उस परिवर्त्तन विषयमें दोनों स्त्रीही कारण होंगी; पितामहके नियोगसे यह अन्यथा न होगा। तीसरी पीढीमें तुम्हारे वंशमें ब्राह्मणत्व होगा। तुम शुद्धचित्त भार्गवोंके सम्बन्धी होगे। (८—१४)

भीष्म बोले, हे भरतसत्तम! उस समय धर्मात्मा राजा कुशिक महानुभाव च्यवन मुनिका वचन सुनके आनन्दित हुए और कहा कि ऐसाही होवे। महातेजस्वी च्यवनने फिर उस राजासे वर मांगनेको कहा। राजा उनसे बोला, हे महामुनि! अच्छा मैं आपके समीप इच्छानुसार वर मांगता हूं, मेरा वंश ब्राह्मणकुलमें परिणत होवे और इस वंशकी बुद्धि धर्ममें रत रहे। च्यवन मुनि राजाका वचन सुनके बोले, कि ऐसा ही होगा, अनन्तर राजासे अनुमति लेकर तीर्थयात्राके लिये गमन किया। हे राजन्! यह मैंने भृगु और

जन्म रामस्य च मुनेर्विश्वामित्रस्य चैव हि ॥ २१ ॥ [२८९०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे च्यवनकुशिकसंवादे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

युधिष्ठिर उवाच– मुह्यामीव निशम्याद्य चिन्तयानः पुनः पुनः ।
हीनां पार्थिवसंघातैः श्रीमद्भिः पृथिवीमिमाम् ॥ १ ॥
प्राप्य राज्यानि शतशो महीं जित्वाऽथ भारत ।
कोटिशः पुरुषान्हत्वा परितप्ये पितामह ॥ २ ॥
का नु तासां वरस्त्रीणां समवस्था भविष्यति ।
या हीनाः पतिभिः पुत्रैर्मातुलैर्भ्रातृभिस्तथा ॥ ३ ॥
वयं हि तान् कुरून्हत्वा ज्ञातींश्च सुहृदोऽपि वा ।
अवाक्शीर्षाः पतिष्यामो नरके नात्र संशयः ॥ ४ ॥
शरीरं योक्तुमिच्छामि तपसोग्रेण भारत ।
उपदिष्टमिहेच्छामि तत्त्वतोऽहं विशाम्पते ॥ ५ ॥
वैशम्पायन उवाच– युधिष्ठिरस्य तद्वाक्यं श्रुत्वा भीष्मो महामनाः ।
परीक्ष्य निपुणं बुद्ध्या युधिष्ठिरमभाषत ॥ ६ ॥

कुशिक गणके परस्पर सम्बन्धका कारण विस्तारपूर्वक तुमसे कहा है। हे महाराज! च्यवन ऋषिने राम और विश्वामित्र मुनिके जन्म विषयमें जिस प्रकार कहा था, उस समय वैसा ही हुआ। (१८-२१)

अनुशासनपर्वमें ५६ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ५७ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत पितामह! मैं आपका वचन सुनके बार बार उसे विचारके तथा श्रीमान् राजाओंसे रहित इस पृथ्वीके दशाकी पर्यालोचना करके बहुत ही मुग्ध होता हूं। हे भारत! मैं पृथ्वीमण्डल जीतकर सैकडों राज्य पाके भी करोडों पुरुषोंका संहार करनेसे इस समय परिताप करता हूं। जो सब वरवर्णिनी स्त्रियें पति, पुत्र, भ्राता और मामा आदिसे हीन हुई हैं, उनकी कैसी अवस्था होगी? हम उस कुरुकुल, स्वजनों और सुहृदोंको मारनेसे अवाक्शिरा होके निःसन्देह नरकमें पडेंगे। हे भारत। मैं उग्र तपस्यासे शरीरको संयुक्त करनेकी इच्छा करता हूं। हे नरनाथ! इस समय मुझे आपका यथार्थ उपदेश सुननेकी अभिलाष है। (१-५)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महात्मा भीष्म, युधिष्ठिरका ऐसा वचन सुनके

रहस्यमद्भुतं चैव शृणु वक्ष्यामि यत्त्वयि ।
या गतिः प्राप्यते येन प्रेत्यभावे विशाम्पते ॥ ७ ॥
तपसा प्राप्यते स्वर्गस्तपसा प्राप्यते यशः ।
आयुःप्रकर्षो भोगाश्च लभ्यन्ते तपसा विभो ॥ ८ ॥
ज्ञानं विज्ञानमारोग्यं रूपं संपत्तथैव च ।
सौभाग्यं चैव तपसा प्राप्यते भरतर्षभ ॥ ९ ॥
धनं प्राप्नोति तपसा मौनेनाज्ञां प्रयच्छति ।
उपभोगांस्तु दानेन ब्रह्मचर्येण जीवितम् ॥ १० ॥
अहिंसायाः फलं रूपं दीक्षाया जन्म वै कुले ।
फलमूलाशिनां राज्यं स्वर्गः पर्णाशिनां भवेत् ॥ ११ ॥
पयोभक्षो दिवं याति दानेन द्रविणाधिकः ।
गुरुशुश्रूषया विद्या नित्यश्राद्धेन संततिः ॥ १२ ॥
गवाढ्यः शाकदीक्षाभिः स्वर्गमाहुस्तृणाशिनाम् ।
स्त्रियस्त्रिषवणं स्नात्वा वायुं पीत्वा क्रतुं लभेत् ॥ १३ ॥

बुद्धिके सहारे विचार करके बोले, हे नरनाथ! तुममें जो अद्भुत रहस्य प्रकट हुआ है। उस विषयमें मरनेके अनन्तर जिस पुरुषको जो गति प्राप्त होती है, उसे कहता हूं, सुनो। (६—७)

हे विभु! तपस्याके सहारे स्वर्ग मिलता है, तपस्यासे यशलाभ हुआ करता है, तपस्यासे ही परमायुकी प्रकर्षता तथा भोग प्राप्त होते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! तपस्याके सहारे ज्ञान, विज्ञान, आरोग्यता, रूप, सम्पति और सौभाग्य प्राप्त होता है। मौनव्रतसे जगतके प्राणियोंपर आज्ञा प्रदान करनेकी सामर्थ्य प्राप्त होती है। दानसे समस्त उपभोग और ब्रह्मचर्यके द्वारा उत्तम दीर्घ परमायु प्राप्त होती है। (८–१०)

अहिंसाका फल रूप है, दीक्षाका सत्कुलमें जन्म, फल और मूल भोजन करनेवाले मनुष्योंका फल राज्य और पत्ते खानेवालोंको स्वर्गप्राप्ति हुआ करती है। जो लोग दूध पीके रहते उन्हें स्वर्ग मिलता है। दानके सहारे मनुष्य अधिक द्रविणयुक्त हुआ करता है, गुरुसेवासे विद्या मिलती है और प्रतिदिन श्राद्ध करनेसे संतति प्राप्त होती है। शाक भोजन करनेसे मनुष्य गोधनसे युक्त हुआ करता है। ऋषि लोग कहा करते हैं, कि तृणभक्षकोंको स्वर्ग मिलता है। जो लोग तीन बार स्नानकर वायुपान तथा प्राणायाम

नित्यस्नायी भवेद्दक्षः संध्ये तु द्वे जपन्द्विजः ।
मरुं साधयतो राजन्नाकपृष्ठमनाशके ॥ १४ ॥
स्थण्डिले शयमानानां गृहाणि शयनानि च ।
चीरवल्कलवासोभिर्वासांस्याभरणानि च ॥ १५ ॥
शय्यासनानि यानानि योगयुक्ते तपोधने ।
अग्निप्रवेशे नियतं ब्रह्मलोके महीयते ॥ १६ ॥
रसानां प्रतिसंहारात्सौभाग्यमिह विन्दति ।
आमिषप्रतिसंहारात्प्रजा ह्यायुष्मती भवेत् ॥ १७ ॥
उदवासं वसेद्यस्तु स नराधिपतिर्भवेत् ।
सत्यवादी नरश्रेष्ठ दैवतैः सह मोदते ॥ १८ ॥
कीर्तिर्भवति दानेन तथाऽऽरोग्यमहिंसया ।
द्विजशुश्रूषया राज्यं द्विजत्वं चापि पुष्कलम् ॥ १९ ॥
पानीयस्य प्रदानेन कीर्तिर्भवति शाश्वती ।
अन्नस्य तु प्रदानेन तृप्यन्ते कामभोगतः ॥ २० ॥
सान्त्वदः सर्वभूतानां सर्वशोकैर्विमुच्यते ।

करके निवास करते हैं, उन्हें प्रजापति लोक प्राप्त होता है । (११-१३)

जो ब्राह्मण प्रतिदिन स्नान करके प्रातः और सायं सन्ध्याके समय जप करता है, वह दक्ष प्रजापति होता है, जो पुरुष जलरहित स्थलमें साधना करता है, उसे राज्य मिलता और अनशन व्रत अवलम्बन करनेसे नाकपृष्ठमें वास हुआ करता है। कुशापर सोनेवाले तपस्वियोंको गृह और शय्या मिलती है, चीर और वल्कल वसन दान करनेसे विचित्र वस्त्र तथा समस्त आभूषण मिलते हैं । योगयुक्त तपस्वियोंके निकट शय्या, आसन, तथा समस्त सवारियें उपस्थित होती हैं, अग्निमें प्रवेश करनेसे सदा ब्रह्मलोकमें वास हुआ करता है । रसोंका परित्याग करनेसे इस लोकमें सौभाग्य प्राप्त होता है, मांस त्यागनेसे आयुष्मती सन्तान उत्पन्न हुआ करती है, जो लोग जलके बीच वास करते हैं, वे स्वर्गमें राजा होते हैं । सत्यवादी मनुष्य देवताओंके सहित आनन्दित हुआ करते हैं । (१४—१८)

दानसे कीर्त्ति होती है, अहिंसाके सहारे नीरोगता प्राप्त हुआ करती है, द्विजसेवासे प्रचुर राज्य और द्विजत्व प्राप्त होता है । जल दान करनेसे शाश्वती कीर्त्ति प्राप्त हुआ करती है,

देवशुश्रूषया राज्यं दिव्यं रूपं नियच्छति ॥ २१ ॥
दीपालोकप्रदानेन चक्षुष्मान्भवते नरः ।
प्रेक्षणीयप्रदानेन स्मृतिं मेधां च विन्दति ॥ २२ ॥
गन्धमाल्यप्रदानेन कीर्तिर्भवति पुष्कला ।
केशश्मश्रु धारयतामग्र्या भवति संततिः ॥ २३ ॥
उपवासं च दीक्षां च अभिषेकं च पार्थिव ।
कृत्वा द्वादश वर्षाणि वीरस्थानाद्विशिष्यते ॥ २४ ॥
दासीदासमलंकारान् क्षेत्राणि च गृहाणि च ।
ब्रह्मदेयां सुतां दत्त्वा प्राप्नोति मनुजर्षभ ॥ २५ ॥
क्रतुभिश्चोपवासैश्च त्रिदिवं याति भारत ।
लभते च शिवं ज्ञानं फलपुष्पप्रदो नरः ॥ २६ ॥
सुवर्णशृङ्गैस्तु विराजितानां गवां सहस्रस्य नरः प्रदानात् ।
प्राप्नोति पुण्यं दिवि देवलोकमित्येवमाहुर्दिवि देवसंघाः ॥२७॥
प्रयच्छते यः कपिलां सवत्सां कांस्योपदोहां कनकाग्रशृङ्गीम् ।
तैस्तैर्गुणैः कामदुहास्य भूत्वा नरं प्रदातारमुपैति सा गौः ॥ २८ ॥

अन्न दान करनेसे काम भोग दीखता है। जो लोग सब भूतोंके विषयमें सान्त्ववचन कहते हैं, वे सब लोकोंसे विमुक्त होते हैं। देवसेवासे राज्य और दिव्यरूप प्राप्त होता है, दीपककी रोशनी दान करनेसे मनुष्य नेत्रवान हुआ करते हैं। प्रेक्षणीय प्रदान करनेसे स्मृति और बुद्धि प्राप्त होती है, सुगन्ध और माला दान करनेसे बहुतही कीर्त्ति हुआ करती है, केश तथा श्मश्रुधारी मनुष्यों-की श्रेष्ठ सन्तति होती है। (१९-२३)

हे महाराज! बारह वर्षतक सब भोगोंको परित्याग करके जप आदि नियमोंको स्वीकार और त्रिकाल स्नान करनेसे वीरस्थानसे भी श्रेष्ठ गति प्राप्त होती है। हे पुरुषश्रेष्ठ! ब्राह्मविवाहकी विधिके अनुसार कन्या दान करनेसे मनुष्य दासदासी, आभूषण, क्षेत्र और गृह आदि पाता है। हे भारत! यज्ञ और उपवासके द्वारा मनुष्य सुरपुरमें गमन करता है, फल फूलसे परमेश्वरकी आराधना करनेसे मनुष्य बन्धन छुडाने-वाला ज्ञान लाभ किया करता है। सोनेकी सींगसे शोभित करके सहस्र गऊ दान करनेसे मनुष्य स्वर्गके बीच पवित्र देवलोक पाता है, स्वर्गवासी देववृन्द ऐसा ही कहा करते हैं। जो लोग कांसेके दोहनपात्रसे युक्त सुवर्ण-

यावन्ति रोमाणि भवन्ति धेन्वास्तावत्कालं प्राप्य स गोप्रदानात् ।
पुत्रांश्च पौत्रांश्च कुलं च सर्वमासप्तमं तारयते परत्र ॥ २९ ॥
सदक्षिणां काञ्चनचारुशृङ्गीं कांस्योपदोहां द्रविणोत्तरीयाम् ।
धेनुं तिलानां ददतो द्विजाय लोका वसूनां सुलभा भवन्ति ॥३०॥
स्वकर्मभिर्मानवं संनिरुद्धं तीव्रान्धकारे नरके पतन्तम् ।
महार्णवे नौरिव वायुयुक्ता दानं गवां तारयते परत्र ॥ ३१ ॥
यो ब्रह्मदेयां तु ददाति कन्यां भूमिप्रदानं च करोति विप्रे ।
ददाति चान्नं विधिवच्च यश्च स लोकमाप्नोति पुरन्दरस्य ॥ ३२ ॥
नैवेशिकं सर्वगुणोपपन्नं ददाति वै यस्तु नरो द्विजाय ।
स्वाध्यायचारित्र्यगुणान्विताय तस्याऽपि लोकाः कुरूषूत्तरेषु ॥३३॥
धुर्यप्रदानेन गवां तथा वै लोकानवाप्नोति नरो द्विजाय ।
स्वर्गाय चाहुस्तु हिरण्यदानं ततो विशिष्टं कनकप्रदानम् ॥ ३४ ॥

भूषित सींगवाली सवत्सा गऊ दान करते हैं, वह गऊ उन्हीं गुणोंके द्वारा उस दान देनेवालेके निकट प्रयोजन सिद्ध करनेवाली होकर स्वयं उपस्थित होती है। (२४—२८)

गऊके शरीरमें जितने परिमाणसे रोएँ रहते हैं, गोदान करनेवाला उतने ही परिमाणसे फल पाता और पुत्र पौत्र लाभ करके परलोकके सात पुरुष पर्यन्त कुलका उद्धार करता है। सुवर्णके बने सुन्दर सींगवाली, कांसेके दोहन-पात्रसे युक्त, द्रविणोत्तरीय तिलगऊ दक्षिणाके सहित जो लोग ब्राह्मणको देते हैं, उनके लिये वसुगणका लोक सुलभ होता है। जब मनुष्य निज कर्मसे घोर अन्धकारसे रुककर नरकमें पतित होने लगता है, तब महासागरमें नौकाकी भांति गऊ उसका उद्धार करती है। जो लोग ब्राह्मविवाहकी विधिके अनुसार कन्यादान करते, जो लोग ब्राह्मणको भूमि प्रदान करते अथवा जो लोग विधिपूर्वक अन्न दान करते हैं, उन्हें इन्द्रलोक मिलता है। (२९-३२)

जो मनुष्य स्वाध्याय, चरित्र और गुणयुक्त ब्राह्मणको सर्व गुणमयी गृहकी सामग्री शय्या आदि प्रदान करते हैं, उनका उत्तर कुरुदेशमें निवास हुआ करता है। धुर्यप्रदान और गऊ दान करनेसे मनुष्यको वसुगणोंका लोक मिलता है, सुवर्ण दान स्वर्गका हेतु हुआ करता है और अस्सी रत्तीके परिमाणसे कनकका दान उससे भी श्रेष्ठ है। छत्रदान करनेसे उत्तम स्थान,

छत्रप्रदानेन गृहं वरिष्ठं यानं तथोपानहसंप्रदाने ।
वस्त्रप्रदानेन फलं स्वरूपं गन्धप्रदानात्सुरभिर्नरः स्यात् ॥ ३५ ॥
पुष्पोपगं वाऽथ फलोपगं वा यः पादपं स्पर्शयते द्विजाय ।
सश्रीकमृद्धं बहुरत्नपूर्णं लभत्ययत्नोपगतं गृहं वै ॥ ३६ ॥
भक्ष्यान्नपानीयरसप्रदाता सर्वान्समाप्नोति रसान्प्रकामम् ।
प्रतिश्रयाच्छादनसंप्रदाता प्राप्नोति तान्येव न संशयोऽत्र ॥३७॥
स्रग्धूपगन्धाननुलेपनानि स्नानानि माल्यानि च मानवो यः ।
दद्याद् द्विजेभ्यः स भवेदरोगस्तथाभिरूपश्च नरेन्द्रलोके ॥३८ ॥
बीजैरशून्यं शयनैरुपेतं दद्याद्गृहं यः पुरुषो द्विजाय ।
पुण्याभिरामं बहुरत्नपूर्णं लभत्यधिष्ठानवरं स राजन् ॥ ३९ ॥
सुगन्धचित्रास्तरणोपधानं दद्यान्नरो यः शयनं द्विजाय ।
रूपान्वितां पक्षवतीं मनोज्ञां भार्यामयत्नोपगतां लभेत्सः ॥४०॥
पितामहस्यानवरो वीरशायी भवेन्नरः ।
नाधिकं विद्यते यस्मादित्याहुः परमर्षयः ॥ ४१ ॥

उपानह दानसे सवारी और वस्त्र दान करनेसे मनुष्यको सुन्दर रूप प्राप्त होता है, और सुगन्धित वस्तु दान करनेसे मनुष्य सुगन्धशाली हुआ करता है। (३३—३५)

जो मनुष्य ब्राह्मणको फल अथवा फले हुए वृक्ष दान करता है, उसे सहजमें ही श्री, समृद्धि और अनेक रत्नोंसे युक्त गृह प्राप्त होता है। ब्राह्मण-भोजनके योग्य अन्न और पीने योग्य रस दान करनेवाले मनुष्योंको विधिपूर्वक सब रस प्राप्त होते हैं और जो लोग घर छानेकी सामग्री दान करते हैं, उन लोगोंको निःसन्देह वे समस्त उत्तम विषय प्राप्त होते हैं (३६-३७)

हे नरनाथ! जो मनुष्य ब्राह्मणोंको माला, धूप, लगानेका सुगन्ध और स्नानकी वस्तु दान करता है, वह इस लोकमें परम सौन्दर्य लाभ करके रोग-रहित हुआ करता है। हे राजन्! जो पुरुष ब्राह्मणको अन्नसे भरा हुआ शय्या-युक्त गृहदान करता है, वह अनेक रत्नोंसे युक्त पवित्र और मनोहर निवा-सस्थान पाता है। जो लोग ब्राह्मणोंको तकिये और विचित्र बिछावनेके सहित सुगन्धियुक्त शय्या दान करते हैं, उन्हें सहजमें ही रूपवती, मनको हरनेवाली, महत्कुलमें उत्पन्न हुई भार्या प्राप्त होती है। जो मनुष्य वीरशय्यापर शयन

वैशम्पायन उवाच- तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रीतात्मा कुरुनन्दनः।
नाश्रमेऽरोचयद्वासं वीरमार्गाऽभिकाङ्क्षया ॥ ४२ ॥
ततो युधिष्ठिरः प्राह पाण्डवान्पुरुषर्षभ।
पितामहस्य यद्वाक्यं तद्वो रोचत्विति प्रभुः ॥ ४३ ॥
ततस्तु पाण्डवाः सर्वे द्रौपदी च यशस्विनी।
युधिष्ठिरस्य तद्वाक्यं बाढमित्यभ्यपूजयन् ॥ ४४ ॥ [२९३४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

युधिष्ठिर उवाच- आरामाणां तडागानां यत्फलं कुरुपुङ्गव।
तदहं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तोऽद्य भरतर्षभ ॥ १ ॥
भीष्म उवाच- सुप्रदर्शा बलवती चित्रा धातुविभूषिता।
उपेता सर्वभूतैश्च श्रेष्ठा भूमिरिहोच्यते ॥ २ ॥
तस्याः क्षेत्रविशेषाश्च तडागानां च बन्धनम्।
औदकानि च सर्वाणि प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥ ३ ॥

करता है, वह जिससे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है, उस पितामहके समान होता है, ऐसा महर्षि लोग कहा करते हैं। (३८—४१)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कुरुनन्दन युधिष्ठिरने भीष्मके यह समस्त वचन सुनके प्रसन्नचित्त होकर वीरमार्गकी कामना करके आश्रममें वास करनेकी अभिलाष नहीं की। अनन्तर संतुष्ट पुरुषश्रेष्ठ युधिष्ठिर पाण्डवगणसे बोले, कि पितामहने जो कथा कही है, उसमें तुम लोगोंकी रुचि होवे। उस समय पाण्डवगण और यशस्विनी द्रौपदीने युधिष्ठिरके वचनको स्वीकार करके उन का संमान किया। (४२–४४)

अनुशासनपर्वमें ५७ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ५८ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे कुरुपुङ्गव भरतश्रेष्ठ! आराम तथा तालावोंके उत्सर्ग निबन्धनसे जो फल होता है, इस समय आपके निकट मैं उस विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं। (१)

भीष्म बोले, इस लोकमें उत्तम देखने योग्य अनेक शस्योंके उत्पत्ति की मूल, विचित्र धातुओंसे विभूषित, समस्त प्राणियोंसे युक्त भूमिही श्रेष्ठरूपसे वर्णित हुआ करती है। वैसी भूमिके क्षेत्र विशेषमें आराम और तडाग प्रभृति समस्त जलाशयों के विषयको मैं क्रमसे कहता हूं और

तडागानां च वक्ष्यामि कृतानां चापि ये गुणाः ।
त्रिषु लोकेषु सर्वत्र पूजनीयस्तडागवान् ॥ ४ ॥
अथवा मित्रसदनं मैत्रं मित्रविवर्धनम् ।
कीर्तिसंजननं श्रेष्ठं तडागानां निवेशनम् ॥ ५ ॥
धर्मस्यार्थस्य कामस्य फलमाहुर्मनीषिणः ।
तडागसुकृतं देशे क्षेत्रमेकं महाश्रयम् ॥ ६ ॥
चतुर्विधानां भूतानां तडागमुपलक्षयेत् ।
तडागानि च सर्वाणि दिशन्ति श्रियमुत्तमाम् ॥ ७ ॥
देवा मनुष्यगन्धर्वाः पितरोरगराक्षसाः ।
स्थावराणि च भूतानि संश्रयन्ति जलाशयम् ॥ ८ ॥
तस्मात्तांस्ते प्रवक्ष्यामि तडागे ये गुणाः स्मृताः ।
या च तत्र फलावाप्तिर्ऋषिभिः समुदाहृता ॥ ९ ॥
वर्षाकाले तडागे तु सलिलं यस्य तिष्ठति ।
अग्निहोत्रफलं तस्य फलमाहुर्मनीषिणः ॥ १० ॥
शरत्काले तु सलिलं तडागे यस्य तिष्ठति ।
गोसहस्रस्य स प्रेत्य लभते फलमुत्तमम् ॥ ११ ॥

तडाग आदि बनानेसे जो फल होते हैं, वह भी कहूंगा । तडागवान् मनुष्य तीनों लोकोंके बीच सब स्थानोंमें पूजनीय होते हैं, अथवा मित्रगृह सदृश उपकारक, मैत्र अर्थात् सूर्यके प्रीतिपात्र और मित्र अर्थात् देवताओंके विशेष रीतिसे पोषक तडागको स्थापन करना बहुत ही कीर्त्तिजनक हुआ करता है । देशके बीच उत्तम रीतिसे बने हुए महाश्रय तडागको मनीषि लोग धर्म, अर्थ और कामके फल स्वरूप कहा करते हैं । जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज, इन चार प्रकारके प्राणियोंके पक्षमें तडाग उपकारजनक है । तडाग आदि सब जलाशय श्रेष्ठ श्री प्रदान करते हैं । (२-७)

देवता, मनुष्य, गन्धर्व, पितर, सर्प, राक्षस और समस्त स्थावरोंके लिये जलाशय अवलम्ब हुआ करता है । उस तालावमें स्नान करनेसे जो फल होता है और उस विषयमें ऋषियोंने जिस प्रकार जलप्राप्तिके विषय वर्णन किये हैं, वह भी कहता हूं, वर्षा कालमें जिसके तालावमें जल रहता है, उसे अग्निहोत्रका फल मिलता है, ऐसा मनीषिवृन्द कहा करते हैं । शरत्कालमें

हेमन्तकाले सलिलं तडागे यस्य तिष्ठति।
स वै बहुसुवर्णस्य यज्ञस्य लभते फलम् ॥ १२ ॥
यस्य वै शैशिरे काले तडागे सलिलं भवेत्।
तस्याग्निष्टोमयज्ञस्य फलमाहुर्मनीषिणः ॥ १३ ॥
तडागं सुकृतं यस्य वसन्ते तु महाश्रयम्।
अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं स समुपाश्नुते ॥ १४ ॥
निदाघकाले पानीयं तडागे यस्य तिष्ठति।
वाजिमेधफलं तस्य फलं वै मुनयो विदुः ॥ १५ ॥
स कुलं तारयेत्सर्वं यस्य खाते जलाशये।
गावः पिबन्ति सलिलं साधवश्च नराः सदा ॥ १६ ॥
तडागे यस्य गावस्तु पिबन्ति तृषिता जलम्।
मृगपक्षिमनुष्याश्च सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ १७ ॥
यत्पिबन्ति जलं तत्र स्नायन्ते विश्रमन्ति च।
तडागे यस्य तत्सर्वं प्रेत्यानन्त्याय कल्पते ॥ १८ ॥
दुर्लभं सलिलं तात विशेषेण परत्र वै।

जिसके तालावमें जल रहता है, वह परलोकमें जाके सहस्र गोदानके तुल्य फल पाता है। हेमन्त ऋतुमें जिसका तालाव जलरहित नहीं होता, उसे बहुतसे सुवर्णदानसे युक्त यज्ञके फल प्राप्त होते हैं। शिशिर कालमें जिसका तालाव जलसे परिपूर्ण रहता है, उसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है, पण्डित लोग ऐसा ही कहा करते हैं। (८—१३)

जिनके तालाव वसन्तऋतुमें विधिपूर्वक सबके अवलम्ब रूप होते हैं, वे अतिरात्र यज्ञके फल भोग करते हैं। ग्रीष्मकालमें जिसके तालावमें पीनेके लिये जल विद्यमान रहता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है, मुनियोंने ऐसा ही निश्चय किया है। जिसके खोदे हुए तालावमें गऊ और साधु पुरुष सदा जल पीते हैं, उसके समस्त कुलका उद्धार होजाता है। जिसके तालावमें तृषित गऊ, हरिण, पक्षी और मनुष्यवृन्द जल पीते हैं, उसे अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है। तालावमें जल पीने, नहाने और विश्राम करनेसे तालावके स्वामीको जो पुण्य होता है, परलोकमें उसके लिये वह अनन्त हुआ करता है। (१४-१८)

हे तात! जल सहजमें ही दुर्लभ

पानीयस्य प्रदानेन प्रीतिर्भवति शाश्वती ॥ १९ ॥
तिलान्ददत पानीयं दीपान्ददत जाग्रत।
ज्ञातिभिः सह मोदध्वमेतत्प्रेत्य सुदुर्लभम् ॥ २० ॥
सर्वदानैर्गुरुतरं सर्वदानैर्विशिष्यते।
पानीयं नरशार्दूल तस्माद्दातव्यमेव हि ॥ २१ ॥
एवमेतत्तडागस्य कीर्तितं फलमुत्तमम्।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वृक्षाणामवरोपणम् ॥ २२ ॥
स्थावराणां च भूतानां जातयः षट् प्रकीर्तिताः।
वृक्षगुल्मलतावल्ल्यस्त्वक्सारास्तृणजातयः ॥ २३ ॥
एता जात्यस्तु वृक्षाणां तेषां रोपे गुणास्त्विमे।
कीर्तिश्च मानुषे लोके प्रेत्य चैव फलं शुभम् ॥ २४ ॥
लभते नाम लोके च पितृभिश्च महीयते।
देवलोके गतस्यापि नाम तस्य न नश्यति ॥ २५ ॥
अतीतानागते चोभे पितृवंशं च भारत।
तारयेद् वृक्षरोपी च तस्माद् वृक्षांश्च रोपयेत् ॥ २६ ॥

है, विशेष करके परलोकमें वह बहुत ही दुष्प्राप्य है, इसलिये जल प्रदान करनेसे शाश्वती प्रीति होती है। तिल, जल, और दीप दान करो, जाग्रतभावसे निवास करो और स्वजनोंके सङ्ग आमोद करो, क्यों कि परलोकमें ये समस्त विषय दुर्लभ हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! जलदान समस्तदानसे बृहत् तथा विशिष्ट है, इसलिये जलदान अवश्य करना चाहिये। यह सब तालावके श्रेष्ठफल कहे गये, अब वृक्षोंके लगानेका फल कहता हूं। स्थावर प्राणियोंकी छः प्रकारकी जाति कही गई है, उनके बीच अश्वत्थ वट प्रभृति वृक्ष, कुशस्तम्ब आदि गुल्म, वृक्षादिकोंपर फैली हुई पाटली आदि लता, पृथ्वीपर पडी हुई कूष्माण्ड प्रभृति वल्ली, बांस आदि त्वक्सार, उलप प्रभृति तृण जाति हैं। (१९—२३)

इन छः प्रकारके वृक्ष जातिके लगानेसे ये समस्त गुण प्राप्त हुआ करते हैं, मनुष्य लोकमें कीर्त्ति और परलोकमें शुभ फल मिलता है तथा जो लोग वृक्ष लगाते हैं, उनका नाम इस लोकमें प्रसिद्धि पाता है। उनका पितरोंके सङ्ग एकत्र वास होता है, देवलोकमें जानेपर भी उनका नाम लुप्त नहीं होता। हे भारत! जो लोग

तस्य पुत्रा भवन्त्येते पादपा नात्र संशयः ।
परलोकगतः स्वर्गं लोकांश्चाप्नोति सोऽव्ययान् ॥२७॥
पुष्पैः सुरगणान्वृक्षाः फलैश्चापि तथा पितॄन् ।
छायया चातिथिं तात पूजयन्ति महीरुहाः ॥ २८ ॥
किन्नरोरगरक्षांसि देवगन्धर्वमानवाः ।
तथा ऋषिगणाश्चैव संश्रयन्ति महीरुहान् ॥ २९ ॥
पुष्पिताः फलवन्तश्च तर्पयन्तीह मानवान् ।
वृक्षदं पुत्रवद् वृक्षास्तारयन्ति परत्र तु ॥ ३० ॥
तस्मात्तडागे सद्वृक्षा रोप्याः श्रेयोऽर्थिना सदा ।
पुत्रवत्परिपाल्याश्च पुत्रास्ते धर्मतः स्मृताः ॥ ३१ ॥
तडागकृद् वृक्षरोपी इष्टयज्ञश्च यो द्विजः ।
एते स्वर्गे महीयन्ते ये चान्ये सत्यवादिनः ॥ ३२ ॥
तस्मात्तडागं कुर्वीत आरामांश्चैव रोपयेत् ।
यजेच्च विविधैर्यज्ञैः सत्यं च सततं वदेत् ॥ ३३ ॥ [२९६७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे आरामतडागमाहात्म्यवर्णनं नाम अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

वृक्ष लगाते हैं, वे अतीत और अनागत दोनों ओरके पितृवंशका उद्धार किया करते हैं, इसलिये वृक्षोंको लगाना चाहिये। जो पुरुष वृक्षोंको लगाता है, वृक्षप्रभृतिही निःसन्देह उसके पुत्र बनते हैं। उनके परलोकमें गमन करने-पर उन्हें स्वर्ग तथा समस्त अव्यय लोक प्राप्त होते हैं। हे तात! पृथ्वीपर वृक्षसमूह फूलोंसे देवगण, फलोंसे पितर और शाखाओंके सहारे अतिथियोंकी पूजा करते हैं। (२४-२८)

किन्नर, सर्प, राक्षस, देव, गन्धर्व और ऋषि प्रभृति सभी लोग वृक्षोंको अवलम्बन किया करते हैं। फूले तथा फले हुए वृक्ष इस लोकमें मनुष्योंको तृप्त करते और परलोकमें पुत्रोंकी भांति वृक्षदाताका परित्राण किया करते हैं, इसलिये कल्याणकी इच्छा करनेवाले मनुष्य तालावके चारों ओर सदा सुन्दर वृक्षोंको लगावें और उन वृक्षोंको पुत्रकी भांति प्रतिपालन करें, क्यों कि वे सब धर्मके अनुसार पुत्र-रूपसे कहे गये हैं। तालाव स्थापन करनेवाला, वृक्ष लगानेवाले और जिन ब्राह्मणोंने यज्ञ किये हैं तथा जो सत्य-वादी हैं, वे सभी लोग स्वर्गमें निवास

युधिष्ठिर उवाच-यानीमानि बहिर्वेद्यां दानानि परिचक्षते।
तेभ्यो विशिष्टं किं दानं मतं ते कुरुपुङ्गव ॥ १ ॥
कौतूहलं हि परमं तत्र मे विद्यते प्रभो।
दातारं दत्तमन्वेति यद्दानं तत्प्रचक्ष्व मे ॥ २ ॥
भीष्म उवाच-अभयं सर्वभूतेभ्यो व्यसने चाप्यनुग्रहः।
यच्चाभिलषितं दद्यात्तृषितायाऽभियाचते ॥ ३ ॥
दत्तं मन्येत यद्दत्वा तद्दानं श्रेष्ठमुच्यते।
दत्तं दातारमन्वेति यद्दानं भरतर्षभ ॥ ४ ॥
हिरण्यदानं गोदानं पृथिवीदानमेव च।
एतानि वै पवित्राणि तारयन्त्यपि दुष्कृतम् ॥ ५ ॥
एतानि पुरुषव्याघ्र साधुभ्यो देहि नित्यदा।
दानानि हि नरं पापान्मोक्षयन्ति न संशयः ॥ ६ ॥
यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे।

किया करते हैं, इसलिये तालाव खुदवाना और बाडीमें वृक्ष लगाना चाहिये, विविध यज्ञके सहारे देवताओंको तृप्त करे और सदा सत्य वचन कहे। (२९-३३)

अनुशासनपर्वमें ५८ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ५९ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे कुरुश्रेष्ठ ! यज्ञ वेदीसे भिन्न जो सब दानके विषय कहे गये, उनमेंसे आपके मतमें विशिष्ट दान कौनसा है ? हे प्रभु ! उस विषयमें मुझे बहुत ही संशय है, इसलिये जो दान दाताका अनुगमन करता है, आप मेरे समीप उस ही दानका विषय वर्णन करिये। (१—२)

भीष्म बोले, सब प्राणियोंके विषयमें अभयदान, विपत्कालमें अनुग्रह और प्यासे याचकोंको जो अभिलषित वस्तु दान की जाती है, उसे ही देके दाता दी हुई समझे, वह दान सबसे श्रेष्ठ कहा गया है। हे भरतश्रेष्ठ ! जो दान दिये जानेपर दाताका अनुगमन करता है, वह यही है। जीवोंके विषयमें अभयदान और विपत्कालमें अनुग्रह प्रकाश करनेपर समय और सामर्थ्य होनेपर उपकृत पुरुषका ऋण चुकानेके लिये दाताके अनुगत हुआ करता है। सुवर्ण, गऊ और पृथ्वी इन तीनोंका दान ही पवित्र है, ये पापी पुरुषका भी उद्धार करते हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ ! इसलिये तुम साधुओंको दान करो। दान ही केवल सब पापोंसे अवश्य मुक्त करता है, इसमें सन्देह नहीं

तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥ ७ ॥
प्रियाणि लभते नित्यं प्रियदः प्रियकृत्तथा।
प्रियो भवति भूतानामिह चैव परत्र च ॥ ८ ॥
याचमानमभीमानादनासक्तमकिंचनम्।
यो नार्चति यथाशक्ति स नृशंसो युधिष्ठिर ॥ ९ ॥
अमित्रमपि चेद्दीनं शरणैषिणमागतम्।
व्यसने योऽनुगृह्णाति स वै पुरुषसत्तमः ॥ १० ॥
कृशाय कृतविद्याय वृत्तिक्षीणाय सीदते।
अपहन्यात्क्षुधां यस्तु न तेन पुरुषः समः ॥ ११ ॥
क्रियानियमितान्साधून्पुत्रदारैश्च कर्शितान्।
अयाचमानान्कौन्तेय सर्वोपायैर्निमन्त्रयेत् ॥ १२ ॥
आशिषं ये न देवेषु न च मर्त्येषु कुर्वते।
अर्हन्तो नित्यसन्तुष्टास्तथा लब्धोपजीविनः ॥ १३ ॥
आशीविषसमेभ्यश्च तेभ्यो रक्षस्व भारत।
तान्युक्तैरुपजिज्ञास्य तथा द्विजवरोत्तमान् ॥ १४ ॥

हो सकता है। (३-६)

लोगोंको जो जो वस्तुएं इष्ट हों तथा घरके बीच दाताकी जो प्यारी वस्तु हों, उन प्रिय वस्तुओंको अक्षय करनेवाले मनुष्योंको योग्य है, कि वे उन्हें गुणवान मनुष्योंको दान करें। प्रियवस्तु देने तथा प्रियकार्य करनेवाले पुरुष सदा प्रिय हुआ करते हैं। हे युधिष्ठिर! जो दीन पुरुष दूसरेको समर्थ जानके अनासक्त भावसे उसके समीप प्रार्थना करें, उसे यदि वह शक्तिके अनुसार दान न करे, तो नृशंस कहाता है। शत्रु भी यदि दीन होकर शरणागत होवे, उसपर भी विपत्कालमें जो पुरुष कृपा करता है, वही सब पुरुषोंमें श्रेष्ठ है। (७-१०)

जो लोग कृश, कृतविद्य, वृत्तिरहित और अवसन्न पुरुषके क्षुधाकी शान्ति करते हैं, उनके समान पुरुष और कोई भी नहीं है। हे कुन्तीपुत्र! निज धर्ममें रत, साधु, पुत्र और भार्या आदिसे कर्षित तथा अयाचक मनुष्यका सब प्रकारके उपायसे निमन्त्रण करे। हे भारत! जो लोग देवता और मनुष्योंके निकट कुछ आशा नहीं करते उन पूजनीय, सदा सन्तुष्ट और प्राप्त हुई वस्तुसे जीविका निबाहनेवाले विषीले सर्पके समान ब्राह्मणोंसे अपनी रक्षा

कृतैरावसथैर्नित्यं सप्रेष्यैः सपरिच्छदैः ।
निमन्त्रयेथाः कौरव्य सर्वकामसुखावहैः ॥ १५ ॥
यदि ते प्रतिगृह्णीयुः श्रद्धापूतं युधिष्ठिर ।
कार्यमित्येव मन्वाना धार्मिकाः पुण्यकर्मिणः ॥ १६॥
विद्यास्नाता व्रतस्नाता ये व्यपाश्रित्य जीविनः ।
गूढस्वाध्यायतपसो ब्राह्मणाः संशितव्रताः ॥ १७ ॥
तेषु शुद्धेषु दान्तेषु स्वदारपरितोषिषु ।
यत्करिष्यसि कल्याणं तत्ते लोके युधाम्पते ॥ १८ ॥
यथाऽग्निहोत्रं सुहुतं सायंप्रातर्द्विजातिना ।
तथा दत्तं द्विजातिभ्यो भवत्यथ यतात्मसु ॥ १९ ॥
एष ते विततो यज्ञः श्रद्धापूतः सदक्षिणः ।
विशिष्टः सर्वयज्ञेभ्यो ददतस्तात वर्तताम् ॥ २० ॥
निवापदानसलिलस्ताहृशेषु युधिष्ठिर ।
निवसन्पूजयंश्चैव तेष्वानृण्यं मियच्छति ॥ २१ ॥

करो। वैसे ब्राह्मण और उत्तम ऋत्विजोंके भावको जानके जो कार्यको करनेमें समर्थ हो, वैसे मनुष्यके द्वारा पूछके निमन्त्रण करना। (११--१४)

हे कौरव्य ! सर्वकामसुखप्रद प्रेष्य और परिच्छदके सहित आश्रम प्रभृति प्रदान करके उन पुरुषोंको निमन्त्रण करना योग्य है। हे युधिष्ठिर यदि वे पुण्यकर्मशील, धार्मिक पुरुष श्रद्धाके सहित उन वस्तुओंको ग्रहण करें, तो वे धर्मार्थ ही कर्म किया करते हैं। जो लोग विद्यास्नात, व्रतस्नात तथा जो स्वामीके आश्रित न होकर जीवन धारण करनेकी अभिलाष करते हैं, जिनके स्वाध्याय और तपस्या अत्यन्त गूढ है तथा जो संशितव्रती हैं, उन पापरहित जितेन्द्रिय निज स्त्रीमें ही सन्तुष्ट रहनेवाले ब्राह्मणोंका यदि तुम उपकार करोगे, तो तुम्हारा वह कल्याण लोकमें विधृत होवेगा। जैसे सन्ध्या और सवेरेके समय द्विजातियोंके अग्निहोत्र उत्तम रीतिसे जलते रहते हैं, वैसे ही संयत चित्तवाले ब्राह्मणोंको जो दान किया जाता है, वह वैसा ही है। (१५-१९)

हे तात ! तुम्हारे समीप श्रद्धायुक्त, सदाक्षिण यज्ञका विषय कहा गया, यही सब यज्ञोंसे श्रेष्ठ है। तुम दाता हो, इसलिये तुम्हारे समीप सदा ये यज्ञ वर्त्तमान रहें। हे युधिष्ठिर ! वैसे ब्राह्मणोंको जो दान किया जाता है, वह

य एवं नैव कुप्यन्ते न लुभ्यन्ति तृणेष्वपि ।
त एव नः पूज्यतमा ये चापि प्रियवादिनः ॥ २२ ॥
एते न बहु मन्यन्ते न प्रवर्तन्ति चापरे ।
पुत्रवत्परिपाल्यास्ते नमस्तेभ्यस्तथाऽभयम् ॥ २३ ॥
ऋत्विक्पुरोहिताचार्या मृदुब्रह्मधरा हि ते ।
क्षात्रेणाऽपि हि संसृष्टं तेजः शाम्यति वै द्विजे ॥२४॥
अस्ति मे बलवानस्मि राजाऽस्मीति युधिष्ठिर ।
ब्राह्मणान्मा च पर्यश्नीर्वासोभिरशनेन च ॥ २५ ॥
यच्छोभार्थं बलार्थं वा वित्तमस्ति तवाऽनघ ।
तेन ते ब्राह्मणाः पूज्याः स्वधर्ममनुतिष्ठता ॥ २६ ॥
नमस्कार्यास्तथा विप्रा वर्तमाना यथातथम् ।
यथासुखं यथोत्साहं ललन्तु त्वयि पुत्रवत् ॥ २७ ॥
को ह्यक्षयप्रसादानां सुहृदामल्पतोषिणाम् ।

पितृतर्पणके समान है, उन लोगोंके अवलम्बसे वास करो और उनकी पूजा करो, तो देवताओंके समीप अऋण होगे। जो ब्राह्मण प्रियवादी होते हैं, वे कदापि क्रोध नहीं करते और तृणमात्र भी लोभ नहीं करते, वेही हमारे लिये अत्यन्त पूजनीय हैं। ये लोग निस्पृह हैं, इसलिये दाताका बहुमान नहीं करते करते और अन्य विषय में भी प्रवृत्त नहीं होते, वे लोग पुत्रकी भांति सब प्रकारसे प्रतिपालन करने योग्य हैं, उन्हें नमस्कार करता हूं, उनके ही प्रसन्न तथा क्रुद्ध होनेपर स्वर्ग और नरक दोनों ही प्राप्त हो सकते हैं। (२०—२३)

ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य और शिष्यके विषयमें वत्सल वेदज्ञ ब्राह्मण क्षात्रके सहित संसृष्ट होनेसे उनका तेज शान्त होता है, शान्त द्विजमें दीप्यमान तेज सदा स्थित रहता है। हे युधिष्ठिर ! 'मेरे धन है, मैं बलवान हूं, मैं राजा हूं' ऐसा अभिमान करके ब्राह्मणोंको परित्याग करके पहरने और खानेकी वस्तुओंको स्वयं भोग न करना। हे पापरहित ! तुम्हारे बल तथा शोभाके लिये जो धन है, तुम निज धर्मका अनुष्ठान करते हुए उस धनके सहारे ब्राह्मणोंकी पूजा करो। ब्राह्मण किसी प्रकारके रूपसे क्यों न वर्त्तमान रहें, वे अवश्य ही तुम्हारे नमस्कारके योग्य हैं, तुम्हारे समीप वे लोग पुत्रकी भांति उत्साहके अनुसार यथायोग्य सुख पावें। (२४—२७)

वृत्तिमर्हत्यवक्षेप्तुं त्वदन्यः कुरुसत्तम ॥ २८ ॥
यथा पत्याश्रयो धर्मः स्त्रीणां लोके सनातनः।
सदैव सा गतिर्नान्या तथाऽस्माकं द्विजातयः॥ २९ ॥
यदि नो ब्राह्मणास्तात संत्यजेयुरपूजिताः।
पश्यन्तो दारुणं कर्म सततं क्षत्रिये स्थितम् ॥ ३० ॥
अवेदानामयज्ञानामलोकानामवर्तिनाम्।
कस्तेषां जीवितेनार्थस्त्वां विना ब्राह्मणाश्रयम् ॥३१॥
अत्र ते वर्तयिष्यामि यथाधर्मं सनातनम्।
राजन्यो ब्राह्मणान् राजन्पुरा परिचचार ह ॥ ३२ ॥
वैश्यो राजन्यमित्येव शूद्रो वैश्यमिति श्रुतिः।
दूराच्छूद्रेणोपचर्यो ब्राह्मणोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ ३३ ॥
संस्पर्शपरिचर्यस्तु वैश्येन क्षत्रियेण च।
मृदुभावान्सत्यशीलान्सत्यधर्मानुपालकान् ॥ ३४ ॥
आशीविषानिव क्रुद्धांस्तानुपाचरत द्विजान्।
अपरेषां परेषां च परेभ्यश्चापि ये परे ॥ ३५ ॥
क्षत्रियाणां प्रतपतां तेजसा च बलेन च।

हे कुरुसत्तम! तुम्हारे अतिरिक्त कौन पुरुष अक्षय सुख देनेवाले, थोडेमें ही सन्तुष्ट सुहृदोंके लिये वृत्ति देनेमें समर्थ होगा? जैसे स्त्रियोंके सनातन धर्मका पति ही अवलम्ब है तथा उनके लिये जैसे दूसरी गति नहीं है, हमारे लिये ब्राह्मणवृन्द भी वैसे ही हैं। हे तात! क्षत्रियोंका दारुण कर्म देखकर ब्राह्मण लोग अपूजित होके यदि हमें परित्याग करें, तो ब्राह्मणाश्रयके विना वेदरहित, यज्ञहीन, लोकनिन्दित, वृत्ति-रहित क्षत्रियोंके जीनेका क्या प्रयोजन है? (२८—३१)

हे राजन्! इस विषयमें जो सनातन धर्म है, उसे तुम्हारे समीप कहता हूं। ऐसी जनश्रुति है, कि पहले समयमें क्षत्रियोंने ब्राह्मणोंकी सेवा की थी, वैश्य क्षत्रियोंकी और शूद्र वैश्योंकी सेवा करते थे। शूद्र दूरसे जलती हुई अग्निकी भांति ब्राह्मणकी सेवा करे। क्षत्रिय और वैश्य छूके ब्राह्मणोंकी सेवा करें। कोमलता, सत्यशीलता और सत्यधर्मके पालन निबन्धनसे उन क्रुद्ध सर्पसदृश ब्राह्मणोंकी सेवा करो। अन्य श्रेष्ठ जातियोंसे श्रेष्ठ होकर तेज और बलके सहारे जो क्षत्रिय प्रतापी हुए हैं,

ब्राह्मणेष्वेव शाम्यन्ति तेजांसि च तपांसि च॥ ३६॥
न मे पिता प्रियतरो न त्वं तात तथा प्रियः।
न मे पितुः पिता राजन्न चात्मा न च जीवितम्॥ ३७॥
त्वत्तश्च मे प्रियतरः पृथिव्यां नास्ति कश्चन।
त्वत्तोऽपि मे प्रियतरा ब्राह्मणा भरतर्षभ ॥ ३८ ॥
ब्रवीमि सत्यमेतच्च यथाऽहं पाण्डुनन्दन।
तेन सत्येन गच्छेयं लोकान्यत्र च शान्तनुः ॥ ३९ ॥
पश्येयं च सताँल्लोकाञ्छुचीन्ब्रह्मपुरस्कृतान्।
तत्र मे तात गन्तव्यमह्नाय च चिराय च ॥ ४० ॥
सोऽहमेतादृशाँल्लोकान्दृष्ट्वा भरतसत्तम।
यन्मे कृतं ब्राह्मणेषु न तप्ये तेन पार्थिव ॥ ४१ ॥ [३००८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे एकोनषष्टितमोऽध्यायः॥ ५९॥

युधिष्ठिर उवाच—यौ च स्यातां चरणेनोपपन्नौ यौ विद्यया सदृशौ जन्मना च।
ताभ्यां दानं कतमस्मै विशिष्टमयाचमानाय च याचते च ॥ १ ॥
भीष्म उवाच—श्रेयो वै याचतः पार्थ दानमाहुरयाचते।

ब्राह्मणोंके समीप उन क्षत्रियोंकी तपस्या और तेज शान्त होजाते हैं। (३२-३६)

हे तात महाराज! हमारे लिये पिता, तुम, पितामह, आत्मा और जीवन भी ब्राह्मणोंके समान प्रिय नहीं है। हे भरतश्रेष्ठ! पृथ्वीपर मेरे लिये तुमसे बढके प्यारा और कोई नहीं है, परन्तु ब्राह्मण लोग तुमसे भी अधिक प्रिय हैं। हे पाण्डुनन्दन! जो मैं यह सत्य वचन कहता हूं, तो उस ही सत्यके सहारे उन लोकोंमें गमन करूंगा, जहांपर मेरे पिता शान्तनु निवास करते हैं। मैं ब्रह्मलोक प्रभृति सैकडों लोकोंको देख रहा हूं, सदाके लिये शीघ्र ही वहां गमन करूंगा। हे भरतसत्तम महाराज! मैंने ऐसे लोकोंको देखकर ब्राह्मणोंके विषयमें जो कार्य किया है, उस ही कारणसे इस समय परिताप नहीं करता। (३७—४१)

अनुशासनपर्वमें ५९ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ६० अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, यदि दो ब्राह्मण समान आचार, जन्म और विद्यामें सदृश हों, उनमेंसे एक याचक और दूसरा अयाचक हो, तो उन दोनोंमेंसे किसे दान करनेसे विशेष फल होता

अर्हत्तमो वै धृतिमान्कृपणादधृतात्मनः ॥ २ ॥
क्षत्रियो रक्षणधृतिर्ब्राह्मणोऽनर्थनाधृतिः।
ब्राह्मणो धृतिमान्विद्वान्देवान्प्रीणाति तुष्टिमान् ॥ ३ ॥
याच्यमाहुरनीशस्य अभिहारं च भारत।
उद्वेजयन्ति याचन्ति सदा भूतानि दस्युवत् ॥ ४ ॥
म्रियते याचमानो वै न जातु म्रियते ददत्।
ददत्सञ्जीवयत्येनमात्मानं च युधिष्ठिर ॥ ५ ॥
आनृशंस्यं परो धर्मो याचते यत्प्रदीयते।
अयाचतः सीदमानान्सर्वोपायैर्निमन्त्रयेत् ॥ ६ ॥
यदि वै तादृशा राष्ट्रान्वसेयुस्ते द्विजोत्तमाः।
भस्मच्छन्नानिवाग्नींस्तान्बुध्येथास्त्वं प्रयत्नतः ॥ ७ ॥
तपसा दीप्यमानास्ते दहेयुः पृथिवीमपि।
अपूज्यमानाः कौरव्य पूजार्हास्तु तथाविधाः ॥ ८ ॥
पूज्या हि ज्ञानविज्ञानतपोयोगसमन्विताः।

है, यही आप कहिये। (१)

भीष्म बोले, हे पार्थ! याचककी अपेक्षा न मांगनेवाले ब्राह्मणको दान करना कल्याणकारी है, धीरज रहित दीनकी अपेक्षा धैर्यशाली पूजनीय है। रक्षा करना ही क्षत्रियोंका धैर्य है और न मांगनाही ब्राह्मणोंका धैर्य है, सन्तुष्ट-चित्त, धृतिमान्, विद्वान्, ब्राह्मण देवताओंको किया करते हैं। हे भारत! दरिद्र पुरुषके जांचनेकोही पण्डित लोग तिरस्कार करते हैं, जब मनुष्य जांचते हैं, तब वे दस्युकी भांति उद्वेगजनक हुआ करते हैं। हे युधिष्ठिर! मांगनेवाले, मनुष्य ही मरे हुएके तुल्य हैं, देनेवाला कदापि नहीं मरता, दाता दान करते हुए याचक तथा अपनेको जीवित करता है। (२—५)

याचक पुरुषोंको जो वस्तु प्रदान की जाती है, वह अनृशंसताही परम धर्म है, विना जाचे जो लोग अवसन्न होरहे हों, उन्हें जिस उपायसे हो सके निमन्त्रण करना योग्य है। यदि वैसे श्रेष्ठ द्विज तुम्हारे राज्यमें वास करें, तो तुम यत्नपूर्वक उन्हें छाईसे छिपी हुई अग्निकी भांति जानना। हे कुरुवंशावतंस! तपस्याके सहारे दीप्यमान ब्राह्मण यदि पूजित न हों, तो वे इस पृथ्वीको जला सकते हैं, इसलिये वैसे पुरुष अवश्य पूजाके योग्य हैं। हे शत्रुतापन! वे लोग ज्ञान, विज्ञान, तपस्या और

तेभ्यः पूजां प्रयुञ्जीथा ब्राह्मणेभ्यः परन्तप ॥ ९ ॥
ददद्बहुविधान्दायानुपागच्छन्नयाचताम् ।
यदग्निहोत्रे सुहुते सायंप्रातर्भवेत्फलम् ॥ १० ॥
विद्यावेदव्रतवति तद्दानफलमुच्यते ।
विद्यावेदव्रतस्नातानव्यपाश्रयजीविनः ॥ ११ ॥
गूढस्वाध्यायतपसो ब्राह्मणान्संशितव्रतान् ।
कृतैरावसथैर्हृद्यैः सप्रेष्यैः सपरिच्छदैः ॥ १२ ॥
निमन्त्रयेथाः कौरव्य कामैश्चान्यैर्द्विजोत्तान् ।
अपि ते प्रतिगृह्णीयुः श्रद्धोपेतं युधिष्ठिर ॥ १३ ॥
कार्यमित्येव मन्वाना धर्मज्ञाः सूक्ष्मदर्शिनः ।
अपि ते ब्राह्मणा भुक्त्वा गताः सोद्धरणान् गृहान् ॥ १४ ॥
येषां दाराः प्रतीक्षन्ते पर्जन्यमिव कर्षकाः ।
अन्नानि प्रातःसवने नियता ब्रह्मचारिणः ॥ १५ ॥
ब्राह्मणास्तात भुञ्जानास्त्रेताग्निं प्रीणयन्त्युत ।

योगयुक्त होनेसे ही पूजनीय हैं इसलिये उन ब्राह्मणोंकी पूजा-करना। वेदविद्या व्रतसे युक्त अयाचक ब्राह्मणोंके निकट जाके अनेक प्रकारसे धन प्रभृति दान करनेसे पुरुष दाता होता है, सन्ध्या और भोरके समय अग्निहोत्रमें होम करनेसे जो फल होता है, उन्हें दान करनेसे वैसा ही फल कहा गया है। (९-११)

हे कौन्तेय! जो लोग विद्यास्नात, वेदस्नात, व्रतस्नात और स्वामीके आसरेमें रहके जीविका निर्वाहकी इच्छा नहीं करते, जिनके निज शाखोक्त वेदपाठ और तपस्या अत्यन्त गूढ है, उन संशितव्रती ब्राह्मणोंको बने हुए मनोहर आश्रम, वस्त्र, सेवक तथा दूसरी समस्त आवश्यकीय वस्तुओंके द्वारा निमन्त्रण करे। (११—१३)

हे युधिष्ठिर! वे सूक्ष्मदर्शी धर्मज्ञ ब्राह्मण लोग कर्त्तव्य कार्य जानके श्रद्धापूर्वक दानप्रतिग्रह किया करते हैं, वैसेही ब्राह्मणोंके भोजन करनेके अनन्तर घर जानेपर जिनकी स्त्रियां जांचनेवाले बालकोंको निज स्वामीके आनेपर "खानेको दूंगी," ऐसा कहके धीरज दिया करती हैं, वैसे ब्राह्मणोंको निमन्त्रण करे। हे तात! प्रातःकालमें सदा ब्रह्मचारी ब्राह्मण अन्न भोजन करते हुए गार्हपत्य, आवहनीय और दक्षिणाग्नि, इन तीनों अग्नियोंको प्रसन्न

माध्यन्दिनं ते सवनं ददतस्तात वर्ततताम् ॥ १६ ॥
गोहिरण्यानि वासांसि तेनेन्द्रः प्रीयतां तव ।
तृतीयं सवनं ते वै वैश्वदेवं युधिष्ठिर ॥ १७ ॥
यद्देवेभ्यः पितृभ्यश्च विप्रेभ्यश्च प्रयच्छसि ।
अहिंसा सर्वभूतेभ्यः संविभागश्च भागशः ॥ १८ ॥
दमस्त्यागो धृतिः सत्यं भवत्ववभृथाय ते ।
एष ते विततो यज्ञः श्रद्धापूतः सदक्षिणः ॥ १९ ॥
विशिष्टः सर्वयज्ञानां नित्यं तात प्रवर्तताम् ॥ २० ॥ [३०२८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि
आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

युधिष्ठिर उवाच– दानं यज्ञः क्रिया चेह किंस्वित्प्रेत्य महाफलम् ।
कस्य ज्यायः फलं प्रोक्तं कीदृशेभ्यः कथं कदा ॥ १ ॥
एतदिच्छामि विज्ञातुं याथातथ्येन भारत ।
विद्वन् जिज्ञासमानाय दानधर्मान्प्रचक्ष्व मे ॥ २ ॥
अन्तर्वेद्यां च यद्दत्तं श्रद्धया चानृशंस्यतः ।

करते हैं। (१३—१६)

हे तात! दिनके मध्याह्नमें तुम यज्ञ करते हुए गऊ, सुवर्ण और वस्त्र दान करो, उससे इन्द्र तुमपर प्रसन्न होंगे, हे युधिष्ठिर! तीसरी बार सन्ध्याको वैश्वदेव करना चाहिये जोकि देवता, पितर और ब्राह्मणोंको प्रदान किया जाता है। सब प्राणियोंके विषयमें अहिंसा, भाग्यके अनुसार संविभाग, दम, त्याग, धृति और सत्य तुम्हारे अवभृथके निमित्त करते हैं। यह तुम्हारे निकट श्रद्धायुक्त सदक्षिण यज्ञका विषय कहा गया, यही सब यज्ञोंसे श्रेष्ठ है। हे तात! तुम्हारी इस यज्ञमें सदा प्रवृत्ति होवे। (१६–२०)

अनुशासनपर्वमें ६० अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ६१ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! इस लोकमें दान और यज्ञ करनेसे परलोकमें महाफल होता है, परन्तु इन दोनोंके बीच किसका फल श्रेष्ठ कहके वर्णित हुआ है? कैसे पुरुषोंको दान करना चाहिये और किस प्रकारसे किस समयमें यज्ञ करना उचित है? हे हे भारत! इसे मैं यथार्थ रीतिसे जानने की इच्छा करता हूं। हे विद्वन्! मैं यही पूछता हूं, मुझे समस्त दानधर्मका उपदेश करिये। हे तात! अनृशंस

किंस्विन्निःश्रेयसं तात तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ३ ॥

भीष्म उवाच- रौद्रं कर्म क्षत्रियस्य सततं तात वर्तते।
तस्य वैतानिकं कर्म दानं चैवेह पावनम् ॥ ४ ॥
न तु पापकृतां राज्ञां प्रतिगृह्णन्ति साधवः।
एतस्मात्कारणाद्यज्ञैर्यजेद्राजाऽऽप्तदक्षिणैः ॥ ५ ॥
अथ चेत्प्रतिगृह्णीयुर्दद्यादहरहर्नृपः।
श्रद्धामास्थाय परमां पावनं ह्येतदुत्तमम् ॥ ६ ॥
ब्राह्मणांस्तर्पयन्द्रव्यैस्ततो यज्ञे यतव्रतः।
मैत्रान् साधून्वेदविदः शीलवृत्ततपोर्जितान् ॥ ७ ॥
यत्ते ते न करिष्यन्ति कृतं ते न भविष्यति।
यज्ञान्साधय साधुभ्यः स्वाद्वन्नान्दक्षिणावतः ॥ ८ ॥
इष्टं दत्तं च मन्येथा आत्मानं दानकर्मणा।
पूजयेथा यायजूकांस्तवाप्यंशो भवेद्यथा ॥ ९ ॥
प्रजावतो भरेथाश्च ब्राह्मणान् बहुकारिणः।
प्रजावांस्तेन भवति यथा जनयिता तथा ॥ १० ॥

पुरुषोंके द्वारा अन्तर्वेदिके बीच श्रद्धापूर्वक जो दिया जाता है, क्या वही कल्याणकारी हुआ करता है? इसही विषयको मेरे समीप वर्णन करिये। (१-३)

भीष्म बोले, हे तात! क्षत्रियोंमें सदा ही रौद्र कर्म रहते हैं, इसलिये दान ही उनके निमित्त पवित्र यज्ञ है। साधु पुरुष पाप करनेवाले राजाओंका दान नहीं लेते, इसलिये राजा दक्षिणायुक्त यज्ञ करे। यदि राजा परम श्रद्धाके सहित प्रतिदिन दान करे और ब्राह्मण लोग उसे प्रतिग्रह करें, तो वही परम पवित्र दान है। सब प्राणियोंके अभयदाता वेदज्ञ, सुशील, सद्वृत्त और तपस्यायुक्त ब्राह्मणोंको तृप्त करके शेषमें यज्ञविषयमें यतव्रती होवे, ब्राह्मण लोग यदि तुम्हारा दान ग्रहण न करेंगे, तो तुम्हें सुकृत न होगा; इसलिये सुकृतके निमित्त यज्ञ करो और साधुओंको दक्षिणाके सहित सुस्वादु अन्न दो। (४-८)

दानकर्मके सहारे अपनेको यज्ञ करनेवाला तथा दाता जानो, क्यों कि दान ही यज्ञ आदिके अन्तर्भूत होता है। यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणोंकी पूजा करो और उन्हें दान करनेसे तुम भी उनके यज्ञमें सदा अनन्त कल्याणलाभके अंशभागी होगे। प्रजावान् पुरुष अनेक कार्य करनेवाले ब्राह्मणोंका भरण करें,

यावतः साधुधर्मान्वै सन्तः संवर्धयन्त्युत ।
सर्वस्वैश्चापि भर्तव्या नरा ये बहुकारिणः ॥ ११ ॥
समृद्धः संप्रयच्छ त्वं ब्राह्मणेभ्यो युधिष्ठिर ।
धेनूरनडुहोऽन्नानि च्छत्रं वासांस्युपानहौ ॥ १२ ॥
आज्यानि यजमानेभ्यस्तथाऽन्नानि च भारत ।
अश्ववन्ति च यानानि वेश्मानि शयनानि च ॥ १३ ॥
एते देया व्युष्टिमन्तो लघूपायाश्च भारत ।
अजुगुप्सांश्च विज्ञाय ब्राह्मणान् वृत्तिकर्शितान् ॥१४॥
उपच्छन्नं प्रकाशं वा वृत्त्या तान्प्रतिपालयेत् ।
राजसूयाश्वमेधाभ्यां श्रेयस्तत्क्षत्रियान्प्रति ॥ १५ ॥
एवं पापैर्विनिर्मुक्तस्त्वं पूतः स्वर्गमाप्स्यसि ।
सञ्चयित्वा पुनः कोशं यद्राष्ट्रं पालयिष्यसि ॥ १६ ॥
तेन त्वं ब्रह्मभूयत्वमावाप्स्यसि धनानि च ।
आत्मनश्च परेषां च वृत्तिं संरक्ष भारत ॥ १७ ॥
पुत्रवच्चापि भृत्यान्स्वान् प्रजाश्च परिपालय ।
योगः क्षेमश्च ते नित्यं ब्राह्मणेष्वस्तु भारत ॥ १८ ॥

तो वे प्रजावान् होंगे, साधु लोग ही समस्त साधुकर्मोंकी वृद्धि करते हैं, इस लिये जो मनुष्य बहुतसे उपकार किया करते हैं, राजाको योग्य है, कि उन लोगोंका सब प्रकारसे पालन करे। हे भरतवंशावतंस युधिष्ठिर! तुम समृद्धि-युक्त हो, इसलिये याचक ब्राह्मणोंको गऊ, गाडीमें जुतने योग्य बैल, अन्न, छाता, वस्त्र, जूता, घृत, बहुतसी भोजनकी वस्तु, घोडेयुक्त सवारी, गृह और शय्या प्रभृति दान करना। ९-१३

हे भारत! निन्दा न करनेवाले वृत्ति-कर्षित ब्राह्मणोंको ये सब समृद्धियुक्त विषय दान करने योग्य हैं। प्रच्छन्न वा प्रकाश्य भावसे वृत्ति दान करके ब्राह्मणोंको प्रतिपालन करना उचित है, क्षत्रियोंके लिये यह कार्य अश्वमेध और राजसूय यज्ञसे भी श्रेष्ठ है। इस ही प्रकार तुम पापोंसे छूटके तथा पवित्र होके स्वर्गलोक पाओगे; तुम फिर कोशसञ्चय करके राज्य पालन करोगे, उसहीके सहारे तुम्हें समस्त धन और ब्राह्मणत्व प्राप्त होगा। हे भारत! तुम अपनी और दूसरेकी वृत्तिकी रक्षा करो, पुत्रकी भांति निज सेवक और प्रजासमूहको प्रतिपालन

तदर्थं जीवितं तेऽस्तु मा तेभ्योऽप्रतिपालनम् ।
अनर्थो ब्राह्मणस्यैष यद्वित्तनिचयो महान् ॥ १९ ॥
श्रिया ह्यभीक्ष्णं संवासो दर्पयेत्संप्रमोहयेत् ।
ब्राह्मणेषु प्रमूढेषु धर्मो विप्रणशेद् ध्रुवम् ।
धर्मप्रणाशे भूतानामभावः स्यान्न संशयः ॥ २० ॥
यो रक्षिभ्यः संप्रदाय राजा राष्ट्रं विलुम्पति ।
यज्ञे राष्ट्राद्धनं तस्मादानयध्वमिति ब्रुवन् ॥ २१ ॥
यच्चादाय तदाज्ञप्तं भीतं दत्तं सुदारुणम् ।
यजेद्राजा न तं यज्ञं प्रशंसन्त्यस्य साधवः ॥ २२ ॥
अपीडिताः सुसंवृद्धा ये ददत्यनुकूलतः ।
तादृशेनाप्युपायेन यष्टव्यं नोद्यमाहृतैः ॥ २३ ॥
यदा परिनिषिच्येत निहितो वै यथाविधि ।
तदा राजा महायज्ञैर्यजेत बहुदक्षिणैः ॥ २४ ॥
वृद्धबालधनं रक्ष्यमन्धस्य कृपणस्य च ।

करो । हे भारत ! ब्राह्मणोंमें सदा तुम्हारा योगक्षेम रहे, तुम्हारा जीवन ब्राह्मणोंके निमित्त ही व्यापृत होवे । उन लोगोंके प्रतिपालन करनेमें कदापि विरत न होना, यह जो उत्तम धनकी महान् राशि है, वह तुम्हारा नहीं वरन ब्राह्मणोंका ही धन है । (१४-१९)

सदा सम्पत्तिका सहवास मनुष्योंको अभिमान और मोहसे मुग्ध करता है, ब्राह्मणोंके विमूढ होनेपर निश्चय ही धर्म नष्ट होता है, धर्मके नष्ट होनेपर निःसन्देह प्राणियोंका अभाव हुआ करता है । जो राजा संग्रहके अनन्तर लोगोंको धन दान करके शेषमें यज्ञके लिये "उसी राज्यसे धन लाओ" ऐसा वचन कहके राष्ट्रलोप करता है तथा जो आज्ञानुसार धनवान पुरुषोंके द्वारा प्राप्त हुए उस दारुण धनको लेकर यज्ञ करता है, साधुजन उसके वैसे यज्ञकी प्रशंसा नहीं करते । जो सब अत्यन्त धनवान पुरुष अपीडित होकर अनुकूल भावसे देवें, वैसे ही उपायके सहारे यज्ञ करना उचित है, प्रजाको पीडित करके यज्ञ करना योग्य नहीं है । इसलिये यह उचित है, कि जब प्रजाओंके हित करनेवाला राजा प्रजा-समूहके धनसे अभिषिक्त हो, तब अनेक दक्षिणायुक्त महायज्ञके द्वारा याग करे । (२०-२४)

बूढे, बालक और कृपापात्र अन्धोंके

न खातपूर्वं कुर्वीत न रुदन्तीधनं हरेत् ॥ २५ ॥
हृतं कृपणवित्तं हि राष्ट्रं हन्ति नृपश्रियम् ।
दद्याच्च महतो भोगान् क्षुद्भयं प्रणुदेत्सताम् ॥ २६ ॥
येषां स्वादूनि भोज्यानि समवेक्षयन्ति बालकाः ।
नाश्नन्ति विधिवत्तानि किं नु पापतरं ततः ॥ २७ ॥
यदि ते तादृशो राष्ट्रे विद्वान्त्सीदेत्क्षुधा द्विजः ।
भ्रूणहत्यां च गच्छेथाः कृत्वा पापमिवोत्तमम् ॥ २८ ॥
धिक्तस्य जीवितं राज्ञो राष्ट्रे यस्यावसीदति ।
द्विजोऽन्यो वा मनुष्योऽपि शिबिराह वचो यथा ॥ २९ ॥
यस्य स्म विषये राज्ञः स्नातकः सीदति क्षुधा ।
अवृद्धिमेति तद्राष्ट्रं विन्दते सह राजकम् ॥ ३० ॥
क्रोशन्त्यो यस्य वै राष्ट्राद् ह्रियन्ते तरसा स्त्रियः ।
क्रोशतां पतिपुत्राणां मृतोऽसौ न च जीवति ॥ ३१ ॥
अरक्षितारं हर्तारं विलोप्तारमनायकम् ।

धनकी रक्षा करनी चाहिये और सूखा पडनेपर जो लोग कूआं खोदके खेतके धान्यको सींचते हैं, उनके और रुदन करनेवालोंके धन यज्ञके लिये हरना उचित नहीं है। जो राजा कृपणकी भांति व्यवहार करता है, वही व्यवहार उसके राजश्रीको विनष्ट करता है, इस-लिये राजा उत्तम महत् भोग्यवस्तु दान करे और साधुओंकी क्षुधा तथा भय दूर करे। बालकवृन्द जिसके भोजनकी सुस्वादु वस्तुओंको केवल देखा ही करते हैं कदापि पाते नहीं, अथवा विधिपूर्वक भोजन नहीं कर सकते, उससे अधिक दूसरा पातकी कौनसा है? तुम्हारे ऐसे राज्यमें विद्वान् ब्राह्मण यदि क्षुधाके द्वारा अवसन्न होंगे, तो मानो तुम अत्यन्त पाप करके भ्रूणहत्या अपराधका फल पाओगे। (२५-२८)

राजा शिबिने ऐसा कहा है, कि जिसके राज्यमें ब्राह्मण अथवा अन्य कोई मनुष्य क्षुधासे खिन्न होता है, उस राजाके जीनेको धिक्कार है। जिस राजाके राज्यमें स्नातक ब्राह्मण क्षुधासे अवसन्न होते हैं, उसके राज्यकी वृद्धि नहीं होती और इकबारगी बहुतसे राजा एकत्र होके उसके विपक्षी बनते हैं। जिसके राज्यमें रोनेवाले पति और पुत्रोंके बीचसे रुदन करती हुई स्त्री हरी जाती है, वह राजा मरे हुएके तुल्य है, उस समय वह जीता नहीं

तं वै राजकलिं हन्युः प्रजाः सन्नह्य निर्घृणम् ॥ ३२ ॥
अहं वो रक्षितेत्युक्त्वा यो न रक्षति भूमिपः ।
स संहत्य निहन्तव्यः श्वेव सोन्माद आतुरः ॥ ३३ ॥
पापं कुर्वन्ति यत्किंचित्प्रजा राज्ञा ह्यरक्षिताः ।
चतुर्थं तस्य पापस्य राजा विन्दति भारत ॥ ३४ ॥
अथाहुः सर्वमेवैति भूयोऽर्धमिति निश्चयः ।
चतुर्थं मतमस्माकं मनोः श्रुत्वानुशासनम् ॥ ३५ ॥
शुभं वा यच्च कुर्वन्ति प्रजा राज्ञा सुरक्षिताः ।
चतुर्थं तस्य पुण्यस्य राजा चाप्नोति भारत ॥ ३६ ॥
जीवन्तं त्वाऽनुजीवन्तु प्रजाः सर्वा युधिष्ठिर ।
पर्जन्यमिव भूतानि महाद्रुममिवाण्डजाः ॥ ३७ ॥
कुबेरमिव रक्षांसि शतक्रतुमिवामराः ।
ज्ञातयस्त्वाऽनुजीवन्तु सुहृदश्च परन्तप ॥ ३८ ॥ [२०३६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

युधिष्ठिर उवाच- इदं देयमिदं देयमितीयं श्रुतिरादरात ।

है। अरक्षक, हर्त्ता, लोपकर्त्ता, अनायक और निर्घृण कलि समान राजाका प्रजा एकत्र होके नाश करे। मैं तुम लोगोंका रक्षक हूं, ऐसा वचन कहके जो राजा रक्षा नहीं करता, उस उन्मत्त तथा आतुर राजाको प्रजा इकट्ठी होके कुत्तेकी भांति मार डालती है। (२९-३३)

हे भारत! प्रजा राजासे अरक्षित होनेपर जो कुछ पाप करती है, राजा उनमेंसे चौथा भाग ग्रहण करता है। कोई कहते हैं, प्रजाका किया हुआ समस्त पाप राजाको लगता है, कोई कहते हैं, आधा हिस्सा मिला करता है, मनुकी आज्ञा सुनके चौथा भाग ही मुझे अभिमत है। हे भारत! राजासे सुरक्षित प्रजा जो सब शुभ कर्म करती है, उस पुण्यमें भी उसे चतुर्थ भाग प्राप्त होता है। हे युधिष्ठिर! तुम जीवित रहो, प्रजा तुम्हारी अनुजीवी होवे जैसे समस्त प्राणी जलके, पक्षीवृन्द महावृक्षके, राक्षसगण कुबेरके और देववृन्द महेन्द्रके अनुजीवी होते हैं, वैसे ही स्वजन और सुहृद्‌गण तुम्हारे अनुजीवी होवें। (३४-३८)

अनुशासनपर्वमें ६१ अध्याय समाप्त।

बहुदेयाश्च राजानः किंस्विद्दानमनुत्तमम् ॥ १ ॥
भीष्म उवाच– अतिदानानि सर्वाणि पृथिवीदानमुच्यते ।
अचला ह्यक्षया भूमिर्दोग्ध्री कामानिहोत्तमान् ॥ २ ॥
दोग्ध्री वासांसि रत्नानि पशून्व्रीहियवांस्तथा ।
भूमिदः सर्वभूतेषु शाश्वतीरेधते समाः ॥ ३ ॥
यावद्भूमेरायुरिह तावद्भूमिद एधते ।
न भूमिदानादस्तीह परं किंचिद्युधिष्ठिर ॥ ४ ॥
अप्यल्पं प्रददुः सर्वे पृथिव्या इति नः श्रुतम् ।
भूमिमेव ददुः सर्वे भूमिं ते भुञ्जते जनाः ॥ ५ ॥
स्वकर्मैवोपजीवन्ति नरा इह परत्र च ।
भूमिर्भूतिर्महादेवी दातारं कुरुते प्रियम् ॥ ६ ॥
य एतां दक्षिणां दद्यादक्षयां राजसत्तम ।
पुनर्नरत्वं संप्राप्य भवेत्स पृथिवीपतिः ॥ ७ ॥
यथा दानं तथा भोग इति धर्मेषु निश्चयः ।

अनुशासनपर्वमें ६२ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, यह देय है, यह दातव्य है,इस ही प्रकार श्रुति अत्यन्त आदरके सहित दानकी विधि कहा करती है; राजा लोग बहुतेरे कुटुम्बका भरण करते हैं, उनके लिये सबसे श्रेष्ठ दान कौनसा है ? (१)

भीष्म बोले, सब दानोंमें भूमिदान सबसे श्रेष्ठ है, अक्षया और अचला भूमि समस्त उत्तम कामना पूरण किया करती है । वस्त्र, रत्न, व्रीहि, यव प्रभृतिको पृथ्वीही दोहन किया करती है, इसलिये भूमि देनेवाला सब प्राणियोंके बीच सदा ही वर्द्धित होता है। हे युधिष्ठिर ! इस लोकमें जबतक भूमि विद्यमान रहती है, भूमि दान करनेवाला उतने समय पर्यन्त वर्द्धित होता है; इसलिये भूमिदानसे श्रेष्ठ और कुछ नहीं है । हमने सुना है, कि सबके बीच बहुत ही थोडे लोग भूमिदान किया करते हैं, वे भूमि भोग करनेमें समर्थ होते हैं । पुरुष इस लोक और परलोकमें निज कर्मको ही उपजीव्य करके जीवन बिताता है,महादेवी पृथ्वी भूमिदाताका अत्यंत प्रिय किया करती है । हे राजसत्तम ! जो लोग इस अक्षया भूमिको दक्षिणामें दान करते हैं, वे फिर मनुष्यत्व लाभ करके पृथ्वीपति होते हैं । (२–७)

जैसा देगा वैसा ही भोग प्राप्त होगा,

संग्रामे वा तनुं जह्याद्दद्याच्च पृथिवीमिमाम् ॥ ८ ॥
इत्येतत्क्षत्रबन्धूनां वदन्ति परमां श्रियम्।
पुनाति दत्ता पृथिवी दातारमिति शुश्रुम ॥ ९ ॥
अपि पापसमाचारं ब्रह्मघ्नमपि चानृतम्।
सैव पापं प्लावयति सैव पापात्प्रमोचयेत् ॥ १० ॥
अपि पापकृतां राज्ञां प्रतिगृह्णन्ति साधवः।
पृथिवीं नान्यदिच्छन्ति पावनं जननी यथा ॥ ११ ॥
नामास्याः प्रियदत्तेति गुह्यं देव्याः सनातनम्।
दानं वाऽप्यथवाऽऽदानं नामास्याः प्रथमप्रियम् ॥१२॥
य एतां विदुषे दद्यात्पृथिवीं पृथिवीपतिः।
पृथिव्यामेतदिष्टं स राजा राज्यमितो व्रजेत् ॥ १३ ॥
पुनश्चासौ जनिं प्राप्य राजवत् स्यान्न संशयः।
तस्मात्प्राप्यैव पृथिवीं दद्याद्विप्राय पार्थिवः ॥ १४ ॥
नाभूमिपतिना भूमिरधिष्ठेया कथंचन।

यह धर्मशास्त्रसे निश्चय है, चाहे संग्राम में शरीर परित्याग करे, अथवा इस पृथ्वीको दान करे। पण्डित लोग इसे ही क्षत्रबन्धुओंकी परम श्री कहते हैं, मैंने सुना है, कि दान की हुई पृथ्वी दाताको पवित्र करती है। पाप करनेवाले ब्रह्मघ्न और मिथ्यावादी मनुष्योंको पापसे पृथ्वी ही उद्धार करती है और वही उन लोगोंको पापोंसे मुक्त किया करती है। साधुजन पापाचारी राजाओंके भूमिदानको ही प्रतिग्रह करते हैं, अन्यधन ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं करते, क्यों कि पृथ्वी ही सबको पवित्र करने वाली तथा सबकी जननी है। (८–११)

पृथ्वीदेवीका सनातन गूढ नाम प्रियदत्ता है, प्रियके द्वारा दत्ता अथवा प्रिय पुरुषोंको दत्ता, इन दोनों भांतिके अर्थके अनुसार लोग इसे दान किंवा आदान करते हैं। इसलिये तुम भूमिदान करके पहले पृथ्वीके प्रियपात्र बनो। जो पृथ्वीपति विद्वान् पुरुषको भूमिदान करता है, वह राजा इस लोकमें पृथ्वीके बीच अभिलषित राज्य पाता है, फिर वही दाता दूसरे जन्ममें राजाके समान होता है, इसमें सन्देह नहीं है। हे महाराज! इसलिये भूमि प्राप्त होते ही उसे ब्राह्मणोंको दान करना उचित है, जो भूमिपति नहीं है वह किसी प्रकार पृथ्वीपर निवास करनेमें समर्थ

न चापात्रेण वा ग्राह्या दत्तदाने न चाचरेत् ॥ १५ ॥
ये चान्ये भूमिमिच्छेयुः कुर्युरेवं न संशयः।
यः साधोर्भूमिमादत्ते न भूमिं विन्दते तु सः ॥ १६ ॥
भूमिं दत्त्वा तु साधुभ्यो विन्दते भूमिमुत्तमाम्।
प्रेत्य चेह च धर्मात्मा संप्राप्नोति महद्यशः ॥ १७ ॥
यस्य विप्रास्तु शंसन्ति साधोर्भूमिं सदैव हि।
न तस्य शत्रवो राजन् प्रशंसन्ति वसुन्धराम् ॥ १८ ॥
यत्किंचित्पुरुषः पापं कुरुते वृत्तिकर्शितः।
अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन पूयते ॥ १९ ॥
येऽपि संकीर्णकर्माणो राजानो रौद्रकर्मिणः।
तेऽभ्यः पवित्रमाख्येयं भूमिदानमनुत्तमम् ॥ २० ॥
अल्पान्तरमिदं शश्वत्पुराणा मेनिरे जनाः।
यो यजेताश्वमेधेन दद्याद्वा साधवे महीम् ॥ २१ ॥
अपि चेत्सुकृतं कृत्वा शङ्केरन्नपि पण्डिताः।

नहीं होता, अपात्रको दान करना उचित नहीं, अपात्र पुरुषको भूमिदान लेना भी अनुचित है और अपने दिये हुए स्थानमें विचरना भी अयोग्य है। (१२—१५)

दूसरे जो कोई पुरुष भूमिलाभकी इच्छा करें, वे निःसन्देह इस ही प्रकार करें। जो लोग साधु पुरुषोंकी भूमि अन्यायपूर्वक लेते हैं, वे कभी भी भूमि नहीं पा सकते। साधुओंको भूमि दान करनेसे उत्तम भूमि मिलती है, धर्मात्मा मनुष्यको इस लोक और परलोकमें महत् यश प्राप्त होता है। हे महाराज! साधु लोग जिसके भूमिकी सदा प्रशंसा किया करते अर्थात् कहा करते हैं, कि एक पुरुषकी दी हुई भूमिमें निवास किया करता हूं, उसके शत्रुगण वसुन्धराकी प्रशंसा नहीं करते। पुरुष जीविकाके लिये क्लेशित होकर जो कुछ पाप करता है, वह गोचर्मपरिमाणसे भी भूमि दान करने पर पापसे छूट जाता है। (१६–१९)

जो सब राजा संकुल अथवा भयङ्कर कर्म करते हैं, उनके निकट सबसे उत्तम पवित्र भूमिदानका विषय वर्णन करना चाहिये। प्राचीन लोग वक्ष्यमाण दोनों विषयोंका अल्प ही अन्तर जानके कहा करते हैं, कि अश्वमेध यज्ञ करे अथवा साधु पुरुषोंको भूमिदान करे। पण्डित लोग सुकृत करके किसी भांति यदि

अशक्यमेकमेवैतद्भूमिदानमनुत्तमम् ॥ २२ ॥
सुवर्णं रजतं वस्त्रं मणिमुक्ता वसूनि च।
सर्वमेतन्महाप्राज्ञ ददाति वसुधां ददत् ॥ २३ ॥
तपो यज्ञः श्रुतं शीलमलोभः सत्यसंधता।
गुरुदैवतपूजा च एता वर्तन्ति भूमिदम् ॥ २४ ॥
भर्तृनिःश्रेयसे युक्तास्त्यक्तात्मानो रणे हताः।
ब्रह्मलोकगताः सिद्धा नातिक्रामन्ति भूमिदम् ॥ २५ ॥
यथा जनित्री स्वं पुत्रं क्षीरेण भरते सदा।
अनुगृह्णाति दातारं तथा सर्वरसैर्मही ॥ २६ ॥
मृत्युर्वै किंकरो दण्डस्तमो वह्निः सुदारुणः।
घोराश्च दारुणाः पाशा नोपसर्पन्ति भूमिदम् ॥ २७ ॥
पितॄंश्च पितृलोकस्थान्देवलोकाच्च देवताः।
संतर्पयति शान्तात्मा यो ददाति वसुन्धराम् ॥ २८ ॥
कृशाय म्रियमाणाय वृत्तिग्लानाय सीदते।
भूमिं वृत्तिकरीं दत्त्वा सत्री भवति मानवः ॥ २९ ॥

शंकित हों, तौभी अनुत्तम भूमि दान करना उनके लिये बहुत ही अशंक्य कार्य है। महाबुद्धिशाली मनुष्य भूमि दान करनेसे सोना, रूपा, वस्त्र, मणि, मोती और समस्त धन दानका फल पाते हैं। (२०-२३)

तपस्या, यज्ञ, श्रुत, शील, अलोभ, सत्यसन्धता गुरुपूजा और देवपूजा, ये सब भूमिदाताका अनुसरण करते हैं। जो लोग स्वामीके मङ्गल कामनासे नियुक्त होके शरीर त्यागते अथवा युद्धमें मरके ब्रह्मलोकमें जाकर सिद्ध होते हैं, वेभी भूमिदाताको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं हैं, जैसे माता अपने पुत्रको सदा दूध पिलाके पालती है, वैसे ही पृथ्वी सब रसोंके द्वारा दाताके विषयमें अनुग्रह किया करती है। मृत्यु, कालदण्ड, अत्यन्त प्रचण्ड अग्नि और समस्त घोर दारुण पाश भूमिदाताके समीप जानेमें समर्थ नहीं होते। जो शान्तचित्तवाले मनुष्य भूमिदान करते हैं, वे पितृलोक निवासी पितर और देवलोकवासी देवताओंको पूर्णरीतिसे परितृप्त किया करते हैं। (२४-२८)

कृश, म्रियमाण, वृत्तिके लिये ग्लानियुक्त और अवसन्न पुरुषोंको जीविकाके योग्य भूमिदान करनेसे मनुष्य यज्ञफलका अधिकारी होता है। हे महाराज!

यथा धावति गौर्वत्सं स्रवन्ती वत्सला पयः।
एवमेव महाभाग भूमिर्भवति भूमिदम् ॥ ३० ॥
फालकृष्टां महीं दत्त्वा सबीजां सफलामपि।
उदीर्णं वापि शरणं यथा भवति कामदः ॥ ३१ ॥
ब्राह्मणं वृत्तिसंपन्नमाहिताग्निं शुचिव्रतम्।
नरः प्रतिग्राह्य महीं न याति परमापदम् ॥ ३२ ॥
यथा चन्द्रमसो वृद्धिरहन्यहनि जायते।
तथा भूमिकृतं दानं सस्ये सस्ये विवर्धते ॥ ३३ ॥
अत्र गाथा भूमिगीताः कीर्तयन्ति पुराविदः।
याः श्रुत्वा जामदग्न्येन दत्ता भूः काश्यपाय वै॥३४॥
मामेवादत्त मां दत्त मां दत्त्वा मामवाप्स्यथ।
अस्मिन् लोके परे चैव तद्दत्तं जायते पुनः ॥ ३५ ॥
य इमां व्याहृतिं वेद ब्राह्मणो वेदसंमिताम्।
श्राद्धस्य क्रियमाणस्य ब्रह्मभूयं स गच्छति ॥ ३६ ॥
कृत्यानामभिशस्तानामरिष्टशमनं महत्।
प्रायश्चित्तं महीं दत्त्वा पुनात्युभयतो दश ॥ ३७ ॥

जैसे सवत्सा गऊके स्तनसे दूध गिरता है और वह बछडेकी ओर दौडती है, वैसे ही भूमिदाताकी ओर भूमि गमन करती है। हलसे जोती हुई बीजयुक्त और फलशालिनी भूमि तथा महत् गृहदान करनेसे मनुष्य कामदाता होता है। वृत्तियुक्त आहिताग्नि और पवित्र व्रत करनेवाले ब्राह्मणको भूमिदान करनेसे मनुष्य परमापद नहीं पाता है। जैसे प्रतिदिन चन्द्रमाकी वृद्धि होती है, वैसे ही भूमिदान प्रतिशस्योंमें वर्द्धित हुआ करता है। इस विषयमें प्राचीन पण्डित लोग भूमिगीता समस्त गाथा कहा करते हैं, जिसे सुनके जामदग्न्य रामने कश्यपको भूमिदान किया था। "हमेंही ग्रहण करो, हमें ही दान करो, हमें ही दान करके मुझे ही पाओगे" इस लोकमें जो दान किया जाता है, परलोकमें फिर वही मिलता है। (३०—३५)

जो ब्राह्मण इस वेदतुल्य व्याहृतिको जानता है, वह क्रियमाण श्राद्धसे ब्रह्मत्व अर्थात् बृहत् फल पाता है। यही अनन्त प्रबल मन्त्रमयी मारणके निमित्त शक्ति सबके घोर पापोंको नष्ट करती है। जो लोग भूमिदान करके

पुनाति य इदं वेद वेदवादं तथैव च।
प्रकृतिः सर्वभूतानां भूमिर्वैश्वानरी मता ॥ ३८ ॥
अभिषिच्यैव नृपतिं श्रावयेदिममागमम्।
यथा श्रुत्वा महीं दद्यान्नादद्यात्साधुतश्च ताम् ॥ ३९ ॥
सोऽयं कृत्स्नो ब्राह्मणार्थो राजार्थश्चाप्यसंशयः।
राजा हि धर्मकुशलः प्रथमं भूतिलक्षणम् ॥ ४० ॥
अथ येषामधर्मज्ञो राजा भवति नास्तिकः।
न ते सुखं प्रबुध्यन्ति न सुखं प्रस्वपन्ति च ॥ ४१ ॥
सदा भवन्ति चोद्विग्नास्तस्य दुश्चरितैर्नराः।
योगक्षेमा हि बहवो राष्ट्रं नास्याविशन्ति तत् ॥ ४२ ॥
अथ येषां पुनः प्राज्ञो राजा भवति धार्मिकः।
सुखं ते प्रतिबुध्यन्ते सुसुखं प्रस्वपन्ति च ॥ ४३ ॥
तस्य राज्ञः शुभै राज्यैः कर्मभिर्निर्वृता नराः।
योगक्षेमेण वृष्ट्या च विवर्धन्ते स्वकर्मभिः ॥ ४४ ॥
स कुलीनः स पुरुषः स बन्धुः स च पुण्यकृत्।

प्रायश्चित्त करते हैं, वह पहले और पीछेके दश पुरुषोंको पवित्र किया करते हैं, और जो लोग इस वेदवाक्यको जानते हैं, वे भी ऊपर कहे हुए दश पुरुषोंको पवित्र करते हैं। जगत्में मनुष्योंकी सम्बन्धिनी भूमि ही सब प्राणियोंकी प्रकृति रूपसे सम्मत हुई है। राजाको अभिषेक करते ही यह शास्त्र उसे सुनावे, जिसे सुनके राजा भूमि दान करे और साधु पुरुषोंकी भूमि न लेवे। (३८—३९)

यह भूमि दान विषयक शास्त्र ब्राह्मणों और राजाओंके लिये वर्णित हुआ है, इसमें सन्देह नहीं है। धर्म जाननेवाला राजा ही पहले ऐश्वर्यसूचक भूमि दान करे। जिन लोगोंका राजा अधर्मज्ञ और नास्तिक होता है, वे सुखसे सावधान तथा सुखसे निद्रित नहीं होते; मनुष्य उसके दुश्चरित्रोंसे अत्यन्त व्याकुल होते हैं, बहुतेरे योग-क्षेमसमर्थ पुरुष उसके राज्यमें वास करनेकी इच्छा नहीं करते। और जिनका राजा बुद्धिमान तथा धार्मिक होता है, वे लोग सुखसे जागते और परम सुखसे सोते हैं। उस राजाके पवित्र राज्यमें शुभकर्मके सहारे मनुष्यों-की निर्वृति हुआ करती है, पुरुष योग-क्षेम वृष्टि तथा निज कर्मके द्वारा विशेष

स दाता स च विक्रान्तो यो ददाति वसुन्धराम् ॥४५॥
आदित्या इव दीप्यन्ते तेजसा भुवि मानवाः ।
ददन्ति वसुधां स्फीतां ये वेदविदुषि द्विजे ॥ ४६ ॥
यथा सस्यानि रोहन्ति प्रकीर्णानि महीतले ।
तथा कामाः प्ररोहन्ति भूमिदानसमार्जिताः ॥ ४७ ॥
आदित्यो वरुणो विष्णुर्ब्रह्मा सोमो हुताशनः ।
शूलपाणिश्च भगवान् प्रतिनन्दन्ति भूमिदम् ॥ ४८ ॥
भूमौ जायन्ति पुरुषा भूमौ निष्ठां व्रजन्ति च ।
चतुर्विधो हि लोकोऽयं योऽयं भूमिगुणात्मकः ॥४९॥
एषा माता पिता चैव जगतः पृथिवीपते ।
नानया सदृशं भूतं किंचिदस्ति जनाधिप ॥ ५० ॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
बृहस्पतेश्च संवादमिन्द्रस्य च युधिष्ठिर ॥ ५१ ॥
इष्ट्वा क्रतुशतेनाथ महता दक्षिणावता ।
मघवा वाग्विदां श्रेष्ठं पप्रच्छेदं बृहस्पतिम् ॥ ५२ ॥

रीतिसे वर्द्धित होता है । (४०-४४)

जो लोग भूमिदान करते हैं, वेही कुलीन, वेही बन्धु, वेही पुण्य करनेवाले वेही बलवान् और वेही दाता होते हैं। जो लोग वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंको अधिक भूमि दान करते हैं, वे भूमण्डल पर तेजपुञ्जके सहारे सूर्यकी भांति प्रकाशित होते हैं। भूमिमें पडा हुआ अन्न जैसे अंकुररूपसे उत्पन्न होता है, वैसे ही भूमिदानसे अर्जित सब कामना पूर्ण हुआ करती हैं। सूर्य, वरुण, विष्णु, ब्रह्मा, चन्द्रमा, अग्नि और भगवान् शिव भूमिदाताको अभिनन्दित करते हैं। (४५-४८)

मनुष्य भूमिपर ही जन्मते और भूमि ही पर पञ्चत्वको प्राप्त होते हैं, इसलिये ये जरायुज आदि चार प्रकारके जीवमात्र ही पार्थिव गुणमय हैं। हे पृथ्वीनाथ महाराज ! यह पृथ्वी ही जगत्की माता और पिता है, इसलिये इसके समान कोई भी नहीं है। हे युधिष्ठिर ! प्राचीन लोग इस विषयमें बृहस्पति और इन्द्रके संवादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं। देवराज इन्द्रने उत्तम महत् दक्षिणायुक्त एक सौ यज्ञ करके वाक्यवेत्ताओंमें श्रेष्ठ बृहस्पतिसे यह वक्ष्यमाण वचन कहा था। (४९-५२)

मघवोवाच- भगवन् केन दानेन स्वर्गतः सुखमेधते ।
यदक्षयं महार्घं च तद् ब्रूहि वदतां वर ॥ ५३ ॥
भीष्म उवाच- इत्युक्तः स सुरेन्द्रेण ततो देवपुरोहितः ।
बृहस्पतिर्बृहत्तेजाः प्रत्युवाच शतक्रतुम् ॥ ५४ ॥
बृहस्पतिरुवाच- सुवर्णदानं गोदानं भूमिदानं च वृत्रहन् ।
दददेतान्महाप्राज्ञः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५५ ॥
न भूमिदानाद्देवेन्द्र परं किंचिदिति प्रभो ।
विशिष्टमिति मन्यामि यथा प्राहुर्मनीषिणः ॥ ५६ ॥
ये शूरा निहता युद्धे स्वर्याता रणगृद्धिनः ।
सर्वे ते विबुधश्रेष्ठ नातिक्रामन्ति भूमिदम् ॥ ५७ ॥
भर्तुर्निःश्रेयसे युक्तास्त्यक्तात्मानो रणे हताः ।
ब्रह्मलोकगता युक्ता नातिक्रामन्ति भूमिदम् ॥ ५८ ॥
पञ्च पूर्वा हि पुरुषाः षडन्ये वसुधां गताः ।
एकादश ददद् भूमिं परित्रातीह मानवः ॥ ५९ ॥
रत्नोपकीर्णां वसुधां यो ददाति पुरन्दर ।

इन्द्र बोले, हे वक्तृवर भगवन् ! कौनसी वस्तु दान करनेसे स्वर्गसे भी अधिक सुख समृद्धि होती है, तथा जो दान महार्घ और अक्षय हो, आप उसे वर्णन करिये । (५३)

भीष्म बोले, अनन्तर देवताओंके पुरोहित महातेजस्वी बृहस्पतिने इन्द्रका ऐसा वचन सुनकर उन्हें उत्तर दिया । (५४)

बृहस्पति बोले, हे शत्रुनाशन महाप्राज्ञ ! मनुष्य सुवर्ण दान, गऊ दान और भूमि दान करके पापसे छूटते हैं । हे देवेन्द्र ! पण्डित लोग जैसा कहा करते हैं, उसके अनुसार मैं भूमिदान से बढके किसी दानको भी विशिष्ट वा श्रेष्ठ नहीं जानता । हे देवश्रेष्ठ ! जो सब युद्धके अभिलाषी शूर पुरुष संग्राम में मरके स्वर्गमें गये हैं, वे भूमिदाताको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होते । स्वामीके कल्याणके लिये नियुक्त होके युद्धमें मरकर जो लोग शरीर त्यागनेपर ब्रह्मलोकमें जाकर युक्त हुए हैं, वे भी भूमिदाताको उत्क्रमण करनेमें समर्थ नहीं हैं । (५५–५८)

जो पुरुष भूमिदान करता है, वह पहिलेके पांच और पीछे भूमिपरके छः इन ग्यारह पुरुषोंका परित्राण किया करता है । हे इन्द्र ! जो रत्नपूरित

स मुक्तः सर्वकलुषैः स्वर्गलोके महीयते ॥ ६० ॥
महीं स्फीतां ददद्राजन् सर्वकामगुणान्विताम् ।
राजाधिराजो भवति तद्धि दानमनुत्तमम् ॥ ६१ ॥
सर्वकामसमायुक्तां काश्यपीं यः प्रयच्छति ।
सर्वभूतानि मन्यन्ते मां ददातीति वासव ॥ ६२ ॥
सर्वकामदुघां धेनुं सर्वकामगुणान्विताम् ।
ददाति यः सहस्राक्ष स्वर्गं याति स मानवः ॥ ६३ ॥
मधुसर्पिःप्रवाहिण्यः पयोदधिवहास्तथा ।
सरितस्तर्पयन्तीह सुरेन्द्र वसुधाप्रदम् ॥ ६४ ॥
भूमिप्रदानान्नृपतिर्मुच्यते सर्वकिल्बिषात् ।
न हि भूमिप्रदानेन दानमन्यद्विशिष्यते ॥ ६५ ॥
ददाति यः समुद्रान्तां पृथिवीं शस्त्रनिर्जिताम् ।
तं जनाः कथयन्तीह यावद्भवति गौरियम् ॥ ६६ ॥
पुण्यामृद्धिरसां भूमिं यो ददाति पुरन्दर ।
न तस्य लोकाः क्षीयन्ते भूमिदानगुणान्विताः ॥ ६७॥
सर्वदा पार्थिवेनेह सततं भूतिमिच्छता ।

पृथ्वी दान करता है, वह सब पापोंसे छूटके स्वर्ग लोकमें निवास करता है, हे महाराज ! सर्वकामना पूर्ण करनेवाले गुणयुक्त बहुत सी भूमिको दान करनेवाला मनुष्य राजाधिराज होता है, इसलिये भूमिदान ही सबसे श्रेष्ठ है। हे इन्द्र ! जो लोग सर्वकामना पूर्ण करने वाली भूमि दान करते हैं, उनके समीप सब प्राणी ऐसा जानते हैं, कि हमें दान करता है। (५९-६२)

हे सहस्राक्ष ! जो मनुष्य सर्वदुघा और सब प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाली गुणयुक्त गऊ दान करते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं। हे सुरेन्द्र ! मधु और घृत प्रवाहिनी, दूध तथा दहीसे बहती हुई नदियां इस लोकमें भूमि दान करनेवाले मनुष्योंको तृप्तियुक्त किया करती हैं, राजा भूमिदान करनेपर सब पापोंसे मुक्त होता है, भूमिदानसे बढके अन्य दान श्रेष्ठ नहीं है। जो लोग शस्त्रनिर्जित समुद्र पर्यन्त पृथ्वी प्रदान करते हैं, यह पृथ्वी जबतक रहेगी, तबतक उनका नाम लिया जायगा।(६३-६६)

हे इन्द्र ! जो लोग पवित्र मृदुरसशालिनी भूमि दान करते हैं, उनके भूमिदानसे समस्त गुणान्वित लोक

भूर्देया विधिवच्छक्र पात्रे सुखमभीप्सुना ॥ ६८ ॥
अपि कृत्वा नरः पापं भूमिं दत्वा द्विजातये ।
समुत्सृजति तत्पापं जीर्णां त्वचमिवोरगः ॥ ६९ ॥
सागरान् सरितः शैलान् काननानि च सर्वशः ।
सर्वमेतन्नरः शक्र ददाति वसुधां ददत् ॥ ७० ॥
तडागान्युदपानानि स्रोतांसि च सरांसि च ।
स्नेहान्सर्वरसांश्चैव ददाति वसुधां ददत् ॥ ७१ ॥
ओषधीर्वीर्यसंपन्ना नगान्पुष्पफलान्वितान् ।
काननोपलशैलांश्च ददाति वसुधां ददत् ॥ ७२ ॥
अग्निष्टोमप्रभृतिभिरिष्ट्वा च स्वाप्तदक्षिणैः ।
न तत्फलमवाप्नोति भूमिदानाद्यदश्नुते ॥ ७३ ॥
दाता दशानुगृह्णाति दश हन्ति तथा क्षिपन् ।
पूर्वदत्तां हरन् भूमिं नरकायोपगच्छति ॥ ७४ ॥
न ददाति प्रतिश्रुत्य दत्त्वाऽपि च हरेत्तु यः ।
स बद्धो वारुणैः पाशैस्तप्यते मृत्युशासनात् ॥ ७५ ॥

नष्ट नहीं होते । हे इन्द्र ! तुम तथा सुखकी इच्छा करनेवाले राजा सदा सत्पात्रको विधिपूर्वक भूमि दान करें, जैसे सर्प अपनी पुरानी केचुलीको छोड देता है, वैसे ही मनुष्य पापकर्म करके भी द्विजातियोंको भूमिदान करनेसे उस पापसे मुक्त हुआ करता है । हे इन्द्र ! जो मनुष्य भूमि दान करता है, वह समुद्र, नदी, पर्वत और वन, इन सबको ही दान किया करता है । जो लोग भूमि दान करते हैं, वे तडाग, उदपान,स्रोत, तालाव, स्नेह और समस्त रस दान किया करते हैं । जो लोग पृथ्वी दान करते हैं, वे वीर्यसम्पन्न औषधि, फूल फलसे युक्त वृक्ष, वन और पत्थरोंसे युक्त पहाडोंको दान किया करते हैं । (६७—७२)

भूमि दान करनेसे जो फल मिलता है, अग्निष्टोम प्रभृति आप्त दक्षिणायुक्त यज्ञ करनेसे वैसा फल नहीं प्राप्त हो सकता । भूमिदाता दश पुरुषोंको तारता है और भूमि हरनेवाला दश पुरुषोंको नष्ट किया करता है, जो पुरुष पहलेकी दी हुई भूमिको हर लेता है, वह नरकमें जाता है । जो पुरुष कहके दान नहीं करता और दान करके फिर उसे हर लेता है, वह वरुणके पाशमें, वधके मृत्युके शासनमें परितापित

आहिताग्निं सदायज्ञं कृशवृत्तिं प्रियातिथिम् ।
ये भजन्ति द्विजश्रेष्ठं नोपसर्पन्ति ते यमम् ॥ ७६ ॥
ब्राह्मणेष्वनृणीभूतः पार्थिवः स्यात्पुरन्दर ।
इतरेषां तु वर्णानां तारयेत्कृशदुर्बलान् ॥ ७७ ॥
नाच्छिन्द्यात्स्पर्शितां भूमिं परेण त्रिदशाधिप ।
ब्राह्मणस्य सुरश्रेष्ठ कृशवृत्तेः कदाचन ॥ ७८ ॥
यथाऽश्रु पतितं तेषां दीनानामथ सीदताम् ।
ब्राह्मणानां हृते क्षेत्रे हन्यात्त्रिपुरुषं कुलम् ॥ ७९ ॥
भूमिपालं च्युतं राष्ट्राद्यस्तु संस्थापयेन्नरः ।
तस्य वासः सहस्राक्ष नाकपृष्ठे महीयते ॥ ८० ॥
इक्षुभिः संततां भूमिं यवगोधूमशालिनीम् ।
गोऽश्ववाहनपूर्णां वा बाहुवीर्यादुपार्जिताम् ॥ ८१ ॥
निधिगर्भां ददद्भूमिं सर्वरत्नपरिच्छदाम् ।
अक्षयाँल्लभते लोकान् भूमिसत्रं हि तस्य तत ॥८२॥
विधूय कलुषं सर्वं विरजाः संमतः सताम् ।
लोके महीयते सद्भिर्यो ददाति वसुन्धराम् ॥ ८३ ॥

होता है। जो लोग आहिताग्नि, सदा यज्ञ करनेवाले, कृशवृत्ति और अतिथिप्रिय श्रेष्ठ द्विजकी सेवा करते हैं वे यमके निकट नहीं जाते। (७३—७६)

हे इन्द्र! राजा ब्राह्मणोंके समीप अनृण होवे; इतर वर्णोंके बीच, कृश और दुर्बलोंका परित्राण करे। हे सुर-श्रेष्ठ त्रिदशेश्वर! कृशवृत्तियुक्त ब्राह्मणको दूसरेने जो भूमि दान की हो, उसे कदाचित् आक्षेपपूर्वक ग्रहण न करे। दीन हीन दुखिये ब्राह्मणोंकी भूमि हरनेसे उनके जो आंसू गिरते हैं, वे तीन पुरुष पर्यन्त वंशको विनष्ट करते हैं। हे सहस्राक्ष! राज्यच्युत भूपतिको जो मनुष्य फिर राज्यपर स्थापित करता है, उसका स्वर्गलोकमें निवास होता है। जो पुरुष दूध और गेहूं आदिसे परिपूरित, गऊ घोडे प्रभृति वाहनोंसे युक्त, बाहुबलसे उपार्जित रत्नगर्भा और सब रत्नोंसे युक्त पृथ्वी दान करते हैं, उन्हें समस्त अक्षयलोक प्राप्त होते हैं, वही उनका भूमियज्ञ है। (७७-८२)

जो लोग पृथ्वीदान करते हैं, वे सब पापोंसे छूटके रजोगुणसे रहित और साधुसम्मत होकर उनके लोकमें

यथाऽप्सु पतितः शक्र तैलबिन्दुर्विसर्पति ।
तथा भूमिकृतं दानं सस्ये सस्ये विवर्धते ॥ ८४ ॥
ये रणाग्रे महीपालाः शूराः समितिशोभनाः ।
वध्यन्तेऽभिमुखाः शक्र ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते ॥ ८५ ॥
नृत्यगीतपरा नार्यो दिव्यमाल्यविभूषिताः ।
उपतिष्ठन्ति देवेन्द्र तथा भूमिप्रदं दिवि ॥ ८६ ॥
मोदते च सुखं स्वर्गे देवगन्धर्वपूजितः ।
यो ददाति महीं सम्यग्विधिनेह द्विजातये ॥ ८७ ॥
शतमप्सरसश्चैव दिव्यमाल्यविभूषिताः ।
उपतिष्ठन्ति देवेन्द्र ब्रह्मलोके धराप्रदम् ॥ ८८ ॥
उपतिष्ठन्ति पुण्यानि सदा भूमिप्रदं नरम् ।
शङ्खं भद्रासनं छत्रं वराश्वा वरवाहनम् ॥ ८९ ॥
भूमिप्रदानात्पुष्पाणि हिरण्यनिचयास्तथा ।
आज्ञा सदाऽप्रतिहता जयशब्दा वसूनि च ॥ ९० ॥
भूमिदानस्य पुण्यानि फलं स्वर्गः पुरन्दर ।
हिरण्यपुष्पाश्चौषध्यः कुशकाञ्चनशाद्वलाः ॥ ९१ ॥

निवास किया करते हैं। हे इन्द्र! जैसे जलमें डालनेसे तेजकी बूंद दूरतक फैलती है, वैसेही भूमिदानका पुण्य प्रति शस्योंके सङ्ग वर्द्धित हुआ करता है। हे सुरराज! जो सब युद्धमें शोभित शूरवीर राजाके सम्मुख संग्राममें मरते हैं, वे ब्रह्मलोकमें जाते हैं, उनके समीप जिसप्रकार दिव्य मालासे विभूषित, नृत्य और गीतमें निपुण स्त्रियां उपस्थित होती हैं; भूमिदान करनेवालेकीभी सुरलोकमें उस ही प्रकार वे सब उपासना किया करती हैं। (८३-८६)

जो पुरुष इस लोकमें विधिपूर्वक ब्राह्मणोंको भूमिदान करता है, वह सुरपुरमें देवताओं और गन्धर्वोंसे पूजित होकर सुखसे प्रसन्न होता है। हे देवेन्द्र! ब्रह्मलोकमें भूमिदाताके निकट सैकडों अप्सरा उपस्थित होती हैं। भूमि देनेवाले पुरुषोंके समीप सदा समस्त पुण्य पहुंचते हैं, भूमिदानसे शंख, भद्रासन, छत्र, श्रेष्ठ घोडे, उत्तम सवारी, फूल तथा सुवर्णकी राशि, अप्रतिहत आज्ञा, जय शब्द और धनराशि उपस्थित हुआ करते हैं। हे इन्द्र! भूमिदानके पुण्यफल स्वर्गमें सुवर्ण पुष्पयुक्त औषधियें, कुश और कांचन शाद्वल हैं,

अमृतप्रसवां भूमिं प्राप्नोति पुरुषो ददत्।
नास्ति भूमिसमं दानं नास्ति मातृसमो गुरुः।
नास्ति सत्यसमो धर्मो नास्ति दानसमो निधिः ॥९२॥
एतदाङ्गिरसाच्छ्रुत्वा वासवो वसुधामिमाम्।
वसुरत्नसमाकीर्णां ददावाङ्गिरसे तदा ॥ ९३ ॥
य इदं श्रावयेच्छ्राद्धे भूमिदानस्य संभवम्।
न तस्य रक्षसां भागो नासुराणां भवत्युत ॥ ९४ ॥
अक्षयं च भवेद्दत्तं पितृभ्यस्तन्न संशयः।
तस्माच्छ्राद्धेष्विदं विद्वान् भुञ्जतः श्रावयेद् द्विजान्॥९५॥
इत्येतत्सर्वदानानां श्रेष्ठमुक्तं तवानघ।
मया भरतशार्दूल किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ९६ ॥ [३१६२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे इन्द्रबृहस्पतिसंवादे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

युधिष्ठिर उवाच- कानि दानानि लोकेऽस्मिन्दातुकामो महीपतिः।
गुणाधिकेभ्यो विप्रेभ्यो दद्याद्भरतसत्तम ॥ १ ॥
केन तुष्यन्ति ते सद्यः किं तुष्टाः प्रदिशन्ति च।

जो पुरुष भूमिदान करता है, वह अमृत उत्पन्न करनेवाली पृथ्वी पाता है। भूमिदानके समान दूसरा दान नहीं है। माताके समान गुरु, सत्यके समान धर्म और दानके तुल्य निधि नहीं है। (८७-९२)

भीष्म बोले, देवराज इन्द्रने बृहस्पतिके मुखसे इतनी कथा सुनके उन्हें ही उस समय धन रत्नोंसे भरी हुई पृथ्वी दान की थी। जो लोग श्राद्धके समय इस भूमिदानकी कथा सुनते हैं, उन्हें राक्षस अथवा असुरोंके भागकी कल्पना नहीं करनी पडती, वे पितरोंको जो दान करते हैं,वह निःसन्देह अक्षय होता है। इसलिये विद्वान् पुरुष श्राद्धके समय भोजन करनेवाले ब्राह्मणोंको यह विषय सुनावे। हे पापरहित भरतश्रेष्ठ! यह मैंने तुम्हारे समीप सब दानोंके बीच श्रेष्ठदानका विषय कहा है, फिर कौनसे विषयको सुननेकी इच्छा करते हो? (९३-९६)

अनुशासनपर्वमें ६२ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ६३ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतसत्तम! इस लोकमें राजा किन किन विषयोंके दान करनेकी कामना करके अधिक गुणवाले

शंस मे तन्महाबाहो फलं पुण्यकृतं महत् ॥ २ ॥
दत्तं किं फलवद्राजन्निह लोके परत्र च।
भवतः श्रोतुमिच्छामि तन्मे विस्तरतो वद ॥ ३ ॥
भीष्म उवाच- इममर्थं पुरा पृष्टो नारदो देवदर्शनः।
यदुक्तवानसौ वाक्यं तन्मे निगदतः शृणु ॥ ४ ॥
नारद उवाच- अन्नमेव प्रशंसन्ति देवा ऋषिगणास्तथा।
लोकतन्त्रं हि संज्ञाश्च सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम् ॥ ५ ॥
अन्नेन सदृशं दानं न भूतं न भविष्यति।
तस्मादन्नं विशेषेण दातुमिच्छन्ति मानवाः ॥ ६ ॥
अन्नमूर्जस्करं लोके प्राणाश्चान्ने प्रतिष्ठिताः।
अन्नेन धार्यते सर्वं विश्वं जगदिदं प्रभो ॥ ७ ॥
अन्नाद् गृहस्था लोकेऽस्मिन् भिक्षवस्तापसास्तथा।
अन्नाद्भवन्ति वै प्राणाः प्रत्यक्षं नात्र संशयः ॥ ८ ॥
कुटुम्बिने सीदते च ब्राह्मणाय महात्मने।
दातव्यं भिक्षवे चान्नमात्मनो भूतिमिच्छता ॥ ९ ॥

ब्राह्मणोंको प्रदान करें? ब्राह्मण लोग कैसे दानसे उसही समय प्रसन्न होते हैं? प्रसन्न होके क्या प्रदान करते हैं? हे महाबाहो! मेरे निकट इस पुण्यजनक महत् फलके विषयको वर्णन करिये, हे राजन्! कौन वस्तु दान करनेसे इसलोकमें और परलोकमें फलित होती है? उसे मैं आपके समीप सुननेकी इच्छा करता हूं, आप यह विषय मेरे निकट विस्तारपूर्वक कहिये। (१-३)

भीष्म बोले, पहले यह विषय मैंने देवर्षि नारदसे पूछा था, उन्होंने जो कथा कही थी, उसे कहता हूं सुनो। (४)

नारद मुनि बोले, देवता और ऋषि अन्नकीही प्रशंसा करते हैं, समस्त लोकयात्रा और बुद्धि अन्नसे ही प्रतिष्ठित है। अन्नदानके सदृश दूसरा दान न हुआ और न होगा, इस ही लिये मनुष्य विशेष रीतिसे अन्नदान करनेकी इच्छा करते हैं। इस लोकमें अन्न ही बलकारक है, सबका प्राण अन्नसे ही प्रतिष्ठित है। हे प्रभु! सारे जगत्को अन्न ही धारण करता है, इस लोकमें अन्नके ही लिये लोग गृहस्थ होते हैं और अन्नहीके निमित्त भिक्षुक तथा तपस्वी हुआ करते हैं। यह निःसन्देह प्रत्यक्ष है, कि अन्नसेही प्राण उत्पन्न होता है। जो

ब्राह्मणायाभिरूपाय यो दद्यादन्नमर्थिने ।
विदधाति निधिं श्रेष्ठं पारलौकिकमात्मनः ॥ १० ॥
श्रान्तमध्वनि वर्तन्तं वृद्धमर्हमुपस्थितम् ।
अर्चयेद्भूतिमन्विच्छन् गृहस्थो गृहमागतम् ॥ ११ ॥
क्रोधमुत्पतितं हित्वा सुशीलो वीतमत्सरः ।
अन्नदः प्राप्नुते राजन् दिवि चेह च यत्सुखम् ॥ १२ ॥
नावमन्येदभिगतं न प्रणुद्यात्कदाचन ।
अपि श्वपाके शुनि वा न दानं विप्रणश्यति ॥ १३ ॥
यो दद्यादपरिक्लिष्टमन्नमध्वनि वर्तते ।
आर्तायादृष्टपूर्वाय स महद्धर्ममाप्नुयात् ॥ १४ ॥
पितॄन्देवानृषीन्विप्रानतिथींश्च जनाधिप ।
यो नरः प्रीणयत्यन्नैस्तस्य पुण्यफलं महत् ॥ १५ ॥
कृत्वाऽतिपातकं कर्म यो दद्यादन्नमर्थिने ।
ब्राह्मणाय विशेषेण न स पापेन मुह्यते ॥ १६ ॥
ब्राह्मणेष्वक्षयं दानमन्नं शूद्रे महाफलम् ।

पुरुष अपने ऐश्वर्यकी इच्छा करे, वह कुटुम्बवत्सल, पीडित, महानुभाव भिक्षुक ब्राह्मणोंको अन्नदान करे । जो सद्वंशमें उत्पन्न हुए पुरुष याचकको अन्नदान करते हैं, वे अपने पारलौकिक निधिका विधान किया करते हैं, गृहस्थ पुरुष ऐश्वर्यकी इच्छा करते हुए स्नातक, पथिक, वृद्ध, पूज्य, सहसा उपस्थित हुए और गृहमें आये अतिथिकी पूजा करें । (९—११)

हे महाराज ! राग द्वेषको त्यागके सुशील और मत्सररहित होके जो पुरुष अन्नदान करते हैं, वे स्वर्ग तथा इस लोकमें सुख लाभ करनेमें समर्थ होते हैं । उपस्थित अतिथिकी अवज्ञा न करें, कदाचित् उसे प्रत्याख्यान न करें, क्यों कि चाण्डाल और कुत्तेको भी अन्नदान करनेसे उस दानका फल विनष्ट नहीं होता । जो लोग पीडित और पूर्वदृष्ट पथिकको क्लेश न देकर अन्नदान करते हैं, उन्हें महत् फल प्राप्त होता है । हे प्रजानाथ ! जो लोग पितर, देवता, ऋषि, अतिथियों और ब्राह्मणों को अन्नके द्वारा प्रीतियुक्त करते हैं, उनके पुण्यका फल अत्यन्त महत् है । (१२-१५)

अत्यन्त पापका कर्म करके भी जो पुरुष याचकोंको, विशेष करके ब्राह्मणको

अन्नदानं हि शूद्रे च ब्राह्मणे च विशिष्यते ॥ १७ ॥
न पृच्छेद्गोत्रचरणं स्वाध्यायं देशमेव च ।
भिक्षितो ब्राह्मणेनेह दद्यादन्नं प्रयाचितः ॥ १८ ॥
अन्नदस्यान्नवृक्षाश्च सर्वकामफलप्रदाः ।
भवन्ति चेह चामुत्र नृपतेर्नात्र संशयः ॥ १९ ॥
आशंसन्ते हि पितरः सुवृष्टिमिव कर्षकाः ।
अस्माकमपि पुत्रो वा पौत्रो वान्नं प्रदास्यति ॥ २० ॥
ब्राह्मणो हि महद्भूतं स्वयं देहीति याचति ।
अकामो वा सकामो वा दत्त्वा पुण्यमवाप्नुयात् ॥२१॥
ब्राह्मणः सर्वभूतानामतिथिः प्रसृताग्रभुक् ।
विप्रा यदधिगच्छन्ति भिक्षमाणा गृहं सदा ॥ २२ ॥
सत्कृताश्च निवर्तन्ते तदतीव प्रवर्धते ।
महाभागे कुले प्रेत्य जन्म चाप्नोति भारत ॥२३॥
दत्त्वा त्वन्नं नरो लोके तथा स्थानमनुत्तमम् ।

अन्नदान करता है, वह पापसे मुक्त नहीं होता। ब्राह्मणोंको अन्नदान करनेसे अक्षय फल और शूद्रको अन्न देनेसे महाफल होता है, शूद्रको भी अन्नदान करनेसे ब्राह्मणको विशिष्ट फल हुआ करता है। ब्राह्मण जब भिक्षा लेनेके लिये आवे, तब उसके गोत्र, चरण, स्वाध्याय और कौन देशमें वास है, गृहस्थ पुरुष यह सब न पूछके, उसे मांगनेपर अन्नदान करे। हे महाराज! अन्नदाताके अन्नरूप वृक्षसमूह इस लोक और परलोकमें सर्व कामनाके फल प्रदान किया करते हैं, इस विषयमें सन्देह नहीं है। (१६—१९)

जैसे कृषकवृन्द वृष्टिकी इच्छा करते हैं, वैसेही "मेरे पुत्र अथवा पौत्रगण प्रदान करेंगे, "—पितरवृन्द ऐसी ही आशा किया करते हैं। महद्भूत ब्राह्मण स्वयं "देहि" कहके प्रार्थना करते हैं, चाहे अकाम हो अथवा सकाम ही हो, दान करनेसे पुण्य होता है। ब्राह्मण सब प्राणियोंके अतिथि और अञ्जलीमें पडी हुई वस्तुओंके अग्रभोक्ता हैं, ब्राह्मण लोग घर घर भिक्षा मांगते हुए जिस गृहसे सत्कारयुक्त होके निवृत्त होते हैं, वह गृह बहुत ही वर्द्धित होता है। हे भारत! वह गृहस्थ परलोकके अनन्तर महाऐश्वर्ययुक्त कुलमें जन्मता है। (२०--२३)

मनुष्य इसलोकमें अन्नदान करनेसे

नित्यं मिष्टान्नदायी तु स्वर्गे वसति सत्कृतः ॥ २४ ॥
अन्नं प्राणा नराणां हि सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम् ।
अन्नदः पशुमान्पुत्री धनवान् भोगवानपि ॥ २५ ॥
प्राणवांश्चापि भवति रूपवांश्च तथा नृप ।
अन्नदः प्राणदो लोके सर्वदा प्रोच्यते तु सः ॥ २६ ॥
अन्नं हि दत्त्वाऽतिथये ब्राह्मणाय यथाविधि ।
प्रदाता सुखमाप्नोति दैवतैश्चापि पूज्यते ॥ २७ ॥
ब्राह्मणो हि महद् भूतं क्षेत्रभूतं युधिष्ठिर ।
उप्यते तत्र यद्बीजं तद्धि पुण्यफलं महत् ॥ २८ ॥
प्रत्यक्षं प्रीतिजननं भोक्तुर्दातुर्भवत्युत ।
सर्वाण्यन्यानि दानानि परोक्षफलवन्त्युत ॥ २९ ॥
अन्नाद्धि प्रसवं यान्ति रतिरन्नाद्धि भारत ।
धर्मार्थावन्नतो विद्धि रोगनाशं तथाऽन्नतः ॥ ३० ॥
अन्नं ह्यमृतमित्याह पुराकल्पे प्रजापतिः ।
अन्नं भुवं दिवं खं च सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम् ॥ ३१ ॥

उत्तम स्थान प्राप्त करता है, सदा मिष्टान्नदाता स्वर्ग लोकमें सत्कारयुक्त होके निवास किया करता है। अन्न ही मनुष्योंके लिये प्राणस्वरूप है, अन्नसे ही सब प्रतिष्ठित हैं; अन्नदाता पशुमान्, पुत्रवान्, धनवान्, भोगवान्, प्राणवान् और रूपवान् होता है। (२४—२६)

हे महाराज! अन्नदाता इस लोकमें ऐसा प्राणद अथवा सर्वद कहके वर्णित होता है। अतिथि ब्राह्मणको विधिपूर्वक अन्नदान करनेसे दाताको सुख मिलता तथा वह देवताओंमें पूजित होता है। हे युधिष्ठिर! महद्भूत ब्राह्मण ही क्षेत्र-स्वरूप है, उस क्षेत्रमें जो बीज उगता है, वही महत् पुण्यका फल है। भोक्ता और दाता दोनोंमें ही जब प्रीति उत्पन्न होती है, तो वह प्रत्यक्ष प्राप्त होता है, दूसरे समस्त दान परोक्षमें फलविशिष्ट हुआ करते हैं। हे भारत! अन्नसे उत्पत्ति अर्थात् पुत्र आदि प्राप्त होते हैं, अन्नसे ही रति उपजती है, धर्म और अर्थ अन्नसे ही हुआ करता है तथा यह भी जान रखो, कि अन्नसे ही रोग नष्ट होते हैं, पूर्वकल्पमें प्रजापतिने अन्न कोही अमृत कहा है, अन्न ही भूलोक और स्वर्गस्वरूप है; अन्नसे ही सब प्रतिष्ठित है। (२६—३१)

अन्नप्रणाशे भिद्यन्ते शरीरे पञ्च धातवः।
बलं बलवतोऽपीह प्रणश्यत्यन्नहानितः ॥ ३२ ॥
आवाहाश्च विवाहाश्च यज्ञाश्चान्नमृते तथा।
निवर्तन्ते नरश्रेष्ठ ब्रह्म चात्र प्रलीयते ॥ ३३ ॥
अन्नतः सर्वमेतद्धि यत्किंचित्स्थाणुजङ्गमम्।
त्रिषु लोकेषु धर्मार्थमन्नं देयमतो बुधैः ॥ ३४ ॥
अन्नदस्य मनुष्यस्य बलमोजो यशांसि च।
कीर्तिश्च वर्धते शश्वत्त्रिषु लोकेषु पार्थिव ॥ ३५ ॥
मेघेषूर्ध्वं सन्निधत्ते प्राणानां पवनः पतिः।
तच्च मेघगतं वारि शक्रो वर्षति भारत ॥ ३६ ॥
आदत्ते च रसान्भौमानादित्यः स्वगभस्तिभिः।
वायुरादित्यतस्तांश्च रसान्देवः प्रवर्षति ॥ ३७ ॥
तद्यदा मेघतो वारि पतितं भवति क्षितौ।
तदा वसुमती देवी स्निग्धा भवति भारत ॥ ३८ ॥
ततः सस्यानि रोहन्ति येन वर्तयते जगत्।
मांसमेदोऽस्थिशुक्राणां प्रादुर्भावस्ततः पुनः ॥ ३९ ॥
संभवन्ति ततः शुक्रात्प्राणिनः पृथिवीपते।

अन्ननाश होनेसे शरीरमें पांचों धातु विभिन्न होती हैं, अन्नके अभाव से बलवान् पुरुषका बल नष्ट होजाता है। हे पुरुषश्रेष्ठ! अन्नके विना लोक-यात्रा, विवाह और यज्ञ नहीं निभते, इस अन्नके अभावमें वेदभी लुप्त होजाता है। स्थावर जङ्गम जो कुछ हैं, वे सभी अन्नसे होते हैं, इसलिये पण्डितोंको योग्य है, कि तीनों लोकोंमें धर्म और अर्थके लिये अन्नदान करें। हे राजन्! अन्न-दाता मनुष्यका बल, वीर्य, यश और कीर्ति त्रिभुवनके बीच सदा वर्द्धित होती है। हे भारत! प्राणका पति पवन बादलोंके ऊर्ध्वमें निवास करता है, इन्द्र उन बादलोंसे जल बरसाता है; सूर्य अपनी किरणोंसे भूमिका रस आकर्षण करता है, पवन आदित्यसे प्रतप्त रसोंको फिर बरसाया करता है। हे भारत! जब बादलोंसे जल पृथ्वीपर गिरता है, तब पृथ्वीदेवी शीतल होती है। (३२-३८)

अनन्तर भूमिसे सब सस्य, उस अन्नसे मांस, मेद, हड्डी और वीर्य प्रभृति हुआ करती हैं। हे पृथ्वीपति!

अग्नीषोमौ हि तच्छुक्रं सृजतः पुष्यतश्च ह ॥ ४० ॥
एवमन्नाद्धि सूर्यश्च पवनः शुक्रमेव च ।
एक एव स्मृतो राशिस्ततो भूतानि जज्ञिरे ॥ ४१ ॥
प्राणान्ददाति भूतानां तेजश्च भरतर्षभ ।
गृहमभ्यागतायाथ यो दद्यादन्नमर्थिने ॥ ४२ ॥
भीष्म उवाच–नारदेनैवमुक्तोऽहमदामन्नं सदा नृप ।
अनसूयुस्त्वमप्यन्नं तस्माद्देहि गतज्वरः ॥ ४३ ॥
दत्वाऽन्नं विधिवद्राजन्विप्रेभ्यस्त्वमिति प्रभो ।
यथावदनुरूपेभ्यस्ततः स्वर्गमवाप्स्यसि ॥ ४४ ॥
अन्नदानां हि ये लोकास्तांस्त्वं शृणु जनाधिप ।
भवनानि प्रकाशन्ते दिवि तेषां महात्मनाम् ॥ ४५ ॥
तारासंस्थानि रूपाणि नानास्तम्भान्वितानि च ।
चन्द्रमण्डलशुभ्राणि किङ्किणीजालवन्ति च ॥ ४६ ॥
तरुणादित्यवर्णानि स्थावराणि चराणि च ।
अनेकशतभौमानि सान्तर्जलचराणि च ॥ ४७ ॥
वैदूर्यार्कप्रकाशानि रौप्यरुक्ममयानि च ।

उस शुक्रसेही प्राणिवृन्द उत्पन्न होते हैं। अग्नि और चन्द्रमा उस शुक्रको उत्पन्न तथा पोषण करते हैं, इस ही भांति अन्न के हेतु सूर्य, पवन तथा शुक्र एकही राशि कहके स्मृत हुए हैं, और उसहीसे सब प्राणी उत्पन्न होते हैं। हे भरतर्षभ! जो लोग गृहमें आये हुए अतिथिको अन्नदान करते हैं, वे सब जीवोंको प्राणदान तथा तेज प्रदान किया करते हैं। (३९—४२)

भीष्म बोले, हे महाराज! नारद-मुनिके मुखसे यह कथा सुनके उस ही समयसे मैं सदा अन्नदान किया करता हूं, इसलिये तुम असूयाशून्य तथा शोक-रहित होके अन्नदान करो। हे महाराज! तुम सद्वंशमें उत्पन्न ब्राह्मणोंको अन्नदान करनेसे स्वर्गलोक पाओगे। हे प्रजा-नाथ! अन्नदाता पुरुषोंको जो सब लोक प्राप्त होते हैं उनको सुनो। स्वर्गमें उन महानुभावोंके लिये जो सब भवन प्रकाशित हैं, वे उनके अनुसार रूप-संपन्न विविधस्तम्भयुक्त, चन्द्रमण्डलकी भांति श्वेत, किङ्किणीजालयुक्त, तरुणादि-त्यवर्ण, स्थावर जङ्गम कई सौ भौमपदा-र्थों और अन्तर्ज्जलचरोंसे युक्त, वैदूर्य तथा सूर्यसदृश प्रकाशमान चांदी और

सर्वकामफलाश्चापि वृक्षा भवनसंस्थिताः ॥ ४८ ॥
वाप्यो वीथ्यः सभाः कूपा दीर्घिकाश्चैव सर्वशः।
घोषवन्ति च यानानि युक्तान्यथ सहस्रशः ॥ ४९ ॥
भक्ष्यभोज्यमयाः शैला वासांस्याभरणानि च।
क्षीरं स्रवन्ति सरितस्तथा चैवान्नपर्वताः ॥ ५० ॥
प्रासादाः पाण्डुराभ्राभाः शय्याश्च काञ्चनोज्ज्वलाः।
तान्यन्नदाः प्रपद्यन्ते तस्मादन्नप्रदो भव ॥ ५१ ॥
एते लोकाः पुण्यकृता अन्नदानां महात्मनाम्।
तस्मादन्नं प्रयत्नेन दातव्यं मानवैर्भुवि ॥ ५२ ॥ [३२१४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे अन्नदानप्रशंसायां त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

युधिष्ठिर उवाच–श्रुतं मे भवतो वाक्यमन्नदानस्य यो विधिः।
नक्षत्रयोगस्येदानीं दानकल्पं ब्रवीहि मे ॥ १ ॥
भीष्म उवाच–अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
देवक्याश्चैव संवादं महर्षेर्नारदस्य च ॥ २ ॥
द्वारकामनुसंप्राप्तं नारदं देवदर्शनम्।

सोनेके समस्त गृह विद्यमान हैं, उन गृहोंमें सर्वकामफलप्रद वृक्ष लगे हुए हैं। (४३-४८)

चारों ओर वापी, वीथी, सभा, कूप, दीर्घिका, सहस्रों मोतियोंके ढेर, भक्ष्य और भोज्यमय पर्वत, वस्त्र, आभूषण, दूध बहानेवाली नदियें, और अन्नोंके पर्वत, पाण्डुरवर्ण आभासे युक्त समस्त गृह और सुवर्णखचित शय्या प्रभृति विद्यमान हैं, अन्नदाता उन वस्तुओंको पाता है, इसलिये तुम अन्नदान करो। महानुभाव पुण्य करनेवाले अन्नदाता पुरुषोंके लिये ये समस्त लोक निश्चित हैं, इसलिये पृथ्वीमण्डलपर मनुष्योंको योग्य है, कि सब प्रकार प्रयत्नके सहारे अन्नदान करें। (४९-५२)

अनुशासनपर्वमें ६३ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ६४ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, मैंने अन्नदानकी विधि विषयक आपका वचन सुना, अब नक्षत्रयोगमें दान करनेसे जो फल होता है, उसे आप मेरे समीप वर्णन करिये। (१)

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें देवकी और नारद महर्षिके संवादयुक्त यह पुरातन इतिहास कहा

पप्रच्छेदं वचः प्रश्नं देवकी धर्मदर्शनम् ॥ ३ ॥
तस्याः संपृच्छमानाया देवर्षिर्नारदस्ततः ।
आचष्ट विधिवत्सर्वं तच्छृणुष्व विशाम्पते ॥ ४ ॥
नारद उवाच–कृत्तिकासु महाभागे पायसेन ससर्पिषा ।
संतर्प्य ब्राह्मणान्साधूँल्लोकानाप्नोत्यनुत्तमान् ॥ ५ ॥
रोहिण्यां प्रसृतैर्भार्गैर्मांसैरन्नेन सर्पिषा ।
पयोऽन्नपानं दातव्यमनृणार्थं द्विजातये ॥ ६ ॥
दोग्ध्रीं दत्त्वा सवत्सां तु नक्षत्रे सोमदैवते ।
गच्छन्ति मानुषाल्लोकात्स्वर्गलोकमनुत्तमम् ॥ ७ ॥
आर्द्रायां कृसरं दत्त्वा तिलमिश्रमुपोषितः ।
नरस्तरति दुर्गाणि क्षुरधारांश्च पर्वतान् ॥ ८ ॥
पूपान्पुनर्वसौ दत्त्वा तथैवान्नानि शोभने ।
यशस्वी रूपसम्पन्नो बह्वन्नो जायते कुले ॥ ९ ॥
पुष्येण कनकं दत्त्वा कृतं वाऽकृतमेव च ।
अनालोकेषु लोकेषु सोमवत्स विराजते ॥ १० ॥
आश्लेषायां तु यो रूप्यमृषभं वा प्रयच्छति ।

करते हैं। देवर्षि नारदके द्वारकामें उपस्थित होनेपर देवकीने उस धर्मदर्शीसे यही विषय पूछा। हे नरनाथ! अनन्तर देवर्षि नारदने देवकीके पूछनेपर जो कथा कही थी, उसे तुम सुनो। (२–४)

नारद बोले, हे महाभागे! कृत्तिका नक्षत्रमें घृत सहित पायससे साधु ब्राह्मणोंको तृप्त करनेसे उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होती है। रोहिणी नक्षत्रमें आनृण्यके हेतु ब्राह्मणोंको अञ्जली भरके मृगमांस और घृत, दूध तथा अन्नदान करना चाहिये। सोमदैवत मृगशिरा नक्षत्रमें बछडे युक्त दूध देनेवाली गऊ दान करनेसे पुरुष मनुष्यलोकसे अत्यन्त श्रेष्ठ त्रिविष्टपमें गमन किया करते हैं। आर्द्रा नक्षत्रमें उपवास करके तिल मिले हुए कृसर दान करनेसे मनुष्य सब क्लेशों तथा क्षुरधार पर्वतसे पार होते हैं। (५—८)

हे सुन्दरि! पुनर्वसु नक्षत्रमें घृत-युक्त पिण्डाकार पूपपुञ्ज तथा अनेक प्रकारके अन्नदान करनेसे मनुष्य यशस्वी और रूपवान् होकर बहुतेरे अन्नोंसे पवित्र कुलमें जन्मता है। पुष्य नक्षत्रमें शुद्ध अथवा अविशुद्ध सुवर्ण दान करनेसे मनुष्य आलोकान्तररहित

स सर्वभयनिर्मुक्तः सम्भवानधितिष्ठति ॥ ११ ॥
मघासु तिलपूर्णानि वर्धमानानि मानवः ।
प्रदाय पुत्रपशुमानिह प्रेत्य च मोदते ॥ १२ ॥
फल्गुनीपूर्वसमये ब्राह्मणानामुपोषितः ।
भक्ष्यान्फाणितसंयुक्तान्दत्त्वा सौभाग्यमृच्छति ॥१३॥
घृतक्षीरसमायुक्तं विधिवत्षष्टिकौदनम् ।
उत्तराविषये दत्त्वा स्वर्गलोके महीयते ॥ १४ ॥
यद्यत्प्रदीयते दानमुत्तराविषये नरैः ।
महाफलमनन्तं तद्भवतीति विनिश्चयः ॥ १५ ॥
हस्ते हस्तिरथं दत्त्वा चतुर्युक्तमुपोषितः ।
प्राप्नोति परमाँल्लोकान्पुण्यकामसमन्वितान् ॥ १६ ॥
चित्रायां वृषभं दत्त्वा पुण्यगन्धांश्च भारत ।
चरन्त्यप्सरसां लोके रमन्ते नन्दने तथा ॥ १७ ॥
स्वात्यामथ धनं दत्त्वा यदिष्टतममात्मनः ।
प्राप्नोति लोकान्स शुभानिह चैव महद्यशः ॥ १८ ॥

अर्थात् स्वयंप्रकाशित लोकोंमें चन्द्रमाकी भांति विराजता है। आश्लेषा नक्षत्रमें जो रूपा और वृषभ प्रदान करते हैं, वे सर्वभयसे छूटके सद्वंशमें उत्पन्न होते हैं। मघा नक्षत्रमें तिल-पूरित पात्र प्रदान करनेसे मनुष्य पुत्रवान और पशुमान होकर इस लोक तथा परलोकमें आनन्दित हुआ करता है। पूर्वा फल्गुनी नक्षत्रमें उपवासी होकर ब्राह्मणोंको गोरसविकार और फाणित नामक द्रव्य संयुक्त भक्ष्य सामग्री प्रदान करनेसे मनुष्यको सौभाग्य प्राप्त होता है। (९—१३)

उत्तराफल्गुनी नक्षत्रमें घृत क्षीरयुक्त अन्नदान करनेसे मनुष्य स्वर्ग लोकमें निवास किया करते हैं। उत्तरा फल्गुनी नक्षत्रमें मनुष्य जिन वस्तुओंको दान करता है, वह दान महाफल-जनक और अनन्त हुआ करता है। हस्त नक्षत्रमें उपवासी होकर चार हाथियोंसे युक्त रथ दान करनेसे मनुष्य पुण्यकामयुक्त होकर परम पवित्र लोकोंको पाता है। हे भारत! चित्रा नक्षत्रमें वृषभ और पुण्यगन्ध प्रदान करनेसे मनुष्य अप्सराओंके सङ्ग क्रीडा करता तथा आमोद किया करता है, स्वाती नक्षत्रमें जो लोग इच्छानुसार अन्नदान करते हैं, वे इस लोकमें महत्

विशाखायामनड्वाहं धेनुं दत्त्वा च दुग्धदाम् ।
सप्रासङ्गं च शकटं सधान्यं वस्त्रसंयुतम् ॥ १९ ॥
पितॄन्देवांश्च प्रीणाति प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते ।
न च दुर्गाण्यवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति ॥ २० ॥
दत्त्वा यथोक्तं विप्रेभ्यो वृत्तिमिष्टां स विन्दति ।
नरकादींश्च संक्लेशान्नाप्नोतीति विनिश्चयः ॥ २१ ॥
अनुराधासु प्रावारं वरान्नं समुपोषितः ।
दत्त्वा युगशतं चापि नरः स्वर्गे महीयते ॥ २२ ॥
कालशाकं तु विप्रेभ्यो दत्त्वा मर्त्यः समूलकम् ।
ज्येष्ठायामृद्धिमिष्टां वै गतिमिष्टां स गच्छति ॥२३॥
मूले मूलफलं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यः समाहितः ।
पितॄन्प्रीणयते चापि गतिमिष्टां च गच्छति ॥ २४ ॥
अथ पूर्वास्वषाढासु दधिपात्राण्युपोषितः ।
कुलवृत्तोपसंपन्ने ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ २५ ॥
पुरुषो जायते प्रेत्य कुले सुबहुगोधने ।

यश लाभ करके परलोकमें शुभ लोकोंको पाते हैं। (१४—१८)

विशाखा नक्षत्रमें छकडेको खींचनेमें समर्थ वृषभ, दूध देनेवाली गऊ, धान्य आदि पिधानयोग्य चतुरस्र,प्रासङ्गयुक्त, अन्नसे भरे छकडे और वस्त्रदान करनेसे मनुष्य पितरों तथा देवताओंको प्रीति-युक्त करके परलोकमें अनन्त सुख भोग किया करता है, कदाचित् दुर्गम स्थान उसे प्राप्त नहीं होते और वह स्वर्गमें जाता है, जो लोग ब्राह्मणोंको पूर्वोक्त वस्तुदान करते हैं, निश्चय ही वे निज अभिलषित वृत्ति पाते और कदापि नरक आदि क्लेशोंको नहीं भोगते। अनुराधा नक्षत्रमें उपवास करके जो पुरुष ओढनेके वस्त्र और अन्न दान करते हैं, वे सौ युगतक स्वर्गमें वास किया करते हैं। (१९-२२)

ज्येष्ठा नक्षत्रमें जो मनुष्य ब्राह्मणोंको मूलके सहित कालशाक दान करता है, वह अभिलषित समृद्धि और गति पाता है। मूल नक्षत्रमें समाहित होके ब्राह्म-णोंको फल मूल दान करनेसे पितरोंकी प्रीतिका विधान तथा अभिलषित गति प्राप्त होती है। पूर्वाषाढा नक्षत्रमें उपवासी होके कुलवृत्तसम्पन्न वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंको दधिपात्रदान करनेसे पुरुष दूसरे जन्ममें अनेक गोधन-

उदमन्थं ससर्पिष्कं प्रभूतमधिफाणितम् ॥ २६ ॥
दत्त्वोत्तरास्वषाढासु सर्वकामानवाप्नुयात् ।
दुग्धं त्वभिजिते योगे दत्त्वा मधुघृतप्लुतम् ।
धर्मनित्यो मनीषिभ्यः स्वर्गलोके महीयते ॥ २७ ॥
श्रवणे कम्बलं दत्त्वा वस्त्रान्तरितमेव वा ।
श्वेतेन याति यानेन स्वर्गलोकानसंवृतान् ॥ २८ ॥
गोप्रयुक्तं धनिष्ठासु यानं दत्त्वा समाहितः ।
वस्त्रराशिधनं सद्यः प्रेत्य राज्यं प्रपद्यते ॥ २९ ॥
गन्धाञ्छतभिषा योगे दत्त्वा सागुरुचन्दनान् ।
प्राप्नोत्यप्सरसां संघान्प्रेत्य गन्धांश्च शाश्वतान् ॥३०॥
पूर्वाभाद्रपदायोगे राजमाषान्प्रदाय तु ।
सर्वभक्षफलोपेतः स वै प्रेत्य सुखी भवेत् ॥ ३१ ॥
औरभ्रमुत्तरायोगे यस्तु मांसं प्रयच्छति ।
स पितॄन्प्रीणयति वै प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते ॥ ३२ ॥
कांस्योपदोहनां धेनुं रेवत्यां यः प्रयच्छति ।

युक्त वंशमें जन्मता है । उत्तराषाढा नक्षत्रमें घृत और जल भरे हुए घडेसे युक्त सत्तू मधु तथा क्षीरसे बनी हुई मिष्टान्नयुक्त वस्तु दान करनेसे मनुष्य समस्त काम्य विषयोंको पाता है। उत्तराषाढाके शेष और श्रवणके प्रथम भाग अभिजित योगमें मनीषियोंको दूध, मधु और घृत दान करनेसे धर्ममें रत मनुष्य स्वर्ग लोकमें निवास किया करते हैं। (२३-२७)

श्रवण नक्षत्रमें वस्त्र और कम्बल दान करनेसे मनुष्य श्वेतवर्ण यानके सहारे असंवृत स्वर्गलोकमें गमन किया करते हैं। धनिष्ठा नक्षत्रमें समाहित होकर गोयुक्त सवारी, वस्त्र तथा अन्न-दान करनेसे परलोकमें राज्य प्राप्त होता है। शतभिष नक्षत्रमें अगुरु,चन्दन और सुगन्ध दान करनेसे मनुष्य परलोकमें अप्सराओंके लोकमें शाश्वत गन्धोंको पाता है । पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रमें राजमाष अर्थात् बर्वटकलाई दान करनेसे सर्वभक्ष्य फलोंसे युक्त होकर पुरुष परलोकमें सुखी होता है। (२८—३१)

उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रमें जो लोग मेढेका मांस दान करते हैं, वे पितरोंको प्रसन्न करते हुए परलोकमें अनन्त सुख भोग किया करते हैं, जो लोग

सा प्रेत्य कामानादाय दातारमुपतिष्ठति ॥ ३३ ॥
रथमश्वसमायुक्तं दत्त्वाऽश्विन्यां नरोत्तमः ।
हस्त्यश्वरथसंपन्ने वर्चस्वी जायते कुले ॥ ३४ ॥
भरणीषु द्विजातिभ्यस्तिलधेनुं प्रदाय वै ।
गाः सुप्रभूताः प्राप्नोति नरः प्रेत्य यशस्तथा ॥ ३५ ॥
भीष्म उवाच– इत्येष लक्षणोद्देशः प्रोक्तो नक्षत्रयोगतः ।
देवक्या नारदेनेह सा स्नुषाभ्योऽब्रवीदिदम् ॥ ३६ ॥ [३२५०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे नक्षत्रयोगदानं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

भीष्म उवाच– सर्वान्कामान्प्रयच्छन्ति ये प्रयच्छन्ति काञ्चनम् ।
इत्येवं भगवानत्रिः पितामहसुतोऽब्रवीत् ॥ १ ॥
पवित्रमथ चायुष्यं पितॄणामक्षयं च तत् ।
सुवर्णं मनुजेन्द्रेण हरिश्चन्द्रेण कीर्तितम् ॥ २ ॥
पानीयं परमं दानं दानानां मनुरब्रवीत् ।
तस्मात्कूपांश्च वापीश्च तडागानि च खानयेत् ॥ ३ ॥
अर्धं पापस्य हरति पुरुषस्येह कर्मणः ।

रेवती नक्षत्रमें कांसेके दोहनपात्रसे युक्त गोदान करते हैं, उनके परलोकमें जानेपर वही गऊ सर्वकाम्य विषयोंको ग्रहण करके उस दाताके निकट उपस्थित होती है। हे पुरुषर्षभ! अश्विनी नक्षत्रमें घोडेसे युक्त रथ दान करनेसे मनुष्य हाथी, घोडे और रथोंसे परिपूर्ण कुलमें जन्मता है। भरणी नक्षत्रमें ब्राह्मणोंको तिल गऊ दान करनेसे मनुष्य परलोकमें उत्तम यश और बहुतसी गौओंको पाता है। (३२–३५)

भीष्म बोले, नारद मुनिने देवकीसे नक्षत्रयोगके अनुसार यही सब दानका लक्षण कहा, और देवकीने अपनी पुत्रवधुओंसे यह सब वृत्तान्त कहा था। (३६)

अनुशासनपर्वमें ६४ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ६५ अध्याय।

भीष्म बोले, ब्रह्माके पुत्र अत्रि भगवानने ऐसा कहा है, कि जो लोग सुवर्ण प्रदान करते हैं, वे समस्त काम्य वस्तु दान किया करते हैं, मनुष्येन्द्र हरिश्चन्द्रने कहा है, कि सुवर्ण पवित्र, आयुष्य और पितरोंके उद्देश्यसे देनेपर अक्षय होता है। मनुने सब दानोंके बीच जलदानको परम दान कहा है,

कूपः प्रवृत्तपानीयः सुप्रवृत्तश्च नित्यशः ॥ ४ ॥
सर्वं तारयते वंशं यस्य खाते जलाशये।
गावः पिबन्ति विप्राश्च साधवश्च नराः सदा ॥ ५ ॥
निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठत्यवारितम्।
स दुर्गं विषमं कृत्स्नं न कदाचिदवाप्नुते ॥ ६ ॥
बृहस्पतेर्भगवतः पूष्णश्चैव भगस्य च।
अश्विनोश्चैव वह्नेश्च प्रीतिर्भवति सर्पिषा ॥ ७ ॥
परमं भेषजं ह्येतद्यज्ञानामेतदुत्तमम्।
रसानामुत्तमं चैतत्फलानां चैतदुत्तमम् ॥ ८ ॥
फलकामो यशस्कामः पुष्टिकामश्च नित्यदा।
घृतं दद्याद् द्विजातिभ्यः पुरुषः शुचिरात्मवान् ॥ ९ ॥
घृतं मासे आश्वयुजि विप्रेभ्यो यः प्रयच्छति।
तस्मै प्रयच्छतो रूपं प्रीतौ देवाविहाश्विनौ ॥ १० ॥
पायसं सर्पिषा मिश्रं द्विजेभ्यो यः प्रयच्छति।
गृहं तस्य न रक्षांसि धर्षयन्ति कदाचन ॥ ११ ॥
पिपासया न म्रियते सोपच्छन्दश्च जायते।

इसलिये बावली, कूप और तालाब प्रभृति खुदवाना चाहिये। प्रतिदिन लोग जिस कूएंके जलको पीते हैं, वह कूआं कूप खोदनेवालेके पापका आधा भाग हर लेता है। जिसके खोदे हुए तालाबमें ब्राह्मण और साधु पुरुष सदा जल पीते हैं, वह तालाबवाला अपने समस्त वंशका उद्धार किया करता है। (१-५)

ग्रीष्म ऋतुमें जिसका तालाब जलसे भरा रहता है, वह कदापि विषम क्लेशोंको नहीं पाता। घृतके सहारे भगवान् बृहस्पति, पूषा, भग, दोनों अश्विनीकुमार और अग्निदेव प्रसन्न होते हैं। घृत ही परम औषध है, यज्ञके लिये घृत ही अत्यन्त उत्कृष्ट है, यह सब रसोंके बीच श्रेष्ठ और सब फलोंमें उत्तम है। जो पुरुष सदा फल, यश और पुष्टिकी कामना करता है, वह पवित्र और संयतचित्त होकर ब्राह्मणोंको घृत दान करे। क्वार मासमें ब्राह्मणोंको घृत दान करनेसे इस लोकमें दोनों अश्विनीकुमार प्रसन्न होके उसे रूप प्रदान किया करते हैं। जो लोग ब्राह्मणोंको घृतमिश्रित पायस दान करते हैं, राक्षस लोग कदापि उनके गृहमें पीडा नहीं

न प्राप्नुयाच्च व्यसनं करकान्यः प्रयच्छति ॥ १२ ॥
प्रयतो ब्राह्मणाग्रे यः श्रद्धया परया युतः।
उपस्पर्शनषड्भागं लभते पुरुषः सदा ॥ १३ ॥
यः साधनार्थं काष्ठानि ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति।
प्रतापनार्थं राजेन्द्र वृत्तवद्भ्यः सदा नरः ॥ १४ ॥
सिद्ध्यन्त्यर्थाः सदा तस्य कार्याणि विविधानि च।
उपर्युपरि शत्रूणां वपुषा दीप्यते च सः ॥ १५ ॥
भगवांश्चापि संप्रीतो वह्निर्भवति नित्यशः।
न तं त्यजन्ति पशवः संग्रामे च जयत्यपि ॥ १६ ॥
पुत्राञ्छ्रियं च लभते यश्छत्रं संप्रयच्छति।
न चक्षुर्व्याधिं लभते यज्ञभागमथाश्नुते ॥ १७ ॥
निदाघकाले वर्षे वा यश्छत्रं संप्रयच्छति।
नास्य कश्चिन्मनोदाहः कदाचिदपि जायते ॥ १८ ॥
कृच्छ्रात्स विषमाच्चैव क्षिप्रं मोक्षमवाप्नुते।
प्रदानं सर्वदानानां शकटस्य विशाम्पते।
एवमाह महाभागः शाण्डिल्यो भगवानृषिः ॥ १९ ॥ [३२६९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

दे सकते। (६-११)

जो लोग कमण्डलु नामक जलपात्र दान करते हैं, वे प्याससे नहीं मरते, गृहकी सामग्रियोंसे परिपूर्ण रहते और कदापि विपद्ग्रस्त नहीं होते। जो पुरुष सावधान होके परम श्रद्धाके सहित ब्राह्मणोंको दान करता है, वह सदा उनके पुण्यका छठवां भाग ग्रहण किया करता है। हे राजेन्द्र! जो लोग साधन और तापनेके लिये व्रतनिष्ठ ब्राह्मणोंको काष्ठ देते हैं, उनके सब प्रयोजन तथा विविध कार्य सदा सिद्ध होते और वे शत्रुओंके ऊर्ध्वमें तेज पुञ्ज युक्त शरीरसे प्रकाशित होते हैं। भगवान् अग्नि सदा उनके विषयमें प्रसन्न रहते, पशुवृन्द उन्हें परित्याग नहीं करते और वे संग्राममें विजयी होते हैं। जो लोग छत्र दान करते हैं, वे पुत्र और श्रीलाभ किया करते हैं, नेत्ररोग नहीं होता और यज्ञभाग मिलता है। जो लोग ग्रीष्म अथवा वर्षाऋतुमें छत्र दान करते हैं, कभी उनके मनमें दाह नहीं होती। (१२-१८)

युधिष्ठिर उवाच— दह्यमानाय विप्राय यः प्रयच्छत्युपानहौ।
यत्फलं तस्य भवति तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥
भीष्म उवाच— उपानहौ प्रयच्छेद्यो ब्राह्मणेभ्यः समाहितः।
मर्दते कण्टकान्सर्वान्विषमान्निस्तरत्यपि ॥ २ ॥
स शत्रूणामुपरि च संतिष्ठति युधिष्ठिर।
यानं चाश्वतरीयुक्तं तस्य शुभ्रं विशाम्पते ॥ ३ ॥
उपतिष्ठति कौन्तेय रौप्यकाञ्चनभूषितम्।
शकटं दम्यसंयुक्तं दत्तं भवति चैव हि ॥ ४ ॥
युधिष्ठिर उवाच— यत्फलं तिलदाने च भूमिदाने च कीर्तितम्।
गोदाने चान्नदाने च भूयस्तद् ब्रूहि कौरव ॥ ५ ॥
भीष्म उवाच— शृणुष्व मम कौन्तेय तिलदानस्य यत्फलम्।
निशम्य च यथान्यायं प्रयच्छ कुरुसत्तम ॥ ६ ॥
पितॄणां परमं भोज्यं तिलाः सृष्टाः स्वयंभुवा।
तिलदानेन वै तस्मात्पितृपक्षः प्रमोदते ॥ ७ ॥

हे नरनाथ! सब दानोंकी अपेक्षा शकट दान करनेसे मनुष्य शीघ्र ही विषम कष्टोंसे मोक्ष लाभ किया करता है। महाभाग भगवान् शाण्डिल्य ऋषिने ऐसा ही कहा है। (१९)

अनुशासनपर्वमें ६५ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ६६ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! दह्यमान ब्राह्मणको जूता दान करनेसे जो फल होता है आप मेरे समीप उसे वर्णन करिये। (१)

भीष्म बोले, जो पुरुष सावधान होकर ब्राह्मणोंको पादुका दान करता है, वह समस्त कांटोंको मर्दते हुए विषमस्थलसे पार होता है। हे नरश्रेष्ठ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर! वह शत्रुओंके ऊर्ध्वमें वर्त्तमान रहता है और उसके निकट अश्वतरीयुक्त शुभ्रयान वा रूपे सोनेसे भूषित शकट उपस्थित होते हैं तथा जुआयुक्त शकट प्राप्त हुआ करता है। (२—४)

युधिष्ठिर बोले, हे कौरव! तिल, भूमि, गऊ और अन्नदानके विषयमें आपने जो कथा कही है, उसे ही फिर कहिये। (५)

भीष्म बोले, हे कुरुसत्तम कुन्तीपुत्र! तिलदानसे जो फल होता है, वह मेरे समीप सुनो और सुनके न्यायपूर्वक दान करो। पितरोंका परम भोज्य समस्त तिल स्वयम्भूके द्वारा उत्पन्न

माघमासे तिलान्यस्तु ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ।
सर्वसत्त्वसमाकीर्णं नरकं स न पश्यति ॥ ८ ॥
सर्वसत्रैश्च यजते यस्तिलैर्यजते पितॄन् ।
न चाकामेन दातव्यं तिलश्राद्धं कदाचन ॥ ९ ॥
महर्षेः कश्यपस्यैते गात्रेभ्यः प्रसृतास्तिलाः ।
ततो दिव्यं गता भावं प्रदानेषु तिलाः प्रभो ॥ १० ॥
पौष्टिका रूपदाश्चैव तथा पापविनाशनाः ।
तस्मात्सर्वप्रदानेभ्यस्तिलदानं विशिष्यते ॥ ११ ॥
आपस्तम्बश्च मेधावी शङ्खश्च लिखितस्तथा ।
महर्षिर्गौतमश्चापि तिलदानैर्दिवं गताः ॥ १२ ॥
तिलहोमरता विप्राः सर्वे संयतमैथुनाः ।
समा गव्येन हविषा प्रवृत्तिषु च संस्थिताः ॥ १३ ॥
सर्वेषामिति दानानां तिलदानं विशिष्यते ।
अक्षयं सर्वदानानां तिलदानमिहोच्यते ॥ १४ ॥
उच्छिन्ने तु पुरा हव्ये कुशिकर्षिः परन्तपः ।
तिलैरग्नित्रयं हुत्वा प्राप्तवान् गतिमुत्तमाम् ॥ १५ ॥

हुए हैं, इस ही लिये तिल दान करनेसे पितरवृन्द प्रमुदित होते हैं। जो लोग माघ महीनेमें ब्राह्मणोंको तिल दान करते हैं, वे सर्वसत्त्व समाकीर्ण नरकको नहीं देखते। जो लोग तिलसे पितृयज्ञ करते हैं, उन्हें समस्त यज्ञसिद्धिका फल मिलता है। अकाम मनुष्य कदापि तिल श्राद्ध न करें। हे महाराज! ये सब तिल महर्षि कश्यपके शरीरसे उत्पन्न हुए हैं, इसलिये प्रदान करनेके समय दिव्य भावको प्राप्त होते हैं। (६—१०)

सब तिल पुष्टि करनेवाले, रूपप्रद और पापोंको नष्ट करनेवाले हैं, इसलिये सब दानोंसे तिल दान उत्तम है। बुद्धिमान् आपस्तम्ब, शङ्ख, लिखित और महर्षि गौतम तिल दानके सहारे स्वर्गमें गये हैं। तिलहोममें रत सब ब्राह्मण संयतमैथुन हुआ करते हैं। तिल गोघृत समान कहके वर्णित हुआ है। समस्त अतिदानके बीच तिल दान ही विशिष्ट होता है, तिल दान ही इस लोकमें सब दानोंके बीच अक्षय कहके वर्णित हुआ करता है। हे शत्रुतापन! पहले समयमें घृतके अभावमें कुशिक ऋषिने तिलके सहारे तीनों अग्निमें होम

इति प्रोक्तं कुरुश्रेष्ठ तिलदानमनुत्तमम् ।
विधानं येन विधिना तिलानामिह शस्यते ॥ १६ ॥
अत ऊर्ध्वं निबोधेदं देवानां यष्टुमिच्छताम् ।
समागमे महाराज ब्रह्मणा वै स्वयंभुवा ॥ १७ ॥
देवाः समेत्य ब्रह्माणं भूमिभागे यियक्षवः ।
शुभं देशमयाचन्त यजेम इति पार्थिव ॥ १८ ॥
देवा ऊचुः- भगवंस्त्वं प्रभुर्भूमेः सर्वस्य त्रिदिवस्य च ।
यजेमहि महाभाग यज्ञं भवदनुज्ञया ॥ १९ ॥
नाननुज्ञातभूमिर्हि यज्ञस्य फलमश्नुते ।
त्वं हि सर्वस्य जगतः स्थावरस्य चरस्य च ॥ २० ॥
प्रभुर्भवसि तस्मात्त्वं समनुज्ञातुमर्हसि ।
ब्रह्मोवाच- ददानि मेदिनीभागं भवद्भ्योऽहं सुरर्षभाः ॥ २१ ॥
यस्मिन्देशे करिष्यध्वं यज्ञान्काश्यपनन्दनाः ।
देवा ऊचुः- भगवन्कृतकार्याः स्म यक्ष्महे स्वाप्तदक्षिणैः ॥ २२ ॥
इमं तु देशं मुनयः पर्युपासन्ति नित्यदा ।
ततोऽगस्त्यश्च कण्वश्च भृगुरत्रिर्वृषाकपिः ॥ २३ ॥

करके उत्तम गति पाई थी। (११-१५)

हे कुरुश्रेष्ठ! यह तिल दानका विषय तथा जिस प्रकार विधिपूर्वक तिलदान प्रशंसित हुआ करता है, वह कहा गया। हे महाराज! इसके अनन्तर यज्ञ करनेके अभिलाषी देवताओंका ब्रह्माके समीप समागम हुआ था, वह कथा सुनो, देवताओंने ब्रह्माके निकट उपस्थित होके यज्ञ करनेके लिये पवित्र स्थान मांगा। देववृन्द बोले, हे महाभाग भगवन्! आप समस्त स्वर्ग और भूमिके स्वामी हैं, आपकी अनुमतिसे हम यज्ञ करेंगे। विना आज्ञाके भूमि लेकर यज्ञ करनेसे यज्ञफलका भाग नहीं प्राप्त होता; आप स्थावर, जङ्गम समस्त जगत्के प्रभु हैं, इसलिये आज्ञा करिये। (१६—२१)

ब्रह्मा बोले,हे कश्यपनन्दन देववृन्द! जिस स्थानमें तुम लोग यज्ञ करोगे मैं तुम्हारे लिये वैसी भूमि दान करता हूं। (२१-२२)

देववृन्द बोले, हे भगवन्! हम लोग कृतकार्य हुए, इस समय हिमालयके निकट कुरुक्षेत्रमें मुनिवृन्द सदा निवास करते हैं, इसलिये उस ही स्थानमें हम लोग आप्तदक्षिण यज्ञके द्वारा याग

असितो देवलश्चैव देवयज्ञमुपागमन ।
ततो देवा महात्मान ईजिरे यज्ञमच्युतम् ॥ २४ ॥
तथा समापयामासुर्यथाकालं सुरर्षभाः ।
त इष्टयज्ञास्त्रिदशा हिमवत्यचलोत्तमे ॥ २५ ॥
षष्ठमंशं क्रतोस्तस्य भूमिदानं प्रचक्रिरे ।
प्रादेशमात्रं भूमेस्तु यो दद्यादनुपस्कृतम् ॥ २६ ॥
न सीदति स कृच्छ्रेषु न च दुर्गाण्यवाप्नुते ।
शीतवातातपसहां गृहभूमिं सुसंस्कृताम् ॥ २७ ॥
प्रदाय सुरलोकस्थः पुण्यान्तेऽपि न चाल्यते ।
मुदितो वसति प्राज्ञः शक्रेण सह पार्थिव ॥ २८ ॥
प्रतिश्रयप्रदानाच्च सोऽपि स्वर्गे महीयते ।
अध्यापककुले जातः श्रोत्रियो नियतेन्द्रियः ॥ २९ ॥
गृहे यस्य वसेत्तुष्टः प्रधानं लोकमश्नुते ।
तथा गवार्थे शरणं शीतवर्षसहं दृढम् ॥ ३० ॥
आसप्तमं तारयति कुलं भरतसत्तम ।
क्षेत्रभूमिं ददल्लोके शुभां श्रियमवाप्नुयात् ॥ ३१ ॥

करेंगे। अनन्तर अगस्त्य, कण्व, भृगु, अत्रि, वृषाकपि, असित और देवल मुनिने देवयज्ञमें गमन किया। तब महानुभाव देववृन्द यज्ञ करने लगे और यथासमयपर उसे समाप्त किया। देवताओंने पर्वतश्रेष्ठ हिमशैलके निकट यज्ञ करके उस यज्ञमें भूमिका छठवां भाग दान किया। जो लोग प्रादेश-परिमाण अनुपस्कृत भूमिदान करते हैं, वे कभी क्लिष्टकार्योंमें अवसन्न होके दुर्गम स्थानमें नहीं जाते। उत्तम संस्कारयुक्त शीत, जल और वायुपूरित गृह भूमि दान करके श्रेष्ठ सुरलोकमें जाकर अत्यन्त पुण्य क्षीण होनेपर भी दाता वहांसे विचलित नहीं होता। (२२-२८)

हे महाराज! वह प्राज्ञ पुरुष आनन्दित होके इन्द्रके सङ्ग एकत्र वास करता है। जो पुरुष वासस्थान प्रदान करते हैं, वे स्वर्गमें निवास किया करते हैं। अध्यापक वंशमें उत्पन्न संयतेन्द्रिय श्रोत्रिय ब्राह्मण सन्तुष्ट होकर जिसके गृहमें निवास करते हैं, वह ब्रह्मलोक भोग किया करता है। गौवोंके वासके लिये दिया हुआ सर्दी वर्षा सहने योग्य उत्तम दृढ गृह सातवें कुलपर्यन्त उद्धार

रत्नभूमिं प्रदद्यात्तु कुलवंशं प्रवर्धयेत् ।
न चोषरां न निर्दग्धां महीं दद्यात्कथंचन ॥ ३२ ॥
न श्मशानपरीतां च न च पापनिषेविताम् ।
पारक्ये भूमिदेशे तु पितॄणां निर्वपेत्तु यः ॥ ३३ ॥
तद्भूमिं वापि पितृभिः श्राद्धकर्म विहन्यते ।
तस्मात्क्रीत्वा महीं दद्यात्स्वल्पामपि विचक्षणः ॥३४॥
पिण्डः पितृभ्यो दत्तो वै तस्यां भवति शाश्वतः ।
अटवी पर्वताश्चैव नद्यस्तीर्थानि यानि च ॥ ३५ ॥
सर्वाण्यस्वामिकान्याहुर्न हि तत्र परिग्रहः ।
इत्येतद्भूमिदानस्य फलमुक्तं विशाम्पते ॥ ३६ ॥
अतः परं तु गोदानं कीर्तयिष्यामि तेऽनघ ।
गावोऽधिकास्तपस्विभ्यो यस्मात्सर्वेभ्य एव च ॥ ३७॥
तस्मान्महेश्वरो देवस्तपस्ताभिः सहास्थितः ।
ब्राह्मे लोके वसन्त्येताः सोमेन सह भारत ॥ ३८ ॥
यां तां ब्रह्मर्षयः सिद्धाः प्रार्थयन्ति परां गतिम् ।

करता है। जो लोग क्षेत्रभूमिदान करते हैं, वे लोकके बीच पवित्र श्रीसम्पन्न होते हैं। (२८-३१)

जो लोग रत्नभूमि देते हैं, वे कुल तथा वंशको वृद्धि किया करते हैं। ऊषर और जली भूमि किसी प्रकारसे भी न देनी चाहिये तथा श्मशानसे घिरी हुई पापपूरित भूमि भी दानके योग्य नहीं है। जो पुरुष दूसरेकी भूमिमें पितरोंका श्राद्ध करता है,अथवा पितरों के उद्देश्यसे दूसरेकी भूमि दान करता है, उसका किया हुआ श्राद्ध तथा भूमि दान-कर्म दोनोंही निष्फल होते हैं। इस लिये बुद्धिमान मनुष्य अल्प परिमाण भूमि मोल लेके दान करे, क्यों कि उस मोल ली हुई भूमिमें पितरोंके निमित्त दिया हुआ पिण्ड शाश्वत होता है। (३२—३५)

वन, पर्वत, नदी और तीर्थोंको पण्डित लोग अस्वामिक कहते हैं, इस लिये उन स्थानोंमें पितरों का श्राद्ध करनेमें कुछ दोष नहीं है। हे नरनाथ! यह तुमसे भूमिदानका फल कहा है। हे पापरहित! इसके अनन्तर गोदानका फल वर्णन करता हूं। सब तपस्वियोंमें ही गोधन विद्यमान है, इस ही लिये महादेवने गौवोंके सहित तपस्या की थी। (३५-३८)

पयसा हविषा दध्ना शकृता चाथ चर्मणा ॥ ३९ ॥
अस्थिभिश्चोपकुर्वन्ति शृङ्गैर्वालैश्च भारत ।
नासां शीतातपौ स्यातां सदैताः कर्म कुर्वते ॥ ४० ॥
न वर्षविषयं वापि दुःखमासां भवत्युत ।
ब्राह्मणैः सहिता यान्ति तस्मात्पारमकं पदम् ॥ ४१ ॥
एकं गोब्राह्मणं तस्मात्प्रवदन्ति मनीषिणः ।
रन्तिदेवस्य यज्ञे ताः पशुत्वेनोपकल्पिताः ॥ ४२ ॥
अतश्चर्मण्वती राजन् गोचर्मभ्यः प्रवर्तिता ।
पशुत्वाच्च विनिर्मुक्ताः प्रदानायोपकल्पिताः ॥ ४३ ॥
ता इमा विप्रमुख्येभ्यो यो ददाति महीपते ।
निस्तरेदापदं कृच्छ्रां विषमस्थोऽपि पार्थिव ॥ ४४ ॥
गवां सहस्रदः प्रेत्य नरकं न प्रपद्यते ।
सर्वत्र विजयं चापि लभते मनुजाधिप ॥ ४५ ॥
अमृतं वै गवां क्षीरमित्याह त्रिदशाधिपः ।
तस्माद्ददाति यो धेनुममृतं स प्रयच्छति ॥ ४६ ॥

हे भारत ! ब्रह्मलोकमें गौवें चन्द्रमाके सङ्ग निवास करती हैं। सिद्ध और ब्रह्मर्षि लोग जिस परमपदकी इच्छा करते हैं, गोदान करनेसे सब पापोंसे छूटकर मनुष्य उसही गतिको पाते हैं। हे भारत ! ये गौवें ही दही, दूध, घृत, गोमय, चर्म, हड्डी, सींग और पूंछके बालसे सबका उपकार करती हैं, इन्हें, सर्दी, गर्मीका भय नहीं है, ये सदा ही कार्य किया करती हैं, वर्षासे इन्हें दुःख नहीं होता, इसलिये ये ब्राह्मणोंके सहित परमपदमें गमन करती हैं, इसीसे पण्डित लोग गऊ और ब्राह्मणोंको एकही कहा करते हैं। हे महाराज ! रन्तिदेव राजाके यज्ञमें गौवें पशुरूपसे कल्पित हुई थीं, उस गोचर्मसे चर्मण्वती नदी प्रवर्तित हुई है। दानके लिये उपकल्पित गौवें पशुत्वसे मुक्त हुई थीं। (३८-४३)

हे पृथ्वीनाथ ! जो लोग श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको गोदान करते हैं, वे विषम अवस्थामें पडके भी क्लेश तथा आपदोंसे पार होते हैं। हे नरनाथ ! सहस्र गोदान करनेसे परलोकमें जानेपर पुरुष नरकमें नहीं पडता और सबठौर विजय प्राप्त होती है। इन्द्रने गौवोंके दूधको ही अमृत कहा है, इसलिये जो पुरुष गोदान करता है, वह अमृत प्रदान किया करता है। वेद जाननेवाले पुरुष

अग्नीनामव्ययं ह्येतद्धौम्यं वेदविदो विदुः ।
तस्माद्ददाति यो धेनुं स हौम्यं संप्रयच्छति ॥ ४७ ॥
स्वर्गो वै मूर्तिमानेष वृषभं यो गवां पतिम् ।
विप्रे गुणयुते दद्यात्स वै स्वर्गे महीयते ॥ ४८ ॥
प्राणा वै प्राणिनामेते प्रोच्यन्ते भरतर्षभ ।
तस्माद्ददाति यो धेनुं प्राणानेष प्रयच्छति ॥ ४९ ॥
गावः शरण्या भूतानामिति वेदविदो विदुः ।
तस्माद्ददाति यो धेनुं शरणं संप्रयच्छति ॥ ५० ॥
न वधार्थं प्रदातव्या न कीनाशे न नास्तिके ।
गोजीविने न दातव्या तथा गौर्भरतर्षभ ॥ ५१ ॥
ददत्स तादृशानां वै नरो गां पापकर्मणाम् ।
अक्षयं नरकं यातीत्येवमाहुर्महर्षयः ॥ ५२ ॥
न कृशां नापवत्सां वा वन्ध्यां रोगान्वितां तथा ।
न व्यङ्गां न परिश्रान्तां दद्याद्गां ब्राह्मणाय वै ॥ ५३ ॥
दशगोसहस्रदो हि शक्रेण सह मोदते ।
अक्षयाँल्लभते लोकान्नरः शतसहस्रशः ॥ ५४ ॥

अग्निके सम्बन्धमें इसे ही अव्यय होम साधन समझते हैं, इससे जो लोग गोदान करते हैं, वे होम साधन प्रदान किया करते हैं, यह गोपति वृषभ ही मूर्तिमान स्वर्ग स्वरूप है, जो लोग गुणवान् ब्राह्मणोंको वृषभ देते हैं, वे स्वर्गमें निवास किया करते हैं। (४४-४८)

हे भरतश्रेष्ठ ! गौवें प्राणियोंकी प्राणस्वरूप कही गई हैं, इसलिये जो लोग गऊ देते हैं, वे प्राण प्रदान किया करते हैं। वेद जाननेवाले पुरुष गौवोंको सब प्राणियोंकी शरण्य रूपी जानते हैं, इसलिये जो लोग गऊ देते हैं, वे शरण दिया करते हैं। हे भरतश्रेष्ठ ! पापाचारी नास्तिकको वधके निमित्त गऊ देनी योग्य नहीं है और गोजीवी पुरुषोंको भी गोदान करना अनुचित है। महर्षियोंने ऐसा कहा है, कि जो मनुष्य वैसे पापियोंको गोदान करता है, वह अक्षय नरकमें पडता है। ब्राह्मणोंको कृशित, बछडा रहित, वन्ध्या, रोगयुक्त, विकलाङ्गी और थकी हुई गऊ दान न करे। दश हजार गौवोंको दान करनेवाले मनुष्य स्वर्गमें इन्द्रके सङ्ग आनन्द भोगते हैं और सौ हजार गौवोंको दान करनेवाला

इत्येतद्गोप्रदानं च तिलदानं च कीर्तितम्।
तथा भूमिप्रदानं च शृणुष्वान्ने च भारत ॥ ५५ ॥
अन्नदानं प्रधानं हि कौन्तेय परिचक्षते।
अन्नस्य हि प्रदानेन रन्तिदेवो दिवं गतः ॥ ५६ ॥
श्रान्ताय क्षुधितायान्नं यः प्रयच्छति भूमिप।
स्वायम्भुवं महत्स्थानं स गच्छति नराधिप ॥ ५७ ॥
न हिरण्यैर्न वासोभिर्नान्यदानेन भारत।
प्राप्नुवन्ति नराः श्रेयो यथा ह्यन्नप्रदाः प्रभो ॥ ५८ ॥
अन्नं वै प्रथमं द्रव्यमन्नं श्रीश्च परा मता।
अन्नात्प्राणः प्रभवति तेजो वीर्यं बलं तथा ॥ ५९ ॥
सद्यो ददाति यश्चान्नं सदैकाग्रमना नरः।
न स दुर्गाण्यवाप्नोतीत्येवमाह पराशरः ॥ ६० ॥
अर्चयित्वा यथान्यायं देवेभ्योऽन्नं निवेदयेत्।
यदन्ना हि नरा राजंस्तदन्नास्तस्य देवताः ॥ ६१ ॥
कौमुदे शुक्लपक्षे तु योऽन्नदानं करोत्युत।
स संतरति दुर्गाणि प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते ॥ ६२ ॥

अक्षय लोकोंको पाता है। हे भारत! यह गऊ तिल और भूमिदानका विषय कहा गया, अब अन्नदानका फल सुनो। (४९-५५)

हे कुन्तीनन्दन! महर्षिलोग अन्नदानको ही प्रकृष्ट दान कहा करते हैं, राजा रन्तिदेवने अन्नदान करनेसे देवलोकमें गमन किया है। हे महाराज! जो लोग थके और भूखेको अन्नदान करते हैं, वे ब्रह्माके उत्तम महत्व स्थानमें जाते हैं। हे भरतवंशावतंस नरनाथ! मनुष्योंका अन्नदानसे जैसा कल्याण होता है, सुवर्ण, वस्त्र अथवा अन्य वस्तु दान करनेसे वैसा कल्याण नहीं प्राप्त होता। अन्नही प्रथम द्रव्य है, अन्न ही परम श्री रूपसे सम्मत है, अन्नसे प्राण, तेज, बल और वीर्य उत्पन्न होता है। पराशर मुनि कहते हैं, कि जो पुरुष सदा एकाग्रचित्त होकर याचकोंकी प्रार्थनानुसार अन्नदान करता है, उसे क्लेश नहीं मिलते; न्यायपूर्वक देवताओंकी पूजा करके अन्न निवेदन करे। (५६—६१)

हे महाराज! मनुष्यवृन्द जो अन्न खाते हैं, उनके देवताओंका भी वही अन्न होता है। कार्त्तिक महीनेके शुक्ल

अभुक्त्वाऽतिथये चान्नं प्रयच्छेद्यः समाहितः ।
स वै ब्रह्मविदां लोकान्प्राप्नुयाद्भरतर्षभ ॥ ६३ ॥
सुकृच्छ्रामापदं प्राप्तश्चान्नदः पुरुषस्तरेत् ।
पापं तरति चैवेह दुष्कृतं चापकर्षति ॥ ६४ ॥
इत्येतदन्नदानस्य तिलदानस्य चैव ह ।
भूमिदानस्य च फलं गोदानस्य च कीर्तितम् ॥ ६५ ॥ [३३३४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

युधिष्ठिर उवाच– श्रुतं दानफलं तात यत्त्वया परिकीर्तितम् ।
अन्नदानं विशेषेण प्रशस्तमिह भारत ॥ १ ॥
पानीयदानमेवैतत्कथं चेह महाफलम् ।
इत्येतच्छ्रोतुमिच्छामि विस्तरेण पितामह ॥ २ ॥
भीष्म उवाच— हन्त ते वर्तयिष्यामि यथावद्भरतर्षभ ।
गदतस्तन्ममाद्येह शृणु सत्यपराक्रम ॥ ३ ॥
पानीयदानात्प्रभृति सर्वं वक्ष्यामि तेऽनघ ।

पक्षमें जो लोग अन्नदान करते हैं, वे इस लोकमें सब क्लेशोंसे पार होके परलोकमें अनन्त सुख भोगते हैं । हे भरतश्रेष्ठ ! जो समाहित पुरुष भूखा रहके अतिथिको अन्नदान करता है, उसे ब्रह्मवित् पुरुषोंके लोक प्राप्त होते हैं । अन्नदान करनेवाला पुरुष अत्यन्त कष्टकारी आपद्में पडके भी उससे पार हुआ करता है । इस लोकमें पापियोंका अन्नदानसेही निस्तार होता है । यह अन्न, तिल, भूमि और गोदानका फल कहा गया । (६१—६५)

अनुशासनपर्वमें ६६ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ६७ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे तात भारत ! आपने जो कथा कही, वह सब दानका फल मैंने सुना, इस लोकमें विशेष रूपसे अन्नदान ही श्रेष्ठ है । हे पितामह ! इस लोकमें जलदान करनेसे कैसा महाफल होता है ? इसलिये यह विषय मैं विस्तारपूर्वक सुननेकी इच्छा करता हूं । (१–२)

भीष्म बोले, हे सत्यपराक्रमी भरतश्रेष्ठ ! अच्छा अब मैं तुम्हारे निकट जलदानके फलको विधिपूर्वक वर्णन करता हूं, तुम उसे सुनो । हे पापरहित ! मैं जलदानसे आरम्भ करके सभी कहता हूं । अन्न और जल दान करके

यदन्नं यच्च पानीयं संप्रदायाश्नुते नरः ॥ ४ ॥
न तस्मात्परमं दानं किंचिदस्तीति मे मनः।
अन्नात्प्राणभृतस्तात प्रवर्तन्ते हि सर्वशः ॥ ५ ॥
तस्मादन्नं परं लोके सर्वलोकेषु कथ्यते।
अन्नाद्बलं च तेजश्च प्राणिनां वर्धते सदा ॥ ६ ॥
अन्नदानमतस्तस्माच्छ्रेष्ठमाह प्रजापतिः।
सावित्र्या ह्यपि कौन्तेय श्रुतं ते वचनं शुभम् ॥ ७ ॥
यतश्च यद्यथा चैव देवसत्रे महामते।
अन्ने दत्ते नरेणेह प्राणा दत्ता भवन्त्युत ॥ ८ ॥
प्राणदानाद्धि परमं न दानमिह विद्यते।
श्रुतं हि ते महाबाहो लोमशस्यापि तद्वचः ॥ ९ ॥
प्राणान्दत्त्वा कपोताय यत्प्राप्तं शिबिना पुरा।
तां गतिं लभते दत्त्वा द्विजस्यान्नं विशाम्पते ॥१०॥
तस्माद्विशिष्टां गच्छन्ति प्राणदा इति नः श्रुतम्।
अन्नं वापि प्रभवति पानीयात्कुरुसत्तम।
नीरजातेन हि विना न किंचित्संप्रवर्तते ॥ ११ ॥

लोग जो फल भोगते हैं, मेरे विचारमें उससे श्रेष्ठ दान और कुछ भी नहीं है। हे तात! अन्नसे समस्त प्राणधारी जीवमात्र वर्त्तमान हैं, इसलिये सब लोकोंमें ही अन्न श्रेष्ठ रूपसे वर्णित हुआ करता है। अन्नसे ही प्राणियोंका बल और तेज सदा वर्धित होता है, इसलिये प्रजापति अन्नदानको ही सबसे श्रेष्ठ कहते हैं। हे कौन्तेय! तुमने सावित्रीका भी पवित्र वचन सुना होगा। (३—७)

हे महाबुद्धिमान्! देवयज्ञमें जिससे जिस प्रकार जो अन्न जिस मनुष्यके द्वारा दिया जाता है, उसहीके सहारे प्राणदान हुआ करता है, इस लोकमें प्राणदानसे श्रेष्ठ दान और कुछ भी नहीं है। हे महाबाहो! तुमने लोमशका वह पवित्र वचन सुना है, जो कि पहले समयमें राजा शिबिको कपोतके प्राणदान करनेसे गति प्राप्त हुई थी। हे महाबाहो! मैंने सुना है, कि ब्राह्मणोंको अन्न दान करनेसे जो गति मिलती है, प्राणदाता उससे भी श्रेष्ठ गति पाता है। हे कुरुसत्तम! जलसे अन्न उत्तम होता है, जलसे उत्पन्न धान्य आदिके अतिरिक्त कुछ भी

नीरजातश्च भगवान्सोमो ग्रहगणेश्वरः ।
अमृतं च सुधा चैव सुधा चैवामृतं तथा ॥ १२ ॥
अन्नौषध्यो महाराज वीरुधश्च जलोद्भवाः ।
यतः प्राणभृतां प्राणाः संभवन्ति विशाम्पते ॥ १३ ॥
देवानाममृतं ह्यन्नं नागानां च सुधा तथा ।
पितॄणां च स्वधा प्रोक्ता पशूनां चापि वीरुधः ॥ १४ ॥
अन्नमेव मनुष्याणां प्राणानाहुर्मनीषिणः ।
तच्च सर्वं नरव्याघ्र पानीयात्संप्रवर्तते ॥ १५ ॥
तस्मात्पानीयदानाद्धि न परं विद्यते क्वचित् ।
तच्च दद्यान्नरो नित्यं यदीच्छेद्भूतिमात्मनः ॥ १६ ॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं जलदानमिहोच्यते ।
शत्रूंश्चाप्यधि कौन्तेय सदा तिष्ठति तोयदः ॥ १७ ॥
सर्वकामानवाप्नोति कीर्तिं चैव हि शाश्वतीम् ।
प्रेत्य चानन्त्यमश्नाति पापेभ्यश्च प्रमुच्यते ॥ १८ ॥
तोयदो मनुजव्याघ्र स्वर्गं गत्वा महाद्युते ।
अक्षयान्समवाप्नोति लोकानित्यब्रवीन्मनुः ॥ १९ ॥ [३३५३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पानीयदानमाहात्म्ये सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

वर्त्तमान नहीं रहता; ग्रहोंके प्रभु भगवान् चन्द्रमा जलहीसे उत्पन्न हुए हैं। (८—१२)

हे महाराज! जिसके पीनेसे प्राण-धारण होते, वेही अमृत, सुधा, स्वधा, अन्न, ओषधि और तृण जलसे ही उत्पन्न हुए हैं। हे नरनाथ! पण्डितोंने कहा है, कि जिससे प्राणियोंके प्राण उत्पन्न होते हैं, देवताओंका अन्न, अमृत, नागोंका सुधा, पितरोंका स्वधा, पशुओंका तृण और मनुष्योंका प्राण ही अन्न है। हे नरश्रेष्ठ! ये सभी जलसे प्रवर्त्तित होते हैं, इसलिये जल-दानसे श्रेष्ठ दान और कुछ भी नहीं है। यदि मनुष्य अपने ऐश्वर्यकी कामना करे, तो वह सदा जल दान करे। इस लोकमें जल दान धन्य, यशस्कर और आयुष्यरूपी कहा गया है। हे कुन्तीनन्दन! जलदाता सदा शत्रुओंके ऊर्ध्वमें निवास करता है, वह समस्त काम्य विषय तथा शाश्वती कीर्त्ति प्राप्त करके परलोकमें जाके

युधिष्ठिर उवाच— तिलानां कीदृशं दानमथ दीपस्य चैव हि।
अन्नानां वाससां चैव भूय एव ब्रवीहि मे ॥ १ ॥
भीष्म उवाच- अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
ब्राह्मणस्य च संवादं यमस्य च युधिष्ठिर ॥ २ ॥
मध्यदेशे महान् ग्रामो ब्राह्मणानां बभूव ह।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये यामुनस्य गिरेरधः ॥ ३ ॥
पर्णशालेति विख्यातो रमणीयो नराधिप।
विद्वांसस्तत्र भूयिष्ठा ब्राह्मणाश्चावसंस्तथा ॥ ४ ॥
अथ प्राह यमः कंचित्पुरुषं कृष्णवाससम्।
रक्ताक्षमूर्ध्वरोमाणं काकजङ्घाक्षिनासिकम् ॥ ५ ॥
गच्छ त्वं ब्राह्मणग्रामं ततो गत्वा तमानय।
अगस्त्यं गोत्रतश्चापि नामतश्चापि शर्मिणम् ॥ ६ ॥
शमे निविष्टं विद्वांसमध्यापकमनावृतम्।
मा चान्यमानयेथास्त्वं सगोत्रं तस्य पार्श्वतः ॥ ७ ॥
स हि तादृग्गुणस्तेन तुल्योऽध्ययनजन्मना।

अनन्त फल भोग करता तथा सब पापोंसे मुक्त होता है। हे महातेजस्वी पुरुषश्रेष्ठ! मनुने कहा है, कि जल-दाता स्वर्गमें जाके अक्षय लोकोंको पाता है। (१२—१९)

अनुशासनपर्वमें ६७ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ६८ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! तिल दान और दीप दान कैसे दान हैं? अन्न और वस्त्र दान किस प्रकार करना होता है? आप फिर मेरे निकट इसे वर्णन करिये। (१)

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! प्राचीन लोग इस विषयमें ब्राह्मण और यमके संवादयुक्त यह पुरातन इतिहास कहा करते हैं। हे नरनाथ! मध्यदेशमें गङ्गा-यमुनाके बीच यामुन पर्वतकी तराईमें पर्णशाला नामसे विख्यात विद्वान ब्राह्म-णोंका अत्यन्त रमणीय एक बडासा गांव था। अनन्तर यमने काला वस्त्र पहरनेवाले, लालनेत्र,ऊर्ध्वरोम, कौवेकी भांति जङ्घा, नेत्र और नासिकायुक्त किसी पुरुषसे कहा, कि तुम ब्राह्मणोंके गांवमें जाके वहांसे अगस्त्यगोत्री शर्मि नाम ब्राह्मणको लाओ। (२-६)

वह हमारे अनावृत,विद्वान्,अध्यापक और शममें आविष्ट हुआ है,पासमेंसे दूसरे किसी उनके सगोत्री ब्राह्मणको न

अपत्येषु तथा वृत्ते समस्तेनैव धीमता ॥ ८ ॥
तमानय यथोद्दिष्टं पूजा कार्या हि तस्य वै ।
स गत्वा प्रतिकूलं तच्चकार यमशासनम् ॥ ९ ॥
तमाक्रम्यानयामास प्रतिषिद्धो यमेन यः ।
तस्मै यमः समुत्थाय पूजां कृत्वा च वीर्यवान् ॥१०॥
प्रोवाच नीयतामेष सोऽन्य आनीयतामिति ।
एवमुक्ते तु वचने धर्मराजेन स द्विजः ॥ ११ ॥
उवाच धर्मराजानं निर्विण्णोऽध्ययनेन वै ।
यो मे कालो भवेच्छेषस्तं वसेयमिहाच्युत ॥ १२ ॥
यम उवाच- नाहं कालस्य विहितं प्राप्नोमीह कथंचन ।
यो हि धर्मं चरति वै तं तु जानामि केवलम् ॥ १३ ॥
गच्छ विप्र त्वमद्यैव आलयं स्वं महाद्युते ।
ब्रूहि सर्वं यथास्वैरं करवाणि किमच्युत ॥ १४ ॥
ब्राह्मण उवाच- यत्तत्र कृत्वा सुमहत्पुण्यं स्यात्तद्ब्रवीहि मे ।
सर्वस्य हि प्रमाणं त्वं त्रैलोक्यस्यापि सत्तम ॥ १५ ॥
यम उवाच— शृणु तत्त्वेन विप्रर्षे प्रदानविधिमुत्तमम् ।

लाना। वह गुणोंमें हमारे अध्यापकके तुल्य हैं, उनके पुत्र भी उन्हींके सदृश हैं। इसलिये मैंने जैसा कहा, उस ही भांति उन्हें लाओ, उनकी पूजा करनी होगी। उस पुरुषने वहां जाके यमकी आज्ञाके विरुद्ध कार्य किया, उन्होंने जिसे लानेका निषेध किया था, उसे ही आक्रमण करके ले आया। वीर्यवान् यम उठकर उनका सत्कार करके बोले, इन्हें ले जाओ और दूसरे पुरुषको लाओ। धर्मराजका वचन सुनके वह ब्राह्मण उनसे बोला, मैं पढनेसे निर्विण्ण हुआ हूं, मेरा जितना समय शेष है, उतने ही समय तक इस यमलोकमें निवास करूंगा। (७-१२)

यम बोले, मैं कालके द्वारा विहित परमायुका प्रमाण नहीं जानता, जो लोग धर्माचरण करते हैं, केवल उन्हें ही जानता हूं। हे महातेजस्वी विप्र! इसलिये तुम आज ही अपने स्थानपर जाओ। और कहो, मैं क्या करूं? १३-१४

ब्राह्मण बोला जिस कार्यके करनेसे भूलोकमें उत्तम महत् पुण्य होता है, मुझे वही उपदेश करो। हे सत्तम! तुम ही तीनों लोकोंके धर्माधर्म विषय में प्रमाण हो। (१५)

तिलाः परमकं दानं पुण्यं चैवेह शाश्वतम् ॥ १६ ॥
तिलाश्च संप्रदातव्या यथाशक्ति द्विजर्षभ ।
नित्यदानात्सर्वकामांस्तिला निर्वर्तयन्त्युत ॥ १७ ॥
तिलान् श्राद्धे प्रशंसन्ति दानमेतद्ध्यनुत्तमम् ।
तान्प्रयच्छस्व विप्रेभ्यो विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ १८ ॥
वैशाख्यां पौर्णमास्यां तु तिलान्दद्याद् द्विजातिषु ।
तिला भक्षयितव्याश्च सदा त्वालम्भनं च तैः॥ १९ ॥
कार्यं सततमिच्छद्भिः श्रेयः सर्वात्मना गृहे ।
तथाऽऽपः सर्वदा देयाः पेयाश्चैव न संशयः ॥ २० ॥
पुष्करिण्यस्तडागानि कूपांश्चैवात्र खानयेत् ।
एतत्सुदुर्लभतरमिह लोके द्विजोत्तम ॥ २१ ॥
आपो नित्यं प्रदेयास्ते पुण्यं ह्येतदनुत्तमम् ।
प्रपाश्च कार्या दानार्थं नित्यं ते द्विजसत्तम ।
भुक्तेऽप्यन्नं प्रदेयं तु पानीयं वै विशेषतः ॥ २२ ॥

भीष्म उवाच- इत्युक्ते स तदा तेन यमदूतेन वै गृहान् ।

यम बोले, हे विप्रर्षि ! श्रेष्ठ दानकी विधि सुनो, इस लोकमें तिलदान परम पवित्र और नित्य फल देनेवाला है । हे द्विजवर ! जो लोग सब भांतिसे अपने गृहमें कल्याणकी इच्छा करते हैं, उन सबको ही शक्तिके अनुसार तिल दान करना योग्य है,सदा दान करनेसे तिल दान समस्त कामना पूरी करता है, पण्डित लोग श्राद्धमें तिल दानकी प्रशंसा किया करते हैं, इसीसे यह दान सबसे उत्तम हैं; इसलिये विधिविहित कर्मके सहारे ब्राह्मणोंको तिल दान करो । (१६-१८)

वैशाखी पौर्णमासीको द्विजातियोंको तिल दान करें, तिलभोजन करावे और जो लोग सब भांतिसे अपने गृहमें कल्याणकी इच्छा करते हैं, उन्हें उचित है कि तिलसे सदा उद्वर्त्तन करें, तिल दानकी भांति सदा जल देना और निःसन्देह जल पीना चाहिये। हे द्विजोत्तम ! पृथ्वीपर तालाव, तलायी और कूआं प्रभृति खुदवाने; इस लोकमें ये सब कार्य अत्यन्त ही दुर्लभ हैं । तुम सदा जलदान करना, यही सबसे उत्तम पुण्य है। हे द्विजसत्तम ! तुम सदा जलदानके निमित्त जलशाला बनाना, अन्न भोजन करनेपर भी विशेष रीतिसे जल देना योग्य है। (१९-२२)

नीतश्च कारयामास सर्वं तद्यमशासनम् ॥ २३ ॥
नीत्वा तं यमदूतोऽपि गृहीत्वा शर्मिणं तदा ।
ययौ स धर्मराजाय न्यवेदयत चापि तम् ॥ २४ ॥
तं धर्मराजो धर्मज्ञं पूजयित्वा प्रतापवान् ।
कृत्वा च संविदं तेन विससर्ज यथागतम् ॥ २५ ॥
तस्यापि च यमः सर्वमुपदेशं चकार ह ।
प्रेत्यैत्य च ततः सर्वं चकारोक्तं यमेन तत् ॥ २६ ॥
तथा प्रशंसते दीपान्यमः पितृहितेप्सया ।
तस्माद्दीपप्रदो नित्यं संतारयति वै पितॄन् ॥ २७ ॥
दातव्याः सततं दीपास्तस्माद्भरतसत्तम ।
देवतानां पितॄणां च चक्षुष्यं चात्मनां विभो ॥ २८ ॥
रत्नदानं च सुमहत्पुण्यमुक्तं जनाधिप ।
यस्तान्विक्रीय यजते ब्राह्मणो ह्यभयंकरम् ॥ २९ ॥
यद्वै ददाति विप्रेभ्यो ब्राह्मणः प्रतिगृह्य वै ।
उभयोः स्यात्तदक्षय्यं दातुरादातुरेव च ॥ ३० ॥

भीष्म बोले, उस समय जब उस ब्राह्मणने यमका यह सब वचन सुनलिया तब यमदूतने उसे उसके गृहमें पहुंचाया; फिर जिस प्रकार यमने उसे उपदेश किया था, उसहीके अनुसार उसने सब कार्य किया। अनन्तर यमदूत उस शर्मिको लेकर यमके स्थानपर गया और धर्मराजके समीप उसका वृत्तान्त सुनाया। प्रतापवान् धर्मराजने उस धर्मज्ञ ब्राह्मणकी पूजा की और उसके सङ्ग वार्त्तालाप करके वह जहांसे आया था, उसे वहां जानेके लिये बिदा किया। यमने उन्हें जैसा उपदेश किया था, उसने यमलोकसे लौटकर धर्मराजके कहे हुए सब कार्योंको किया। यमराज पितृलोककी हितकामनासे दीपदानकी प्रशंसा करते हैं। इसलिये सदा दीप दान करनेवाला मनुष्य पितरोंका उद्धार किया करता है। (२३–२७)

हे विभु भरतसत्तम! इसलिये सदा दीप दान करना योग्य है, क्यों कि दीपक देवताओं और पितरोंके नेत्रके लिये हितकर कहा गया है। हे प्रजानाथ! रत्न दान करनेसे उत्तम महत् पुण्य होता है, ऐसा कहा गया है, कि जो ब्राह्मण रत्न बेचके यज्ञ करता है, उसे कुछ भय नहीं होता। जो ब्राह्मण रत्न दान करता और जो उसे लेता

यो ददाति स्थितः स्थित्यां तादृशाय प्रतिग्रहम् ।
उभयोरक्षयं धर्मं तं मनुः प्राह धर्मवित् ॥ ३१ ॥
वाससां संप्रदानेन स्वदारनिरतो नरः ।
सुवस्त्रश्च सुवेषश्च भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ३२ ॥
गावः सुवर्णं च तथा तिलाश्चैवानुवर्णिताः ।
बहुशः पुरुषव्याघ्र वेदप्रामाण्यदर्शनात् ॥ ३३ ॥
विवाहांश्चैव कुर्वीत पुत्रानुत्पादयेत च ।
पुत्रलाभो हि कौरव्य सर्वलाभाद्विशिष्यते ॥ ३४ ॥ [३३८७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे यमब्राह्मणसंवादे अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

युधिष्ठिर उवाच- भूय एव कुरुश्रेष्ठ दानानां विधिमुत्तमम् ।
कथयस्व महाप्राज्ञ भूमिदानं विशेषतः ॥ १ ॥
पृथिवीं क्षत्रियो दद्याद्ब्राह्मणायेष्टिकर्मिणे ।
विधिवत्प्रतिगृह्णीयान्न त्वन्यो दातुमर्हति ॥ २ ॥
सर्ववर्णैस्तु यच्छक्यं प्रदातुं फलकाङ्क्षिभिः ।
वेदे वा यत्समाख्यातं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३ ॥

है, वह दाता तथा ग्रहीता दोनोंके लिये अक्षय फलजनक हुआ करता है। धर्मज्ञ मनुने कहा है, कि जो लोग मर्यादासे स्थित होके ब्राह्मणोंको रत्नदान देते तथा लेते हैं; उन दोनोंको ही अक्षय धर्म होता है। (२८—३१)

मैंने ऐसा सुना है, कि निज स्त्रीमें रत रहनेवाले मनुष्य वस्त्र दान करनेसे सुन्दर तथा रूपवान् होते हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! वेदप्रमाणके अनुसार गऊ, सुवर्ण और तिल दानका विषय कई बार कहा गया। मनुष्योंको विवाह करना, तथा विवाह करके अवश्य पुत्र उत्पन्न करना योग्य है। हे कौरव! सब लाभोंके बीच पुत्रलाभ ही सबसे श्रेष्ठ है। (३२-३४)

अनुशासनपर्वमें ६८ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ६९ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे महाप्राज्ञ कुरु-श्रेष्ठ! आप फिर समस्त दानोंकी श्रेष्ठ विधि विशेष करके भूमिदानका विषय कहिये। क्षत्रिय यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणको भूमिदान करे, ब्राह्मण भी उसे विधिपूर्वक ले, क्षत्रियके अतिरिक्त दूसरे पुरुष भूमिदान करनेमें समर्थ नहीं हैं। सब वर्ण ही फलकी कामना

भीष्म उवाच-तुल्यनामानि देयानि त्रीणि तुल्यफलानि च ।
सर्वकामफलानीह गावः पृथ्वी सरस्वती ॥ ४ ॥
यो ब्रूयाच्चापि शिष्याय धर्म्यां ब्राह्मीं सरस्वतीम् ।
पृथिवीगोप्रदानाभ्यां तुल्यं स फलमश्नुते ॥ ५ ॥
तथैव गाः प्रशंसन्ति न तु देयं ततः परम् ।
सन्निकृष्टफलास्ता हि लघ्वर्थाश्च युधिष्ठिर ॥ ६ ॥
मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदाः ।
वृद्धिमाकाङ्क्षता नित्यं गावः कार्याः प्रदक्षिणाः ॥७॥
संताड्या न तु पादेन गवां मध्ये न च व्रजेत् ।
मङ्गलायतनं देव्यस्तस्मात्पूज्याः सदैव हि ॥ ८ ॥
प्रचोदनं देवकृतं गवां कर्मसु वर्ततास् ।
पूर्वमेवाक्षरं चान्यदभिधेयं ततः परम् ॥ ९ ॥
प्रचारे वा निवाते वा बुधो नोद्वेजयेत गाः ।
तृषिता ह्यभिवीक्षन्त्यो नरं हन्युः सबान्धवम् ॥१०॥

करके जो वस्तु दे सकें और वेदमें जो पूरी रीतिसे वर्णित हो, आपको मेरे निकट उसहीकी व्याख्या करनी उचित है। (१—३)

भीष्म बोले, तुल्य नाम अर्थात् गोपदवाच्य गऊ, भूमि और वाणी हैं, इन तीनोंको ही दान करना उचित है, इन तीनोंके दानका फल समान ही है और इस लोकमें इनके सहारे सब प्रयोजन तथा फल प्राप्त होते हैं। जो लोग शिष्यसे धर्मयुक्त वचन कहते हैं, वे भूमि और गोदानके तुल्य फल पाते हैं। इसही प्रकार सब कोई गोदानकी प्रशंसा किया करते हैं, गोदानसे श्रेष्ठदान और कुछ भी नहीं है। हे युधिष्ठिर! गौओंका फल अत्यन्त ही सन्निकृष्ट अर्थात् अल्प धनसे ही वह सिद्ध हुआ करता है। सबको सुख देनेवाली गौवें सब प्राणियोंकी माता हैं, जो लोग वृद्धिकी कामना करें, उन्हें प्रतिदिन गौवोंकी प्रदक्षिणा करनी योग्य है। गौवोंको पैरसे न मारे, गौवोंके बीचमें न जावे, मङ्गलकी स्थान देवी स्वरूप गौवें सदा पूजनीय हैं। (४—८)

यज्ञके लिये अथवा खेतीके निमित्त कार्यमें नियुक्त बलवान बैलके ऊपर देवकृत कोडेसे प्रहार करनेसे दोष नहीं होता, और यज्ञके लिये ताडना करना ही कल्याणकारी है, केवल

पितृसद्मानि सततं देवतायतनानि च ।
पूयन्ते शकृता यासां पूतं किमधिकं ततः ॥ ११ ॥
ग्रासमुष्टिं परगवे दद्यात्संवत्सरं तु यः ।
अकृत्वा स्वयमाहारं व्रतं तत्सार्वकामिकम् ॥ १२ ॥
स हि पुत्रान्यशोऽर्थं च श्रियं चाप्यधिगच्छति ।
नाशयत्यशुभं चैव दुःस्वप्नं चाप्यपोहति ॥ १३ ॥
युधिष्ठिर उवाच—देयाः किंलक्षणा गावः काश्चापि परिवर्जयेत् ।
कीदृशाय प्रदातव्या न देयाः कीदृशाय च ॥ १४ ॥
भीष्म उवाच—असद्वृत्ताय पापाय लुब्धायानृतवादिने ।
हव्यकव्यव्यपेताय न देया गौः कथंचन ॥ १५ ॥
भिक्षवे बहुपुत्राय श्रोत्रियायाहिताग्नये ।
दत्त्वा दशगवां दाता लोकानाप्नोत्यनुत्तमान् ॥ १६ ॥
यश्चैव धर्मं कुरुते तस्य धर्मफलं च यत् ।
सर्वस्यैवांशभाग्दाता तन्निमित्तं प्रवृत्तयः ॥ १७ ॥
यश्चैनमुत्पादयते यश्चैनं त्रायते भयात् ।

खेतीके ही लिये प्रहार करना निन्दनीय तथा दूषित है। पण्डित पुरुष चरने और बैठनेके समय गौवोंको उद्वेगयुक्त न करें, गौयें प्यासी होकर देखनेसे मनुष्यको बान्धवोंके सहित नष्ट करती हैं। जिन लोगोंका पितृ और देवस्थान गोमयसे सदा पवित्र हुआ करता है, उससे अधिक पवित्र और कौन है? जो लोग स्वयं तक्र आदि न लेके भी वर्षभर गौवोंको घास देते हैं, उन्हें उस व्रतसे सर्वकाम फल प्राप्त होता है। वे पुत्र, यश, धन तथा श्रीसम्पन्न होते, उनके पाप नष्ट होते और दुःस्वप्न विनष्ट होजाते हैं। (९—१३)

युधिष्ठिर बोले, कैसे लक्षणोंसे युक्त गौवोंको दान करना योग्य है, और कैसी न देनी चाहिये? कैसे पुरुषको दान देना योग्य है और कैसे मनुष्यको दान न देना चाहिये? (१४)

भीष्म बोले, असद्वृत्तिवाले पापाचारी, लोभी, झूठ बोलनेवाले और हव्य-कव्यसे रहित पुरुषोंको किसी प्रकार गोदान करना उचित नहीं है; भिक्षुक, बहुपुत्र, श्रोत्रिय और आहिताग्नि ब्राह्मणोंको दश गऊ दान करनेसे दाता सबसे श्रेष्ठ लोकोंको पाता है; दान लेनेवाला जो कुछ धर्माचरण करता है, और उसके धर्मका जो कुछ फल रहता

यश्चास्य कुरुते वृत्तिं सर्वे ते पितरस्त्रयः ॥ १८ ॥
कल्मषं गुरुशुश्रूषा हन्ति मानो महद्यशः ।
अपुत्रतां त्रयः पुत्रा अवृत्तिं दश धेनवः ॥ १९ ॥
वेदान्तनिष्ठस्य बहुश्रुतस्य प्रज्ञानतृप्तस्य जितेन्द्रियस्य ।
शिष्टस्य दान्तस्य यतस्य चैव भूतेषु नित्यं प्रियवादिनश्च ॥२०॥
यः क्षुद्भयाद्वै न विकर्म कुर्यान्मृदुश्च शान्तो ह्यतिथिप्रियश्च ।
वृत्तिं द्विजायातिसृजेत तस्मै यस्तुल्यशीलश्च सपुत्रदारः॥२१॥
शुभे पात्रे ये गुणा गोप्रदाने तावान्दोषो ब्राह्मणस्वापहारे ।
सर्वावस्थं ब्राह्मणस्वापहारो दाराश्चैषां दूरतो वर्जनीयाः ॥२२॥ [३४०९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे गोदानमाहात्म्ये एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

भीष्म उवाच-अत्रैव कीर्त्यते सद्भिर्ब्राह्मणस्वाभिमर्शने ।
नृगेण सुमहत्कृच्छ्रं यदवाप्तं कुरूद्वह ॥ १ ॥
निविशन्त्यां पुरा पार्थ द्वारवत्यामिति श्रुतिः ।

है, दाता उन सबमें अंशभागी होता है; इसीसे उसके निमित्त प्रवृत्ति होती है। जो इन्हें उत्पन्न करते, जो भयसे परित्राण करते तथा जो लोग इन्हें जीविका दान करते हैं, वे तीनों ही इनके पिता हैं। (१५--१८)

गुरुकी सेवा करनेसे पाप दूर होता है, अभिमान बडे यशको भी नष्ट कर देता है,तीन पुत्र जन्मनेसे अपुत्रता नहीं रहती और दश गऊ वृत्तिहीनताको नष्ट करती हैं। वेदान्तनिष्ठ, बहुश्रुत, ज्ञानतृप्त, जितेन्द्रिय, शिष्ट,दान्त, संयत और जो लोग सब जीवोंके विषयमें सदा प्रिय वचन कहा करते हैं, जो ब्राह्मण भूखा होनेपर भी विरुद्ध कर्म नहीं करता,जो मृदु,शान्त,अतिथिप्रिय, तुल्यशील और स्त्री पुत्र आदिसे युक्त हो,उस ब्राह्मणको वृत्ति देनी चाहिये। सत्पात्रको गोदान करनेसे जितना धर्म होता है, ब्राह्मणस्व हरनेसे उतने ही परिमाणसे अधर्म हुआ करता है। ब्राह्मणस्वका हरना सारी बुराइयोंका हेतु है, और ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंको दूरसे ही त्यागना योग्य है। (१९—२२)

अनुशासनपर्वमें ६९ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ७० अध्याय।

भीष्म बोले, हे कुरुवंशधुरन्धर ! ब्राह्मणस्व हरनेके विषयमें राजा नृगने जैसा महत् क्लेश पाया था, साधु लोग उसे ही वर्णन किया करते हैं। हे पार्थ !

अदृश्यत महाकूपस्तृणवीरुत्समावृतः ॥ २ ॥
प्रयत्नं तत्र कुर्वाणास्तस्मात्कूपाज्जलार्थिनः।
श्रमेण महता युक्तास्तस्मिंस्तोये सुसंवृते ॥ ३ ॥
ददृशुस्ते महाकायं कृकलासमवस्थितम्।
तस्य चोद्धरणे यत्नमकुर्वंस्ते सहस्रशः ॥ ४ ॥
प्रग्रहैश्चर्मपट्टैश्च तं बद्ध्वा पर्वतोपमम्।
नाशक्नुवन् समुद्धर्तुं ततो जग्मुर्जनार्दनम् ॥ ५ ॥
खमावृत्योदपानस्य कृकलासः स्थितो महान्।
तस्य नास्ति समुद्धर्तेत्येतत्कृष्णे न्यवेदयन् ॥ ६ ॥
स वासुदेवेन समुद्धृतश्च पृष्टश्च कार्यं निजगाद राजा।
नृगस्तदात्मानमथो न्यवेदयत पुरातनं यज्ञसहस्रयाजिनम् ॥ ७ ॥
तथा ब्रुवाणं तु तमाह माधवः शुभं त्वया कर्म कृतं न पापकम्।
कथं भवान्दुर्गतिमीदृशीं गतो नरेन्द्र तद् ब्रूहि किमेतदीदृशम् ॥ ८ ॥
शतं सहस्राणि गवां शतं पुनः पुनः शतान्यष्टशतायुतानि।
त्वया पुरा दत्तमितीह शुश्रुम नृप द्विजेभ्यः क नु तद्गतं तव ॥ ९ ॥

मैंने सुना है, कि पहले द्वारकापुरीमें प्रवेश करनेके समय जल पीनेके अभिलाषी मनुष्योंने तृण लतासे परिपूरित एक महाकूप देखा था। वे लोग उस कूएंसे जल पीनेके निमित्त बहुत प्रयत्न करने लगे, परन्तु उस कूपका जल अत्यन्त ही ढका रहनेसे वे सब बहुत थक गये थे। अनन्तर उन लोगोंने उस कूएंके बीचमें स्थित एक बडा शरीरवाला गिरगिट देखा, उन्होंने गिरगिटको निकालनेके लिये सहस्रों बार यत्न किया; रस्सी, चमडे और वस्त्रोंसे उस पर्वत सदृश गिरगिटको बांधके भी उसे निकाल न सके, तब वे सब कोई कृष्णके समीप गये। (१-५)

उन लोगोंने कृष्णसे कहा, कि एक बहुत बडा गिरगिट कूएंका आकाशभाग रोकके स्थित है, ऐसा कोई नहीं है, जो उसे ऊपर उठावे। उस गिरगिट रूपी राजा नृगने श्रीकृष्णके द्वारा कूएंसे निकाले जाने तथा पूछनेपर अपना कार्य कहा और पहले समयमें जो सहस्र यज्ञ किया था, वह भी कह सुनाया। जब उन्होंने ऐसा वचन कहा, तब श्रीकृष्णचन्द्र उनसे बोले, आपने पापकर्म नहीं किया, शुभकार्य ही किया है। नरेन्द्र! तब आप किस प्रकार ऐसी दुर्गतिमें पडे थे? तुम्हारा

नृगस्ततोऽब्रवीत्कृष्णं ब्राह्मणस्याग्निहोत्रिणः ।
प्रोषितस्य परिभ्रष्टा गौरेका मम गोधने ॥ १० ॥
गवां सहस्रे संख्याता तदा सा पशुपैर्मम ।
सा ब्राह्मणाय मे दत्ता प्रेत्यार्थमभिकाङ्क्षता ॥ ११॥
अपश्यत्परिमार्गंश्च तां गां परगृहे द्विजः ।
ममेयमिति चोवाच ब्राह्मणो यस्य साऽभवत् ॥ १२ ॥
तावुभौ समनुप्राप्तौ विवदन्तौ भृशज्वरौ ।
भवान्दाता भवान्हर्तेत्यथ तौ मामवोचताम् ॥ १३ ॥
शतेन शतसंख्येन गवां विनिमयेन वै ।
याचे प्रतिग्रहीतारं स तु मामब्रवीदिदम् ॥ १४ ॥
देशकालोपसम्पन्ना दोग्ध्री शान्ताऽतिवत्सला ।
स्वादुक्षीरप्रदा धन्या मम नित्यं निवेशने ॥ १५ ॥
कृशं च भरते सा गौर्मम पुत्रमपस्तनम् ।
न सा शक्या मया दातुमित्युक्त्वा स जगाम ह ॥१६॥
ततस्तमपरं विप्रं याचे विनिमयेन वै ।

ऐसा रूप क्यों हुआ, उसे वर्णन करो। मैंने सुना है, कि पहले समयमें आपने ब्राह्मणोंको बार बार सौ सहस्र एक, एक सौ आठ, सौ और दश सहस्र गो दान किया था। हे महाराज ! आपके वे समस्त फल कहां गये ? (६-९)

अनन्तर राजा नृग कृष्णसे बोले, प्रोषित अग्निहोत्री ब्राह्मणकी एक गऊ भूलसे हमारे गोसमूहमें आ घुसी थी, हमारे पशुपालकोंने उस गऊको भी मेरी सहस्र गौवोंके बीच गिना था। मैंने परलोकके फलकी आकांक्षासे ब्राह्मण को वह गऊ दान की थी। अग्निहोत्री ब्राह्मणने उस गऊको खोजते हुए उसे दूसरे ब्राह्मणके निकट देखा। वह गऊ पहले जिसकी थी, उसने कहा, कि यह गऊ मेरी है। वे दोनों ही झगडते हुए क्रुद्ध होके मेरे समीप आये और दोनों मुझसे बोले, कि " आप ही दाता तथा आप ही हर्ता हैं।" (१०-१३)

मैंने एक सौ गऊके पलटेमें प्रतिग्रहीतासे पहलेकी दान की हुई गऊ मांगी, उसने मुझसे कहा, देशके अनुसार दूध देनेवाली, क्षमाशालिनी, अत्यन्त वत्सला, स्वादिष्ट दूध देनेमें धन्य गऊ प्रतिदिन मेरे स्थानमें दूध देती हुई स्तनहीन मेरे कृश पुत्रोंको प्रतिपालन करती है, इसलिये मैं उसे न दे सकूंगा।

गवां शतसहस्रं हि तत्कृते गृह्यतामिति ॥ १७ ॥
ब्राह्मण उवाच-न राज्ञां प्रतिगृह्णामि शक्तोऽहं स्वस्य मार्गणे ।
सैव गौर्दीयतां शीघ्रं ममेति मधुसूदन ॥ १८ ॥
रुक्ममश्वांश्च ददतो रजतस्यन्दनांस्तथा
न जग्राह ययौ चापि तदा स ब्राह्मणर्षभः ॥ १९ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु चोदितः कालधर्मणा ।
पितृलोकमहं प्राप्य धर्मराजमुपागमम् ॥ २० ॥
यमस्तु पूजयित्वा मां ततो वचनमब्रवीत् ।
नान्तः संख्यायते राजंस्तव पुण्यस्य कर्मणः ॥ २१ ॥
अस्ति चैव कृतं पापमज्ञानात्तदपि त्वया ।
चरस्व पापं पश्चाद्वा पूर्वं वा त्वं यथेच्छसि ॥ २२ ॥
रक्षितास्मीति चोक्तं ते प्रतिज्ञा चानृता तव ।
ब्राह्मणस्वस्य चादानं द्विविधस्ते व्यतिक्रमः ॥ २३ ॥
पूर्वं कृच्छ्रं चरिष्येऽहं पश्चाच्छुभमिति प्रभो ।
धर्मराजं ब्रुवन्नेवं पतितोऽस्मि महीतले ॥ २४ ॥
अश्रौषं पतितश्चाहं यमस्योच्चैः प्रभाषतः ।

ऐसा कहके वह चला गया, तब मैंने दूसरे ब्राह्मणको उस गऊके पलटेमें सहस्र गऊ लेनेको कहा। हे मधुसूदन! तब वह ब्राह्मण बोला, जब मैं स्वयं खोजनेमें समर्थ हूं, तब राजाओंका प्रतिग्रह न करूंगा, इसलिये मुझे वही गऊ दो। (१४—१८)

मैंने उसे घोडेयुक्त सोने चांदीसे खचित रथ देनेको अङ्गीकार किया; तौभी उसने उसे नहीं लिया, बल्कि वह ब्राह्मण क्रोधित होकर चला गया। इतने ही समयमें मैं कालसे प्रेरित होकर पितृलोकमें जाके धर्मराजके समीप उपस्थित हुआ। यमने मेरा सम्मान करके शेषमें यह कहा। हे महाराज! तुम्हारे पुण्यकर्मके शेषकी संख्या नहीं की जाती, परन्तु तुमने भूलसे एक पापकर्म किया है, आगे उस पापका फल भोगोगे, वा पीछे भोगोगे? जो इच्छा हो, वह कहो। "मैं रक्षा करनेवाला हूं" यह तुम्हारी प्रतिज्ञा ब्राह्मणकी गऊ खोई जानेसे मिथ्या हुई है और ब्राह्मणस्व ग्रहण करनेसे तुम्हें दो प्रकारका पाप हुआ है। (१९—२३)

हे प्रभु! मैंने धर्मराजसे कहा, कि

वासुदेवः समुद्धर्ता भविता ते जनार्दनः ॥ २५ ॥
पूर्णे वर्षसहस्रान्ते क्षीणे कर्मणि दुष्कृते ।
प्राप्स्यसे शाश्वतान् लोकान् जितान्स्वेनैव कर्मणा ॥२६॥
कूपेऽऽत्मानमधःशीर्षमपश्यं पतितश्च ह ।
तिर्यग्योनिमनुप्राप्तं न च मामजहात्स्मृतिः ॥ २७ ॥
त्वया तु तारितोऽस्म्यद्य किमन्यत्र तपोबलात् ।
अनुजानीहि मां कृष्ण गच्छेयं दिवमद्य वै ॥ २८ ॥
अनुज्ञातः स कृष्णेन नमस्कृत्य जनार्दनम् ।
दिव्यमास्थाय पन्थानं ययौ दिवमरिन्दमः ॥ २९ ॥
ततस्तस्मिन्दिवं याते नृगे भरतसत्तम ।
वासुदेव इमं श्लोकं जगाद कुरुनन्दन ॥ ३० ॥
ब्राह्मणस्वं न हर्तव्यं पुरुषेण विजानता ।
ब्राह्मणस्वं हृतं हन्ति नृगं ब्राह्मणगौरिव ॥ ३१ ॥
सतां समागमः सद्भिर्नाफलः पार्थ विद्यते ।
विमुक्तं नरकात्पश्य नृगं साधुसमागमात् ॥ ३२ ॥

मैं पहले पापका फल भोगके तब पुण्य का फल भोगूंगा। ऐसा कहते ही मैं पृथ्वीपर गिरा और गिरते हुए ऊंचे स्वरसे कहा हुआ धर्मराजका यह वचन सुना, कि जनार्दन कृष्ण तुम्हारा उद्धार करेंगे, सहस्र वर्ष पूरा होनेपर तुम्हारा पाप कर्म नष्ट होगा, तब तुम निज कर्मके सहारे विजित शाश्वत लोकोंको पाओगे। मैंने नीचे शिर करके अपनेको कूएंके बीच पडा हुआ देखा, तिर्यग्योनिको प्राप्त होनेपर भी स्मृतिने मुझे परित्याग नहीं किया। हे कृष्ण! आज तुम्हारे द्वारा मेरा उद्धार हुआ; तपोबलके अतिरिक्त दूसरेके सहारे ऐसी घटना नहीं हो सकती; इसलिये आज्ञा दो, अब मैं स्वर्गको जाऊं। (२४—२८)

हे प्रजुनाथन! अनन्तर राजा नृग गिरगिट रूपको त्यागके श्रीकृष्णसे बिदा हो, उन्हें प्रणाम कर, दिव्य विमानपर चढके सुरलोकको गये। हे भरतसत्तम कुरुनन्दन! अनन्तर राजा नृगके स्वर्गमें जानेपर श्रीकृष्णने यह वक्ष्यमाण वचन कहा, कि जानके ब्राह्मणस्व हरना योग्य नहीं है, जैसे ब्राह्मणकी गऊने राजा नृगको विनष्ट किया था, उसी भांति ब्राह्मणस्व सत्यको विनष्ट किया करता है। हे

प्रदानं फलवत्तत्र द्रोहस्तत्र तथाफलः ।
अपचारं गवां तस्माद्वर्जयेत युधिष्ठिर ॥ ३३ ॥ [३४४२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे नृगोपाख्याने सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७०॥

युधिष्ठिर उवाच-दत्तानां फलसम्प्राप्तिं गवां प्रब्रूहि मेऽनघ ।
विस्तरेण महाबाहो न हि तृप्यामि कथ्यताम् ॥ १ ॥

भीष्म उवाच-अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
ऋषेरुद्दालकेर्वाक्यं नाचिकेतस्य चोभयोः ॥ २ ॥
ऋषिरुद्दालकिर्दीक्षामुपगम्य ततः सुतम् ।
त्वं मामुपचरस्वेति नाचिकेतमभाषत ॥ ३ ॥
समाप्ते नियमे तस्मिन्महर्षिः पुत्रमब्रवीत् ।
उपस्पर्शनसक्तस्य स्वाध्यायाभिरतस्य च ॥ ४ ॥
इध्मा दर्भाः सुमनसः कलशश्चातिभोजनम् ।
विस्मृतं मे तदादाय नदीतीरादिहाव्रज ॥ ५ ॥
गत्वाऽनवाप्य तत्सर्वं नदीवेगसमाप्लुतम् ।
न पश्यामि तदित्येवं पितरं सोऽब्रवीन्मुनिः ॥ ६ ॥

पार्थ ! साधुओंका समागम कभी निष्फल नहीं होता; नृग राजा साधु-समागमसेही मुक्त हुआ यह देखो। साधुओंके विषय दान फलकारी और द्रोह निष्फल होता है। हे युधिष्ठिर ! गौवोंके विषयमें बुरा आचरण न करना। (२९-३३)

अनुशासनपर्वमें ७० अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें ७१ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे पापरहित महा-बाहो ! गोदान करनेवालोंकी फल-प्राप्तिको विस्तारपूर्वक कहिये, मैं जितना ही सुनता हूं, किसीसे भी तृप्त नहीं होता हूं, इसलिये इसे ही यथार्थ वर्णन करिये। (१)

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें उद्दालकि ऋषि और नाचिके-तके संवादयुक्त पुरातन इतिहास कहा करते हैं, बुद्धिमान् उद्दालकि ऋषिने दीक्षा स्वीकार करके निज पुत्र नाचिके-तके निकट जाके कहा, कि तुम मेरी टहल करो। उस नियमके समाप्त होनेपर महर्षिने पुत्रसे कहा, कि मैंने स्नान करके वेदपाठ करते हुए नदीके तीरपर समिध्, कुश, पुष्प, जलकलश और भोजनकी सामग्री भूल आया हूं,

क्षुत्पिपासाश्रमाविष्टो मुनिरुद्दालकिस्तदा ।
यमं पश्येति तं पुत्रमशपत्स महातपाः ॥ ७ ॥
तथा स पित्राऽभिहतो वाग्वज्रेण कृताञ्जलिः ।
प्रसीदेति ब्रुवन्नेव गतसत्त्वोऽपतद्भुवि ॥ ८ ॥
नाचिकेतं पिता दृष्ट्वा पतितं दुःखमूर्च्छितः ।
किं मया कृतमित्युक्त्वा निपपात महीतले ॥ ९ ॥
तस्य दुःखपरीतस्य स्वं पुत्रमनुशोचतः ।
व्यतीतं तदहःशेषं सा चोग्रा तत्र शर्वरी ॥ १० ॥
पित्र्येणाश्रुप्रपातेन नाचिकेतः कुरूद्वह ।
प्रास्पन्दच्छयने कौश्ये वृष्ट्या सस्यमिवाप्लुतम्॥११॥
स पर्यपृच्छत्तं पुत्रं क्षीणं पर्यागतं पुनः ।
दिव्यैर्गन्धैः समादिग्धं क्षीणस्वप्नमिवोत्थितम् ॥ १२॥
अपि पुत्र जिता लोकाः शुभास्ते स्वेन कर्मणा ।
दिष्ट्या चासि पुनः प्राप्तो न हि ते मानुषं वपुः॥१३॥
प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य पित्रा पृष्टो महात्मना ।

तुम जाके वह सब वस्तु इस स्थानपर लाओ। उसने जाके नदीके वेगसे विचलित उन वस्तुओंको न पानेपर पिताके निकट आके कहा, कि "मैंने नहीं देखा।" (२—६)

महातपस्वी उद्दालकि मुनि उस समय भूख प्याससे युक्त और थके हुए थे, इसलिये पुत्रको शाप दिया, कि 'यमका दर्शन करो।' पुत्र पिताके वाग्वज्रसे अभिहित होकर हाथ जोडके बोला, 'प्रसन्न होइये' ऐसा कहते चेतना-रहित होकर पृथ्वीपर गिर पडा। पिता नाचिकेतको पृथ्वीपर गिरा हुआ देखके दुःखसे मूर्च्छित होकर 'यह मैंने क्या किया!' ऐसा कहके स्वयं पृथ्वी-पर गिर पडे। उनके दुःखित होकर पुत्रके लिये शोक करते रहनेपर दिनका शेष भाग और भयङ्करी रात्रि व्यतीत हुई। (७-१०)

हे कुरूद्वह! सूखा हुआ शस्य जैसे वर्षासे फिर हरा होता है। वैसे ही नाचिकेत पिताके आंसू गिरनेपर कुश-शय्यासे उठे। पिताने उस क्षीणस्वप्नकी भांति उठे हुए दिव्य गन्धसे युक्त पुनर्वार आये हुए तनक्षीण पुत्रसे कहा। हे पुत्र! तुमने निजकर्मसे समस्त शुभ लोकोंको जय किया है, दैवबलसे मैंने तुम्हें फिर पाया; तुम्हारा मनुष्य शरीर

स तां वार्तां पितुर्मध्ये महर्षीणां न्यवेदयत् ॥ १४ ॥
कुर्वन् भवच्छासनमाशु यातो ह्यहं विशालां रुचिरप्रभावाम्।
वैवस्वतीं प्राप्य सभामपश्यं सहस्रशो योजन हेमभासम् ॥ १५ ॥
दृष्ट्वैव मामभिमुखमापतन्तं देहीति स ह्यासनमादिदेश।
वैवस्वतोऽर्घ्यादिभिरर्हणैश्च भवत्कृते पूजयामास मां सः ॥ १६ ॥
ततस्त्वहं तं शनकैरवोचं वृतः सदस्यैरभिपूज्यमानः।
प्राप्तोऽस्मि ते विषयं धर्मराज लोकानर्हो यानहं तान्विधत्स्व ॥ १७ ॥
यमोऽब्रवीन्मां न मृतोऽसि सौम्य यमं पश्येत्याह स त्वां तपस्वी।
पिता प्रदीप्ताग्निसमानतेजा न तच्छक्यमनृतं विप्र कर्तुम् ॥ १८ ॥
दृष्टस्तेऽहं प्रतिगच्छस्व तात शोचत्यसौ तव देहस्य कर्ता।
ददानि किं चापि मनःप्रणीतं प्रियातिथेस्तव कामान्वृणीष्व ॥ १९ ॥
तेनैवमुक्तस्तमहं प्रत्यवोचं प्राप्तोऽस्मि ते विषयं दुर्निवर्त्यम्।
इच्छाम्यहं पुण्यकृतां समृद्धाँल्लोकान्द्रष्टुं यदि तेऽहं वरार्हः ॥ २० ॥

नहीं है। सब विषयोंके प्रत्यक्षदर्शी उनका पुत्र पिताके पूछनेपर उन्हें अन्यान्य साधु महर्षियोंके बीच समस्त वृत्तान्त सुनाने लगा। (११—१४)

मैं आपका शासन प्रतिपालन करते हुए शीघ्र ही अत्यन्त विशाल रुचिर प्रभावयुक्त वैवस्वती सभामें गया; सहस्र योजन जाके उस सुवर्णकी भांति प्रभा-युक्त सभाको देखा। यमराजने मुझे सन्मुख पहुंचा हुआ देखके आसन देनेके लिये आज्ञा देकर आपके लिये पाद्य अर्घ्यसे मेरी पूजा की। अनन्तर मैंने सभासदोंसे घिरके तथा पूजित होकर मृदुस्वरसे कहा, हे धर्मराज! मैं आपके अधिकारमें आया हूं, इसलिये मैं जिन लोकोंके योग्य होऊं उनका विधान करिये। (१५—१७)

यम मुझसे बोले, हे प्रियदर्शन! तुम मेरे नहीं हो तुम्हारे उस जलती हुई अग्निके समान तेजस्वी पिताने तुम्हें केवल इतना ही कहा है, कि "यमका दर्शन करो" इसलिये उसे मैं मिथ्या न कर सकूंगा। हे तात! तुमने मुझे देखा, इसलिये अब लौट जाओ; यह तुम्हारा देहकर्ता पिता शोक करता है। मैं तुम्हें अभिलषित विषय दान करता हूं, तुम मेरे प्रिय अतिथि हो, इसलिये जो इच्छा हो, वह वर मांगो। धर्मराज का ऐसा वचन सुनके मैंने उनसे कहा, कि जिस स्थानमें आनेसे फिर कोई लौटके नहीं जासकता, मैं आपके उस ही अधिकारमें आया हूं, यदि आप

यानं समारोप्य तु मां स देवो वाहैर्युक्तं सुप्रभं भानुमत्तत्।
सन्दर्शयामास तदात्मलोकान्सर्वांस्तथा पुण्यकृतां द्विजेन्द्र ॥ २१ ॥
अपश्यं तत्र वेश्मानि तैजसानि महात्मनाम्।
नानासंस्थानरूपाणि सर्वरत्नमयानि च ॥ २२ ॥
चन्द्रमण्डलशुभ्राणि किङ्किणीजालवन्ति च।
अनेकशतभौमानि सान्तर्जलवनानि च ॥ २३ ॥
वैदूर्यार्कप्रकाशानि रूप्यरुक्ममयानि च।
तरुणादित्यवर्णानि स्थावराणि चराणि च ॥ २४ ॥
भक्ष्यभोज्यमयान्शैलान्वासांसि शयनानि च।
सर्वकामफलांश्चैव वृक्षान्भवनसंस्थितान् ॥ २५ ॥
नद्यो वीथ्यः सभा वाप्यो दीर्घिकाश्चैव सर्वशः।
घोषवन्ति च यानानि युक्तान्यथ सहस्रशः ॥ २६ ॥
क्षीरस्रवा वै सरितो गिरींश्च सर्पिस्तथा विमलं चापि तोयम्।
वैवस्वतस्यानुमतांश्च देशानदृष्टपूर्वान्सुबहूनपश्यम् ॥ २७ ॥
सर्वान्दृष्ट्वा तदहं धर्मराजमवोचं वै प्रभविष्णुं पुराणम्।
क्षीरस्यैताः सर्पिषश्चैव नद्यः शश्वत्स्रोताः कस्य भोज्याः प्रदिष्टाः ॥ २८ ॥

मुझे वरप्रदानके योग्य समझते हैं, तो मैं पुण्यात्मा पुरुषोंके समृद्ध लोकोंको देखनेकी इच्छा करता हूं। (१८-२०)

हे द्विजेन्द्र! अनन्तर उस देवने मुझे प्रकाशमान वाहनयुक्त, उत्तम प्रभावाले यान पर चढाके उस समय स्वकीय और पुण्यात्माओंके लोकोंको दिखाया। मैंने वहां महात्माओंके प्रकाशमय गृहोंको देखा, उन गृहोंकी बनावट अनेक प्रकारकी थी और वे सब रत्नमय चन्द्रमण्डलकी भांति सफेद थे; किङ्किणीजालसे युक्त ऊपर ऊपर विशिष्ट कई सौ प्रासादमय जल और वन उनके बीचमें स्थित थे, वह वैदूर्य तथा सूर्यकी भांति प्रकाशमान थे, रौप्य और स्वर्णमय, तरुण सूर्यकी भांति वर्णविशिष्ट स्थावर और गमनशील भक्ष्य, भोज्यमय पर्वत, वस्त्र, शय्या और सर्वकामफलप्रद उन गृहोंमें स्थित थे। नदी, वीथी, सभा, वापी, खांई, शब्दयुक्त सवारियें, सहस्रों मोती, दूध बहनेवाली नदियें, पर्वत, सर्पिपुञ्ज, निर्मलजल और वैवस्वतके बहुतेरे अदृष्टपूर्व स्थानोंको मैंने देखा। मैंने वह सब देखके पुराण प्रभु धर्मराजसे कहा, ये सब प्रवाही दूध

यमोऽब्रवीद्विद्धि भोज्यास्त्वमेता ये दातारः साधवो गोरसानाम् ।
अन्ये लोकाः शाश्वता वीतशोकैः समाकीर्णा गोप्रदाने रतानाम् ॥२९॥
न त्वेतासां दानमात्रं प्रशस्तं पात्रं कालो गोविशेषो विधिश्च ।
ज्ञात्वा देयं विप्र गवान्तरं हि दुःखं ज्ञातुं पावकादित्यभूतम् ॥ ३० ॥
स्वाध्यायवान् योऽतिमात्रं तपस्वी वैतानस्थो ब्राह्मणः पात्रमासाम् ।
कृच्छ्रोत्सृष्टाः पोषणाभ्यागताश्च द्वारैरेतैर्गोविशेषाः प्रशस्ताः ॥३१॥
तिस्रो रात्र्यस्त्वद्भिरुपोष्य भूमौ तृप्ता गावस्तर्पितेभ्यः प्रदेयाः ।
वत्सैः प्रीताः सुप्रजाः सोपचारास्त्र्यहं दत्त्वा गोरसैर्वर्तितव्यम् ॥३२॥
दत्त्वा धेनुं सुव्रतां कांस्यदोहां कल्याणवत्सामपलायिनीं च ।
यावन्ति रोमाणि भवन्ति तस्यास्तावद्वर्षाण्यश्नुते स्वर्गलोकम् ॥३३॥
तथाऽनड्वाहं ब्राह्मणेभ्यः प्रदाय दान्तं धुर्यं बलवन्तं युवानम् ।

और घृतकी नदियें किनकी भोज्यरूपी निर्दिष्ट हुई हैं ? (२१-२८)

यम बोले, ये जिनकी भोज्य हैं, वह तुम सुनो। जो साधु पुरुष गोरस दान करते हैं, ये उनके ही भोज्य हैं, जो लोग गऊ प्रदान करनेमें रत रहते हैं, उन सब शाश्वत, शोकरहित लोगोंसे दूसरे स्थान परिपूरित हैं। इन गौवोंका केवल दानही श्रेष्ठ नहीं है, वैसी गौवोंका पालन करना भी अत्यन्त श्रेष्ठ है, पात्र, काल, विधि और गऊ इन सबोंमें ही विशेष है। हे विप्र ! विशेष रीतिसे जानके गोरस दान करना योग्य है, क्यों कि अग्नि और सूर्य स्वरूप गऊका विशेष ज्ञान होना अत्यन्त दुःखकर है, जो ब्राह्मण निज शाखा-युक्त वेदपाठ किया करते हैं, जो अत्यन्त तपस्वी और यज्ञ करनेवाले हैं, वेही गोदानके पात्र होते हैं; कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि व्रत निबन्धन तथा पोषण करनेसे अभ्यागत गौवें विशेष कर इन समस्त व्रत आदिके कारण होनेसे प्रशंसनीय हुआ करती हैं। (२९-३१)

केवल जल पीके तथा भूमिपर सोकर त्रिरात्रव्रत करके प्रतिदिन एक एक गऊ दान करे और गोरसके द्वारा जीविका निबाहे, इस ही प्रकार व्रत करके तीन गऊ दान करना उचित है। जिन गौवोंको दान करे, वे बछडेके सहित अत्यन्त प्रसन्न और उत्तम सन्तति-वाली हों और उन्हें, अलंकृत करके दान करना चाहिये। कांसेकी दोहनीसे युक्त उत्तम स्वभाववाली कल्याणयुक्त सवत्सा और जो भागती न हों, वैसी गऊ दान करनेसे उसके शरीरमें जितने परिमाणसे रोएं रहते हैं, दाता उतने

कुलानुजीव्यं वीर्यवन्तं बृहन्तं भुङ्क्ते लोकान्सम्मितान्धेनुदस्य ॥३४॥
गोषु क्षान्तं गोशरण्यं कृतज्ञं वृत्तिग्लानं तादृशं पात्रमाहुः।
वृद्धे ग्लाने संभ्रमे वा महार्थे कृष्यर्थं वा होम्यहेतोः प्रसूत्याम् ॥ ३५ ॥
गुर्वर्थं वा बालपुष्ट्याभिषङ्गां गां वै दातुं देशकालोऽविशिष्टः।
अन्तर्ज्ञाताः सक्रयज्ञानलब्धाः प्राणक्रीता निर्जिता यौतकाश्च ॥ ३६ ॥
नाचिकेत उवाच-श्रुत्वा वैवस्वतवचस्तमहं पुनरब्रुवम्।
अभावे गोप्रदातॄणां कथं लोकान् हि गच्छति ॥ ३७ ॥
ततोऽब्रवीद्यमो धीमान गोप्रदानपरां गतिम्।
गोप्रदानानुकल्पं तु गामृते सन्ति गोप्रदाः ॥ ३८ ॥
अलाभे यो गवां दद्यात् घृतधेनुं यतव्रतः।
तस्यैता घृतवाहिन्यः क्षरन्ते वत्सला इव ॥ ३९ ॥
घृतालाभे तु यो दद्यात्तिलधेनुं यतव्रतः।

वर्षतक स्वर्गलोकमें सुख भोगता है। और ब्राह्मणको बोझा ढोनेवाला उत्तम बलवान, युवा, वीर्यवान, कुलानुजीवी वृषभ दान करनेसे दान करनेवाला गोदाताके समान लोकोंको भोग किया करता है। (३२-३४)

पण्डित लोग कहा करते हैं, कि जो लोग गौवोंके विषयमें क्षमा करते, गऊ ही जिनके लिये अवलम्ब हैं,वैसे कृतज्ञ, वृत्तिहीन ब्राह्मण गोदानके पात्र हैं। वृद्ध पुरुषोंके रोगयुक्त होनेपर उनके पथ्यके लिये, दुर्भिक्षके समय यज्ञके निमित्त, कृषि, होम और पुत्र जन्मनेपर गुरुके लिये तथा बालककी पुष्टिके निमित्त गऊ दान करनेसे देश और कालके अनुसार विशिष्ट दान होता है। जो गौवें दुग्धवती मालूम हों, जो मोल लेने वा ज्ञानसे प्राप्त हुई हों, जो प्राणव्यत्ययके द्वारा ली गई तथा निर्जित हों और विवाहके समयमें जो श्वशुर प्रभृतिके निकट यौतकमें प्राप्त होती हैं, उन गौवोंके दान करनेमें देश और कालके विशिष्टताकी आवश्यकता होती है। (३५—३६)

नाचिकेत बोले, मैंने वैवस्वतका वचन सुनके फिर उनसे कहा, गोदानके अभावमें लोग किस प्रकार गोदाताओं-के लोकमें जावेंगे? अनन्तर बुद्धिमान यम गोप्रदानकी परम गति कहने लगे। गोदानके विना गोप्रदानका अनुकल्प है, इसलिये अनुकल्प दान करनेसे भी गोदानका फल प्राप्त होता है। गऊके अभावमें जो लोग यतव्रती होकर घृत रूपी गऊ प्रदान करते हैं, उनके लिये

स दुर्गात्तारितो धेन्वा क्षीरनद्यां प्रमोदते ॥ ४० ॥
तिलालाभे तु यो दद्याज्जलधेनुं यतव्रतः ।
स कामप्रवहां शीतां नदीमेतामुपाश्नुते ॥ ४१ ॥
एवमेतानि मे तत्र धर्मराजो न्यदर्शयत् ।
दृष्ट्वा च परमं हर्षमवापमहमच्युत ॥ ४२ ॥
निवेदये चाहमिमं प्रियं ते क्रतुर्महानल्पधनप्रचारः ।
प्राप्तो मया तात स मत्प्रसूतः प्रपत्स्यते वेदविधिप्रवृत्तः ॥४३॥
शापो ह्ययं भवतोऽनुग्रहाय प्राप्तो मया तत्र दृष्टो यमो वै ।
दानव्युष्टिं तत्र दृष्ट्वा महात्मन्निःसंदिग्धान्दानधर्मांश्चरिष्ये ॥ ४४ ॥
इदं च मामब्रवीद्धर्मराजः पुनः पुनः संप्रहृष्टो महर्षे ।
दानेन यः प्रयतोऽभूत्सदैव विशेषतो गोप्रदानं च कुर्यात् ॥ ४५ ॥
शुद्धो ह्यर्थो नावमन्यस्व धर्मान्पात्रे देयं देशकालोपपन्ने ।
तस्माद्गावस्ते नित्यमेव प्रदेया मा भूच्च ते संशयः कश्चिदत्र ॥४६ ॥

ये घृतवाहिनी नदियें वत्सलाकी भांति बह रही हैं। घृतके अभावमें जो पुरुष यतव्रती होकर तिल और गऊ प्रदान करते हैं,वे गऊके द्वारा क्लेशोंसे छूटकर क्षीरनदीमें प्रमुदित होते हैं। (३७-४०)

जो मनुष्य यतव्रत होकर तिलके अभावमें जल--गऊ दान करता है, वह इस कामप्रवहा शीतल जलवाहिनी नदीमें सुख भोग किया करता है। धर्मराजने इस ही प्रकार वहां मुझे सब विषयोंको दिखाया। हे तात ! मैं वह सब देखके परम हर्षित हुआ, मैं आपके समीप यह प्रिय वृत्तान्त सुनाता हूं, गोदानरूपी यज्ञ अत्यन्त महान् है और इसमें थोडा ही धन लगता है। (४१-४३)

हे तात ! मुझे वही यज्ञलाभ हुआ है वह मेरे द्वारा प्रकट हुआ है, आप वेदविधिसे प्रवृत्त होकर उस यज्ञका फल पावेंगे। मेरे विषयमें आपका यह शाप अनुग्रहके निमित्त ही हुआ था, जिसके प्रभावसे मैंने धर्मराजका दर्शन किया। हे महात्मन् ! मैं वहांपर दानके फलको देखके शङ्कारहित होकर दान-धर्माचरण करूंगा। हे महर्षि ! धर्म-राजने अत्यन्त प्रसन्न होके यह भी मुझसे बार बार कहा है, कि जो लोग दान विषयमें सदा प्रयत्न करते हैं वे विशेष रीतिसे गोदान करें। शुद्ध अर्थ यही है, कि धर्मकी अवमानना मत करो, देश कालके अनुसार पात्रको दान देना उचित है, इसलिये तुम

एताः पुरा ह्यदद्न्नित्यमेव शान्तात्मानो दानपथे निविष्टाः।
तपांस्युग्राण्यप्रतिशङ्कमानास्ते वै दानं प्रददुश्चैव शक्त्या ॥ ४७ ॥
काले च शक्त्या मत्सरं वर्जयित्वा शुद्धात्मानः श्रद्धिनः पुण्यशीलाः।
दत्त्वा गा वै लोकममुं प्रपन्ना देदीप्यन्ते पुण्यशीलास्तु नाके ॥४८॥
एतद्दानं न्यायलब्धं द्विजेभ्यः पात्रे दत्तं प्रापणीयं परीक्ष्य।
काम्याष्टम्यां वर्तितव्यं दशाहं रसैर्गवां शकृता प्रस्नवैर्वा ॥ ४९ ॥
देवव्रती स्याद् वृषभप्रदानैर्वेदावाप्तिर्गोयुगस्य प्रदाने।
तीर्थावाप्तिर्गोप्रयुक्तप्रदाने पापोत्सर्गः कपिलायाः प्रदाने ॥ ५० ॥
गामप्येकां कपिलां संप्रदाय न्यायोपेतां कलुषाद्विप्रमुच्येत्।
गवां रसात्परमं नास्ति किंचिद्गवां प्रदानं सुमहद्वदन्ति ॥ ५१ ॥
गावो लोकांस्तारयन्ति क्षरन्त्यो गावश्चान्नं संजनयन्ति लोके।
यस्तं जानन्न गवां हार्दमेति स वै गन्ता निरयं पापचेताः ॥ ५२ ॥
यैस्तद्दत्तं गोसहस्रं शतं वा दशार्धं वा दश वा साधुवत्सम्।

कुछ संशय न करके सदा गोदान करो। (४३—४६)

पहले समयमें दानपथमें स्थित शान्तचित्तवाले मनुष्य सदा गोदान करते थे, वे लोग उग्र तपस्याविषयमें शङ्का करते हुए शक्तिके अनुसार दान करनेमें प्रवृत्त होते थे। यथासमय शक्तिके अनुसार मत्सरतारहित होके पवित्रचित्तवाले श्रद्धावान् पुण्यशील मनुष्य गोदान करनेसे परलोकमें जाके स्वर्गके बीच प्रकाशित होते हैं। गौवोंके आहार आदिकी परीक्षा करके न्यायसे प्राप्त हुई गौवें ब्राह्मणोंको दान करो और काम्याष्टमीमें दशाहके समय गोमय, गोमूत्र तथा गोरसके सहारे जीवन बिताओ। वृषभ दान करनेसे पुरुष देवव्रती होता है, युवा गऊ दान करनेसे वेद प्राप्त होते हैं, गोयुक्त रथ तथा शकट आदि दान करनेसे तीर्थका लाभ हुआ करता है और कपिला गऊ देनेसे पाप नष्ट होता है। (४७-५०)

न्यायसे प्राप्त हुई एक ही कपिला गऊ दान करनेसे मनुष्य पापोंसे मुक्त हुआ करता है। गोरससे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है, इस ही लिये पण्डित लोग गोदानको अत्यन्त महत् कहा करते हैं। गौवें दूध देती हुई लोगोंका उद्धार करती हैं, इस लोकमें गौवें ही अन्न उत्पन्न करती हैं, जो इसे जानके गौवोंके भक्ष्य जल वा तृण उन्हें नहीं देता, वह पापी मनुष्य नरकमें पडता है। जो लोग बछडे सहित सहस्र गऊ

अप्येका वै साधवे ब्राह्मणाय साऽस्यामुष्मिन्पुण्यतीर्था नदी वै ॥५३॥
प्राप्त्या पुष्ट्या लोकसंरक्षणेन गावस्तुल्याः सूर्यपादैः पृथिव्याम्।
शब्दश्चैकः संततिश्चोपभोगास्तस्माद्गोदः सूर्य इवावभाति ॥ ५४ ॥
गुरुं शिष्यो वरयेद्गोप्रदाने स वै गन्ता नियतं स्वर्गमेव।
विधिज्ञानां सुमहान्धर्म एष विधिं ह्याद्यं विधयः संविशन्ति ॥५५॥
इदं दानं न्यायलब्धं द्विजेभ्यः पात्रे दत्त्वा प्रापयेथाः परीक्ष्य।
त्वय्याशंसन्त्यमरा मानवाश्च वयं चापि प्रसृते पुण्यशीले ॥५६॥
इत्युक्तोऽहं धर्मराजं द्विजर्षे धर्मात्मानं शिरसाऽभिप्रणम्य।
अनुज्ञातस्तेन वैवस्वतेन प्रत्यागमं भगवत्पादमूलम् ॥ ५७ ॥ [३४९९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे यमवाक्यं नाम एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

युधिष्ठिर उवाच- उक्तं ते गोप्रदानं वै नाचिकेतमृषिं प्रति।
माहात्म्यमपि चैवोक्तमुद्देशेन गवां प्रभो ॥ १ ॥

दान करते अथवा सौ, दश, पांच तथा एक गऊ साधु ब्राह्मणको देते हैं, तो वही दान की हुई गऊ परलोकमें दाताके पक्षमें पुण्यतीर्थवाली नदी स्वरूप हुआ करती है। (५१—५३)

प्राप्ति, पुष्टि और लोगोंकी रक्षाके हेतु इस पृथिवीमें गौवें सूर्यकिरणसदृश हैं, गोशब्दसे सूर्यकिरण और गऊ, इन दोनोंका ही बोध हुआ करता है। सन्तति और उपभोग प्राप्त होते हैं इस लिये गोदान करनेवाला सूर्यकी भांति विराजता है, शिष्य गुरुके समीप गो-दान विषयमें वर मांगे, तो वह अवश्य ही स्वर्गगामी होगा। जो लोग गुरुकी आराधना करना जानते हैं, उनके लिये यह उत्तम महान् धर्म है, योगज्ञान प्रभृति सब विधि गुरुसेवा स्वरूप आद्य-विधिके बीच प्रविष्ट होती हैं। न्यायसे प्राप्त हुआ गोधन द्विजातियोंको दान करके परीक्षाके लिये केवल पालने दो तुम प्रसिद्ध पुण्यशील हो, इसलिये देवता, मनुष्य तथा हम सब कोई तुम्हारी आशा किया करते हैं। हे द्विजर्षि! धर्मराजने जब मुझसे इतनी कथा कही, तब मैंने सिर झुकाके उन्हें प्रणाम किया और उनकी आज्ञासे लौटके आपके चरणमूलमें आगया हूं। (५४—५७)

अनुशासनपर्वमें ७१ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ७२ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे महाप्राज्ञ पितामह! नाचिकेत ऋषिका प्रमाण देके आपने

नृगेण च महद्दुःखमनुभूतं महात्मना।
एकापराधादज्ञानात्पितामह महामते ॥ २ ॥
द्वारवत्यां यथा चासौ निविशन्त्यां समुद्धृतः।
मोक्षहेतुरभूत्कृष्णस्तदप्यवधृतं मया ॥ ३ ॥
किं त्वस्ति मम संदेहो गवां लोकं प्रति प्रभो।
तत्त्वतः श्रोतुमिच्छामि गोदा यत्र वसन्त्युत ॥ ४ ॥
भीष्म उवाच– अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
यथाऽपृच्छत्पद्मयोनिमेतदेव शतक्रतुः ॥ ५ ॥
शक्र उवाच– स्वर्लोकवासिनां लक्ष्मीमभिभूय स्वयाऽर्चिषा।
गोलोकवासिनः पश्ये व्रजतः संशयोऽत्र मे ॥ ६ ॥
कीदृशा भगवँल्लोका गवां तद् ब्रूहि मेऽनघ।
यानावसन्ति दातार एतदिच्छामि वेदितुम् ॥ ७ ॥
कीदृशाः किंफलाः किंस्वित्परमस्तत्र को गुणः।
कथं च पुरुषास्तत्र गच्छन्ति विगतज्वराः ॥ ८ ॥
कियत्कालं प्रदानस्य दाता च फलमश्नुते।

जो गोदानका फल और माहात्म्य कहा, तथा महात्मा राजा नृगने विना जाने केवल एक ही अपराधसे महत् दुःख पाया था, उसे भी वर्णन किया। द्वारकापुरी बननेपर जिस प्रकार उनका उद्धार हुआ, तथा कृष्ण जिस प्रकार उनके मोक्षके हेतु हुए थे, वह भी मैंने निश्चय किया; परन्तु गोदान करनेसे जिन लोगोंकी प्राप्ति होती है, उस विषयमें मुझे सन्देह है। हे प्रभु! इसलिये गोदान करनेवाले मनुष्य जिन लोकोंमें निवास करते हैं, उस वृत्तान्तको यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं। (१–४)

भीष्म बोले, इन्द्रने यही विषय ब्रह्मासे पूछा था, प्राचीन लोग ऐसे स्थलमें उसही पुरातन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। (५)

इन्द्र बोले, गोलोकवासियोंको स्वकर्मके सहारे स्वर्गवासियोंकी लक्ष्मी अभिभव करके गमन करते हुए देखके इस विषयमें मुझे सन्देह हुआ है। हे पापरहित भगवन्! कहिये गोलोक किस प्रकार है? किस स्थानमें दाता पुरुष निवास करते हैं, उसे जाननेकी अभिलाष करता हूं। गोलोक कैसा है, उसका फल क्या है और वहांपर उत्तम गुण कौनसा है? मनुष्य किस प्रकार

कथं बहुविधं दानं स्यादल्पमपि वा कथम् ॥ ९ ॥
बह्वीनां कीदृशं दानमल्पानां वापि कीदृशम् ।
अदत्त्वा गोप्रदाः सन्ति केन वा तच्च शंस मे ॥ १० ॥
कथं वा बहुदाता स्यादल्पदात्रा समः प्रभो ।
अल्पप्रदाता बहुदः कथं स्वित्स्यादिहेश्वर ॥ ११ ॥
कीदृशी दक्षिणा चैव गोप्रदाने विशिष्यते ।
एतत्तथ्येन भगवन्मम शंसितुमर्हसि ॥ १२ ॥ [३५११]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे गोप्रदानिके द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

पितामह उवाच- योऽयं प्रश्नस्त्वया पृष्टो गोप्रदानादिकारितः ।
नास्ति प्रष्टाऽस्ति लोकेऽस्मिंस्त्वत्तोऽन्यो हि शतक्रतो ॥ १ ॥
सन्ति नानाविधा लोका यांस्त्वं शक्र न पश्यसि ।
पश्यामि यानहं लोकानेकपत्न्यश्च याः स्त्रियः ॥ २ ॥
कर्मभिश्चापि सुशुभैः सुव्रता ऋषयस्तथा ।
सशरीरा हि तान्यान्ति ब्राह्मणाः शुभबुद्धयः ॥ ३ ॥
शरीरन्यासमोक्षेण मनसा निर्मलेन च ।

क्लेशरहित होके वहां जाते हैं; दाता कितने समयके अनन्तर दानका फल भोगता है ? किस भांति थोडे अथवा अनेक प्रकारके दान होते हैं; बहुतसी गौवोंके दानका कैसा फल है ? थोडे दानका फल किस प्रकारका है ? तथा विना गोदानके भी किस लिये पुरुष गोदाता हुआ करते हैं ? उसे भी मेरे समीप वर्णन करिये। हे प्रभु ! बहुतसा दान करनेवाले किस प्रकार अल्पदाताके समान होते हैं और थोडा दान करनेवाले किस भांति बहुप्रद हुआ करते हैं ? हे भगवन् ! इन सब विषयोंको मेरे समीप यथार्थ रीतिसे आपही वर्णन करनेके योग्य हैं। (९-१२)

अनुशासनपर्वमें ७२ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ७३ अध्याय।

ब्रह्मा बोले, हे देवराज ! तुमने जो गोदान विषयमें प्रश्न किया है, लोकके बीच तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कोई भी इस विषयमें जिज्ञासु नहीं है। हे शक्र! अनेक प्रकारके ऐसे लोक हैं, जो कि तुम्हारे नेत्र-गोचर नहीं हुए, केवल मैं ही उन लोकोंको देखता हूं, वहांपर पतिव्रता स्त्रियें, उत्तम व्रत करनेवाले ऋषि और शुभ बुद्धियुक्त ब्राह्मण लोग

स्वप्नभूतांश्च तांल्लोकान्पश्यन्तीहापि सुव्रताः ॥ ४ ॥
ते तु लोकाः सहस्राक्ष शृणु यादृग्गुणान्विताः ।
न तत्र क्रमते कालो न जरा न च पावकः ॥ ५ ॥
तथा नास्त्यशुभं किंचिन्न व्याधिस्तत्र न क्लमः ।
यद्यच्च गावो मनसा तस्मिन्वाञ्छन्ति वासव ॥ ६ ॥
तत्सर्वं प्राप्नुवन्ति स्म मम प्रत्यक्षदर्शनात् ।
कामगाः कामचारिण्यः कामात्कामांश्च भुञ्जते ॥ ७ ॥
वाप्यः सरांसि सरितो विविधानि वनानि च ।
गृहाणि पर्वताश्चैव यावद् द्रव्यं च किंचन ॥ ८ ॥
मनोज्ञं सर्वभूतेभ्यः सर्वं तत्र प्रदृश्यते ।
ईदृशाद्विपुलाल्लोकान्नास्ति लोकस्तथाविधः ॥ ९ ॥
तत्र सर्वसहाः क्षान्ता वत्सला गुरुवर्तिनः ।
अहंकारैर्विरहिता यान्ति शक्र नरोत्तमाः ॥ १० ॥
यः सर्वमांसानि न भक्षयीत पुमान्सदा भावितो धर्मयुक्तः ।
मातापित्रोरर्चिता सत्ययुक्तः शुश्रूषिता ब्राह्मणानामनिन्द्यः ॥ ११ ॥

अत्यन्त शुभ कर्मके सहारे निज शरीरसे गमन किया करते हैं। इस लोकमें उत्तम व्रत करनेवाले पुरुष शरीरन्यासरूपी मोक्ष और निर्मलचित्तके सहारे उन स्वप्नभूत लोकोंको देखते हैं। (१-४)

हे सहस्राक्ष! वे सब लोक जैसे गुणयुक्त हैं, उसे सुनो। वहां काल किसीको भी आक्रमण नहीं करता। जरा तथा अग्नि किसी पुरुषको आक्रमण करनेमें समर्थ नहीं होती, वहां किसी भांतिके पाप, व्याधि और क्लेश नहीं हैं। हे वासव! यह मैंने प्रत्यक्ष देखा है कि गोसमूह उस स्थानमें मनहीमन जो कुछ अभिलाष करें, वह उन्हें मिलता है। वे कामगामिनी और कामचारिणी होकर इच्छानुसार काम्य विषयोंको भोग करती हैं, बावली, तालाव, नदी, विविध वन, गृह, पर्वत तथा जो कुछ वस्तु हैं, सब प्राणियोंके समस्त मनोहर विषय वहां दिखाई देते हैं, ऐसे विपुल लोकसे उत्तम तथा वैसा लोक दूसरा नहीं है। (५-९)

हे शक्र! वहां सबके विषयमें क्षमाशील, गुरुके वशवर्त्ती और अहङ्काररहित उत्तम पुरुष गमन किया करते हैं। जो पुरुष सदा धर्म और सत्यमें रत रहके माता और पिताकी पूजा तथा सेवा

अक्रोधनो गोषु तथा द्विजेषु धर्मे रतो गुरुशुश्रूषकश्च।
यावज्जीवं सत्यवृत्ते रतश्च दाने रतो यः क्षमी चापराधे ॥ १२ ॥
मृदुर्दान्तो देवपरायणश्च सर्वातिथिश्चापि तथा दयावान्।
ईदृग्गुणो मानवस्तं प्रयाति लोकं गवां शाश्वतं चाव्ययं च ॥ १३ ॥
न पारदारी पश्यति लोकमेतं न वै गुरुघ्नो न मृषा संप्रलापी।
सदा प्रवादी ब्राह्मणेष्वात्तवैरो दोषैरेतैर्यश्च युक्तो दुरात्मा ॥ १४ ॥
न मित्रध्रुङ् नैकृतिकः कृतघ्नः शठोऽनृजुर्धर्मविद्वेषकश्च।
न ब्रह्महा मनसाऽपि प्रपश्येद्गवां लोकं पुण्यकृतां निवासम् ॥ १५ ॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं निपुणेन सुरेश्वर।
गोप्रदानरतानां तु फलं शृणु शतक्रतो ॥ १६ ॥
दायाद्यलब्धैरर्थैर्यो गाः क्रीत्वा संप्रयच्छति।
धर्मार्जितान्धनैः क्रीतान्स लोकानाप्नुतेऽक्षयान् ॥ १७ ॥
यो वै द्यूते धनं जित्वा गाः क्रीत्वा संप्रयच्छति।
स दिव्यमयुतं शक्र वर्षाणां फलमश्नुते ॥ १८ ॥

करता है और किसी प्रकारका मांस भक्षण नहीं करता, वह ब्राह्मणोंके समीप निन्दनीय नहीं होता। जो गऊ और ब्राह्मणोंपर क्रोध नहीं करते तथा जो लोग धर्ममें रत, शुश्रुषायुक्त, जन्मसे ही सत्य आचार और दान करनेमें रत, अपराधमें क्षमावान, कोमलतायुक्त, दान्त, वेद जाननेवाले सर्वातिथि और दयावान हैं, ऐसे गुणोंसे युक्त मनुष्य उस शाश्वत अक्षय गोलोकमें गमन करते हैं। (१०-१३)

पराई स्त्रीमें रत रहनेवाले पुरुष इस गोलोकको देखनेमें भी समर्थ नहीं होते, गुरुद्रोही, मिथ्याप्रलापी सदा विदेशमें रहनेवाले और ब्राह्मणोंसे वैर करनेवाले जो दुष्टात्मा पुरुष इन दोषोंसे युक्त हैं, वे गोलोकमें नहीं जा सकते। मित्रद्रोही, वञ्चक, कृतघ्न, शठ, कोमलतारहित, धर्मद्वेषी और ब्रह्मघाती पुरुष पुण्यात्माओंके निवासस्थान गोलोकको मनसे भी देखनेमें समर्थ नहीं होते। हे सुरेश्वर! यह मैंने तुमसे निपुणभावसे गोलोकका सब विषय कहा। हे शतक्रतु! अब गोदानमें रत मनुष्योंके फल सुनो। (१४-१६)

जो पुरुष निज भागके धनसे गऊ मोल लेके दान करते हैं और जो लोग धर्मोपार्जित धनसे गऊ मोल लेके देते हैं, उन्हें अक्षय लोक प्राप्त होते हैं। हे शक्र! जो लोग द्यूतक्रीडामें धन

दायाद्याद्याः स्म वै गावो न्यायपूर्वैरुपार्जिताः।
प्रदद्यात्ताः प्रदातॄणां संभवन्त्यपि च ध्रुवाः ॥ १९ ॥
प्रतिगृह्य तु यो दद्याद्गाः संशुद्धेन चेतसा।
तस्यापीहाक्षयाँल्लोकान्ध्रुवान्विद्धि शचीपते ॥ २० ॥
जन्मप्रभृति सत्यं च यो ब्रूयान्नियतेन्द्रियः।
गुरुद्विजसहः क्षान्तस्तस्य गोभिः समा गतिः ॥ २१ ॥
न जातु ब्राह्मणो वाच्यो यदवाच्यं शचीपते।
मनसा गोषु न द्रुह्येद्गोवृत्तिर्गोऽनुकम्पकः ॥ २२ ॥
सत्ये धर्मे च निरतस्तस्य शक्र फलं शृणु।
गोसहस्रेण समिता तस्य धेनुर्भवत्युत ॥ २३ ॥
क्षत्रियस्य गुणैरेतैरपि तुल्यफलं शृणु।
तस्यापि द्विजतुल्या गौर्भवतीति विनिश्चयः ॥ २४ ॥
वैश्यस्यैते यदि गुणास्तस्य पञ्चशतं भवेत्।
शूद्रस्यापि विनीतस्य चतुर्भागफलं स्मृतम् ॥ २५ ॥
एतच्चैनं योऽनुतिष्ठेत युक्तः सत्ये रतो गुरुशुश्रूषया च।

जीतनेपर गऊ मोल लेके दान करते हैं, वे दश हजार वर्षतक दिव्य फल भोग किया करते हैं अथवा मागसे प्राप्त हुई गौको दान करनेसे अक्षय लोक मिलता है। हे शचीपति! जो शुद्धचित्तवाले पुरुष गोप्रतिग्रह करके दान करते हैं, वे भी अक्षय लोकोंको इस लोकमें अवश्य प्राप्त होना समझते हैं। (१७-२०)

जो नियतेन्द्रिय और क्षमावान् होकर जन्मसे ही सत्य वचन कहते हैं गुरु और ब्राह्मणोंके अपराधको सहनेवाले उन पुरुषोंको गौवोंके सहित समान गति प्राप्त होती है। हे शचीनाथ! ब्राह्मणोंको निन्दाके अकथनीय भाषण कदापि कहना उचित नहीं है। जो लोग गोवृत्ति तथा गौवोंके विषयमें दयावान होंगे, वे मनसे भी कभी गोद्रोह न करेंगे। हे शक्र! जो पुरुष सत्य धर्ममें रत रहता है उसका फल सुनो। सत्य धर्मानुयायी मनुष्यकी एक ही गऊ सहस्र गऊके तुल्य होती है, क्षत्रियोंके भी इन गुणोंके द्वारा समान फल सुनो। यह विशेष रीतिसे निश्चित है, कि उनकी गऊ ब्राह्मणकी गऊके तुल्य होती है। (२१—२४)

वैश्यमें यदि ये सब गुण रहें, तो उसकी एक गऊ पांचसौ गऊके सदृश है। विनययुक्त शूद्रके लिये चौगुना

दक्षः क्षान्तो देवतार्थी प्रशान्तः शुचिर्बुद्धो धर्मशीलोऽनहंवाक् ॥२६॥
महत्फलं प्राप्यते स द्विजाय दत्त्वा दोग्ध्रीं विधिनाऽनेन धेनुम्।
नित्यं दद्यादेकभक्तः सदा च सत्ये स्थितो गुरुशुश्रूषिता च ॥२७॥
वेदाध्यायी गोषु यो भक्तिमांश्च नित्यं दत्त्वा योऽभिनन्देत गाश्च।
आजातितो यश्च गवां नमेत इदं फलं शक्र निबोध तस्य ॥ २८ ॥
यत्स्यादिष्ट्वा राजसूये फलं तु यत्स्यादिष्ट्वा बहुना काञ्चनेन।
एतत्तुल्यं फलमप्याहुरग्र्यं सर्वे सन्तस्त्वृषयो ये च सिद्धाः ॥२९॥
योऽग्रं भक्तं किंचिदप्राश्य दद्याद्गोभ्यो नित्यं गोव्रती सत्यवादी।
शान्तो लुब्धो गोसहस्रस्य पुण्यं संवत्सरेणाप्नुयात्सत्यशीलः ॥३०॥
यदेकभक्तमश्नीयाद्दद्यादेकं गवां च यत्।
दश वर्षाण्यनन्तानि गोव्रती गोऽनुकम्पकः ॥ ३१ ॥
एकेनैव च भक्तेन यः क्रीत्वा गां प्रयच्छति।
यावन्ति तस्या रोमाणि संभवन्ति शतक्रतो ॥ ३२ ॥

फल कहा गया है। सत्य और गुरु-सेवामें रत, दक्ष, क्षान्त, देवताओंके लिये प्रशान्त, पवित्र, शुद्ध, धर्मशील और अनहङ्कार होकर जो मनुष्य इस विषयका अनुष्ठान करता है, वह महत् फल पाता है; इस विधिके अनुसार दूध देनेवाली गऊ दान करनेसे महा फल हुआ करता है; इसलिये एकभक्त, सत्यमें रत और गुरुसेवामें नियुक्त रहके गोदान करे। हे शक्र! जो वेद-पाठी सदा गौवोंके विषयमें भक्ति करते और जो लोग गौवोंका दर्शन करके उन्हें अभिनन्दित करते हैं, जन्म प्रभृति गौवोंको नमस्कार करते हैं, उनका फल सुनो। राजसूय यज्ञ करनेसे जो फल मिलता है, बहुतसा सुवर्ण दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, समस्त साधु पुरुष तथा ऋषिलोग उनके लिये इन दोनोंके सदृश फल कहा करते हैं। (२५—२९)

जो लोग गोव्रती और सत्यवादी होके भोजनकी वस्तुओंका अग्रभाग भोजन न करके सदा गौवोंको देते हैं, वे लोभरहित शान्त पुरुष वर्षभरमें सहस्र गोदानका फल पाते हैं। जो एकबार भोजन करते, जो लोग एक गऊ दान करते, जो गोव्रती हैं तथा गौवोंके विषयमें कृपा करते हैं, वे दश वर्षतक अनन्त सुख भोग किया करते हैं (३०—३१)

हे देवराज! जो लोग एकबार भोजन करके धनसंग्रह करते और

तावत्प्रदानात्स गवां फलमाप्नोति शाश्वतम् ।
ब्राह्मणस्य फलं हीदं क्षत्रियस्य तु वै शृणु ॥ ३३ ॥
पञ्चवार्षिकमेवं तु क्षत्रियस्य फलं स्मृतम् ।
ततोऽर्धेन तु वैश्यस्य शूद्रो वैश्यार्धतः स्मृतः ॥ ३४ ॥
यश्चाऽऽत्मविक्रयं कृत्वा गाः क्रीत्वा संप्रयच्छति ।
यावत्संदर्शयेद्गां वै स तावत्फलमश्नुते ॥ ३५ ॥
रोम्णि रोम्णि महाभाग लोकाश्चास्याऽक्षयाः स्मृताः ।
संग्रामेष्वर्जयित्वा तु यो वै गाः संप्रयच्छति ।
आत्मविक्रयतुल्यास्ताः शाश्वता विद्धि कौशिक ॥ ३६ ॥
अभावे यो गवां दद्यात्तिलधेनुं यतव्रतः ।
दुर्गात्स तारितो धेन्वा क्षीरनद्यां प्रमोदते ॥ ३७ ॥
न त्वेवासां दानमात्रं प्रशस्तं पात्रं कालो गोविशेषो विधिश्च ।
कालज्ञानं विप्रगवान्तरं हि दुःखं ज्ञातुं पावकादित्यभूतम् ॥ ३८ ॥
स्वाध्यायाढ्यं शुद्धयोनिं प्रशान्तं वैतानस्थं पापभीरुं बहुज्ञम् ।
गोषु क्षान्तं नातितीक्ष्णं शरण्यं वृत्तिग्लानं तादृशं पात्रमाहुः ॥३९॥

उससे गऊ मोल लेके दान करते हैं, गऊके शरीरमें जितने रोम हैं, उन्हें उतने परिमाणसे नित्य-फल प्राप्त होता है। ब्राह्मणको गोदानविषयक येही सब फल मिलते हैं। अब क्षत्रियोंका फल सुनो; क्षत्रियके लिये गोदान निबन्धनसे पांच वर्षतक अनन्त सुख भोग कहा गया है, वैश्यके क्षत्रियोंसे आधा और शूद्रको वैश्योंका अर्द्ध भाग फल प्राप्त हुआ करता है, जो लोग आत्मविक्रयसे गऊ मोल लेके दान करते हैं, जबतक ब्रह्माण्डमें गौवें दीख पडती हैं, उतने समय तक वे गोलोकमें निवास किया करते हैं। (३१—३५)

हे महाभाग ! जो लोग संग्राम जीतनेपर प्राप्त हुई गऊ दान करते हैं, गऊके प्रतिरोमके परिमाणसे उनके लोक अक्षय होते हैं; हे कौशिक ! यह जान रखो, कि उन्हें आत्मविक्रयके तुल्य शाश्वत फल प्राप्त होता है। गऊके अभावमें जो लोग यतव्रती होकर तिल-गऊ प्रदान करते हैं, वे गऊके सहारे सब क्लेशोंसे मुक्त होकर क्षीरनदीमें प्रमुदित होते हैं। गौवोंका दानमात्रही श्रेष्ठ नहीं है; पात्र, काल, गोविशेष, विधि, कालज्ञान, अग्नि और सूर्यस्वरूप विप्र तथा गौवोंके अन्तरको मालूम करना दुःसाध्य है। स्वाध्याययुक्त,

वृत्तिग्लाने सीदति चातिमात्रं कृष्यर्थे वा होम्यहेतोः प्रसूतेः ।
गुर्वर्थं वा बालसंवृद्धये वा धेनुं दद्याद्देशकाले विशिष्टे ॥ ४० ॥
अन्तर्ज्ञाताः सक्रयज्ञानलब्धाः प्राणैः क्रीतास्तेजसा यौतकाश्च ।
कृच्छ्रोत्सृष्टाः पोषणाभ्यागताश्च द्वारैरेतैर्गोविशेषाः प्रशस्ताः ॥ ४१ ॥
बलान्विताः शीलवयोपपन्नाः सर्वाः प्रशंसन्ति सुगन्धवत्यः ।
यथा हि गङ्गा सरितां वरिष्ठा तथार्जुनीनां कपिला वरिष्ठा ॥ ४२ ॥
तिस्रो रात्रीस्त्वद्भिरुपोष्य भूमौ तृप्ता गावस्तर्पितेभ्यः प्रदेयाः ।
वत्सैः पुष्टैः क्षीरपैः सुप्रचारास्त्र्यहं दत्त्वा गोरसैर्वर्तितव्यम् ॥ ४३ ॥
दत्त्वा धेनुं सुव्रतां साधुदोहां कल्याणवत्सामपलायिनीं च ।
यावन्ति रोमाणि भवन्ति तस्यास्तावन्ति वर्षाणि भवन्त्यमुत्र ॥४४॥
तथाऽनड्वाहं ब्राह्मणाय प्रदाय धुर्यं युवानं बलिनं विनीतम् ।
हलस्य वोढारमनन्तवीर्यं प्राप्नोति लोकान्दशधेनुदस्य ॥ ४५ ॥

शुद्धयोनि, प्रशान्त, वैतानस्थ, पापभीरु, बहुज्ञ, गौवोंके विषयमें क्षमावान्, अत्यन्त कठोरतारहित, शरण्य और वृत्तिग्लान पुरुषोंको पण्डित लोग गोदानके पात्र कहा करते हैं। (३६-३९)

वृत्तिहीन, अवसन्न, कृषिकार्य, होमके लिये, पुत्र उत्पन्न होनेपर तथा गुरु और बालककी वृद्धिके लिये देशकालके अनुसार गऊ दान करे। हे शक्र! जिन गौवोंके अन्तरमें दूध उत्पन्न हुआ हो, जो ज्ञानके सहारे प्राप्त हुई हो, प्राण देके ली गई हों, तेजसे उपार्जित तथा दहेजमें मिली हों, कृच्छ्रसाध्य चान्द्रायण आदि व्रतोंमें जो सब गौवें प्राप्त हों, जो पोषणके निमित्त आई हों, वे सब विशेष विशेष गऊ इन्हीं कारणोंसे श्रेष्ठ हुआ करती हैं। जो गौवें बलिष्ठ शील- बलसे युक्त और सुगन्धवती होती हैं, उनकी सब कोई प्रशंसा करते हैं, जैसे नदियोंमें गङ्गा श्रेष्ठ है, वैसे ही गौवोंके बीच कपिला गऊ श्रेष्ठ है। (४०-४२)

तीन रात्रि केवल जल पीके ही प्राण धारण करके पृथ्वीपर सोनेवाले तृप्तियुक्त ब्राह्मणको अन्न आदिके सहारे परितृप्त गऊ दान करना योग्य है, दूध पीनेवाले पुष्ट बछडोंके सहित उत्तम गऊ दान करके तिरात गोरसके सहारे वृत्ति निर्वाह करनी उचित है। सहजमें दूध देनेवाली, कल्याणदायक, बछडे युक्त, न भागनेवाली उत्तम गऊ दान करनेसे उसके शरीरमें जितने रोएं रहती हैं, उतने वर्षपर्यन्त दाता परलोकमें सुख भोग करता है। इस ही भांति ब्राह्मणको बोझा ढोनेवाले युवा बलवान विनी-

कान्तारे ब्राह्मणान्गाश्च यः परित्राति कौशिक।
क्षणेन विप्रमुच्येत तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ४६ ॥
अश्वमेधक्रतोस्तुल्यं फलं भवति शाश्वतम्।
मृत्युकाले सहस्राक्ष यां वृत्तिमनुकाङ्क्षते ॥ ४७ ॥
लोकान्बहुविधान्दिव्यान्यच्चास्य हृदि वर्तते।
तत्सर्वं समवाप्नोति कर्मणैतेन मानवः ॥ ४८ ॥
गोभिश्च समनुज्ञातः सर्वत्र च महीयते।
यस्त्वेतेनैव कल्पेन गां वनेष्वनुगच्छति ॥ ४९ ॥
तृणगोमयपर्णाशी निःस्पृहो नियतः शुचिः।
अकामं तेन वस्तव्यं मुदितेन शतक्रतो ॥ ५० ॥
मम लोके सुरैः सार्धं लोके यत्रापि चेच्छति ॥ ५१ ॥ [३५६२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पितामहेन्द्रसंवादे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

इन्द्र उवाच– जानन्यो गामपहरेद्विक्रीयाच्चाऽर्थकारणात्।
एतद्विज्ञातुमिच्छामि क्व नु तस्य गतिर्भवेत ॥ १ ॥
पितामह उवाच–भक्षार्थं विक्रयार्थं वा येऽपहारं हि कुर्वते।

त हल खींचनेवाले अनन्त वीर्यवान बैल दान करनेसे दाताको दश गौवोंके दाताके तुल्य लोक प्राप्त होते हैं। (४३–४५)

हे देवराज! दुर्गम मार्गमें ब्राह्मण और गऊका परित्राण करनेसे गऊ तथा ब्राह्मण कल्याणके सहित विमुक्त होते हैं, इसलिये जो लोग उन्हें ऐसे मार्गसे उबारते हैं, उनका फल सुनो। जो लोग सस्त्रीक ब्राह्मण और गोकुलका परित्राण करते हैं, वे अश्वमेध यज्ञके तुल्य नित्य फल पाते हैं। हे सहस्राक्ष! वे लोग मृत्यु कालमें जिस वृत्तिको अभिलाष करते हैं और उनके हृदयमें जो सब लोक वर्त्तमान रहते हैं, वे इस ही धर्मके सहारे उन सब लोकोंको पाते हैं और गौवोंके बीच भली भांति संमानित होकर सब ठौर निवास करनेमें समर्थ होते हैं। हे देवराज! जो लोग इस उद्देश्यसे गौवोंका अनुगमन करते तथा तृणगोमयपर्णाशी होके निस्पृह और सदा पवित्र रहते हैं, वे निष्काम तथा आनन्दित होके मेरे लोकमें देवताओंके सहित अथवा जिस लोकमें उनकी इच्छा हो वहां निवास करें। (४६—५१)

अनुशासनपर्वमें ७३ अध्याय समाप्त।

दानार्थं ब्राह्मणार्थाय तत्रेदं श्रूयतां फलम् ॥ २ ॥
विक्रयार्थं हि यो हिंस्याद्भक्षयेद्वा निरङ्कुशः ।
घातयानं हि पुरुषं येऽनुमन्येयुरर्थिनः ॥ ३ ॥
घातकः खादको वापि तथा यश्चानुमन्यते ।
यावन्ति तस्या रोमाणि तावद्वर्षाणि मज्जति ॥ ४ ॥
ये दोषा यादृशाश्चैव द्विज यज्ञोपघातके ।
विक्रये चापहारे च ते दोषा वै स्मृताः प्रभो ॥ ५ ॥
अपहृत्य तु यो गां वै ब्राह्मणाय प्रयच्छति ।
यावद्दानफलं तस्यास्तावन्निरयमृच्छति ॥ ६ ॥
सुवर्णं दक्षिणामाहुर्गोप्रदाने महाद्युते ।
सुवर्णं परमित्युक्तं दक्षिणार्थमसंशयम् ॥ ७ ॥
गोप्रदानात्तारयते सप्त पूर्वांस्तथाऽपरान् ।
सुवर्णं दक्षिणां कृत्वा तावद् द्विगुणमुच्यते ॥ ८ ॥
सुवर्णं परमं दानं सुवर्णं दक्षिणा परा ।

अनुशासनपर्वमें ७४ अध्याय ।

इन्द्र बोले जो पुरुष जानके गऊ हरता अथवा धनके निमित्त बेचता है, उसकी कैसी गति होती है ? मैं इसे यथार्थ रीतिसे जाननेकी इच्छा करता हूं । (१)

ब्रह्मा बोले, खाने अथवा बेचनेके लिये जो लोग गऊ हरते और ब्राह्मण को दान करने के लिये जो पुरुष गऊ मोल लेते हैं, उस विषयके फल सुनो । जो पुरुष निठुर होके बेचनेके लिये गऊको मारता वा भक्षण करता है, तथा जो अर्थी होकर घातक पुरुषों को अनुमति देता है, गऊके शरीरमें जितने रोम रहते हैं, उतने वर्ष पर्यन्त मारनेवाले, खानेवाले और अनुमति देनेवाले नरकमें डूबते हैं । हे प्रभु ! ब्राह्मणके यज्ञको नष्ट करनेसे जैसा दोष होता है, गऊ बेचने और हरनेसे भी उतना ही दोष हुआ करता है । (२—५)

जो पुरुष गऊ हरके ब्राह्मणको दान करता है, गोदानका जितना फल है, उतने समयतक वह दाता नरकमें गमन करता है, हे महाद्युति ! पण्डित लोग गोदानके समय सुवर्णको दक्षिणा कहा करते हैं, दक्षिणाके निमित्त निःसन्देह सुवर्ण ही श्रेष्ठ है । मनुष्य गोदान करनेसे सात ऊपरके और सात नीचेके पुरुषोंका उद्धार करता है, सुवर्णकी

सुवर्णं पावनं शक्र पावनानां परं स्मृतम् ॥ ९ ॥
कुलानां पावनं प्राहुर्जातरूपं शतक्रतो।
एषा मे दक्षिणा प्रोक्ता समासेन महाद्युते ॥ १० ॥
भीष्म उवाच—एतत्पितामहेनोक्तमिन्द्राय भरतर्षभ।
इन्द्रो दशरथायाऽऽह रामायाह पिता तथा ॥ ११ ॥
राघवोऽपि प्रियभ्रात्रे लक्ष्मणाय यशस्विने।
ऋषिभ्यो लक्ष्मणेनोक्तमरण्ये वसता प्रभो ॥ १२ ॥
पारम्पर्यागतं चेदमृषयः संशितव्रताः।
दुर्धरं धारयामासू राजानश्चैव धार्मिकाः ॥ १३ ॥
उपाध्यायेन गदितं मम चेदं युधिष्ठिर।
य इदं ब्राह्मणो नित्यं वदेद्ब्राह्मणसंसदि ॥ १४ ॥
यज्ञेषु गोप्रदानेषु द्वयोरपि समागमे।
तस्य लोकाः किलाऽक्षय्या दैवतैः सह नित्यदा॥ १५॥
इति ब्रह्मा स भगवानुवाच परमेश्वरः ॥ १६ ॥ [३५७८]

इति श्रीमहाभारते० अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ७४

दक्षिणा देनेसे उनका दुगुना फल कहा गया है, सुवर्ण ही परम दान और परम दक्षिणा है। हे शक्र! सुवर्ण ही समस्त पवित्र वस्तुओंके बीच पावन कहके वर्णित हुआ है। हे देवराज! सुवर्णको पण्डितोंने समस्त कुलके लिये पावन कहा है। हे महाद्युति! यह मैंने संक्षेपमें दक्षिणाकी कथा कही है। (९—१०)

भीष्म बोले, हे भरतश्रेष्ठ! पितामहने यह विषय देवराजसे कहा था, इन्द्रने दशरथसे, दशरथने रामसे, रामने अपने प्रिय भाई यशस्वी लक्ष्मणसे कहा और लक्ष्मणने वनवासके समयमें यह विषय ऋषियोंके समीप वर्णन किया था। संशितव्रती और धार्मिक राजाओंने इस ही परम्पराक्रमसे आते हुए इस दुर्धर विषयको धारण किया था। हे युधिष्ठिर! इस विषयको मेरे उपाध्यायने मेरे निकट वर्णन किया था। जो ब्राह्मण इसे सदा ब्राह्मणोंकी सभामें कहता है, गोदान, यज्ञ अथवा दोनोंके समागममें उसके समस्त लोक सदा देवताओंके सहित अक्षय होते हैं, उस सर्व शक्तिमान भगवान परमेश्वर ब्रह्माने यह कथा कही थी। (११–१६)

अनुशासनपर्वमें ७४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर उवाच-विस्रम्भितोऽहं भवता धर्मान्प्रवदता विभो।
प्रवक्ष्यामि तु सन्देहं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥
व्रतानां किं फलं प्रोक्तं कीदृशं वा महाद्युते।
नियमानां फलं किं च स्वधीतस्य च किं फलम् ॥ २ ॥
दत्तस्येह फलं किं च वेदानां धारणे च किम्।
अध्यापने फलं किं च सर्वमिच्छामि वेदितुम् ॥ ३ ॥
अप्रतिग्राहके किं च फलं लोके पितामह।
तस्य किं च फलं दृष्टं श्रुतं यस्तु प्रयच्छति ॥ ४ ॥
स्वकर्मनिरतानां च शूराणां चापि किं फलम्।
शौचे च किं फलं प्रोक्तं ब्रह्मचर्ये च किं फलम् ॥ ५ ॥
पितृशुश्रूषणे किं च मातृशुश्रूषणे तथा।
आचार्यगुरुशुश्रूषास्वनुक्रोशानुकम्पने ॥ ६ ॥
एतत्सर्वमशेषेण पितामह यथातथम्।
वेत्तुमिच्छामि धर्मज्ञ परं कौतूहलं हि मे ॥ ७ ॥

अनुशासनपर्वमें ७५ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे प्रभु पितामह! आपके सब धर्म वर्णन करनेसे मैं विश्वस्त हुआ, सब मैं कुछ सन्देहके विषय पूछता हूं, आप मुझे उसका उत्तर दीजिये। हे महातेजस्वी! व्रतोंका कैसा फल कहा गहा है और वे कैसे हैं? नियमोंका क्या फल है? उत्तम रीतिसे अध्ययन करनेका कैसा फल होता है? इन्द्रियनिग्रहरूपी दमका क्या फल है; वेदोंको धारण करनसे क्या फल होता है? पढानेसे कैसा फल हुआ करता है, यह सब जाननेकी इच्छा करता हूं। (१-३)

हे पितामह! जगत्में प्रतिग्रह न करनेसे क्या फल होता है? जो पुरुष दान करता है, उसके दानका कुछ भी फल देखा तथा सुना गया है, वा नहीं? निजकार्यमें रत रहनेवाले शूर पुरुषोंको क्या फल प्राप्त होता है? शौचाचारका क्या फल कहा गया है? ब्रह्मचर्यका क्या फल है? पिता माताकी सेवा करनेका क्या फल होता है? आचार्य और गुरुकी सेवा करनेका कैसा फल है? अनुक्रोश अर्थात् दूसरेके दुःखसे दुःखी होना और अनुकम्पा अर्थात् दूसरेके दुःखको दूर करनेका क्या फल है? हे पितामह! इन विषयोंको यथार्थ रीतिसे जाननेकी अभिलाषा करता हूं, इसमें मुझे अत्यन्त ही कौतू-

भीष्म उवाच— यो व्रतं वै यथोद्दिष्टं तथा संप्रतिपद्यते।
अखण्डं सम्यगारभ्य तस्य लोकाः सनातनाः ॥ ८ ॥
नियमानां फलं राजन्प्रत्यक्षमिह दृश्यते।
नियमानां क्रतूनां च त्वयाऽवाप्तमिदं फलम् ॥ ९ ॥
स्वधीतस्यापि च फलं दृश्यतेऽमुत्र चेह च।
इह लोकेऽथवा नित्यं ब्रह्मलोके च मोदते ॥ १० ॥
दमस्य तु फलं राजञ्छृणु त्वं विस्तरेण मे।
दान्ताः सर्वत्र सुखिनो दान्ताः सर्वत्र निर्वृताः ॥११॥
यत्रेच्छागामिनो दान्ताः सर्वशत्रुनिषूदनाः।
प्रार्थयन्ति च यद्दान्ता लभन्ते तन्न संशयः ॥ १२ ॥
युज्यन्ते सर्वकामैर्हि दान्ताः सर्वत्र पाण्डव।
स्वर्गे यथा प्रमोदन्ते तपसा विक्रमेण च ॥ १३ ॥
दानैर्यज्ञैश्च विविधैस्तथा दान्ताः क्षमान्विताः।
दानाद्दमो विशिष्टो हि ददत्किंचिद् द्विजातये॥ १४॥
दाता कुप्यति नो दान्तस्तस्माद्दानात्परं दमः।

हल हुआ है। (४—७)

भीष्म बोले, जो लोग एकभक्त आदि यथा विहित व्रतको भली भांति आरम्भ करके पूर्ण रीतिसे समाप्त करते हैं, उन्हें सनातन लोक मिलता है। हे राजन्! इस लोकमें यज्ञोंका और नियमोंका फल प्रत्यक्ष ही दिखाई देता और आपको मिला है। भली भांति पढनेका फल इस लोक और परलोकमें दीखता है। पढानेवाले मनुष्य इस लोकमें नियत सुख भोगके ब्रह्मलोकमें प्रमुदित होते हैं। हे महाराज! तुम मेरे समीप विस्तारपूर्वक दमका फल सुनो! दमयुक्त पुरुष सर्वत्र सुख भोगते हैं और सब स्थानोंमें ही निर्वृत हुआ करते हैं। उनकी जिस स्थानमें इच्छा हो, वहां जा सकते हैं और समस्त शत्रुओंको नष्ट करते हैं, दान्त पुरुष जिस वस्तुके निमित्त प्रार्थना करते हैं, उसे निःसन्देह पाते हैं। (८—१२)

हे पाण्डव! दमयुक्त पुरुष सर्व-कामसम्पन्न हुआ करते हैं। जैसे पुरुष तपस्या और पराक्रमके सहारे स्वर्गमें प्रमोद करते हैं, वैसेही क्षमावान्, दम-युक्त मनुष्य विविध दान और यज्ञके सहारे आनन्दित हुआ करते हैं। दान-से दम श्रेष्ठ है; द्विजातियोंको जो दान

यस्तु दद्यादकुप्यन्हि तस्य लोकाः सनातनाः ॥ १५ ॥
क्रोधो हन्ति हि यद्दानं तस्माद्दानात्परं दमः ।
अदृश्यानि महाराज स्थानान्ययुतशो दिवि ॥ १६ ॥
ऋषीणां सर्वलोकेषु यानीतो यान्ति देवताः ।
दमेन यानि नृपते गच्छन्ति परमर्षयः ॥ १७ ॥
कामयाना महत्स्थानं तस्माद्दानात्परं दमः ।
अध्यापकः परिक्लेशादक्षयं फलमश्नुते ॥ १८ ॥
विधिवत्पावकं हुत्वा ब्रह्मलोके नराधिप ।
अधीत्यापि हि यो वेदान्न्यायविद्भ्यः प्रयच्छति ॥ १९ ॥
गुरुकर्मप्रशंसी तु सोऽपि स्वर्गे महीयते ।
क्षत्रियोऽध्ययने युक्तो यजने दानकर्मणि ।
युद्धे यश्च परित्राता सोऽपि स्वर्गे महीयते ॥ २० ॥
वैश्यः स्वकर्मनिरतः प्रदानाल्लभते महत् ।
शूद्रः स्वकर्मनिरतः स्वर्गं शुश्रूषयाऽर्च्छति ॥ २१ ॥

करता है, वह दाता कदाचित कुपित हो सकता है, परन्तु दमयुक्त पुरुष कभी क्रुद्ध नहीं होते, इसलिये दानसे दम ही श्रेष्ठ है। जो लोग क्रुद्ध न होके दान करते हैं, उन्हें सनातन लोक मिलता है, जब कि क्रोध दानको विनष्ट करता है, तब दानसे दम ही श्रेष्ठ है। (१३—१६)

हे महाराज ! सुरपुरमें ऋषियोंके दश हजार अदृश्य स्थान हैं, जिन स्थानोंमें देववृन्द इस लोकसे गमन किया करते हैं, वेही सब लोकोंके बीच उत्तम हैं। हे महाराज ! कामगामी परमर्षिवृन्द दमके सहारे जहां प्रस्थान करते हैं, वही महत् स्थान है,इसलिये दानसे दम ही श्रेष्ठ है। अध्यापक लोग अध्यापन कार्यसे अत्यन्त क्लेश सहनेके कारण अक्षय फल उपभोग करते हैं। हे नरनाथ ! विधिपूर्वक अग्निमें आहुति देकर मनुष्य ब्रह्मलोकमें गमन किया करता है। जो लोग वेदको पढके न्यायपूर्वक लोगोंको पढाते हैं, वे उस ही गुरुकर्मके सहारे स्वर्ग लोकमें पूजित होते हैं। जो क्षत्रिय अध्ययन, यजन और दान कार्यमें नियुक्त रहके युद्धमें परित्राता बनता है, वह भी स्वर्गमें पूजित हुआ करता है। (१६-२०)

निज कर्ममें रत वैश्य दानसे महत्त्व पाता है और निज कर्ममें रत रहनेवाला

शूरा बहुविधाः प्रोक्तास्तेषामर्थांस्तु मे शृणु ।
शूरान्वयानां निर्दिष्टं फलं शूरस्य चैव हि ॥ २२ ॥
यज्ञशूरा दमे शूराः सत्यशूरास्तथाऽपरे ।
युद्धशूरास्तथैवोक्ता दानशूराश्च मानवाः ॥ २३ ॥
सांख्यशूराश्च बहवो योगशूरास्तथाऽपरे ।
अरण्ये गृहवासे च त्यागे शूरास्तथा परे ॥ २४ ॥
आर्जवे च तथा शूराः शमे वर्तन्ति मानवाः ।
तैस्तैश्च नियमैः शूरा बहवः सन्ति चाऽपरे ।
वेदाध्ययनशूराश्च शूराश्चाऽध्यापने रताः ॥ २५ ॥
गुरुशुश्रूषया शूराः पितृशुश्रूषयाऽपरे ।
मातृशुश्रूषया शूरा भैक्ष्यशूरास्तथाऽपरे ॥ २६ ॥
अरण्ये गृहवासे च शूराश्चाऽतिथिपूजने ।
सर्वे यान्ति परान् लोकान्स्वकर्मफलनिर्जितान् ॥ २७ ॥
धारणं सर्ववेदानां सर्वतीर्थाऽवगाहनम् ।
सत्यं च ब्रुवतो नित्यं समं वा स्यान्न वा समम् ॥ २८ ॥
अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ।

शूद्र भी सेवाके सहारे स्वर्गमें जाता है। अनेक प्रकारके शूर कहे जाते हैं; मेरे समीप उनका विषय सुनो। शूरवंशीय शूरोंका फल निर्दिष्ट है, यज्ञशूर, दम-शूर, सत्यशूर, युद्धशूर, दानशूर, ज्ञान-शूर, और योगशूर प्रभृति अनेक प्रकारके मनुष्य शूर कहे गये हैं, इसके अतिरिक्त वनवास, गृहवास और त्याग विषयमें बहुतेरे शूर हुआ करते हैं। कोई कोई बुद्धिशूर, कोई क्षमाशूर, और कोई सरलता विषयमें शूर हैं, कोई मनुष्य समता विषयमें शूर रूपसे वर्त्तमान है, पहले कहे हुए नियमके द्वारा दूसरे अनेक प्रकारके शूर हुआ करते हैं। कोई वेद पढनेमें शूर है, कोई विद्यामें रत रहनेसे शूर है, कोई गुरुसेवा, मातृसेवा और पितृसेवा विष-यमें शूर हैं, कोई मनुष्य भिक्षा विषयमें शूर हैं। (२१-२६)

वनवास, गृह-वास और अतिथि-पूजनमें कोई कोई मनुष्य शूर हुआ करते हैं, ये सभी पुरुष निजकर्म फलसे अर्जित लोकोंमें गमन करते हैं। वेदोंका पाठ करनेवाले तथा तीर्थोंमें स्नान करनेवाले सदा सत्यवादीके समान होते अथवा नहीं हो सकते। सहस्र

अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥ २९ ॥
सत्येन सूर्यस्तपति सत्येनाऽग्निः प्रदीप्यते ।
सत्येन मरुतो वान्ति सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥ ३० ॥
सत्येन देवाः प्रीयन्ते पितरो ब्राह्मणास्तथा ।
सत्यमाहुः परो धर्मस्तस्मात्सत्यं न लङ्घयेत् ॥ ३१ ॥
मुनयः सत्यनिरता मुनयः सत्यविक्रमाः ।
मुनयः सत्यशपथास्तस्मात्सत्यं विशिष्यते ॥ ३२ ॥
सत्यवन्तः स्वर्गलोके मोदन्ते भरतर्षभ ।
दमः सत्यफलाऽवाप्तिरुक्ता सर्वात्मना मया ॥ ३३ ॥
असंशयं विनीतात्मा स वै स्वर्गे महीयते ।
ब्रह्मचर्यस्य च गुणं शृणु त्वं वसुधाधिप ॥ ३४ ॥
आजन्ममरणाद्यस्तु ब्रह्मचारी भवेदिह ।
न तस्य किंचिदप्राप्यमिति विद्धि नराधिप ॥ ३५ ॥
बह्व्यः कोट्यस्त्वृषीणां तु ब्रह्मलोके वसन्त्युत ।
सत्ये रतानां सततं दान्तानामूर्ध्वरेतसाम् ॥ ३६ ॥
ब्रह्मचर्यं दहेद्राजन् सर्वपापान्युपासितम् ।

अश्वमेध यज्ञ और अकेला सत्य तराजू पर तौला गया था, परन्तु सहस्र अश्वमेधसे अकेला सत्य ही विशिष्ट हुआ। सत्यसे ही सूर्य तपता है, सत्यहीसे अग्नि जलती है, सत्यसे ही वायु बहती है, इसलिये सत्यसे ही सब प्रतिष्ठित है। सत्यसे देवता प्रसन्न होते और सत्यसे ही पितर तथा ब्राह्मणवृन्द प्रसन्न हुआ करते हैं। सत्यको ही ऋषिलोग परम धर्म कहते हैं, इसलिये सत्यको न मानना उचित नहीं है। मुनिवृन्द सत्यमें ही रत हैं, मुनियोंका सत्य ही विक्रम है, मुनियोंकी शपथ सत्य है, इसलिये सत्य ही सबसे विशिष्ट होता है। (२७—३२)

हे भरतश्रेष्ठ! सत्यवादी मनुष्य स्वर्गलोकमें आनन्दित हुआ करते हैं। दम ही सत्यफलकी प्राप्ति स्वरूप है, इसे पहले ही मैंने सब प्रकारसे कहा है, विनययुक्त मनुष्य निःसन्देह स्वर्गलोकमें पूजित होते हैं। हे पृथ्वीनाथ! अब ब्रह्मचर्यके गुण सुनो, जो पुरुष इस लोकमें जन्मसे मरण पर्यन्त ब्रह्मचारी होता है, उसे कुछ भी अप्राप्त न जानना। ऋषियोंके बीच ब्रह्मचारी पुरुष कई करोड वर्षतक ब्रह्मलोकमें

ब्राह्मणेन विशेषेण ब्राह्मणो ह्यऽग्निरुच्यते ॥ ३७ ॥
प्रत्यक्षं हि तथा ह्येतद्ब्राह्मणेषु तपस्विषु ।
बिभेति हि यथा शक्रो ब्रह्मचारिप्रधर्षितः ॥ ३८ ॥
तद्ब्रह्मचर्यस्य फलमृषीणामिह दृश्यते ।
मातापित्रोः पूजने यो धर्मस्तमपि मे शृणु ॥ ३९ ॥
शुश्रूषते यः पितरं न चासूयेत्कदाचन ।
मातरं भ्रातरं वाऽपि गुरुमाचार्यमेव च ॥ ४० ॥
तस्य राजन्फलं विद्धि स्वर्लोके स्थानमर्चितम् ।
न च पश्येत नरकं गुरुशुश्रूषयाऽऽत्मवान् ॥ ४१ ॥ [३६१९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

युधिष्ठिर उवाच- विधिं गवां परं श्रोतुमिच्छामि नृप तत्त्वतः ।
येन तान् शाश्वताँल्लोकानर्थिनां प्राप्नुयादिह ॥ १ ॥
भीष्म उवाच- न गोदानात्परं किंचिद्विद्यते वसुधाधिप ।
गौर्हि न्यायागता दत्ता सद्यस्तारयते कुलम् ॥ २ ॥

निवास करते हैं। हे महाराज! सदा सत्यमें रत, दान्त, ऊर्ध्वरेता विशेष करके ब्रह्मचर्यव्रतनिष्ठ ब्राह्मणके सब पापोंको जला देता है, क्यों कि ब्राह्मण अग्निरूपी कहे गये हैं, ब्राह्मणोंको तपस्वी होनेपर यह प्रत्यक्ष दीख पडता है, कि जिसके प्रभावसे ब्रह्मचारीसे धर्षित होनेपर इन्द्र डरते हैं, ऋषियोंके उस ब्रह्मचर्यका फल इस लोकमें दिखाई देता है। माता पिताकी पूजा करनेसे जो धर्म होता है, वह मुझसे सुनो। हे महाराज! जो लोग पिताकी सेवा करते हैं और कभी उनके विषयमें असूया नहीं करते, तथा माता, भ्राता, गुरु और आचार्यके विषयमें पितृवत् व्यवहार करते हैं, स्वर्गलोकमें उन्हें पूजित स्थान मिलता है, इसे ही फल जानो। आत्मवान् पुरुष गुरुसेवाके सहारे कदापि नरक नहीं देखता। (३२—४१)

अनुशासनपर्वमें ७५ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ७६ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! जिसके द्वारा शाश्वत लोकोंकी प्राप्ति हो सकती है, आपके समीप उस गोदानकी विधिको यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं। (१)

भीष्म बोले, हे पृथ्वीनाथ! गोदान

सतामर्थे सम्यगुत्पादितो यः स वै क्लृप्तः सम्यगाभ्यः प्रजाभ्यः ।
तस्मात्पूर्वं ह्यादिकालप्रवृत्तं गोदानार्थं शृणु राजन्विधिं मे ॥ ३ ॥
पुरा गोषूपनीतासु गोषु संदिग्धदर्शिना ।
मान्धात्रा प्रकृतं प्रश्नं बृहस्पतिरभाषत ॥ ४ ॥
द्विजातिमतिसत्कृत्य श्वःकालमभिवेद्य च ।
गोदानार्थे प्रयुञ्जीत रोहिणीं नियतव्रतः ॥ ५ ॥
आह्वानं च प्रयुञ्जीत समङ्गे बहुलेति च ।
प्रविश्य च गवां मध्यमिमां श्रुतिमुदाहरेत् ॥ ६ ॥
गौर्मे माता वृषभः पिता मे दिवं शर्म जगती मे प्रतिष्ठा ।
प्रपद्यैवं शर्वरीमुष्य गोषु पुनर्वाणीमुत्सृजेद्गोप्रदाने ॥ ७ ॥
स तामेकां निशां गोभिः समसख्यः समव्रतः ।
ऐकात्म्यगमनात्सद्यः कलुषाद्विप्रमुच्यते ॥ ८ ॥
उत्सृष्टवृषवत्सा हि प्रदेया सूर्यदर्शने ।

से श्रेष्ठ दूसरे कोई भी विषय विद्यमान नहीं हैं, क्यों कि न्यायसे प्राप्त हुई गऊ दान करनेसे दाता शीघ्र ही अपने कुलका उद्धार करता है । हे महाराज ! जो विधि साधुओंके निमित्त पूरी रीतिसे प्रकट है, इन प्रजाओंके लिये भी वही ज्योंकी त्यों रचित है; इसलिये पहले समयसे प्रसिद्ध उस गोदानकी विधिको मेरे समीप सुनो । (२-३)

पहले समयमें गौवोंके उपस्थित होनेपर उनके विषयमें मान्धाताके शङ्कायुक्त होके प्रश्न करनेपर बृहस्पतिने उत्तर दिया था । अपनी आकस्मिक मृत्यु उपस्थित हुई जानके नियतव्रती मनुष्य ब्राह्मण का सत्कार करके लाल रङ्गवाली गऊ दान करे । गौवोंको "समङ्गे बहुले" इन नामोंके द्वारा आह्वान करे और गौवोंके बीच प्रवेश करके इस वक्ष्यमाण श्रुतिका पाठ करना होगा । "गऊ हमारी माता और वृषभ पिता,मुझे स्वर्ग तथा ऐहिक सुख प्रदान करें; गौवोंसे हमारी प्रतिष्ठा हो," ऐसा मन्त्र उच्चारण करके गोसमूहमें प्रवेश करे और मौनावलम्बन करके वहां एक रात्रि वास करे, गो-दानके समय फिर वचन कहे, यही गोदान का पूर्वाङ्ग व्रत है । (४-७)

साधुओंके बीच जो पुरुष एक रात्रि गौवोंके सहित समसख्य और समव्रती अर्थात् पृथ्वीपर सोके दंश मशकादिके अनिवारण प्रभृति गुणोंसे युक्त हुआ करते हैं, वे गौवोंके सहित ऐकात्म्य

त्रिदिवं प्रतिपत्तव्यमर्थवादाशिषस्तव ॥ ९ ॥
ऊर्जस्विन्य ऊर्जमेधाश्च यज्ञे गर्भोऽमृतस्य जगतोऽस्य प्रतिष्ठा।
क्षितेरोहः प्रवहः शश्वदेव प्राजापत्याः सर्वमित्यर्थवादाः ॥ १० ॥
गावो ममैनः प्रणुदन्तु सौर्यास्तथा सौम्याः स्वर्गयानाय सन्तु।
आत्मानं मे मातृवच्चाश्रयं तु तथाऽनुक्ताः सन्तु सर्वाशिषो मे ॥११॥
शेषोत्सर्गे कर्मभिर्देहमोक्षे सरस्वत्यः श्रेयसे संप्रवृत्ताः।
यूयं नित्यं सर्वपुण्योपवाह्यां दिशध्वं मे गतिमिष्टां प्रसन्नाः ॥१२॥
या वै यूयं सोऽहमद्यैव भावो युष्मान्दत्त्वा चाहमात्मप्रदाता।
मनश्च्युता मन एवोपपन्नाः संधुक्षध्वं सौम्यरूपोग्ररूपाः ॥ १३ ॥
एवं तस्याग्रे पूर्वमर्धं वदेत गवां दाता विधिवत्पूर्वदृष्टः।
प्रतिब्रूयाच्छेषमर्धं द्विजातिः प्रतिगृह्णन्वै गोप्रदाने विधिज्ञः ॥ १४ ॥

गमन निबन्धनसे ही समस्त पापोंसे छूट जाते हैं। सूर्योदयके समय बछडे युक्त गऊ दान करनेसे तुम स्वर्गलोक पाओगे और तुम्हें अर्थवादरूपी आशीर्वाद प्राप्त होंगे। गौवें उर्जस्विनी अर्थात् उत्साह बलविधायिनी, प्रज्ञावर्द्धिनी, यज्ञकर्ममें अमृत अर्थात् यज्ञसाधन हविकी गर्भभूत, इस जगतकी प्रतिष्ठास्वरूप और सदा पृथ्वीका प्रवाहरूप प्राजापत्य, ये सब अर्थवाद गौवोंमें प्रतिष्ठित हैं। (८—१०)

गौवें मेरा पाप दूर करें, सूर्य और सोमदैवत गौवें मेरे स्वर्ग गमनमें कारण होवें, मेरे चित्तमें माताके समान अवलम्ब हों, दोनों मन्त्रोंमें कहा हुआ तथा अनुक्त आशीर्वाद मेरे निमित्त सफल होवे। रोग-उपतापके दूर करने और देहमोक्षके समय पंचगव्यादि सेवन करनेपर गौवें सरस्वती नदीकी भांति कल्याणके हेतु हुआ करती हैं। हे गोवृन्द! तुम लोग सदा पुण्य ढोया करती हो; इसलिये तुम प्रसन्न होके मुझे अभिलषित गति प्रदान करो। (११—१२)

इस समय जो तुम हो, मैं वही हूं, आज हम लोगोंकी एकता होती है, मैं तुम्हें दान करके आत्मप्रदाता बनता हूं, तुम लोग दाताके ममत्व अभिमानसे रहित होके मेरे ममताकी आस्पद हुई हो, तुम लोग सौम्य और उग्ररूपसे युक्त होकर दाताको अभीष्ट भोगके सहारे प्रकाशित करो। विधिपूर्वक गोदान करनेवाला ग्रहीताके अगाडी पहले कहे हुए श्लोकका अर्द्धभाग पढे और प्रतिग्रहीता द्विजाति गोदान लेने के समय पहले कहे हुए श्लोकका शेष

गोप्रदानीति वक्तव्यमर्घ्यवस्त्रवसुप्रदः ।
उर्ध्वास्या भवितव्या च वैष्णवीति च चोदयेत्॥१५॥
नाम संकीर्तयेत्तस्या यथासङ्ख्योत्तरं स वै ।
फलं षट्त्रिंशदष्टौ च सहस्राणि च विंशतिः ॥ १६ ॥
एवमेतान् गुणान्विद्याद्गवादीनां यथाक्रमम् ।
गोप्रदाता समाप्नोति समस्तानष्टमे क्रमे ॥ १७ ॥
गोदः शीली निर्भयश्चार्घदाता न स्याद्दुःखी वसुदाता च कामम् ।
उपस्योढा भारते यश्च विद्वान्विख्यातास्ते वैष्णवाश्चन्द्रलोका ॥ १८॥
गा वै दत्त्वा गोव्रती स्यात्त्रिरात्रं निशां चैकां संवसेतेह ताभिः ।
कामाष्टम्यां वर्तितव्यं त्रिरात्रं रसैर्वा गोः शकृता प्रस्नवैर्वा ॥ १९ ॥

आधा हिस्सा पाठ करे, गोदानके समय जो लोग ऐसा आचरण करते हैं, वे ही विधि जाननेवाले हैं। (१३–१४)

जो लोग गोदानकी प्रतिनिधि स्वरूप व्यावहारिक गऊका मूल्य वस्त्र वा वित्त दान करते हैं, उन्हें भी गोदाता कहना योग्य है। गऊका मूल्य दान करनेके समय ऐसा वचन कहे, कि तुम्हें ऊर्ध्वास्या गऊ प्रदान करता हूं, तुम ग्रहण करो। वस्त्र दान करनेके समय भवितव्या और वसुधेनु दानके समय 'वैष्णवी' इस वाक्यका प्रयोग करे; संख्याके अनुसार गौवोंके ऊर्ध्वास्या प्रभृति नाम कहना चाहिये। यथाक्रमसे प्रतिनिधि दान प्रभृतिका ऐसा ही फल जानो; गऊका मूल्य देनेसे छत्तीस हजारगुण फल होता है, वस्त्रधेनु देनेसे आठ हजारगुण और वसुधेनु दान करनेसे बीस हजारगुण फल हुआ करता है। (१५—१६)

साक्षात् गोदान करनेवालेको आठ-पग गमन करते ही समस्त फल प्राप्त होते हैं, अर्थात् ग्रहीताके पहुंचते ही उसके बालक, अतिथि और अग्निहोत्र आदिका प्रतिदिन निर्वाह होता है। गोदाता शीलवान् होता, मूल्य देनेवाला निर्भय हुआ करता है और वस्त्रदाता कभी दुःखी नहीं होता। जो लोग उषःकालमें प्रातःस्नान आदि किया करते हैं और जिन्हें विशेष रीतिसे महाभारत विदित है, वे चन्द्रमाकी भांति प्रकाशयुक्त लोक वैष्णवरूपसे विख्यात होते हैं, इसलिये वैसे ब्राह्मणोंको गोदान करना उचित है। (१७—१८)

गोदान करके मनुष्य त्रिरात्र गोव्रती होवे और एक रात्रि इस लोकमें गौवोंके सहित निवास करे तथा काम्याष्टमीमें

देवव्रती स्याद्वृषभप्रदाने वेदावाप्तिर्गोयुगस्य प्रदाने।
तथा गवां विधिमासाद्य यज्वा लोकानग्र्यान्विन्दते नाविधिज्ञः॥ २०॥
कामान्सर्वान्पार्थिवानेकसंस्थान्यो वै दद्यात्कामदुघां च धेनुम्।
सम्यक्ताः स्युर्हव्यकव्यौघवत्यस्तासामुक्ष्णां ज्यायसां सम्प्रदानम्॥२१॥
न चाऽशिष्यायाव्रतायोपकुर्यान्नाऽश्रद्दधानाय न वक्रबुद्धये।
गुह्यो ह्ययं सर्वलोकस्य धर्मो नेमं धर्मं यत्र तत्र प्रजल्पेत्॥ २२॥
सन्ति लोके श्रद्दधाना मनुष्याः सन्ति क्षुद्रा राक्षसा मानुषेषु।
एषामेतद्दीयमानं ह्यनिष्टं ये नास्तिक्यं चाश्रयन्तेऽल्पपुण्याः॥ २३॥
बार्हस्पत्यं वाक्यमेतन्निशम्य ये राजानो गोप्रदानानि दत्त्वा।
लोकान्प्राप्ताः पुण्यशीलाः प्रवृत्तास्तान्मे राजन्कीर्त्यमानान्निबोध॥२४॥
उशीनरो विष्वगश्वो नृगश्च भगीरथो विश्रुतो यौवनाश्वः।
मान्धाता वै मुचुकुन्दश्च राजा भूरिद्युम्नो नैषधः सोमकश्च॥ २५॥

त्रिरात्रके समय गोरस, गोमय और गोमूत्रके द्वारा जीवन बितावे। वृषभ दान करनेपर मनुष्य देवव्रती अर्थात् सूर्यमण्डलभेत्ता ब्रह्मचारी हुआ करता है, दो गऊ दान करनेसे वेदप्राप्ति होती है और यज्ञ करनेवाला पुरुष विधिपूर्वक गोदान करनेसे उत्तम लोक पाता है। जो लोग विधि जाननेवाले नहीं हैं, उन्हें उन लोकोंकी प्राप्ति नहीं होती। जो लोग कामदुघा गऊ दान करते हैं और जो लोग एकसंस्थ समस्त पार्थिव काम्यविषय दान देते हैं, उनमेंसे हव्यकव्यवती गौवें ही श्रेष्ठ होती हैं और गऊकी अपेक्षा वृषभ दान करनेसे अधिक फल प्राप्त होता है। (१९–२१)

जो पुरुष शिष्य नहीं हैं, जो व्रत नहीं करते, जो लोग श्रद्धावान् नहीं हैं, उनके समीप यह धर्मविषय न कहे, यह धर्म सब लोगोंको ही गोपनीय है, इसलिये जहां तहां इस धर्मकी जल्पना करनी उचित नहीं है। इस लोकमें बहुतसे श्रद्धावान् मनुष्य हैं और मनुष्योंके बीच बहुतेरे क्षुद्रबुद्धि तथा राक्षस हैं, जिनसे कहनेसे बुराई हो और जो सब अल्प पुण्यवाले मनुष्य नास्तिकता अवलम्बन किये हों, उनके निकट यह विषय न कहे। (२२–२३)

हे महाराज! यह सब बृहस्पतिसम्बन्धीय वचन सुनके जिन राजाओंने गोदान करके पवित्र लोकोंको पाया है, उन पुण्यशील राजाओंका विषय सुनो। उशीनर, विष्वगश्व, नृग, विख्यात भगीरथ, यौवनाश्व, मान्धाता,

पुरूरवा भरतश्चक्रवर्ती यस्यान्ववाये भरताः सर्व एव ।
तथा वीरो दाशरथिश्च रामो ये चाप्यऽन्ये विश्रुताः कीर्तिमन्तः ॥ २६ ॥
तथा राजा पृथुकर्मा दिलीपो दिवं प्राप्तो गोप्रदानैर्विधिज्ञः ।
यज्ञैर्दानैस्तपसा राजधर्मैर्मान्धाताऽभूद्गोप्रदानैश्च युक्तः ॥ २७ ॥
तस्मात्पार्थ त्वमपीमां मयोक्तां बार्हस्पतीं भारतीं धारयस्व ।
द्विजाग्र्येभ्यः संप्रयच्छस्व प्रीतो गाः पुण्या वै प्राप्य राज्यं कुरूणाम् ॥२८॥
वैशम्पायन उवाच-तथा सर्वं कृतवान्धर्मराजो भीष्मेणोक्तो विधिवद्गोप्रदाने ।
स मान्धातुर्वेद देवोपदिष्टं सम्यग्धर्मं धारयामास राजा ॥ २९ ॥
इति नृप सततं गवां प्रदाने यवशकलान्सह गोमयैः पिबानः ।
क्षितितलशयनः शिखी यतात्मा वृष इव राजवृषस्तदा बभूव ॥ ३० ॥
नरपतिरभवत्सदैव ताभ्यः प्रयतमनास्त्वभिसंस्तुवंश्च ताः स्म ।
नृपतिधुरि च गामयुक्त भूयस्तुरगवरैरगमच्च यत्र तत्र ॥ ३१ ॥ [३६५०]

इति श्रीमहाभारते० अनु० आनुशा० पर्वणि दानधर्मे गोदानकथने षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥

राजा मुचुकुन्द, भूरिद्युम्न, नैषध, सोमक, पुरूरवा, चक्रवर्त्ती भरत, " जिसके वंशमें जन्म लेके सब राजा भारत नामसे विख्यात हुए हैं, " वीरश्रेष्ठ दाशरथि राम, इनके अतिरिक्त दूसरे जो सब राजा कीर्त्तिमान रूपसे विख्यात हैं और पृथुकर्मा दिलीपने विधिज्ञ होके गोदानके सहारे स्वर्गलोक पाया है। महाराज मान्धाता यज्ञ, दान, तपस्या, राजधर्म और गोदान विषयमें सदा नियुक्त थे। हे पार्थ ! इसलिये तुम भी मेरी कही हुई इस बार्हस्पती वाणीको धारण करो। तुमने कौरवोंका राज्य पाया है, इसलिये प्रसन्न होकर ब्राह्मणोंको पवित्र गऊ दान करो। (२४-२८)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर जिस प्रकार भीष्मने गोदानका विषय कहा, धर्मराजने उसे उसही भांति किया, मान्धाताके समीप जो विषय बृहस्पतिके द्वारा वर्णित हुआ था, राजाओंने उस ही धर्मको पूर्ण रीतिसे धारण किया। हे महाराज ! इस ही भांति गोदानके समय गोमयके साथ यवस भक्षण और पृथ्वीपर शयन करते हुए शिखावान होकर वृषभकी भांति वह नृपश्रेष्ठ संयतचित्त हुए थे। राजा लोग सदा गौवोंके विषयमें प्रसन्नचित्त होकर उनकी स्तुति करते हुए राजाओंमें अग्रणी होके उत्तम अश्वश्रेष्ठसे जिस स्थानमें इच्छा होती, वहां जाते थे। (२९-३१)

अनुशासनपर्वमें ७६ अध्याय समाप्त ।

वैशम्पायन उवाच-ततो युधिष्ठिरो राजा भूयः शान्तनवं नृपम्।
गोदानविस्तरं धीमान्पप्रच्छ विनयान्वितः ॥ १ ॥
युधिष्ठिर उवाच— गोप्रदानगुणान्सम्यक् पुनर्मे ब्रूहि भारत।
न हि तृप्याम्यहं वीर शृण्वानोऽमृतमीदृशम् ॥ २ ॥
वैशम्पायन उवाच-इत्युक्तो धर्मराजेन तदा शान्तनवो नृपः।
सम्यगाह गुणांस्तस्मै गोप्रदानस्य केवलान् ॥ ३ ॥
भीष्म उवाच- वत्सलां गुणसम्पन्नां तरुणीं वस्त्रसंयुताम्।
दत्त्वेदृशीं गां विप्राय सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४ ॥
असुर्या नाम ते लोका गां दत्त्वा तान्स गच्छति।
पीतोदकां जग्धतृणां नष्टक्षीरां निरिन्द्रियाम् ॥ ५ ॥
जरारोगोपसम्पन्नां जीर्णां वापीमिवाजलाम्।
दत्त्वा तमः प्रविशति द्विजं क्लेशेन योजयेत् ॥ ६ ॥
रुष्टा दुष्टा व्याधिता दुर्बला वा नो दातव्या याश्च मूल्यैरदत्तैः।

अनुशासनपर्वमें ७७ अध्याय।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर बुद्धिशक्तिसे युक्त राजा युधिष्ठिरने विनयपूर्वक फिर शन्तनुनन्दन भीष्मसे गोदानका विषय पूछा। (१)

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! गोदानका समस्त फल फिर मेरे समीप पूरी रीतिसे वर्णन करिये। हे वीर! मैं ऐसे अमृतको कानसे पीते हुए किसी प्रकार तृप्त नहीं होता हूं। (२)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पुरुषश्रेष्ठ भीष्म धर्मराजका ऐसा वचन सुनके उनसे केवल गोदानका फल पूरी रीतिसे कहने लगे। (३)

भीष्म बोले, ब्राह्मणोंको गुणयुक्त सवत्सा तरुणी गऊ वस्त्र उढाके दान करनेसे पुरुष सब पापोंसे छूट जाता है। जिन लोकोंमें सूर्य नहीं हैं, गऊ दान करनेसे मनुष्य उन लोकोंमें नहीं जाता। जिस गऊने जल पीया है। और न पीवेगी, जिसने तृण खाई हो, फिर न खायगी, जिसका दूध हुआ है, फिर न होगा, और जिसकी इन्द्रियें निःशेष हुई हों वैसी जरारोगसे युक्त जलरहित वापीकी भांति जीर्ण गऊ दान करनेसे घोर अन्धकारके बीच प्रवेश करना होता है, जो पुरुष ऐसी गऊ दान करता है, वह ब्राह्मणको क्लेशयुक्त किया करता है। (४-६)

रुष्ट, दुष्ट, व्याधियुक्त, दुबली और जिस गऊको मूल्य देके कोई न ले, वैसी गऊ दान करना उचित नहीं है।

क्लेशैर्विप्रं योऽफलैः संयुनक्ति तस्यावीर्याश्चाफलाश्चैव लोकाः ॥ ७ ॥
बलान्विताः शीलवयोपपन्नाः सर्वे प्रशंसन्ति सुगन्धवत्यः ।
यथा हि गङ्गा सरितां वरिष्ठा तथाऽर्जुनीनां कपिला वरिष्ठा ॥ ८ ॥
युधिष्ठिर उवाच–कस्मात्समाने बहुलाप्रदाने सद्भिः प्रशस्तं कापिलाप्रदानम् ।
विशेषमिच्छामि महाप्रभावं श्रोतुं समर्थोऽस्मि भवान्प्रवक्तुम् ॥ ९ ॥
भीष्म उवाच– वृद्धानां ब्रुवतां तात श्रुतं मे यत्पुरातनम् ।
वक्ष्यामि तदशेषेण रोहिण्यो निर्मिता यथा ॥ १० ॥
प्रजाः सृजेति चादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयंभुवा ।
असृजद्वृत्तिमेवाग्रे प्रजानां हितकाम्यया ॥ ११ ॥
यथा ह्यमृतमाश्रित्य वर्तयन्ति दिवौकसः ।
तथा वृत्तिं समाश्रित्य वर्तयन्ति प्रजा विभो ॥ १२ ॥
अचरेभ्यश्च भूतेभ्यश्चराः श्रेष्ठाः सदा नराः ।
ब्राह्मणाश्च ततः श्रेष्ठास्तेषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः ॥ १३ ॥
यज्ञैरवाप्यते सोमः स च गोषु प्रतिष्ठितः ।
ततो देवाः प्रमोदन्ते पूर्वं वृत्तिस्ततः प्रजाः ॥ १४ ॥

जो पुरुष ब्राह्मणोंको निरर्थक क्लेशयुक्त करता है, उसके सब लोक निष्फल तथा निर्वीर्य होते हैं। बल, शील और अवस्थायुक्त सुगन्धवती गऊकी सब कोई प्रशंसा किया करते हैं। जैसे नदियोंमें गङ्गा श्रेष्ठ हैं, वैसे ही गौवोंके बीच कपिला गऊ श्रेष्ठ है। (७-८)

युधिष्ठिर बोले, हे महाप्राज्ञ पितामह! गोदान समान होनेपर भी साधु लोग किसलिये कपिलादानको श्रेष्ठ कहते हैं? इस वृत्तान्तको मैं विशेष रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं, आप भी कहनेमें समर्थ हैं। (९)

भीष्म बोले, हे तात! मैंने प्राचीन पण्डितोंसे जो कथा सुनी है और रोहिणीवृन्द जिस प्रकार उत्पन्न हुई हैं, वह सब पूरी रीतिसे कहता हूं। पहले स्वयम्भूने दक्षको प्रजा उत्पन्न करनेके लिये आज्ञा दी, तब उन्होंने प्रजासमूहके हितकामनासे पहले वृत्ति उत्पन्न की। हे विभु! जैसे देववृन्द अमृतके आसरे विद्यमान हैं, वैसे ही सब प्रजा वृत्तिको अवलम्बन करके वर्त्तमान है। स्थावर जीवोंसे जङ्गम मनुष्य ही सदा श्रेष्ठ हैं, मनुष्योंके बीच ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, क्यों कि ब्राह्मणोंमें ही सब वेद प्रतिष्ठित हैं। यज्ञोंके सहारे सोमरस प्राप्त हो सकता है, परन्तु वे यज्ञ

प्रजातान्येव भूतानि प्राक्रोशन्वृत्तिकाङ्क्षया ।
वृत्तिदं चान्वपद्यन्त तृषिताः पितृमातृवत् ॥ १५ ॥
इतीदं मनसा गत्वा प्रजासर्गार्थमात्मनः ।
प्रजापतिस्तु भगवानमृतं प्रापिबत्तदा ॥ १६ ॥
स गतस्तस्य तृप्तिं तु गन्धं सुरभिमुद्गिरन् ।
ददर्शोद्गारसंवृत्तां सुरभिं मुखजां सुताम् ॥ १७ ॥
साऽसृजत्सौरभेयीस्तु सुरभिर्लोकमातृकाः ।
सुवर्णवर्णाः कपिलाः प्रजानां वृत्तिधेनवः ॥ १८ ॥
तासाममृतवर्णानां क्षरन्तीनां समन्ततः ।
बभूवामृतजः फेनः स्रवन्तीनामिवोर्मिजः ॥ १९ ॥
स वत्समुखविभ्रष्टो भवस्य भुवि तिष्ठतः ।
शिरस्यवापतत्क्रुद्धः स तदैक्षत च प्रभुः ॥ २० ॥
ललाटप्रभवेणाक्ष्णा रोहिणीं प्रदहन्निव ।
तत्तेजस्तु ततो रौद्रं कपिलास्ता विशांपते ॥ २१ ॥

गौवोंसे प्रतिष्ठित हैं, यज्ञसे ही देववृन्द प्रमुदित होते हैं, इसलिये पहले वृत्ति और शेषमें प्रजासमूहकी उत्पत्ति हुई है। (१०—१४)

जीवगणने उत्पन्न होके जीविकाके निमित्त चीत्कार किया था, प्रजापतिने पिता माताकी भांति उन तृषित प्रजासमूहको वृत्तिदान करके कृपा की थी! भगवान् प्रजापतिने इसही प्रकार अपनी प्रजा उत्पन्न करनेके लिये मन-ही मन आलोचना करके उस समय उन्हें अमृत पिलाया था। प्रजावृन्द तृप्त होवें, ऐसा विचार करके सुरभि-गन्ध उद्गिरण करते हुए वहां जाके उसके उद्गारसे उत्पन्न तथा मुखसे प्रकट हुई सुरभीको देखा। उस सुरभीने प्रजाओंकी वृत्तिविधायिनी, सुवर्ण रङ्गवाली कपिला सर्वलोकमातृका सौरमेयी गौवों को उत्पन्न किया था। (१५—१८)

जैसे नदीके तरङ्गसे फेन उत्पन्न होता है, वैसे ही सब प्रकारसे दूध देनेवाली अमृतवर्ण सौरभेयी गौके अमृतसे फेन उत्पन्न हुआ; वह फेन बछडेके मुखसे पृथ्वीपर स्थित महादेवके मस्तकपर गिरा। सर्व शक्तिमान महादेवने क्रुद्ध होकर माथेके नेत्रसे रोहिणीको मानो जलानेके लिये उसकी ओर देखा। हे नरनाथ! अनन्तर जैसे सूर्य मेघमालाको अनेक वर्णका करता

नानावर्णत्वमनयन्मेघानिव दिवाकरः।
यास्तु तस्मादपक्रम्य सोममेवाभिसंश्रिताः ॥ २२ ॥
यथोत्पन्नाः स्ववर्णस्थास्ता नीताश्चाऽन्यवर्णताम्।
अथ क्रुद्धं महादेवं प्रजापतिरभाषत ॥ २३ ॥
अमृतेनावसिक्तस्त्वं नोच्छिष्टं विद्यते गवाम्।
यथा ह्यमृतमादाय सोमो विस्यन्दते पुनः ॥ २४ ॥
तथा क्षीरं क्षरन्त्येता रोहिण्योऽमृतसंभवम्।
न दुष्यत्यनिलो नाग्निर्न सुवर्णं न चोदधिः ॥ २५ ॥
नामृतेनामृतं पीतं वत्सपीता न वत्सला।
इमाँल्लोकान्भरिष्यन्ति हविषा प्रस्रवेण च ॥ २६ ॥
आसामैश्वर्यमिच्छन्ति सर्वेऽमृतमयं शुभम्।
वृषभं च ददौ तस्मै सह गोभिः प्रजापतिः ॥ २७ ॥
प्रसादयामास मनस्तेन रुद्रस्य भारत।
प्रीतश्चापि महादेवश्चकार वृषभं तदा ॥ २८ ॥
ध्वजं च वाहनं चैव तस्मात्स वृषभध्वजः।

है, वैसे ही उस रौद्रतेजने कपिला गौवोंको विविध वर्ण किया। जो कपिला गौवें उस रुद्रतेजसे अपक्रान्त होकर चन्द्रमण्डलमें जाके स्थित हुई थीं, वे जिस प्रकार स्ववर्ण होके उत्पन्न हुई थीं, वैसी ही रहीं, उनका दूसरा रङ्ग नहीं हुआ। (१९–२२)

अनन्तर महादेवके क्रुद्ध रहनेपर प्रजापतिने उनसे कहा, तुम अमृतसे अभिषिक्त हुए हो, गौवोंके फेन प्रभृति कुछ भी जूठे नहीं हैं। जैसे चन्द्रमा अमृत ग्रहण करके फिर उदित होता है, वैसे ही रोहिणीगण अमृतसे उत्पन्न दूध दिया करती हैं; अग्नि, वायु, सुवर्ण और समुद्र दूषित नहीं होते, अमृतको यदि कोई पीवे, तौभी दूसरे लोग उसे पीनेसे दूषित नहीं होते और बछडेके पीनेपर सवत्सा गौवें भी दूषित नहीं हैं। ये घृत और दूधके सहारे इन सब लोकोंका भरण करेंगी, सब कोई इनके अमृतमय शुभ ऐश्वर्यकी इच्छा किया करते हैं। प्रजापतिने महादेवको प्रसन्न करनेके लिये गौवोंके सहित एक वृषभ दिया। (२३–२७)

हे भारत! उन्होंने वृषभ देके रुद्रका मन प्रसन्न किया, महादेवने प्रसन्न होकर उस बैलको अपनी ध्वजा तथा अपना वाहन किया था, इस ही

ततो देवैर्महादेवस्तदा पशुपतिः कृतः।
ईश्वरः स गवां मध्ये वृषभाङ्कः प्रकीर्तितः ॥ २९ ॥
एवमव्यग्रवर्णानां कपिलानां महौजसाम्।
प्रदाने प्रथमः कल्पः सर्वासामेव कीर्तितः ॥ ३० ॥
लोकज्येष्ठा लोकवृत्तिप्रवृत्ता रुद्रोपेताः सोमविष्यन्दभूताः।
सौम्याः पुण्याः कामदाः प्राणदाश्च गा वै दत्त्वा सर्वकामप्रदः स्यात् ॥३१॥
इदं गवां प्रभवविधानमुत्तमं पठन्सदाऽशुचिरपि मङ्गलप्रियः।
विमुच्यते कलिकलुषेण मानवः श्रियं सुतान्धनपशुमाप्नुयात्सदा ॥३२॥
हव्यं कव्यं तर्पणं शान्तिकर्म यानं वासो वृद्धबालस्य तुष्टिः।
एतान्सर्वान्गोप्रदाने गुणान्वै दाता राजन्नाप्नुयाद्वै सदैव ॥ ३३ ॥
वैशम्पायन उवाच–पितामहस्याथ निशम्य वाक्यं राजा सह भ्रातृभिराजमीढः।
सुवर्णवर्णानडुहस्तथा गाः पार्थो ददौ ब्राह्मणसत्तमेभ्यः ॥ ३४ ॥
तथैव तेभ्योऽपि ददौ द्विजेभ्यो गवां सहस्राणि शतानि चैव।
यज्ञान्समुद्दिश्य च दक्षिणार्थे लोकान्विजेतुं परमां च कीर्तिम् ॥३५॥ [३६८५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे गोप्रभवकथने सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

निमित्त वे वृषभध्वज नामसे विख्यात हुए हैं। अनन्तर देवताओंने उस समय महादेवको पशुपति किया, वे गौवोंके बीच रहनेसे वृषभाङ्क नामसे वर्णित हुए। इस ही भांति अव्यग्र वर्ण महातेजस्विनी कपिला गौवोंका दान प्रथम कल्प कहा गया है। (२८–३०)

लोकमें जेठी, लोगोंकी वृत्तिके लिये प्रवृत्ता, रुद्रोपेता, सोमविष्यन्दभूत, सौम्य, पुण्यकामदा और प्राणदा गौवोंको दान करनेसे मनुष्य सर्वकामप्रद होता है। सदा मङ्गलाभिलाषी पुरुष गौवोंके इस उत्तम उत्पत्ति-विषयको पाठ करनेसे पापोंसे छूट जाते और सदा श्री, पुत्र, धेनु और पशु पाते हैं। हे महाराज! दाता गोदान करके हव्य, कव्य, तर्पण, शान्तिकर्म, यान, वसन, बालक और बूढोंकी तुष्टि, ये समस्त फल पाते हैं। (३१–३३)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अजमीढवंशावतंस पृथापुत्र महाराज युधिष्ठिरने भाइयोंके सहित पितामहका वचन सुनके ब्राह्मणोंको सुवर्ण रङ्गके वृषभ और गऊ दान किया, तथा उन्होंने श्रेष्ठ लोकोंको जय करने अथवा कीर्त्तिके निमित्त यज्ञके उद्देश्यसे दक्षिणामें सौ

भीष्म उवाच– एतस्मिन्नेव काले तु वसिष्ठमृषिसत्तमम् ।
इक्ष्वाकुवंशजो राजा सौदासो वदतां वरः ॥ १ ॥
सर्वलोकचरं सिद्धं ब्रह्मकोशं सनातनम् ।
पुरोहितमभिप्रष्टुमभिवाद्योपचक्रमे ॥ २ ॥
सौदास उवाच–त्रैलोक्ये भगवन्किस्वित्पवित्रं कथ्यतेऽनघ ।
यत्कीर्तयन्सदा मर्त्यः प्राप्नुयात्पुण्यमुत्तमम् ॥ ३ ॥
भीष्म उवाच–तस्मै प्रोवाच वचनं प्रणताय हि तं तदा ।
गवामुपनिषद्विद्वान्नमस्कृत्य गवां शुचिः ॥ ४ ॥
गावः सुरभिगन्धिन्यस्तथा गुग्गुलुगन्धयः ।
गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावः स्वस्त्ययनं महत् ॥ ५ ॥
गावो भूतं च भव्यं च गावः पुष्टिः सनातनी ।
गावो लक्ष्म्यास्तथा मूलं गोषु दत्तं न नश्यति ॥ ६ ॥
अन्नं हि परमं गावो देवानां परमं हविः ।
स्वाहाकारवषट्कारौ गोषु नित्यं प्रतिष्ठितौ ॥ ७ ॥
गावो यज्ञस्य हि फलं गोषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः ।

हजार गऊ दान किया था। (३४-३५)

अनुशासनपर्वमें ७७ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ७८ अध्याय।

भीष्म बोले, इसके अनन्तर इक्ष्वाकु-वंशीय वक्तृवर राजा सौदास सर्वलोक-चारी सिद्ध, वेदनिधि, नित्य, पुरोहित ऋषिसत्तम वसिष्ठको प्रणाम करके प्रश्न करना आरम्भ किया। (१-२)

सौदास बोले, हे अनघ भगवन्! तीनों लोकोंके बीच मनुष्य जिसका सदा नाद लेते हुए पुण्यसञ्चय करता ऐसा पवित्र क्या है? (३)

भीष्म बोले, विद्वान् वशिष्ठ पवित्र होकर गौवोंको प्रणाम करके उस समय प्रणत राजासे गौवोंके विषयमें उपनिषत् वचन कहने लगे। (४)

वशिष्ठ मुनि बोले, गौवें सुरभिगन्ध और गुग्गुलगन्धविशिष्ट हैं, गौवें सर्व भूतोंकी प्रतिष्ठा और सबहीके लिये महत् स्वस्त्ययनस्वरूप हैं; गऊ ही भूत और भविष्य हैं, गोवृन्द ही सनातनी सृष्टि स्वरूप हैं। गौवें ही लक्ष्मीके मूल हैं और जो कुछ गौवोंको दिया जाता है, वह विनष्ट नहीं होता। गऊ ही देवताओंके परम हवि और अन्न-स्वरूप हैं; स्वाहाकार, वषट्कार सदा गौवोंमें प्रतिष्ठित हैं। गऊ ही यज्ञके फल है, गौवेंही भूत और भविष्य हैं,

गावो भविष्यं भूतं च गोषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः ॥ ८ ॥
सायं प्रातश्च सततं होमकाले महाद्युते ।
गावो ददति वै हौम्यमृषिभ्यः पुरुषर्षभ ॥ ९ ॥
यानि कानि च दुर्गाणि दुष्कृतानि कृतानि च ।
तरन्ति चैव पाप्मानं धेनुं ये ददति प्रभो ॥ १० ॥
एकां च दशगुर्दद्याद्दश दद्याच्च गोशती ।
शतं सहस्रगुर्दद्यात्सर्वे तुल्यफला हि ते ॥ ११ ॥
अनाहिताग्निः शतगुरयज्वा च सहस्रगुः ।
समृद्धो यश्च कीनाशो नार्घमर्हन्ति ते त्रयः ॥ १२ ॥
कपिलां ये प्रयच्छन्ति सवत्सां कांस्यदोहनाम् ।
सुव्रतां वस्त्रसंवीतामुभौ लोकौ जयन्ति ते ॥ १३ ॥
युवानमिन्द्रियोपेतं शतेन शतयूथपम् ।
गवेन्द्रं ब्राह्मणेन्द्राय भूरिशृङ्गमलंकृतम् ॥ १४ ॥
वृषभं ये प्रयच्छन्ति श्रोत्रियाय परन्तप ।
ऐश्वर्यं तेऽधिगच्छन्ति जायमानाः पुनः पुनः ॥ १५ ॥

गौवें ही यज्ञोंमें प्रतिष्ठित होरही हैं। (५—८)

हे महातेजस्वी पुरुषश्रेष्ठ ! सन्ध्या और भोरके समय सदा गौवें ऋषियोंके होम साधन घृत आदि प्रदान किया करती हैं। हे महाराज ! चाहे कोई कैसाही पापी क्यों न हो, गोदान करनेसे उसके सब पाप नष्ट हुआ करते हैं, जिसके दश गऊ हों, वह एक गऊ दान करे, जो लोग एक सौ गऊवाले हों, वे दश गऊ दान कर सकेंगे और जो लोग सहस्र गोयुक्त हैं, वे एक सौ गऊ दान करें, परन्तु ये सब कोई तुल्य फल भोग करेंगे। सौ गऊवाला पुरुष यदि आहिताग्नि न हो और सहस्र गऊवाला पुरुष यदि विधिपूर्वक यज्ञ न करे, तथा जो पुरुष समृद्ध होके भी कृपण हो, वे तीनों ही अर्घलाभके योग्य नहीं हैं। जो लोग सवत्सा, कांस्यदोहना, उत्तम व्रत और वस्त्रसे युक्त कपिला गऊ दान करते हैं, वे इस लोक तथा परलोकको जय किया करते हैं। (९—१३)

हे शत्रुतापन ! जो लोग श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको सैकडों यूथपति युवा सर्वेन्द्रियपुष्ट, बडे शींगोंसे अलंकृत गवेन्द्र वृषभ दान करते हैं, वे बार बार जन्म लेके ऐश्वर्यलाभ किया करते हैं। गौवोंके

नाकीर्तयित्वा गाः सुप्यात्तासां संस्मृत्य चोत्पतेत् ।
सायं प्रातर्नमस्येच्च गास्ततः पुष्टिमाप्नुयात् ॥ १६ ॥
गवां मूत्रपुरीषस्य नोद्विजेत कथंचन ।
न चासां मांसमश्नीयाद्गवां पुष्टिं तथाप्नुयात् ॥ १७ ॥
गाश्च सङ्कीर्तयन्नित्यं नावमन्येत तास्तथा ।
अनिष्टं स्वप्नमालक्ष्य गां नरः संप्रकीर्तयेत् ॥ १८ ॥
गोमयेन सदा स्नायात्करीषे चापि संविशेत् ।
श्लेष्ममूत्रपुरीषाणि प्रतिघातं च वर्जयेत् ॥ १९ ॥
सार्द्रे चर्मणि भुञ्जीत निरीक्षेद्वारुणीं दिशम् ।
वाग्यतः सर्पिषा भूमौ गवां पुष्टिं सदाऽश्नुते ॥ २० ॥
घृतेन जुहुयादग्निं घृतेन स्वस्ति वाचयेत् ।
घृतं दद्याद् घृतं प्राशेद्गवां पुष्टिं सदाऽश्नुते ॥ २१ ॥
गोमत्या विद्यया धेनुं तिलानामभिमन्त्र्य यः ।
सर्वरत्नमयीं दद्यान्न स शोचेत्कृताकृते ॥ २२ ॥
गावो मामुपतिष्ठन्तु हेमशृङ्ग्यः पयोमुचः ।

बिना नाम लिये सोना न चाहिये, उन्हें बिना स्मरण किये चलना अनुचित है, सन्ध्या और सबेरे गौवोंको प्रणाम करनेसे पुष्टि प्राप्त होगी। गौवोंके मूत्र और पुरीषके विषयमें किसी प्रकार घबडाना न चाहिये और कदाचित भी इनका मांस भक्षण न करे, तो पुष्टि प्राप्त होगी। गौवोंका सदा नाम ले, उनकी कभी अवज्ञा न करे, मनुष्य बुरे स्वप्न देखनेपर गौवोंका नाम लेवे। सदा गोमयसे स्नान करे, करीषके बीच सोवे, श्लेष्म मूत्र पुरीष और प्रतिघातको त्याग देवे। प्रोक्षणके द्वारा गोचर्मके भींगनेपर बैठके भोजन करे, वरुणसे पालित पश्चिम दिशाकी ओर देखे। जो लोग वाग्यत होके पृथ्वीपर बैठते हैं, वे गौवोंके दुग्धघृतके सहारे सदा पुष्टि लाभ किया करते हैं। (१४—२०)

घृतसे होम करे, घृतके द्वारा स्वस्तिवाचन करावे, घृत दान करे और घृत प्राशन करे, तो गौवोंकी पुष्टि भोग कर सकेगा। जो लोग गोमती विद्याके द्वारा मन्त्र पढके तिलधेनु दान करते हैं, उन्हें कृत और अकृत विषयोंके लिये शोक नहीं करना पडता। जैसे सब नदियां समुद्रके निकट उपस्थित होती हैं, वैसे ही सुवर्णके सींगसे

सुरभ्यः सौरभेय्यश्च सरितः सागरं यथा ॥ २३ ॥
गा वै पश्याम्यहं नित्यं गावः पश्यन्तु मां सदा ।
गावोऽस्माकं वयं तासां यतो गावस्ततो वयम् ॥२४॥
एवं रात्रौ दिवा चाऽपि समेषु विषमेषु च ।
महाभयेषु च नरः कीर्तयन्मुच्यते भयात् ॥ २५ ॥ [३७१०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे गोप्रदानिके अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

वसिष्ठ उवाच– शतं वर्षसहस्राणां तपस्तप्तं सुदुष्करम् ।
गोभिः पूर्वं विसृष्टाभिर्गच्छेम श्रेष्ठतामिति ॥ १ ॥
लोकेऽस्मिन्दक्षिणानां च सर्वासां वयमुत्तमाः ।
भवेम न च लिप्येम दोषेणेति परन्तप ॥ २ ॥
अस्मत्पुरीषस्नानेन जनः पूयेत सर्वदा ।
शकृता च पवित्रार्थं कुर्वीरन्देवमानुषाः ॥ ३ ॥
तथा सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
प्रदातारश्च लोकान्नो गच्छेयुरिति मानद ॥ ४ ॥
ताभ्यो वरं ददौ ब्रह्मा तपसोऽन्ते स्वयं प्रभुः ।

युक्त दूध देनेवाली सुरभि सौरभेयी गौवें मेरे समीप उपस्थित होवें। हम सदा गौवोंका दर्शन करें, गौवें मुझे सदा अवलोकन करें। गोवृन्द हमारी हैं और हम उनके हैं, जहांपर गऊ हैं हम भी उस ही स्थानमें हैं । मनुष्य रात दिन, सम वा विषम स्थलमें महाभय उपस्थित होनेपर इस ही प्रकार गौवोंका यश गाके भयसे मुक्त होता है। (२१—२५)

अनुशासनपर्वमें ७८ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ७९ अध्याय।

वसिष्ठ बोले, हे परन्तप ! पहले उत्पन्न हुई गौवोंने सबसे अधिक श्रेष्ठता प्राप्त करनेकी इच्छासे सौहजार वर्षतक अत्यन्त दुष्कर तपस्या की थी। इस लोकमें समस्त दक्षिणाके बीच हम श्रेष्ठ होंगी तथा हम किसी दोषमें लिप्त न होंगी। लोग हमारे पुरीषके द्वारा स्नान करनेसे सदा पवित्र होंगे, देवता और मनुष्य हमारे गोमयके सहारे पवित्रताका विधान करेंगे। और स्थावर जङ्गम समस्त जीवोंके बीच जो लोग हमें प्रदान करेंगे, वेही हमारे लोकोंमें गमन कर सकेंगे। गौवोंने इसी प्रकार कामना करके तपस्या की थी, उनकी

एवं भवत्विति प्रभुर्लोकांस्तारयतेति च ॥ ५ ॥
उत्तस्थुः सिद्धकामास्ता भूतभव्यस्य मातरः ।
प्रातर्नमस्यास्ता गावस्ततः पुष्टिमवाप्नुयात् ॥ ६ ॥
तपसोऽन्ते महाराज गावो लोकपरायणाः ।
तस्माद्गावो महाभागाः पवित्रं परमुच्यते ॥ ७ ॥
तथैव सर्वभूतानां समतिष्ठन्त मूर्धनि ।
समानवत्सां कपिलां धेनुं दत्त्वा पयस्विनीम् ।
सुव्रतां वस्त्रसंवीतां ब्रह्मलोके महीयते ॥ ८ ॥
लोहितां तुल्यवत्सां तु धेनुं दत्त्वा पयस्विनीम् ।
सुव्रतां वस्त्रसंवीतां सूर्यलोके महीयते ॥ ९ ॥
समानवत्सां शबलां धेनुं दत्त्वा पयस्विनीम् ।
सुव्रतां वस्त्रसंवीतां सोमलोके महीयते ॥ १० ॥
समानवत्सां श्वेतां तु धेनुं दत्त्वा पयस्विनीम् ।
सुव्रतां वस्त्रसंवीतामिन्द्रलोके महीयते ॥ ११ ॥
समानवत्सां कृष्णां तु धेनुं दत्त्वा पयस्विनीम् ।

तपस्या पूरी होनेपर सर्व शक्तिमान ब्रह्माने स्वयं उनसे कहा, कि ऐसा ही होवे, तुम लोग सबका उद्धार करो, ऐसा वचन कहके उन्हें यही वर दिया था। भूत-भविष्यकी माता वे सब गौवें मनोरथ पूरा होनेपर उठीं। प्रातःकालमें उन्हें नमस्कार करनेसे पुष्टि प्राप्त होती है। (१—६)

हे महाराज! तपस्या शेष होनेपर गौवें लोकपरायण हुई थीं, इस लिये महाभागा गौवें परम पवित्र रूपसे वर्णित हुआ करती हैं और इस ही निमित्त वे सब लोगोंके ऊर्ध्वमें निवास करती हैं। मनुष्य सवत्सा उत्तम व्रत और वस्त्रसे युक्त दूधवाली कपिला गऊ दान करनेसे ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। लाल वर्णवाली तुल्यवत्सा, उत्तम व्रतवाली दुग्धवती गऊको वस्त्र उढाके दान करनेसे मनुष्य सूर्यलोकमें पूजित हुआ करता है। समानवत्सा, बलयुक्त, उत्तम व्रतवाली वस्त्रपूरित पयस्विनी गऊ दान करनेसे मनुष्य चन्द्रलोकमें पूजित होता है। वस्त्र उढाके उत्तम व्रतयुक्त समानवत्सा सफेद गऊ दान करनेसे मनुष्यको इन्द्रलोकमें संमान प्राप्त होता है। (७-११)

समानवत्सा उत्तमव्रतवाली कृष्णवर्णवाली पयस्विनी गऊ वस्त्र उढाके दान

सुव्रतां वस्त्रसंवीतामग्निलोके महीयते ॥ १२ ॥
समानवत्सां धूम्रां तु धेनुं दत्त्वा पयस्विनीम् ।
सुव्रतां वस्त्रसंवीतां याम्यलोके महीयते ॥ १३ ॥
अपां फेनसवर्णां तु सवत्सां कांस्यदोहनाम् ।
प्रदाय वस्त्रसंवीतां वारुणं लोकमाप्नुते ॥ १४ ॥
वातरेणुसवर्णां तु सवत्सां कांस्यदोहनाम् ।
प्रदाय वस्त्रसंवीतां वायुलोके महीयते ॥ १५ ॥
हिरण्यवर्णां पिङ्गाक्षीं सवत्सां कांस्यदोहनाम् ।
प्रदाय वस्त्रसंवीतां कौबेरं लोकमश्नुते ॥ १६ ॥
पलालधूम्रवर्णां तु सवत्सां कांस्यदोहनाम् ।
प्रदाय वस्त्रसंवीतां पितृलोके महीयते ॥ १७ ॥
सवत्सां पीवरीं दत्त्वा हृतिकण्ठामलंकृताम् ।
वैश्वदेवमसम्बाधं स्थानं श्रेष्ठं प्रपद्यते ॥ १८ ॥
समानवत्सां गौरीं तु धेनुं दत्त्वा पयस्विनीम् ।
सुव्रतां वस्त्रसंवीतां वसूनां लोकमाप्नुयात् ॥ १९ ॥
पाण्डुकम्बलवर्णाभां सवत्सां कांस्यदोहनाम् ।

करनेसे मनुष्य अग्निलोकमें पूजित होता है। उत्तम व्रतवाली समानवत्सा धूम्रवर्णकी दुग्धवती गऊ दान करनेसे मनुष्य यमलोकमें पूजनीय होता है। जलके फेनके रङ्ग समान और बछड़ा, वस्त्र और कांस्य दोहनपात्रसे युक्त गऊ दान करनेसे मनुष्य वरुणलोकमें सुख भोग करता है। वातरेणुके समान रङ्ग-वाली कांसेके दोहनपात्र तथा वस्त्र-पूरित सवत्सा गऊ दान करनेसे पुरुष वायुलोकमें अभिनन्दित हुआ करता है। सुवर्णरङ्गवाली पिङ्गाक्षी सवत्सा कांसेकी दोहनीके सहित वस्त्र उढाके गऊ दान करनेसे मनुष्य कुबेरलोकमें सुख भोगता है, धूम्रवर्णवाली गऊ कांसेके दोहनीके सहित वस्त्र उढाके दान करनेसे मनुष्य पितृलोकमें पूजित होता है। (१२—१७)

गर्दनमें कम्बलकी झूलसे अलंकृत करके सवत्सा गऊ दान करनेसे मनुष्यको वैश्वदेव नामक बाधारहित उत्तम लोक प्राप्त होता है, दूध देनेवाली सवत्सा उत्तम गऊको वस्त्र उढाके दान करनेसे मनुष्य वसुलोक पाता है। पाण्डुरकम्बलके रङ्ग समान, दूध देने-वाली सवत्सा गऊको कांसेकी दोहनीके

प्रदाय वस्त्रसंवीतां साध्यानां लोकमाप्नुते ॥ २० ॥
वैराटपृष्ठमुक्षाणं सर्वरत्नैरलंकृतम् ।
प्रदद्न्मरुतां लोकान्स राजन्प्रतिपद्यते ॥ २१ ॥
वयोपपन्नं लीलाङ्गं सर्वरत्नसमन्वितम् ।
गन्धर्वाप्सरसां लोकान्दत्त्वा प्राप्नोति मानवः ॥ २२ ॥
दृतिकण्ठमनड्वाहं सर्वरत्नैरलंकृतम् ।
दत्त्वा प्रजापतेर्लोकान्विशोकः प्रतिपद्यते ॥ २३ ॥
गोप्रदानरतो याति भित्त्वा जलदसंचयान् ।
विमानेनार्कवर्णेन दिवि राजन्विराजते ॥ २४ ॥
तं चोरुवेषाः सुश्रोण्यः सहस्रं सुरयोषितः ।
रमयन्ति नरश्रेष्ठं गोप्रदानरतं नरम् ॥ २५ ॥
वीणानां वल्लकीनां च नूपुराणां च सिञ्जितैः ।
हासैश्च हरिणाक्षीणां सुप्तः सुप्रतिबोध्यते ॥ २६ ॥
यावन्ति रोमाणि भवन्ति धेन्वास्तावन्ति वर्षाणि महीयते सः ।
स्वर्गच्युतश्चापि ततो नृलोके प्रसूयते वै विपुले गृहे सः ॥ २७ ॥ [३७३७]

इति श्रीमहाभारते० अनु० आनुशा० दानधर्मे गोप्रदानिके एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

साथ वस्त्र उढाके दान करनेसे साध्योंके समस्त लोक प्राप्त होते हैं। जो लोग सब रत्नोंसे अलंकृत करके दृढ पीठवाले वृषभ दान करते हैं, वे मरुद्गणके लोक में गमन किया करते हैं। (१८-२१)

मनुष्य सब रत्नोंसे युक्त काला वृषभ दान करनेसे गन्धर्व और अप्सराओंके लोकको पाता है। गर्दनमें कम्बलकी झूल और कण्ठको सब रत्नोंसे अलंकृत करके दान करनेसे पुरुष शोकरहित होकर प्रजापतिके लोकको पाता है। हे महाराज! गोदान करनेवाला मनुष्य मेघजालको भेदता हुआ अर्कवर्ण विमानके द्वारा सुरपुरमें जाके विराजमान होता है। मनोहर वेषवाली, सुश्रोणी सहस्र सुन्दरी उस गोदानमें रत पुरुषश्रेष्ठके सङ्ग क्रीडा करती हैं, वह सोनेपर उन हरिणाक्षियोंकी वीणा, वल्लकी, नूपुरकी झंकार तथा हंसीसे जाग्रत होता है। गऊके शरीरमें जितने परिमाणसे रोम रहते हैं, गोदान करनेवाला उतने वर्षतक सुरपुरमें पूजित होता है, अन्तमें वह स्वर्गसे च्युत होके मर्त्य लोकमें महद्वंशमें जन्म लेता है। २२-२७

अनुशासनपर्वमें ७९ अध्याय समाप्त।

वसिष्ठ उवाच- घृतक्षीरप्रदा गावो घृतयोन्यो घृतोद्भवाः।
घृतनद्यो घृतावर्तास्ता मे सन्तु सदा गृहे ॥ १ ॥
घृतं मे हृदये नित्यं घृतं नाभ्यां प्रतिष्ठितम्।
घृतं सर्वेषु गात्रेषु घृतं मे मनसि स्थितम् ॥ २ ॥
गावो ममाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठत एव च।
गावो मे सर्वतश्चैव गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥ ३ ॥
इत्याचम्य जपेत्सायं प्रातश्च पुरुषः सदा।
यदह्ना कुरुते पापं तस्मात्स परिमुच्यते ॥ ४ ॥
प्रासादा यत्र सौवर्णा वसोर्धारा च यत्र सा।
गन्धर्वाप्सरसो यत्र तत्र यान्ति सहस्रदाः ॥ ५ ॥
नवनीतपङ्काः क्षीरोदा दधिशैवलसंकुलाः।
वहन्ति यत्र वै नद्यस्तत्र यान्ति सहस्रदाः ॥ ६ ॥
गवां शतसहस्रं तु यः प्रयच्छेद्यथाविधि।
परां वृद्धिमवाप्याथ स्वर्गलोके महीयते ॥ ७ ॥
दश चोभयतः पुत्रो मातापित्रोः पितामहान्।

अनुशासनपर्वमें ८० अध्याय।

वसिष्ठ बोले, घृत और दूध देनेवाली गौवें घृतयोनि हैं और उन्हींसे घृत उत्पन्न होता है, इसीसे घृतोद्भव कहाती हैं; गौवें घृतकी नदी तथा घृतकी आवर्त्त हैं, इसलिये हमारे गृहमें सदा वे गौवें निवास करें। घृत ही हमारा हृदय है, घृत ही हमारी नाभिमें सदा प्रतिष्ठित होरहा है, घृत हमारे सारे शरीर और मनमें निवास करता है। गौवें हमारे आगे, पीछे और सब ओर हैं, मैं गौवोंके बीच वास करता हूं, जो पुरुष संध्या और सबेरेके समय आचमन करके सदा इसका जप करता है, वह दिन भरके किये हुए पापोंसे मुक्त होगा। जिस स्थानमें सुवर्णमय प्रासाद विद्यमान हैं, वसुधारारूपी मन्दाकिनी विराज रही है और गन्धर्व अप्सरा वर्त्तमान हैं, सहस्र गऊ दान करनेवाला मनुष्य वहां ही जाता है। (१—५)

मक्खनरूपी पङ्क, क्षीररूपी जल और दधिरूपी शैवालयुक्त नदियें जिस स्थानमें बह रही हैं, हजार गऊ दान करनेवाला पुरुष उस ही स्थानमें गमन करता है। जो लोग विधिपूर्वक एक सौ तथा सहस्र गऊ दान करते हैं, वे इस लोकमें परम समृद्धिवान होके स्वर्गलोकमें पूजित

दधाति सुकृतान् लोकान्पुनाति च कुलं नरः ॥ ८ ॥
धेन्वाः प्रमाणेन समप्रमाणां धेनुं तिलानामपि च प्रदाय।
पानीयदाता च यमस्य लोके न यातनां कांचिदुपैति तत्र ॥ ९ ॥
पवित्रमग्र्यं जगतः प्रतिष्ठा दिवौकसां मातरोऽथाप्रमेयाः।
अन्वालभेद्दक्षिणतो व्रजेच्च दद्याच्च पात्रे प्रसमीक्ष्य कालम् ॥ १० ॥
धेनुं सवत्सां कपिलां भूरिशृङ्गीं कांस्योपदोहां वसनोत्तरीयाम्।
प्रदाय तां गाहति दुर्विगाह्यां याम्यां सभां वीतभयो मनुष्यः ॥ ११ ॥
सुरूपा बहुरूपाश्च विश्वरूपाश्च मातरः।
गावो मामुपतिष्ठन्तामिति नित्यं प्रकीर्तयेत् ॥ १२ ॥
नातः पुण्यतरं दानं नातः पुण्यतरं फलम्।
नातो विशिष्टं लोकेषु भूतं भवितुमर्हति ॥ १३ ॥
त्वचा लोम्नाऽथ शृङ्गैर्वा वालैः क्षीरेण मेदसा।
यज्ञं वहति संभूय किमस्त्यभ्यधिकं ततः ॥ १४ ॥
यया सर्वमिदं व्याप्तं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
तां धेनुं शिरसा वन्दे भूतभव्यस्य मातरम् ॥ १५ ॥

होते हैं, पुत्र गोदान करनेसे माता-पिता दोनों कुलोंके दश पुरुषोंको पितामहके सुकृत लोकमें भेजके कुल पवित्र करता है। गऊके प्रमाणके अनुसार तुल्य परिमाणसे तिलगऊ दान करने तथा जल देनेसे मनुष्यको यमलोकमें कोई पीडा नहीं प्राप्त होती। (६–९)

परम पवित्र जगत्की प्रतिष्ठा देवताओंकी माता अप्रमेय गौवोंकी स्तुति और प्रदक्षिणा करे और समय विचारके उपयुक्त पात्रको दान दे, कांसेके दोहनीपात्रसे युक्त, विशाल सींगवाली कपिला गऊ वस्त्र उढाके दान करनेसे मनुष्य भयरहित होके दुर्विगाह्य यमसभामें प्रवेश करता है। मनुष्य सदा ऐसा वचन कहे, कि उत्तम रूपवाली बहुरूपा विश्वरूपिणी मातृस्वरूपी गौवें मेरे निकट उपस्थित होवें। (१०–१२)

गोदानसे बढके पुण्यजनक दान दूसरा कुछ भी नहीं है; इससे बढके पुण्यका फल भी और कुछ नहीं है, लोकमें इससे श्रेष्ठ न कुछ हुआ और न होगा; गौवें त्वचा, रोम, सींग, पुच्छलोम, क्षीर और मेदसे युक्त होकर यज्ञको पूर्ण करती हैं, इसलिये उनसे बढके और कौन श्रेष्ठ है? यह स्थावरजङ्गममय सारा जगत् जिससे व्याप्त होरहा है, उस भूतभविष्यकी जननी गऊको

गुणवचनसमुच्चयैकदेशो नृवर मयैष गवां प्रकीर्तितस्ते ।
न च परमिह दानमस्ति गोभ्यो भवति न चापि परायणं तथाऽन्यत् १६
भीष्म उवाच- वरमिदमिति भूमिदो विचिन्त्य प्रवरमृषेर्वचनं ततो महात्मा ।
व्यसृजत नियतात्मवान्द्विजेभ्यः सुबहु च गोधनमाप्तवांश्च लोकान् ॥१७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे गोप्रदानिकेऽशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ [३७५४]

युधिष्ठिर उवाच- पवित्राणां पवित्रं यच्छिष्टं लोके च यद्भवेत् ।
पावनं परमं चैव तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥
भीष्म उवाच- गावो महार्थाः पुण्याश्च तारयन्ति च मानवान् ।
धारयन्ति प्रजाश्चेमा हविषा पयसा तथा ॥ २ ॥
न हि पुण्यतमं किंचिद्गोभ्यो भरतसत्तम ।
एताः पुण्याः पवित्राश्च त्रिषु लोकेषु सत्तमाः ॥ ३ ॥
देवानामुपरिष्टाच्च गावः प्रतिवसन्ति वै ।
दत्त्वा चैतास्तारयते यान्ति स्वर्गं मनीषिणः ॥ ४ ॥
मान्धाता यौवनाश्वश्च ययातिर्नहुषस्तथा ।

सिर झुकाके प्रणाम करता हूं । यह मैंने तुम्हारे समीप गौवोंके अत्युत्तम प्रशंसावादका केवल एकही अंश वर्णन किया है । इस लोकमें गोदानसे श्रेष्ठ दान और कुछ भी नहीं है, और गौवोंके अतिरिक्त अन्य कोई परम अवलम्ब नहीं हैं । (१३—१६)

भीष्म बोले, अनन्तर महानुभाव सौदास राजाने वसिष्ठ ऋषिके इस श्रेष्ठ वचनको वर समझके संयतचित्तसे द्विजोंको बहुतसी गऊ दान किया और अन्तकालमें गोलोक पाया । (१७)

अनुशासनपर्वमें ८० अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ८१ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! लोकमें पूर्वोक्त विषयोंके अतिरिक्त जो समस्त पवित्रोंके बीच पवित्र तथा परम पावन है, वह मेरे निकट वर्णन करिये (१)

भीष्म बोले, हे भरतसत्तम ! महार्थ, पवित्र गौवें मनुष्योंका उद्धार करती हैं, वे घृत और दूधके सहारे समस्त प्रजाको धारण कर रही हैं । गौवोंसे पवित्र और कुछ भी नहीं है, येही त्रिभुवनके बीच पुण्यदा, पवित्र और सत्तम हैं । गौवें देवताओंके भी ऊर्ध्वभागमें निवास करती हैं, मनीषिवृन्द गोदान करके कुल का उद्धार करते हुए स्वर्गमें गमन किया करते हैं । मान्धाता, यौवनाश्व, ययाति

गा वै ददन्तः सततं सहस्रशतसंमिताः ॥ ५ ॥
गताः परमकं स्थानं देवैरपि सुदुर्लभम्।
अपि चात्र पुरा गीतां कथयिष्यामि तेऽनघ ॥ ६ ॥
ऋषीणामुत्तमं धीमान्कृष्णद्वैपायनं शुकः।
अभिवाद्याह्निककृतः शुचिः प्रयतमानसः ॥ ७ ॥
पितरं परिपप्रच्छ दृष्टलोकपरावरम्।
को यज्ञः सर्वयज्ञानां वरिष्ठोऽभ्युपलक्ष्यते ॥ ८ ॥
किं च कृत्वा परं स्थानं प्राप्नुवन्ति मनीषिणः।
केन देवाः पवित्रेण स्वर्गमश्नन्ति वा विभो ॥ ९ ॥
किं च यज्ञस्य यज्ञत्वं क च यज्ञः प्रतिष्ठितः।
देवानामुत्तमं किं च किं च सत्रमितः परम् ॥ १० ॥
पवित्राणां पवित्रं च यत्तद् ब्रूहि पितर्मम।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं व्यासः परमधर्मवित्।
पुत्रायाकथयत्सर्वं तत्त्वेन भरतर्षभ ॥ ११ ॥
व्यास उवाच– गावः प्रतिष्ठा भूतानां तथा गावः परायणम्।
गावः पुण्याः पवित्राश्च गोधनं पावनं तथा ॥ १२ ॥
पूर्वमासन्नशृङ्गा वै गाव इत्यनुशुश्रुम।

और नहुष राजाने सैकडों, सहस्रों गऊ दान करके देवताओंसे भी दुर्लभ परम स्थानमें गमन किया था। हे अनघ! इस विषयमें मैं तुमसे पौराणिकी कथा कहता हूं। (२–६)

पवित्रतायुक्त सावधानचित्तवाले बुद्धिमान शुकदेवने नित्य कर्मसे निवृत्त होकर ऋषियोंमें श्रेष्ठ परावरलोकदर्शी पिता कृष्णद्वैपायनको प्रणाम करके प्रश्न किया, हे विभु! सब यज्ञोंके बीच किस यज्ञको आप श्रेष्ठ जानते हैं? मनीषिगण कौन कर्म करनेसे परम स्थान पाते हैं? देववृन्द किस पवित्र वस्तुके द्वारा स्वर्गलोकमें सुखभोग करते हैं? यज्ञका यज्ञत्व क्या है? यज्ञ किससे प्रतिष्ठित होरहा है? देवताओंके निमित्त उत्तम क्या है? हे पिता! इस लोकमें परम सत्त्व क्या है और जो पवित्रोंके बीच पवित्र हो, वह मेरे निकट प्रकट करिये। हे भरतश्रेष्ठ! परम धर्मज्ञ व्यासदेव इतनी बात सुनके पुत्रके निकट यथार्थ रीतिसे सारी कथा कहने लगे। (७—११)

व्यासदेव बोले, गौवें ही प्राणियों-

शृङ्गार्थे समुपासन्त ताः किल प्रभुमव्ययम् ॥ १३ ॥
ततो ब्रह्मा तु गाः प्रायमुपविष्टाः समीक्ष्य ह ।
ईप्सितं प्रददौ ताभ्यो गोभ्यः प्रत्येकशः प्रभुः ॥ १४॥
तासां शृङ्गाण्यजायन्त यस्या यादृङ्‍ मनोगतम् ।
नानावर्णाः शृङ्गवन्त्यस्ता व्यरोचन्त पुत्रक ॥ १५ ॥
ब्रह्मणा वरदत्तास्ता हव्यकव्यप्रदाः शुभाः ।
पुण्याः पवित्राः सुभगादिव्यसंस्थानलक्षणाः ॥ १६ ॥
गावस्तेजो महद्दिव्यं गवां दानं प्रशस्यते ।
ये चैताः संप्रयच्छन्ति साधवो वीतमत्सराः ॥ १७ ॥
ते वै सुकृतिनः प्रोक्ताः सर्वदानप्रदाश्च ते ।
गवां लोकं तथा पुण्यमाप्नुवन्ति च तेऽनघ ॥ १८ ॥
यत्र वृक्षा मधुफला दिव्यपुष्पफलोपगाः ।
पुष्पाणि च सुगन्धीनि दिव्यानि द्विजसत्तम ॥ १९ ॥
सर्वा मणिमयी भूमिः सर्वकाञ्चनवालुकाः ।
सर्वर्तुसुखसंस्पर्शा निष्पङ्का निरजाः शुभाः ॥ २० ॥

की प्रतिष्ठा स्थान, परम अवलम्ब, पुण्य, पवित्र और परम पावन हैं। हमने ऐसा सुना है, कि पहले गौवोंके शींग नहीं थे, अनन्तर उन्होंने शींगके लिये अव्यय प्रभु प्रजापतिकी उपासना की थी। तब सर्वशक्तिमान् ब्रह्माने गौवोंको योगयुक्त देखके उन हरएकको ही अभिलषित वर दिया। हे पुत्र! उनके बीच जिसकी जैसी अभिलाषा थी, उनके वैसी ही शींग उत्पन्न हुई, वे अनेक वर्णवाले शींगोंसे युक्त होकर सुशोभित हुई। (१२-१५)

जब ब्रह्माने उन्हें वर दान किया, तब वे कल्याणदायिनी गौवें, हव्यकव्य-प्रदान करने लगीं और पुण्य, पवित्र, सुभगा, दिव्य अवयव लक्षण युक्त हुई। गौवें उत्तम, महत्, दिव्य तेजस्वरूप हैं, जो मत्सररहित साधु पुरुष इन्हें दान करते हैं, वेही सुकृती तथा सर्वदान-प्रदाता हैं। हे पापरहित! उन्हें ही पवित्र गोलोक मिलता है। हे द्विजसत्तम! जिस स्थानमें वृक्षोंमें मधुर फल लगते और दिव्य पुष्प तथा फलसम्पन्न होते हैं, सब पुष्प भी दिव्य और सुगन्धियुक्त हुआ करते हैं; जिस स्थानमें सारी भूमि मणिमयी, सुवर्णवालुकासे युक्त, सब ऋतुओंमें सुखस्पर्श, पङ्करहित, रजोगुण-वर्जित और शुभदायिनी रहती है;

रक्तोत्पलवनैश्चैव मणिखण्डैर्हिरण्मयैः ।
तरुणादित्यसङ्काशैर्भान्ति तत्र जलाशयाः ॥ २१ ॥
महार्हमणिपत्रैश्च काञ्चनप्रभकेसरैः ।
नीलोत्पलविमिश्रैश्च सरोभिर्बहुपङ्कजैः ॥ २२ ॥
करवीरवनैः फुल्लैः सहस्रावर्तसंवृतैः ।
सन्तानकवनैः फुल्लैर्वृक्षैश्च समलंकृताः ॥ २३ ॥
निर्मलाभिश्च मुक्ताभिर्मणिभिश्च महाप्रभैः ।
उद्भूतपुलिनास्तत्र जातरूपैश्च निम्नगाः ॥ २४ ॥
सर्वरत्नमयैश्चित्रैरवगाढा द्रुमोत्तमैः ।
जातरूपमयैश्चान्यैर्हुताशनसमप्रभैः ॥ २५ ॥
सौवर्णा गिरयस्तत्र मणिरत्नशिलोच्चयाः ।
सर्वरत्नमयैर्भान्ति शृङ्गैश्चारुभिरुच्छ्रितैः ॥ २६ ॥
नित्यपुष्पफलास्तत्र नगाः पत्ररथाकुलाः ।
दिव्यगन्धरसैः पुष्पैः फलैश्च भरतर्षभ ॥ २७ ॥
रमन्ते पुण्यकर्माणस्तत्र नित्यं युधिष्ठिर ।
सर्वकामसमृद्धार्था निःशोका गतमन्यवः ॥ २८ ॥
विमानेषु विचित्रेषु रमणीयेषु भारत ।

वहांपर समस्त तालाव सूर्यसदृश लाल पत्थरसे युक्त, कमलवन और हिरण्मय मणिखण्डोंसे शोभित हैं। (१९-२१)

महार्ह मणिकी भांति पत्र, सुवर्ण प्रभायुक्त केशर, नीलोत्पलयुक्त विविध भांतिके कमल शोभित तालावोंसे अलंकृत करवीरवन, सहस्र आवर्त्तसे परिपूरित सन्तानवन, फूले हुए वृक्षोंसे शोभित निर्मल मुक्ताजाल और महाप्रभ मणियों तथा सुवर्णसे सहारेकी वहां नदियोंकी तटभूमि प्रकट हुई है। कोई वृक्ष सुवर्णमय और कोई वृक्ष अग्निसदृश प्रभायुक्त हैं, वैसे सर्वरत्नमय विचित्र वृक्षोंसे परिपूरित उस स्थानमें सुवर्णमय सब पर्वत मणिरत्न शिला तथा सर्वरत्नमय ऊंचे मनोहर शृङ्गोंसे शोभित होरहे हैं। (२१-२६)

हे भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिर! उस नित्यफल पुष्पोंसे युक्त वृक्षों और पक्षियोंसे परिपूरित स्थानमें पुण्यकर्मवाले मनुष्य सर्वकामसमृद्धार्थ और शोकरहित तथा मन्युहीन होकर सदा दिव्य गन्धवाले फूलों और दिव्य रसयुक्त फलोंसे प्रमु-

मोदन्ते पुण्यकर्माणो विहरन्तो यशस्विनः ॥ २९ ॥
उपक्रीडन्ति तान् राजन् शुभाश्चाप्सरसां गणाः ।
एतांल्लोकानवाप्नोति गां दत्त्वा वै युधिष्ठिर ॥ ३० ॥
येषामधिपतिः पूषा मारुतो बलवान्बली ।
ऐश्वर्ये वरुणो राजा नाममात्रं युगन्धराः ॥ ३१ ॥
सुरूपा बहुरूपाश्च विश्वरूपाश्च मातरः ।
प्राजापत्यमिति ब्रह्मन् जपेन्नित्यं यतव्रतः ॥ ३२ ॥
गाश्च शुश्रूषते यश्च समन्वेति च सर्वशः ।
तस्मै तुष्टाः प्रयच्छन्ति वरानपि सुदुर्लभान् ॥ ३३ ॥
द्रुह्येन्न मनसा वाऽपि गोषु नित्यं सुखप्रदः ।
अर्चयेत सदा चैव नमस्कारैश्च पूजयेत् ॥ ३४ ॥
दान्तः प्रीतमना नित्यं गवां व्युष्टिं तथाऽश्नुते ।
त्र्यहमुष्णं पिबेन्मूत्रं त्र्यहमुष्णं पिबेत्पयः ॥ ३५ ॥
गवामुष्णं पयः पीत्वा त्र्यहमुष्णं घृतं पिबेत् ।
त्र्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षो भवेत्त्र्यहम् ॥ ३६ ॥

दित होते हैं। हे भारत! पुण्यकर्मा यशस्वी मनुष्य वहांपर विचित्र, रमणीय विमानोंमें विहार करते हुए प्रसन्न हुआ करते हैं। हे महाराज! उत्तम रूपवाली अप्सरायें उनके निकट क्रीडा करती हैं। हे युधिष्ठिर! गोदान करनेसे मनुष्य इन्हीं लोकोंको पाता है। (२७-३०)

सूर्य और बलवान वायु जिनके प्रभु हैं, ऐश्वर्यविषयमें जिनके राजा वरुण हैं, सत्य प्रभृति युगोंको धारण करनेसे जिनका युगन्धर नाम हुआ है, उन उत्तम रूपवाली बहुरूपिणी विश्वरूपा मातृगणके नामोंका यतव्रती होकर सदा जप करे, ब्रह्माके द्वारा यही तपस्या कही गई है। जो लोग गौवोंकी सेवा करते हैं और सब भांतिसे उनके अनुगत होते हैं, उनपर वह प्रसन्न होके दुर्लभ वर दिया करते हैं। मनुष्य मनसे भी कभी गौवोंसे द्रोहाचरण न करे, सदा उनके लिये सुखदाता होवे, गौवोंकी सदा अर्चना करे तथा नमस्कार करके उनकी पूजा करे। (३१-३४)

दमयुक्त और दयावान मनुष्य सदा गौवोंकी समृद्धि भोग किया करते हैं। तीन दिन उष्ण गोमूत्र पीवे, फिर तीन दिन गर्म दूध पीवे; अनन्तर गऊका दूध पीके तीन दिन उष्ण घृत पीवे;

येन देवाः पवित्रेण भुञ्जते लोकमुत्तमम् ।
यत्पवित्रं पवित्राणां तद् घृतं शिरसा वहेत् ॥ ३७ ॥
घृतेन जुहुयादग्निं घृतेन स्वस्ति वाचयेत् ।
घृतं प्राशेद् घृतं दद्याद्गवां पुष्टिं तथाऽश्नुते ॥ ३८ ॥
निर्हृतैश्च यवैर्गोभिर्मासं प्रश्रितयावकः ।
ब्रह्महत्यासमं पापं सर्वमेतेन शुध्यते ॥ ३९ ॥
पराभवाच्च दैत्यानां देवैः शौचमिदं कृतम् ।
ते देवत्वमपि प्राप्ताः संसिद्धाश्च महाबलाः ॥ ४० ॥
गावः पवित्राः पुण्याश्च पावनं परमं महत् ।
ताश्च दत्त्वा द्विजातिभ्यो नरः स्वर्गमुपाश्नुते ॥ ४१ ॥
गवां मध्ये शुचिर्भूत्वा गोमतीं मनसा जपेत् ।
पूताभिरद्भिराचम्य शुचिर्भवति निर्मलः ॥ ४२ ॥
अग्निमध्ये गवां मध्ये ब्राह्मणानां च संसदि ।
विद्यावेदव्रतस्नाता ब्राह्मणाः पुण्यकर्मिणः ॥ ४३ ॥
अध्यापयेरन् शिष्यान्वै गोमतीं यज्ञसंमिताम् ।

तीन दिनतक गर्म घृत पीकर त्रिरात्र वायु पीके रहे । देववृन्द जिस पवित्र वस्तुके सहारे उत्तम लोकोंको भोगते हैं, जो कि पवित्र वस्तुओंके बीच पवित्र है, उस घृतको माथेपर रखे । घृतसे अग्निमें होम करे, घृतसे स्वस्ति-वाचन करे, घृतप्राशन करे और घृत दान करे तो गौवोंकी पुष्टिभोग प्राप्त होगा । गौवोंके द्वारा गोमयके सहित परित्यक्त यवको यावक कहते हैं, जो लोग एक महीने तक यावक भोजन करते हैं, उनके ब्रह्महत्यासदृश पाप इसहीके सहारे छूट जाते हैं । (३५–३९)

दैत्योंके पराभवके हेतु देवताओंने इसे पवित्र किया है, इसीसे वे देवत्व पाके सम्यक् सिद्ध और महाबलसे युक्त हुए हैं । गौवें परम पवित्र, महत् पावन और पुण्यप्रद हैं, मनुष्य द्विजातियोंको गऊ दान करनेसे स्वर्ग भोग करता है । गौवोंके बीच पवित्र, होकर मनही मन गोमती ऋक्के सहारे प्रकाशित अर्थ जपे, मनुष्य पवित्र जलसे आचमन करके मन्त्र जपनेसे पवित्र और निर्मल होता है । (४०—४२)

अग्नि तथा गौवोंके बीच और ब्राह्मणोंके समाजमें विद्या वेदव्रतस्नात, पुण्य कर्मवाले ब्राह्मणोंको उचित है, कि शिष्योंको यज्ञसंमित गोमती ऋक् पढावें ।

त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा गोमतीं लभते वरम् ॥ ४४ ॥
पुत्रकामश्च लभते पुत्रं धनमथापि वा ।
पतिकामा च भर्तारं सर्वकामांश्च मानवः ।
गावस्तुष्टाः प्रयच्छन्ति सेविता वै न संशयः ॥ ४५ ॥
एवमेता महाभागा यज्ञियाः सर्वकामदाः ।
रोहिण्य इति जानीहि नैताभ्यो विद्यते परम् ॥ ४६ ॥
इत्युक्तः स महातेजाः शुकः पित्रा महात्मना ।
पूजयामास गां नित्यं तस्मात्त्वमपि पूजय ॥ ४७ ॥ [३८०१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे गोप्रदानिके एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

युधिष्ठिर उवाच- मया गवां पुरीषं वै श्रिया जुष्टमिति श्रुतम् ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं संशयोऽत्र पितामह ॥ १ ॥
भीष्म उवाच- अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
गोभिर्नृपेह संवादं श्रिया भरतसत्तम ॥ २ ॥
श्रीः कृत्वेह वपुः कान्तं गोमध्येषु विवेश ह ।
गावोऽथ विस्मितास्तस्या दृष्ट्वा रूपस्य संपदम् ॥ ३ ॥

त्रिरात्र उपवासयुक्त होनेसे गोमती ऋक्के प्रभावसे वर प्राप्त होता है। पुत्र कामनावाले मनुष्य पुत्र पाते हैं, धनके अभिलाषी मनुष्योंको धन मिलता है। पतिकी इच्छा करनेवाली स्त्री पति पाती है, मनुष्योंका इसके सहारे सब प्रयोजन सिद्ध होता है। इस ही प्रकार ये महा-भाग यज्ञहितकारी सर्वकामद गौ सन्तुष्ट होकर निःसन्देह वर दान करती हैं, इन गौवोंको रोहिणी जानो, इनसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है। महातेजस्वी शुकदेवने महानुभाव पिताका ऐसा वचन सुनके प्रतिदिन गौवोंकी पूजा की थी; इसलिये तुम भी उनकी पूजा करो (४३-४७)

अनुशासनपर्वमें ८१ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ८२ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! मैंने सुना है, कि गौवोंका पुरीष श्रीयुक्त है, इसलिये इस विषयमें मुझे सन्देह है, इसीसे मैं इसे सुननेकी इच्छा करता हूं। (१)

भीष्म बोले, हे भरतसत्तम महाराज! प्राचीन लोग इस विषयमें लक्ष्मीके सहित इस लोकमें गौवोंके संवादयुक्त यह पुरातन इतिहास कहा करते हैं। लक्ष्मीने मनोहर शरीर धारण करके इस

गाव ऊचुः— काऽसि देवि कुतो वा त्वं रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
विस्मिताः स्म महाभागे तव रूपस्य संपदा ॥ ४ ॥
इच्छाम त्वां वयं ज्ञातुं का त्वं क्व च गमिष्यसि ।
तत्त्वेन वरवर्णाभे सर्वमेतद्ब्रवीहि नः ॥ ५ ॥
श्रीरुवाच— लोककान्तास्मि भद्रं वः श्रीर्नामाऽहं परिश्रुता ।
मया दैत्याः परित्यक्ता विनष्टाः शाश्वतीः समाः ॥६॥
मयाऽभिपन्ना देवाश्च मोदन्ते शाश्वतीः समाः ।
इन्द्रो विवस्वान्सोमश्च विष्णुरापोऽग्निरेव च ॥ ७ ॥
मयाभिपन्नाः सिध्यन्ते ऋषयो देवतास्तथा ।
यान्नाविशाम्यहं गावस्ते विनश्यन्ति सर्वशः ॥ ८ ॥
धर्मश्चार्थश्च कामश्च मया जुष्टाः सुखान्विताः ।
एवंप्रभावां मां गावो विजानीत सुखप्रदाः ॥ ९ ॥
इच्छामि चापि युष्मासु वस्तुं सर्वासु नित्यदा ।
आगत्य प्रार्थये युष्माञ्छ्रीजुष्टा भवताऽथ वै ॥ १० ॥
गाव ऊचुः— अध्रुवा चपला च त्वं सामान्या बहुभिः सह ।

लोकमें गौवोंके बीच प्रवेश किया, गौवें उनकी सुन्दरताई-सम्पत्ति देखके विस्मित हुईं । (२-३)

गौवोंने कहा, हे देवि ! तुम कौन हो ? किस स्थानसे आई हो ? भूलोकमें तुम्हारे रूपकी उपमा नहीं है। हे महाभागे ! तुम्हारे रूपसम्पत्तिसे हम विस्मययुक्त हुई हैं । तुम कौन हो, कहां जाओगी, हमें इसे जाननेकी इच्छा है। हे वरवर्णाभे ! इसलिये तुम यथार्थ रीतिसे मेरे निकट यह सब यथार्थ वृत्तान्त कहो । (४-५)

लक्ष्मी बोली, तुम लोगोंका मङ्गल होवे, मैं लोककान्ता श्रीनामसे विख्यात हूं; दैत्य लोग मुझसे परित्यक्त होकर बहुत समयसे नष्ट हुए हैं और देववृन्द मुझे पाके सदा प्रमुदित होरहे हैं । इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, विष्णु, वरुण और अग्नि प्रभृति देवगण तथा ऋषिवृन्द मुझसे युक्त होकर सिद्ध होते हैं । हे गोवृन्द ! मैं जिसमें आविष्ट नहीं होती, वह सब प्रकारसे विनष्ट होता है । धर्म, अर्थ और काम मुझसे संयुक्त होनेपर ही सुखदायक हुआ करता है । हे सुखप्रद गोगण ! मुझे ऐसे ही प्रभावयुक्त जानो, मैं सदा तुम्हारे निकट निवास करनेकी इच्छा करती हूं । मैं तुम्हारे निकट आके प्रार्थना करती हूं, कि तुम

न त्वामिच्छाम भद्रं ते गम्यतां यत्र रंस्यसे ॥ ११ ॥
वपुष्मन्त्यो वयं सर्वाः किमस्माकं त्वयाऽद्य वै।
यथेष्टं गम्यतां तत्र कृतकार्या वयं त्वया ॥ १२ ॥
श्रीरुवाच— किमेतद्वः क्षमं गावो यन्मां नेहाभिनन्दथ।
न मां संप्रतिगृह्णीध्वं कस्माद्वै दुर्लभां सतीम् ॥ १३ ॥
सत्यं च लोकवादोऽयं लोके चरति सुव्रताः।
स्वयं प्राप्ते परिभवो भवतीति विनिश्चयः ॥ १४ ॥
महदुग्रं तपः कृत्वा मां निषेवन्ति मानवाः।
देवदानवगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ॥ १५ ॥
प्रभाव एष वो गावः प्रतिगृह्णीत मामिह।
नावमान्या ह्यहं सौम्यास्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ १६ ॥
गाव ऊचुः— नावमन्यामहे देवि न त्वां परिभवामहे।
अध्रुवा चलचित्ताऽसि ततस्त्वां वर्जयामहे ॥ १७ ॥
बहुना च किमुक्तेन गम्यतां यत्र वाञ्छसि।

लोग श्रीयुक्त रहो। (६—१०)

गौवोंने कहा, तुम्हारा मङ्गल होवे, तुम अस्थिर और चपला हो, इसीसे अनेक पुरुषोंके संग समान भावसे रहती हो, इसलिये हम सब तुम्हें नहीं चाहती हैं, जिस स्थानमें तुम अनुरक्त रहो, वहां जाओ। हम सब कोई वपुष्मती हैं इस समय तुम हमारी कौनसी इष्टसिद्धि करोगी? तुम्हारी जहां इच्छा हो, वहां जाओ, हम सब कृतकार्य हुई हैं। (११-१२)

लक्ष्मी बोली, हे गोवृन्द! तुम लोग जो मुझे अभिनन्दित नहीं करती हो, क्या यह तुम्हें उचित है? मैं दूसरोंके लिये दुर्लभ सती साध्वी हूं, तब तुम लोग किस निमित्त मुझे नहीं ग्रहण करती हो? हे उत्तमव्रती गोगण! लोकमें जो यह लोकापवाद प्रचलित है, कि स्वयं उपस्थित होनेपर पराभव होती है, वह सत्य तथा निश्चित है। मनुष्य, देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, सर्प और राक्षसगण अत्यन्त उग्रतपस्या करते हुए मेरी सेवा किया करते हैं। हे गोवृन्द! तुम्हारा तो यही प्रभाव है, इसलिये मुझे ग्रहण करो। हे प्रियदर्शना! स्थावरजंगममय तीनों लोकोंके बीच मैं किसीके भी अवमानकी पात्री नहीं हूं। (१३-१६)

गौवोंने कहा, हे देवि! हम अवमान वा तुम्हारा पराभव नहीं करती हैं, तुम

वपुष्मन्त्यो वयं सर्वाः किमस्माकं त्वयाऽनघे ॥ १८ ॥

श्रीरुवाच— अवज्ञाता भविष्यामि सर्वलोकस्य मानदाः ।
प्रत्याख्यानेन युष्माकं प्रसादः क्रियतां मम ॥ १९ ॥
महाभागा भवत्यो वै शरण्याः शरणागताम् ।
परित्रायन्तु मां नित्यं भजमानामनिन्दिताम् ॥ २० ॥
माननामहमिच्छामि भवत्यः सततं शिवाः ।
अप्येकाङ्गेष्वधो वस्तुमिच्छामि च सुकुत्सिते ॥ २१ ॥
न वोऽस्ति कुत्सितं किंचिदङ्गेष्वालक्ष्यतेऽनघाः ।
पुण्याः पवित्राः सुभगा ममादेशं प्रयच्छथ ॥ २२ ॥
वसेयं यत्र वो देहे तन्मे व्याख्यातुमर्हथ ।
एवमुक्तास्ततो गावः शुभाः करुणवत्सलाः ।
संमन्त्र्य सहिताः सर्वाः श्रियमूचुर्नराधिप ॥ २३ ॥
अवश्यं मानना कार्या तवास्माभिर्यशस्विनि ।
शकृन्मूत्रे निवस त्वं पुण्यमेतद्धि नः शुभे ॥ २४ ॥

अस्थिर और चलचित्ता हो, इस ही लिये तुम्हें परित्याग करती हैं, बहुत वचन कहनेसे क्या फल है ? तुम्हारी जिस स्थानमें इच्छा हो, वहां जाओ; हम सब वपुष्मती हैं। हे पापरहिते ! तुमसे हमारा क्या होगा ? (१७–१८)

लक्ष्मी बोली, हे मानदात्रीगण ! तुम लोग यदि मुझे प्रत्याख्यान करोगी, तो मैं सब लोगोंके निकट अवज्ञात होऊंगी, इसलिये तुम्हें मुझपर प्रसन्न होना चाहिये। तुम सबकी शरण्य माहाभागा हो, इसलिये मुझ सदा भजमान अनिन्दनीय शरणागताका परित्राण करो। हे कल्याणीगण ! मैं तुम्हारे समीप सम्मानकी अभिलाष करती हूं, मुझे तुम्हारे अधोवर्त्ती अत्यन्त निकृष्ट एक अङ्गमें वास करनेकी इच्छा है। हे पापरहित गोवृन्द ! तुम्हारे शरीरके बीच कोई स्थान भी कुत्सित नहीं दीखता है, तुम लोग पुण्यदा, पवित्र और सुभगा हो, इसलिये मुझे आज्ञा दो; मैं तुम्हारे देहके जिस स्थानमें वास करूंगी, उसे तुम्हें कहना उचित है। (१९—२३)

हे नरनाथ ! करुणावत्सला कल्याणदायिनी गौवोंने लक्ष्मीका ऐसा वचन सुनके इकट्ठी होकर विचारके उनसे कहा, हे कल्याणदायिनि यशस्विनि ! हम लोगोंको तुम्हारा अवश्य सम्मान करना योग्य है, इसलिये तुम हमारे गोमयमूत्रमें निवास करो, क्यों कि

श्रीरुवाच— दिष्ट्या प्रसादो युष्माभिः कृतो मेऽनुग्रहात्मकः ।
एवं भवतु भद्रं वः पूजिताऽस्मि सुखप्रदाः ॥ २५ ॥
एवं कृत्वा तु समयं श्रीर्गोभिः सह भारत ।
पश्यन्तीनां ततस्तासां तत्रैवान्तरधीयत ॥ २६ ॥
एवं गोशकृतः पुत्र माहात्म्यं तेऽनुवर्णितम् ।
माहात्म्यं च गवां भूयः श्रूयतां गदतो मम ॥ २७ ॥ [३८२८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे श्रीगोसंवादो नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

भीष्म उवाच- ये च गां संप्रयच्छन्ति हुतशिष्टाशिनश्च ये ।
तेषां सत्राणि यज्ञाश्च नित्यमेव युधिष्ठिर ॥ १ ॥
ऋते दधिघृतेनेह न यज्ञः संप्रवर्तते ।
तेन यज्ञस्य यज्ञत्वमतो मूलं च कथ्यते ॥ २ ॥
दानानामपि सर्वेषां गवां दानं प्रशस्यते ।
गावः श्रेष्ठाः पवित्राश्च पावनं ह्येतदुत्तमम् ॥ ३ ॥
पुष्ट्यर्थमेताः सेवेत शान्त्यर्थमपि चैव ह ।
पयो दधि घृतं चासां सर्वपापप्रमोचनम् ॥ ४ ॥
गावस्तेजः परं प्रोक्तमिह लोके परत्र च ।

हमारा यही पवित्र है । लक्ष्मी बोली, प्रारब्धसे ही तुमने मुझपर प्रसन्न होके कृपा की है, इसलिये ऐसा ही होगा। हे सुखप्रद गोवृन्द ! तुम्हारा मङ्गल हो, मैं पूजित हुई हूं । हे भारत ! श्रीदेवीने गौवोंके सङ्ग इसी भांति नियमबद्ध होकर उन लोगोंके सम्मुखमें वहां ही अन्तर्हित होगई । हे तात ! यह मैंने तुम्हारे निकट गोमयका माहात्म्य वर्णन किया, अब फिर गौवोंका माहात्म्य कहता हूं । (२३—२७)

अनुशासनपर्वमें ८२ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें ८३ अध्याय ।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर ! जो लोग गोदान करते तथा जो होमके शेषमें भोजन किया करते हैं, उनके यज्ञ वा सत्र सदा सिद्ध होते हैं । इस लोकमें दही और घृतके विना यज्ञ पूर्ण नहीं होता, इसही निमित्त यज्ञका यज्ञत्व और मूल कहा जाता है । सब दानोंके बीच गोदान श्रेष्ठ है, गौवें सबसे उत्तम तथा पवित्र हैं और येही अत्यन्त पावन हैं । पुष्टि और शान्तिके निमित्त इनकी सेवा करे; इनके दूध, दही और घृत समस्त

न गोभ्यः परमं किंचित्पवित्रं भरतर्षभ ॥ ५ ॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
पितामहस्य संवादमिन्द्रस्य च युधिष्ठिर ॥ ६ ॥
पराभूतेषु दैत्येषु शक्रस्त्रिभुवनेश्वरः ।
प्रजाः समुदिताः सर्वाः सत्यधर्मपरायणाः ॥ ७ ॥
अथर्षयः सगन्धर्वाः किन्नरोरगराक्षसाः ।
देवासुरसुपर्णाश्च प्रजानां पतयस्तथा ॥ ८ ॥
पर्युपासन्त कौन्तेय कदाचिद्वै पितामहम् ।
नारदः पर्वतश्चैव विश्वावसुर्हहाहुहूः ॥ ९ ॥
दिव्यतानेषु गायन्तः पर्युपासन्त तं प्रभुम् ।
तत्र दिव्यानि पुष्पाणि प्रावहत्पवनस्तदा ॥ १० ॥
आजह्रुर्ऋतवश्चापि सुगन्धीनि पृथक् पृथक् ।
तस्मिन्देवसमावाये सर्वभूतसमागमे ॥ ११ ॥
दिव्यवादित्रसंघुष्टे दिव्यस्त्रीचारणावृते ।
इन्द्रः पप्रच्छ देवेशमभिवाद्य प्रणम्य च ॥ १२ ॥
देवानां भगवन्कस्माल्लोकेशानां पितामह ।

पाप नष्ट करते हैं। इस लोक तथा परलोकमें गौवें परम तेज स्वरूप कही गई हैं। हे भरतश्रेष्ठ ! गौवोंसे बढके परम पवित्र वस्तु और कुछ भी नहीं है। (१—५)

हे युधिष्ठिर ! इस विषयमें प्राचीन लोग ब्रह्मा और इन्द्रके संवादयुक्त पुरातन इतिहास कहा करते हैं। हे युधिष्ठिर ! किसी समयमें दैत्यदलके पराजित होनेपर त्रिलोकीनाथ इन्द्र, सत्य धर्ममें रत समस्त प्रजा, ऋषि, गन्धर्व, किन्नर, सर्प, राक्षस, देव, असुर और सुपर्ण, प्रजापति, नारद, पर्वत, विश्वावसु और हाहा, हूहू प्रभृति दिव्य तानसे गान करते हुए सब भांतिसे ब्रह्माकी उपासना कर रहे थे। उस समय वायु दिव्य पुष्पोंसे युक्त होकर बह रहा था, छहों ऋतु पृथक् पृथक् सुगन्धि लाने लगीं। उस सुरसभामें सब प्राणियोंके समागमके समय दिव्य बाजोंके सहित दिव्यांगनाओं और चारणोंसे सभास्थान परिपूरित होनेपर देवराजने ब्रह्माको प्रणाम करके विनयपूर्वक प्रश्न किया। (६-१२)

हे भगवन् पितामह ! गोलोक किस निमित्त लोकेश्वर देवताओंके ऊर्ध्वमें

उपरिष्टाद्गवां लोक एतदिच्छामि वेदितुम् ॥ १३ ॥
किं तपो ब्रह्मचर्यं वा गोभिः कृतमिहेश्वर ।
देवानामुपरिष्टाद्यद्वसन्त्यरजसः सुखम् ॥ १४ ॥
ततः प्रोवाच ब्रह्मा तं शक्रं बलनिषूदनम् ।
अवज्ञातास्त्वया नित्यं गावो बलनिषूदन ॥ १५ ॥
तेन त्वमासां माहात्म्यं न वेत्सि शृणु यत्प्रभो ।
गवां प्रभावं परमं माहात्म्यं च सुरर्षभ ॥ १६ ॥
यज्ञाङ्गं कथिता गावो यज्ञ एव च वासव ।
एताभिश्च विना यज्ञो न वर्तेत कथंचन ॥ १७ ॥
धारयन्ति प्रजाश्चैव पयसा हविषा तथा ।
एतासां तनयाश्चापि कृषियोगमुपासते ॥ १८ ॥
जनयन्ति च धान्यानि बीजानि विविधानि च ।
ततो यज्ञाः प्रवर्तन्ते हव्यं कव्यं च सर्वशः ॥ १९ ॥
पयो दधि घृतं चैव पुण्याश्चैताः सुराधिप ।
वहन्ति विविधान् भारान् क्षुत्तृष्णापरिपीडिताः॥२०॥
मुनींश्च धारयन्तीह प्रजाश्चैवापि कर्मणा ।
वासवाकूटवाहिन्यः कर्मणा सुकृतेन च ॥ २१ ॥

स्थापित हुआ है ? मैं इसे जाननेकी इच्छा करता हूं, हे ईश्वर ! इस लोकमें गौओंने कौनसी तपस्या वा ब्रह्मचर्य किया था, कि जिसके प्रभावसे रजोगुण से रहित होकर सहजमें ही देवताओंके ऊर्ध्वमें निवास करती हैं। अनन्तर ब्रह्मा उस बल-निषूदन इन्द्रसे बोले, हे पाक-शासन ! गौवोंकी तुम सदा अवज्ञा किया करते हो, इस ही निमित्त तुम इनके माहात्म्यको नहीं जानते। हे सुरेश्वर ! इसलिये तुम गौवोंका परम प्रभाव और माहात्म्य सुनो। हे इन्द्र ! गौवें यज्ञके अङ्ग तथा यज्ञरूपी कही जाती हैं; गौ-वोंके विना किसी प्रकारसे यज्ञ पूरा नहीं होता। (१३—१७)

गौवें घृत और दूधसे सारी प्रजाको धारण कर रही हैं; इनके पुत्र कृषिका-योंको निबाहते हुए विविध धान्य तथा बीज उत्पन्न किया करते हैं। उसहीसे यज्ञ और हव्य कव्य आरम्भ होते हैं। हे देवराज ! ये गौवें तथा इनके दूध, दही और घृत अत्यन्त पवित्र है। ये भूख प्याससे अधिक पीडित होके भी विविध भार ढोया करती हैं। ये कार्यसे

उपरिष्टात्ततोऽस्माकं वसन्त्येताः सदैव हि।
एवं ते कारणं शक्र निवासकृतमद्य वै ॥ २२ ॥
गवां देवोपरिष्टाद्धि समाख्यातं शतक्रतो।
एता हि वरदत्ताश्च वरदाश्चापि वासव ॥ २३ ॥
सुरभ्यः पुण्यकर्मिण्यः पावनाः शुभलक्षणाः।
यदर्थं गां गताश्चैव सुरभ्यः सुरसत्तम ॥ २४ ॥
तच्च मे शृणु कार्त्स्न्येन वदतो बलसूदन।
पुरा देवयुगे तात देवेन्द्रेषु महात्मसु ॥ २५ ॥
त्रीँल्लोकाननुशासत्सु विष्णौ गर्भत्वमागते।
अदित्यास्तप्यमानायास्तपो घोरं सुदुश्चरम् ॥ २६ ॥
पुत्रार्थममरश्रेष्ठ पादेनैकेन नित्यदा।
तां तु दृष्ट्वा महादेवीं तप्यमानां महत्तपः ॥ २७ ॥
दक्षस्य दुहिता देवी सुरभी नाम नामतः।
अतप्यत तपो घोरं हृष्टा धर्मपरायणा ॥ २८ ॥
कैलासशिखरे रम्ये देवगन्धर्वसेविते।
व्यतिष्ठदेकपादेन परमं योगमास्थिता ॥ २९ ॥
दश वर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।

मुनियों तथा समस्त प्रजाको धारण कर रही हैं। हे इन्द्र! ये निष्कपट व्यवहार करती हैं, इसीसे कर्म और सुकृतके सहारे सदा हम लोगोंके ऊर्ध्वमें निवास किया करती हैं। हे देवराज! यह मैंने तुमसे देवताओंके ऊर्ध्वमें गौवोंके निवासका कारण कहा है। हे इन्द्र! इन्होंने वर पाया है और वर देनेमें भी समर्थ हैं। हे सुरसत्तम बल-सूदन! पुण्यकर्मशालिनी शुभलक्षण-वाली पावन गौवें जिस निमित्त पृथ्वी पर गई हैं, वह भी मैं विस्तारपूर्वक कहता हूं, सुनो। (१८—२५)

हे तात! पहले समय सत्ययुगमें महानुभाव देवेन्द्र त्रिभुवनका शासन कर रहे थे, उस समय अदितिके सदा एक पदसे स्थित होकर घोर दुश्चर तपस्या करनेसे भगवान विष्णु उसके गर्भस्थ हुए; उसी समय दक्षपुत्री सुरभि नाम्नी देवीने महादेवी अदितिको उत्तम महत् तपस्या करते देखकर हर्षपूर्वक धर्मपरायण होके घोर तपस्या की थी। वह परम योग अवलम्बन करके देव गन्धर्वोंसे सेवित रमणीय

संतप्तास्तपसा तस्या देवाः सर्षिमहोरगाः ॥ ३० ॥
तत्र गत्वा मया सार्धं पर्युपासन्त तां शुभाम्।
अथाहमब्रुवं तत्र देवीं तां तपसान्विताम् ॥ ३१ ॥
किमर्थं तप्यसे देवि तपो घोरमनिन्दिते।
प्रीतस्तेऽहं महाभागे तपसाऽनेन शोभने ॥ ३२ ॥
वरयस्व वरं देवि दाताऽस्मीति पुरन्दर ॥ ३३ ॥

सुरभ्युवाच— वरेण भगवन्मह्यं कृतं लोकपितामह।
एष एव वरो मेऽद्य यत्प्रीतोऽसि ममानघ ॥ ३४ ॥

ब्रह्मोवाच— तामेवं ब्रुवतीं देवीं सुरभिं त्रिदशेश्वर।
प्रत्यब्रुवं यद्देवेन्द्र तन्निबोध शचीपते ॥ ३५ ॥
अलोभकाम्यया देवि तपसा च शुभानने।
प्रसन्नोऽहं वरं तस्माद्मरत्वं ददामि ते ॥ ३६ ॥
त्रयाणामपि लोकानामुपरिष्टान्निवत्स्यसि।
मत्प्रसादाच्च विख्यातो गोलोकः सम्भविष्यति ॥३७॥
मानुषेषु च कुर्वाणाः प्रजाः कर्मशुभास्तव।
निवत्स्यन्ति महाभागे सर्वा दुहितरश्च ते ॥ ३८ ॥

कैलास पर्वतकी शिखरपर दश हजार दश सौ वर्षतक एक चरणसे निवास करने लगी। देवता, महर्षि और महोरग गण उस देवीकी तपस्यासे सन्तप्त होकर मेरे सहित वहां जाके उस कल्याणीकी उपासना करनेमें प्रवृत्त हुए। अनन्तर मैंने उस तपस्या करनेवाली देवीसे कहा, हे अनिन्दिते देवि! तुम किस निमित्त घोर तपस्या करती हो? हे महाभागे शोभने! मैं तुम्हारी इस तपस्यासे प्रसन्न हुआ हूं। हे देवि! जो इच्छा हो, वर मांगो, मैं तुम्हें वर देता हूं। (२५—३३)

सुरभि बोली, हे लोकपितामह भगवन्! मुझे वरसे क्या प्रयोजन है? हे अनघ! आप जो मुझपर प्रसन्न हुए, यही मेरे लिये वर है। (३४)

ब्रह्मा बोले, हे त्रिदशेश्वर शचीपति देवेन्द्र! उस सुरभि देवीके ऐसा कहनेपर मैंने उसे जो उत्तर दिया, वह सुनो। हे शुभानने देवि! तुम्हारी अलोभकामना और तपस्यासे मैं प्रसन्न होकर तुम्हें अमरत्वका वर देता हूं और तुम तीनों लोकोंके ऊर्ध्वमें निवास करोगी; मेरे प्रसादसे वह स्थान गोलोक नामसे विख्यात होगा, हे महाभागे!

मनसा चिन्तिता भोगास्त्वया वै दिव्यमानुषाः ।
यच्च सर्वं सुखं देवि तत्ते सम्पत्स्यते शुभे ॥ ३९ ॥
तस्या लोकाः सहस्राक्ष सर्वकामसमन्विताः ।
न तत्र क्रमते मृत्युर्न जरा न च पावकः ॥ ४० ॥
न दैवं नाशुभं किंचिद्विद्यते तत्र वासव ।
तत्र दिव्यान्यरण्यानि दिव्यानि भवनानि च ॥ ४१ ॥
विमानानि सुयुक्तानि कामगानि च वासव ।
ब्रह्मचर्येण तपसा सत्येन च दमेन च ॥ ४२ ॥
दानैश्च विविधैः पुण्यैस्तथा तीर्थानुसेवनात् ।
तपसा महता चैव सुकृतेन च कर्मणा ॥ ४३ ॥
शक्यः समासादयितुं गोलोकः पुष्करेक्षण ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं मया शक्रानुपृच्छते ॥ ४४ ॥
न ते परिभवः कार्यो गवामसुरसूदन ॥ ४५ ॥
भीष्म उवाच–एतच्छ्रुत्वा सहस्राक्षः पूजयामास नित्यदा ।
गाश्चक्रे बहुमानं च तासु नित्यं युधिष्ठिर ॥ ४६ ॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं पावनं च महाद्युते ।

तुम्हारी सन्तान वा दुहितावृन्द मनुष्यलोकमें शुभ कर्म करके गोलोकमें आकर निवास करेंगी । तुम मनही मन ध्यान करनेसे ही दिव्य मानुष भोग पाओगी। हे शुभे ! हे देवि ! स्वर्गमें जो कुछ सुख है, उसे तुम वहांपर उपभोग करोगी । (३५—३९)

हे सहस्राक्ष ! सुरभिके समस्त लोक सर्वकामसंयुक्त हैं, वहांपर जरामृत्यु अथवा अग्नि संक्रमण करनेमें समर्थ नहीं है । हे इन्द्र ! वहां कुछ भी दैव अशुभ नहीं है, उस स्थानमें दिव्यवन, गृह, समस्त आभरण, कामगामी उत्तम वाहनोंसे युक्त विमान विद्यमान हैं । हे कमलनेत्र ! ब्रह्मचर्य, तपस्या, सत्य, दम, विविध दान, बहुतसे पुण्य, तीर्थसेवन, उत्तम महत् तपस्या और सुकृत कर्मके सहारे गोलोक प्राप्त होसकता है । हे असुरसूदन शक्र ! तुमने जो प्रश्न किया था, तुम्हारे समीप वह सब कहा गया, इसलिये तुम्हें गौवोंका परिभव करना योग्य नहीं है । (४०—४५)

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर ! इन्द्र ऐसा सुनके सदा गौवोंकी पूजा और उनका बहुमान करने लगे । हे पुरुषश्रेष्ठ ! यह तुम्हारे समीप परम पवित्र

पवित्रं परमं चापि गवां माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४७ ॥
कीर्तितं पुरुषव्याघ्र सर्वपापविमोचनम् ।
य इदं कथयेन्नित्यं ब्राह्मणेभ्यः समाहितः ॥ ४८ ॥
हव्यकव्येषु यज्ञेषु पितृकार्येषु चैव ह ।
सार्वकामिकमक्षय्यं पितॄंस्तस्योपतिष्ठते ॥ ४९ ॥
गोषु भक्तश्च लभते यद्यदिच्छति मानवः ।
स्त्रियोऽपि भक्ता या गोषु ताश्च काममवाप्नुयुः ॥ ५० ॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं कन्यार्थी तामवाप्नुयात् ।
धनार्थी लभते वित्तं धर्मार्थी धर्ममाप्नुयात् ॥ ५१ ॥
विद्यार्थी चाप्नुयाद्विद्यां सुखार्थी प्राप्नुयात्सुखम् ।
न किंचिद्दुर्लभं चैव गवां भक्तस्य भारत ॥ ५२ ॥ [३८८०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे गोलोकवर्णने त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

युधिष्ठिर उवाच–उक्तं पितामहेनेदं गवां दानमनुत्तमम् ।
विशेषेण नरेन्द्राणामिह धर्ममवेक्षताम् ॥ १ ॥
राज्यं हि सततं दुःखं दुर्धरं चाकृतात्मभिः ।

पावन और सर्वपापनाशक गौवोंका अत्यन्त उत्तम माहात्म्य कहा गया। जो लोग समाहित होके हव्य, कव्य, यज्ञ और पितृकार्यमें ब्राह्मणोंको सदा यह विषय सुनाते हैं। उनका सार्वकामिक अक्षय फल पितरोंके निकट उपस्थित होता है। मनुष्य गौवोंके भक्त होनेपर इच्छानुसार फल पाते हैं और जो स्त्रियें गौवोंमें भक्ति करती हैं, उन्हें भी सब काम्यविषय प्राप्त होते हैं। पुत्रार्थी मनुष्य पुत्र पाते, कन्याकी इच्छा करनेवालोंको कन्या प्राप्त होती है; धनकी इच्छावाले धन पाते और धर्मार्थी मनुष्योंको धर्म प्राप्त होता है, विद्यार्थीको विद्या मिलती है, सुख चाहनेवाले सुख उपभोग किया करते हैं। हे भारत! जो लोग गौवोंमें भक्ति करते हैं, उन्हें कुछ भी दुर्लभ नहीं है। (४६—५२)

अनुशासनपर्वमें ८३ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ८४ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, इस लोकमें अत्युत्तम गोदानका विषय पितामहके द्वारा वर्णित हुआ, धर्मदर्शी राजाओंके लिये यह विशेष हितकर है। अपवित्र चित्तवाले राजाओंके पक्षमें राज्य सदा दुःखकर

भूयिष्ठं च नरेन्द्राणां विद्यते न शुभा गतिः ॥ २ ॥
पूयन्ते तत्र नियतं प्रयच्छन्तो वसुन्धराम्।
सर्वे च कथिता धर्मास्त्वया मे कुरुनन्दन ॥ ३ ॥
एवमेव गवामुक्तं प्रदानं ते नृगेण ह।
ऋषिणा नाचिकेतेन पूर्वमेव निदर्शितम् ॥ ४ ॥
वेदोपनिषदश्चैव सर्वकर्मसु दक्षिणाः।
सर्वक्रतुषु चोद्दिष्टं भूमिर्गावोऽथ काञ्चनम् ॥ ५ ॥
तत्र श्रुतिस्तु परमा सुवर्णं दक्षिणेति वै।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं पितामह यथातथम् ॥ ६ ॥
किं सुवर्णं कथं जातं कस्मिन्काले किमात्मकम्।
किं दैवं किं फलं चैव कस्माच्च परमुच्यते ॥ ७ ॥
कस्माद्दानं सुवर्णस्य पूजयन्ति मनीषिणः।
कस्माच्च दक्षिणार्थं तद्यज्ञकर्मसु शस्यते ॥ ८ ॥
कस्माच्च पावनं श्रेष्ठं भूमेर्गोभ्यश्च काञ्चनम्।
परमं दक्षिणार्थे च तद्ब्रवीहि पितामह ॥ ९ ॥

और दुर्धर है, प्रायः राजाओंकी शुभ गति नहीं होती, इसलिये वे लोग सदा भूमि दान करके पवित्र होते हैं। हे कुरुनन्दन! आपने मेरे समीप सब धर्मोंका वर्णन किया और राजा नृगके द्वारा गोदानका विषय तथा नाचिकेत ऋषिने जो कहा था, वह पहले ही प्रमाणित हुआ है। (१-४)

वेद और उपनिषदके सहारे सब कार्यों तथा यज्ञोंमें भूमि, गऊ और सुवर्ण दक्षिणारूपसे निर्दिष्ट हैं, ऐसी जनश्रुति है, कि उनके बीच सुवर्ण ही सब भांतिसे श्रेष्ठ दक्षिणा है। हे पितामह! इसलिये इस विषयका यथार्थ वृत्तान्त सुननेकी इच्छा करता हूं। सुवर्ण क्या है? किस समयमें किस प्रकार उत्पन्न हुआ? इसका स्वरूप क्या है? क्या यह दैवी है? इसका फल क्या है? किस निमित्त श्रेष्ठ कहके वर्णित हुआ? मनीषिगण किस निमित्त सुवर्णदानकी प्रशंसा किया करते हैं? यज्ञकर्ममें दक्षिणाके लिये किस हेतुसे सुवर्ण श्रेष्ठ है? हे पितामह! भूमि और गऊसे सुवर्ण किस निमित्त पावन और श्रेष्ठ है तथा दक्षिणाके लिये किस कारणसे वह परम श्रेष्ठ है? यह सब मेरे निकट वर्णन करिये। (५—९)

भीष्म उवाच– शृणु राजन्नवहितो बहुकारणविस्तरम्।
जातरूपसमुत्पत्तिमनुभूतं च यन्मया ॥ १० ॥
पिता मम महातेजाः शान्तनुर्निधनं गतः।
तस्य दित्सुरहं श्राद्धं गङ्गाद्वारमुपागमम् ॥ ११ ॥
तत्राऽऽगम्य पितुः पुत्र श्राद्धकर्म समारभम्।
माता मे जाह्नवी चात्र साहाय्यमकरोत्तदा ॥ १२ ॥
ततोऽग्रतस्ततः सिद्धानुपवेश्य बहूनृषीन्।
तोयप्रदानात्प्रभृति कार्याण्यहमथारभम् ॥ १३ ॥
तत्समाप्य यथोद्दिष्टं पूर्वकर्मसमाहितः।
दातुं निर्वपणं सम्यग्यथावदहमारभम् ॥ १४ ॥
ततस्तं दर्भविन्यासं भित्त्वा सुरुचिराङ्गदः।
प्रलम्बाभरणो बाहुरुदतिष्ठद्विशाम्पते ॥ १५ ॥
तमुत्थितमहं दृष्ट्वा परं विस्मयमागमम्।
प्रतिग्रहीता साक्षान्मे पितेति भरतर्षभ ॥ १६ ॥
ततो मे पुनरेवासीत्संज्ञा संचिन्त्य शास्त्रतः।
नाऽयं वेदेषु विहितो विधिर्हस्त इति प्रभो ॥ १७ ॥
पिण्डो देयो नरेणेह ततो मतिरभून्मम।

भीष्म बोले, हे महाराज! सुवर्णकी उत्पत्तिके विषयमें बहुत बडा कारण जो मुझे मालूम हुआ है, तुम सावधान होकर उसे सुनो, मेरे पितामह तेजस्वी शान्तनुके मरनेपर मैं उनका श्राद्ध करनेके लिये गङ्गाद्वारमें गया था। हे तात! मैंने वहां जाके श्राद्धकर्म आरम्भ किया, उस समय मेरी माता जाह्नवीने इस विषयमें सहायता की थी। अनन्तर अग्रभागमें ऋषियोंको बैठाके जल दान प्रभृति कार्य आरम्भ किया। मैं साव-धान होकर यथारीतिसे पूर्वकर्म समाप्त करके विधिपूर्वक पूरी रीतिसे श्राद्ध करनेमें प्रवृत्त हुआ। (१०-१४)

हे नरनाथ! अनन्तर उस दाभको भेदकर मनोहर अङ्गद तथा आभूषणोंसे युक्त एक लम्बी भुजा समुत्थित हुई। हे भरतश्रेष्ठ! मैं अपने पिताको स्वयं प्रतिग्रहीता होते तथा उनकी भुजाको निकली हुई देखके अत्यन्त विस्मित हुआ। अनन्तर शास्त्रके अनुसार विचार करके मैं फिर सावधान हुआ, वेदके बीच हाथमें पिण्ड देनेकी विधि नहीं है, इसलिये मैंने विचारा कि पितर

साक्षान्नेह मनुष्यस्य पिण्डं हि पितरः क्वचित् ॥ १८ ॥
गृह्णन्ति विहितं चेत्थं पिण्डो देयः कुशेष्विति ।
ततोऽहं तदनादृत्य पितुर्हस्तनिदर्शनम् ॥ १९ ॥
शास्त्रप्रामाण्यसूक्ष्मं तु विधिं पिण्डस्य संस्मरन् ।
ततो दर्भेषु तत्सर्वमददं भरतर्षभ ॥ २० ॥
शास्त्रमार्गानुसारेण तद्विद्धि मनुजर्षभ ।
ततः सोऽन्तर्हितो बाहुः पितुर्मम जनाधिप ॥ २१ ॥
ततो मां दर्शयामासुः स्वप्नान्ते पितरस्तथा ।
प्रीयमाणास्तु मामूचुः प्रीताः स्म भरतर्षभ ॥ २२ ॥
विज्ञानेन तवानेन यन्न मुह्यासि धर्मतः ।
त्वया हि कुर्वता शास्त्रं प्रमाणमिह पार्थिव ॥ २३ ॥
आत्मा धर्मः श्रुतं वेदाः पितरश्चर्षिभिः सह ।
साक्षात्पितामहो ब्रह्मा गुरवोऽथ प्रजापतिः ॥ २४ ॥
प्रमाणमुपनीता वै स्थिताश्च न विचालिताः ।
तदिदं सम्यगारब्धं त्वयाऽद्य भरतर्षभ ॥ २५ ॥
किं तु भूमेर्गवां चार्थे सुवर्णं दीयतामिति ।
एवं वयं च धर्मज्ञ सर्वे चास्मत्पितामहाः ॥ २६ ॥

लोग साक्षात् सम्बन्धसे इस लोकमें कदापि मनुष्योंका पिण्ड ग्रहण नहीं करते, ऐसा ही विहित है, इस हेतु कुशके बीच पिण्डदान करना चाहिये। हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर मैंने पिताके उस हस्तनिदर्शनका अनादर करके शास्त्रप्रमाणके अनुसार पिण्डदानकी सूक्ष्म विधि स्मरण करते हुए वह सब पिण्ड कुशके बीच ही प्रदान किया; जान रक्खो, कि यह शास्त्रके अनुसार ही हुआ। (१५—२१)

हे नरनाथ! अनन्तर मेरे पिताकी बाहु अन्तर्हित हुई। हे भरतश्रेष्ठ! मृत पिता स्वप्नमें मुझे दर्शन देके बोले, तुम जो शास्त्र प्रमाणके अनुसार इस विज्ञान से मुग्ध नहीं हुए, इसलिये मैं प्रसन्न हुआ हूं। आत्मा, धर्म, श्रुत, समस्त वेद, ऋषियोंके सहित पितृगण, साक्षात् पितामह ब्रह्मा और गुरुजन ये सब कोई प्रमाणमें स्थित हैं और मर्यादा भी विचलित नहीं हुई। हे भरतश्रेष्ठ नरनाथ! इसलिये आज तुमने पूरा कार्य किया है, किन्तु भूमि और गौवोंके निमित्त सुवर्ण दान करो। हे धर्मज्ञ! ऐसा करनेसे मैं

पाविता वै भविष्यन्ति पावनं हि परं हि तत् ।
दश पूर्वान्दशैवान्यांस्तथा संतारयन्ति ते ॥ २७ ॥
सुवर्णं ये प्रयच्छन्ति एवं मत्पितरोऽब्रुवन् ।
ततोऽहं विस्मितो राजन्प्रतिबुद्धो विशाम्पते ॥ २८ ॥
सुवर्णदानेऽकरवं मतिं च भरतर्षभ ।
इतिहासमिमं चापि शृणु राजन्पुरातनम् ॥ २९ ॥
जामदग्न्यं प्रति विभो धन्यमायुष्यमेव च ।
जामदग्न्येन रामेण तीव्ररोषान्वितेन वै ॥ ३० ॥
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी कृता निःक्षत्रिया पुरा ।
ततो जित्वा महीं कृत्स्नां रामो राजीवलोचनः ॥ ३१ ॥
आजहार क्रतुं वीरो ब्रह्मक्षत्रेण पूजितम् ।
वाजिमेधं महाराज सर्वकामसमन्वितम् ॥ ३२ ॥
पावनं सर्वभूतानां तेजोद्युतिविवर्धनम् ।
विपाप्मा च स तेजस्वी तेन क्रतुफलेन च ॥ ३३ ॥
नैवात्मनोऽथ लघुतां जामदग्न्योऽध्यगच्छत ।
स तु क्रतुवरेणेष्ट्वा महात्मा दक्षिणावता ॥ ३४ ॥
पप्रच्छागमसंपन्नानृषीन्देवांश्च भार्गव ।

और मेरे समस्त पितामहगण पवित्र होंगे, क्योंकि सुवर्ण परम पवित्र है। मेरे पिताने कहा था, कि जो लोग सुवर्ण दान करते हैं, वे दश ऊपरके और दश नीचेके पुरुषोंका उद्धार किया करते हैं। हे नरनाथ! अनन्तर मैं सावधान होनेपर विस्मित हुआ। हे भरतश्रेष्ठ! तब मैंने सुवर्ण दान करनेकी इच्छा की। हे महाराज! जामदग्न्यसम्बन्धीय धन तथा आयु देनेवाले इस पुराने इतिहासको सुनो। (२१—३०)

पहले समयमें तीव्ररोषयुक्त जामदग्न्य रामने इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय किया था। हे महाराज! अनन्तर महावीर राजीवलोचन रामने अखण्ड पृथ्वीमण्डलको जीतके ब्राह्मणों और क्षत्रियोंसे पूजित सर्वकामयुक्त वाजिमेध यज्ञ आरम्भ किया। वह यज्ञ सर्वभूतोंके लिये पावन, तेज तथा द्युतिको बढानेवाला है। जमदग्निपुत्र तेजस्वी रामने उस यज्ञसे पापरहित होके भी अपने चित्तको पवित्र न पाया। महात्मा भृगुनन्दन रामने दक्षिणायुक्त यज्ञ करके वेद जाननेवाले ऋषियों और देवताओंसे

पावनं यत्परं नृणामुग्रे कर्माणि वर्तताम् ॥ ३५ ॥
तदुच्यतां महाभागा इति जातघृणोऽब्रवीत् ।
इत्युक्ता वेदशास्त्रज्ञास्तमूचुस्ते महर्षयः ॥ ३६ ॥
राम विप्राः सत्क्रियन्तां वेदप्रामाण्यदर्शनात् ।
भूयश्च विप्रर्षिगणाः प्रष्टव्याः पावनं प्रति ॥ ३७ ॥
ते यद् ब्रूयुर्महाप्राज्ञास्तच्चैव समुदाचर ।
ततो वसिष्ठं देवर्षिमगस्त्यमथ काश्यपम् ॥ ३८ ॥
तमेवार्थं महातेजाः पप्रच्छ भृगुनन्दनः ।
जाता मतिर्मे विप्रेन्द्राः कथं पूयेयमित्युत ॥ ३९ ॥
केन वा कर्मयोगेन प्रदानेनेह केन वा ।
यदि वोऽनुग्रहकृता बुद्धिर्मां प्रति सत्तमाः ।
प्रब्रूत पावनं किं मे भवेदिति तपोधनाः ॥ ४० ॥
ऋषय ऊचुः– गाश्च भूमिं च वित्तं च दत्त्वेह भृगुनन्दन ।
पापकृत्पूयते मर्त्य इति भार्गव शुश्रुम ॥ ४१ ॥
अन्यद्दानं तु विप्रर्षे श्रूयतां पावनं महत् ।
दिव्यमत्यद्भुताकारमपत्यं जातवेदसः ॥ ४२ ॥
दग्ध्वा लोकान्पुरा वीर्यात्संभूतमिह शुश्रुम ।

पूछा । हे महाभागगण ! उग्र कर्ममें रत रहनेवाले मनुष्योंके लिये जो परम पावन हो, उसे ही वर्णन करिये, जब रामने करुणायुक्त होकर ऐसा कहा, तब वेदशास्त्र जाननेवाले महर्षिवृन्द उनका वचन सुनके बोले, हे राम ! वेदप्रमाण के अनुसार ब्राह्मणोंका सम्मान करो । पावनके सम्बन्धमें फिर विप्रर्षियोंसे प्रश्न करो, वे महाप्राज्ञ महर्षिवृन्द जैसा कहें, वैसाही करो । (३०—३८)

अनन्तर महातेजस्वी भृगुनन्दनने देवर्षि वसिष्ठ, अगस्त्य और कश्यपसे यही विषय पूछा । उन्होंने कहा, हे विप्रेन्द्र ! मेरी ऐसी मति हुई है, कि मैं कैसे कर्म तथा कौनसी वस्तु प्रदान करनेसे पवित्र हूंगा ? हे सत्तम ! यदि मुझपर आप लोगोंकी कृपा है, तो जिस प्रकार मेरी पवित्रता हो, उसे वर्णन करिये । (३८—४०)

ऋषिवृन्द बोले, हे भृगुनन्दन ! मैंने सुना है, कि पापी मनुष्य गऊ, भूमि और धन दान करके पवित्र होते हैं । हे विप्रर्षि ! अन्य एक महत्, पवित्र, दिव्य, अद्भुत रूपवाले, अग्निके पुत्र सुवर्णका

सुवर्णमिति विख्यातं तद्ददत्सिद्धिमेष्यसि ॥ ४३ ॥
ततोऽब्रवीद्वसिष्ठस्तं भगवान्संशितव्रतः।
शृणु राम यथोत्पन्नं सुवर्णमनलप्रभम् ॥ ४४ ॥
फलं दास्यति ते यत्तु दाने परमिहोच्यते।
सुवर्णं यच्च यस्माच्च यथा च गुणवत्तमम् ॥ ४५ ॥
तन्निबोध महाबाहो सर्वं निगदतो मम।
अग्नीषोमात्मकमिदं सुवर्णं विद्धि निश्चये ॥ ४६ ॥
अजोऽग्निर्वरुणो मेषः सूर्योऽश्व इति दर्शनम्।
कुञ्जराश्च मृगा नागा महिषाश्चासुरा इति ॥ ४७ ॥
कुक्कुटाश्च वराहाश्च राक्षसा भृगुनन्दन।
इडा गावः पयः सोमो भूमिरित्येव च स्मृति ॥ ४८ ॥
जगत्सर्वं च निर्मथ्य तेजोराशिः समुत्थितः।
सुवर्णमेभ्यो विप्रर्षे रत्नं परममुत्तमम् ॥ ४९ ॥
एतस्मात्कारणाद्देवा गन्धर्वोरगराक्षसाः।
मनुष्याश्च पिशाचाश्च प्रयता धारयन्ति तत् ॥ ५० ॥
मुकुटैरङ्गदयुतैरलङ्कारैः पृथग्विधैः।

दान विषय सुनो। मैंने सुना है, कि पहले समयमें वीर्यके प्रभावसे सब लोकोंको जलाके सुवर्ण उत्पन्न हुआ था। ऐसे विख्यात सुवर्णको दान करनेसे मनुष्य सिद्धिलाभ करता है। अनन्तर संशितव्रती वसिष्ठ मुनि बोले, हे राम! अग्निसे जिस प्रकार सुवर्ण उत्पन्न हुआ, उसे सुनो। जिसके दान करनेसे तुम्हें परम फल प्राप्त होगा, इस समय उसही का वर्णन होता है। हे महाबाहो! सुवर्णका जो स्वरूप है, और वह जैसा गुणवत्तर है, वह सब मैं कहता हूं सुनो, इस सुवर्णको निश्चय ही अग्नि और चन्द्रस्वरूप जानो। (४१—४६)

हे भृगुनन्दन! ऐसा देखा तथा सुना गया है, कि अज, अग्नि, वरुण, मेघ, सूर्य, अश्व, कुञ्जर, नाग, महिष, असुरगण और कुक्कुट, वराह, राक्षस, यज्ञ, भूमि, गऊ, पय, चन्द्रमा तथा पृथ्वी, इस समस्त जगत्को मंथके तेजपुञ्ज उत्पन्न हुआ था। हे विप्रर्षि! इन सबसे अत्यन्त उत्तम रत्न सुवर्ण उत्पन्न हुआ। इस ही निमित्त देवता, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, मनुष्य और पिशाचगण सावधान होके उसे धारण किया करते हैं। (४७—५०)

सुवर्णविकृतैस्तत्र विराजन्ते भृगूत्तम ॥ ५१ ॥
तस्मात्सर्वपवित्रेभ्यः पवित्रं परमं स्मृतम्।
भूमेर्गोभ्योऽथ रत्नेभ्यस्तद्विद्धि मनुजर्षभ ॥ ५२ ॥
पृथिवीं गाश्च दत्त्वेह यच्चान्यदपि किंचन।
विशिष्यते सुवर्णस्य दानं परमकं विभो ॥ ५३ ॥
अक्षयं पावनं चैव सुवर्णममरद्युते।
प्रयच्छ द्विजमुख्येभ्यः पावनं ह्येतदुत्तमम् ॥ ५४ ॥
सुवर्णमेव सर्वासु दक्षिणासु विधीयते।
सुवर्णं ये प्रयच्छन्ति सर्वदास्ते भवन्त्युत ॥ ५५ ॥
देवतास्ते प्रयच्छन्ति ये सुवर्णं ददत्यथ।
अग्निर्हि देवताः सर्वाः सुवर्णं च तदात्मकम् ॥ ५६ ॥
तस्मात्सुवर्णं ददता दत्ताः सर्वाः स्म देवताः।
भवन्ति पुरुषव्याघ्र न ह्यतः परमं विदुः ॥ ५७ ॥
भूय एव च माहात्म्यं सुवर्णस्य निबोध मे।
गदतो मम विप्रर्षे सर्वशास्त्रभृतां वर ॥ ५८ ॥
मया श्रुतमिदं पूर्वं पुराणे भृगुनन्दन।

हे भृगुवंशधुरन्धर! ये सुवर्णके बने हुए मुकुट कवच आदि अनेक भांतिके अलंकारोंसे शोभित होते हैं। हे मनुजश्रेष्ठ! इन्हीं कारणोंसे भूमि, गऊ तथा रत्न प्रभृति सब पवित्र वस्तुओंके बीच सुवर्ण परम पवित्र कहा गया है। इस लोकमें भूमि और गऊ दान करके अन्य जो कुछ श्रेष्ठ दान किया जाता है, उन सबके बीच सुवर्ण दान ही श्रेष्ठ हुआ करता है। हे देवद्युति! सुवर्ण अक्षय और पवित्र है, इसलिये इसे ब्राह्मणोंको दान करो, क्यों कि यह उत्तम तथा पावन है। (५१-५४)

समस्त दक्षिणा विषयमें सुवर्णही विहित हुआ है। जो लोग सुवर्ण दान करते हैं, वे सर्वप्रदाता होते हैं। जो लोग सुवर्णदान देते हैं, वे देवता दान किया करते हैं, क्यों कि अग्नि ही समस्त देवतात्मक है और सोना अग्निस्वरूप है, इसलिये सुवर्णदाता समस्त देवता दान करता है। हे पुरुषश्रेष्ठ! पण्डित लोग सुवर्ण दानसे श्रेष्ठ और किसीको भी नहीं जानते। हे सर्वशास्त्रविशारद विप्रर्षि! मैं फिर कहता हूं, मेरे समीप सुवर्णका माहात्म्य

प्रजापतेः कथयतो यथान्यायं तु तस्य वै ॥ ५९ ॥
शूलपाणेर्भगवतो रुद्रस्य च महात्मनः ।
गिरौ हिमवति श्रेष्ठे तदा भृगुकुलोद्वह ॥ ६० ॥
देव्या विवाहे निर्वृत्ते रुद्राण्या भृगुनन्दन ।
समागमे भगवतो देव्या सह महात्मनः ॥ ६१ ॥
ततः सर्वे समुद्विग्ना देवा रुद्रमुपागमन् ।
ते महादेवमासीनं देवीं च वरदामुमाम् ॥ ६२ ॥
प्रसाद्य शिरसा सर्वे रुद्रमूचुर्भृगूद्वह ।
अयं समागमो देवो देव्या सह तवानघ ॥ ६३ ॥
तपस्विनस्तपस्विन्या तेजस्विन्याऽतितेजसः ।
अमोघतेजास्त्वं देव देवी चेयमुमा तथा ॥ ६४ ॥
अपत्यं युवयोर्देव बलवद्भविता विभो ।
तन्नूनं त्रिषु लोकेषु न किंचिच्छेषयिष्यति ॥ ६५ ॥
तदेभ्यः प्रणतेभ्यस्त्वं देवेभ्यः पृथुलोचन ।
वरं प्रयच्छ लोकेश त्रैलोक्यहितकाम्यया ॥ ६६ ॥
अपत्यार्थं निगृह्णीष्व तेजः परमकं विभो ।

विस्तारपूर्वक सुनो । (५५-५८)

हे भृगुनन्दन ! पहले प्रजापतिने न्यायपूर्वक जो कहा है, उसे मैंने पुराणमें सुना है । हे भृगुकुलधुरन्धर ! सर्वश्रेष्ठ हिमालय पर्वतपर महानुभाव भगवान शूलधारी रुद्रके सहित रुद्राणी देवीका विवाह होनेपर महानुभाव भगवान शिवका देवीके सङ्ग समागम होनेके समय समस्त देववृन्द घबडाकर महादेवके निकट उपस्थित हुए । हे भृगुनन्दन ! वे सब लोग बैठे हुए महादेव और उमादेवीको सिर झुकाकर प्रणाम करके उनसे बोले, हे देव ! देवीके संग आपका यह समागम होता है, आप अत्यन्त तेजस्वी तपस्वी हैं और ये भी अति तेजस्विनी तपस्विनी हैं । हे देव ! आपका तेज अव्यर्थ है, उमादेवीका तेज भी वैसा ही है; हे देव ! हे विभु ! आपको अत्यन्त बलवान पुत्र होगा, वह पुत्र तीनों लोकोंके बीच किसीको भी अवशिष्ट न रक्खेगा, यह निश्चय ही बोध हो रहा है । (५९-६५)

हे विशालनेत्र लोकेश ! इसलिये आप इन प्रणत देवताओंके हितके लिये वर दान करिये । हे विभु ! आप

त्रैलोक्यसारौ हि युवां लोकं संतापयिष्यथः ॥ ६७ ॥
तदपत्यं हि युवयोर्देवानभिभवेद् ध्रुवम् ।
न हि ते पृथिवी देवी न च द्यौर्न दिवं विभो ॥ ६८ ॥
नेदं धारयितुं शक्ता समस्ता इति मे मतिः ।
तेजःप्रभावनिर्दग्धं तस्मात्सर्वमिदं जगत् ॥ ६९ ॥
तस्मात्प्रसादं भगवन्कर्तुमर्हसि नः प्रभो ।
न देव्यां संभवेत्पुत्रो भवतः सुरसत्तम ।
धैर्यादेव निगृह्णीष्व तेजो ज्वलितमुत्तमम् ॥ ७० ॥
इति तेषां कथयतां भगवान्वृषभध्वजः ।
एवमस्त्विति देवांस्तान्विप्रर्षे प्रत्यभाषत ॥ ७१ ॥
इत्युक्त्वा चोर्ध्वमनयद्रेतो वृषभवाहनः ।
ऊर्ध्वरेताः समभवत्ततः प्रभृति चापि सः ॥ ७२ ॥
रुद्राणीति ततः क्रुद्धा प्रजोच्छेदे तदा कृते ।
देवानथाब्रवीत्तत्र स्त्रीभावात्परुषं वचः ॥ ७३ ॥
यस्मादपत्यकामो वै भर्ता मे विनिवर्तितः ।
तस्मात्सर्वे सुरा यूयमनपत्या भविष्यथ ॥ ७४ ॥

पुत्रके निमित्त परम तेजको रोकिये । आप त्रिभुवनके सारस्वरूप हैं, इसलिये सब लोकोंको सन्तापित न करिये, आपका वह पुत्र निश्चय ही देवताओंको अभिभव करेगा । हमारे विचारमें देवी पृथ्वी, स्वर्ग और आकाश, ये सब आपके तेजको धारण करनेमें समर्थ न होंगे । तब यह समस्त जगत् आपके तेजप्रभावसे एकबारही भस्म होगा । हे प्रभु भगवन् ! इसलिये आपको हमपर प्रसन्न होना उचित है । हे सुरसत्तम ! इस देवीमें आपका पुत्र होना सम्भव नहीं है, इसलिये धीरजके सहारे अत्युत्तम जलते हुए तेजको निग्रह करिये । (६६-७०)

हे विप्रर्षि ! देवताओंके ऐसे वचन सुनकर भगवान् वृषभध्वजने उन्हें 'एवमस्तु' कहके उत्तर दिया । वृषभवाहन शिवने उनका वचन स्वीकार करके निज वीर्यको ऊर्ध्वमें धारण किया; तभीसे उनका नाम ऊर्ध्वरेता हुआ । अनन्तर इस प्रकारसे पुत्र न होनेपर रुद्राणीने क्रुद्ध होकर स्त्रीस्वभावके अनुसार सहजहीमें क्रोधवशसे देवताओंको यह कठोर वचन बोली, कि जिस कारणसे पुत्रकी इच्छा करनेवाले मेरे

प्रजोच्छेदो मम कृतो यस्माद्युष्माभिरद्य वै ।
तस्मात्प्रजा वः खगमाः सर्वेषां न भविष्यति ॥७५॥
पावकस्तु न तत्रासीच्छापकाले भृगूद्वह ।
देवा देव्यास्तथा शापादनपत्यास्ततोऽभवन् ॥ ७६ ॥
रुद्रस्तु तेजोऽप्रतिमं धारयामास वै तदा ।
प्रस्कन्नं तु ततस्तस्मात्किंचित्तत्रापतद्भुवि ॥ ७७ ॥
उत्पपात तदा वह्नौ ववृधे चाद्भुतोपमम् ।
तेजस्तेजसि संयुक्तमात्मयोनित्वमागतम् ॥ ७८ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु देवाः शक्रपुरोगमाः ।
असुरस्तारको नाम तेन संतापिता भृशम् ॥ ७९ ॥
आदित्या वसवो रुद्रा मरुतोऽथाश्विनावपि ।
साध्याश्च सर्वे संत्रस्ता दैतेयस्य पराक्रमात् ॥ ८० ॥
स्थानानि देवतानां हि विमानानि पुराणि च ।
ऋषीणां चाश्रमाश्चैव बभूवुरसुरैर्हृताः ॥ ८१ ॥
ते दीनमनसः सर्वे देवता ऋषयश्च ये ।
प्रजग्मुः शरणं देवं ब्रह्माणमजरं विभुम् ॥ ८२ ॥ [३९६२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे सुवर्णोत्पत्तिर्नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

स्वामी तुम लोगोंके द्वारा पुत्रलाभमे निवृत्त हुए, उस ही निमित्त तुम लोगोंको पुत्र नहीं होगा। हे देववृन्द ! तुम लोगोंने जिस प्रकार मेरे पुत्र नहीं होने दिये, उसी भांति तुम्हारे भी सन्तान न होंगी। (७१-७५)

हे भृगुनन्दन! उस शाप देनेके समय अग्निदेव वहांपर उपस्थित नहीं थे। देवीके ऐसे शापसे देववृन्द उसी समयसे अनपत्य हुए, उस समय रुद्रदेवने अप्रतिम तेज धारण किया। अनन्तर उनसे कुछ तेज स्खलित होके पृथ्वीपर गिरा। वह अद्भुत तेज पृथ्वीपर गिरते ही अग्निमें मिलकर बढने लगा। वह तेज अग्निमें मिलकर आत्मयोनित्वको प्राप्त हुआ, उस ही समयमें इन्द्रादि देववृन्द तारक नाम असुरके द्वारा अत्यन्त सन्तापित हुए। आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण, दोनों अश्विनीकुमार और साध्यगण दैत्यके पराक्रमसे भयभीत हुए थे। देवताओंके स्थान, पुरी, विमान और ऋषियोंके आश्रमोंको असुरोंने हर

देवा ऊचुः— असुरस्तारको नाम त्वया दत्तवरः प्रभो।
सुरा नृषींश्च क्लिश्नाति वधस्तस्य विधीयताम् ॥ १ ॥
तस्माद्भयं समुत्पन्नमस्माकं वै पितामह।
परित्रायस्व नो देव न ह्यन्या गतिरस्ति नः ॥ २ ॥
ब्रह्मोवाच— समोऽहं सर्वभूतानामधर्मं नेह रोचये।
हन्यतां तारकः क्षिप्रं सुरर्षिगणबाधिता ॥ ३ ॥
वेदा धर्माश्च नोच्छेदं गच्छेयुः सुरसत्तमाः।
विहितं पूर्वमेवाऽत्र मया वै व्येतु वो ज्वरः ॥ ४ ॥
देवा ऊचुः— वरदानाद्भगवतो दैतेयो बलगर्वितः।
देवैर्न शक्यते हन्तुं स कथं प्रशमं व्रजेत् ॥ ५ ॥
स हि नैव स्म देवानां नासुराणां न रक्षसाम्।
वध्यः स्यामिति जग्राह वरं त्वत्तः पितामह ॥ ६ ॥
देवाश्च शप्ता रुद्राण्या प्रजोच्छेदे पुरा कृते।
न भविष्यति वोऽपत्यमिति सर्वे जगत्पते ॥ ७ ॥

लिया था। देवता और ऋषि लोग दीनचित्त होकर अजर अमर विभु ब्रह्मा के शरणागत हुए। (७६-८२)

अनुशासनपर्वमें ८४ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ८५ अध्याय।

देववृन्द बोले, हे प्रभु! आपने जिसे वरदान किया है, वह तारक नाम महाअसुर देवताओं और ऋषियोंको क्लेश दे रहा है। इसलिये उसको मारनेकी युक्ति करिये। हे पितामह! उससे हम लोगोंको भय हुआ है, इसलिये आप हमें उबारिये, हम लोगोंको और दूसरा उपाय नहीं है। (१—२)

ब्रह्मा बोले, इस लोकमें सब प्राणी मुझे समान हैं। मैं अधर्मकी अभिलाष नहीं करता, इसलिये देवताओं और ऋषियोंको पीडा देनेवाले तारकासुरको शस्त्रसे मारो। हे सुरसत्तम! वेद और धर्म नष्ट न होजावे, उस विषयमें मैंने पहले ही उपाय रचा है, इसलिये तुम्हारा दुःख दूर होवे। (३—४)

देववृन्द बोले, आपके वरप्रभावसे वह दैत्य बलसे गर्वित हुआ है, इसलिये देवतावृन्द उसे मारनेमें समर्थ नहीं हैं, तब वह किस प्रकार नष्ट होगा? पितामह! तारकासुरने "मैं देव, दानव और राक्षसोंके द्वारा न मरूं" ऐसा ही कहके आपके समीप वर लिया है। पहले रुद्राणीकी पुत्र कामना नष्ट होनेसे उन्होंने देवताओंको यह शाप दिया है, कि तुम

ब्रह्मोवाच— हुताशनो न तत्रासीच्छापकाले सुरोत्तमाः ।
स उत्पादयिताऽपत्यं वधाय त्रिदशद्विषाम् ॥ ८ ॥
तद्वै सर्वानतिक्रम्य देवदानवराक्षसान् ।
मानुषानथ गन्धर्वान्नागानथ च पक्षिणः ॥ ९ ॥
अस्त्रेणामोघपातेन शक्त्या तं घातयिष्यति ।
यतो वो भयमुत्पन्नं ये चान्ये सुरशत्रवः ॥ १० ॥
सनातनो हि सङ्कल्पः काम इत्यभिधीयते ।
रुद्रस्य तेजः प्रस्कन्नमग्नौ निपतितं च यत् ॥ ११ ॥
तत्तेजोऽग्निर्महद्भूतं द्वितीयमिति पावकम् ।
वधार्थं देवशत्रूणां गङ्गायां जनयिष्यति ॥ १२ ॥
स तु नावाप तं शापं नष्टः स हुतभुक् तदा ।
तस्माद्वो भयहृद्देवाः समुत्पत्स्यति पावकिः ॥ १३ ॥
अन्विष्यतां वै ज्वलनस्तथा चाद्य नियुज्यताम् ।
तारकस्य वधोपायः कथितो वै मयाऽनघाः ॥ १४ ॥
न हि तेजस्विनां शापास्तेजःसु प्रभवन्ति वै ।
बलान्यतिबलं प्राप्य दुर्बलानि भवन्ति वै ॥ १५ ॥

लोगोंको सन्तान न होगी। (५-७)

ब्रह्मा बोले, हे सुरोत्तमगण ! उस शाप देनेके समय वहांपर अग्निदेव नहीं थे, वे देवद्वेषियोंको मारनेके लिये पुत्र उत्पन्न करेंगे। वह पुत्र देव, दानव, राक्षस, मनुष्य, गन्धर्व, नाग और पक्षियोंको अतिक्रम करके जिस तारकासुरसे तुम लोगोंको भय हुआ है, उसे अव्यर्थ पात शक्ति अस्त्रसे तथा देवशत्रु अन्य असुरोंको मारकर 'सनातन सङ्कल्प काम' इस नामसे विख्यात होगा। रुद्रका वीर्य स्खलित होके जो अग्निमें प्रविष्ट हुआ है, उसही तेजसे अग्निदेव द्वितीय अग्निकी भांति गङ्गाके गर्भसे देवशत्रुओंको मारनेवाला एक महत् पुत्र उत्पन्न करेंगे। अग्निदेव शापके समयमें छिपे हुए थे इस ही निमित्त वे शापग्रस्त नहीं हुए। हे देवगण! इसलिये उसहीसे तुम लोगोंके भयको छुडानेवाला पावकनन्दन उत्पन्न होगा। (८—१३)

अब तुम लोग अग्निदेवको खोजके इस कार्यमें नियुक्त करो। हे अनघगण यह मैंने तारकासुरके वधका उपाय कहा है। तेजस्वियोंका शाप तेजस्वी पुरुषको अभिभव नहीं कर सकता, बल प्रबल पुरुषोंके समीप अबल हुआ करता है।

हन्याद्वध्यान्वरदानपि चैव तपस्विनः।
सङ्कल्पाभिरुचिः कामः सनातनतमोऽभवत् ॥ १६ ॥
जगत्पतिरनिर्देश्यः सर्वगः सर्वभावनः।
हृच्छयः सर्वभूतानां ज्येष्ठो रुद्रादपि प्रभुः ॥ १७ ॥
अन्विष्यतां स तु क्षिप्रं तेजोराशिर्हुताशनः।
स वो मनोगतं कामं देवः संपादयिष्यति ॥ १८ ॥
एतद्वाक्यमुपश्रुत्य ततो देवा महात्मनः।
जग्मुः संसिद्धसङ्कल्पाः पर्येषन्तो विभावसुम् ॥ १९ ॥
ततस्त्रैलोक्यमृषयो व्यचिन्वन्त सुरैः सह।
काङ्क्षन्तो दर्शनं वन्हेः सर्वे तद्गतमानसाः ॥ २० ॥
परेण तपसा युक्ताः श्रीमन्तो लोकविश्रुताः।
लोकानन्वचरन्सिद्धाः सर्व एव भृगूत्तम ॥ २१ ॥
नष्टमात्मनि संलीनं नाभिजग्मुर्हुताशनम्।
ततः संजातसंत्रासानग्निदर्शनलालसान् ॥ २२ ॥
जलेचरः क्लान्तमनास्तेजसाऽग्नेः प्रदीपितः।
उवाच देवान्मण्डूको रसातलतलोत्थितः ॥ २३ ॥
रसातलतले देवा वसत्यग्निरिति प्रभो।

तपस्विगण अवध्य वरयुक्त पुरुषोंका भी नाश करनेमें समर्थ हैं। सनातन, जगत्पति, अनिर्देश्य, सर्वग, सर्वभावन, सब प्राणियोंके हृदयमें शयन करनेवाले, काम्यमान अग्निदेव पुत्रविषयमें कामनायुक्त होवे। ये रुद्रदेवसे भी जेठ और सर्वशक्तिमान हैं; अब तेजःपुञ्ज अग्निकी शीघ्र खोज करो, वही अग्निदेव तुम लोगोंकी इच्छा पूरी करेंगे। तिसके अनन्तर देवताओंने महानुभाव ब्रह्माका ऐसा वचन सुनके सङ्कल्प सिद्ध होनेसे अग्निको खोजनेके लिये प्रस्थान किया। (१४-१९)

ऋषियों और देवताओंने अग्निके दर्शनकी इच्छा करके उन्हें तीनों लोकोंमें खोजने लगे। हे भृगुश्रेष्ठ! परम तपस्यायुक्त लोकविख्यात सिद्धगण अग्निको खोजते हुए सब लोकोंमें घूमने लगे। किन्तु जलमें लीन रहनेसे अग्निदेव नहीं दीख पडते थे, इसीसे उन्हें न जान सके। अनन्तर अग्निके तेजसे प्रदीप्त और दुःखितचित्त होके एक जलचर मेडक रसातलसे निकलके अग्निके दर्शनकी इच्छा करनेवाले, डरे

संतापादिह संप्राप्तः पावकप्रभवादहम् ॥ २४ ॥
स संसुप्तो जले देवा भगवान्हव्यवाहनः ।
अपः संसृज्य तेजोभिस्तेन संतापिता वयम् ॥ २५ ॥
तस्य दर्शनमिष्टं वो यदि देवा विभावसोः ।
तत्रैनमधिगच्छध्वं कार्यं वो यदि वह्निना ॥ २६ ॥
गम्यतां साधयिष्यामो वयं ह्यग्निभयात्सुराः ।
एतावदुक्त्वा मण्डूकस्त्वरितो जलमाविशत् ॥ २७ ॥
हुताशनस्तु बुबुधे मण्डूकस्य च पैशुनम् ।
शशाप स तमासाद्य न रसान्वेत्स्यसीति वै ॥ २८ ॥
तं वै संयुज्य शापेन मण्डूकं त्वरितो ययौ ।
अन्यत्र वासाय विभुर्न चात्मानमदर्शयत् ॥ २९ ॥
देवास्त्वनुग्रहं चक्रुर्मण्डूकानां भृगूत्तम ।
यत्तच्छृणु महाबाहो गदतो मम सर्वशः ॥ ३० ॥
देवा ऊचुः— अग्निशापादजिह्वापि रसज्ञानबहिष्कृताः ।
सरस्वतीं बहुविधां यूयमुच्चारयिष्यथ ॥ ३१ ॥

हुए देवताओंसे बोला। हे देवगण! अग्निदेव रसातलके तले निवास करते हैं, मैं उनके उत्तापसे दुःखी होके इस स्थानमें आया हूं। (२०—२४)

हे देवगण! वह हव्यवाहन भगवान अपने तेजके सहारे जलका संसर्ग करके उसके बीच सोरहे हैं। हम उनके प्रभावसे सन्तापित हुए हैं। हे देवगण! यदि तुम लोगोंकी इच्छा अग्निदेवका दर्शन करनेकी हो और उनके सहारे तुम्हारा किसी कार्यको सिद्धकरनेका प्रयोजन हो, तो जाओ, उस ही स्थानमें उन्हें पाओगे। हे देववृन्द! मैं अग्निके भयसे दुःखित हुआ हूं, इसलिये जाता हूं। मेडक ऐसा कहके शीघ्रही जलमें प्रविष्ट हुआ। हुताशनने उस समय मेडककी खलता जान ली और उन्होंने उसे यह कहके शाप दिया, कि तुम्हें 'रसका ज्ञान न होगा।' सर्वशक्तिमान अग्निदेव मेडकको ऐसा शाप देके शीघ्रही वहांसे दूसरे स्थानमें निवास करनेके लिये चले गये; देवताओंको दर्शन नहीं दिया। हे महाबाहो भृगुश्रेष्ठ! देवताओंने मेडकोंपर जिस भांति कृपा की, मैं वह सब कहता हूं सुनो। (२५-३०)

देवगण बोले, अग्निके शापसे यद्यपि तुम जिह्वारहित तथा रसज्ञानसे हीन हुए हो, तौ भी तुम लोग अनेक प्रकारके

बिलवासं गतांश्चैव निराहारानचेतसः ।
गतासूनपि संशुष्कान् भूमिः संतारयिष्यति ॥ ३२ ॥
तमोघनायामपि वै निशायां विचरिष्यथ ।
इत्युक्त्वा तांस्ततो देवाः पुनरेव महीमिमाम् ॥ ३३ ॥
परीयुर्ज्वलनस्यार्थे न चाविन्दन् हुताशनम् ।
अथ तान्द्विरदः कश्चित्सुरेन्द्रद्विरदोपमः ॥ ३४ ॥
अश्वत्थस्थोऽग्निरित्येवमाह देवान् भृगूद्वह ।
शशाप ज्वलनः सर्वान् द्विरदान् क्रोधमूर्छितः ॥ ३५ ॥
प्रतीपा भवतां जिह्वा भवित्रीति भृगूद्वह ।
इत्युक्त्वा निःसृतोऽश्वत्थादग्निर्वारणसूचितः ।
प्रविवेश शमीगर्भमथ वह्निः सुषुप्सया ॥ ३६ ॥
अनुग्रहं तु नागानां यं चक्रुः शृणु तं प्रभो ।
देवा भृगुकुलश्रेष्ठ प्रीत्या सत्यपराक्रमाः ॥ ३७ ॥
देवा ऊचुः　प्रतीपया जिह्वयाऽपि सर्वाहारं करिष्यथ ।
वाचं चोच्चारयिष्यध्वमुच्चैरव्यञ्जिताक्षराम् ॥ ३८ ॥
इत्युक्त्वा पुनरेवाग्निमनुसस्रुर्दिवौकसः

वाक्य बोलोगे । बिलवासी, निराहारी, अचेतन, गतप्राण और सूख जानेपर भी पृथ्वी तुम लोगोंको धारण करेगी, तुम लोग घोर अन्धकारसे युक्त रात्रिके समयमें भी विचरोगे । देववृन्द मेडकसे ऐसा वचन कहके अग्निको खोजनेके निमित्त फिर इस पृथ्वीपर घूमने लगे, किन्तु हुताशनको न देख सके । हे भृगुनन्दन अनन्तर देवेन्द्रके ऐरावत सदृश किसी हाथीने देवताओंसे कहा, कि अग्निदेव अश्वत्थवृक्षमें निवास करते हैं । तब अग्निने क्रुद्ध होके सब हाथियोंको शाप दिया । (३१—३५)

हे भृगुवंशधुरन्धर ! हाथीके द्वारा सूचित होनेपर अग्निदेवने उसे शाप दिया, कि तुम्हारी जिह्वा उलटी होगी । हाथियोंको ऐसा शाप देकर अश्वत्थवृक्षसे निकलकर शयन करनेकी इच्छासे शमीवृक्षमें प्रविष्ट हुए । हे भृगुकुलश्रेष्ठ ! सत्यपराक्रमी देवताओंने प्रीतिपूर्वक जिस प्रकार हाथियोंपर कृपा की थी, उसे सुनो । (३६-३७)

देववृन्द बोले, तुम लोग उलटी जीभसे भी सब वस्तु खाओगे और ऊंचे स्वरसे अव्यक्त वाक्य उच्चारण करोगे । देवताओंने ऐसा कहके फिर अग्निका

अश्वत्थाग्निःसृतश्चाग्निः शमीगर्भमुपाविशत् ॥ ३९ ॥
शुकेन ख्यापितो विप्र तं देवाः समुपाद्रवन् ।
शशाप शुकमग्निस्तु वाग्विहीनो भविष्यसि ॥ ४० ॥
जिह्वामावर्तयामास तस्यापि हुतभुक्तथा ।
दृष्ट्वा तु ज्वलनं देवाः शुकमूचुर्दयान्विताः ॥ ४१ ॥
भविता न त्वमत्यन्तं शुकत्वे नष्टवागिति ।
आवृत्तजिह्वस्य सतो वाक्यं कान्तं भविष्यति ॥ ४२ ॥
बालस्येव प्रवृद्धस्य कलमव्यक्तमद्भुतम् ।
इत्युक्त्वा तं शमीगर्भे वह्निमालक्ष्य देवताः ॥ ४३ ॥
तदेवायतनं चक्रुः पुण्यं सर्वक्रियास्वपि ।
ततः प्रभृति चाप्यग्निः शमीगर्भेषु दृश्यते ॥ ४४ ॥
उत्पादने तथोपायमभिजग्मुश्च मानवाः ।
आपो रसातले यास्तु संस्पृष्टाश्चित्रभानुना ॥ ४५ ॥
ताः पर्वतप्रस्रवणैरूष्मां मुञ्चन्ति भार्गव ।
पावकेनाधिशयता संतप्तास्तस्य तेजसा ॥ ४६ ॥
अथाग्निर्देवता दृष्ट्वा बभूव व्यथितस्तदा ।

अनुसरण किया। अग्नि भी अश्वत्थ-वृक्षसे निकलकर शमीगर्भमें आकर बैठे रहे। हे विप्र ! अनन्तर सुग्गेके मुखसे अग्निके निवासका विषय सुनके देव-वृन्द उस ही ओर दौडे। तब अग्नि-देवने सुग्गाको शाप दिया कि तुम वाक्यरहित होगे और उसकी जिह्वा ऐंठ दी। देवताओंने अग्निको देखके दयायुक्त होकर सुगासे कहा, हे शुक ! तुम्हारा वचन एक-बारगी नष्ट न होगा, जिह्वा ऐंठी रहनेपर भी तुम्हारा वचन बालकी भांति अव्यक्तमधुर, अद्भुत और अत्यन्त मनोहर होगा। शुक पक्षीको ऐसा कहके देवताओंने शमी-गर्भमें अग्निदेवको देखके उस शमी-वृक्षको ही सब कार्योंके लिये पवित्र स्थान किया। तभीसे अग्नि शमीगर्भसे उत्पन्न हुआ करती है। (३८-४४)

उस ही समयसे मनुष्योंको शमीकी शाखासे अग्नि उत्पन्न करनेका उपाय मालूम हुआ। हे भार्गव ! रसातलमें जो सब जल अग्निके द्वारा स्पर्शयुक्त हुआ था, जिसमें अग्निदेव सोये थे और जो अग्निके तेजसे उत्तप्त हुआ था, वही पर्वतके झरनेके सहारे उष्णता परि-त्याग किया करता है। जो हो, उस

किमागमनमित्येवं तानपृच्छत पावकः ॥ ४७ ॥
तमूचुर्विबुधाः सर्वे ते चैव परमर्षयः ।
त्वां नियोक्ष्यामहे कार्ये तद्भवान्कर्तुमर्हति ॥ ४८ ॥
कृते च तस्मिन् भविता तवाऽपि सुमहान्गुणः ॥४९॥
अग्निरुवाच- ब्रूत यद्भवतां कार्यं कर्ताऽस्मि तदहं सुराः ।
भवतां तु नियोज्योऽस्मि मा वोऽत्रास्तु विचारणा ॥५०॥
देवा ऊचुः- असुरस्तारको नाम ब्रह्मणो वरदर्पितः ।
अस्मान्प्रबाधते वीर्याद्वधस्तस्य विधीयताम् ॥ ५१ ॥
इमान्देवगणांस्तात प्रजापतिगणांस्तथा ।
ऋषींश्चापि महाभाग परित्रायस्व पावक ॥ ५२ ॥
अपत्यं तेजसा युक्तं प्रवीरं जनय प्रभो ।
यद्भयं नोऽसुरात्तस्मान्नाशयेद्धव्यवाहन ॥ ५३ ॥
शप्तानां नो महादेव्या नान्यदस्ति परायणम् ।
अन्यत्र भवतो वीर्यं तस्मात्त्रायस्व नः प्रभो ॥ ५४ ॥
इत्युक्तः स तथेत्युक्त्वा भगवान्हव्यवाहनः ।

समय अग्निदेव देवताओंको देखके दुःखित हुए और उनसे पूछा कि तुम लोग किस निमित्त आये हो? उन देवताओं और परमर्षियोंने अग्निसे कहा, कि हम लोग तुम्हें किसी कार्यमें नियुक्त करेंगे, वह तुम्हें करना होगा, उसे करनेसे तुम्हारा भी उत्तम महान् गुण प्रकट होगा। (४७-४९)

अग्निदेव बोले, हे देववृन्द! कहो तुम्हारा कौनसा कार्य है? मैं उसे करूंगा मुझे तुम लोगोंके नियोज्य विषयमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। (५०)

देववृन्द बोले, तारक नाम असुर ब्रह्माके वरसे दर्पित होकर बलपूर्वक हम लोगोंको पीडित करता है, इसलिये उसके वधका विधान करो। हे महाभाग पावक! इन देवताओं, ऋषियों और प्रजापतिका परित्राण करो। हे प्रभु! तेजसे युक्त वीरपुत्र उत्पन्न करो। हे हव्यवाहन! उस असुरसे हम लोगोंको भय हुआ है, उसे नष्ट करो। हम लोग महादेवके द्वारा शापयुक्त हुए हैं, इस समय तुम्हारे पराक्रमके अतिरिक्त हमारे लिये और कुछ भी सहारा नहीं है। हे प्रभु! इसलिये हमारा परित्राण करो। (५१-५४)

अनन्तर दुर्द्धर्ष भगवान हव्यवाहनने

जगामाथ दुराधर्षों गङ्गां भागीरथीं प्रति ॥ ५५ ॥
तया चाप्यभवन्मिश्रो गर्भं चास्यादधे तदा।
ववृधे स तदा गर्भः कक्षे कृष्णगतिर्यथा ॥ ५६ ॥
तेजसा तस्य देवस्य गङ्गा विह्वलचेतना।
संतापमगमत्तीव्रं सोढुं सा न शशाक ह ॥ ५७ ॥
आहिते ज्वलनेनाथ गर्भे तेजःसमन्विते।
गङ्गायामसुरः कश्चिद्भैरवं नादमानदत् ॥ ५८ ॥
अबुद्धिपतितेनाथ नादेन विपुलेन सा।
वित्रस्तोद्भ्रान्तनयना गङ्गा विप्लुतलोचना ॥ ५९ ॥
विसंज्ञा नाशकद्गर्भं वोढुमात्मानमेव च।
सा तु तेजःपरीताङ्गी कम्पयन्तीव जाह्नवी ॥ ६० ॥
उवाच ज्वलनं विप्र तदा गर्भबलोद्धुता।
ते न शक्ताऽस्मि भगवंस्तेजसोऽस्य विधारणे ॥ ६१ ॥
विमूढाऽस्मि कृताऽनेन न मे स्वास्थ्यं यथा पुरा।
विह्वला चास्मि भगवंश्चेतो नष्टं च मेऽनघ ॥ ६२ ॥
धारणे नास्य शक्ताऽहं गर्भस्य तपतां वर।
उत्स्रक्ष्येऽहमिमं दुःखान्न तु कामात्कथंचन ॥ ६३ ॥

कहा, "ऐसा ही होगा"। इतना कहके वह भागीरथी गङ्गाके समीप गये, गङ्गाके निकट जाके उनके सङ्ग सहवास किया और उसी समय गङ्गाको गर्भ रह गया। तब वनमें कृष्णवर्त्माकी भांति वह गर्भ बढने लगा, अग्निके तेजसे गङ्गा विह्वल तथा अचेत होकर बहुत ही सन्तापित हुई, वह उसे सह न सकी। अग्निके द्वारा तेजयुक्त गर्भके स्थित होनेपर किसी असुरने भयङ्कर शब्द किया। अकस्मात् उत्पन्न हुए उस महाशब्दसे गङ्गा डरके सम्भ्रान्त-नयन, विह्वल, चेतनाहीन तथा संज्ञारहित होकर देहके सहित गर्भको ले चलनेमें असमर्थ हुई। (५५-६०)

हे विप्र! तब गङ्गा तेजसे परिपूरित होके कांपती तथा गर्भबलसे आक्रान्त होकर अग्निदेवसे बोली, हे भगवन्! मैं आपके इस तेजको धारण करनेमें समर्थ नहीं हूं। मैं इस तेजसे विमूढ हुई हूं; पहलेकी भांति मेरा स्वास्थ्य नहीं है। हे अनघ भगवन्! मैं विह्वल हुई हूं, मेरी चेतनाशक्ति नष्ट होरही है। हे तपतांवर! मैं इस तेजको धारण

ते तेजसाऽस्ति संस्पर्शो मम देव विभावसो ।
आपदर्थे हि सम्बन्धः सुसूक्ष्मोऽपि महाद्युते ॥ ६४ ॥
यदत्र गुणसंपन्नमितरद्वा हुताशन ।
त्वय्येव तदहं मन्ये धर्माधर्मौ च केवलौ ॥ ६५ ॥
तामुवाच ततो वह्निर्धार्यतां धार्यतामिति ।
गर्भो मत्तेजसा युक्तो महागुणफलोदयः ॥ ६६ ॥
शक्ता ह्यसि महीं कृत्स्नां वोढुं धारयितुं तथा ।
न हि ते किंचिदप्राप्यमन्यतो धारणादृते ॥ ६७ ॥
सा वह्निना वार्यमाणा देवैरपि सरिद्वरा ।
समुत्ससर्ज तं गर्भं मेरौ गिरिवरे तदा ॥ ६८ ॥
समर्था धारणे चापि रुद्रतेजःप्रधर्षिता ।
नाशकत्तं तदा गर्भं संधारयितुमोजसा ॥ ६९ ॥
सा समुत्सृज्य तं दुःखाद्दीप्तवैश्वानरप्रभम् ।
दर्शयामास चाग्निस्तं तदा गङ्गां भृगूद्वह ॥ ७० ॥
पप्रच्छ सरितां श्रेष्ठां कच्चिद्गर्भः सुखोदयः ।

नहीं कर सकती, इसलिये मैं दुःखपूर्वक इसे त्यागती हूं और स्वेच्छानुसार त्यागना नहीं चाहती। हे देव विभावसु! मेरा कभी किसी तेजके साथ संस्पर्श नहीं है। हे महाद्युति! आपद के हेतु यह आपके संग अत्यन्त सूक्ष्म सम्बन्ध हुआ। हे हुताशन! इस विषयमें जो कुछ दोष, गुण अथवा धर्माधर्म होगा, उसे मैं तुम्हारा ही मानती हूं। (६०-६५)

अनन्तर हुताशनने उनसे कहा, मेरे तेजसे युक्त इस गर्भको धारण करो, इससे महागुण तथा फल प्राप्त होगा। तुम निज शक्तिबलसे इस अखण्ड भूमण्डलको धारण करने तथा उठानेमें समर्थ हो, गर्भ धारणके अतिरिक्त तुम्हें और कुछ भी अप्राप्य नहीं है। अग्नि और देवताओंसे निवारित होके भी गर्भ धारण करनेमें असमर्थ होनेसे सरिद्वरा गङ्गाने उस समय पर्वतश्रेष्ठ सुमेरुके ऊपर उस गर्भको परित्याग किया, वह गर्भ धारण करनेमें समर्थ होनेपर भी रुद्ररूपी अग्निके तेजसे प्रधर्षित होके निज तेजके सहारे गर्भ धारण न कर सकी। हे भृगुकुलधुरन्धर! जब गङ्गाने उस अग्निसदृश प्रभायुक्त प्रदीप्त गर्भको परित्याग करके निवास किया, तब अग्निदेव उस सरिद्वराको

कीदृग्वर्णोऽपि वा देवि कीदृग्रूपश्च दृश्यते ।
तेजसा केन वा युक्तः सर्वमेतद्ब्रवीहि मे ॥ ७१ ॥
गङ्गोवाच— जातरूपः स गर्भो वै तेजसा त्वमिवानघ ।
सुवर्णो विमलो दीप्तः पर्वतं चावभासयत् ॥ ७२ ॥
पद्मोत्पलविमिश्राणां ह्रदानामिव शीतलः ।
गन्धोऽस्य सकदम्बानां तुल्यो वै तपतां वर ॥ ७३ ॥
तेजसा तस्य गर्भस्य भास्करस्येव रश्मिभिः ।
यद् द्रव्यं परिसंसृष्टं पृथिव्यां पर्वतेषु च ॥ ७४ ॥
तत्सर्वं काञ्चनीभूतं समन्तात्प्रत्यदृश्यत ।
पर्यधावत शैलांश्च नदीः प्रस्रवणानि च ॥ ७५ ॥
व्यादीपयंस्तेजसा च त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
एवंरूपः स भगवान्पुत्रस्ते हव्यवाहन ।
सूर्यवैश्वानरसमः कान्त्या सोम इवापरः ॥ ७६ ॥
एवमुक्त्वा तु सा देवी तत्रैवान्तरधीयत ।
पावकश्चापि तेजस्वी कृत्वा कार्यं दिवौकसाम् ॥७७॥
जगामेष्टं ततो देशं तदा भार्गवनन्दन ।

दर्शन देके बोले, हे देवि ! गर्भ सुखसे उदित हुआ है ? उसका कैसा वर्ण है ? कैसा दीखता है और वह कैसे तेजसे संयुक्त है ? यह सब वृत्तान्त मुझसे कहो । (६६-७१)

गङ्गा बोली, हे अनघ ! वह गर्भ सुवर्णवर्ण और तेजमें तुम्हारे सदृश है, विमल सुवर्ण समान उस प्रदीप्त गर्भने पर्वतको प्रकाशित किया है । हे तपतांवर ! वह गर्भ पद्मोत्पलयुक्त ह्रदकी भांति शीतल है, उसकी सुगन्धि कदंबपुष्पकी भांति है, सूर्यके समान तेजयुक्त उस गर्भकी किरणोंके सहारे पृथ्वी और पर्वतकी जो कुछ वस्तु स्पर्शित हुई हैं, वे सब काञ्चनरूपी दिखाई देती हैं। वह गर्भ तेजके सहारे स्थावरजङ्गमात्मक त्रिभुवनको प्रदीप्त करते हुए पर्वत, नदी और झरनोंमें दौड रहा है । हे हव्यवाहन ! आपका पुत्र ऐसे ऐश्वर्यसे युक्त है, कि तेजमें सूर्य तथा वैश्वानरके समान और कान्तिमें द्वितीय चन्द्रमा हुआ है । (७२—७६)

हे भृगुनन्दन ! भागीरथी देवी इतना कहके वहीं अन्तर्हित हुई, तेजस्वी पावकभी उस समय देवताओंके कार्यको सिद्ध करके अभिलषित स्थानमें चले

एतैः कर्मगुणैर्लोके नामाग्नेः परिगीयते ॥ ७८ ॥
हिरण्यरेता इति वै ऋषिभिर्विबुधैस्तथा ।
पृथिवी च तदा देवी ख्याता वसुमतीति वै ॥ ७९ ॥
स तु गर्भो महातेजा गाङ्गेयः पावकोद्भवः ।
दिव्यं शरवणं प्राप्य ववृधेऽद्भुतदर्शनः ॥ ८० ॥
ददृशुः कृत्तिकास्तं तु बालार्कसदृशद्युतिम् ।
पुत्रं वै ताश्च तं बालं पुपुषुः स्तन्यविस्रवैः ॥ ८१ ॥
ततः स कार्त्तिकेयत्वमवाप परमद्युतिः ।
स्कन्नत्वात्स्कन्दतां चापि गुहावासाद्गुहोऽभवत्॥ ८२ ॥
एवं सुवर्णमुत्पन्नमपत्यं जातवेदसः ।
तत्र जाम्बूनदं श्रेष्ठं देवानामपि भूषणम् ॥ ८३ ॥
ततः प्रभृति चाप्येतज्जातरूपमुदाहृतम् ।
रत्नानामुत्तमं रत्नं भूषणानां तथैव च ॥ ८४ ॥
पवित्रं च पवित्राणां मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
यत्सुवर्णं स भगवानग्निरीशः प्रजापतिः ॥ ८५ ॥
पवित्राणां पवित्रं हि कनकं द्विजसत्तमाः ।

गये । इन्हीं सब कर्मों तथा गुणोंसे लोकमें देवताओं और ऋषियोंके द्वारा अग्निका 'हिरण्यरेता' नाम वर्णित हुआ करता है । पृथिवीदेवी भी उसी समयसे वसुमती नामसे विख्यात हुई हैं । गङ्गाके गर्भसे गिरके वह अग्निसे उत्पन्न, अद्भुतदर्शन, तेजयुक्त गर्भ दिव्य शरवनको प्राप्त होके वहां बढने लगा । कृत्तिकागणोंने उस बालार्कसदृश तेजःसम्पन्न सन्तानको देखा, वे लोग उस बालक पुत्रको स्तनका दूध पिलाके पालने लगीं । (७७-८१)

इसही निमित्त उस परम तेजस्वी बालकका नाम कार्त्तिकेय हुआ । गङ्गाके गर्भसे स्खलित होनेसे उनका नाम स्कन्द और गुहामें वास करनेसे गुह नाम हुआ था । इस ही भांति अग्निका पुत्र सुवर्ण उत्पन्न हुआ । सुवर्ण अनेक भांतिका होनेपर भी उसके बीच जाम्बूनद नाम स्वर्ण ही सबसे श्रेष्ठ है, वह देवताओंका भूषण होनेसे जातरूप नामसे विख्यात हुआ है, यह सब रत्नोंके बीच उत्तम रत्न तथा समस्त भूषणोंके बीच उत्तम भूषण, सारी पवित्र वस्तुओंसे पवित्र और सब मङ्गलोंका मङ्गल स्वरूप है । सुवर्ण ही भगवान् अग्नि,

अग्नीषोमात्मकं चैव जातरूपमुदाहृतम् ॥ ८६ ॥
वसिष्ठ उवाच-अपि चेदं पुरा राम श्रुतं मे ब्रह्मदर्शनम्।
पितामहस्य यद्वृत्तं ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ ८७ ॥
देवस्य महतस्तात वारुणीं बिभ्रतस्तनुम्।
ऐश्वर्ये वारुणे राम रुद्रस्येशस्य वै प्रभो ॥ ८८ ॥
आजग्मुर्मुनयः सर्वे देवाश्चाऽग्निपुरोगमाः।
यज्ञाङ्गानि च सर्वाणि वषट्कारश्च मूर्तिमान् ॥ ८९ ॥
मूर्तिमन्ति च सामानि यजूंषि च सहस्रशः।
ऋग्वेदश्चागमत्तत्र पदक्रमविभूषितः ॥ ९० ॥
लक्षणानि स्वरास्तोभा निरुक्तं सुरपङ्क्तयः।
ओङ्काराश्चावसन्नेत्रे निग्रहप्रग्रहौ तथा ॥ ९१ ॥
वेदाश्च सोपनिषदो विद्या सावित्र्यथापि च।
भूतं भव्यं भविष्यं च दधार भगवान् शिवः ॥ ९२ ॥
संजुहावात्मनाऽऽत्मानं स्वयमेव तदा प्रभो।
यज्ञं च शोभयामास बहुरूपं पिनाकधृक् ॥ ९३ ॥
द्यौर्नभः पृथिवी खं च तथा चैवैष भूपतिः।

ईश और प्रजापति स्वरूप है। हे द्विजसत्तम! सोना सब पवित्र वस्तुओंके बीच अत्यन्त पवित्र है, जातरूप अग्नीषोमात्मक रूपसे वर्णित हुआ करता है। (८२—८६)

वसिष्ठ बोले, हे राम! पहले समयमें जो परमात्मा पितामह ब्रह्माको ब्रह्मदर्शन हुआ था; मैंने वह कथा सुनी है। हे तात! वारुणीमूर्त्तिधारी महादेवके वारुण ऐश्वर्यके समय अग्नि आदि देवताओं और मुनियोंने ईश्वर रुद्रदेवके निकट आगमन किया था। यज्ञके सब अङ्ग, मूर्त्तिमान वषट्कार, सशरीर समस्त साम, सहस्रों यजुर्मन्त्र और पद तथा क्रम विभूषित ऋग्वेदने वहांपर आगमन किया। समस्त लक्षण, देवताओंकी स्तुति, निरुक्त, सुरपंक्ति, ओंकार और निग्रह प्रग्रह नाम यज्ञके दो नेत्र, ये सब वहांपर स्थित हुए। (८७—९१)

उपनिषदोंके सहित सब वेद, सावित्री विद्या, वर्त्तमान, भूत और भविष्य आदिको भगवान महादेवने धारण किया था। उस समय उन्होंने स्वयं ही अपनेको आहुति प्रदान की। पिनाकधारी महादेवने बहुरूप यज्ञको शोभित किया। सर्वभूतपति ये भग-

सर्वविघ्नेश्वरः श्रीमानेष चापि विभावसुः ॥ ९४ ॥
एष ब्रह्मा शिवो रुद्रो वरुणोऽग्निः प्रजापतिः ।
कीर्त्यते भगवान्देवः सर्वभूतपतिः शिवः ॥ ९५ ॥
तस्य यज्ञः पशुपतेस्तपः क्रतव एव च ।
दीक्षादीप्तव्रता देवी दिशश्च सदिगीश्वराः ॥ ९६ ॥
देवपत्न्यश्च कन्याश्च देवानां चैव मातरः ।
आजग्मुः सहितास्तत्र तदा भृगुकुलोद्वह ॥ ९७ ॥
यज्ञं पशुपतेः प्रीता वरुणस्य महात्मनः ।
स्वयंभुवस्तु ता दृष्ट्वा रेतः समपतद्भुवि ॥ ९८ ॥
तस्य शुक्रस्य विस्पन्दान्पांसून्संगृह्य भूमितः ।
प्रास्यत्पूषा कराभ्यां वै तस्मिन्नेव हुताशने ॥ ९९ ॥
ततस्तस्मिन्संप्रवृत्ते सत्रे ज्वलितपावके ।
ब्रह्मणो जुह्वतस्तत्र प्रादुर्भावो बभूव ह ॥ १०० ॥
स्कन्नमात्रं च तच्छुक्रं स्रुवेण परिगृह्य सः ।
आज्यवन्मन्त्रतश्चापि सोऽजुहोद् भृगुनन्दन ॥ १०१॥
ततः स जनयामास भूतग्रामं च वीर्यवान् ।
तस्य तत्तेजसस्तस्माज्जज्ञे लोकेषु तैजसम् ॥ १०२ ॥

वान महादेवही स्वर्ग, आकाश पृथिवी, भूपति, सर्वविघ्नेश्वर श्रीमान् विभावसु, ब्रह्मा, शिव, रुद्र, वरुण और अग्नि हैं तथा येही प्रजापतिरूपसे वर्णित होते हैं। हे भृगुकुलधुरन्धर! उस पशुपतिके यज्ञ, तपस्या तथा सब क्रिया निर्वाहित होती रहनेपर दीप्तव्रता दीक्षा देवी, दिगीश्वरके सहित सब दिशा, देवपत्नी, देवकन्या और देवमातृगण महात्मा वरुणके ऊपर प्रसन्न होके सब कोई मिलकर महादेवके यज्ञमें आयीं। देवकन्या प्रभृतिको देखके स्वयम्भूका वीर्य पृथ्वीपर गिरा। (९२—९८)

पूषाने उनके शुक्रके निस्पन्दवशसे पृथ्वीपरसे दोनों हाथोंसे वीर्यके सहित पांशु संग्रह करके उसी अग्निमें डाल दिया। उस प्रज्वलित अग्निसे युक्त उस यज्ञके पूर्ण होनेपर होमकर्त्ता प्रजापतिके द्वारा परम श्रेष्ठ धातुकी उत्पत्ति हुई, हे भृगुनन्दन! धातु स्खलित होते ही उन्होंने उसे स्रुवामें लेकर मन्त्र पढके घृतकी भांति होम किया। (९९-१०१)

अनन्तर वीर्यवान भगवान् ब्रह्माने उस तेजसे चार प्रकारके प्राणियोंको

तमसस्तामसा भावा व्यापि सत्त्वं तथोभयम् ।
स गुणस्तेजसो नित्यस्तस्य चाकाशमेव च ॥ १०३ ॥
सर्वभूतेषु च तथा सत्त्वं तेजस्तथोत्तमम् ।
शुक्रे हुतेऽग्नौ तस्मिंस्तु प्रादुरासंस्त्रयः प्रभो ॥१०४॥
पुरुषा वपुषा युक्ताः स्वैः स्वैः प्रसवजैर्गुणैः ।
भृगित्येव भृगुः पूर्वमङ्गारेभ्योऽङ्गिराभवत् ॥ १०५ ॥
अङ्गारसंश्रयाच्चैव कविरित्यपरोऽभवत् ।
सह ज्वालाभिरुत्पन्नो भृगुस्तस्माद्भृगुः स्मृतः ॥१०६॥
मरीचिभ्यो मरीचिस्तु मारीचः कश्यपो ह्यभूत ।
अङ्गारेभ्योऽङ्गिरास्तात वालखिल्याः कुशोच्चयात् ॥१०७॥
अत्रैवात्रेति च विभो जातमत्रिं वदन्त्यपि ।
तथा भस्मव्यपोहेभ्यो ब्रह्मर्षिगणसंमताः ॥ १०८ ॥
वैखानसाः समुत्पन्नास्तपःश्रुतगुणेप्सवः ।
अश्रुतोऽस्य समुत्पन्नावश्विनौ रूपसंमतौ ॥ १०९ ॥

उत्पन्न किया। उस हीसे इस लोकमें प्रवृत्तिप्रधान समस्त जङ्गम प्राणी उत्पन्न हुए, उस वीर्यके तम अंशसे स्थावरोंकी उत्पत्ति हुई; स्थावर और जंगम दोनों ही सत्त्वांशमें सन्निविष्ट रहे। वह सत्त्वही प्रकाशरूपी बुद्धिका नित्यगुण है, सत्त्व ही बुद्धिस्वरूप है, उस बुद्धिसत्त्वसे आकाश आदि सारा जगत् उत्पन्न हुआ। तमोमय जड शरीरमें सत्त्व अर्थात् प्रकाश वा उत्तम तेज तथा धर्मप्रवृत्ति स्थित रही। अग्निके बीच प्रजापतिका वीर्य होम किये जानेपर उससे निज निज कारणज गुणोंके सहित तीन मूर्त्तिमान पुरुष उत्पन्न हुए। अग्निज्वाला भृगसे पहले भृगु उत्पन्न हुए, अंगारसे अंगिरा जन्मे। (१०२-१०५)

अङ्गारकी अल्पज्वालासे कवि नाम पुरुष उत्पन्न हुआ। भृगु ज्वालमालाके सहित उत्पन्न हुए थे, इस ही निमित्त भृगु अर्थात् ज्वालाके नामके सहारे उनका भृगु नाम हुआ है। मरीचि अर्थात् किरणोंसे मरीचि उत्पन्न हुए, मरीचिसे कश्यपकी उत्पत्ति हुई। हे तात! अंगारसे अंगिरा और कुशोंसे वालखिल्य मुनि उत्पन्न हुए। अत्र अर्थात् इन कुशोंसे ही अत्रि जन्मे थे, इसलिये पण्डित लोग उन्हें अत्रि कहा करते हैं। भस्मसे ब्रह्मर्षियोंसे संमत, तपस्या, शास्त्रजाल और गुणलिप्सु

शेषाः प्रजानां पतयः स्रोतोभ्यस्तस्य जज्ञिरे ।
ऋषयो रोमकूपेभ्यः स्वेदाच्छन्दो बलान्मनः ॥११०॥
एतस्मात्कारणादाहुरग्निः सर्वास्तु देवताः ।
ऋषयः श्रुतसंपन्ना वेदप्रामाण्यदर्शनात ॥ १११ ॥
यानि दारुणि निर्यासास्ते मासाः पक्षसंज्ञिताः ।
अहोरात्रा मुहूर्ताश्च पित्तं ज्योतिश्च दारुणम् ॥ ११२ ॥
रौद्रं लोहितमित्याहुर्लोहितात्कनकं स्मृतम् ।
तन्मैत्रमिति विज्ञेयं धूमाच्च वसवः स्मृताः ॥ ११३ ॥
अर्चिषो याश्च ते रुद्रास्तथाऽऽदित्या महाप्रभाः ।
उद्दिष्टास्ते तथाङ्गारा ये धिष्ण्येषु दिवि स्थिताः ॥ ११४ ॥
आदिकर्ता च लोकस्य तत्परं ब्रह्म तद् ध्रुवम् ।
सर्वकामदमित्याहुस्तद्रहस्यमुवाच ह ॥ ११५ ॥
ततोऽब्रवीन्महादेवो वरुणः पवनात्मकः ।
मम सत्रमिदं दिव्यमहं गृहपतिस्त्विह ॥ ११६ ॥

वैखानस मुनिवृन्द उत्पन्न हुए। उनके आंसूसे सुन्दरतायुक्त दोनों अश्विनीकुमार जन्मे। अवशिष्ट प्रजापतिवृन्द उनकी इन्द्रियोंसे उत्पन्न हुए। रोम कूपसे ऋषि, स्वेदसे छन्द और वीर्यसे मनकी उत्पत्ति हुई। (१०६—११०)

शास्त्रज्ञानसे युक्त ऋषि लोग वेद प्रमाण देखके इस ही निमित्त अग्निको सर्वदेवमय कहा करते हैं। यज्ञस्थानमें जो सब दारु थीं, वे मास और दारुगत जो लाक्षादि वृक्ष थे, वे पक्ष, मुहूर्त तथा अहोरात्र नामसे विख्यात हुए। वरुणकी ज्योतिको पित्त और रुद्रकी ज्योतिको पण्डित लोग लोहित कहते हैं। ऐसा वर्णित है, कि लोहितसे स्वर्ण उत्पन्न हुआ है। सुवर्णकी अधिष्ठात्री देवता मित्र है, इसलिये इसे मैत्र जानो। यह स्मरण है, कि धूमसे वसुगण उत्पन्न हुए हैं। ज्वालासे रुद्र और महातेजस्वी आदित्य उत्पन्न हुए, यज्ञस्थलमें जो सब अंगार थे, वेही आकाशस्थित ग्रह नक्षत्र रूपसे वर्णित हुए हैं। जो जगत्के आदिकर्त्ता हैं, वेही परब्रह्म, वेही ध्रुव तथा सर्वकामप्रदाता हैं। प्राचीन लोग ऐसा कहा करते हैं, कि उन्होंने अपना निज रहस्य कहा था। (१११—११५)

अनन्तर यज्ञ समाप्त होनेपर पवनात्मक महादेव वरुण बोले, हमारा ही दिव्य सत्र है, इस समय मैं ही गृहपति

त्रीणि पूर्वाण्यपत्यानि मम तानि न संशयः ।
इति जानीत खगमा मम यज्ञफलं हि तत् ॥ ११७ ॥
अग्निरुवाच— मदङ्गेभ्यः प्रसूतानि मदाश्रयकृतानि च ।
ममैव तान्यपत्यानि वरुणो ह्यवशात्मकः ॥ ११८ ॥
अथाब्रवील्लोकगुरुर्ब्रह्मा लोकपितामहः ।
ममैव तान्यपत्यानि मम शुक्रं हुतं हि तत् ॥ ११९ ॥
अहं कर्ता हि सत्रस्य होता शुक्रस्य चैव ह ।
यस्य बीजं फलं तस्य शुक्रं चेत्कारणं मतम् ॥ १२० ॥
ततोऽब्रुवन्देवगणाः पितामहमुपेत्य वै ।
कृताञ्जलिपुटाः सर्वे शिरोभिरभिवन्द्य च ॥ १२१ ॥
वयं च भगवन्सर्वे जगच्च सचराचरम् ।
तवैव प्रसवाः सर्वे तस्मादग्निर्विभावसुः ॥ १२२ ॥
वरुणश्चेश्वरो देवो लभतां काममीप्सितम् ।
निसर्गाद्ब्रह्मणश्चापि वरुणो यादसां पतिः ॥ १२३ ॥
जग्राह वै भृगुं पूर्वमपत्यं सूर्यवर्चसम् ।

हूं, पहले जो भृगु, अंगिरा और कवि नाम तीन अपत्य उत्पन्न हुए हैं, वे निःसन्देह हमारे ही पुत्र हैं। हे देवगण! वह हमारे ही यज्ञका फल जानो। (११६—११७)

अग्निदेव बोले, पूर्वोक्त तीनों पुत्र मेरे अंगसे उत्पन्न हुए हैं और मेरा ही आसरा किये हैं, इस लिये वे मेरे ही पुत्र हैं, वरुणका चित्त अवश हुआ है, इसीसे ये भ्रममें पडे हैं। (११८)

अनन्तर लोकगुरु, सर्वलोकपितामह ब्रह्मा बोले, हमारे उस वीर्यके होम करनेपर जो तीन अपत्य उत्पन्न हुए हैं, वे मेरे ही पुत्र हैं, मैं ही यज्ञकर्ता और वीर्यहोम करनेवाला हूं, इसलिये यदि वीर्य कारण हो, तो जिसका बीज है, उसहीका फल होसकता है। (११९—१२०)

अनन्तर देववृन्द पितामहके समीप आके हाथ जोड सिर झुकाके उन्हें प्रणाम करके बोले, हे भगवन् हम सब कोई स्थावरजंगमात्मक समस्त जगत् के सहित तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं; इस लिये आप ही हम लोगोंके उत्पत्ति विषय में कारण हैं, किन्तु विभावसु अग्नि, वरुण, और देवेश्वर अपना अभिलषित विषय प्राप्त करें। ब्रह्माके स्वभाव तथा आज्ञाके अनुसार यादोगणके स्वामी

ईश्वरोऽङ्गिरसं चाग्नेरपत्यार्थमकल्पयत् ॥ १२४ ॥
पितामहस्त्वपत्यं वै कविं जग्राह तत्त्ववित् ।
तदा स वारुणः ख्यातो भृगुः प्रसवकर्मकृत् ॥१२५॥
आग्नेयस्त्वङ्गिराः श्रीमान्कविर्ब्राह्मो महायशाः ।
भार्गवाङ्गिरसौ लोके लोकसंतानलक्षणौ ॥ १२६ ॥
एते हि प्रसवाः सर्वे प्रजानां पतयस्त्रयः ।
सर्वं संतानमेतेषामिदमित्युपधारय ॥ १२७ ॥
भृगोस्तु पुत्राः सप्तासन्सर्वे तुल्या भृगोर्गुणैः ।
च्यवनो वज्रशीर्षश्च शुचिरौर्वस्तथैव च ॥ १२८ ॥
शुक्रो वरेण्यश्च विभुः सवनश्चेति सप्त ते ।
भार्गवा वारुणाः सर्वे येषां वंशे भवानपि ॥ १२९ ॥
अष्टौ चाङ्गिरसः पुत्रा वारुणास्तेऽप्युदाहृताः ।
बृहस्पतिरुतथ्यश्च पयस्यः शान्तिरेव च ॥ १३० ॥
घोरो विरूपः संवर्तः सुधन्वा चाष्टमः स्मृतः ।
एतेऽष्टौ वह्निजाः सर्वे ज्ञाननिष्ठा निरामयाः ॥ १३१॥
ब्रह्मणस्तु कवेः पुत्रा वारुणास्तेऽप्युदाहृताः ।

वरुणने सूर्यके समान तेजस्वी जेठे पुत्र भृगुको ग्रहण किया। ईश्वरने अंगिराको अग्निका पुत्र कर दिया और तत्त्ववित् पितामह ब्रह्माने कविको निजपुत्र कहके ग्रहण किया। तभीसे प्रसव-कर्मकारी भृगु वारुण नामसे विख्यात हुए। (१२१—१२५)

श्रीमान् अंगिरा आग्नेय नामसे प्रसिद्ध हुए और महायशस्वी कवि ब्राह्म नामसे विख्यात हुए। भार्गव और आंगिरस इस लोकमें लोकविस्तारके कारण हुए। ये तीनों प्रजापति समस्त पुत्रोंको उत्पन्न करने लगे। यह निश्चय जानो कि सब कोई इन्हींके सन्तान हैं। च्यवन, वज्रशीर्ष, शुचि, और्व, वरणीय शुक्र, विभु और सवन, ये सातों भृगुके पुत्र हैं, ये सब कोई भृगुके सदृश गुणयुक्त हैं। तुम जिनके वंशमें उत्पन्न हुए हो, वे भार्गवगण भी वारुण हैं। और बृहस्पति, उतथ्य, पयस, शान्ति, घोर, विरूप, संवर्त्त और सुधन्वा ये आठों अंगिराके पुत्र हैं, ये सभी ज्ञाननिष्ठ, निरामय और वन्हिज होनेपर भी वारुण कहा है। (१२६–१३१)

ब्रह्माके पुत्र कवि हैं, कविके आठ

अष्टौ प्रसवजैर्युक्ता गुणैर्ब्रह्मविदः शुभाः ॥ १३२ ॥
कविः काव्यश्च धृष्णुश्च बुद्धिमानुशनास्तथा ।
भृगुश्च विरजाश्चैव काशी चोग्रश्च धर्मवित् ॥ १३३ ॥
अष्टौ कविसुता ह्येते सर्वमेभिर्जगत्ततम् ।
प्रजापतय एते हि प्रजाभागैरिह प्रजाः ॥ १३४ ॥
एवमङ्गिरसश्चैव कवेश्च प्रसवान्वयैः ।
भृगोश्च भृगुशार्दूल वंशजैः सततं जगत ॥ १३५ ॥
वरुणश्चादितो विप्र जग्राह प्रभुरीश्वरः ।
कविं तात भृगुं चापि तस्मात्तौ वारुणौ स्मृतौ ॥१३६॥
जग्राहाङ्गिरसं देवः शिखी तस्माद् धुताशनः ।
तस्मादाङ्गिरसा ज्ञेयाः सर्व एव तदन्वयाः ॥ १३७ ॥
ब्रह्मा पितामहः पूर्वं देवताभिः प्रसादितः ।
इमे नः संतरिष्यन्ति प्रजाभिर्जगतीश्वराः ॥ १३८ ॥
सर्वे प्रजानां पतयः सर्वे चातितपस्विनः ।
त्वत्प्रसादादिमं लोकं तारयिष्यन्ति साम्प्रतम् ॥१३९॥
तथैव वंशकर्तारस्तव तेजोविवर्धनाः ।

पुत्र हुए, वेभी वारुण नामसे वर्णित हुआ करते हैं, ये सब गुणयुक्त, ब्रह्मज्ञ और कल्याणकारी हैं, इनके ये नाम हैं, कवि, काव्य, धृष्णु, बुद्धिमान् उशना, भृगु, विरजा, काशी और धर्मज्ञ उग्र, ये आठों कविके पुत्र हैं, इनसे सारा जगत् व्याप्त है। इन्हींके सहारे प्रजासमूहकी उत्पत्ति हुई है, इस ही निमित्त ये प्रजापति हैं। हे भृगुश्रेष्ठ! इस ही प्रकार अंगिरा, कवि और भृगुके वंशीय सन्तानसे परम्पराक्रमसे जगत् व्याप्त हुआ है। हे तात! सर्वशक्तिमान् सर्वनियन्ता वरुणने पहले कवि और भृगुको ग्रहण किया था, इस ही निमित्त वे दोनों वारुण नामसे विख्यात हुए हैं। (१३२—१३६)

और शिखावान् अग्निदेवने अंगिराको ग्रहण किया था, इसीसे उनके वंशमें उत्पन्न हुए सन्तानोंको आंगिरस जानो। पितामह ब्रह्मा पहले देवताओंके द्वारा इस ही भांति प्रसन्न हुए थे, कि ये नियन्तृगण जगत्में प्रजापुञ्जके सहारे हम लोगोंको पूरी रीतिसे तारेंगे। इसलिये ये सब कोई प्रजापति तथा तपस्वी होकर आपकी कृपासे सब लोकोंका उद्धार करेंगे और आपके

भवेयुर्वेदविदुषः सर्वे च कृतिनस्तथा ॥ १४० ॥
देवपक्षचराः सौम्याः प्राजापत्या महर्षयः।
आप्नुवन्ति तपश्चैव ब्रह्मचर्यं परं तथा ॥ १४१ ॥
सर्वे हि वयमेते च तवैव प्रसवः प्रभो।
देवानां ब्राह्मणानां च त्वं हि कर्ता पितामह॥ १४२॥
मारीचमादितः कृत्वा सर्वे चैवाऽथ भार्गवाः।
अपत्यानीति संप्रेक्ष्य क्षमयाम पितामह ॥ १४३ ॥
ते त्वनेनैव रूपेण प्रजनिष्यन्ति वै प्रजाः।
स्थापयिष्यन्ति चात्मानं युगादिनिधने तथा ॥ १४४॥
इत्युक्तः स तदा तैस्तु ब्रह्मा लोकपितामहः।
तथेत्येवाऽब्रवीत्प्रीतस्तेऽपि जग्मुर्यथागतम् ॥ १४५ ॥
एवमेतत्पुरावृत्तं तस्य यज्ञे महात्मनः।
देवश्रेष्ठस्य लोकादौ वारुणीं बिभ्रतस्तनुम् ॥ १४६ ॥
अग्निर्ब्रह्मा पशुपतिः शर्वो रुद्रः प्रजापतिः।
अग्नेरपत्यमेतद्वै सुवर्णमिति धारणा ॥ १४७ ॥
अग्न्यभावे च कुरुते वह्निस्थानेषु काञ्चनम्।
जामदग्न्यः प्रमाणज्ञो वेदश्रुतिनिदर्शनात् ॥ १४८ ॥

तेजकी वृद्धि करते हुए वेदज्ञ और कृतकार्य वंशकर्त्ता होंगे। ये प्राजापत्य महर्षिगण प्रियदर्शन और देवपक्षमें श्रेष्ठ होकर परम तपस्या तथा ब्रह्मचर्य लाभ करेंगे। (१३७—१४१)

हे प्रभु पितामह! हम और ये लोग सब कोई तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं, आप देवताओं और ब्राह्मणोंके विधाता हैं, मरीचि प्रभृति समस्त भार्गवगण आपके अपत्य हैं, यह देखके हम लोग आपके उत्कर्षके लिये परस्परके अभिभव करनेमें यत्नवान् न होंगे। वे लोग क्षमाशील होके प्रजा उत्पन्न करेंगे और इस ही प्रकार उत्पत्ति और प्रलयके अन्तरालमें आपको स्थापित करेंगे। लोकपितामह ब्रह्माने उस समय देवताओंका वचन सुनके 'तथास्तु' कहा; तब देववृन्द अपने अपने स्थानपर गये। आदिकालमें वारुणी मूर्त्तिधारी देवश्रेष्ठके उस यज्ञमें ऐसी ही घटना हुई थी, अग्नि ही ब्रह्मा, महादेव, शर्व, रुद्र और प्रजापतिस्वरूप है। ऐसा निश्चय है, कि यह सुवर्ण अग्निका पुत्र है। (१४२—१४७)

कुशस्तम्बे जुहोत्यग्निं सुवर्णे तत्र च स्थिते।
वल्मीकस्य वपायां च कर्णे वाऽजस्य दक्षिणे ॥१४९॥
शकटोर्व्यां परस्याप्सु ब्राह्मणस्य करे तथा।
हुते प्रीतिकरीमृद्धिं भगवांस्तत्र मन्यते ॥ १५० ॥
तस्मादग्निपराः सर्वे देवता इति शुश्रुम।
ब्रह्मणो हि प्रभूतोऽग्निरग्नेरपि च काञ्चनम् ॥ १५१ ॥
तस्माद्ये वै प्रयच्छन्ति सुवर्णं धर्मदर्शिनः।
देवतास्ते प्रयच्छन्ति समस्ता इति नः श्रुतम् ॥१५२॥
तस्य चातमसो लोका गच्छतः परमां गतिम्।
स्वर्लोके राजराज्येन सोऽभिषिच्येत भार्गव ॥१५३ ॥
आदित्योदयसंप्राप्ते विधिमन्त्रपुरस्कृतम्।
ददाति काञ्चनं यो वै दुःस्वप्नं प्रतिहन्ति सः ॥१५४ ॥
ददात्युदितमात्रे यस्तस्य पाप्मा विधूयते।
मध्याह्ने ददतो रुक्मं हन्ति पापमनागतम् ॥ १५५॥
ददाति पश्चिमां संध्यां यः सुवर्णं यतव्रतः।
ब्रह्मवाय्वग्निसोमानां सालोक्यमुपयाति सः ॥१५६॥

प्रमाणज्ञ जामदग्न्य वेदश्रुतिके निदर्शन निबन्धनसे अग्निके अभावमें उसके स्थानमें सुवर्ण स्थापित किया करते हैं। ऐसी जनश्रुति है, कि कुशस्तम्बमें अग्निमें होम करे; वहांपर स्थित सुवर्णमें तथा वल्मीक, वपा, बकरेके दहिने कान, शकट, भूमि, तीर्थके जल और ब्राह्मणके हाथमें होम करनेसे भगवान् हुताशन प्रसन्न होते हैं। हमने सुना है, कि समस्त देववृन्द अग्निनिष्ठ हैं। ब्रह्मासे अग्निदेव प्रकट हुए और अग्निसे सुवर्ण उत्पन्न हुआ है; ऐसा सुना गया है, कि जो धर्मदर्शी मनुष्य सुवर्ण दान करते हैं, वे समस्त देवता प्रदान करते हैं। (१४८—१५२)

हे भार्गव! वे परम गति पानेवाले मनुष्य तमरहित लोकोंमें जाकर कुबेरराज्यमें अभिषिक्त होते हैं। सूर्य उदय होनेके समय जो लोग विधिपूर्वक मन्त्र पढके सोना दान करते हैं, उनके दुःस्वप्न नष्ट हुआ करते हैं। जो लोग भोरके समय सुवर्ण दान करते हैं, उनके सब पाप नष्ट होते हैं, मध्याह्न कालमें सुवर्ण दान करनेसे दाताके अनागत पाप नष्ट हुआ करते हैं। जो लोग यतव्रती होकर सायं-

सेन्द्रेषु चैव लोकेषु प्रतिष्ठां विन्दते शुभाम् ।
इह लोके यशः प्राप्य शान्तपाप्मा च मोदते ॥१५७॥
ततः संपद्यतेऽन्येषु लोकेष्वप्रतिमः सदा ।
अनावृतगतिश्चैव कामचारो भवत्युत ॥ १५८ ॥
न च क्षरति तेभ्यश्च यशश्चैवाप्नुते महत् ।
सुवर्णमक्षयं दत्त्वा लोकांश्चाप्नोति पुष्कलान् ॥ १५९ ॥
यस्तु संजनयित्वाग्निमादित्योदयनं प्रति ।
दद्याद्वै व्रतमुद्दिश्य सर्वकामान्समश्नुते ॥ १६० ॥
अग्निमित्येव तत्प्राहुः प्रदानं च सुखावहम् ।
यथेष्टगुणसंवृत्तं प्रवर्तकमिति स्मृतम् ॥ १६१ ॥
एषा सुवर्णस्योत्पत्तिः कथिता ते मयाऽनघ ।
कार्त्तिकेयस्य च विभो तद्विद्धि भृगुनन्दन ॥ १६२ ॥
कार्त्तिकेयस्तु संवृद्धः कालेन महता तदा ।
देवैः सेनापतित्वेन वृतः सेन्द्रैर्भृगूद्वह ॥ १६३ ॥
जघान तारकं चापि दैत्यमन्यांस्तथाऽसुरान् ।

सन्ध्याके समय सुवर्ण प्रदान करते हैं, उन्हें ब्रह्मा, वायु, अग्नि और चन्द्रमाके सदृश लोक प्राप्त होते हैं और इन्द्र लोकोंमें शुभ प्रतिष्ठा मिलती है, इस लोकमें यश पाके पापरहित होकर प्रमुदित होते हैं। (१५३—१५७)

अनन्तर वे परलोकमें सदा अप्रतिम, अनावृत गतिसे युक्त और कामचारी होते हैं, उनका यश कभी क्षीण नहीं होता, बल्कि सर्वत्र महत् यश व्याप्त होता है। अक्षय सुवर्ण दान करनेसे मनुष्य पुष्कल लोकोंको पाता है। जो लोग सूर्य उदय होनेके समय अग्नि जलाके व्रतके उद्देश्यसे सुवर्ण दान करते हैं, उन्हें समस्त काम्य भोग प्राप्त होता है। ऐसा प्राचीन लोग कहा करते हैं, कि सूर्योदयके समय सुवर्णदान पूर्ण गुणयुक्त, ज्ञानप्रवर्त्तक और दान-रोचक होनेसे सुखावह है। (१५८-१६१)

हे पापरहित भृगुनन्दन ! यह मैंने तुमसे सुवर्ण और कार्त्तिकेयकी उत्पत्ति का विषय कहा है, इसलिये इसे मालूम करो। हे भृगुकुलधुरन्धर ! उस समय कार्त्तिकेय बहुतसा समय बीतनेके अनन्तर वर्द्धित होके इन्द्रादि देवता-ओंके सेनापति पदपर अभिषिक्त हुए। अभिषिक्त होके इन्द्रकी आज्ञासे सब लोकोंकी रक्षाके लिये तारक नाम दैत्य

त्रिदशेन्द्राज्ञया ब्रह्मँल्लोकानां हितकाम्यया ॥ १६४ ॥
सुवर्णदाने च मया कथितास्ते गुणा विभो।
तस्मात्सुवर्णं विप्रेभ्यः प्रयच्छ ददतां वर ॥ १६५ ॥
भीष्म उवाच- इत्युक्तः स वसिष्ठेन जामदग्न्यः प्रतापवान्।
ददौ सुवर्णं विप्रेभ्यो व्यमुच्यत च किल्बिषात् ॥ १६६ ॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं सुवर्णस्य महीपते।
प्रदानस्य फलं चैव जन्म चास्य युधिष्ठिर ॥ १६७ ॥
तस्मात्त्वमपि विप्रेभ्यः प्रयच्छ कनकं बहु।
ददत्सुवर्णं नृपते किल्बिषाद्विप्रमोक्ष्यसि ॥ १६८ ॥ [४१३०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे सुवर्णोत्पत्तिर्नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

युधिष्ठिर उवाच- उक्ताः पितामहेनेह सुवर्णस्य विधानतः।
विस्तरेण प्रदानस्य ये गुणाः श्रुतिलक्षणाः ॥ १ ॥
यत्तु कारणमुत्पत्तेः सुवर्णस्य प्रकीर्तितम्।
स कथं तारकः प्राप्तो निधनं तद्ब्रवीहि मे ॥ २ ॥
उक्तः स दैवतानां हि अवध्य इति पार्थिव।

तथा दूसरे बहुतेरे असुरोंको मारा। हे विभु! सुवर्ण दानके जो सब फल हैं, वह मैंने तुमसे कहा। हे दातृवर! इसलिये तुम ब्राह्मणोंको सुवर्ण दान करो। (१६२-१६५)

भीष्म बोले, प्रतापवान् जामदग्न्य रामने वसिष्ठका ऐसा वचन सुनके ब्राह्मणोंको सुवर्ण दान किया, और उस ही कारणसे पापरहित हुए। हे महाराज युधिष्ठिर! यह मैंने सुवर्ण दानका फल और सुवर्णकी उत्पत्तिका विषय तुम्हारे समीप वर्णन किया, इसलिये तुम भी ब्राह्मणोंको बहुतसा सोना दान करो। हे महाराज! तुम सुवर्ण दान करनेसे पापरहित होगे। (१६६—१६८)

अनुशासनपर्वमें ८५ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ८६ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आपने विधानके अनुसार सुवर्णदानके गुण और श्रुतिसिद्ध लक्षण तथा सुवर्णकी उत्पत्तिका कारण विस्तारपूर्वक वर्णन किया; परन्तु वह तारकासुर किस प्रकारसे मारा गया? मेरे समीप यह विषय वर्णन करिये। हे राजन्! पहले आपने कहा, कि वह देवताओंसे अवध्य

कथं तस्याभवन्मृत्युर्विस्तरेण प्रकीर्तय ॥ ३ ॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं त्वतः कुरुकुलोद्वह ।
कात्स्न्येन तारकवधं परं कौतूहलं हि मे ॥ ४ ॥
भीष्म उवाच- विपन्नकृत्या राजेन्द्र देवता ऋषयस्तथा ।
कृत्तिकाश्चोदयामासुरपत्यभरणाय वै ॥ ५ ॥
न देवतानां काचिद्धि समर्था जातवेदसः ।
एता हि शक्तास्तं गर्भं संधारयितुमोजसा ॥ ६ ॥
षण्णां तासां ततः प्रीतः पावको गर्भधारणात् ।
स्वेन तेजोविसर्गेण वीर्येण परमेण च ॥ ७ ॥
तास्तु षट् कृत्तिका गर्भं पुपुषुर्जातवेदसः ।
षट्सु वर्त्मसु तेजोऽग्नेः सकलं निहितं प्रभो ॥ ८ ॥
ततस्ता वर्धमानस्य कुमारस्य महात्मनः ।
तेजसाऽभिपरीताङ्ग्यो न कचिच्छर्म लेभिरे ॥ ९ ॥
ततस्तेजःपरीताङ्ग्यः सर्वाः काल उपस्थिते ।

था, तब किस प्रकार उसकी मृत्यु हुई? उसे विस्तारपूर्वक कहिये। हे कुरुकुल-धुरन्धर! मैं तुम्हारे समीप उस तारका-सुरके वधका विषय विस्तारके सहित सुननेकी इच्छा करता हूं, इस विषयमें मुझे बहुत ही कौतूहल हुआ है। (१-४)

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र! देवताओं और ऋषियोंके सब कार्य विनष्ट होनेसे उन्होंने सन्तानको पालनेके लिये कृत्ति-कागणको भेजा। देवताओंके बीच कोई देवीभी अग्निके द्वारा अर्पित गर्भ-को धारण करमें समर्थ नहीं हैं, कृत्ति-कागण ही निज तेजके प्रभावसे उस गर्भको धारण कर सकेंगी, ऐसा वि-चारके देवताओंने उन्हें अनुमति दी थी। अग्निने उन कृत्तिकागणको अपना परमसुन्दर वीर्ययुक्त तेज अर्पण किया, उनके गरुडरूपसे उस वीर्यको पीकर छः प्रकारसे गर्भधारण करनेसे अग्निदेव अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। छहों कृत्तिका जातवेदाके अर्पित गर्भको धारण करने लगीं। हुताशनका समस्त तेज छः कृत्तिकाओंके गर्भमें जानेसे छः स्थानमें स्थित हुआ था। अनन्तर बुद्धिशील महानुभाव कुमारका तेज उनके सब अवयवोंमें व्याप्त हुआ, उन्हें किसी स्थानमें भी सुख प्राप्त न हुआ। (५—९)

हे पुरुषश्रेष्ठ! अनन्तर प्रसवका

समं गर्भं सुषुविरे कृत्तिकास्तं नरर्षभ ॥ १० ॥
ततस्तं षडधिष्ठानं गर्भमेकत्वमागतम् ।
पृथिवी प्रतिजग्राह कार्तस्वरसमीपतः ॥ ११ ॥
स गर्भो दिव्यसंस्थानो दीप्तिमान्पावकप्रभः ।
दिव्यं शरवणं प्राप्य ववृधे प्रियदर्शनः ॥ १२ ॥
ददृशुः कृत्तिकास्तं तु बालमर्कसमद्युतिम् ।
जातस्नेहाच्च सौहार्दात्पुपुषुः स्तन्यविस्रवैः ॥ १३ ॥
अभवत्कार्त्तिकेयः स त्रैलोक्ये सचराचरे ।
स्कन्नत्वात्स्कन्दतां प्राप्तो गुहावासाद्गुहोऽभवत् ॥ १४ ॥
ततो देवास्त्रयस्त्रिंशद्दिशश्च सदिगीश्वराः ।
रुद्रो धाता च विष्णुश्च यमः पूषाऽर्यमा भगः ॥ १५ ॥
अंशो मित्रश्च साध्याश्च वासवो वसवोऽश्विनौ ।
आपो वायुर्नभश्चन्द्रो नक्षत्राणि ग्रहा रविः ॥ १६ ॥
पृथग्भूतानि चान्यानि यानि देवार्पणानि वै ।
आजग्मुस्तेऽद्भुतं द्रष्टुं कुमारं ज्वलनात्मजम् ॥ १७ ॥

समय उपस्थित होनेपर तेजःपरीतांगी कृत्तिकागणने एक ही समयमें गर्भको परित्याग किया, प्रसवके अनन्तर वह षडधिष्ठान गर्भ एकत्र हो गया। वसुमतीने सुवर्णके समीपसे उस गर्भको ग्रहण किया । दीप्यमान अग्निसे उत्पन्न हुआ वह दिव्यावयव प्रियदर्शन गर्भ दिव्य शरवणमें वर्द्धित होने लगा। कृत्तिकागणने उस सूर्यसदृश तेजसे युक्त सन्तानको देखा, देखते ही पुत्रस्नेह और सुहृदताके वशमें होकर उसे स्तनका दूध पिलाके पालने लगीं। वह बालक कृत्तिकाओंके द्वारा प्रतिपालित होनेपर चराचर तीनों लोकोंके बीच कार्त्तिकेय नामसे विख्यात हुआ। (१०—१४)

गंगाके गर्भसे स्खलित होनेसे स्कन्द और गुहामें वास करनेसे उसका गुह नाम हुआ था। अनन्तर तैंतीस देववृन्द, दिगीश्वरके सहित दशों दिशा, रुद्र, धाता, विष्णु, यम, पूषा, अर्यमा, भग, अंश, साध्यगण, वसुगण, इन्द्र, दोनों अश्विनीकुमार, जल, वायु, आकाश, चन्द्रमा, नक्षत्रगण, सारे ग्रह, सूर्य और मूर्त्तिमान ऋक्, यजु, साम प्रभृति वेदोंने उस अद्भुत ज्वलनात्मज कुमारको देखनेके निमित्त आगमन किया। ऋषि लोग उस षडानन, बारह

ऋषयस्तुष्टुवुश्चैव गन्धर्वाश्च जगुस्तथा ।
षडाननं कुमारं तु द्विषडक्षं द्विजप्रियम् ॥ १८ ॥
पीनांसं द्वादशभुजं पावकादित्यवर्चसम् ।
शयानं शरगुल्मस्थं दृष्ट्वा देवाः सहर्षिभिः ॥ १९ ॥
लेभिरे परमं हर्षं मेनिरे चासुरं हतम् ।
ततो देवाः प्रियाण्यस्य सर्व एव समाहरन् ॥ २० ॥
क्रीडतः क्रीडनीयानि ददुः पक्षिगणाश्च ह ।
सुपर्णोऽस्य ददौ पुत्रं मयूरं चित्रबर्हिणम् ॥ २१ ॥
राक्षसाश्च ददुस्तस्मै वराहमहिषावुभौ ।
कुक्कुटं चाग्निसङ्काशं प्रददावरुणः स्वयम् ॥ २२ ॥
चन्द्रमाः प्रददौ मेषमादित्यो रुचिरां प्रभाम् ।
गवां माता च गा देवी ददौ शतसहस्रशः ॥ २३ ॥
छागमग्निर्गुणोपेतमिला पुष्पफलं बहु ।
सुधन्वा शकटं चैव रथं चामितकूबरम् ॥ २४ ॥
वरुणो वारुणान्दिव्यान्स गजान्प्रददौ शुभान् ।
सिंहान्सुरेन्द्रो व्याघ्रांश्च द्विपानन्यांश्च पक्षिणः ॥२५॥

नेत्रवाले द्विजप्रिय कुमारकी स्तुति करने लगे और गन्धर्वोंने गीत गाना आरम्भ किया । (१४–१८)

पीनस्कन्ध, बारह भुजा, अग्नि और सूर्यसदृश तेजस्वी शरस्तम्भमें सोये हुए कुमारको देखकर महातेजस्वी ऋषियोंके सहित देवता लोग परम हर्षित हुए और तारकासुरको मरा समझा । अनन्तर देवताओंने सब ठौरसे कुमारके लिये समस्त प्रियवस्तु ला दिया । जब वह खेलने लगे, तब देवताओंने उन्हें खेलने योग्य अनेक प्रकारके पक्षी दिये और उनके चढनेके लिये गरुडके पुत्र विचित्र वर्णयुक्त मयूरको ला दिया, राक्षसोंने वराह और भैंसे दिये, अरुणने स्वयं उन्हें अग्निसङ्काश कुक्कुट दिया । (१९–२२)

चन्द्रमाने मेढा दिया और सूर्यने उन्हें रुचिर प्रभा दी, गौवोंकी माता सुरभिने उन्हें सौ हजार गो दान किया, अग्निने बकरे दिये और इलाने बहुत सुन्दर फूल तथा फल दिया । सुधन्वाने उन्हें शकट तथा अनेक कूबरयुक्त रथ दिया । वरुणने दिव्य सुन्दर वारुण हाथी दिये, देवराजने सिंह, शार्दूल, हाथी तथा अनेक भांतिके

श्वापदांश्च बहून् घोरांश्छत्राणि विविधानि च ।
राक्षसासुरसङ्घाश्च अनुजग्मुस्तमीश्वरम् ॥ २६ ॥
वर्धमानं तु तं दृष्ट्वा प्रार्थयामास तारकः ।
उपायैर्बहुभिर्हन्तुं नाशकच्चापि तं विभुम् ॥ २७ ॥
सैनापत्येन तं देवाः पूजयित्वा गुहालयम् ।
शशंसुर्विप्रकारं तं तस्मै तारककारितम् ॥ २८ ॥
स विवृद्धो महावीर्यो देवसेनापतिः प्रभुः ।
जघानामोघया शक्त्या दानवं तारकं गुहः ॥ २९ ॥
तेन तस्मिन्कुमारेण क्रीडता निहतेऽसुरे ।
सुरेन्द्रः स्थापितो राज्ये देवानां पुनरीश्वरः ॥ ३० ॥
स सेनापतिरेवाथ बभौ स्कन्दः प्रतापवान् ।
ईशो गोप्ता च देवानां प्रियकृच्छङ्करस्य च ॥ ३१ ॥
हिरण्यमूर्तिर्भगवानेष एव च पावकिः ।
सदा कुमारो देवानां सैनापत्यमवाप्तवान् ॥ ३२ ॥
तस्मात्सुवर्णं मङ्गल्यं रत्नमक्षय्यमुत्तमम् ।
सहजं कार्त्तिकेयस्य वह्नेस्तेजः परं मतम् ॥ ३३ ॥
एवं रामाय कौरव्य वसिष्ठोऽकथयत्पुरा ।

पक्षी, अनेक प्रकारके घोर श्वापद और विविध छत्र प्रदान किये । राक्षस तथा असुरगण उस कुमारके अनुगत हुए । (२३—२६)

तारकासुरने उसे बढते हुए देखके अनेक प्रकारके उपायोंसे मारनेकी चेष्टा की, परन्तु वह उस सर्वशक्तिमान् कुमार को मारनेमें समर्थ न हुआ, देवताओंने उन्हें सेनापतिका पद देके पूजा करके तारकासुरके उपद्रवके विषय कहे, देव-सेनापति प्रभु कार्त्तिकेयने विशेष रूपसे वर्द्धित होकर तारकासुरको अमोघ शक्तिसे मार डाला । जब कुमारने खेल करते हुए उस असुरको मार दिया, तब इन्द्र फिर देवराज्यपर स्थापित हुए। अनन्तर प्रतापशाली देवसेनापति स्कन्द देवताओंके नियन्ता तथा रक्षक और शङ्करके प्रियकारी होकर सुशोभित हुए । (२७-३१)

हिरण्यमूर्त्ति भगवान अग्निपुत्र कुमारने इस ही भांति देवसेनापतिका पद पाया था, अग्निके परम तेज तथा कार्त्तिकेयके संग उत्पन्न होनेसे सुवर्ण मंगलकर श्रेष्ठ और अक्षय रत्न है । हे

तस्मात्सुवर्णदानाय प्रयतस्व नराधिप ॥ ३४ ॥
रामः सुवर्णं दत्त्वा हि विमुक्तः सर्वकिल्बिषैः ।
त्रिविष्टपं महत्स्थानमवापासुलभं नरैः ॥ ३५ ॥ [४१६५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे तारकवधोपाख्यानं नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६॥

युधिष्ठिर उवाच- चातुर्वर्ण्यस्य धर्मात्मन्धर्माः प्रोक्ता यथा त्वया ।
तथैवेमे श्राद्धविधिं कृत्स्नं प्रब्रूहि पार्थिव ॥ १ ॥
वैशम्पायन उवाच- युधिष्ठिरेणैवमुक्तो भीष्मः शान्तनवस्तदा ।
इमं श्राद्धविधिं कृत्स्नं वक्तुं समुपचक्रमे ॥ २ ॥
भीष्म उवाच- शृणुष्वावहितो राजञ्छ्राद्धकर्मविधिं शुभम् ।
धन्यं यशस्यं पुत्रीयं पितृयज्ञं परंतप ॥ ३ ॥
देवासुरमनुष्याणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
पिशाचकिन्नराणां च पूज्या वै पितरः सदा ॥ ४ ॥
पितॄन्पूज्यादितः पश्चाद्देवतास्तर्पयन्ति वै ।
तस्मात्तान्सर्वयज्ञेन पुरुषः पूजयेत्सदा ॥ ५ ॥

कुरुनन्दन ! पहले समयमें वसिष्ठ मुनिने रामसे यह कथा कही थी । हे नरनाथ ! इसलिये तुम सुवर्ण दानके लिये सदा यत्नवान रहो । रामने सुवर्ण दान करनेसे पापरहित होके सुरपुरमें मनुष्योंके लिये असुलभ स्थान पाया था । (३२—३५)

अनुशासनपर्वमें ८६ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें ८७ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे धर्मात्मन् राजन् ! आपने जिस प्रकार चारों वर्णोंके धर्म कहे वैसे ही मेरे निकट श्राद्धकी समस्त विधि वर्णन करिये । (१)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, शन्तनु-पुत्र भीष्म उस समय युधिष्ठिरका ऐसा प्रश्न सुनके श्राद्धकी सब विधि कहने लगे । (२)

भीष्म बोले, हे परन्तप पृथ्वीनाथ ! तुम सावधान होके इस धन, यश और पुत्रदायक शुभ पितृयज्ञ श्राद्धकर्मकी विधि सुनो । देव, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, पिशाच और किन्नर प्रभृति सबके ही लिये पितृगण सदा पूजनीय हैं । पहले पितरोंकी पूजा करके पीछे सब कोई देवताओंको तृप्त किया करते हैं; इसलिये पुरुषोंको सदा सब प्रकार यज्ञपूर्वक पितरोंकी पूजा करनी योग्य है । (३-५)

अन्वाहार्यं महाराज पितॄणां श्राद्धमुच्यते।
तस्माद्विशेषविधिना विधिः प्रथमकल्पितः ॥ ६ ॥
सर्वेष्वहःसु प्रीयन्ते कृते श्राद्धे पितामहाः।
प्रवक्ष्यामि तु ते सर्वांस्तिथ्यातिथ्यगुणागुणान् ॥ ७ ॥
येष्वहःसु कृतैः श्राद्धैर्यत्फलं प्राप्यतेऽनघ।
तत्सर्वं कीर्तयिष्यामि यथावत्तन्निबोध मे ॥ ८ ॥
पितॄनर्च्य प्रतिपदि प्राप्नुयात्सुगृहे स्त्रियः।
अभिरूपप्रजायिन्यो दर्शनीया बहुप्रजाः ॥ ९ ॥
स्त्रियो द्वितीयां जायन्ते तृतीयायां तु वाजिनः।
चतुर्थ्यां क्षुद्रपशवो भवन्ति बहवो गृहे ॥ १० ॥
पञ्चम्यां बहवः पुत्रा जायन्ते कुर्वतां नृप।
कुर्वाणास्तु नराः षष्ठ्यां भवन्ति द्युतिभागिनः ॥ ११ ॥
कृषिभागी भवेच्छ्राद्धं कुर्वाणः सप्तमीं नृप।
अष्टम्यां तु प्रकुर्वाणो वाणिज्ये लाभमाप्नुयात् ॥ १२ ॥

हे महाराज! प्रति महीने में पितरों की तृप्तिके निमित्त जो श्राद्ध किया जाता है, उसे अन्वाहार्य कहते हैं, पितरोंकी तृप्तिके निमित्त श्राद्ध करना योग्य है, यह प्रथम कल्पित अर्थात् सामान्य विधि अमावस्या तिथिमें जिस दिन चन्द्रमा नहीं दीखता, उस दिन अपराह्णमें पिण्डदानरूपी पितृयज्ञ करे, इस विशेष विधिके द्वारा बाधित होवें। जिस किसी दिन होसके, श्राद्ध करनेसे ही पितामहगण प्रसन्न होते हैं, इस हेतु तुमसे तिथि और आतिथ्यके गुण दोष तथा समय कहता हूं। हे पापरहित! जिन दिनोंमें श्राद्ध करनेसे जो जो सब फल प्राप्त होते हैं, वह तुम्हारे समीप पूरी रीतिसे कहता हूं सुनो। (६—८)

प्रतिपदामें पितरोंकी पूजा करनेसे मनुष्य निज गृहमें सुन्दरी तथा बहु-सन्तान उत्पन्न करनेवाली स्त्री पाता है। द्वितीयामें श्राद्ध करनेसे कन्या जन्मती है। तृतीया तिथिमें पितरोंको पिण्डदान करनेसे मनुष्यको बहुतसे घोडे मिलते हैं। चतुर्थीमें श्राद्ध करनेसे गृहमें अनेक प्रकारके क्षुद्र पशु होते हैं। हे राजन्! पञ्चमीमें श्राद्ध करने-वालोंके बहुतसे पुत्र जन्मते हैं, षष्ठीमें जो लोग श्राद्ध करते हैं, वे तेजस्वी होते हैं। (९-११)

हे महाराज! सप्तमी तिथिमें श्राद्ध

नवम्यां कुर्वतः श्राद्धं भवत्येकशफं बहु ।
विवर्धन्ते तु दशमीं गावः श्राद्धानि कुर्वतः ॥ १३ ॥
कुप्यभागी भवेन्मर्त्यः कुर्वन्नेकादशीं नृप ।
ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते तस्य वेश्मनि ॥ १४ ॥
द्वादशीमीहमानस्य नित्यमेव प्रदृश्यते ।
रजतं बहु वित्तं च सुवर्णं च मनोरमम् ॥ १५ ॥
ज्ञातीनां तु भवेच्छ्रेष्ठः कुर्वञ्छ्राद्धं त्रयोदशीम् ।
अवश्यं तु युवानोऽस्य प्रमीयन्ते नरा गृहे ॥ १६ ॥
युद्धभागी भवेन्मर्त्यः कुर्वञ्छ्राद्धं चतुर्दशीम् ।
अमावास्यां तु निर्वापात् सर्वकामानवाप्नुयात् ॥१७॥
कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ।
श्राद्धकर्मणि तिथयस्तु प्रशस्ता न तथेतराः ॥ १८ ॥
यथा चैवापरः पक्षः पूर्वपक्षाद्विशिष्यते ।
तथा श्राद्धस्य पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यते ॥ १९ ॥ [४१८४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे श्राद्धकल्पे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

करनेवाले कृषिभागी हुआ करते हैं। अष्टमीमें जो लोग श्राद्ध करते हैं, उन्हें वाणिज्यमें लाभ होता है। नवमीमें श्राद्ध करनेवालोंको कई भांतिके एक सौ पशु प्राप्त होते हैं। दशमीमें श्राद्ध करनेवालेकी गौवें विशेष रूपसे वर्द्धित होती हैं। हे राजन्! एकादशी तिथिमें श्राद्ध करनेसे मनुष्य वस्त्रपात्र आदि धनसे युक्त होता और उसके गृहमें ब्रह्मवर्चस्वी पुत्र जन्मते हैं। द्वादशीमें श्राद्ध करनेवालोंके घरमें सदा बहुत सा धन, रूपा वा मनोहर सुवर्ण दीखता है। (१२–१५)

जो लोग त्रयोदशी तिथिमें श्राद्ध करते हैं, वे स्वजनोंके बीच श्रेष्ठ हुआ करते हैं। चतुर्दशीमें श्राद्ध करनेसे मनुष्य युद्धभागी होता है और उसके गृहमें अवश्यही सब युवा पुरुष पञ्चत्वको प्राप्त होते हैं। अमावस्या तिथिमें पिण्डदान करनेसे मनुष्यके सर्वकाम अक्षय प्राप्त होते हैं। कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीको त्यागके दशमीके पहले जो सब तिथि पडती हैं, वेही श्राद्धकर्ममें श्रेष्ठ हैं, अन्य तिथि वैसी श्रेष्ठ नहीं हैं। जैसे पहले पक्षसे दूसरा पक्ष श्रेष्ठ है। वैसे ही श्राद्धकर्मके विषयमें

युधिष्ठिर उवाच– किंस्विद्दत्तं पितृभ्यो वै भवत्यक्षयमीश्वर।
किं हविश्चिररात्राय किमानन्त्याय कल्पते ॥ १ ॥
भीष्म उवाच– हवींषि श्राद्धकल्पे तु यानि श्राद्धविदो विदुः।
तानि मे शृणु काम्यानि फलं चैव युधिष्ठिर ॥ २ ॥
तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलैस्तथा।
दत्तेन मासं प्रीयन्ते श्राद्धेन पितरो नृप ॥ ३ ॥
वर्धमानतिलं श्राद्धमक्षयं मनुरब्रवीत्।
सर्वेष्वेव तु भोज्येषु तिलाः प्राधान्यतः स्मृताः ॥ ४ ॥
द्वौ मासौ तु भवेत्तृप्तिर्मत्स्यैः पितृगणस्य ह।
त्रीन्मासानाविकेनाहुश्चतुर्मासं शशेन ह ॥ ५ ॥
आजेन मासान्प्रीयन्ते पञ्चैव पितरो नृप।
वाराहेण तु षण्मासान् सप्त वै शाकुलेन तु ॥ ६ ॥
मासानष्टौ पार्षतेन रौरवेण नव प्रभो।

पूर्वाह्णसे अपराह्ण विशेषरूपसे श्रेष्ठ है। (१६-१९)

अनुशासनपर्वमें ८७ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ८८ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! पितरोंके उद्देश्यसे कौन वस्तु दान करनेपर अक्षय होती है? कैसी हवि सदाके लिये तथा आनन्त्यकी निमित्त कल्पित हुआ करती है? (१)

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! श्राद्धवित् पण्डित लोग श्राद्धकल्पमें जिसे हविरूपी जानते हैं, उन काम्यविषयों तथा उनके फल मेरे समीप सुनो। हे राजन्! तिल, व्रीहि, यव, मांस, जल और फलमूलके द्वारा श्राद्ध करनेसे पितरगण एक महीनेतक प्रसन्न हुआ करते हैं। मनुने कहा है, कि वर्द्धमान तिल श्राद्ध अक्षय होता है। समस्त भोजनकी वस्तुओंके बीच तिल सबसे मुख्य कहा गया है। मत्स्यके द्वारा श्राद्ध करनेसे पितरगण दो महीनेतक तृप्त रहते हैं। मेढके मांससे श्राद्ध करनेपर पितरगण चार महीनेतक प्रसन्न हुआ करते हैं। (२-५)

हे राजन्! बकरेके मांससे श्राद्ध करनेसे पितर लोग पांच महीनेतक प्रसन्न रहते हैं। वराहके मांससे श्राद्ध करनेपर पितरगण छः महीनेतक और शकुलमांससे श्राद्ध करनेसे सात महीनेतक तृप्त रहते हैं। चित्रमृगके मांससे श्राद्ध करनेपर आठ महीने और कृष्णसार मृगके मांससे श्राद्ध करे तो

गवयस्य तु मांसेन तृप्तिः स्याद्दशमासिकी ॥ ७ ॥
मांसेनैकादश प्रीतिः पितॄणां माहिषेण तु ।
गव्येन दत्ते श्राद्धे तु संवत्सरमिहोच्यते ॥ ८ ॥
यथा गव्यं तथा युक्तं पायसं सर्पिषा सह ।
वाध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥ ९ ॥
आनन्त्याय भवेद्दत्तं खड्गमांसं पितृक्षये ।
कालशाकं च लौहं चाप्यानन्त्यं छाग उच्यते ॥ १० ॥
गाथाश्चाप्यत्र गायन्ति पितृगीता युधिष्ठिर ।
सनत्कुमारो भगवान्पुरा मय्यभ्यभाषत ॥ ११ ॥
अपि नः स्वकुले जायाद्यो नो दद्यात्त्रयोदशीम् ।
मघासु सर्पिःसंयुक्तं पायसं दक्षिणायने ॥ १२ ॥
आजेन वाऽपि लौहेन मघास्वेव यतव्रतः ।
हस्तिच्छायासु विधिवत् कर्णव्यजनवीजितम् ॥ १३ ॥
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ।

पितरगण प्रसन्न होके नव महीनेतक निवास करते हैं, गवय मांससे श्राद्ध करनेपर पितरोंको दश महीनेकी तृप्ति होती है। भैंसेके मांससे श्राद्ध करनेपर पितरोंको ग्यारह महीनेकी तृप्ति हुआ करती है। ऐसा वर्णित है, कि गव्यके द्वारा श्राद्ध करनेसे पितरोंकी एक वर्षतक तृप्ति होती है। जैसा गव्य है, घृतके सहित पायस भी वैसा ही उपयोगी है। महोक्ष, पक्षिविशेष, वा बकरा विशेषके, मांसके द्वारा पितरोंको बारह वर्षकी तृप्ति होती है। (६-९)

पितृयज्ञमें खड्गमांस दिये जानेपर आनन्त्यकी हेतु हुआ करता है। कालशाक, काञ्चनवृक्षके पुष्प आदि और बकरे आनन्त्य रूपसे वर्णित होते हैं। हे युधिष्ठिर! इस विषयमें जो लोग पितृगीत गाथा गाया करते हैं, पहले समयमें भगवान सनत्कुमारने मेरे समीप समस्त गाथा कही थी। हमारे निज वंशमें जो पुरुष जन्मेंगे, वे त्रयोदशीमें हम लोगोंका श्राद्ध करेंगे और दक्षिणायनके मघा नक्षत्रमें सर्पियुक्त पायस दान करेंगे। (१०-१२)

मघा नत्रक्षमें यतव्रती होकर अज, काञ्चन वृक्षज पुष्प आदिसे हमें तृप्त करेंगे। हस्तिच्छायामें विधिपूर्वक कर्णव्यजनवीजित पायस आदि प्रदान करेंगे। बहुतसे पुत्रोंके लिये कामना करनी योग्य है, क्यों कि क्या जाने

यत्रासौ प्रथितो लोकेष्वक्षय्यकरणो वटः ॥ १४ ॥
आपो मूलं फलं मांसमन्नं वाऽपि पितृक्षये ।
यत्किंचिन्मधुसंमिश्रं तद्दानन्त्याय कल्पते ॥ १५ ॥ [४१९९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे श्राद्धकल्पेऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

भीष्म उवाच— यमस्तु यानि श्राद्धानि प्रोवाच शशबिन्दवे ।
तानि मे शृणु काम्यानि नक्षत्रेषु पृथक् पृथक् ॥ १ ॥
श्राद्धं यः कृत्तिकायोगे कुर्वीत सततं नरः ।
अग्नीनाधाय सापत्यो यजेत विगतज्वरः ॥ २ ॥
अपत्यकामो रोहिण्यां तेजस्कामो मृगोत्तमे ।
क्रूरकर्मा ददच्छ्राद्धमार्द्रायां मानवो भवेत ॥ ३ ॥
धनकामो भवेन्मर्त्यः कुर्वञ्छ्राद्धं पुनर्वसौ ।
पुष्टिकामोऽथ पुष्येण श्राद्धमीहेत मानवः ॥ ४ ॥
आश्लेषायां ददच्छ्राद्धं धीरान्पुत्रान्प्रजायते ।
ज्ञातीनां तु भवेच्छ्रेष्ठो मघासु श्राद्धमावपन् ॥ ५ ॥

उनमेंसे एक पुत्र भी गयाधाममें जाय, जहांपर अक्षयवट लोकके बीच विख्यात है। पितृयज्ञमें जल, मूल, फल, मांस और अन्न प्रभृति मधुमिश्रित जो कुछ वस्तु दी जाती है, वही अनन्त-फल-जनक रूपसे कल्पित हुआ करती है। (१३—१६)

अनुशासनपर्वमें ८८ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ८९ अध्याय।

भीष्म बोले, यमने शशबिन्दुसे जो सब श्राद्ध विषय कहा था, उस पृथक् पृथक् नक्षत्रोंमें विहित काम्य श्राद्धका विषय मेरे समीप सुनो। जो मनुष्य कृत्तिका नक्षत्रमें सदा श्राद्ध करता है और अग्नि जलाके यज्ञ किया करता है, वह अपत्योंके सहित शोकरहित होता है। पुत्रकामनावाले मनुष्य रोहिणी नक्षत्रमें और तेजके अभिलाषी मनुष्य मृगशिरा नक्षत्रमें श्राद्ध करें। आर्द्रा नक्षत्रमें श्राद्ध दान करनेसे मनुष्य क्रूरकर्मा होता है। पुनर्वसु नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे मनुष्य कृषि-भागी हुआ करता है। पुष्टिकी इच्छा-वाले मनुष्य पुष्य नक्षत्रमें श्राद्ध करें, जो मनुष्य आश्लेषा नक्षत्रमें श्राद्ध करते हैं, उनके वीर पुत्र उत्पन्न होते हैं। मघा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेवालोंको स्वजनोंके बीच श्रेष्ठता प्राप्त होती है। (१—५)

फल्गुनीषु ददच्छ्राद्धं सुभगः श्राद्धदो भवेत्।
अपत्यभागुत्तरासु हस्तेन फलभाग्भवेत् ॥ ६ ॥
चित्रायां तु ददच्छ्राद्धं लभेद्रूपवतः सुतान्।
स्वातियोगे पितॄनर्च्य वाणिज्यमुपजीवति ॥ ७ ॥
बहुपुत्रो विशाखासु पुत्रमीहन्भवेन्नरः।
अनुराधासु कुर्वाणो राजचक्रं प्रवर्तयेत् ॥ ८ ॥
आधिपत्यं व्रजेन्मर्त्यो ज्येष्ठायामपवर्जयन्।
नरः कुरुकुलश्रेष्ठ ऋद्धो दमपुरःसरः ॥ ९ ॥
मूले त्वारोग्यमृच्छेत यशोऽऽषाढासु चोत्तमम्।
उत्तरासु त्वषाढासु वीतशोकश्चरेन्महीम् ॥ १० ॥
श्राद्धं त्वभिजिता कुर्वन् भिषक् सिद्धिमवाप्नुयात्।
श्रवणेषु ददच्छ्राद्धं प्रेत्य गच्छेत्स तद्गतिम् ॥ ११ ॥
राज्यभागी धनिष्ठायां भवेत नियतं नरः।
नक्षत्रे वारुणे कुर्वन् भिषक्सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥

पूर्वाफल्गुनी नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे श्राद्धकर्त्ता सौभाग्यशाली होता है। उत्तराफल्गुनी नक्षत्रमें श्राद्ध करनेवाले पुत्रवान् हुआ करते हैं। हस्त नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे मनुष्य फलभागी होता है। चित्रा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेवाले रूपवान् पुत्र पाते हैं। स्वाती नक्षत्रमें पितरोंकी अर्चना करनेसे पुरुष वाणिज्य उपजीवी होता है। पुत्रकामनावाले मनुष्य विशाखा नक्षत्रमें पितृयज्ञ करनेसे बहुतसे पुत्र पाते हैं। अनुराधा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे मनुष्य राजचक्रका प्रवर्त्तक होता है। (६—८)

ज्येष्ठा नक्षत्रमें पितृतर्पण करनेसे मनुष्यको आधिपत्य प्राप्त होता है। मूल नक्षत्रमें पितरोंकी पूजा करनेसे आरोग्यता प्राप्त होती है। हे कुरुकुल-श्रेष्ठ! श्रद्धा-दमसे युक्त पूर्वाषाढा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे मनुष्यको उत्तम यश मिलता है। उत्तराषाढा नक्षत्रमें पितरोंकी पूजा करनेवाले मनुष्य शोक-रहित होके पृथ्वीमण्डलपर विचरते हैं। उत्तराषाढाके शेषपाद और श्रवणके प्रथम चारों दण्ड, अभिजित् नक्षत्र में श्राद्ध करनेवालोंको श्रेष्ठ विद्या प्राप्त होती है। श्रवण नक्षत्रमें श्राद्ध दान करनेवालोंको परलोकमें सद्गति मिलती है। (९—११)

धनिष्ठा नक्षत्रमें पितृयज्ञ करनेवाले मनुष्य सदा राज्यभागी होते हैं। शत-

पूर्वप्रोष्ठपदाः कुर्वन् बहून्विन्दत्यजाविकान् ।
उत्तरासु प्रकुर्वाणो विन्दते गाः सहस्रशः ॥ १३ ॥
बहु कुप्यकृतं वित्तं विन्दते रेवतीं श्रितः ।
अश्विनीष्वश्वान्विन्देत भरणीष्वायुरुत्तमम् ॥ १४ ॥
इमं श्राद्धविधिं श्रुत्वा शशबिन्दुस्तथाऽकरोत् ।
अक्लेशेनाजयच्चापि महीं सोऽनुशशास ह ॥ १५ ॥ [४२१४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे श्राद्धकल्पे एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

युधिष्ठिर उवाच– कीदृशेभ्यः प्रदातव्यं भवेच्छ्राद्धं पितामह ।
द्विजेभ्यः कुरुशार्दूल तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥
भीष्म उवाच– ब्राह्मणान्न परीक्षेत क्षत्रियो दानधर्मवित् ।
दैवे कर्मणि पित्र्ये तु न्यायमाहुः परीक्षणम् ॥ २ ॥
देवताः पूजयन्तीह दैवेनैवेह तेजसा ।
उपेत्य तस्माद्देवेभ्यः सर्वेभ्यो दापयेन्नरः ॥ ३ ॥

भिषा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे भिषक्सिद्धि प्राप्त होती है। पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रमें पितरोंकी पूजा करनेसे मनुष्य बहुतसे बकरे और मेषादि धन पाता है। उत्तराभाद्रपदामें श्राद्ध करनेसे मनुष्यको बहुतसी गऊ मिलती हैं, रेवती नक्षत्र में श्राद्ध करनेसे मनुष्य सोना रूपाके अतिरिक्त बहुतसा धन पाता है। अश्विनी नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे उत्तम घोडे और भरणी नक्षत्रमें पितरोंकी पूजा करनेसे मनुष्यको उत्तम आयु प्राप्त होती है। शशबिन्दुने इस श्राद्धविधिको सुनके वैसा ही अनुष्ठान किया और उन्होंने विना क्लेशके ही पृथ्वीमण्डलको जीतके उसे शासन किया था। (१२–१५)

अनुशासनपर्वमें ८९ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ९० अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे कुरुकुलश्रेष्ठ पितामह ! कैसे द्विजोंको दान करनेसे श्राद्ध सिद्ध होता है, उसको आप मेरे समीप व्याख्या करिये। (१)

भीष्म बोले, हे महाराज ! दान धर्मके जाननेवाले क्षत्रियोंको देवकार्यमें ब्राह्मणोंकी परीक्षा करनी योग्य नहीं है, किन्तु ऋषियोंने ऐसा कहा है, कि पितृकार्यमें न्यायपूर्वक ब्राह्मणोंकी परीक्षा करनी योग्य है। मनुष्य देवकार्यमें केवल देवताओंकी पूजा किया करते हैं, इसलिये उसमें देवताओंके उद्देश्यसे

श्राद्धे त्वथ महाराज परीक्षेद्ब्राह्मणान्बुधः।
कुलशीलवयोरूपैर्विद्यया‌ऽभिजनेन च ॥ ४ ॥
तेषामन्ये पङ्क्तिदूषास्तथा‌ऽन्ये पङ्क्तिपावनाः।
अपाङ्क्तेयास्तु ये राजन् कीर्तयिष्यामि तान् शृणु ॥५॥
कितवो भ्रूणहा यक्ष्मी पशुपालो निराकृतिः।
ग्रामप्रेष्यो वार्धुषिको गायनः सर्वविक्रयी ॥ ६ ॥
अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी।
सामुद्रिको राजभृत्यस्तैलिकः कूटकारकः ॥ ७ ॥
पित्रा विवदमानश्च यस्य चोपपतिर्गृहे।
अभिशस्तस्तथा स्तेनः शिल्पं यश्चोपजीवति ॥ ८ ॥
पर्वकारश्च सूची च मित्रध्रुक् पारदारिकः।
अव्रतानामुपाध्यायः काण्डपृष्ठस्तथैव च ॥ ९ ॥
श्वभिश्च यः परिक्रामेद्यः शुना दष्ट एव च।
परिवित्तिश्च यश्च स्याद् दुश्चर्मा गुरुतल्पगः ॥ १० ॥
कुशीलवो देवलको नक्षत्रैर्यश्च जीवति।

ब्राह्मणमात्रको ही दान देना उचित है, परन्तु विद्वान् मनुष्य श्राद्धके समय कुल, शील, अवस्था, विद्या, रूप और मर्यादाके सहारे ब्राह्मणोंकी परीक्षा करे। हे महाराज! ब्राह्मणोंके बीच कोई कोई पंक्तिदूषक और कोई पंक्ति-पावन हैं, उनमेंसे दुष्कर्म आदिसे जो लोग पांतिबाहर हैं, उनका विषय कहता हूं, सुनो। (२—५)

धूर्त्त, भ्रूणहत्यारे, यक्ष्मरोगग्रस्त, पशुपालक, अध्ययनादिवर्जित, ग्राम-प्रेष्य, वार्द्धुषिक अर्थात् वृद्धिके निमित्त धन प्रयोग करनेवाले, गायक, सर्व-विक्रयी, स्थान जलानेवाले, गरद, कुण्डाशी, सोमविक्रयी, सामुद्रिक, राजसेवक, तेलीका कर्म करनेवाले, कूटकारक, पिताके संग विवाद करने-वाले, जिनके गृहमें उपपति हैं वैसे पुरुष। अभिशस्त, चोर, जो पुरुष शिल्प-कार्यके सहारे जीवन धारण करते हैं, पर्वकार अर्थात् वेषान्तरधारी, चुगल, मित्रद्रोही, पारदारिक, शूद्रोंके उपाध्याय, शस्त्रजीवी, जो पुरुष कुत्तेके सहारे मृगया करता है, जिसे कुत्तेने काटा हो, जेठे भाईके क्वांरे रहते यदि लहुरा ब्याह करे तो वह परिवेत्ता हुआ करता है। (६—१०)

दुश्चर्मा, गुरुशय्यागामी, कुशीलव,

ईदृशैर्ब्राह्मणैर्भुक्तमपाङ्क्तेयैर्युधिष्ठिर ॥ ११ ॥
रक्षांसि गच्छते हव्यमित्याहुर्ब्रह्मवादिनः ।
श्राद्धं भुक्त्वा त्वधीयीत वृषलीतल्पगश्च यः ॥ १२ ॥
पुरीषे तस्य ते मासं पितरस्तस्य शेरते ।
सोमविक्रयिणे विष्ठा भिषजे पूयशोणितम् ॥ १३ ॥
नष्टं देवलके दत्तमप्रतिष्ठं च वार्धुषे ।
यत्तु वाणिजके दत्तं नेह नामुत्र तद्भवेत् ॥ १४ ॥
भस्मनीव हुतं हव्यं तथा पौनर्भवे द्विजे ।
ये तु धर्मव्यपेतेषु चारित्रापगतेषु च ।
हव्यं कव्यं प्रयच्छन्ति तेषां तत्प्रेत्य नश्यति ॥ १५ ॥
ज्ञानपूर्वं तु ये तेभ्यः प्रयच्छन्त्यल्पबुद्धयः ।
पुरीषं भुञ्जते तस्य पितरः प्रेत्य निश्चयः ॥ १६ ॥
एतानिमान्विजानीयादपाङ्क्तेयान्द्विजाधमान् ।

कृषीवल, देवल और जो पुरुष नक्षत्र निरूपण करके जीविका निर्वाह करते हैं, येही पांतिसे बाहर हैं। हे युधिष्ठिर! ब्रह्मवादी लोग कहते हैं, कि ऐसे अपांक्तेय ब्राह्मण लोग जिस जिस श्राद्धमें भोजन करते हैं, उस श्राद्धके हविको राक्षस लोग भक्षण किया करते हैं। जो शूद्रास्त्रीगामी ब्राह्मण श्राद्धमें भोजन करके अध्ययन करता है, श्राद्ध करनेवालेके पितर उस ब्राह्मणके पुरीषमें एक महीनेतक शयन किया करते हैं। सोम बेचनेवालेको जो दान किया जाता है, वह विष्ठासदृश है। भिषक् वृत्तिवाले ब्राह्मणोंको जो दान किया जाता हैं, वह पूयशोणित समान है। (१०—१३)

देवलकको जो वस्तु दान की जाती है, वह नष्ट हुआ करती है, वार्धुषिक ब्राह्मणको दान करनेसे अप्रतिष्ठा होती है। वाणिज्य व्यवसायी ब्राह्मणको जो दान किया जाता है, वह इस लोक और परलोकमें कार्यकारी नहीं होता। पौनर्भव ब्राह्मणको दान देना राखमें घृतकी आहुति सदृश हुआ करता है। धर्मसे विचलित और दुश्चरित्र ब्राह्मणको जो लोग हव्यकव्य प्रदान करते हैं, उनका वह दान परलोकमें विनष्ट होता है। जो अल्पबुद्धि मनुष्य जानके ऐसे अपांक्तेय ब्राह्मणोंको श्राद्धसमयमें दान करते हैं, उनके पितृगण निश्चय ही परलोकमें पुरीष भक्षण करते हैं। १४-१६

जो अल्पबुद्धिवाले ब्राह्मण शूद्रोंको

शूद्राणामुपदेशं च ये कुर्वन्त्यल्पचेतसः ॥ १७ ॥
षष्टिं काणः शतं षण्ढः श्वित्री यावत्प्रपश्यति ।
पङ्क्त्यां समुपविष्टायां तावद् दूषयते नृप ॥ १८ ॥
यद्वेष्टितशिरा भुङ्क्ते यद्भुङ्क्ते दक्षिणामुखः ।
सोपानत्कश्च यद्भुंक्ते सर्वं विद्यात्तदासुरम् ॥ १९ ॥
असूयता च यद्दत्तं यच्च श्रद्धाविवर्जितम् ।
सर्वं तदसुरेन्द्राय ब्रह्मा भागमकल्पयत् ॥ २० ॥
श्वानश्च पंक्तिदूषाश्च नावेक्षेरन्कथंचन ।
तस्मात्परिसृते दद्यात्तिलांश्चान्ववकीरयेत् ॥ २१ ॥
तिलैर्विरहितं श्राद्धं कृतं क्रोधवशेन च ।
यातुधानाः पिशाचाश्च विप्रलुम्पन्ति तद्धविः ॥ २२ ॥
अपांक्तो यावतः पांक्तान्भुञ्जानाननुपश्यति ।
तावत्फलाद्भ्रंशयति दातारं तस्य बालिशम् ॥ २३ ॥
इमे तु भरतश्रेष्ठ विज्ञेयाः पंक्तिपावनाः ।

उपदेश करते हैं, उन्हें और पहले कहे हुए अधम द्विजोंको पांतिबाहर जानो। हे महाराज ! यदि कोढी पुरुष ब्राह्मणों-की पांतिमें बैठे, तो वह साठ ब्राह्मणों-को दूषित करता है; क्लीब पुरुष एक सौ ब्राह्मणोंको दूषित करता और श्वित्रीरोगी जहांतक देखता हैं, उतनी दूरके ब्राह्मणोंको दूषित किया करता है। जो लोग सिर बांधके खाते, जो दक्षिणमुख होके भोजन करते तथा जो लोग जूता पहरके खाते है, उन्हें असुर जानो, जो असूयावशसे दिया जाय और जो श्रद्धाविवर्जित रूपसे दान किया जाता है, ब्रह्माने असुरेन्द्र बालिके निमित्त उस समस्त भागकी कल्पना की है। (१७-२०)

कुत्ते और पंक्तिदूषित ब्राह्मण किसी प्रकार श्राद्धको न देखने पावें इस ही निमित्त आवृत स्थानमें पितरोंके उद्दे-श्यसे दान करे और तिल छोडे। जो श्राद्ध विना तिलके किया जाता है, जो लोग क्रोधके वशमें होकर श्राद्ध करते हैं, राक्षस और पिशाचगण उस श्राद्धके हविको लुप्त किया करते हैं। अपांक्तेय ब्राह्मण पांतिके बीच जितने भोजन करनेवाले ब्राह्मणोंको देखता है, कर्त्तव्यविमूढ दाताका उतने परिमाणसे फल भ्रष्ट किया करता है। (२१-२३)

हे भरतश्रेष्ठ ! पहले अपांक्तेय ब्राह्म-णोंका विषय कहा है, अब जो लोग

ये त्वतस्तान्प्रवक्ष्यामि परीक्षस्वेह तान्द्विजान् ॥२४॥
विद्यावेदव्रतस्नाता ब्राह्मणाः सर्व एव हि ।
सदाचारपराश्चैव विज्ञेयाः सर्वपावनाः ॥ २५ ॥
पांक्तेयांस्तु प्रवक्ष्यामि ज्ञेयास्ते पंक्तिपावनाः ।
त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित् ॥ २६ ॥
ब्रह्मदेयानुसन्तानश्छन्दोगो ज्येष्ठसामगः ।
मातापित्रोर्यश्च वश्यः श्रोत्रियो दशपूरुषः ॥ २७ ॥
ऋतुकालाभिगामी च धर्मपत्नीषु यः सदा ।
वेदविद्याव्रतस्नातो विप्रः पंक्तिं पुनात्युत ॥ २८ ॥
अथर्वशिरसोऽध्येता ब्रह्मचारी यतव्रतः ।
सत्यवादी धर्मशीलः स्वकर्मनिरतश्च सः ॥ २९ ॥
ये च पुण्येषु तीर्थेषु अभिषेककृतश्रमाः ।
मखेषु च समन्त्रेषु भवन्त्यवभृतप्लुताः ॥ ३० ॥
अक्रोधना ह्यचपलाः क्षान्ता दान्ता जितेन्द्रियाः ।
सर्वभूतहिता ये च श्राद्धेष्वेतान्निमन्त्रयेत् ॥ ३१ ॥

पंक्तिपावन हैं, उनका विषय कहता हूं, तुम वैसे ब्राह्मणोंकी परीक्षा करना। विद्यास्नात, व्रतस्नात, वेदस्नात, और सदाचारयुक्त सब ब्राह्मणोंको ही सर्व-पावन जानो। जो लोग पांक्तेय हैं, उनका विषय कहता हूं, तुम उन्हें पंक्तिपावन जानना। जिन्होंने त्रिणाचि-केत मन्त्र पढा है, जिन्होंने गार्हपत्य, दक्षिण, आवहनीय, सत्य और सर्वाग्नि इन पांच प्रकारके अग्निका अनुष्ठान जाना है, जिन्हें त्रिसुपर्ण नाम बहृच-गणके तीनों मन्त्र विदित हैं, जो लोग शिक्षा, कल्प, प्रभृति वेदके षडङ्गवेत्ता हैं, जो वंशपरम्परासे वेद पढाया करते हैं, उनके वंशमें जो लोग उत्पन्न हुए हों; जो लोग ज्येष्ठ सामगान करनेमें समर्थ हैं, तथा जो माता पिताके वशी-भूत हों, जिनके दश पुरुष श्रोत्रिय हों, जो सदा ऋतुकालमें धर्मपत्नी गमन करते हैं और जो लोग वेद, विद्या तथा व्रतस्नात हैं, वे ब्राह्मण ही पांतिको प-वित्र किया करते हैं। (२४ – २८)

जो लोग अथर्ववेदके शिरोभागको पढते हैं, जो ब्रह्मचारी और यतव्रती हैं, जो लोग सत्यवादी, धर्मशील और निजकर्ममें रत हों; जो लोग पुण्यतीर्थों में स्नान करनेके लिये श्रम करते हैं, जिन्होंने यज्ञोंमें अवभृत स्नान किया

एतेषु दत्तमक्षय्यमेते वै पंक्तिपावनाः ।
इमे परे महाभागा विज्ञेयाः पंक्तिपावनाः ॥ ३२ ॥
यतयो मोक्षधर्मज्ञा योगाः सुचरितव्रताः ।
ये चेतिहासं प्रयताः श्रावयन्ति द्विजोत्तमान् ॥ ३३ ॥
ये च भाष्यविदः केचिद्ये च व्याकरणे रताः ।
अधीयते पुराणं ये धर्मशास्त्राण्यथापि च ॥ ३४ ॥
अधीत्य च यथान्यायं विधिवत्तस्य कारिणः ।
उपपन्नो गुरुकुले सत्यवादी सहस्रशः ॥ ३५ ॥
अग्र्याः सर्वेषु वेदेषु सर्वप्रवचनेषु च ।
यावदेते प्रपश्यन्ति पंक्त्यास्तावत्पुनन्त्युत ॥ ३६ ॥
ततो हि पावनात्पंक्त्याः पंक्तिपावन उच्यते ।
क्रोशादर्धतृतीयाच्च पावयेदेक एव हि ॥ ३७ ॥
ब्रह्मदेयानुसंतान इति ब्रह्मविदो विदुः ।
अनृत्विगनुपाध्यायः स चेदग्रासनं व्रजेत् ॥ ३८ ॥
ऋत्विग्भिरभ्यनुज्ञातः पंक्त्या हरति दुष्कृतम् ।

है, जो लोग क्रोधरहित, चपलताहीन, क्षमाशील, दान्त, जितेन्द्रिय और सब प्राणियोंके हितमें रत हों, उन्हें श्राद्धमें निमन्त्रण करे। इन लोगोंको दान करनेसे अक्षय फल होता है, इन्हें ही पंक्तिपावन जानो। (२९–३२)

जो लोग मोक्षधर्मके जाननेवाले, यति, योगाचारी और उत्तम रीतिसे व्रत करते हैं, तथा जो लोग सावधान होकर उत्तम द्विजोंके इतिहास सुनाया करते हैं, जो लोग भाष्यवेत्ता और व्याकरण-शास्त्रमें रत रहते हैं, जो लोग पुराण-शास्त्र अथवा धर्मशास्त्र पढा करते हैं, और पढके विधिपूर्वक उसका अनुष्ठान करते हैं, जिन्होंने गुरुकुलमें निवास किया है, जो सत्यवादी तथा सहस्र-दाता हैं, सब वेदशास्त्रोंमें जो लोग अग्र-गण्य हैं, वे पांतिमें जहांतक देखते हैं, उतने परिमाणसे लोगोंको पवित्र किया करते हैं; इसलिये पंक्तिको पवित्र कर-नेसे वे लोग पंक्तिपावन नामसे वर्णित हुए हैं। ब्रह्मवित् पुरुष ऐसा कहते हैं, कि जो लोग वंशपरम्परासे वेद पढाते हैं, वैसे वंशमें जो पुरुष उत्पन्न हुए हों, वे अकेले ही कोस आधकोस अथवा तिहाईकोससे पांतिको पवित्र किया करते हैं। (३३—३७)

ऋत्विक् अथवा उपाध्यायके गुण-

अथ चेद्वेदवित्सर्वैः पंक्तिदोषैर्विवर्जितः ॥ ३९ ॥
न च स्यात्पतितो राजन्पंक्तिपावन एव सः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन परीक्ष्यामन्त्रयेद् द्विजान् ॥ ४० ॥
स्वकर्मनिरतानन्यान्कुले जातान्बहुश्रुतान् ।
यस्य मित्रप्रधानानि श्राद्धानि च हवींषि च ।
न प्रीणन्ति पितॄन्देवान्स्वर्गं च न स गच्छति ॥ ४१ ॥
यश्च श्राद्धे कुरुते संगतानि न देवयानेन पथा स याति ।
स वै मुक्तः पिप्पलं बन्धनाद्वा स्वर्गाल्लोकाच्च्यवते श्राद्धमित्रः ॥ ४२ ॥
तस्मान्मित्रं श्राद्धकृन्नाद्रियेत दद्यान्मित्रेभ्यः संग्रहार्थं धनानि ।
यन्मन्यते नैव शत्रुं न मित्रं तं मध्यस्थं भोजयेद्धव्यकव्ये ॥ ४३ ॥
यथोषरे बीजमुप्तं न रोहेन्न चावप्ता प्राप्नुयाद्बीजभागम् ।
एवं श्राद्धं भुक्तमनर्हमाणैर्न चेह नामुत्र फलं ददाति ॥ ४४ ॥
ब्राह्मणो ह्यनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति ।
तस्मै श्राद्धं न दातव्यं न हि भस्मनि हूयते ॥ ४५ ॥

हीन होनेपर भी यदि कोई उनकी अनुमतिके विना पहले आसनपर बैठे, तो भी वे पंक्तिके दुष्कृतको हरण किया करते हैं। पंक्तिदोषसे रहित वेद जाननेवाले विप्र यदि पतित न हों, तो वे पंक्तिपावन हैं। इसलिये सब भांतिसे यत्नपूर्वक परीक्षा करके निज कर्ममें रत, सत्कुलमें उत्पन्न तथा अन्य बहुश्रुत ब्राह्मणोंको आमन्त्रण करें। दैव और पितृकार्यमें जिसका मित्रभोजन ही मुख्य उद्देश्य है, तथा जो पुरुष पितरों और देवताओंको परितृप्त नहीं करता, वह स्वर्गमें जानेमें समर्थ नहीं होता। (३८—४१)

जो श्राद्धके निमित्त बन्धुबान्धवोंके सङ्गमें मिलाता है, वह देवयानपथसे गमन नहीं कर सकता, वह श्राद्धमित्र मनुष्य फल बन्धनसे छुटनेके समान स्वर्गलोकसे च्युत होता है। इसलिये श्राद्ध करनेवाला मित्रपुरुषोंका आदर न करे, अन्य समयमें संग्रहके निमित्त मित्रोंको धन देवे। जिसे शत्रु वा मित्र नहीं जाना जाता, हव्यकव्य दानके समय उस मध्यम ब्राह्मणको भोजन करावे। जैसे ऊषरभूमिमें बीज बोनेसे अंकुर नहीं निकलता तथा बोनेवाला जैसे उस बीजका अंश नहीं पासकता, वैसे ही अयोग्य ब्राह्मणको श्राद्धमें भोजन करानेसे इस लोक तथा परलोकमें भी श्राद्धका फल नहीं मिलता। बिन पढा

संभोजनी नाम पिशाचदक्षिणा सा नैव देवान्न पितॄनुपैति ।
इहैव सा भ्राम्यति हीनपुण्या शालान्तरे गौरिव नष्टवत्सा ॥४६॥
यथाऽग्नौ शान्ते घृतमाजुहोति तन्नैव देवान्न पितॄनुपैति ।
तथा दत्तं नर्तने गायने च यां चानृते दक्षिणामावृणोति ॥ ४७ ॥
उभौ हिनस्ति न भुनक्ति चैषा या चानृते दक्षिणा दीयते वै ।
आघातिनी गर्हितैषा पतन्ती तेषां प्रेतान्पातयेद्देवयानात् ॥ ४८ ॥
ऋषीणां समये नित्यं ये चरन्ति युधिष्ठिर ।
निश्चिताः सर्वधर्मज्ञास्तान्देवा ब्राह्मणान्विदुः ॥४९ ॥
स्वाध्यायनिष्ठा ऋषयो ज्ञाननिष्ठास्तथैव च ।
तपोनिष्ठाश्च बोद्धव्याः कर्मनिष्ठाश्च भारत ॥ ५० ॥
कव्यानि ज्ञाननिष्ठेभ्यः प्रतिष्ठाप्यानि भारत ।
तत्र ये ब्राह्मणान्केचिन्न निन्दन्ति हि ते नराः ॥५१ ॥

हुआ ब्राह्मण तृणकी अग्निकी भांति शान्त होता है, इसलिये उसे श्राद्धीय दान न करे, क्यों कि भस्ममें कदापि होम नहीं होता । (४२—४५)

संभोजनी अर्थात् परस्पर दीयमान दक्षिणाको पिशाचदक्षिणा कहते हैं; जैसे पिशाचोंको जो पुरुष भोजन कराता है, वे भी उसे ही भोजन कराया करते हैं, यह भी उसीके तुल्य है; इसलिये ऐसे दानका फल पितृलोक अथवा देवलोकमें नहीं मिलता । जैसे नष्टवत्सा गऊ गृहके भीतर भ्रमण करती है, वैसे ही वह पुण्यहीन दक्षिणा इस लोकमें ही घूमा करती है । जैसे अग्नि बुझ जानेपर उसमें घृतकी आहुति देनेसे वह देवलोक अथवा पितृलोकमें नहीं पहुंचती, नाचने गानेवालों तथा मिथ्यावादियोंको जो दान किया जाता है, वह भी वैसा ही है । (४६—४७)

झूठ बोलनेवालोंको जो दक्षिणा दी जाती है, वह उसी दाताके दोनों कुलोंको नष्ट करती है, और उसे पालन नहीं करती, वह आघातिनी, निन्दनीय दक्षिणा स्वयं पतित होकर प्रदाताको प्रेतोंके देवयान पथसे च्युत करती है । हे युधिष्ठिर ! जो लोग सदा ऋषियोंके नियमाचरण करते हैं, वे निश्चितबुद्धि, सब धर्मोंके जाननेवाले पुरुषोंको देवता लोग भी ब्राह्मण जानते हैं । हे भारत! ज्ञाननिष्ठ, स्वाध्यायनिष्ठ, तपोनिष्ठ और कर्मनिष्ठ ब्राह्मणोंको ऋषि जानो। हे भारत ! ज्ञाननिष्ठ ब्राह्मणोंको कव्य प्रदान करना योग्य है । जो लोग ज्ञान-निष्ठ होते हैं, वे ब्राह्मणोंकी निन्दा

ये तु निन्दन्ति जल्पेषु न ताञ्छ्राद्धेषु भोजयेत् ।
ब्राह्मणा निन्दिता राजन्हन्युस्त्रैपुरुषं कुलम् ॥ ५२ ॥
वैखानसानां वचनमृषीणां श्रूयते नृप ।
दूरादेव परीक्षेत ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥ ५३ ॥
प्रियो वा यदि वा द्वेष्यस्तेषां तु श्राद्धमावपेत् ।
यः सहस्रं सहस्राणां भोजयेदनृतान्नरः ।
एकस्तान्मन्त्रवित्प्रीतः सर्वानर्हति भारत ॥ ५४ ॥ [४२९८]

इति श्रीमहाभारते० अनु० आनुशा० पर्वणि दानधर्मे श्राद्धकल्पे नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

युधिष्ठिर उवाच-केन संकल्पितं श्राद्धं कस्मिन्काले किमात्मकम् ।
भृग्वाङ्गिरसिके काले मुनिना कतरेण वा ॥ १ ॥
कानि श्राद्धानि वर्ज्यानि कानि मूलफलानि च ।
धान्यजात्यश्च का वर्ज्यास्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २ ॥
भीष्म उवाच- यथाश्राद्धं संप्रवृत्तं यस्मिन्काले यदात्मकम् ।
येन संकल्पितं चैव तन्मे शृणु जनाधिप ॥ ३ ॥

नहीं करते। (४८—५१)

जो जल्पनाके समय ब्राह्मणोंकी निन्दा करते हैं, श्राद्धमें उन्हें भोजन न करावे। हे महाराज! ब्राह्मण लोग निन्दित होनेपर तीन पुरुषतक कुलको नष्ट किया करते हैं। हे महाराज! वैखानस ऋषियोंका यह वचन सुना जाता है, कि वेदपारग ब्राह्मणोंकी दूरसे परीक्षा करे; वे प्रिय हों अथवा अप्रिय ही होवें, श्राद्धकालमें उन्हें दान करना योग्य है। हे भारत! जो मनुष्य सहस्रों झूठे ब्राह्मणोंको भोजन कराते हैं, वे केवल मन्त्र जाननेवाले एक ही ब्राह्मण को भोजन कराके प्रसन्न करनेसे उन सबके फलको पाते हैं। (५२—५४)

अनुशासनपर्वमें ९० अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ९१ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! किन पुरुषोंके द्वारा श्राद्ध सङ्कल्पित हुआ है? किस समय श्राद्ध करना उचित है? श्राद्धका कैसा स्वरूप है? जिस समय भृगु और अंगिराके वंशमें उत्पन्न ऋषियोंके अतिरिक्त और कोई न थे, उस समय किस मुनिके द्वारा श्राद्ध प्रवर्त्तित हुआ? श्राद्धके समय कौन कौनसे कर्म वर्जित हैं? कौन कौनसे फलमूल धान्य त्यागने योग्य हैं? आप मेरे समीप इस विषयको वर्णन करिये। (१—२)

भीष्म बोले, हे प्रजानाथ! जिस

स्वायंभुवोऽत्रिः कौरव्य परमर्षिः प्रतापवान् ।
तस्य वंशे महाराज दत्तात्रेय इति स्मृतः ॥ ४ ॥
दत्तात्रेयस्य पुत्रोऽभून्निमिर्नाम तपोधनः ।
निमेश्चाप्यभवत्पुत्रः श्रीमान्नाम श्रिया वृतः ॥ ५ ॥
पूर्णे वर्षसहस्रान्ते स कृत्वा दुष्करं तपः ।
कालधर्मपरीतात्मा निधनं समुपागतः ॥ ६ ॥
निमिस्तु कृत्वा शौचानि विधिदृष्टेन कर्मणा ।
संतापमगमत्तीव्रं पुत्रशोकपरायणः ॥ ७ ॥
अथ कृत्वोपहार्याणि चतुर्दश्यां महामतिः ।
तमेव गणयन् शोकं विरात्रे प्रत्यबुद्ध्यत ॥ ८ ॥
तस्यासीत्प्रतिबुद्धस्य शोकेन व्यथितात्मनः ।
मनः संहृत्य विषये बुद्धिर्विस्तारगामिनी ॥ ९ ॥
ततः संचिन्तयामास श्राद्धकल्पं समाहितः ।
यानि तस्यैव भोज्यानि मूलानि च फलानि च ॥१०॥
उक्तानि यानि चान्नानि यानि चेष्टानि तस्य ह ।

प्रकार श्राद्ध प्रवृत्त हुआ है, जिस समय श्राद्ध करना होता है, श्राद्धका जैसा रूप है, जिसके द्वारा सङ्कल्पित हुआ है, वह वृत्तान्त मेरे समीप सुनो। हे कुरुवंशधुरन्धर महाराज! स्वयम्भूके पुत्र अत्रि नामसे एक प्रतापवान् परमर्षि विख्यात हैं, उनके वंशमें दत्तात्रेय उत्पन्न हुए। दत्तात्रेयके निमि नाम तपस्वी पुत्र हुआ था, निमिके श्रीयुक्त श्रीमान् नाम पुत्र था, वह दुष्कर तपस्या करके सहस्र वर्ष पूरा होनेपर काल धर्मसे आक्रान्त होकर मृत्युको प्राप्त हुआ। पुत्रशोकसे युक्त निमि विधिपूर्वक शौचकार्य करके बहुत ही सन्तापित हुए। अनन्तर महाबुद्धिमान् निमि चतुर्दशी तिथिमें भोरके समय मिष्टान्न और वस्त्र आदि सामग्री लाके शोक चिन्ता करते करते सावधान हुए। (३--८)

उन्होंने शोकसे व्यथितहृदय होकर अत्यन्त बन्धकरण शोकविषयसे मनको हटाया अर्थात शोकको परित्याग करके सावधान होनेपर उनकी बुद्धि विस्तारगामिनी हुई। शेषमें वह समाहित होकर श्राद्धकल्पका विचार करने लगे। उनके पास जो सब फल, मूल, भोज्य थे और दूसरी जो कुछ वस्तु उनकी कही हुई तथा इष्ट

तानि सर्वाणि मनसा विनिश्चित्य तपोधनः ॥ ११ ॥
अमावास्यां महाप्राज्ञो विप्रानानाय्य पूजितान् ।
दक्षिणावर्तिकाः सर्वा बृसीः स्वयमथाकरोत् ॥ १२ ॥
सप्त विप्रांस्ततो भोज्ये युगपत्समुपानयत् ।
ऋते च लवणं भोज्यं श्यामाकान्नं ददौ प्रभुः ॥ १३ ॥
दक्षिणाग्रास्ततो दर्भा विष्टरेषु निवेशिताः ।
पादयोश्चैव विप्राणां ये त्वन्नमुपभुञ्जते ॥ १४ ॥
कृत्वा च दक्षिणाग्रान्वै दर्भान्स प्रयतः शुचिः ।
प्रददौ श्रीमतः पिण्डान्नामगोत्रमुदाहरन् ॥ १५ ॥
तत्कृत्वा स मुनिश्रेष्ठो धर्मसंकरमात्मनः ।
पश्चात्तापेन महता तप्यमानोऽभ्यचिन्तयत् ॥ १६ ॥
अकृतं मुनिभिः पूर्वं किं मयेदमनुष्ठितम् ।
कथं नु शापेन न मां दहेयुर्ब्राह्मणा इति ॥ १७ ॥
ततः संचिन्तयामास वंशकर्तारमात्मनः ।
ध्यातमात्रस्तथा चात्रिराजगाम तपोधनः ॥ १८ ॥

थी, महाप्राज्ञ तपोधन निमिने मनही मन सबका निश्चय करके अमावस्या तिथिमें पूजित ब्राह्मणोंको लाके स्वयं प्रदक्षिणावर्त्तित आसनोंको स्थापित किया। (९-१२)

अनन्तर उन्होंने सात ब्राह्मणोंको एकबारही भोजन करनेके लिये बैठाया और विना लवणके सांवां अन्न खानेको दिया। शेषमें जो सब ब्राह्मण अन्न भोजन कर रहे थे, उनके दोनों चरणों के समीप आसनके बीच अग्रभागमें दहिनी ओर दाभ रक्खी गई। उन्होंने सावधान और पवित्र होकर दाभोंको अग्रभागमें दहिनी ओर करके नाम तथा गोत्र उच्चारण करके श्रीमान्के उद्देश्यसे पिण्ड प्रदान किया। मुनिश्रेष्ठ निमिने धर्मसङ्कर करके अर्थात् वेदमें पितरोंके उद्देश्यसे पिण्डदान धर्म दीख पडता है, इसलोकमें पुत्रके निमित्त पिण्डदान स्वेच्छानुसार कल्पित हुआ है, ऐसा समझके अत्यन्त पश्चात्तापसे परितापित होके चिन्ता करने लगे। (१३-१६)

उन्होंने सोचा, कि पहले मुनियोंने जिसे नहीं किया, मैंने किस निमित्त उसका अनुष्ठान किया, ब्राह्मण लोग शापके द्वारा मुझे क्यों नहीं जलाते हैं? अनन्तर उसने अपने वंशकर्त्ताका ध्यान

अथात्रिस्तं तथा दृष्ट्वा पुत्रशोकेन कर्षितम् ।
भृशमाश्वासयामास वाग्भिरिष्टाभिरव्ययः ॥ १९ ॥
निमे सङ्कल्पितस्तेऽयं पितृयज्ञस्तपोधन ।
मा ते भूद्भीः पूर्वदृष्टो धर्मोऽयं ब्रह्मणा स्वयम् ॥ २०॥
सोऽयं स्वयम्भुविहितो धर्मः सङ्कल्पितस्त्वया ।
ऋते स्वयंभुवः कोऽन्यः श्राद्धेयं विधिमाहरेत॥ २१ ॥
अथाख्यास्यामि ते पुत्र श्राद्धेयं विधिमुत्तमम् ।
स्वयम्भुविहितं पुत्र तत्कुरुष्व निबोध मे ॥ २२ ॥
कृत्वाऽग्नौकरणं पूर्वं मन्त्रपूर्वं तपोधन ।
ततोऽग्नयेऽथ सोमाय वरुणाय च नित्यशः ॥ २३ ॥
विश्वे देवाश्च ये नित्यं पितृभिः सह गोचराः ।
तेभ्यः सङ्कल्पिता भागाः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥ २४ ॥
स्तोतव्या चेह पृथिवी निवापस्येह धारिणी ।
वैष्णवी काश्यपी चेति तथैवेहाक्षयेति च ॥ २५ ॥
उदकानयने चैव स्तोतव्यो वरुणो विभुः ।

करना शुरू किया; ध्यान करते ही तपोधन अत्रि आगया । अत्रि निमिको इस प्रकार पुत्रशोकसे दुःखित देखके अभिलषित वचनके सहारे अत्यन्त ही धीरज देने लगे । उन्होंने कहा, हे तपोधन निमि ! तुम मत डरो, तुम्हारा सङ्कपित यह पितृयज्ञ पहले स्वयं ब्रह्माके द्वारा धर्मरूपसे देखा गया है, तुम्हारा यह सङ्कल्पित धर्म स्वयंभूके सहारे उत्तम रीतिसे विहित हुआ है, ब्रह्माके अतिरिक्त और कौन पुरुष श्राद्धसम्बन्धीय विधि बना सकता है ? (१७-२१)

हे पुत्र ! मैं तुम्हारी इस उत्तम श्राद्धसम्बन्धीय विधिकी व्याख्या करूंगा । हे पुत्र ! यह ब्रह्माके द्वारा विहित है, इसलिये इसका अनुष्ठान करो और इसका विवरण मेरे समीप सुनो । हे तपोधन ! पहले मन्त्र पढके अग्नौकरणहोम करके फिर चन्द्रमा, अग्नि, वरुण और विश्वदेव, जो कि पितरोंके सङ्ग सदा विचरते हैं, स्वयम्भूने उनके निमित्त स्वयं सब भाग कल्पित किये हैं । निवापधारिणी पृथ्वीकी इस ही समय वैष्णवी, काश्यपी और अक्षया कहके स्तुति करनी होगी । जल लानेके विषयमें प्रभु वरुणकी स्तुति करे । हे पापरहित ! अग्नि और चन्द्रमाको तुष्ट

ततोऽग्निश्चैव सोमश्च आप्याययाविह तेऽनघ ॥ २६ ॥
देवास्तु पितरो नाम निर्मिता ये स्वयंभुवा ।
उष्णपा ये महाभागास्तेषां भागः प्रकल्पितः ॥ २७ ॥
ते श्राद्धेनार्च्यमाना वै विमुच्यन्ते ह किल्बिषात् ।
सप्तकः पितृवंशस्तु पूर्वदृष्टः स्वयंभुवा ॥ २८ ॥
विश्वे चाग्निमुखा देवाः संख्याताः पूर्वमेव ते ।
तेषां नामानि वक्ष्यामि भागार्हाणां महात्मनाम् ॥ २९ ॥
बलं धृतिर्विपाप्मा च पुण्यकृत्पावनस्तथा ।
पार्ष्णिक्षेमा समूहश्च दिव्यसानुस्तथैव च ॥ ३० ॥
विवस्वान्वीर्यवान् ह्रीमान्कीर्तिमान्कृत एव च ।
जितात्मा मुनिवीर्यश्च दीप्तरोमा भयङ्करः ॥ ३१ ॥
अनुकर्मा प्रतीतश्च प्रदाताऽप्यंशुमांस्तथा ।
शैलाभः परमक्रोधी धीरोष्णी भूपतिस्तथा ॥ ३२ ॥
स्रजो वज्री वरी चैव विश्वे देवाः सनातनाः ।
विद्युद्वर्चाः सोमवर्चाः सूर्यश्रीश्चेति नामतः ॥ ३३ ॥
सोमपः सूर्यसावित्रो दत्तात्मा पुण्डरीयकः ।
उष्णीनाभो नभोदश्च विश्वायुर्दीप्तिरेव च ॥ ३४ ॥
चमूहरः सुरेशश्च व्योमारिः शङ्करो भवः ।

करना होगा। पितृनामक जो देवगण स्वयम्भूके द्वारा निर्मित हुए हैं और जो सब महाभाग उष्णपगण हैं, उनका भी हिस्सा कल्पित है। (२२—२७)

वे सब श्राद्धके द्वारा पूजित होनेपर नरकादि रूप क्लेशोंसे छूटते हैं। सप्त पितृवंश पहले ब्रह्माके द्वारा जाना गया है और अग्नि आदि विश्वदेवगण पहले ही गिने गये हैं। इस समय उन हिस्सा लेनेवाले महानुभावोंका नाम कहता हूं। बल, धृति, विपाप्मा, पुण्यकृत, पावन, पार्ष्णिक्षेमा, समूह, दिव्यसानु, विवस्वान्, वीर्यवान्, ह्रीमान्, कीर्त्तिमान्, कृत, जितात्मा, मुनिवीर्य, दीप्तरोमा, भयङ्कर, अनुकर्मा, प्रतीत, प्रदाता, अंशुमान्, शैलाभ, परम क्रोधी, धीरोष्णी, भूपति, स्रज, वज्री, वरी, सनातन विश्वदेवगण, विद्युद्वर्चा, सोमवर्चा, सूर्यश्री, सोमप, सूर्यसावित्र, दत्तात्मा, पुण्डरीयक, उष्णीनाभ, नभोद, विश्वायु, दीप्ति, चमूहर, सुरेश, व्योमारि, शङ्कर, भव, हर, ईश, कर्त्ता, कृति, दक्ष,

ईशः कर्त्ता कृतिर्दक्षो भुवनो दिव्यकर्मकृत ॥ ३५ ॥
गणितः पञ्चवीर्यश्च आदित्यो रश्मिवांस्तथा ।
सप्तकृत्सोमवर्चाश्च विश्वकृत्कविरेव च ॥ ३६ ॥
अनुगोप्ता सुगोप्ता च नप्ता चेश्वर एव च ।
कीर्तितास्ते महाभागाः कालस्य गतिगोचराः ॥ ३७ ॥
अश्राद्धेयानि धान्यानि कोद्रवाः पुलकास्तथा ।
हिङ्गुद्रव्येषु शाकेषु पलाण्डुं लशुनं तथा ॥ ३८ ॥
सौभाञ्जनः कोविदारस्तथा गृञ्जनकादयः ।
कूश्माण्डजात्यलाबुं च कृष्णं लवणमेव च ॥ ३९ ॥
ग्राम्यवाराहमांसं च यच्चैवाप्रोक्षितं भवेत् ।
कृष्णाजाजी विडश्चैव शीतपाकी तथैव च ।
अङ्कुराद्यास्तथा वर्ज्या इह शृङ्गाटकानि च ॥ ४० ॥
वर्जयेल्लवणं सर्वं तथा जम्बूफलानि च ।
अवक्षुतावरुदितं तथा श्राद्धे च वर्जयेत् ॥ ४१ ॥
निवापे हव्यकव्ये वा गर्हितं च सुदर्शनम् ।
पितरश्च हि देवाश्च नाभिनन्दन्ति तद्धविः ॥ ४२ ॥

भुवन, दिव्यकर्मकृत्, गणित, पञ्चवीर्य, आदित्य, रश्मिवान्, सप्तकृत्, सोमवर्चा, विश्वकृत्, कवि, अनुगोप्ता, सुगोप्ता, नप्ता और ईश्वर, इस कालकी गतिके अनुसार जिन्हें जाना जा सकता है, वेही सब महाभाग गण वर्णित हुए। (२८—३७)

इसके अनन्तर जो वस्तु श्राद्धमें अदेय हैं, उन्हें कहता हूं। कोदों धान्य और पुलक अर्थात् टूटे हुए चावल, तुच्छ धान्य, हींगसे बनी वस्तु, सब भांतिके शाक, प्याज, लहसुन, सौभाञ्जन, कोविदार अर्थात् लाल पीले रङ्गके फूल, गृञ्जन प्रभृति, कुम्हडा जातीय सब वस्तु, अलाबू, काला नमक पाले हुए सूअरका मांस और जो कुछ बेजानी वस्तु हों, कालाजीरा, बीडलवण, जो सब अन्न शरदृतुमें पकते हैं, सिंघाडा और वंशकरीर प्रभृति अङ्कुर श्राद्धमें वर्जित हैं; सब प्रकारके नमक और जामुनका फल श्राद्धमें त्यागना चाहिये, श्राद्धके समय अवक्षुत और रोदन वर्जित है। (३८—४१)

पितरोंके उद्देश्यसे दान कार्य और हव्यकव्यमें सुदर्शन शाक अत्यन्त निन्दनीय है। पितर और देव उसकी

चाण्डालश्वपचौ वर्ज्यौ निवापे समुपस्थिते।
काषायवासाः कुष्ठी वा पतितो ब्रह्महाऽपि वा ॥४३॥
संकीर्णयोनिर्विप्रश्च संबन्धी पतितश्च यः।
वर्जनीया बुधैरेते निवापे समुपस्थिते ॥ ४४ ॥
इत्येवमुक्त्वा भगवान्स्ववंश्यं तमृषिं पुरा।
पितामहसभां दिव्यां जगामात्रिस्तपोधनः ॥ ४५ ॥ [४३१२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशानिके पर्वणि दानधर्मे श्राद्धकल्पे एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

भीष्म उवाच— तथा निमौ प्रवृत्ते तु सर्वं एव महर्षयः।
पितृयज्ञं तु कुर्वन्ति विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ १ ॥
ऋषयो धर्मनित्यास्तु कृत्वा निवपनान्युत।
तर्पणं चाप्यकुर्वन्त तीर्थाम्भोभिर्यतव्रताः ॥ २ ॥
निवापैर्दीयमानैश्च चातुर्वर्ण्येन भारत।
तर्पिताः पितरो देवास्तत्रान्नं जरयन्ति वै ॥ ३ ॥
अजीर्णैस्त्वभिहन्यन्ते ते देवाः पितृभिः सह।

प्रशंसा नहीं करते। श्राद्धका समय उपस्थित होनेपर चाण्डाल और श्वपच जातिवाले पुरुषोंको बहुत दूरमें स्थित करे। यदि वे लोग हविको देख लेवे, तो उसे पितर और देवगण ग्रहण नहीं करते। श्राद्धका समय उपस्थित होने-पर गेरुआ वस्त्रवाले, कुष्ठरोगी, पतित, ब्रह्महत्यारे, नीचयोनिमें जन्मे हुए ब्राह्मण और पतित पुरुषसे संसर्ग रख-नेवाले पुरुष, इन सबको पण्डित लोग उस समय वहांपर न आने देवें। पहले समयमें तपोधन अत्रि भगवान् निज-वंशमें उत्पन्न हुए निमिऋषिसे ऐसी कथा कहके ब्रह्माकी दिव्य सभामें चले गये। (४२—४५)

अनुशासनपर्वमें ९१ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ९२ अध्याय।

भीष्म बोले, हे भारत! निमिके इस प्रकार श्राद्ध करनेमें प्रवृत्त होनेपर सब महर्षिवृन्द विधिदृष्ट कर्मके सहारे पितृयज्ञ करने लगे। धर्मनिष्ठ यतव्रती ऋषि लोग श्राद्ध करके तीर्थोंके जलसे तर्पण करने लगे। ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके द्वारा निवाप पाके पितर और देवगण तृप्त होके उस समय अन्न जीर्ण करने लगे। पितरोंके सहित देववृन्द प्रतिदिन प्राप्त हुए अन्नके पचानेमें असमर्थ होके अजीर्ण रोगसे ग्रस्त हुए।

सोममेवाभ्यपद्यन्त तदा ह्यन्नाभिपीडिताः ॥ ४ ॥
तेऽब्रुवन्सोममासाद्य पितरोऽजीर्णपीडिताः ।
निवापान्नेन पीड्यामः श्रेयो नोऽत्र विधीयताम् ॥ ५ ॥
तान्सोमः प्रत्युवाचाथ श्रेयश्चेदीप्सितं सुराः ।
स्वयंभूसदनं यात स वः श्रेयोऽभिधास्यति ॥ ६ ॥
ते सोमवचनाद्देवाः पितृभिः सह भारत ।
मेरुशृङ्गे समासीनं पितामहमुपागमन् ॥ ७ ॥
पितर ऊचुः— निवापान्नेन भगवन्भृशं पीड्यामहे वयम् ।
प्रसादं कुरु नो देव श्रेयो नः संविधीयताम् ॥ ८ ॥
इति तेषां वचः श्रुत्वा स्वयंभूरिदमब्रवीत् ।
एष मे पार्श्वतो वह्निर्युष्मच्छ्रेयोऽभिधास्यति ॥ ९ ॥
अग्निरुवाच— सहितास्तात भोक्ष्यामो निवापे समुपस्थिते ।
जरयिष्यथ चाप्यन्नं मया सार्धं न संशयः ॥ १० ॥
एतच्छ्रुत्वा तु पितरस्ततस्ते विज्वरा भवन् ।
एतस्मात्कारणाच्चाग्नेः प्राक्तावद्दीयते नृप ॥ ११ ॥

उस समय वे लोग अन्नसे पीडित होकर चन्द्रमाके समीप गये। (१—४)

वे अजीर्णसे पीडित पितृगण चन्द्रमाके निकट जाके बोले, हम अन्नसे पीडित होरहे हैं, इसलिये जिस प्रकार इस विषयमें हमारा कल्याण हो, आप वैसा ही उपाय करिये। अनन्तर चन्द्रमाने उन लोगोंको उत्तर दिया कि, हे सुरगण! यदि तुम लोगोंको कल्याणकी इच्छा हुई हो, तो ब्रह्माके स्थानपर जाओ, वह तुम्हारे कल्याणका उपाय करेंगे। हे भारत! पितरोंके सहित वे सब देवगण चन्द्रमाका वचन सुनके सुमेरु पर्वतके शिखरपर सुखसे बैठे हुए ब्रह्माके निकट गये। (५—७)

पितरवृन्द बोले, हे भगवन्! हम लोग निवाप अन्नसे अत्यन्त पीडित होरहे हैं। हे देव! इसलिये आप प्रसन्न होके हमारे कल्याणका विधान करिये। ब्रह्मा उन लोगोंका ऐसा वचन सुनके बोले, मेरे निकटमें स्थित यह अग्निदेव तुम्हारे कल्याणका विधान करेंगे। (८-९)

अग्निदेव बोले, पितरोंके उद्देश्यसे दान उपस्थित होनेपर हम सब कोई मिलके उसे भक्षण करेंगे, हमारे सङ्ग खानेसे तुम लोग अन्नको निःसन्देह पचा सकोगे। पितर लोग अग्निका

निवप्ते चाग्निपूर्वं वै निवापे पुरुषर्षभ ।
न ब्रह्मराक्षसास्तं वै निवापं धर्षयन्त्युत ॥ १२ ॥
रक्षांसि चापवर्तन्ते स्थिते देवे हुताशने ।
पूर्वं पिण्डं पितुर्दद्यात्ततो दद्यात्पितामहे ॥ १३ ॥
प्रपितामहाय च तत एष श्राद्धविधिः स्मृतः ।
ब्रूयात् श्राद्धे च सावित्रीं पिण्डे पिण्डे समाहितः ॥१४॥
सोमायेति च वक्तव्यं तथा पितृमतेति च ।
रजस्वला च या नारी व्यङ्गिता कर्णयोश्च या ।
निवापे नोपतिष्ठेत संग्राह्या नान्यवंशजा ॥ १५ ॥
जलं प्रतरमाणश्च कीर्तयेत पितामहान् ।
नदीमासाद्य कुर्वीत पितॄणां पिण्डतर्पणम् ॥ १६ ॥
पूर्वं स्ववंशजानां तु कृत्वाद्भिस्तर्पणं पुनः ।
सुहृत्संबन्धिवर्गाणां ततो दद्याज्जलाञ्जलिम् ॥ १७ ॥
कल्माषगोयुगेनाथ युक्तेन तरतो जलम् ।
पितरोऽभिलषन्ते वै नावं चाप्यधिरोहिताः ॥ १८ ॥

ऐसा वचन सुनके उस समय शोकरहित हुए। हे महाराज! इस ही निमित्त पहले अग्निके निमित्त अन्न दिया जाता है। हे पुरुषश्रेष्ठ! पहले अग्निको निवाप नेदेसे ब्रह्मराक्षसगण उसे नष्ट करनेमें समर्थ नहीं होते और अग्निदेवके उपस्थित रहनेपर राक्षसवृन्द दूर भागते हैं। (१०--१३)

पहले पिताको पिण्ड देवे, फिर पितामहको पिण्ड देना योग्य है, अनन्तर प्रपितामहको पिण्ड प्रदान करे, इस ही प्रकार श्राद्धकी विधि वर्णित हुई है। श्राद्धकालमें समाहित होके प्रत्येक पिण्ड देनेके समय गायत्री जपे और "सोमाय पितृमते" इत्यादि वचन कहना योग्य है। श्राद्धके समयमें रजस्वला, बहिरी, तथा अंगहीन स्त्रीको वहांपर न आने दे अर्थात् ये लोग निवापको न देखने पावें और दूसरे वंशकी स्त्रियोंको पाकके निमित्त संग्रह न करे। जलमें उतरके पितामह आदिका नाम उच्चारण करे और नदीमें स्नान करके पितरोंको पिण्ड दे तथा तर्पण करे। पहले अपने वंशवालोंको जलसे तर्पण करके फिर सुहृद और सम्बन्धियोंको अञ्जली भरके जल देवे। (१३-१७)

विचित्र रूपवाले दो गौवोंसे युक्त

सदा नावि जलं तज्ज्ञाः प्रयच्छन्ति समाहिताः ।
मासार्धे कृष्णपक्षस्य कुर्यान्निर्वपणानि वै ॥ १९ ॥
पुष्टिरायुस्तथा वीर्यं श्रीश्चैव पितृभक्तितः ।
पितामहः पुलस्त्यश्च वसिष्ठः पुलहस्तथा ॥ २० ॥
अङ्गिराश्च क्रतुश्चैव कश्यपश्च महानृषिः ।
एते कुरुकुलश्रेष्ठ महायोगेश्वराः स्मृताः ॥ २१ ॥
एते च पितरो राजन्नेष श्राद्धविधिः परः ।
प्रेतास्तु पिण्डसंबन्धान्मुच्यन्ते तेन कर्मणा ॥ २२ ॥
इत्येषा पुरुषश्रेष्ठ श्राद्धोत्पत्तिर्यथाऽऽगमम् ।
व्याख्याता पूर्वनिर्दिष्टा दानं वक्ष्याम्यतः परम् ॥२३॥ [४३३६]

इति श्रीमहा० अनुशासनपर्वणि आनुशा०पर्वणि दानधर्मे श्राद्धकल्पे द्विनवतितमोऽध्यायः॥९२॥

युधिष्ठिर उवाच- द्विजातयो व्रतोपेता हविस्ते यदि भुञ्जते ।
अन्नं ब्राह्मणकामाय कथमेतत्पितामह ॥ १ ॥

गाडी तथा नौकाके ऊपर चढकर जो लोग अपार जलसे पार होते हैं, उनके पितर उनके समीप गऊके पूंछके सहित तर्पणकी अभिलाष किया करते हैं। इसलिये जो लोग इसे जानते हैं, वे सावधान होकर शकट अथवा नौकाके सहारे नदी उतरनेके समय पितरोंका तर्पण करते हैं। अर्द्धमासके कृष्णपक्षकी अमावस्या तिथिमें पितरोंका श्राद्ध करना योग्य है, पितृभक्ति रहनेपर पुष्टि, आयु, बल और श्री हुआ करती है। (१८-२०)

हे कुरुकुलश्रेष्ठ! पितामह, पुलस्त्य, वशिष्ट, पुलह, अंगिरा, क्रतु और कश्यप, ये महायोगेश्वर नामसे वर्णित हुए हैं, ये भी पितर हैं। हे महाराज! यही श्रेष्ठ श्राद्धकी विधि है, इस श्राद्ध-कर्मके सहारे परलोकमें गये हुए पितरोंका प्रेतत्व छूट जाता है। हे पुरुषश्रेष्ठ! यह निर्दिष्ट श्राद्धकी उत्पत्ति-का विषय शास्त्रके अनुसार कहा गया; इसके अनन्तर दानका विषय कहता हूं। (२०—२३)

अनुशासनपर्वमें ९२ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ९३ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! जो व्रतयुक्त ब्राह्मण लोग दशाह आदिमें यजमानकी इच्छासे हवनीय वस्तु अथवा अन्न भोजन करते हैं, सो कैसा है? अर्थात् इसमें व्रत करनेवाले ब्राह्मणोंका व्रतलोप होता है अथवा ब्राह्मणकी कामनाभंग गुरुतर है? (१)

भीष्म उवाच— अवेदोक्तव्रताश्चैव भुञ्जानाः कामकारणे ।
वेदोक्तेषु तु भुञ्जाना व्रतलुप्ता युधिष्ठिरः ॥ २ ॥
युधिष्ठिर उवाच— यदिदं तप इत्याहुरुपवासं पृथग्जनाः ।
तपः स्यादेतदेवेह तपोऽन्यद्वाऽपि किं भवेत् ॥ ३ ॥
भीष्म उवाच— मासार्धमासोपवासाद्यत्तपो मन्यते जनः ।
आत्मतन्त्रोपघाती यो न तपस्वी न धर्मवित् ॥ ४ ॥
त्यागस्य चापि संपत्तिः शिष्यते तप उत्तमम् ।
सदोपवासी च भवेद्ब्रह्मचारी तथैव च ॥ ५ ॥
मुनिश्च स्यात्सदा विप्रो वेदांश्चैव सदा जपेत् ।
कुटुम्बिको धर्मकामः सदाऽस्वप्नश्च मानवः ॥ ६ ॥
अमांसाशी सदा च स्यात्पवित्रं च सदा पठेत् ।
ऋतवादी सदा च स्यान्नियतश्च सदा भवेत् ॥ ७ ॥
विघसाशी सदा च स्यात्सदा चैवातिथिप्रियः ।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर ! अवेदोक्त व्रतचारी ब्राह्मण लोग ब्राह्मणोंकी इच्छासे भोजन करनेपर व्रतहीन नहीं होते और जो लोग वेदविहित यज्ञांगभूत व्रताचरण करते हैं, वे ब्राह्मणकी कामनानुसार श्राद्धमें भोजन करनेसे लुप्तव्रत हुआ करते हैं, इसलिये उन्हें व्रतलोपके हेतु प्रायश्चित्त करना योग्य है, साधारण ब्राह्मण न मिलनेपर व्रती ब्राह्मण श्राद्धमें भोजन करके प्रायश्चित्त करें, परन्तु श्राद्धलोप न करें। (२)

युधिष्ठिर बोले, साधारण लोग जो उपवासको तपस्या कहते हैं, उस उपवासको ही इस स्थलमें तपस्या कहा है अथवा अन्य भांतिके किसी नियमसे तपस्या होती है ? (३)

भीष्म बोले, साधारण लोग जो एक महीना अथवा अर्द्धमासके उपवासको तपस्या कहते हैं, वह तपस्या नहीं होसकती, क्यों कि जो पुरुष अपने शरीर और कुटुम्बको कष्ट देकर उपवास करता है, वह तपस्वी वा धर्मज्ञ नहीं है, धन दानको भी श्रेष्ठ तपस्या कहा जाता है। व्रतचारी मनुष्य सदोपवासी और ब्रह्मचारी होते हैं, जो ब्राह्मण सदा वेदमन्त्र जपता है, वह मुनि हुआ करता है। धर्मकी इच्छा करनेवाला मनुष्य कुटुम्बिक और सदा अस्वप्न होवे, सर्वदा अमांसाशी हुआ करे और सदा पवित्र जप करे, सदा सत्य बोले और निरन्तर नियमस्थित होके निवास करे; सदा विघ-

अमृताशी सदा च स्यात्पवित्री च सदा भवेत् ॥ ८ ॥
युधिष्ठिर उवाच— कथं सदोपवासी स्याद्ब्रह्मचारी च पार्थिव ।
विघसाशी कथं च स्यात्कथं चैवातिथिप्रियः ॥ ९ ॥
भीष्म उवाच— अन्तरा सायमाशं च प्रातराशं च यो नरः ।
सदोपवासी भवति यो न भुङ्क्तेऽन्तरा पुनः ॥ १० ॥
भार्यां गच्छन् ब्रह्मचारी ऋतौ भवति चैव ह ।
ऋतवादी सदा च स्याद्दानशीलस्तु मानवः ॥ ११ ॥
अभक्षयन् वृथा मांसममांसाशी भवत्युत ।
दानं ददत्पवित्री स्यादस्वप्नश्च दिवाऽस्वपन् ॥ १२ ॥
भृत्यातिथिषु यो भुङ्क्ते भुक्तवत्सु नरः सदा ।
अमृतं केवलं भुङ्क्ते इति विद्धि युधिष्ठिर ॥ १३ ॥
अभुक्तवत्सु नाश्नाति ब्राह्मणेषु तु यो नरः ।
अभोजनेन तेनास्य जितः स्वर्गो भवत्युत ॥ १४ ॥
देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च संश्रितेभ्यस्तथैव च ।
अवशिष्टानि यो भुङ्क्ते तमाहुर्विघसाशिनम् ॥ १५ ॥

साशी और अतिथिप्रिय होवे; सर्वदा अमृताशी और पवित्र रहे । (४–८)

युधिष्ठिर बोले, हे राजन् ! किस प्रकार लोग सदा उपवासी होते हैं ? किस भांति ब्रह्मचारी हुआ करते हैं ? किस प्रकार विघसाशी होते और किस प्रकार अतिथिप्रिय हुआ करते हैं ? (९)

भीष्म बोले, जो मनुष्य प्रातर्भोजन और सन्ध्याकालके भोजनके अतिरिक्त फिर भोजन नहीं करते, वेही सदोपवासी होते हैं । जो लोग ऋतुकालमें भार्यागमन करते हैं, और जो मनुष्य सत्यवादी तथा दानशील हैं, उन्हें ब्रह्मचारी कहा जाता है । यज्ञ आदिके अतिरिक्त जो लोग वृथा मांस भक्षण नहीं करते वे अमांसाशी होते हैं, जो लोग दान करते हैं, वे पवित्र होते हैं । जो लोग दिनको नहीं सोते, उन्हें अस्वप्न कहा जाता है । हे युधिष्ठिर ! जो मनुष्य सबके तथा अतिथियोंके भोजन करनेके अनन्तर भोजन करता है, जान रखो, कि वही अमृत भोजन किया करता है । (१०–१३)

जो मनुष्य ब्राह्मणके भूखा रहनेपर भोजन नहीं करता, उस अभोजन निबन्धनसे वह स्वर्गको जीतता है । देवताओं पितरों और आश्रितोंको अन्न

तेषां लोका ह्यपर्यन्ताः सदने ब्रह्मणः स्मृताः ।
उपस्थिता ह्यप्सरसो गन्धर्वैश्च जनाधिप ॥ १६ ॥
देवतातिथिभिः सार्धं पितृभिश्चोपभुञ्जते ।
रमन्ते पुत्रपौत्रेण तेषां गतिरनुत्तमा ॥ १७ ॥
युधिष्ठिर उवाच– ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छन्ति दानानि विविधानि च ।
दातृप्रतिग्रहीत्रोर्वै को विशेषः पितामह ॥ १८ ॥
भीष्म उवाच– साधोर्यः प्रतिगृह्णीयात्तथैवासाधुतो द्विजः ।
गुणवत्यल्पदोषः स्यान्निर्गुणे तु निमज्जति ॥ १९ ॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
वृषादर्भेश्च संवादं सप्तर्षीणां च भारत ॥ २० ॥
कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च भरद्वाजोऽथ गौतमः ।
विश्वामित्रो जमदग्निः साध्वी चैवाप्यरुन्धती ॥ २१ ॥
सर्वेषामथ तेषां तु गण्डाऽभूत्कर्मकारिका ।
शूद्रः पशुसखश्चैव भर्ता चास्या बभूव ह ॥ २२ ॥
ते च सर्वे तपस्यन्तः पुरा चेरुर्महीमिमाम् ।

देकर जो लोग शेषमें बचा हुआ अन्न खाते हैं, धीर लोग उन्हें ही विघसाशी कहते हैं। हे प्रजानाथ ! ब्रह्माके स्थानमें उन विघसाशी पुरुषोंके लोकोंकी सीमा नहीं है, उनके निकट गन्धर्वोंके सहित अप्सरावृन्द उपस्थित होती हैं। जो लोग देवता, अतिथि और पितरोंके सहित भोजन करते हैं, वे पुत्र-पौत्रोंके सहित सुख भोग किया करते हैं और उन्हे श्रेष्ठ गति प्राप्त होती है।१४-१७

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! जो लोग ब्राह्मणोंको विविध वस्तु दान करते हैं, उन देनेवाले और लेनेवालोंमें क्या विशेषता है ? (१८)

भीष्म बोले, जो ब्राह्मण साधु वा असाधु पुरुषोंसे प्रतिग्रह लेता है, वह गुणवान पुरुषोंके निकट ग्रहण करनेके हेतु थोडा दोषी होता है और निर्गुण पुरुषके समीप ग्रहण करनेसे पापमें डूबता है। हे भारत ! प्राचीन लोग इस विषयमें वृषादर्भि और सप्तर्षियोंके संवादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं। कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, विश्वामित्र और जमदग्नि, ये सप्तऋषि हैं और पतिव्रता अरुन्धती इन लोगोंकी गण्डा नामक एक सेविका थी, पशुसखनाम शूद्र उसका पति हुआ था, वे सब कोई समाधिके द्वारा सना-

समाधिनोपशिक्षन्तो ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ २३ ॥
अथाभवदनावृष्टिर्महती कुरुनन्दन ।
कृच्छ्रप्राणोऽभवद्यत्र लोकोऽयं वै क्षुधान्वितः॥ २४ ॥
कस्मिंश्चिच्च पुरा यज्ञे शैब्येन शिबिसूनुना ।
दक्षिणार्थेऽथ ऋत्विग्भ्यो दत्तः पुत्रः पुरा किल ॥२५॥
अस्मिन्कालेऽथ सोऽल्पायुर्दिष्टान्तमगमत्प्रभुः ।
ते तं क्षुधाभिसंतप्ताः परिवार्योपतस्थिरे ॥ २६ ॥
याज्यात्मजमथो दृष्ट्वा गतासुमृषिसत्तमाः ।
अपचन्त तदा स्थाल्यां क्षुधार्ताः किल भारत ॥२७॥
निरन्ने मर्त्यलोकेऽस्मिन्नात्मानं ते परीप्सवः ।
कृच्छ्रामापेदिरे वृत्तिमन्नहेतोस्तपस्विनः ॥ २८ ॥
अटमानोऽथ तान्मार्गे पचमानान्महीपतिः ।
राजा शैब्यो वृषादर्भिः क्लिश्यमानान्ददर्श ह ॥२९॥
वृषादर्भिरुवाच- प्रतिग्रहस्तारयति पुष्टिर्वै प्रतिगृह्यताम् ।
मयि यद्विद्यते वित्तं तद्वृणुध्वं तपोधनाः ॥ ३० ॥
प्रियो हि मे ब्राह्मणो याच्यमानो दद्यामहं वोऽश्वतरीसहस्रम् ।

तब ब्रह्मलोक पानेके निमित्त इस पृथ्वीमण्डलपर तपस्या करते हुए विचरते थे। (१९—२३)

हे कुरुनन्दन ! अनन्तर अनावृष्टि होनेपर उस समय सब कोई क्षुधातुर होके कृच्छ्रप्राण हुए थे। पहले समय किसी यज्ञमें शिबिराजके पुत्र शैब्यने ऋत्विकोंको दक्षिणा देनेके लिये अपना पुत्र प्रदान किया था। इस ही समयमें वह आयु नष्ट होनेसे मर गया, क्षुधासे परिपीडित ऋषियोंने उस मृत राजपुत्रको घेर लिया। हे भारत ! क्षुधासे आर्त्त ऋषियोंने उस राजपुत्रको मरा हुआ देखके उसे स्थालीमें पकाया। यह मर्त्यलोक अन्नसे रहित होनेपर तपस्वियोंने शरीररक्षाकी इच्छा करके कृच्छ्र-वृत्ति अवलम्बन की थीं। अनन्तर पृथ्वीनाथ शैब्य वृषादर्भिने मार्गमें विचरते हुए उन क्लेशित ऋषियोंको पाक करते देखा। (२४—२९)

वृषादर्भि बोले, दान लेनेसे पुरुष क्लेशसे छूट जाता है। हे तपस्विगण ! इसलिये आप लोग पुष्टिके लिये प्रति-ग्रह ग्रहण करिये। मेरे समीप जो वस्तु हो, उसे आप लोग मांगिये। मांगनेवाले ब्राह्मण ही मुझे अत्यन्त

एकैकशः सवृषाः संप्रसूताः सर्वेषां वै शीघ्रगाः श्वेतरोमाः ॥ ३१ ॥
कुलम्भरानुनडुहः शतं शतान् धुर्यान् श्वेतान् सर्वशोऽहं ददामि ।
पष्ठौहीनां पीवराणां च तावदग्र्या गृष्ट्यो धेनवः सुव्रताश्च ॥ ३२ ॥
वरान् ग्रामान् व्रीहिरसं यवांश्च रत्नं चान्यद्दुर्लभं किं ददानि ।
नास्मिन्नभक्ष्ये भावमेवं कुरुध्वं पुष्ट्यर्थं वः किं प्रयच्छाम्यहं वै ॥ ३३ ॥

ऋषय ऊचुः— राजन्प्रतिग्रहो राज्ञां मध्वास्वादो विषोपमः ।
तज्जानमानः कस्मात्त्वं कुरुषे नः प्रलोभनम् ॥ ३४ ॥
क्षेत्रं हि दैवतमिदं ब्राह्मणान् समुपाश्रितम् ।
अमलो ह्येष तपसा प्रीतः प्रीणाति देवताः ॥ ३५ ॥
अह्नापीह तपो जातु ब्राह्मणस्योपजायते ।
तद्दाव इव निर्दह्यात्प्राप्तो राजप्रतिग्रहः ॥ ३६ ॥
कुशलं सह दानेन राजन्नस्तु सदा तव ।
अर्थिभ्यो दीयतां सर्वमित्युक्त्वाऽन्येन ते ययुः ॥ ३७ ॥
अपक्वमेव तन्मांसमभूत्तेषां महात्मनाम् ।

प्रिय हैं, इसलिये मैं आप लोगोंको सहस्र अश्वतरी देता हूं, मैं आप लोगोंको एक एक वृषभके सहित शीघ्रगामी सफेद रोमवाली सत्प्रसूत गऊ दान करता हूं और वंशको पालनेमें समर्थ बोझा ढोनेवाले एक एक सौ सफेद बैल सबको देता हूं, पहले ही गाभिन हुई लाल शरीरवाली श्रेष्ठ उत्तम सत्प्रसूता गऊ देता हूं, श्रेष्ठ ग्राम, व्रीहि, रस, यव और इसके अतिरिक्त जो सब दुर्लभ रत्न हैं, कहिये उनके बीच से क्या दूं? आप लोग इस अभक्ष्य वस्तुमें ऐसा अभिप्राय न करिये। आप लोगोंकी पुष्टिके निमित्त कौनसी वस्तु दूं? (३०–३३)

ऋषिगण बोले, हे महाराज! राजाओंका प्रतिग्रह मधुरकी भांति स्वादयुक्त होता है, किन्तु विषके समान है, तुम उसे जानके भी किस निमित्त हमें लोभ दिखा रहे हो? देवताओंको ब्राह्मण शरीरका सहारा है, वे देवतास्वरूप ब्राह्मण तपस्याके द्वारा प्रसन्न होनेसे सबकी प्रीतिका विधान करते हैं, ब्राह्मणकी एक दिनमें भी जो तपस्या उपार्जित होती है, कदाचित् प्राप्त हुआ राजप्रतिग्रह दावानलकी भांति उसे जलाया करता है, हे महाराज! दानके सहित सदा तुम्हारा कुशल होवे, इसलिये तुम याचकोंको सब वस्तु दान करो, ऐसा कहके ऋषियोंने दूसरे मार्गसे

अथ हित्वा ययुः सर्वे वनमाहारकाङ्क्षिणः ॥ ३८ ॥
ततः प्रचोदिता राज्ञा वनं गत्वाऽस्य मन्त्रिणः ।
प्रचीयोदुम्बराणि स्म दातुं तेषां प्रचक्रिरे ॥ ३९ ॥
उदुम्बराण्यथान्यानि हेमगर्भाण्युपाहरन् ।
भृत्यास्तेषां ततस्तानि प्रग्राहितुमुपाद्रवन् ॥ ४० ॥
गुरूणीति विदित्वाथ न ग्राह्याण्यत्रिरब्रवीत् ।
नस्महे मन्दविज्ञाना नस्महे मन्दबुद्धयः ॥ ४१ ॥
हैमानीमानि जानीमः प्रतिबुद्धाः स्म जागृम ।
इह ह्येतदुपादत्तं प्रेत्य स्यात्कटुकोदयम् ।
अप्रतिग्राह्यमेवैतत्प्रेत्येह च सुखेप्सुना ॥ ४२ ॥
वसिष्ठ उवाच- शतेन निष्कगणितं सहस्रेण च संमितम् ।
तथा बहु प्रतीच्छन्वै पापिष्ठां पतते गतिम् ॥ ४३ ॥
कश्यप उवाच- यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
सर्वं तन्नालमेकस्य तस्माद्विद्वान् शमं चरेत् ॥ ४४ ॥
भरद्वाज उवाच- उत्पन्नस्य रुरोः शृङ्गं वर्धमानस्य वर्धते ।

गमन किया । (३४-३७)

वे महानुभावगण जो मांस पकाते थे, वह अपक्व ही रहा । अनन्तर वे सब कोई उसे छोडके आहारकी इच्छासे वनमें चले गये । अनन्तर राजाके भेजनेपर उनके उनके मन्त्रियोंने वनमें जाके उदुम्बरका फल तोडके उन्हें देना आरम्भ किया और हेमगर्भ अन्य उदुम्बर देने लगे । तब उनके सेवक उन स्वर्णपूरित उदुम्बरोंको ग्रहण करनेके लिये दौडे । अत्रिने उसे गुरुतर जानके अग्राह्य समझकर यह वचन कहा, 'हम मन्दविज्ञानी तथा मन्दबुद्धि नहीं है, जानता हूं, कि ये सब सुवर्णमय हैं, इसलिये सावधान होकर जागता हूं । इस लोकमें इसे ग्रहण करनेसे परलोकमें बहुत कटु होता है, इस लोक तथा परलोकमें जो लोग सुखकी अभिलाष करें, उनके लिये यह अप्रतिग्राह्य है ।' (३८-४२)

वसिष्ठ बोले, एकसौ उदुम्बरसे निष्क और सहस्र उदुम्बरसे संमित गिना जाता है, इस प्रकार बहुतसा सुवर्ण प्रतिग्रह करनेसे मनुष्यको पापियोंकी गति प्राप्त होती है । (४३)

कश्यप बोले, पृथ्वीमें जो सब व्रीही, यव, हिरण्य, पशुवृन्द और स्त्रियां हैं, वे एकको ही पर्याप्त नहीं हैं, इसलिये

प्रार्थनापुरुषस्येव तस्य मात्रा न विद्यते ॥ ४५ ॥
गौतम उवाच-न तल्लोके द्रव्यमास्ति यल्लोकं प्रतिपूरयेत् ।
समुद्रकल्पः पुरुषो न कदाचन पूर्यते ॥ ४६ ॥
विश्वामित्र उवाच- कामं कामयमानस्य यदा कामः समृध्यते ।
अथैनमपरः कामस्तृष्णा विध्यति बाणवत् ॥ ४७ ॥
जमदग्निरुवाच— प्रतिग्रहे संयमो वै तपो धारयते ध्रुवम् ।
तद्धनं ब्राह्मणस्येह लुभ्यमानस्य विस्रवेत् ॥ ४८ ॥
अरुन्धत्युवाच—धर्मार्थं संचयो यो वै द्रव्याणां पक्षसंमतः ।
तपःसञ्चय एवेह विशिष्टो द्रव्यसञ्चयात् ॥ ४९ ॥
गण्डोवाच— उग्रादितो भयाद्यस्माद्बिभ्यतीमे ममेश्वराः।
बलीयांसो दुर्बलवद्बिभेम्यहमतः परम् ॥ ५० ॥
पशुसख उवाच-यद्वै धर्मे परं नास्ति ब्राह्मणास्तद्धनं विदुः।
विनयार्थं सुविद्वांसमुपासेयं यथातथम् ॥ ५१ ॥

विद्वान् ब्राह्मण शान्ति अवलम्बन करे। भरद्वाज बोले, उत्पन्न होके बढनेवाले रुरु मृगके सींग क्रमसे बढते हैं, इसलिये पुरुषको प्रार्थनाके सदृश छोटापन नहीं है । (४४-४५)

गौतम बोले, लोकमें ऐसी वस्तु नहीं है,जो लोगोंको परिपूर्ण करे,पुरुष समुद्रसदृश है, इसलिये वह कभी पूर्ण नहीं होता । (४६)

विश्वामित्र बोले, काम्यविषयकी इच्छा करनेवाले मनुष्यकी तृष्णा जब पूरी रीतिसे बढती है, तब तृष्णारूपी दुसरा काम बाणकी भांति इस पुरुषको विद्ध करता है । (४७)

जमदग्नि बोले, निश्चय है, कि प्रतिग्रह विषयमें संयम ही तपस्याको धारण करता है, लोभ करनेसे ब्राह्मणका वह तपस्यारूपी धन नष्ट होता है । (४८)

अरुन्धती बोले, इस लोकमें धर्मार्थ के लिये द्रव्य सञ्चय करना कइयोंकोहि सम्मत है, इसलिये इस लोकमें द्रव्य सञ्चयसे तपस्यासञ्चय करना ही श्रेष्ठ है । (४९)

गण्डाने कहा, मेरे प्रभु बलवान होके भी जब इस प्रचण्ड भयसे डर रहे हैं, तब मुझे निर्बलकी भांति इनसे भी अधिक भय है । (५०)

पशुसख बोला, लोभ आदि दोषोंसे धर्म भ्रष्ट होनेपर श्रेष्ठपद नहीं मिलता, ब्राह्मण लोग उस श्रेष्ठपदको ही धन जानते हैं, इसलिये मैं उत्तम शिक्षाके लिये इन विद्वानोंकी उपासना करूं । (५१)

ऋषय ऊचुः— कुशलं सह दानेन तस्मै यस्य प्रजा इमाः ।
फलान्युपधियुक्तानि य एवं नः प्रयच्छति ॥ ५२ ॥
भीष्म उवाच– इत्युक्त्वा हेमगर्भाणि हित्वा तानि फलानि वै ।
ऋषयो जग्मुरन्यत्र सर्व एव धृतव्रताः ॥ ५३ ॥
मन्त्रिण ऊचुः– उपधिं शङ्कमानास्ते हित्वा तानि फलानि वै ।
ततोऽन्येन वै गच्छन्ति विदितं तेऽस्तु पार्थिव ॥ ५४ ॥
इत्युक्तः स तु भृत्यैस्तैर्वृषादर्भिश्चुकोप ह ।
तेषां वै प्रतिकर्तुं च सर्वेषामगमद् गृहं ॥ ५५ ॥
स गत्वाऽऽहवनीयेऽग्नौ तीव्रं नियममास्थितः ।
जुहाव संस्कृतैर्मन्त्रैरेकैकामाहुतिं नृपः ॥ ५६ ॥
तस्मादग्नेः समुत्तस्थौ कृत्या लोकभयङ्करी ।
तस्या नाम वृषादर्भिर्यातुधानीत्यथाकरोत् ॥ ५७ ॥
सा कृत्या कालरात्रीव कृताञ्जलिरुपास्थिता ।
वृषादर्भिं नरपतिं किं करोमीति चाब्रवीत् ॥ ५८ ॥
वृषादर्भिरुवाच-ऋषीणां गच्छ सप्तानामरुन्धत्यास्तथैव च ।
दासीभर्तुश्च दास्याश्च मनसा नाम धारय ॥ ५९ ॥

ऋषियोंने कहा, जिनकी प्रजा छल-युक्त फल दान नहीं करती, उस दाता के दानमें कुशल होता है। (५२)

भीष्म बोले, अनन्तर वे धृतव्रती ऋषि लोग हेमगर्भ फलोंको त्यागके दुसरी ओर चले गये। (५३)

मन्त्रिगण बोले, हे महाराज ! आपको विदित होवे कि वे लोग छल करके उन फलोंको त्यागके दूसरे मार्गसे जा रहे हैं। (५४)

राजा वृषादर्भि मन्त्रियोंका ऐसा वचन सुनके बहुत ही क्रुद्ध हुए और उनके प्रतिकारके निमित्त सब कोई गृहपर गये। उस राजाने आवहनीय अग्निके समीप जाकर तीव्र नियम अवलम्बन करके संस्कृत मन्त्रोंके सहारे एक आहुति दी। उस अग्निसे लोक-भयङ्करी कृत्या निकली ; वृषादर्भिने उसका यातुधानी नाम रखा। काल-रात्रिकी भांति वह कृत्या हाथ जोडके वृषादर्भिके निकट उपस्थित होके बोली, मैं क्या करूं ? (५५-५८)

वृषादर्भि बोले, सप्तर्षियों और अरु-न्धतीके निकट जाओ, उनके तथा उनकी दासिपति वा दासीके नामका अर्थ मनहीमन निश्चय करो और इन

ज्ञात्वा नामानि चैवैषां सर्वानेतान्विनाशय।
विनष्टेषु तथा स्वैरं गच्छ यत्रेप्सितं तव ॥ ६० ॥
सा तथेति प्रतिश्रुत्य यातुधानीस्वरूपिणी।
जगाम तद्वनं यत्र विचेरुस्ते महर्षयः ॥ ६१ ॥
भीष्म उवाच-अथात्रिप्रमुखा राजन् वने तस्मिन्महर्षयः।
व्यचरन् भक्षयन्तो वै मूलानि च फलानि च ॥ ६२ ॥
अथापश्यन्सुपीनांसपाणिपादमुखोदरम्।
परिव्रजन्तं स्थूलाङ्गं परिव्राजं शुना सह ॥ ६३ ॥
अरुन्धती तु तं दृष्ट्वा सर्वाङ्गोपचितं शुभम्।
भवितारो भवन्तो वै नैवमित्यब्रवीदृषीन् ॥ ६४ ॥
वसिष्ठ उवाच- नैतस्येह यथास्माकमग्निहोत्रमनिर्हुतम्।
सायं प्रातश्च होतव्यं तेन पीवान् शुना सह ॥ ६५ ॥
अत्रिरुवाच— नैतस्येह यथाऽस्माकं क्षुधा वीर्यं समाहतम्।
कृच्छ्राधीतं प्रनष्टं च तेन पीवान् शुना सह ॥ ६६ ॥

सबके नामको जानकर सबका ही नाश करो। उनके नष्ट होनेपर जहां तुम्हारी इच्छा हो, वहां जाना। यातुधानी स्वरूपिणी वह कृत्या "ऐसा ही करूंगी" इस प्रकार अङ्गीकार करके जिस बनमें वे महर्षिवृन्द विचरते थे, वहां गई। (५९-६१)

भीष्म बोले, हे राजन्! अनन्तर अत्रि प्रभृति महर्षिगण उस बनमें फल-मूल खाते हुए विचरते थे, उस समय उन्होंने लाल हाथ, लाल चरण, लाल मुख और पीतोदर युक्त एक स्थूल शरीरवाले परिव्राजकको कुत्तेके सहित भ्रमण करते हुए देखा। अरुन्धती उस सर्वाङ्गसुन्दर परिव्राजकको देखके ऋषियोंसे बोली, आप लोग ऐसे नहीं हैं। (६२-६४)

वसिष्ठ बोले, इस समय हम लोगोंका अग्निहोत्र नहीं होता, संध्या और सवेरे होम करना चाहिये, वह भी नहीं होता, इसलिये नित्यकर्म्मोंके लोप होनेसे हम लोग इस प्रकार कृशित हुए हैं। इनका नित्यकर्म लोप नहीं हुआ है, इसीलिये ये कुत्तेके सहित इस प्रकार ललित हैं। (६५)

अत्रि बोले, क्षुधासे हम लोगोंका बल जिस प्रकार नष्ट हो रहा है और अत्यन्त कष्टसे पढी हुई विद्या जिस भांति विनष्ट हुई है, इनकी वैसी नहीं हुई, इसी निमित्त ये इस प्रकार कुत्तेके सहित ललित हैं। (६६)

विश्वामित्र उवाच– नैतस्येह यथाऽस्माकं शश्वच्छास्त्रं जरद्गवः।
अलसः क्षुत्परो मूर्खस्तेन पीवान् शुना सह ॥ ६७ ॥
जमदग्निरुवाच– नैतस्येह यथाऽस्माकं भक्तमिन्धनमेव च।
संचिन्त्यं वार्षिकं चित्ते तेन पीवान् शुना सह ॥६८॥
कश्यप उवाच– नैतस्येह यथाऽस्माकं चत्वारश्च सहोदराः।
देहि देहीति भिक्षन्ति तेन पीवाञ्छुना सह ॥ ६९ ॥
भरद्वाज उवाच– नैतस्येह यथाऽस्माकं ब्रह्मबन्धोरचेतसः।
शोको भार्यापवादेन तेन पीवाञ्छुना सह ॥ ७० ॥
गौतम उवाच– नैतस्येह यथाऽस्माकं त्रिकौशेयं च राङ्कवम्।
एकैकं वै त्रिवर्षीयं तेन पीवाञ्छुना सह ॥ ७१ ॥
भीष्म उवाच– अथ दृष्ट्वा परिव्राट् स तान्महर्षीन् शुना सह।
अभिगम्य यथान्यायं पाणिस्पर्शमथाचरत ॥ ७२ ॥
परिचर्यां वने तां तु क्षुत्प्रतीघातकारिकाम्।
अन्योऽन्येन निवेद्याथ प्रातिष्ठन्त सहैव ते ॥ ७३ ॥

विश्वामित्र बोले, हम लोगोंका शास्त्र प्रतिपादित धर्म जिस प्रकार जीर्ण हुआ है, हम जैसे भूखे आलसी और मूर्ख हुए हैं, ये वैसे नहीं हैं, इसीसे कुत्तेके सहित ललित हैं। (६७)

जमदग्नि बोले, हम लोग जिस भांति वर्षिक अन्न और काष्ठकी चिन्ता करते हैं, इन्हें उस प्रकार कुछ भी चिन्ता नहीं करनी पडती, इसीसे ये कुत्तेके सहित ऐसे पुष्ट है। (६८)

कश्यप बोले, जैसे हमारे चारों सहोदर देहि देहि, करके भीख मांगते हैं, इनके भाई वैसे नहीं हैं, इसीसे ये कुत्तेके सहित पुष्ट हैं। (६९)

भरद्वाज बोले, हमें भार्याके अपवादवश जैसा शोक हुआ है, इस अल्पचित्त ब्रह्मबन्धुको वैसी घटना नहीं हुई, इसी लिये यह पुरुष कुत्तेके सहित ऐसे ललित हैं। (७०)

गौतम बोले, हम लोगोंकी कुशरज्जसे गुंथा हुआ त्रिवर्षीय रंकुमृगचर्म जिस प्रकार पुराना हुआ है, इसका वैसा नहीं है, इसीलिये यह पुरुष कुत्तेके सहित ऐसा ललित है। (७१)

भीष्म बोले, अनन्तर उस परिव्राजकने सप्तर्षियोंको देखके उनके समीप जाकर न्यायपूर्वक हाथसे स्पर्श किया और बोला, आप लोगोंकी वनके बीच जिस प्रकार भूख मिटेगी, मैं उसी भांति तुम्हारी टहल करूंगा, परस्परके

एकनिश्चयकार्याश्च व्यचरन्त वनानि ते ।
आददानाः समुद्धृत्य मूलानि च फलानि च ॥ ७४ ॥
कदाचिद्विचरन्तस्ते वृक्षैरविरलैर्वृताम् ।
शुचिवारिप्रसन्नोदां ददृशुः पद्मिनीं शुभाम् ॥ ७५ ॥
बालादित्यवपुःप्रख्यैः पुष्करैरुपशोभिताम् ।
वैदूर्यवर्णसदृशैः पद्मपत्रैरथावृताम् ॥ ७६ ॥
नानाविधैश्च विहगैर्जलप्रकरसेविभिः ।
एकद्वारामनादेयां सूपतीर्थामकर्दमाम् ॥ ७७ ॥
वृषादर्भिप्रयुक्ता तु कृत्या विकृतदर्शना ।
यातुधानीति विख्याता पद्मिनीं तामरक्षत ॥ ७८ ॥
पशुसखसहायास्तु बिसार्थं ते महर्षयः ।
पद्मिनीमभिजग्मुस्ते सर्वे कृत्याभिरक्षिताम् ॥ ७९ ॥
ततस्ते यातुधानीं तां दृष्ट्वा विकृतदर्शनाम् ।
स्थितां कमलिनीतीरे कृत्यामूचुर्महर्षयः ॥ ८० ॥
एका तिष्ठसि का च त्वं कस्यार्थे किं प्रयोजनम् ।

ऐसा कहनेपर वे सब कोई इकट्ठे होकर निवास करने लगे। वे सब एक ही कार्यके अभिलाषी होकर वनके बीच फलमूल ग्रहण करते हुए विचरनेमें प्रवृत्त हुए। किसी समय उन्होंने विचरते हुए उत्तम वृक्षोंसे पूरित और पवित्र जलसे युक्त एक सुन्दर तालाव देखा। वह तालाव बालारुणसदृश कमलोंसे सुशोभित था, वैदूर्य वर्णसदृश पद्मपत्रोंसे परिपूर्ण, अनेक प्रकारके जलचर पक्षियोंसे अलंकृत था, उसमें प्रवेश करनेके लिये एक ही द्वार था, कोई उन कमल तथा तालावके जलको नहीं ले सकते थे, उसमें जानेके लिये एक ही मार्ग था और कीचड नहीं था। (७२—७७)

वृषादर्भि राजाके द्वारा भेजी हुई वह भयङ्करी कृत्या जो यातुधानी नामसे विख्यात थी, वह उस तालावकी रक्षा करती थी। पशुसखके सहित महर्षि लोग मृणालके निमित्त उस कृत्यारक्षित तालावकी ओर गये। अनन्तर महर्षियोंने तालावके तटपर स्थित यातुधानी कृत्याको देखके कहा, तुम अकेली किसके लिये यहांपर निवास करती हो? तालावके तटको अवलम्बन करके तुम्हारे निवास करनेका क्या प्रयोजन है और तुम

पद्मिनीतीरमाश्रित्य ब्रूहि त्वं किं चिकीर्षसि ॥ ८१ ॥
यातुधान्युवाच– याऽस्मि साऽस्म्यनुयोगो मे न कर्तव्यः कथञ्चन ।
आरक्षिणीं मां पद्मिन्या वित्त सर्वे तपोधनाः ॥ ८२ ॥
ऋषय ऊचुः— सर्व एव क्षुधार्ताः स्म न चान्यत्किञ्चिदस्ति नः ।
भवत्याः संमते सर्वे गृह्णीयाम बिसान्युत ॥ ८३ ॥
यातुधान्युवाच– समयेन बिसानीतो गृह्णीध्वं कामकारतः ।
एकैको नाम मे प्रोक्त्वा ततो गृह्णीत मा चिरम् ॥ ८४ ॥
भीष्म उवाच— विज्ञाय यातुधानीं तां कृत्यामृषिवधैषिणीम् ।
अत्रिः क्षुधापरीतात्मा ततो वचनमब्रवीत् ॥ ८५ ॥
अत्रिरुवाच— अरात्रिरत्रिः साऽरात्रिर्या नाधीतेऽत्रिरद्य वै ।
अरात्रिरत्रिरित्येव नाम मे विद्धि शोभने ॥ ८६ ॥

क्या करनेकी इच्छा करती हो, उसे कहो। (७८-८१)

यातुधानी बोली, मैं चाहे जो कोई क्यों न होऊं, मुझसे तुम लोगोंको कुछ पूछना न चाहिये। हे तपस्वीवृन्द ! तुम्हें मालूम हो, कि मैं इस तालावकी रक्षामें नियुक्त हूं। (८२)

ऋषिवृन्द बोले, हम लोग क्षुधासे आर्त्त हैं, हमारे पास कुछ भी नहीं है, तुम्हारी सम्मति हो, तो हम लोग मृणाल लें। (८३)

यातुधानी बोली, तुम लोग एक नियमके अनुसार अपने नामका अर्थ कहके स्वेच्छा पूर्वक इसमेंसे मृणाल ग्रहण करो। (८४)

भीष्म बोले, अनन्तर क्षुधासे व्याकुलचित्त अत्रिने उस यातुधानी कृत्याको नामका अर्थ जाननेमें समर्थ और ऋषियोंके मारनेकी इच्छा करनेवाली जानके यह वचन कहा। (८५)

अत्रि बोले, जो इस सारे जगत्को पापसे उबारता है, वेद उसे अत्रि नामसे पुकारता है, इसलिये जो पापसे परित्राण करता है, वह अत्रि है और काम क्रोध आदि शत्रु जिसे अवलम्बन किया करते हैं, उसे अर अर्थात् पाप कहा जाता है, उस पापसे जो बचाता है, वह अरात्रि है, इसलिये जो अरात्रि हो, वही अत्रि है; अद् शब्दका अर्थ मृत्यु है, उससे जो त्राण करता है, उसे भी अत्रि कहा जाता है, इसलिये धर्म भी अत्रिपदवाच्य है, अद्य अर्थात् वर्त्तमान कालमें जो तीन बार अधिगत नहीं होता, अतीत पुत्रादिके अनुत्पत्ति समयमें आगतत्व निबन्धन उत्पत्तिकालमें वर्तमान हेतु और नाश होनेपर

यातुधान्युवाच— यथोदाहृतमेतत्ते मयि नाम महाद्युते ।
दुर्धार्यमेतन्मनसा गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ ८७ ॥
वसिष्ठ उवाच— वसिष्ठोऽस्मि वरिष्ठोऽस्मि वसे वासगृहेष्वपि ।
वसिष्ठत्वाच्च वासाच्च वसिष्ठ इति विद्धि माम् ॥८८॥
यातुधान्युवाच— नाम नैरुक्तमेतत्ते दुःखव्याभाषिताक्षरम् ।
नैतद्धारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ ८९ ॥
कश्यप उवाच— कुलं कुलं च कुवमः कुवमः कश्यपो द्विजः ।
काश्यः काशनिकाशत्वादेतन्मे नाम धारय ॥ ९० ॥

अतीतत्वके द्वारा जो जाना नहीं जाता, जिसका इस त्रिवार अधिगम नहीं है, केवल वर्तमान ही है; जो अवस्था हार्द्दाकाशाख्य जगत्कारणप्राप्ति सर्व पापविनाशिनी है, उसे ही अरात्रि कहते हैं। हे सुन्दरी! इसलिये जब मैं ही अरात्रि हूं, तब तुम मेरा नाम अत्रि निश्चय करो। (८६)

यातुधानी बोली, हे महाद्युति! तुमने मेरे समीप जो नाम कहा, वह मनमें भी धारण करना बहुत कठिन है। इसलिये तुम जाओ तालावमें उतरो। (८७)

वसिष्ठ बोले, अग्नि, पृथ्वी, वायु, आकाश, स्वर्ग, आदित्य, चन्द्रमा, नक्षत्रगण और श्रुति प्रसिद्ध वसु अर्थात् जिन्हे अवलंबन करके सब कोई वास करते हैं, ये जिसके अधीन होते हैं, वह अणिमा आदि ऐश्वर्यशाली महायोगी हैं, ये सब मेरे वशीभूत हैं, इस ही निमित्त मैं वसिष्ठ और अत्यन्त महान् होनेसे वरिष्ट तथा सब आश्रमोंके उपजीव्य वास योग्य गृहस्थाश्रममें निवास किया करता हूं, इसलिये वसिष्ठत्व और वास करनेसे मुझे वसिष्ठ जानो, मैं सबका अवलंब हूं, इसलिये देवता लोग मेरी रक्षा करते हैं। (८८)

यातुधानी बोली, तुमने जो अपने नामका निरुक्त कहा, उसका अक्षरार्थ अत्यन्तदुःखसे बोध होता है, इसलिये इसकी धारणा नहीं की जा सकती; अच्छा जाओ, तुम तालाव में उतरो। (८९)

कश्यप बोले, मैं प्रति शरीरमें एक हूं, इसलिये मेरा नाम कश्य है। इस शरीरमें रहने वाली अश्वरूपी इन्द्रियोंको कश्य कहते हैं, उन इन्द्रियोंका आश्रय होनेसे शरीर भी कश्य है, इसलिये कश्यकी रक्षा करनेसे मैं कश्यप हूं। और कु अर्थात् पृथ्वीपर जो वृष्टी करता है, उसे कु-वम अर्थात् सूर्य कहा जाता है, वह कु-वम सूर्य

यातुधान्युवाच— यथोदाहृतमेतत्ते मयि नाम महाद्युते ।
दुर्धार्यमेतन्मनसा गच्छावतरपद्मिनीम् ॥ ९१ ॥
भरद्वाज उवाच- भरेऽसुतान्भरे शिष्यान्भरे देवान् भरे द्विजान् ।
भरे भार्यां भरे द्वाजं भरद्वाजोऽस्मि शोभने ॥ ९२ ॥
यातुधान्युवाच- नाम नैरुक्तमेतत्ते दुःखव्याभाषिताक्षरम् ।
नैतद्धारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ ९३ ॥
गौतम उवाच- गोदमो दमतोऽधूमोऽदमस्ते समदर्शनात् ।
विद्धि मां गोतमं कृत्ये यातुधानि निबोध माम्॥९४॥
यातुधान्युवाच- यथोदाहृतमेतत्ते मयि नाम महामुने ।

अर्थात् द्वादशसूर्य मेरा पुत्र है; इसलिये मैं कुवम हूं, दीप्तिमान होनेसे कश्य और काश पुष्प सदृश केशयुक्त होनेसे सदा तपस्या से प्रदीप्त हूं। (९०)

यातुधानी बोली, हे महाद्युति! तुमने मेरे समीप जिस प्रकार अपना नाम कहा, वह मनमें भी धारण नहीं किया जाता, इसलिये जाओ तालावमें उतरो। (९१)

भरद्वाज बोले, मैं अशिष्य अर्थात् शासन न करके योग्य शत्रुओंको भी करुणासे वशीभूत होके प्रतिपालन करता हूं और असुत अर्थात् उदासीन,दीन हीन लोगोंको प्रतिपालन किया करता हूं ; देवताओंको भरण करता और द्विजोंको भी भरण किया करता हूं, भार्या, पुत्र और सेवकोंको दूसरे लोग जिस प्रकार पालते हुए पृथ्वीकी भांति सर्वसह और अन्नप्रद होते हैं, मैं भी वैसा ही हूं। हे सुन्दरि! इसलिये मैं अनव्या, अर्थात् मायाके द्वारा लोकहितके लिये उत्पन्न होनेसे अनव्याज हूं ; इससे तुम मुझे भरद्वाज जानो। (९२)

यातुधानी बोली, तुम्हारे नामका ऐसा निर्वचन तथा अक्षरार्थ कहनेमें अत्यन्त कष्ट होता है, यह धारण नहीं किया जा सकता ; इसलिये जाओ तालावमें उतरो। (९३)

गौतम बोले, मैं जितेन्द्रिय होनेसे गोपद वाच्य, स्वर्ग और भूमिको वशीभूत करनेसे गोदम तथा धूमरहित अग्नितुल्य होनेसे अधूम हूं, इसलिये तुममें समदर्शन निबंधनसे अदम अर्थात् दूसरेसे दमनीय नहीं हूं। हे यातुधानी कृत्या! मेरे जन्मते ही मेरी गो अर्थात् किरणके सहारे तम अर्थात् अन्धकार नष्ट हुआ था, इसलिये मेरा नाम गौतम जानो, मैं अग्निकी भांति तुम्हारे लिये दुष्पर्श हूं। (९४)

नैतद्धारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ ९५ ॥
विश्वामित्र उवाच-- विश्वे देवाश्च मे मित्रं मित्रमस्मि गवां तथा ।
विश्वामित्रमिति ख्यातं यातुधानि निबोध माम्॥९६॥
यातुधान्युवाच-- नाम नैरुक्तमेतत्ते दुःखव्याभाषिताक्षरम् ।
नैतद्धारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ ९७ ॥
जमदग्निरुवाच - जाजमद्य जजानेऽहं जिजाहीह जिजायिषि ।
जमदग्निरिति ख्यातस्ततो मां विद्धि शोभने ॥९८॥
यातुधान्युवाच-- यथोदाहृतमेतत्ते मयि नाम महामुने ।
नैतद्धारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ ९९ ॥
अरुन्धत्युवाच-- धरान् धरित्रीं वसुधां भर्तुस्तिष्ठाम्यनन्तरम् ।
मनोऽनुरुन्धती भर्तुरिति मां विद्ध्यरुन्धतीम् ॥ १००॥
यातुधान्युवाच-- नाम नैरुक्तमेतत्ते दुःखव्याभाषिताक्षरम् ।

यातुधानी बोली, हे महामुनि ! मेरे समीप तुमने जो नाम कहा, वह धारण करनेके योग्य नहीं है, इसलिये जाओ तालावमें उतरो । (९५)

विश्वामित्र बोले, ब्रह्माण्डके देवगण मेरे मित्र हैं और मैं इन्द्रियोंका मित्र हूं । हे यातुधानी ! इसलिये तुम मुझे विश्वामित्र जानो । (९६)

यातुधानी बोली, तुम्हारे इस नामका निरुक्त और इसका अक्षरार्थ अत्यन्त दुःखसे कहा जाता है, यह धारण करनेके योग्य नहीं है, इसलिये जाओ तालावमें उतरो । (९७)

जमदग्नि बोले, यज्ञादिकोंमें जो बारबार हवि भक्षण करते हैं, उन्हें याजमान् कहा जाता है। उस याजमान् अर्थात् देवगणका जिसके द्वारा यजन किया जाता है, उसका नाम यज अर्थात् अग्नि जानो। हे सुन्दरि ! उसके आविर्भावमें मैंने जन्म लिया है, इसलिये तुम मुझे जमदग्नि जानो । (९८)

यातुधानी बोली, हे महामुनि ! तुमने जिस प्रकार मेरे समीप अपना नाम कहा, वह धारण करनेके योग्य नहीं है, इसलिये जाओ तालावमें उतरो । (९९)

अरुन्धती बोली, मैं पतिकी अनुगामिनी होकर धर अर्थात् पर्वत, धरित्री और वसुधा अर्थात् देवगणोंके निवास स्थान स्वर्गमें वास करती हूं, तथा पतिके मनका अनुरोध किया करती हूं, इसलिये मुझे अरुन्धती जानो। (१००)

यातुधानी बोली, तुम्हारे नामका निर्वचन और इसका अक्षरार्थ अत्यन्त

नैतद्धारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ १०१ ॥
गण्डोवाच— वक्त्रैकदेशे गण्डेति धातुमेतं प्रचक्षते।
तेनोन्नतेन गण्डेति विद्धि माऽनलसम्भवे ॥ १०२ ॥
यातुधान्युवाच- नाम नैरुक्तमेतत्ते दुःखव्याभाषिताक्षरम्।
नैतद्धारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ १०३ ॥
पशुसख उवाच-पशून् रञ्जामि दृष्ट्वाऽहं पशूनां च सदा सखा।
गौणं पशुसखेत्येवं विद्धि मामग्निसम्भवे ॥ १०४ ॥
यातुधान्युवाच- नाम नैरुक्तमेतत्ते दुःखव्याभ षिताक्षरम्।
नैतद्धारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ १०५ ॥
शुनःसख उवाच- एभिरुक्तं यथा नाम नाहं वक्तुमिहोत्सहे।
शुनःसख सखायं मां यातुधान्युपधारय ॥ १०६ ॥
यातुधान्युवाच- नाम नैरुक्तमेतत्ते वाक्यं सन्दिग्धया गिरा।
तस्मात्पुनरिदानीं त्वं ब्रूहि यन्नाम ते द्विज ॥ १०७ ॥

दुःखसे कहा जाता है, यह धारण करनेके योग्य नहीं है, इसलिये तुम भी जाओ तालावमें उतरो। (१०१)

गण्डा बोली, हे अग्निसम्भवे ! मुखके एक स्थानको पण्डित लोग गण्ड कहते हैं, मेरा वह स्थान ऊंचा है, इसलिये मुझे गण्डा जानो। (१०२)

यातुधानी बोली, तुम्हारे नामका निरुक्त और अक्षरार्थ अत्यन्त दुःखसे कहा जाता है, यह धारणाके योग्य नहीं है, इसलिये जाओ तुम भी तालावमें उतरो। (१०३)

पशुसख बोला, हे अग्निसम्भवे ! मैं पशु अर्थात् जीवोंको देखते ही रक्षा वा रञ्जन किया करता हूं, इसलिये मैं सदा पशुओंका सखा हूं, इस ही गुणके संबंधसे मेरा पशुसख नाम जानो। १०४

यातुधानी बोली, तुम्हारे नामका निरुक्त और अक्षरार्थ अत्यन्त दुःखसे कहा जाता है, यह धारणा करनेके योग्य नहीं है, इसलिये जाओ तुम भी तालावमें उतरो। (१०५)

शुनःसख बोले, हे यातुधानी ! इन लोगोंने जिस प्रकार अपना अपना नाम कहा, मैं उस भांति कहनेका उत्साह नहीं करता, इसलिये मुझे शुनःसखा अर्थात् धर्मके सखा मुनियोंके सखारूपसे निश्चय करो। (१०६)

यातुधानी बोली, तुमने सन्दिग्ध भाषासे निज नामका निर्वपन किया है, हे द्विज ! इसलिये अब एकबार अपना यथार्थ नाम कहो। (१०७)

शुनःसख उवाच- सकृदुक्तं मया नाम न गृहीतं त्वया यदि ।
तस्मात् त्रिदण्डाभिहता गच्छ भस्मेति मा चिरम् ॥१०८॥
सा ब्रह्मदण्डकल्पेन तेन मूर्ध्नि हता तदा ।
कृत्या पपात मेदिन्यां भस्म सा च जगाम ह ॥१०९॥
शुनःसखा च हत्वा तां यातुधानीं महाबलाम् ।
भुवि त्रिदण्डं विष्टभ्य शाद्वले समुपाविशत् ॥११०॥
ततस्ते मुनयः सर्वे पुष्कराणि बिसानि च ।
यथाकाममुपादाय समुत्तस्थुर्मुदान्विताः ॥ १११ ॥
श्रमेण महता कृत्वा ते बिसानि कलापशः ।
तीरे निक्षिप्य पद्मिन्यास्तर्पणं चक्रुरम्भसा ॥ ११२ ॥
अथोत्थाय जलात्तस्मात्सर्वे ते समुपागमन् ।
नापश्यंश्चापि ते तानि बिसानि पुरुषर्षभाः ॥११३॥
ऋषय ऊचुः- केन क्षुधापरीतानामस्माकं पापकर्मणा ।
नृशंसेनापनीतानि बिसान्याहारकाङ्क्षिणाम् ॥११४॥
ते शङ्कमानास्त्वन्योन्यं पप्रच्छुर्द्विजसत्तमाः ।
त ऊचुः समयं सर्वे कुर्म इत्यरिकर्शन ॥ ११५ ॥

शुनःसख बोले, मैंने एक वर अपना नाम कहा, उसे यदि तू नहीं समझ सकी, तो इस त्रिदण्डकी चोटसे शीघ्र ही जलके खाक हो। (१०८)

यातुधानी कृत्या उस समय ब्रह्मदण्डसदृश त्रिदण्डकी चोट सिरपर लगते ही पृथ्वीपर गिरके उसी समय भस्म होगई। शुनःसखा भी उस महाबल शालिनी यातुधानीको मारके पृथ्वीपर त्रिदण्ड रखके शाद्वल तृणके बीच बैठ गये। (१०९-११०)

अनन्तर वे मुनिवृन्द स्वेच्छापूर्वक कमलमृणाल लेके हर्षित होकर तालाबसे निकले। उन्होंने अत्यन्त परिश्रमसे मृणालोंको इकट्ठा कर तालावके तटपर रखकर जलसे तर्पण किया। अनन्तर वे पुरुषश्रेष्ठ ऋषिगण जलसे निकलके स्थलमें आकर एकत्रित हुए, किन्तु मृणालकी राशि नहीं देखा॥(१११-११३)

ऋषिगण बोले, हम लोग क्षुधातुर होके खानेकी इच्छासे जो सब मृणाल लाये, उसे न जाने किस पापी नृशंस मनुष्यने हर लिया ? वे द्विजसत्तमगण शङ्कित होके आपसमें इसी प्रकार पूछने लगे। हे अरिकर्शन ! तब उन्होंने निषिद्ध कार्यके अकर्त्तव्यताच्छलसे शपथ

त उक्त्वा बाढमित्येवं सर्व एव तदा समम्।
क्षुधार्ताः सुपरिश्रान्ताः शपथायोपचक्रमुः ॥ ११६ ॥
अत्रिरुवाच—स गां स्पृशतु पादेन सूर्यं च प्रतिमेहतु।
अनध्यायेष्वधीयीत बिसस्तैन्यं करोति यः ॥ ११७ ॥
वसिष्ठ उवाच-अनध्याये पठेल्लोके शुनः स परिकर्षतु।
परिव्राट् कामवृत्तस्तु बिसस्तैन्यं करोति यः ॥ ११८ ॥
शरणागतं हन्तु स वै स्वसुतां चोपजीवतु।
अर्थान्काङ्क्षतु कीनाशाद्बिसस्तैन्यं करोति यः ॥११९॥
कश्यप उवाच-सर्वत्र सर्वं लपतु न्यासलोपं करोतु च।
कूटसाक्षित्वमभ्येतु बिसस्तैन्यं करोति यः ॥ १२० ॥
वृथामांसाशनश्चास्तु वृथादानं करोतु च।
यातु स्त्रियं दिवा चैव बिसस्तैन्यं करोति यः ॥१२१॥
भरद्वाज उवाच-नृशंसस्त्यक्तधर्मास्तु स्त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च।
ब्राह्मणं चापि जयतां बिसस्तैन्यं करोति यः ॥१२२॥
उपाध्यायमधः कृत्वा ऋचोऽध्येतु यजूंषि च।

करनेके लिये कहा। वे सब क्षुधार्त और अत्यन्त श्रमयुक्त थे, इसलिये ऐसा ही करूंगा, कहके सब कोई उस समय शपथ करनेको उद्यत हुए। (११४-११६)

अत्रि बोले, जिस पुरुषने मृणाल हरण किया है, वह पांवसे गऊको स्पर्श करे, सूर्यकी ओर मूत्र पुरीष परित्याग करे और अनध्यायके समय अध्ययन करे। (११७)

वसिष्ठ बोले, जिस पुरुषने मृणाल हरण किया है,वह लोकके बीच अनध्यायके समय पाठ करे, क्रीडा वा मृगयाके निमित्त कुत्तोंका आकर्षण करे, परिव्राट होके स्वेच्छाचारी होवे, शरणागत पुरुषको मारे, निज दुहिताको उपजीव्य करे अर्थात् शुल्क लेकर अपनी कन्या बेंचके जीवन बितावे, तथा कर्षकसे धनकी अभिलाषा करे। (११८-११९)

कश्यप बोले, जिस पुरुषने मृणाल हरण किया है, वह सब ठौर सब विषयोंमें आलाप करे, न्यस्तधन लुप्त करे, झूठी साक्षी दे, यज्ञादि निमित्तके अतिरिक्त वृथा मांसाशी हो, नट नर्तक प्रभृतिको वृथा दान करे और दिनमें स्त्री सम्भोग करे। (१२०--१२१)

भरद्वाज बोले, जिस पुरुषने मृणाल हरण किया है, वह धर्मत्यागी होकर स्त्रीजाति और गौवोंके विषयमें निठुर

जुहोतु च स कक्षाग्नौ बिसस्तैन्यं करोति यः ॥१२३॥

जमदग्निरुवाच-- पुरीषमुत्सृजत्वप्सु हन्तु गां चैव द्रुह्यतु ।
अनृतौ मैथुनं यातु बिसस्तैन्यं करोति यः ॥ १२४ ॥
द्वेष्यो भार्योपजीवी स्याद्दूरबन्धुश्च वैरवान् ।
अन्योऽन्यस्यातिथिश्चास्तु बिसस्तैन्यं करोति यः ॥१२५॥

गौतम उवाच— अधीत्य वेदांस्त्यजतु त्रीनग्नीनपविध्यतु ।
विक्रीणातु तथा सोमं बिसस्तैन्यं करोति यः ॥१२६॥
उदपानप्लवे ग्रामे ब्राह्मणो वृषलीपतिः ।
तस्य सालोक्यतां यातु बिसस्तैन्यं करोति यः ॥१२७॥

विश्वामित्र उवाच— जीवतो वै गुरून्भृत्यान्भरन्त्वस्य परे जनाः ।
अगतिर्बहुपुत्रः स्याद्बिसस्तैन्यं करोति यः ॥ १२८ ॥
अशुचिर्ब्रह्मकूटोऽस्तु ऋद्धया चैवाप्यहंकृतः ।
कर्षको मत्सरी चास्तु बिसस्तैन्यं करोति यः ॥१२९॥

आचरण करे अथवा ब्राह्मणोंको जय करे, जिसने मृणाल हरण किया है, वह उपाध्यायको अग्राह्य करके ऋक् और यजुर्वेद पढें और तृणयुक्त अग्निमें होम करे। (१२२—१२३)

जमदग्नि बोले, जिस पुरुषने मृणाल हरण किया है, जलमें विष्ठा फेंके, गौवोंको मारे तथा गौवोंके विषयमें द्रोहाचरण करे, ऋतुकालके अतिरिक्त अन्य समयमें मैथुन करे, जिसने मृणाल हरण किया है, वह सब का द्वेषी होवे, भार्याको उपजीव्य करके जीवन बितावे, उसके बन्धुजन पृथक् रहें, और सदा वैरयुक्त हो और परस्परमें अतिथि होवे। (१२४-१२५)

गौतम बोले, जिस पुरुषने मृणाल हरण किया है, वह वेदोंको पढके उन्हें त्याग देवें, दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आवहनीय अग्निको परित्याग करे, सोमविक्रयी होवे, एकमात्र कूएंके जलसे जिस स्थानमें जीवन धारण किया जाता है, वैसे देशमें ब्राह्मण होके भी जो वृषलीपति हुआ करता है, जिसने मृणाल हरण किया है, वह वैसे ब्राह्मणों की सदृशताको प्राप्त होवे। (१२६-१२७)

विश्वामित्र बोले, जिस पुरुषने मृणाल हरण किया है, उसके जीवित रहते ही दूसरे लोग उसके गुरुजनों तथा सेवकोंका पालन करें, वह गतिहीन और बहुपुत्र-युक्त होवे। जिसने मृणाल हरण किया है, उसके वेद अपवित्र हों, वह सम्पत्ति पानेपर

वर्षाचरोऽस्तु भृतको राज्ञश्चास्तु पुरोहितः ।
अयाज्यस्य भवेदृत्विग् बिसस्तैन्यं करोति यः ॥१३०॥
अरुन्धत्युवाच- नित्यं परिभवेच्छ्वश्रूं भर्तुर्भवतु दुर्मनाः ।
एका स्वादु समश्नातु बिसस्तैन्यं करोति या ॥ १३१ ॥
ज्ञातीनां गृहमध्यस्था सक्तूनत्तु दिनक्षये ।
अभोग्यावीरसूरस्तु बिसस्तैन्यं करोति या ॥ १३२ ॥
गण्डोवाच—अनृतं भाषतु सदा बन्धुभिश्च विरुध्यतु ।
ददातु कन्यां शुल्केन बिसस्तैन्यं करोति या॥ १३३ ॥
साधयित्वा स्वयं प्राशेद्दास्ये जीर्यतु चैव ह ।
विकर्मणा प्रमीयेत बिसस्तैन्यं करोति या ॥ १३४ ॥
पशुसख उवाच- दास एव प्रजायेतामप्रसूतिरकिञ्चनः ।
दैवतेष्वनमस्कारो बिसस्तैन्यं करोति यः ॥ १३५ ॥
शुनःसख उवाच- अध्वर्यवे दुहितरं वा ददातु च्छन्दोगे वा चरितब्रह्मचर्ये ।
आथर्वणं वेदमधीत्य विप्रः स्नायीत वा यो हरते बिसानि ॥१३६॥

अहङ्कार करे तथा वह कर्षक और मत्सरी हो, जिसने मृणाल हरण किया है, वह वर्षाकालमें विचरे, राजाका वेतनभोगी सेवक हो, साधारण लोगोंका पुरोहित और अयाज्य पुरुषका अयाचक होवे। (१२८-१३०)

अरुन्धती बोली, जो स्त्री मृणाल हरण किये हो, वह सदा सासको परिभव करे, स्वामीके समीप मन मलिन होवे, अकेली सुस्वादु वस्तु खावे। जिसने मृणाल हरण किया है, वह स्वजनोंका अनादर करके गृहमें रहके दिन बीतनेपर सत्तू खाय और अभोग्य तथा अवीरप्रसविनी होवे। (१३१—१३२)

गण्डा बोली, जिसने मृणाल हरण किया है, वह सर्वदा झूठ बोले, बन्धुजनोंके सङ्ग विरोध करे, शुल्क लेके कन्यादान करे, जिसने मृणाल हरण किया है, वह अन्न पाक करके स्वयं भोजन करे, दास्यकर्म करके बूढी होवे, और जारके द्वारा गर्भ धारण करके मृत्युको प्राप्त होवे। (१३३—१३४)

पशुसख बोला, जिसने मृणाल हरण किया है, वह दास होकर जन्मे, सन्तान रहित हो उसके कुछ न रहे और देवताओंको नमस्कार न करे। (१३५)

शुनःसख बोले, जिसने मृणाल हरण किया है, वह चारों वेद जाननेवाले अथवा सामवेदज्ञ वा ब्रह्मचर्ययुक्त

ऋषय ऊचुः— इष्टमेतद् द्विजातीनां योऽयं ते शपथः कृतः।
त्वया कृतं बिसस्तैन्यं सर्वेषां नः शुनःसख ॥१३७॥
शुनःसख उवाच— न्यस्तमद्यं न पश्यद्भिर्यदुक्तं कृतकर्मभिः।
सत्यमेतन्न मिथ्यैतद्बिसस्तैन्यं कृतं मया ॥१३८॥
मया ह्यन्तर्हितानीह बिसानीमानि पश्यत।
परीक्षार्थं भगवतां कृतमेवं मयाऽनघाः ॥१३९॥
रक्षणार्थं च सर्वेषां भवतामहमागतः।
यातुधानी ह्यतिक्रूरा कृत्यैषा वो वधैषिणी ॥१४०॥
वृषादर्भिप्रयुक्तैषा निहता मे तपोधनाः।
दुष्टा हिंस्यादियं पापा युष्मान्प्रत्यग्निसंभवा ॥१४१॥
तस्मादस्म्यागतो विप्रा वासवं मां निबोधत।
अलोभादक्षया लोकाः प्राप्ता वै सार्वकामिकाः ॥१४२॥
उत्तिष्ठध्वमितः क्षिप्रं तानवाप्नुत वै द्विजाः ॥१४३॥
भीष्म उवाच— ततो महर्षयः प्रीतास्तथेत्युक्त्वा पुरन्दरम्।
सहैव त्रिदशेन्द्रेण सर्वे जग्मुस्त्रिविष्टपम् ॥१४४॥

ब्राह्मणको कन्यादान करे और वह विप्र अथर्ववेद पढके स्नान करे। (१३६)

ऋषिगण बोले, हे शुनःसख ! तुमने जो शपथ किया, वह जो ब्राह्मणकी ही अभिलषित है, इसलिये तुमने ही हम लोगोंका मृणाल हरण किया है। शुनःसख बोले, आप लोगोंने इस समय न्यस्तधनको न देखके कृतकर्मा होकर जो वचन कहा, वह सत्य है, इसमें कुछ भी मिथ्या नहीं है, मैंने ही मृणाल हरण किया है, देखिये, ये सब मृणाल मेरे द्वारा लुप्त हुई हैं। हे अनघगण ! मैंने आप लोगोंकी परीक्षाके लिये ऐसा किया है, मैं तुम लोगोंकी रक्षाके लिये इस स्थानमें आया हूं, इस अत्यन्त क्रूर यातुधानी कृत्याने आप लोगोंके वधकी इच्छा की थी। हे तपोधनगण! राजा वृषादर्भिने इसे भेजा था, मैंने उसे मारा है। यह दुष्टा हिंस्रा पापिन आप लोगोंके निमित्त अग्निसे उत्पन्न हुई थी। हे विप्रगण ! इस ही निमित्त मैं यहांपर आया हूं, आप लोग मुझे इन्द्र जानो। आप लोगोंने लोभत्याग· नेसे सर्वकामसम्पन्न लोकोंको पाया है। हे द्विजगण ! इसलिये यहांसे चलिये, आप लोगोंको शीघ्रही वे समस्त लोक प्राप्त होंगे। (१३७-१४३)

भीष्म बोले, अनन्तर महर्षिवृन्द

एवमेते महात्मानो भोगैर्बहुविधैरपि ।
क्षुधा परमया युक्ताश्छन्द्यमाना महात्मभिः ॥१४५॥
नैव लोभं तदा चक्रुस्ततः स्वर्गमवाप्नुवन् ।
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु नरो लोभं विवर्जयेत् ॥ १४६ ॥
एष धर्मः परो राजंस्तस्माल्लोभं विवर्जयेत् ॥ १४७ ॥
इदं नरः सुचरितं समवायेषु कीर्तयन् ।
अर्थभागी च भवति न च दुर्गाण्यवाप्नुते ॥ १४८ ॥
प्रीयन्ते पितरश्चास्य ऋषयो देवतास्तथा ।
यशोधर्मार्थभागी च भवति प्रेत्य मानवः ॥ १४९ ॥ [४४८५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे बिसस्तैन्योपाख्याने त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

भीष्म उवाच— अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
यद्वृत्तं तीर्थयात्रायां शपथं प्रति तच्छृणु ॥ १ ॥
पुष्करार्थं कृतं स्तैन्यं पुरा भरतसत्तम ।
राजर्षिभिर्महाराज तथैव च द्विजर्षिभिः ॥ २ ॥

प्रसन्न होके इन्द्रसे बोले, "ऐसा ही होवे" इतना कहके देवराजके सङ्ग सुरपुरमें गये । इस ही भांति उन महात्माओंने राजाओंके द्वारा अनेक प्रकारके भोगोंसे प्रलोभित होनेपर भी भूखको बहुत ही सहा था, परन्तु उस समय कुछ भी लोभ न किया, इस ही निमित्त उन्होंने स्वर्गलोक पाया । इसलिये मनुष्य सब अवस्थामें ही लोभ परित्याग करे । हे राजन् ! यही परम धर्म है, इसलिये अवश्य ही लोभ त्यागना योग्य है । मनुष्य इस सच्चरित्र विषयको जनसमाजमें कहनेसे अर्थभागी होता है, कदाचित् उसे दुर्गम स्थान नहीं मिलते, पितर, ऋषि और देववृन्द उसपर प्रसन्न होते हैं, वह मनुष्य परलोकमें जाकर यश धर्म और अर्थभागी होता है । (१४४-१४९)

अनुशासनपर्वमें ९३ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें ९४ अध्याय ।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें यह पुराना इतिहास कहते हैं, तीर्थयात्रा समय शपथके विषयमें जो घटना हुई थी, उसे सुनो । (१)

हे भरतसत्तम महाराज ! कमलनालके लिये इन्द्रने जिस प्रकार चोरीकर्म किया और मुनियोंने शपथ की थी, राजर्षि और द्विजर्षियोंके द्वारा उस ही

ऋषयः समेताः पश्चिमे वै प्रभासे समागता मन्त्रममन्त्रयन्त ।
चराम सर्वां पृथिवीं पुण्यतीर्थां तन्नः कामं हन्त गच्छाम सर्वे ॥ ३ ॥
शुक्रोऽङ्गिराश्चैव कविश्च विद्वांस्तथा ह्यगस्त्यो नारदपर्वतौ च ।
भृगुर्वसिष्ठः कश्यपो गौतमश्च विश्वामित्रो जमदग्निश्च राजन् ॥ ४ ॥
ऋषिस्तथा गालवोऽथाष्टकश्च भारद्वाजोऽरुन्धती वालखिल्याः ।
शिबिर्दिलीपो नहुषोम्बरीषो राजा ययातिर्धुन्धुमारोऽथ पूरुः ॥ ५ ॥
जग्मुः पुरस्कृत्य महानुभावं शतक्रतुं वृत्रहणं नरेन्द्राः ।
तीर्थानि सर्वाणि परिभ्रमन्तो माघ्यां ययुः कौशिकीं पुण्यतीर्थाम् ॥ ६ ॥
सर्वेषु तीर्थेष्ववधूतपापा जग्मुस्ततो ब्रह्मसरःसु पुण्यम् ।
देवस्य तीर्थे जलमाग्निकल्पा विगाह्य ते भुक्तबिसप्रसूनाः ॥ ७ ॥
केचिद्बिसान्यखनंस्तत्र राजन्नन्ये मृणालान्यखनंस्तत्र विप्राः ।
अथापश्यन्पुष्करं ते ह्रियन्तं ह्रदादगस्त्येन समुद्धृतं तत् ॥ ८ ॥
तानाह सर्वानृषिमुख्यानगस्त्यः केनादत्तं पुष्करं मे सुजातम् ।
युष्मान्शङ्के पुष्करं दीयतां मे न वै भवन्तो हर्तुमर्हन्ति पद्मम् ॥ ९ ॥

भांति शपथ हुई थी। पश्चिम प्रदेशमें ऋषियोंने एकत्र होके प्रभास तीर्थमें यह विचार किया कि हम लोग समस्त पृथ्वीमण्डलमें विचरते हुए स्वेच्छानुसार पुण्यतीर्थोंमें गमन करेंगे। हे राजन्! शुक्र, अङ्गिरा विद्वान् कवि, अगस्त्य, नारद, पर्वत, भृगु, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि, गालव ऋषि, अष्टक, भरद्वाज, अरुन्धती और वालखिल्य मुनिगण, राजा शिबि, दिलीप, नहुष, अम्बरीष, ययाति, धुन्धुमार और पुरु आदि राजाओंने महानुभाव वृत्रहन्ता देवराजको अगाडी करके तीर्थोंमें गमन किया; वे लोग अनेक तीर्थोंमें घूमकर माघी पूर्णिमाके दिन पुण्यतीर्थ कौशिकीमें उपस्थित हुए। (५—६)

अनन्तर उन अग्निसदृश तेजस्वी ऋषियोंने देवतीर्थके जलमें स्नान और पुष्करभोजन करके सब तीर्थोंके पापको नष्ट करते हुए ब्रह्मसरोवरमें गये। हे महाराज! कोई कोई वहां बिस खनने लगे, दूसरे ब्राह्मण लोग मृणाल लानेमें प्रवृत्त हुए। अनन्तर उन्होंने अगस्त्यको उस ह्रदमें बढे हुए कमलोंको तोडते देखा। (७—८)

अगस्त्य उन ऋषियोंसे बोले, किसने मेरा सुन्दर कमल लिया है? मैं तुम लोगोंपर शङ्का करता हूं, तुम लोक मुझे कमल दो, पद्मको हरण

श्रृणोमि कालो हिंसते धर्मवीर्यं सोऽयं प्राप्तो वर्ततेऽधर्मपीडा।
पुराऽधर्मो वर्तते नेह यावत्तावद्गच्छामः सुरलोकं चिराय॥ १०॥
पुरा वेदान्ब्राह्मणा ग्राममध्ये घुष्टस्वरा वृषलान्श्रावयन्ति।
पुरा राजा व्यवहारेण धर्मान्पश्यत्यहं परलोकं व्रजामि॥ ११॥
पुरा वरान्प्रत्यवरान् गरीयसो यावन्नरा नावमंस्यन्ति सर्वे।
तमोत्तरं यावदिदं न वर्तते तावद्व्रजामि परलोकं चिराय॥ १२॥
पुरा प्रपश्यामि परेण मर्त्यान्बलीयसा दुर्बलान्भुज्यमानान्।
तस्माद्यास्यामि परलोकं चिराय न ह्युत्सहे द्रष्टुमिह जीवलोकम्॥१३॥
तमाहुरार्ता ऋषयो महर्षिं न ते वयं पुष्करं चोरयामः।
मिथ्याभिषङ्गो भवता न कार्यः शपाम तीक्ष्णैः शपथैर्महर्षे॥ १४॥
ते निश्चितास्तत्र महर्षयस्तु संपश्यन्तो धर्ममेतं नरेन्द्राः।
ततोऽशपन्त शपथान्पर्ययेण सहैव ते पार्थिवपुत्रपौत्रैः॥ १५॥
भृगुरुवाच- प्रत्याक्रोशेदिहाक्रुष्टस्ताडितः प्रतिताडयेत्।

करना तुम्हें उचित नहीं है। मैंने सुना है, कि कालक्रमसे धर्मबल विनष्ट होगा, वही काल इस समय उपस्थित हुआ है, अधर्मसे पीडा होती है, जबतक इस लोकमें अधर्म विद्यमान नहीं होता है, उतने ही समयके बीच मैं सदाके लिये सुरलोकमें जाऊंगा, इसके अनन्तर ब्राह्मण लोग गांवके बीच स्पष्ट स्वरसे वृषलोंको वेद सुनावेंगे और राजा लोग व्यवहारमें प्रजाके धर्मको न देखेंगे; इसलिये अब मैं परलोकमें जाऊंगा। जबतक उच्चश्रेणीके मनुष्य निकृष्ट और मध्यम लोगोंकी अवज्ञा नहीं करते हैं, तथा जबतक यह जगत् अज्ञानसे परिपूरित नहीं होता है, उतने ही समयके बीच मैं सदाके लिये परलोकमें जाऊंगा। इसके बाद बलवान् मनुष्योंके द्वारा निर्बल मनुष्योंको भुज्यमान देखूंगा, इसलिये मैं सदाके लिये परलोकमें जाऊंगा, इस लोकमें जीवोंको देखनेका उत्साह नहीं करता। (९—१३)

ऋषिवृन्द आर्त्त होकर उस महर्षिसे बोले, हे महर्षि! हमने आपका पुष्कर नहीं लिया है, आप हम लोगोंपर निरर्थक क्रोध न करिये। हम लोग तीव्र शपथ करते हैं। हे पुरुषेन्द्र! उस समय उन महर्षियोंने निश्चय करके इस धर्मको देखकर राजपुत्र और राजपौत्रोंके सहित क्रम क्रमसे शपथ करनेमें प्रवृत्त हुए। (१४—१५)

भृगु बोले, जिसने आपका कमल

खादेद्व पृष्ठमांसानि यस्ते हरति पुष्करम् ॥ १६ ॥
वसिष्ठ उवाच– अस्वाध्यायपरो लोके श्वानं च परिकर्षतु।
पुरे च भिक्षुर्भवतु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ १७ ॥
कश्यप उवाच–सर्वत्र सर्वं पणतु न्यासे लोभं करोतु च।
कूटसाक्षित्वमभ्येतु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ १८ ॥
गौतम उवाच– जीवत्वहंकृतोऽबुद्ध्या विषमेणासमेन सः।
कर्षको मत्सरी चास्तु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ १९ ॥
अङ्गिरा उवाच– अशुचिर्ब्रह्मकूटोऽस्तु श्वानं च परिकर्षतु।
ब्रह्महाऽनिकृतिश्चास्तु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २० ॥
धुन्धुमार उवाच– अकृतज्ञस्तु मित्राणां शूद्रायां च प्रजायतु।
एकः संपन्नमश्नातु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २१ ॥
पुरुरुवाच— चिकित्सायां प्रचरतु भार्यया चैव पुष्यतु।
श्वशुरात्तस्य वृत्तिः स्याद्यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २२ ॥
दिलीप उवाच–उदपानप्लवे ग्रामे ब्राह्मणो वृषलीपतिः।

लिया है, वह इस लोकमें निन्दित होके दूसरेकी निन्दा करे, ताडित होके दूसरेको मारे और ओढनेवाले वृषभ और ऊंटोंका मांस भक्षण करे। (१६)

वसिष्ठ बोले, जिसने आपका कमल हरण किया है, वह लोकके बीच अस्वाध्यायपरायण होके कुत्तेको आकर्षण करे और पुरीके बीच भिक्षुक होके रहे। (१७)

कश्यप बोले, जिसने आपका कमल हरण किया है, वह सब ठौर समस्त वस्तुओंको पण करके क्रय विक्रय करे, न्यस्त धन लोप करे और मिथ्या साक्षी दे। (१८)

गौतम बोले, जिसने आपका कमल हरण किया है, वह बुद्धिहीनतासे विषम काम क्रोध आदिके सहारे अहंकारयुक्त होके जीवन धारण करे और कर्षक तथा मत्सरी होवे। (१९)

अङ्गिरा बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह अपवित्र तथा कपटी ब्राह्मण होवे, कुत्तेको आकर्षण करे, ब्रह्महत्या करके प्रायश्चित्त न करे। (२०)

धुन्धुमार बोले, जिसने आपका कमल हरण किया है, वह मित्रोंके निकट अकृतज्ञ होवे, शूद्राके गर्भमें जन्मे और उत्तम रीतिसे बने हुए अन्नको अकेला ही भोजन करे। (२१)

पूरु बोले, जिसने आपका कमल

तस्य लोकान्स व्रजतु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २३ ॥
शुक्र उवाच— वृथा मांसं समश्नातु दिवा गच्छतु मैथुनम् ।
प्रेष्यो भवतु राज्ञश्च यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २४ ॥
जमदग्निरुवाच- अनध्यायेष्वधीयीत मित्रं श्राद्धे च भोजयेत् ।
श्राद्धे शूद्रस्य चाश्नीयाद्यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २५ ॥
शिबिरुवाच- अनाहिताग्निर्म्रियतां यज्ञे विघ्नं करोतु च ।
तपस्विभिर्विरुध्येच्च यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २६ ॥
ययातिरुवाच- अनृतौ च व्रती चैव भार्यायां स प्रजायतु ।
निराकरोतु वेदांश्च यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २७ ॥
नहुष उवाच- अतिथिर्गृहसंस्थोऽस्तु कामवृत्तस्तु दीक्षितः ।
विद्यां प्रयच्छतु भृतो यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २८ ॥
अम्बरीष उवाच-नृशंसस्त्यक्तधर्मोऽस्तु स्त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च ।
निहन्तु ब्राह्मणं चापि यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २९ ॥

हरण किया है, वह चिकित्सा करनेमें प्रवृत्त रहे, भार्याके सहारे पुष्टिलाभ करे और श्वशुरके द्वारा उसकी जीविका चले। (२२)

दिलीप बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह जिस गांवमें एक मात्र कूएंके जलसे जीवन धारण किया जाता है, वैसे गांवमें जो ब्राह्मण वृषलीपति होके वास करता है, उसे प्राप्त होने योग्य लोकोंमें जावे। (२३)

शुक्र बोले, जिसने आपका कमल हर लिया है, वह वृथा मांस भक्षण करे, दिनमें मैथुन करे और राजाका प्रेष्य दूत होवे। जमदग्नि बोले, जिसने कमल लिया वह अनध्यायमें पढे, श्राद्ध में मित्रोंको भोजन करावे और शूद्रके श्राद्धमें भोजन करे। (२४-२५)

शिबि बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह अनाहिताग्नि होके मृत्युके मुखमें पडे, यज्ञके समयमें विघ्न करे और तपस्वियोंके सङ्ग विरोध करे। (२६)

ययाति बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह व्रती और जटाधारी होके ऋतुकालके अतिरिक्त अन्य समयमें भार्याके द्वारा सन्तान उत्पन्न करे और वेदोंका निरादर करे। (२७)

नहुष बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह संन्यासी होके गृहस्थ होवे, दीक्षित होके स्वेच्छाचारी बने और वेतन लेके विद्यादान करे। (२८)

अम्बरीष बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह धर्मत्यागी होके स्त्री, जाति,

नारद उवाच—गृहज्ञानी बहिः शास्त्रं पठतां विस्वरं पदम् ।
गरीयसोऽवजानातु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३० ॥
नाभाग उवाच- अनृतं भाषतु सदा सद्भिश्चैव विरुध्यतु ।
शुल्केन तु ददत्कन्यां यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३१ ॥
कविरुवाच— पद्भ्यां स गां ताडयतु सूर्यं च प्रतिमेहतु ।
शरणागतं सन्त्यजतु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३२ ॥
विश्वामित्र उवाच- करोतु भृतकोऽवर्षां राज्ञश्चास्तु पुरोहितः ।
ऋत्विगस्तु ह्ययाज्यस्य यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३३ ॥
पर्वत उवाच—ग्रामे चाधिकृतः सोऽस्तु खरयानेन गच्छतु ।
शुनः कर्षतु वृत्त्यर्थे यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३४ ॥
भरद्वाज उवाच—सर्वपापसमादानं नृशंसे चानृते च यत् ।
तत्तस्यास्तु सदा पापं यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३५ ॥
अष्टक उवाच—स राजास्त्वकृतप्रज्ञः कामवृत्तश्च पापकृत् ।
अधर्मेणाभिशास्तूर्वीं यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३६ ॥

और गौवोंके विषयमें क्रूर होवे तथा ब्रह्महत्या करे। (२९)

नारद बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह गृहमें ज्ञानी होके बाहरमें विस्वर-पदयुक्त शास्त्र पढे और गुरु जनोंकी अवज्ञा करे। (३०)

नाभाग बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह सदा मिथ्या वचन कहे, साधुओंके सङ्ग विरोध करे और धन लेके कन्या दान करे। (३१)

कवि बोले, जिसने आपका कमल हरण किया है, वह पांवसे गऊको मारे, सूर्यकी ओर मलमूत्र परित्याग करे और शरणागत का त्याग करे। (३२)

विश्वामित्र बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह धनसे खरीदे जानेपर वृष्टिजल प्रतिबन्ध करे, राजाका पुरोहित हो और अयाज्य पुरुषोंका याजक होवे। (३३)

पर्वत बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह गांवमें सेवक होके रहे, गधेकी सवारीपर चले और वृत्तिके निमित्त कुत्तोंको आकर्षण करे। (३४)

भरद्वाज बोले, जिसने आपका कमल लिया है, नृशंस व्यवहार और झूट कहनेसे जो पाप होता है, उसे वही पाप सदा प्राप्त होवे। (३५)

अष्टक बोले, जिस राजाने आपका कमल लिया है, वह अकृतप्रज्ञ, कामवृत्तिवाला तथा पापी हो और अधर्मपूर्वक पृथ्वीको शासन करे। (३६)

गालव उवाच-पापिष्ठेभ्यो ह्यनर्घार्हः स नरोऽस्तु स्वपापकृत ।
दत्त्वा दानं कीर्तयतु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३७ ॥
अरुन्धत्युवाच-श्वश्र्वाऽपवादं वदतु भर्तुर्भवतु दुर्मनाः ।
एका स्वादु समश्नातु या ते हरति पुष्करम् ॥ ३८ ॥
वालखिल्या ऊचुः- एकपादेन वृत्त्यर्थं ग्रामद्वारे स तिष्ठतु ।
धर्मज्ञस्त्यक्तधर्माऽस्तु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३९ ॥
शुनःसख उवाच- अग्निहोत्रमनादृत्य ससुखं स्वपतु द्विजः ।
परिव्राट् कामवृत्तोऽस्तु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ४० ॥
सुरभ्युवाच— वालजेन निदानेन कांस्यं भवतु दोहनम् ।
दुह्येत परवत्सेन या ते हरति पुष्करम् ॥ ४१ ॥
भीष्म उवाच—ततस्तु तैः शपथैः शप्यमानैर्नानाविधैर्बहुभिः कौरवेन्द्र ।
सहस्राक्षो देवराट् संप्रहृष्टः समीक्ष्य तं कोपनं विप्रमुख्यम् ॥ ४२ ॥
अथाब्रवीन्मघवा प्रत्ययं स्वं समाभाष्य तमृषिं जातरोषम् ।
ब्रह्मर्षिदेवर्षिनृपर्षिमध्ये यं तं निबोधेह ममाद्य राजन् ॥ ४३ ॥

गालव बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह मनुष्य पापियोंसे भी अपूज्य और पापी होवे और दान करके कहता फिरे। (३७)

अरुन्धती बोली, जिस स्त्रीने आपका कमल हरण किया है, वह स्वशुरकी निन्दा करे, पतिके अहितकी चिन्ता करती रहे और अकेली स्वादिष्ट वस्तुओंको खाय। (३८)

वालखिल्यगण बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह वृत्तिके लिये गांवके पथमें एक चरणसे निवास करे और धर्म जाननेवाला होके भी धर्म त्यागे। (३९)

शुनःसख बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह ब्राह्मण अग्निहोत्रका अनादर करके सुखसे सोवे और परिव्राट् होके भी स्वेच्छाचारी होवे। (४०)

सुरभि बोली, जिसने आपका कमल लिया है, वह केशज अथवा बल्वज तृणकी रसरीसे गौवोंको दूहनेके समय पांव बांधके दूसरे बछडेके द्वारा दूध दूहे और कांसेके बर्त्तन उसके पात्र होवें। (४१)

भीष्म बोले, हे कौरवेन्द्र ! अनन्तर उन सबके अनेक प्रकारसे शपथ करते रहनेपर देवराज सहस्राक्ष उस मुख्य विप्रको क्रुद्ध देखके अत्यन्त हर्षित हुए। हे महाराज ! अनन्तर देवराज उस

शक्र उवाच—अध्वर्यवे दुहितरं ददातु छन्दोगे वा चरितब्रह्मचर्ये ।
अथर्वणं वेदमधीत्य विप्रः स्नायीत यः पुष्करमाददाति ॥४४ ॥
सर्वान्वेदानधीयीत पुण्यशीलोऽस्तु धार्मिकः ।
ब्रह्मणः सदनं यातु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ४५ ॥
अगस्त्य उवाच- आशीर्वादस्त्वया प्रोक्तः शपथो बलसूदन ।
दीयतां पुष्करं मह्यमेष धर्मः सनातनः ॥ ४६ ॥
इन्द्र उवाच—न मया भगवन् लोभाद्धृतं पुष्करमद्य वै ।
धर्मांस्तु श्रोतुकामेन हृतं न क्रोद्धुमर्हसि ॥ ४७ ॥
धर्मश्रुतिसमुत्कर्षो धर्मसेतुरनामयः ।
आर्षो वै शाश्वतो नित्यमव्ययोऽयं मया श्रुतः ॥४८ ॥
तदिदं गृह्यतां विद्वन्पुष्करं द्विजसत्तम ।
अतिक्रमं मे भगवन् क्षन्तुमर्हस्यनिन्दित ॥ ४९ ॥
इत्युक्तः स महेन्द्रेण तपस्वी कोपनो भृशम् ।
जग्राह पुष्करं धीमान्प्रसन्नश्चाभवन्मुनिः ॥ ५० ॥
प्रययुस्ते ततो भूयस्तीर्थानि वनगोचराः ।

क्रोधी ऋषिसे ब्रह्मर्षि, देवर्षि और राजर्षियोंके बीच अपना अभिप्राय कहने लगे, उसको सुनो ।(४२—४३)

इन्द्र बोले, जिस ब्राह्मणने कमल हरण किया है, वह यजुर्वेद जाननेवाले तथा सामवेदका अध्ययन करनेवाले, ब्रह्मचर्य पूर्ण करनेवाले, और अथर्ववेद को पढके स्नातक होनेवाले ब्राह्मणको कन्या दान करे। जिसने आपका कमल लिया, वह वेदोंको पढे, पुण्य-शील तथा धार्मिक हो और ब्रह्मलोक में जावे । (४४-४५)

अगस्त्य बोले, हे बलसूदन ! तुमने जो शपथ किया, वह तो आशीर्वाद है, इसलिये मुझे मेरा कमल दो, यही सनातन धर्म है । (४६)

इन्द्र बोले, हे भगवन् ! इस समय मैंने लोभसे कमल नहीं लिया है, धर्म सुननेके लिये मैंने हरण किया था, इस लिये मुझपर तुम्हें क्रोध करना योग्य नहीं है । यह ऋषियोंकी कही हुई धर्म-श्रुतिका पूर्ण उत्कर्ष, अनामय, अव्यय, शाश्वत धर्मरूपी तरनेका उपाय मैंने सुना । हे विद्वन् द्विजसत्तम ! इस लिये यह अपना कमल लीजिये।हे अनिन्दित भगवन् ! आपको मेरा अपराध क्षमा करना योग्य है । अत्यन्त क्रोधी बुद्धि-मान् अगस्त्य मुनि महेन्द्रके ऐसा

पुण्येषु तीर्थेषु तथा गात्राण्याप्लावयन्त ते ॥ ५१ ॥
आख्यानं य इदं युक्तः पठेत्पर्वणि पर्वणि ।
न मूर्खं जनयेत्पुत्रं न भवेच्च निराकृतिः ॥ ५२ ॥
न तमापत्स्पृशेत्काचिद्विज्वरो न जरावहः ।
विरजाः श्रेयसा युक्तः प्रेत्य स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ ५३ ॥
यश्च शास्त्रमधीयीत ऋषिभिः परिपालितम् ।
स गच्छेद्ब्रह्मणो लोकमव्ययं च नरोत्तम ॥ ५४ ॥ [४५३९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे शपथविधिर्नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

युधिष्ठिर उवाच-यदिदं श्राद्धकृत्येषु दीयते भरतर्षभ ।
छत्रं चोपानहौ चैव केनैतत्संप्रवर्तितम् ॥ १ ॥
कथं चैतत्समुत्पन्नं किमर्थं चैव दीयते ।
न केवलं श्राद्धकृत्ये पुण्यकेष्वपि दीयते ॥ २ ॥
बहुष्वपि निमित्तेषु पुण्यमाश्रित्य दीयते ।
एतद्विस्तरतो ब्रह्मन् श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ३ ॥

कहनेपर अपना कमल लेके प्रसन्न हुए। अनन्तर उन वनवासी मुनियोंके संग फिर तीर्थयात्रा की और पवित्र तीर्थोंमें स्नान करने लगे। (४७—५१)

जो लोग योगयुक्त होके प्रति पर्वमें इस इतिहासको पढते हैं, उनके मूर्ख पुत्र नहीं जन्मते और वे स्वयं मूर्ख नहीं होते; कोई आपदा उन्हें स्पर्श नहीं करती, वे शोकरहित होते और उन्हें जरा अवस्था नहीं प्राप्त होती, वे रजोगुणसे रहित और कल्याणयुक्त होके परलोकमें जाकर स्वर्गलोक पाते हैं। जो ऋषियोंके द्वारा वर्णित शास्त्र पढते हैं, वे उत्तम पुरुष अव्यय ब्रह्मलोकमें जाते हैं। (५२-५४)

अनुशासनपर्वमें ९४ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ९५ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! श्राद्ध-कर्ममें जो छत्र और पादुका दिया जाता है, वह किस पुरुषके द्वारा प्रवर्त्तित हुआ है? यह किस लिये उत्पन्न हुआ और किस निमित्त दिया जाता है, केवल श्राद्धकर्ममें ही क्यों, स्त्रियोंके व्रतादि पुण्योत्सवके समयमें भी पादुका और छत्र दिया जाता है। अनेक कारणोंसे यह पुण्यके अवलम्बसे दिया जाता है। हे राजन्! इसे विस्तार-पूर्वक सुननेकी इच्छा करता हूं। (१-३)

भीष्म उवाच— शृणु राजन्नवहितश्छत्त्रोपानहविस्तरम् ।
यथैतत्प्रथितं लोके यथा चैतत्प्रवर्तितम् ॥ ४ ॥
यथा चाक्षय्यतां प्राप्तं पुण्यतां च यथा गतम् ।
सर्वमेतदशेषेण प्रवक्ष्यामि नराधिप ॥ ५ ॥
जमदग्नेश्च संवादं सूर्यस्य च महात्मनः ।
पुरा स भगवान्साक्षाद्धनुषा क्रीडयत्प्रभो ॥ ६ ॥
संधाय संधाय शरांश्चिक्षेप किल भार्गवः ।
तान् क्षिप्तान रेणुका सर्वांस्तस्येषून्दीप्ततेजसः ॥ ७ ॥
आनीय सा तदा तस्मै प्रादादसकृदच्युत ।
अथ तेन स शब्देन ज्यायाश्चैव शरस्य च ॥ ८ ॥
प्रहृष्टः संप्रचिक्षेप सा च प्रत्याजहार तान् ।
ततो मध्याह्नमारूढे ज्येष्ठामूले दिवाकरे ॥ ९ ॥
स सायकान् द्विजो मुक्त्वा रेणुकामिदमब्रवीत् ।
गच्छानय विशालाक्षि शरानेतान्धनुश्च्युतान् ॥१०॥
यावदेतान्पुनः सुभ्रु क्षिपामीति जनाधिप ।
सा गच्छन्त्यन्तरा छायां वृक्षमाश्रित्य भामिनी ॥११॥

भीष्म बोले, हे महाराज! छत्र और पादुका जिस प्रकार लोकमें प्रचलित हुआ तथा जिसके द्वारा प्रवर्त्तित हुआ है, उसे विस्तारपूर्वक कहता हूं, सावधान होके सुनो। हे नरनाथ! यह जिस प्रकार अक्षय और पवित्र हुआ है, उसे मैं पूरी रीतिसे कहता हूं। हे प्रजानाथ! महाप्रभाव दिवाकर और जमदग्निके संवादयुक्त इस पहले कहे हुए इतिहासको सुनो। (४–६)

हे महाराज! पहले समयमें भगवान् भार्गव स्वयं धनुष लेकर क्रीडा करते हुए सन्धान करके बाण चला रहे थे, रेणुका उस प्रदीप्त तेजसे युक्त चलाये हुए बाणोंको बार बार लाके उन्हें देने लगी। अनन्तर वह उस बाणके शब्दसे अत्यन्त हर्षित होके बाण चलाने लगे, रेणुकाने उन बाणोंको फिर ला दिया। अनन्तर सूर्यके घूमनेवाले नक्षत्रोंके बीच रोहिणी नक्षत्र और जेष्ठाके समसूत्रमें जानेपर मध्याह्नके समय द्विजश्रेष्ठ जमदग्निने शीघ्रगामी बाण चलाकर रेणुकासे कहा, हे विशालनयनी! जाओ, धनुषसे छूटे हुए बाणोंको लाओ। (६—१०)

हे सुन्दरि! मैं फिर इन बाणोंको

तस्थौ तस्या हि संतप्तं शिरः पादौ तथैव च ।
स्थिता सा तु मुहूर्तं वै भर्तुः शापभयाच्छुभा ॥१२॥
ययावानयितुं भूयः सायकानसितेक्षणा ।
प्रत्याजगाम च शरांस्तानादाय यशस्विनी ॥ १३ ॥
सा वै खिन्ना सुचार्वङ्गी पद्भ्यां दुःखं नियच्छती ।
उपाजगाम भर्तारं भयाद्भर्तुः प्रवेपती ॥ १४ ॥
स तामृषिस्तदा क्रुद्धो वाक्यमाह शुभाननाम् ।
रेणुके किं चिरेण त्वमागतेति पुनः पुनः ॥ १५ ॥

रेणुकोवाच— शिरस्तावत्प्रदीप्तं मे पादौ चैव तपोधन ।
सूर्यतेजोनिरुद्धाऽहं वृक्षच्छायां समाश्रिता ॥ १६ ॥
एतस्मात्कारणाद्ब्रह्मंश्चिरायैतत्कृतं मया ।
एतच्छ्रुत्वा मम विभो मा क्रुधस्त्वं तपोधन ॥ १७॥

जमदग्निरुवाच— अथैनं दीप्तकिरणं रेणुके तव दुःखदम् ।
शरैर्निपातयिष्यामि सूर्यमस्त्राग्नितेजसा ॥ १८ ॥

भीष्म उवाच— स विस्फार्य धनुर्दिव्यं गृहीत्वा च शरान्बहून् ।
अतिष्ठत्सूर्यमभितो यतो याति ततोमुखः ॥ १९ ॥

चलाऊंगा । हे प्रजानाथ ! रेणुका चलनेके समय सूर्यके धूपसे पांव और शिर झुलसनेपर वृक्षकी छायामें मुहूर्त भर ठहरी। वह असितेक्षणा कल्याणी मुहूर्त भर खडी रहके पतिके शापभयसे डरकर फिर बाणोंको लानेके निमित्त चली। यशस्विनी सुन्दरी रेणुका उन बाणोंको लेकर दोनों पावोंमें फफोले पडनेसे क्लेश पाके लौटी और पतिके भयसे कांपती हुई उनके समीप उपस्थित हुई। जमदग्निने क्रुद्ध होके उस उत्तम नेत्रवालीसे बार बार कहा, हे रेणुका ! तू किस लिये बहुत देरसे आई ? (११-१५)

रेणुका बोली, हे तपोधन ! मेरा सिर और दोनों पांव बहुत परितप्त हुए थे, मैंने सूर्यके तेजसे रुकके वृक्षकी छायाका सहारा लिया था, हे ब्रह्मन् ! इस ही निमित्त मैं बहुत देरीमें बाणोंको ले आई। हे विभु तपोधन ! आप ऐसा सुनके मुझपर क्रोध न करिये। १६-१७

जमदग्नि बोले, हे रेणुके ! मैंने इसही समय तुम्हें दुःख देनेवाले सूर्यको अस्त्रानलके सहारे गिरा दूंगा। (१८)

भीष्म बोले, अनन्तर जमदग्नि दिव्य धनुष खींचके जिधर सूर्य जा

अथ तं प्रेक्ष्य सन्नद्धं सूर्योऽभ्येत्य तथाब्रवीत् ।
द्विजरूपेण कौन्तेय किं ते सूर्योऽपराध्यते ॥ २० ॥
आदत्ते रश्मिभिः सूर्यो दिवि तिष्ठंस्ततस्ततः ।
रसं हृतं वै वर्षासु प्रवर्षति दिवाकरः ॥ २१ ॥
ततोऽन्नं जायते विप्र मनुष्याणां सुखावहम् ।
अन्नं प्राणा इति यथा वेदेषु परिपठ्यते ॥ २२ ॥
अथाभ्रेषु निगूढश्च रश्मिभिः परिवारितः ।
सप्त द्वीपानिमान्ब्रह्मन्वर्षेणाभिप्रवर्षति ॥ २३ ॥
ततस्तदौषधीनां च वीरुधां पुष्पपत्रजम् ।
सर्वं वर्षाभिनिर्वृत्तमन्नं संभवति प्रभो ॥ २४ ॥
जातकर्माणि सर्वाणि व्रतोपनयनानि च ।
गोदानानि विवाहाश्च तथा यज्ञसमृद्धयः ॥ २५ ॥
शास्त्राणि दानानि तथा संयोगा वित्तसंचयाः ।
अन्नतः संप्रवर्तन्ते यथा त्वं वेत्थ भार्गव ॥ २६ ॥
रमणीयानि यावन्ति यावदारम्भिकाणि च ।
सर्वमन्नात्प्रभवति विदितं कीर्तयामि ते ॥ २७ ॥

रहे थे, उस ही ओर मुंह करके खडे हुए। हे कौन्तेय ! सूर्यदेव उन्हें बद्धकवच देखके ब्राह्मण स्वरूप धरके उनके समीप आके बोले, सूर्यने तुम्हारा क्या अपराध किया है ? सूर्य आकाशमें निवास करते हुए रसोंको आकर्षण करता है और वर्षाऋतुमें उन्हीं रसोंको बरसाता है, हे विप्र ! उस ही रससे मनुष्यके सुखके लिये अन्न उपजता है, अन्नही प्राण है, यह वेदमें वर्णित है। अनन्तर सूर्य आकाशमें रहके किरणोंके द्वारा इस सप्तद्वीपवाली पृथ्वीपर जलकी वर्षा करता है। हे प्रभु ! वही जल, औषधि, लता, पुष्प और पत्रोंमें पडके अन्नरूपसे उत्पन्न होता है। हे भार्गव ! जातकर्म प्रभृति सब कार्य, व्रत, उपनयन, गो-दान, विवाह और यज्ञसमृद्धि, सब शास्त्र, सब भांतिके दान और धन-सञ्चय, सब विषय जिसे तुम जानते हो, उनमें अन्नसे ही पूरी रीतिसे प्रवृत्ति हुआ करती है। जो सब उत्तम विषय हैं और जो आरम्भ हुआ करते हैं, वह सब अन्नसे ही उत्पन्न होता है, इसलिये जो मुझे विदित है, वह तुमसे कहता हूं। हे विप्र ! मैंने जो कहा, तुम वह सब विषय जानते हो। हे विप्र ! इस

सर्वं हि वेत्थ विप्र त्वं यदेतत्कीर्तितं मया ।
प्रसादये त्वां विप्रर्षे किं ते सूर्यं निपात्य वै ॥ २८ ॥ [४५६७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे छत्रोपानहोत्पत्तिर्नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

युधिष्ठिर उवाच- एवं प्रयाचति तदा भास्करे मुनिसत्तमः ।
जमदग्निर्महातेजाः किं कार्यं प्रत्यपद्यत ॥ १ ॥

भीष्म उवाच- स तथा याचमानस्य मुनिरग्निसमप्रभः ।
जमदग्निः शमं नैव जगाम कुरुनन्दन ॥ २ ॥
ततः सूर्यो मधुरया वाचा तमिदमब्रवीत् ।
कृताञ्जलिर्विप्ररूपी प्रणम्यैनं विशाम्पते ॥ ३ ॥
चलं निमित्तं विप्रर्षे सदा सूर्यस्य गच्छतः ।
कथं चलं भेत्स्यसि त्वं सदा यान्तं दिवाकरम् ॥ ४ ॥

जमदग्निरुवाच- स्थिरं चापि चलं चापि जाने त्वां ज्ञानचक्षुषा ।
अवश्यं विनयाधानं कार्यमद्य मया तव ॥ ५ ॥
मध्याह्ने वै निमेषार्धं तिष्ठसि त्वं दिवाकर ।
तत्र भेत्स्यामि सूर्य त्वां न मेऽत्रास्ति विचारणा ॥६॥

लिये मैं तुम्हें प्रसन्न करता हूं । सूर्यको गिराने से तुम्हें कौनसा फल मिलेगा ? (१९ --२८)

अनुशासनपर्वमें ९५ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें ९६ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, भगवान् सूर्यके ऐसा कहनेपर महातेजस्वी मुनिसत्तम जमदग्निने क्या किया ? (१)

भीष्म बोले, हे कुरुसत्तम ! अग्नि-सदृश प्रभायुक्त वह जमदग्नि मुनि सूर्यके ऐसी प्रार्थना करनेपर भी शान्त न हुए । हे नरनाथ ! अनन्तर विप्ररूपधारी सूर्य हाथ जोडकर मुनिको प्रणाम करके मृदुस्वरसे बोले, हे विप्रर्षि ! सूर्य सदा चलता रहता है, इसलिये वह चललक्ष्य है । जब सदा गमनशील सूर्य चललक्ष्य हुआ तब तुम उसे किस प्रकार विद्ध करोगे ? (२—४)

जमदग्नि बोले, मैं ज्ञाननेत्रसे तुम्हें स्थिर और गमनशील, दोनोंही जानता हूं, इसलिये आज मैं अवश्य तुम्हें शिक्षा दूंगा । हे दिवाकर ! तुम मध्यान्हमें अर्द्ध निमेषभर ठहरते हो, उसी समय मैं तुम्हें विद्ध करूंगा । हे भास्कर ! इस विषयमें मुझे कुछ विचार नहीं है । (५–६)

सूर्य उवाच— असंशयं मां विप्रर्षे भेत्स्यसे धन्विनां वर।
अपकारिणं मां विद्धि भगवन् शरणागतम् ॥ ७ ॥
भीष्म उवाच- ततः प्रहस्य भगवान् जमदग्निरुवाच तम्।
न भीः सूर्य त्वया कार्या प्रणिपातगतो ह्यसि ॥ ८ ॥
ब्राह्मणेष्वार्जवं यच्च स्थैर्यं च धरणीतले।
सौम्यतां चैव सोमस्य गाम्भीर्यं वरुणस्य च ॥ ९ ॥
दीप्तिमग्नेः प्रभां मेरोः प्रतापं तपनस्य च।
एतान्यतिक्रमेद्यो वै स हन्याच्छरणागतम् ॥ १० ॥
भवेत्स गुरुतल्पी च ब्रह्महा च स वै भवेत्।
सुरापानं स कुर्याच्च यो हन्याच्छरणागतम् ॥ ११ ॥
एतस्य त्वपनीतस्य समाधिं तात चिन्तय।
यथासुखगमः पन्था भवेत्त्वद्रश्मिभावितः ॥ १२ ॥
भीष्म उवाच- एतावदुक्त्वा स तदा तूष्णीमासीद्भृगूत्तमः।
अथ सूर्योऽददत्तस्मै छत्रोपानहमाशु वै ॥ १३ ॥
सूर्य उवाच— महर्षे शिरसस्त्राणं छत्रं मद्रश्मिवारणम्।

सूर्य बोले, हे धन्विवर! तुम मुझे अवश्य ही विद्ध करोगे इसमें सन्देह नहीं है। हे भगवन्! यद्यपि मैंने तुम्हारा अपकार किया है, तौभी इस समय मुझे अपना शरणागत जानो। (७)

भीष्म बोले, अनन्तर भगवान् जमदग्निने हंसके कहा। हे सूर्य! तुम्हें डरना उचित नहीं है, क्योंकि तुम प्रणत हुए हो। ब्राह्मणोंमें जो सरलता है, पृथ्वीमें धैर्य, चन्द्रमामें मनोहरताई वरुणमें गंभीरता, अग्निमें प्रकाश, सुमेरुमें प्रभा और सूर्यमें ताप इन सब को जो मनुष्य अतिक्रम करता है, वही शरणागत पुरुषको मार सकता है। जो पुरुष शरणमें आये हुएको मारता है, वह पुरुषही ब्रह्महत्यारा हुआ करता और वह मनुष्यही सुरा पीता है। हे तात! इसलिये इस दुर्नीति विषयके नियमको विचारो, तुम्हारी किरणसे तापित मार्गके बीच जिस प्रकार सुखसे लोग चल सके, उसका उपाय कहो। (८–१२)

भीष्म बोले, भृगुसत्तम जमदग्नि इतना कहके चुप होरहे। अनन्तर सूर्य-देवने उन्हें शीघ्र ही छत्र और पादुका दिया। (१३)

सूर्यने कहा, हे महर्षि! मेरी किरण जिससे निवारित होती है, उस शिर-

प्रतिगृह्णीष्व पद्भ्यां च त्राणार्थं चर्मपादुके ॥ १४ ॥
अद्यप्रभृति चैवेह लोके संप्रचरिष्यति ।
पुण्यकेषु च सर्वेषु परमक्षय्यमेव च ॥ १५ ॥
भीष्म उवाच– छत्रोपानहमेतत्तु सूर्येणैतत्प्रवर्तितम् ।
पुण्यमेतदभिख्यातं त्रिषु लोकेषु भारत ॥ १६ ॥
तस्मात्प्रयच्छ विप्रेषु च्छत्रोपानहमुत्तमम् ।
धर्मस्तेषु महान्भावी न मेऽत्रास्ति विचारणा ॥ १७ ॥
छत्रं हि भरतश्रेष्ठ यः प्रदद्याद् द्विजातये ।
शुभ्रं शतशलाकं वै स प्रेत्य सुखमेधते ॥ १८ ॥
स शक्रलोके वसति पूज्यमानो द्विजातिभिः ।
अप्सरोभिश्च सततं देवैश्च भरतर्षभ ॥ १९ ॥
दह्यमानाय विप्राय यः प्रयच्छत्युपानहौ ।
स्नातकाय महाबाहो संशिताय द्विजातये ॥ २० ॥
सोऽपि लोकानवाप्नोति दैवतैरभिपूजितान् ।
गोलोके स मुदा युक्तो वसति प्रेत्य भारत ॥ २१ ॥
एतत्ते भरतश्रेष्ठ मया कार्त्स्न्येन कीर्तितम् ।
छत्रोपानहदानस्य फलं भरतसत्तम ॥ २२ ॥ [४५८९]

इति श्रीमहा०अनु०आनु०पर्वणि दानधर्मे छत्रोपानहदानप्रशंसा नाम षण्णवतितमोऽध्यायः॥९६॥

त्राण और पादत्राण (दोनों चर्मपादुका) ग्रहण करो, आजसे इस लोकमें इसका समस्त पुण्यकार्योंमें परम अक्षयरूपसे प्रचार होगा। (१४—१५)

भीष्म बोले, हे भारत! छत्र और पादुकादान सूर्यके द्वारा प्रवर्त्तित हुआ है, तीनों लोकोंमें यह परम पवित्र रूपसे प्रसिद्ध है ; इसलिये तुम ब्राह्मणोंको उत्तम छत्र और पादुका दान करो, उससे तुम्हें महान् धर्म होगा, इस विषयमें हम लोगोंको विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। हे भरतश्रेष्ठ! जो लोग द्विजातियोंको एक सौ शलाकासे युक्त छाता दान करते हैं, वे परलोकमें जाके सुखी होते हैं। हे भरतर्षभ! वे लोग अप्सरा, गन्धर्व और द्विजोंसे पूजित होकर इन्द्र लोकमें निवास करते हैं। हे महाबाहो! जो लोग तापयुक्त स्नातक ब्राह्मणों तथा संशितव्रती द्विजातियोंको दो पादुका दान करते हैं, वे भी देवताओंसे पूजित लोकको प्राप्त होते हैं, तथा वे परलोकमें

युधिष्ठिर उवाच– गार्हस्थ्यं धर्ममखिलं प्रब्रूहि भरतर्षभ ।
ऋद्धिमाप्नोति किं कृत्वा मनुष्य इह पार्थिव ॥ १ ॥
भीष्म उवाच– अत्र ते वर्तयिष्यामि पुरावृत्तं जनाधिप ।
वासुदेवस्य संवादं पृथिव्याश्चैव भारत ॥ २ ॥
संस्तुत्य पृथिवीं देवीं वासुदेवः प्रतापवान् ।
पप्रच्छ भरतश्रेष्ठ मां त्वं यत्पृच्छसेऽद्य वै ॥ ३ ॥
वासुदेव उवाच– गार्हस्थ्यं धर्ममाश्रित्य मया वा मद्विधेन वा ।
किमवश्यं धरे कार्यं किं वा कृत्वा कृतं भवेत ॥ ४ ॥
पृथिव्युवाच– ऋषयः पितरो देवा मनुष्याश्चैव माधव ।
इज्याश्चैवार्चनीयाश्च यथा चैव निबोध मे ॥ ५ ॥
सदा यज्ञेन देवाश्च सदाऽऽतिथ्येन मानुषाः ।
छन्दतश्च यथा नित्यमर्हान् भुञ्जीत नित्यशः ॥ ६ ॥
तेन ह्यृषिगणाः प्रीता भवन्ति मधुसूदन ।
नित्यमग्निं परिचरेदभुक्त्वा बलिकर्म च ॥ ७ ॥

जाकर प्रीतियुक्त होके गोलोकमें निवास करते हैं। हे भरतसत्तम ! यह मैंने विस्तारपूर्वक तुमसे छत्र और पादुका-दानका फल कहा है। (१६-२२)

अनुशासनपर्वमें ९६ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ९७ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ ! आप समस्त गार्हस्थ्यधर्म वर्णन करिये, मनुष्य क्या करनेसे इस लोकमें समृद्धि पाता है। (१)

भीष्म बोले, हे भरतकुलतिलक प्रजानाथ ! इस विषयमें मैं तुमसे श्री कृष्ण और पृथ्वीके संवादयुक्त प्राचीन इतिहास कहूंगा। हे भरतश्रेष्ठ ! तुमने मुझसे इस समय जो प्रश्न किया है, प्रतापवान् कृष्णने पृथ्वीदेवीकी यथा योग्य स्तुति करके यही विषय पूछा था। (३)

श्रीकृष्ण बोले, हे पृथ्वी ! मैं अथवा मेरे समान पुरुष गृहस्थधर्मको अवलंबन करके नियमपूर्वक कौनसा कार्य करे तथा क्या करनेसे वह सिद्ध होगा ? (४)

पृथ्वी बोली, हे माधव ! ऋषि, देवता, पितर और मनुष्यवृन्द गृहस्थ पुरुषोंके लिये अवश्य ही पूजनीय हैं, यज्ञकर्म अवश्य करना चाहिये, और भी मुझसे सुनो। हे मधुसूदन ! देवता सदा यज्ञसे तृप्त होते और मनुष्य सदा आतिथ्यके द्वारा तृप्त होते हैं, इसलिये अभिप्रायके अनुसार पूजनीय लोगोंकी सदा सेवा करनी योग्य है, ऐसे कार्यसे

कुर्यात्तथैव देवा वै प्रीयन्ते मधुसूदन।
कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन च ॥ ८ ॥
पयोमूलफलैर्वापि पितॄणां प्रीतिमाहरन्।
सिद्धान्नाद्वैश्वदेवं वै कुर्यादग्नौ यथाविधि ॥ ९ ॥
अग्नीषोमं वैश्वदेवं धान्वन्तर्यमनन्तरम्।
प्रजानां पतये चैव पृथग्घोमो विधीयते ॥ १० ॥
तथैव चानुपूर्वेण बलिकर्म प्रयोजयेत्।
दक्षिणायां यमायेति प्रतीच्यां वरुणाय च ॥ ११ ॥
सोमाय चाप्युदीच्यां वै वास्तुमध्ये प्रजापतेः।
धन्वन्तरेः प्रागुदीच्यां प्राच्यां शक्राय माधव ॥१२॥
मनुष्येभ्य इति प्राहुर्बलिं द्वारि गृहस्य वै।
मरुद्भ्यो दैवतेभ्यश्च बलिमन्तर्गृहे हरेत् ॥ १३ ॥
तथैव विश्वेदेवेभ्यो बलिमाकाशतो हरेत्।
निशाचरेभ्यो भूतेभ्यो बलिं नक्तं तथा हरेत् ॥ १४ ॥
एवं कृत्वा बलिं सम्यग्दद्याद्भिक्षां द्विजाय वै।
अलाभे ब्राह्मणस्याग्नावन्नमुद्धृत्य निक्षिपेत् ॥ १५ ॥

ऋषि लोग प्रसन्न होते हैं। सदा अभुक्त रहके अग्निकी परिचर्या करे, तथा बलिवैश्वदेव दान करे, उससे देव-वृन्द प्रसन्न होते हैं। (५–७)

गृहस्थ पुरुष प्रतिदिन पितरोंकी प्रीतिका विधान करते हुए अन्न जल अथवा दूध, फल, मूल आदिके सहारे श्राद्ध करे, सिद्ध अन्नके द्वारा विधिपूर्वक वैश्वदेव दान करे और हुताशनमें अग्नि, चन्द्रमा अनन्तर धन्वन्तरिके लिये होम करे, प्रजापतिके निमित्त पृथक् होम करना योग्य है। आनुपूर्विक क्रमसे बलि देनी चाहिये, दक्षिण दिशामें यमको, पश्चिममें वरुण, उत्तरमें चन्द्रमा, वास्तुके बीच प्रजापतिको, पूर्वोत्तर भागमें धन्वन्तरि और पूर्व दिशामें इन्द्रकी पूजाका उपहार प्रदान करे तथा मनुष्योंको गृहके द्वारपर अन्न प्रभृति दान करे। हे माधव! ऋषि लोग इसे ही बलि कहा करते हैं। मरुद्गण तथा देवताओंको गृहके भीतर बलि प्रदान करे और विश्वदेवगणको सूने स्थानमें बलि देना योग्य है, निशाचर और भूतगणोंको रात्रिके समयमें बलि दे। इसही भांति ब्राह्मणको भिक्षा दे। ब्राह्म-णोंकी अनुपस्थितिमें अन्नका अग्राशन

यदा श्राद्धं पितृभ्योऽपि दातुमिच्छेत मानवः ।
तदा पश्चात्प्रकुर्वीत निवृत्ते श्राद्धकर्मणि ॥ १६ ॥
पितृन्संतर्पयित्वा तु बलिं कुर्याद्विधानतः ।
वैश्वदेवं ततः कुर्यात्पश्चाद्ब्राह्मणवाचनम् ॥ १७ ॥
ततोऽन्नेन विशेषेण भोजयेदतिथीनपि ।
अर्चापूर्वं महाराज ततः प्रीणाति मानवान् ॥ १८ ॥
अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ।
आचार्यस्य पितुश्चैव सख्युराप्तस्य चातिथेः ॥ १९ ॥
इदमस्ति गृहे मह्यमिति नित्यं निवेदयेत् ।
ते यद्वदेयुस्तत्कुर्यादिति धर्मो विधीयते ॥ २० ॥
गृहस्थः पुरुषः कृष्ण शिष्टाशी च सदा भवेत् ।
राजर्त्विजं स्नातकं च गुरुं श्वशुरमेव च ॥ २१ ॥
अर्चयन्मधुपर्केण परिसंवत्सरोषितान् ।
श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च वयोभ्यश्चावपेद्भुवि ॥ २२ ॥
वैश्वदेवं हि नामैतत्सायं प्रातर्विधीयते ।
एतांस्तु धर्मान् गार्हस्थ्यान्यः कुर्यादनसूयकः
स इहर्षिवरान्प्राप्य प्रेत्य लोके महीपते ॥ २३ ॥

अग्निमें डाले । जब मनुष्य पितरोंके श्राद्ध करनेकी इच्छा करे, तब श्राद्धकर्म के पूर्ण होनेपर पितरोंकी तृप्तिका विधान करनेके अनन्तर विधिपूर्वक बलि देनी चाहिये । अनन्तर वैश्वदेव करके ब्राह्मणोंका निमन्त्रण करे । शेषमें अन्नादिसे अतिथियोंको सत्कार करके भोजन करावे । (८-१८)

हे महाराज ! ऐसा कार्य करनेसे अतिथिवृन्द मनुष्योंके विषयमें प्रसन्न हुआ करते हैं । जिनके आनेकी तिथि नियत न हो, उन्हें अतिथि कहते हैं । आचार्य, पिता, मित्र, आप्त पुरुष और अतिथिको 'मेरे गृहमें आज भोजनकी ये वस्तु उपस्थित हैं' गृहस्थ पुरुष सदा ऐसा निवेदन करे, ऐसा ही धर्मविहित है । हे कृष्ण ! गृहस्थ पुरुष सदा सबके शेषमें अन्न भोजन करे, राजा, ऋत्विक्, स्नातक, गुरु और श्वशुरके वर्षभर तक गृहमें वास करनेपर भी उनकी मधुपर्कसे पूजा करे । कुत्ते, चाण्डाल और पक्षियोंको सन्ध्या और सबेरे पृथ्वीपर अन्न देवे, इसहीका नाम वैश्वदेव है । जो लोग असूयारहित होके इन गृहस्थधर्मों

भीष्म उवाच— इति भूमेर्वचः श्रुत्वा वासुदेवः प्रतापवान्।
तथा चकार सततं त्वमप्येवं सदाऽऽचर ॥ २४ ॥
एतद्गृहस्थधर्मं त्वं चेष्टमानो जनाधिप।
इहलोके यशः प्राप्य प्रेत्य स्वर्गमवाप्स्यसि ॥ २५ ॥ [४६१४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे बलिदानविधिर्नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः॥ ९७ ॥

युधिष्ठिर उवाच— आलोकदानं नामैतत्कीदृशं भरतर्षभ।
कथमेतत्समुत्पन्नं फलं वा तद्ब्रवीहि मे ॥ १ ॥
भीष्म उवाच— अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
मनोः प्रजापतेर्वादं सुवर्णस्य च भारत ॥ २ ॥
तपस्वी कश्चिदभवत्सुवर्णो नाम भारत।
वर्णतो हेमवर्णः स सुवर्ण इति पप्रथे ॥ ३ ॥
कुलशीलगुणोपेतः स्वाध्याये च परं गतः।
बहून्सुवंशप्रभवान्समतीतः स्वकैर्गुणैः ॥ ४ ॥
स कदाचिन्मनुं विप्रो ददर्शोपससर्प च।

को प्रतिपालन करते हैं, वे इस लोकमें ऋषियोंसे वर पाके परलोकमें सुरपुरमें निवास किया करते हैं। (१९–२३)

भीष्म बोले, प्रतापवान् श्रीकृष्णने पृथ्वीका ऐसा वचन सुनके वैसा ही आचरण किया था, इसलिये तुम भी इस प्रकार अनुष्ठान करो। हे प्रजानाथ! तुम इस गृहस्थधर्मका अनुष्ठान करनेसे इस लोकमें यश पाके परलोकमें स्वर्ग पाओगे। (२४—२५)

अनुशासनपर्वमें ९७ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ९८ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतर्षभ! दीपदान कैसा है? यह किस प्रकार उत्पन्न हुआ और इसका क्या फल है, यह विषय आप मेरे समीप वर्णन करिये। (१)

भीष्म बोले, हे भारत! इस विषयमें प्राचीन लोग प्रजापति, मनु और सुवर्ण के संवादयुक्त यह पुरातन इतिहास कहा करते हैं। हे भारत! सुवर्ण नाम कोई तपस्वी थे, वह रूपमें सुवर्णसदृश होनेसे सुवर्ण नामसे विख्यात हुए। उन्होंने कुलशील गुणयुक्त, स्वशाखोक्त वेदपाठमें पारदर्शी होकर निज गुणोंके सहारे स्ववंशीय अनेक पुरुषोंको अतिक्रम किया था। किसी समय उस ब्राह्मणने प्रजापति मनुको देखा और

कुशलप्रश्नमन्योन्यं तौ चोभौ तत्र चक्रतुः ॥ ५ ॥
ततस्तौ सत्यसंकल्पौ मेरौ काञ्चनपर्वते ।
रमणीये शिलापृष्ठे सहितौ संन्यषीदताम् ॥ ६ ॥
तत्र तौ कथयन्तौ स्तां कथा नानाविधाऽऽश्रयाः ।
ब्रह्मर्षिदेवदैत्यानां पुराणानां महात्मनाम् ॥ ७ ॥
सुवर्णस्त्वब्रवीद्वाक्यं मनुं स्वायंभुवं प्रति ।
हितार्थं सर्वभूतानां प्रश्नं मे वक्तुमर्हसि ॥ ८ ॥
सुमनोभिर्यदिज्यन्ते दैवतानि प्रजेश्वर ।
किमेतत्कथमुत्पन्नं फलं योगं च शंस मे ॥ ९ ॥
मनुरुवाच— अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
शुक्रस्य च बलेश्चैव संवादं वै महात्मनोः ॥ १० ॥
बलेर्वैरोचनस्येह त्रैलोक्यमनुशासतः ।
समीपमाजगामाशु शुक्रो भृगुकुलोद्वहः ॥ ११ ॥
तमर्घ्यादिभिरभ्यर्च्य भार्गवं सोऽसुराधिपः ।
निषसादासने पश्चाद्विधिवद्भूरिदक्षिणः ॥ १२ ॥
कथेयमभवत्तत्र त्वया या परिकीर्तिता ।

देखते ही उनके समीप उपस्थित हुआ; उस समय उन दोनोंने परस्परमें कुशल प्रश्न किया। अनन्तर वे दोनों सत्यसंकल्प सुवर्णशैल सुमेरुके बीच एक रमणीय शिलापर बैठे। (२—६)

उस स्थानमें वे दोनों वार्तालाप करते हुए महानुभाव ब्रह्मर्षियों, देवताओं और दैत्योंको अनेक प्रकारकी पुरातन कथा जान सके। सुवर्णने स्वायम्भुव मनुसे कहा, हे प्रजानाथ ! आपको सब जीवोंके हितके निमित्त मेरे प्रश्नका उत्तर देना योग्य है। मनुष्य लोग जो फूलोंसे देवताओंकी पूजा करते हैं, यह किस प्रकार उत्पन्न हुआ और इसका फल क्या है ? आप मुझसे यह विषय कहिये। (७-९)

मनु बोले, इस विषयमें प्राचीन लोग महानुभाव शुक्र और बलिके संवादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं। विरोचनपुत्र बलि जब त्रिभुवन शासन कर रहे थे, उस समय उनके निकट भृगुकुलधुरन्धर शुक्राचार्य आये। बहुतसी दक्षिणा देनेवाले, दानशील असुरराज बलि विधिपूर्वक अर्घ आदिसे भार्गवकी पूजा करके आसनपर बैठे। तब फूल, दीप और धूप दान करनेसे

सुमनोधूपदीपानां संप्रदाने फलं प्रति ॥ १३ ॥
ततः पप्रच्छ दैत्येन्द्रः कवीन्द्रं प्रश्नमुत्तमम् ॥ १४ ॥
बलिरुवाच— सुमनोधूपदीपानां किं फलं ब्रह्मवित्तम।
प्रदानस्य द्विजश्रेष्ठ तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ १५ ॥
शुक्र उवाच— तपः पूर्वं समुत्पन्नं धर्मस्तस्मादनन्तरम्।
एतस्मिन्नन्तरे चैव वीरुदोषध्य एव च ॥ १६ ॥
सोमस्यात्मा च बहुधा संभूतः पृथिवीतले।
अमृतं च विषं चैव ये चान्ये तुल्यजातयः ॥ १७ ॥
अमृतं मनसः प्रीतिं सद्यस्तृप्तिं ददाति च।
मनो ग्लपयते तीव्रं विषं गन्धेन सर्वशः ॥ १८ ॥
अमृतं मङ्गलं विद्धि महद्विषममङ्गलम्।
ओषध्यो ह्यमृतं सर्वा विषं तेजोऽग्निसंभवम् ॥ १९ ॥
मनो ह्लादयते यस्माच्छ्रियं चापि दधाति च।
तस्मात्सुमनसः प्रोक्ता नरैः सुकृतकर्मभिः ॥ २० ॥
देवताभ्यः सुमनसो यो ददाति नरः शुचिः।
तस्य तुष्यन्ति वै देवास्तुष्टाः पुष्टिं ददत्यपि ॥ २१ ॥

क्या फल होता है, तुमने इस विषयमें जैसा प्रश्न किया है, वैसा ही वहांपर प्रश्न हुआ था। अनन्तर दैत्येन्द्रने शुक्राचार्यसे उत्तम प्रश्न किया। १०-१४

बलि बोले, हे ब्रह्मवित् द्विजश्रेष्ठ ! फूल, धूप और दीप दान करनेसे क्या फल होता है ? आप इसे कह सकते हैं। (१५)

शुक्र बोले, पहले तप उत्पन्न हुआ था, फिर धर्म प्रकट हुआ, इसके अनन्तर लता, औषधी, अमृत, विष और तुल्य जाति विविध लता तथा अनेक प्रकारकी सोमलता पृथ्वीपर उत्पन्न हुई। अमृत मनको प्रसन्न करनेवाला तथा सदा सन्तोष, प्रदान करता है और प्रचण्ड विषकी गन्ध मनको सब प्रकारसे ग्लानियुक्त करती है। अमृतको मङ्गल और विषको महाअमङ्गल जानना चाहिये। औषधियां अमृत और अग्निसे उत्पन्न हुआ तेज ही विष है। (१६—१९)

सब पुष्प मनको प्रसन्न तथा शोभायुक्त करते हैं, इस ही लिये पुण्यकर्म करनेवाले मनुष्य फूलोंको सुमनस कहा करते हैं। जो मनुष्य पवित्र होके देवताओंको सुमनस दान करता है,

यं यमुद्दिश्य दीयेरन्देवं सुमनसः प्रभो।
मङ्गलार्थं स तेनास्य प्रीतो भवति दैत्यप ॥ २२ ॥
ज्ञेयास्तूग्राश्च सौम्याश्च तेजस्विन्यश्च ताः पृथक्।
ओषध्यो बहुवीर्या हि बहुरूपास्तथैव च ॥ २३ ॥
यज्ञियानां च वृक्षाणामयज्ञीयान्निबोध मे।
आसुराणि च माल्यानि दैवतेभ्यो हितानि च ॥२४॥
रक्षसामुरगाणां च यक्षाणां च तथा प्रियाः।
मनुष्याणां पितॄणां च कान्ता यास्त्वनुपूर्वशः ॥२५ ॥
वन्या ग्राम्याश्चेह तथा कृष्टोप्ताः पर्वताश्रयाः।
अकण्टकाः कण्टकिनो गन्धरूपरसान्विताः ॥ २६ ॥
द्विविधो हि स्मृतो गन्ध इष्टोऽनिष्टश्च पुष्पजः।
इष्टगन्धानि देवानां पुष्पाणीति विभावय ॥ २७ ॥
अकण्टकानां वृक्षाणां श्वेतप्रायाश्च वर्णतः।
तेषां पुष्पाणि देवानामिष्टानि सततं प्रभो ॥ २८ ॥
जलजानि च माल्यानि पद्मादीनि च यानि वै।
गन्धर्वनागयक्षेभ्यस्तानि दद्याद्विचक्षणः ॥ २९ ॥

देववृन्द उसपर प्रसन्न होके उसे पुष्टि प्रदान करते हैं। हे प्रभु दैत्यराज! जिन जिन देवताओंके उद्देश्यसे फूल दिये जाते हैं, वे दाताके मंगलके निमित्त उनपर प्रसन्न होते हैं। बहुवीर्य और अनेक रूपवाली पृथक् पृथक् औषधियोंको उग्र, मनोहर और तेजस्वी जानो। वृक्षोंमें जो यज्ञीय तथा अयज्ञीय हैं, वह मुझसे सुनो और जो सब माला देवताओं तथा जो असुरोंके लिये हितकर हैं, वह भी सुनो। जो फूल राक्षस, सर्प और यक्षोंको प्रिय हैं, तथा जो मनुष्य और पितरोंके लिये मनोहर हैं, उसे विस्तारपूर्वक सुनो। जो फल जङ्गली और ग्रामीण हैं, तथा जो भूमि खोदके लगाये गये हैं; जो फूल पर्वतीय, कांटेरहित और कांटेयुक्त हैं; जो सुगन्धि, सुन्दरताई और रसमय हैं, उनका विषय सुनो। (२०–२६)

फूलकी दो प्रकारकी गन्ध होती है, एक इष्ट दूसरी अनिष्ट, जिनकी सुगन्धि इष्ट हैं, उन्हें ही देवताओंके फूल निश्चय करो। कांटेरहित वृक्षोंके फूल प्रायः सफेद होते हैं, उन वृक्षोंके फूल सदा देवताओंके अभिलषित हैं। कमल प्रभृति जो सब जलज पुष्प उत्पन्न होते हैं,

ओषध्यो रक्तपुष्पाश्च कटुकाः कण्टकान्विताः।
शत्रूणामभिचारार्थमाथर्वेषु निदर्शिताः ॥ ३० ॥
तीक्ष्णवीर्यास्तु भूतानां दुरालम्भाः सकण्टकाः।
रक्तभूयिष्ठवर्णाश्च कृष्णाश्चैवोपहारयेत् ॥ ३१ ॥
मनोहृदयनन्दिन्यो विशेषमधुराश्च याः।
चारुरूपाः सुमनसो मानुषाणां स्मृता विभो ॥ ३२ ॥
न तु श्मशानसंभूता देवतायतनोद्भवाः।
संनयेत्पुष्टियुक्तेषु विवाहेषु रहःसु च ॥ ३३ ॥
गिरिसानुरुहाः सौम्या देवानामुपपादयेत्।
प्रोक्षिताऽभ्युक्षिताः सौम्या यथायोग्यं यथास्मृति ॥३४॥
गन्धेन देवास्तुष्यन्ति दर्शनाद्यक्षराक्षसाः।
नागाः समुपभोगेन त्रिभिरेतैस्तु मानुषाः ॥ ३५ ॥
सद्यः प्रीणाति देवान्वै ते प्रीता भावयन्त्युत।
संकल्पसिद्धा मर्त्यानामीप्सितैश्च मनोरमैः ॥ ३६ ॥
प्रीताः प्रीणन्ति सततं मानिता मानयन्ति च।
अवज्ञातावधूताश्च निर्दहन्त्यघमान्नरान् ॥ ३७ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य उन फूलोंको यक्ष, सर्प और गन्धर्वोंको प्रदान करे। कटु और कांटेयुक्त औषधियां तथा लाल पुष्प शत्रुओंके अभिचारके निमित्त अथर्ववेदमें वर्णित हुए हैं। तीक्ष्णवीर्य, कांटे युक्त, दुरालम्भ, लाल और काले फूल भूतोंको उपहार देवे। मन और हृदयके आनन्दको बढानेवाले, मलनेमें मधुर, मनोहर फूल मनुष्योंके लिये विहित हैं। विवाहादि पुष्टियुक्त कार्यों और सुरतादि एकान्त कार्योंमें श्मशान और देवस्थानमें उत्पन्न हुए पुष्पोंको न लाना चाहिये। (२७–३३)

हे सौम्य! पर्वतीय वृक्षोंके सौम्य फूलोंको धो के स्मृतिके अनुसार यथायोग्य देवताओंको प्रदान करे। देवगण फूलकी सुगन्धिसे प्रसन्न होते हैं, यक्ष और राक्षस फूलको देखनेसे सन्तुष्ट होते हैं। सर्पगण पूरी रीतिसे फूलोंको उपभोग करनेसे प्रसन्न होते हैं, और मनुष्य लोग सूंघने, देखने और उपभोग इन तीन प्रकारके उपायसे सन्तुष्ट हुआ करते हैं। सब फूल देवताओंको निवेदन करते ही प्रसन्न करते हैं; वे सङ्कल्पसिद्ध हैं, इसलिये प्रसन्न होके मनुष्योंका मनोरथ ईप्सितके सहारे वर्द्धित

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि धूपदानविधेः फलम् ।
धूपांश्च विविधान्साधूनसाधूंश्च निबोध मे ॥ ३८ ॥
निर्यासाः सारिणश्चैव कृत्रिमाश्चैव ते त्रयः ।
इष्टोऽनिष्टो भवेद्गन्धस्तन्मे विस्तरशः शृणु ॥ ३९ ॥
निर्यासाः सल्लकीवर्ज्या देवानां दयिताऽस्तु ते ।
गुग्गुलुः प्रवरस्तेषां सर्वेषामिति निश्चयः ॥ ४० ॥
अगुरुः सारिणां श्रेष्ठो यक्षराक्षसभोगिनाम् ।
दैत्यानां सल्लकीयश्च काङ्क्षितो यश्च तद्विधः ॥ ४१ ॥
अथ सर्जरसादीनां गन्धैः पार्थिवदारवैः ।
फाणितासवसंयुक्तैर्मनुष्याणां विधीयते ॥ ४२ ॥
देवदानवभूतानां सद्यस्तुष्टिकरः स्मृतः ।
येऽन्ये वैहारिकास्तत्र मानुषाणामिति स्मृताः ॥ ४३ ॥
य एवोक्ताः सुमनसां प्रदाने गुणहेतवः ।

करते हैं । देववृन्द प्रसन्न होनेपर मनुष्योंको सदा प्रीतियुक्त करते हैं, वे सम्मानित होनेपर मनुष्योंको सम्मान-युक्त करते और अवज्ञात तथा अवधूत होनेपर अधम मनुष्योंको निश्चय ही जला देते हैं । (३४—३७)

अब धूपदानविधिका फल मुझसे सुनो । धूप अनेक प्रकारका है, उसमें उत्तम और निकृष्ट दो भेद हैं । गुग्गुलु प्रभृति निर्याससे बने हुए एक प्रकारके धूपको निर्यास कहते हैं । काठ और अग्निके संयोगसे निकाले हुए धूपका नाम सारि है और अष्टगन्ध द्रव्योंमें बने हुए धूपको कृत्रिम कहते हैं, इस प्रभेदके अनुसार धूप तीन प्रकारका है । गन्ध इष्ट और अनिष्ट भेदसे दो प्रकार है, उसे मेरे समीप विस्तारपूर्वक सुनो । सल्लकीरहित निर्यास धूप देवताओंको दिया जाता है, सब निर्यासोंके बीच गुग्गुलु ही श्रेष्ठ कहके निश्चित हुआ है । यक्ष, राक्षस और भोगियोंके भोगके लिये सारवान वस्तुओंके बीच अगरु ही श्रेष्ठ है । दैत्योंको सल्लकी तथा उसके सदृश दूसरे निर्यास ही अभि-लषित हैं । हे राजन् ! सर्जरस आदि गन्ध और देवदारुकी सुगन्ध फूली हुई मल्लिकाप्रभृति फूलोंको मकरन्द गन्ध के सङ्ग मिलनेपर जो धूप बनती है, वह मनुष्योंके लिये विहित है और ऐसा वर्णित है, कि वह देव, दानव तथा भूतोंको सदा प्रीतियुक्त करती है । इसके अतिरिक्त जो विहारमात्रके उप-

धूपेष्वपि परिज्ञेयास्त एव प्रीतिवर्धनाः ॥ ४४ ॥
दीपदाने प्रवक्ष्यामि फलयोगमनुत्तमम्।
यथा येन यदा चैव प्रदेया यादृशाश्च ते ॥ ४५ ॥
ज्योतिस्तेजः प्रकाशं वाऽप्यूर्ध्वगं चाऽपि वर्ण्यते।
प्रदानं तेजसां तस्मात्तेजो वर्धयते नृणाम् ॥ ४६ ॥
अन्धं तमस्तमिस्रं च दक्षिणायनमेव च।
उत्तरायणमेतस्माज्ज्योतिर्दानं प्रशस्यते ॥ ४७ ॥
यस्मादूर्ध्वगमेतत्तु तमसश्चैव भेषजम्।
तस्मादूर्ध्वगतेर्दाता भवेदत्रेति निश्चयः ॥ ४८ ॥
देवास्तेजस्विनो यस्मात्प्रभावन्तः प्रकाशकाः।
तामसा राक्षसाश्चैव तस्माद्दीपः प्रदीयते ॥ ४९ ॥
आलोकदानाच्चक्षुष्मान्प्रभायुक्तो भवेन्नरः।
तान्दत्त्वा नोपहिंसेत न हरेन्नोपनाशयेत् ॥ ५० ॥
दीपहर्ता भवेदन्धस्तमोगतिरसुप्रभः।
दीपप्रदः स्वर्गलोके दीपमालेव राजते ॥ ५१ ॥

युक्त हैं, वह मनुष्योंके लिये विहित है। (३८-४३)

जिन कारणोंसे फूल दान करना प्रशंसित होता है, उन्हीं कारणोंसे धूप दान भी संतोषजनक हुआ करता है। दीपक दान करनेसे जो उत्तम फल मिलता है और जिस समयमें जिसके द्वारा जिस प्रकार जैसा दीपक दान करना चाहिये; वह भी कहता हूं। यह भी कहा जाता है, कि ऊर्ध्वगामी दीपादि तेज तथा कान्ति और कीर्ति प्रदान करते हैं; दीपदानसे मनुष्योंके तेजकी वृद्धि होती है। अन्धकार और दक्षिणायन अन्धन्तम नाम नरक स्वरूप है; इसलिये उत्तरायणकी रात्रिमें दीपदान करना उत्तम है, दीप ज्योति उर्ध्वग और अन्धकारका नाशक है, इस ही लिये वह ऊर्ध्वगति प्रदान करती है, इस विषयमें ऐसा ही निश्चय है। दीपदानसे ही देववृन्द तेजस्वी, भावयुक्त और प्रकाशमान हुए हैं और दीपदान करनेसे राक्षसोंको तामस भाव प्राप्त हुआ है; इसलिये दीपदान करना उचित है। मनुष्य दीपदान करनेसे नेत्रवान और प्रभायुक्त होते हैं, इसलिये दीपदान करके हिंसा न करे, न हरे और नष्ट न करे। जो पुरुष दीपक हरता है, वह अन्धा होता है, अन्धकारमें चलता है, तथा उसकी

हविषा प्रथमः कल्पो द्वितीयश्चौषधीरसैः ।
वसामेदोऽस्थिनिर्यासैर्न कार्यः पुष्टिमिच्छता ॥ ५२ ॥
गिरिप्रपाते गहने चैत्यस्थाने चतुष्पथे ।
दीपदानं भवेन्नित्यं य इच्छेद्भूतिमात्मनः ॥ ५३ ॥
कुलोद्योतो विशुद्धात्मा प्रकाशत्वं च गच्छति ।
ज्योतिषां चैव सालोक्यं दीपदाता नरः सदा ॥५४॥
बलिकर्मसु वक्ष्यामि गुणान्कर्मफलोदयान् ।
देवयक्षोरगनृणां भूतानामथ रक्षसाम् ॥ ५५ ॥
येषां नाग्रभुजो विप्रा देवतातिथिबालकाः ।
राक्षसानेव तान्विद्धि निर्विशङ्कानमङ्गलान् ॥ ५६ ॥
तस्मादग्रं प्रयच्छेत देवेभ्यः प्रतिपूजितम् ।
शिरसा प्रयतश्चापि हरेद्बलिमतन्द्रितः ॥ ५७ ॥
गृह्णन्ति देवता नित्यमाशंसन्ति सदा गृहान् ।
बाह्याश्चागन्तवो येऽन्ये यक्षराक्षसपन्नगाः ॥ ५८ ॥

उत्तम प्रभा नहीं रहती और दीपक दान करनेवाला स्वर्गलोकमें दीपमालाकी भांति विराजता है। घृतसे दीप दान करना प्रथम कल्प है; तिल, सरसों और औषधियोंके तैलसे दान करना द्वितीय कल्प है। (४४—५२)

जो मनुष्य पुष्टिकी कामना करे, उसे उचित है, कि चर्बी, मेद, हड्डी प्रभृति प्राणियोंके अवयवोंसे निकले हुए तेल और निर्यासके द्वारा दीप दान न करे। जो अपने ऐश्वर्यकी अभिलाष करे उसे पहाडके झरने, वन, चैत्यस्थान और चौहारोंमें सदा दीप दान करना चाहिये, दीपदाता सदा कुलप्रदीप और पवित्रचित्त होके प्रकाशित होता और उसे ज्योतिर्गणोंके सदृश लोक प्राप्त होते हैं। देव, यक्ष, सर्प, मनुष्य, भूत और राक्षसोंके बलिकर्मके विषयमें कर्मफल उदय होनेसे जो उत्कर्षता प्राप्त होती है, उसे कहता हूं। (५२–५५)

ब्राह्मण, देवता, अतिथि और बालकवृन्द जिसके गृहमें अगाडी भोजन नहीं करते, उन निर्विशङ्कचित्त अमांगलिक लोगोंको राक्षस जानना चाहिये। इसलिये देवताओंको पूजित अन्नका अग्रभाग प्रदान करना योग्य है तथा सावधान और अतन्द्रित होके माथे चढाके दी हुई बलिको देववृन्द सदा ग्रहण करते हैं, आगन्तुक अतिथि और यक्ष, राक्षस, सर्प उसके गृहमें आनेसे

इतो दत्तेन जीवन्ति देवताः पितरस्तथा ।
ते प्रीताः प्रीणयन्त्येनमायुषा यशसा धनैः ॥ ५९ ॥
बलयः सह पुष्पैस्तु देवानामुपहारयेत् ।
दधिदुग्धमयाः पुण्याः सुगन्धाः प्रियदर्शनाः ॥ ६० ॥
कार्या रुधिरमांसाढ्या बलयो यक्षरक्षसाम् ।
सुरासवपुरस्कारा लाजोल्लापिकभूषिताः ॥ ६१ ॥
नागानां दयिता नित्यं पद्मोत्पलविमिश्रिताः ।
तिलान्गुडसुसम्पन्नान्भूतानामुपहारयेत् ॥ ६२ ॥
अग्रदाताऽग्रभोगी स्याद्बलवीर्यसमन्वितः ।
तस्मादग्रं प्रयच्छेत देवेभ्यः प्रतिपूजितम् ॥ ६३ ॥
ज्वलन्त्यहरहो वेश्म याश्चास्य गृहदेवताः ।
ताः पूज्या भूतिकामेन प्रसृताग्रप्रदायिना ॥ ६४ ॥
इत्येतदसुरेन्द्राय काव्यः प्रोवाच भार्गवः ।
सुवर्णाय मनुः प्राह सुवर्णो नारदाय च ॥ ६५ ॥
नारदोऽपि मयि प्राह गुणानेतान्महाद्युते ।
त्वमप्येतद्विदित्वेह सर्वमाचर पुत्रक ॥ ६६ ॥ [४६८०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे सुवर्णमनुसंवादो नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

प्रसित होते हैं। देवता और पितर लोग इस लोकमें दी हुई हव्यकव्य बलिके द्वारा जीवन धारण करते हैं, वे प्रसन्न होके दाताको आयु, यश और धनके सहारे सन्तुष्ट किया करते हैं। दही दूध युक्त, पवित्र, सुगन्धित और उत्तम बलि फूलके सहित देवताओंको देवे। (५६-६०)

यक्ष राक्षसोंको रुधिर और मांसयुक्त बलि देनी योग्य है; उस सारी बलिको सुरा आसव और अरक विभूषित करे। पद्मोत्पलमिश्रित बलि सर्पोंको प्रिय है। गुडयुक्त तिल भूतोंको उपहार देवे। अग्रदाता अगाडी भोजन करनेवाला, बल और वर्णयुक्त होता है; इसलिये देवताओंको पूजित अन्नका अग्रभाग प्रदान करे। गृह और गृहके देवता रात दिन प्रज्वलित होते हैं, इसलिये ऐश्वर्यकी कामना करनेवाला मनुष्य उन्हें प्रसृताग्र प्रदान करके उनकी पूजा करे। भृगुनन्दन शुक्राचार्यने असुरेन्द्र बलिसे यह सब कथा कही थी। मनुने

युधिष्ठिर उवाच—श्रुतं मे भरतश्रेष्ठ पुष्पधूपप्रदायिनाम्।
फलं बलिविधाने च तद्भूयो वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥
धूपप्रदानस्य फलं प्रदीपस्य तथैव च।
बलयश्च किमर्थं वै क्षिप्यन्ते गृहमेधिभिः ॥ २ ॥
भीष्म उवाच— अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
नहुषस्य च संवादमगस्त्यस्य भृगोस्तथा ॥ ३ ॥
नहुषो हि महाराज राजर्षिः सुमहातपाः।
देवराज्यमनुप्राप्तः सुकृतेनेह कर्मणा ॥ ४ ॥
तत्रापि प्रयतो राजन्नहुषस्त्रिदिवे वसन्।
मानुषीश्चैव दिव्याश्च कुर्वाणो विविधाः क्रियाः ॥५॥
मानुष्यस्तत्र सर्वाः स्म क्रियास्तस्य महात्मनः।
प्रवृत्तास्त्रिदिवे राजन्दिव्याश्चैव सनातनाः ॥ ६ ॥
अग्निकार्याणि समिधः कुशाः सुमनसस्तथा।
बलयश्चान्नलाजाभिर्धूपनं दीपकर्म च ॥ ७ ॥
सर्वं तस्य गृहे राज्ञः प्रावर्तत महात्मनः।

सुवर्णसे, उस सुवर्णने नारदसे और नारदने मेरे समीप यह सब फलका विषय कहा था। हे महातेजस्वी पुत्र! तुम भी यह सब मालूम करके ऐसा ही आचरण करो। (६१—६६)

अनुशासनपर्वमें ९८ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ९९ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! मैंने फूल, धूप प्रभृति दान करनेवालोंका फल और बलि विधानका विषय सुना, यह विषय आपको फिर कहना योग्य है, धूपदान और दीपदानका क्या फल है? किस लिये गृहस्थ लोग बलि दिया करते हैं? इसे विस्तारपूर्वक वर्णन करिये। (१—२)

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें अगस्त्य, भृगु और नहुषके संवाद्-युक्त यह पुरातन इतिहास कहा करते हैं। हे महाराज! महातपा राजर्षि नहुषने इस लोकमें सुकृत कर्मोंसे देवराज्य पाया था। हे महाराज! राजा नहुष दिव्य और मानुष विविध क्रिया करने लगे। हे महाराज! उस महात्माकी मानुषी क्रिया तथा स्वर्गीय क्रिया उस स्वर्गके बीच निमने लगीं। अग्निकार्यमें समिध, कुश, पुष्प और दूबके सहित धूपदान तथा दीपदान प्रभृति सब कार्य उस महानुभाव राजाके स्थानमें

जपयज्ञान्मनोयज्ञांस्त्रिदिवेऽपि चकार सः ॥ ८ ॥
देवानभ्यर्चयच्चापि विधिवत्स सुरेश्वरः ।
सर्वानेव यथान्यायं यथापूर्वमरिन्दम ॥ ९ ॥
अथेन्द्रोऽहमिति ज्ञात्वा अहङ्कारं समाविशत् ।
सर्वाश्चैव क्रियास्तस्य पर्यहीयन्त भूपते ॥ १० ॥
स ऋषीन्वाहयामास वरदानमदान्वितः ।
परिहीनक्रियश्चैव दुर्बलत्वमुपेयिवान् ॥ ११ ॥
तस्य वाहयतः कालो मुनिमुख्यांस्तपोधनान् ।
अहङ्काराभिभूतस्य सुमहानभ्यवर्तत ॥ १२ ॥
अथ पर्यायशः सर्वान्वाहनायोपचक्रमे ।
पर्यायश्चाप्यगस्त्यस्य समपद्यत भारत ॥ १३ ॥
अथागत्य महातेजा भृगुर्ब्रह्मविदां वरः ।
अगस्त्यमाश्रमस्थं वै समुपेत्येदमब्रवीत् ॥ १४ ॥
एवं वयमसत्कारं देवेन्द्रस्यास्य दुर्मतेः ।
नहुषस्य किमर्थं वै मर्षयाम महामुने ॥ १५ ॥
अगस्त्य उवाच-कथमेष मया शक्यः शप्तुं यस्य महामुने ।
वरदेन वरो दत्तो भवतो विदितश्च सः ॥ १६ ॥

होने लगे, वह सुरपुरमें भी जपयज्ञ और मनोयज्ञ करने लगे। (३-८)

हे अरिन्दम! वह देवताओंका राजा होनेपर भी उनकी विधिपूर्वक पूजा करता था। "मैं इन्द्र हूं" ऐसा जानके वह अहङ्कारयुक्त हुआ। हे महाराज! उसके अभिमानयुक्त होनेपर उसकी सब क्रिया नष्ट हुई। उसने वर पाके मतवाला होकर ऋषियोंको सवारी ढोनेमें प्रवृत्त किया और क्रियारहित होके अत्यन्त निर्बल होने लगा। उसके अहंकारयुक्त होके मुख्य तपस्वी ऋषियोंको वाहन रहते बहुत समय व्यतीत हुआ। हे भारत! अनन्तर वह पर्यायक्रमसे सब ऋषियोंको सवारी ढोनेके लिये नियुक्त करनेमें उद्यत हुआ, कालक्रमसे अगस्त्य मुनिका समय उपस्थित हुआ। ब्रह्मवादियोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी भृगु उस समय अगस्त्यके आश्रममें जाके यह वचन बोले, हे महामुनि! हम इस नीचबुद्धि देवेन्द्र नहुषके ऐसे असत्कारको किस प्रकार क्षमा करेंगे? (९—१५)

अगस्त्य बोले, हे मुनिवर! वरदाता

यो मे दृष्टिपथं गच्छेत्स मे वश्यो भवेदिति।
इत्यनेन वरं देवो याचितो गच्छता दिवम् ॥ १७ ॥
एवं न दग्धः स मया भवता च न संशयः।
अन्येनाप्यृषिमुख्येन न दग्धो न च पातितः ॥ १८ ॥
अमृतं चैव पानाय दत्तमस्मै पुरा विभो।
महात्मना तदर्थं च नास्माभिर्विनिपात्यते ॥ १९ ॥
प्रायच्छत वरं देवः प्रजानां दुःखकारणम्।
द्विजेष्वधर्मयुक्तानि स करोति नराधमः ॥ २० ॥
तत्र यत्प्राप्तकालं नस्तद् ब्रूहि वदतां वर।
भवांश्चापि यथा ब्रूयात्तत्कर्ताऽस्मि न संशयः ॥ २१ ॥
भृगुरुवाच— पितामह नियोगेन भवन्तं सोऽहमागतः।
प्रतिकर्तुं बलवति नहुषे दैवमोहिते ॥ २२ ॥
अद्य हि त्वां सुदुर्बुद्धी रथे योक्ष्यति देवराट्।
अद्यैनमहमुद्वृत्तं करिष्येऽनिन्द्रमोजसा ॥ २३ ॥
अद्येन्द्रं स्थापयिष्यामि पश्यतस्ते शतक्रतुम्।

प्रजापतिने जिसे वर दिया है, मैं उसे किस प्रकार शाप देनेमें समर्थ होऊंगा? आपसे भी यह छिपा नहीं है। जब वह स्वर्गमें जाने लगा, तब प्रजापतिके समीप यह वर मांगा, कि 'मैं जिसे देखूं' वह मेरे वशमें हो जाय, इस ही निमित्त वह निःसन्देह मेरे अथवा तुम्हारे तथा अन्य किसी मुख्य ऋषिके द्वारा भस्म तथा स्वर्गसे च्युत नहीं हुआ। महानुभाव पितामहने पहले समयमें इसे पीनेके लिये अमृत दिया था इस ही निमित्त हम उसे नष्ट करनेमें असमर्थ हुए हैं। प्रजापतिने इसे प्रजापुञ्जसे दुःखकर वर दिया है, इसीसे यह पुरुषाधम ब्राह्मणोंके विषयमें अधर्मयुक्त व्यवहार करता है। हे वक्तृवर! उस विषयमें हम लोगोंके लिये जो समय उपस्थित हुआ है, आप उसे ही कहिये, आप जैसा कहेंगे, मैं निःसन्देह वैसाही करूंगा। (१६–२१)

भृगु बोले, दैववशसे मोहित बलशाली नहुषके प्रतिकार करनेके लिये मैं पितामहकी आज्ञानुसार आपके समीप आया हूं। वह नीचबुद्धि देवराज आज आपको रथमें नियुक्त करेगा, मैं आज ही इस अनिन्द्रको निज तेजके प्रभावसे गर्वित करूंगा। मैं आज ही आपके सम्मुखमें उस अत्यन्त नीचबुद्धि

सञ्चाल्य पापकर्माणमैन्द्रात् स्थानात्सुदुर्मतिम् ॥२४॥
अद्य चासौ कुदेवेन्द्रस्त्वां पदा धर्षयिष्यति ।
दैवोपहतचित्तत्वादात्मनाशाय मन्दधीः ॥ २५ ॥
व्युत्क्रान्तधर्मं तमहं धर्षणामर्षितो भृशम् ।
अहिर्भवस्वेति रुषा शप्स्ये पापं द्विजद्रुहम् ॥ २६ ॥
तत एनं सुदुर्बुद्धिं धिक्शब्दाभिहतत्विषम् ।
धरण्यां पातयिष्यामि पश्यतस्ते महामुने ॥ २७ ॥
नहुषं पापकर्माणमैश्वर्यबलमोहितम् ।
यथा च रोचते तुभ्यं तथा कर्ताऽस्म्यहं मुने ॥ २८ ॥
एवमुक्तस्तु भृगुणा मैत्रावरुणिरव्ययः ।
अगस्त्यः परमप्रीतो बभूव विगतज्वरः ॥ २९ ॥ [४७०९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे अगस्त्यभृगुसंवादो नाम नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

युधिष्ठिर उवाच—कथं वै स विपन्नश्च कथं वै पातितो भुवि ।
कथं चानिन्द्रतां प्राप्तस्तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ १ ॥
भीष्म उवाच—एवं तयोः संवदतोः क्रियास्तस्य महात्मनः ।

पापीको इन्द्रपदसे पृथक् करके शतक्रतु को नीच स्थानपर स्थापित करूंगा। आज ही वह मन्दबुद्धि कुदेवराज दैववशसे अपने नाशके लिये पांवसे तुम्हें प्रधर्षित करेगा। मैं धर्षणनिबन्धनसे अत्यन्त क्रोधित होके उस विधर्मी द्विजद्रोही पापीको क्रोधवशसे "सर्प होजाओ" कहके शाप दूंगा। हे महामुनि! अनन्तर उस अत्यन्त दुर्बुद्धि राजाको धिक्-शब्दसे तेजरहित करके आपके सम्मुखमें ही पृथ्वीपर गिरा दूंगा। हे मुनि! ऐश्वर्यबलसे मोहित पापी नहुषको जिस प्रकार करनेके लिये आपकी जैसी रुचि होगी, मैं वैसा ही करूंगा। मैत्रावरुणि अविनाशी अगस्त्य मुनि भृगुका ऐसा वचन सुनके परम प्रसन्न और शोक-रहित हुए। (२२--२९)

अनुशासनपर्वमें ९९ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १०० अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, राजा नहुष किस प्रकार विपद्ग्रस्त हुए? किस प्रकार पृथ्वीपर गिरे? किस लिये इन्द्रत्व पदसे भ्रष्ट हुए? यह विषय आपको वर्णन करना योग्य है। (१)

भीष्म बोले, अगस्त्य और भृगुके इस प्रकार वार्त्तालाप करते रहनेपर

सर्वा एव प्रवर्तन्ते या दिव्या याश्च मानुषीः ॥ २ ॥
तथैव दीपदानानि सर्वोपकरणानि वै।
बलिकर्म च यच्चान्यद्धत्सकाश्च पृथग्विधाः ॥ ३ ॥
सर्वे तस्य समुत्पन्ना देवेन्द्रस्य महात्मनः।
देवलोके नृलोके च सदाचारा बुधाः स्मृताः ॥ ४ ॥
ते चेद्भवन्ति राजेन्द्र ऋद्ध्यन्ते गृहमेधिनः।
धूपप्रदानैर्दीपैश्च नमस्कारैस्तथैव च ॥ ५ ॥
यथा सिद्धस्य चान्नस्य ग्रहायाग्रं प्रदीयते।
बलयश्च गृहोद्देशे अतः प्रीयन्ति देवताः ॥ ६ ॥
यथा च गृहिणस्तोषो भवेद्वै बलिकर्मणि।
तथा शतगुणा प्रीतिर्देवतानां प्रजायते ॥ ७ ॥
एवं धूपप्रदानं च दीपदानं च साधवः।
प्रयच्छन्ति नमस्कारैर्युक्तमात्मगुणावहम् ॥ ८ ॥
स्नानेनाद्भिश्च यत्कर्म क्रियते वै विपश्चिता।
नमस्कारप्रयुक्तेन तेन प्रीयन्ति देवताः ॥ ९ ॥
पितरश्च महाभागा ऋषयश्च तपोधनाः।
गृह्याश्च देवताः सर्वाः प्रीयन्ते विधिनाऽर्चिताः॥ १०॥
इत्येतां बुद्धिमास्थाय नहुषः स नरेश्वरः।

महात्मा नहुष राजाके दिव्य और मनुष्य कार्य होने लगे। सब सामग्रियोंसे युक्त दीपदान, बलिकर्म तथा पृथक् पृथक् रीतिसे दूसरे सब कार्य प्रवृत्त थे। देवलोक और नरलोकमें जो सब सदाचार वर्णित हुए हैं, महानुभाव देवराज नहुषके वे सब कार्य पूरे हुए। हे राजेन्द्र! यदि साधुसम्मत सदाचार पूर्ण हो, तो गृहस्थ मनुष्य समृद्धियुक्त होता है। धूपदान, दीपदान, नमस्कार, ब्राह्मणको सिद्धान्नका अग्रभाग प्रदान और गृहमें बलि देनेसे देववृन्द प्रसन्न होते हैं। बलिकर्म विषयमें गृहस्थ पुरुष जिस प्रकार सन्तुष्ट होता है, देवताओंको उसमें उन लोगोंसे एक सौ गुण अधिक प्रीति हुआ करती है ; इसलिये साधु पुरुष आत्मगुणावह नमस्कारयुक्त धूप और दीप दान किया करते हैं। (२-८)

विद्वान पुरुष पवित्र जलसे स्नान करके जो कुछ कार्य करता है, उससे देववृन्द प्रसन्न होते हैं। महाभाग पितर, तपस्वी ऋषि और गृहदेवता विधि-

सुरेन्द्रत्वं महत्प्राप्य कृतवानेतदद्भुतम् ॥ ११ ॥
कस्यचित्त्वथ कालस्य भाग्यक्षय उपस्थिते।
सर्वमेतदवज्ञाय कृतवानिदमीदृशम् ॥ १२ ॥
ततः स परिहीणोऽभूत्सुरेन्द्रो बलदर्पतः।
धूपदीपोदकविधिं न यथावच्चकार ह ॥ १३ ॥
ततोऽस्य यज्ञविषयो रक्षोभिः पर्यबध्यत।
अथागस्त्यमृषिश्रेष्ठं वाहनायाजुहाव ह ॥ १४ ॥
द्रुतं सरस्वतीकूलात् स्मयन्निव महाबलः।
ततो भृगुर्महातेजा मैत्रावरुणिमब्रवीत् ॥ १५ ॥
निमीलयस्व नयने जटां यावद्विशामि ते।
स्थाणुभूतस्य तस्याथ जटां प्राविशदच्युतः ॥ १६ ॥
भृगुः स सुमहातेजाः पातनाय नृपस्य च।
ततः स देवराट् प्राप्तस्तमृषिं वाहनाय वै ॥ १७ ॥
ततोऽगस्त्यः सुरपतिं वाक्यमाह विशांपते।
योजयस्वेति मां क्षिप्रं कं च देशं वहामि ते ॥ १८ ॥

पूर्वक पूजित होनेपर प्रसन्न होते हैं। राजा नहुषने इस ही निमित्त ऐसी बुद्धि अवलम्बन करके महत् सुरेन्द्रत्व पाके भी अद्भुत रीतिसे पूर्वोक्त कार्योंको किया था। कुछ समयके अनन्तर भाग्यक्षयका समय उपस्थित होनेपर पूर्वोक्त कार्योंकी अवज्ञा करके वह नीच कहे हुए कार्य करनेमें प्रवृत्त हुए थे। अनन्तर वह देवेन्द्र होके बलिकर्मसे रहित हुए और धूपदीप दान तथा पितरोंका तर्पण विधिपूर्वक करनेमें विरक्त रहे; अन्तमें उनके यज्ञस्थानमें राक्षस लोग विचरने लगे। अनन्तर उस महाबली राजाने गर्वित होकर सरस्वतीके तटसे अगस्त्य महर्षिको सवारी ले चलनेके लिये शीघ्र ही बुलाया। (९—१५)

तब महातेजस्वी भृगु अगस्त्यसे बोले, मैं जबतक तुम्हारी जटाके बीच प्रवेश करूं, तबतक तुम अपने नेत्र मूंद रक्खो। अनन्तर अगस्त्यके पर्वतकी भांति अचलभावसे स्थित होनेपर महातेजस्वी भृगुने राजा नहुषको स्वर्गसे च्युत करनेके लिये उनके जटाजूटमें प्रवेश किया। हे नरनाथ! अनन्तर देवराजने सवारी ले चलनेके लिये अगस्त्य मुनिको पाया, तब अगस्त्यने सुरपतिसे कहा, हे सुरराज! मुझे जल्दी

यत्र वक्ष्यसि तत्र त्वां नयिष्यामि सुराधिप।
इत्युक्तो नहुषस्तेन योजयामास तं मुनिम् ॥ १९ ॥
भृगुस्तस्य जटान्तस्थो बभूव हृषितो भृशम्।
न चापि दर्शनं तस्य चकार स भृगुस्तदा ॥ २० ॥
वरदानप्रभावज्ञो नहुषस्य महात्मनः।
न चुकोप तदाऽगस्त्यो युक्तोऽपि नहुषेण वै ॥ २१ ॥
तं तु राजा प्रतोदेन चोदयामास भारत।
न चुकोप स धर्मात्मा ततः पादेन देवराट् ॥ २२ ॥
अगस्त्यस्य तदा क्रुद्धो वामेनाभ्यहनच्छिरः।
तस्मिन् शिरस्यभिहते स जटान्तर्गतो भृगुः ॥ २३ ॥
शशाप बलवत्क्रुद्धो नहुषं पापचेतसम्।
तस्मात्पदाहतः क्रोधाच्छिरसीमं महामुनिम् ॥ २४ ॥
तस्मादाशु महीं गच्छ सर्पो भूत्वा सुदुर्मते।
इत्युक्तः स तदा तेन सर्पो भूत्वा पपात ह ॥ २५ ॥
अदृष्टेनाथ भृगुणा भूतले भरतर्षभ।
भृगुं हि यदि सोऽद्रक्ष्यन्नहुषः पृथिवीपते ॥ २६ ॥

सवारीमें नियुक्त करो, मैं तुम्हें किस स्थानपर ले चलूं? हे देवराज! आप जहां कहो, वहां ही मैं आपको ले चलूंगा; नहुषने अगस्त्यका वचन सुनके उन्हें सवारीमें नियुक्त किया, भृगु उनके जटाजूटमें रहके अत्यन्त हर्षित हुए। वह महानुभाव नहुषके वर पानेका प्रभाव जानते थे, इसलिये उस समय उनके नेत्रके सामने नहीं हुए। नहुषने जब अगस्त्यको सवारीमें नियुक्त किया, तब भी वह उनपर क्रुद्ध नहीं हुए। (१५-२१)

हे भारत! राजा नहुषने उन्हें कोडेसे मारा, उसपर भी वह धर्मात्मा क्रुद्ध न हुए, अनन्तर देवराजने क्रुद्ध होके उस समय अगस्त्यके सिरपर बाईं लात मारी। अगस्त्यके सिरपर लात मारनेसे उनके जटाके भीतर भृगुने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उस पापबुद्धि नहुषको शाप दिया। रे नीचबुद्धिवाले! तूने क्रोधके वशमें होकर इस महामुनिके सिरपर लात मारी है, इसलिये शीघ्र ही सर्प होकर पृथ्वीमें जाओ। हे भरतर्षभ! उस समय नहुष अगोचर भृगुके द्वारा इस प्रकार शापयुक्त होके पतित हुए। हे महाराज! यदि नहुष उस समय

न च शक्तोऽभविष्यद्वै पातने तस्य तेजसा ।
स तु तैस्तैः प्रदानैश्च तपोभिर्नियमैस्तथा ॥ २७ ॥
पतितोऽपि महाराज भूतले स्मृतिमानभूत् ।
प्रसादयामास भृगुं शापान्तो मे भवेदिति ॥ २८ ॥
ततोऽगस्त्यः कृपाविष्टः प्रासादयत तं भृगुम् ।
शापान्तार्थं महाराज स च प्रादात्कृपान्वितः ॥२९॥
भृगुरुवाच— राजा युधिष्ठिरो नाम भविष्यति कुलोद्वहः ।
स त्वां मोक्षयिता शापादित्युक्त्वाऽन्तरधीयत ॥३०॥
अगस्त्योऽपि महातेजाः कृत्वा कार्यं शतक्रतोः ।
स्वमाश्रमपदं प्रायात्पूज्यमानो द्विजातिभिः ॥ ३१ ॥
नहुषोऽपि त्वया राजंस्तस्माच्छापात्समुद्धृतः ।
जगाम ब्रह्मभवनं पश्यतस्ते जनाधिप ॥ ३२ ॥
तदा स पातयित्वा तं नहुषं भूतले भृगुः ।
जगाम ब्रह्मभवनं ब्रह्मणे च न्यवेदयत् ॥ ३३ ॥
ततः शक्रं समानाय्य देवानाह पितामहः ।
वरदानान्मम सुरा नहुषो राज्यमाप्तवान् ॥ ३४ ॥

भृगुको देख लेते तो वह निज तेजसे उन्हें भ्रष्ट न कर सकते । हे महाराज ! राजा नहुष पृथ्वीमें गिरके भी पूर्वोक्त धूप दीप प्रदान करने तथा तप-नियमके सहारे स्मृतिशक्तिसे युक्त थे, वह शापके अन्त होनेके लिये भृगुको प्रसन्न करने लगे । हे महाराज ! अनन्तर अगस्त्यने कृपायुक्त होके शापान्तके लिये भृगुको प्रसन्न किया; उन्होंने कृपालू होके शापान्तका नियम कह दिया ।(२२-२९)

भृगु बोले, युधिष्ठिर नाम एक वंशधर राजा होगा, वही तुम्हें शापसे मुक्त करेगा; इतना कहके भृगु अन्तर्द्धान हुए । महातेजस्वी अगस्त्य भी शतक्रतुका कार्य करके द्विजातियोंसे पूजित होके अपने आश्रमपर गये । हे महाराज ! इस ही निमित्त नहुषका तुमने उद्धार किया है । हे प्रजानाथ ! नहुष तुम्हारे द्वारा शापसे छूटके तुम्हारे सम्मुखमें ही ब्रह्मलोकमें गये हैं । उस समय भृगु नहुषको पृथ्वीपर गिराके ब्रह्माके स्थानमें गये और उन्हें सब वृत्तान्त सुनाया । (३०—३३)

अनन्तर ब्रह्मा देवराजको बुलाके देवताओंसे बोले, हे देवगण ! मेरे वरदानसे नहुषने देवराज्य पाया था;

स चागस्त्येन क्रुद्धेन भ्रंशितो भूतलं गतः।
न च शक्यं विना राज्ञा सुरा वर्तयितुं क्वचित् ॥३५॥
तस्मादयं पुनः शक्रो देवराज्येऽभिषिच्यताम्।
एवं संभाषमाणं तु देवाः पार्थ पितामहम् ॥ ३६ ॥
एवमस्त्विति संहृष्टाः प्रत्यूचुस्तं नराधिप।
सोऽभिषिक्तो भगवता देवराज्ये च वासवः ॥ ३७ ॥
ब्रह्मणा राजशार्दूल यथापूर्वं व्यरोचत।
एवमेतत्पुरा वृत्तं नहुषस्य व्यतिक्रमात् ॥ ३८ ॥
स च तैरेव संसिद्धो नहुषः कर्मभिः पुनः।
तस्माद्दीपाः प्रदातव्याः सायं वै गृहमेधिभिः ॥ ३९ ॥
दिव्यं चक्षुरवाप्नोति प्रेत्य दीपस्य दायकः।
पूर्णचन्द्रप्रतीकाशा दीपदाश्च भवन्त्युत ॥ ४० ॥
यावदक्षिनिमेषाणि ज्वलन्ते तावतीः समाः।
रूपवान्बलवांश्चापि नरो भवति दीपदः ॥ ४१ ॥ [४७५०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि अगस्त्यभृगुसंवादो नाम शततमोऽध्यायः॥ १००॥

युधिष्ठिर उवाच- ब्राह्मणस्वानि ये मन्दा हरन्ति भरतर्षभ।

वह क्रुद्ध अगस्त्यके द्वारा भ्रष्ट होके पृथ्वीपर गया है। हे देवगण! राजाके विना किसी स्थानमें कोई वास नहीं कर सकता; इसलिये पाकशासनको तुम लोग फिर देवराज्यपर अभिषिक्त करो। हे नरनाथ पार्थ! देवताओंने ब्रह्माका ऐसा वचन सुनके अत्यन्त हर्षित होकर 'एवमस्तु' कहके उनकी बात स्वीकार की। हे नृपवर! इन्द्र भगवान् ब्रह्माके द्वारा देवराज्यपर अभिषिक्त होके पहले की भांति विराजमान हुए। नहुषके विषयमें व्यतिक्रम होनेसे पहले ऐसी घटना हुई थी, उन्हें पूर्वोक्त कर्मोंके सहारे पूरी रीतिसे सिद्धि प्राप्त हुई; इसलिये गृहमेधी पुरुषोंको सन्ध्याके समय दीपदान करना उचित है। दीपदान करनेवाला मनुष्य परलोकमें जाके दिव्यनेत्र पाता है। जबतक अक्षिनिमेष प्रकाशमान रहते हैं, उतने वर्ष पर्यन्त दीपदान करनेवाले पूर्णचन्द्रके समान स्वर्गमें विराजते हैं और दीपदान करनेवाले मनुष्य रूपवान तथा बलवान होते हैं। (३४—४१)

अनुशासनपर्वमें १०० अध्याय समाप्त।

नृशंसकारिणो मूढाः क ते गच्छन्ति मानवाः ॥ १ ॥
भीष्म उवाच- अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
चाण्डालस्य च संवादं क्षत्रबन्धोश्च भारत ॥ २ ॥
राजन्य उवाच— वृद्धरूपोऽसि चाण्डाल बालवच्च विचेष्टसे ।
श्वखराणां रजःसेवी कस्मादुद्विजसे गवाम् ॥ ३ ॥
साधुभिर्गर्हितं कर्म चाण्डालस्य विधीयते ।
कस्माद्गोरजसा ध्वस्तमपां कुण्डे निषिञ्चसि ॥ ४ ॥
चाण्डाल उवाच-ब्राह्मणस्य गवां राजन् ह्रियतीनां रजः पुरा ।
सोममुद्ध्वंसयामास तं सोमं येऽपिबन्द्विजाः ॥ ५ ॥
दीक्षितश्च स राजाऽपि क्षिप्रं नरकमाविशत् ।
सह तैर्याजकैः सर्वैर्ब्रह्मस्वमुपजीव्य तत् ॥ ६ ॥
येऽपि तत्रापिबन्क्षीरं घृतं दधि च मानवाः ।
ब्राह्मणाः सहराजन्याः सर्वे नरकमाविशन् ॥ ७ ॥
जघ्नुस्ताः पयसा पुत्रांस्तथा पौत्रान्विधुन्वतीः ।
पशूनवेक्षमाणाश्च साधुवृत्तेन दम्पती ॥ ८ ॥

अनुशासनपर्वमें १०१ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे पुरुषश्रेष्ठ ! जो नीचकर्म करनेवाले मन्दबुद्धि मूढ मनुष्य ब्राह्मणका धन हरते हैं, वे किस लोकमें जाते हैं ? (१)

भीष्म बोले, हे भारत ! प्राचीन लोग इस विषयमें किसी क्षत्रिय और चाण्डाल के संवादयुक्त पुराना इतिहास कहा करते हैं । क्षत्री बोला, रे चाण्डाल तू बूढा होनेपर भी बालककी भांति क्यों चेष्टा करता है ? तू कुत्ते और गधोंकी धूलिसे अवगुंठित होकर किसलिये गौवोंको व्याकुल करता है ? साधु लोग चाण्डालके कार्यको अत्यन्त निन्दित कहते हैं । तू किसलिये क्षीर-बुन्दसे युक्त गौवोंको जलकुण्डके बीच कर रहा है ? (२-४)

चाण्डाल बोला, हे राजन् ! पहले समयमें किसी ब्राह्मणकी गौवें हरी गई थीं, उनके स्तनसे गिरे हुए दूधने सोमरसको नष्ट किया था । ब्राह्मणोंने उस सोमरसको पिया और यज्ञ करनेवाले राजाने भी उन्हीं गौवोंके दूधसे युक्त सोमपान करनेपर यज्ञ करानेवालोंके सहित उस ब्रह्मस्वको भोगनेसे नरकमें प्रवेश किया था । जिन ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा दूसरे मनुष्योंने उस गऊ हरनेवालेके गृहमें घी, दही वा दूध

अहं तत्रावसं राजन्ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
तासां मे रजसा ध्वस्तं भैक्ष्यमासीन्नराधिप ॥ ९ ॥
चाण्डालोऽहं ततो राजन्भुक्त्वा तद्भवं नृप ।
ब्रह्मस्वहारी च नृपः सोऽप्रतिष्ठां गतिं ययौ ॥ १० ॥
तस्माद्धरेन्न विप्रस्वं कदाचिदपि किंचन ।
ब्रह्मस्वं रजसा ध्वस्तं भुक्त्वा मां पश्य यादृशम्॥११॥
तस्मात्सोमोऽप्यविक्रेयः पुरुषेण विपश्चिता ।
विक्रयं त्विह सोमस्य गर्हयन्ति मनीषिणः ॥ १२ ॥
ये चैनं क्रीणते तात ये च विक्रीणते जनाः ।
ते तु वैवस्वतं प्राप्य रौरवं यान्ति सर्वशः ॥ १३ ॥
सोमं तु रजसा ध्वस्तं विक्रीणन्विधिपूर्वकम् ।
श्रोत्रियो वार्धुषी भूत्वा न चिरं स विनश्यति ॥१४॥
नरकं त्रिंशतं प्राप्य स्वविष्ठामुपजीवति ।
श्वचर्यामभिमानं च सखिदारे च विप्लवम् ॥ १५ ॥

पीया था, वे सब कोई नरकमें डूबे। गौवें साधु व्यवहारसे पशुओंकी प्रतीक्षा करती, स्वामी और बछडोंके वियोगसे कांप रही थीं, वैसी दशामें जिसने उन्हें हरण किया था, उनके पुत्र पौत्र और दम्पती अल्पायु हुए। (५-८)

हे महाराज! मैं ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय होकर उस गऊ हरनेवाले मनुष्यके गृहमें निवास करता था। हे नरनाथ! उन हरी हुई गौवोंकी धूलिसे मेरा भिक्षान्न विनष्ट हुआ था, हे नरनाथ! मैंने वही गोरजसे युक्त अन्न खाया था, इसीसे मैं चाण्डाल हुआ और वह ब्रह्मस्व हरनेवाला राजा भी अप्रतिष्ठित हुआ, इसलिये कभी किसी ब्राह्मणका धन हरना उचित नहीं है। ब्रह्मस्वके रजसे परिपूरित भिक्षान्न खाके मैं जैसा हुआ हूं, उसे देखिये। विपश्चित् पुरुष कदापि सोम-विक्रय न करे, इस लोकमें सोम-विक्रय करनेसे मनीषिवृन्द विशेष रीतिसे निन्दा किया करते हैं। हे तात! जो लोग सोमरस बेचते हैं, तथा जो मनुष्य उसे मोल लेते हैं, वे सब कोई यमके समीप पहुंचके रौरव नरकमें पडते हैं। (९—१३)

यह मत समझो, कि श्रोत्रिय ब्राह्मण विधिपूर्वक ब्रह्मस्व संयुक्त सोमरस बेचके वार्द्धुषी अर्थात् वृद्धिजीवी होके शीघ्र नष्ट नहीं होता; वह तीस नरकमें

तुलया धारयन्धर्ममभिमान्यतिरिच्यते ।
श्वानं वै पापिनं पश्य विवर्णं हरिणं कृशम् ॥ १६ ॥
अभिमानेन भूतानामिमां गतिमुपागतम् ।
अहं वै विपुले तात कुले धनसमन्विते ॥ १७ ॥
अन्यस्मिन् जन्मनि विभो ज्ञानविज्ञानपारगः ।
अभवं तत्र जानानो ह्येतान्दोषान्मदात्सदा ॥ १८ ॥
संरब्ध एव भूतानां पृष्ठमांसमभक्षयम् ।
सोऽहं तेन च वृत्तेन भोजनेन च तेन वै ॥ १९ ॥
इमामवस्थां संप्राप्तः पश्य कालस्य पर्ययम् ।
आदीप्तमिव चैलान्तं भ्रमरैरिव चार्दितम् ॥ २० ॥
धावमानं सुसंरब्धं पश्य मां रजसाऽन्वितम् ।
स्वाध्यायैस्तु महत्पापं हरन्ति गृहमेधिनः ॥ २१ ॥
दानैः पृथग्विधैश्चापि यथा प्राहुर्मनीषिणः ।
तथा पापकृतं विप्रमाश्रमस्थं महीपते ॥ २२ ॥
सर्वसङ्गविनिर्मुक्तं छन्दांस्युत्तारयन्त्युत ।

भ्रमता हुआ विष्ठा भक्षण करता है । नीचसेवा, अभिमान और मित्रकी स्त्री के साथ अत्याचार, इन तीनोंको ही तुलादण्डपर रखके तुल्य जाने, अभिमानी मनुष्य धर्मको अतिक्रम करनेसे अधिक पापी होता है अर्थात् अभिमानी मनुष्य नीचसेवी और मित्रकी स्त्री हरनेवालेसे अधिक पापी है । देखिये पापी कुत्ता विवर्ण और कृश होता है, कुत्ते सब प्राणियोंके विषयमें क्रुद्ध होके अभिमानसे ही ऐसी गतिको प्राप्त हुए हैं । हे विभु ! मैं दूसरे जन्ममें धनयुक्त बडे कुलमें उत्पन्न होके ज्ञानविज्ञानसे युक्त हुआ था, उस समय इन दोषोंके विषय को जानके भी मैं अभिमानपूर्वक क्रुद्ध होके लोगोंका पृष्ठमांस भक्षण करता था । मैं उस ही चरित्र तथा वैसे भोजनसे ऐसी अवस्थामें पडा हूं ; इसलिये समयका विपर्यय अवलोकन करो । (१४—२०)

मुझे तीक्ष्णतुण्डवाले भौरोंके झुण्डसे पीडित आदीप्त चैलान्तसदृश अत्यन्त संरब्ध होके दौडते हुए तथा रजोगुणसे युक्त देखिये । गृहमेधी मनुष्य स्वाध्यायपाठ तथा अनेक प्रकारके दानसे महत् पाप हरण करते हैं; पण्डित लोग जैसा कहा करते हैं, उसही के अनुसार आश्रमस्थ पापी विप्रका वेद उद्धार

अहं हि पापयोन्यां वै प्रसूतः क्षत्रियर्षभ ।
निश्चयं नाधिगच्छामि कथं मुच्येयमित्युत ॥ २३ ॥
जातिस्मरत्वं च मम केनचित्पूर्वकर्मणा ।
शुभेन येन मोक्षं वै प्राप्तुमिच्छाम्यहं नृप ॥ २४ ॥
त्वमिमं संप्रपन्नाय संशयं ब्रूहि पृच्छते ।
चाण्डालत्वात्कथमहं मुच्येयमिति सत्तम ॥ २५ ॥
राजन्यउवाच- चाण्डाल प्रतिजानीहि येन मोक्षमवाप्स्यसि ।
ब्राह्मणार्थे त्यजन्प्राणान्गतिमिष्टामवाप्स्यसि ॥ २६ ॥
दत्त्वा शरीरं क्रव्याद्भ्यो रणाग्नौ द्विजहेतुकम् ।
हुत्वा प्राणान्प्रमोक्षस्ते नान्यथा मोक्षमर्हसि ॥ २७ ॥
भीष्म उवाच- इत्युक्तः स तदा तेन ब्रह्मस्वार्थे परन्तप ।
हुत्वा रणमुखे प्राणान्गतिमिष्टामवाप ह ॥ २८ ॥
तस्माद्रक्ष्यं त्वया पुत्र ब्रह्मस्वं भरतर्षभ ।
यदीच्छसि महाबाहो शाश्वतीं गतिमात्मनः ॥ २९ ॥ [४७७९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे राजन्यचाण्डालसंवादो नामैकोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

करता है । हे क्षत्रियश्रेष्ठ भूपाल ! मैं पापयोनिमें पडा हूं, निश्चय नहीं कर सकता, कि किस प्रकार मुक्त हूंगा । हे महाराज ! मैं पूर्वजन्मके किये हुए किसी शुभकर्मसे जातिस्मर हुआ हूं, उस ही निमित्त मोक्षकी अभिलाष किया करता हूं । हे सत्तम ! आप मुझ शरणागत संशय जिज्ञासु पुरुषके ऊपर कृपा करके बताइये, मैं चाण्डालत्वसे किस प्रकार मुक्त हूंगा । (२०-२५)

क्षत्रिय बोला, रे चाण्डाल ! तू जिसके सहारे मोक्ष पावेगा, उस विषय में प्रतिज्ञा कर, तू ब्राह्मणके निमित्त प्राण त्यागनेसे अभिलषित गति पावेगा । ब्राह्मणके निमित्त राक्षसोंको शरीर दान करके युद्धरूपी अग्निमें प्राण समर्पण करनेसे तुझे मोक्ष प्राप्त होगी, अन्यथाचरण करनेसे मोक्ष न होगी । (२६-२७)

भीष्म बोले, हे शत्रुतापन ! उस समय चाण्डालने उस क्षत्रियका ऐसा वचन सुनके ब्राह्मणस्वके निमित्त युद्धमें मरके अभिलषित गति पाई थी । हे भरतश्रेष्ठ महाबाहो वत्स ! यदि तुम शाश्वती गतिकी इच्छा करते हो, तो सदा ब्रह्मस्वकी रक्षा करना । (२८-२९)

अनुशासनपर्वमें १०१ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर उवाच- एके लोकाः सुकृतिनः सर्वे त्वाहो पितामह ।
तत्र तत्रापि भिन्नास्ते तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥
भीष्म उवाच- कर्मभिः पार्थ नानात्वं लोकानां यान्ति मानवाः ।
पुण्यान्पुण्यकृतो यान्ति पापान्पापकृतो नराः ॥ २ ॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
गौतमस्य मुनेस्तात संवादं वासवस्य च ॥ ३ ॥
ब्राह्मणो गौतमः कश्चिन्मृदुर्दान्तो जितेन्द्रियः ।
महावने हस्तिशिशुं परिद्यूनममातृकम् ॥ ४ ॥
तं दृष्ट्वा जीवयामास सानुक्रोशो धृतव्रतः ।
स तु दीर्घेण कालेन बभूवातिबलो महान् ॥ ५ ॥
तं प्रभिन्नं महानागं प्रस्नुतं पर्वतोपमम् ।
धृतराष्ट्रस्य रूपेण शक्रो जग्राह हस्तिनम् ॥ ६ ॥
ह्रियमाणं तु तं दृष्ट्वा गौतमः संशितव्रतः ।
अभ्यभाषत राजानं धृतराष्ट्रं महातपाः ॥ ७ ॥
मा मे हार्षीर्हस्तिनं पुत्रमेनं दुःखात्पुष्टं धृतराष्ट्राकृतज्ञ ।

अनुशासनपर्वमें १०२ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! सुकृतशाली मनुष्य एक लोकमें ही निवास करते हैं, अथवा उस स्थानमें भी वे लोग पृथक् पृथक् लोकोंमें वास किया करते हैं। मेरे समीप आप यह विषय वर्णन करिये। (१)

भीष्म बोले, हे पार्थ ! मनुष्य निज कर्मके सहारे अनेक प्रकारके लोकोंमें गमन किया करते हैं, पुण्य करनेवाले पुरुष पुण्यलोकमें जाते हैं और पापी मनुष्य पापलोकोंमें जाते हैं। हे तात ! प्राचीन लोग इस विषयमें इन्द्र और गौतम मुनिके संवादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं। गौतम नाम जितेन्द्रिय, मृदुस्वभाव, दम, शील और व्रत करनेवाले किसी ब्राह्मणने वनके बीच मातारहित तथा अत्यन्त दुःखी एक हाथीके बच्चेको देखकर दयायुक्त होके उसे पाल के जिला रखा था। हाथीका बच्चा बहुत समयके अनन्तर अत्यन्त बलवान और बडा हुआ। पर्वतसदृश उस महाहस्तीको देखके इन्द्रने धृतराष्ट्रका रूप धरके उस हाथीको ले लिया। (२—६)

महातपस्वी, संशितव्रती गौतम उस हाथीको हरते हुए देखके राजा धृतराष्ट्रसे बोले, हे अकृतज्ञ धृतराष्ट्र ! अत्यन्त

मैत्रं सतां सप्तपदं वदन्ति मित्रद्रोहो नैव राजन् स्पृशेत्त्वाम् ॥८॥
इध्मोदकप्रदातारं शून्यपालं ममाश्रमे।
विनीतमाचार्यकुले सुयुक्तं गुरुकर्मणि ॥ ९ ॥
शिष्टं दान्तं कृतज्ञं च प्रियं च सततं मम।
न मे विक्रोशतो राजन् हर्तुमर्हसि कुञ्जरम् ॥ १० ॥
धृतराष्ट्र उवाच-गवां सहस्रं भवते ददानि दासीशतं निष्कशतानि पञ्च।
अन्यच्च वित्तं विविधं महर्षे किं ब्राह्मणस्येह गजेन कृत्यम् ॥ ११ ॥
गौतम उवाच-तवैव गावो हि भवन्तु राजन्दास्यः सनिष्का विविधं च रत्नम्।
अन्यच्च वित्तं विविधं नरेन्द्र किं ब्राह्मणस्येह धनेन कृत्यम् ॥ १२ ॥
धृतराष्ट्र उवाच- ब्राह्मणानां हस्तिभिर्नास्ति कृत्यं राजन्यानां नागकुलानि विप्र।
स्वं वाहनं नयतो नास्त्यधर्मो नागश्रेष्ठं गौतमास्मान्निवर्त ॥ १३ ॥
गौतम उवाच-यत्र प्रेतो नन्दति पुण्यकर्मा यत्र प्रेतः शोचते पापकर्मा।
वैवस्वतस्य सदने महात्मंस्तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ १४ ॥

कष्टसे पाले हुए मेरे इस पुत्रतुल्य हाथीको मत हरो। हे महाराज! साधु-लोग सात पग वार्त्तालापसे ही मित्रता कहा करते हैं, इसलिये तुम्हें मित्रद्रोह स्पर्श न करे। यह हाथी यूथसे बिछुड कर मेरे आश्रममें निवास करके मुझे काष्ठ और जल ला देता है, यह आचार्य-कुलमें अत्यन्त विनीत, गुरुके कार्यमें रत, शिष्ट, धार्मिक, कृतज्ञ और सदा मुझे प्रिय है। हे महाराज! इसलिये मेरे इस प्रकार चिल्लाते रहनेपर तुम्हें हाथी हरना उचित नहीं है। (७-१०)

धृतराष्ट्र बोले, हे महर्षि! मैं आपको एक हजार गऊ, एक सौ दासी, पांच सौ मुहर तथा और भी अनेक प्रकारका धन देता हूं, आप ब्राह्मण हैं, आपको हाथी लेनेसे क्या प्रयोजन है? (११)

गौतम बोले, हे नरनाथ महाराज! गऊ, दासी और मुहरोंके सहित अनेक प्रकारके रत्न और बहुतसा धन तुम्हारे ही रहे, इस लोकमें ब्राह्मणोंको धनसे क्या प्रयोजन है? (१२)

धृतराष्ट्र बोले, हे विप्र! ब्राह्मणोंका हाथीके सहारे कुछ कार्य नहीं होता, हाथी क्षत्रियोंके ही चढनेके लिये हैं, इसलिये अपने चढनेके लिये इस श्रेष्ठ हाथीको लेजानेसे मुझे कुछ अधर्म नहीं है। हे गौतम! इसलिये आप इस कार्यसे निवृत्त हो। (१३)

गौतम बोले, हे महात्मन् जिस स्थानमें पुण्य कर्म करनेवाले प्रेत आनन्दित होते हैं और पापी प्रेत शोक

धृतराष्ट्र उवाच- ये निष्क्रिया नास्तिकाः श्रद्दधानाः पापात्मान इन्द्रियार्थेनिविष्टाः
यमस्य ते यातनां प्राप्नुवन्ति परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ १५ ॥
गौतम उवाच- वैवस्वती संयमनी जनानां यत्रानृतं नोच्यते यत्र सत्यम्।
यत्राबला बलिनं यातयन्ति तत्र त्वाऽहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ १६ ॥
धृतराष्ट्र उवाच- ज्येष्ठां स्वसारं पितरं मातरं च यथा शत्रुं मदमत्ताश्चरन्ति।
तथाविधानामेष लोको महर्षे परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ १७ ॥
गौतम उवाच— मन्दाकिनी वैश्रवणस्य राज्ञो महाभागा भोगिजनप्रवेश्या।
गन्धर्वयक्षैरप्सरोभिश्च जुष्टा तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ १८ ॥
धृतराष्ट्र उवाच- अतिथिव्रताः सुव्रता ये जना वै प्रतिश्रयं ददति ब्राह्मणेभ्यः।
शिष्टाशिनः संविभज्याश्रितांश्च मन्दाकिनीं तेऽतिविभूषयन्ति ॥१९॥
गौतम उवाच— मेरोरग्रे यद्वनं भाति रम्यं सुपुष्पितं किन्नरीगीतजुष्टम्।
सुदर्शना यत्र जम्बूर्विशाला तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ २० ॥

किया करते हैं, उस ही यमके स्थानपर मैं तुमसे यह अपना हाथी लूंगा। (१४)

धृतराष्ट्र बोले, जो लोग क्रिया-रहित, नास्तिक, श्रद्धावर्जित, पापी और इन्द्रियोंके विषयोंमें फंसे हैं, वे ही यमयातना भोगते हैं, परन्तु मैं वहां न जाऊंगा। (१५)

गौतम बोले, यमपुरी सब लोगोंकी संयमनकारिणी है, जहांपर झूठ नहीं कहा जाता, केवल सत्य ही विराजता है, जहां निर्बल लोग बलवानोंको दुःख भोग कराते हैं, उस ही स्थानमें मैं तुमसे अपना हाथी लूंगा। (१६)

धृतराष्ट्र बोले, जो मदमत्त मनुष्य जेठी बहिन और पितामाताके विषयमें शत्रुताचरण करते हैं, वैसे लोगोंके लिये यमपुरी बनी है, किन्तु मैं वहां न जाऊंगा। (१७)

गौतम बोले, कुबेरराज्यमें भोगियों-को प्रविष्ट करानेवाली महाभागा मन्दा-किनी नदी है, जिसकी गन्धर्व अप्सरा और यक्षगण सदा सेवा किया करते हैं; उसी स्थानमें मैं निज फलस्वरूप हाथीको तुमसे लूंगा। (१८)

धृतराष्ट्र बोले, जो लोग सदा अतिथि और ब्राह्मणोंको आश्रय देते हैं तथा आश्रितोंको देकर शेषमें अन्नादि भोजन करते हैं; वेही मन्दाकिनीको विभूषित किया करते हैं. किन्तु मैं वहां न जाऊंगा। (१९)

गौतम बोले, सुमेरुके अग्रभागमें जो उत्तम रीतिसे फूला हुआ, किन्नरी-गीतसे युक्त वन विराजमान है और जहां-पर सुदर्शन जामुनका विशाल वृक्ष

धृतराष्ट्र उवाच—ये ब्राह्मणा मृदवः सत्यशीला बहुश्रुताः सर्वभूताभिरामाः।
येऽधीयते सेतिहासं पुराणं मध्वाहुत्या जुह्वति वै द्विजेभ्यः ॥ २१ ॥
तथाविधानामेष लोको महर्षे परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र।
यद्विद्यते विदितं स्थानमस्ति तद् ब्रूहि त्वं त्वरितो ह्येष यामि ॥ २२ ॥
गौतम उवाच—सुपुष्पितं किन्नरराजजुष्टं प्रियं वनं नन्दनं नारदस्य।
गन्धर्वाणामप्सरसां च शश्वत्तत्र त्वाऽहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ २३ ॥
धृतराष्ट्र उवाच- ये नृत्यगीते कुशला जनाः सदा ह्ययाचमानाः सहिताश्चरन्ति।
तथाविधानामेष लोको महर्षे परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ २४ ॥
गौतम उवाच-यत्रोत्तराः कुरवो भान्ति रम्या देवैः सार्धं मोदमाना नरेन्द्र।
यत्राग्नियोनाश्च वसन्ति लोका अब्योनयः पर्वतयोनयश्च ॥ २५ ॥
यत्र शक्रो वर्षति सर्वकामान्यत्र स्त्रियः कामचारा भवन्ति।
यत्र चेर्ष्या नास्ति नारीनराणां तत्र त्वाऽहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ २६ ॥

विद्यमान है, उस ही स्थानमें मैं तुमसे अपना फल स्वरूप हाथी लूंगा। (२०)

धृतराष्ट्र बोले, जो ब्राह्मण मृदुस्वभाव, सत्यशील और अनेक शास्त्रोंके जाननेवाले हैं, तथा जो सब प्राणियोंके मनोहर इतिहासके सहित पुराणोंको पढा करते हैं, वा मधुआहुतिसे ब्राह्मणोंको प्रसन्न करते हैं। हे महर्षि! वैसे ही लोगोंके लिये ऊपर कहे हुए लोक बने हैं, परन्तु मैं वहां न जाऊंगा। इसलिये यदि आपको मेरे योग्य कोई स्थान मालूम हो तो बताइये, मैं वहां जाऊं। (२१—२२)

गौतम बोले, सुन्दर फूलोंसे युक्त, किन्नरराजसेवित, देवर्षि नारद, गन्धर्व और अप्सराओंके लिये सदा प्रिय नन्दन नाम एक वन है, वहांपर मैं तुमसे अपना फलस्वरूप हाथी लूंगा। (२३)

धृतराष्ट्र बोले, हे महर्षि! जो मनुष्य नृत्यगीत आदि विषयोंमें निपुण, अयाचक और सदा संहतियुक्त होके विचरते हैं यह लोक वैसे ही लोगोंके लिये बना है किन्तु मैं वहां न जाऊंगा। (२४)

गौतम बोले, हे नरेन्द्र! जहांपर उत्तरकुरुदेशवासी लोग देवताओंके सङ्ग सुख भोगते हैं। जहां अग्नियोनिज, जलयोनिज और पर्वतयोनिज प्राणी निवास किया करते हैं, जहांपर इन्द्र अभिलषित विषयोंकी वर्षा करता है; जहां स्त्रियां कामचारिणी होती हैं, जहां नरनारियोंमें परस्पर ईर्षा नहीं है, उसी स्थानमें मैं तुमसे अपना हाथी लूंगा। (२५–२६)

धृतराष्ट्र उवाच- ये सर्वभूतेषु निवृत्तकामा अमांसादा न्यस्तदण्डाश्चरन्ति ।
न हिंसन्ति स्थावरं जङ्गमं च भूतानां ये सर्वभूतात्मभूताः ॥ २७ ॥
निराशिषो निर्ममा वीतरागा लाभालाभे तुल्यनिन्दाप्रशंसाः ।
तथाविधानामेष लोको महर्षे परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ २८ ॥
गौतमउवाच-ततोऽपरे भान्तिलोकाःसनातनाःसुपुण्यगन्धाविरजावीतशोकाः।
सोमस्य राज्ञः सदने महात्मनस्तत्र त्वाऽहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ २९ ॥
धृतराष्ट्र उवाच— ये दानशीलान प्रतिगृह्णते सदा न चाप्यर्थांश्चाददते परेभ्यः ।
येषामदेयमर्हते नास्ति किञ्चित्सर्वातिथ्याः सुप्रसादा जनाश्च ॥ ३० ॥
ये क्षन्तारो नाभिजल्पन्ति चान्यान्सत्रीभूताः सततं पुण्यशीलाः ।
तथाविधानामेष लोको महर्षे परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ ३१ ॥
गौतमउवाच—ततोऽपरे भान्तिलोकाःसनातनाविराजसोवितमस्काविशोकाः।
आदित्यदेवस्य पदं महात्मनस्तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ ३२ ॥
धृतराष्ट्रउवाच-स्वाध्यायशीलागुरुशुश्रूषणेरतास्तपस्विनःसुव्रताःसत्यसन्धाः।

धृतराष्ट्र बोले, हे महर्षि ! जो लोग सब जीवोंके विषयमें निवृत्तकाम होके मांस भक्षण नहीं करते और न्यस्तदण्ड होके विचरते हैं,जो लोग स्थावर जङ्गम जीवोंकी हिंसा नहीं करते, जो सब जीवोंकी आत्मभूत, आशारहित, निर्मल, रागहीन, हानि, लाभ, स्तुति और निन्दाको समान जानते हैं, ऐसे ही लोगोंके लिये वह लोक बना है ; किन्तु मैं वहां न जाऊंगा । (२७-२८)

गौतम बोले, उससे श्रेष्ठ, पवित्र, सुगन्धयुक्त, रजोगुण तथा शोकवर्जित सनातन लोक महात्मा सोमराजके स्थानमें शोभित हैं, वहां ही मैं तुमसे निज फलस्वरूप हाथी लूंगा । (२९)

धृतराष्ट्र बोले, हे महर्षि ! जो दानशील मनुष्य प्रतिग्रह नहीं करते तथा दूसरेसे धन नहीं लेते, पूज्य पुरुषोंके लिये जिनके निकट कुछ भी अदेय नहीं है, जो सबका ही आतिथ्य किया करते हैं ; तथा जो लोग प्रसन्न, क्षमाशील हैं और लोगोंके समीप अपने दुःखकी जल्पना नहीं करते, जीवोंके विषयमें आच्छादन स्वरूप होके सदा सबकी रक्षा किया करते हैं, तथा जो लोग पुण्यशील हैं, उन्हींके लिये यह लोक बना है ; किन्तु मैं वहां न जाऊंगा । (३० — ३१)

गौतम बोले,हे महात्मन् ! आदित्य-लोकमें उस ही प्रकारके रज और तमो-गुणसे रहित शोकहीन सनातन लोक सुशोभित हैं, वहां ही मैं तुमसे निज

आचार्याणामप्रतिकूलभाषिणो नित्योत्थिता गुरुकर्मस्वचोद्याः ॥ ३३ ॥
तथाविधानामेष लोको महर्षे विशुद्धानां भावितो वाग्यतानाम् ।
सत्ये स्थितानां वेदविदां महात्मनां परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ ३४ ॥
गौतमउवाच– ततोऽपरेभान्तिलोकाःसनातनाःसुपुण्यगन्धाविरजाविशोकाः।
वरुणस्य राज्ञः सदने महात्मनस्तत्र त्वाऽहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ ३५ ॥
धृतराष्ट्र उवाच-चातुर्मास्यैर्ये यजन्ते जनाः सदा तथेष्टीनां दशशतं प्राप्नुवन्ति
ये चाग्निहोत्रं जुह्वति श्रद्दधाना यथाऽऽम्नायं त्रीणि वर्षाणि विप्राः ॥३६॥
सुधारिणां धर्मधुरे महात्मनां यथोदिते वर्त्मनि सुस्थितानाम् ।
धर्मात्मनामुद्वहतां गतिं तां परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ ३७ ॥
गौतमउवाच-इन्द्रस्य लोका विरजा विशोकादुरन्वयाःकाङ्क्षितामानवानाम् ।
तस्याहं ते भवने भूरितेजसो राजन्निमं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ ३८ ॥
धृतराष्ट्र उवाच—शतवर्षजीवीयश्चशूरोमनुष्योवेदाध्यायीयश्चयज्वाऽप्रमत्तः ।

फलस्वरूप हाथी लूंगा । (३२)

धृतराष्ट्र बोले, हे महर्षि ! जो लोग स्वाध्यायशील, गुरुसेवामें रत, तपस्वी, उत्तमव्रती, सत्यसन्ध, आचार्यके विषय में अनुकूल वचन कहनेवाले, सदा उद्योगी और गुरुके कार्यमें सर्वदा स्वयं प्रवृत्त रहते हैं, वैसेही वाग्यत तथा सत्यमें स्थित महात्माओंके लिये यह लोक विहित हुआ है ; किन्तु मैं वहां न जाऊंगा । (३३–३४)

गौतम बोले, हे महात्मन् ! उसके अतिरिक्त और भी सनातन लोक वरुणराजके स्थानमें विराजमान हैं, वे लोक पवित्र, सुगन्धयुक्त, रजोगुणसे रहित और शोकहीन हैं ; उसही स्थान में मैं तुमसे अपना हाथी लूंगा ।(३५)

धृतराष्ट्र बोले, जो मनुष्य सदा चातुर्मास्य याग किया करते हैं, जो लोग दस सौ यज्ञका फल पाते हैं ; जो मनुष्य यथासमयमें स्नान करके श्रद्धापूर्वक तीन वर्ष अग्निहोत्रमें होम करते हैं, जो धर्मात्मा पुरुष धर्मभार उठानेके लिये उत्तम रीतिसे अपनी रक्षा किया करते हैं, जो लोग शास्त्रोक्त मार्गमें निवास करते हैं, उन्हीं महात्माओंको उक्त लोकमें गति प्राप्त होती है ; किन्तु मैं वहां न जाऊंगा । (३६-३७)

गौतम बोले, इन्द्रलोक रजोगुणसे रहित, शोकहीन, दुरत्यय और मनुष्यों को अभिलषित है । हे महाराज ! मैं अत्यन्त तेजसे युक्त इन्द्रलोकमें तुमसे अपना हाथी लूंगा । (३८)

धृतराष्ट्र बोले, जो शूर मनुष्य एक सौ वर्षतक जीवित रहके अप्रमत्त होकर

एते सर्वे शक्रलोकं व्रजन्ति परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ ३९ ॥
गौतम उवाच—प्राजापत्याःसन्तिलोकामहान्तोनाकस्यपृष्ठेपुष्कलावीतशोका।
मनीषिताः सर्वलोकोद्भवानां तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ ४० ॥
धृतराष्ट्र उवाच- ये राजानो राजसूयाभिषिक्ता धर्मात्मानो रक्षितारः प्रजानाम्।
ये चाश्वमेधावभृथे प्लुताङ्गास्तेषां लोका धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ ४१ ॥
गौतमउवाच-ततःपरंभान्तिलोकाःसनातनाःसुपुण्यगन्धाविरजावीतशोकाः।
तस्मिन्नहं दुर्लभे चाप्यधृष्ये गवां लोके हस्तिनं यातयिष्ये ॥ ४२ ॥
धृतराष्ट्र उवाच-योगो सहस्रीशतदःसमांसमां गवां शती दश दद्याच शक्त्या।
तथा दशभ्यो यश्च दद्यादिहैकां पञ्चभ्यो वा दानशीलस्तथैकाम् ॥ ४३ ॥
ये जीर्यन्ते ब्रह्मचर्येण विप्रा ब्राह्मीं वाचं परिरक्षन्ति चैव ।
मनस्विनस्तीर्थयात्रापरायणास्ते तत्र मोदन्ति गवां निवासे ॥ ४४ ॥
प्रभासं मानसं तीर्थं पुष्कराणि महत्सरः ।
पुण्यं च नैमिषं तीर्थं बाहुदां करतोयिनीम् ॥ ४५ ॥

वेद पढते तथा यज्ञ करते हैं, वेही इन्द्रलोकमें जाते हैं, किन्तु मैं वहांपर न जाऊंगा। (३९)

गौतम बोले, स्वर्गके ऊपर शोकहीन महत् पुष्कल प्राजापत्य लोक वर्त्तमान हैं, वह सबको ही अभिलषित है ; इस लिये मैं उस ही स्थानमें तुमसे यह हाथी लूंगा। (४०)

धृतराष्ट्र बोले, जो राजा राजसूय यज्ञमें अभिषिक्त हुए हैं, जो धर्मात्मा प्रजाके रक्षक हैं, तथा जिन्होंने अश्वमेध यज्ञमें अवभृत स्नान किये हैं, उन्हीं लोगोंके निमित्त प्राजापत्य लोक विहित है ; किन्तु मैं वहां न जाऊंगा। (४१)

गौतम बोले, इससे पवित्र, सुगन्धयुक्त, रजोगुणसे रहित, शोकहीन, सनातन गोलोक शोभित होरहा है, उस दुर्लभ अधर्षणीय गोलोकमें मैं तुमसे अपना हाथी लूंगा। (४२)

धृतराष्ट्र बोले, जो दानशील मनुष्य प्रतिवर्षमें एक लाख गऊ दान करते हैं, तथा जो लोग शक्तिके अनुसार एक हजार गोदान करते अथवा जो लोग इस लोकमें दश पुरुषोंको एक गऊ देते हैं, वा पांच पुरुषोंको एक गऊ दान किया करते हैं, तथा जो ब्रह्मचर्य व्रत करते हुए बूढे होते हैं, जो लोग सब भांतिसे वेदवाक्यकी रक्षा करते हैं, वे सब तीर्थयात्रा करनेवाले मनस्वी पुरुष गोलोकमें सस्त्रीक होके निवास किया करते हैं। प्रभास, मानस तीर्थ, पुष्कर,

गयां गयशिरश्चैव विपाशां स्थूलवालुकाम् ।
कृष्णां गङ्गां पञ्चनदं महाह्रदमथापि च ॥ ४६ ॥
गोमतीं कौशिकीं पम्पां महात्मानो धृतव्रताः ।
सरस्वतीदृषद्वत्यौ यमुनां ये तु यान्ति च ॥ ४७ ॥
तत्र ते दिव्यसंस्थाना दिव्यमाल्यधराः शिवाः ।
प्रयान्ति पुण्यगन्धाढ्या धृतराष्ट्रो न तत्र वै ॥ ४८ ॥
गौतम उवाच- यत्र शीतभयं नास्ति न चोष्णभयमण्वपि ।
न क्षुत्पिपासे न ग्लानिर्न दुःखं न सुखं तथा ॥ ४९ ॥
न द्वेष्यो न प्रियः कश्चिन्न बंधुर्न रिपुस्तथा ।
न जरामरणे तत्र न पुण्यं न च पातकम् ॥ ५० ॥
तस्मिन्विरजसि स्फीते प्रज्ञासत्त्वव्यवस्थिते ।
स्वयंभुभवने पुण्ये हस्तिनं मे प्रदास्यसि ॥ ५१ ॥
धृतराष्ट्र उवाच- निर्मुक्ताः सर्वसङ्गैर्ये कृतात्मानो यतव्रताः ।
अध्यात्मयोगसंस्थानैर्युक्ताः स्वर्गगतिं गताः ॥ ५२ ॥
ते ब्रह्मभवनं पुण्यं प्राप्नुवन्तीह सात्त्विकाः ।
न तत्र धृतराष्ट्रस्ते शक्यो द्रष्टुं महामुने ॥ ५३ ॥

महत् सरोवर, पवित्र नैमिष तीर्थ, बाहुदा, करतोया, गङ्गा, गयाशिरा, विपाशा, स्थूलवालुका, कृष्णा, गङ्गा, पंचनद, महाह्रद, गोमती, कौशिकी, पम्पा, सरस्वती, दृषद्वती और यमुना तीर्थमें जो सब व्रत करनेवाले महानुभाव मनुष्य जाके स्नान करते हैं, वेही गोलोकमें दिव्य शरीर धारण करके दिव्य मालासे विभूषित और पवित्र गन्धसे युक्त होके निवास करते हैं; किन्तु मैं वहां न आऊंगा। (४३—४८)

गौतम बोले, जिस स्थानमें सर्दी और गर्मीका कुछ भी भय नहीं है, जहां भूख प्यासकी ग्लानि और सुख दुःख नहीं होता, जहांपर कोई शत्रु, मित्र, बन्धु, द्वेषी वा प्रिय नहीं है; जहांपर जरा मृत्यु और पुण्य-पाप कुछ भी नहीं है, उस रजोगुणसे रहित निर्मल प्रज्ञानसत्वमें स्थित पवित्र स्वयंभूके स्थानमें तुम मुझे हाथी प्रदान करोगे। (४९—५१)

धृतराष्ट्र बोले, जो लोग सर्वसङ्ग-रहित, कृतकृत्य, यतव्रती, अध्यात्म-योग स्थापन करनेमें नियुक्त रहके स्वर्गमें गये हैं, वेही सत्त्वगुणसे युक्त पुरुष पवित्र ब्रह्मस्थानमें गमन किया

गौतम उवाच-रथन्तरं यत्र बृहच्च गीयते यत्र वेदी पुण्डरीकैस्तृणोति ।
यत्रोपयाति हरिभिः सोमपीथी तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ ५४ ॥
बुध्यामि त्वां वृत्रहणं शतक्रतुं व्यतिक्रमन्तं भुवनानि विश्वा ।
कच्चिन्न वाचा वृजिनं कदाचिदकार्षं ते मनसोऽभिषङ्गात् ॥ ५५ ॥
शतक्रतुरुवाच-मघवाहं लोकपथं प्रजानामन्वागमं परिवादे गजस्य ।
तस्माद्भवान्प्रणतं माऽनुशास्तु ब्रवीषि यत्तत्करवाणि सर्वम् ॥ ५६ ॥
गौतम उवाच-श्वेतं करेणुं मम पुत्रं हि नागं यं मेऽहार्षीर्दश वर्षाणि बालम् ।
यो मे वने वसतोऽभूद् द्वितीयस्तमेव मे देहि सुरेन्द्र नागम् ॥ ५७ ॥
शतक्रतुरुवाच-अयं सुतस्ते द्विजमुख्य नाग आगच्छति त्वामभिवीक्षमाणः ।
पादौ च ते नासिकयोपजिघ्रते श्रेयो ममाध्याहि नमश्च तेऽस्तु ॥५८॥
गौतम उवाच- शिवं सदैवेह सुरेन्द्र तुभ्यं ध्यायामि पूजां च सदा प्रयुञ्जे ।
ममापि त्वं शक्र शिवं ददस्व त्वया दत्तं प्रतिगृह्णामि नागम् ॥ ५९ ॥

करते हैं । हे महामुनि ! वहांपर आप मुझे न देखेंगे । (५२—५३)

गौतम बोले, जहांपर बृहत् रथन्तर सामवेद गाया जाता है, जहां सफेद सरसिजके द्वारा सब वेदी शोभित हैं, जहांपर लोग घोडेके सहारे इन्द्रलोकमें गमन किया करते हैं, वहांपर मैं तुमसे अपना हाथी लूंगा । मैं यह जानता हूं, कि तुम वृत्रहन्ता शतक्रतु इन्द्र सब लोकोंमें विचरते हो । मैंने मनके पराभववश कदापि वचनके सहारे तुम्हारा कुछ अपराध तो नहीं किया है ? (५४—५५)

इन्द्र बोले, मैं देवराज हूं, हाथीके अपवाद विषयमें प्रजासमूहके मार्गका अनुगमन किया है; इसलिये मैं प्रणत होता हूं; कहिये आपकी क्या आज्ञा है ? आप जो कहेंगे मैं वह सब कार्य पूर्ण करूंगा (५६)

गौतम बोले, हे सुरेन्द्र ! मेरा श्वेतवर्ण दशवर्षीय बालक पुत्रस्वरूप जिस हाथीको तुमने हर लिया है, मेरे अकेले वनमें वास करनेपर जो हाथी द्वितीय हुआ था, आप मुझे वही हाथी दीजिये । (५७)

इन्द्र बोले, हे द्विजवर ! वह तुम्हारा पुत्र स्वरूप हाथी तुम्हें देखकर आ रहा है, अपने सूण्डसे तुम्हारे दोनों चरण सूंघता है । मैं आपको प्रणाम करता हूं, इसलिये मेरे कल्याणके लिये चिन्ता करिये । (५८)

गौतम बोले, हे सुरेन्द्र ! मैं सदा ही तुम्हारे कल्याणकी चिन्ता करता तथा सर्वदा तुम्हारी पूजा किया करता

शतक्रतुरुवाच-येषां वेदा निहिता वै गुहायां मनीषिणां सत्यवतां महात्मनाम्।
तेषां त्वयैकेन महात्मनाऽस्मि बुद्धस्तस्मात्प्रीतिमांस्तेऽहमद्य ॥ ६० ॥
हन्तैहि ब्राह्मण क्षिप्रं सह पुत्रेण हस्तिना।
त्वं हि प्राप्तुं शुभांल्लोकानह्नाय च चिराय च ॥ ६१ ॥
स गौतमं पुरस्कृत्य सह पुत्रेण हस्तिना।
दिवमाचक्रमे वज्री सद्भिः सह दुरासदम् ॥ ६२ ॥
इदं यः शृणुयान्नित्यं यः पठेद्वा जितेन्द्रियः।
स याति ब्रह्मणो लोकं ब्राह्मणो गौतमो यथा ॥ ६३॥[४८४२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे हस्तिकूटो नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

युधिष्ठिर उवाच- दानं बहुविधाकारं शान्तिः सत्यमहिंसितम्।
स्वदारतुष्टिश्चोक्ता ते फलं दानस्य चैव यत् ॥ १ ॥
पितामहस्य विदितं किमन्यत्तपसो बलात्।
तपसो यत्परं तेऽद्य तन्नो व्याख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥
भीष्म उवाच-तपः प्रचक्षते यावत्तावल्लोको युधिष्ठिर।

हूं। हे देवराज! आप भी मेरा कल्याण करिये, आपका दिया हुआ हाथी प्रतिग्रह करता हूं। (५९)

इन्द्र बोले, जिन सत्यवादी महानुभाव मनीषियोंके हृदयाकाशमें वेद स्थित है, उनके बीच आप ही एक मात्र महानुभाव हैं, तुम्हारे द्वारा सावधान होनेसे इस समय मैं तुमपर प्रसन्न हुआ हूं। हे विप्रवर! आप निज पुत्र कुञ्जरके सहित सदाके लिये शुभ लोक पानेके निमित्त शीघ्र ही चलिये। वज्रधारी इन्द्र पुत्रस्वरूप हाथीके सहित गौतमको सङ्ग लेकर साधुओंके दुरासद सुरलोकमें गये। जो लोग जितेन्द्रिय होके सदा इस कथाको सुनते वा पढते हैं, वे गौतम ब्राह्मणकी भांति ब्रह्मलोकमें गमन किया करते हैं। (६०—६३)

अनुशासनपर्वमें १०२ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १०३ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आपने अनेक प्रकारके दानके विषय, शान्ति, सत्य, अहिंसा और निज स्त्रीमें सन्तुष्टि तथा दान करनेसे जो फल होते हैं, उन्हें वर्णन किया; तपोबलके अतिरिक्त और दूसरा आपको क्या विदित है? तपस्यासे श्रेष्ठ दूसरा क्या है? उसे आप वर्णन करिये। (१—२)

मतं ममात्र कौन्तेय तपो नानशनात्परम् ॥ ३ ॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
भगीरथस्य संवादं ब्रह्मणश्च महात्मनः ॥ ४ ॥
अतीत्य सुरलोकं च गवां लोकं च भारत ।
ऋषिलोकं च सोऽगच्छद्भगीरथ इति श्रुतम् ॥ ५ ॥
तं तु दृष्ट्वा वचः प्राह ब्रह्मा राजन्भगीरथम् ।
कथं भगीरथागास्त्वमिमं लोकं दुरासदम् ॥ ६ ॥
न हि देवा न गन्धर्वा न मनुष्या भगीरथ ।
आयान्त्यतप्ततपसः कथं वै त्वमिहागतः ॥ ७ ॥

भगीरथ उवाच-निष्काणां वै ह्यददं ब्राह्मणेभ्यः शतं सहस्राणि सदैव दानम् ।
ब्राह्मं व्रतं नित्यमास्थाय विद्धन्न त्वेवाहं तस्य फलादिहागाम् ॥ ८ ॥
दशैकरात्रान्दश पञ्चरात्रानेकादशैकादशकान् क्रतूंश्च ।
ज्योतिष्टोमानां च शतं यदिष्टं फलेन तेनापि च नागतोऽहम् ॥ ९ ॥
यच्चावसं जाह्नवीतीरनित्यः शतं समास्तप्यमानस्तपोऽहम् ।
अदां च तत्राश्वतरीसहस्रं नारीपुरं न च तेनाहमागाम् ॥ १० ॥

भीष्म बोले, हे कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर! जबतक तपस्याकी कथा कही जाती है, तबतक लोक विधृत रहते हैं, मेरा यह मत है, कि अनशनसे बढके दूसरी तपस्या और कुछ भी नहीं है। प्राचीन लोग इस विषयमें ब्रह्मा और भगीरथके संवादयुक्त यह पुरातन इतिहास कहा करते हैं। हे भारत! मैंने सुना है, कि भगीरथ सुरलोक और गोलोकको अतिक्रम करके ऋषिलोकमें गये। ब्रह्माने उस भगीरथको देखके यह वचन कहा, हे भगीरथ! तुमने किस प्रकार इस दुरासद लोकमें आगमन किया? हे भगीरथ! देव, गन्धर्व और मनुष्यगण विना तपस्या किये इस स्थानमें आनेमें समर्थ नहीं होते; इसलिये तुम किस प्रकार आये? । (३-७)

भगीरथ बोले, हे विद्वन्! मैंने सदा ब्राह्मव्रत अवलम्बन करके सौ हजार निष्क, एक सौ आठ पलके परिमित सुवर्ण दान किया था, उसके फलसे इस स्थानमें नहीं आया हूं। एक रात्रिमें, दश तथा पांच रात्रिसाध्य दश यज्ञ और ग्यारह रात्रिमें सिद्ध होनेवाले ग्यारह यज्ञ तथा एक सौ ज्योतिष्टोम यज्ञ किया था, उसके फलसे भी इस स्थानमें नहीं आया हूं। मैंने जो एक सौ वर्षतक तपस्या करते सदा गङ्गाके

दशायुतानि चाश्वानां गोयुतानि च विंशतिम् ।
पुष्करेषु द्विजातिभ्यः प्रादां शतसहस्रशः ॥ ११ ॥
सुवर्णचन्द्रोत्तमधारिणीनां कन्योत्तमानामददं सहस्रम् ।
षष्टिं सहस्राणि विभूषितानां जाम्बूनदैराभरणैर्न तेन ॥ १२ ॥
दशार्बुदान्यददं गोसवेज्यास्वेकैकशो दश गा लोकनाथ ।
समावत्साः पयसा समन्विताः सुवर्णकांस्योपदुहा न तेन ॥ १३ ॥
आप्तोर्यामेषु नियतमेकैकस्मिन्दशाददम् ।
गृष्टीनां क्षीरदात्रीणां रोहिणीनां शतानि च ॥ १४ ॥
दोग्ध्रीणां वै गवां चापि प्रयुतानि दशैव ह ।
प्रादां दशगुणं ब्रह्मन् तेनाहमिहागतः ॥ १५ ॥
वाजिनां बाह्लिजातानामयुतान्यददं दश ।
कर्कानां हेममालानां न च तेनाहमागतः ॥ १६ ॥
कोटीश्च काञ्चनस्याष्टौ प्रादां ब्रह्मन्दशान्वहम् ।
एकैकस्मिन् क्रतौ तेन फलेनाहं न चागतः ॥ १७ ॥

तटपर निवास किया था, और उस ही स्थानमें एक हजार अश्वतरी तथा कन्याभवन प्रदान किये थे, उसके फलसे इस स्थानमें नहीं आया हूं। पुष्कर तीर्थमें द्विजातियोंको दश अयुत घोडे और वीस अयुत गोदान किया था; चन्द्रमाकी भांति सफेद सुवर्णके आभूषण धारण करनेवाली साठ हजार उत्तम कन्यां दान की थी, उसके फल से भी इस स्थानमें नहीं आया हूं। (८-१२)

हे लोकनाथ! मैंने प्रति गोसव यज्ञमें एक एक ब्राह्मणको दश दश गऊ दान करते हुए बछडेयुक्त, दूधवाली, सुवर्णमय दोहनपात्रसे युक्त दश अर्बुद गऊ दान की है, उसके फलसे भी इस स्थानमें नहीं आया हूं। सोमयागमें प्रत्येक ब्राह्मणको उत्तम व्यायी हुई, दूध देनेवाली रोहिणी गऊ दान करते हुए सैकडों तथा सहस्रों गऊ दान की है। हे ब्रह्मन्! अन्तमें मैंने हर एक ब्राह्मण को एक एक सौ गऊ दान की थी, उसके फलसे यहांपर नहीं आया हूं। दश अयुत सुवर्ण मालायुक्त श्वेतवर्ण बाह्लिज घोडे दान किये हैं, उसके फलसे भी मैं इस स्थानमें नहीं आया हूं। हे ब्रह्मन्! एक एक यज्ञमें प्रतिदिन अठारह करोड स्वर्णमुद्रा दान किया है, उसके फलसे यहां नहीं आया। (१३-१७)

वाजिनां श्यामकर्णानां हरितानां पितामह ।
प्रादां हेमस्रजां ब्रह्मन्कोटीर्दश च सप्त च ॥ १८ ॥
ईषादन्तान्महाकायान्काञ्चनस्रग्विभूषितान् ।
पद्मिनो वै सहस्राणि प्रादां दश च सप्त च ॥ १९ ॥
अलंकृतानां देवेश दिव्यैः कनकभूषणैः ।
रथानां काञ्चनाङ्गानां सहस्राण्यददं दश ॥ २० ॥
सप्त चान्यानि युक्तानि वाजिभिः समलंकृतैः ।
दक्षिणावयवाः केचिद्वेदैर्ये संप्रकीर्तिताः ॥ २१ ॥
वाजपेयेषु दशसु प्रादां तेष्वपि चाप्यहम् ।
शक्रतुल्यप्रभावाणामिज्यया विक्रमेण ह ॥ २२ ॥
सहस्रं निष्ककण्ठानामददं दक्षिणामहम् ।
विजित्य भूपतीन्सर्वानर्थैरिष्ट्वा पितामह ॥ २३ ॥
अष्टभ्यो राजसूयेभ्यो न च तेनाहमागतः ।
स्रोतश्च यावद्गङ्गायाश्छन्नमासीज्जगत्पते ॥ २४ ॥
दक्षिणाभिः प्रवृत्ताभिर्मम नागां च तत्कृते ।
वाजिनां च सहस्रे द्वे सुवर्णशतभूषिते ॥ २५ ॥
वरं ग्रामशतं चाहमेकैकस्य त्रिधाऽददम् ।

हे पितामह ! हे ब्रह्मन् ! मैंने काले हरे रङ्गवाले स्वर्णमालायुक्त सत्तरह करोड घोडे और ईषसदृश दांतयुक्त बडे शरीरवाले, सोनेकी मालासे विभूषित सत्तरह हजार हाथी दिये हैं । हे देवेश ! सोनेके दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत सुवर्णखचित दश हजार रथ दान किये हैं और वेदमें जो दक्षिणाके अङ्गरूपसे वर्णित हुए हैं, वैसे ही अलंकृत घोडोंसे युक्त सात हजार रथ ब्राह्मणोंको दान दिये हैं, दस बार वाजपेय यज्ञमें पूर्वोक्त रथादि दिये गये हैं । यज्ञ और विक्रमके सहारे इन्द्रके सदृश प्रभावयुक्त, सोनेकी मुहर गलेमें पहरनेवाले एक हजार राजाओंको दक्षिणामें दान दिया है । हे पितामह ! मैं सब राजाओंको जीतके आठ राजसूय यज्ञ किये थे, उस हेतुसे भी इस स्थानमें नहीं आया हूं । (१८-२४)

हे जगत्पति ! मेरी दी हुई दक्षिणासे गङ्गाके सब स्रोत परिपूरित होगये थे, उस कारणसे भी मैं इस स्थानमें नहीं आया हूं । एक एक सौ स्वर्णमुद्राभूषित दो दो हजार घोडे और एक

तपस्वी नियताहारः शममास्थाय वाग्यतः ॥ २६ ॥
दीर्घकालं हिमवति गङ्गायाश्च दुरुत्सहाम् ।
मूर्ध्ना धारां महादेवः शिरसा यामधारयत् ।
न तेनाप्यहमागच्छं फलेनेह पितामह ॥ २७ ॥
शम्याक्षेपैरयजं यच्च देवान्साद्यस्कानामयुतैश्चापि यत्तत् ।
त्रयोदशद्वादशाहैश्च देव सपौण्डरीकान्न च तेषां फलेन ॥ २८ ॥
अष्टौ सहस्राणि ककुद्मिनामहं शुक्लर्षभाणामददं द्विजेभ्यः ।
एकैकं वै काञ्चनं शृङ्गमेभ्यः पत्नीश्चैषामददं निष्ककण्ठीः॥२९॥
हिरण्यरत्ननिचयानददं रत्नपर्वतान् ।
धनधान्यैः समृद्धांश्च ग्रामांश्चान्ये सहस्रशः ॥ ३० ॥
शतं शतानां गृष्टीनामददं चाप्यतन्द्रितः ।
इष्ट्वाऽनेकैर्महायज्ञैर्ब्राह्मणेभ्यो न तेन च ॥ ३१ ॥
एकादशाहैरयजं सदक्षिणैर्द्विर्द्वादशाहैरश्वमेधैश्च देव ।

एक सौ उत्तम गांव मैंने हर एक ब्राह्मणको तीन बार दान किये थे, मैंने शान्ति अवलम्बन करके वाग्यत, नियताहारी और तपस्वी होके हिमालयमें बहुत दिनोंतक गङ्गाकी उस दुरुत्सह धाराको धारण किया था, जिसे महादेवने सिरपर रक्खा; हे पितामह ! मैं उसके फलसे भी इस स्थानमें नहीं नहीं आया हूं। (२४—२७)

पृथुबुध्न अर्थात् स्थूल और गोलाकार काष्ठदण्ड बलवान् पुरुषके द्वारा फेंके जानेपर जितनी दूरमें गिरता है, जिस यज्ञमें उतने ही परिमाणसे वेदी हुआ करती है, उसे शम्याक्षेप यज्ञ कहते हैं। हे देव ! मैं उस ही शम्याक्षेप यज्ञ, पुण्डरीक और साद्यस्क नाम अयुत यज्ञ तथा बारह वा तेरह दिनोंमें पूर्ण होनेवाले यज्ञोंसे देवताओंकी पूजा की थी; उसके फलसे भी इस स्थानमें नहीं आया हूं। (२८)

मैं हर एक ब्राह्मणको आठ हजार ककुद्मी, सोनेके सींगसे युक्त सफेद वृषभ दान किये हैं और उन्हें मुहरके कण्ठेसे युक्त गऊ भी प्रदान की है। सुवर्ण, रत्न, रत्नोंके पर्वत और धनधान्यसे युक्त एक एक हजार गांव दान किये हैं। निरालसी होके बहुतेरे महायज्ञोंमें देवताओंकी पूजा करके ब्राह्मणोंको एक एक सौ उत्तम व्यायी हुई गऊ दान किया है; उसके फलसे भी यहां नहीं आया हूं। हे देव ! मैंने ग्यारह दिनमें दक्षिणायुक्त अश्वमेध यज्ञ किया और

आर्कायणैः षोडशभिश्च ब्रह्मंस्तेषां फलेनेह न चागतोऽस्मि ॥३२॥
निष्कैकण्ठमददं योजनाय तं तद्विस्तीर्णं काञ्चनपादपानाम् ।
वनं घृतानां रत्नविभूषितानां न चैव तेषामागतोऽहं फलेन ॥३३॥
तुरायणं हि व्रतमप्यधृष्यमक्रोधनोऽकरवं त्रिंशतोऽब्दान् ।
शतं गवामष्टशतानि चैव दिने दिने ह्यददं ब्राह्मणेभ्यः ॥ ३४ ॥
पयस्विनीनामथ रोहिणीनां तथैवान्याननडुहो लोकनाथ ।
प्रादां नित्यं ब्राह्मणेभ्यः सुरेश नेहागतस्तेन फलेन चाहम् ॥३५॥
त्रिंशदग्नीनहं ब्रह्मन्नयजं यच्च नित्यदा ।
अष्टाभिः सर्वमेधैश्च नरमेधैश्च सप्तभिः ॥ ३६ ॥
दशभिर्विश्वजिद्भिश्च शतैरष्टादशोत्तरैः ।
न चैव तेषां देवेश फलेनाहमिहागमम् ॥ ३७ ॥
सरय्वां बाहुदायां च गङ्गायामथ नैमिषे ।
गवां शतानामयुतमददं न च तेन वै ॥ ३८ ॥
इन्द्रेण गुह्यं निहितं वै गुहायां यद्भार्गवस्तपसेहाभ्यविन्दत् ।
जाज्वल्यमानमुशनस्तेजसेह तत्साधयामासमहं वरेण्य ॥ ३९ ॥

दो बार बारह दिनमें अश्वमेध यज्ञ तथा सोलह बार आर्कायण नाम यज्ञ किया है। हे ब्रह्मन् ! इनके फलसे भी मैं इस स्थानमें नहीं आया हूं। (२९–३२)

एक योजन लम्बा अत्यन्त चौडा रत्नविभूषित सुवर्णमय वृक्षोंसे युक्त वन दान किया है, उसके फलसे भी इस स्थानमें नहीं आया हूं। तीस वर्षतक क्रोधहीन रहके अनभिभवनीय उत्तरायणव्रत किया है, प्रतिदिन ब्राह्मणोंको नव सौ गोदान किया है। हे लोकनाथ सुरेश ! मैंने सदा ब्राह्मणोंको बैल और दूध देनेवाली गऊ प्रदान की है; उसके फलसे भी इस स्थानमें नहीं आया हूं। हे ब्रह्मन् ! मैं सदा अग्निहोत्र करते हुए तीस वर्षतक निवास किया है। आठ सर्वमेध, सात नरमेध, एक हजार अठारह विश्वजित् यज्ञ किया है। हे देवेश ! उसके फलसे भी मैं इस स्थानमें नहीं आया हूं। सरयू, बाहुदा, गङ्गा और नैमिषक्षेत्रमें सौ अयुत गौ दान किया है; उसके फलसे भी इस स्थानमें नहीं आया हूं। (३३–३८)

हे वरेण्य ! इन्द्रके हृदयाकाशमें तपस्याके द्वारा प्रवेश करके शुक्रने जो कुछ प्राप्त किया था, शुक्रके तेजसे जो इस लोकमें प्रकाशित है, मैंने उसे सिद्ध

ततो मे ब्राह्मणास्तुष्टास्तस्मिन्कर्माणि साधिते ।
सहस्रमृषयश्चासन्ये वै तत्र समागताः ॥ ४० ॥
उक्तस्तैरस्मि गच्छ त्वं ब्रह्मलोकमिति प्रभो ।
प्रीतेनोक्तः सहस्रेण ब्राह्मणानामहं प्रभो ।
इमं लोकमनुप्राप्तो मा भूत्तेऽत्र विचारणा ॥ ४१ ॥
कामं यथावद्विहितं विधात्रा पृष्टेन वाच्यं तु मया यथावत् ।
तपो हि नान्यच्चानशनान्मतं मे नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ॥४२॥
भीष्म उवाच— इत्युक्तवन्तं ब्रह्मा तु राजानं स भगीरथम् ।
पूजयामास पूजार्हं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ४३ ॥
तस्मादनशनैर्युक्तो विप्रान्पूजय नित्यदा ।
विप्राणां वचनात्सर्वं परत्रेह च सिध्यति ॥ ४४ ॥
वासोभिरन्नैर्गोभिश्च शुभैर्नैवेशिकैरपि ।
शुभैः सुरगणैश्चापि तोष्या एव द्विजास्तथा ।
एतदेव परं गुह्यमलोभेन समाचर ॥ ४५ ॥ [४८८७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे ब्रह्मभगीरथसंवादे त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

किया है, मेरे द्वारा वह कार्य सिद्ध होनेपर ब्राह्मण लोग मुझपर सन्तुष्ट हुए थे और उस ही स्थानमें एक हजार ऋषि इकट्ठे हुए थे। हे प्रभु! वे लोग मुझसे बोले, 'तुम ब्रह्मलोकमें जाओ।' एक हजार ब्राह्मणोंने प्रसन्न होके मुझसे ऐसा ही कहा है, इस ही निमित्त मैं इस स्थानमें आया हूं। इसलिये आप इस विषयकी चर्चा न करिये। हे सुरश्रेष्ठ! विधाताने जिसका विधिपूर्वक विधान किया है और मुझसे पूछा है, कि मुझे भी यथारीतिसे कहना योग्य है। मेरा यही मत है, कि उपवाससे बढके दूसरी कोई तपस्या श्रेष्ठ नहीं है। हे देव! मैं आपको प्रणाम करता हूं, आप मुझपर प्रसन्न होइये। (३९-४२)

भीष्म बोले, जब राजा भगीरथने यह सब कथा कही, तब प्रजापति ब्रह्माने विधिविहित कार्यसे उस पूजने योग्य राजाकी पूजा की। इसलिये तुम अनशन व्रत अवलम्बन करके प्रतिदिन ब्राह्मणोंकी पूजा करो, ब्राह्मणोंके वचनसे इस लोकमें सब कामना सिद्ध होती हैं। वस्त्र, अन्न, गऊ और शुभस्थानके सहारे ब्राह्मण लोग देवताओंको सन्तुष्ट करनेवाले हैं, इसलिये लोभरहित होके

युधिष्ठिर उवाच-शतायुरुक्तः पुरुषः शतवीर्यश्च जायते ।
कस्मान्म्रियन्ते पुरुषा बाला अपि पितामह ॥ १ ॥
आयुष्मान्केन भवति अल्पायुर्वाऽपि मानवः ।
केन वा लभते कीर्तिं येन वा लभते श्रियम् ॥ २ ॥
तपसा ब्रह्मचर्येण जपहोमैस्तथौषधैः ।
कर्मणा मनसा वाचा तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ३ ॥
भीष्म उवाच- अत्र तेऽहं प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वमनुपृच्छसि ।
अल्पायुर्येन भवति दीर्घायुर्वाऽपि मानवः ॥ ४ ॥
येन वा लभते कीर्तिं येन वा लभते श्रियम् ।
यथा वर्तयन्पुरुषः श्रेयसा संप्रयुज्यते ॥ ५ ॥
आचाराल्लभते ह्यायुराचाराल्लभते श्रियम् ।
आचारात्कीर्तिमाप्नोति पुरुषः प्रेत्य चेह च ॥ ६ ॥
दुराचारो हि पुरुषो नेहायुर्विन्दते महत् ।
त्रसन्ति यस्माद्भूतानि तथा परिभवन्ति च ॥ ७ ॥

इस परम गोपनीय विषयका अनुष्ठान करो । (४३--४५)

अनुशासनपर्वमें १०३ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें १०४ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! पुरुष शतायु तथा शतवीर्य होके जन्मता है, परन्तु बाल्य अवस्थामें भी मनुष्य किस कारणसे मृत्युके मुखमें पडता है ? किस प्रकार मनुष्य आयुष्मान् हुआ करता है और किसलिये अल्पायु होता है ? किस भांति कीर्ति प्राप्त होती है और कैसे लक्ष्मी मिलती है ? तपस्या, ब्रह्मचर्य, जप, होम, औषध, कर्म, मन और वचन, इन सबके बीच किस कारणसे ऊपर कहे हुए कार्य हो सकते हैं ? हे पितामह ! मेरे समीप आप यही विषय वर्णन करिये । (१-३)

भीष्म बोले, तुमने मुझसे जो प्रश्न किया है अर्थात् मनुष्य जिस प्रकार अल्पायु तथा दीर्घायु हुआ करता है, जिस भांति कीर्त्तिमान और लक्ष्मीयुक्त होता है तथा जिस प्रकार रहनेसे पुरुषका कल्याण होता है, वह विषय तुमसे कहता हूं । आचारसे ही पुरुषकी आयु बढती है, आचारहीसे लक्ष्मीयुक्त होता है और आचारसे ही इस लोक तथा परलोकमें कीर्त्ति प्राप्त होती है । दुराचारी मनुष्यको इस लोकमें दीर्घायु नहीं मिलती ; जिससे जीवोंको भय तथा परिभव प्राप्त

तस्मात्कुर्यादिहाचारं यदिच्छेद्भूतिमात्मनः।
अपि पापशरीरस्य आचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ ८ ॥
आचारलक्षणो धर्मः सन्तश्चारित्रलक्षणाः।
साधूनां च यथा वृत्तमेतदाचारलक्षणम् ॥ ९ ॥
अप्यदृष्टं श्रवादेव पुरुषं धर्मचारिणम्।
भूतिकर्माणि कुर्वाणं तं जनाः कुर्वते प्रियम् ॥ १० ॥
ये नास्तिका निष्क्रियाश्च गुरुशास्त्राभिलङ्घिनः।
अधर्मज्ञा दुराचारास्ते भवन्ति गतायुषः ॥ ११ ॥
विशीला भिन्नमर्यादा नित्यं संकीर्णमैथुनाः।
अल्पायुषो भवन्तीह नरा निरयगामिनः ॥ १२ ॥
सर्वलक्षणहीनोऽपि समुदाचारवान्नरः।
श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥ १३ ॥
अक्रोधनः सत्यवादी भूतानामविहिंसकः।
अनसूयुरजिह्मश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥ १४ ॥
लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः।

होती है, उसे ही महान् दुराचारी कहा जाता है; इस ही लिये यदि पुरुष अपने हितकी अभिलाष करे, तो इस लोकमें सदाचरण करे, सदाचरण पाप-युक्त शरीरका भी कुलक्षण हर लेता है। (४—८)

आचार, लक्षण, धर्म और चरित्रसे साधु लोग जाने जाते हैं; साधुओंका चरित्र ही आचारका लक्षण है। सत्कर्म करनेवाले धर्मचारी पुरुषोंको विना देखे ही लोक समाजमें सब कोई उनका नाम सुनते हैं, उन्हें प्रिय समझते हैं। जो लोग नास्तिक, क्रियारहित, गुरु और शास्त्रका वाक्य उल्लङ्घन करते हैं, जो अधर्मी तथा दुराचारी हैं, वेही गतायु होते हैं। जो लोग दुःशील, मर्यादा तोडनेवाले, सदा सङ्कीर्णताके सहित मैथुन करते हैं, वे इस लोकमें अल्पायु होके मरनेके अनन्तर नरकमें गमन करते हैं, जो मनुष्य सब लक्षणों से रहित होके भी सदाचारी होता है, जो श्रद्धावान् और असूयारहित है, वह एक सौ वर्षतक जीवित रहता है। (९—१३)

जो अक्रोधी, सत्यवादी, जीवोंकी हिंसा न करनेवाला, अनसूयु और कपटरहित है, वह एक सौ वर्षतक जीवित रहता है। जो मनुष्य ढेलोंको

नित्योच्छिष्टः संकुसुको नेहायुर्विन्दते महत् ॥ १५ ॥
ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्माथौं चानुचिन्तयेत् ।
उत्थायाचम्य तिष्ठेत पूर्वां सन्ध्यां कृताञ्जलिः ॥ १६॥
एवमेवापरां संध्यां समुपासीत वाग्यतः ।
नेक्षेतादित्यमुद्यन्तं नास्तं यान्तं कदाचन ॥ १७ ॥
नोपसृष्टं न वारिस्थं न मध्यं नभसो गतम् ।
ऋषयो नित्यसंध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुवन् ॥ १८ ॥
तस्मात्तिष्ठेत्सदा पूर्वां पश्चिमां चैव वाग्यतः ।
ये न पूर्वामुपासन्ते द्विजाः सन्ध्यां न पश्चिमाम् ॥१९॥
सर्वांस्तान् धार्मिको राजा शूद्रकर्माणि कारयेत् ।
परदारा न गन्तव्याः सर्ववर्णेषु कर्हिचित् ॥ २० ॥
न हीदृशमनायुष्यं लोके किंचन विद्यते ।
यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥ २१ ॥
यावन्तो रोमकूपाः स्युः स्त्रीणां गात्रेषु निर्मिताः ।
तावद्वर्षसहस्राणि नरकं पर्युपासते ॥ २२ ॥
प्रसाधनं च केशानामञ्जनं दन्तधावनम् ।

फोडता, तिनको तोडता, नखखादी, उच्छिष्टभोजी और सदा अस्थिर चित्तवाला होता है, वह इस लोकमें दीर्घायु नहीं पासकता । ब्राह्म मुहूर्तमें सावधान होवे और उस समय धर्म अर्थका विचार करे; उठके आचमन करके हाथ जोडके पूर्वसन्ध्याकी उपासना करे । उदयशील सूर्यको न देखे और अस्त होते हुए भी दिवाकरको न देखना चाहिये, राहुग्रस्त, जलके बीच और आकाशके मध्यमें गये हुए सूर्यको देखना योग्य नहीं है । ऋषि लोग सदा सन्ध्यावन्दन करते हैं, इसीसे उन्हें दीर्घायु प्राप्त हुई है; इसलिये पूर्व और पश्चिम सन्ध्याके समय वाग्यत होके रहे । (१४—१९)

जो ब्राह्मण प्रातःसंध्या और सायंसन्ध्या नहीं करते, धार्मिक राजा उनसे शूद्रकार्य करावे । सद्वर्णोंके बीच कदापि पराई स्त्री गमन करना उचित नहीं है; पुरुषके लिये जैसा परस्त्री गमन आयुका नाशक है, लोकमें वैसा अनायुष्य और कुछ भी नहीं है । स्त्रियोंके शरीरमें जितने रोम हैं, परस्त्रीगामी पुरुष उतने ही सहस्र वर्षतक नरकमें निवास करता है । (१९—२२)

पूर्वाह्ण एव कार्याणि देवतानां च पूजनम् ॥ २३ ॥
पुरीषमूत्रे नोदीक्षेन्नाधितिष्ठेत्कदाचन ।
नातिकल्यं नातिसायं न च मध्यन्दिने स्थिते ॥ २४ ॥
नाज्ञातैः सह गच्छेत नैको न वृषलैः सह ।
पन्था देयो ब्राह्मणाय गोभ्यो राजभ्य एव च ॥ २५ ॥
वृद्धाय भारतप्ताय गर्भिण्यै दुर्बलाय च ।
प्रदक्षिणं च कुर्वीत परिज्ञातान्वनस्पतीन् ॥ २६ ॥
चतुष्पथान्प्रकुर्वीत सर्वानेव प्रदक्षिणान् ।
मध्यन्दिने निशाकाले अर्धरात्रे च सर्वदा ॥ २७ ॥
चतुष्पथं न सेवेत उभे संध्ये तथैव च ।
उपानहौ च वस्त्रं च धृतमन्यैर्न धारयेत् ।
ब्रह्मचारी च नित्यं स्यात्पादं पादेन नाक्रमेत् ॥ २८ ॥
अमावास्यां पौर्णमास्यां चतुर्दश्यां च सर्वशः ।
अष्टम्यां सर्वपक्षाणां ब्रह्मचारी सदा भवेत् ॥ २९ ॥
वृथा मांसं न खादेत पृष्ठमांसं तथैव च ।
आक्रोशं परिवादं च पैशुन्यं च विवर्जयेत् ॥ ३० ॥
नारुन्तुदः स्यान्न नृशंसवादी न हीनतः परमभ्याददीत ।

केश संवारना अञ्जन लगाना, दांत धोना और देवताओंकी पूजा पूर्वाह्णमें ही करनी योग्य है। मलमूत्र न देखे और कदापि वहां निवास न करे। अत्यन्त भोर, मध्यान्ह और सन्ध्याके समय मल-मूत्र परित्याग न करे, अज्ञात पुरुषोंके सङ्ग न चले, अकेले अथवा चाण्डालके सहित मार्गमें चलना उचित नहीं है। ब्राह्मण, गऊ, राजा, वृद्ध, बोझा ढोनेवाले, गर्भिणी स्त्री और निर्बल पुरुषको देखके उन्हें जानेके लिये मार्ग देवे। विज्ञात वनस्पतियोंकी प्रदक्षिण करे, चौराहोंकी प्रदक्षिण करनी उचित है। मध्यान्ह, रात्रि, विशेष करके आधी रात, सन्ध्या और भोरके समय चौराहेपर न जावे। दूसरेका पहरा हुआ वस्त्र और पादुका न पहरे; सदा ब्रह्मचारी होवे, पांवसे पांवको आक्रमण न करे, अमावस्या पौर्णमासी, दोनों पक्षकी चतुर्दशी और अष्टमीमें सदा ब्रह्मचर्य करे। (२३-२९)

वृथा मांस भक्षण न करे और पृष्ठमांस खानेसे विरत होवे ; आक्रोश, परिवाद और चुगलखोरी न करनी

ययाऽस्य वाचा पर उद्विजेत न तां वदेद्रुशतीं पापलोक्याम् ॥३१॥
वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति यैराहतः शोचति राज्यहानि ।
परस्य वा मर्मसु ये पतन्ति तान्पण्डितो नावसृजेत्परेषु ॥ ३२ ॥
रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम् ।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम् ॥ ३३ ॥
कर्णिनालीकनाराचान्निर्हरन्ति शरीरतः ।
वाक्शल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः ॥३४ ॥
हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान्विद्याहीनान्विगर्हितान् ।
रूपद्रविणहीनांश्च सत्यहीनांश्च नाक्षिपेत् ॥ ३५ ॥
नास्तिक्यं वेदनिन्दां च देवतानां च कुत्सनम् ।
द्वेषस्तम्भोऽभिमानं च तैक्ष्ण्यं च परिवर्जयेत् ॥ ३६ ॥
परस्य दण्डं नोद्यच्छेत्क्रुद्धो नैनं निपातयेत् ।
अन्यत्र पुत्राच्छिष्याच्च शिक्षार्थं ताडनं स्मृतम् ॥३७॥
न ब्राह्मणान्परिवदेन्नक्षत्राणि न निर्दिशेत् ।
तिथिं पक्षस्य न ब्रूयात्तथाऽस्यायुर्न रिष्यते ॥ ३८ ॥

चाहिये । किसीके ऊपर गुस्सा न करे, निठुर वचन न कहे ; नीच पुरुषसे श्रेष्ठ द्रव्य लेना अनुचित है । जिस बातसे दूसरा पुरुष घबडाय, वैसी पापयुक्त अकल्याणकारी बात न कहे । जो वाक्यबाण मुखसे बाहर होते हैं, उससे घायल हुए पुरुष रात दिन शोक करते हैं, वाक्यरूपी बाण मनुष्योंके मर्मस्थल के अतिरिक्त और कहीं नहीं लगते ; इसलिये पण्डित पुरुष वैसे वाक्यबाणोंको न चलावे । बाणविद्ध और परशुसे कटा हुआ वन फिर अंकुरित होता है, किन्तु जो मर्मभेदी वचनसे घाव होता है, वह फिर पूरित नहीं होता । कर्णि, नालीक और बाण शरीरसे निकल आते हैं ; परन्तु हृदयमें लगे हुए वाग्बाणको निकालनेमें किसीकी सामर्थ्य नहीं होती । (३०—३४)

हीन अङ्गवाले, अत्यन्त रिक्ताङ्ग, निन्दनीय, विद्यारूप और धनसे रहित तथा निर्बल पुरुषकी निन्दा न करे । नास्तिकता, वेद और देवताओंकी निन्दा, द्वेष, दम्भ, अभिमान तथा तीक्ष्णता परित्याग करे । दूसरेके ऊपर दण्ड न चलावे, क्रुद्ध होके दूसरेके ऊपर प्रहार न करे, केवल पुत्र और शिष्यको शिक्षाके निमित्त ताडन करनेमें कोई बाधा नहीं है । ब्राह्मणोंकी

कृत्वा मूत्रपुरीषे तु रथ्यामाक्रम्य वा पुनः ।
पादप्रक्षालनं कुर्यात्स्वाध्याये भोजने तथा ॥ ३९ ॥
त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन् ।
अदृष्टमद्भिर्निर्णिक्तं यच्च वाचा प्रशस्यते ॥ ४० ॥
संयावं कृसरं मांसं शष्कुलीं पायसं तथा ।
आत्मार्थं न प्रकर्तव्यं देवार्थं तु प्रकल्पयेत् ॥ ४१ ॥
नित्यमग्निं परिचरेद्भिक्षां दद्याच्च नित्यदा ।
वाग्यतो दन्तकाष्ठं च नित्यमेव समाचरेत् ॥ ४२ ॥
न चाभ्युदितशायी स्यात्प्रायश्चित्ती तथा भवेत् ।
मातापितरमुत्थाय पूर्वमेवाभिवादयेत् ॥ ४३ ॥
आचार्यमथवाप्यन्यं तथाऽऽयुर्विन्दते महत् ।
वर्जयेद्दन्तकाष्ठानि वर्जनीयानि नित्यशः ॥ ४४ ॥
भक्षयेच्छास्त्रदृष्टानि पर्वस्वपि विवर्जयेत् ।
उदङ्मुखश्च सततं शौचं कुर्यात्समाहितः ॥ ४५ ॥
अकृत्वा देवपूजां च नाचरेद्दन्तधावनम् ।
अकृत्वा देवपूजां च नाभिगच्छेत्कदाचन ।

निन्दा और नक्षत्र निर्देश न करे, पक्षसम्बधीय तिथि न कहे, तो आयु नहीं घटती। मलमूत्र त्यागने, मार्गसे आने, वेदपाठ और भोजनके समय पैर धोवे। देवताओंने ब्राह्मणोंके लिये तीन विषयोंको पवित्र रूपसे कल्पना किया है, अदृष्ट जल प्रक्षालन तथा जो वचनके द्वारा उत्तम होता है, संयाव (घृत-दूधसे बना हुआ पिष्टक) कृशर तुल्य विलाश, मांस, पूरी और पायस अपने ही लिये न बनावे, और देवताओंके उद्देश्यसे प्रस्तुत करे। (३५—४१)

सदा अग्निकी परिचर्या करे, प्रतिदिन भिक्षा देवे और वाग्यत होके नित्य दतून करे, सूर्य उदय होनेपर सोता न रहे, सूर्य उदय होनेपर सोनेवाला मनुष्य प्रायश्चित्त करनेके योग्य होता है। उठके पहले मातापिताको प्रणाम करे, अनन्तर आचार्य और दूसरे गुरुजनोंकी वन्दना करे; तो दीर्घायु प्राप्त होती है। शास्त्रविहित काष्ठोंसे दतून करके जो शास्त्रनिषिद्ध है उसे त्याग देवे; वह सदा ही त्यागने योग्य है। (४२—४५)

उत्तर और मुख करके समाहित होकर शौचकार्य करे, विना दतून किये

अन्यत्र तु गुरुं वृद्धं धार्मिकं वा विचक्षणम् ॥ ४६ ॥
अवलोक्यो न चादर्शो मलिनो बुद्धिमत्तरैः।
न चाज्ञातां स्त्रियं गच्छेद्गर्भिणीं वा कदाचन ॥ ४७ ॥
उदक्शिरा न स्वपेत तथा प्रत्यक्शिरा न च।
प्राक्शिरास्तु स्वपेद्विद्वानथवा दक्षिणाशिराः ॥ ४८ ॥
न भग्ने नावशीर्णे च शयने प्रस्वपीत च।
नान्तर्धाने न संयुक्ते न च तिर्यक्कदाचन ॥ ४९ ॥
न चापि गच्छेत्कार्येण समयाद्वापि नास्तिकैः।
आसनं तु पदाकृष्य न प्रसज्जेत्तथा नरः ॥ ५० ॥
न नग्नः कर्हिचित्स्नायान्न निशायां कदाचन।
स्नात्वा च नावमृज्येत गात्राणि सुविचक्षणः ॥ ५१ ॥
न चानुलिम्पेदस्नात्वा स्नात्वा वासो न निर्धुनेत्।
न चैवार्द्राणि वासांसि नित्यं सेवेत मानवः ॥ ५२ ॥
स्रजश्च नावकृष्येत न बहिर्धारयीत च।
उदक्यया च संभाषां न कुर्वीत कदाचन ॥ ५३ ॥
नोत्सृजेत पुरीषं च क्षेत्रे ग्रामस्य चान्तिके।

देवपूजा न करे और विना देवपूजा किये कदापि गुरु, वृद्ध, धार्मिक तथा पण्डितोंके अतिरिक्त दूसरे किसी स्थानमें न जावे। बुद्धिमान मनुष्य मलिन आरसी न देखे, अपरिचित स्त्रीके निकट कदापि न जावे और गर्भिणी स्त्री गमन करना अनुचित है। उत्तर और पश्चिम ओर सिर करके न सोवे बुद्धिमान मनुष्य पूर्व और दक्षिण ओर सिर करके शयन करे। टूटी फटी शय्यामें सोना अनुचित है अत्यन्त अन्धेरे स्थान, नारीयुक्त शयनगृहमें और उलटा होके कदापि न सोवे, कार्य वा समय वशसे कदाचित् नास्तिकके निकट न जावे; पांवसे आसन आकर्षण करके मनुष्य उसपर न बैठे। वस्त्रहीन होके नदी प्रभृति अथवा रात्रिके समयमें कदापि स्नान न करे, बुद्धिमान मनुष्य स्नान करनेके अनन्तर शरीर मार्जन न करे; विनास्नानके अनुलेपन विहित नहीं है, स्नानके अनन्तर वस्त्र धोना अनुचित है। मनुष्य सदा भींगे वस्त्रको न पहरे, गलेसे स्वयं माला निकालके फेंकना योग्य नहीं है, बाहिरी हिस्सेमें माला न धारण करे। (४६-५३)

उभे मूत्रपुरीषे तु नाप्सु कुर्यात्कदाचन ॥ ५४ ॥
अन्नं बुभुक्षमाणस्तु त्रिर्मुखेन स्पृशेदपः ।
भुक्त्वा चान्नं तथैव त्रिर्द्विः पुनः परिमार्जयेत् ॥ ५५ ॥
प्राङ्मुखो नित्यमश्नीयाद्वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् ।
प्रस्कन्दयेच्च मनसा भुक्त्वा चाग्निमुपस्पृशेत् ॥ ५६ ॥
आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः ।
धन्यं पश्चान्मुखो भुङ्क्ते ऋतं भुङ्क्ते उदङ्मुखः ॥५७॥
अग्निमालभ्य तोयेन सर्वान्प्राणानुपस्पृशेत् ।
गात्राणि चैव सर्वाणि नाभिं पाणितले तथा ॥ ५८ ॥
नाधितिष्ठेत्तुषं जातु केशभस्मकपालिकाः ।
अन्यस्य चाप्यवस्नातं दूरतः परिवर्जयेत् ॥ ५९ ॥
शान्तिहोमांश्च कुर्वीत सावित्राणि च धारयेत् ।
निषण्णश्चापि खादेत न तु गच्छन्कदाचन ॥ ६० ॥
मूत्रं नोत्तिष्ठता कार्यं न भस्मनि न गोव्रजे ।
आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत् ॥ ६१ ॥

रजस्वला स्त्रीके सङ्ग कदापि वार्तालाप न करे, क्षेत्र और गांवके समीप मलत्याग न करे, जलमें मल-मूत्रका त्यागना वर्जित है । अन्न भोजनकी इच्छा करनेवाला मनुष्य मुखमें तीन-वार जल स्पर्श करे; अन्न भोजन करके उसी भांति तीनबारके अनन्तर फिर दो बार मुंह धोवे। प्रतिदिन पूर्व ओर मुंह करके चुप होकर अन्नकी निन्दा न करके भोजन करे। भोजन करके किञ्चित् शेषान्न छोड दे और भोजनके अनन्तर मनही-मन अग्नि स्पर्श करे । परमायु बढनेकी इच्छासे पूर्व ओर मुंह करके भोजन करे; यशकी कामनासे दक्षिण ओर मुंह करके भोजन करे, धन प्राप्तिकी इच्छासे पश्चिम ओर मुंह करके भोजन करना चाहिये और कल्याणकी इच्छा-वाले मनुष्य उत्तर ओर मुंह करके भोजन किया करते हैं। (५३-५७)

अग्नि स्पर्श करके जलसे नासिका प्रभृति ऊर्ध्वछिद्र शरीर, नाभि और करतल धोवे। तुष, केश, राख और कपालिकाके ऊपर कदापि न बैठे, दूसरेके नहानेका जल दूरसे ही परि-त्याग करे, शान्ति और होम करे, तथा गायत्री मन्त्र जपे, बैठके भोजन करे, चलते कदापि न खाये। खडा होकर पेशाब न करे, भस्म और गोस्थानमें

आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो वर्षाणां जीवते शतम् ।
त्रीणि तेजांसि नोच्छिष्ट आलभेत कदाचन ॥ ६२ ॥
अग्निं गां ब्राह्मणं चैव तथा ह्यायुर्न रिष्यते ।
त्रीणि तेजांसि नोच्छिष्ट उदीक्षेत कदाचन ॥ ६३ ॥
सूर्याचन्द्रमसौ चैव नक्षत्राणि च सर्वशः ।
ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति ॥६४॥
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते ।
अभिवादयीत वृद्धांश्च दद्याच्चैवासनं स्वयम् ॥ ६५ ॥
कृताञ्जलिरुपासीत गच्छन्तं पृष्ठतोऽन्वियात् ।
न चासीतासने भिन्ने भिन्नकांस्यं च वर्जयेत् ॥ ६६ ॥
नैकवस्त्रेण भोक्तव्यं न नग्नः स्नातुमर्हति ।
स्वप्तव्यं नैव नग्नेन न चोच्छिष्टोऽपि संविशेत् ॥ ६७ ॥
उच्छिष्टो न स्पृशेच्छीर्षं सर्वे प्राणास्तदाऽऽश्रयाः ।
केशग्रहं प्रहारांश्च शिरस्येतान्विवर्जयेत् ॥ ६८ ॥
न संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः ।
न चाभीक्ष्णं शिरः स्नायात्तथास्यायुर्न रिष्यते ॥६९॥

पेशाब न करना चाहिये। भींगे पांवसे युक्त होके न सोवे; पांव धोके भोजन करे, जो लोग पैर धोकर भोजन करते हैं, वे एक सौ वर्षतक जीवित रहते हैं। जूठे रहके अग्नि, ब्राह्मण और गऊ इन तीनों तेजस्वियोंको कदापि न छूवे, छूनेसे आयु नष्ट होती है। (५८-६३)

सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र इन तीनों तेजस्वियोंको जूठे रहके कदापि न देखना चाहिये। बूढे पुरुषके सम्मुख आनेपर युवा पुरुषोंके प्राण ऊपरको उठते हैं, उठके प्रणाम करनेसे वेही प्राण फिर निजस्थानमें स्थापित हुआ करते हैं। वृद्धोंको प्रणाम करे और उन्हें स्वयं आसन देवे, हाथ जोडके उनके सामने खडा रहे, जब वे चलने लगें, तो उनके पीछे पीछे चले। कटे फटे आसनपर न बैठे, टूटा कांसेका पात्र परित्याग करे, एकवस्त्र होकर भोजन न करे, वस्त्ररहित होके स्नान करना उचित नहीं है। वस्त्रहीन होके न सोवे, जूठे रहके सोना न चाहिये, जूठा रहके सिर न छूवे, क्यों कि समस्त प्राण सिरकोही अवलम्बन करके रहते हैं; केश ग्रहण न करे, शिरमें प्रहार न करे और दोनों हाथोंसे सिर न खुज-

शिरस्नातस्तु तैलैश्च नाङ्गं किंचिदपि स्पृशेत् ।
तिलसृष्टं न चाश्नीयात्तथाऽस्यायुर्न रिष्यते ॥ ७० ॥
नाध्यापयेत्तथोच्छिष्टो नाधीयीत कदाचन ।
वाते च पूतिगन्धे च मनसाऽपि न चिन्तयेत् ॥ ७१ ॥
अत्र गाथा यमोद्गीताः कीर्तयन्ति पुराविदः ।
आयुरस्य निकृन्तामि प्रजास्तस्याददे तथा ॥ ७२ ॥
उच्छिष्टो यः प्राद्रवति स्वाध्यायं चाधिगच्छति ।
यश्चानध्यायकालेऽपि मोहादभ्यस्यति द्विजः ॥ ७३ ॥
तस्य वेदः प्रणश्येत आयुश्च परिहीयते ।
तस्माद्युक्तो ह्यनध्याये नाधीयीत कदाचन ॥ ७४ ॥
प्रत्यादित्यं प्रत्यनलं प्रतिगां च प्रतिद्विजान् ।
ये मेहन्ति च पन्थानं ते भवन्ति गतायुषः ॥ ७५ ॥
उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्यादुदङ्मुखः ।
दक्षिणाभिमुखो रात्रौ तथा ह्यायुर्न रिष्यते ॥ ७६ ॥
त्रीन्कृशान्नावजानीयाद्दीर्घमायुर्जिजीविषुः ।

लावे ; बार बार सिरपर जल डालके स्नान न करे, इन कार्योंके करनेसे आयु नष्ट होती है। (६३—६९)

सिरमें तेल मलके दूसरे अंगको स्पर्श न करे ; तिलसंयुक्त भ्रष्ट वस्तु न खावे; जो लोग इन कार्योंको करते हैं, उनकी परमायु नष्ट होती है। जूठा रहके कदापि न पढावे और पढना भी अनुचित है। वायुयुक्त तथा दुर्गन्धित स्थानका मनसे भी ध्यान न करे ; इतिहास जाननेवाले पण्डित लोग इस विषयमें यमकी कही हुई गाथा वर्णन करते हैं, "जो पुरुष जूठे मुंहसे चलता और स्वाध्याय पाठ करता है, मैं उसकी आयु नष्ट करता तथा उसके पुत्रोंको ग्रहण किया करता हूं। " जो ब्राह्मण अनध्यायके समय मोहवशसे वेदाभ्यास करता है, उसके वेद विनष्ट होते और आयु क्षीण होजाती है ; इसलिये अनध्यायके समय कदापि न पढे। सूर्य, अग्नि, गऊ और ब्राह्मणके सम्मुख जो लोग मलमूत्र फेंकते हैं, वे गतायु होते हैं। (७०—७५)

दिनमें उत्तर ओर और रात्रिमें दक्षिण ओर मुंह करके मलमूत्र परित्याग करनेसे आयु नहीं घटती। जो जीवित रहनेकी इच्छावाले मनुष्य दीर्घायुकी आशा करते हैं, उन्हें उचित

ब्राह्मणं क्षत्रियं सर्पं सर्वे ह्याशीविषास्त्रयः ॥ ७७ ॥
दहत्याशीविषः क्रुद्धो यावत्पश्यति चक्षुषा ।
क्षत्रियोऽपि दहेत्क्रुद्धो यावत्स्पृशति तेजसा ॥ ७८ ॥
ब्राह्मणस्तु कुलं हन्याद् ध्यानेनावेक्षितेन च ।
तस्मादेतत्त्रयं यत्नादुपसेवेत पण्डितः ॥ ७९ ॥
गुरुणा चैव निर्बन्धो न कर्तव्यः कदाचन ।
अनुमान्यः प्रसाद्यश्च गुरुः क्रुद्धो युधिष्ठिर ॥ ८० ॥
सम्यङ् मिथ्याप्रवृत्तेऽपि वर्तितव्यं गुराविह ।
गुरुनिन्दा दहत्यायुर्मनुष्याणां न संशयः ॥ ८१ ॥
दूरादावसथान्मूत्रं दूरात्पादावसेचनम् ।
उच्छिष्टोत्सर्जनं चैव दूरे कार्यं हितैषिणा ॥ ८२ ॥
रक्तमाल्यं न धार्यं स्याच्छुक्लं धार्यं तु पण्डितैः ।
वर्जयित्वा तु कमलं तथा कुवलयं प्रभो ॥ ८३ ॥
रक्तं शिरसि धार्यं तु तथा वानेयमित्यपि ।
काञ्चनीयाऽपि माला या न सा दुष्यति कर्हिचित् ॥८४॥

है, कि वे ब्राह्मण, क्षत्रिय और सर्पको निर्बल जानके अवज्ञा न करे, क्यों कि ये तीनों ही आशीविष स्वरूप हैं। जैसे सर्प नेत्रसे देखकर जलाया करता है, वैसे ही जब क्षत्रिय क्रुद्ध होके देखता है, तो उस ही समय तेजके सहारे भस्म करता है; ब्राह्मण क्रुद्ध होनेपर ध्यान और नेत्रके सहारे तत्क्षण ही वंशनाश करता है; इसलिये पण्डित लोग यत्नपूर्वक इन तीनोंकी सेवा करें। (७६—७९)

हे युधिष्ठिर ! गुरुके साथ कभी शत्रुता न करनी चाहिये, गुरुके क्रुद्ध होनेपर उनका मान्य तथा उन्हें प्रसन्न करना योग्य है। गुरुके मिथ्या प्रवृत्ति होनेपर भी पूरी रीतिसे समीप उपस्थित रहना उचित है। गुरुनिन्दा निःसन्देह मनुष्योंकी आयु हरती है, हितैषी मनुष्य आश्रमके बाहर पेशाब करे और हाथ पैर धोवे; दूर जाके जूठ फेंके। पण्डित लोग कमल और कुवलयके अतिरिक्त दूसरे लाल रङ्गके फूलोंकी माला न पहरे, पण्डितोंको सफेद फूलोंकी माला पहरनी उचित है। लाल रङ्गके फूल तथा वानेय पुष्पोंको सिरपर रखना योग्य है, काञ्चन पुष्पकी माला पहरनेमें कदापि कुछ दोष नहीं होता। (८०—८४)

स्नातस्य वर्णकं नित्यमार्द्रं दद्याद्विशाम्पते ।
विपर्ययं न कुर्वीत वाससो बुद्धिमान्नरः ॥ ८५ ॥
तथा नान्यधृतं धार्यं न चापदशमेव च ।
अन्यदेव भवेद्वासः शयनीये नरोत्तम ॥ ८६ ॥
अन्यद्रथ्यासु देवानामर्चायामन्यदेव हि ।
प्रियङ्गुचन्दनाभ्यां च बिल्वेन तगरेण च ॥ ८७ ॥
पृथगेवानुलिम्पेत केसरेण च बुद्धिमान् ।
उपवासं च कुर्वीत स्नातः शुचिरलंकृतः ॥ ८८ ॥
पर्वकालेषु सर्वेषु ब्रह्मचारी सदा भवेत् ।
समानमेकपात्रे तु भुञ्जेन्नान्नं जनेश्वर ॥ ८९ ॥
नालीढया परिहृतं भक्षयीत कदाचन ।
तथा नोद्धृतसाराणि प्रेक्षते नाप्रदाय च ॥ ९० ॥
न संनिकृष्टे मेधावी नाशुचेर्न च सत्सु च ।
प्रतिषिद्धान्न धर्मेषु भक्ष्यान्भुञ्जीत पृष्ठतः ॥ ९१ ॥
पिप्पलं च वटं चैव शणशाकं तथैव च ।

हे नरनाथ! स्नात पुरुषको सदा आर्द्रवर्णक दान करे, बुद्धिमान मनुष्य दोनों वस्त्रोंका उलट फेर न करे, अर्थात् धोतीको दुपट्टा और दुपट्टाको धोती बनाना अनुचित हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! दूसरे के पहरे हुए तथा दशाहीन वस्त्रको पहरना योग्य नहीं है, शय्या और वस्त्र स्वतन्त्र होना चाहिये, मार्गमें चलनेके समय पृथक् वस्त्र और देवपूजाके समय पृथक् वस्त्र पहरना योग्य है। बुद्धिमान् मनुष्य प्रियंगु, चन्दन, बेल तथा तगरसे अनुलेपन करके केशरसे पृथक् अनुलेपन करे। स्नात, शुचि और अलंकृत होके उपवास करे, सब पर्वोंमें ब्रह्मचारी होके रहे। हे प्रजानाथ! एक पात्रमें दो मनुष्य समान अन्न भोजन न करे और रजस्वलाके हाथसे बना हुआ भोजन करना अनुचित है। जिसका सारपदार्थ निकाला गया हो, वैसी वस्तु न खावे और भोजनके समय में यदि कोई देखता रहे, तो उसे भोजनकी वस्तु विना दिये भोजन करना विहित नहीं है। (८५-९०)

साधुओंके समीप मेधावी मनुष्य अपवित्र होके अन्न भोजन न करे, श्राद्धादिके प्रतिषिद्ध वस्तुओंको श्राद्धके अभावमें भक्षण करना अनुचित है; कल्याणकी इच्छा करनेवाले श्रेष्ठ पुरुष

उदुम्बरं न खादेच्च भवार्थी पुरुषोत्तमः ॥ ९२ ॥
आजं गव्यं तथा मांसं मायूरं चैव वर्जयेत्।
वर्जयेच्छुष्कमांसं च तथा पर्युषितं च यत् ॥ ९३ ॥
न पाणौ लवणं विद्वान्प्राश्नीयान्न च रात्रिषु।
दधिसक्तून्न भुञ्जीत वृथा मांसं च वर्जयेत् ॥ ९४ ॥
सायं प्रातश्च भुञ्जीत नान्तराले समाहितः।
वालेन तु न भुञ्जीत परश्राद्धं तथैव च ॥ ९५ ॥
वाग्यतो नैकवस्त्रश्च नासंविष्टः कदाचन।
भूमौ सदैव नाश्नीयान्नानासीनो न शब्दवत् ॥ ९६ ॥
तोयपूर्वं प्रदायान्नमतिथिभ्यो विशांपते।
पश्चाद्भुञ्जीत मेधावी न चाप्यन्यमना नरः ॥ ९७ ॥
समानमेकपङ्क्त्यां तु भोज्यमन्नं नरेश्वर।
विषं हालाहलं भुङ्क्ते योऽप्रदाय सुहृज्जने ॥ ९८ ॥
पानीयं पायसं सक्तून्दधिसर्पिर्मधून्यपि।
निरस्य शेषमन्येषां न प्रदेयं तु कस्यचित् ॥ ९९ ॥
भुञ्जानो मनुजव्याघ्र नैव शङ्कां समाचरेत्।

पीपल, वट, शणशाक और उदुम्बर न खावे। बकरीका दूध और मयूरका मांस त्याग देवे, सूखा मांस और वासी अन्न त्यागने योग्य हैं। विद्वान् पुरुष हथेलीमें और रात्रिके समय नमक, दही, शक्कर सत्तू न खाय, वृथा मांस खाना उचित नहीं है। (९१–९४)

समाहित पुरुष सन्ध्या, सबेरे और समयके शेषमें भोजन न करे, केशयुक्त अन्न आदि न खाना चाहिये और शत्रुके श्राद्धमें भोजन करना अनुचित है। वाग्यत होके एक वस्त्र पहरके और विना बैठे कदापि भोजन न करे, सदा भूमिमें बैठके भोजन न करे, भोजन करनेके समय चुप रहे। हे नरनाथ! बुद्धिमान मनुष्य अतिथियोंको पहले जल देके सब अन्न दान करे, अनन्तर एकाचित्त होकर स्वयं भोजन करे, हे महाराज! एक पांतमें बैठे हुए सुहृदोंको समभावसे विना भोजन कराये जो पुरुष स्वयं भोजन करनेमें प्रवृत्त होता है वह हलाहल विष खाता है। (९५—९८)

जल, सत्तू, पायस, दूध, दही, घृत और मधु खाके उसका शेषभाग पुत्रादिके अतिरिक्त दूसरे लोगोंको न

दधि चाप्यनुपानं वै न कर्तव्यं भवार्थिना ॥ १०० ॥
आचम्य चैकहस्तेन परिप्लाव्यं तथोदकम् ।
अङ्गुष्ठं चरणस्याथ दक्षिणस्यावसेचयेत् ॥ १०१ ॥
पाणिं मूर्ध्नि समाधाय स्पृष्ट्वा चाग्निं समाहितः ।
ज्ञातिश्रैष्ठ्यमवाप्नोति प्रयोगकुशलो नरः ॥ १०२ ॥
अद्भिः प्राणान्समालभ्य नाभिं पाणितले तथा ।
स्पृशंश्चैव प्रतिष्ठेत न चाप्यार्द्रेण पाणिना ॥ १०३ ॥
अङ्गुष्ठस्यान्तराले च ब्राह्मं तीर्थमुदाहृतम् ।
कनिष्ठिकायाः पश्चात्तु देवतीर्थमिहोच्यते ॥ १०४ ॥
अङ्गुष्ठस्य च यन्मध्यं प्रदेशिन्याश्च भारत ।
तेन पित्र्याणि कुर्वीत स्पृष्ट्वाऽपो न्यायतः सदा ॥१०५॥
परापवादं न ब्रूयान्नाप्रियं च कदाचन ।
न मन्युः कश्चिदुत्पाद्यः पुरुषेण भवार्थिना ॥ १०६ ॥
पतितैस्तु कथां नेच्छेद्दर्शनं च विवर्जयेत् ।
संसर्गं च न गच्छेत तथाऽऽयुर्विन्दते महत् ॥ १०७ ॥
न दिवा मैथुनं गच्छेन्न कन्यां न च बन्धकीम् ।
न चास्नातां स्त्रियं गच्छेत्तथाऽऽयुर्विन्दते महत् ॥१०८॥

देवे। हे पुरुषश्रेष्ठ! मनुष्य भोजन करते समय भोज्यवस्तु परिपक्व होगी वा नहीं, ऐसी शङ्का न करे; परिपक्व होनेके निमित्त छाछ पीये, आचमन करके एक हाथसे दहिने पांवके अंगूठेको जलसे धोवे, सिरपर हाथ रखके अग्निको स्पर्श करके जो लोग समाहित होते हैं, व्यवहारमें निपुण उन मनुष्योंको स्वजनोंके बीच श्रेष्ठता प्राप्त होती है। जलसे प्राण स्थित करके नाभि और पाणितल स्पर्श करके प्रस्थान करे, भींगे हाथसे स्पर्श न करे, अंगूठेके नीचे ब्राह्मतीर्थ कही गई है और कनिष्ठा अंगुलीके नीचे देवतीर्थ वर्णित हुई है। (९९—१०४)

हे भारत! अंगूठा और तर्जनी अंगुलीके मध्यभागके सहारे जल स्पर्श करके पितृकार्य करे। दूसरेका अपवाद न करे कदापि अप्रिय वचन न कहे, मङ्गलकी कामना करनेवाला मनुष्य किसी भांति क्रोध न करे। पतित पुरुषोंके साथ वार्त्तालाप न करे। उसे देखना न चाहिये और उसका संसर्ग न करे, तो दीर्घायु प्राप्त होती है। दिन

स्वे स्वे तीर्थे समाचम्य कार्ये समुपकल्पिते।
त्रिः पीत्वाऽपो द्विः प्रमृज्य कृतशौचो भवेन्नरः ॥१०९॥
इन्द्रियाणि सकृत्स्पृश्य त्रिरभ्युक्ष्य च मानवः।
कुर्वीत पित्र्यं दैवं च वेददृष्टेन कर्मणा ॥ ११० ॥
ब्राह्मणार्थे च यच्छौचं तच्च मे शृणु कौरव।
पवित्रं च हितं चैव भोजनाद्यन्तयोस्तथा ॥ १११ ॥
सर्वशौचेषु ब्राह्मेण तीर्थेन समुपस्पृशेत्।
निष्ठीव्य तु तथा क्षुत्वा स्पृश्यापो हि शुचिर्भवेत् ॥११२॥
वृद्धो ज्ञातिस्तथा मित्रं दरिद्रो यो भवेदपि।
गृहे वासयितव्यास्ते धन्यमायुष्यमेव च ॥ ११३ ॥
गृहे पारावता धन्याः शुकाश्च सहसारिकाः।
गृहेष्वेते न पापाय तथा वै तैलपायिकाः।
उद्दीपकाश्च गृध्राश्च कपोता भ्रमरास्तथा ॥ ११४ ॥
निविशेयुर्यदा तत्र शान्तिमेव तदाऽऽचरेत्।
अमङ्गल्यानि चैतानि तथाऽऽक्रोशो महात्मनाम् ॥११५॥

में मैथुन न करे; कन्या, रजस्वला और व्रती और अस्नात स्त्री गमन न करे, इन नियमोंका प्रतिपालन करनेसे दीर्घायु प्राप्त होती है। निज निज तीर्थोंमें आचमन करके पूरी रीतिसे उपस्थित कार्यमें तीन बार जलसे मुंह धोके दो बार कुल्ला करनेसे मनुष्य पवित्र होता है। (१०५—१०९)

पुरुष एकबार सारी इन्द्रियोंको स्पर्श करते हुए तीन बार आचमन करके वेदविहित कार्यके सहारे दैव और पितृकर्म करे। हे कुरुनन्दन! ब्राह्मणोंके लिये जो शौचाचार विहित हुआ है और भोजनके पहले तथा शेषमें जो पवित्र और हितकर है, वह भी सुनो। सब प्रकारके शौचकार्योंमें ब्राह्मतीर्थके द्वारा जल स्पर्श करे, थूंकने और क्षुत् कार्य करानेपर जल स्पर्श करके पवित्र होवे, वृद्धों, स्वजनों और मित्रोंके दरिद्र होनेपर उन्हें निज गृहमें रक्खे; ऐसा करनेसे धन और आयुकी वृद्धि होती है। (११०—११३)

कबूतर तथा शुकशारिका प्रभृतिके गृहमें रहनेसे समृद्धि हुआ करती है; ये तथा तैलपायिका प्रभृति गृहमें रहनेसे अनिष्टके कारण नहीं होती, बल्कि अभ्युदयकी हेतु हुआ करती है। उद्दीपनकारी गिद्ध, बनके कपोत और भौंर यदि गृहके

महात्मनोऽतिगुह्यानि न वक्तव्यानि कर्हिचित्।
अगम्याश्च न गच्छेत राज्ञः पत्नीं सखींस्तथा ॥११६॥
वैद्यानां बालवृद्धानां भृत्यानां च युधिष्ठिर।
बन्धूनां ब्राह्मणानां च तथा शारणिकस्य च ॥ ११७॥
संबन्धिनां च राजेन्द्र तथाऽऽयुर्विन्दते महत्।
ब्राह्मणस्थपतिभ्यां च निर्मितं यन्निवेशनम् ॥ ११८ ॥
तदावसेत्सदा प्राज्ञो भवार्थी मनुजेश्वर।
सन्ध्यायां न स्वपेद्राजन्विद्यां न च समाचरेत् ॥११९॥
न भुञ्जीत च मेधावी तथाऽऽयुर्विन्दते महत्।
नक्तं न कुर्यात्पित्र्याणि भुक्त्वा चैव प्रसाधनम् ॥१२०॥
पानीयस्य क्रिया नक्तं न कार्या भूतिमिच्छता।
वर्जनीयाश्चैव नित्यं सक्तवो निशि भारत ॥ १२१ ॥
शेषाणि चैव पानानि पानीयं चापि भोजने।
सौहित्यं न च कर्तव्यं रात्रौ न च समाचरेत् ॥ १२२॥

बीच सहसा प्रविष्ट हों, तो उस समय शान्ति अवलम्बन करे; ये सब कार्य तथा महात्माओंके विषयमें आक्रोश प्रकाश करना अमांगलिक है, महात्माओंके अत्यन्त गोपनीय विषयको किसी स्थानमें कहना उचित नहीं है। हे युधिष्ठिर! अगम्या स्त्रीगमन न करे; राजपथमें वृद्ध, बालक और वैद्यकी स्त्री, सखी, सेवककी भार्या, बन्धु, ब्राह्मणी, शरणागत पुरुषकी स्त्री और सम्बन्धियोंकी स्त्रियोंसे रमण करना अनुचित है; हे राजेन्द्र! इन सब विषयोंको पालन करनेसे दीर्घायु प्राप्त होती है। हे नरनाथ! ब्राह्मणों तथा ज्योतिषियोंकी सम्मतिके द्वारा जो स्थान बनाया जावे, कल्याणकी इच्छा करनेवाला मनुष्य सदा उसहीमें वास करे। (११३–११९)

हे महाराज! मेधावी मनुष्य सन्ध्याके समय न सोवे तथा विद्याभ्यास और भोजन न करे; इन नियमोंके पालनेसे मनुष्य दीर्घायु होता है। रात्रिके समय पितृकार्य न करे और भोजनके अनन्तर केश संवारना अनुचित है, जो लोग ऐश्वर्यकी इच्छा करते हैं, उन्हें रात्रिमें स्नान आदि जलक्रिया न करनी चाहिये। हे भारत! रातके समय सत्तू खाना वर्जित है, भोजनके समय शेषान्न निर्मल होनेपर भी जलमें न छोडे। जबतक एक मनुष्य तृप्त न होजाय, तबतक दूसरे पुरुषको भोजन कराना उचित नहीं है;

द्विजच्छेदं न कुर्वीत भुक्त्वा न च समाचरेत् ।
महाकुले प्रसूतां च प्रशस्तां लक्षणैस्तथा ॥ १२३ ॥
वयस्थां च महाप्राज्ञः कन्यामावोढुमर्हति ।
अपत्यमुत्पाद्य ततः प्रतिष्ठाप्य कुलं तथा ॥ १२४ ॥
पुत्राः प्रदेया ज्ञानेषु कुलधर्मेषु भारत ।
कन्या चोत्पाद्य दातव्या कुलपुत्राय धीमते ॥ १२५ ॥
पुत्रा निवेश्याश्च कुलाद् भृत्या लभ्याश्च भारत ।
शिरःस्नातोऽथ कुर्वीत दैवं पित्र्यमथापि च ॥ १२६ ॥
नक्षत्रे न च कुर्वीत यस्मिन् जातो भवेन्नरः ।
न प्रोष्ठपदयोः कार्यं तथाऽऽग्नेये च भारत ॥ १२७ ॥
दारुणेषु च सर्वेषु प्रत्यरिं च विवर्जयेत् ।
ज्योतिषे यानि चोक्तानि तानि सर्वाणि वर्जयेत् ॥१२८॥
प्राङ्मुखः श्मश्रुकर्माणि कारयेत्सुसमाहितः ।
उदङ्मुखो वा राजेन्द्र तथाऽऽयुर्विन्दते महत् ॥ १२९ ॥
परिवादं न च ब्रूयात्परेषामात्मनस्तथा ।

रात्रिके समय निज अन्नको भोजन करनेमें उक्त आचरण न करे। पक्षियों-को मारना उचित नहीं है, पक्षिमांस खावे, परन्तु स्वयं न मारके मोल लिया हुआ मांस भक्षण करे। (११९-१२२)

अत्यन्त प्राज्ञ पुरुष महत् कुलमें उत्पन्न हुई श्रेष्ठ लक्षणयुक्त यथायोग्य अवस्थावाली कन्याके साथ विवाह करने के योग्य होगा। हे भारत! अनन्तर पुत्र उत्पन्न करके वंश स्थापित करते हुए उन्हें ज्ञान और कुलधर्म सिखानेके लिये विद्वान् पुरुषके निकट समर्पण करे और कन्या उत्पन्न होनेके अनन्तर सद्वंश में उत्पन्न हुए, बुद्धिशक्तिसे युक्त पात्रको दान करे, पुत्रोंका भी सत्कुल सम्बन्धमें ब्याह करे, कर्मचारियोंको संपादन करे और स्नान करके देवकार्य और पितृ-कार्य करना चाहिये। मनुष्य जिस नक्षत्रमें जन्मा है, उसमें पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, कृत्तिका और स्वाती नक्षत्र जोडके नवसे भाग करनेपर जो तारा पञ्चमी होवे, उस प्रत्यरिनक्षत्र तथा दारुण नक्षत्रोंमें देव और पितृकर्म न करे। हे भारत! ज्योतिष शास्त्रमें ये सब विषय कहे गये हैं; पूर्व और उत्तर ओर मुंह करके समाहित होकर क्षौरकार्य करावे। हे राजेन्द्र! ऐसा आचरण करनेसे दीर्घायु प्राप्त होता है। (१२३-१२९)

परिवादो ह्यधर्माय प्रोच्यते भरतर्षभ ॥ १३० ॥
वर्जयेद्व्यङ्गिनीं नारीं तथा कन्यां नरोत्तम ।
समार्षां व्यङ्गितां चैव मातुः स्वकुलजां तथा ॥१३१॥
वृद्धां प्रव्रजितां चैव तथैव च पतिव्रताम् ।
तथा निकृष्टवर्णां च वर्णोत्कृष्टां च वर्जयेत् ॥ १३२ ॥
अयोनिं च वियोनिं च न गच्छेत विचक्षणः ।
पिङ्गलां कुष्ठिनीं नारीं न त्वमुद्वोढुमर्हसि ॥ १३३ ॥
अपस्मारिकुले जातां निहीनां चापि वर्जयेत् ।
श्वित्रिणां च कुले जातां क्षयिणां मनुजेश्वर ॥ १३४ ॥
लक्षणैरन्विता या च प्रशस्ता या च लक्षणैः ।
मनोज्ञां दर्शनीयां च तां भवान्वोढुमर्हति ॥ १३५ ॥
महाकुले निवेष्टव्यं सदृशे वा युधिष्ठिर ।
अवरा पतिता चैव न ग्राह्या भूतिमिच्छता ॥ १३६ ॥
अग्नीनुत्पाद्य यत्नेन क्रियाः सुविहिताश्च याः ।
वेदे च ब्राह्मणैः प्रोक्तास्ताश्च सर्वाः समाचरेत् ॥१३७॥
न चेर्ष्या स्त्रीषु कर्तव्या रक्ष्या दाराश्च सर्वशः ।

अपना तथा दूसरेका अपवाद न करे। हे भरतश्रेष्ठ! ऐसा वर्णित है, कि परिवाद अधर्मका हेतु हुआ करता है। हे पुरुषोत्तम! न्यूनाङ्गी स्त्री और कन्याको परित्याग करे, तुल्य प्रवर, विरुद्धाङ्गी अधिकाङ्गी, मातृकुलमें उत्पन्न हुई, वर्षीयसी, प्रव्रजिता, पतिव्रता, निकृष्टवर्णा और श्रेष्ठ वर्णवाली कन्या परिवर्जन करे। बुद्धिमान् मनुष्य कुलशील को विना जाने तथा हीन कुलमें उत्पन्न हुई स्त्रीके सङ्ग रमण न करे। तुम्हें पिङ्गल वर्णवाली और कुष्ठ रोगग्रस्त स्त्रीगमन करना योग्य नहीं है। हे नरनाथ अपस्मार युक्त पुरुषके गृहमें जो कन्या उत्पन्न हुई, जो कन्या श्वित्ररोगयुक्त और क्षयी पुरुषके कुलमें उत्पन्न हुई हो तथा जो कन्या अत्यन्त हीन कुलमें जन्मी हो उसे ग्रहण न करे। १३०—१३४

जो कन्या सुलक्षण तथा श्रेष्ठ लक्षणोंसे युक्त हो, मनोहर और दर्शनीय हो उसके साथ तुम विवाह कर सकते हो। हे युधिष्ठिर! महत् वंश तथा सदृशकुल में विवाह करना योग्य है, ऐश्वर्यकी इच्छा करनेवाले मनुष्य हीनवर्णवाली और पतित स्त्रीको ग्रहण न करे। यत्नपूर्वक तीनों अग्नि उत्पन्न करके वेदमें

आनायुष्या भवेदीर्ष्या तस्मादीर्ष्यां विवर्जयेत् ॥१३८॥
अनायुष्यं दिवा स्वप्नं तथाऽभ्युदितशायिना।
प्रगे निशामाशु तथा नैवोच्छिष्टाः स्वपन्ति वै ॥१३९॥
पारदार्यमनायुष्यं नापितोच्छिष्टता तथा।
यत्नतो वै न कर्तव्यमभ्यासश्चैव भारत ॥ १४० ॥
सन्ध्यायां च न भुञ्जीत न स्नायेन्न तथा पठेत्।
प्रयतश्च भवेत्तस्यां न च किञ्चित्समाचरेत् ॥ १४१ ॥
ब्राह्मणान्पूजयेच्चापि तथा स्नात्वा नराधिप।
देवांश्च प्रणमेत्स्नातो गुरूंश्चाप्यभिवादयेत् ॥ १४२ ॥
अनिमन्त्रितो न गच्छेत यज्ञं गच्छेत दर्शकः।
अनर्चिते ह्यनायुष्यं गमनं तत्र भारत ॥ १४३ ॥
न चैकेन परिव्रज्यं न गन्तव्यं तथा निशि।
अनागतायां सन्ध्यायां पश्चिमायां गृहे वसेत् ॥१४४॥
मातुः पितुर्गुरूणां च कार्यमेवानुशासनम्।
हितं चाप्यहितं चापि न विचार्यं नरर्षभ ॥ १४५ ॥

जो सब क्रिया वर्णित हुई है, ब्राह्मणोंके द्वारा उनका अनुष्ठान करे। स्त्रियोंके विषयमें ईर्षा न करनी चाहिये, स्त्रियों-की सब प्रकारसे रक्षा करनी उचित है; स्त्रियोंके विषयमें ईर्षा करनेसे आयु घटती है, इसलिये ईर्षा न करनी चाहिये दिनका तथा भोरका सोना आयुको घटाता है, जो लोग रात्रिके प्रथमभागमें सोते तथा जूठे रहके निद्रित होते हैं, वे अल्पायु होते हैं। (१३५—१३९)

परनारी हरनेसे आयु घटती है, क्षौर कर्म कराके स्नान न करनेसे आयुकी ह्रास हुआ करती है। हे भारत! सन्ध्याके समय भोजन, अध्ययन और स्नान न करना चाहिये; उस समय ध्यानयुक्त होवे और कुछ कार्य न करे। हे भारत! स्नान करके ब्राह्मणोंकी पूजा करे, व्रती होकर देवपूजा करे, और गुरुजनोंको प्रणाम करे। हे भारत! विना निमन्त्रित हुए पुरुष कहीं न जावे केवल यज्ञस्थल देखनेके लिये जा सकता है, जाके सत्कृत न होनेसे आयु क्षीण होती है। (१४०—१४३)

एक पुरुषके साथ देशान्तरमें जाना उचित नहीं है और रात्रिके समय मार्ग में चलना अनुचित है, सन्ध्या न होते ही गृहमें आके निवास करना चाहिये। माता, पिता और गुरुजनोंकी आज्ञा

धनुर्वेदे च वेदे च यत्नः कार्यो नराधिप।
हस्तिपृष्ठेऽश्वपृष्ठे च रथचर्यासु चैव ह ॥ १४६ ॥
यत्नवान्भव राजेन्द्र यत्नवान्सुखमेधते।
अप्रधृष्यश्च शत्रूणां भृत्यानां स्वजनस्य च ॥ १४७ ॥
प्रजापालनयुक्तश्च न क्षतिं लभते क्वचित्।
युक्तिशास्त्रं च ते ज्ञेयं शब्दशास्त्रं च भारत ॥१४८ ॥
गान्धर्वशास्त्रं च कलाः परिज्ञेया नराधिप।
पुराणमितिहासाश्च तथाऽऽख्यानानि यानि च ॥१४९॥
महात्मनां च चरितं श्रोतव्यं नित्यमेव ते।
पत्नी रजस्वला या च नाभिगच्छेन्न चाह्वयेत् ॥१५०॥
स्नातां चतुर्थे दिवसे रात्रौ गच्छेद्विचक्षणः।
पञ्चमे दिवसे नारी षष्ठेऽहनि पुमान्भवेत् ॥ १५१ ॥
एतेन विधिना पत्नीमुपगच्छेत पण्डितः।
ज्ञातिसम्बन्धिमित्राणि पूजनीयानि सर्वशः ॥ १५२ ॥
यष्टव्यं च यथाशक्ति यज्ञैर्विविधदक्षिणैः।

माननी उचित है। उनके उपदेशसे चाहे भलाई हो वा बुराई होवे, किसी भांति उसमें विचार करना उचित नहीं है। हे भारत! धनुर्वेद, वेदपाठ, हाथी और घोडोंकी पीठपर चढने और रथ हांकने के विषयमें यत्न करना योग्य है। हे राजेन्द्र! तुम्हें यत्नवान होना चाहिये, यत्नवान मनुष्य सुखी होता है और शत्रुओं सेवकों तथा स्वजनोंके विषयमें अनभिभवनीय हुआ करता है, प्रजा पालनेमें नियुक्त रहके कहीं भी क्षतिग्रस्त नहीं होता। हे भरतकुलवर्धन नरनाथ! तुम्हें युक्तिशास्त्र, शब्दशास्त्र, गन्धर्व और नृत्यगीतादि विद्या जाननी योग्य है; पुराण, इतिहास, आख्यान और महानुभाव मनुष्योंके चरितोंको सदा सुनना उचित है। (१४४—१५०)

बुद्धिमान मनुष्य रजस्वला स्त्रीके निकट न जावे और उसे आवाहन भी न करे, चौथे दिन ऋतुस्नात स्त्रीके निकट जावे; पांचवें दिनमें कन्या और छठे दिनमें पुत्र जन्मता है, पण्डित पुरुष इसही विधिके अनुसार भार्याके निकट जाय। स्वजन, सम्बन्धी और मित्रगण सब भांतिसे पूजनीय हैं। शक्तिके अनुसार विविध दक्षिणायुक्त यज्ञसे देवताओंकी पूजा करना चाहिये।

अत ऊर्ध्वमरण्यं च सेवितव्यं नराधिप ॥ १५३ ॥
एष ते लक्षणोद्देश आयुष्याणां प्रकीर्तितः ।
शेषस्त्रैविद्यवृद्धेभ्यः प्रत्याहार्यो युधिष्ठिर ॥ १५४ ॥
आचारो भूतिजनन आचारः कीर्तिवर्धनः ।
आचाराद्वर्धते ह्यायुराचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ १५५ ॥
आगमानां हि सर्वेषामाचारः श्रेष्ठ उच्यते ।
आचारप्रभवो धर्मो धर्मादायुर्विवर्धते ॥ १५६ ॥
एतद्यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं महत् ।
अनुकम्प्य सर्ववर्णान् ब्रह्मणा समुदाहृतम् ॥ १५७ ॥ [५०४४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे आयुष्याख्याने चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

युधिष्ठिर उवाच– यथा ज्येष्ठः कनिष्ठेषु वर्तेत भरतर्षभ ।
कनिष्ठाश्च यथा ज्येष्ठे वर्तेरंस्तद्ब्रवीहि मे ॥ १ ॥
भीष्म उवाच– ज्येष्ठवत्तात वर्तस्व ज्येष्ठोऽसि सततं भवान् ।
गुरोर्गरीयसी वृत्तिर्या च शिष्यस्य भारत ॥ २ ॥

हे नरनाथ ! इसके अनन्तर वनवासी होना उचित है । (१५०—१५३)

हे युधिष्ठिर ! मैंने तुम्हारे निकट आयुष्कर लक्षणोंको संक्षेपमें कहा है, अवशिष्ट लक्षणोंको तीनों वेदोंके जाननेवाले पण्डितोंके समीप मालूम करना । आचारसे ऐश्वर्य होता है, आचारही कीर्त्तिको बढाता है, आचारसे ही आयु बढती है, आचारही अलक्षणोंको हरता है, सब शास्त्रोंमें आचार ही श्रेष्ठरूपसे वर्णित हुआ है । आचारसे ही धर्म होता है, धर्मसे ही परमायुकी वृद्धि हुआ करती है । ब्रह्माने सब लोगोंके विषयमें कृपा करके यह यशदायक, आयु बढानेवाला और स्वर्ग सुखकर महत् स्वस्त्ययन कहा है । (१५४–१५७)

अनुशासनपर्वमें १०४ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें १०५ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ ! जेठा भाई कनिष्ठ सहोदरोंके सङ्ग जैसा व्यवहार करे और कनिष्ठोंको जेठे भाईके साथ जैसा आचरण करना योग्य है, वह विषय आप मेरे समीप वर्णन करें । (१)

भीष्म बोले, हे तात ! तुम ज्येष्ठकी भांति सदा व्यवहार करते हो, क्योंकि तुम ही जेठे हो । हे भारत ! गुरुके विषयमें शिष्योंको जैसा व्यवहार करना योग्य है, अकृतप्रज्ञ गुरुके निकट शिष्य-

न गुरावकृतप्रज्ञे शक्यं शिष्येण वर्तितुम् ।
गुरोर्हि दीर्घदर्शित्वं यत्तच्छिष्यस्य भारत ॥ ३ ॥
अन्धः स्यादन्धवेलायां जडः स्यादपि वाऽबुधः ।
परिहारेण तद् ब्रूयाद्यस्तेषां स्याद्व्यतिक्रमः ॥ ४ ॥
प्रत्यक्षं भिन्नहृदया भेदयेयुः कृतं नराः ।
श्रियाऽभितप्ताः कौन्तेय भेदकामास्तथाऽरयः ॥ ५ ॥
ज्येष्ठः कुलं वर्धयति विनाशयति वा पुनः ।
हन्ति सर्वमपि ज्येष्ठः कुलं यत्रावजायते ॥ ६ ॥
अथ यो विनिकुर्वीत ज्येष्ठो भ्राता यवीयसः ।
अज्येष्ठः स्यादभागश्च नियम्यो राजभिश्च सः ॥ ७ ॥
निकृती हि नरो लोकान्पापान् गच्छत्यसंशयम् ।
विदुलस्येव तत्पुष्पं मोघं जनयितुः स्मृतम् ॥ ८ ॥
सर्वानर्थः कुले यत्र जायते पापपूरुषः ।
अकीर्तिं जनयत्येव कीर्तिमन्तर्दधाति च ॥ ९ ॥
सर्वे चापि विकर्मस्था भागं नार्हन्ति सोदराः ।
नाप्रदाय कनिष्ठेभ्यो ज्येष्ठः कुर्वीत यौतकम् ॥ १० ॥

गण उस प्रकार उपस्थित नहीं रह सकते। हे भारत! गुरुके लिये जैसी दीर्घ दर्शिता होनी चाहिये शिष्योंकोभी वैसी ही दूरदर्शिताकी आवश्यकता होती है। गुरुके दोष देखनेके समय अन्धा होवे, अबुधपुरुष जड होके रहे उसमें यदि कुछ व्यतिक्रम रहे, तो उस विषय को टालके अन्य वार्ता करे। हे कौन्तेय! शत्रुगण मातृभेदकी इच्छा करते हैं उनकी श्री देखकर उनका हृदय विदीर्ण होता है, इसलिये वे भाइयोंमें फूट करा देते हैं। (२—५)

ज्येष्ठ चाहे वंशकी वृद्धि करे अथवा कुलका नाश करे; वह सब कुछ विनष्ट कर सकता है, क्योंकि उसहीसे वंशकी उत्पत्ति होती है। जो ज्येष्ठ भ्राता कनिष्ठोंको ठगता है, वह जेठा नहीं है, वह अंशभागी नहीं होसकता, राजाओंको योग्य है, कि वैसे जेठको शासित करें। प्रवञ्चक मनुष्य निःसन्देह पापलोकोंमें जाता है, ऐसा वर्णित है, कि वेतवृक्षके पुष्प सदृश पिताका वैसा पुत्र निरर्थक ही है। जिस वंशमें पापी मनुष्य जन्म लेता है, वहां सब अनर्थ हुआ करते हैं, वह अकीर्ति उत्पन्न करके कीर्ति लोप करता है। (६—९)

अनुपघ्नन्पितुर्दायं जङ्घाश्रमफलोऽध्वगः ।
स्वयमीहितलब्धं तु नाकामो दातुमर्हति ॥ ११ ॥
भ्रातॄणामविभक्तानामुत्थानमपि चेत्सह ।
न पुत्रभागं विषमं पिता दद्यात्कदाचन ॥ १२ ॥
न ज्येष्ठो वाऽवमन्येत दुष्कृतः सुकृतोऽपि वा ।
यदि स्त्री यद्यवरजः श्रेयश्चेत्तत्तदाचरेत् ॥ १३ ॥
धर्मं हि श्रेय इत्याहुरिति धर्मविदो जनाः ।
दशाचार्यानुपाध्याय उपाध्यायान्पिता दश ॥ १४ ॥
दश चैव पितॄन्माता सर्वां वा पृथिवीमपि ।
गौरवेणाभिभवति नास्ति मातृसमो गुरुः ॥ १५ ॥
माता गरीयसी यच्च तेनैतां मन्यते जनः ।
ज्येष्ठो भ्राता पितृसमो मृते पितरि भारत ॥ १६ ॥
स ह्येषां वृत्तिदाता स्यात्स चैतान्प्रतिपालयेत् ।
कनिष्ठास्तं नमस्येरन्सर्वे छन्दानुवर्तिनः ॥ १७ ॥

कुकर्मी सहोदरगण पैतृक अंश ग्रहण करनेके योग्य नहीं होते, कनिष्ठोंको बिना हिस्सा दिये जेठा भाई कदापि दाय-विभाग न करे। प्रवासी पुरुष पैतृक धनमें हस्तक्षेप न करके निज जङ्घाश्रम से उत्पन्न हुआ फल पाता है, अकाम मनुष्य स्वयं समाहित होनेके प्राप्त धन को दान करनेमें समर्थ नहीं होता, अविभक्त भाइयोंको भोजनादि तथा धन विभाग एक साथ करना योग्य है, पिता कदापि पुत्रोंको विषम भाग प्रदान न करे। जेठा भाई चाहे दुष्कृती हो अथवा सुकृती हो, कदापि उसकी अवज्ञा न करनी चाहिये। (१०-१३)

स्त्री अथवा कनिष्ठ भ्राता यदि दुष्कृत कर्म करें, तौभी जिस भांति उनका कल्याण हो, वैसा कार्य करे। धर्म जाननेवाले पुरुष कल्याणको ही धर्म कहते हैं, दश आचार्योंसे उपाध्याय श्रेष्ठ है, दश उपाध्यायोंसे पिता श्रेष्ठ है और दश पिताओंसे माता श्रेष्ठ कही गई है, माता गौरवके सहारे सारी पृथ्वीको अभिभव करती है। इसलिये माताके समान गुरु नहीं है, माताके गरीयसी होनेसे ही लोग उसको मान्य किया करते हैं। (१३—१६)

हे भारत ! पिताके परलोकमें जानेपर जेठा भाई पितातुल्य है। क्यों कि वही कनिष्ठ भाइयोंका वृत्ति दाता है, वही इन्हें प्रतिपालन करता है,

तमेव चोपजीवेरन्यथैव पितरं तथा ।
शरीरमेतौ सृजतः पिता माता च भारत ॥ १८ ॥
आचार्यशास्ता या जातिः सा सत्या साऽजराऽमरा ।
ज्येष्ठा मातृसमा चापि भगिनी भरतर्षभ ॥ १९ ॥
भ्रातुर्भार्या च तद्वत्स्याद्यस्या बाल्ये स्तनं पिबेत् ॥२०॥ [५०६४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे ज्येष्ठकनिष्ठवृत्तिर्नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

युधिष्ठिर उवाच- सर्वेषामेव वर्णानां म्लेच्छानां च पितामह ।
उपवासे मतिरियं कारणं च न विद्महे ॥ १ ॥
ब्रह्मक्षत्रेण नियमाश्चर्तव्या इति नः श्रुतम् ।
उपवासे कथं तेषां कृत्यमस्ति पितामह ॥ २ ॥
नियमांश्चोपवासांश्च सर्वेषां ब्रूहि पार्थिव ।
आप्नोति कां गतिं तात उपवासपरायणः ॥ ३ ॥
उपावासः परं पुण्यमुपवासः परायणम् ।
उपोष्येह नरश्रेष्ठ किं फलं प्रतिपद्यते ॥ ४ ॥

छोटे भाई बडेके वशवर्ती होके उसे नमस्कार करें और जैसे पिताके आसरे जीवन बिताते थे, वैसे ही जेठे भाईके अवलम्बसे जीवनका समय बितावें। हे भारत ! मातापिता इस शरीरको उत्पन्न करते हैं और आचार्यके शासनके अनुसार जो उत्पत्ति होती है, वह सत्य, अजर तथा अमर है। हे भरतश्रेष्ठ ! जेठी बहिन मातातुल्य और जेठे भाईकी भार्या भी मातृसदृश है, क्यों कि बाल्यावस्थामें उसके स्तनका भी दूध पीया जाता है। (१७—२०)

अनुशासनपर्वमें १०५ अध्याय समाप्त

अनुशासनपर्वमें १०६ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, सब वर्णों तथा म्लेच्छोंकी भी उपवास करनेकी मति देखता हूं, किन्तु मैं इसका कारण कुछ भी नहीं जानता, ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी विषय में ही मैंने नियमाचरणकी विधि सुनी है। हे पितामह ! परन्तु उन लोगोंको किस प्रकार उपवास करना चाहिये ? हे राजन् ! सबके ही नियम और उपवासके विषय वर्णन करो। (१-३)

हे तात ! उपवासयुक्त मनुष्यको कैसी गति प्राप्त होती है ? उपवास परम पुण्य और उपवासही परम अवलम्ब है। हे नरश्रेष्ठ ! इस लोकमें उपवास करनेसे क्या फल मिलता है ? किसके सहारे

अधर्मान्मुच्यते केन धर्ममाप्नोति वा कथम् ।
स्वर्गं पुण्यं च लभते कथं भरतसत्तम ॥ ५ ॥
उपोष्य चापि किं तेन प्रदेयं स्यान्नराधिप ।
धर्मेण च सुखानर्थांल्लँभेयेन ब्रवीहि तम् ॥ ६ ॥
वैशम्पायन उवाच- एवं ब्रुवाणं कौन्तेयं धर्मज्ञं धर्मतत्त्ववित् ।
धर्मपुत्रमिदं वाक्यं भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ॥ ७ ॥
भीष्म उवाच- इदं खलु मया राजन् श्रुतमासीत्पुरातनम् ।
उपवासविधौ श्रेष्ठा गुणा ये भरतर्षभ ॥ ८ ॥
ऋषिमङ्गिरसं पूर्वं पृष्टवानस्मि भारत ।
यथा मां त्वं तथैवाहं पृष्टवांस्तं तपोधनम् ॥ ९ ॥
प्रश्नमेतं मया पृष्टो भगवानग्निसम्भवः ।
उपवासविधिं पुण्यमाचष्ट भरतर्षभ ॥ १० ॥
अङ्गिरा उवाच- ब्रह्मक्षत्रे त्रिरात्रं तु विहितं कुरुनन्दन ।
द्विस्त्रिरात्रमथैकाहं निर्दिष्टं पुरुषर्षभ ॥ ११ ॥
वैश्याः शूद्राश्च यन्मोहादुपवासं प्रचक्रिरे ।
त्रिरात्रं वा द्विरात्रं वा तयोर्व्युष्टिर्न विद्यते ॥ १२ ॥

मनुष्य अधर्मसे छुटता है? हे भरतसत्तम ! मनुष्य किस प्रकार पुण्यात्मा होता और स्वर्गलोक पाता है ? हे नरनाथ ! उपवास करके क्या दान किया जाता है ? जिस धर्मके सहारे सब सुखदायक विषय प्राप्त होते हैं आप उसे वर्णन करिये । (३—६)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब धर्मपुत्र धर्मज्ञ कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने ऐसा प्रश्न किया तब धर्मतत्त्वके जाननेवाले शन्तनुनन्दन भीष्म उनसे कहने लगे । (७)

भीष्म बोले, हे भरतश्रेष्ठ महाराज ! उपवासविषयमें जो सब गुण हैं, उस विषयमें मैंने यह पुरातन प्रबन्ध सुना था । हे भारत ! जैसा तुमने मुझसे पूछा है, इस ही भांति मैंने पहले तपोधन अङ्गिरा ऋषिसे प्रश्न किया था । हे भरतसत्तम ! जब मैंने अग्निपुत्र अङ्गिरा ऋषिसे इस पवित्र उपवास विषयमें प्रश्न किया, तब उन्होंने मेरे प्रश्नका उत्तर दिया । (८—१०)

अङ्गिरा बोले, हे पुरुषश्रेष्ठ कुरुनन्दन! ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके लिये त्रिरात्र उपवास विहित है, द्विरात्र, त्रिरात्र और एक रात्र भी निर्दिष्ट है, जो वैश्य

चतुर्थभक्तक्षपणं वैश्ये शूद्रे विधीयते ।
त्रिरात्रं न तु धर्मज्ञैर्विहितं धर्मदर्शिभिः ॥ १३ ॥
पञ्चम्यां वाऽपि षष्ठयां च पौर्णमास्यां च भारत ।
उपोष्य एकभक्तेन नियताऽऽत्मा जितेन्द्रियः ॥ १४ ॥
क्षमावान्रूपसम्पन्नः श्रुतवांश्चैव जायते ।
नानपत्यो भवेत्प्राज्ञो दरिद्रो वा कदाचन ॥ १५ ॥
यजिष्णुः पञ्चमीं षष्ठीं कुले भोजयते द्विजान् ।
अष्टमीमथ कौरव्य कृष्णपक्षे चतुर्दशीम् ॥ १६ ॥
उपोष्य व्याधिरहितो वीर्यवानभिजायते ।
मार्गशीर्षं तु यो मासमेकभक्तेन संक्षिपेत् ॥ १७ ॥
भोजयेच्च द्विजान् शक्त्या स मुच्येद्व्याधिकिल्बिषैः ।
सर्वकल्याणसंपूर्णः सर्वौषधिसमन्वितः ॥ १८ ॥
उपोष्य व्याधिरहितो वीर्यवानभिजायते ।
कृषिभागी बहुधनो बहुधान्यश्च जायते ॥ १९ ॥

और शूद्र मोहके वशमें होकर द्विरात्र अथवा त्रिरात्र उपवास करते हैं, उन्हें उससे कुछ भी फल नहीं मिलता। वैश्य और शूद्रके लिये चतुर्थ भक्त क्षपण अर्थात् एक दिन अहोरात्र उपवास कहा गया है और पहले तथा दूसरे दिन एकबार भोजन करना विहित है, धर्मदर्शी धर्मज्ञ ऋषियोंने वैश्यों और शूद्रोंके लिये त्रिरात्र उपवासकी विधि नहीं कही है। (११—१३)

हे भारत ! पञ्चमी, षष्ठी और पौर्णमासी तिथिमें नियतात्मा जितेन्द्रिय मनुष्य एक-भक्त-द्वारा उपवास करनेसे क्षमावान्, रूपवान और श्रुतवान हुआ करता है। बुद्धिमान मनुष्य इसी भाँति उपवास करनेसे कदापि पुत्रहीन तथा दरिद्र नहीं होता। पञ्चमी और षष्ठी तिथिमें यज्ञ करनेवाला मनुष्य सत्कुलमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणोंको भोजन करावे। हे कुरुनन्दन ! कृष्णपक्षकी अष्टमी और चतुर्दशी तिथिमें उपवास करनेसे मनुष्य व्याधिरहित तथा वीर्यवान होता है। मार्गशीर्ष महीनेमें जो पुरुष दिनमें एक बार भोजन करके महीना व्यतीत करता और भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, वह व्याधि तथा पापोंसे छूट जाता है। (१४-१७)

सर्वकल्याणमय तथा सर्वौषधियुक्त मनुष्य पूर्वोक्त तिथिमें उपवास करनेसे व्याधिरहित और वीर्यवान होके जन्मता

पौषमासं तु कौन्तेय भक्तेनैकेन यः क्षिपेत्।
सुभगो दर्शनीयश्च यशोभागी च जायते ॥ २० ॥
माघं तु नियतो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत्।
श्रीमत्कुले ज्ञातिमध्ये स महत्त्वं प्रपद्यते ॥ २१ ॥
भगदैवतमासं तु एकभक्तेन यः क्षिपेत्।
स्त्रीषु वल्लभतां याति वश्याश्चास्य भवन्ति ताः ॥२२॥
चैत्रं तु नियतो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत्।
सुवर्णमणिमुक्ताढ्ये कुले महति जायते ॥ २३ ॥
निस्तरेदेकभक्तेन वैशाखं यो जितेन्द्रियः।
नरो वा यदि वा नारी ज्ञातीनां श्रेष्ठतां व्रजेत् ॥२४॥
ज्येष्ठामूलं तु यो मासमेकभक्तेन संक्षिपेत्।
ऐश्वर्यमतुलं श्रेष्ठं पुमान्स्त्री वा प्रपद्यते ॥ २५ ॥
आषाढमेकभक्तेन स्थित्वा मासमतन्द्रितः।
बहुधान्यो बहुधनो बहुपुत्रश्च जायते ॥ २६ ॥
श्रावणं नियतो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत्।
यत्र तत्राभिषेकेण युज्यते ज्ञातिवर्धनः ॥ २७ ॥

है, वह कृषिभागी तथा अधिक धनधान्ययुक्त होता है। हे कौन्तेय ! जो लोग दिनमें एक वार खाके पूस महीना बिताते हैं, वे सुन्दर, दर्शनीय और यशभागी होते हैं। जो लोग माघ महीनेभर दिनमें एक वार भोजन करके समय व्यतीत करते हैं, वह लक्ष्मीयुक्त वंशमें स्वजनोंके बीच महत्त्व पाते हैं। फाल्गुन महीने भर जो लोग दिनमें एक वार भोजन करके समय बिताते हैं, वे स्त्रियोंके प्यारे होते और स्त्रियें उनके वशमें रहती हैं। जो लोग दिनमें एक वार भोजन करके चैत्र महीना बिताते हैं, वे सुवर्ण, मणि और मुक्तायुक्त महत्कुलमें जन्मते हैं। (१८-२३)

जो जितेन्द्रिय स्त्री अथवा पुरुष दिनमें एक वार भोजन करके वैसाख महिना व्यतीत करता है, उसे स्वजनोंमें श्रेष्ठता प्राप्त होती है। जेठ महीनेमें जो लोग दिनमें एक वार भोजन करके समय बितानेवाले पुरुष वा स्त्री उत्तम अतुल ऐश्वर्य प्राप्त होती है। जो लोग एकाहारी और अतन्द्रित होकर आषाढ महीना व्यतीत करते हैं, वे अधिक धनधान्ययुक्त तथा बहुतसे पुत्रोंके पिता होते हैं। जो मनुष्य सदा एक वार

प्रौष्ठपदं तु यो मासमेकाहारो भवेन्नरः।
गवाढ्यं स्फीतमचलमैश्वर्यं प्रतिपद्यते ॥ २८ ॥
तथैवाश्वयुजं मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत्।
मृजावान् वाहनाढ्यश्च बहुपुत्रश्च जायते ॥ २९ ॥
कार्तिकं तु नरो मासं यः कुर्यादेकभोजनम्।
शूरश्च बहुभार्यश्च कीर्तिमांश्चैव जायते ॥ ३० ॥
इति मासा नरव्याघ्र क्षिपतां परिकीर्तिताः।
तिथीनां नियमा ये तु शृणु तानपि पार्थिव ॥ ३१ ॥
पक्षे पक्षे गते यस्तु भक्तमश्नाति भारत।
गवाढ्यो बहुपुत्रश्च बहुभार्यः स जायते ॥ ३२ ॥
मासि मासि त्रिरात्राणि कृत्वा वर्षाणि द्वादश।
गणाधिपत्यं प्राप्नोति निःसपत्नमनाविलम् ॥ ३३ ॥
एते तु नियमाः सर्वे कर्तव्याः शरदो दश।
द्वे चान्ये भरतश्रेष्ठ प्रवृत्तिमनुवर्तता ॥ ३४ ॥
यस्तु प्रातस्तथा सायं भुञ्जानो नान्तरा पिबेत्।
अहिंसानिरतो नित्यं जुह्वानो जातवेदसम् ॥ ३५ ॥

भोजन करके सावन महिना बिताता है, वह किसी स्थानमें अवश्य अभिषिक्त होकर ज्ञातिवर्धक हुआ करता है। (२४-२७)

जो मनुष्य भादों महीनेमें एकाहारी होके रहता है, वह धनाढ्य होके समृद्धि तथा अचल ऐश्वर्य पाता है और जो मनुष्य एकाहारी होके आश्विन महीना बिताता है, वह पतिव्रता स्त्री और बहु-पुत्रयुक्त तथा वाहनानाढ्य होता है। कार्तिक महीनेमें जो मनुष्य एकाहारी होके रहता है, वह शूर बहुतसी स्त्रियों-से युक्त और कीर्तिमान होता है। हे नरश्रेष्ठ महाराज! प्रतिमहीनेमें एका-हारी पुरुषोंको जो फल मिलता है, वह कहा गया; अब तिथियोंके नियम सुनो। हे भारत! एक एक पक्ष बीतनेपर जो लोग भोजन करते हैं वे गोधन, बहु पुत्रयुक्त तथा दीर्घायु होते हैं। २८-३२

बारह वर्षतक जो लोग महीने महीने त्रिरात्र व्रत करते हैं उन्हें अनाविल, निःसपत्नी और गणाधिपत्य प्राप्त होता है। हे भरतश्रेष्ठ! प्रवृत्तिके वशवर्ती मनुष्योंको बारह वर्षतक इन नियमोंका और दोका प्रतिपालन करना चाहिये। हे नरनाथ! जो पुरुष भोरसे संध्या-

षड्भिः स वर्षैर्नृपते सिध्यते नात्र संशयः ।
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ३६ ॥
अभिवासे सोऽप्सरसां नृत्यगीतविनादिते ।
रमते स्त्रीसहस्राढ्ये सुकृती विरजो नरः ॥ ३७ ॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभं विमानमधिरोहति ।
पूर्णं वर्षसहस्रं च ब्रह्मलोके महीयते ॥ ३८ ॥
तत्क्षयादिह चागम्य माहात्म्यं प्रतिपद्यते ।
यस्तु संवत्सरं पूर्णमेकाहारो भवेन्नरः ॥ ३९ ॥
अतिरात्रस्य यज्ञस्य स फलं समुपाश्नुते ।
दश वर्षसहस्राणि स्वर्गे च स महीयते ॥ ४० ॥
तत्क्षयादिह चागम्य माहात्म्यं प्रतिपद्यते ।
यस्तु संवत्सरं पूर्णं चतुर्थं भक्तमश्नुते ॥ ४१ ॥
अहिंसानिरतो नित्यं सत्यवाग्विजितेन्द्रियः ।
वाजपेयस्य यज्ञस्य स फलं समुपाश्नुते ॥ ४२ ॥
दश वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।
षष्ठे काले तु कौन्तेय नरः संवत्सरं क्षिपन् ॥ ४३ ॥

पर्यन्त भोजन करनेके अनन्तर जल नहीं पीता और अहिंसामें रत होके अग्निमें होम करता है, वह निःसंदेह छः वर्षके बीच सिद्ध होता है, वही अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता है, वह रजोगुण से रहित सुकृती मनुष्य अप्सराओंके नृत्यगीतयुक्त स्थानमें सहस्र स्त्रियोंमें घिरके क्रीडा करता है, तपाये हुए सुवर्णसदृश प्रभायुक्त विमानपर चढता है और पूरे एक हजार वर्षतक ब्रह्मलोक में निवास करता है; अन्तमें पुण्यक्षीण होनेपर इस लोकमें आके महानुभावताको प्राप्त होता है । (३२-३९)

जो मनुष्य पूरे वर्ष भरतक एकाहार करता है, वह अतिरात्र यज्ञका फल भोग किया करता है और दश हजार वर्ष स्वर्गलोकमें निवास करके पुण्यक्षय होनेपर इस लोकमें आनेसे उसे बहुतसी सहायता मिलती है । जो लोग अहिंसा में रत, सत्यवादी जितेन्द्रिय होके संवत्सरके चतुर्थ भाग अर्थात् तीन महीने तक एकाहारी होते हैं, वे वाजपेय यज्ञका फल भोगते और दस हजार वर्ष स्वर्गलोकमें निवास करते हैं । हे कौन्तेय ! दिनके छठवें भागमें भोजन करके जो मनुष्य एक वर्षतक समय

अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः।
चक्रवाकप्रयुक्तेन विमानेन स गच्छति ॥ ४४ ॥
चत्वारिंशत्सहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते।
अष्टमेन तु भक्तेन जीवन्संवत्सरं नृप ॥ ४५ ॥
गवामयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः।
हंससारसयुक्तेन विमानेन स गच्छति ॥ ४६ ॥
पञ्चाशतं सहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते।
पक्षे पक्षे गते राजन्योऽश्नीयाद्वर्षमेव तु ॥ ४७ ॥
षण्मासानशनं तस्य भगवानङ्गिराऽब्रवीत्।
षष्टिर्वर्षसहस्राणि दिवमावसते च सः ॥ ४८ ॥
वीणानां वल्लकीनां च वेणूनां च विशांपते।
सुघोषैर्मधुरैः शब्दैः सुप्तः स प्रतिबोध्यते ॥ ४९ ॥
संवत्सरमिहैकं तु मासि मासि पिबेदपः।
फलं विश्वजितस्तात प्राप्नोति स नरो नृप ॥ ५० ॥
सिंहव्याघ्रप्रयुक्तेन विमानेन स गच्छति।
सप्ततिं च सहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते ॥ ५१ ॥

बिताते हैं। (३९-४३)

उन्हें अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है और वे चक्रवाकके द्वारा चलनेवाले विमानपर चढके गमन करते हैं तथा चालीस हजार वर्षतक देवलोकमें परम सुखसे निवास किया करते हैं। हे महाराज! जो मनुष्य दिनके आठवें भागमें भोजन करके वर्षभर जीवित रहते हैं, वे गवामय यज्ञका फल पाते हैं, हंस सारसयुक्त विमानपर चलते और पचास हजार वर्ष देवलोकमें प्रमुदित हुआ करते हैं। हे राजन्! एक पक्ष बीतनेपर दूसरे पक्षमें जो लोग भोजन किया करते हैं, उनका वर्ष भरके बीच छः महीना अनशन व्रत होता है, भगवान् आङ्गिराने कहा है, कि ऐसे व्रतधारी पुरुष साठ हजार वर्षतक स्वर्गलोकमें निवास करते हैं। (४४—४८)

हे नरनाथ! वे निद्रित होनेपर वीणा, वल्लकी और बांसुरीकी मधुर ध्वनिके सहारे जागते हैं। हे महाराज! जो लोग वर्ष भरके बीच एक महीनेतक केवल जल पीके जीवन धारण करते हैं, वे विश्वजित् यज्ञका फल पाते हैं और सिंहव्याघ्रयुक्त विमानके द्वारा चलते हैं तथा सत्तर हजार वर्षतक सुरलोकमें

मासादूर्ध्वं नरव्याघ्र नोपवासो विधीयते।
विधिं त्वनशनस्याहुः पार्थ धर्मविदो जनाः ॥ ५२ ॥
अनार्तो व्याधिरहितो गच्छेदनशनं तु यः।
पदे पदे यज्ञफलं स प्राप्नोति न संशयः ॥ ५३ ॥
दिवं हंसप्रयुक्तेन विमानेन स गच्छति।
शतं वर्षसहस्राणां मोदते स दिवि प्रभो ॥ ५४ ॥
शतं चाप्सरसः कन्या रमन्त्यपि तं नरम्।
आर्तो वा व्याधितो वाऽपि गच्छेदनशनं तु यः॥५५॥
शतं वर्षसहस्राणां मोदते स दिवि प्रभो।
काञ्चीनूपुरशब्देन सुप्तश्चैव प्रबोध्यते ॥ ५६ ॥
सहस्रहंसयुक्तेन विमानेन तु गच्छति।
स गत्वा स्त्रीशताकीर्णे रमते भरतर्षभ ॥ ५७ ॥
क्षीणस्याप्यायनं दृष्टं क्षतस्य क्षतरोहणम्।
व्याधितस्यौषधग्रामः क्रुद्धस्य च प्रसादनम् ॥ ५८ ॥
दुःखितस्यार्थमानाभ्यां दुःखानां प्रतिषेधनम्।

प्रमुदित होते हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! एक महीनेसे अधिक उपवास करनेकी विधि नहीं है। हे पार्थ! धर्म जाननेवाले पुरुष अनशन व्रत किया करते हैं, जो पुरुष अनार्त्त और व्याधिरहित होके अनशन अवलम्बन करता है, उसे निःसन्देह पद पदमें यज्ञका फल मिलता है, वह हंसयुक्त विमानके सहारे सुरलोकमें भ्रमण करता है, सौ हजार वर्षतक देवलोकमें प्रभु होके आनन्दित होता है, एक सौ अप्सरा उस पुरुषको प्रमुदित करती हैं। आर्त्त अथवा व्याधिग्रस्त मनुष्य यदि उपवास करे, तो वह सौ हजार वर्षतक सुरपुरमें आनन्द भोगता, निद्रित होके काञ्ची और नूपुरके शब्दसे जाग्रत होता और सहस्र हंसयुक्त विमानके सहारे गमन करता है। (४९—५७)

हे भरतश्रेष्ठ! वह स्वर्गमें जाके एक सौ स्त्रियोंसे युक्त उत्तम मनोहर स्थानमें रमण करता है। अनशन व्रतके द्वारा क्षीण लोगोंकी आप्यायन देखी गई है, घायल पुरुषके घाव आरोग्य हुए देखे गये हैं। उपवास व्याधियुक्त पुरुषके लिये परम औषधी है क्रुद्ध पुरुषोंको प्रसन्न करनेवाला, अर्थ और मानका हेतु तथा दुःखित पुरुषोंके दुःख दूर करनेका उपायस्वरूप है। सुख-

न चैते स्वर्गकामस्य रोचन्ते सुखमेधसः ॥ ५९ ॥
अतः स कामसंयुक्ते विमाने हेमसन्निभे ।
रमते स्त्रीशताकीर्णे पुरुषोऽलङ्कृतः शुचिः ॥ ६० ॥
स्वस्थः सफलसङ्कल्पः सुखी विगतकल्मषः ।
अनश्नन्देहमुत्सृज्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ६१ ॥
बालसूर्यप्रतीकाशे विमाने हेमवर्चसि ।
वैदुर्यमुक्ताखचिते वीणामुरजनादिते ॥ ६२ ॥
पताकादीपिकाकीर्णे दिव्यघण्टानिनादिते ।
स्त्रीसहस्रानुचरिते स नरः सुखमेधते ॥ ६३ ॥
यावन्ति रोमकूपाणि तस्य गात्रेषु पाण्डव ।
तावन्त्येव सहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते ॥ ६४ ॥
नास्ति वेदात्परं शास्त्रं नास्ति मातृसमो गुरुः ।
न धर्मात्परमो लाभस्तपो नानशनात्परम् ॥ ६५ ॥
ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति पावनं दिवि चेह च ।
उपवासैस्तथा तुल्यं तपः कर्म न विद्यते ॥ ६६ ॥

संभोगके अभिलाषी क्षीणत्वादि अवस्था युक्त स्वर्गकाम मनुष्योंकी इन आप्यायन आदि विषयोंमें अभिरुचि नहीं होती बल्कि वैसे पुरुष अनशन आदि दुःखसहिष्णु होके निज तपस्याकी वृद्धि करते हैं, इसलिये वे पवित्र पुरुष सकाम और अलंकृत होकर एक सौ स्त्रियोंसे युक्त सुवर्णसदृश विमानमें विहार किया करते हैं। (५७—६०)

स्वस्थ, सफल, संकल्पसुखी और निष्पाप पुरुष अनशन व्रत करके देह छोडनेके अनन्तर उसका फल भोगते हैं, वे लोग बाल सूर्य तथा सुवर्णसदृश प्रभायुक्त वैदूर्य मुक्ताखचित वीणा, पखावजकी ध्वनिसम्पन्न पताका, दीपिका और दिव्य घण्टा शब्दसे परिपूरित एक हजार स्त्रियोंसे भरे हुए विमानमें सुखभोग किया करते हैं। हे पाण्डव ! उनके शरीरमें जितने रोएं रहते हैं, उतने हजार वर्षतक वे सुरपुरमें प्रमुदित होके वास करते हैं। वेदसे श्रेष्ठ शास्त्र नहीं है, माताके समान गुरु नहीं है, धर्मसे बढके परम लाभ कुछभी नहीं है और उपवाससे बढके दूसरी श्रेष्ठ तपस्या कुछ भी नहीं है। (६१—६५)

जैसे इस लोक और स्वर्गलोकमें ब्राह्मणोंसे पावन अन्य कोई नहीं है, वैसे ही उपवासके समान तप दूसरा

उपोष्य विधिवद्देवास्त्रिदिवं प्रतिपेदिरे।
ऋषयश्च परां सिद्धिमुपवासैरवाप्नुवन् ॥ ६७ ॥
दिव्यवर्षसहस्राणि विश्वामित्रेण धीमता।
क्षान्तमेकेन भक्तेन तेन विप्रत्वमागतः ॥ ६८ ॥
च्यवनो जमदग्निश्च वसिष्ठो गौतमो भृगुः।
सर्व एव दिवं प्राप्ताः क्षमावन्तो महर्षयः ॥ ६९ ॥
इदमङ्गिरसा पूर्वं महर्षिभ्यः प्रदर्शितम्।
यः प्रदर्शयते नित्यं न स दुःखमवाप्नुते ॥ ७० ॥
इमं तु कौन्तेय यथाक्रमं विधिं प्रवर्तितं ह्याङ्गिरसा महर्षिणा।
पठेच्च यो वै शृणुयाच्च नित्यदा न विद्यते तस्य नरस्य किल्बिषम् ॥७१॥
विमुच्यते चापि स सर्वसङ्करैर्न चास्य दोषैरभिभूयते मनः।
वियोनिजानां च विजानते रुतं ध्रुवां च कीर्तिं लभते नरोत्तमः ॥ ७२ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे उपवासविधौ षडधिकशततमोऽध्यायः॥ १०६ ॥

युधिष्ठिर उवाच– पितामहेन विधिवद्यज्ञाः प्रोक्ता महात्मना।
गुणाश्चैषां यथातथ्यं प्रेत्य चेह च सर्वशः ॥ १ ॥

कुछ भी नहीं है। देवताओंने विधिपूर्वक उपवास करके त्रिदिवलोक पाया है, ऋषियोंको भी उपवाससे परम सिद्धि प्राप्त हुई है। बुद्धिशक्तिसे युक्त विश्वामित्रको सहस्र वर्षतक एकाहारी होनेसे क्षमा गुण प्राप्त हुआ था, इसीसे उन्हें ब्राह्मणत्व पद मिला। च्यवन, जमदग्नि, वसिष्ठ, गौतम और भृगु प्रभृति क्षमाशील महर्षिवृन्द स्वर्गलोकमें गये हैं। पहले समयमें अङ्गिराने यह विषय महर्षियोंके बीच कहा था, जो लोग सदा इसे प्रदर्शित करते हैं, वे दुःख नहीं पाते। (६५—७०)

हे कौन्तेय! अङ्गिरा महर्षिके द्वारा यह विधि प्रचलित हुई है, जो मनुष्य सदा इसे पढते वा सुनते हैं, उनके सब पाप नष्ट होते हैं। जो उत्तम पुरुष इस विषयको सुनते वा पढते हैं वे सब सङ्कटोंसे छूट जाते हैं, उनका चित्त पापकर्ममें अभिभूत नहीं होता, वियोनिज यक्षादिकोंकी बोली जान सकते और निश्चय ही कीर्ति लाभ करते हैं। (७१—७३)

अनुशासनपर्वमें १०६ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १०७ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! महा-

न ते शक्या दरिद्रेण यज्ञाः प्राप्तुं पितामह।
बहूपकरणा यज्ञा नानासंभारविस्तराः ॥ २ ॥
पार्थिवै राजपुत्रैर्वा शक्याः प्राप्तुं पितामह।
नार्थन्यूनैरवगुणैरेकात्मभिरसंहतैः ॥ ३ ॥
यो दरिद्रैरपि विधिः शक्यः प्राप्तुं सदा भवेत्।
अर्थन्यूनैरवगुणैरेकात्मभिरसंहतैः ॥ ४ ॥
तुल्यो यज्ञफलैरेतैस्तन्मे ब्रूहि पितामह।
भीष्म उवाच–इदमङ्गिरसा प्रोक्तमुपवासफलात्मकम् ॥ ५ ॥
विधिं यज्ञफलैस्तुल्यं तन्निबोध युधिष्ठिर।
यस्तु कल्यं तथा सायं भुञ्जानो नान्तरा पिबेत् ॥ ६ ॥
अहिंसानिरतो नित्यं जुह्वानो जातवेदसम्।
षड्भिरेव स वर्षैस्तु सिध्यते नात्र संशयः ॥ ७ ॥
तप्तकाञ्चनवर्णं च विमानं लभते नरः।
देवस्त्रीणामधीवासे नृत्यगीतनिनादिते ॥ ८ ॥
प्राजापत्ये वसेत्पद्मं वर्षाणामग्निसन्निभे।

नुभाव ब्रह्माके द्वारा विधिपूर्वक सब यज्ञ कहे गये हैं, और इस लोक तथा परलोकमें यज्ञोंके फल सब प्रकारसे वर्णित हुए हैं; परन्तु दरिद्र लोग उन यज्ञोंके फलको पानेमें समर्थ नहीं होते, क्यों कि यज्ञोंमें बहुतसे उपकरण तथा यज्ञकी सामग्री लानी होती है। हे पितामह! उसका फल राजा अथवा राजपुत्र ही पा सकते हैं, धनरहित, गुणहीन, अकेले और सहायता वर्जित मनुष्योंके द्वारा यज्ञ नहीं हो सकता। हे पितामह! इसलिये जो विधि सदा दरिद्रोंके करने योग्य और इन सब यज्ञफलोंके तुल्य हो, उसे ही मेरे समीप वर्णन करिये। (१—५)

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! अङ्गिराने कहा है, कि उपवास फलस्वरूप अनुष्ठान यज्ञफलके सदृश है; इसलिये तुम उसे सुनो। जो लोग अहिंसामें रत होके प्रति दिन अग्निमें होम करते हुए भोर और सन्ध्याके समय भोजन करके उक्त दोनों समयके बीच फिर भोजन नहीं करते, वे छः वर्षके बीच निःसन्देह सिद्ध होते हैं; वे मनुष्य तपाये हुए सुवर्ण-सदृश विमान पाते और देवस्त्रियोंके नृत्यगीत तथा बाजे युक्त स्थानमें ब्रह्मलोक वा अग्निके समीप सौ करोड वर्षतक निवास करते हैं। जो लोग

त्रीणि वर्षाणि यः प्राशेत्सततं त्वेकभोजनम् ॥ ९ ॥
धर्मपत्नीरतो नित्यमग्निष्टोमफलं लभेत् ।
यज्ञं बहुसुवर्णं वा वासवप्रियमाचरेत् ॥ १० ॥
सत्यवान्दानशीलश्च ब्रह्मण्यश्चानसूयकः ।
क्षान्तो दान्तो जितक्रोधः स गच्छति परां गतिम् ॥११॥
पाण्डुराभ्रप्रतीकाशे विमाने हंसलक्षणे ।
द्वे समाप्ते ततः पद्मे सोऽप्सरोभिर्वसेत्सह ॥ १२ ॥
द्वितीये दिवसे यस्तु प्राश्नीयादेकभोजनम् ।
सदा द्वादशमासांस्तु जुह्वानो जातवेदसम् ॥ १३ ॥
अग्निकार्यपरो नित्यं नित्यं कल्यप्रबोधनः ।
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ १४ ॥
हंससारसयुक्तं च विमानं लभते नरः ।
इन्द्रलोके च वसते वरस्त्रीभिः समावृतः ॥ १५ ॥
तृतीये दिवसे यस्तु प्राश्नीयादेकभोजनम् ।
सदा द्वादश मासांस्तु जुह्वानो जातवेदसम् ॥ १६ ॥
अग्निकार्यपरो नित्यं नित्यं कल्यप्रबोधनः ।
अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ १७ ॥

सदा धर्मपत्नीमें रत रहके तीन वर्षतक क्रमसे दिनमें एक बार भोजन करते हैं, वे अग्निष्टोम यज्ञ और इन्द्रके प्रिय बहुतसे सुवर्णके यज्ञोंका फल पाते हैं, वे सत्यवादी, दानशील, ब्रह्मनिष्ठ, अनसूयक, दमयुक्त और जितक्रोध होके परम गति प्राप्त करते हैं ; व्रत पूरा होनेपर पाण्डुरप्रभा और हंसचिन्ह-युक्त विमानमें दो सौ करोड वर्षतक अप्सराओंके सङ्ग निवास करते हैं। (९-१२)

जो लोग अग्निमें होम करते हुए एक वर्षके बीच एक रात्रि उपवास करके दूसरे दिन एक बार भोजन करते हैं और प्रतिदिन अग्निकर्ममें रत होके भोरको जागते हैं, वे मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञका फल पाते हैं और इन्द्र लोकमें वाराङ्गनाओंके बीच घिरके हंस-सारस-युक्त विमानमें निवास किया करते हैं। जो लोग एक वर्षतक अग्निमें होम करते हुए तीसरे दिन केवल एक बार भोजन करते तथा प्रतिदिन अग्निहोत्र करके भोरको जाग्रत होते हैं, वे अति-रात्र यज्ञका फल पाते हैं; उन मनुष्यों

मयूरहंसयुक्तं च विमानं लभते नरः ।
सप्तर्षीणां सदा लोके सोऽप्सरोभिर्वसेत्सह ॥ १८ ॥
निवर्तनं च तत्रास्य त्रीणि पद्मानि वै विभुः ।
दिवसे यश्चतुर्थे तु प्राश्नीयादेकभोजनम् ॥ १९ ॥
सदा द्वादश मासान्वै जुह्वानो जातवेदसम् ।
वाजपेयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ २० ॥
इन्द्रकन्याभिरूढं च विमानं लभते नरः ।
सागरस्य च पर्यन्ते वासवं लोकमावसेत् ॥ २१ ॥
देवराजस्य च क्रीडां नित्यकालमवेक्षते ।
दिवसे पञ्चमे यस्तु प्राश्नीयादेकभोजनम् ॥ २२ ॥
सदा द्वादश मासांस्तु जुह्वानो जातवेदसम् ।
अलुब्धः सत्यवादी च ब्रह्मण्यश्चाविहिंसकः ॥ २३ ॥
अनसूयुरपापस्थो द्वादशाहफलं लभेत् ।
जाम्बूनदमयं दिव्यं विमानं हंसलक्षणम् ॥ २४ ॥
सूर्यमालासमाभासमारोहेत्पाण्डुरं गृहम् ।
आवर्तनानि चत्वारि तथा पद्मानि द्वादश ॥ २५ ॥
शराग्निपरिमाणं च तत्राऽसौ वसते सुखम् ।
दिवसे यस्तु षष्ठे वै मुनिः प्राशेत भोजनम् ॥ २६ ॥

को मयूरहंसयुक्त विमान मिलता है और वे सप्तर्षियोंके लोकमें सदा अप्सराओंके सङ्ग निवास किया करते हैं। (१३-१८)

तीन सौ करोड वर्षके अनन्तर वहांसे उनकी पुनरावृत्ति होती, इसे पण्डित लोग जानते हैं। जो लोग एक वर्षतक अग्निमें होम करते हुए चौथे दिन एक बार भोजन करते हैं, उन्हें वाजपेय यज्ञका उत्तम फल मिलता है, वे इन्द्र-कन्याके द्वारा अधिरूढ विमान पाके समुद्रके पार इन्द्रलोकमें निवास किया करते हैं; और सदा देवराजकी क्रीडा अवलोकन करते हैं। जो लोग एक वर्षतक अग्निमें आहुति देते हुए पांचवे दिन एक बार भोजन करते हैं और अलुब्ध, सत्यवादी, ब्रह्मनिष्ठा, हिंसारहित, असूयाशून्य और निष्पाप होते और द्वादशाह यज्ञका फल पाते हैं। स्वर्ण-मय हंस-चिन्हवाले सूर्य किरण सदृश प्रभासे युक्त पाण्डुरवर्ण गृहसदृश विमान में चढते और एकावन सौ पद्म वर्षतक

सदा द्वादश मासान्वै जुह्वानो जातवेदसम् ।
सदा त्रिषवणस्नायी ब्रह्मचार्यनसूयकः ॥ २७ ॥
गवां मेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ।
अग्निज्वालासमाभासं हंसबर्हिणसेवितम् ॥ २८ ॥
शातकुम्भसमायुक्तं साधयेद्यानमुत्तमम् ।
तथैवाप्सरसामङ्के प्रतिसुप्तः प्रबोध्यते ॥ २९ ॥
नूपुराणां निनादेन मेखलानां च निःस्वनैः ।
कोटीसहस्रं वर्षाणां त्रीणि कोटिशतानि च ॥ ३० ॥
पद्मान्यष्टादश तथा पताके द्वे तथैव च ।
अयुतानि च पञ्चाशदृक्षचर्मशतस्य च ॥ ३१ ॥
लोम्नां प्रमाणेन समं ब्रह्मलोके महीयते ।
दिवसे सप्तमे यस्तु प्राश्नीयादेकभोजनम् ॥ ३२ ॥
सदा द्वादश मासान्वै जुह्वानो जातवेदसम् ।
सरस्वतीं गोपयानो ब्रह्मचर्यं समाचरन् ॥ ३३ ॥
सुमनोवर्णकं चैव मधुमांसं च वर्जयन् ।
पुरुषो मरुतां लोकमिन्द्रलोकं च गच्छति ॥ ३४ ॥
तत्र तत्र हि सिद्धार्थो देवकन्याभिरर्च्यते ।

उस ही स्थानमें सुखसे वास करते हैं। (१९-२६)

जो लोग बारह महीनेतक अग्निमें आहुति देते हुए सदा मननशील होके छठें दिन भोजन करते हैं और सदा त्रिकाल स्नान करनेवाले ब्रह्मचारी और असूयारहित हुआ करते हैं, वे गोमेध यज्ञका फल पाते हैं। वे अग्निज्वालाके सदृश प्रभायुक्त हंसबर्हिण युक्त सुवर्णमय उत्तम विमान पाते हैं और अप्सराओंकी गोदीमें सोके नूपुर मेखलाकी ध्वनिसे जाग्रत होते हैं; वे तीन तीन हजार तीन सौ कोटी, अट्ठारह पद्म, दो महापद्म, पांच सौ अयुत और सौ सौ ऋक्षोंके चमडोंमें जितने रोएं रहते हैं, उतने वर्षतक ब्रह्मलोकमें निवास करते हैं। (२६—३२)

जो लोग एक वर्षतक अग्निमें आहुति देते हुए सातवें दिन एक बार भोजन करते और चुप होके ब्रह्मचर्य व्रत करते हैं, तथा स्रुक्, चन्दन, मधु और मांस परित्याग करते हैं, वे देवलोकके बीच इन्द्रलोकमें जाते हैं और उन स्थानोंमें पुरुष सिद्धार्थ होके देवकन्याओंसे पूजित

फलं बहुसुवर्णस्य यज्ञस्य लभते नरः ॥ ३५ ॥
संख्यामतिगुणां चापि तेषु लोकेषु मोदते ।
यस्तु संवत्सरं क्षान्तो भुङ्क्तेऽहन्यष्टमे नरः ॥ ३६ ॥
देवकार्यपरो नित्यं जुह्वानो जातवेदसम् ।
पौण्डरीकस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ३७ ॥
पद्मवर्णनिभं चैव विमानमधिरोहति ।
कृष्णाः कनकगौर्यश्च नार्यः श्यामास्तथाऽपराः ॥३८॥
वयोरूपविलासिन्यो लभते नात्र संशयः ।
यस्तु संवत्सरं भुङ्क्ते नवमे नवमेऽहनि ॥ ३९ ॥
सदा द्वादशमासान्वै जुह्वानो जातवेदसम् ।
अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ४० ॥
पुण्डरीकप्रकाशं च विमानं लभते नरः ।
दीप्तसूर्याऽग्नितेजोभिर्दिव्यमालाभिरेव च ॥ ४१ ॥
नीयते रुद्रकन्याभिः सोऽन्तरिक्षं सनातनम् ।
अष्टादश सहस्राणि वर्षाणां कल्पमेव च ॥ ४२ ॥
कोटीशतसहस्रं च तेषु लोकेषु मोदते ।
यस्तु संवत्सरं भुङ्क्ते दशाहे वै गते गते ॥ ४३ ॥

होते हैं, वे ही मनुष्य बहुतसे सुवर्ण यज्ञका फल पाते हैं और पूर्वोक्त लोकमें असंख्य समय तक निवास किया करते हैं। जो लोग देवकार्यमें रत होकर अग्निमें एक वर्षतक आहुति देते हुए क्षमाशील होके आठवें दिनमें एक बार भोजन करते हैं, वे पुण्डरीक यज्ञका फल पाते और पद्मवर्ण सदृश विमानपर चढते तथा उन्हें निःसन्देह कृष्णवर्ण, कनकवर्ण श्यामाङ्गी युवा सुंदरी स्त्रियें प्राप्त होती हैं। (३२—३८)

जो लोग एक वर्षतक प्रतिदिन अग्निमें आहुति देते हुए नवें दिन एक बार भोजन करते हैं, वे सहस्र अश्वमेधका फल पाते हैं, और उन्हें पुण्डरीक सदृश प्रकाशमान विमान मिलता है, प्रदीप्त सूर्य और अग्निसदृश तेजस्विनी दिव्य माला धारिणी रुद्रकन्यावृन्द उन्हें सनातन स्वर्गलोकमें ले जाती हैं और वे मनुष्य अठारह हजार वर्ष और सौ हजार करोड कल्प तक रुद्रलोकमें प्रमुदित होते हैं। जो एक वर्षतक अग्निमें होम करता हुआ दशवें दिन एक बार भोजन करता है, वह सर्वभूत-मनोहर

सदा द्वादश मासान्वै जुह्वानो जातवेदसम् ।
ब्रह्मकन्यानिवासे च सर्वभूतमनोहरे ॥ ४४ ॥
अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ।
रूपवत्यश्च तं कन्या रमयन्ति सनातनम् ॥ ४५ ॥
नीलोत्पलनिभैर्वर्णै रक्तोत्पलनिभैस्तथा ।
विमानं मण्डलावर्तमावर्तगहनाकुलम् ॥ ४६ ॥
सागरोर्मिप्रतीकाशं स लभेद्यानमुत्तमम् ।
विचित्रमणिमालाभिर्नादितं शङ्खनिःस्वनैः ॥ ४७ ॥
स्फाटिकैर्वज्रसारैश्च स्तम्भैः सुकृतवेदिकम् ।
आरोहति महद्यानं हंससारसनादितम् ॥ ४८ ॥
एकादशे तु दिवसे यः प्राप्ते प्राशते हविः ।
सदा द्वादश मासांस्तु जुह्वानो जातवेदसम् ॥ ४९ ॥
परस्त्रियं नाभिलषेद्वाचाथ मनसाऽपि वा ।
अनृतं च न भाषेत मातापित्रोः कृतेऽपि वा ॥ ५० ॥
अभिगच्छेन्महादेवं विमानस्थं महाबलम् ।
अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ५१ ॥
स्वायम्भुवं च पश्येत विमानं समुपस्थितम् ।
कुमार्यः काञ्चनाभासा रूपवत्यो नयन्ति तम् ॥५२॥

ब्रह्मकन्यागणोंके निवास स्थानमें निःसन्देह एक हजार अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। नीलोत्पल और रत्नोत्पल वर्ण सदृश रूपवती स्त्रियें उस मनुष्यको प्रतिदिन प्रमुदित करती हैं, वह आवर्त्तगहनाकुल समुद्रकी तरङ्गतुल्य मण्डलावर्त्त श्रेष्ठ विमान पाता है। ३९-४७

विचित्र मणिमाला विराजित शंखके शब्दसे युक्त स्फटिक और हीरोंसे बने हुए वेदी स्तम्भ युक्त हंस-सारसोंके शब्दसे परिपूरित महायानमें चढता और सौ हजार करोड वर्षतक देवलोकमें प्रमुदित होता है। जो लोग बारह महीने तक अग्निमें आहुति देते हुए ग्यारहवें दिन घृत भोजन करते हैं, पराई स्त्रीके विषयमें मनसे भी अभिलाप नहीं करते, माता पिताके लिये भी कदापि झूट नहीं बोलते, वे विमानपर चढके महाबली महादेवके समीप जाते और सहस्र अश्वमेध यज्ञका फल पाते हैं तथा स्वयम्भू विमानको सम्मुख पहुंचा हुआ देखते हैं और सुवर्ण आभायुक्त रूपवती का-

रुद्राणां तमधीवासं दिवि दिव्यं मनोहरम्।
वर्षाण्यपरिमेयानि युगान्ताग्निसमप्रभः ॥ ५३ ॥
कोटीशतसहस्रं च दशकोटिशतानि च।
रुद्रं नित्यं प्रणमते देवदानवसंमतम् ॥ ५४ ॥
स तस्मै दर्शनं प्राप्तो दिवसे दिवसे भवेत्।
दिवसे द्वादशे यस्तु प्राप्ते वै प्राशते हविः ॥ ५५ ॥
सदा द्वादश मासान्वै सर्वमेधफलं लभेत्।
आदित्यं द्वादशे तस्य विमानं संविधीयते ॥ ५६ ॥
मणिमुक्ताप्रवालैश्च महार्हैरुपशोभितम्।
हंसभासा परिक्षिप्तं नागवीथिसमाकुलम् ॥ ५७ ॥
मयूरैश्चक्रवाकैश्च कूजद्भिरुपशोभितम्।
अट्टैर्महाद्भिः संयुक्तं ब्रह्मलोके प्रतिष्ठितम् ॥ ५८ ॥
नित्यमावसथं राजन्नरनारीसमावृतम्।
ऋषिरेवं महाभागस्त्वङ्गिराः प्राह धर्मवित् ॥ ५९ ॥
त्रयोदशे तु दिवसे प्राप्ते यः प्राशते हविः।
सदा द्वादश मासान्वै देवसत्रफलं लभेत् ॥ ६० ॥
रक्तपद्मोदयं नाम विमानं साधयेन्नरः।

रिकन्या सुरलोकमें प्रकाशमान मनोहर रुद्रगणोंके स्थानमें उन्हें ले जाती हैं। (४७—५२)

वे प्रलयकालकी अग्नि समान और प्रभायुक्त होके अनन्त समय तक सौ हजार करोड और दो सौ करोड वर्षतक देव-दानवोंके सङ्ग सदा महादेवको प्रणाम करते हैं; महादेव उन्हें प्रतिदिन दर्शन देते हैं। जो लोग एक वर्षतक क्रमसे बारहवें दिन घृतप्राशन करते हैं, वे सर्वमेध यज्ञका फल पाते हैं, द्वादश आदित्योंके बीच उनका विमान जाता है, वह स्थान महार्ह मणि, मोती प्रबाल मणियोंसे शोभित, हंसपातसे घिरा हुआ और नागश्रेणीसे परिपूर्ण कूंजनेवाले, मयूर और चक्रवाक पक्षियोंके व्यूहसे शोभायमान, उत्तम महत् अटारियोंसे युक्त, ब्रह्मलोकके प्रतिष्ठित नरनारियोंसे परिपूरित नित्य आश्रम है। (५३—५९)

हे महाराज ! महाभाग धर्मवित् अंगिरा ऋषिने ऐसा कहा है, कि जो लोग एक वर्षतक सदा तेरहवें दिन घृत-प्राशन करते हैं, उन्हें देवसत्रका

जातरूपप्रयुक्तं च रत्नसञ्चयभूषितम् ॥ ६१ ॥
देवकन्याभिराकीर्णं दिव्याभरणभूषितम्।
पुण्यगन्धोदयं दिव्यं वायव्यैरुपशोभितम् ॥ ६२ ॥
तत्र शङ्कुपताके द्वे युगान्तं कल्पमेव च।
अयुतायुतं तथा पद्मं समुद्रं च तथा वसेत् ॥ ६३ ॥
गीतगन्धर्वघोषैश्च भेरीपणवनिःस्वनैः।
सदा प्रह्लादितस्ताभिर्देवकन्याभिरिज्यते ॥ ६४ ॥
चतुर्दशे तु दिवसे यः पूर्णे प्राशते हविः।
सदा द्वादश मासांस्तु महामेघफलं लभेत् ॥ ६५ ॥
अनिर्देश्यवयोरूपा देवकन्याः स्वलङ्कृताः।
मृष्टतप्ताङ्गदधरा विमानैरुपयान्ति तम् ॥ ६६ ॥
कलहंसविनिर्घोषैर्नूपुराणां च निःस्वनैः।
काञ्चीनां च समुत्कर्षस्तत्र तत्र निबोध्यते ॥ ६७ ॥
देवकन्यानिवासे च तस्मिन्वसति मानवः।
जाह्नवी वालुकाकीर्णं पूर्णसंवत्सरं नरः ॥ ६८ ॥
यस्तु पक्षे गते भुङ्क्ते एकभक्तं जितेन्द्रियः।

फल प्राप्त होता है। वे मनुष्य सुवर्णके बने हुए रत्नभूषित, देवकन्याओंसे परिपूरित दिव्य आभूषण और पवित्र सुगन्धियुक्त वायव्य अस्त्रसे सुशोभित रक्त पद्मोदय नाम विमान पाते हैं, वे वहांपर शंकु पताका युगान्त कल्पअयुतायुक्त पद्म और समुद्र परिमित समयतक निवास करते हैं, वे देवकन्या और गन्धर्वोंके गीत तथा भेरी ढोल आदि बाजोंके शब्दसे प्रसन्न होके वहांपर अनुरक्त रहते हैं। (५९-६४)

बारह महीनेके बीच जो लोग चौदहवें दिन घृत प्राशन करते हैं, वे महामेघ यज्ञका फल पाते हैं। अनिर्देश्य अवस्था रूपसम्पन्न भली भांति अलंकृत विशुद्ध तपे हुए सुवर्णभूषित पहरनेवाली देवकन्या श्रेष्ठ विमानके सहारे उनके निकट उपस्थित होती हैं। वे वहांपर कलहंस निनाद सदृश नूपुरकाञ्चीसे उत्तम रीतिसे सावधान हुआ करते हैं, वे मनुष्य गंगाके वालुकणपरिमाणके अनुसार पूर्ण सम्वत्सर पर्यन्त देवकन्याओंके स्थानमें निवास करते हैं। (६५-६८)

जो लोग बारह महीनेतक अग्निमें आहुति देते हुए पन्दरह दिनके अनन्तर

सदा द्वादश मासांस्तु जुह्वानो जातवेदसम् ॥ ६९ ॥
राजसूयसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ।
यानमारोहते दिव्यं हंसबर्हिणसेवितम् ॥ ७० ॥
मणिमण्डलकैश्चित्रं जातरूपसमावृतम् ।
दिव्याभरणशोभाभिर्वरस्त्रीभिरलंकृतम् ॥ ७१ ॥
एकस्तम्भं चतुर्द्वारं सप्तभौमं सुमङ्गलम् ।
वैजयन्तीसहस्रैश्च शोभितं गीतनिःस्वनैः ॥ ७२ ॥
दिव्यं दिव्यगुणोपेतं विमानमधिरोहति ।
मणिमुक्ताप्रवालैश्च भूषितं वैद्युतप्रभम् ॥ ७३ ॥
वसेद्युगसहस्रं च खड्गकुञ्जरवाहनः ।
षोडशे दिवसे प्राप्ते यः कुर्यादेकभोजनम् ॥ ७४ ॥
सदा द्वादश मासान्वै सोमयज्ञफलं लभेत् ।
सोमकन्यानिवासेषु सोऽध्यावसति नित्यशः ॥ ७५ ॥
सौम्यगन्धानुलिप्तश्च कामकारगतिर्भवेत् ।
सुदर्शनाभिर्नारीभिर्मधुराभिस्तथैव च ॥ ७६ ॥
अर्च्यते वै विमानस्थः कामभोगैश्च सेव्यते ।
फलं पद्मशतप्रख्यं महाकल्पं दशाधिकम् ॥ ७७ ॥

एक बार भोजन करते हैं, वे सहस्र राजसूय यज्ञका उत्तम फल पाते हैं, वे हंस-मयूरसेवित विविध मणिमण्डल मण्डित जातरूपसे परिपूरित, दिव्य-भूषणोंसे विभूषित, वाराङ्गनाओंसे युक्त मणिमुक्ता, प्रवालसे अलंकृत, एक स्तंभ चार द्वार सात भूमिका सम्पन्न उत्तम मङ्गलमय सहस्र वैजन्तीके द्वारा सुशोभित, गीतशब्दसे निनादित, दिव्य गुणयुक्त बिजलीकी प्रभासदृश विमानमें चढते हैं, वे खड्ग और कुञ्जर वाहनसे युक्त होकर उस दिव्य यानमें सहस्र युगतक वास किया करते हैं। (६९-७३)

जो लोग एक वर्षतक सदा सोलहवें दिन एकबार भोजन करते हैं, उन्हें सोमयज्ञका फल मिलता है, वे लोग सोमकन्यागणोंके स्थानमें सदा निवास किया करते हैं, वे सौम्य गन्धसे अनुलिप्त और कामचारी गतिसे युक्त होते हैं। जब वे विमान पर चढते हैं, तब उत्तम दर्शनीय मीठे वचनवाली स्त्रियां उनकी पूजा करती हैं, वे बहुतसे कामभोगके द्वारा सेवित होते हैं, ऐसे व्रतपरायण मनुष्य एक सौ दश पद्म परिमित महा-

आवर्तनानि चत्वारि साधयेच्चाप्यसौ नरः ।
दिवसे सप्तदशमे यः प्राप्ते प्राशते हविः ॥ ७८ ॥
सदा द्वादशमासान्वै जुह्वानो जातवेदसम् ।
स्थानं वारुणमैन्द्रं च रौद्रं चाप्यधिगच्छति ॥ ७९ ॥
मारुतौशनसे चैव ब्रह्मलोकं स गच्छति ।
तत्र दैवतकन्याभिरासनेनोपचर्यते ॥ ८० ॥
भूर्भुवं चापि देवर्षिं विश्वरूपमवेक्षते ।
तत्र देवाधिदेवस्य कुमार्यो रमयन्ति तम् ॥ ८१ ॥
द्वात्रिंशद्रूपधारिण्यो मधुराः समलंकृताः ।
चन्द्रादित्यावुभौ यावद्गगने चरतः प्रभो ॥ ८२ ॥
तावच्चरत्यसौ धीरः सुधामृतरसाशनः ।
अष्टादशे यो दिवसे प्राश्नीयादेकभोजनम् ॥ ८३ ॥
सदा द्वादशमासान्वै सप्त लोकान्स पश्यति ।
रथैः सनन्दिघोषैश्च पृष्ठतः सोऽनुगम्यते ॥ ८४ ॥
देवकन्याधिरूढैस्तु भ्राजमानैः स्वलंकृतैः ।
व्याघ्रसिंहप्रयुक्तं च मेघस्वननिनादितम् ॥ ८५ ॥

कल्प और चारों आवर्त्तन परिमित समयतक फल भोग करते हैं। जो लोग एक वर्षतक अग्निमें आहुति देते हुए सतरहवां दिन उपस्थित होनेपर घृत प्राशन करते हैं, वे वरुण, इन्द्र और रौद्रलोक में अधिरोहण किया करते हैं और वेही पुरुष मारुत, औशनस तथा ब्रह्मलोकमें गमन करते हैं, वहांपर देवकन्यागण आसन देके उनकी सेवा करती हैं; भूलोक, भुवर्लोक और देवर्षि विश्वरूपका दर्शन करते हैं। वहांपर बत्तीस भांतिकी रूपधारिणी, दर्शनीय, मृदु भली भांति अलंकृत देवाधिदेवकी कुमारीगण उनके सङ्ग क्रीडा करती हैं। (७४-८१)

हे प्रभु ! जबतक आदित्य और चन्द्रमा आकाशमण्डलमें विचरते हैं, तबतक उक्त वीर सुधा तथा देव-भोज्य अमृतरस पीते हुए रुद्रलोकमें निवास किया करते हैं। जो लोग बारह महीनेतक सदा अठारहवें दिनमें एकबार भोजन करते हैं, वे सातों लोकोंका दर्शन किया करते हैं, देवकन्याधिरूढ, भ्राज-मान, उत्तम रीतिसे अलंकृत बन्दिजनोंके शब्दसे युक्त रथ उनके पीछे चलते हैं, वे अत्यन्त सुखी होके सिंहव्याघ्रयुक्त

विमानमुत्तमं दिव्यं सुसुखी ह्यऽधिरोहति ।
तत्र कल्पसहस्रं स कन्याभिः सह मोदते ॥ ८६ ॥
सुधारसं च भुञ्जीत अमृतोपममुत्तमम् ।
एकोनविंशतिदिने यो भुङ्क्ते एकभोजनम् ॥ ८७ ॥
सदा द्वादशमासान्वै सप्त लोकान्स पश्यति ।
उत्तमं लभते स्थानमप्सरोगणसेवितम् ॥ ८८ ॥
गन्धर्वैरुपगीतं च विमानं सूर्यवर्चसम् ।
तत्रामरवरस्त्रीभिर्मोदते विगतज्वरः ॥ ८९ ॥
दिव्याम्बरधरः श्रीमानयुतानां शतं शतम् ।
पूर्णेऽथ विंशे दिवसे यो भुङ्क्ते ह्येकभोजनम् ॥ ९० ॥
सदा द्वादश मासांस्तु सत्यवादी धृतव्रतः ।
अमांसाशी ब्रह्मचारी सर्वभूतहिते रतः ॥ ९१ ॥
स लोकान्विपुलान् रम्यानादित्यानामुपाश्नुते ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च दिव्यमाल्यानुलेपनैः ॥ ९२ ॥
विमानैः काञ्चनैर्हृद्यैः पृष्ठतश्चाऽनुगम्यते ।
एकविंशे तु दिवसे यो भुङ्क्ते ह्येकभोजनम् ॥ ९३ ॥

बादलसदृश शब्दसे परिपूरित उत्तम दिव्य विमानपर चढते हैं। वहांपर वे सहस्र कल्पतक कन्यागणोंके संग प्रमुदित हुआ करते हैं और अमृतसदृश उत्तम अमृत रस भोजन करते हैं। (८२—८७)

जो लोग सदा बारह महीनेतक उन्नीसवें दिन एक बार भोजन करते हैं, वे सप्तलोकोंको देखनेमें समर्थ होते हैं और अप्सराओंसे सेवित उत्तम स्थान पाते हैं, उन्हें गन्धर्वोंके द्वारा सूर्यवर्चस विमान मिलता है, वहांपर वे शोकरहित, दिव्याम्बरधारी तथा श्रीमान होकर सौ सौ अयुत परिमित समयतक देवताओंकी वाराङ्गनाओंके सहित प्रमुदित हुआ करते हैं। (८७-९०)

जो लोग बारह महीनेतक सत्यवादी, धृतव्रती, अमांसाशी, ब्रह्मचारी और सब जीवोंके हितमें रत होके वीसवां दिन पूरा होनेपर एक बार भोजन करते हैं, वे आदित्यगणोंके विपुल रमणीय लोकमें सुख भोग किया करते हैं। दिव्यमालाधारी गन्धर्व और अप्सरावृन्द तथा दिव्य सोनेके विमान उनके पीछे पीछे चलते हैं। जो लोग एक वर्षतक सदा अग्निमें आहुति देते हुए एकवीसवें

सदा द्वादश मासान्वै जुह्वानो जातवेदसम् ।
लोकमौशनसं दिव्यं शक्रलोकं च गच्छति ॥ ९४ ॥
अश्विनोर्मरुतां चैव सुखेष्वभिरतः सदा ।
अनभिज्ञश्च दुःखानां विमानवरमास्थितः ॥ ९५ ॥
सेव्यमानो वरस्त्रीभिः क्रीडत्यमरवत्प्रभुः ।
द्वाविंशे दिवसे प्राप्ते यो भुङ्क्ते ह्येकभोजनम् ॥ ९६ ॥
सदा द्वादश मासान्वै जुह्वानो जातवेदसम् ।
अहिंसानिरतो धीमान् सत्यवागनसूयकः ॥ ९७ ॥
लोकान्वसूनामाप्नोति दिवाकरसमप्रभः ।
कामचारी सुधाहारो विमानवरमास्थितः ॥ ९८ ॥
रमते देवकन्याभिर्दिव्याभरणभूषितः ।
त्रयोविंशे तु दिवसे प्राशेद्यस्त्वेकभोजनम् ॥ ९९ ॥
सदा द्वादश मासांस्तु मिताहारो जितेन्द्रियः ।
वायोरुशनसश्चैव रुद्रलोकं च गच्छति ॥ १०० ॥
कामचारी कामगमः पूज्यमानोऽप्सरोगणै ।
अनेकयुगपर्यन्तं विमानवरमास्थित ॥ १०१ ॥
रमते देवकन्याभिर्दिव्याभरणभूषितः ।
चतुर्विंशे तु दिवसे यः प्राप्ते प्राशते हविः ॥ १०२ ॥

दिनमें एकबार भोजन करते हैं, वे शुक्र-लोक और दिव्य इन्द्रलोकको पाते हैं। तथा उनको सुखदुःख नहीं होते, श्रेष्ठ विमानमें बैठके सुखसे सुंदरी स्त्रियोंके साथ रमते हैं। जो लोग एक वर्ष तक सदा अग्निमें आहुति देते हुए बाईसवें दिन एक बार भोजन करते हैं और अहिंसामें रत, धीमान, सत्यवादी तथा अनसूयक हुआ करते हैं, वे सूर्यके सदृश प्रभायुक्त होके वसुलोकोंको पाते हैं, वे कामचारी, सुधाहारी होकर श्रेष्ठ विमान-में चढते और दिव्याभरणोंसे विभूषित होकर देवकन्याओंके सङ्ग क्रीडा करते हैं। जो मिताहारी और जितेन्द्रिय पुरुष बारह महीनेतक सदा तेईसवें दिन एक बार भोजन करता है, वह वायुलोक भार्गवलोक और रुद्रलोकमें गमन किया करता है, वह कामचारी और कामगामी अप्सराओंसे पूजित और दिव्याभरण-भूषित विविध गुणोंसे युक्त विमानपर चढके देवकन्याओंके सहित क्रीडा करता है। (९१—१०२)

सदा द्वादश मासांश्च जुह्वानो जातवेदसम्।
आदित्यानामधीवासे मोदमानो वसेच्चिरम् ॥ १०३ ॥
दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धाऽनुलेपनः।
विमाने काञ्चने दिव्ये हंसयुक्ते मनोरमे ॥ १०४ ॥
रमते देवकन्यानां सहस्रैरयुतैस्तथा।
पञ्चविंशे तु दिवसे यः प्राशेदेकभोजनम् ॥ १०५ ॥
सदा द्वादशमासांस्तु पुष्कलं यानमारुहेत्।
सिंहव्याघ्रप्रयुक्तैस्तु मेघनिःस्वननादितैः ॥ १०६ ॥
स रथैर्नन्दिघोषैश्च पृष्ठतो ह्यनुगम्यते।
देवकन्यासमारूढैः काञ्चनैर्विमलैः शुभैः ॥ १०७ ॥
विमानमुत्तमं दिव्यमास्थाय सुमनोहरम्।
तत्र कल्पसहस्रं वै वसते स्त्रीशतावृते ॥ १०८ ॥
सुधारसं चोपजीवन्नमृतोपममुत्तमम्।
षड्विंशे दिवसे यस्तु प्रकुर्यादेकभोजनम् ॥ १०९ ॥
सदा द्वादश मासांस्तु नियतो नियताऽशनः।
जितेन्द्रियो वीतरागो जुह्वानो जातवेदसम् ॥ ११० ॥
स प्राप्नोति महाभागः पूज्यमानोऽप्सरोगणैः।
सप्तानां मरुतां लोकान्वसूनां चापि सोऽश्नुते ॥१११॥

जो पुरुष बारह महीनेतक अग्निमें आहुति देते हुए चौवीसवां दिन उपस्थित होनेपर घृतप्राशन करता है, वह दिव्य माला और दिव्याम्बर धारण करके तथा दिव्यगन्धोंसे युक्त होकर आदित्यगणोंके निवासस्थानमें प्रमुदित होके सदा वास करता है, हंसयुक्त, मनोहर, दिव्य सुवर्णके विमानमें सहस्र और अयुत देवकन्याओंके सहित क्रीडा करता है। जो जोग बारह महीनेतक सदा पचीसवें दिन एकबार भोजन करते हैं, वे पुष्कल विमानमें चढते और सिंहव्याघ्रयुक्त बादलसदृश शब्द तथा आनन्दवर्धक ध्वनिसे युक्त देवकन्याओंसे परिपूर्ण सौ सौ विमल सुवर्णके रथ उनका अनुगमन करते हैं, वे अत्यन्त मनोहर उत्तम दिव्य विमानमें चढके उन सौ सौ स्त्रियोंसे परिपूरित स्थानमें अमृतसदृश सुधारस पीते हुए सहस्र कल्पतक निवास करते हैं। जो लोग सदा संयताहारी, जितेन्द्रिय और रागरहित होके एक वर्षतक अग्निमें

विमानैः स्फाटिकैर्दिव्यैः सर्वरत्नैरलंकृतैः ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च पूज्यमानः प्रमोदते ॥ ११२ ॥
द्वे युगानां सहस्रे तु दिव्ये दिव्येन तेजसा ।
सप्तविंशेऽथ दिवसे यः कुर्यादेकभोजनम् ॥ ११३ ॥
सदा द्वादश मासांस्तु जुह्वानो जातवेदसम् ।
फलं प्राप्नोति विपुलं देवलोके च पूज्यते ॥ ११४ ॥
अमृताशी वसंस्तत्र स वितृष्णः प्रमोदते ।
देवर्षिचरितं राजन् राजर्षिभिरनुष्ठितम् ॥ ११५ ॥
अध्यावसति दिव्यात्मा विमानवरमास्थितः ।
स्त्रीभिर्मनोभिरामाभी रममाणो मदोत्कटः ॥ ११६ ॥
युगकल्पसहस्राणि त्रीण्यावसति वै सुखम् ।
योऽष्टाविंशे तु दिवसे प्राश्नीयादेकभोजनम् ॥ ११७ ॥
सदा द्वादश मासांस्तु जितात्मा विजितेन्द्रियः ।
फलं देवर्षिचरितं विपुलं समुपाश्नुते ॥ ११८ ॥
भोगवांस्तेजसा भाति सहस्रांशुरिवामलः ।
सुकुमार्यश्च नार्यस्तं रममाणाः सुवर्चसः ॥ ११९ ॥

आहुति देते हुए छब्बीसवें दिन एकबार भोजन करते हैं, वे सब रत्नोंसे अलंकृत दिव्य स्फटिक विमानके द्वारा सप्त मरुत् और अष्ट वसुके लोकोंको उपभोग करते हैं, दिव्य तेजसे युक्त होकर देवपरिमाणसे दो हजार युगतक गन्धर्व और अप्सराओंसे पूजित होकर प्रमुदित रहते हैं। (१०२—११२)

जो लोग बारह महीनेतक अग्निमें आहुति देते हुए सत्ताइसवें दिन सदा एकबार भोजन करते हैं, वे विपुल फल पाके देवलोकमें पूजित हुआ करते हैं, वहां अमृताशी होकर वास करते हुए तृष्णारहित होके प्रमुदित होते हैं। हे महाराज ! वे दिव्यशरीरधारी मनुष्य श्रेष्ठ विमानमें चढके देवर्षिचरित तथा राजर्षियोंसे अनुष्ठित लोकोंमें वास करते हैं, वे मनोरमा स्त्रियोंके सहित मदमत्त होके रमण करते हुए तीन सहस्र युग परिमित कल्पतक सुखसे निवास किया करते हैं। जो लोग जितचित्त और जितेन्द्रिय होके बारह महीनेतक सदा अट्ठाइसवें दिन एकबार भोजन करते हैं, वे देवर्षिचरित विपुल फल भोग किया करते हैं, वे भोगवान् मनुष्य निज तेजके सहारे निर्मल सूर्यकी भांति

पीनस्तनोरुजघना दिव्याभरणभूषिताः ।
रमयन्ति मनःकान्ते विमाने सूर्यसन्निभे ॥ १२० ॥
सर्वकामगमे दिव्ये कल्पायुतशतं समाः ।
एकोनत्रिंशे दिवसे यः प्राशेदेकभोजनम् ॥ १२१ ॥
सदा द्वादश मासान्वै सत्यव्रतपरायणः ।
तस्य लोकाः शुभा दिव्या देवराजर्षिपूजिताः ॥१२२॥
विमानं सूर्यचन्द्राभं दिव्यं समधिगच्छति ।
जातरूपमयं युक्तं सर्वरत्नसमन्वितम् ॥ १२३ ॥
अप्सरोगणसंपूर्णं गन्धर्वैरभिनादितम् ।
तत्र चैनं शुभा नार्यो दिव्याभरणभूषिताः॥ १२४ ॥
मनोभिरामा मधुरा रमयन्ति मदोत्कटाः ।
भोगवांस्तेजसा युक्तो वैश्वानरसमप्रभः ॥ १२५ ॥
दिव्यो दिव्येन वपुषा भ्राजमान इवामरः ।
वसूनां मरुतां चैव साध्यानामश्विनोस्तथा ॥ १२६ ॥
रुद्राणां च तथा लोकं ब्रह्मलोकं च गच्छति ।
यस्तु मासे गते भुङ्क्ते एकभक्तं शमात्मकः ॥१२७॥
सदा द्वादश मासान्वै ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ।

प्रकाशित होते हैं। (११३—११९)

पीनस्तनयुक्त, दिव्याभरणविभूषित, तेजस्विनी, रमण करनेवाली सुकुमारी स्त्रियें सूर्यसदृश कामगामी मनोरम दिव्य विमानमें एक सौ अयुत कल्प परिमित वर्षतक उनका मन प्रसन्न करती हैं। जो लोग सत्यव्रतपरायण होके बारह महीनेतक सदा उन्तीसवें दिन एक बार भोजन करते हैं, उनके निमित्त देवर्षि और राजर्षियोंसे पूजित दिव्य पवित्र लोक तैयार रहते हैं, वे सब रत्नोंसे विभूषित अप्सराओं और गन्धर्वोंके गीतसे युक्त सूर्य तथा चन्द्रमासदृश सुवर्णमय दिव्य विमानमें चढते हैं, वह दिव्याभरणभूषित, मनको प्रसन्न करनेवाली, मदविह्वल, कोमलाङ्गी, पवित्र स्त्रियें उन्हें आनन्दित करती हैं। (१२०–१२४)

वे भोगवान तेजःसम्पन्न अग्निप्रभासदृश मूर्ति धारण करके देवताओंकी भांति प्रकाशमान दिव्य पुरुष वसुगण, मरुद्गण, साध्य, अश्विदेव, रुद्रगणके लोक और ब्रह्मलोकमें गमन करते हैं। जो शमगुणसे युक्त पुरुष एक वर्षतक सदा एक मास बीतनेपर एक बार भो-

सुधारसकृताहारः श्रीमान्सर्वमनोहरः ॥ १२८ ॥
तेजसा वपुषा लक्ष्म्या भ्राजते रश्मिवानिव ।
दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धानुलेपनः ॥ १२९ ॥
सुखेष्वभिरतो भोगी दुःखानामविजानकः ।
स्वयम्प्रभाभिर्नारीभिर्विमानस्थो महीयते ॥ १३० ॥
रुद्रदेवर्षिकन्याभिः सततं चाभिपूज्यते ।
नानारमणरूपाभिर्नानारागाभिरेव च ॥ १३१ ॥
नानामधुरभाषाभिर्नानारतिभिरेव च ।
विमाने गगनाकारे सूर्यवैदूर्यसन्निभे ॥ १३२ ॥
पृष्ठतः सोमसङ्काशे उदर्के चाभ्रसन्निभे ।
दक्षिणायां तु रक्ताभे अधस्तान्नीलमण्डले ॥ १३३ ॥
उर्ध्वं विचित्रसङ्काशे नैको वसति पूजितः ।
यावद्वर्षसहस्रं वै जम्बुद्वीपे प्रवर्षति ॥ १३४ ॥
तावत्संवत्सराः प्रोक्ता ब्रह्मलोकेऽस्य धीमतः ।
विप्रुषश्चैव यावन्त्यो निपतन्ति नभस्तलात् ॥ १३५ ॥

जन करता है, उसे ब्रह्मलोक मिलता है, वह सुधारस पीके श्रीमान् और सर्वजनमनोहर हुआ करता है। तेज, श्री और शोभासे सूर्यकी भांति प्रकाशित होता है, वह दिव्य मालाम्बरधारी, दिव्य गन्धयुक्त, सुखमें रत, योगी, दुःख अनुभवमें अनभिज्ञ होके स्वयं प्रभायुक्त स्त्रियोंके सहित विमानमें विराजता है और रुद्र तथा देवर्षिकन्याओंके द्वारा सदा सब भांति पूजित होता है। (१२५—१३१)

विविध रीतिसे विनोद करनेवाली अनेक प्रकारकी स्त्रियोंके द्वारा बहुतसी भाषा तथा अनेक भांतिकी रतिचातुरीसे सूर्य तथा वैदूर्यसदृश आकाशसमान पृष्ठस्थानमें सोमसङ्काश सामनेके भागमें अभ्रसदृश, दक्षिणभागमें रक्तवर्ण आभायुक्त, अधःस्थानमें नीलमण्डलाकार, ऊर्ध्वमें विचित्रसङ्काश, विमानमें पूजित होकर अनेक देवकन्याओंके सहित निवास करता है। सहस्र वर्षतक जम्बूद्वीपमें वर्षाकी जितनी बूंद बरसती हैं, उस बुद्धिशक्तिसे युक्त योगीका उतने वर्षतक ब्रह्मलोकमें वास वर्णित है, वर्षाकालमें आकाशसे जितनी जलकी बूंद गिरती हैं, उतने समयतक वह अमरप्रभा अतिक्रम करके सुरपुरमें वास करता है। (१३१-१३५)

वर्षासु वर्षतस्तावन्निवसत्यमरप्रभः ।
मासोपवासी वर्षैस्तु दशभिः स्वर्गमुत्तमम् ॥ १३६ ॥
महर्षित्वमथाऽऽसाद्य सशरीरगतिर्भवेत् ।
मुनिर्दान्तो जितक्रोधो जितशिश्नोदरः सदा ॥१३७॥
जुह्वन्नग्नींश्च नियतः सन्ध्योपासनसेविता ।
बहुभिर्नियमैरेवं शुचिरश्नाति यो नरः ॥ १३८ ॥
अभ्रावकाशशीलश्च तस्य भानोरिव त्विषः ।
दिवं गत्वा शरीरेण स्वेन राजन्यथाऽमरः ॥ १३९ ॥
स्वर्गं पुण्यं यथाकाममुपभुङ्क्ते तथाविधः ।
एष ते भरतश्रेष्ठ यज्ञानां विधिरुत्तमः ॥ १४० ॥
व्याख्यातो ह्याऽऽनुपूर्व्येण उपवासफलात्मकः ।
दरिद्रैर्मनुजैः पार्थ प्राप्तं यज्ञफलं यथा ॥ १४१ ॥
उपवासानिमान् कृत्वा गच्छेच्च परमां गतिम् ।
देवद्विजातिपूजायां रतो भरतसत्तम ॥ १४२ ॥
उपवासविधिस्त्वेष विस्तरेण प्रकीर्तितः ।
नियतेष्वप्रमत्तेषु शौचवत्सु महात्मसु ॥ १४३ ॥

महीनेभर उपवास करनेवाला मनुष्य दश वर्षतक ऐसे ही कठोर व्रत प्रतिपालन करते हुए महर्षित्व पद पाके सशरीरसे ही उत्कृष्ट स्वर्गलोकमें गमन किया करता है। मननशील, दान्त, क्रोधविजयी; सदा जितशिश्नोदर, तीनों अग्निमें आहुति देनेवाले, सदा सन्ध्या उपासना करनेवाले जो मनुष्य इस प्रकारके बहुतसे नियमोंसे पवित्र होके महीनेके शेषमें एक बार भोजन करते हैं, वे आकाशके अवकाशकी भांति निर्मल, शीलसम्पन्न और सूर्यकान्ति सदृश तेजस्वी पुरुष सशरीर सुरपुरमें जाके देवताओंकी भांति इच्छानुसार पवित्र स्वर्गसुख उपभोग करते हैं। (१३६—१४०)

हे भरतश्रेष्ठ महाराज! यह तुम्हारे समीप उपवासफलात्मक श्रेष्ठ यज्ञकी विधि विस्तारपूर्वक कही गई। हे पार्थ! दरिद्र मनुष्य इन्हीं उपवासोंको करके यज्ञका फल पाते हैं तथा उन्हें परम गति मिलती है। हे भरतसत्तम! तुम देव और द्विजोंकी पूजामें रत हो, इसी लिये तुम्हारे समीप यह उपवासकी विधि विस्तारपूर्वक वर्णित हुई। हे भारत! सदा अप्रमत्त, पवित्रतायुक्त,

दम्भद्रोहनिवृत्तेषु कृतबुद्धिषु भारत ।
अचलेष्वप्रकम्पेषु मा ते भूदत्र संशयः ॥ १४४ ॥ [९२८०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे उपवासविधिर्नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

युधिष्ठिर उवाच- यद्वरं सर्वतीर्थानां तन्मे ब्रूहि पितामह ।
यत्र चैव परं शौचं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥
भीष्म उवाच- सर्वाणि खलु तीर्थानि गुणवन्ति मनीषिणः ।
यत्तु तीर्थं च शौचं च तन्मे शृणु समाहितः ॥ २ ॥
अगाधे विमले शुद्धे सत्यतोये धृतिह्रदे ।
स्नातव्यं मानसे तीर्थे सत्त्वमालम्ब्य शाश्वतम् ॥ ३ ॥
तीर्थशौचमनर्थित्वमार्जवं सत्यमार्दवम् ।
अहिंसा सर्वभूतानामानृशंस्यं दमः शमः ॥ ४ ॥
निर्ममा निरहङ्कारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ।
शुचयस्तीर्थभूतास्ते ये भैक्ष्यमुपभुञ्जते ॥ ५ ॥
तत्त्ववित्त्वनहंबुद्धिस्तीर्थप्रवरमुच्यते ।
शौचलक्षणमेतत्ते सर्वत्रैवान्ववेक्षतः ॥ ६ ॥

दम्भद्रोहसे निवृत्त, कृतबुद्धि, अचञ्चल, असावधानरहित महानुभावोंके समीप इस विषयमें तुम्हें सन्देह न होवे । (१४०-१४४)

अनुशासनपर्वमें १०७ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें १०८ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! सब तीर्थोंके बीच जो श्रेष्ठ है और जिससे पवित्रता होती है, उसे आप मेरे निकट वर्णन करिये । (१)

भीष्म बोले, सब तीर्थ मनीषियोंके लिये फलदायक हैं, उनके बीच जो पवित्र तीर्थ है, समाहित होके उसे सुनो । अपरिच्छिन्न, विमल, शुद्ध, सत्यजल और धैर्यरूपी तालाब युक्त मानस-तीर्थमें शाश्वत सत्य अवलम्बन करके स्नान करना उचित है । अनर्थित्व, आर्जव, मार्दव, सब जीवोंकी अहिंसा, अनृशंसता और शमदम ही पवित्र तीर्थ हैं । जो लोग ममतारहित निरहंकारी, सुख दुःख आदि द्वन्द्व सहनेवाले और निष्परिग्रह हैं तथा जो लोग भिक्षान्न भोजन करते हुए जीवन बिताते हैं, वेही पवित्र तीर्थस्वरूप हैं । (२-५)

अहंज्ञानसे रहित तत्ववित् पुरुषश्रेष्ठ

रजस्तमः सत्त्वमथो येषां निर्धौतमात्मनः ।
शौचाशौचसमायुक्ताः स्वकार्यपरिमार्गिणः ॥ ७ ॥
सर्वत्यागेष्वभिरताः सर्वज्ञाः समदर्शिनः ।
शौचेन वृत्तशौचार्थास्ते तीर्थाः शुचयश्च ये ॥ ८ ॥
नोदकक्लिन्नगात्रस्तु स्नात इत्यभिधीयते ।
स स्नातो यो दमस्नातः सबाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥९ ॥
अतीतेष्वनपेक्षा ये प्राप्तेष्वर्थेषु निर्ममाः ।
शौचमेव परं तेषां येषां नोत्पद्यते स्पृहा ॥ १० ॥
प्रज्ञानं शौचमेवेह शरीरस्य विशेषतः ।
तथा निष्किञ्चनत्वं च मनसश्च प्रसन्नता ॥ ११ ॥
वृत्तशौचं मनःशौचं तीर्थशौचमतः परम् ।
ज्ञानोत्पन्नं च यच्छौचं तच्छौचं परमं स्मृतम् ॥ १२ ॥
मनसा च प्रदीप्तेन ब्रह्मज्ञानजलेन च ।
स्नाति यो मानसे तीर्थे तत्स्नानं तत्त्वदर्शिनः॥ १३ ॥
समारोपितशौचस्तु नित्यं भावसमाहितः ।
केवलं गुणसंपन्नः शुचिरेव नरः सदा ॥ १४ ॥

तीर्थ कहके वर्णित होते हैं; सर्वत्र सम दर्शन ही पवित्रताका लक्षण है। जिनके चित्तसे रजोगुण, तमोगुण और सत्वगुण निवृत्त हुआ है, जो लोग शौचाशौच समायुक्त, स्वकार्य निभानेमें सदा तत्पर, सर्वत्यागमें सब भांतिसे अनुरक्त, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और शौचके सहारे जिनमें पवित्रता उत्पन्न हुई है, वेही तीर्थ तथा वेही पवित्र हैं। जलसे शरीर धोनेवाले पुरुषको स्नात नहीं कहा जाता, जो लोग दमस्नात हैं, उन्होंने ही स्नान किया है, वेही बाहर और भीतरसे पवित्र हैं। (६—९)

जो लोग अतीत विषयोंमें अनपेक्ष प्राप्तविषयमें ममतारहित तथा जिन्हें स्पृहा उत्पन्न नहीं होती, वेही परम पवित्र हैं। प्रज्ञान ही शरीरका विशेष शौच है और निष्किञ्चनत्व ही मनकी प्रसन्नता है। चरित्रशुद्धि, मनःशुद्धि और तीर्थशुद्धि, इन तीनों शुद्धियोंकी अपेक्षा ज्ञानसे उत्पन्न हुई शुद्धि ही परम पवित्र मानी गई है। ज्ञानसे निर्मल हुआ मन और ब्रह्मज्ञान जलके सहारे जो लोग मानस तीर्थमें स्नान करते हैं, उनका नहाना ही स्नान है; तत्वदर्शियोंको ऐसा ही स्नान अभिमत

शरीरस्थानि तीर्थानि प्रोक्तान्येतानि भारत ।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यानि श्रृणु तान्यपि ॥१५॥
शरीरस्य यथोद्देशाः शुचयः परिकीर्तिताः ।
तथा पृथिव्या भागाश्च पुण्यानि सलिलानि च ॥१६॥
कीर्तनाच्चैव तीर्थस्य स्नानाच्च पितृतर्पणात् ।
धुनन्ति पापं तीर्थेषु ते प्रयान्ति सुखं दिवम् ॥ १७ ॥
परिग्रहाच्च साधूनां पृथिव्याश्चैव तेजसा ।
अतीव पुण्यभागास्ते सलिलस्य च तेजसा ॥ १८ ॥
मनसश्च पृथिव्याश्च पुण्यास्तीर्थास्तथाऽपरे ।
उभयोरेव यः स्नायात्स सिद्धिं शीघ्रमाप्नुयात् ॥१९॥
यथा बलं क्रियाहीनं क्रिया वा बलवर्जिता ।
नेह साधयते कार्यं समायुक्ता तु सिध्यति ॥ २० ॥
एवं शरीरशौचेन तीर्थशौचेन चान्वितः ।
शुचिः सिद्धिमवाप्नोति द्विविधं शौचमुत्तमम् ॥२१॥ [५३०१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे शौचानुपृच्छा नामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

है । शौचसम्पन्न, नियत भावसे समाहित, गुणवान मनुष्य निश्चय ही सदा पवित्र हैं । हे भारत ! ये सब शरीरस्थ तीर्थ कहे गये हैं, पृथ्वीके बीच जो सब पवित्र तीर्थ हैं, उसे भी सुनो । (१०-१५)

जैसे शरीरके अवयव पवित्र रूपसे वर्णित हुए हैं, वैसे ही पृथ्वीके सब अंश और जल पवित्ररूपसे कहे गये हैं । जो लोग तीर्थोंके नाम लेते, तीर्थोंमें स्नान और पितृतर्पण करते हैं, तीर्थोंमें पाप धोके सहजमें ही सुरपुरमें गमन किया करते हैं । साधुओंके संसर्ग तथा पृथ्वी और जलके तेजके सहारे तीर्थसेवी मनुष्य अत्यन्त पुण्यभागी होते हैं । मनके तीर्थके अतिरिक्त पृथ्वीके तीर्थ स्वतंत्र हैं; जो लोग दोनों तीर्थोंमें स्नान करते हैं, वे शीघ्र ही सिद्ध होते हैं । जैसे क्रियारहित बल और बलरहित क्रिया इस लोकमें कार्य साधन करनेमें समर्थ नहीं होती; परन्तु दोनोंके मिलनेपर कार्य सिद्ध होता है, वैसा ही शरीरशौच और तीर्थशौचसम्पन्न पवित्र मनुष्यको दो प्रकारकी श्रेष्ठ शौचरूपी सिद्धि प्राप्त होती है । (१६-२१)

अनुशासनपर्वमें १०८ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर उवाच— सर्वेषामुपवासानां यच्छ्रेयः सुमहत्फलम्।
यच्चाप्यसंशयं लोके तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥
भीष्म उवाच—शृणु राजन्यथा गीतं स्वयमेव स्वयम्भुवा।
यत्कृत्वा निर्वृतो भूयात्पुरुषो नाऽत्र संशयः ॥ २ ॥
द्वादश्यां मार्गशीर्षे तु अहोरात्रेण केशवम्।
अर्च्याश्वमेधं प्राप्नोति दुष्कृतं चास्य नश्यति ॥ ३ ॥
तथैव पौषमासे तु पूज्यो नारायणेति च।
वाजपेयमवाप्नोति सिद्धिं च परमां व्रजेत् ॥ ४ ॥
अहोरात्रेण द्वादश्यां माघमासे तु माधवम्।
राजसूयमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ॥ ५ ॥
तथैव फाल्गुने मासि गोविन्देति च पूजयन्।
अतिरात्रमवाप्नोति सोमलोकं च गच्छति ॥ ६ ॥
अहोरात्रेण द्वादश्यां चैत्रे विष्णुरिति स्मरन्।
पौण्डरीकमवाप्नोति देवलोकं च गच्छति ॥ ७ ॥
वैशाखमासे द्वादश्यां पूजयन्मधुसूदनम्।

अनुशासनपर्वमें १० अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, जो सब उपवासोंके बीच कल्याणकारी, महत् फलजनक और लोकसमाजमें संशयरहित हो। उसे ही आप मेरे समीप वर्णन करिये। (१)

भीष्म बोले, हे महाराज! स्वयंभूने स्वयं जिसका वर्णन किया है, जिसे करनेसे निःसंशय पुरुषोंको निर्वृति प्राप्त होती है, उसका विषय सुनो। मार्गशीर्ष महीनेकी द्वादशी तिथिमें अहोरात्र केशवकी पूजा करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है, तथा जो लोग पूजा करते हैं, उनके पाप नष्ट होते हैं। वैसे ही पौष महीनेमें नारायणकी पूजा करनेसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है और परम सिद्धि प्राप्त होती है। माघ महीनेकी द्वादशी तिथिमें अहोरात्र माधवकी पूजा करनेसे राजसूय यज्ञका फल मिलता है और पूजा करनेवाला निज कुलका उद्धार करता है। उसी भांति फाल्गुन महीनेकी द्वादशीमें जो लोग गोविन्दकी पूजा करते हैं, वे अतिरात्र यज्ञका फल पाते हैं और सोमलोकमें गमन किया करते हैं। (२-६)

चैत्र महीनेकी द्वादशीमें जो लोग अहोरात्र विष्णुको स्मरण करते हुए उनकी पूजा करते हैं, वे पुण्डरीक यज्ञका फल पाके देवलोकमें जाते हैं।

अग्निष्टोममवाप्नोति सोमलोकं च गच्छति ॥ ८ ॥
अहोरात्रेण द्वादश्यां ज्येष्ठे मासि त्रिविक्रमम् ।
गवां मेधमवाप्नोति अप्सरोभिश्च मोदते ॥ ९ ॥
आषाढे मासि द्वादश्यां वामनेति च पूजयन् ।
नरमेधमवाप्नोति पुण्यं च लभते महत् ॥ १० ॥
अहोरात्रेण द्वादश्यां श्रावणे मासि श्रीधरम् ।
पञ्चयज्ञानवाप्नोति विमानस्थश्च मोदते ॥ ११ ॥
तथा भाद्रपदे मासि हृषीकेशेति पूजयन् ।
सौत्रामणिमवाप्नोति पूतात्मा भवते च हि ॥ १२ ॥
द्वादश्यामाश्विने मासि पद्मनाभेति चार्चयन् ।
गोसहस्रफलं पुण्यं प्राप्नुयान्नाऽत्र संशयः ॥ १३ ॥
द्वादश्यां कार्तिके मासि पूज्य दामोदरेति च ।
गवां यज्ञमवाप्नोति पुमान्स्त्री वा न संशयः ॥ १४ ॥
अर्चयेत्पुण्डरीकाक्षमेवं संवत्सरं तु यः ।
जातिस्मरत्वं प्राप्नोति विन्द्याद्बहुसुवर्णकम् ॥ १५ ॥

वैशाख महीनेकी द्वादशी तिथिमें जो लोग मधुसूदनकी पूजा करते हैं, वे अग्निष्टोम यज्ञका फल पाते और सोमलोकमें गमन किया करते हैं। ज्येष्ठ महीनेकी द्वादशी तिथिमें जो लोग अहोरात्र त्रिविक्रमकी पूजा करते हैं, वे गोमेध यज्ञका फल पाते और अप्सराओंके द्वारा प्रमुदित हुआ करते हैं। आषाढ महीनेकी द्वादशीको जो लोग वामनदेवकी पूजा करते हैं, वे मनुष्य नरमेध यज्ञका फल पाते और अप्सराओंके द्वारा आनन्दित हुआ करते हैं। सावन महीनेकी द्वादशीमें जो लोग अहोरात्र श्रीधरकी पूजा करते हैं, वे पञ्च यज्ञका फल पाते और देवलोकमें प्रमुदित होते हैं। (७—११)

भादो महीनेकी द्वादशीमें जो लोग हृषीकेशकी पूजा करते हैं, वे सौत्रामणि यज्ञका फल पाके पवित्रचित्त होते हैं। आश्विन महीनेकी द्वादशी तिथिमें जो लोग पद्मनाभकी पूजा करते हैं, वे निःसंदेह सहस्र गोदानका फल पाते हैं, कार्तिक महीनेकी द्वादशी तिथिमें दामोदरकी पूजा करनेसे सब यज्ञोंके पवित्र फल प्राप्त होते हैं, इस विषयमें सन्देह नहीं है। जो लोग इसी प्रकार वर्ष दिनतक पुण्डरीकाक्षकी पूजा करते हैं, वे जातिस्मर होते तथा उन्हें बहुतसा

अहन्यहनि तद्भावमुपेन्द्रं योऽधिगच्छति ।
समाप्ते भोजयेद्विप्रानथ वा दापयेद् घृतम् ॥ १६ ॥
अतः परं नोपवासो भवतीति विनिश्चयः ।
उवाच भगवान्विष्णुः स्वयमेव पुरातनम् ॥ १७ ॥ [५३१८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे विष्णोर्द्वादशकं नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

वैशम्पायन उवाच– शरतल्पगतं भीष्मं वृद्धं कुरुपितामहम् ।
उपगम्य महाप्राज्ञः पर्यपृच्छद्युधिष्ठिरः ॥ १ ॥
युधिष्ठिर उवाच– अङ्गानां रूपसौभाग्यं प्रियं चैव कथं भवेत् ।
धर्मार्थकामसंयुक्तः सुखभागी कथं भवेत् ॥ २ ॥
भीष्म उवाच– मार्गशीर्षस्य मासस्य चन्द्रे मूलेन संयुते ।
पादौ मूलेन राजेन्द्र जङ्घायामथ रोहिणीम् ॥ ३ ॥
अश्विन्यां सक्थिनी चैव ऊरू चाषाढयोस्तथा ।
गुह्यं तु फाल्गुनी विद्यात्कृत्तिका कटिकास्तथा ॥ ४ ॥
नाभिं भाद्रपदे विद्याद्रेवत्यामक्षिमण्डलम् ।

सुवर्ण प्राप्त होता है जो लोग सदा विष्णुकी पूजा करते हैं, वे उनमें लीन होनेमें समर्थ होते हैं। इस व्रतके समाप्त होनेपर ब्राह्मणोंको भोजन करावे अथवा घृत दान करे; यह निश्चय है, इसके अनन्तर उपवास नहीं होता। सनातन विष्णु भगवानने यह कथा कही है। (११—१७)

अनुशासनपर्वमें १०९ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ११० अध्याय।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाप्राज्ञ युधिष्ठिरने शरशय्याशायी कुरुपितामह बूढे भीष्मके निकट जाके फिर प्रश्न किया। (१)

युधिष्ठिर बोले, अङ्ग लोगोंको रूप, सौभाग्य और प्रियत्व किस प्रकार हुआ करता है तथा धर्मार्थयुक्त पुरुष किसभांति सुखभागी होता है ? (२)

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र ! मार्गशीर्ष महीनेकी शुक्लप्रतिपदामें मूल नक्षत्रके सहित चन्द्रमाका संयोग होनेपर निज देवताके सहित मूल नक्षत्रका चन्द्रमाके सङ्ग दो पद कल्पना करे और रोहिणी नक्षत्रके सहित चन्द्रमाकी जङ्घा कल्पना करे। अश्विनी नक्षत्रके सहित दोनों सक्थि; पूर्वाषाढा और उत्तराषाढाके सहित दोनों ऊरुस्थल, उत्तरा फल्गुनी नक्षत्रके सहित गुह्यकी कल्पना और कृत्ति-

पृष्ठमेव धनिष्ठासु अनुराधोत्तरास्तथा ॥ ५ ॥
बाहुभ्यां तु विशाखासु हस्तौ हस्तेन निर्दिशेत्।
पुनर्वस्वङ्गुली राजन्नाश्लेषासु नखास्तथा ॥ ६ ॥
ग्रीवां ज्येष्ठा च राजेन्द्र श्रवणेन तु कर्णयोः।
मुखं पुष्येण दानेन दन्तोष्ठौ स्वातिरुच्यते ॥ ७ ॥
हासं शतभिषां चैव मघां चैवाथ नासिकाम्।
नेत्रे मृगशिरो विद्याल्ललाटे मित्रमेव तु ॥ ८ ॥
भरण्यां तु शिरो विद्यात् केशानार्द्रा नराधिप।
समाप्ते तु घृतं दद्याद्ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ ९ ॥
सुभगो दर्शनीयश्च ज्ञानभाग्यथ जायते।
जायते परिपूर्णाङ्गः पौर्णमास्येव चन्द्रमाः ॥ १० ॥ [५३२८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे दशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११० ॥

युधिष्ठिर उवाच— पितामह महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद।
श्रोतुमिच्छामि मर्त्यानां संसारविधिमुत्तमम् ॥ १ ॥

का नक्षत्रके सहित कटिकी कल्पना करे। पूर्व और उत्तर भाद्रपदाके सहित नामी; रेवती नक्षत्रके सहित दोनों नेत्र; धनिष्ठा नक्षत्रके सहित पीठ, अनुराधा नक्षत्रके सहित उदर, विशाखा नक्षत्रके सहित दोनों भुजा और हस्त नक्षत्रके सहित चन्द्रमाका संयोग होनेपर दोनों हाथ निर्देश करे। हे महाराज! पुनर्वसु नक्षत्रके सहित चन्द्रमाका सम्बन्ध होनेपर अंगुलियें और आश्लेषा नक्षत्रके योगसे नखोंकी कल्पना करे। (३—६)

हे राजेन्द्र! ज्येष्ठा नक्षत्रके योगसे ग्रीवा और श्रवण नक्षत्रके संयोगसे दोनों कान, पुष्य और स्वाति नक्षत्रके योगसे शतभिष और मघायोगसे हास्य और नासिका, मृगशिरा नक्षत्रके योगसे दोनों नेत्र और चित्रा नक्षत्रके सहित ललाटकी कल्पना करे। भरणी नक्षत्रके योगसे सिर और आर्द्रा नक्षत्रके सहित चन्द्रमाका संयोग होनेपर उसके केशों-की कल्पना करे। हे नरनाथ! इस चन्द्रव्रतके समाप्त होनेपर वेदपारग ब्राह्मणोंको घृत दान करे, इस प्रकार व्रत करनेसे मनुष्य सुभग, दर्शनीय तथा ज्ञानभागी होकर जन्मता है और पूर्णिमाके चन्द्रमा सदृश परिपूर्णाङ्ग हुआ करता है। (७—१०)

अनुशासनपर्वमें ११० अध्याय समाप्त।

केन वृत्तेन राजेन्द्र वर्तमाना नरा भुवि ।
प्राप्नुवन्त्युत्तमं स्वर्गं कथं च नरकं नृप ॥ २ ॥
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं जनाः ।
प्रयान्त्यमुं लोकमितः को वैताननुगच्छति ॥ ३ ॥
भीष्म उवाच- अयमायाति भगवान् बृहस्पतिरुदारधीः ।
पृच्छैनं सुमहाभागमेतद्गुह्यं सनातनम् ॥ ४ ॥
नैतदन्येन शक्यं हि वक्तुं केनचिदद्य वै ।
वक्ता बृहस्पतिसमो न ह्यन्यो विद्यते क्वचित् ॥ ५ ॥
वैशम्पायन उवाच- तयोः संवदतोरेवं पार्थगाङ्गेययोस्तदा ।
आजगाम विशुद्धात्मा नाकपृष्ठाद् बृहस्पतिः ॥ ६ ॥
ततो राजा समुत्थाय धृतराष्ट्रपुरोगमः ।
पूजामनुपमां चक्रे सर्वे ते च सभासदः ॥ ७ ॥
ततो धर्मसुतो राजा भगवन्तं बृहस्पतिम् ।
उपगम्य यथान्यायं प्रश्नं पप्रच्छ तत्त्वतः ॥ ८ ॥
युधिष्ठिर उवाच- भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।

अनुशासनपर्वमें १११ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्वशास्त्रविशारद पितामह ! मनुष्योंकी श्रेष्ठ संसारविधि जाननेकी इच्छा करता हूं । हे राजेन्द्र नरपाल ! पृथ्वीमण्डलपर मनुष्योंको किस प्रकार उत्तम व्यवहार करनेसे श्रेष्ठ स्वर्ग अथवा नरक प्राप्त होता है ? पुरुष काष्ठ और लोष्टसदृश शरीरको त्यागके परलोकमें जाता है, तब उस समय कौन उनका अनुगमन किया करता है ? (१—३)

भीष्म बोले, ये उदार, बुद्धिशक्तियुक्त बृहस्पति आरहे हैं, इन्हीं महाभागसे यह सनातन गोपनीय विषय पूछो । इस समय इनके अतिरिक्त कोई भी यह विषय नहीं कह सकता, बृहस्पतिके समान दूसरा वक्ता कहीं भी विद्यमान नहीं है । (४—५)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, युधिष्ठिर और भीष्म इसी प्रकार वार्त्तालाप कर रहे थे, उसी समय पवित्र-चित्तवाले बृहस्पति स्वर्गसे उतरके आये। अनन्तर धृतराष्ट्र आदि राजाओंके सहित सब सभासदोंने उठके उनकी अनुपम पूजा की । तब धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर भगवान् बृहस्पतिके निकट जाके न्यायपूर्वक यथार्थ रीतिसे प्रश्न करनेमें प्रवृत्त हुए । (६–८)

मर्त्यस्य कः सहायो वै पिता माता सुतो गुरुः ॥ ९ ॥
ज्ञातिसम्बन्धिवर्गश्च मित्रवर्गस्तथैव च ।
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं जनाः ॥ १० ॥
गच्छन्त्यमुत्र लोकं वै क एनमनुगच्छति ।
बृहस्पतिरुवाच– एकः प्रसूयते राजन्नेक एव विनश्यति ॥ ११ ॥
एकस्तरति दुर्गाणि गच्छत्येकस्तु दुर्गतिम् ।
असहायः पिता माता तथा भ्राता सुतो गुरुः ॥ १२ ॥
ज्ञातिसम्बन्धिवर्गश्च मित्रवर्गस्तथैव च ।
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं जनाः ॥ १३ ॥
मुहूर्तमिव रोदित्वा ततो यान्ति पराङ्मुखाः ।
तैस्तच्छरीरमुत्सृष्टं धर्म एकोऽनुगच्छति ॥ १४ ॥
तस्माद्धर्मः सहायश्च सेवितव्यः सदा नृभिः ।
प्राणी धर्मसमायुक्तो गच्छेत्स्वर्गगतिं पराम् ॥ १५ ॥
तथैवाधर्मसंयुक्तो नरकं चोपपद्यते ।
तस्मान्न्यायागतैरर्थैर्धर्मं सेवेत पण्डितः ॥ १६ ॥
धर्म एको मनुष्याणां सहायः पारलौकिकः ।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्वशास्त्रविशारद सर्वधर्मज्ञ भगवन् ! पिता, माता, पुत्र, गुरु, स्वजन, सम्बन्धी और मित्रमण्डलीके बीच मनुष्योंका सहाय कौन है ? पुरुष काष्ठ और लोष्टसदृश मृत शरीरको परित्याग करके गमन करता है, तब परलोकमें कौन उसका अनुगमन किया करता है ? (९-११)

बृहस्पति बोले, हे महाराज ! पुरुष अकेला ही जन्मता और अकेलाही मरता है, अकेला ही क्लेशोंसे पार होता और अकेलेको ही दुःख भोगने पडते हैं। पिता, माता, पुत्र, मित्र, भ्राता, गुरु, स्वजन और सम्बन्धियोंमेंसे कोई भी इसका सहाय नहीं होता। पुरुष काष्ठ और लोष्टसदृश शरीर त्यागके मुहूर्त भरतक मानो रोदन करके अन्तमें विमुख होकर चला जाता है, तब अकेला धर्म ही उस पिता मातासे परित्यक्त पुरुषका अनुगमन करता है, इसलिये धर्म ही पुरुषोंका सहाय है, धर्मकी ही मनुष्योंको सदा सेवा करनी उचित है। धर्मयुक्त प्राणियोंको स्वर्गमें श्रेष्ठ गति मिलती है। और अधर्मयुक्त पुरुष नरकमें गमन किया करता है। इसलिये पण्डित पुरुष न्यायसे प्राप्त हुए धनसे धर्मकी

लोभान्मोहादनुक्रोशाद्भयाद्वाप्यबहुश्रुतः ॥ १७ ॥
नरः करोत्यकार्याणि परार्थे लोभमोहितः ।
धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रितयं जीविते फलम् ॥ १८ ॥
एतत्त्रयमवाप्तव्यमधर्मपरिवर्जितम् ।
युधिष्ठिर उवाच-श्रुतं भगवतो वाक्यं धर्मयुक्तं परं हितम् ॥ १९ ॥
शरीरनिचयं ज्ञातुं बुद्धिस्तु मम जायते ।
मृतं शरीरं हि नृणां सूक्ष्ममव्यक्ततां गतम् ॥ २० ॥
अचक्षुर्विषयं प्राप्तं कथं धर्मोऽनुगच्छति ।
बृहस्पतिरुवाच-पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिर्मनोऽन्तगः॥ २१ ॥
बुद्धिरात्मा च सहिता धर्मं पश्यन्ति नित्यदा ।
प्राणिनामिह सर्वेषां साक्षिभूता निशाऽनिशम् ॥२२॥
एतैश्च सह धर्मोऽपि तं जीवमनुगच्छति ।
त्वगस्थिमांसं शुक्रं च शोणितं च महामते ॥ २३ ॥
शरीरं वर्जयन्त्येते जीवितेन विवर्जितम् ।
ततो धर्मसमायुक्तः प्राप्नुते जीव एव हि ॥ २४ ॥
ततोऽस्य कर्म पश्यन्ति शुभं वा यदि वाऽशुभम् ।

सेवा करे। अकेला धर्म ही परलोकमें मनुष्योंका सहायक होता है;अल्प बुद्धिवाले मनुष्य पराये धनके लोभसे मोहित होके लोभ, मोह, अनुक्रोश और भय निबन्धसे अकार्योंको किया करते हैं; धर्म, अर्थ और काम ये तीनों जीवितकालके फल हैं, इसलिये अधर्मको त्यागके इन त्रिवर्गोंको प्राप्त करना उचित है। (११—१९)

युधिष्ठिर बोले, आपके समीप मैंने धर्मयुक्त, परम हितकर वचन सुना, अब शरीरकी अवस्था जाननेके लिये अत्यंत अभिलाष हुई है। मनुष्योंका मृत शरीर सूक्ष्म रीतिसे अव्यक्तताको प्राप्त होनेसे नेत्रगोचर नहीं होता; तब धर्म किस प्रकार उसका अनुगामी होता है?१९-२१

बृहस्पति बोले,पृथ्वी, वायु,आकाश, जल, अग्नि, बुद्धि और आत्मा तथा साक्षभूत रात्रि और दिन, ये सब मिलके इस लोकमें प्राणियोंके धर्मको सदा अवलोकन करते हैं, ये सब धर्म और जीवके अनुगामी होते हैं। हे महाबुद्धिमान्! त्वचा, हड्डी, मांस, शुक्र और रुधिर ये जीवनरहित शरीरको छोड देते हैं, अनन्तर धर्मसंयुक्त जीव दूसरा शरीर धारण करता है, अन्तमें

देवताः पञ्चभूतस्थाः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ २५ ॥
ततो धर्मसमायुक्तः स जीवः सुखमेधते।
इह लोके परे चैव किं भूयः कथयामि ते ॥ २६ ॥
युधिष्ठिर उवाच– तद्दर्शितं भगवता यथा धर्मोऽनुगच्छति।
एतत्तु ज्ञातुमिच्छामि कथं रेतः प्रवर्तते ॥ २७ ॥
बृहस्पतिरुवाच– अन्नमश्नन्ति यद्देवाः शरीरस्था नरेश्वर।
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिर्मनस्तथा ॥ २८ ॥
ततस्तृप्तेषु राजेन्द्र तेषु भूतेषु पञ्चसु।
मनःषष्ठेषु शुद्धात्मन् रेतः संपद्यते महत् ॥ २९ ॥
ततो गर्भः सम्भवति श्लेषात्स्त्रीपुंसयोर्नृप।
एतत्ते सर्वमाख्यातं भूयः किं श्रोतुमिच्छसि ॥ ३० ॥
युधिष्ठिर उवाच– आख्यातं मे भगवता गर्भः सञ्जायते तथा।
यथा जातस्तु पुरुषः प्रपद्यति तदुच्यताम् ॥ ३१ ॥
बृहस्पतिरुवाच– आसन्नमात्रः पुरुषस्तैर्भूतैरभिभूयते।
विप्रयुक्तश्च तैर्भूतैः पुनर्यात्यपरां गतिम् ॥ ३२ ॥

पञ्चतत्त्वोंके देवता उस जीवके शुभ वा अशुभ कर्मोंको देखते हैं। धर्मके सहित वह जीव इस लोक और परलोकमें सुख पाता है। पुनर्वार तुमसे और कौनसा विषय कहूं? (२१—२६)

युधिष्ठिर बोले, धर्म जिस भांति अनुगमन करता है, उसे आपने कहा, अब किस प्रकार वीर्य प्रवृत्त होता है? मैं इसे जाननेकी इच्छा करता हूं। (२७)

बृहस्पति बोले, हे नरनाथ! जो अन्न पुरुष खाता है, शरीरमें रहनेवाले देवगण, पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि और छठवें मनके सन्तुष्ट होनेपर वही भोजन किया हुआ अन्न महत् वीर्यस्वरूप होता है। हे राजन्! अनन्तर स्त्रीपुरुषोंके संयोगसे गर्भ उत्पन्न हुआ करता है। यह सब तुम्हारे समीप कहा गया, फिर क्या सुननेकी इच्छा है? (२८–३०)

युधिष्ठिर बोले, जिस प्रकार गर्भ उत्पन्न होता है, वह आपके द्वारा वर्णित हुआ; अब जिस भांति पुरुषकी उत्पत्ति होती है, उसे कहिये। (३१)

बृहस्पति बोले, उत्पत्तियुक्त पुरुष पञ्चतत्त्वोंके गुणोंसे अभिभूत होता है और उन्हीं संयुक्त तत्त्वोंसे अपरा गति प्राप्त हुआ करती है अर्थात् तादात्म्या-

सर्वभूतसमायुक्तः प्राप्नुते जीव एव हि।
ततोऽस्य कर्म पश्यन्ति शुभं वा यदि वाऽशुभम्।
देवताः पञ्चभूतस्थाः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ३३ ॥
युधिष्ठिर उवाच- त्वगस्थिमांसमुत्सृज्य तैश्च भूतैर्विवर्जितः।
जीवः स भगवन्कस्थः सुखदुःखे समश्नुते ॥ ३४ ॥
बृहस्पतिरुवाच- जीवः कर्मसमायुक्तः शीघ्रं रेतस्त्वमागतः।
स्त्रीणां पुष्पं समासाद्य सूते कालेन भारत ॥ ३५ ॥
यमस्य पुरुषैः क्लेशं यमस्य पुरुषैर्वधम्।
दुःखं संसारचक्रं च नरः क्लेशं स विन्दति ॥ ३६ ॥
इह लोके स च प्राणी जन्मप्रभृति पार्थिव।
सुकृतं कर्म वै भुङ्क्ते धर्मस्य फलमाश्रितः ॥ ३७ ॥
यदि धर्मं यथाशक्ति जन्मप्रभृति सेवते।
ततः स पुरुषो भूत्वा सेवते नित्यदा सुखम् ॥ ३८ ॥
अथान्तरा तु धर्मस्याप्यधर्ममुपसेवते।
सुखस्यानन्तरं दुःखं स जीवोऽप्यधिगच्छति ॥ ३९ ॥
अधर्मेण समायुक्तो यमस्य विषयं गतः।

भिमान रूप अभिमव हेतु यह सर्वभूत-सम्पन्न होकर कर्त्तृत्वादि अभिमानी होता है, उस समय पञ्चतत्त्वोंके देवता जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंको देखते हैं। फिर कौनसा विषय सुननेकी इच्छा है? (३२—३३)

युधिष्ठिर बोले हे भगवन्! त्वचा, हड्डी और मांस परित्याग करनेसे उन तत्त्वोंसे रहित होकर वह जीव किस स्थानमें रहके सुख दुःख भोग करता है? (३४)

बृहस्पति बोले, कर्मसे संयुक्त जीव शीघ्र ही वीर्यस्वरूप होकर स्त्रियोंके पुष्पको अवलम्बन करके यथा समयमें उत्पन्न होता है। यमके द्वारा बन्धन तथा क्लेश भोगके मनुष्य दुःखमय संसारचक्रमें क्लेशोंको भोगता है। हे महाराज! वह प्राणी इस लोकमें जन्मसेही धर्मफल अवलम्बन करनेसे सुकृत कर्मभोग किया करता है। जन्मसे ही यदि शक्तिके अनुसार धर्मकी सेवा करे, तो वह पुरुष सदा सुख भोग किया करता है। और धर्मके बीच यदि अधर्मकी सेवा करे, तो वह जीव सुखके अनन्तर दुःख भोगनेमें प्रवृत्त होता है। जो जीव अधर्मयुक्त

महद् दुःखं समासाद्य तिर्यग्योनौ प्रजायते ॥ ४० ॥
कर्मणा येन येनेह यस्यां योनौ प्रजायते ।
जीवो मोहसमायुक्तस्तन्मे निगदतः शृणु ॥ ४१ ॥
यदेतदुच्यते शास्त्रे सेतिहासे च छन्दसि ।
यमस्य विषयं घोरं मर्त्यो लोकः प्रपद्यते ॥ ४२ ॥
इह स्थानानि पुण्यानि देवतुल्यानि भूपते ।
तिर्यग्योन्यतिरिक्तानि गतिमन्ति च सर्वशः ॥ ४३ ॥
यमस्य भवने दिव्ये ब्रह्मलोकसमे गुणैः ।
कर्मभिर्नियतैर्बद्धो जन्तुर्दुःखान्युपाश्नुते ॥ ४४ ॥
येन येन तु भावेन कर्मणा पुरुषो गतिम् ।
प्रयाति परुषां घोरां तत्ते वक्ष्याम्यतः परम् ॥ ४५ ॥
अधीत्य चतुरो वेदान् द्विजो मोहसमन्वितः ।
पतितात्प्रतिगृह्याथ खरयोनौ प्रजायते ॥ ४६ ॥
खरो जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भारत ।
खरो मृतो बलीवर्दः सप्त वर्षाणि जीवति ॥ ४७ ॥
बलीवर्दो मृतश्चापि जायते ब्रह्मराक्षसः ।

हैं, वे यमलोकमें जाके दुःखके सहित तिर्यग्योनिमें जन्मते हैं । मोहयुक्त जीव इस लोकमें जिन कर्मोंके सहारे जिन योनियोंमें उत्पन्न हुआ करता है, उसे मैं कहता हूं, सुनो । (३९-४१)

इतिहासके सहित शास्त्रों और वेदोंमें यह वर्णित है, कि मर्त्यलोकवासी जीव घोर यमपुरीमें गमन करते हैं । हे पृथ्वीनाथ ! वहांपर देवलोकसदृश पवित्रस्थान विद्यमान है, वहां तिर्यग्योनिमें उत्पन्न हुए जीव नहीं जासकते; इसके अतिरिक्त सब जीवोंकी ही उस स्थानमें गति हुआ करती है । ब्रह्मलोकसदृश दिव्य यमभवनमें जीव सदा कर्मगुणोंसे बद्ध होकर विविध दुःख भोग करता है । जैसे भाव और कर्मोंसे पुरुषको घोर कठोर गति प्राप्त होती है, इसके अनन्तर मैं तुमसे वह विषय कहता हूं । ब्राह्मण यदि चारों वेदोंको पढके मोहवश पतित पुरुषके प्रतिग्रह लेवे, तो वह गर्दभयोनिमें जन्मता है । (४२-४६)

हे भारत ! वह गधा होके पन्द्रह वर्ष जीवित रहता है, गधा मरनेपर बलवान बैल होता है, बलीवर्द सात वर्ष जीवित रहता है, बलीवर्द मरके

ब्रह्मरक्षश्च मासांस्त्रींस्ततो जायति ब्राह्मणः ॥ ४८ ॥
पतितं याजयित्वा तु कृमियोनौ प्रजायते ।
तत्र जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भारत ॥ ४९ ॥
कृमिभावाद्विमुक्तस्तु ततो जायति गर्दभः ।
गर्दभः पञ्च वर्षाणि पञ्च वर्षाणि सूकरः ॥ ५० ॥
कुक्कुटः पञ्च वर्षाणि पञ्च वर्षाणि जम्बुकः ।
श्वा वर्षमेकं भवति ततो जायति मानवः ॥ ५१ ॥
उपाध्यायस्य यः पापं शिष्यः कुर्यादबुद्धिमान् ।
स जीव इह संसारांस्त्रीनाप्नोति न संशयः ॥ ५२ ॥
प्राक् श्वा भवति राजेन्द्र ततः क्रव्यात्ततः खरः ।
ततः प्रेतः परिक्लिष्टः पश्चाज्जायति ब्राह्मणः ॥ ५३ ॥
मनसाऽपि गुरोर्भार्यां यः शिष्यो याति पापकृत ।
स उग्रान्प्रैति संसारानधर्मेणेह चेतसा ॥ ५४ ॥
श्वयोनौ तु स सम्भूतस्त्रीणि वर्षाणि जीवति ।
तत्रापि निधनं प्राप्तः कृमियोनौ प्रजायते ॥ ५५ ॥
कृमिभावमनुप्राप्तो वर्षमेकं तु जीवति ।

ब्रह्मराक्षस रूपसे जन्मता है, ब्रह्मराक्षस तीन महीने जीवित रहके मरनेपर ब्राह्मण होता है । पतित पुरुषका याजन करनेसे कृमियोनिमें जन्म हुआ करता है । हे भारत ! वह कृमियोनिमें पन्दरह वर्ष जीवित रहता है, कृमियोनिसे छुटके गर्दभयोनिमें जन्मता है, गधा होके पन्दरह वर्ष, फिर शूकर होके पांच वर्ष, पांचवर्षतक कुक्कुट, पांच वर्षतक सियार और एक वर्षतक कुत्ता होके रहता है, अनन्तर मनुष्य होता है । (४७—५१)

जो निर्बुद्धि शिष्य उपाध्यायके निकट पाप करता है, वह जीव इस लोक में तीनबार निःसन्देह तिर्यक्योनिमें उत्पन्न होता है। हे राजेन्द्र ! वह पहले कुत्ता होता है, तिसके अनन्तर मांसभोजी हिंसक जन्तु होके जन्मता है, फिर गधा होके उत्पन्न होता है, अनन्तर प्रेतरूप होके पश्चात् ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न होता है, जो पापाचारी शिष्य मनसेभी गुरुपत्नी गमन करता है, वह अधर्मयुक्त चित्तसे परलोकमें जाके इस लोकमें उग्र जन्म पाता है । वह पहले श्वयोनिमें उत्पन्न होकर तीन वर्षतक जीवित रहता है, श्वान योनिमें मरके कृमियो-

ततस्तु निधनं प्राप्तो ब्रह्मयोनौ प्रजायते ॥ ५६ ॥
यदि पुत्रसमं शिष्यं गुरुर्हन्यादकारणे ।
आत्मनः कामकारेण सोऽपि हिंस्रः प्रजायते ॥ ५७ ॥
पितरं मातरं चैव यस्तु पुत्रोऽवमन्यते ।
सोऽपि राजन्मृतो जन्तुः पूर्वं जायेत गर्दभः ॥ ५८ ॥
गर्दभत्वं तु संप्राप्य दश वर्षाणि जीवति ।
संवत्सरं तु कुम्भीरस्ततो जायेत मानवः ॥ ५९ ॥
पुत्रस्य मातापितरौ यस्य रुष्टावुभावपि ।
गुर्वपध्यानतः सोऽपि मृतो जायति गर्दभः ॥ ६० ॥
खरो जीवति मासांस्तु दश श्वा च चतुर्दश ।
बिडालः सप्त मासांस्तु ततो जायति मानवः ॥ ६१ ॥
मातापितरावाक्रुश्य सारिकः संप्रजायते ।
ताडयित्वा तु तावेव जायते कच्छपो नृप ॥ ६२ ॥
कच्छपो दश वर्षाणि त्रीणि वर्षाणि शल्यकः ।
व्यालो भूत्वा च षण्मासांस्ततो जायति मानुषः ॥६३॥

निमें जन्मता है । कृमि होके एक वर्ष-तक जीवित रहता है, अनन्तर मरके ब्राह्मणयोनिमें जन्मता है । गुरु यदि अपनी इच्छानुसार पुत्रतुल्य शिष्यके ऊपर विना कारणके ही प्रहार करता है तो वह भी हिंसक जन्तु होके उत्पन्न हुआ करता है । (५२—५७)

हे महाराज ! जो पुत्र पितामाताकी अवमानना करता है, वह मरके पहले गर्दभयोनिमें उत्पन्न होता है, गधा होके दश वर्षतक जीवित रहता है, एक वर्ष-तक कुम्भीर अर्थात् शतपदीयुक्त जन्तु-विशेष होकर अन्तमें मनुष्यजन्म पाता है । जिस पुत्रके ऊपर माता पिता दोनों ही रुष्ट होते हैं, वह गुरुजनोंके असन्तोष वशसे मरके गर्दभयोनिमें जन्मता है, गधा होके दश महीनेतक जीवित रहता, फिर कुत्ता होकर चौदह महीनेतक जीता है; अनन्तर बिडाल होकर सात महीना बिताके अन्तमें मनुष्यजन्म पाता है । (५८—६१)

जो पुरुष पितामाताके विषयमें आक्रोश प्रकाश करता है, वह सारिक अर्थात् शालिक पक्षी होके उत्पन्न होता है । हे महाराज ! पितामाताके ऊपर प्रहार करनेसे तीन वर्षतक कच्छप होके जन्मता है । कछुआ मरके तीन वर्षतक शल्यक और छः महीनेतक सांप होके

भर्तृपिण्डमुपाश्नन्यो राजाद्विष्टानि सेवते ।
सोऽपि मोहसमापन्नो मृतो जायति वानरः ॥ ६४ ॥
वानरो दश वर्षाणि पञ्च वर्षाणि मूषिकः ।
श्वाऽथ भूत्वा तु षण्मासांस्ततो जायति मानुषः ॥६५॥
न्यासापहर्ता तु नरो यमस्य विषयं गतः ॥
संसाराणां शतं गत्वा कृमियोनौ प्रजायते ॥ ६६ ॥
तत्र जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भारत ॥
दुष्कृतस्य क्षयं कृत्वा ततो जायति मानुषः ॥ ६७ ॥
असूयको नरश्चापि मृतो जायति शार्ङ्गकः ।
विश्वासहर्ता तु नरो मीनो जायति दुर्मतिः ॥ ६८ ॥
भूत्वा मीनोऽष्टवर्षाणि मृगो जायति भारत ।
मृगस्तु चतुरो मासांस्ततश्छागः प्रजायते ॥ ६९ ॥
छागस्तु निधनं प्राप्य पूर्णसंवत्सरे ततः ।
कीटः सञ्जायते जन्तुस्ततो जायति मानुषः ॥ ७० ॥
धान्यान्यवांस्तिलान्माषान्कुलत्थान्सर्षपांश्चणान् ।
कलायानथ मुद्गांश्च गोधूमानतसीस्तथा ॥ ७१ ॥

जीवित रहता है, अन्तमें मनुष्य होके जन्मता है, जो लोग स्वामीका अन्न खाते हुए राजविषयोंकी सेवा करते हैं, वे मोहयुक्त मनुष्य मरके वानरयोनिमें जन्मते हैं । बन्दर होके दशवर्ष, चूहा होके पांच वर्षके अनन्तर कुत्ता होके छः मास समय बिताके मरनेपर मनुष्य-जन्म पाते हैं । (६२—६५)

न्यस्त धन हरनेवाले मनुष्य यम-लोकमें जाकर सैकडों योनियोंमें भ्रमण करके शेषमें कृमियोनिमें जन्मते हैं । हे भारत ! वे उस कृमियोनिमें पन्द्रह वर्ष जीवित रहते हैं अनन्तर पाप नष्ट होनेपर मनुष्ययोनिमें जन्मते हैं । असूयक मनुष्य मरके मृगयोनिमें जन्मता है । विश्वासघाती, नीचबुद्धि मनुष्य मत्स्ययोनिमें उत्पन्न होता है । हे भारत ! वह मछली होनेपर आठ वर्ष-तक जीवित रहके मृगयोनिमें जन्मता है, मृग होके चार महीनेके अनन्तर छागयोनिमें उत्पन्न होता है । एक वर्ष पूरा होनेपर बकरा मरके कीटयोनिमें जन्मता है, अनन्तर वही जीव फिर मनुष्ययोनि पाता है । (६६-७०)

हे महाराज ! जो पुरुष मोहके वशमें अचेत होकर, धान्य, यव, कुलत्थ,

सस्यस्यान्यस्य हर्ता च मोहाज्जन्तुरचेतनः ।
स जायते महाराज मूषिको निरपत्रपः ॥ ७२ ॥
ततः प्रेत्य महाराज मृतो जायति सूकरः ।
सूकरो जातमात्रस्तु रोगेण म्रियते नृप ॥ ७३ ॥
श्वा ततो जायते मूढः कर्मणा तेन पार्थिव ।
भूत्वा श्वा पञ्च वर्षाणि ततो जायति मानवः ॥ ७४ ॥
परदाराभिमर्शं तु कृत्वा जायति वै वृकः ।
श्वा शृगालस्ततो गृध्रो व्यालः कङ्को बकस्तथा ॥ ७५ ॥
भ्रातुर्भार्यां तु पापात्मा यो धर्षयति मोहितः ।
पुंस्कोकिलत्वमाप्नोति सोऽपि संवत्सरं नृप ॥ ७६ ॥
सखिभार्यां गुरोर्भार्यां राजभार्यां तथैव च ।
प्रधर्षयित्वा कामाय मृतो जायति सूकरः ॥ ७७ ॥
सूकरः पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि श्वाविधः ।
बिडालः पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि कुक्कुटः ॥ ७८ ॥
पिपीलिकस्तु मासांस्त्रीन्कीटः स्यान्मासमेव तु ।
एतानासाद्य संसारान् कृमियोनौ प्रजायते ॥ ७९ ॥
तत्र जीवति मासांस्तु कृमियोनौ चतुर्दश ।

सरसों, चना, उडद, मूंग, गेहूं, तीसी वा अन्य शस्योंको हरता है, वह निर्लज्ज मूषिकयोनिमें उत्पन्न हुआ करता है। हे महाराज! अनन्तर वह मरके मृग होता है, फिर सूकर होके जन्मता और उत्पन्न होते ही रोगके वशमें होकर पञ्चत्वको प्राप्त होता है। हे राजन्! अनन्तर वह निज कर्मवशसे श्वानयोनिमें जन्मता है, कुत्ता होके पांचवर्ष समय बिताके अन्तमें मनुष्य-जन्म पाता है। (७१-७४)

पराई स्त्री हरनेसे मनुष्य वृकयोनिमें उत्पन्न होता है, क्रमसे वह कुत्ता, सियार, गिद्ध, सांप और बगुला होता है। हे महाराज! जो पापी मोहित होकर भाईकी स्त्री हरता है, उसे वर्ष-भरतक पुंस्कोकिलत्व प्राप्त होता है। जो पुरुष कामके वशमें होकर मित्र-भार्या, गुरुपत्नी और राजभार्या गमन करता है, वह मरनेपर सूकरयोनिमें उत्पन्न होता है, सूकर होके पांचवर्ष समय बिताके दश वर्षतक भेडिया होके रहता है। अनन्तर पांच वर्षतक बिडाल, दश वर्षतक कुक्कुट, तीन

ततोऽधर्मक्षयं कृत्वा पुनर्जायति मानवः ॥ ८० ॥
उपस्थिते विवाहे तु यज्ञे दानेऽपि वा विभो ।
मोहात्करोति यो विघ्नं स मृतो जायते कृमिः ॥ ८१॥
कृमिर्जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भारत ।
अधर्मस्य क्षयं कृत्वा ततो जायति मानवः ॥ ८२ ॥
पूर्वं दत्त्वा तु यः कन्यां द्वितीये दातुमिच्छति ।
सोऽपि राजन्मृतो जन्तुः कृमियोनौ प्रजायते ॥ ८३ ॥
तत्र जीवति वर्षाणि त्रयोदश युधिष्ठिर ।
अधर्मसंक्षये युक्तस्ततो जायति मानवः ॥ ८४ ॥
देवकार्यमकृत्वा तु पितृकार्यमथापि वा ।
अनिर्वाप्य समश्नन्वै मृतो जायति वायसः ॥ ८५ ॥
वायसः शतवर्षाणि ततो जायति कुक्कुटः ।
जायते व्यालकश्चापि मासं तस्मात्तु मानुषः ॥ ८६ ॥
ज्येष्ठं पितृसमं चापि भ्रातरं योऽवमन्यते ।
सोऽपि मृत्युमुपागम्य क्रौञ्चयोनौ प्रजायते ॥ ८७ ॥
क्रौञ्चो जीवति वर्षं तु ततो जायति चीरकः ।

महीनेतक चींटी और एक महीना कीट होनेके अनन्तर कृमियोनिमें जन्मता है, उस कीटयोनिमें चौदह महीनेतक जीवित रहता है। (७५-८०)

अन्तमें अधर्म नष्ट होनेपर फिर मनुष्ययोनिमें जन्मता है। हे भारत! विवाह, यज्ञ अथवा दानके समय जो मनुष्य मोहवशसे उसमें विघ्न करता है, वह मरके कृमियोनिमें जन्मता है, कृमि होके पन्दरह वर्ष जीवित रहता है, अन्तमें अधर्म नष्ट होनेपर मनुष्यशरीर पाता है। हे महाराज! पहले एक पुरुषको कन्या दान करके जो दूसरे पुरुषको दान करनेकी इच्छा करता है, वह जीव मरके कृमियोनिमें उत्पन्न हुआ करता है। हे युधिष्ठिर! कृमियोनिमें तेरह वर्षतक जीवित रहता है, अनन्तर अधर्म नष्ट होनेपर वह मनुष्ययोनिमें जन्मता है। (८०-८४)

जो पुरुष देवकार्य और पितृकार्य न करके स्वयं भोजन करता है, वह मरनेपर कौआ होता है, काग होके एक सौ वर्ष जीवित रहता है, अनन्तर कुक्कुट होता है, कुक्कुट जन्मके बाद एक महीनेतक काला सर्प होके रहता है, अन्तमें मनुष्यशरीर धारण करता

ततो निधनमापन्नो मानुषत्वमुपाश्नुते ॥ ८८ ॥
वृषलो ब्राह्मणीं गत्वा कृमियोनौ प्रजायते।
ततः संप्राप्य निधनं जायते सूकरः पुनः ॥ ८९ ॥
सूकरो जातमात्रस्तु रोगेण म्रियते नृप।
श्वा ततो जायते मूढः कर्मणा तेन पार्थिव ॥ ९० ॥
श्वा भूत्वा कृतकर्मासौ जायते मानुषस्ततः।
तत्रापत्यं समुत्पाद्य मृतो जायति मूषिकः ॥ ९१ ॥
कृतघ्नस्तु मृतो राजन्यमस्य विषयं गतः।
यमस्य पुरुषैः क्रुद्धैर्वधं प्राप्नोति दारुणम् ॥ ९२ ॥
दण्डं समुद्गरं शूलमग्निकुम्भं च दारुणम्।
असिपत्रवनं घोरवालुकं कूटशाल्मलीम् ॥ ९३ ॥
एताश्चान्याश्च बह्वीश्च यमस्य विषयं गतः।
यातनाः प्राप्य तत्रोग्रास्ततो वध्यति भारत ॥ ९४ ॥
ततो हतः कृतघ्नः स तत्रोग्रैर्भरतर्षभ।
संसारचक्रमासाद्य कृमियोनौ प्रजायते ॥ ९५ ॥
कृमिर्भवति वर्षाणि दश पञ्च च भारत।

है। जो पुरुष पितासदृश जेठे भाईकी अवमानना करता है, वह मरके क्रौञ्च-योनिमें जन्मता है। क्रौञ्च होके चौवीस महीना जीवित रहता है, अन्तमें मरके मनुष्यतनु पाता है। (८५-८८)

शूद्र ब्राह्मणी गमन करनेसे कृमि-योनिमें जन्मता है, अनन्तर फिर मरके सूकर होता है। हे महाराज! सूकर जन्म लेते ही रोगसे मरता है। हे राजन्! वह मूढ उक्त कर्मके वशमें होकर श्वानयोनिमें जन्मता है, कुत्ता होके कर्मफल भोगते हुए अन्तमें मनुष्य होता है। मनुष्यजन्ममें पुत्र उत्पन्न करके मरनेपर मूषिकयोनिमें जन्मता है। (८९—९१)

हे महाराज! कृतघ्न मनुष्य मरनेके अनन्तर यमपुरीमें जाकर क्रुद्ध यमदूतोंके द्वारा दारुण पीडा पाता है। हे भारत! वह यमके स्थानमें दण्ड, मुद्गर, शूल, दारुण अग्निकुण्ड, तरवारपत्रके घोर वन, बालु और कांटेयुक्त शाल्मली तथा और भी अनेक प्रकारकी उग्र यातना पाके अन्तमें वध्य हुआ करता है। हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर वह कृतघ्न वहांपर प्रचण्डदण्डके द्वारा नष्ट होकर संसारचक्रको अवलम्बन करके कृमि-

ततो गर्भं समासाद्य तत्रैव म्रियते शिशुः ॥ ९६ ॥
ततो गर्भशतैर्जन्तुर्बहुभिः संप्रपद्यते ।
संसारांश्च बहून्गत्वा ततस्तिर्यक्षु जायते ॥ ९७ ॥
ततो दुःखमनुप्राप्य बहुवर्षगणानिह ।
अपुनर्भवसंयुक्तस्ततः कूर्मः प्रजायते ॥ ९८ ॥
दधि हृत्वा बकश्चापि प्लवो मत्स्यानसंस्कृतान्।
चोरयित्वा तु दुर्बुद्धिर्मधु दंशः प्रजायते ॥ ९९ ॥
फलं वा मूलकं हृत्वा अपूपं वा पिपीलिकाः ।
चोरयित्वा च निष्पावं जायते हलगोलकः ॥ १०० ॥
पायसं चोरयित्वा तु तित्तिरित्वमवाप्नुते ।
हृत्वा पिष्टमयं पूपं कुम्भोलूकः प्रजायते ॥ १०१ ॥
अयो हृत्वा तु दुर्बुद्धिर्वायसो जायते नरः ।
कांस्यं हृत्वा तु दुर्बुद्धिर्हारितो जायते नरः ॥ १०२ ॥
राजतं भाजनं हृत्वा कपोतः संप्रजायते ।
हृत्वा तु काञ्चनं भाण्डं कृमियोनौ प्रजायते ॥ १०३ ॥
पत्रोर्णं चोरयित्वा तु कृकलत्वं निगच्छति ।

योनिमें जन्मता है। (९२–९५)

हे भारत! वह पन्द्रह वर्ष कृमि होके रहता है, अनन्तर गर्भमें जाता है, वह गर्भ शिशु अवस्थामें ही नष्ट होता है; फिर सैकडों बार गर्भमें उत्पन्न होके मरता है, बहुतसे जन्मके बाद तिर्यक् योनिमें उत्पन्न होता है, अनन्तर इस लोकमें कई वर्षतक दुःख अनुभव करके पुनर्जन्मरहित होके कूर्मयोनिमें जन्मता है, नीचबुद्धि मनुष्य दही हरनेसे बक-पक्षी होता है और असंस्कृत मत्स्य हरनेसे प्लव अर्थात् कारण्डव पक्षी होके जन्मता है। जो दुर्बुद्धि पुरुष मधु हरता है, वह दंश होके उत्पन्न होता है। (९६–९९)

फलमूल और अपूप हरनेसे मनुष्य चींटियोनिमें जन्मता है; राजमाष हरनेसे हलगोलक अर्थात् लम्बी पूंछवाले गोलाकार कीटयोनिमें जन्म लेता है, पायस हरनेवाला तीतर पक्षी होता है, पिष्टमय पूप हरनेवाला उलूकयोनिमें उत्पन्न हुआ करता है। दुर्मति मनुष्य लोहा हरनेसे कागयोनिमें जन्मता है; नीचबुद्धि पुरुष कांसा हरनेसे हारीत पक्षी होता है; चांदीके पात्र हरनेवाला कपोतयोनिमें जन्म लेता है, स्वर्ण-

कौशिकं तु ततो हृत्वा नरो जायति वर्तकः ॥ १०४ ॥
अंशुकं चोरयित्वा तु शुको जायति मानवः ।
चोरयित्वा दुकूलं तु मृतो हंसः प्रजायते ॥ १०५ ॥
क्रौञ्चः कार्पासिकं हृत्वा मृतो जायति मानवः ।
चोरयित्वा नरः पट्टं त्वाविकं चैव भारत ॥ १०६ ॥
क्षौमं च वस्त्रमादाय शशो जन्तुः प्रजायते ।
वर्णान् हृत्वा तु पुरुषो मृतो जायति बर्हिणः ॥ १०७ ॥
हृत्वा रक्तानि वस्त्राणि जायते जीवजीवकः ।
वर्णकादींस्तथा गन्धांश्चोरयित्वेह मानवः ॥ १०८ ॥
छुच्छुन्दरित्वमाप्नोति राजन्लोभपरायणः ।
तत्र जीवति वर्षाणि ततो दश च पञ्च च ॥ १०९ ॥
अधर्मस्य क्षयं गत्वा ततो जायति मानुषः ।
चोरयित्वा पयश्चापि बलाका संप्रजायते ॥ ११० ॥
यस्तु चोरयते तैलं नरो मोहसमन्वितः ।
सोऽपि राजन्मृतो जन्तुस्तैलपायी प्रजायते ॥ १११ ॥
अशस्त्रं पुरुषं हृत्वा सशस्त्रः पुरुषाधमः ।

पात्र हरनेवाला कृमियोनिमें जन्मता है । (१००–१०३)

धोये हुए कौशेय वस्त्र हरनेवाला कृकल पक्षी होके जन्मता है । कृमि-कोशसे उत्पन्न हुए वस्त्रोंको हरनेसे मनुष्य वर्चक पक्षी होता है । साधारण वस्त्रोंको हरनेवाला मनुष्य मरके शुक-पक्षी होता है; पट्टवस्त्र हरनेवाला पुरुष मरनेपर हंस होता है, सूती वस्त्र हरने-वाला मनुष्य मरनेके अनन्तर क्रौञ्च-योनिमें उत्पन्न होता है । हे भारत ! पट्टवस्त्र तथा भेड प्रभृतिके रोमसे बने हुए कम्बल वा दुकूल वस्त्र हरनेसे मनुष्य शशजन्तु होके जन्मता है, हरि-तालादि वस्त्र हरनेसे पुरुष मरके मयूर योनिमें जन्मता है । (१०४—१०७)

लालवस्त्र हरनेवाला मनुष्य चकोर पक्षीयोनिमें जन्मता है । हे महाराज ! लोभी मनुष्य इस लोकमें वर्णक (रङ्ग) प्रभृति तथा सुगन्धित वस्तु हरनेसे छुछून्दर योनिमें जन्मता है । उस ही अवस्थामें पन्द्रह वर्ष जीवित रहता है, अनन्तर अधर्म नष्ट होनेपर मनुष्यजन्म पाता है । दूध हरनेवाला पुरुष बगुला होता है । हे महाराज ! जो पुरुष मोहके वशमें होकर तेल हरता है, वह

अर्थार्थी यदि वा वैरी स मृतो जायते खरः ॥ ११२ ॥
खरो जीवति वर्षे द्वे ततः शस्त्रेण वध्यते ।
स मृतो मृगयोनौ तु नित्योद्विग्नोऽभिजायते ॥ ११३ ॥
मृगो वध्यति शस्त्रेण गते संवत्सरे तु सः ।
हतो मृगस्ततो हीनः सोऽपि जालेन बध्यते ॥११४॥
मासे चतुर्थे संप्राप्ते श्वापदः संप्रजायते ।
श्वापदो दश वर्षाणि द्वीपी वर्षाणि पञ्च च ॥ ११५ ॥
ततस्तु निधनं प्राप्तः कालपर्यायचोदितः ।
अधर्मस्य क्षयं कृत्वा ततो जायति मानुषः ॥ ११६ ॥
स्त्रियं हत्वा तु दुर्बुद्धिर्यमस्य विषयं गतः ।
बहून्क्लेशान्समासाद्य संसारांश्चैव विंशतिम् ॥ ११७ ॥
ततः पश्चान्महाराज कृमियोनौ प्रजायते ।
कृमिर्विंशतिवर्षाणि भूत्वा जायति मानुषः ॥ ११८ ॥
भोजनं चोरयित्वा तु मक्षिका जायते नरः ।
मक्षिकासङ्घवशगो बहून्मासान्भवत्युत ॥ ११९ ॥
ततः पापक्षयं कृत्वा मानुषत्वमवाप्नुते ।
धान्यं हृत्वा तु पुरुषो लोमशः संप्रजायते ॥ १२० ॥

मरके तैलपायीयोनिमें उत्पन्न होता है।(१०८-१११)

धनकी इच्छासे अथवा वैरी होकर शस्त्रधारी अधम पुरुष अशस्त्र मनुष्यको मारनेसे मरनेके अनन्तर खरयोनिमें जन्मता है; गधा होके दो वर्ष जीवित रहता है, फिर शस्त्रसे मरके मृग होता और मृगयोनिमें सदा उद्विग्नरूपसे जन्म लेता है, एक वर्ष बीतनेपर वह मृग शस्त्रसे मरके मीनयोनिमें जालसे बद्ध होता है, अनन्तर श्वापद योनिमें जन्मता है, श्वापद होके दश वर्ष, फिर द्वीपी होके पांच वर्ष जीवित रहता है, अनन्तर मरके कालक्रमसे अधर्म नष्ट होनेपर मनुष्ययोनिमें जन्म लेता है। (११२—११६)

हे महाराज! नीचबुद्धि मनुष्य परस्त्री हरनेसे यमके स्थानमें जाकर अनेक प्रकारके क्लेश भोगता हुआ इक्कीस योनिमें भ्रमण करके कीटयोनिमें उत्पन्न होता है; बीस वर्ष कृमियोनिमें रहके फिर मनुष्यजन्म पाता है। भोजनकी वस्तु हरनेसे मनुष्य मक्खी होके जन्मता है और कई महीनेतक मक्खी-

तथा पिण्याकसंमिश्रमशनं चोरयेन्नरः ।
स जायते बभ्रुसमो दारुणो मूषिको नरः ॥ १२१ ॥
दशन्वै मानुषान्नित्यं पापात्मा स विशाम्पते ।
घृतं हृत्वा तु दुर्बुद्धिः काकमद्गुः प्रजायते ॥ १२२ ॥
मत्स्यमांसमथो हृत्वा काको जायति दुर्मतिः ।
लवणं चोरयित्वा तु चिरिकाकः प्रजायते ॥ १२३ ॥
विश्वासेन तु निक्षिप्तं यो विनिह्नोति मानवः ।
स गतायुर्नरस्तात मत्स्ययोनौ प्रजायते ॥ १२४ ॥
मत्स्ययोनिमनुप्राप्य मृतो जायति मानुषः।
मानुषत्वमनुप्राप्य क्षीणायुरुपपद्यते ॥ १२५ ॥
पापानि तु नराः कृत्वा तिर्यग्जायन्ति भारत ।
न चात्मनः प्रमाणं ते धर्मं जानन्ति किंचन ॥ १२६ ॥
ये पापानि नराः कृत्वा निरस्यन्ति व्रतैः सदा ।
सुखदुःखसमायुक्ता व्यथितास्ते भवन्त्युत ॥ १२७ ॥
असंवासाः प्रजायन्ते म्लेच्छाश्चापि न संशयः ।
नराः पापसमाचारा लोभमोहसमन्विताः ॥ १२८ ॥

समूहके वशमें रहता है, अनन्तर पाप नष्ट होनेपर मनुष्यत्व पाता है । धान्य हरनेवाला मनुष्य लोमश होके जन्मता है; पिण्याकयुक्त भोजनकी वस्तु हरनेसे मनुष्य बकरे सदृश बडा दारुण मूषिक होता है; वह पापात्मा मनुष्योंको दंशन करते हुए जीवित रहता है, दुर्बुद्धि मनुष्य घृत हरनेसे काकमद्गु अर्थात् शृङ्गवान जलपक्षी होता है, नीचबुद्धि मनुष्य मत्स्य हरनेसे कौवा होता है । नमक हरनेवाला चिरि काकरूपसे उत्पन्न होता है (११७—१२३)

जो मनुष्य विश्वासवशसे दूसरेके रखे हुए धनको हरता है, वह मरनेपर मत्स्ययोनिमें जन्मता है, मत्स्ययोनि पाके मरनेके अनन्तर मनुष्यजन्म पाता है, मनुष्यत्व पाके क्षीणायु होता है । हे भारत ! मनुष्य अनेक प्रकारके पाप-कर्म करके तिर्यक् योनिमें जन्मते हैं, वे आत्मप्रमाणके अनुसार कुछ भी धर्म नहीं जानते, जो सब मनुष्य अनेक प्रकारके पापाचरण करके व्रतावलम्बनपूर्वक निवास करते हैं, वे सुख-दुःखसे संयुक्त होके सदा रोगी रहते हैं । लोभमोहसे युक्त पापी मनुष्य म्लेच्छतुल्य हैं, वे लोग निःसन्देह सह-

वर्जयन्ति च पापानि जन्मप्रभृति ये नराः।
अरोगा रूपवन्तस्ते धनिनश्च भवन्त्युत ॥ १२९ ॥
स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन कृत्वा पापमवाप्नुयुः।
एतेषामेव जन्तूनां भार्यात्वमुपयान्ति ताः ॥ १३० ॥
परस्वहरणे दोषाः सर्व एव प्रकीर्तिताः।
एतद्धि लेशमात्रेण कथितं ते मयाऽनघ ॥ १३१ ॥
अपरस्मिन्कथायोगे भूयः श्रोष्यसि भारत।
एतन्मया महाराज ब्रह्मणो गदतः पुरा ॥ १३२ ॥
सुरर्षीणां श्रुतं मध्ये पृष्टश्चापि यथातथम्।
मयाऽपि तच्च कात्स्न्र्येन यथावदनुवर्णितम्।
एतच्छ्रुत्वा महाराज धर्मे कुरु मनः सदा ॥ १३३ ॥ [५४३१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे संसारचक्रं नाम एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

युधिष्ठिर उवाच-अधर्मस्य गतिर्ब्रह्मन्कथिता मे त्वयाऽनघ।
धर्मस्य तु गतिं श्रोतुमिच्छामि वदतां वर ॥ १ ॥
कृत्वा कर्माणि पापानि कथं यान्ति शुभां गतिम्।
कर्मणा च कृतेनेह केन यान्ति शुभां गतिम् ॥ २ ॥

वासके योग्य नहीं हैं। (१२४-१२८)

जो मनुष्य जन्मसे ही पाप नहीं करते, वे रूपवान, रोगरहित तथा धनवान् होते हैं। स्त्रियें इन उपरोक्त कार्यों के करनेसे पापग्रस्त होके इन्हीं जन्तुओंकी भार्या हुआ करती हैं। हे भारत! परस्व हरनेसे जो सब दोष होते हैं, वे वर्णित हुए, यह विषय मैंने तुम्हारे समीप संक्षेपमें ही कहा है। हे भारत! अन्य कथाप्रसंगमें फिर सुनोगे। हे महाराज! मैंने पहले समयमें देवर्षियोंके बीच यह विषय ब्रह्माके मुखसे सुना था और तुम्हारे पूछनेपर पूरी रीतिसे वर्णन किया। हे महाराज! इसे सुनकर तुम सदा धर्ममें मन स्थिर करो। (१२९—१३३)

अनुशासनपर्वमें १११ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ११२ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे अनघ वक्तृवर ब्रह्मन्! आपने मेरे समीप अधर्मकी गति वर्णन की; अब मैं धर्मकी गति सुननेकी इच्छा करता हूं। पापकर्म करनेसे किस प्रकार उत्तम गति प्राप्त होती है? (१-२)

बृहस्पतिरुवाच—कृत्वा पापानि कर्माणि अधर्मवशमागतः।
मनसा विपरीतेन निरयं प्रतिपद्यते ॥ ३ ॥
मोहादधर्मं यः कृत्वा पुनः समनुतप्यते।
मनःसमाधिसंयुक्तो न स सेवेत दुष्कृतम् ॥ ४ ॥
यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हते।
तथा तथा शरीरं तु तेनाधर्मेण मुच्यते ॥ ५ ॥
यदि व्याहरते राजन्विप्राणां धर्मवादिनाम्।
ततोऽधर्मकृतात्क्षिप्रमपवादात्प्रमुच्यते ॥ ६ ॥
यथा यथा नरः सम्यगधर्ममनुभाषते।
समाहितेन मनसा विमुच्येत तथा तथा ॥ ७ ॥
भुजंग इव निर्मोकात्पूर्वभुक्ताज्जरान्वितात्।
दत्त्वा विप्रस्य दानानि विविधानि समाहितः ॥ ८ ॥
मनःसमाधिसंयुक्तः सुगतिं प्रतिपद्यते।
प्रदानानि तु वक्ष्यामि यानि दत्त्वा युधिष्ठिर ॥ ९ ॥
नरः कृत्वाऽप्यकार्याणि ततो धर्मेण युज्यते।
सर्वेषामेव दानानामन्नं श्रेष्ठमुदाहृतम्।
पूर्वमन्नं प्रदातव्यमृजुना धर्ममिच्छता ॥ १० ॥

बृहस्पति बोले, पुरुष अधर्मके वशमें होकर पापकर्म करता है और विपरीत ज्ञानसे नरक प्राप्त होता है। जो पुरुष मोहके वशमें होकर अधर्म करके शोक करता और मनको संयत रख सकता है, वह पापफल नहीं भोगता। जिसका अन्तःकरण जिस प्रकार पापकर्मकी निन्दा करता है, उस ही भांति उसी शरीरसे वह पुरुष अधर्मसे छूटता है। यदि पुरुष अपना किया हुआ पाप धर्मज्ञ ब्राह्मणसे कहे, तो वह उस ही समय अधर्मयुक्त अपवादसे छूट जाता है; मनुष्य अपने किये हुए पापोंको जिस प्रकार वर्णन करेगा सावधानचित्त होके उस ही भांति मुक्त होगा। (३-७)

जैसे सर्प पुरानी केचुली छोड देता है, वैसे ही समाहित चित्तसे ब्राह्मणोंको विविध दान देकर मनुष्य सद्गति पाता है। हे युधिष्ठिर! जो सब दान करना होता है, वह तुमसे कहता हूं, जिसे करनेसे मनुष्य धर्मके सहारे अधर्मसे छूट जाता है। सब दानके बीच अन्नदान ही श्रेष्ठ है, इसलिये धर्मकी इच्छा करनेवाला सरल भावसे

प्राणा ह्यन्नं मनुष्याणां तस्माज्जन्तुश्च जायते ।
अन्ने प्रतिष्ठितो लोकस्तस्मादन्नं प्रशस्यते ॥ ११ ॥
अन्नमेव प्रशंसन्ति देवर्षिपितृमानवाः ।
अन्नस्य हि प्रदानेन रन्तिदेवो दिवं गतः ॥ १२ ॥
न्यायलब्धं प्रदातव्यं द्विजातिभ्योऽन्नमुत्तमम् ।
स्वाध्यायं समुपेतेभ्यः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ १३ ॥
यस्य ह्यन्नमुपाश्नन्ति ब्राह्मणानां शतं दश ।
हृष्टेन मनसा दत्तं न स तिर्यग्गतिर्भवेत् ॥ १४ ॥
ब्राह्मणानां सहस्राणि दश भोज्य नरर्षभ ।
नरोऽधर्मात्प्रमुच्येत योगेष्वभिरतः सदा ॥ १५ ॥
भैक्ष्येणान्नं समाहृत्य विप्रो वेदपुरस्कृतः ।
स्वाध्यायनिरते विप्रे दत्त्वेह सुखमेधते ॥ १६ ॥
अहिंसन्ब्राह्मणस्वानि न्यायेन परिपाल्य च ।
क्षत्रियस्तरसा प्राप्तमन्नं यो वै प्रयच्छति ॥ १७ ॥
द्विजेभ्यो वेदवृद्धेभ्यः प्रयतः सुसमाहितः ।
तेनापोहति धर्मात्मन्दुष्कृतं कर्म पाण्डव ॥ १८ ॥
षड्भागपरिशुद्धं च कृषेर्भागमुपार्जितम् ।

पहले अन्न दान करे। अन्न ही मनुष्यों का प्राण है, अन्नसे ही प्राणियोंका जन्म होता है, जीव उत्पन्न होके अन्नसे प्रतिष्ठित रहते हैं; इस ही निमित्त अन्न प्रशंसनीय है। (८—११)

देव, ऋषि, पितर और मनुष्यवृन्द अन्नकी ही प्रशंसा किया करते हैं; रन्तिदेवने अन्नदान करके स्वर्गलोक पाया है। शुद्धचित्तसे वेद पढनेवाले ब्राह्मणोंको न्यायसे प्राप्त हुआ अन्न दान करना चाहिये, एक सौ दश ब्राह्मण जिसके यहां शुद्धचित्तसे दिया हुआ अन्न भोजन करते हैं, उसका तिर्यग् योनिमें जन्म नहीं होता; और एक हजार दश ब्राह्मण जिसके दिये हुए अन्नको भोजन करते हैं वह पुरुष अधर्मसे छूटकर सदा योगशील होता है। जो ब्राह्मण भीख मांगके वेदपाठी ब्राह्मणोंको श्रद्धापूर्वक अन्नदान करता है, वह सुखी होता है। (१२-१६)

हे पाण्डव! जो क्षत्रिय ब्राह्मणके धनमें लोभ न करके निज उपार्जित धनके सहारे वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको पवित्र और समाहित होकर अन्न दान करत

वैश्यो ददद् द्विजातिभ्यः पापेभ्यः परिमुच्यते ॥ १९॥
अवाप्य प्राणसंदेहं कार्कश्येन समार्जितम् ।
अन्नं दत्त्वा द्विजातिभ्यः शूद्रः पापात्प्रमुच्यते ॥ २०॥
औरसेन बलेनान्नमर्जयित्वाऽविहिंसकः ।
यः प्रयच्छति विप्रेभ्यो न स दुर्गाणि पश्यति ॥२१॥
न्यायेनैवाप्तमन्नं तु नरो हर्षसमन्वितः ।
द्विजेभ्यो वेदवृद्धेभ्यो दत्त्वा पापात्प्रमुच्यते ॥ २२ ॥
अन्नमुर्जस्करं लोके दत्त्वोर्जस्वी भवेन्नरः ।
सतां पन्थानमावृत्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २३ ॥
दानवद्भिः कृतः पन्था येन यान्ति मनीषिणः ।
ते हि प्राणस्य दातारस्तेभ्यो धर्मः सनातनः ॥ २४ ॥
सर्वावस्थं मनुष्येण न्यायेनान्नमुपार्जितम् ।
कार्यं पात्रागतं नित्यमन्नं हि परमा गतिः ॥ २५ ॥
अन्नस्य हि प्रदानेन नरो रौद्रं न सेवते ।
तस्मादन्नं प्रदातव्यमन्यायपरिवर्जितम् ॥ २६ ॥

है, वह उस ही धर्मके सहारे सब पापकर्मोंका नाश करता है। वैश्य यदि निज उपार्जित कृषिकार्यका छठवां भाग ब्राह्मणोंको दान करे, तो वह सब पापोंसे छूट जाता है। ब्राह्मणको प्राणसंशय उपस्थित होनेपर शूद्र अत्यन्त कठिनाईसे प्राप्त हुआ धन दान करनेसे पापरहित होता है। जो अहिंसक मनुष्य निजबलसे अन्न उत्पन्न करके ब्राह्मणोंको दान करता है, उसे दुःख नहीं मिलता। मनुष्य हर्षयुक्त होके वेदवृद्ध ब्राह्मणोंको न्यायसे प्राप्त हुआ अन्न दान करनेसे पापोंसे छूट जाता है। (१७-२२)

सत्पथकी अनुवृत्ति करनेसे पुरुषके सब पाप नष्ट होते हैं। इस लोकमें उर्जस्कर अन्न दान करके पुरुष उर्जस्वी होता है। दातृगणके द्वारा जो मार्ग बना हुआ है, मनीषि लोग उस ही पथसे गमन करते हैं, वेही प्राणदाता हैं, उन्हींसे सनातन धर्म रक्षित हुआ करता है। मनुष्योंको उचित है, कि सब समयमें न्यायसे उपार्जित अन्न हा सत्पात्रोंको दान करें, क्योंकि अन्नही परम गति है। अन्नदानके सहारे मनुष्य भयङ्कर विषयोंकी सेवा नहीं करता, इसलिये अन्यायरहित अन्नदान करना योग्य है। (२३--२६)

यतेद्ब्राह्मणपूर्वं हि भोक्तुमन्नं गृही सदा।
अवन्ध्यं दिवसं कुर्यादन्नदानेन मानवः ॥ २७ ॥
भोजयित्वा दशशतं नरो वेदविदां नृप।
न्यायविद्धर्मविदुषामितिहासविदां तथा ॥ २८ ॥
न याति नरकं घोरं संसारांश्च न सेवते।
सर्वकामसमायुक्तः प्रेत्य चाप्यश्नुते सुखम् ॥ २९ ॥
एवं खलु समायुक्तो रमते विगतज्वरः।
रूपवान्कीर्तिमांश्चैव धनवांश्चोपपद्यते ॥ ३० ॥
एतत्ते सर्वमाख्यातमन्नदानफलं महत्।
मूलमेतत्तु धर्माणां प्रदानानां च भारत ॥ ३१ ॥ [५४९२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे संसारचक्रे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

युधिष्ठिर उवाच– अहिंसा वैदिकं कर्म ध्यानमिन्द्रियसंयमः।
तपोऽथ गुरुशुश्रूषा किं श्रेयः पुरुषं प्रति ॥ १ ॥
बृहस्पतिरुवाच– सर्वाण्येतानि धर्म्याणि पृथग्द्वाराणि सर्वशः।
शृणु सङ्कीर्त्यमानानि षडेव भरतर्षभ ॥ २ ॥
हन्त निःश्रेयसं जन्तोरहं वक्ष्याम्यनुत्तमम्।

गृहस्थ मनुष्य पहले ब्राह्मणोंको भोजन कराके तब स्वयं अन्न भोजन करनेमें यत्नवान होजावे, अन्नदानसे मनुष्य दिन पूरा करे, हे महाराज! मनुष्य न्यायपूर्वक दश सौ ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे घोर नरकमें नहीं जाता वा बार बार संसारमें भ्रमण नहीं करता; परलोकमें सर्वकामयुक्त होकर सुख भोग करता वा शोकरहित होके विलास करनेमें प्रवृत्त होता है, वही पुरुष रूपवान्, कीर्त्तिमान् और धनवान् हुआ करता है। हे भारत! यह तुम्हारे निकट उत्तम अन्नदानका महत् फल कहा, यही समस्त धर्म और दानका मूल है। (२७—३१)

अनुशासनपर्वमें ११२ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ११३ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, अहिंसा, वैदिक कर्म, ध्यान, इन्द्रियसंयम, तपस्या और गुरु-सेवा इन सबके बीच पुरुषके पक्षमें कल्याणकारी क्या है? (१)

बृहस्पति बोले, हे भरतश्रेष्ठ! ये छहों विषयही धर्मसंगत हैं, ये प्रत्येक ही पृथक् पृथक् धर्मके द्वार स्वरूप हैं,

अहिंसापाश्रयं धर्मं यः साधयति वै नरः ॥ ३ ॥
त्रीन्दोषान्सर्वभूतेषु निधाय पुरुषः सदा ।
कामक्रोधौ च संयम्य ततः सिद्धिमवाप्नुते ॥ ४ ॥
अहिंसकानि भूतानि दण्डेन विनिहन्ति यः ।
आत्मनः सुखमन्विच्छन्स प्रेत्य न सुखी भवेत् ॥ ५ ॥
आत्मोपमस्तु भूतेषु यो वै भवति पूरुषः ।
न्यस्तदण्डो जितक्रोधः स प्रेत्य सुखमेधते ॥ ६ ॥
सर्वभूतात्मभूतस्य सर्वभूतानि पश्यतः ।
देवाऽपि मार्गे मुह्यन्ति अपदस्य पदैषिणः ॥ ७ ॥
न तत्परस्य संदध्यात्प्रतिकूलं यदाऽऽत्मनः ।
एष संक्षेपतो धर्मः कामादन्यः प्रवर्तते ॥ ८ ॥
प्रत्याख्याने च दाने च सुखदुःखे प्रियाप्रिये ।
आत्मौपम्येन पुरुषः प्रमाणमधिगच्छति ॥ ९ ॥
यथा परः प्रक्रमते परेषु तथाऽपरे प्रक्रमन्ते परस्मिन् ।

इसलिये इनका विषय वर्णन करता हूं, सुनो । जो मनुष्य हिंसाश्रय धर्म साधन किया करता है, वह जीवोंको निरर्थक ही नष्ट करता है, इसलिये मैं उस धर्मको श्रेष्ठ नहीं कहता । पुरुष काम, क्रोध और लोभरूपी तीनों दोषोंको सब भूतोंमें अर्पण करके अपनेमें उक्त दोषोंको संयत करनेसे सिद्धिलाभ करता है । (२—४)

जो पुरुष अपने सुखकी इच्छासे अहिंसक जीवोंको दण्डसे मारता है, वह परलोकमें जाके सुखी नहीं होता । जो मनुष्य सब जीवोंके विषयमें आत्मसदृश, दण्डरहित और जितक्रोध हैं, वे परलोकमें जाके सुखी होते हैं । जो निज दुःखकी भांति दूसरोंके दुःखसे व्याकुल होते हैं, सब प्राणियोंको आत्मरूपसे तत्त्वदृष्टिके द्वारा देखते हैं, उन गति विषयमें अत्यन्त हीनत्व हेतु मार्गसूचकरहित स्थानान्वेषी पुरुषके पथदर्शन विषयमें देवता लोग भी मुग्ध होते हैं (५—७)

जो विषय अपने प्रतिकूल हो वह दूसरेके विषयमें सन्धान न करे; संक्षेप रीतिसे यही धर्म है, कामवशसे अन्य धर्म भी प्रवर्तित हुआ करता है । पुरुष प्रत्याख्यान, दान, प्रिय, अप्रिय, सुख और दुःखमें अपनी उपमाके द्वारा प्रमाण पाता है । अन्य पुरुष दूसरेके विषयमें जैसा व्यवहार करता है अर्थात्

तथैव तेऽस्तूपमा जीवलोके यथा धर्मो नैपुणेनोपदिष्टः ॥ १० ॥
वैशम्पायन उवाच– इत्युक्त्वा तं सुरगुरुर्धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
दिवमाचक्रमे धीमान्पश्यतामेव नस्तदा ॥ ११ ॥ [५५०३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे संसारचक्रसमाप्तौ त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

वैशम्पायन उवाच–ततो युधिष्ठिरो राजा शरतल्पे पितामहम् ।
पुनरेव महातेजाः पप्रच्छ वदतां वरः ॥ १ ॥
युधिष्ठिर उवाच– ऋषयो ब्राह्मणा देवाः प्रशंसन्ति महामते ।
अहिंसालक्षणं धर्मं वेदप्रामाण्यदर्शनात् ॥ २ ॥
कर्मणा मनुजः कुर्वन्हिंसां पार्थिवसत्तम ।
वाचा च मनसा चैव कथं दुःखात्प्रमुच्यते ॥ ३ ॥
भीष्म उवाच–चतुर्विधेयं निर्दिष्टा ह्यहिंसा ब्रह्मवादिभिः ।
एकैकतोऽपि विभ्रष्टा न भवत्यरिसूदन ॥ ४ ॥
यथा सर्वश्चतुष्पाद्वै त्रिभिः पादैर्न तिष्ठति ।

हिंसित होकर हिंसा किया करता है और पाले जानेपर पालन करता है; इसलिये जीवोंको पालना चाहिये, हिंसा करनी योग्य नहीं है। जीव लोकमें इस ही उपमाके द्वारा जो धर्म हुआ करता है, वह निपुण पुरुषोंके सहारे उपदिष्ट हुआ है। (८—१०)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, बुद्धिशक्तिसे युक्त देवगुरु बृहस्पति धर्मराज युधिष्ठिरसे इतनी कथा कहके हम लोगोंके देखते ही स्वर्गलोकमें चले गये (११)

अनुशासनपर्वमें ११३ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ११४ अध्याय।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर वक्तृवर महातेजस्वी राजा युधिष्ठिरने शरशय्यामें सोये हुए पितामहसे फिर प्रश्न किया। (१)

युधिष्ठिर बोले, हे महाबुद्धिमान ! वेद प्रमाण दर्शन निबन्धसे ऋषि, ब्राह्मण और देवगण अहिंसालक्षण धर्मकी ही प्रशंसा किया करते हैं। हे राजसत्तम ! मनुष्य वचन मन, और कर्मसे हिंसा करते हुए किस प्रकार क्लेशोंसे मुक्त होता है ? (२–३)

भीष्म बोले, हे शत्रुसूदन ! ब्रह्मवादी ऋषि लोग अहिंसाको मन, वचन, कर्म और लक्षण भेदसे चारप्रकार कहा करते हैं, उसके बीच एकके व्यक्त होनेसे भी सब भांतिसे अहिंसा नहीं

तथैवेयं महीपाल कारणैः प्रोच्यते त्रिभिः ॥ ५ ॥
यथा नागपदेऽन्यानि पदानि पदगामिनाम् ।
सर्वाण्येवापिधीयन्ते पदजातानि कौञ्जरे ॥ ६ ॥
एवं लोकेष्वहिंसा तु निर्दिष्टा धर्मतः पुरा ।
कर्मणा लिप्यते जन्तुर्वाचा च मनसाऽपि च ॥ ७ ॥
पूर्वं तु मनसा त्यक्त्वा तथा वाचाऽथ कर्मणा ।
न भक्षयति यो मांसं त्रिविधं स विमुच्यते ॥ ८ ॥
त्रिकारणं तु निर्दिष्टं श्रूयते ब्रह्मवादिभिः ।
मनोवाचि तथाऽऽस्वादे दोषा ह्येषु प्रतिष्ठिताः ॥ ९ ॥
न भक्षयन्त्यतो मांसं तपोयुक्ता मनीषिणः ।
दोषांस्तु भक्षणे राजन्मांसस्येह निबोध मे ॥ १० ॥
पुत्रमांसोपमं जानन्खादते यो विचक्षणः ।
मांसं मोहसमायुक्तः पुरुषः सोऽधमः स्मृतः ॥ ११ ॥
पितृमातृसमायोगे पुत्रत्वं जायते यथा ।
हिंसां कृत्वाऽवशः पापो भूयिष्ठं जायते तथा ॥ १२॥

होती। हे महाराज ! जैसे सब चौपाये जीव तीन पांवसे स्थित नहीं होते वैसे ही यह अहिंसा तीन कारणोंसे वर्णित नहीं होती। जैसे पैरसे चलनेवाले जीवोंके क्षुद्र पदचिन्ह हाथीके पदचिन्हमें लीन होते हैं, वैसे ही अहिंसामें सब धर्म समाविष्ट हुआ करते हैं; इसलिये पहले समयसेही सब धर्मोंके बीच अहिंसा श्रेष्ठरूपसे वर्णित हुई है। जीव वचन, मन और कर्म द्वारा लिप्त होता है, पहले मनही मन त्याग करके अनन्तर वचन और कर्मसे परित्याग करते हुए जो लोग तीन प्रकारके मांस भक्षण नहीं करते, वे मुक्त हुआ करते हैं। (४—८)

ब्रह्मवादियोंने मन, वचन और आनन्द, इन तीनोंको ही कारण कहे हैं, ऐसा सुना जाता है, कि इन तीनोंमें ही सब दोष प्रतिष्ठित हैं। तपयुक्त मनीषि पुरुष इन्हीं कारणोंसे मांस भक्षण नहीं करते। हे राजन् ! अब मेरे निकट मांसभक्षणके दोष सुनो। हे महाराज ! जो मोहयुक्त मूढ पुरुष पुत्रमांससदृश मांस भक्षण करते हैं, वे अधम पुरुष कहाते हैं। जैसे सदा पितामाताके संयोगसे पुत्र जन्मता है, वैसे ही अवश पापाचारी हिंसा करके बार बार पापयोनिमें उत्पन्न हुआ करता

रसं च प्रति जिह्वाया ज्ञानं प्रज्ञायते यथा।
तथा शास्त्रेषु नियतं रागो ह्यास्वादिताद्भवेत् ॥ १३ ॥
संस्कृताऽसंस्कृताः पक्वा लवणाऽलवणास्तथा।
प्रजायन्ते यथा भावास्तथा चित्तं निरुध्यते ॥ १४ ॥
भेरीमृदङ्गशब्दांश्च तन्त्रीशब्दांश्च पुष्कलान्।
निषेविष्यन्ति वै मन्दा मांसभक्षाः कथं नराः ॥१५॥
अचिन्तितमनिर्दिष्टमसंकल्पितमेव च।
रसगृद्ध्याऽभिभूता ये प्रशंसन्ति फलार्थिनः ॥ १६ ॥
प्रशंसा ह्येव मांसस्य दोषकर्मफलान्विता।
जीवितं हि परित्यज्य बहवः साधवो जनाः ॥ १७ ॥
स्वमांसैः परमांसानि परिपाल्य दिवं गताः ॥ १८ ॥
एवमेषा महाराज चतुर्भिः कारणैर्वृता।
अहिंसा तव निर्दिष्टा सर्वधर्मानुसंहिता ॥ १९ ॥[५५२२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे मांसवर्जनकथने चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

युधिष्ठिर उवाच- अहिंसा परमो धर्म इत्युक्तं बहुशस्त्वया।
श्राद्धेषु च भवानाह पितॄनामिषकाङ्क्षिणः ॥ १ ॥

है। प्रति जिह्वामें जिस प्रकार रसका ज्ञान होता है, वैसे ही आस्वादित वस्तुओंसे राग उत्पन्न होता है, ऐसा शास्त्रोंमें वर्णित है। (९—१३)

असंस्कृत नमकीन अथवा विना लवणके जिस प्रकार भोजनकी वस्तु तैय्यार होती हैं, चित्त भी उसी भांति उसमें निरुद्ध हुआ करता है, मांस भक्षण करनेवाले नीच पुरुष परलोकमें भेरी, मृदङ्ग तथा अत्यन्त मधुरतन्त्रीके शब्दको किस प्रकार सुनेंगे; जो लोग अचिन्तित, अनिर्दिष्ट और असंकल्पित रसकी आकांक्षासे अभिभूत होते हैं, वे फलार्थी पुरुषही प्रशंसा किया करते हैं। मांसकी प्रशंसा भी दोषकर्मयुक्त है, बहुतेरे साधु पुरुष अपना जीवन त्यागके निज मांससे दूसरोंके जीवनकी रक्षा करके स्वर्गमें गये हैं। हे महाराज यह तुम्हारे निकट सर्वधर्मानुसंहित, चारों कारणोंसे परिवृत, अहिंसाका विषय कहा गया। (१४—१९)

अनुशासनपर्वमें ११४ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ११५ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, अहिंसाको आपने

मांसैर्बहुविधैः प्रोक्तस्त्वया श्राद्धविधिः पुरा ।
अहत्वा च कुतो मांसमेवमेतद्विरुध्यते　　॥ २ ॥
जातो नः संशयो धर्मे मांसस्य परिवर्जने ।
दोषो भक्षयतः कः स्यात्कश्चाभक्षयतो गुणः ॥ ३ ॥
हत्वा भक्षयतो वापि परेणोपहृतस्य वा ।
हन्याद्वा यः परस्यार्थे क्रीत्वा वा भक्षयेन्नरः ॥ ४ ॥
एतदिच्छामि तत्त्वेन कथ्यमानं त्वयाऽनघ ।
निश्चयेन चिकीर्षामि धर्ममेतं सनातनम्　　॥ ५ ॥
कथमायुरवाप्नोति कथं भवति सत्त्ववान् ।
कथमव्यङ्गतामेति लक्षण्यो जायते कथम्　　॥ ६ ॥
भीष्म उवाच— मांसस्याभक्षणाद्राजन्यो धर्मः कुरुनन्दन ।
तन्मे शृणु यथातत्त्वं यथाऽस्य विधिरुत्तमः　॥ ७ ॥
रूपमव्यङ्गतामायुर्बुद्धिं सत्त्वं बलं स्मृतिम् ।

बार बार परम धर्म कहा है, परन्तु यह भी वर्णन किया है, कि श्राद्धमें पितर लोग मांसके अभिलाषी होते हैं । पहले आपने अनेक प्रकारके मांससे श्राद्धानुष्ठानका विषय कहा है, विना हिंसाके मांस कहां मिलेगी; इसलिये इस वाक्यके साथ पूर्व वाक्यका विरोध होता है, इसीसे मांसपरित्यागरूपी धर्ममें हम लोगोंको सन्देह उत्पन्न हुआ है; मांस खानेवालोंको क्या दोष होता है? और न खानेसेही कौनसे गुण हुआ करते हैं? (१—३)

स्वयं मारके खानेसे अथवा दूसरेके द्वारा मरे हुए जीवका मांस भक्षण करनेसे क्या दोष होता है? जो दूसरेके लिये पशु मारते हैं और जो लोग मोल लेके भ्रमण करते हैं, उन्हें क्या दोष होता है? हे पापरहित! इस विषयको आप यथार्थ रीतिसे वर्णन करिये, मैं इस सनातन धर्मको निश्चय करनेकी इच्छा करता हूं । पुरुषको किस प्रकार परमायु प्राप्त होती है? किस प्रकार मनुष्य बलवान् हुआ करता है? किस लिये अव्यङ्ग होता है और किस कारणसे लक्षणसम्पन्न होके जन्मता है? (४–६)

भीष्म बोले, हे कुरुनन्दन महाराज! मांस भक्षण न करनेसे जो धर्म होता है और इस विषयमें जो श्रेष्ठ विधि है, उसे मेरे निकट यथार्थ रीतिसे सुनो । जो लोग सौन्दर्य, अव्यङ्गता, आयु, बुद्धि, सत्त्व, बल और स्मृति

प्राप्तुकामैर्नरैर्हिंसा वर्जिता वै महात्मभिः ॥ ८ ॥
ऋषीणामत्र संवादो बहुशः कुरुनन्दन ।
बभूव तेषां तु मतं यत्तच्छृणु युधिष्ठिर ॥ ९ ॥
यो यजेताश्वमेधेन मासि मासि यतव्रतः ।
वर्जयेन्मधुमांसं च सममेतद्युधिष्ठिर ॥ १० ॥
सप्तर्षयो वालखिल्यास्तथैव च मरीचिपाः ।
अमांसभक्षणं राजन्प्रशंसन्ति मनीषिणः ॥ ११ ॥
न भक्षयति यो मांसं न च हन्यान्न घातयेत् ।
तन्मित्रं सर्वभूतानां मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥ १२ ॥
अधृष्यः सर्वभूतानां विश्वास्यः सर्वजन्तुषु ।
साधूनां संमतो नित्यं भवेन्मांसं विवर्जयन् ॥ १३ ॥
स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति ।
नारदः प्राह धर्मात्मा नियतं सोऽवसीदति ॥ १४ ॥
ददाति यजते चापि तपस्वी च भवत्यपि ।
मधुमांसनिवृत्त्येति प्राह चैवं बृहस्पतिः ॥ १५ ॥
मासि मास्यश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः ।

प्राप्त करनेकी कामना करते हैं, उन महानुभावोंके द्वारा हिंसा परित्यक्त हुआ करती है। हे कुरुनन्दन युधिष्ठिर! इस विषयमें ऋषियोंके बहुतसे संवाद हैं, इस लिये उन लोगोंका मत सुनो। हे युधिष्ठिर! जो लोग यतव्रती होके प्रति महीने अश्वमेध यज्ञ करते हैं, वे समकालमें ही मधुमांस परित्याग करें। (७—१०)

हे महाराज! सप्तर्षि, वालखिल्य मुनि और मरीचिप मनीषिवृन्द मांस भक्षण न करनेकी ही प्रशंसा किया करते हैं। जो लोग मांस भक्षण नहीं करते और पशुओंको नहीं मारते, स्वायम्भुव मनुने उन्हें ही सब प्राणियोंका मित्र कहा है। जो लोग मांस परित्याग करते हैं, वे सर्वभूतोंके अधर्षणीय, सब जीवोंके विश्वसनीय और सदा साधु-सम्मत होते हैं। धर्मात्मा नारद मुनि कहते हैं, कि जो पुरुष दूसरेके मांससे निज मांसकी वृद्धि करनेकी इच्छा करते हैं, वे सदा अवसन्न होते हैं। बृहस्पति कहते हैं, मद्य पीने और मांस भक्षणसे निवृत्त होना, दान, यज्ञ तथा तपस्याके तुल्य है। (११—१५)

जो लोग एक सौ वर्षतक प्रति

न खादति च यो मांसं सममेतन्मतं मम ॥ १६ ॥
सदा यजति सत्रेण सदा दानं प्रयच्छति ।
सदा तपस्वी भवति मधुमांसविवर्जनात् ॥ १७ ॥
सर्वे वेदा न तत्कुर्युः सर्वे यज्ञाश्च भारत ।
यो भक्षयित्वा मांसानि पश्चादपि निवर्तते ॥ १८ ॥
दुष्करं च रसज्ञाने मांसस्य परिवर्जनम् ।
चर्तुं व्रतमिदं श्रेष्ठं सर्वप्राण्यभयप्रदम् ॥ १९ ॥
सर्वभूतेषु यो विद्वान्ददात्यभयदक्षिणाम् ।
दाता भवति लोके स प्राणानां नात्र संशयः ॥ २० ॥
एवं वै परमं धर्मं प्रशंसन्ति मनीषिणः ।
प्राणा यथाऽऽत्मनोऽभीष्टा भूतानामपि वै तथा ॥२१॥
आत्मौपम्येन मन्तव्यं बुद्धिमद्भिः कृतात्मभिः ।
मृत्युतो भयमस्तीति विदुषां भूतिमिच्छताम् ॥ २२ ॥
किं पुनर्हन्यमानानां तरसा जीवितार्थिनाम् ।
अरोगाणामपापानां पापैर्मांसोपजीविभिः ॥ २३ ॥

महीने अश्वमेध यज्ञ करते और जो लोग मांस भक्षणसे निवृत्त रहते हैं, मेरे मतमें वे दोनों ही समान हैं। मद्यमांस त्यागनेसे पुरुष सदा सत्र-द्वारा यजन करता है, सदा दान करनेका फल पाता और सदा तपस्वी हुआ करता है। हे भारत ! जो पुरुष मांस-भक्षण करके पश्चात् निवृत्त होता है, उससे जो फल हुआ करता है, उस फलको वेद प्रदान नहीं कर सकते और यज्ञ भी उस फलको प्रदान करनेके योग्य नहीं है। रसज्ञान होनेपर मांस परित्याग करना अत्यन्त दुष्कर कर्म है। सब प्राणियोंको अभयप्रद यह व्रताचरण अत्यन्त श्रेष्ठ है। (१४—१९)

जो विद्वान् पुरुष सब जीवोंको अभय दक्षिणा दान करता है, वह लोकमें निःसन्देह प्राणदाता होता है। मनीषिवृन्द इस परम धर्मकी प्रशंसा करते हैं। जैसे अपना प्राण सबको प्रिय है, जीवोंका प्राण भी वैसा ही है; शुद्धचित्तवाले बुद्धिमान् मनुष्योंको आत्म-उपमाके सहारे मनन करना योग्य है। जब ऐश्वर्यके अभिलाषी विद्वानोंको भी मृत्युसे भय है, तब मांसोपजीवी पापी पुरुषोंके द्वारा हन्यमान रोगहीन निष्पाप जीवोंको तो मृत्युका भय होही सकता है (२०—२३)

तस्माद्विद्धि महाराज मांसस्य परिवर्जनम् ।
धर्मस्यायतनं श्रेष्ठं स्वर्गस्य च सुखस्य च ॥ २४ ॥
अहिंसा परमो धर्मस्तथाऽहिंसा परं तपः ।
अहिंसा परमं सत्यं यतो धर्मः प्रवर्तते ॥ २५ ॥
न हि मांसं तृणात्काष्ठादुपलाद्वापि जायते ।
हत्वा जन्तुं ततो मांसं तस्माद्दोषस्तु भक्षणे ॥ २६ ॥
स्वाहा स्वधाऽमृतभुजो देवाः सत्यार्जवप्रियाः ।
क्रव्यादान् राक्षसान्विद्धि जिह्मानृतपरायणान् ॥२७॥
कान्तारेष्वथ घोरेषु दुर्गेषु गहनेषु च ।
रात्रावहानि संध्यासु चत्वरेषु सभासु च ॥ २८ ॥
उद्यतेषु च शस्त्रेषु मृगव्यालहतेषु च ।
अमांसभक्षणे राजन्भयमन्यैर्न गच्छति ॥ २९ ॥
शरण्यः सर्वभूतानां विश्वास्यः सर्वजन्तुषु ।
अनुद्वेगकरो लोके न चाप्युद्विजते सदा ॥ ३० ॥
यदि चेत्खादको न स्यान्न तदा घातको भवेत् ।
घातकः खादकार्थाय तद्घातयति वै नरः ॥ ३१ ॥

हे महाराज! इसलिये मांसत्यागको धर्म, अर्थ और सुखका उत्तम स्थान जानो; अहिंसा ही परम तपस्या और अहिंसा ही परम सत्य है अर्थात् अहिंसासे ही सत्य प्रवृत्त होता है। तृण, काष्ठ और पत्थरसे मांस नहीं उत्पन्न होता, जीवहिंसा करनेसेही मांस प्राप्त होता है, इसीसे उसके भक्षण करनेमें दोष हुआ करता है। सत्य और सरलताप्रिय देववृन्द स्वाहा और स्वधा मन्त्रोंसे प्रदान किया हुआ अमृत भोजन करते हैं और जिह्वारसपरायण मांसाशियोंको राजस प्रकृति जानो। हे महाराज! दुर्गम पथ, घोर, दुर्ग, गहन वन, रात्रि-दिन और सन्ध्याके समय, चौराहे, सभा, उद्यतशस्त्रमण्डली तथा सर्प भयमें मांस भक्षण न करनेसे दूसरोंके द्वारा भय नहीं होता। जो लोग मांस भक्षण नहीं करते, वे सब जीवोंके शरण्य, सबके विश्वासी, सब लोगोंके अनुद्वेगकर होते और स्वयं भी सदा व्याकुल नहीं होते। (२४-३०)

यदि खानेवाला न रहे, तो घातक नहीं होता; खानेवालेके निमित्त ही घातक होता है; मनुष्य मांस-भक्षकके लिये पशुओंका वध किया करते हैं,

अभक्ष्यमेतदिति वै इति हिंसा निवर्तते।
खादकार्थमतो हिंसा मृगादीनां प्रवर्तते ॥ ३२ ॥
यस्माद्ग्रसति चैवायुर्हिंसकानां महाद्युते।
तस्माद्विवर्जयेन्मांसं य इच्छेद्भूतिमात्मनः ॥ ३३ ॥
त्रातारं नाधिगच्छन्ति रौद्राः प्राणिविहिंसकाः।
उद्वेजनीया भूतानां यथा व्यालमृगास्तथा ॥ ३४ ॥
लोभाद्वा बुद्धिमोहाद्वा बलवीर्यार्थमेव च।
संसर्गादथ पापानामधर्मरुचिता नृणाम् ॥ ३५ ॥
स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति।
उद्विग्नवासो वसति यत्र यत्राभिजायते ॥ ३६ ॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं महत्।
मांसस्याभक्षणं प्राहुर्नियताः परमर्षयः ॥ ३७ ॥
इदं तु खलु कौन्तेय श्रुतमासीत्पुरा मया।
मार्कण्डेयस्य वदतो ये दोषा मांसभक्षणे ॥ ३८ ॥
यो हि खादति मांसानि प्राणिनां जीवितैषिणाम्।
हतानां वा मृतानां वा यथा हन्ता तथैव सः ॥ ३९ ॥

यह अभक्ष्य है, इसी निमित्त हिंसाकी निवृत्ति होती है; इसलिये खानेवालोंके ही लिये मृगादिकोंकी हिंसा प्रवर्त्तित हुई है। हे महाद्युति! हन्यमान जीव हिंसकोंकी आयु ग्रास करता है, इसलिये जो लोग निज उन्नतिकी अभिलाष करते हैं, वे मांस भक्षण न करें, प्राणि-हिंसक रौद्रकर्म करनेवाले मनुष्योंको किसी स्थानमें भी पवित्रता नहीं प्राप्त होती, वे मांसभक्षी जीवोंकी भांति सब जीवोंके ही उद्वेगजनक होते हैं। लोभ, बुद्धि, मोह, बलवीर्य अथवा पापियोंके संसर्गसे मनुष्योंकी अधर्ममें रुचि होती है। (३१—३५)

पराये मांससे निज मांसकी वृद्धि करनेकी इच्छा करनेवाला मनुष्य व्याकुल होके निवास करता और जहां तहां जन्म लिया करता है। संयतचित्तवाले परमर्षिगण मांसत्यागको धन, यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला स्वर्गजनक तथा महत् स्वस्त्ययन कहते हैं। हे कौन्तेय! मांसभक्षणसे जो सब दोष होते हैं, पहले समयमें महामुनि मार्कण्डेयके मुखसे मैंने उसे सुना था। जीनेकी इच्छा करनेवाले मृत वा मारे हुए जीवोंका जो पुरुष मांस भक्षण

धनेन क्रयिको हन्ति खादकश्चोपभोगतः ।
घातको वधबन्धाभ्यामित्येष त्रिविधो वधः ॥ ४० ॥
अखादन्ननुमोदंश्च भावदोषेण मानवः ।
योऽनुमोदति हन्यन्तं सोऽपि दोषेण लिप्यते॥ ४१ ॥
अधृष्यः सर्वभूतानामायुष्मान्निरुजः सदा ।
भवत्यभक्षयन्मांसं दयावान्प्राणिनामिह ॥ ४२ ॥
हिरण्यदानैर्गोदानैर्भूमिदानैश्च सर्वशः ।
मांसस्याभक्षणे धर्मो विशिष्ट इति नः श्रुतिः ॥ ४३ ॥
अप्रोक्षितं वृथामांसं विधिहीनं न भक्षयेत् ।
भक्षयन्निरयं याति नरो नास्त्यत्र संशयः ॥ ४४ ॥
प्रोक्षिताभ्युक्षितं मांसं तथा ब्राह्मणकाम्यया ।
अल्पदोषमिह ज्ञेयं विपरीते तु लिप्यते ॥ ४५ ॥
खादकस्य कृते जन्तून्यो हन्यात्पुरुषाधमः ।
महादोषतरस्तत्र घातको न तु खादकः ॥ ४६ ॥

करता है, वह मारनेवालेके सदृश है; कोई धनसे मांस क्रय करते हैं, कोई उपभोगके लिये भक्षण करते हैं, कोई वध और बन्धनादिसे पशुओंको मारते हैं। (३९—४०)

मांस क्रय करना, भक्षण और मारना, ये तीन प्रकारके वध हैं। जो पुरुष स्वयं मांस भक्षण न करके भक्षकका अनुमोदन करता अथवा मारनेवालेका अनुमोदन करनेमें प्रवृत्त होता है, वह पुरुष भी दोषोंसे लिप्त होता है; जो लोग मांस भक्षण न करके प्राणियोंके विषयमें दयावान् होते हैं, वे सब जीवोंके अनभिभवनीय, आयुष्मान्, रोगरहित और सुखी हुआ करते हैं। मैंने सुना है, कि हिरण्यदान, गोदान और भूमिदानकी अपेक्षा मांसभक्षण न करनेमें अधिक धर्म होता है। (४०-४३)

अप्रोक्षित विधिसे रहित वृथा मांस भक्षण न करे; यदि मनुष्य वैसा मांस भक्षण करता है, तो निःसन्देह नरकमें जाता है। प्रोक्षित अथवा अभ्युक्षित अथवा ब्राह्मणोंकी कामनासे यदि मांस भक्षण करे, तो उसमें अल्प दोष जानना चाहिये और यदि इसके विपरीत किया जाय, तो मनुष्य दोषोंसे लिप्त हुआ करता है। जो अधम पुरुष खानेवालोंके लिये पशुओंको मारता है, उस विषयमें घातक ही महादोषसे लिप्त होता है, खानेवाले उसकी भांति दोषयुक्त

इज्यायज्ञश्रुतिकृतैर्यो मार्गैरबुधोऽधमः ।
हन्याज्जन्तून्मांसगृध्नुः स वै नरकभाङ् नरः ॥ ४७ ॥
भक्षयित्वाऽपि यो मांसं पश्चादपि निवर्तते ।
तस्यापि सुमहान्धर्मो यः पापाद्विनिवर्तते ॥ ४८ ॥
आहर्ता चानुमन्ता च विशस्ता क्रयविक्रयी ।
संस्कर्ता चोपभोक्ता च खादकाः सर्व एव ते ॥ ४९ ॥
इदमन्यत्तु वक्ष्यामि प्रमाणं विधिनिर्मितम् ।
पुराणमृषिभिर्जुष्टं वेदेषु परिनिष्ठितम् ॥ ५० ॥
प्रवृत्तिलक्षणो धर्मः प्रजार्थिभिरुदाहृतः ।
यथोक्तं राजशार्दूल न तु तन्मोक्षकाङ्क्षिणाम् ॥ ५१ ॥
हविर्यत्संस्कृतं मन्त्रैः प्रोक्षिताभ्युक्षितं शुचि ।
वेदोक्तेन प्रमाणेन पितॄणां प्रक्रियासु च ॥ ५२ ॥
अतोऽन्यथा वृथामांसमभक्ष्यं मनुरब्रवीत् ।
अस्वर्ग्यमयशस्यं च रक्षोवद्भरतर्षभ ॥ ५३ ॥
विधिहीनं नरः पूर्वं मांसं राजन्न भक्षयेत् ।

नहीं होते। (४४—४६)

जो यज्ञोपनिषद्बोधसे रहित मनुष्य अश्वमेध आदि यज्ञ तथा वेदमें कहे हुए उपायका अवलम्बन करके जीवहिंसा करते हैं, उस यज्ञच्छलसे मांसके अभिलाषी पुरुष नरकगामी होते हैं। जो पुरुष मांस खाके पश्चात् उसे भक्षण करनेसे विरत होता है, उसे भी महान् धर्म हुआ करता है; क्यों कि वह पापसे निवृत्त होता है। आहर्त्ता, अनुमन्ता, घातक और क्रय-विक्रय करनेवाले, संस्कारकारक और उपभोक्ता, ये सब कोई खादक हैं। प्राचीन ऋषियोंसे सेवित वेदोंमें प्रतिष्ठित विधिके अनुसार एक दूसरा प्रमाण कहता हूं। हे नृपश्रेष्ठ प्रजार्थी पुरुषोंने जो प्रवृत्तिलक्षणयुक्त धर्मका वर्णन किया करता है, वह मोक्षके अभिलाषी मनुष्योंका धर्म नहीं है। (४७—५१)

हे भरतश्रेष्ठ! वेदोक्त प्रमाण और पितरोंके श्राद्धके समयमें जो मांस मन्त्रसे संस्कारयुक्त, प्रोक्षित और अभ्युक्षित होता है, वही पवित्र हविस्वरूप है; इसके विपरीत वृथा मांसको मनुने अभक्ष्य, अस्वर्ग्य, अयशस्य तथा राक्षसोंका भक्ष्य कहा है। हे महाराज! पहले मनुष्य अवैध मांस भक्षण न करे, क्यों कि अप्रोक्षित, अवैध मांस

अप्रोक्षितं वृथामांसं विधिहीनं न भक्षयेत् ॥ ५४ ॥
य इच्छेत्पुरुषोऽत्यन्तमात्मानं निरुपद्रवम् ।
स वर्जयेत मांसानि प्राणिनामिह सर्वशः ॥ ५५ ॥
श्रूयते हि पुराकल्पे नृणां व्रीहिमयः पशुः ।
येनायजन्त यज्वानः पुण्यलोकपरायणाः ॥ ५६ ॥
ऋषिभिः संशयं पृष्टो वसुश्चेदिपतिः पुरा ।
अभक्ष्यमपि मांसं यः प्राह भक्ष्यमिति प्रभो ॥५७॥
आकाशादवनिं प्राप्तस्ततः स पृथिवीपतिः ।
एतदेव पुनश्चोक्त्वा विवेश धरणीतलम् ॥ ५८ ॥
प्रजानां हितकामेन त्वगस्त्येन महात्मना ।
आरण्याः सर्वदैवत्याः प्रोक्षितास्तपसा मृगाः ॥५९॥
क्रिया ह्येवं न हीयन्ते पितृदैवतसंश्रिताः ।
प्रीयन्ते पितरश्चैव न्यायतो मांसतर्पिताः ॥ ६० ॥
इदं तु शृणु राजेन्द्र कीर्त्यमानं मयाऽनघ ।
अभक्षणे सर्वसुखं मांसस्य मनुजाधिप ॥ ६१ ॥
यस्तु वर्षशतं पूर्णं तपस्तप्येत्सुदारुणम् ।
यश्चैव वर्जयेन्मांसं सममेतन्मतं मम ॥ ६२ ॥

मनुष्योंको भक्षण करना उचित नहीं है सुखकी इच्छा करनेवाला पुरुष सब प्रकारसे प्राणियोंके मांस भक्षण न करे। सुना जाता है, कि पहले समयमें मनुष्योंके व्रीहिमय पशु थे, पुण्यलोकपरायण यज्ञ करनेवाले उन्हींके सहारे यज्ञ करते थे। (५२—५६)

पहले समयमें ऋषियोंने चेदिपति वसुसे सन्देहयुक्त होकर प्रश्न किया था। उस समय उक्त महाभाग वसु राजाने अभक्ष्य मांसको भी भक्ष्य करके कहा। इस कारण वह भी फिर आकाशसे भूमिके तलमें प्रविष्ट हुए थे। प्रजाकी हितकामना करनेवाले महाभाग अगस्त्यने तपस्याके सहारे सर्वदैवत, आरण्यक मृगोंको प्रोक्षण किया था, पितर और देवसम्बन्धीय कार्य मांसके द्वारा किये जानेपर निकृष्ट नहीं होते। पितर लोग न्यायपूर्वक मांससे तृप्त होकर प्रीतियुक्त होते हैं। (५७-६०)

हे नरनाथ पापरहित राजेन्द्र! मांस भक्षण न करनेसे जो सुख होता है, उसे कहता हूं, सुनो। जो लोग एक सौ वर्षतक दारुण तपस्या करते और जो

कौमुदे तु विशेषेण शुक्लपक्षे नराधिप।
वर्जयेन्मधुमांसानि धर्मो ह्यत्र विधीयते ॥ ६३ ॥
चतुरो वार्षिकान्मासान्यो मांसं परिवर्जयेत्।
चत्वारि भद्राण्याप्नोति कीर्तिमायुर्यशो बलम् ॥ ६४ ॥
अथवा मासमेकं वै सर्वमांसान्यभक्षयन्।
अतीत्य सर्वदुःखानि सुखं जीवेन्निरामयः ॥ ६५ ॥
वर्जयन्ति हि मांसानि मासशः पक्षशोऽपि वा।
तेषां हिंसानिवृत्तानां ब्रह्मलोको विधीयते ॥ ६६ ॥
मांसं तु कौमुदं पक्षं वर्जितं पार्थ राजभिः।
सर्वभूतात्मभूतस्थैर्विदितार्थपरावरैः ॥ ६७ ॥
नाभागेनाम्बरीषेण गयेन च महात्मना।
आयुनाथानरण्येन दिलीपरघुपूरुभिः ॥ ६८ ॥
कार्तवीर्यानिरुद्धाभ्यां नहुषेण ययातिना।
नृगेण विष्वगश्वेन तथैव शशबिन्दुना ॥ ६९ ॥
युवनाश्वेन च तथा शिबिनौशीनरेण च।
मुचकुन्देन मान्धात्रा हरिश्चन्द्रेण वा विभो ॥ ७० ॥
सत्यं वदत माऽसत्यं सत्यं धर्मः सनातनः।

लोग मांस परित्याग किया करते हैं, मेरे मतमें वे दोनों ही समान हैं। हे नरनाथ! कौमुदीमय शुक्लपक्षमें मधुमांस परित्याग करे, क्योंकि उससे धर्म होता है। जो लोग वर्षके बीच चार महीनेतक मांस त्यागते हैं, उन्हें कीर्ति, आयु यश और बल प्राप्त होता है। अथवा जो लोग एक महिना मांस भक्षण नहीं करते, वे सब क्लेशोंको अतिक्रम कर निरामय होके परम सुखसे जीवनका समय बिताते हैं। (६१–६५)

जो लोग एक महिना वा एक पक्ष मांस नहीं खाते, उन हिंसानिवृत्त लोगों के लिये ब्रह्मलोक विहित है। हे पार्थ! जिन्होंने सदसत् वस्तुओंको जाना है और सब जीवोंको आत्मस्वरूप जानते हैं, वे राजा लोग शुक्लपक्षमें मांस भक्षण नहीं करते। नाभाग, अम्बरीष, महानुभाव गय, आयु, अनरण्य, दिलीप, रघु, पूरु, कार्त्तवीर्य, अनिरुद्ध, नहुष, ययाति, नृग, विष्वगश्व, शशबिन्दु, युवनाश्व, शिबि, उशीनर, मुचुकुन्द, मान्धाता और हरिश्चन्द्र, इन सब राजाओंने शरत्कालके शुक्लपक्षमें मांसभक्षण

हरिश्चन्द्रश्चरति वै दिवि सत्येन चन्द्रवत् ॥ ७१ ॥
श्येनचित्रेण राजेन्द्र सोमकेन वृकेण च ।
रैवते रन्तिदेवेन वसुना सृञ्जयेन च ॥ ७२ ॥
एतैश्चान्यैश्च राजेन्द्र कृपेण भरतेन च ।
दुष्यन्तेन करूषेण रामालर्कनरैस्तथा ।
विरूपाश्वेन निमिना जनकेन च धीमता ॥ ७३ ॥
ऐलेन पृथुना चैव वीरसेनेन चैव ह ।
इक्ष्वाकुणा शम्भुना च श्वेतेन सगरेण च ॥ ७४ ॥
अजेन धुन्धुना चैव तथैव च सुबाहुना ।
हर्यश्वेन च राजेन्द्र क्षुपेण भरतेन च ॥ ७५ ॥
एतैश्चान्यैश्च राजेन्द्र पुरा मांसं न भक्षितम् ।
शारदं कौमुदं मासं ततस्ते स्वर्गमाप्नुवन् ॥ ७६ ॥
ब्रह्मलोके च तिष्ठन्ति ज्वलमानाः श्रियाऽन्विताः ।
उपास्यमाना गन्धर्वैः स्त्रीसहस्रसमन्विताः ॥ ७७ ॥
तदेतदुत्तमं धर्ममहिंसाधर्मलक्षणम् ।
ये चरन्ति महात्मानो नाकपृष्ठे वसन्ति ते ॥ ७८ ॥
मधुमांसं च ये नित्यं वर्जयन्तीह धार्मिकाः ।
जन्मप्रभृति मद्यं च सर्वे ते मुनयः स्मृताः ॥ ७९ ॥

नहीं किया था। सत्य वचन कहो, झूठी बात मत कहो, सत्य ही सनातन धर्म है; राजा हरिश्चन्द्र सत्यके सहारे सुरपुरमें चन्द्रमाकी भांति विहार करते हैं। (६६-७१)

हे राजेन्द्र! श्येनचित्र, सोमक, वृक, रैवत, रन्तिदेव, वसु, सृञ्जय, कृप, भरत, दुष्यन्त, करूष, राम, अलर्क, नल, विरूपाश्व, निमि, धीमान् जनक, ऐल, पृथु, वीरसेन, इक्ष्वाकु, शम्भु, श्वेत, सगर, धुन्धु, सुबाहु, हर्यश्व, क्षुप और भरत, ये सब तथा दूसरे राजा लोग शरत्कालके शुक्लपक्षमें मांस-त्याग करनेसे स्वर्ग लोकमें गये हैं और श्रीसम्पन्न तथा दीप्यमान होके ब्रह्म-लोकमें निवास करते हुए सहस्रों स्त्रियोंसे युक्त होकर गन्धर्वोंसे पूजित हुआ करते हैं। इसलिये जो महात्मा इस अहिंसाधर्मलक्षणयुक्त उत्तम धर्मा-चरण करते हैं, स्वर्गमें वास किया करते हैं। (६२-७८)

इस लोकमें जो धार्मिक पुरुष जन्मसे

इमं धर्ममर्मासादं यश्चरेच्छ्रावयीत वा ।
अपि चेत्सुदुराचारो न जातु निरयं व्रजेत् ॥ ८० ॥
पठेद्वा य इदं राजञ्छृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः ।
अमांसभक्षणविधिं पवित्रमृषिपूजितम् ॥ ८१ ॥
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः सर्वकामैर्महीयते ।
विशिष्टतां ज्ञातिषु च लभते नात्र संशयः ॥ ८२ ॥
आपन्नश्चापदो मुच्येद्बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।
मुच्येत्तथाऽऽतुरो रोगाद्दुःखान्मुच्येत दुःखितः ॥ ८३॥
तिर्यग्योनिं न गच्छेत रूपवांश्च भवेन्नरः ।
ऋद्धिमान्वै कुरुश्रेष्ठ प्राप्नुयाच्च महद्यशः ॥ ८४ ॥
एतत्ते कथितं राजन्मांसस्य परिवर्जने ।
प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च विधानमृषिनिर्मितम् ॥ ८५ ॥ [५६०७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे मांसभक्षणनिषेधे पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

युधिष्ठिर उवाच– इमे वै मानवा लोके नृशंसा मांसगृद्धिनः ।

ही मधुमांस परित्याग करते और मद्य नहीं पीते, वेही मुनिरूपसे स्मृत होते हैं। जो लोग यह अमांसाद धर्माचरण करते अथवा दूसरोंको सुनाते हैं, वे यदि अत्यन्त दुराचारी भी हों, तौभी नरकमें नहीं जाते। हे महाराज! जो लोग इस ऋषिपूजित पवित्र अमांसभक्षण धर्मका सदा पाठ करते अथवा निरन्तर सुनते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त होकर सर्वकामके द्वारा पूजित होते और उन्हें स्वजनोंके बीच विशिष्टता प्राप्त होती है, इस विषयमें सन्देह नहीं है। (७९—८२)

विपदयुक्त पुरुष आपदोंसे मुक्त होता है, बद्ध पुरुष कारागारसे छूट जाता है, आतुर मनुष्य रोगरहित हुआ करते और दुःखित पुरुषोंको दुःखसे छुटकारा मिलता है। हे कुरुश्रेष्ठ! जो मनुष्य मांस भक्षण नहीं करता, उसे तिर्यक्योनि प्राप्त नहीं होती, वह रूपवान् और समृद्धिमान होके महत् यश पाता है। हे महाराज! यह तुम्हारे निकट मांस परित्याग विषयमें प्रवृत्ति और निवृत्तियुक्त ऋषियोंकी कही हुई विधि वर्णित हुई। (८३—८५)

अनुशासनपर्वमें ११५ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ११६ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, जगत्के बीच ये

विसृज्य विविधान्भक्ष्यान्महारक्षोगणा इव ॥ १ ॥
अपूपान्विविधाकारान् शाकानि विविधानि च ।
खाण्डवान्रसयोगांश्च तथेच्छन्ति यथाऽऽमिषम् ॥ २ ॥
तत्र मे बुद्धिरत्रैव विषये परिमुह्यते ।
न मन्ये रसतः किंचिन्मांसतोऽस्तीति किंचन ॥ ३ ॥
तदिच्छामि गुणान् श्रोतुं मांसस्याभक्षणे प्रभो ।
भक्षणे चैव ये दोषास्तांश्चैव पुरुषर्षभ ॥ ४ ॥
सर्वं तत्त्वेन धर्मज्ञ यथावदिह धर्मतः ।
किं चाभक्ष्यमभक्ष्यं वा सर्वमेतद्वदस्व मे ॥ ५ ॥
यथैतद्यादृशं चैव गुणा ये चास्य वर्जने ।
दोषा भक्षयतो येऽपि तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ६ ॥
भीष्म उवाच-एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत ।
न मांसात्परमं किंचिद्रसतो विद्यते भुवि ॥ ७ ॥
क्षतक्षीणाभितप्तानां ग्राम्यधर्मरतात्मनाम् ।
अध्वना कर्शितानां च न मांसाद्विद्यते परम् ॥ ८ ॥
सद्यो वर्धयति प्राणान्पुष्टिमग्र्यां दधाति च ।

मांसभोजी मनुष्य विविध भक्ष्य त्यागके महाराक्षससमूहकी भांति नृशंस होते हैं। ये लोग जिस प्रकार मांसभक्षणकी अभिलाष किया करते हैं, अनेक प्रकार के अपूप, शाक और खाण्डव वस्तुओंको भोजन करनेमें वैसी इच्छा नहीं करते; इसलिये इस विषयके विचारनेमें मेरी बुद्धि अत्यन्त मुग्ध होती है। मेरी समझमें मांससे बढके उत्तम मधुर रस-युक्त वस्तु और कुछ भी नहीं है। हे प्रभु भरतश्रेष्ठ! मांसके न खानेसे जो फल होता तथा भक्षण करनेसे जो दोष होते हैं, उसे भी सुननेकी इच्छा करता हूं। हे धर्मज्ञ! कौन वस्तु भक्ष्य है, कौनसी अभक्ष्य है, उसे धर्मपूर्वक पूरी रीतिसे कहिये। हे पितामह! यह विषय जैसा है, तथा इसके त्यागनेसे जो फल मिलते और भक्षण करनेसे जो दोष हुआ करते हैं, उसे मेरे समीप वर्णन करो। (१-६)

भीष्म बोले, हे महाबाहो भरतश्रेष्ठ! तुमने जो कहा, वह यथार्थ है; भूलोकमें मांससे बढके परम रस और कुछ भी नहीं है। कृशित, क्षीण, सन्तप्त, ग्राम्य धर्ममें रत और मार्गसे थके हुए मनुष्योंके पक्षमें मांससे बढके श्रेष्ठ

न भक्ष्योऽभ्यधिकः कश्चिन्मांसादस्ति परन्तप ॥ ९ ॥
विवर्जिते तु बहवो गुणाः कौरवनन्दन ।
ये भवन्ति मनुष्याणां तान्मे निगदतः शृणु ॥ १० ॥
स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति ।
नास्ति क्षुद्रतरस्तस्मात्स नृशंसतरो नरः ॥ ११ ॥
न हि प्राणात्प्रियतरं लोके किंचन विद्यते ।
तस्माद्दयां नरः कुर्याद्यथाऽऽत्मनि तथा परे ॥ १२ ॥
शुक्राच्च तात संभूतिर्मांसस्येह न संशयः ।
भक्षणे तु महान्दोषो निवृत्त्या पुण्यमुच्यते ॥ १३ ॥
विधिना वेददृष्टेन तद्भुक्त्वेह न दुष्यति ।
यज्ञार्थे पशवः सृष्टा इत्यपि श्रूयते श्रुतिः ॥ १४ ॥
अतोऽन्यथा प्रवृत्तानां राक्षसो विधिरुच्यते ।
क्षत्रियाणां तु यो दृष्टो विधिस्तमपि मे शृणु ॥ १५ ॥
वीर्येणोपार्जितं मांसं यथा भुञ्जन्न दुष्यति ।

भक्ष्य दूसरा कुछ भी नहीं है। हे शत्रुतापन ! मांस सदाही बलको बढाता तथा उत्तम पुष्टिका विधान करता है; इसलिये कोई भक्ष्य भी मांससे श्रेष्ठ नहीं है। हे कौरवनन्दन ! मांस न खानेसे जो सब फल प्राप्त होते हैं, उसे मैं कहता हूं, सुनो। जो मनुष्य दूसरेके मांससे निज मांस बढानेकी अभिलाष करता है, उससे अत्यन्त क्षुद्र तथा नृशंस पुरुष दूसरा कोई भी नहीं है। (७-११)

जगत्के बीच प्राणसे अधिक प्रिय पदार्थ और कुछ भी विद्यमान नहीं है, इसलिये जिस प्रकार मनुष्य अपने प्राणको बचाता है, दूसरोंके विषयमें भी उसी भांति दया करे। हे तात ! शुक्रसे मांस उत्पन्न होता है, इस विषयमें सन्देह नहीं है; इसलिये उसे भक्षण करनेसे महान् दोष और भक्षण-निवृत्तिको ही पुण्य कहा जाता है; परन्तु इस लोकमें वेदविहित विधिके अनुसार मांस भक्षण करनेसे दोष नहीं होता; ऐसी श्रुति है, कि "यज्ञके लिये पशुवृन्द उत्पन्न हुए हैं।" (१२-१४)

वेदविधिसे अन्यथा आचरणमें प्रवृत्त मनुष्योंके अनुष्ठानको राक्षसधर्म कहते हैं; क्षत्रियोंकी जो विधि दीख पडती है, उसे भी सुनो। क्षत्रिय बाहुबलसे प्राप्त हुए मांसको भक्षण करनेसे दोष-

आरण्याः सर्वदैवत्याः सर्वशः प्रोक्षिता मृगाः ॥१६॥
अगस्त्येन पुरा राजन्मृगया येन पूज्यते।
नात्मानमपरित्यज्य मृगया नाम विद्यते ॥ १७ ॥
समतामुपसङ्क्रम्य भूतं हन्यति हन्ति वा।
अतो राजर्षयः सर्वे मृगयां यान्ति भारत ॥ १८ ॥
न हि लिप्यन्ति पापेन न चैतत्पातकं विदुः।
न ह्यतः सदृशं किंचिदिह लोके परत्र च ॥ १९ ॥
यत्सर्वेष्विह भूतेषु दया कौरवनन्दन।
न भयं विद्यते जातु नरस्येह दयावतः ॥ २० ॥
दयावतामिमे लोकाः परे चापि तपस्विनाम्।
अहिंसालक्षणो धर्म इति धर्मविदो विदुः ॥ २१ ॥
यदहिंसात्मकं कर्म तत्कुर्यादात्मवान्नरः।
पितृदैवतयज्ञेषु प्रोक्षितं हविरुच्यते ॥ २२ ॥
अभयं सर्वभूतेभ्यो यो ददाति दयापरः।

युक्त नहीं होता। हे महाराज! पहले समयमें अगस्त्य मुनिके द्वारा सर्व देवताओंके उद्देश्यसे जङ्गली पशु सब प्रकारसे प्रोक्षित हुए, इसहीसे मृगया प्रशंसनीय हुआ करता है, अपने प्राणकी आशाको विना त्यागे मृगया नहीं होता। हिंसक पशुओंसे अपने प्राणनाशकी सम्भावना रहती है, इसलिये प्राणपणसे होनेवाली मृगया दोषका कारण नहीं है; समतायुक्त होके मनुष्य मृगयामें पशुओंको मारता है अथवा पशुओंके द्वारा मारा जाता है। (१५-१८)

हे भारत! इस ही लिये राजर्षि लोग मृगयाके निमित्त जाते हैं, इसमें वे पापसे लिप्त नहीं होते और मृगयाको पाप नहीं समझते। हे कौरवनन्दन! सब जीवोंके विषयमें दया करनेके सदृश धर्म इस लोक और परलोकमें दूसरा कुछ भी नहीं है, दयावान मनुष्योंको कदापि भय नहीं होता, दयावान तपस्वियोंकी इस लोक और परलोकमें जय होती है। धर्मज्ञ पुरुष अहिंसाको ही धर्मका लक्षण जानते हैं; जो कर्म अहिंसायुक्त हो, आत्मवान् पुरुष उसे ही करे; पितृयज्ञ और देवयज्ञमें प्रोक्षित मांसही हवि रूपसे वर्णित हुई है। (१९—२२)

मैंने सुना है, कि जो लोग दयावान् होके सब जीवोंको अभयदान करते हैं,

अभयं तस्य भूतानि ददतीत्यनुशुश्रुम ॥ २३ ॥
क्षतं च स्खलितं चैव पतितं कृष्टमाहतम्।
सर्वभूतानि रक्षन्ति समेषु विषमेषु च ॥ २४ ॥
नैनं व्यालमृगा घ्नन्ति न पिशाचा न राक्षसाः।
मुच्यते भयकालेषु मोक्षयेद्यो भये परान् ॥ २५ ॥
प्राणदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति।
न ह्यात्मनः प्रियतरं किंचिदस्तीह निश्चितम् ॥ २६ ॥
अनिष्टं सर्वभूतानां मरणं नाम भारत।
मृत्युकाले हि भूतानां सद्यो जायति वेपथुः ॥ २७ ॥
जातिजन्मजरादुःखैर्नित्यं संसारसागरे।
जन्तवः परिवर्तन्ते मरणादुद्विजन्ति च ॥ २८ ॥
गर्भवासेषु पच्यन्ते क्षाराम्लकटुकै रसैः।
मूत्रस्वेदपुरीषाणां परुषैर्भृशदारुणैः ॥ २९ ॥
जाताश्चाप्यवशास्तत्र च्छिद्यमानाः पुनः पुनः।
याच्यमानाश्च दृश्यन्ते विवशा मांसगृद्धिनः ॥ ३० ॥
कुम्भीपाके च पच्यन्ते तां तां योनिमुपागताः।

सब जीव भी उन्हें अभय प्रदान करते हैं। घायल, स्खलित, क्षत, पतित, और क्लेशित पुरुषोंकी सम विषम स्थलमें सब जीव ही रक्षा किया करते हैं। जो पुरुष भयके समयमें दूसरोंका भय छुडाता है, उसे हिंसक जीव और पिशाच राक्षस भी नहीं मारते; वह भय उपस्थित होनेपर उससे छुटकारा पाता है। प्राणदानसे बढके परम दान न हुआ और न होगा। यह निश्चय है, कि आत्मासे अधिक प्रिय और कुछ भी नहीं है। हे भारत! मरना सब जीवोंको ही अनभिलषित है, जीवको मृत्युके समय सदा ही दुःख होता है, सब जीव गर्भवास और जन्म जरा दुःखके सहारे सदा संसार-सागरमें परिभ्रमण करते हैं और मरनेसे डरते हैं। (२३-२७)

सब प्राणी गर्भवासके समय मूत्र, श्लेष्म और पुरीष प्रभृतिकी अत्यन्त दारुण, उत्कट, क्षार, खट्टे और कडवे रसोंसे पच्यमान हुआ करते हैं, मांस-लोभी पुरुष जन्म लेके भी उस समय अवश तथा विवश रहनेसे बार बार छिद्यमान और पच्यमान दीख पडते हैं, वे लोग उन्हीं योनियोंमें जन्म लेके

आक्रम्य मार्यमाणाश्च भ्राम्यन्ते वै पुनः पुनः ॥ ३१ ॥
नात्मनोऽस्ति प्रियतरः पृथिवीमनुसृत्य ह ।
तस्मात्प्राणिषु सर्वेषु दयावानात्मवान्भवेत् ॥ ३२ ॥
सर्वमांसानि यो राजन्यावज्जीवं न भक्षयेत् ।
स्वर्गे स विपुलं स्थानं प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥ ३३ ॥
ये भक्षयन्ति मांसानि भूतानां जीवितैषिणाम् ।
भक्ष्यन्ते तेऽपि भूतैस्तैरिति मे नास्ति संशयः॥ ३४ ॥
मां स भक्षयते यस्माद्भक्षयिष्ये तमप्यहम् ।
एतन्मांसस्य मांसत्वमनुबुद्ध्यस्व भारत ॥ ३५ ॥
घातको वध्यते नित्यं तथा वध्यति भक्षिता ।
आक्रोष्टा क्रुध्यते राजंस्तथा द्वेष्यत्वमाप्नुते ॥ ३६ ॥
येन येन शरीरेण यद्यत्कर्म करोति यः ।
तेन तेन शरीरेण तत्तत्फलमुपाश्नुते ॥ ३७ ॥
अहिंसा परमो धर्मस्तथाऽहिंसा परो दमः ।
अहिंसा परमं दानमहिंसा परमं तपः ॥ ३८ ॥
अहिंसा परमो यज्ञस्तथाऽहिंसा परं फलम् ।

फिर कुम्भीपाक नरकमें पकते हैं, वे आक्रान्त तथा म्रियमाण होके बार बार भ्रमण करते हैं। पृथ्वीपर खोजनेसे आत्मासे अधिक प्रिय पदार्थ और कुछ भी नहीं देखा जाता, इसलिये आत्मवान् पुरुष सब प्राणियोंमें ही दयावान् होवे। हे महाराज! जो लोग जन्मसे ही मांस भक्षण नहीं करते, उन्हें निःसन्देह सुरपुरमें उत्तम महत् स्थान प्राप्त होता है। (२८—३३)

जो लोग जीनेकी इच्छा करनेवाले जीवोंका मांस भक्षण करते हैं, वे उन्हीं जीवोंके द्वारा भक्षित होते हैं, इस विषयमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है। हे भारत! जब कि वह मुझे भक्षण करता है, तब मैं भी उसे भक्षण करूंगा, 'मांस' शब्दका यही मांसत्व मालूम करो। हे महाराज! घातक सदा ही वध्य होता है, अनन्तर भक्षक पुरुष वध्य हुआ करता है; आक्रोष्टा पुरुष सदा ही आक्रुष्ट होता और द्वेष करनेवालेको द्वेष्यत्व प्राप्त हुआ करता है। जो पुरुष जिस शरीरसे जैसा कर्म करता है, वह उस ही शरीरसे उन फलोंको भोगता है। (३४—३७)

अहिंसा परम धर्म, अहिंसाही परम

अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परमं सुखम् ॥ ३९ ॥
सर्वयज्ञेषु वा दानं सर्वतीर्थेषु वाऽऽप्लुतम्।
सर्वदानफलं वाऽपि नैतत्तुल्यमहिंसया ॥ ४० ॥
अहिंस्रस्य तपोऽक्षय्यमहिंस्रो यजते सदा।
अहिंस्रः सर्वभूतानां यथा माता यथा पिता ॥ ४१ ॥
एतत्फलमहिंसाया भूयश्च कुरुपुङ्गव।
न हि शक्या गुणा वक्तुमपि वर्षशतैरपि ॥ ४२ ॥ [७६४९]

इति श्रीमहा०अनु०आनु०पर्वणि दानधर्मे अहिंसाफलकथने षोडशाधिकशततमोऽध्यायः॥११६॥

युधिष्ठिर उवाच– अकामाश्च सकामाश्च ये हताः स्म महामृधे।
कां गतिं प्रतिपन्नास्ते तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥
दुःखं प्राणपरित्यागः पुरुषाणां महामृधे।
जानासि त्वं महाप्राज्ञ प्राणत्यागं सुदुष्करम् ॥ २ ॥
समृद्धो वाऽसमृद्धो वा शुभे वा यदि वाऽशुभे।
कारणं तत्र मे ब्रूहि सर्वज्ञो ह्यसि मे मतः ॥ ३ ॥
भीष्म उवाच– समृद्धो वाऽसमृद्धो वा शुभे वा यदि वाऽशुभे।

दम, अहिंसाही परम दान, अहिंसाही परम तपस्या है, अहिंसा परम यज्ञ, अहिंसाही परम तप, अहिंसा परम बल, अहिंसाही परम मित्र, अहिंसा परम सुख, अहिंसा परम सत्य और अहिंसा ही परम श्रुत है। सब यज्ञोंमें जो दान किया जाता है, सब तीर्थोंके स्नान तथा सब दानोंके फल अहिंसाके सदृश नहीं है। अहिंस मनुष्योंकी तपस्या अक्षय होती है, अहिंसक पुरुष सदा ही यज्ञ करता और हिंसारहित मनुष्य सब जीवोंके पितामाता सदृश है। हे कुरु-पुङ्गव! यह मैंने अहिंसाका फल कहा; इसकी अपेक्षा और जो सब अत्यन्त अधिक फल हैं, वे एक सौ वर्षमें भी नहीं कहे जा सकते। (३८-४२)

अनुशासनपर्वमें ११६ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ११७ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! जो लोग अकाम अथवा सकाम होकर महा-रणमें मरते हैं, उन्हें कौनसी गति प्राप्त होती है? हे महाप्राज्ञ! महामृधमें मनुष्योंका प्राण त्यागना अत्यन्त दुःखकर है समृद्धि, असमृद्धि शुभ वा अशुभ समयमें प्राण परित्याग करना जो अत्यन्त दुष्कर है, उसे आप जानते हैं; इसलिये उस विषयका कारण मेरे समीप वर्णन करिये। मैं आपको सर्वज्ञ जानता हूं। (१-३)

संसारेऽस्मिन्समायाताः प्राणिनः पृथिवीपते ॥ ४ ॥
निरता येन भावेन तत्र मे शृणु कारणम् ।
सम्यक्चायमनुप्रश्नस्त्वयोक्तस्तु युधिष्ठिर ॥ ५ ॥
अत्र ते वर्तयिष्यामि पुरावृत्तमिदं नृप ।
द्वैपायनस्य संवादं कीटस्य च युधिष्ठिर ॥ ६ ॥
ब्रह्मभूतश्चरन्विप्रः कृष्णद्वैपायनः पुरा ।
ददर्श कीटं धावन्तं शीघ्रं शकटवर्त्मनि ॥ ७ ॥
गतिज्ञः सर्वभूतानां भाषाज्ञश्च शरीरिणाम् ।
सर्वज्ञः स तदा दृष्ट्वा कीटं वचनमब्रवीत् ॥ ८ ॥
व्यास उवाच- कीट सन्त्रस्तरूपोऽसि त्वरितश्चैव लक्ष्यसे ।
क्व धावसि तदाचक्ष्व कुतस्ते भयमागतम् ॥ ९ ॥
कीट उवाच— शकटस्यास्य महतो घोषं श्रुत्वा भयं मम ।
आगतं वै महाबुद्धे स्वन एष हि दारुणः ॥ १० ॥
श्रूयते न च मां हन्यादिति तस्मादपक्रमे ।
श्वसतां च शृणोम्येनं गोपुत्राणां प्रतोद्यताम् ॥ ११ ॥

भीष्म बोले, हे पृथ्वीपति युधिष्ठिर! समृद्ध अथवा असमृद्ध, शुभ वा अशुभ वंशमें इस संसारके बीच उत्पन्न हुए प्राणिवृन्द जिस भावसे रत रहते हैं, मेरे समीप उसका कारण सुनो; तुमने यह उत्तम प्रश्न किया है। हे राजन् युधिष्ठिर! इस विषयमें द्वैपायन और कीटके संवादयुक्त पुराना इतिहास कहता हूं। पहले समयमें विप्रवर कृष्ण-द्वैपायन ब्रह्मरूपसे विचर रहे थे, उस समय उन्होंने शकटके मार्गमें शीघ्रताके सहित दौडते हुए एक कीटको देखा। सब जीवोंके गतिज्ञ और शरीरधारी सब भूतोंकी भाषा जाननेवाले सर्वज्ञ वेद-व्यासने उस समय कीटको देखकर यह वचन कहा। (४-८)

व्यासदेव बोले, हे कीट! तुम अत्यन्त भयभीत और आतुर दीख पडते हो, तुम दौडके कहां जाओगे? तुम्हें किससे भय हुआ है? (९)

कीट बोला, हे महाबुद्धिमान्! इस बृहत् शकटका शब्द सुनके मुझे भय हुआ है, वह अत्यन्त दारुण शब्द सुन-नेमें आता है, परन्तु उसने मेरा जीवन नष्ट नहीं किया, इसी लिये इस स्थानसे जाता हूं। प्रहार करने में जिस प्रकार निश्वासयुक्त गऊके बछडों का शब्द होता है, वैसे ही इस

वहतां सुमहाभारं सन्निकर्षे स्वनं प्रभो ।
नृणां च संवाहयतां श्रूयते विविधः स्वनः ॥ १२ ॥
श्रोतुमस्मद्विधेनैष न शक्यः कीटयोनिना ।
तस्मादतिक्रमाम्येष भयादस्मात्सुदारुणात् ॥ १३ ॥
दुःखं हि मृत्युर्भूतानां जीवितं च सुदुर्लभम् ।
अतो भीतः पलायामि गच्छेयं नासुखं सुखात् ॥१४॥

भीष्म उवाच- इत्युक्तः स तु तं प्राह कुतः कीट सुखं तव ।
मरणं ते सुखं मन्ये तिर्यग्योनौ तु वर्तसे ॥ १५ ॥
शब्दं स्पर्शं रसं गन्धं भोगांश्चोच्चावचान्बहून् ।
नाभिजानासि कीट त्वं श्रेयो मरणमेव ते ॥ १६ ॥

कीट उवाच- सर्वत्र निरतो जीव इतश्चापि सुखं मम ।
चिन्तयामि महाप्राज्ञ तस्मादिच्छामि जीवितुम् ॥१७॥
इहापि विषयः सर्वो यथादेहं प्रवर्तितः ।
मानुषाः स्थैर्यजाश्चैव पृथग्भोगा विशेषतः ॥ १८ ॥
अहमासं मनुष्यो वै शूद्रो बहुधनः प्रभो ।

शब्दको सुनता हूं। बहुतसा भार ढोनेवाले मनुष्योंके सन्निकर्षनिबन्धनसे शकटके अनेक प्रकारके शब्द कानके छिद्रमें प्रविष्ट होते हैं। मेरे सदृश कीट-योनिमें उत्पन्न हुए जीव ऐसे शब्दको नहीं सुन सकते, इस ही निमित्त अत्यन्त दारुण भयसे इस स्थानको छोडके दूसरे स्थानमें जाता हूं, जीवोंको मृत्युसे ही दुःख है, जीवन अत्यन्त दुर्लभ है, इसीलिये मैं डरके भागता हूं और सुख छोडके दुःखमें भी नहीं जाता हूं। (१०-१४)

भीष्म बोले, व्यासदेवने कीटका ऐसा वचन सुनके उससे कहा, हे कीट! किस प्रकार तुम्हें सुख होता है, तुम तिर्यग्योनिमें रहते हो, इससे तुझे मरणही सुख है, ऐसा मुझे दीखता है। तुम शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध और अनेक भांतिकी भोज्यवस्तुओंको भोगना नहीं जानते। हे कीट! इसलिये तुम्हारा मरनाही कल्याणकारी है। (१५—१६)

कीट बोला, हे महाप्राज्ञ! जीव सब ठौर रत रहता है, इसलिये इस योनिमें भी मुझे सुख है, ऐसा जानके ही मैं जीवित रहनेकी अभिलाष करता हूं। इस कीटशरीरमें भी देहके अनुसार सब विषय प्रवर्त्तित हुए हैं, जङ्गम और

अब्रह्मण्यो नृशंसश्च कदर्यो वृद्धिजीवनः ॥ १९ ॥
वाक्तीक्ष्णो निकृतिप्रज्ञो द्वेष्टा विश्वस्य सर्वशः।
मिथ्याकृतोऽपि विधिना परस्वहरणे रतः ॥ २० ॥
भृत्यातिथिजनश्चापि गृहे पर्यशितो मया।
मात्सर्यात्स्वादुकामेन नृशंसेन बुभुक्षता ॥ २१ ॥
देवार्थं पितृयज्ञार्थमन्नं श्रद्धाहुतं मया।
न दत्तमर्थकामेन देयमन्नं पुरा किल ॥ २२ ॥
गुप्तं शरणमाश्रित्य भयेषु शरणागताः।
अकस्मात्ते मया त्यक्ता न त्राता अभयैषिणः ॥ २३॥
धनं धान्यं प्रियान्दाशन्यानं वासस्तथाद्भुतम्।
श्रियं दृष्ट्वा मनुष्याणामसूयामि निरर्थकम् ॥२४ ॥
ईर्ष्युः परसुखं दृष्ट्वा अन्यस्य न बुभूषकः।
त्रिवर्गहन्ता चान्येषामात्मकामानुवर्तकः ॥ २५ ॥
नृशंसगुणभूयिष्ठं पुरा कर्म कृतं मया।
स्मृत्वा तदनुतप्येऽहं हित्वा प्रियमिवात्मजम् ॥२६ ॥

स्थावर जीवोंके भोग पृथक् पृथक् हैं। हे प्रभु! मैं पहले जन्ममें अधिक धनवाला शूद्र जातीय मनुष्य था, मैं ब्रह्मनिष्ठ न होकर नृशंस, कृपण, वृद्धिजीवी, तीक्ष्णवादी, अतिनिकृतिप्रज्ञ और सब भांतिसे लोगोंका द्वेषी था। परस्परमें छल करके परधन हरनेमें रत रहता था, गृहके बीच सेवकों और अतिथियोंको परित्याग करके स्वयं पहले भोजन करता और मत्सरतासे स्वादुकाम तथा नृशंस होकर भोजन करनेकी इच्छा करता, अर्थकाम होके देव और पितृयज्ञके लिये श्रद्धापूर्वक अन्न प्रदान नहीं करता था; पहले अन्नदान करनेकी इच्छा करके भी फिर उससे विमुख रहता था। (१७—२२)

गुप्तभावसे जो लोग शरणागत होनेके लिये मेरा आसरा करते और जो लोग डरके मेरे शरणागत होते थे, मैं अकस्मात् उन्हें परित्याग करता था और जो लोग अभय प्रार्थना करते थे, उनका परित्राण नहीं करता था। दूसरोंके धन, धान्य, पीनेकी वस्तु, अद्भुत वस्त्र और सम्पत्ति देखके मैं निरर्थक डाह करता था, मैं दूसरेके ऐश्वर्यकी इच्छा न करके लोगोंके सुखको देखनेसे ही ईर्षा करता था। अपने प्रयोजनके लिये दूसरोंका

शुभानां नाभिजानामि कृतानां कर्मणां फलम् ।
माता च पूजिता वृद्धा ब्राह्मणश्चार्चितो मया ॥ २७ ॥
सकृज्जातिगुणोपेतः संगत्या गृहमागतः ।
अतिथिः पूजितो ब्रह्मंस्तेन मां नाजहात्स्मृतिः ॥२८॥
कर्मणा पुनरेवाहं सुखमागामि लक्षये ।
तच्छ्रोतुमहमिच्छामि त्वत्तः श्रेयस्तपोधन ॥ २९ ॥[५६७८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे कीटोपाख्याने सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

व्यास उवाच-शुभेन कर्मणा यद्वै तिर्यग्योनौ न मुह्यसे ।
ममैव कीट तत्कर्म येन त्वं न प्रमुह्यसे ॥ ॥ १ ॥
अहं त्वां दर्शनादेव तारयामि तपोबलात् ।
तपोबलाद्धि बलवद्बलमन्यन्न विद्यते ॥ २ ॥
जानामि पापैः स्वकृतैर्गतं त्वां कीट कीटताम् ।
अवाप्स्यसि पुनर्धर्मं धर्मं तु यदि मन्यसे ॥ ३ ॥
कर्मभूमिकृतं देवा भुञ्जते तिर्यगाश्च ये ।

भी धर्म, अर्थ और काम नष्ट करता था, पूर्व जन्ममें मैंने नृशंस तथा बहुतसे दुष्ट गुणयुक्त कार्य किये थे; मुझे जिस प्रकार अपने पुत्रको परित्याग करनेसे दुःख होता है, मैं इस समय उन कर्मोंको स्मरण करके उसी भांति शोक करता हूं। (२३—२६)

मैंने जो कुछ सत्कर्म किया था, उसका कुछ भी फल नहीं जानता; मैं बूढी जननीका सत्कार करता तथा ब्राह्मण लोग भी मेरे द्वारा पूजित हुए थे। हे ब्रह्मन्! एकबार जाति-गुणसे युक्त कोई अतिथि सङ्गतिक्रमसे मेरे गृहपर आया था, मैंने उनकी पूजा की थी, इसही लिये स्मरणशक्तिने मुझे परित्याग नहीं किया। हे तपोधन! मैं कर्मके सहारे भविष्यत् सुख देखता हूं, इसलिये आपके समीप उस कल्याणके विषयको सुननेकी अभिलाष करता हूं। (२७—२९)

अनुशासनपर्वमें ११७ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ११८ अध्याय।

व्यासदेव बोले, हे कीट तू जो तिर्यक्योनिमें जन्म लेके शुभकर्मके सहारे मोहित नहीं होता है, वह मेरा ही कार्य है, मैं तपोबलसे देखते ही तेरा उद्धार करूंगा, तपोबलसे प्रबल और कुछ भी नहीं है। मैं जानता हूं

धर्मोऽपि हि मनुष्येषु कामार्थश्च तथा गुणाः ॥ ४ ॥
वाग्बुद्धिपाणिपादैश्च व्यपेतस्य विपश्चितः।
किं हास्यति मनुष्यस्य मन्दस्यापि हि जीवतः ॥ ५ ॥
जीवन्हि कुरुते पूजां विप्राग्र्यः शशिसूर्ययोः।
ब्रुवन्नपि कथां पुण्यां तत्र कीट त्वमेष्यसि ॥ ६ ॥
गुणभूतानि भूतानि तत्र त्वमुपभोक्ष्यसे।
तत्र तेऽहं विनेष्यामि ब्रह्मत्वं यत्र वेष्यसि ॥ ७ ॥
स तथेति प्रतिश्रुत्य कीटो वर्त्मन्यतिष्ठत।
शाकटो व्रजंश्च सुमहानागतश्च यदृच्छया ॥ ८ ॥
चक्राक्रमेण भिन्नश्च कीटः प्राणान्मुमोच ह।
सम्भूतः क्षत्रियकुले प्रसादादमितौजसः ॥ ९ ॥
तमृषिं द्रष्टुमगमत्सर्वास्वन्यासु योनिषु।
श्वाविद्गोधावराहाणां तथैव मृगपक्षिणाम् ॥ १० ॥
श्वपाकशूद्रवैश्यानां क्षत्रियाणां च योनिषु।
स कीट एवमाभाष्य ऋषिणा सत्यवादिना।

कि तू अपने किये हुए पापकर्मोंसे कीटानुकीट हुआ है, यदि धर्मको मानो, तो फिर धर्म प्राप्त होगा। देव और तिर्यक् प्रभृति सब कोई कर्मभूमिमें अपने किये हुए पाप पुण्यका फल भोग किया करते हैं। मनुष्योंका धर्म और गुण कामका हेतु हुआ करता है। वचन, बुद्धि, हाथ, पांवसे रहित विपश्चित् अथवा मूर्ख जो जीवित रहते हैं, उनका लोग उपहास करते हैं; श्रेष्ठ विप्र जीवित रहके सूर्यचन्द्रमाकी पूजा करते और उत्तम कथा कहा करते हैं। (१—६)

हे कीट! इसलिये मैं तुझे उस ही ब्राह्मणयोनिमें प्रेरण करूंगा, तू ब्राह्मणत्व पानेसे कर्मोंका फल भोगेगा और सब जीवोंको परित्याग करेगा, तब मैं तुझे परब्रह्ममें लीन करूंगा अर्थात् तुझे ब्रह्मविद्या दान करूंगा। वह कीट 'ऐसा ही हो,' यह वचन कहके मार्गमें ही स्थित हुआ, इतने ही समयमें यदृच्छा-क्रमसे बृहत् शकटसमूह आ पहुंचा, पहियेके नीचे दबकर उस कीटने उसी समय प्राण परित्याग किया, अत्यन्त तेजस्वी व्यासदेवकी कृपासे वह कीट अनेक योनियोंमें जन्म लेकर अन्तमें क्षत्रियवंशमें उत्पन्न हुआ; वह श्वावित्, गोधा, वराह, मृग, पक्षी, चाण्डाल, शूद्र और क्रमसे वैश्यजातीय होकर जब

प्रतिस्मृत्याथ जग्राह पादौ मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ॥ ११ ॥

कीटक उवाच- इदं तदतुलं स्थानमीप्सितं दशभिर्गुणैः ।

यदहं प्राप्य कीटत्वमागतो राजपुत्रताम् ॥ १२ ॥

वहन्ति मामतिबला कुञ्जरा हेममालिनः ।

स्यन्दनेषु च काम्बोजा युक्ताः परमवाजिनः ॥ १३ ॥

उष्ट्राश्वतरयुक्तानि यानानि च वहन्ति माम् ।

सबान्धवः सहामात्यश्चाश्नामि पिशितौदनम् ॥ १४ ॥

गृहेषु स्वनिवासेषु सुखेषु शयनेषु च ।

वरार्हेषु महाभाग स्वपामि च सुपूजितः ॥ १५ ॥

सर्वेष्वपररात्रेषु सूतमागधबन्दिनः ।

स्तुवन्ति मां यथा देवा महेन्द्रं प्रियवादिनः ॥ १६ ॥

प्रसादात्सत्यसन्धस्य भवतोऽमिततेजसः ।

यदहं कीटतां प्राप्य संप्राप्तो राजपुत्रताम् ॥ १७ ॥

नमस्तेऽस्तु महाप्राज्ञ किं करोमि प्रशाधि माम् ।

त्वत्तपोबलनिर्दिष्टमिदं ह्यधिगतं मया ॥ १८ ॥

जिस योनिमें जन्मता था, तभी उस ऋषिसत्तमका दर्शन करनेके लिये जाता था। (६—११)

वह कीट उस सत्यवादी ऋषिके द्वारा इसी प्रकार उपदिष्ट होके प्रतिजन्ममें ही स्मरण करते हुए दोनों हाथ जोडके सिरसे उनका चरण छूता था। अनन्तर वह कीट क्षत्रिय होके बोला, मैंने दशजन्ममें यह अभिलषित अतुल पद पाया है, क्यों कि मैं कीटत्व प्राप्त करके राजपुत्र हुआ हूं; मैं सुवर्णमालासे युक्त अत्यन्त बलवान हाथियोंपर चढता हूं। रथमें जुते हुए काम्बोज देशीय घोडे, ऊंट और अश्वतरी मुझे ले चलनेके लिये तय्यार हैं; मैं बान्धवों और सेवकोंके सहित पलान्न भक्षण करता हूं। हे महाराज! मैं महामूल्यवान् शय्यापर उत्तम रीतिसे पूजित होकर सुखसे सोता हूं। (११–१५)

जिस प्रकार देववृन्द इन्द्रकी स्तुति करते हैं, वैसे ही रात बीतनेपर सूत, मागध और बन्दीजन मेरी स्तुति किया करते हैं। आप अत्यन्त तेजस्वी और सत्यसन्ध हैं, आपकी कृपासे मैंने कीट होके भी राजपुत्रत्व पाया है। हे महाप्राज्ञ! इसलिये मैं आपको प्रणाम करता हूं, कहिये कौनसा कार्य करूं? मैंने आपके तपोबलके सहारे यह निर्दिष्ट

व्यास उवाच- अर्चितोऽहं त्वया राजन् बाग्भिरस्य यदृच्छया।
अद्य ते कीटतां प्राप्य स्मृतिर्जाता जुगुप्सिता ॥ १९ ॥
न तु नाशोऽस्ति पापस्य यस्त्वयोपचितः पुरा।
शूद्रेणार्थप्रधानेन नृशंसेनाततायिना ॥ २० ॥
मम ते दर्शनं प्राप्तं तच्च वै सुकृतं त्वया।
तिर्यग्योनौ स्म जातेन मम चाभ्यर्चनात्तथा ॥ २१ ॥
इतस्त्वं राजपुत्रत्वाद्ब्राह्मण्यं समवाप्स्यसि।
गोब्राह्मणकृते प्राणान् हुत्वाऽऽत्मानं रणाजिरे ॥२२॥
राजपुत्र सुखं प्राप्य क्रतूंश्चैवाप्तदक्षिणान्।
अथ मोदिष्यसे स्वर्गे ब्रह्मभूतोऽव्ययः सुखी ॥ २३ ॥
तिर्यग्योन्याः शूद्रतामभ्युपैति शूद्रो वैश्यं क्षत्रियत्वं च वैश्यः।
वृत्तश्लाघी क्षत्रियो ब्राह्मणत्वं स्वर्गं पुण्यं ब्राह्मणः साधुवृत्तः ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे कीटोपाख्याने अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११८॥ [५७०२]

भीष्म उवाच- क्षत्रधर्ममनुप्राप्तः स्मरन्नेव च वीर्यवान्।
त्यक्त्वा स कीटतां राजंश्चचार विपुलं तपः ॥ १ ॥

पद पाया है। (१६—१८)

व्यासदेव बोले, हे राजन्! आज मैं तुम्हारे यदृच्छावचनसे पूजित हुआ, कीटत्वको प्राप्त होके भी तुम्हें इस समय जुगुप्सित स्मृतिशक्ति उत्पन्न हुई है। पहले तुमने अत्यन्त आततायी धनी शूद्र होके जिन पापोंको किया था, उसका विनाश नहीं है। तुमने जो तिर्यक्योनिमें जन्म लेकर मेरी पूजा की थी, उस ही सुकृतके सहारे मेरा दर्शन पाया है। तुम रण-भूमिमें ब्राह्मणके निमित्त अपना प्राण देके राजपुत्रत्व त्यागके ब्राह्मणत्व पाओगे। हे राजपुत्र! तुम सहजमें ही आप्तदक्षिण यज्ञ पूरा करके स्वर्गलोकमें सुखी तथा अव्यय ब्रह्ममय होके प्रमुदित होगे। तिर्यक्योनिसे शूद्रत्व प्राप्त होता है, शूद्रत्वसे वैश्यत्व और वैश्यत्वसे क्षत्रियत्व प्राप्त हुआ करता है, साधुवृत्त क्षत्रिय ब्राह्मणत्व पाते और सत्स्वभाव सुशील ब्राह्मणोंको स्वर्गलोक मिलता है। (१९—२४)

अनुशासनपर्वमें ११८ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ११९ अध्याय।

भीष्म बोले, हे महाराज! उस वीर्यवान कीटने क्षत्रियत्व पाके पूर्व

तस्य धर्मार्थविदुषो दृष्ट्वा तद्विपुलं तपः
आजगाम द्विजश्रेष्ठः कृष्णद्वैपायनस्तदा ॥ २ ॥
व्यास उवाच- क्षात्रं देवव्रतं कीट भूतानां परिपालनम्।
क्षात्रं देवव्रतं ध्यायंस्ततो विप्रत्वमेष्यसि ॥ ३ ॥
पाहि सर्वाः प्रजाः सम्यक् शुभाशुभविदात्मवान्।
शुभैः संविभजन्कामैरशुभानां च पावनैः ॥ ४ ॥
आत्मवान्भव सुप्रीतः स्वधर्माचरणे रतः।
क्षात्रीं तनुं समुत्सृज्य ततो विप्रत्वमेष्यसि ॥ ५ ॥
भीष्म उवाच- सोऽप्यरण्यमनुप्राप्य पुनरेव युधिष्ठिर।
महर्षेर्वचनं श्रुत्वा प्रजा धर्मेण पाल्य च ॥ ६ ॥
अचिरेणैव कालेन कीटः पार्थिवसत्तम।
प्रजापालनधर्मेण प्रेत्य विप्रत्वमागतः ॥ ७ ॥
ततस्तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा पुनरेव महायशाः।
आजगाम महाप्राज्ञः कृष्णद्वैपायनस्तदा ॥ ८ ॥
व्यास उवाच- भो भो ब्रह्मर्षभ श्रीमन्मा व्यथिष्ठाः कथंचन।
शुभकृच्छुभयोनिषु पापकृत्पापयोनिषु ॥ ९ ॥

वृत्तान्त स्मरण करते हुए विपुल तपस्या की थी; उस धर्मार्थवेत्ताकी वैसी महत तपस्या देखकर उस समय कृष्णद्वैपायन उसके समीप गये। (१—२)

व्यासदेव बोले, हे कीट! क्षात्रधर्म सब प्राणियोंका प्रतिपालन करनेसे देवव्रत है, इसलिये क्षत्रियधर्मको देवव्रतरूपसे ध्यान करते हुए मरनेपर तुम्हें विप्रत्व प्राप्त होगा। तुम शुभाशुभवेत्ता और आत्मवान् होकर पूर्ण रीतिसे प्रजाका पालन करो। पवित्र शुभकार्योंसे अशुभ कर्मोंका संविभाग करो; स्वधर्माचरणमें रत रहके आत्मवान् तथा प्रसन्न रहो, अनन्तर क्षत्रिय-शरीर त्यागनेपर ब्राह्मणत्व पाओगे। (३—५)

भीष्म बोले, हे नरसत्तम युधिष्ठिर! वह कीट महर्षि कृष्णद्वैपायनका वचन सुनके धर्मपूर्वक प्रजा पालन करके अन्तमें वनवासी हुआ और प्रजा पालन करनेसे परलोकमें जाकर ब्राह्मणत्व पाया। अनन्तर महायशस्वी महाप्राज्ञ कृष्णद्वैपायन मुनि उस समय उसे ब्राह्मण देखकर फिर उसके निकट गये। (६—८)

वेदव्यास बोले, हे श्रीमान् विप्रवर!

उपपत्स्यति धर्मज्ञ यथा पापफलोपगम् ।
तस्मान्मृत्युभयात्कीट मा व्यथिष्ठाः कथंचन ॥ १० ॥
धर्मलोपभयं ते स्यात्तस्माद्धर्मं चरोत्तमम् ।
कीट उवाच- सुखात्सुखतरं प्राप्तो भगवंस्त्वत्कृते ह्यहम् ॥ ११ ॥
धर्ममूलां श्रियं प्राप्य पाप्मा नष्ट इहाद्य मे ।
भीष्म उवाच- भगवद्वचनात्कीटो ब्राह्मण्यं प्राप्य दुर्लभम् ॥ १२ ॥
अकरोत्पृथिवीं राजन्यज्ञयूपशताङ्किताम् ।
ततः सालोक्यमगमद्ब्रह्मणो ब्रह्मवित्तमः ॥ १३ ॥
अवाप च पदं कीटः पार्थ ब्रह्म सनातनम् ।
स्वकर्मफलनिर्वृत्तं व्यासस्य वचनात्तदा ॥ १४ ॥
तेऽपि यस्मात्प्रभावेण हताः क्षत्रियपुङ्गवाः ।
संप्राप्तास्ते गतिं पुण्यां तस्मान्मा शोच पुत्रक ॥१५॥ [८७१७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे कीटोपाख्याने एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

युधिष्ठिर उवाच- विद्यातपोभ्यां दानाच्च किमेतेषां विशिष्यते ।
पृच्छामि त्वां सतां श्रेष्ठ तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

तुमने शुभयोनिमें शुभकर्म किया और पापयोनिमें पापाचरण किया है, तथापि तुम किसी प्रकार व्यथित न होना; पाप-पुण्यके अनुसार फल प्राप्त होगा। अतः तुझे मृत्युभयसे व्यथित होना योग्य नहीं है। यदि तुम्हें धर्मलोपका भय हो, तो उत्तम धर्माचरण करो। (९—११)

कीट बोला, हे भगवन्! आपकी कृपासेही मैंने सुखसे भी अधिक सुख पाया है; धर्ममूल सम्पत्तियोंको पानेसे अब मेरा पाप नष्ट हुआ है। (११-१२)

भीष्म बोले, हे महाराज! कीटने भगवान् व्यासदेवके वचनानुसार दुर्लभ ब्राह्मणत्व पाके पृथ्वीको सैकडों यज्ञयूपोंसे अङ्कित किया। हे पार्थ! अनन्तर उस ब्रह्मवित्तम कीटने ब्रह्मसालोक्य पाके व्यासदेवके वाक्यके अनुसार उस समय स्वकर्मफलनिर्वृत्त सनातन ब्रह्मपद पाया। हे तात! तुम्हारे प्रभावसे जो सब क्षत्रिय युद्धमें मरे हैं, उन्होंनेभी पवित्र गति पाई है, इसलिये तुम शोक मत करो। (१२—१५)

अनुशासनपर्वमें ११९ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १२० अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे साधुश्रेष्ठ पितामह! विद्या, तपस्या और दान, इन तीनोंके

भीष्म उवाच- अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
मैत्रेयस्य च संवादं कृष्णद्वैपायनस्य च ॥ २ ॥
कृष्णद्वैपायनो राजन्नज्ञातचरितं चरन् ।
वाराणस्यामुपातिष्ठन्मैत्रेयं स्वैरिणीकुले ॥ ३ ॥
तमुपस्थितमासीनं ज्ञात्वा स मुनिसत्तमम् ।
अर्चित्वा भोजयामास मैत्रेयोऽशनमुत्तमम् ॥ ४ ॥
तदन्नमुत्तमं भुक्त्वा गुणवत्सार्वकामिकम् ।
प्रतिष्ठमानोऽस्मयत प्रीतः कृष्णो महामनाः ॥ ५ ॥
तमुत्स्मयन्तं संप्रेक्ष्य मैत्रेयः कृष्णमब्रवीत् ।
कारणं ब्रूहि धर्मात्मन्कथमस्मयिष्ठाः कुतश्च ते ॥ ६ ॥
तपस्विनो धृतिमतः प्रमोदः समुपागतः ।
एतत्पृच्छामि ते विद्वन्नभिवाद्य प्रणम्य च ।
आत्मनश्च तपोभाग्यं महाभाग्यं तवेह च ॥ ७ ॥
पृथगाचरतस्तात पृथगात्मसुखात्मनोः ।
अल्पान्तरमहं मन्ये विशिष्टमपि चान्वयात् ॥ ८ ॥

बीच श्रेष्ठ क्या है ? इस विषयको आप मेरे समीप वर्णन करिये । (१)

भीष्म बोले, इस विषयमें प्राचीन लोग मैत्रेय और कृष्णद्वैपायनके संवादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं । हे महाराज ! कृष्णद्वैपायन मुनि अज्ञातरूपसे विचरते हुए काशीपुरीमें मुनिमण्डलीके बीच मैत्रेयके समीप उपस्थित हुए। मुनिसत्तम मैत्रेयने उन्हें समागत और समासीन जानकर उनकी पूजा की और उत्तम भोजन कराया । महामना वेदव्यास मुनि उस श्रेष्ठ, सुगन्धियुक्त, सार्वकामिक, उत्तम अन्न भोजन करके प्रस्थान करते हुए प्रसन्न तथा विस्मित हुए । मैत्रेय ऋषि उस कृष्णद्वैपायन मुनिको विस्मययुक्त जानके बोले, हे धर्मात्मन् ! आप किस निमित्त विस्मित हुए ? उसका कारण कहिये । (२—६)

हे विद्वन् ! आप तपस्वी और धृतिमान् हैं, तब आपको किस लिये प्रमोद हुआ ? मैं आपको प्रणाम करके पूछता हूं, कि यह आपका तपोभाग्य अथवा सुखभाग्य है ? क्यों कि आश्चर्यदर्शनके अतिरिक्त विस्मय नहीं होता । उपाधिपरिच्छिन्न जीव और अनुपाधिक ब्रह्म पृथक् आचरण करनेपर भी जीवन्मुक्त और मुक्तामुक्त उभयात्मक आ-

व्यास उवाच- अतिच्छेदातिवादाभ्यां स्मयोऽयं समुपागतः।
असत्यं वेदवचनं कस्माद्वेदोऽनृतं वदेत् ॥ ९ ॥
त्रीण्येव तु पदान्याहुः पुरुषस्योत्तमं व्रतम्।
न द्रुह्यच्चैव दद्याच्च सत्यं चैव परं वदेत् ॥ १० ॥
इति वेदोक्तमृषिभिः पुरस्तात्परिकल्पितम्।
इदानीं चैव नः कृत्यं पुरस्ताच्च परिश्रुतम् ॥ ११ ॥
अल्पोऽपि तादृशो दायो भवत्युत महाफलः।
तृषिताय च ते दत्तं हृदयेनानसूयता ॥ १२ ॥
तृषितस्तृषिताय त्वं दत्त्वैतद्दर्शनं मम।
अजैषीर्महतो लोकान्महायज्ञैरिव प्रभो ॥ १३ ॥
ततो दानपवित्रेण प्रीतोऽस्मि तपसैव च।
पुण्यस्यैव हि ते सत्यं पुण्यस्यैव च दर्शनम् ॥ १४ ॥
पुण्यस्यैवाभिगन्धस्ते मन्ये कर्मविधानजम्।
अधिकं मार्जनात्तात तथा चैवानुलेपनात् ॥ १५ ॥

त्माकी अपेक्षा मैं आत्माको अल्पान्तर जानता हूं, क्यों कि आप मेरा भाग्य देखकर विस्मित हुए हैं; इसलिये मैं आपकी अपेक्षा आत्माको अल्पान्तर रूपसे अनुमान करता हूं और मित्रवंशसे आपको विशिष्ट समझता हूं। (७—८)

व्यासदेव बोले, मशकके समुद्र शोषणसदृश अत्यन्त अशक्य विषय अतिच्छेद और अतिवादके द्वारा यह विस्मय पूरी रीतिसे उत्पन्न हुआ है, यह कैसे सम्भव हो सकता है, कि वेदवचन सत्य नहीं है? वेद किसलिये मिथ्या कहेगा? पुरुषके इन तीनों विषयोंको पण्डित लोग उत्तम व्रत कहते हैं, किसीसे द्रोह न करना, दान और सत्य वचन कहना। ऋषियोंके द्वारा यह वेदोक्त विधि पहले ही परिकल्पित हुई है, इस समय इसे ही करना चाहिये और पहले भी ऐसा ही सुना गया था। (९-११)

अवश्य कर्त्तव्य दान अल्प होनेपर भी महाफलजनक हुआ करता है। तुमने असूयारहित हृदयसे प्यासे पुरुषको जल दान किया है, तुमने स्वयं तृषित होके भी मुझे प्यासा जानकर यह अन्न दान किया है, इसलिये महायज्ञके सहारे जिन लोकोंको जय किया जाता है, तुमने इस अन्नके सहारे उन महत् लोकोंको जय किया है, इसी लिये मैं तुम्हारे पवित्र दान और तपस्यासे विस्मित हुआ हूं। तुम्हारे सत्त्व पुण्यसे

शुभं सर्वपवित्रेभ्यो दानमेव परं द्विज।
नो चेत्सर्वपवित्रेभ्यो दानमेव परं भवेत् ॥ १६ ॥
यानीमान्युत्तमानीह वेदोक्तानि प्रशंससि।
तेषां श्रेष्ठतरं दानमिति मे नात्र संशयः ॥ १७ ॥
दानकृद्भिः कृतः पन्था येन यान्ति मनीषिणः।
ते हि प्राणस्य दातारस्तेषु धर्मः प्रतिष्ठितः ॥ १८ ॥
यथा वेदाः स्वधीताश्च यथा चेन्द्रियसंयमः।
सर्वत्यागो यथा चेह तथा दानमनुत्तमम् ॥ १९ ॥
त्वं हि तात महाबुद्धे सुखमेष्यसि शोभनम्।
सुखात्सुखतरप्राप्तिमाप्नुते मतिमान्नरः ॥ २० ॥
तन्नः प्रत्यक्षमेवेदमुपलभ्यमसंशयम्।
श्रीमन्तः प्राप्नुवन्त्यर्थान्दानं यज्ञं तथा सुखम् ॥२१॥
सुखादेव परं दुःखं दुःखादप्यपरं सुखम्।
दृश्यते हि महाप्राज्ञ नियतं वै स्वभावतः ॥ २२ ॥
त्रिविधानीह वृत्तानि नरस्याहुर्मनीषिणः।

तुम्हारा दर्शनभी पुण्यसापेक्ष है, तुम्हारा विधानज कर्म भी पुण्यगन्धयुक्त मालूम होता है। हे तात! तीर्थ और वेदव्रत समाप्त करनेकी अपेक्षा तुम्हारे दर्शनादि अत्यन्त पवित्र हैं। (१२—१५)

हे द्विज! सब पवित्र विषयोंके बीच दान ही परम शुभ है, यदि सब पवित्र विषयोंसे दान श्रेष्ठ न होवे, तब तुम जिन उत्तम वेदोक्त विधानोंकी प्रशंसा करते हो, उन सबसे दान ही उत्तम है, इस विषयमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है। दातृगणने जो मार्ग बनाया है, मनीषी लोग उस ही मार्गसे गमन किया करते हैं, वेही प्राणदाता हैं, उन दातागणमें ही सबके धर्म प्रतिष्ठित हैं। उत्तम रीतिसे पढा हुआ वेद जिस प्रकार श्रेष्ठ है, इन्द्रिय संयम और सर्वत्याग जैसा विशिष्ट है, दान भी उसी भांति अत्यन्त श्रेष्ठ है। (१६-१९)

हे तात! तुम सहजमें ही उत्तम सुख पावोगे, बुद्धिमान् मनुष्य सुखसे भी अधिक सुख पाता है। हमारे प्रत्यक्षमें निःसन्देह इसके मिलनेपर अर्थ, दान और समस्त यज्ञोंके फल श्रीमान् पुरुषको सुखसे प्राप्त होते हैं। हे महाप्राज्ञ! सुखके अनन्तर दुःख और दुःखके बाद सुख सदा स्वाभाविकही दिखाई देते हैं। (२०—२२)

पुण्यमन्यत्पापमन्यन्न पुण्यं न च पापकम् ॥ २३ ॥
न वृत्तं मन्यते तस्य मन्यते न च पातकम्।
तथा स्वकर्मनिर्वृत्तं न पुण्यं न च पापकम् ॥ २४ ॥
यज्ञदानतपःशीला नरा वै पुण्यकर्मिणः।
येऽभिद्रुह्यन्ति भूतानि ते वै पापकृतो जनाः ॥ २५ ॥
द्रव्याण्याददते चैव दुःखं यान्ति पतन्ति च।
ततोऽन्यत्कर्म यत्किंचिन्न पुण्यं न च पातकम् ॥ २६॥
रमस्वैधस्व मोदस्व देहि चैव यजस्व च।
न त्वामाभिभविष्यन्ति वैद्या न च तपस्विनः॥ २७॥ [५७४४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे मैत्रेयभिक्षायां विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

भीष्म उवाच- एवमुक्तः प्रत्युवाच मैत्रेयः कर्मपूजकः।
अत्यन्तश्रीमति कुले जातः प्राज्ञो बहुश्रुतः ॥ १ ॥
मैत्रेय उवाच— असंशयं महाप्राज्ञ यथैवात्थ तथैव तत्।
अनुज्ञातश्च भवता किंचिद् ब्रूयामहं विभो ॥ २ ॥
व्यास उवाच— यद्यदिच्छसि मैत्रेय यावद्यावद्यथा यथा।

पण्डित लोग मनुष्योंके तीन प्रकारके वृत्त वर्णन करते हैं; पुण्य, पाप और पुण्यपातक; इन तीनोंके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, स्वकर्मसे निर्वृत्त पुण्य पापकी भांति ब्रह्मनिष्ठ पुरुषका पुण्यपाप नहीं गिना जाता। यज्ञ, दान तथा तपस्या करनेवाले मनुष्य ही पुण्यात्मा हैं और जो लोग जीवोंके विषयमें द्रोह करते, वेही पापी हैं; जो दूसरेका द्रव्य लेते, वे दुःखी तथा पतित होते हैं; इसके अतिरिक्त अन्य जो सब कर्म हैं, वे न पुण्य हैं और न पापही हैं। क्रीडा करो, वृद्धिवान् हो, आनन्दित रहो, दान और यज्ञ करो, तो वैद्य तथा तपस्वीवृन्द तुम्हें अभिभव करनेमें समर्थ न होंगे। (२३—२७)

अनुशासनपर्वमें १२० अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १२१ अध्याय।

भीष्म बोले, अत्यन्त श्रीसम्पन्न कुलमें उत्पन्न बुद्धिमान, बहुदर्शी, कर्मकी प्रशंसा करनेवाले मैत्रेय ऋषिने ऐसा वचन सुनके उत्तर दिया। (१)

मैत्रेय बोले, हे महाप्राज्ञ! आपने जैसा कहा, वह निःसन्देह वैसा ही है। हे विभु! परन्तु मैं आपकी अनुमतिसे कुछ कहनेकी इच्छा करता हूं। (२)

ब्रूहि तत्त्वं महाप्राज्ञ शुश्रूषे वचनं तव ॥ ३ ॥
मैत्रेय उवाच— निर्दोषं निर्मलं चैवं वचनं दानसंहितम् ।
विद्यातपोभ्यां हि भवान्भावितात्मा न संशयः ॥४॥
भवतो भावितात्मत्वाल्लाभोऽयं सुमहान्मम ।
भूयो बुद्ध्यानुपश्यामि सुसमृद्धतपा इव ॥ ५ ॥
अपि नो दर्शनादेव भवतोऽभ्युदयो भवेत् ।
मन्ये भवत्प्रसादोऽयं तद्धि कर्म स्वभावतः ॥ ६ ॥
तपः श्रुतं च योनिश्चाप्येतद्ब्राह्मण्यकारणम् ।
त्रिभिर्गुणैः समुदितस्ततो भवति वै द्विजः ॥ ७ ॥
अस्मिंस्तृप्ते च तृप्यन्ते पितरो दैवतानि च ।
न हि श्रुतवतां किंचिदधिकं ब्राह्मणादृते ॥ ८ ॥
अन्धं स्यात्तम एवेदं न प्रज्ञायेत किंचन ।
चातुर्वर्ण्यं न वर्तेत धर्माधर्मावृतानृते ॥ ९ ॥
यथा हि सुलभे क्षेत्रे फलं विन्दति मानवः ।
एवं दत्त्वा श्रुतवति फलं दाता समश्नुते ॥ १० ॥

व्यासदेव बोले, हे महाप्राज्ञ मैत्रेय! आप जिस विषयको जहांतक कहनेकी इच्छा करते हैं, उसे यथार्थ रीतिसे कहिये, मैं तुम्हारा वचन सुननेकी अभिलाष करता हूं। (३)

मैत्रेय बोले, दानसम्बन्धीय वचन विद्या और तपस्यासे भी निर्मल है, आपने निःसन्देह आत्मज्ञान लाभ किया है, आपको आत्मज्ञान निबन्धनसे महत् लाभ हुआ है, मैं फिर सुसमृद्ध तपस्यायुक्तकी भांति न्यायबुद्धिसे आलोचना करके देखता हूं, आपके दर्शनसे हम लोगोंका अभ्युदय होता है। ये जो स्वाभाविक कार्य होते हैं, उसे मैं आपकी कृपासे ही हुआ समझता हूं। तपस्या, शास्त्रज्ञान और योनि, ये सभी ब्राह्मणत्वकी हेतु हैं, इन तीनों गुणोंसे समुदित होनेपर पुरुष द्विज हुआ करता है। (४—७)

ब्राह्मणोंके तृप्त होनेपर पितर और देववृन्द तृप्त होते हैं, शास्त्रज्ञानयुक्त ब्राह्मणसे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है; अन्न ही तपस्वरूप है, अन्नके विना कुछ भी मालूम नहीं होता, चारों वर्णोंके विधान, धर्माधर्म और सत्य-मिथ्या कुछ भी नहीं रहते। जैसे मनुष्यको उत्तम रीतिसे जुते हुए खेतमें फल प्राप्त होते हैं, वैसे ही दाता शास्त्र-

ब्राह्मणश्चेन्न विन्देत श्रुतवृत्तोपसंहितः।
प्रतिग्रहीता दानस्य मोघं स्याद्धनिनां धनम् ॥ ११ ॥
अदन्नविद्वान्हन्त्यन्नमद्यमानं च हन्ति तम्।
तं चान्नं पाति यश्चान्नं स हन्ता हन्यतेऽबुधः ॥ १२ ॥
प्रभुर्ह्यन्नमदन्विद्वान्पुनर्जनयतीश्वरः।
स चान्नाज्जायते तस्मात्सूक्ष्म एष व्यतिक्रमः ॥ १३ ॥
यदेव ददतः पुण्यं तदेव प्रतिगृह्णतः।
न ह्येकचक्रं वर्तेत इत्येवमृषयो विदुः ॥ १४ ॥
यत्र वै ब्राह्मणाः सन्ति श्रुतवृत्तोपसंहिताः।
तत्र दानफलं पुण्यमिह चामुत्र चाश्नुते ॥ १५ ॥
ये योनिशुद्धाः सततं तपस्याभिरता भृशम्।
दानाध्ययनसंपन्नास्ते वै पूज्यतमाः सदा ॥ १६ ॥
तैर्हि सद्भिः कृतः पन्थास्तेन यातो न मुह्यते।
ते हि स्वर्गस्य नेतारो यज्ञवाहाः सनातनाः ॥ १७ ॥ [७७६१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे मैत्रेयभिक्षायां एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

सम्पन्न ब्राह्मणोंको दान करनेसे उसका फल भोग किया करता है। (८-१०)

शास्त्रज्ञान और सुचरित्रयुक्त दानका प्रतिग्रहीता ब्राह्मण यदि विद्यमान न रहे, तो धनियोंका धन निरर्थक होता है। अविद्वान् पुरुषके अन्नभक्षण करनेसे अन्नका नाश होता है। और अद्यमान अन्न भी उसे नष्ट करता है। जो अन्नकी रक्षा करता है, उसकी अन्न रक्षा करता है। जो अन्नको नष्ट करता है, वह मूर्ख पुरुष नष्ट होता है। विद्वान् पुरुष ही अन्न भोजन करनेके लिये योग्य हैं, वेही ईश्वर होके अन्न उत्पन्न करते और अन्नसे ईश्वरको उत्पन्न करते हैं; यह विषय अत्यन्त सूक्ष्म है। (११-१३)

दाता को जैसा पुण्य होता है, प्रतिग्रहीताको भी उस ही प्रकार पुण्य हुआ करता है; ऋषियोंने ऐसा कहा है, कि दाता और प्रतिग्रहीता दोनों ही लोकतन्त्र निभाते हैं। शास्त्रज्ञान और सुचरित्रयुक्त ब्राह्मण जिस स्थानमें निवास करते हैं, उसी स्थानमें पवित्र दानका फल इस लोक और परलोकमें भोग किया जाता है। जो लोग शुद्ध-योनिमें उत्पन्न होके सदा तपस्या कर-नेमें रत रहते हैं और जो लोग दान

भीष्म उवाच— एवमुक्तः स भगवान्मैत्रेयं प्रत्यभाषत ।
दिष्ट्यैवं त्वं विजानासि दिष्ट्या ते बुद्धिरीदृशी ॥१॥
लोको ह्यार्यगुणानेव भूयिष्ठं तु प्रशंसति ।
रूपमानवयोमानश्रीमानाश्चाप्यसंशयम् ॥ २ ॥
दिष्ट्या नाभिभवन्ति त्वां दैवस्तेऽयमनुग्रहः ।
यत्ते भृशतरं दानाद्वर्तयिष्यामि तच्छृणु ॥ ३ ॥
यानीहागमशास्त्राणि याश्च काश्चित्प्रवृत्तयः ।
तानि वेदं पुरस्कृत्य प्रवृत्तानि यथाक्रमम् ॥ ४ ॥
अहं दानं प्रशंसामि भवानपि तपःश्रुते ।
तपः पवित्रं वेदस्य तपः स्वर्गस्य साधनम् ॥ ५ ॥
तपसा महदाप्नोति विद्यया चेति नः श्रुतम् ।
तपसैव चापनुदेद्यच्चान्यदपि दुष्कृतम् ॥ ६ ॥
यद्यद्धि किंचित्संधाय पुरुषस्तप्यते तपः ।
सर्वमेतदवाप्नोति विद्यया चेति नः श्रुतम् ॥ ७ ॥

तथा अध्ययनयुक्त हैं, वे सदा पूजने योग्य हैं, उन साधुओंने जो पथ तय्यार किया है, उस ही मार्गमे गमन करनेपर मनुष्य मुग्ध नहीं होता, वे लोग सनातन यज्ञवाह स्वर्गमार्गके प्रदर्शक हैं। (१४—१७)

अनुशासनपर्वमें १२१ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें १२२ अध्याय ।

भीष्म बोले, भगवान् वेदव्यासने मैत्रेयका ऐसा वचन सुनके उत्तर दिया; कि भाग्यसे ही तुम ऐसे ज्ञानवान् हुए हो, भाग्यसेही तुम्हारी ऐसी बुद्धि हुई है, लोग आर्य पुरुषोंके गुणोंकी भली भांति प्रशंसा करते हैं। भाग्यसे ही रूपमान,वयोमान और श्रीमानोंने तुम्हें निःसन्देह अभिभव नहीं किया, यह तुम्हारे ऊपर दैवकी कृपा है। दानसे बढके जो कुछ श्रेष्ठवस्तु है, उसे तुम्हारे समीप कहता हूं। इस लोकमें जो सब आगमशास्त्र तथा जो कुछ प्रवृत्ति हैं, वे वेदको अगाडी करके यथारीतिसे प्रवृत्त हुई हैं। (१—४)

मैं दानकी प्रशंसा किया करता हूं, आप तपस्याज्ञानकी प्रशंसा करते हैं; तपस्या ही पवित्र और तपस्या ही वेद तथा स्वर्गकी साधन है। तपस्या और विद्यासे मनुष्यको महत्त्व मिलता है, मैंने ऐसा सुना है, कि जितने दुष्कृत हैं, वे तपस्यासे नष्ट होते हैं। हमने ऐसा सुना है कि जिस किस पदार्थकी

दुरन्वयं दुष्प्रधर्षं दुरापं दुरतिक्रमम् ।
सर्वं वै तपसाऽभ्येति तपो हि बलवत्तरम् ॥ ८ ॥
सुरापोऽसंमतादायी भ्रूणहा गुरुतल्पगः ।
तपसा तरते सर्वमेनसश्च प्रमुच्यते ॥ ९ ॥
सर्वविद्यस्तु चक्षुष्मानपि यादृशतादृशम् ।
तपस्विनं तथैवाहुस्ताभ्यां कार्यं सदा नमः ॥ १० ॥
सर्वे पूज्याः श्रुतधनास्तथैव च तपस्विनः ।
दानप्रदाः सुखं प्रेत्य प्राप्नुवन्तीह च श्रियम् ॥ ११ ॥
इमं च ब्रह्मलोकं च लोकं च बलवत्तरम् ।
अन्नदानैः सुकृतिनः प्रतिपद्यन्ति लौकिकाः ॥ १२ ॥
पूजिताः पूजयन्त्येते मानिता मानयन्ति च ।
स दाता यत्र यत्रैति सर्वतः संप्रणूयते ॥ १३ ॥
अकर्ता चैव कर्ता च लभते यस्य यादृशम् ।
यदि चोर्ध्वं यद्यधो वा स्वाँल्लोकानभियास्यति ॥ १४ ॥
प्राप्स्यसि त्वन्नपानानि यानि वाञ्छसि कानिचित् ।

इच्छासे पुरुष तपस्या करता है वह पदार्थ तपस्या और विद्या इनके सहारे पाता है। दुरन्वय, दुष्प्रधर्ष, दुष्प्राप्य और दुरतिक्रम जो कुछ विषय हैं, वे सब तपस्यासे प्राप्त होते हैं, इसलिये तपस्या ही बलवान् है। सुरा पीनेवाले, परधनहारी, भ्रूणहत्यारे और गुरुतल्पगामी मनुष्य तपस्याके सहारे सब पापोंसे उत्तीर्ण होते तथा समस्त पापोंसे मुक्त हुआ करते हैं। (५—९)

जो लोग सर्वज्ञ होकर ज्ञाननेत्रसे सब विषयोंको अवलोकन करते हैं और जो लोग किसी प्रकारके तपस्वी हों, उन्हें नमस्कार करना उचित है। शास्त्रज्ञानयुक्त तथा तपस्वी मनुष्य सबके ही पूजनीय हैं; दान देनेवाले मनुष्य इसलोकमें श्रीसम्पन्न होकर परलोकमें सुख पाते हैं। जो लोग यहांपर सुकृत कर्म करते हैं, वे अन्नदानके सहारे इस लोक, ब्रह्मलोक तथा बलवत्तर लोकोंको पाते हैं। पूजित पुरुष इनकी पूजा करते और सम्मानित मनुष्य सम्मान करते हैं; वे दाता पुरुष जिन स्थानोंमें जाते हैं, उन्हीं स्थानोंमें सब भांतिसे प्रशंसित होते हैं। (१०—१३)

चाहे अकर्त्ता हो, चाहे कर्त्ता ही होवे, जिसका जैसा कर्म है, वह वैसा ही फल पाता है। चाहे ऊर्ध्वमें हो, चाहे

मेधाव्यसि कुले जातः श्रुतवाननृशंसवान् ॥ १५ ॥
कौमारचारी व्रतवान्मैत्रेय निरतो भव ।
एतद् गृहाण प्रथमं प्रशस्तं गृहमेधिनाम् ॥ १६ ॥
यो भर्ता वासितातुष्टो भर्तुस्तुष्टा च वासिता ।
यस्मिन्नेवं कुले सर्वं कल्याणं तत्र वर्तते ॥ १७ ॥
अद्भिर्गात्रान्मलमिव तमोऽग्निप्रभया यथा ।
दानेन तपसा चैव सर्वपापमपोहति ॥ १८ ॥
स्वस्ति प्राप्नुहि मैत्रेय गृहान्साधु व्रजाम्यहम् ।
एतन्मनसि कर्तव्यं श्रेय एवं भविष्यति ॥ १९ ॥
तं प्रणम्याथ मैत्रेयः कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
स्वस्ति प्राप्नोतु भगवानित्युवाच कृताञ्जलिः॥ २० ॥ [५७८१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे मैत्रेयभिक्षायां द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

युधिष्ठिर उवाच- सत्स्त्रीणां समुदाचारं सर्वधर्मविदां वर ।
श्रोतुमिच्छाम्यहं त्वत्तस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

अधोभागमें ही होवे, तुम निजलोकमें ही जाओगे और वहां खानेपीनेकी अथवा जो कुछ इच्छा करोगे, उसे ही पाओगे। तुम मेधावी सद्वंशमें उत्पन्न हुए हो, शास्त्रज्ञानसंपन्न, अनृशंसतायुक्त कौमार ब्रह्मचारी और व्रतवान् हो, इसलिये जीवोंके सुहृद बनो; गृहमेधियोंका यह पहला धर्म ग्रहण करो। (१४-१६)

जो पति भार्यासे प्रसन्न रहता है और जो भार्या पतिसे सन्तुष्ट रहती है, जिस कुलमें सब कोई इसी प्रकार हैं, उसी वंशमें कल्याण विद्यमान रहता है। जैसे जलसे शरीर निर्मल रहता है और जिस प्रकार अग्निप्रकाशसे अन्धकार दूर हो जाता है, वैसे ही दान और तपस्यासे सब पाप नष्ट हुआ करते हैं।

हे मैत्रेय ! तुम्हारी स्वस्ति होवे, मैं निजस्थानपर जाता हूं, इस विषयको मनमें रखना, ऐसा करनेसे तुम्हारा कल्याण होगा। अनन्तर मैत्रेयने प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा की और हाथ जोडके बोले, कि " आपको स्वस्ति प्राप्त होवे।" (१७-२०)

अनुशासनपर्वमें १२२ अध्याय समाप्त

अनुशासनपर्वमें १२३ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्वधर्मज्ञ पितामह! मैं आपके समीप सती स्त्रियोंके समुदा-

भीष्म उवाच— सर्वज्ञां सर्वतत्त्वज्ञां देवलोके मनस्विनीम् ।
कैकयी सुमना नाम शाण्डिलीं पर्यपृच्छत ॥ २ ॥
केन वृत्तेन कल्याणि समाचारेण केन वा ।
विधूय सर्वपापानि देवलोकं त्वमागता ॥ ३ ॥
हुताशनशिखेव त्वं ज्वलमाना स्वतेजसा ।
सुता ताराधिपस्येव प्रभया दिवमागता ॥ ४ ॥
अरजांसि च वस्त्राणि धारयन्ती गतक्लमा ।
विमानस्था शुभा भासि सहस्रगुणमोजसा ॥ ५ ॥
न त्वमल्पेन तपसा दानेन नियमेन वा ।
इमं लोकमनुप्राप्ता त्वं हि तत्त्वं वदस्व मे ॥ ६ ॥
इति पृष्टा सुमनया मधुरं चारुहासिनी ।
शाण्डिली निभृतं वाक्यं सुमनामिदमब्रवीत् ॥ ७ ॥
नाहं काषायवसना नापि वल्कलधारिणी ।
न च मुण्डा च जटिला भूत्वा देवत्वमागता ॥ ८ ॥
अहितानि च वाक्यानि सर्वाणि परुषाणि च ।
अप्रमत्ता च भर्तारं कदाचिन्नाहमब्रुवम् ॥ ९ ॥

चार सुननेकी इच्छा करता हूं, इसलिये आप मेरे समीप इस विषयको वर्णन करिये। (१)

भीष्म बोले, सुमना नामी कैकयराजकी पुत्रीने देवलोकमें सर्वज्ञा, सब तत्त्वोंको जाननेवाली मनस्विनी शाण्डिलीसे प्रश्न किया। हे कल्याणि! तुम कैसे चरित्र और कैसे आचारसे देवलोकमें आई हो? तुम अग्निशिखाकी भांति निज तेजसे प्रज्वलित होती हो और ताराधिपकी पुत्रीसदृश अपने प्रभावसे द्युलोकमें आई हो; क्लान्तिहीन होके तुमने रजोरहित श्वेतवस्त्र धारण किया है। हे शुभे! विमानमें रहके अपने तेजके द्वारा तुम्हें सहस्रगुण शोभा प्राप्त हुई है। (२-५)

तुम अल्प तपस्या, दान और नियमके सहारे इस लोकमें नहीं आई हो; इसलिये मुझसे तुम अपना यथार्थ वृत्तान्त कहो। चारुहासिनी शाण्डिलीने सुमनाका ऐसा प्रश्न सुनके मधुर भावसे उत्तर दिया। मैं गेरुआवस्त्र धारण करनेवाली तथा वल्कलधारिणी नहीं हूं, मैंने सिर मुडाने अथवा जटायुक्त होनेसे स्वर्गलोक नहीं पाया; मैंने अप्रमत्त रहके कदाचित पतिको अहित वा कठोर

देवतानां पितॄणां च ब्राह्मणानां च पूजने ।
अप्रमत्ता सदा युक्ता श्वश्रूश्वशुरवर्तिनी ॥ १० ॥
पैशून्ये न प्रवर्तामि न ममैतन्मनोगतम् ।
अद्वारि न च तिष्ठामि चिरं न कथयामि च ॥ ११ ॥
असद्वा हसितं किंचिदहितं वाऽपि कर्मणा ।
रहस्यमरहस्यं वा न प्रवर्तामि सर्वथा ॥ १२ ॥
कार्यार्थे निर्गतं चापि भर्तारं गृहमागतम् ।
आसनेनोपसंयोज्य पूजयामि समाहिता ॥ १३ ॥
यदन्नं नाभिजानाति यद्भोज्यं नाभिनन्दति ।
भक्ष्यं वा यदि वा लेह्यं तत्सर्वं वर्जयाम्यहम् ॥ १४ ॥
कुटुम्बार्थे समानीतं यत्किंचित्कार्यमेव तु ।
प्रातरुत्थाय तत्सर्वं कारयामि करोमि च ॥ १५ ॥
प्रवासं यदि मे याति भर्ता कार्येण केनचित् ।
मङ्गलैर्बहुभिर्युक्ता भवामि नियता तदा ॥ १६ ॥
अञ्जनं रोचनां चैव स्नानं माल्यानुलेपनम् ।

वचन नहीं कहा है । देवताओं, पितरों और ब्राह्मणोंकी पूजामें सदा सावधान रहती सास-ससुरकी सेवा करनेमें सदा नियुक्त रहती थी । (६-१०)

चुगलीके कार्यमें कभी प्रवृत्त नहीं होती थी और न यह मुझे अभिमत है, घरके बाहर कदापि निवास नहीं करती थी और बहुत समयतक किसीके साथ वार्त्तालाप भी नहीं करती थी । किसी असत्कर्म, हांसी अथवा कार्यसे अहित किंवा रहस्य वा अरहस्य किसी विषयमें ही सर्वथा प्रवृत्त नहीं होती थी । कार्यके निमित्त घरसे निकलके फिर जब मेरे पति गृहपर आते थे तब उन्हें बैठाके सावधान होकर उनकी पूजा करती थी। मेरे पति जिस अन्नको उत्तम नहीं जानते और जिसका अभिनन्दन नहीं करते थे, वैसी भक्ष्य वा लेह्य वस्तुओं-को मैं परित्याग करती थी। (११-१४)

परिवारके निमित्त जो कुछ वस्तु लाई जाती तथा जो कुछ कर्त्तव्यकार्य रहता था, भोरके समय उठके मैं स्वयं उन कार्योंको करती तथा दूसरोंसे कराती थी; किसी कार्यसे यदि मेरे पति विदेशमें जाते थे, तो उस समय मैं माङ्गलिक सूत्र धारण करके संयत होके रहती थी । पतिके विदेश जानेपर मैं अञ्जन, महावर, स्नान, मालाधारण,

प्रसाधनं च निष्क्रान्ते नाभिनन्दामि भर्तरि ॥ १७ ॥
नोत्थापयामि भर्तारं सुखसुप्तमहं सदा।
आन्तरेष्वपि कार्येषु तेन तुष्यति मे मनः ॥ १८ ॥
नायासयामि भर्तारं कुटुम्बार्थेऽपि सर्वदा।
गुप्तगुह्या सदा चास्मि सुसंमृष्टनिवेशना ॥ १९ ॥
इमं धर्मपथं नारी पालयन्ती समाहिता।
अरुन्धतीव नारीणां स्वर्गलोके महीयते ॥ २० ॥
भीष्म उवाच—एतदाख्याय सा देवी सुमनायै तपस्विनी।
पतिधर्मं महाभागा जगामादर्शनं तदा ॥ २१ ॥
यश्चेदं पाण्डवाख्यानं पठेत्पर्वणि पर्वणि।
स देवलोकं संप्राप्य नन्दने स सुखी वसेत् ॥ २२ ॥ [५८०३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे शाण्डिलीसुमनासंवादे त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

युधिष्ठिर उवाच-साम्नि चापि प्रदाने च ज्यायः किं भवतो मतम्।
प्रब्रूहि भरतश्रेष्ठ यदत्र व्यतिरिच्यते ॥ १ ॥
भीष्म उवाच-साम्ना प्रसाद्यते कश्चिद्दानेन च तथा परः।

उबटन और प्रसाधनका अभिनन्दन नहीं करती थी। (१५—१७)

पतिके सुखसे शयन करनेपर मैं आन्तरिक कार्य रहनेपर भी उठके उन्हें परित्याग करके नहीं जाती थी, उससे मेरा मन सन्तुष्ट रहता था। कुटुम्बके निमित्त स्वामीको सदा आयासयुक्त नहीं करती थी, गोपनीय विषयोंको गुप्त रखती और सदा हर्षयुक्त रहती थी। जो स्त्री सावधान होकर इस धर्म-पद्धतिको पालन करती है, वह स्त्रियोंके बीच अरुन्धतीकी भांति स्वर्गलोकमें निवास किया करता है। (१८-२०)

भीष्म बोले, महाभागा तपस्विनी शाण्डिली देवी सुमनासे यह पतिधर्म कहके उस समय अन्तर्द्धान हुई। हे पाण्डव! जो लोग प्रतिपर्वमें यह आ-ख्यान पाठ करते हैं, वे देवलोक पाके नन्दनकाननमें सुखी हुआ करते हैं। (२१—२२)

अनुशासनपर्वमें १२३ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १२४ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! साम और दान इन दोनोंमेंसे आपके मतमें कौनसा श्रेष्ठ है? इन दोनोंके बीच जो उत्तम हो, आप उसे ही कहिये (१)

पुरुषप्रकृतिं ज्ञात्वा तयोरेकतरं भजेत् ॥ २ ॥
गुणांस्तु शृणु मे राजन्सान्त्वस्य भरतर्षभ ।
दारुणान्यपि भूतानि सान्त्वेनाराधयेद्यथा ॥ ३ ॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
गृहीत्वा रक्षसा मुक्तो द्विजातिः कानने यथा ॥ ४ ॥
कश्चिद्वाग्बुद्धिसम्पन्नो ब्राह्मणो विजने वने ।
गृहीतः कृच्छ्रमापन्नो रक्षसा भक्षयिष्यता ॥ ५ ॥
स बुद्धिश्रुतिसम्पन्नस्तं दृष्ट्वाऽतीव भीषणम् ।
सामैवास्मिन्प्रयुयुजे न मुमोह न विव्यथे ॥ ६ ॥
रक्षस्तु वाचं संपूज्य प्रश्नं पप्रच्छ तं द्विजम् ।
मोक्ष्यसे ब्रूहि मे प्रश्नं केनासि हरिणः कृशः ॥ ७ ॥
मुहूर्तमथ संचिन्त्य ब्राह्मणस्तस्य रक्षसः ।
आभिर्गाथाभिरव्यग्रः प्रश्नं प्रतिजगाद ह ॥ ८ ॥
ब्राह्मण उवाच—विदेशस्थो विलोकस्थो विना नूनं सुहृज्जनैः ।
विषयानतुलान्भुङ्क्षे तेनासि हरिणः कृशः ॥ ९ ॥

भीष्म बोले, कोई पुरुष सान्त्वनावाक्यसे प्रसन्न होते और कोई दानसे प्रसन्न हुआ करते हैं; इसलिये पुरुषप्रकृतिको मालूम करके साम और दान की सेवा करे। हे भरतश्रेष्ठ! प्रचण्ड प्राणी भी जिस प्रकार सान्त्ववादसे आराधना करते हैं, उस सामवादके समस्त गुण मेरे समीप सुनो। (२–३)

किसी वनमें एक ब्राह्मण राक्षस द्वारा पकडे जानेपर जिस प्रकार छूटा था, इस विषयमें प्राचीन लोग उस ही पुरातन इतिहासको कहा करते हैं। किसी वाग्बुद्धियुक्त ब्राह्मणने वनके बीच भूखे राक्षसके द्वारा पकडे जानेपर क्लेश पाया था; उस बुद्धिशक्तिसे युक्त, शास्त्रज्ञाननिपुण ब्राह्मणने मुग्ध वा व्यथित न होकर अत्यन्त भयङ्कर राक्षसको देखके उसके विषयमें सान्त्ववाक्य प्रयोग किया। राक्षसने उस ब्राह्मणको वचनसे सम्मानित करके कहा, कि मेरे प्रश्नका उत्तर देनेसे तुम्हें छुटकारा मिलेगा। मैं किसलिये पाण्डुवर्ण तथा कृश हुआ हूं? मेरे इस ही प्रश्नका उत्तर दो। अनन्तर ब्राह्मणने मुहूर्त भर सोचके अव्यग्रभावसे इस गाथाके सहारे निशाचरके प्रश्नका उत्तर दिया। (४—८)

ब्राह्मण बोला, तुम विदेशमें रहकर

नूनं मित्राणि ते रक्षः साधूपचरितान्यपि।
स्वदोषादपरज्यन्ते तेनासि हरिणः कृशः ॥ १० ॥
धनैश्वर्याधिकाः स्तब्धास्त्वद्गुणैः परमावराः।
अवजानन्ति नूनं त्वां तेनासि हरिणः कृशः ॥ ११ ॥
गुणवान्विगुणानन्यान्नूनं पश्यसि सत्कृतान्।
प्राज्ञोऽप्राज्ञान्विनीतात्मा तेनासि हरिणः कृशः ॥१२॥
अवृत्त्या क्लिश्यमानोऽपि वृत्त्युपायान्विगर्हयन्।
माहात्म्याद्व्यथसे नूनं तेनासि हरिणः कृशः ॥ १३ ॥
संपीड्यात्मानमार्यत्वात्त्वया कश्चिदुपस्कृतः।
जितं त्वां मन्यते साधो तेनासि हरिणः कृशः ॥१४॥
क्लिश्यमानान्विमार्गेषु कामक्रोधावृतात्मनः।
मन्ये त्वं ध्यायसि जनांस्तेनासि हरिणः कृशः॥१५॥
प्रज्ञासम्भावितो नूनमप्रज्ञैरुपसंहितः।
ह्रीयमाणोऽसि दुर्वृत्तैस्तेनासि हरिणः कृशः ॥ १६ ॥

अन्य स्थानोंमें रहनेवाले सुहृदोंके अतिरिक्त अकेले ही विपुल ऐश्वर्य भोगते हो, इस ही निमित्त पाण्डुवर्ण तथा कृश हुए हो। हे निशाचर! तुम्हारे मित्रगण उत्तम रीतिसे सेवा करनेपर भी निज दोषसे तुम्हारे विषयमें विरक्त हुए हैं, इस ही लिये तुम पाण्डुवर्ण वा कृशित होते हो। समान अथवा अधिक धन ऐश्वर्ययुक्त तथा तुम्हारे गुणोंकी अपेक्षा अत्यन्त निकृष्ट मूर्ख लोग बोध होता है, तुम्हारी अवज्ञा करते हैं, इसीसे तुम पाण्डुवर्ण और कृश हुए हो। बोध होता है, कि तुम गुणवान् होकर अन्य संमानयुक्त मनुष्योंको निर्गुण देखते हो और तुम विनीतचित्त तथा प्राज्ञ होकर अन्य पुरुषोंको मूर्ख जानते हो, इसीसे पीले वा कृश होते हो। मालूम होता है, कि तुम वृत्तिके विना क्लेशित होके भी वृत्तिप्राप्तिकी निन्दा करते हुए महानुभावताके कारण दुःखित होनेसे पीले और दुबले हुए हो। (९–१३)

हे साधु! श्रेष्ठत्वके वशमें होकर आपको पीडित करके कोई पुरुष तुम्हारे द्वारा मरके तुम्हें पराजित समझता है, इसीसे तुम पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। मुझे बोध होता है, कि कामक्रोधके वशमें रहनेवाले पुरुष कुपथमें पडके क्लेश पाते हैं, तुम उनके निमित्त सोच करते हो, इसीसे पाण्डुवर्ण और कृश होते हो मालूम होता है, तुम

नूनं मित्रमुखः शत्रुः कश्चिदार्यवदाचरन् ।
वञ्चयित्वा गतस्त्वां वै तेनासि हरिणः कृशः ॥ १७ ॥
प्रकाशार्थगतिर्नूनं रहस्यकुशलः कृती ।
तज्ज्ञैर्न पूज्यसे नूनं तेनासि हरिणः कृशः ॥ १८ ॥
असत्स्वपि निविष्टेषु ब्रुवतो मुक्तसंशयम् ।
गुणास्ते न विराजन्ते तेनासि हरिणः कृशः ॥ १९ ॥
धनबुद्धिश्रुतैर्हीनः केवलं तेजसाऽन्वितः ।
महत्प्रार्थयसे नूनं तेनासि हरिणः कृशः ॥ २० ॥
तपःप्रणिहितात्मानं मन्ये त्वारण्यकाङ्क्षिणम् ।
बान्धवा नाभिनन्दन्ति तेनासि हरिणः कृशः ॥ २१ ॥
इष्टभार्यस्य ते नूनं प्रातिवेश्यो महाधनः ।
युवा सुललितः कामी तेनासि हरिणः कृशः ॥ २२ ॥
नूनमर्थवतां मध्ये तव वाक्यमनुत्तमम् ।
न भाति कालेऽभिहितं तेनासि हरिणः कृशः ॥ २३ ॥

बुद्धिमान् होके भी मूर्खोंसे मिलकर दुर्वृत्त लोगोंसे ह्रियमाण होनेसे पीले और दुबले हुए हो। बोध होता है, कि मित्रमुख शत्रुने साधुकी भांति आचरण करके तुम्हें ठगा है, इसीसे तुम पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। जान पडता है, तुम प्रकाशार्थ गति और रहस्य विषयमें निपुण तथा कृती होनेपर भी तत्त्वज्ञ पुरुषोंसे पूजित नहीं होते, इसी निमित्त पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। (१४—१८)

अभिनिविष्ट असत् पुरुषोंके निकट तुम्हारे संशयरहित विषयोंके कहनेपरभी तुम्हारे गुणका विकाश नहीं हुआ, उसीसे तुम पाण्डुवर्ण और कृश हुए हो। मालूम होता है, कि तुम धन, बुद्धि और शास्त्रज्ञानसे रहित होके केवल तेजस्वितासे ही महत्पदकी इच्छा करते हो, उसीसे तुम पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। मैं तुम्हें तपस्याके सहारे प्राणिहितचित्त और वनवासका अभिलाषी जानता हूं, बान्धवगण तुम्हें अभिनन्दित नहीं करते हैं, इसीसे तुम पाण्डुवर्ण और कृश हुए हो तुम भार्याके विषयमें प्रीति किया करते हो, कोई तुम्हारा प्रातिवेशी महाधनशाली युवा पुरुष सुन्दर और कामी है, इसीलिये तुम पाण्डुवर्ण और कृश हुए हो।(१९-२२)

अर्थवान् पुरुषोंके बीच यथासमयमें अभिहित तुम्हारा उत्तम वचन शोभित

दृढपूर्वं श्रुतं मूर्खं कुपितं हृदयप्रियम् ।
अनुनेतुं न शक्नोषि तेनासि हरिणः कृशः ॥ २४ ॥
नूनमासञ्जयित्वा त्वां कृत्ये कस्मिंश्चिदीप्सिते ।
कश्चिदर्थयते नित्यं तेनासि हरिणः कृशः ॥ २५ ॥
नूनं त्वां सुगुणैर्युक्तं पूजयानं सुहृद् ध्रुवम् ।
ममार्थ इति जानीते तेनासि हरिणः कृशः ॥ २६ ॥
अन्तर्गतमभिप्रायं नूनं नेच्छसि लज्जया ।
विवेक्तुं प्राप्तिशैथिल्यात्तेनासि हरिणः कृशः ॥ २७ ॥
नानाबुद्धिरुचो लोके मनुष्यान्नूनमिच्छसि ।
ग्रहीतुं स्वगुणैः सर्वांस्तेनासि हरिणः कृशः ॥ २८ ॥
अविद्वान्भीरुरल्पार्थे विद्याविक्रमदानजम् ।
यशः प्रार्थयसे नूनं तेनासि हरिणः कृशः ॥ २९ ॥
चिराभिलषितं किंचित्फलमप्राप्तमेव ते ।
कृतमन्यैरपहृतं तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३० ॥

नहीं हुआ, इस ही निमित्त तुम पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। दृढरूपसे हृदयप्रिय श्रुतपूर्व क्रुद्ध मूर्खको विनयपूर्वक माननेमें समर्थ नहीं हुए, इसीसे तुम पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। मालूम होता है, कि किसी ईप्सित कार्यमें कोई तुम्हें आसक्त करके सदा तुम्हारे समीप प्रार्थना करता है, इस ही हेतु तुम पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। मालूम होता है, तुम्हें सुन्दर गुण युक्त और पूज्यमान जानके कोई सुहृद अपना अर्थज्ञान करता है, इस ही निमित्त तुम पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। भीतरी अभिप्राय रहनेपर भी बोध होता है, कि तुम लज्जापूर्वक अभिप्रेत विषयकी इच्छा नहीं कर सकते, और प्राप्त विषयोंमें शिथिलता निबन्धनसे विचार करनेमें असमर्थ हो, इसीलिये पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। (२३—२७)

जगत्‌में अनेक प्रकारकी बुद्धि और रुचियुक्त मनुष्योंको तुम निज गुणोंके सहारे ग्रहण करनेकी इच्छा करते हो, बोध होता है, इस ही हेतु तुम कृश तथा पाण्डुवर्ण हुए हो। तुम मूर्ख और भीरु होके अल्प धन, विद्या, विश्राम तथा दानसे यशकी इच्छा करते हो, इस ही निमित्त पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। तुमने किसी चिराभिलषित फलको नहीं पाया और अन्य पुरु-

नूनमात्मकृतं दोषमपश्यन्किंचिदात्मनः ।
अकारणेऽभिशस्तोऽसि तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३१ ॥
साधून् गृहस्थान्दृष्ट्वा च तथा साधून्वनेचरान् ।
मुक्तांश्चावसथे सक्तांस्तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३२ ॥
सुहृदां दुःखमार्तानां न प्रमोक्ष्यसि हानिजम् ।
अलमर्थगुणैर्हीनं तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३३ ॥
धर्म्यमर्थ्यं च काम्यं च काले चाभिहितं वचः ।
न प्रतीयन्ति ते नूनं तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३४ ॥
दत्तानकुशलैरर्थान्मनीषी संजिजीविषुः ।
प्राप्य वर्तयसे नूनं तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३५ ॥
पापान्प्रवर्धतो दृष्ट्वा कल्याणानवसीदतः ।
ध्रुवं गर्हयसे नित्यं तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३६ ॥
परस्परविरुद्धानां प्रियं नूनं चिकीर्षसि ।
सुहृदामुपरोधेन तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३७ ॥

षोंने तुम्हारी बुराई की है, इस ही कारण तुम पाण्डुवर्ण और कृश हुए हो। (२८—३०)

बोध होता है, तुम अपने किये हुए दोषोंको न देखकर अकारण ही अभिशप्त होनेसे पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। तुम साधुओंको गृहस्थ, दुष्टोंको वनवासी और मुक्त पुरुषोंको आश्रममें देखके पाण्डुवर्ण तथा कृश होते हो। तुमने सुहृदों और आर्त्त पुरुषोंकी पीडा तथा दुःख दूर नहीं किया, तुम अत्यन्त अर्थहीन और गुणरहित हो, इस ही लिये पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। लोग तुम्हारे यथा समयमें अभिहित धर्म, अर्थ और काममुक्त वचनमें विश्वास नहीं करते मालूम होता है, इस ही लिये तुम पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। (३१—३४)

तुम मनीषी तथा जिज्ञासु होकर अनिपुण लोगोंके द्वारा धन देके उसे पाकर जीविका निर्वाह करते हो, बोध होता है इस ही निमित्त पाण्डुवर्ण और कृश हुए हो। मालूम होता है, कि बुद्धियुक्त मनुष्योंके पाप और अवसन्न मनुष्योंके कल्याणको देखकर तुम सदा निन्दा किया करते हो, इसही लिये पाण्डुवर्ण और कृश हुए हो। तुम सुहृदोंके अनुरोधसे परस्पर विरुद्ध पुरुषोंके प्रियकार्यको करनेकी इच्छा किया करते हो, बोध होता है, इस ही निमित्त पाण्डुवर्ण और कृश हुए हो। तुम श्रो-

श्रोत्रियांश्च विकर्मस्थान्प्राज्ञांश्चाप्यजितेन्द्रियान् ।
मन्येऽनुध्यायसि जनांस्तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३८ ॥
एवं संपूजितं रक्षो विप्रं तं प्रत्यपूजयत् ।
सखायमकरोच्चैनं संयोज्यार्थैर्मुमोच ह ॥ ३९ ॥ [७८४२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे हरिणकृशकाख्याने चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

युधिष्ठिर उवाच जन्म मानुष्यकं प्राप्य कर्मक्षेत्रं सुदुर्लभम् ।
श्रेयोऽर्थिना दरिद्रेण किं कर्तव्यं पितामह ॥ १ ॥
दानानामुत्तमं यच्च देयं यच्च यथा यथा ।
मान्यान्पूज्यांश्च गाङ्गेय रहस्यं वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥
वैशम्पायन उवाच—एवं पृष्टो नरेन्द्रेण पाण्डवेन यशस्विना ।
धर्माणां परमं गुह्यं भीष्मः प्रोवाच पार्थिवम् ॥ ३ ॥
भीष्म उवाच—शृणुष्वावहितो राजन्धर्मगुह्यानि भारत ।
यथा हि भगवान्व्यासः पुरा कथितवान्मयि ॥ ४ ॥
देवगुह्यमिदं राजन्यमेनाक्लिष्टकर्मणा ।

त्रिय पुरुषोंको विकर्मस्थ और ज्ञानियोंको अजितेन्द्रिय समझते हो, मालूम होता है, इस ही निमित्त पाण्डुवर्ण और कृश हुए हो, इसही प्रकार राक्षसने अत्यन्त पूजित होकर उस ब्राह्मण की पूजा करके उसके सङ्ग मित्रता की और बहुतसा धन देके उसे बिदा किया। (३५—३९)

अनुशासनपर्वमें १२४ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १२५ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह गङ्गानन्दन ! अत्यन्त दुर्लभ कर्मक्षेत्रमें मनुष्यजन्म पाके कल्याणकी इच्छा करनेवाले दरिद्र पुरुषोंका जो कर्त्तव्य हो सब दानोंके बीच जो उत्कृष्ट तथा मान्य हो और पूज्य पुरुषोंको जो वस्तु जिस प्रकार देनी योग्य है, आप उस रहस्य विषयको वर्णन करिये। (१—२)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज यशस्वी पाण्डुपुत्रका प्रश्न सुनके भीष्मने उनसे सब धर्मोंका परम गोपनीय विषय कहना आरंभ किया। (३)

भीष्म बोले, हे भरतवंशावतंस महाराज ! पहले समयमें भगवान् व्यासदेव ने मेरे समीप जिन गोपनीय धर्मोंका वर्णन किया था, तुम सावधान होके उसे ही सुनो। हे महाराज ! यह विषय देवताओंके समीप भी गोपनीय है।

नियमस्थेन युक्तेन तपसा महतः फलम् ॥ ५ ॥
येन यः प्रीयते देवः प्रीयन्ते पितरस्तथा ।
ऋषयः प्रमथाः श्रीश्च चित्रगुप्तो दिशां गजाः ॥ ६ ॥
ऋषिधर्मः स्मृतो यत्र सरहस्यो महाफलः ।
महादानफलं चैव सर्वयज्ञफलं तथा ॥ ७ ॥
यश्चैतदेवं जानीयाज्ज्ञात्वा वा कुरुतेऽनघ ।
सदोषोऽदोषवांश्चेह तैर्गुणैः सह युज्यते ॥ ८ ॥
दशसूनासमं चक्रं दशचक्रसमो ध्वजः ।
दशध्वजसमा वेश्या दशवेश्यासमो नृपः ॥ ९ ॥
अर्धेनैतानि सर्वाणि नृपतिः कथ्यतेऽधिकः ।
त्रिवर्गसहितं शास्त्रं पवित्रं पुण्यलक्षणम् ॥ १० ॥
धर्मव्याकरणं पुण्यं रहस्यश्रवणं महत् ।
श्रोतव्यं धर्मसंयुक्तं विहितं त्रिदशैः स्वयम् ॥ ११ ॥
पितॄणां यत्र गुह्यानि प्रोच्यन्ते श्राद्धकर्मणि ।

पहले अक्लिष्टकर्मा यमने नियुक्त होके इसे पाया था। हे अनघ! जिसके सहारे देव, पितर, ऋषि, राक्षसगण, श्री, चित्रगुप्त और सब दिग्गज प्रीतियुक्त होते हैं, जिसमें सरहस्य, महाफलजनक ऋषिधर्म स्मृत हुआ करता है और जिसमें महादान तथा समस्त यज्ञोंके फल स्मृत होते हैं; चाहे लोग दोषयुक्त हों वा निर्दोष होवें, जो इस विषयको जानते हैं अथवा जानके इसका आचरण करते हैं, वे उन सब गुणोंसे युक्त होते हैं। (४—८)

जिस स्थानमें दश पशु मारे जाते हैं, उस स्थान और पशुघाती जातीको दशसूना कहते हैं, एक चक्रवान् तेलिक दशसूनाके तुल्य है, ध्वज अर्थात् सुरा पीनेवाला दश चक्र अर्थात् तेलीके सदृश है, एक वेश्या दश सुरा पीनेवालेके समान है और एक क्षुद्र राजा दशवेश्याके तुल्य है। राजा इन सबको अर्द्धरूपसे तुलना करते हुए अधिक कहा गया है, प्रतिग्रहके निमित्त यह सब तारतम्य वर्णित हुआ करता है। दुष्प्रतिग्रहसे विमुख मनुष्योंको पुण्यलक्षणयुक्त पवित्र धर्मार्थ काम शास्त्रको जानना उचित है; देवताओंके द्वारा विहित हुआ पवित्र धर्मव्याकरण महत् रहस्य और धर्मसंयुक्त आख्यान सुनना चाहिये। (९—११)

श्राद्धकर्ममें जो पितरोंका गुप्त विषय

देवतानां च सर्वेषां रहस्यं कथ्यतेऽखिलम् ॥ १२ ॥
ऋषिधर्मः स्मृतो यत्र सरहस्यो महाफलः ।
महायज्ञफलं चैव सर्वदानफलं तथा ॥ १३ ॥
ये पठन्ति सदा मर्त्या येषां चैवोपतिष्ठति ।
श्रुत्वा च फलमाचष्टे स्वयं नारायणः प्रभुः ॥ १४ ॥
गवां फलं तीर्थफलं यज्ञानां चैव यत्फलम् ।
एतत्फलमवाप्नोति यो नरोऽतिथिपूजकः ॥ १५ ॥
श्रोतारः श्रद्दधानाश्च येषां शुद्धं च मानसम् ।
तेषां व्यक्तं जिता लोकाः श्रद्दधानेन साधुना ॥ १६ ॥
मुच्यते किल्बिषाच्चैव न स पापेन लिप्यते ।
धर्मं च लभते नित्यं प्रेत्य लोकगतो नरः ॥ १७ ॥
कस्यचित्त्वथ कालस्य देवदूतो यदृच्छया ।
स्थितो ह्यन्तर्हितो भूत्वा पर्यभाषत वासवम् ॥ १८ ॥
यौ तौ कामगुणोपेतावश्विनौ भिषजां वरौ ।
आज्ञयाऽहं तयोः प्राप्तः सनरान पितृदेवतान् ॥ १९॥
कस्माद्धि मैथुनं श्राद्धे दातुर्भोक्तुश्च वर्जितम् ।

और समस्त देवताओंका अखिल रहस्य कहा जाता है; जिसमें सरहस्य महाफल-जनक ऋषिधर्म स्मृत होता है। जो मनुष्य इसे पाठ करते हैं, उन्हें महायज्ञ और समस्त दानोंके फल प्राप्त होते और उनके समीप सब शास्त्र पूरी रीतिसे स्फुरित हुआ करते हैं, जो लोग सुनके फल कहते हैं, वे स्वयं नारायण स्वरूप हैं। जो मनुष्य अतिथियोंकी पूजा करते हैं, उन्हें गोदान, तीर्थफल और यज्ञों-का फल मिलता है। (१२-१५)

जो लोग शास्त्र सुनते और श्रद्धायुक्त होके कार्य करते हैं, जिनका अन्तःकरण पवित्र है, उन श्रद्धावान् साधु पुरुषोंके द्वारा सब लोक विजित हो रहे हैं, श्रद्धावान् साधु पुरुष पापोंसे छूट जाते, वे कभी किसी पापमें लिप्त नहीं होते, परलोकमें जानेपर उन्हें सदा धर्म प्राप्त होता है। (१६-१७)

कुछ समयके अनन्तर देवदूत ने अन्तर्हित होके इन्द्रसे पूछा, उस काम गुणसे युक्त भिषग्वर दोनों अश्वि-नीकुमारोंकी आज्ञासे मैं मनुष्यों, पितरों और देवताओंके समीप उपस्थित हुआ हूं; किसलिये श्राद्ध विषयमें कर्त्ता और भोक्ता मैथुनविवर्जित हुए हैं और

किमर्थं च त्रयः पिण्डाः प्रविभक्ताः पृथक् पृथक् ॥२०॥
प्रथमः कस्य दातव्यो मध्यमः क्व च गच्छति ।
उत्तरश्च स्मृतः कस्य एतदिच्छामि वेदितुम् ॥ २१ ॥
श्रद्दधानेन दूतेन भाषितं धर्मसंहितम् ।
पूर्वस्थास्त्रिदशाः सर्वे पितरः पूज्य खेचरम् ॥ २२ ॥
पितर ऊचुः— स्वागतं तेऽस्तु भद्रं ते श्रूयतां खेचरोत्तम ।
गूढार्थः परमः प्रश्नो भवता समुदीरितः ॥ २३ ॥
श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च पुरुषो यः स्त्रियं व्रजेत् ।
पितरस्तस्य तं मासं तस्मिन् रेतसि शेरते ॥ २४ ॥
प्रविभागं तु पिण्डानां प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ।
पिण्डो ह्यधस्ताद्गच्छंस्तु अप आविश्य भावयेत् ॥२५॥
पिण्डं तु मध्यमं तत्र पत्नी त्वेका समश्नुते ।
पिण्डस्तृतीयो यस्तेषां तं दद्याज्जातवेदसि ॥ २६ ॥
एष श्राद्धविधिः प्रोक्तो यथा धर्मो न लुप्यते ।
पितरस्तस्य तुष्यन्ति प्रहृष्टमनसः सदा ॥ २७ ॥

किस लिये तीन पिण्ड पृथक् पृथक् प्रविभक्त हुए हैं । (१८—२०)

पहला पिण्ड किसे देना चाहिये मध्यम पिण्ड किसे मिलता है और पिछला पिण्ड किसके लिये स्मृत हुआ है? इसे मैं जाननेकी इच्छा करता हूं। श्रद्धावान् दूतका यह धर्मसंगत वचन सुनके पूर्व दिशामें स्थित देवताओं और पितरोंने उस खेचरकी पूजा करके कहा । (२१—२२)

पितृगण बोले, हे खेचरोत्तम ! तुमने सुखसे आगमन किया है न ? तुम्हारा मङ्गल हो, तुमने गूढार्थयुक्त परम उत्तम प्रश्न किया है, उसका उत्तर सुनो। जो पुरुष श्राद्ध करके वा श्राद्धमें भोजन करके स्त्रीके समीप जाता है, उसके पितर उस महीनेमें उस ही वीर्यके बीच शयन किया करते हैं। अब तीनों पिण्डोंके विभागको विस्तारके सहित कहता हूं । जो पिण्ड नीचेको गमन करता है, उसे जलमें आविष्ट हुआ जाने, मध्यम पिण्डको पत्नी भोग किया करती है, उनमेंसे जो तीसरा पिण्ड है, उसे अग्निमें डाले, यह धर्मपूर्वक कही गई श्राद्धविधि कदापि लुप्त नहीं होती । जो लोग श्राद्ध करते हैं, उनके पितर प्रसन्नचित्त और सदा सन्तुष्ट रहते हैं, उनकी सन्तान वृद्धि

प्रजा विवर्धते चास्य अक्षयं चोपतिष्ठति ।
देवदूत उवाच— आनुपूर्व्येण पिण्डानां प्रविभागः पृथक् पृथक्॥२८॥
पितॄणां त्रिषु सर्वेषां निरुक्तं कथितं त्वया ।
एकः समुद्धृतः पिण्डो ह्यधस्तात्कस्य गच्छति ॥ २९॥
कं वा प्रीणयते देवं कथं तारयते पितॄन् ।
मध्यमं तु तदा पत्नी भुङ्क्तेऽनुज्ञातमेव हि ॥ ३० ॥
किमर्थं पितरस्तस्य कव्यमेव च भुञ्जते ।
अत्र यस्त्वन्तिमः पिण्डो गच्छते जातवेदसम् ॥ ३१ ॥
भवते का गतिस्तस्य कं वा समनुगच्छति ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं पिण्डेषु त्रिषु या गतिः ॥ ३२ ॥
फलं वृत्तिं च मार्गं च यश्चैनं प्रतिपद्यते ।
पितर ऊचुः— सुमहानेष प्रश्नो वै यस्त्वया समुदीरितः ॥ ३३ ॥
रहस्यमद्भुतं चापि पृष्टाः स्म गगनेचर ।
एतदेव प्रशंसन्ति देवाश्च मुनयस्तथा ॥ ३४ ॥
तेऽप्येवं नाभिजानन्ति पितृकार्यविनिश्चयम् ।
वर्जयित्वा महात्मानं चिरजीविनमुत्तमम् ॥ ३५ ॥

होती तथा उसका धन अक्षय होता है। (२३—२७)

देवदूत बोला, आप लोगोंने विस्तार-पूर्वक क्रमसे सब पिण्डोंके पृथक् पृथक् विभागके विषय कहे और तीनों पिण्डोंमें पितरोंका निरुक्त भी वर्णन किया; एक मात्र समुद्धृत पिण्ड अधःप्रदेशमें किसके समीप जाता है और वह किस प्रकार देवताओंको प्रसन्न करता तथा पितरोंका उद्धार किया करता है? पत्नी अनुज्ञात मध्यम पिण्ड भोजन करती है, पितरगण किस निमित्त उसका कव्य भोग किया करते हैं? इसके बीच जो अन्तिम पिण्ड अग्निके निकट जाता है, उसकी क्या गति होती है और वह किसके निकट गमन किया करता है? तीनों पिण्डोंकी जो गति होती है और पिण्डदाताको जो फलव्यवहार तथा पथ प्राप्त होता है, उसे सुननेकी इच्छा करता हूं। (२८-३२)

पितृगण बोले, हे गगनेचर! तुमने जो प्रश्न किया वह अत्यन्त महत् रहस्ययुक्त और अद्भुत है, हम लोग इससे प्रसन्न हुए हैं, देवता तथा मुनिगण ऐसे ही प्रश्नकी प्रशंसा किया करते हैं, वेभी इसी प्रकार पितृकार्यका विशेष

(पितृभक्तस्तु यो विप्रो वरलब्धो महायशाः ।
त्रयाणामपि पिण्डानां श्रुत्वा भगवतो गतिम् ॥३६॥
देवदूतेन यः पृष्टः श्राद्धस्य विधिनिश्चयः ।)
गतिं त्रयाणां पिण्डानां शृणुष्वावहितो मम ॥ ३७ ॥
अपो गच्छति यो ह्यत्र शशिनं ह्येष प्रीणयेत् ।
शशी प्रीणयते देवान् पितॄंश्चैव महामते ॥ ३८ ॥
भुङ्क्ते तु पत्नी यं चैषामनुज्ञाता तु मध्यमम् ।
पुत्रकामाय पुत्रं तु प्रयच्छन्ति पितामहाः ॥ ३९ ॥
हव्यवाहे तु यः पिण्डो दीयते तन्निबोध मे ।
पितरस्तेन तृप्यन्ति प्रीताः कामान् दिशन्ति च ॥४०॥
एतत्ते कथितं सर्वं त्रिषु पिण्डेषु या गतिः ।
ऋत्विग्यो यजमानस्य पितृत्वमनुगच्छति ॥ ४१ ॥
तस्मिन्नहनि मन्यन्ते परिहार्यं हि मैथुनम् ।
शुचिना तु सदा श्राद्धं भोक्तव्यं खेचरोत्तम ॥ ४२ ॥
ये मया कथिता दोषास्ते तथा स्युर्न चान्यथा ।

निर्णय नहीं जानते । केवल महानुभाव चिरजीवी मार्कण्डेय मुनि जो कि पितृभक्तिसे वर पाके महायशस्वी हुए हैं, उनके अतिरिक्त दूसरे लोग इस विषयको नहीं जानते । भगवान्‌के समीप तीनों पिण्डोंकी गति सुनके देवदूतने श्राद्धविधिके निश्चयमें जो प्रश्न किया था, सावधान होकर मेरे समीपसे उन तीनों पिण्डोंकी गति सुनो।(३३-३७)

जो पिण्ड जलमें समर्पण किया जाता है, वह चन्द्रमाको प्रसन्न करता है । हे महाबुद्धिमान् ! चन्द्रमा, देवताओं और पितरोंको प्रीतियुक्त करते हैं । पुत्र-कामनावाली पत्नी पितरोंकी आज्ञानुसार जो मध्यम पिण्ड भोजन करती है, उससे पितामहगण पुत्र प्रदान किया करते हैं। जो पिण्ड अग्निमें डाला जाता है, उसका विषय सुनो; उससे पितरवृन्द परितृप्त होते और प्रसन्न होके अभिलषित दान किया करते हैं । तीनों पिण्डोंके बीच जैसी गति होती है, वह विषय तुम्हारे समीप कहा गया। श्राद्धभोक्ता ब्राह्मण यजमानके पितृत्वको प्राप्त होता है । (३८—४१)

श्राद्धके दिन मैथुन न करना साधुसम्मत है, हे खेचरोत्तम ! सदा पवित्र होकर श्राद्धभोजन करना चाहिये, मैंने जिन सब दोषोंकी कथा कही है,

तस्मात्स्नातः शुचिः क्षान्तः श्राद्धं भुञ्जीत वै द्विजः॥४३॥
प्रजा विवर्धते चास्य यश्चैवं संप्रयच्छति ।
ततो विद्युत्प्रभो नाम ऋषिराह महातपाः ॥ ४४ ॥
आदित्यतेजसा तस्य तुल्यं रूपं प्रकाशते ।
स च धर्मरहस्यानि श्रुत्वा शक्रमथाब्रवीत् ॥ ४५ ॥
तिर्यग्योनिगतान्सत्त्वान् मर्त्या हिंसन्ति मोहिताः ।
कीटान्पिपीलिकान्सर्पान् मेषान्समृगपक्षिणः॥ ४६ ॥
किल्बिषं सुबहु प्राप्ताः किंस्विदेषां प्रतिक्रिया ।
ततो देवगणाः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः ॥ ४७ ॥
पितरश्च महाभागाः पूजयन्ति स्म तं मुनिम् ।
शुक्र उवाच— कुरुक्षेत्रं गयां गङ्गां प्रभासं पुष्कराणि च ॥ ४८ ॥
एतानि मनसा ध्यात्वा अवगाहेत्ततो जलम् ।
तथा मुच्यति पापेन राहुणा चन्द्रमा यथा ॥ ४९ ॥
त्र्यहं स्नातः स भवति निराहारश्च वर्तते ।
स्पृशते यो गवां पृष्ठं वालधिं च नमस्यति ॥ ५० ॥
ततो विद्युत्प्रभो वाक्यमभ्यभाषत वासवम् ।

वे उस ही प्रकार होते हैं, अन्यथा नहीं होते; इसलिये ब्राह्मण स्नान करके पवित्र और क्षमाशील होकर श्राद्धान्न भोजन करे; जो लोग पूरी रीतिसे इस ही प्रकार अनुष्ठान करते हैं, उनकी प्रजाकी वृद्धि होती है। (४२—४४)

अनन्तर विद्युत्प्रभ नामक महातपस्वी ऋषि जिनका रूप सूर्यके तेज-सदृश प्रकाशमान था, वह धर्मरहस्योंको सुनके देवराजसे बोले, मनुष्य मोहित होकर तिर्यक्योनिके समस्त कीट, चींटी, सर्प, भेडे, मृग और पक्षियोंकी हिंसा किया करते हैं, इस कार्यमें वे लोग अत्यन्त ही पापभाजन होते हैं, इसलिये इन लोगोंकी प्रतिक्रिया किस प्रकार होसकती है ? अनन्तर देवताओं, तपस्वियों, ऋषियों और महाभाग पितरोंने उस मुनिकी पूजा की। (४५-४८)

इन्द्र बोले, कुरुक्षेत्र, गया, गङ्गा, प्रभास और पुष्कर प्रभृति सब तीर्थोंका मनही मन ध्यान करके अन्तमें जलसे स्नान करनेपर पुरुष इस प्रकार पापोंसे छूट जाता है, जैसे राहुके मुखसे चन्द्रमा मुक्त हुआ करता है, वह मनुष्य तीन दिन स्नान करके निराहारी रहे और गौओंकी पीठ स्पर्श करके वालधीको

अयं सूक्ष्मतरो धर्मस्तं निबोध शतक्रतो ॥ ५१ ॥
घृष्टो वटकषायेण अनुलिप्तः प्रियङ्गुणा ।
क्षीरेण षाष्टिकान्भुक्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५२ ॥
श्रूयतां चापरं गुह्यं रहस्यमृषिचिन्तितम् ।
श्रुतं मे भाषमाणस्य स्थाणोः स्थाने बृहस्पतेः ॥ ५३ ॥
रुद्रेण सह देवेश तन्निबोध शचीपते ।
पर्वतारोहणं कृत्वा एकपादो विभावसुम् ॥ ५४ ॥
निरीक्षेत निराहार ऊर्ध्वबाहुः कृताञ्जलिः ।
तपसा महता युक्त उपवासफलं लभेत् ॥ ५५ ॥
रश्मिभिस्तापितोऽर्कस्य सर्वपापमपोहति ।
ग्रीष्मकालेऽथवा शीते एवं पापमपोहति ॥ ५६ ॥
ततः पापात्प्रमुक्तस्य द्युतिर्भवति शाश्वती ।
तेजसा सूर्यवद्दीप्तो भ्राजते सोमवत्पुनः ॥ ५७ ॥
मध्ये त्रिदशवर्गस्य देवराजः शतक्रतुः ।
उवाच मधुरं वाक्यं बृहस्पतिमनुत्तमम् ॥ ५८ ॥
धर्मगुह्यं तु भगवन्मानुषाणां सुखावहम् ।

नमस्कार करे। (४८—५०)

अनन्तर विद्युत्प्रभने इन्द्रसे कहा, हे देवराज ! यह अत्यन्त सूक्ष्म धर्म है, इसलिये इसे सुनो। वटजटाकषाय द्वारा घृष्ट और प्रियङ्गुसे अनुलिप्त होकर मनुष्य क्षीरके सहित साठ रात्रितक पके धान्यको भक्षण करनेसे सब पापोंसे रहित होता है, ऋषियोंका विचारा हुआ और एक गोपनीय रहस्य सुनो। इसे मैंने महादेवके समीप उनके सङ्ग वार्त्तालाप करते हुए बृहस्पतिके मुखसे सुना है, हे देवेश शचीपति ! तुम उसे सुनो, मनुष्य पहाडपर चढके एक पांवसे स्थित होकर निराहारी, ऊर्ध्वबाहु तथा हाथ जोडके सूर्यको देखे। इस ही प्रकार महत् तपस्यायुक्त पुरुष उपवासका फल पाता है और सूर्यकिरणोंसे परितापित होकर पापोंसे रहित होता है, ग्रीष्मकाल और शीतके समय ऐसा आचरण करनेसे सब पाप नष्ट होते हैं। (५१-५६)

अनन्तर पापहीन पुरुषोंकी शाश्वती द्युति हुआ करती है, तब वे निज तेज से सूर्यकी भांति प्रकाशित होके फिर चन्द्रमा समान शोभित होते हैं। अनन्तर देवताओंके बीच देवराज शतक्रतु

सरहस्यांश्च ये दोषास्तान्यथावदुदीरय ॥ ५९ ॥
बृहस्पतिरुवाच– प्रतिमेहन्ति ये सूर्यमनिलं द्विषते च ये।
हव्यवाहे प्रदीप्ते च समिधं ये न जुह्वति ॥ ६० ॥
बालवत्सां च ये धेनुं दुहन्ति क्षीरकारणात्।
तेषां दोषान्प्रवक्ष्यामि तान्निबोध शचीपते ॥ ६१ ॥
भानुमाननिलश्चैव हव्यवाहश्च वासव।
लोकानां मातरश्चैव गावः सृष्टाः स्वयम्भुवा ॥ ६२ ॥
लोकांस्तारयितुं शक्ता मर्त्येष्वेतेषु देवताः।
सर्वे भवन्तः शृण्वन्तु एकैकं धर्मनिश्चयम् ॥ ६३ ॥
वर्षाणि षडशीतिं तु दुर्वृत्ताः कुलपांसनाः।
स्त्रियः सर्वाश्च दुर्वृत्ताः प्रतिमेहन्ति या रविम् ॥ ६४ ॥
अनिलद्वेषिणः शक्र गर्भस्था च्यवते प्रजा।
हव्यवाहस्य दीप्तस्य समिधं ये न जुह्वति ॥ ६५ ॥
अग्निकार्येषु वै तेषां हव्यं नाश्नाति पावकः।
क्षीरं तु बालवत्सानां ये पिबन्तीह मानवाः ॥ ६६ ॥
न तेषां क्षीरपाः केचिज्जायन्ते कुलवर्धनाः।

बृहस्पतिसे अत्युत्तम मधुर वचन बोले, मनुष्योंके गोपनीय धर्म और रहस्यके सङ्ग जो सब दोष हैं, उसे आप यथावत् वर्णन करिये। (५७—५९)

बृहस्पती बोले, हे शचिपति! जो लोग सूर्यकी ओर मलमूत्र परित्याग करते, वायुके विषयमें द्वेष करते, जलती हुई अग्निमें समिध होम नहीं करते, जो लोग दूधके निमित्त बालवत्सा गऊ दूहते हैं, उनके दोषोंको कहता हूं, सुनो। हे इन्द्र! सूर्य, वायु, अग्नि और लोकमाता गौवोंको ब्रह्माने उत्पन्न किया है, ये सब देववृन्द तथा मनुष्योंके परित्राण करनेमें समर्थ हैं। आप सब कोई एक एक धर्मनिश्चय सुनिये। जो सब दुर्वृत्त पुरुष और दुर्वृत्ता स्त्रियें सूर्यकी ओर मल मूत्र परित्याग करती हैं, वे छियासी वर्ष कुलपांशन हुआ करती हैं। (६०-६४)

हे देवराज! जो लोग वायुमे द्वेष करते हैं उनकी गर्भस्थ प्रजा च्युत होती है। जो लोग महाप्रदीप्त अग्निमें समिध होम नहीं करते, उनके अग्निकार्यमें पावकदेवता हव्य भक्षण नहीं करते। इस लोकमें जो मनुष्य बालवत्सा गौवोंका दूध पीता है, उसके दुग्धपोष्य

प्रजाक्षयेण युज्यन्ते कुलवंशक्षयेण च ॥ ६७ ॥
एवमेतत्पुरा दृष्टं कुलवृद्धैर्द्विजातिभिः ।
तस्माद्वर्ज्यानि वर्ज्यानि कार्यं कार्यं च नित्यशः ॥ ६८ ॥
भूतिकामेन मर्त्येन सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ।
ततः सर्वा महाभाग देवताः समरुद्गणाः ॥ ६९ ॥
ऋषयश्च महाभागाः पृच्छन्ति स्म पितॄंस्ततः ।
पितरः केन तुष्यन्ति मर्त्यानामल्पचेतसाम् ॥ ७० ॥
अक्षयं च कथं ज्ञानं भवत्यैवौर्ध्वदेहिकम् ।
आनृण्यं वा कथं मर्त्या गच्छेयुः केन कर्मणा ॥ ७१ ॥
एतदिच्छामहे श्रोतुं परं कौतूहलं हि नः ।
पितर ऊचुः— न्यायतो वै महाभागाः संशयः समुदाहृतः ॥७२॥
श्रूयतां येन तुष्यामो मर्त्यानां साधुकर्मणाम् ।
नीलषण्डप्रमोक्षेण अमावास्यां तिलोदकैः ॥ ७३ ॥
वर्षासु दीपकश्चैव पितॄणामनृणो भवेत् ।
अक्षयं निर्व्यलीकं च दानमेतन्महाफलम् ॥ ७४ ॥

कुलवर्द्धन सन्तान नहीं जन्मती। इसलिये प्रजाक्षय निबन्धनसे उसका कुल और वंश नष्ट होता है, कुलवृद्ध द्विजातियोंने पहले समयमें इसे देखा था; इसलिये मैं सत्य कहता हूं, कि ऐश्वर्यकी इच्छा करनेवाला मनुष्य त्यागनेयोग्य विषयोंको परित्याग करे और कर्त्तव्य विषयोंका अनुष्ठान करनेमें सदा यत्नवान् रहे। (६५—६९)

अनन्तर मरुद्गणके सहित देवताओं और महाभाग ऋषियोंने पितरोंसे प्रश्न किया, कि अल्पबुद्धिवाले मनुष्योंके किन कार्योंसे पितर लोग प्रसन्न होते हैं और उर्ध्वदैहिक दान किस प्रकार अक्षय होता है? मनुष्य लोग कैसे कार्यों द्वारा पितरोंके अऋण होते हैं, इसे हम लोग सुननेकी इच्छा करते हैं; इस विषयमें हम लोगोंको अत्यन्त कौतूहल हुआ है। (६९—७२)

पितृगण बोले, हे महाभाग! आप लोगोंने न्यायपूर्वक यह सन्देहका विषय पूछा है, उत्तम कार्य करनेवाले मनुष्योंके जिन कर्मोंसे हम लोग प्रसन्न होते हैं, उसे सुनो। मनुष्य अमावस्या तिथिमें काले रङ्गका वृषभ छोडके तिलोदकसे तर्पण करे और वर्षाकालमें दीपकदान करनेसे पितरोंके निकट अऋण, निर्व्यलीक और महाफलदायक है, इससे

अस्माकं परितोषश्च अक्षयः परिकीर्त्यते।
श्रद्दधानाश्च ये मर्त्या आहरिष्यन्ति संततिम् ॥ ७५ ॥
दुर्गात्ते तारयिष्यन्ति नरकात्प्रपितामहान्।
पितॄणां भाषितं श्रुत्वा हृष्टरोमा तपोधनः ॥ ७६ ॥
वृद्धगार्ग्यो महातेजास्तानेवं वाक्यमब्रवीत्।
के गुणा नीलषण्डस्य प्रमुक्तस्य तपोधनाः ॥ ७७ ॥
वर्षासु दीपदानेन तथैव च तिलोदकैः।
पितर ऊचुः— नीलषण्डस्य लाङ्गूलं तोयमभ्युद्धरेद्यदि ॥ ७८ ॥
षष्टिं वर्षसहस्राणि पितरस्तेन तर्पिताः।
यस्तु शृङ्गगतं पङ्कं कूलादुद्धृत्य तिष्ठति ॥ ७९ ॥
पितरस्तेन गच्छन्ति सोमलोकमसंशयम्।
वर्षासु दीपदानेन शशिवच्छोभते नरः ॥ ८० ॥
तमोरूपं न तस्यास्ति दीपकं यः प्रयच्छति।
अमावास्यां तु ये मर्त्याः प्रयच्छन्ति तिलोदकम् ॥ ८१ ॥
पात्रमौदुम्बरं गृह्य मधुमिश्रं तपोधन।
कृतं भवति तैः श्राद्धं सरहस्यं यथार्थवत् ॥ ८२ ॥
हृष्टपुष्टमनास्तेषां प्रजा भवति नित्यदा।

हम लोगोंको सन्तोष होता है, इसीसे यह अक्षय रूपसे वर्णित हुआ है। जो मनुष्य श्रद्धावान होकर सन्तान उत्पन्न करते हैं, वे प्रपितामहगणको दुर्गम नरकसे उद्धार किया करते हैं। महा-तेजस्वी तपस्वी गर्ग पितरोंका वचन सुनके पुलकित होकर उनसे बोले, हे तपोधनगण! नीलवर्ण वृषभ छोडने, वर्षाकालमें दीपदान करने तथा तिलो-दकसे तर्पण करनेसे क्या फल होता है? (७२—७८)

पितृगण बोले, काले बैलकी पूंछसे यदि जल उठे, तो उससे पितृगण साठ हजार वर्षतक तृप्त हुआ करते हैं। यदि वृषभ तटसे शृङ्गगत कीचड उद्धार करके स्थित हो, तो पितरगण उसके सहारे निःसंदेह सोमलोकमें गमन करते हैं। वर्षाकालमें दीप दान करनेसे मनुष्य चन्द्रमाकी भांति शोभित होता है, जो लोग दीपक दान करते हैं, वे तमोरूप नहीं होते। हे तपोधन! जो मनुष्य अमावस्या तिथिमें उदुम्बरपात्रसे मधुयुक्त तिलोदक दान करते हैं, उनका यथार्थमें रहस्यके सहित श्राद्धकार्य

कुलवंशस्य वृद्धिस्तु पिण्डदस्य फलं भवेत् ॥
श्रद्दधानस्तु यः कुर्यात्पितॄणामनृणो भवेत् ॥ ८३ ॥
एवमेष समुद्दिष्टः श्राद्धकालक्रमस्तथा ।
विधिः पात्रं फलं चैव यथावदनुकीर्तितम् ॥ ८४ ॥ [५९१६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पितृरहस्यं नामपञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

भीष्म उवाच- केन ते च भवेत्प्रीतिः कथं तुष्टिं तु गच्छसि ।
इति पृष्टः सुरेन्द्रेण प्रोवाच हरिरीश्वरम् ॥ १ ॥
विष्णुरुवाच— ब्राह्मणानां परीवादो मम विद्वेषणं महत् ।
ब्राह्मणैः पूजितैर्नित्यं पूजितोऽहं न संशयः ॥ २ ॥
नित्याभिवाद्या विप्रेन्द्रा भुक्त्वा पादौ तथाऽऽत्मनः ।
तेषां तुष्यामि मर्त्यानां यश्चक्रे च बलिं हरेत् ॥ ३ ॥
वामनं ब्राह्मणं दृष्ट्वा वराहं च जलोत्थितम् ।
उद्धृतां धरणीं चैव मूर्ध्ना धारयते तु यः ॥ ४ ॥
न तेषामशुभं किंचित्कल्मषं चोपपद्यते ।

सिद्ध होता है, उनकी सन्तान सदा हर्षचित्त हुआ करती है। पिण्डदाताको कुल और वंश वृद्धिरूपी फल प्राप्त होता है, जो लोग श्रद्धावान् होके श्राद्ध करते हैं, वे पितरोंके समीप अऋण होते हैं, इस ही प्रकार श्राद्धका समय और श्राद्धकी विधि निर्दिष्ट हुई है, इसलिये विधि, पात्र और फल पूरी रीतिसे कही गई (७८—८४)

अनुशासनपर्वमें १२५ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १२६ अध्याय।

भीष्म बोले, अनन्तर देवराजने विष्णुसे पूछा, कि किन कार्योंसे आप प्रसन्न होते और किस प्रकार आपको सन्तोष होता है (१)

विष्णु बोले, ब्राह्मणोंका परिवाद मुझे अत्यन्त ही विद्विष्ट है, ब्राह्मणोंके सदा पूजित होनेपर मैं निःसन्देह पूजित होता हूं। ब्राह्मण लोग सदा प्रणाम करनेके योग्य हैं, भोजनके अनन्तर सन्ध्याके समय शिष्टाचारके हेतु आपने दोनों पग अभिवादनीय हैं, जो मनुष्य गोमयसे लीपकर सुदर्शन मन्त्रके द्वारा पूजा करते हैं, मैं उन सब मनुष्योंके विषयमें प्रसन्न होता हूं। (१—३)

वामन ब्राह्मण और जलसे निकले हुए वराहको देखके जो उद्धृत धरणी सिरपर रखते हैं, उन्हें कोई अशुभ वा

अश्वत्थं रोचनां गां च पूजयेद्यो नरः सदा ॥ ५ ॥
पूजितं च जगत्तेन सदेवासुरमानुषम्।
तेन रूपेण तेषां च पूजां गृह्णामि तत्त्वतः ॥ ६ ॥
पूजा ममैषा नास्त्यन्या यावल्लोकाः प्रतिष्ठिताः।
अन्यथा हि वृथा मर्त्याः पूजयन्त्यल्पबुद्धयः ॥ ७ ॥
नाहं तत्प्रतिगृह्णामि न सा तुष्टिकरी मम ॥ ८ ॥
इन्द्र उवाच— चक्रं पादौ वराहं च ब्राह्मणं चापि वामनम्।
उद्धृतां धरणीं चैव किमर्थं त्वं प्रशंससि ॥ ९ ॥
भवान्सृजति भूतानि भवान्संहरति प्रजाः।
प्रकृतिः सर्वभूतानां समर्त्यानां सनातनी ॥ १० ॥
भीष्म उवाच— संप्रहस्य ततो विष्णुरिदं वचनमब्रवीत्।
चक्रेण निहता दैत्याः पद्भ्यां क्रान्ता वसुन्धरा ॥ ११ ॥
वाराहं रूपमास्थाय हिरण्याक्षो निपातितः।
वामनं रूपमास्थाय जितो राजा मया बलिः ॥ १२ ॥
परितुष्टो भवाम्येवं मानुषाणां महात्मनाम्।
तन्मां ये पूजयिष्यन्ति नास्ति तेषां पराभवः ॥ १३ ॥

पाप नहीं होता। जो मनुष्य सदा अश्वत्थ और रोचना गऊकी पूजा करता है, उसके द्वारा देव, असुर तथा मनुष्योंके सहित समस्त जगत् पूजित होता है, मैं अपना रूप प्रकाशित करके यथार्थ रीतिसे उसकी पूजा ग्रहण करता हूं। जबतक सब लोग प्रतिष्ठित रहते हैं, तबतक यह मेरीही पूजा है, दूसरेकी न जानना; अल्पबुद्धि मनुष्य इसे अन्यथा समझकर वृथा पूजा किया करते हैं, मैं उसे प्रतिग्रह नहीं करता, वह मुझे सन्तुष्ट नहीं करती। (४—८)

इन्द्र बोले, चक्र, दोनों चरण, वराह, वामन ब्राह्मण और उद्धृत धरणीकी आप किसलिये प्रशंसा करते हैं? आपने सब जीवोंको उत्पन्न किया है, आप ही सब प्राणियोंका संहार करते हैं, आप ही सब जीवों और मनुष्योंकी सनातनी प्रकृति हैं। (९—१०)

भीष्म बोले, अनन्तर विष्णुने हंसके यह वचन कहा, कि चक्रसे दैत्यदलका नाश हुआ है और पदसे वसुन्धरा आक्रान्त हुई थी, वराह रूप धरके मैंने हिरण्याक्ष दैत्यको मारा और वामनरूप धरके राजा बलिको जय किया था; इसलिये मैं इस ही प्रकार महानुभाव

अपि वा ब्राह्मणं दृष्ट्वा ब्रह्मचारिणमागतम् ।
ब्राह्मणाग्न्याहुतिं दत्त्वा अमृतं तस्य भोजनम् ॥१४॥
ऐन्द्रीं सन्ध्यामुपासित्वा आदित्याभिमुखः स्थितः ।
सर्वतीर्थेषु स स्नातो मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ १५ ॥
एतद्वः कथितं गुह्यमखिलेन तपोधनाः ।
संशयं पृच्छमानानां किं भूयः कथयाम्यहम् ॥ १६ ॥
बलदेव उवाच- श्रूयतां परमं गुह्यं मानुषाणां सुखावहम् ।
अजानन्तो यदबुधाः क्लिश्यन्ते भूतपीडिताः ॥ १७ ॥
कल्य उत्थाय यो मर्त्यः स्पृशेद्गां वै घृतं दधि ।
सर्षपं च प्रियङ्गुं च कल्मषात्प्रतिमुच्यते ॥ १८ ॥
भूतानि चैव सर्वाणि अग्रतः पृष्ठतोऽपि वा ।
उच्छिष्टं वाऽपि च्छिद्रेषु वर्जयन्ति तपोधनाः॥ १९ ॥
देवा ऊचुः— प्रगृह्योदुम्बरं पात्रं तोयपूर्णं उदङ्मुखः ।
उपवासं तु गृह्णीयाद्यद्वा संकल्पयेद् व्रतम् ॥ २० ॥
देवतास्तस्य तुष्यन्ति कामिकं चापि सिध्यति ।

मनुष्योंके विषयमें प्रसन्न होता हूं, जो लोग मेरी पूजा करते हैं, उनकी पराभव नहीं होती । ब्राह्मण वा ब्रह्मचारीको आया हुआ देखके अगाडी ब्राह्मणको आहुति प्रदान करनेसे उसका अमृत भोजन होता है । जो लोग सूर्यकी ओर मुख करके प्रातःसन्ध्या उपासना करते हैं, उन्हें सब तीर्थोंके स्नानका फल प्राप्त होता और वे सब पापोंसे छूट जाते हैं । हे तपोधनगण ! आप लोगोंने जो सन्देहयुक्त होके प्रश्न किया था, उसका गुप्त विषय कहा गया, फिर क्या कहूं ? (११–१६)

बलदेव बोले, मनुष्योंको सुख देनेवाला परम गुह्य विषय सुनो; जिसे मूढ लोग न जाननेसे प्राणियोंके द्वारा पीडित होके क्लेश पाते हैं । भोरके समय उठके जो मनुष्य गऊ, घृत, दही, सरसों और प्रियङ्गुफल स्पर्श करते हैं, वे पापरहित हुआ करते हैं । तपस्वी लोग अगाडी और पश्चात् भागमें समस्त प्राणियों तथा छिद्र विषयक उच्छिष्टको परित्याग करते हैं।(१७–१९)

देववृन्द बोले, उत्तर दिशाकी ओर मुंह करके जल भरे उदुम्बर पात्र लेकर जो मनुष्य व्रतसंकल्प तथा उपवास करता है, उससे देवता लोग प्रसन्न होते और उसकी कामना सिद्ध

अन्यथा हि वृथा मर्त्याः कुर्वते स्वल्पबुद्धयः ॥ २१ ॥
उपवासे बलौ चापि ताम्रपात्रं विशिष्यते ।
बलिर्भिक्षा तथाऽर्घ्यं च पितॄणां च तिलोदकम् ॥२२॥
ताम्रपात्रेण दातव्यमन्यथाऽल्पफलं भवेत् ।
गुह्यमेतत्समुद्दिष्टं यथा तुष्यन्ति देवताः ॥ २३ ॥
धर्म उवाच— राजपौरुषिके विप्रे घाण्टिके परिचारिके ।
गोरक्षके वाणिजके तथा कारुकुशीलवे ॥ २४ ॥
मित्रद्रुह्यनधीयाने यश्च स्याद् वृषलीपतिः ।
एतेषु दैवं पित्र्यं वा न देयं स्यात्कथंचन ॥ २५ ॥
पिण्डदास्तस्य हीयन्ते न च प्रीणाति वै पितॄन् ।
अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ॥ २६ ॥
पितरस्तस्य देवाश्च अग्नयश्च तथैव हि ।
निराशाः प्रतिगच्छन्ति अतिथेरप्रतिग्रहात् ॥ २७ ॥
स्त्रीघ्नैर्गोघ्नैः कृतघ्नैश्च ब्रह्मघ्नैर्गुरुतल्पगैः ।
तुल्यदोषो भवत्येभिर्यस्यातिथिरनर्चितः ॥ २८ ॥
अग्निरुवाच— पादमुद्यम्य यो मर्त्यः स्पृशेद्गाश्च सुदुर्मतिः ।

होती है, इसके विपरीत मूर्ख लोग वृथा उपवास करते हैं। उपवास और पूजाके कार्यमें ताम्रपात्र श्रेष्ठ है। ताम्रपात्रसे ही बलि, भिक्षा, अर्घ और पितरोंको तिलोदक देना योग्य है, अन्यथा करनेसे अल्प फल होता है। देववृन्द जिस प्रकार प्रसन्न होते हैं, वह गुप्त विधि वर्णित हुई। (२०-२३)

धर्म बोले, राजपुरुषोंके कार्य करनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मण, घण्टा बजानेवाले सेवक, गोरक्षक, वाणिज्य करनेवाले, कारुकुशीलव, मित्रद्रोही, अपढ और वृषलीपतिको देव तथा पितृकार्यमें किसी प्रकार दान देना उचित नहीं है, उन्हें दान देनेसे पिण्डदाताकी हीनता होती है और वह पितरोंको प्रसन्न नहीं कर सकता। अतिथि आशारहित होकर जिसके घरसे लौट जाता है; उसके पितर, देवता और तीनों अग्नि अतिथिके अप्रतिग्रह निबन्धनसे निराश होकर उसके गृहसे प्रस्थान करते हैं। जिसके गृहपर आके अतिथि अपूजित होकर चला जाता है, वह स्त्रीघ्न, गोघ्न, कृतघ्न, ब्रह्मघाती और गुरुतल्पग पुरुषके सदृश दोषभागी होता है। (२४—२८)

अग्निदेव बोले, जो नीचबुद्धि मनुष्य

ब्राह्मणं वा महाभागं दीप्यमानं तथाऽनलम् ॥ २९ ॥
तस्य दोषान्प्रवक्ष्यामि तच्छृणुध्वं समाहिताः।
दिवं स्पृशत्यशब्दोऽस्य त्रस्यन्ति पितरश्च वै ॥ ३० ॥
वैमनस्यं च देवानां कृतं भवति पुष्कलम्।
पावकश्च महातेजा हव्यं न प्रतिगृह्णति ॥ ३१ ॥
आजन्मनां शतं चैव नरके पच्यते तु सः।
निष्कृतिं च न तस्यापि अनुमन्यन्ति कर्हिचित् ॥३२॥
तस्माद्गावो न पादेन स्प्रष्टव्या वै कदाचन।
ब्राह्मणश्च महातेजा दीप्यमानस्तथाऽनलः ॥ ३३ ॥
श्रद्दधानेन मर्त्येन आत्मनो हितमिच्छता।
एते दोषा मया प्रोक्तास्त्रिषु यः पादमुत्सृजेत् ॥ ३४ ॥
विश्वामित्र उवाच– श्रूयतां परमं गुह्यं रहस्यं धर्मसंहितम्।
परमान्नेन यो दद्यात्पितॄणामौपहारिकम् ॥ ३५ ॥
गजच्छायायां पूर्वस्यां कुतपे दक्षिणामुखः।
यदा भाद्रपदे मासि भवते बहुले मघा ॥ ३६ ॥

पैरसे गौवों, महाभाग ब्राह्मणों और दीप्यमान अग्निको छूते हैं, उनके दोषोंको कहता हूं, सुनो। जो पुरुष ऐसा कार्य करता है, उसका नाम-वाचक शब्द स्वर्गको स्पर्श नहीं करता, उसके पितर भयभीत होते हैं और उससे देवताओंकी अधिक अप्रसन्नता होती है; महातेजस्वी अग्निदेव उसका हव्य ग्रहण नहीं करते। वह एकसौ जन्म नरकमें पडता है, किसी स्थानमें भी उसकी निष्कृति नहीं है; इसलिये गौओंको कदापि पांवसे छूना उचित नहीं है और महातेजस्वी ब्राह्मणों तथा दीप्यमान अग्निको पैरसे स्पर्श न करना चाहिये। जो श्रद्धावान् मनुष्य अपने हितकी कामना करें, वे गऊ, ब्राह्मण और अग्निको पांवसे स्पर्श न करें। जो पुरुष इन तीनोंको पैरसे छूता है, उसके विषयमें ये सब उपरोक्त दोष मेरे द्वारा वर्णित हुए। (२९-३४)

विश्वामित्र बोले, धर्मविषय सम्बन्धीय परम गोपनीय रहस्य सुनो। भादों महीनेके कृष्णपक्षमें मघा नक्षत्रकी त्रयोदशी तिथिमें गजच्छाया योग होनेपर जो लोग दक्षिण ओर मुंह करके कुतपके समय परम अन्नसे पितरोंकी पूजा करते हैं, उस दानसे जैसा अधिक फल होता है, उसे सुनो। पूर्वोक्त रीतिसे जो लोग

श्रूयतां तस्य दानस्य यादृशो गुणविस्तरः ।
कृतं तेन महच्छ्राद्धं वर्षाणीह त्रयोदश ॥ ३७ ॥
गाव ऊचुः— बहुले समङ्गे ह्यकुतोभये च क्षेमे च सख्येव हि भूयसी च ।
यथा पुरा ब्रह्मपुरे सवत्सा शतक्रतोर्वज्रधरस्य यज्ञे ॥३८॥
भूयश्च या विष्णुपदे स्थिता या विभावसोश्चापि पथे स्थिता या ।
देवाश्च सर्वे सह नारदेन प्रकुर्वते सर्वसहेति नाम ॥ ३९ ॥
मंत्रेणैतेनाभिवन्देत यो वै विमुच्यते पापकृतेन कर्मणा ।
लोकानवाप्नोति पुरन्दरस्य गवां फलं चन्द्रमसो द्युतिं च ॥ ४० ॥
एतं हि मन्त्रं त्रिदशाभिजुष्टं पठेत यः पर्वसु गोष्ठमध्ये ।
न तस्य पापं न भयं न शोकः सहस्रनेत्रस्य च याति लोकम् ॥ ४१॥
भीष्म उवाच-अथ सप्त महाभागा ऋषयो लोकविश्रुताः ।
वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे ब्रह्माणं पद्मसंभवम् ॥ ४२ ॥
प्रदक्षिणमभिक्रम्य सर्वे प्राञ्जलयः स्थिताः ।
उवाच वचनं तेषां वसिष्ठो ब्रह्मवित्तमः ॥ ४३ ॥
सर्वप्राणिहितं प्रश्नं ब्रह्मक्षत्रे विशेषतः ।

पितरोंका उपहार दान करते हैं, उनके द्वारा इस लोकमें तेरह वर्षमें होनेवाला उत्तम महत् श्राद्धकर्म सिद्ध होता है। (३५-३७)

गौवोंने कहा, पहले समय ब्रह्मपुरमें इन्द्रके यज्ञ विष्णुपद और विभावसुके पथमें स्थिर गौवोंका बहुला, समङ्गा, अकुतोभया, क्षेमा, सखी और भूयसी नाम हुए थे। अनन्तर नारदके सहित सब देवताओंने सर्वसहा नाम रखा था। जो लोग इस मन्त्रके सहारे गौवोंको अभिनन्दित करते हैं, उनके सब पाप कर्म नष्ट होते और उन्हें इन्द्र-लोक मिलता है, इसलिये गौवोंकी सेवा करनेसे चन्द्रमाकी भांति द्युति प्राप्त होती है। जो लोग पर्वके समय गोसमूहके बीच इस देवगणसेवित मन्त्रको पढते हैं, उन्हें न पाप है, न भय है, न शोक है और वे लोग इन्द्रलोक में गमन किया करते हैं। (३८—४१)

भीष्म बोले, अनन्तर लोकविख्यात वसिष्ठ प्रभृति महानुभाव सप्तर्षिगण पद्मयोनि प्रजापतिकी प्रदक्षिण करके हाथ जोडकर खडे हुए तब उनके बीच ब्रह्मवित् वसिष्ठदेव यह वक्ष्यमाण वचन कहनेमें प्रवृत्त हुए। यह प्रश्न सब प्राणियोंको विशेष करके ब्राह्मण

द्रव्यहीनाः कथं मर्त्या दरिद्राः साधुवर्तिनः ॥ ४४ ॥
प्राप्नुवन्तीह यज्ञस्य फलं केन च कर्मणा ।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥ ४५ ॥
ब्रह्मोवाच— अहो प्रश्नो महाभागा गूढार्थः परमः शुभः ।
सूक्ष्मः श्रेयांश्च मर्त्यानां भवद्भिः समुदाहृतः ॥ ४६ ॥
श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये निखिलेन तपोधनाः ।
यथा यज्ञफलं मर्त्यो लभते नात्र संशयः ॥ ४७ ॥
पौषमासस्य शुक्ले वै यदा युज्येत रोहिणी ।
तेन नक्षत्रयोगेन आकाशशयनो भवेत् ॥ ४८ ॥
एकवस्त्रः शुचिः स्नातः श्रद्दधानः समाहितः ।
सोमस्य रश्मयः पीत्वा महायज्ञफलं लभेत् ॥ ४९ ॥
एतद्वः परमं गुह्यं कथितं द्विजसत्तमाः ।
यन्मां भवन्तः पृच्छन्ति सूक्ष्मतत्त्वार्थदर्शिनः ॥ ५० ॥ [५९७६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे देवरहस्ये षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

विभावसुरुवाच—सलिलस्याञ्जलिं पूर्णमक्षताश्च घृतोत्तराः ।

और क्षत्रियोंको हितकर है । द्रव्यहीन, सच्चरित्र दरिद्र मनुष्य किस प्रकार किसी कर्मके सहारे इस लोकमें यज्ञका फल पाते हैं ? प्रजापति उनका वचन सुनके कहने लगे । (४२—४५)

ब्रह्मा बोले, हे महाभागगण ! तुम लोगोंने जो प्रश्न किया है, उसका अर्थ अत्यन्त गूढ और सूक्ष्म है, यह मनुष्योंके लिये परम शुभ तथा कल्याणकारी है । हे तपोधनगण ! जिस प्रकार मनुष्योंको निःसन्देह यज्ञका फल प्राप्त होता है, उसे मैं विस्तारपूर्वक कहता हूं, सुनो । पौष महीनेके शुक्लपक्षमें जिस दिन रोहिणी नक्षत्रका योग हुआ करता है, उस नक्षत्रयोगमें मनुष्य सूने स्थानमें शयन करे और एकवस्त्रधारी, पवित्र, स्नात, श्रद्धायुक्त तथा समाहित होकर सोमरश्मि पान करनेसे महायज्ञका फल पा सकेगा । हे सूक्ष्मतत्त्वार्थदर्शी द्विजसत्तमगण ! तुम लोगोंने मुझसे जो प्रश्न किया, मैंने तुम्हारे समीप उसका यह परम गुह्य विषय कहा है । (४६-५०)

अनुशासनपर्वमें १२६ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें १२७ अध्याय ।

विभावसु बोले, जो मनुष्य पौर्ण-

सोमस्योत्तिष्ठमानस्य तज्जलं चाक्षतांश्च तान् ॥ १ ॥
स्थितो ह्यभिमुखो मर्त्यः पौर्णमास्यां बलिं हरेत्।
अग्निकार्यं कृतं तेन हुताश्चास्याग्नयस्त्रयः ॥ २ ॥
वनस्पतिं च यो हन्यादमावास्यामबुद्धिमान्।
अपि ह्येकेन पत्रेण लिप्यते ब्रह्महत्यया ॥ ३ ॥
दन्तकाष्ठं तु यः खादेदमावास्यामबुद्धिमान्।
हिंसितश्चन्द्रमास्तेन पितरश्चोद्विजन्ति च ॥ ४ ॥
हव्यं न तस्य देवाश्च प्रतिगृह्णन्ति पर्वसु।
कुप्यन्ते पितरश्चास्य कुले वंशोऽस्य हीयते ॥ ५ ॥
श्रीरुवाच- प्रकीर्णं भाजनं यत्र भिन्नभाण्डमथासनम्।
योषितश्चैव हन्यन्ते कश्मलोपहते गृहे ॥ ६ ॥
देवताः पितरश्चैव उत्सवे पर्वणीषु वा।
निराशाः प्रतिगच्छन्ति कश्मलोपहताद् गृहात् ॥७॥
अङ्गिरा उवाच-यस्तु संवत्सरं पूर्णं दद्याद्दीपं करञ्जके।
सुवर्चलामूलहस्तः प्रजा तस्य विवर्धते ॥ ८ ॥

मासी तिथिमें उदय होते हुए चन्द्रमाकी ओर मुंह करके उसे अञ्जली भरके जल और घृतयुक्त अक्षत बलि उपहार रूपसे प्रदान करता है, उसका अग्निकार्य सिद्ध होता अर्थात् तीनों अग्निमें होम करनेसे जो फल हुआ करता है, वह सिद्ध होता है। जो मूर्ख मनुष्य अमावस्या तिथिमें वनस्पतियोंकी शाखा-पल्लव काटता है, वह एक पत्ता तोडनेसे भी ब्रह्महत्या दोषसे लिप्त होता है। जो मूर्ख मनुष्य अमावस्यामें दतून करता है, उससे चन्द्रमा हिंसित होते और उसके पितर व्याकुल हुआ करते हैं; पर्वके समय सुपर्णगण उसके हव्यको ग्रहण नहीं करते, उसके पितरवृन्द क्रुद्ध होते हैं और उसका कुल वंशहीन होजाता है। (१—५)

लक्ष्मी बोली, जिस पापयुक्त गृहमें जल पीनेके पात्र, आसन तथा अन्य भोजन इधर उधर पडे रहते हैं और स्त्रियें आहत होती हैं, उस पापयुक्त गृहसे उत्सव और पर्वके समय देवता तथा पितृगण निराश होके गमन करते हैं। (६—७)

अंगिरा बोले, जो पुरुष एकवर्षतक सुवर्चला लताकी जड हाथमें लेकर करञ्जक वृक्षके समीप दीपदान करता है, उसकी प्रजा बढती है। (८)

गार्ग्य उवाच-आतिथ्यं सततं कुर्याद्दीपं दद्यात्प्रतिश्रये ।
वर्जयानो दिवा स्वापं न च मांसानि भक्षयेत् ॥ ९ ॥
गोब्राह्मणं न हिंस्याच्च पुष्कराणि च कीर्तयेत् ।
एष श्रेष्ठतमो धर्मः सरहस्यो महाफलः ॥ १० ॥
अपि क्रतुशतैरिष्ट्वा क्षयं गच्छति तद्धविः ।
न तु क्षीयन्ति ते धर्माः श्रद्दधानैः प्रयोजिताः ॥११॥
इदं च परमं गुह्यं सरहस्यं निबोधत ।
श्राद्धकल्पे च दैवे च तैर्थिके पर्वणीषु च ॥ १२ ॥
रजस्वला च या नारी श्वित्रिकाऽपुत्रिका च या ।
एताभिश्चक्षुषा दृष्टं हविर्नाश्नन्ति देवताः ॥ १३ ॥
पितरश्च न तुष्यन्ति वर्षाण्यपि त्रयोदश ।
शुक्लवासाः शुचिर्भूत्वा ब्राह्मणान् स्वस्ति वाचयेत् ।
कीर्तयेद्भारतं चैव तथा स्यादक्षयं हविः ॥ १४ ॥
धौम्य उवाच-भिन्नभाण्डं च खट्वां च कुक्कुटं शुनकं तथा ।
अप्रशस्तानि सर्वाणि यश्च वृक्षो गृहेरुहः ॥ १५ ॥
भिन्नभाण्डे कलिं प्राहुः खट्वायां तु धनक्षयः ।
कुक्कुटे शुनके चैव हविर्नाश्नन्ति देवताः ।

गार्ग्य बोले, मनुष्य सदा आतिथि-सेवा करे, यज्ञशालामें दीपदान करे, दिनको न सोवे और मांसभक्षण न न करे। गऊ ब्राह्मणोंकी हिंसा न करे, तीर्थोंका नाम लेवे; यह महाफलजनक सरहस्य धर्म श्रेष्ठ है। सैकडों यज्ञ करनेवालेका हवि क्षययुक्त होता है, परन्तु श्रद्धावान् मनुष्योंके आचरित धर्मका नाश नहीं होता, इसके अतिरिक्त श्राद्धविधि, तीर्थसम्बन्धीय देवकार्य और पूर्वकालका यह परम गोपनीय विषय सुनो। रजस्वला, श्वित्ररोगवाली और वन्ध्या स्त्री जिस हविको देखती हैं, उसे देववृन्द भक्षण नहीं करते; जिसके हविको पूर्वोक्त स्त्रियें देखती हैं, उसके पितर तेरह वर्षतक असन्तुष्ट रहते हैं। श्वेतवस्त्र पहरके पवित्र होकर ब्राह्मणोंसे स्वस्ति-वाचन और महाभारतका पाठ करावे, तो हवि अक्षय होती है। (९-१४)

धौम्य बोले, टूटे पात्र, खाट, कुत्ता, और कुक्कुट तथा गृहमें जो वृक्ष रहते हैं, वे सब अप्रशस्त हैं। पहलेके आचार्योंने कहा है, कि फूटे बरतन

वृक्षमूले ध्रुवं सत्त्वं तस्माद् वृक्षं न रोपयेत् ॥ १६ ॥
जमदग्निरुवाच-यो यजेदश्वमेधेन वाजपेयशतेन ह।
अवाक्शिरा वा लम्बेत सत्रं वा स्फीतमाहरेत् ॥१७॥
न यस्य हृदयं शुद्धं नरकं स ध्रुवं व्रजेत्।
तुल्यं यज्ञश्च सत्यं च हृदयस्य च शुद्धता ॥ १८ ॥
शुद्धेन मनसा दत्त्वा सक्तुप्रस्थं द्विजातये।
ब्रह्मलोकमनुप्राप्तः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १९ ॥ [५९९५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे देवरहस्ये सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

वायुरुवाच— किंचिद्धर्मं प्रवक्ष्यामि मानुषाणां सुखावहम्।
सरहस्याश्च ये दोषास्तान् शृणुध्वं समाहिताः॥ १ ॥
अग्निकार्यं च कर्तव्यं परमान्नेन भोजनम्।
दीपकश्चापि कर्तव्यः पितॄणां सतिलोदकः ॥ २ ॥
एतेन विधिना मर्त्यः श्रद्दधानः समाहितः।
चतुरो वार्षिकान्मासान्यो ददाति तिलोदकम् ॥ ३ ॥

रहनेसे कलह होता है, टूटी खाट रहनेसे धनका नाश हुआ करता है, कुक्कुट अथवा कुत्ता रहनेपर देवगण हवि भक्षण नहीं करते, वृक्षकी जडमें निश्चय ही सर्प बिच्छू आदि प्राणी रहते हैं; इसलिये घरके बीच वृक्ष लगाना उचित नहीं है। (१५-१६)

जमदग्नि बोले, जो पुरुष सैकडों अश्वमेध वाजपेय यज्ञ करता है अथवा अवाक्शिरा होके लटकता है, तथा बहुतसे सत्र करता है, परन्तु यदि उसका हृदय शुद्ध न रहे, तो वह निश्चयही नरकमें गमन किया करता है। यज्ञ, सत्र और अन्तःकरणकी शुद्धि ये तीनों ही तुल्य हैं। किसी पुरुषने शुद्धचित्तसे ब्राह्मणको एक प्रस्थ सत्तू दान करके ब्रह्मलोकमें गमन किया था, इस विषयमें उसहीका प्रमाण पर्याप्त है। (१७—१९)

अनुशासनपर्वमें १२७ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १२८ अध्याय।

वायु बोले, मनुष्योंके लिये सुखदायक कुछ धर्मविषय कहता हूं और रहस्यके सहित जो सब दोष हैं उसे सावधान होकर सुनो। जो लोग वर्षभरके बीच चार महीनेतक वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंको तिलोदक दान करते और शक्तिके अनुसार भोजन कराते हैं, अवश्य

भोजनं च यथाशक्त्या ब्राह्मणे वेदपारगे ।
पशुबन्धशतस्येह फलं प्राप्नोति पुष्कलम् ॥ ४ ॥
इदं चैवापरं गुह्यमप्रशस्तं निबोधत ।
अग्नेस्तु वृषलो नेता हविर्मूढाश्च योषितः ॥ ५ ॥
मन्यते धर्म एवेति स चाधर्मेण लिप्यते ।
अग्नयस्तस्य कुप्यन्ति शूद्रयोनिं स गच्छति ॥ ६ ॥
पितरश्च न तुष्यन्ति सह देवैर्विशेषतः ।
प्रायश्चित्तं तु यत्तत्र ब्रुवतस्तन्निबोध मे ॥ ७ ॥
यत्कृत्वा तु नरः सम्यक् सुखी भवति विज्वरः ।
गवां मूत्रपुरीषेण पयसा च घृतेन च ॥ ८ ॥
अग्निकार्यं त्र्यहं कुर्यान्निराहारः समाहितः ।
ततः संवत्सरे पूर्णे प्रतिगृह्णन्ति देवताः ॥ ९ ॥
हृष्यन्ति पितरश्चास्य श्राद्धकाल उपस्थिते ।
एष ह्यधर्मो धर्मश्च सरहस्यः प्रकीर्तितः ॥ १० ॥
मर्त्यानां स्वर्गकामानां प्रेत्य स्वर्गसुखावहः ॥ ११ ॥ [६००६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे देवरहस्ये अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

कर्त्तव्य अग्निकार्य निभाते, परम अन्नके सहारे भोजन कराते, पितरोंको तिलोदक देते और दीपदान करते हैं, वे श्रद्धावान् समाहित मनुष्य इस ही विधिसे एक सौ पशुबन्ध यज्ञका पुष्कल फल पाते हैं। (१–४)

इसे भी परम गोपनीय और अप्रशस्त जानो कि शूद्र यदि अरणीकी अग्निको देशान्तरमें ले जाय और यदि स्त्रियें सोमाज्यपय प्रभृति यज्ञसे बचे हुए हविके द्वारा मूढ होवें, उसे जो ब्राह्मण धर्म समझता है, वह अधर्मसे लिप्त हुआ करता है। तीनों अग्नि उसपर क्रुद्ध होती, उसे शूद्रयोनि प्राप्त होती है, विशेष करके देव और पितृगण उसके विषयमें प्रसन्न नहीं रहते। उस विषयमें जो प्रायश्चित्त है, जिसे करनेसे मनुष्य भली भांति सुखी और शोकरहित होता है, उसे कहता हूं, सुनो। (५—८)

मनुष्य निराहारी और समाहित होकर तीन दिन गोमय, दूध और घृतसे अग्निकार्य करे; अनन्तर एक वर्ष पूरा होनेपर देवगण उसकी दान

लोमश उवाच— परदारेषु ये सक्ता अकृत्वा दारसंग्रहम्।
निराशाः पितरस्तेषां श्राद्धकाले भवन्ति वै ॥ १ ॥
परदाररतिर्यश्च यश्च वन्ध्यामुपासते।
ब्रह्मस्वं हरते यश्च समदोषा भवन्ति ते ॥ २ ॥
असंभाष्या भवन्त्येते पितॄणां नात्र संशयः।
देवताः पितरश्चैषां नाभिनन्दन्ति तद्धविः ॥ ३ ॥
तस्मात्परस्य वै दारांस्त्यजेद्वन्ध्यां च योषितम्।
ब्रह्मस्वं हि न हर्तव्यमात्मनो हितमिच्छता ॥ ४ ॥
श्रूयतां चापरं गुह्यं रहस्यं धर्मसंहितम्।
श्रद्दधानेन कर्त्तव्यं गुरूणां वचनं सदा ॥ ५ ॥
द्वादश्यां पौर्णमास्यां च मासि मासि घृताक्षतम्।
ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छेत तस्य पुण्यं निबोधत ॥ ६ ॥
सोमश्च वर्धते तेन समुद्रश्च महोदधिः।
अश्वमेधचतुर्भागं फलं सृजति वासवः ॥ ७ ॥

की हुई वस्तु प्रतिग्रह करते हैं और श्राद्धका समय उपस्थित होनेपर उसके पितर हर्षित होते हैं। यह रहस्यके सहित अधर्म और धर्मविषय कहा गया, स्वर्गकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंके परलोकमें गमन करनेपर यह स्वर्गमें सुखदायक हुआ करता है। (८-११)

अनुशासनपर्वमें १२८ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १२९ अध्याय।

लोमश बोले, जो लोग दारपरिग्रह न करके पराई स्त्रीमें आसक्त होते हैं, श्राद्धकाल उपस्थित होनेपर उनके पितृगण निराश हुआ करते हैं। जो पुरुष पराई स्त्रीमें रत रहता, जो वन्ध्याकी उपासना करता और जो मनुष्य ब्रह्मस्व हरता है, वे तीनों ही तुल्य दोषभागी होते हैं; उनके पितर निःसन्देह असन्तुष्ट हुआ करते हैं; देवता और पितृगण उनके दिये हुए हविको आदरपूर्वक ग्रहण नहीं करते; इसलिये परस्त्री तथा वन्ध्या नारीको परित्याग करे। (१-४)

जो लोग अपने ऐश्वर्यकी इच्छा करें, उन्हें ब्रह्मस्व हरना उचित नहीं है; धर्मसम्बन्धीय एक और गुप्त रहस्य सुनो। जो श्रद्धावान् मनुष्य सदा गुरुजनोंकी आज्ञा प्रतिपालन करता और प्रतिमहीनेकी द्वादशी और पूर्णिमासीके दिन ब्राह्मणोंको घृत और अक्षता दान करता है, उसका पुण्य सुनो। उसके द्वारा चन्द्रमा तथा

दानेनैतेन तेजस्वी वीर्यवांश्च भवेन्नरः।
प्रीतश्च भगवान्सोम इष्टान्कामान्प्रयच्छति ॥ ८ ॥
श्रूयतां चापरो धर्मः सरहस्यो महाफलः।
इदं कलियुगं प्राप्य मनुष्याणां सुखावहः ॥ ९ ॥
कल्यमुत्थाय यो मर्त्यः स्नातः शुक्लेन वाससा।
तिलपात्रं प्रयच्छेत ब्राह्मणेभ्यः समाहितः ॥ १० ॥
तिलोदकं च यो दद्यात्पितॄणां मधुना सह।
दीपकं कृसरं चैव श्रूयतां तस्य यत्फलम् ॥ ११ ॥
तिलपात्रे फलं प्राह भगवान्पाकशासनः।
गोप्रदानं च यः कुर्याद् भूमिदानं च शाश्वतम् ॥ १२ ॥
अग्निष्टोमं च यो यज्ञं यजेत बहुदक्षिणम्।
तिलपात्रं सहैतेन समं मन्यन्ति देवताः ॥ १३ ॥
तिलोदकं सदा श्राद्धे मन्यन्ते पितरोऽक्षयम्।
दीपे च कृसरे चैव तुष्यन्तेऽस्य पितामहाः ॥ १४ ॥
स्वर्गे च पितृलोके च पितृदेवाभिपूजितम्।
एवमेतन्मयोद्दिष्टमृषिदृष्टं पुरातनम् ॥ १५ ॥ [६०२१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे लोमशरहस्ये ऊनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

महोदधि समुद्रकी वृद्धि होती है, इन्द्र उस प्रदाताको अश्वमेध यज्ञका चौथा भाग फल स्वरूप प्रदान करते हैं। इस दानसे मनुष्य तेजस्वी और वीर्यशाली होता है। और इस दानसे चंद्रमाभी संतुष्ट होकर इच्छित वस्तु प्रदान करता है। एक दूसरा रहस्ययुक्त महाफलजनक धर्म सुनो, यह इस कलियुगमें मनुष्योंको सुख देनेवाला है। (४—९)

जो मनुष्य अत्यन्त भोरके समय उठके स्नान करता और समाहित होके ब्राह्मणोंको सफेद वस्त्र और तिल-पात्र दान किया करता तथा जो मधुके सहित पितरोंको तिलोदक, दीप और कृसर प्रदान करता है, उसका फल सुनो। भगवान् इन्द्रने तिलपात्र दान-का फल कहा है, कि जो लोग गोदान तथा शाश्वत भूमि प्रदान करते हैं तथा जो लोग बहुतसी दक्षिणायुक्त अश्वमेध यज्ञ करते हैं, देवगण तिलपात्र दानके सहित उन सब दानों और यज्ञके

भीष्म उवाच-ततस्त्वृषिगणाः सर्वे पितरश्च सदेवताः ।
अरुन्धतीं तपोवृद्धामपृच्छन्त समाहिताः ॥ १ ॥
समानशीलां वीर्येण वसिष्ठस्य महात्मनः ।
त्वत्तो धर्मरहस्यानि श्रोतुमिच्छामहे वयम् ।
यत्ते गुह्यतमं भद्रे तत्प्रभाषितुमर्हसि ॥ २ ॥
अरुन्धत्युवाच-तपोवृद्धिर्मया प्राप्ता भवतां स्मरणेन वै ।
भवतां च प्रसादेन धर्मान्वक्ष्यामि शाश्वतान् ॥ ३ ॥
सगुह्यान्सरहस्यांश्च तान् शृणुध्वमशेषतः ।
श्रद्दधाने प्रयोक्तव्या यस्य शुद्धं तथा मनः ॥ ४ ॥
अश्रद्दधानो मानी च ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।
असंभाष्या हि चत्वारो नैषां धर्मं प्रकाशयेत् ॥ ५ ॥
अहन्यहनि यो दद्यात्कपिलां द्वादशीः समाः ।

फलोंको तुल्य समझते हैं। पितर लोग श्राद्धके समय तिलोदकको सदा अक्षय जानते हैं, दीपदान और कृसर दान करनेसे दाताके पितामहगण प्रसन्न होते हैं। स्वर्गलोक और पितृलोकमें देवताओं तथा पितरोंसे पूजित यह ऋषिदृष्ट पुरातन विषय मैंने कहा है। (१०—१९)

अनुशासनपर्वमें १२९ अध्याय समाप्त

अनुशासनपर्वमें १३० अध्याय।

भीष्म बोले, अनन्तर सब ऋषियों, देवताओं और पितरोंने सावधान होकर तपोवृद्धा अरुन्धतीसे प्रश्न किया। अरुन्धती तपोवृद्धा समान व्रतचारिणी है और जैसा महानुभाव वसिष्ठका प्रभाव है, इसका चरित्र भी वैसा ही है; इसलिये ऋषि लोग इसी भांति निश्चय करके अरुन्धतीसे बोले, हे भद्रे! हम लोग तुम्हारे समीप धर्मरहस्य सुननेकी अभिलाष करते हैं, तुम्हारे समीप जो धर्म अत्यन्त गोपनीय भावसे विद्यमान हो, तुम्हें उसका विषय वर्णन करना योग्य है। (१—२)

अरुन्धती बोली, हे तपोधनगण! आप लोगोंके स्मरण करनेसे ही मेरे तपकी वृद्धि हुई, आप लोगोंकी कृपासे मैं रहस्यके सहित शाश्वत धर्म कहती हूं, उसे पूरी रीतिसे सुनिये। श्रद्धावान् मनुष्य तथा जिनका मन पवित्र हो, उन्हींके समीप इसे कहना योग्य है। अश्रद्धावान्, अहङ्कारी, ब्रह्महत्यारे और गुरुतल्पगामी, इन चारों पुरुषोंके सङ्ग वार्त्तालाप करना योग्य नहीं है। इसलिये इनके निकट

मासि मासि च सत्रेण यो यजेत सदा नरः ॥ ६ ॥
गवां शतसहस्रं च यो दद्याज्ज्येष्ठपुष्करे ।
न तद्धर्मफलं तुल्यमतिथिर्यस्य तुष्यति ॥ ७ ॥
श्रूयतां चाऽपरो धर्मो मनुष्याणां सुखावहः ।
श्रद्दधानेन कर्तव्यः सरहस्यो महाफलः ॥ ८ ॥
कल्यमुत्थाय गोमध्ये गृह्य दर्भान्सहोदकान् ।
निषिञ्चेत गवां शृङ्गे मस्तकेन च तज्जलम् ॥ ९ ॥
प्रतीच्छेत निराहारस्तस्य धर्मफलं शृणु ।
श्रूयन्ते यानि तीर्थानि त्रिषु लोकेषु कानिचित ॥१०॥
सिद्धचारणजुष्टानि सेवितानि महर्षिभिः ।
अभिषेकः समस्तेषां गवां शृङ्गोदकस्य च ॥ ११ ॥
साधु साध्विति चोद्दिष्टं दैवतैः पितृभिस्तथा ।
भूतैश्चैव सुसंहृष्टैः पूजिता साऽप्यरुन्धती ॥ १२ ॥
पितामह उवाच– अहो धर्मो महाभागे सरहस्य उदाहृतः ।
वरं ददामि ते धन्ये तपस्ते वर्धतां सदा ॥ १३ ॥

धर्म प्रकाश न करे। (३—५)

जो लोग बारह बरसतक प्रतिदिन एक एक कपिला गऊ प्रदान करते, जो मनुष्य प्रति महीने सदा सत्र किया करते और जो लोग ज्येष्ठ पुष्करमें सहस्र गौ दान करते हैं, उनके धर्मका फल जिसके गृहमें अतिथि सन्तुष्ट होते हैं, उसके सदृश नहीं है। मनुष्योंको सुख देनेवाला दूसरा धर्म सुनो। श्रद्धावान् मनुष्योंको यह महाफल, रहस्ययुक्त धर्म प्रतिपालन करना उचित है। भोरके समय उठके जलयुक्त दाभ ग्रहण करके वही जल गोशृंगमें सेचन करे और निराहारी रहके वही जल माथेपर चढावे, उससे जो फल होता है, उसे सुनो। (६-१०)

तीनों लोकोंके बीच जो सब सिद्ध, चारणों और मनीषियोंसे सेवित तीर्थ हैं, उनमें स्नान करनेसे जो फल होता है, गौवोंके शृङ्गोदकसे अभिषिक्त होने पर उसके समान फल हुआ करता है। अरुन्धतीका ऐसा वचन सुनके देवताओं, पितरों और सब प्राणियोंने सन्तुष्ट होकर धन्य धन्य कहके उसकी पूजा की। (१०—१२)

ब्रह्मा बोले, हे महाभागे ! तुमने जो रहस्ययुक्त धर्म कहा, वह अत्यन्त आश्चर्ययुक्त है। हे धन्ये ! मैं तुम्हें वर

यम उवाच— रमणीया कथा दिव्या युष्मत्तो या मया श्रुता।
श्रूयतां चित्रगुप्तस्य भाषितं मम च प्रियम् ॥ १४ ॥
रहस्यं धर्मसंयुक्तं शक्यं श्रोतुं महर्षिभिः।
श्रद्दधानेन मर्त्येन आत्मनो हितमिच्छता ॥ १५ ॥
न हि पुण्यं तथा पापं कृतं किंचिद्विनश्यति।
पर्वकाले च यत्किंचिदादित्यं चाधितिष्ठति ॥ १६ ॥
प्रेतलोकं गते मर्त्ये तत्तत्सर्वं विभावसुः।
प्रतिजानाति पुण्यात्मा तच्च तत्रोपयुज्यते ॥ १७ ॥
किंचिद्धर्मं प्रवक्ष्यामि चित्रगुप्तमतं शुभम्।
पानीयं चैव दीपं च दातव्यं सततं तथा ॥ १८ ॥
उपानहौ च च्छत्रं च कपिला च यथायथम्।
पुष्करे कपिला देया ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ १९ ॥
अग्निहोत्रं च यत्नेन सर्वशः प्रतिपालयेत्।
अयं चैवाऽपरो धर्मश्चित्रगुप्तेन भाषितः ॥ २० ॥
फलमस्य पृथक्त्वेन श्रोतुमर्हन्ति सत्तमाः।
प्रलयं सर्वभूतैस्तु गन्तव्यं कालपर्ययात् ॥ २१ ॥

देता हूं, सदा तुम्हारे तपकी वृद्धि हो। (१३)

यम बोले, तुम्हारे समीप मैंने जो दिव्य कथा सुनी, वह अत्यन्त रमणीय है। अब हमारे प्रिय चित्रगुप्तका वचन सुनो। यह धर्मयुक्त रहस्य महर्षियोंको भी सुनना योग्य है, जो श्रद्धावान् मनुष्य अपने हितकी इच्छा करते हैं, उनका किया हुआ पापपुण्य कुछ भी विनष्ट नहीं होता। पर्वके समय जो कुछ आदित्यके समीप पहुंचता है, मनुष्यके परलोकमें जानेपर भगवान् सूर्य उन सब विषयोंको जानते हैं और पुण्यात्मा मनुष्य उन्हीं विषयोंको भोग किया करते हैं। चित्रगुप्तका कुछ पवित्र मत कहता हूं; जल, दीपक, पादुका और कपिला गऊ सदा दान करना योग्य है, पुष्कर तीर्थमें वेद जाननेवाले ब्राह्मणको कपिला (कामधेनु) गऊ दान करना उचित है (१४—१९)

सब भांतिसे यत्नपूर्वक अग्निहोत्र करे, इसके अतिरिक्त दूसरे धर्म भी चित्रगुप्तके द्वारा वर्णित हुए हैं। हे सत्तमगण! इसके फल पृथक् पृथक् रीतिसे सुनने योग्य हैं। कालक्रमसे सब प्राणी ही प्रलयको प्राप्त होंगे, उस

तत्र दुर्गमनुप्राप्ताः क्षुत्तृष्णापरिपीडिताः।
दह्यमाना विपच्यन्ते न तत्रास्ति पलायनम् ॥ २२ ॥
अन्धकारं तमो घोरं प्रविशन्त्यल्पबुद्धयः।
तत्र धर्मं प्रवक्ष्यामि येन दुर्गाणि सन्तरेत् ॥ २३ ॥
अल्पव्ययं महार्थं च प्रेत्य चैव सुखोदयम्।
पानीयस्य गुणा दिव्याः प्रेतलोके विशेषतः ॥ २४ ॥
तत्र पुण्योदका नाम नदी तेषां विधीयते।
अक्षयं सलिलं तत्र शीतलं ह्यमृतोपमम् ॥ २५ ॥
स तत्र तोयं पिबति पानीयं यः प्रयच्छति।
प्रदीपस्य प्रदानेन श्रूयतां गुणविस्तरः ॥ २६ ॥
तमोऽन्धकारं नियतं दीपदो न प्रपश्यति।
प्रभां चास्य प्रयच्छन्ति सोमभास्करपावकाः ॥ २७ ॥
देवताश्चानुमन्यन्ते विमलाः सर्वतोदिशः।
द्योतते च यथाऽऽदित्यः प्रेतलोकगतो नरः ॥ २८ ॥
तस्माद्दीपः प्रदातव्यः पानीयं च विशेषतः।
कपिलां ये प्रयच्छन्ति ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ २९ ॥

समयमें वे दुर्गम स्थानोंमें पहुंचके भूख प्याससे पीडित तथा दह्यमान होकर परिपाकावस्था लाभ करेंगे, वहां भागनेका उपाय नहीं है, अल्पबुद्धि मनुष्य घोर अन्धकारमें प्रवेश करेंगे। उस समय जिसके सहारे पुरुष दुर्गम स्थानोंसे पार होता है, वह धर्म कहता हूं। (२०—२३)

थोडे व्ययसे होनेवाले महत् प्रयोजनसाधक कार्यसे परलोकमें सुख मिलता है जलदानके दिव्य फल परलोकमें विशेष रीतिसे उपकारक हुआ करते हैं, वहांपर जलदाताके लिये पुण्योदका नदी विहित है, उसमें अक्षय शीतल जल अमृतसदृश हुआ करता है। जो लोग इस लोकमें जलदान करते हैं, वे परलोकमें उस नदीके जलको पीनेके अधिकारी हैं। दीपकदानसे जो फल होता है, उसे सुनो। दीपदाता मनुष्यको सदा अन्धकार नहीं दिखाई देता, उसे चन्द्रमा, अग्नि और सूर्य प्रभा प्रदान करते हैं, देववृन्द उसका संमान किया करते और सब दिशा उसके समीप निर्मल होती हैं। दीपदान करनेवाला मनुष्य परलोकमें जाकर सूर्यकी भांति प्रकाशित होता है, इसलिये दीपदान

पुष्करे च विशेषेण श्रूयतां तस्य यत्फलम् ।
गोशतं सवृषं तेन दत्तं भवति शाश्वतम् ॥ ३० ॥
पापं कर्म च यत्किञ्चिद्ब्रह्महत्यासमं भवेत् ।
शोधयेत्कपिला ह्येका प्रदत्तं गोशतं यथा ॥ ३१ ॥
तस्मात्तु कपिला देया कौमुद्यां ज्येष्ठपुष्करे ।
न तेषां विषमं किंचिन्न दुःखं न च कण्टकाः ॥ ३२ ॥
उपानहौ च यो दद्यात्पात्रभूते द्विजोत्तमे ।
छत्रदाने सुखां छायां लभते परलोकगः ॥ ३३ ॥
न हि दत्तस्य दानस्य नाशोऽस्तीह कदाचन ।
चित्रगुप्तमतं श्रुत्वा हृष्टरोमा विभावसुः ॥ ३४ ॥
उवाच देवताः सर्वाः पितॄंश्चैव महाद्युतिः ।
श्रुतं हि चित्रगुप्तस्य धर्मगुह्यं महात्मनः ॥ ३५ ॥
श्रद्दधानाश्च ये मर्त्या ब्राह्मणेषु महात्मसु ।
दानमेतत्प्रयच्छन्ति न तेषां विद्यते भयम् ॥ ३६ ॥
धर्मदोषास्त्विमे पञ्च येषां नास्तीह निष्कृतिः ।

और विशेष रीतिसे जल दान करना चाहिये। जो लोग पुष्कर तीर्थमें वेद-पारग ब्राह्मणको कपिला गऊ प्रदान करते हैं, उनका उस विषयमें विशेष फल सुनो। (२४—३०)

जो लोग पुष्करमें कामधेनु दान करते हैं, उन्हें वृषभके सहित एक सौ गऊका फल मिलता है, जो कोई पाप ब्रह्महत्याके सदृश भी हो, उसे भी वह दान की हुई एक सौ गौवोंके सदृश कपिला गऊ दूर करती है, इसलिये पुष्करतीर्थमें जाके शुक्लपक्षमें कपिला गऊ अवश्य दान करना चाहिये। जो लोग सत्पात्र ब्राह्मणको दो पादुका दान करते हैं, उन्हें किसी विषयमें कुछ दुःख तथा कांटे का भय नहीं होता। (३०—३२)

छत्र दान करनेवाले मनुष्यको पर-लोकमें जानेपर सुखकी छाया प्राप्त होती है, इस लोकमें दान करनेसे कदापि उसका विनाश नहीं होता। चित्र-गुप्तका मत सुनके महातेजस्वी भगवान् सूर्य पुलकित होकर सब देवताओं और पितरोंसे बोले, कि जो श्रद्धावान् मनुष्य महानुभाव ब्राह्मणोंको यह सब वस्तु दान करते हैं, उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं होता। कर्मदोषयुक्त नीचे कहे हुए इन पांचों पुरुषोंकी

असंभाष्या अनाचारा वर्जनीया नराधमाः ॥ ३७ ॥
ब्रह्महा चैव गोघ्नश्च परदाररतश्च यः।
अश्रद्दधानश्च नरः स्त्रियं यश्चोपजीवति ॥ ३८ ॥
प्रेतलोकगता ह्येते नरके पापकर्मिणः।
पच्यन्ते वै यथा मीनाः पूयशोणितभोजनाः ॥ ३९ ॥
असंभाष्याः पितृणां च देवानां चैव पञ्च ते।
स्नातकानां च विप्राणां ये चाऽन्ये च तपोधनाः ॥४०॥ [६०६१]

इति श्रीमहा०अनु०पर्वणि दानधर्मे अरुन्धतीचित्रगुप्तरहस्ये त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३०॥

भीष्म उवाच— ततः सर्वे महाभागा देवाश्च पितरश्च ह।
ऋषयश्च महाभागाः प्रमथान्वाक्यमब्रुवन् ॥ १ ॥
भवन्तो वै महाभागा अपरोक्षनिशाचराः।
उच्छिष्टानशुचीन्क्षुद्रान्कथं हिंसथ मानवान् ॥ २ ॥
के च स्मृताः प्रतीघाता येन मर्त्यान्न हिंसथ।
रक्षोघ्नानि च कानि स्युर्यैर्गृहेषु प्रणश्यथ।
श्रोतुमिच्छाम युष्माकं सर्वमेतन्निशाचराः ॥ ३ ॥
प्रमथा ऊचुः— मैथुनेन सदोच्छिष्टाः कृते चैवाऽधरोत्तरे।

निष्कृति नहीं है, वे असम्भाष्य, अनाचारी अधम मनुष्य परित्याज्य हैं; ब्रह्महत्यारे, गोघाती, परस्त्रीरत, अश्रद्धावान् और जो पुरुष स्त्रीको उपजीव्य किया करता है, ये सब पापकर्म करनेवाले प्रेतलोकमें जाकर रुधिरपूय खानेवाली मछलियों की भांति परिपाक लाभ करते हैं। पितर, देवता, स्नातक ब्राह्मण और इनके अतिरिक्त जो सब तपस्वी हैं, उन्हें योग्य है, कि उक्त पांच पुरुषोंसे वार्त्तालाप न करें। (३३—४०)

अनुशासनपर्वमें १३१ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १३२ अध्याय।

भीष्म बोले, अनन्तर महाभाग देवताओं, पितरों और ऋषियोंने राक्षसोंसे कहा। हे निशाचरगण! तुम सब कोई महाऐश्वर्यशाली अपरोक्ष-निशाचर हो, तुम किस प्रकार जूठे, अपवित्र और क्षुद्र मनुष्योंकी हिंसा किया करते हो? ऐसा रक्षोघ्न उपाय क्या है, जिसके सहारे तुम लोग गृहके बीच ही प्रनष्ट होजाओ, हम लोग इस विषयको तुम्हारे समीप सुननेकी इच्छा करते हैं। (१—३)

निशाचरोंने कहा, मनुष्य मैथुनके

मोहान्मांसानि खादेत वृक्षमूले च यः स्वपेत् ॥ ४ ॥
आमिषं शीर्षतो यस्य पादतो यश्च संविशेत् ।
तत उच्छिष्टकाः सर्वे बहुच्छिद्राश्च मानवाः ॥ ५ ॥
उदके चाप्यमेध्यानि श्लेष्माणं च प्रमुञ्चति ।
एते भक्ष्याश्च वध्याश्च मानुषा नात्र संशयः ॥ ६ ॥
एवंशीलसमाचारान्धर्षयामो हि मानवान् ।
श्रूयतां च प्रतीघातान्यैर्न शक्नुम हिंसितुम् ॥ ७ ॥
गोरोचनासमालम्भो वचाहस्तश्च यो भवेत् ।
घृताक्षतं च यो दद्यान्मस्तके तत्परायणः ॥ ८ ॥
ये च मांसं न खादन्ति तान्न शक्नुम हिंसितुम् ।
यस्य चाग्निर्गृहे नित्यं दिवा रात्रौ च दीप्यते ॥ ९ ॥
तरक्षोश्चर्मदंष्ट्राश्च तथैव गिरिकच्छपः ।
आज्यधूमो बिडालश्च च्छागः कृष्णोऽथ पिङ्गलः॥१०॥
येषामेतानि तिष्ठन्ति गृहेषु गृहमेधिनाम् ।

द्वारा सदा जूठे होते हैं और जो लोग हीन पुरुषोंको श्रेष्ठ करते और उत्तम जनोंका अपमान किया करते हैं, वे सदा जूठे हैं। जो मनुष्य मोहवश होकर मांस भक्षण किया करते, वृक्षकी जडमें सोते सिरपर मांस रखके शयन किया करते तथा शय्यापर पांवके स्थानमें सिर रखके सोते हैं, वे सभी जूठे हैं, इसलिये मनुष्योंके बहुतसे छिद्र हैं। जो लोग जलके बीच अपवित्र वस्तु और श्लेष्म परित्याग करते हैं, वे सब मनुष्य निःसन्देह हम लोगोंके भक्ष्य और वध्य हैं, जिनके इसी प्रकार स्वभाव और ऐसे ही व्यवहार हैं, उन्हीं मनुष्योंको हम लोग धर्षण किया करते हैं और जिसके कारणसे हम हिंसा करनेमें असमर्थ होते हैं, उन प्रतिघात विषयों को सुनो।(४—७)

जो पुरुष गोरोचन समालम्भन और हाथमें वचा धारण करता है और उसमें रत होके माथेपर घृताक्षता लगाता है तथा जो लोग मांस भक्षण नहीं करते, हम उनकी हिंसा करनेमें समर्थ नहीं हैं। जिसके गृहमें रातदिन अग्नि जलती रहती है, जिन गृहस्थोंके घरमें तरक्षु व्याघ्रके चमडे तथा दांत रहते हैं, पर्वतकी गुफामें शयन करनेवाले स्थूल कच्छप, घृतका धूआं, बिडाल और काले तथा पीले बकरे विद्यमान

तान्यधृष्याण्यगाराणि पिशिताशैः सुदारुणैः ॥ ११ ॥
लोकानस्माद्विधा ये च विचरन्ति यथासुखम्।
तस्मादेतानि गेहेषु रक्षोघ्नानि विशांपते।
एतद्वः कथितं सर्वं यत्र वः संशयो महान् ॥ १२ ॥ [६०७३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे प्रमथरहस्ये एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

भीष्म उवाच-ततः पद्मप्रतीकाशः पद्मोद्भूतः पितामहः।
उवाच वचनं देवान्वासवं च शचीपतिम् ॥ १ ॥
अयं महाबलो नागो रसातलचरो बली।
तेजस्वी रेणुको नाम महासत्त्वपराक्रमः ॥ २ ॥
अतितेजस्विनः सर्वे महावीर्या महागजाः।
धारयन्ति महीं कृत्स्नां सशैलवनकाननाम् ॥ ३ ॥
भवद्भिः समनुज्ञातो रेणुकस्तान्महागजान्।
धर्मगुह्यानि सर्वाणि गत्वा पृच्छतु तत्र वै ॥ ४ ॥
पितामहवचः श्रुत्वा ते देवा रेणुकं तदा।
प्रेषयामासुरव्यग्रा यत्र ते धरणीधराः ॥ ५ ॥
रेणुक उवाच-अनुज्ञातोऽस्मि देवैश्च पितृभिश्च महाबलाः।

रहते हैं, महाघोर राक्षसगण उन गृहोंमें जानेमें समर्थ नहीं हैं। हमारे समान पुरुष सुखपूर्वक सब लोकोंमें विचरते हैं, इसलिये गृहमें इन सब विषयोंके रहनेपर राक्षस लोग उन गृहोंमें उपद्रव नहीं कर सकते। जिसमें तुम लोगोंको महान् सन्देह हुआ था, वह विषय तुम्हारे समीप वर्णित हुआ। (८-१२)

अनुशासनपर्वमें १३१ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १३२ अध्याय।

भीष्म बोले, अनन्तर पद्मप्रतीकाश कमलयोनि ब्रह्मा देवताओं तथा शची-पति इन्द्रसे यह वचन बोले, यह रसातलचारी महाबली पराक्रमी रेणुक नाम तेजस्वी नाग है। इसके अतिरिक्त अत्यन्त तेजस्वी महाबलवान महा हस्तीगण पर्वत और वनके सहित समस्त पृथ्वीमण्डलको धारण कर रहे हैं; रेणुक तुम लोगोंकी अनुमतिके अनुसार वहां जाकर उन महागजोंसे गोपनीय धर्म पूछे। देवताओंने पितामहका वचन सुनके उस समय जिन स्थानोंमें वे धरणीधर दिग्गज अव्यक्त प्रभावसे वर्त्तमान थे, वहां रेणुकको भेजा। (१-५)

धर्मगुह्यानि युष्माकं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।
कथयध्वं महाभागा यद्वस्तत्त्वं मनीषितम् ॥ ६ ॥
दिग्गजा ऊचुः-कार्तिके मासि चाऽश्लेषा बहुलस्याष्टमी शिवा ।
तेन नक्षत्रयोगेन यो ददाति गुडौदनम् ॥ ७ ॥
इमं मन्त्रं जपञ्छ्राद्धे यताहारो ह्यकोपनः ।
बलदेवप्रभृतयो ये नागा बलवत्तराः ॥ ८ ॥
अनन्ता ह्यक्षया नित्यं भोगिनः सुमहाबलाः ।
तेषां कुलोद्भवा ये च महाभूता भुजङ्गमाः ॥ ९ ॥
ते मे बलिं प्रयच्छन्तु बलतेजोऽभिवृद्धये ।
यदा नारायणः श्रीमानुज्जहार वसुन्धराम् ॥ १० ॥
तद्बलं तस्य देवस्य धरामुद्धरतस्तथा ।
एवमुक्त्वा बलिं तत्र वल्मीके तु निवेदयेत् ॥ ११ ॥
गजेन्द्रकुसुमाकीर्णं नीलवस्त्रानुलेपनम् ।
निर्वपेत्तं तु वल्मीके अस्तं याते दिवाकरे ॥ १२ ॥
एवं तुष्टास्ततः सर्वे अधस्ताद्भारपीडिताः ।
श्रमं तं नावबुध्यामो धारयन्तो वसुन्धराम् ॥ १३ ॥

रेणुक बोले, हे महाबली गजगण ! मैं आप लोगोंके समीप गोपनीय धर्मोंको सुननेके लिये देवताओं और पितरोंकी आज्ञासे आया हूं। हे महाभागगण ! इसलिये आप लोग समाहित होकर धर्मविषय कहिये। (६)

दिग्गजगण बोले, कार्तिक महीनेमें कृष्णपक्षके आश्लेषा नक्षत्रयुक्त अष्टमी तिथिमें लोग श्राद्धके समय यताहारी और क्रोधरहित होकर नीचे कहे हुए मन्त्रको जपकर गुडौदन दान करें। बलदेव प्रभृति जो सब बलवान अनन्त अक्षय नित्यभोगी महाबली नाग हैं और उनके कुलमें उत्पन्न हुए जो महाभूत सर्प हैं, वे बल और तेजकी वृद्धिके लिये मेरे बलिको प्रतिग्रह करें। जिस समय श्रीमान् नारायणने वसुन्धराका उद्धार किया था, पृथ्वीका उद्धार करनेवाले उस ही विष्णुके सदृश बल होवे, इस मन्त्रको पढके बिलके बीच बलि निवेदन करें; जब सूर्यका अस्त होजाय, तब गजेन्द्र पुष्पसे युक्त काले वस्त्रसे ढकी हुई बलिको बिलमें डाले। (७-१२)

इसके प्रभावसे रसातलमें हम लोग भारसे अत्यन्त पीडित होनेपर भी सन्तुष्ट होते हैं और पृथ्वीको धारण करनेका

एवं मन्यामहे सर्वे भारार्ता निरपेक्षिणः ।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा यद्युपोषितः ॥ १४ ॥
एवं संवत्सरं कृत्वा दानं बहुफलं लभेत् ।
वल्मीके बलिमादाय तन्नो बहुफलं मतम् ॥ १५ ॥
ये च नागा महावीर्यास्त्रिषु लोकेषु कृत्स्नशः ।
कृतातिथ्या भवेयुस्ते शतं वर्षाणि तत्त्वतः ॥ १६ ॥
दिग्गजानां च तच्छ्रुत्वा देवताः पितरस्तथा ।
ऋषयश्च महाभागाः पूजयन्ति स्म रेणुकम् ॥ १७ ॥ [६०९०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे दिग्गजानां रहस्ये द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

महेश्वर उवाच-सारमुद्धृत्य युष्माभिः साधुधर्म उदाहृतः ।
धर्मगुह्यमिदं मत्तः शृणुध्वं सर्व एव ह ॥ १ ॥
येषां धर्माश्रिता बुद्धिः श्रद्दधानाश्च ये नराः ।
तेषां स्यादुपदेष्टव्यः सरहस्यो महाफलः ॥ २ ॥
निरुद्विग्नस्तु यो दद्यान्मासमेकं गवाह्निकम् ।
एकभक्तं तथाऽश्नीयाच्छ्रूयतां तस्य यत्फलम् ॥ ३ ॥

परिश्रम मालूम नहीं होसकता, हम लोग इस ही प्रकार भारार्त्त और निरपेक्ष होकर सब विषयोंको जानते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यदि उपवासी होकर एक वर्षतक इस ही प्रकार दान करें, तो उन्हें बहुत फल होता है। वल्मीकमें बलि प्रदान करनेपर हमारे मतसे अत्यन्त फल हुआ करता है, तीनों लोकोंमें जो सब महापराक्रमी नाग हैं, एक सौ वर्षतक यथार्थ रीतिसे उनका आतिथ्य होता है। देवताओं, पितरों और महाभाग ऋषियोंने दिग्गजोंका ऐसा वचन सुनके रेणुककी विधिवत् पूजा की। (१३-१७)

अनुशासनपर्वमें १३२ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १३३ अध्याय।

महेश्वर बोले, तुम लोगोंने सारतत्त्व उद्धार करके साधु-धर्म वर्णन किया, अब मेरे समीप सब कोई गोपनीय धर्म सुनो। जिन मनुष्योंकी बुद्धि धर्म-युक्त है और जो श्रद्धावान हैं, उन्हें यह महाफलजनक रहस्ययुक्त धर्म उपदेश करना चाहिये। जो लोग सावधान होकर एक महीनेतक गवाह्निक नाम गोसेवा करते और दिनमें एकवार भोजन किया करते हैं, उन्हें जो फल मिलता है, उसे सुनो। (१—३)

इमा गावो महाभागाः पवित्रं परमं स्मृताः ।
त्रीन्लोकान्धारयन्ति स्म सदेवासुरमानुषान् ॥ ४ ॥
तासु चैव महापुण्यं शुश्रूषा च महाफलम् ।
अहन्यहनि धर्मेण युज्यते वै गवाह्निकः ॥ ५ ॥
मया ह्येता ह्यनुज्ञाताः पूर्वमासन्कृते युगे ।
ततोऽहमनुनीतो वै ब्रह्मणा पद्मयोनिना ॥ ६ ॥
तस्माद्ध्वजस्थानगतस्तिष्ठत्युपरि मे वृषः ।
रमेऽहं सह गोभिश्च तस्मात्पूज्याः सदैवताः ॥ ७ ॥
महाप्रभावा वरदा वरं दद्युरुपासिताः ।
ता गावोऽस्यानुमन्यन्ते सर्वकर्मसु यत्फलम् ॥ ८ ॥
तस्य तत्र चतुर्भागो यो ददाति गवाह्निकम् ॥ ९ ॥ [६०९९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे महादेवरहस्ये त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

स्कन्द उवाच— ममाप्यनुमतो धर्मस्तं शृणुध्वं समाहिताः ।
नीलषण्डस्य शृङ्गाभ्यां गृहीत्वा मृत्तिकां तु यः ॥ १ ॥
अभिषेकं त्र्यहं कुर्यात्तस्य धर्मं निबोधत ।

ये सब महाभाग गौवें परम पवित्र रूपसे कही गई हैं, ये देव, असुर और मनुष्योंके सहित तीनों लोकोंको धारण कर रही हैं, इनकी सेवा करनेसे महापुण्य और महाफल मिलता है। गौवोंकी सेवा करनेवाले पुरुष प्रतिदिन धर्म उपार्जन किया करते हैं; पहले सत्ययुगमें गोगण मेरे द्वारा अनुज्ञात हुई थी, अनन्तर पद्मयोनि प्रजापतिने मुझसे विनय की, उस ही निमित्त वृषभ मेरे ध्वजस्थानमें निवास करता है, मैं गौवोंके सहित क्रीडा करता हूं, इस ही निमित्त वे सदा पूजनीय हैं। महाप्रभावयुक्त वर देनेवाली गौवें उपासित होनेपर वरदान करती हैं, मनुष्य सब कर्मोंके करनेसे जो फल पाता है, गौवें वह सब अनुमोदन किया करती हैं। जो लोग एक महीनेतक गौवोंकी सेवा करते हैं उन्हें उस फलका चौथा भाग प्राप्त होता है। (४—९)

अनुशासनपर्वमें १३३ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १३४ अध्याय।

स्कन्द बोले, सब कोई सावधान होके मेरा अनुमत धर्म सुनो। काले वृषभके दोनों सींगोंसे मृत्तिका लेकर

शोधयेदशुभं सर्वमाधिपत्यं परत्र च ॥ २ ॥
यावच्च जायते मर्त्यस्तावच्छूरो भविष्यति ।
इदं चाप्यपरं गुह्यं सरहस्यं निबोधत ॥ ३ ॥
प्रगृह्यौदुम्बरं पात्रं पक्वान्नं मधुना सह ।
सोमस्योत्तिष्ठमानस्य पौर्णमास्यां बलिं हरेत् ॥ ४ ॥
तस्य धर्मफलं नित्यं श्रद्दधाना निबोधत ।
साध्या रुद्रास्तथाऽऽदित्या विश्वेदेवास्तथाश्विनौ ॥ ५ ॥
मरुतो वसवश्चैव प्रतिगृह्णन्ति तं बलिम् ।
सोमश्च वर्धते तेन समुद्रश्च महोदधिः ॥ ६ ॥
एष धर्मो मयोद्दिष्टः सरहस्यः सुखावहः ॥ ७ ॥

विष्णुरुवाच- धर्मगुह्यानि सर्वाणि देवतानां महात्मनाम् ।
ऋषीणां चैव गुह्यानि यः पठेदाह्निकं सदा ॥ ८ ॥
शृणुयाद्वाऽनसूयुर्यः श्रद्दधानः समाहितः ।
नास्य विघ्नः प्रभवति भयं चास्य न विद्यते ॥ ९ ॥
ये च धर्माः शुभाः पुण्याः सरहस्या उदाहृताः ।
तेषां धर्मफलं तस्य यः पठेत जितेन्द्रियः ॥ १० ॥

जो लोग तीन दिन अभिषेक करते हैं, उस धर्मका फल कहता हूं। वे सब पापोंसे रहित होकर परलोकमें आधिपत्य पाते हैं और वे मनुष्य जन्म लेनेपर शूर होते हैं। और भी एक दूसरा गोपनीय रहस्य सुनो। उदुम्बर-पात्रमें मधुके सहित पक्वान्न रखके पौर्णमासी तिथिमें उदय होते हुए चन्द्रमाको बलि प्रदान करे। हे श्रद्धावान् तपोधनगण! उस विषयका नित्य धर्मफल सुनो। साध्यगण, रुद्र-गण, आदित्यगण, विश्वदेवगण, दोनों अश्विनीकुमार मरुद्गण और वसुगण उस बलिको प्रतिग्रह करते हैं, उससे चन्द्रमा और महोदधि समुद्रकी वृद्धि होती है। यह रहस्ययुक्त सुखदायक धर्म मेरे द्वारा वर्णित हुआ। (१--७)

विष्णु बोले, जो पुरुष असूयारहित, श्रद्धावान् और सावधान होकर प्रतिदिन देवताओं तथा ऋषियोंके गोपनीय धर्मोंका पाठ करता अथवा सुनता है, उसे कुछ भी विघ्न नहीं प्राप्त होते और न किसी भांतिका भय रहता है। जो सब रहस्ययुक्त, शुभ और पवित्र धर्म वर्णित हुए हैं, जो पुरुष विशेष रीतिसे जितेन्द्रिय होके उसका पाठ

नास्य पापं प्रभवति न च पापेन लिप्यते।
पठेद्वा श्रावयेद्वाऽपि श्रुत्वा वा लभते फलम् ॥ ११ ॥
भुञ्जते पितरो देवा हव्यं कव्यमथाक्षयम्।
श्रावयंश्चापि विप्रेन्द्रान्पर्वसु प्रयतो नरः ॥ १२ ॥
ऋषीणां देवतानां च पितृणां चैव नित्यदा।
भवत्यभिमतः श्रीमान्धर्मेषु प्रयतः सदा ॥ १३ ॥
कृत्वाऽपि पापकं कर्म महापातकवर्जितम्।
रहस्यधर्मं श्रुत्वेमं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १४ ॥
भीष्म उवाच– एतद्धर्मरहस्यं वै देवतानां नराधिप।
व्यासोद्दिष्टं मया प्रोक्तं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ १५ ॥
पृथिवी रत्नसंपूर्णा ज्ञानं चेदमनुत्तमम्।
इदमेव ततः श्राव्यमिति मन्येत धर्मवित् ॥ १६ ॥
नाश्रद्दधानाय न नास्तिकाय न नष्टधर्माय न निर्घृणाय।
न हेतुदुष्टाय गुरुद्विषे वा नानात्मभूताय निवेद्यमेतत् ॥ १७ ॥ [६११६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे स्कन्ददेवरहस्ये चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

करता है, उसे उन्हीं धर्मोंका फल प्राप्त होता है, उसके पाप छूट जाते और वह पापोंसे लिप्त नहीं होता। (८-११)

यह सब धर्मरहस्य पढके सुनाने-वालोंको भी फल मिलता है, पितर और देवगण उनका अक्षय हव्यकव्य भोग करते हैं। जो मनुष्य पर्वके समय सावधान होके ब्राह्मणोंको यह विषय सुनाते हैं, वे ऋषियों, देवताओं और पितरोंके अभिमत, श्रीमान् और धर्म विषयमें सदा प्रवृत्त हुआ करते हैं; मनुष्य महापातकके अतिरिक्त सब पाप कर्म करके भी यह रहस्यधर्म सुननेसे पापहीन होता है। (११—१४)

भीष्म बोले, हे नरनाथ! व्यास देवके कहे हुए सर्वदेवनमस्कृत देवताओंका यह धर्मरहस्य मेरे द्वारा वर्णित हुआ, यह रत्नपूरित पृथ्वीमें अत्यन्त उत्तम ज्ञानस्वरूप है; इसलिये धर्मज्ञ मनुष्योंको यह विषय अवश्य सुनना चाहिये। अश्रद्धावान्, नास्तिक, नष्टधर्म, नीच कर्म करनेवाले दुष्ट, अनात्मभूत पुरुषों और गुरुद्रोहियोंके निकट यह कथा न कहे। (१५-१७)

अनुशासनपर्वमे १३४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर उवाच– के भोज्या ब्राह्मणस्येह के भोज्याः क्षत्रियस्य ह ।
तथा वैश्यस्य के भोज्याः के शूद्रस्य च भारत ॥ १ ॥
भीष्म उवाच– ब्राह्मणा ब्राह्मणस्येह भोज्या ये चैव क्षत्रियाः ।
वैश्याश्चापि तथा भोज्याः शूद्राश्च परिवर्जिताः ॥ २ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या भोज्या वै क्षत्रियस्य ह ।
वर्जनीयास्तु वै शूद्राः सर्वभक्षा विकर्मिणः ॥ ३ ॥
वैश्यास्तु भोज्या विप्राणां क्षत्रियाणां तथैव च ।
नित्याग्नयो विविक्ताश्च चातुर्मास्यरताश्च ये ॥ ४ ॥
शूद्राणामथ यो भुङ्क्ते स भुङ्क्ते पृथिवीमलम् ।
मलं नृणां स पिबति मलं भुङ्क्ते जनस्य च ॥ ५ ॥
शूद्राणां यस्तथा भुङ्क्ते स भुङ्क्ते पृथिवीमलम् ।
पृथिवीमलमश्नन्ति ये द्विजाः शूद्रभोजिनः ॥ ६ ॥
शूद्रस्य कर्मनिष्ठायां विकर्मस्थोऽपि पच्यते ।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यो विकर्मस्थश्च पच्यते ॥ ७ ॥
स्वाध्यायनिरता विप्रास्तथा स्वस्त्ययने नृणाम् ।

अनुशासनपर्वमें १३५ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत ! इस संसारमें ब्राह्मणोंका भोज्य अन्न क्या है ? क्षत्रिय किसका अन्न भोजन करे ? वैश्यका भोज्य क्या है और शूद्र लोग किसका अन्न खायेंगे । (१)

भीष्म बोले, ब्राह्मणोंको ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यका अन्न भोजन करनेमें कुछ हानि नहीं है, केवल शूद्रका अन्न ब्राह्मणोंके लिये वार्जित है । क्षत्रियके विषयमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यका अन्न भोज्य है । केवल नीचकर्म करनेवाले सर्वभक्षी शूद्रोंका अन्न परित्याज्य है । वैश्योंके लिये ब्राह्मण और क्षत्रियोंका अन्न भोज्य है; जो लोग सदा अग्निहोत्र किया करते, विविक्त और चातुर्मास्य व्रतमें रत हैं, उन वैश्योंका ब्राह्मण और क्षत्रियोंको अन्न खाना योग्य है । जो ब्राह्मण शूद्रका अन्न खाता है, वह पृथ्वीका मल भोग किया करता है, वह मनुष्यों तथा सब लोगोंका मल-भोजन किया करता है । (१-५)

जो ब्राह्मण शूद्रोंका अन्न खानेवाले हैं, वे पृथ्वीका मल भोजन करते तथा पृथ्वीका सारा मल भोग किया करते हैं । सन्ध्यावन्दन आदि श्रेष्ठकर्मोंसे युक्त ब्राह्मण लोग यदि शूद्रकी सेवा करें, तो वे सब कोई नरकगामी होते

रक्षणे क्षत्रियं प्राहुर्वैश्यं पुष्ट्यर्थमेव च ॥ ८ ॥
करोति कर्म यद्वैश्यस्तद्गत्वा ह्युपजीवति ।
कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यमकुत्सा वैश्यकर्मणि ॥ ९ ॥
शूद्रकर्म तु यः कुर्यादवहाय स्वकर्म च ।
स विज्ञेयो यथा शूद्रो न च भोज्यः कदाचन ॥ १० ॥
चिकित्सकः काण्डपृष्ठः पुराध्यक्षः पुरोहितः ।
सांवत्सरो वृथाध्यायी सर्वे ते शूद्रसंमिताः ॥ ११ ॥
शूद्रकर्मस्वथैतेषु यो भुङ्क्ते निरपत्रपः ।
अभोज्यभोजनं भुक्त्वा भयं प्राप्नोति दारुणम् ॥१२॥
कुलं वीर्यं च तेजश्च तिर्यग्योनित्वमेव च ।
स प्रयाति यथा श्वा वै निष्क्रियो धर्मवर्जितः ॥१३ ॥
भुङ्क्ते चिकित्सकस्यान्नं तदन्नं च पुरीषवत् ।
पुंश्चल्यन्नं च मूत्रं स्यात्कारुकान्नं च शोणितम् ॥१४ ॥
विद्योपजीविनोऽन्नं च यो भुङ्क्ते साधुसंमतः ।
तदप्यन्नं यथा शौद्रं तत्साधुः परिवर्जयेत् ॥ १५ ॥

हैं । ब्राह्मणगण स्वाध्यायपाठ और मनुष्योंके स्वस्त्ययनमें रत रहें । क्षत्रिय लोगोंकी रक्षा और वैश्य मनुष्योंके पुष्टिकार्यमें प्रवृत्त होवे । प्राचीन ऋषियोंने कहा है, कि वैश्य जो कार्य करके धन प्राप्त करता है, उसे दान करनेसे जीवित रहता है, खेती, गोरक्षा और वाणिज्य वैश्योंके कर्म हैं, इसलिये इसमें कुछ निन्दा नहीं है । (६—९)

जो पुरुष अपना कार्य छोडके शूद्रका कर्म करता है, उसे शूद्रसदृश जानो, उसका अन्न किसी प्रकार भोजनके योग्य नहीं है । वैद्य, शस्त्रजीवी, पुराध्यक्ष, पुरोहित और बरस दिनतक वृथाध्यायी, ये सब कोई शूद्रके समान हैं । इनके यहां जो पुरुष निर्लज्ज होकर संतोषसे भोजन करता है, उसे अभोज्य भोजन करनेसे दारुण भय प्राप्त होता है, उसका कुल, वीर्य और तेज नष्ट होजाता है, और वह धर्मसे रहित होके कुत्तेकी भांति क्रियाहीन होनेसे मरके तिर्यक्योनिमें जन्मता है । जो पुरुष वैद्यका अन्न भोजन करता है, वह पुरीष भक्षण किया करता है, पुंश्चलीका अन्न मूत्र स्वरूप है, शिल्पीका अन्न रुधिरके तुल्य है । (१०—१४)

जो साधुसम्मत ब्राह्मण विद्योपजीवि का अन्न भोजन करता है, उसे

वर्धनीयस्य यो भुङ्क्ते तमाहुः शोणितं ह्रदम् ।
पिशुनं भोजनं भुङ्क्ते ब्रह्महत्यासमं विदुः ॥ १६ ॥
असत्कृतमवज्ञातं न भोक्तव्यं कदाचन ॥ १७ ॥
व्याधिं कुलक्षयं चैव क्षिप्रं प्राप्नोति ब्राह्मणः ।
नगरीरक्षिणो भुङ्क्ते श्वपचप्रवणो भवेत् ॥ १८ ॥
गोघ्ने च ब्राह्मणघ्ने च सुरापे गुरुतल्पगे ।
भुक्त्वाऽन्नं जायते विप्रो रक्षसां कुलवर्धनः ॥ १९ ॥
न्यासापहारिणो भुक्त्वा कृतघ्ने क्लीबवर्तिनि ।
जायते शबरावासे मध्यदेशबहिष्कृते ॥ २० ॥
अभोज्याश्चैव भोज्याश्च मया प्रोक्ता यथाविधि ।
किमन्यदद्य कौन्तेय मत्तस्त्वं श्रोतुमिच्छसि ॥ २१ ॥ [६१३७]

इतिश्रीमहाभारते० अनु० आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे भोज्याभोज्यान्नकथनं नाम पंचत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

युधिष्ठिर उवाच– उक्तास्तु भवता भोज्यास्तथाऽभोज्याश्च सर्वशः ।
अत्र मे प्रश्नसन्देहस्तन्मे वद पितामह ॥ १ ॥

शूद्रान्न भोजनका फल मिलता है, इसलिये साधु ब्राह्मण वैसे अन्नको भोजन न करे। प्राचीन लोग कहा करते हैं, कि निन्दनीय पुरुषका अन्न खाना रुधिरह्रदके भक्षणसदृश है। पण्डित लोग खलान्न भोजनको ब्रह्महत्यासदृश जानते हैं, असत्कृत तथा विना निमन्त्रणके कदापि भोजन न करना चाहिये यदि ब्राह्मण इस प्रकार भोजन करे तो वह शीघ्र ही व्याधियुक्त होता और उसका कुल नष्ट होता है। नगररक्षकका अन्न भोजन करनेसे चाण्डालत्व प्राप्त हुआ करता है। गोघाती, ब्रह्मघाती, सुरा पीनेवाले और विमातृगामीका अन्न भोजन करनेसे ब्राह्मण राक्षसोंके कुलकी वृद्धि करता है। न्यस्त धन हरनेवाले, क्लीब और कृतघ्नका अन्न भोजन करनेसे मध्यदेशसे बाहर शबरस्थानमें जन्म हुआ करता है। हे कुन्तीपुत्र! यह मैंने अभोज्य और भोज्यका विषय विधिपूर्वक वर्णन किया, अब मेरे समीप तुम दूसरे किस विषयको सुननेकी इच्छा करते हो? (१५—२१)

अनुशासनपर्वमें १३५ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें १३६ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आपने जिसका अन्न भोज्य है और जिसका अभोज्य है, उसे वर्णन किया, परन्तु

ब्राह्मणानां विशेषेण हव्यकव्यप्रतिग्रहे ।
नानाविधेषु भोज्येषु प्रायश्चित्तानि शंस मे ॥ २ ॥
भीष्म उवाच- हन्त वक्ष्यामि ते राजन्ब्राह्मणानां महात्मनाम् ।
प्रतिग्रहेषु भोज्ये च मुच्यते येन पाप्मनः ॥ ३ ॥
घृतप्रतिग्रहे चैव सावित्रीसमिदाहुतिः ।
तिलप्रतिग्रहे चैव सममेतद्युधिष्ठिर ॥ ४ ॥
मांसप्रतिग्रहे चैव मधुनो लवणस्य च ।
आदित्योदयनं स्थित्वा पूतो भवति ब्राह्मणः ॥ ५ ॥
काञ्चनं प्रतिगृह्याथ जपमानो गुरुश्रुतिम् ।
कृष्णायसं च विधृतं धारयन्मुच्यते द्विजः ॥ ६ ॥
एवं प्रतिगृहीतेऽथ धने वस्त्रे तथा स्त्रियाम् ।
एवमेव नरश्रेष्ठ सुवर्णस्य प्रतिग्रहे ॥ ७ ॥
अन्नप्रतिग्रहे चैव पायसेक्षुरसे तथा ।
इक्षुतैलपवित्राणां त्रिसन्ध्येऽप्सु निमज्जनम् ॥ ८ ॥
व्रीहौ पुष्पे फले चैव जले पिष्टमये तथा ।
यावके दधिदुग्धे च सावित्रीं शतशोऽन्विताम् ॥९॥

मुझे इस विषयमें सन्देह होता है; इसलिये आप उस संशयको दूर करिये। ब्राह्मणोंका हव्यकव्य प्रतिग्रहमें विशेष करके अनेक प्रकारके भोज्य विषयोंमें जो सब प्रायश्चित्त हैं, वह विषय आप मेरे समीप कहिये। (१—२)

भीष्म बोले, हे महाराज! महानुभाव ब्राह्मण लोग प्रतिग्रह और भोज्य विषयोंमें जिसके सहारे पापोंसे छूटते हैं, वह तुम्हारे समीप कहता हूं। हे युधिष्ठिर! घृत प्रतिग्रह करनेसे सावित्री मन्त्रके द्वारा समिध होम करना होता है, तिल प्रतिग्रहको भी घृतके समान जानो। मधुमांस और नमक प्रतिग्रह करनेसे सूर्यके उदयकाल पर्यन्त खडा रहके ब्राह्मण पवित्र होता है। काञ्चन प्रतिग्रह करनेसे ब्राह्मण गुरुश्रुति जप करते हुए लोगोंके सम्मुख कृष्णायस धारण करके सब पापोंसे मुक्त हुआ करते हैं। (३—६)

हे पुरुषश्रेष्ठ! इस ही प्रकार स्त्रियोंके धन और वस्त्र प्रतिग्रह करनेसे ब्राह्मण उपरोक्त जप करनेसे पापरहित होता है। अन्न प्रतिग्रह करने और पायस, ईखका रस, ईख, तेल तथा पवित्र वस्तुओंको लेनेसे त्रिसन्ध्या जलमें निम-

उपानहौ च च्छत्रं च प्रतिगृह्योर्ध्वदेहिके ।
जपेच्छतं समायुक्तस्तेन मुच्येत पाप्मना ॥ १० ॥
क्षेत्रप्रतिग्रहे चैव ग्रहसूतकयोस्तथा ।
त्रीणि रात्राण्युपोषित्वा तेन पापाद्विमुच्यते ॥ ११ ॥
कृष्णपक्षे तु यः श्राद्धं पितॄणामश्नुते द्विजः ।
अन्नमेतदहोरात्रात्पूतो भवति ब्राह्मणः ॥ १२ ॥
न च सन्ध्यामुपासीत न च जाप्यं प्रवर्तयेत् ।
न सङ्किरेत्तदन्नं च ततः पूयेत ब्राह्मणः ॥ १३ ॥
इत्यर्थमपराह्णे तु पितॄणां श्राद्धमुच्यते ।
यथोक्तानां यदश्नीयुर्ब्राह्मणाः पूर्वकेतिताः ॥ १४ ॥
मृतकस्य तृतीयाहे ब्राह्मणो योऽन्नमश्नुते ।
स त्रिवेलं समुन्मज्य द्वादशाहेन शुध्यति ॥ १५ ॥
द्वादशाहे व्यतीते तु कृतशौचो विशेषतः ।
ब्राह्मणेभ्यो हविर्दत्त्वा मुच्यते तेन पाप्मना ॥ १६ ॥
मृतस्य दशरात्रेण प्रायश्चित्तानि दापयेत् ।

जप करना होगा। धान्य, फूल, जल, पिष्टमय वस्तु, यावक और दही, दूध प्रतिग्रह करनेसे एक एक सौ बार गायत्री जप करे। उर्ध्वदेहिक कार्य सम्बन्धीय पादुका और वस्त्र प्रतिग्रह करनेसे समाहित होकर एक सौ बार गायत्री जपनेपर पापोंसे मुक्ति होती है। ग्रहण और अशौचकालमें क्षेत्र प्रतिग्रह करनेसे त्रिरात्र उपवास करके उस पापसे छूटेगा। (७—११)

जो ब्राह्मण कृष्णपक्षमें पितरोंका श्राद्धान्न भोजन करता है, वह उस अन्न भोजनके निमित्त रात दिन उपवास करनेसे पवित्र हुआ करता है; विना स्नान किये सन्ध्या उपासना न करे, जप करनेमें प्रवृत्त न होवे और दिनमें दूसरी बार भोजन न करे, तो ब्राह्मण पवित्र होगा। अपराह्णमें क्षुद्बोधके हेतु पितरोंका श्राद्ध कहा गया है, उस समय पहले निमन्त्रित लोग अन्न भोजन करें। मृत पुरुषके घरमें तीसरे दिन जो ब्राह्मण अन्न भोजन करता है, वह त्रिसन्ध्या स्नान करते हुए बारहवें दिन पवित्र होता तथा द्वादशाह बीतनेपर विशेष रीतिसे पवित्र होकर ब्राह्मणोंको घृतदान करनेसे पापरहित होगा। दश रात्रितक मृत पुरुषके घरमें अन्न भोजन करनेसे निम्नलिखित प्रायश्चित्त करना

सावित्रीं रैवतीमिष्टिं कूश्माण्डमघमर्षणम् ॥ १७ ॥
मृतकस्य त्रिरात्रे यः समुद्दिष्टे समश्नुते ।
सप्तत्रिषवणं स्नात्वा पूतो भवति ब्राह्मणः ॥ १८ ॥
सिद्धिमाप्नोति विपुलामापदं चैव नाप्नुयात् ॥ १९ ॥
यस्तु शूद्रैः समश्नीयाद्ब्राह्मणोऽप्येकभोजने ।
अशौचं विधिवत्तस्य शौचमत्र विधीयते ॥ २० ॥
यस्तु वैश्यैः सहाश्नीयाद्ब्राह्मणोऽप्येकभोजने ।
स वै त्रिरात्रं दीक्षित्वा मुच्यते तेन कर्मणा ॥ २१ ॥
क्षत्रियैः सह योऽश्नीयाद्ब्राह्मणोऽप्येकभोजने ।
आप्लुतः सह वासोभिस्तेन मुच्येत पाप्मना ॥ २२ ॥
शूद्रस्य तु कुलं हन्ति वैश्यस्य पशुबान्धवान् ।
क्षत्रियस्य श्रियं हन्ति ब्राह्मणस्य सुवर्चसम् ॥ २३ ॥
प्रायश्चित्तं च शान्तिं च जुहुयात्तेन मुच्यते ।
सावित्रीं रैवतीमिष्टिं कूश्माण्डमघमर्षणम् ॥ २४ ॥
तथोच्छिष्टमथाऽन्योन्यं संप्राशेन्नात्र संशयः ।
रोचना विरजा रात्रिर्मङ्गलालम्भनानि च ॥ २५ ॥ [६१६२]

इतिश्रीमहाभारते० अनु० आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे प्रायश्चित्तविधिर्नाम
षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

होगा, गायत्रीजप, रैवत नाम पवित्रेष्टि 'यद्देवादेवहेडन' यह अनुवाकपञ्चक और अघमर्षण मन्त्र जप करे। (१२-१७)

जो लोग मृत पुरुषके गृहमें त्रिरात्र भोजन करते हैं, वे ब्राह्मण सप्त-त्रिषवण स्नान करनेसे पवित्र होकर विपुल सिद्धि लाभ करते तथा आपद्ग्रस्त नहीं होते। जो ब्राह्मण शूद्रके सङ्ग एकत्र भोजन करता है, उसका विधि-पूर्वक अशौच ग्रहणके सहारे शुद्धि विहित है। जो ब्राह्मण वैश्यके साथ एकत्र भोजन करता है, त्रिरात्र भिक्षा करके जीवन व्यतीत करनेसे उस पापसे मुक्त होगा। जो ब्राह्मण क्षत्रियके सहित एकत्र भोजन करता है, वह वस्त्रके सहित नहानेसे उस पापसे रहित हुआ करता है; एकत्र भोजन शूद्रके कुलको नष्ट करता, वैश्योंके पशु और बान्धवोंको विध्वंस करता, क्षत्रियोंको श्रीभ्रष्ट और ब्राह्मणोंका तेज नष्ट करता है; इसलिये उसके प्रायश्चित्त और शान्तिके लिये होम, गायत्री जप, रैवत नाम इष्टि

युधिष्ठिर उवाच– दानेन वर्ततेत्याह तपसा चैव भारत ।
तदेतन्मे मनोदुःखं व्यपोह त्वं पितामह ।
किं स्वित्पृथिव्यां ह्येतन्मे भवाञ्छंसितुमर्हति ॥ १ ॥
भीष्म उवाच– शृणु यैर्धर्मनिरतैस्तपसा भावितात्मभिः ।
लोका ह्यसंशयं प्राप्ता दानपुण्यरतैर्नृपैः ॥ २ ॥
सत्कृतश्च तथाऽऽत्रेयः शिष्येभ्यो ब्रह्म निर्गुणम् ।
उपदिश्य तदा राजन् गतो लोकाननुत्तमान् ॥ ३ ॥
शिबिरौशीनरः प्राणान् प्रियस्य तनयस्य च ।
ब्राह्मणार्थमुपाकृत्य नाकपृष्ठमितो गतः ॥ ४ ॥
प्रतर्दनः काशिपतिः प्रदाय तनयं स्वकम् ।
ब्राह्मणायातुलां कीर्तिमिह चामुत्र चाऽश्नुते ॥ ५ ॥
रन्तिदेवश्च सांकृत्यो वसिष्ठाय महात्मने ।
अर्घ्यं प्रदाय विधिवल्लेभे लोकाननुत्तमान् ॥ ६ ॥
दिव्यं शतशलाकं च यज्ञार्थं काञ्चनं शुभम् ।

'यद्देवा देवहेडनं' इत्यादि पांच अनुवाक और अघमर्षण प्रभृति जप करे। यदि परस्परमें जूठा भोजन किया जावे, तो रोचना, दूब और हरिद्रादि मङ्गल समालम्भन करे, इस विषयमें सन्देह नहीं है। (१८--२५)

अनुशासनपर्वमें १३६ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें १३७ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत पितामह ! दान तपस्यामेंसे कौन विषय श्रेष्ठ है ? उसे कहके आप हमारे मनका दुःख दूर करिये। (१)

भीष्म बोले, जिन दानपुण्यमें रत, धर्ममें तत्पर, तपस्याके सहारे शुद्धचित्त राजाओंने सन्देहरहित होकर श्रेष्ठ लोकोंको पाया है, उसे सुनो। हे महाराज ! आत्रेय मुनिने शिष्योंसे सत्कृत होकर उन्हें निर्गुण ब्रह्मका उपदेश करके उत्तम लोगोंको पाया था। औशीनर शिबिराजा ब्राह्मणके लिये अपना पुत्र प्रदान करके इस लोकसे स्वर्गमें गये थे। काशीपति प्रतर्दन ब्राह्मणके निमित्त अपना पुत्र दान करनेसे इस लोक और परलोकमें अतुल कीर्त्ति भोगते हैं। सांकृतिपुत्र रन्तिदेवने महानुभाव वसिष्ठको विधिपूर्वक अर्घ-प्रदान करके उत्तम लोकोंको पाया है। (२–६)

देवावृध राजाने यज्ञके निमित्त ब्राह्मणोंको एक सौ शलाकायुक्त दिव्य सुवर्ण-

छत्रं देवावृधो दत्त्वा ब्राह्मणायास्थितो दिवम् ॥ ७ ॥
भगवानम्बरीषश्च ब्राह्मणायामितौजसे ।
प्रदाय सकलं राष्ट्रं सुरलोकमवाप्तवान् ॥ ८ ॥
सावित्रः कुण्डलं दिव्यं यानं च जनमेजयः ।
ब्राह्मणाय च गा दत्त्वा गतो लोकाननुत्तमान् ॥ ९ ॥
वृषादर्भिश्च राजर्षी रत्नानि विविधानि च ।
रम्यांश्चावसथान्दत्त्वा द्विजेभ्यो दिवमागतः ॥ १० ॥
निमी राष्ट्रं च वैदर्भिः कन्यां दत्त्वा महात्मने ।
अगस्त्याय गतः स्वर्गं सपुत्रपशुबान्धवः ॥ ११ ॥
जामदग्न्यश्च विप्राय भूमिं दत्त्वा महायशाः ।
रामोऽक्षयांस्तथा लोकान् जगाम मनसोऽधिकान् ॥१२॥
अवर्षति च पर्जन्ये सर्वभूतानि देवराट् ।
वसिष्ठो जीवयामास येन यातोऽक्षयां गतिम् ॥ १३ ॥
रामो दाशरथिश्चैव हुत्वा यज्ञेषु वै वसु ।
स गतो ह्यक्षयान् लोकान्यस्य लोके महद्यशः ॥१४॥
कक्षसेनश्च राजर्षिर्वसिष्ठाय महात्मने ।
न्यासं यथावत्संन्यस्य जगाम सुमहायशाः ॥ १५ ॥

मय शुभ छत्र प्रदान करके सुरपुरमें गमन किया है। भगवान् अम्बरीष राजाने अत्यन्त तेजस्वी ब्राह्मणोंको समस्त राज्य दान करके सुरलोक पाया है। सूर्यवंशीय जनमेजय राजाने ब्राह्मणको दिव्य कुण्डल और गऊ दान करके उत्तम लोकोंमें गमन किया है। राजर्षि वृषादर्भि ब्राह्मणोंको विविध रत्न और रमणीय आश्रम दान करके अमरलोकमें गये हैं। विदर्भराजपुत्र निमिने अगस्त्यको राष्ट्र और कन्या दान करके पुत्र, पशु और बांधवोंके सहीत स्वर्गमें गमन किया। महायशस्वी जामदग्न्य रामने ब्राह्मणोंको भूमिदान करनेसे और मन सङ्कल्पसे भी अधिक अक्षय लोकोंमें गमन किया। देवराज इंद्रने अवर्षण करनेपर वसिष्ठको प्राणियोंके जीवित रखनेसे अक्षय गति प्राप्त हुई है। (७—१३)

दशरथपुत्र राम, जिसका जगत्के बीच महत् यश विख्यात है, उन्होंने यज्ञोंमें धनदान करके अक्षय लोकोंमें गमन किया है। राजर्षि कक्षसेन महानुभाव वसिष्ठको विधिपूर्वक न्यस्त धन

करन्धमस्य पौत्रस्तु मरुत्तोऽविक्षितः सुतः।
कन्यामाङ्गिरसे दत्त्वा दिवमाशु जगाम सः ॥ १६ ॥
ब्रह्मदत्तस्य पाञ्चाल्यो राजा धर्मभृतां वरः।
निधिं शंखमनुज्ञाप्य जगाम परमां गतिम् ॥ १७ ॥
राजा मित्रसहश्चैव वसिष्ठाय महात्मने।
मदयन्तीं प्रियां भार्यां दत्त्वा च त्रिदिवं गतः ॥ १८ ॥
मनोः पुत्रश्च सुद्युम्नो लिखिताय महात्मने।
दण्डमुद्धृत्य धर्मेण गतो लोकाननुत्तमान् ॥ १९ ॥
सहस्रचित्यो राजर्षिः प्राणानिष्टान्महायशाः।
ब्राह्मणार्थे परित्यज्य गतो लोकाननुत्तमान् ॥ २० ॥
सर्वकामैश्च संपूर्णं दत्त्वा वेश्म हिरण्मयम्।
मौद्गल्याय गतः स्वर्गं शतद्युम्नो महीपतिः ॥ २१ ॥
भक्ष्यभोज्यस्य च कृतान् राशयः पर्वतोपमान्।
शाण्डिल्याय पुरा दत्त्वा सुमन्युर्दिवमास्थितः ॥ २२ ॥
नाम्ना च द्युतिमान्नाम शाल्वराजो महाद्युतिः।
दत्त्वा राज्यमृचीकाय गतो लोकाननुत्तमान् ॥ २३ ॥
मदिराश्वश्च राजर्षिर्दत्त्वा कन्यां सुमध्यमाम्।

प्रदान करनेसे अत्यन्त यशस्वी होकर स्वर्गमें गये हैं। करन्धम अविक्षितका पुत्र मरुत्त अङ्गिराको कन्या दान करके शीघ्र ही स्वर्गलोकमें गया। धार्मिकश्रेष्ठ पाञ्चालदेशीय राजा ब्रह्मदत्तको शङ्खरत्न दान करके परम गति पाई है। मित्रसह राजा महात्मा वसिष्ठको मदयन्ती नाम्नी प्रिय भार्या दान करके देवलोकमें गया है। (१४–१८)

मनुके पुत्र सुद्युम्नने महात्मा लिखितको धर्मपूर्वक चौरयोग्य हस्तच्छेदरूपी दण्डसे उद्धार करके उत्तम लोकोंको पाया है। महायशस्वी राजर्षि सहस्रचित्यने ब्राह्मणोंके लिये प्रिय प्राण परित्याग करके उत्तम लोकोंमें गमन किया है। शतद्युम्न राजा मौद्गल्य मुनिको सर्वकामयुक्त स्वर्णमय गृह दान करके स्वर्गमें गया है। पहले समयमें सुमन्यु राजा शाण्डिल्य मुनिको पर्वतसदृश भक्ष्य भोज्य वस्तुओंकी राशि दान करके स्वर्ग लोकमें गये हैं। (१९–२२)

द्युतिमान् नाम महातेजस्वी शाल्वराजने ऋचीक ऋषिको राज्य दान करके अत्यन्त उत्तम लोकोंमें गमन

हिरण्यहस्ताय गतो लोकान्देवैरधिष्ठितान् ॥ २४ ॥
लोमपादश्च राजर्षिः शान्तां दत्त्वा सुतां प्रभुः ।
ऋष्यशृङ्गाय विपुलैः सर्वैः कामैरयुज्यत ॥ २५ ॥
कौत्साय दत्त्वा कन्यां तु हंसीं नाम यशस्विनीम् ।
गतोऽक्षयानतो लोकान् राजर्षिश्च भगीरथः ॥ २६ ॥
दत्त्वा शतसहस्रं तु गवां राजा भगीरथः ।
सवत्सानां कोहलाय गतो लोकाननुत्तमान् ॥ २७ ॥
एते चान्ये च बहवो दानेन तपसा च ह ।
युधिष्ठिर गताः स्वर्गं निवर्तन्ते पुनः पुनः ॥ २८ ॥
तेषां प्रतिष्ठिता कीर्तिर्यावत्स्थास्यति मेदिनी ।
गृहस्थैर्दानतपसा यैर्लोका वै विनिर्जिताः ॥ २९ ॥
शिष्टानां चरितं ह्येतत्कीर्तितं मे युधिष्ठिर ।
दानयज्ञप्रजासर्गैरेते हि दिवमास्थिताः ॥ ३० ॥
दत्त्वा तु सततं तेऽस्तु कौरवाणां धुरन्धर ।
दानयज्ञक्रियायुक्ता बुद्धिर्धर्मोपचायिनी ॥ ३१ ॥
यत्र ते नृपशार्दूल संदेहो वै भविष्यति ।
श्वः प्रभाते हि वक्ष्यामि संध्या हि समुपस्थिता ॥३२॥ [६१९४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

किया है। राजर्षि मदिराश्वने हिरण्यहस्त मुनिको सुमध्यमा कन्या दान करके देवताओंके अधिष्ठित लोकोंमें गमन किया है। राजर्षि लोमपाद ऋष्य-शृङ्गको शान्तानामी कन्या दान करके सर्वकामयुक्त हुए। राजर्षि भगीरथने कौत्स ऋषिको हंसी नाम्नी यशस्विनी कन्या दान करके अक्षयलोकोंमें गमन किया है, राजा भगीरथने कोहल मुनिको सौ हजार सवत्सा गऊ दान करके उत्तम लोकोंको पाया है। (२३-२७)

हे युधिष्ठिर! ये सब तथा दूसरे बहुतेरे राजा दान तथा तपस्याके सहारे स्वर्गमें गये हैं और बार बार निवृत्त होते हैं; जबतक पृथ्वी है, तबतक उनकी कीर्त्ति प्रतिष्ठित रहेगी। हे युधिष्ठिर! जिन गृहस्थोंने दान और तपस्याके सहारे सब लोकोंको जय किया है, यह उन शिष्ट पुरुषोंका चरित मैंने वर्णन किया, इन्होंने दान, यज्ञ

युधिष्ठिर उवाच- श्रुतं मे भवतस्तात सत्यव्रतपराक्रम ।
दानधर्मेण महता ये प्राप्तास्त्रिदिवं नृपाः ॥ १ ॥
इमांस्तु श्रोतुमिच्छामि धर्मान्धर्मभृतां वर ।
दानं कतिविधं देयं किं तस्य च फलं लभेत् ॥ २ ॥
कथं केभ्यश्च धर्म्यं च दानं दातव्यमिष्यते ।
कैः कारणैः कतिविधं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ३ ॥
भीष्म उवाच- शृणु तत्त्वेन कौन्तेय दानं प्रति ममानघ ।
यथा दानं प्रदातव्यं सर्ववर्णेषु भारत ॥ ४ ॥
धर्मादर्थाद्भयात्कामात्कारुण्यादिति भारत ।
दानं पञ्चविधं ज्ञेयं कारणैर्यैर्निबोध तत् ॥ ५ ॥
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ।
इति दानं प्रदातव्यं ब्राह्मणेभ्योऽनसूयता ॥ ६ ॥
ददाति वा दास्यति वा मह्यं दत्तमनेन वा ।

और पुत्रोत्पादनके द्वारा स्वर्गलोक पाया है। हे कुरुकुलधुरन्धर! पूर्वोक्त राजा लोग सदा दान करते हुए धर्मयुक्तबुद्धिको दान तथा यज्ञकार्यमें नियुक्त रखते थे। हे नृपश्रेष्ठ! जिस विषयमें सन्देह हो, उसे कल्ह भोरके समय कहना; क्यों कि, अब सन्ध्याका समय उपस्थित हुआ है। (२८—३२)

अनुशासनपर्वमें १३७ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १३८ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे सत्यव्रत सत्यपराक्रमी पितामह! उत्तम महत् दानधर्मके सहारे जो सब राजा देवलोकमें गये हैं, मैंने वह सब आपके समीप सुना। हे धार्मिकश्रेष्ठ! अब कितने प्रकारके दान देने योग्य हैं और उनसे क्या फल प्राप्त होता है? किस प्रकार, किन लोगोंको, किन कारणोंसे और कई प्रकारका धर्मपूर्वक दान करना उचित है, यह सब धर्मविषय यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं। (१–३)

भीष्म बोले, हे पापरहित भरतवंशावतंस कुन्तीपुत्र! सब वर्णोंको जिस प्रकार दान करना होता है, वह मेरे समीप यथार्थ रीतिसे सुनो। हे भारत! धर्म, अर्थ, भय, काम और कारुण्यवशसे दानको पांच प्रकारका जानो। जिस कारणसे जो दान किया जाता है, उसे सुनो। असूयारहित होके ब्राह्मणोंको दान करना योग्य है, दान करनेसे मनुष्य इस लोकमें परम कीर्त्तिमान् होकर परलोकमें सुख पाता है।

इत्यर्थिभ्यो निशम्यैव सर्वं दातव्यमार्थिने ॥ ७ ॥
नास्याहं न मदीयोऽयं पापं कुर्याद्विमानितः।
इति दद्याद्भयादेव दृढं मूढाय पण्डितः ॥ ८ ॥
प्रियो मेऽयं प्रियोऽस्याहमिति संप्रेक्ष्य बुद्धिमान्।
वयस्यायैवमक्लिष्टं दानं दद्यादतन्द्रितः ॥ ९ ॥
दीनश्च याचते चायमल्पेनाऽपि हि तुष्यति।
इति दद्याद्दरिद्राय कारुण्यादिति सर्वथा ॥ १० ॥
इति पञ्चविधं दानं पुण्यकीर्तिविवर्धनम्।
यथाशक्त्या प्रदातव्यमेवमाह प्रजापतिः ॥ ११ ॥ [६२०५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥

युधिष्ठिर उवाच- पितामह महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद।
आगमैर्बहुभिः स्फीतो भवान्नः प्रवरे कुले ॥ १ ॥
त्वत्तो धर्मार्थसंयुक्तमायत्यां च सुखोदयम्।
आश्चर्यभूतं लोकस्य श्रोतुमिच्छाम्यरिन्दम ॥ २ ॥
अयं च कालः संप्राप्तो दुर्लभो ज्ञातिबान्धवैः।

यह पुरुष मुझे दान करता है, करेगा अथवा किया है, अर्थियोंका ऐसा वचन सुनके उन्हें सब वस्तु दान करनी योग्य है। (४—७)

न मैं इसका हूं और न यह पुरुष मेरा है, परन्तु यह अवमानित होनेपर पापकार्य करेगा, ऐसा समझके पण्डित लोग दृढ भयसे मूढ मनुष्योंको दान करते हैं। यह मेरा प्यारा है और मैं भी इसे प्रिय हूं, बुद्धिमान पुरुष ऐसा जानके सावधान होकर मित्र पुरुषको दान करते हैं। यह पुरुष अत्यन्त दीन है, इसलिये जांचता है और थोडेमें ही सन्तुष्ट होगा, ऐसा विचार कर करुणा-वशसे दरिद्रोंको दान करे। प्रजापतिने कहा है, कि ये पांच प्रकारके दान पुण्य और कीर्त्तिकी वृद्धि करते हैं; इसलिये शक्तिके अनुसार दान करना योग्य होता है। (८—११)

अनुशासनपर्वमें १३८ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १३९ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्वशास्त्रविशारद महाप्राज्ञ पितामह! आप हमारे इस श्रेष्ठवंशमें अनेक प्रकारके शास्त्रज्ञानसे युक्त हैं। हे अरिदमन! आपके समीप उत्तरकालमें सुखदायक और लोगोंके

शास्ता च न हि नः कश्चित्त्वामृते पुरुषर्षभ ॥ ३ ॥
यदि तेऽहमनुग्राह्यो भ्रातृभिः सहितोऽनघ ।
वक्तुमर्हसि नः प्रश्नं यत्त्वां पृच्छामि पार्थिव ॥ ४ ॥
अयं नारायणः श्रीमान्सर्वपार्थिवसंमतः ।
भवन्तं बहुमानेन प्रश्रयेण च सेवते ॥ ५ ॥
अस्य चैव समक्षं त्वं पार्थिवानां च सर्वशः ।
भ्रातॄणां च प्रियार्थं मे स्नेहाद्भाषितुमर्हसि ॥ ६ ॥
वैशम्पायन उवाच- तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स्नेहादागतसंभ्रमः ।
भीष्मो भागीरथीपुत्र इदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥
भीष्म उवाच- अहं ते कथयिष्यामि कथामतिमनोहराम् ।
अस्य विष्णोः पुरा राजन्प्रभावो यो मया श्रुतः ॥८॥
यश्च गोवृषभाङ्कस्य प्रभावस्तं च मे शृणु ।
रुद्राण्याः संशयो यश्च दंपत्योस्तं च मे शृणु ॥ ९ ॥
व्रतं चचार धर्मात्मा कृष्णो द्वादशवार्षिकम् ।
दीक्षितं चागतौ द्रष्टुमुभौ नारदपर्वतौ ॥ १० ॥

लिये आश्चर्यस्वरूप धर्मार्थयुक्त वचन सुननेकी अभिलाष करता हूं। यह समय स्वजनों और बान्धवोंके लिये दुर्लभ है। हे पुरुषश्रेष्ठ! आपके अतिरिक्त हम लोगोंके लिये दूसरा कोई भी उपदेष्टा नहीं है। हे पापरहित! मैं भाइयोंके सहित यदि आपका कृपापात्र होऊं, तो मैं जो पूछता हूं उसका आपको उत्तर देना उचित है। ये सब राजाओंके सम्मानभाजन श्रीमान् नारायण आपका बहुमान और विनयके सहित सेवा करते हैं, इनके और सब राजाओंके सम्मुख मेरे और भ्रातृगणोंकी प्रीतिके निमित्त आप इस विषयको विस्तारपूर्वक वर्णन करिये। (१—६)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, गङ्गानन्दन भीष्मने युधिष्ठिरका वचन सुनके प्रीति-पूर्वक सम्भ्रमयुक्त होकर यह वक्ष्यमाण वचन कहा। (७)

भीष्म बोले, पहले समयमें मैंने विष्णुका जो प्रभाव सुना था, वह अत्यन्त मनोहर कथा तुम्हारे समीप कहूंगा। वृषभध्वजका जैसा प्रभाव सुना है उसे और रुद्र रुद्राणीको जिस प्रकार संशय हुआ था, वह कथा भी मेरे समीप सुनो। पहले समयमें धर्मात्मा कृष्णने बारह वर्षका व्रताचरण किया था, दीक्षित होनेपर पर्वत, नारद,

कृष्णद्वैपायनश्चैव धौम्यश्च जपतां वरः ।
देवलः काश्यपश्चैव हस्तिकाश्यप एव च ॥ ११ ॥
अपरे चर्षयः सन्तो दीक्षादमसमन्विताः ।
शिष्यैरनुगताः सिद्धैर्देवकल्पैस्तपोधनैः ॥ १२ ॥
तेषामतिथिसत्कारमर्चनीयं कुलोचितम् ।
देवकीतनयः प्रीतो देवकल्पमकल्पयत् ॥ १३ ॥
हरितेषु सुवर्णेषु बर्हिष्केषु नवेषु च ।
उपोपविविशुः प्रीता विस्तरेषु महर्षयः ॥ १४ ॥
कथाश्चक्रुस्ततस्ते तु मधुरा धर्मसंहिताः ।
राजर्षीणां सुराणां च ये वसन्ति तपोधनाः ॥ १५ ॥
ततो नारायणं तेजो व्रतचर्येन्धनोत्थितम् ।
वक्त्रान्निःसृत्य कृष्णस्य वह्निरद्भुतकर्मणः ॥ १६ ॥
सोऽग्निर्ददाह तं शैलं सद्रुमं सलताक्षुपम् ।
सपक्षिमृगसंघातं सश्वापदसरीसृपम् ॥ १७ ॥
मृगैश्च विविधाकारैर्हाहाभूतमचेतनम् ।
शिखरं तस्य शैलस्य मथितं दीनदर्शनम् ॥ १८ ॥
स तु वह्निर्महाज्वालो दग्ध्वा सर्वमशेषतः ।

कृष्णद्वैपायन, जापकश्रेष्ठ धौम्य, देवल, काश्यप, हस्तिकाश्यप और दूसरे बहुतेरे दीक्षादमयुक्त शिष्योंके सहित साधु महर्षिगण तथा देवकल्प सिद्ध तपस्वियोंने उनका दर्शन करनेके लिये आगमन किया। (८—१२)

देवकीपुत्र कृष्णने उन लोगोंके आनेसे प्रसन्न होकर देवतुल्य पूजनीय अतिथियोंका यथायोग्य कुलके अनुसार सत्कार किया, महर्षिगण हरे और सुवर्ण वर्ण बर्हिनिर्मित नवीन आसनोंपर कृष्णके समीप बैठे। अनन्तर वे तपस्वी राजर्षि लोग और देवताओंके धर्मयुक्त मधुर कथा कहने लगे। अनन्तर अद्भुत कर्म करनेवाले कृष्णके मुखमण्डलसे व्रतचर्यारूपी इन्धनके सहारे नारायण तेजस्वरूप अग्नि निकलकर वृक्ष, लता, क्षुद्र तरु, पक्षी, मृग, श्वापद और सरीसृपोंके सहित उस पर्वतको जलाने लगी। (१३-१७)

अनेक प्रकारके मृगसमूह हाहाकार करते हुए अचेत हुए, उस पर्वतका शिखरस्थान दीनदशायुक्त और मथित होने लगा; उस महाज्वालायुक्त अग्निने

विष्णोः समीप आगम्य पादौ शिष्यवदस्पृशत् ॥१९॥
ततो विष्णुर्गिरिं दृष्ट्वा निर्दग्धमरिकर्शनः ।
सौम्यैर्दृष्टिनिपातैस्तं पुनः प्रकृतिमानयत् ॥ २० ॥
तथैव स गिरिर्भूयः प्रपुष्पितलताद्रुमः ।
स पक्षिगणसंघुष्टः सश्वापदसरीसृपः ॥ २१ ॥
तमद्भुतमचिन्त्यं च दृष्ट्वा मुनिगणस्तदा ।
विस्मितो हृष्टरोमा च बभूवास्राविलेक्षणः ॥ २२ ॥
ततो नारायणो दृष्ट्वा तानृषीन्विस्मयान्वितान् ।
प्रश्रितं मधुरं स्निग्धं पप्रच्छ वदतां वरः ॥ २३ ॥
किमर्थमृषिपूगस्य त्यक्तसंगस्य नित्यशः ।
निर्ममस्यागमवतो विस्मयः समुपागतः ॥ २४ ॥
एतन्मे संशयं सर्वं याथातथ्यमनिन्दिताः ।
ऋषयो वक्तुमर्हन्ति निश्चितार्थं तपोधनाः ॥ २५ ॥
ऋषय ऊचुः— भवान्विसृजते लोकान् भवान्संहरते पुनः ।
भवान् शीतं भवानुष्णं भवानेव च वर्षति ॥ २६ ॥
पृथिव्यां यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।

निःशेष रूपसे सबको जलाकर विष्णुके निकट आके शिष्यकी भांति उनके दोनों चरणोंको स्पर्श किया। अरिकर्षण नारायणने उस पर्वतको निःशेष रीतिसे जलते हुए देखकर सौम्यदृष्टिके सहारे फिर उसे प्रकृतिस्थ किया। (१८-२०)

वह पर्वत पहलेकी भांति वृक्ष, लता, पुष्प और पक्षियोंके शब्द और श्वापद सरीसृपोंसे परिपूरित हुआ, मुनिगण उस समय उस अद्भुत और अचिन्त्य व्यापारको देखकर अश्रुपूरित नेत्रयुक्त हुए। अनन्तर वक्तृवर नारायण उन ऋषियोंको विस्मित देखकर विनयपूर्वक नम्र, मधुर, तथा स्निग्ध वचन बोले। सदा आसक्ति और ममतारहित, वेद जाननेवाले ऋषियोंको किस निमित्त विस्मय उपस्थित हुआ? हे तपोधनगण! आप लोग सब कोई अनिन्दित ऋषि हैं, इसलिये आप लोगोंको मेरे इस संदिग्ध विषयका निश्चित अर्थ कहना उचित है। (२१-२५)

ऋषिगण बोले, हे मधुसूदन! आपने ही सब लोकोंकी सृष्टि की है, फिर आपही सबका संहार करते हैं, तुम्हीं शीत हो, तुम ही उष्ण हो और तुम ही वर्षा करते हो। पृथिवीपर जो सब

तेषां पिता त्वं माता त्वं प्रभुः प्रभव एव च ॥ २७ ॥
एवं नो विस्मयकरं संशयं मधुसूदन ।
त्वमेवार्हसि कल्याण वक्तुं वह्निविनिर्गमम् ॥ २८ ॥
ततो विगतसंत्रासा वयमप्यरिकर्शन ।
यच्छ्रुतं यच्च दृष्टं नस्तत्प्रवक्ष्यामहे हरे ॥ २९ ॥
वासुदेव उवाच- एतद्धि वैष्णवं तेजो मम वक्त्राद्विनिःसृतम् ।
कृष्णवर्त्मा युगान्ताभो येनाऽयं मथितो गिरिः ॥३०॥
ऋषयश्चार्तिमापन्ना जितक्रोधा जितेन्द्रियाः ।
भवन्तो व्यथिताश्चासन् देवकल्पास्तपोधनाः ॥३१ ॥
व्रतचर्यापरीतस्य तपस्विव्रतसेवया ।
मम वह्निः समुद्भूतो न वै व्यथितुमर्हथ ॥ ३२ ॥
व्रतं चर्तुमिहायातस्त्वहं गिरिमिमं शुभम् ।
पुत्रं चात्मसमं वीर्ये तपसा लब्धुमागतः ॥ ३३ ॥
ततो ममात्मा यो देहे सोऽग्निर्भूत्वा विनिःसृतः ।
गतश्च वरदं द्रष्टुं सर्वलोकपितामहम् ॥ ३४ ॥
तेन चात्मानुशिष्टो मे पुत्रत्वे मुनिसत्तमाः ।

स्थावरजङ्गम जीव हैं, आप ही उनके पिता, माता, प्रभु और प्रभव हो। हे कल्याणरूप मधुसूदन ! इससे जिस हेतु तुम्हारे मुखसे अग्नि निकलनेसे हम लोगोंको विस्मययुक्त सन्देह हुआ है, तुम ही उस सन्देहके विषयको कह सकते हो। हे हरि ! हे अरिकर्षण ! अनन्तर हम लोग त्रासरहित होके जो देखा तथा सुना है, वह सब कहेंगे। (२६—२९)

वासुदेव बोले, मेरे शरीरसे जो यह वैष्णव तेज निकला था, यह प्रलयकालकी अग्निसदृश आभायुक्त था, जिसके सहारे यह महापर्वत मथित हुआ और क्रोधविजयी, जितेन्द्रिय देवकल्प तपस्वी ज्ञानयुक्त आप लोग भी पीडित तथा व्यथित हुए थे। तपस्विव्रतसेवन तथा व्रताचारणयुक्त होनेसे मेरे शरीरसे अग्नि प्रकट हुई थी; इसलिये आप लोग व्यथित न होवें। मैं व्रताचरण करनेके लिये इस पवित्र पर्वतपर आके वीर्यबलसे अपने सदृश पुत्र पानेके लिये तपस्या कर रहा हूं। अनन्तर मेरी देहमें जो आत्मा है, वही अग्निरूपसे निकलकर सर्वलोकपितामह वरद देवका दर्शन करनेके लिये गया था। (३०-३४)

तेजसोऽर्धेन पुत्रस्ते भवितेति वृषध्वजः ॥ ३५ ॥
सोऽयं वह्निरुपागम्य पादमूले ममान्तिकम्।
शिष्यवत्परिचर्यार्थं शान्तः प्रकृतिमागतः ॥ ३६ ॥
एतदेव रहस्यं वः पद्मनाभस्य धीमतः।
मया प्रोक्तं समासेन न भीः कार्या तपोधनाः॥ ३७ ॥
सर्वत्र गतिरव्यग्रा भवतां दीर्घदर्शनात्।
तपस्विव्रतसंदीप्ता ज्ञानविज्ञानशोभिता: ॥ ३८ ॥
यच्छ्रुतं यच्च वो दृष्टं दिवि वा यदि वा भुवि।
आश्चर्यं परमं किंचित्तद्भवन्तो ब्रुवन्तु मे ॥ ३९ ॥
तस्यामृतनिकाशस्य वाङ्मधोरस्ति मे स्पृहा।
भवद्भिः कथितस्येह तपोवननिवासिभिः ॥ ४० ॥
यद्यप्यहमदृष्टं वो दिव्यमद्भुतदर्शनम्।
दिवि वा भुवि वा किंचित्पश्याम्यमरदर्शनाः ॥४१॥
प्रकृतिः सा मम परा न क्वचित्प्रतिहन्यते।
न चात्मगतमैश्वर्यमाश्चर्यं प्रतिभाति मे ॥ ४२ ॥
श्रद्धेयः कथितो ह्यर्थः सज्जनश्रवणं गतः।

हे मुनिसत्तमगण! वृषभध्वजने कहा "मेरा आत्मा अर्द्धतेजसे तुम्हारा पुत्र होगा," ऐसा कहके उन्होंने पुत्रके निमित्त अपने आत्माको मेरे समीप भेजा है। यह वही अग्नि परिचर्याके निमित्त शिष्यकी भांति मेरे चरणमूल-पर पहुंचके शान्त और प्रकृतिको प्राप्त हुई है। हे तपोधनगण! यह बुद्धिमान् पद्मनाभका रहस्यविषय मैंने आप लोगोंके समीप वर्णन किया, इसलिये आप लोग भय न करिये। आप लोग दीर्घदर्शी हैं, आप लोगोंको ज्ञानविज्ञानशोभित तपस्विव्रतसन्दीप्त सर्वत्र अव्यग्र गति विद्यमान है। (३५—३८)

इसलिये आप लोगोंने द्युलोक वा भूलोकमें जो परम आश्चर्य सुना वा देखा हो, उसे मेरे समीप वर्णन करिये, आप लोग तपोवननिवासी महर्षि हैं, आप लोगोंके कहे हुए अमृतसदृश वचन-मधु आस्वादन करनेकी मुझे अभिलाष हुई है। हे अमरदर्शन तपस्विवृन्द! यदि मैं द्युलोक अथवा भूलोकमें आप लोगोंके अतिरिक्त कोई अद्भुतदर्शन दिव्य विषय देखूं, तो वह मेरी परम प्रकृति है, वह सर्वस्व अप्रातिहत मेरी आत्माका ऐश्वर्य आश्चर्यरूपसे मालूम

चिरं तिष्ठति मेदिन्यां शैले लेख्यमिवार्पितम् ॥ ४३ ॥
तदहं सज्जनमुखान्निःसृतं तत्समागमे ।
कथयिष्याम्यहमहो बुद्धिदीपकरं नृणाम् ॥ ४४ ॥
ततो मुनिगणाः सर्वे विस्मिताः कृष्णसंनिधौ ।
नेत्रैः पद्मदलप्रख्यैरपश्यंस्तं जनार्दनम् ॥ ४५ ॥
वर्धयन्तस्तथैवाऽन्ये पूजयन्तस्तथाऽपरे ।
वाग्भिर्ऋग्भूषितार्थाभिः स्तुवन्तो मधुसूदनम् ॥४६॥
ततो मुनिगणाः सर्वे नारदं देवदर्शनम् ।
तदा नियोजयामासुर्वचने वाक्यकोविदम् ॥ ४७ ॥
मुनय ऊचुः— यदाऽऽश्चर्यमचिन्त्यं च गिरौ हिमवति प्रभो ।
अनुभूतं मुनिगणैस्तीर्थयात्रापरैर्मुने ॥ ४८ ॥
तद्भवानृषिसंघस्य हितार्थं सर्वमादितः ।
यथादृष्टं हृषीकेशे सर्वमाख्यातुमर्हसि ॥ ४९ ॥
एवमुक्तः स मुनिभिर्नारदो भगवान्मुनिः ।
कथयामास देवर्षिः पूर्ववृत्तामिमां कथाम् ॥ ५० ॥ [६२५५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे ऊनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥

नहीं होता। (३९—४२)

श्रद्धापूर्वक कहा हुआ विषय सज्जनोंके श्रवणगोचर होनेपर पर्वतमें अर्पित लेख्यकी भांति पृथ्वीमण्डलपर सदा स्थिति करता है, इसलिये मैं आप लोगोंके समागम समयमें सज्जनोंके मुखसे निकले हुए, मनुष्योंकी बुद्धि उद्दीपनकारी विषयोंका वर्णन करूंगा। अनन्तर मुनिगण कृष्णके निकट विस्मित होकर कमलदलसदृश नेत्रोंसे उन्हें देखने लगे। (४३—४५)

कोई मधुसूदनकी प्रशंसा करनेमें प्रवृत्त हुए, कोई पूजा करने लगे; कितने ही ऋङ्मन्त्रविभूषित वचनसे स्तुति करने लगे। अनन्तर मुनियोंने उस समय वाक्यकोविद नारद मुनिको कथा कहनेके लिये नियुक्त किया। मुनियोंने कहा, हे मुनि! तीर्थयात्रामें रत मुनियोंने हिमालयमें चिन्तनीय आश्चर्य अनुभव किया है, ऋषियोंके हितके निमित्त हृषीकेशके निकट वह सब जिस प्रकार देखा गया था, उसे आदिसे अन्ततक वर्णन करो। देवर्षि नारदमुनिने उन मुनियोंका वचन सुनके

भीष्म उवाच- ततो नारायणसुहृन्नारदो भगवानृषिः ।
शंकरस्योमया सार्धं संवादं प्रत्यभाषत ॥ १ ॥
नारद उवाच- तपश्चचार धर्मात्मा वृषभाङ्कः सुरेश्वरः ।
पुण्ये गिरौ हिमवति सिद्धचारणसेविते ॥ २ ॥
नानौषधियुते रम्ये नानापुष्पसमाकुले ।
अप्सरोगणसंकीर्णे भूतसंघनिषेविते ॥ ३ ॥
तत्र देवो मुदा युक्तो भूतसंघशतैर्वृतः ।
नानारूपैर्विरूपैश्च दिव्यैरद्भुतदर्शनैः ॥ ४ ॥
सिंहव्याघ्रगजप्रख्यैः सर्वजातिसमन्वितैः ।
क्रोष्टुकद्वीपिवदनैरृक्षर्षभमुखैस्तथा ॥ ५ ॥
उलूकवदनैर्भीमैर्वृकश्येनमुखैस्तथा ।
नानावर्णैर्मृगमुखैः सर्वजातिसमन्वितैः ॥ ६ ॥
किन्नरैर्यक्षगन्धर्वरक्षोभूतगणैस्तथा ।
दिव्यपुष्पसमाकीर्णं दिव्यज्वालासमाकुलम् ॥ ७ ॥
दिव्यचन्दनसंयुक्तं दिव्यधूपेन धूपितम् ।
तत्सदो वृषभाङ्कस्य दिव्यवादित्रनादितम् ॥ ८ ॥

पहले समयका वृत्तान्त कहना आरम्भ किया ।(४६-५०)

अनुशासनपर्वमें १३९ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें १४० अध्याय ।

भीष्म बोले, अनन्तर नारायणके सुहृद भगवान् नारद ऋषि उमाके सङ्ग महादेवका जो वार्त्तालाप हुआ था, उसे कहने लगे । (१)

नारद मुनि बोले, सिद्ध चारणोंसे सेवित, ओषधियों, पुष्पों, अप्सराओं और भूतोंसे परिपूरित रमणीय पवित्र हिमालय पर्वतपर धर्मात्मा देवताओंके ईश्वर वृषभध्वजने तपस्या की थी । महादेव उस स्थानमें सैकडों भूतसमूहोंके बीच घिरके हर्षित थे, प्रेतगण अनेक रूप धारण करते थे, कोई विकटरूप, कोई अद्भुतदर्शन, कोई सिंहव्याघ्रसदृश, कोई सर्वगतियुक्त, कोई शृगालवदन, कोई चीतेके सदृश रूपवाले, कोई ऋक्ष-मुख, कोई उलूकानन, कोई भयङ्कर, कोई वृक और वाजपेयपक्षीकी भांति मुखयुक्त, अनेक प्रकारके मृगमुखवाले, सर्व जातियुक्त किन्नर, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस और भूतों तथा दिव्य पुष्पोंसे परिपूरित, दिव्य ज्वाला और दिव्य चन्दनयुक्त, दिव्य धूपसे धूपित वह वृषभध्वजकी

मृदङ्गपणवोद्घुष्टं शङ्खभेरीनिनादितम्।
नृत्यद्भिर्भूतसङ्घैश्च बर्हिणैश्च समन्ततः ॥ ९ ॥
प्रनृत्ताप्सरसं दिव्यं देवर्षिगणसेवितम्।
दृष्टिकान्तमनिर्देश्यं दिव्यमद्भुतदर्शनम् ॥ १० ॥
स गिरिस्तपसा तस्य गिरिशस्य व्यरोचत।
स्वाध्यायपरमैर्विप्रैर्ब्रह्मघोषो निनादितः ॥ ११ ॥
षट्पदैरुपगीतैश्च माधवाप्रतिमो गिरिः।
तन्महोत्सवसङ्काशं भीमरूपधरं ततः ॥ १२ ॥
दृष्ट्वा मुनिगणस्यासीत्परा प्रीतिर्जनार्दन।
मुनयश्च महाभागाः सिद्धाश्चैवोर्ध्वरेतसः ॥ १३ ॥
मरुतो वसवः साध्या विश्वे देवाः सवासवाः।
यक्षा नागाः पिशाचाश्च लोकपाला हुताशनाः॥१४॥
वाताः सर्वे महाभूतास्तत्रैवासन्समागताः।
ऋतवः सर्वपुष्पैश्च व्यकिरन्त महाद्भुतैः ॥ १५ ॥
ओषध्यो ज्वलमानाश्च द्योतयन्ति स्म तद्वनम्।
विहङ्गाश्च मुदा युक्ताः प्रानृत्यन्व्यनदंश्च ह ॥ १६ ॥
गिरिपृष्ठेषु रम्येषु व्याहरन्तो जनप्रियाः।

सभा मृदङ्ग, ढोल, शंख तथा भेरी आदि दिव्य बाजोंके शब्दसे परिपूरित थी; नाचनेवाले भूतों और मयूरोंके सहित वहाँपर अप्सरायें नृत्य कर रही थीं, देवर्षिगण वहाँपर सदा निवास करते थे; वह सभा अत्यन्त दर्शनीय, अनिर्देश्य, दिव्य और अद्भुत थी।(२-१०)

वह पर्वत महादेवकी तपस्यासे सुशोभित हुआ था, स्वाध्यायपाठमें रत ब्राह्मणोंके वेदध्वनिसे निनादित था। हे माधव! वह पर्वत षट्पदगणके उपस्थित होनेसे अप्रतिम हुआ था। हे जनार्दन! महोत्सवसदृश भीमरूपधारी शङ्करको देखकर मुनियोंके मनमें परम प्रीति उत्पन्न हुई। महाभाग मुनिगण, ऊर्ध्वरेता सिद्धगण, मरुत्, वसु, साध्य, इन्द्रके सहित विश्वदेवगण, यक्ष, सर्प, पिशाचगण, सब लोकपाल, अग्नि, वायु और सब महद्भूत वहाँपर उपस्थित थे। (११—१५)

सब समयके छहों ऋतुके फल वहाँ फूल रहे थे, ओषधियें प्रज्वलित होकर उस बनको प्रकाशित करती थीं, पक्षिसमूह हर्षित होके नाचते और गाते थे,

तत्र देवो गिरितटे दिव्यधातुविभूषिते ॥ १७ ॥
पर्यङ्क इव विभ्राजन्नुपविष्टो महामनाः ।
व्याघ्रचर्माम्बरधरः सिंहचर्मोत्तरच्छदः ॥ १८ ॥
व्यालयज्ञोपवीती च लोहिताङ्गदभूषणः ।
हरिश्मश्रुर्जटी भीमो भयकर्ता सुरद्विषाम् ॥ १९ ॥
अभयः सर्वभूतानां भक्तानां वृषभध्वजः ।
दृष्ट्वा महर्षयः सर्वे शिरोभिरवनिं गताः ॥ २० ॥
विमुक्ताः सर्वपापेभ्यः क्षान्ता विगतकल्मषाः ।
तस्य भूतपतेः स्थानं भीमरूपधरं बभौ ॥ २१ ॥
अप्रधृष्यतरं चैव महोरगसमाकुलम् ।
क्षणेनैवाभवत्सर्वमद्भुतं मधुसूदन ॥ २२ ॥
तत्सदो वृषभाङ्कस्य भीमरूपधरं बभौ ।
तमभ्ययाच्छैलसुता भूतस्त्रीगणसंवृता ॥ २३ ॥
हरतुल्याम्बरधरा समानव्रतधारिणी ।
बिभ्रती कलशं रौक्मं सर्वतीर्थजलोद्भवम् ॥ २४ ॥
गिरिस्रवाभिः सर्वाभिः पृष्ठतोऽनुगता शुभा ।

रमणीय पर्वतके शिखरपर जनप्रिय पक्षीवृन्द विचर रहे थे। उस दिव्य-धातुविभूषित गिरिपर महामना महादेव पर्यङ्कपर बैठे हुएकी भाँति विराजमान थे। उस समय वे व्याघ्रचर्मधारी तथा सिंहचर्म पहरे हुए, व्यालयज्ञोपवीतयुक्त लोहिताङ्गदसे भूषित थे। हरिश्मश्रुजटी भीम, देवद्वेषियोंको भयभीत करनेवाले, सब जीवोंके अभयदाता, भक्तोंको भयसे परित्राण करनेवाले वृषभध्वज उस स्थानमें विराजमान थे। (१५-२०)

महर्षिगणने उन्हें देखकर सिर झुकाकर पृथ्वीपर गिरके साष्टाङ्ग प्रणाम किया, प्रणाम करते ही वे लोग क्षमाशील होकर सब पापोंसे मुक्त हुए; वह भूतपतिका आश्रम उस समय भीमरूप धारण करके शोभित हुआ, वह उस समय अप्रधृष्य और महोरगोंसे परिपूर्ण होगया। हे मधुसूदन! क्षण भरके बीच उस स्थानमें आश्चर्य दीख पडा; वह वृषभध्वजकी सभा भयङ्कर रूप धारण करके शोभित होने लगी। हरके सदृश अम्बरधारिणी समानव्रतचारिणी शैलनन्दिनीने भूत भामिनियोंके बीच घिरकर उनके समीप आगमन किया। वह उस समय सब तीर्थोंके जलसे युक्त

पुष्पवृष्ट्याभिवर्षन्ती गन्धैर्बहुविधैस्तथा ।
सेवन्ती हिमवत्पार्श्वं हरपार्श्वमुपागमत् ॥ २५ ॥
ततः स्मयन्ती पाणिभ्यां नर्मार्थं चारुहासिनी ।
हरनेत्रे शुभे देवी सहसा सा समावृणोत् ॥ २६ ॥
संवृताभ्यां तु नेत्राभ्यां तमोभूतमचेतनम् ।
निर्होमं निर्वषट्कारं जगद्वै सहसाऽभवत् ॥ २७ ॥
जनश्च विमनाः सर्वोऽभवत्त्राससमन्वितः ।
निमीलिते भूतपतौ नष्टसूर्य इवाभवत् ॥ २८ ॥
ततो वितिमिरो लोकः क्षणेन समपद्यत ।
ज्वाला च महती दीप्ता ललाटात्तस्य निःसृता ॥२९ ॥
तृतीयं चास्य सम्भूतं नेत्रमादित्यसंनिभम् ।
युगान्तसदृशं दीप्तं येनासौ मथितो गिरिः ॥ ३० ॥
ततो गिरिसुता दृष्ट्वा दीप्ताग्निसदृशेक्षणम् ।
हरं प्रणम्य शिरसा ददर्शायतलोचना ॥ ३१ ॥
दह्यमाने वने तस्मिन्ससालसरलद्रुमे ।
सचन्दनवरे रम्ये दिव्यौषधिविदीपिते ॥ ३२ ॥

सुवर्णकलश धारण करके गिरिनिर्झरिणियोंके द्वारा पश्चाद्भागमें अनुगत होकर शोभित होने लगी; उन्होंने अनेक प्रकारकी सुगन्ध और फूलोंकी वर्षा करती हुई हिमवत्पार्श्वसेवापूर्वक हरके पार्श्वमें आगमन किया। (२०-२५)

अनन्तर उस चारुदर्शना देवीने हंसकर कौतुकके निमित्त अपने हाथोंसे सहसा महादेवके दोनों उत्तम नेत्र मूंद लिये। महादेवके नेत्र बन्द होनेपर सहसा जगत् तमोमय और अचेतन हुआ और निर्होम तथा वषट्काररहित होगया; सब प्राणी मलिन मन और भयभीत हुए, महादेवके नेत्र बन्द होनेपर मानो सूर्य छिप गया। अनन्तर क्षणभरके बीच सब लोक अन्धकाररहित हुए, महादेवके मस्तकसे महत् प्रदीप्त ज्वाला निकली और प्रलयकालके प्रज्वलित सूर्यके समान उनका तीसरा नेत्र प्रकट हुआ, जिसके सहारे वह पर्वत मथित होने लगा। (२६—३०)

अनन्तर विशालनयनी शैलाधिराजपुत्रीने प्रदीप्त अग्निसदृश नेत्रवाले त्रिलोचनको सिर झुकाके प्रणाम किया। साल, सरल वृक्ष, रमणीय, चन्दनवन और दिव्य औषधियोंसे प्रकाशमान उस

मृगयूथैर्द्रुतैर्भीतैर्हरपार्श्वमुपागतैः ।
शरणं चाप्यविन्दद्भिस्तत्सदः सङ्कुलं बभौ ॥ ३३ ॥
ततो नभस्पृशज्वालो विद्युल्लोलाग्निरुल्बणः ।
द्वादशादित्यसदृशो युगान्ताग्निरिवापरः ॥ ३४ ॥
क्षणेन तेन निर्दग्धो हिमवानभवन्नगः ।
सधातुशिखराभोगो दीप्तदग्धलतौषधिः ॥ ३५ ॥
तं दृष्ट्वा मथितं शैलं शैलराजसुता ततः ।
भगवन्तं प्रपन्ना वै साञ्जलिप्रग्रहास्थिता ॥ ३६ ॥
उमां शर्वस्तदा दृष्ट्वा स्त्रीभावगतमार्दवाम् ।
पितुर्दैन्यमनिच्छन्तीं प्रीत्यापश्यत्तदा गिरिम् ॥ ३७ ॥
क्षणेन हिमवान्सर्वः प्रकृतिस्थः सुदर्शनः ।
प्रहृष्टविहगश्चैव सुपुष्पितवनद्रुमः ॥ ३८ ॥
प्रकृतिस्थं गिरिं दृष्ट्वा प्रीता देवं महेश्वरम् ।
उवाच सर्वलोकानां पतिं शिवमनिन्दिता ॥ ३९ ॥
उमोवाच— भगवन्सर्वभूतेश शूलपाणे महाव्रत ।
संशयो मे महान् जातस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥४०॥

वनके जलनेपर मृगगण भयभीत होके दौडे और किसी स्थानमें ठहरनेका आश्रय न पाकर महादेवके निकट उपस्थित हुए, वह सभा सन्नाटायुक्त होके शोभित होने लगी। अनन्तर गगनस्पर्शी ज्वालामालायुक्त तडिल्लता सदृश उज्वल द्वितीय प्रलयाग्निकी भांति द्वादशादित्यसङ्काश उत्कट प्रलयकालीन अग्निके द्वारा क्षण भरके बीच हिमालय निःशेष होकर जल गया। धातु, शिखर, झरने, वन और सब ओषधियें जल गईं। (३१—३५)

अनन्तर शैलपुत्री उस पर्वतको भस्म हुआ देखकर हाथ जोडके भगवानकी शरणमें गईं। महादेव उस समय उमाको स्त्रीस्वभावसुलभ मार्दवशालिनी और पिताकी विपद् देखनेकी अनभिलाषिणी देखकर प्रीतिपूर्वक हिमालयकी ओर देखा। क्षणभरके बीच हिमालय प्रकृतिस्थ और दर्शनीय हुआ, पक्षिसमूह प्रमुदित और वनके वृक्ष उत्तम पुष्पोंसे युक्त हुए। अनिन्दिता उमाने उस समय हिमवानको प्रकृतिस्थ देखकर प्रसन्न होके सर्वलोकप्रभु निजपति महादेवसे कहा। (३६–३९)

उमा बोली, हे सर्वभूतेश महाव्रती

किमर्थं ते ललाटे वै तृतीयं नेत्रमुत्थितम् ।
किमर्थं च गिरिर्दग्धः सपक्षिगणकाननः ॥ ४१ ॥
किमर्थं च पुनर्देव प्रकृतिस्थस्त्वया कृतः ।
तथैव द्रुमसंछन्नः कृतोऽयं ते पिता मम ॥ ४२ ॥
महेश्वर उवाच- नेत्रे मे संवृते देवि त्वया बाल्यादनिन्दिते ।
नष्टालोकस्तदा लोकः क्षणेन समपद्यत ॥ ४३ ॥
नष्टादित्ये तथा लोके तमोभूते नगात्मजे ।
तृतीयं लोचनं दीप्तं सृष्टं मे रक्षता प्रजाः ॥ ४४ ॥
तस्य चाक्ष्णो महत्तेजो येनायं मथितो गिरिः ।
त्वत्प्रियार्थं च मे देवि प्रकृतिस्थः पुनः कृतः ॥ ४५ ॥
उमोवाच— भगवन्केन ते वक्त्रं चन्द्रवत्प्रियदर्शनम् ।
पूर्वं तथैव श्रीकान्तमुत्तरं पश्चिमं तथा ॥ ४६ ॥
दक्षिणं च मुखं रौद्रं केनोर्ध्वं कपिला जटाः ।
केन कण्ठश्च ते नीलो बर्हिबर्हनिभः कृतः ॥ ४७ ॥
हस्ते देव पिनाकं ते सततं केन तिष्ठति ।

शूलधारी भगवन्! मुझे अत्यन्तही सन्देह हुआ है, इसलिये आप उस विषयको वर्णन करिये। हे देव! किसलिये आपके माथेमें तीसरा नेत्र प्रकट हुआ? किस निमित्त पक्षियों और वनके सहित पर्वत भस्म हुआ, किस हेतु आपने मेरे पिताको प्रकृतिस्थ और पहलेकी भांति वृक्षोंसे परिपूरित किया। (४०–४२)

महेश्वर बोले, हे अनिन्दिते देवि! तुमने जो बालस्वभावसे मेरे नेत्रोंको मूंद लिया, उससे क्षणभरके बीच सब लोक प्रकाशरहित हुए। हे नगनन्दिनि! जब सब लोक आदित्यरहित होनेसे तमोमय हुए, तब मैंने प्रजासमूहकी रक्षा करनेके लिये अपना तीसरा प्रदीप्त नेत्र प्रकट किया, उस ही नेत्रके महत् तेजसे यह पर्वत मथित हुआ। हे देवि! तुम्हारी प्रीतिके निमित्त मैंने फिर शैलराजको प्रकृतिस्थ किया (४३–४५)

उमा बोली, हे भगवन्! किस निमित्त आपका चन्द्रमासदृश शोभायुक्त प्रियदर्शन आनन पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और ऊर्ध्वमुख हुआ और किस कारणसे रौद्ररूप धारण किया? किस हेतु कपिलवर्णकी जटाजूट हुई? किसलिये आपने अपने कण्ठको बर्हिबर्हसदृश नीलवर्ण किया? हे देव! किसलिये आप हाथमें सदा पिनाक धनुष्य

जटिलो ब्रह्मचारी च किमर्थमसि नित्यदा ॥ ४८ ॥
एतन्मे संशयं सर्वं वक्तुमर्हसि वै प्रभो ।
सधर्मचारिणी चाहं भक्ता चेति वृषध्वज ॥ ४९ ॥
भीष्म उवाच- एवमुक्तः स भगवाञ्शैलपुत्र्या पिनाकधृत् ।
तस्या धृत्या च बुद्ध्या च प्रीतिमानभवत्प्रभुः ॥ ५० ॥
ततस्तामब्रवीद्देवः सुभगे श्रूयतामिति ।
हेतुभिर्यैर्ममैतानि रूपाणि रुचिरानने ॥ ५१ ॥ [६३०६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे उमामहेश्वरसंवादो नाम चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥

श्रीभगवानुवाच- तिलोत्तमा नाम पुरा ब्रह्मणा योषिदुत्तमा ।
तिलं तिलं समुद्धृत्य रत्नानां निर्मिता शुभा ॥ १ ॥
साऽभ्यगच्छत मां देवि रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
प्रदक्षिणं लोभयती मां शुभे रुचिरानना ॥ २ ॥
यतो यतः सा सुदती मामुपाधावदन्तिके ।
ततस्ततो मुखं चारु मम देवि विनिर्गतम् ॥ ३ ॥
तां दिदृक्षुरहं योगाच्चतुर्मूर्तित्वमागतः ।

धारण किया करते हैं। तुम सदा जटिल और ब्रह्मचारी किसलिये रहते हो ? हे प्रभु ! हे वृषभध्वज ! मैं आपकी सहधर्मचारिणी तथा आपके विषयमें भक्तिमती हूं, इसलिये आपको मेरे सन्देहके विषयोंको विधिपूर्वक वर्णन करना उचित है। (४६-४९)

भीष्म बोले, भगवान् पिनाकपाणि शैलपुत्रीका ऐसा वचन सुनके उसके धैर्य और बुद्धिसे प्रसन्न हुए, अनन्तर उससे बोले, हे सुमुखि सुभगे! जिन कारणोंसे मेरे ये सब रूप हुए हैं, उसे सुनो। (५०—५१)

अनुशासनपर्वमें १४० अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें १४१ अध्याय ।

श्रीभगवान् बोले, पहले समयमें ब्रह्माकी तिलोत्तमा नामी एक उत्तम कन्या थी, सब रत्नोंका सार भाग निकालकर वह शुभाङ्गी निर्मित हुई थी। हे देवि! भूलोकमें अप्रतिम सुन्दरताई युक्त वह सुमुखि मेरी प्रदक्षिण करके प्रलोभित करती हुई सम्मुख आई। वह सुन्दरी जिस जिस दिशामें मेरी ओर आई, उस ही ओर मेरे मनोहर मुख बाहिर हुए। उसे देखनेके लिये अभिलाषी होकर मैंने चार मूर्त्तियां

चतुर्मुखश्च संवृत्तो दर्शयन्योगमुत्तमम् ॥ ४ ॥
पूर्वेण वदनेनाहमिन्द्रत्वमनुशास्मि ह ।
उत्तरेण त्वया सार्धं रमाम्यहमनिन्दिते ॥ ५ ॥
पश्चिमं मे मुखं सौम्यं सर्वप्राणिसुखावहम् ।
दक्षिणं भीमसङ्काशं रौद्रं संहरति प्रजाः ॥ ६ ॥
जटिलो ब्रह्मचारी च लोकानां हितकाम्यया ।
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं पिनाकं मे करे स्थितम् ॥ ७ ॥
इन्द्रेण च पुरा वज्रं क्षिप्तं श्रीकाङ्क्षिणा मम ।
दग्ध्वा कण्ठं तु तद्यातं तेन श्रीकण्ठता मम ॥ ८ ॥
उमोवाच— वाहनेष्वत्र सर्वेषु श्रीमत्स्वन्येषु सत्तम ।
कथं च वृषभो देव वाहनत्वमुपागतः ॥ ९ ॥
महेश्वर उवाच-सुरभीमसृजद्ब्रह्मा देवधेनुं पयोमुचम् ।
सा सृष्टा बहुधा जाता क्षरमाणा पयोऽमृतम् ॥१०॥
तस्या वत्समुखोत्सृष्टः फेनो मद्गात्रमागतः ।
ततो दग्धा मया गावो नानावर्णत्वमागताः ॥ ११ ॥
ततोऽहं लोकगुरुणा शमं नीतोऽर्थवेदिना ।

धारण की और उत्कृष्ट योगके द्वारा चतुर्मुख हुआ। (१—४)

मैं पूर्व वदनसे इन्द्रत्वका अनुशासन करता हूं। हे अनिन्दिते! उत्तर मुखसे तुम्हारे सङ्ग क्रीडा करता हूं, मेरा पश्चिम मुख अत्यन्त प्रियदर्शन है, यह सब प्राणियोंको सुखी करता है और दक्षिण मुख अत्यन्त भयङ्कर तथा रौद्र होकर प्रजाका संहार किया करता है। मैं सब लोकोंकी हितकामनासे जटिल और ब्रह्मचारी हुआ हूं। देवकार्यसिद्धिके निमित्त मैंने हाथमें पिनाक धारण किया है। पहले समय इन्द्रने श्रीकामना करते हुए मेरे ऊपर वज्र चलाया था, उस वज्रने मेरा कण्ठ जला दिया, उसीसे मैं श्रीकण्ठ हुआ हूं। (५—८)

उमा बोली, हे सत्तम! इस स्थानमें दूसरे श्रीमान् वाहनोंके रहते भी वृषभ आपका वाहन क्योंकर हुआ? (९)

महादेव बोले, ब्रह्माने दूध देनेवाली देवधेनु सुरभीको उत्पन्न किया, सुरभी उत्पन्न होकर दूधरूपी अमृत प्रदान करती हुई अनेक हुई, उसके बछडेके मुखसे फेन मेरे शरीरपर गिरा था। अनन्तर गौवें मेरे द्वारा जलके अनेक वर्णकी होगईं; अन्तमें अर्थवेत्ता लोकगुरु

वृषं चैनं ध्वजार्थं मे ददौ वाहनमेव च ॥ १२ ॥

उमोवाच— निवासा बहुरूपास्ते दिवि सर्वगुणान्विताः ।
तांश्च संत्यज्य भगवन् श्मशाने रमसे कथम् ॥१३ ॥
केशास्थिकलिले भीमे कपालघटसङ्कुले ।
गृध्रगोमायुबहुले चिताग्निशतसङ्कुले ॥ १४ ॥
अशुचौ मांसकलिले वसाशोणितकर्दमे ।
विकीर्णान्त्रास्थिनिचये शिवानादविनादिते ॥ १५ ॥

महेश्वर उवाच- मेध्यान्वेषी महीं कृत्स्नां विचराम्यनिशं सदा ।
न च मेध्यतरं किंचित् श्मशानादिह लक्ष्यते ॥ १६ ॥
तेन मे सर्ववासानां श्मशाने रमते मनः ।
न्यग्रोधशाखासञ्छन्ने निर्भुग्नस्रग्विभूषिते ॥ १७ ॥
तत्र चैव रमन्तीमे भूतसङ्घाः शुचिस्मिते ।
न च भूतगणैर्देवि विनाऽहं वस्तुमुत्सहे ॥ १८ ॥
एष वासो हि मे मेध्यः स्वर्गीयश्च मतः शुभे ।
पुण्यः परमकश्चैव मेध्यकामैरुपास्यते ॥ १९ ॥

ब्रह्माने मुझे शान्त किया और उन्होंने मुझे ध्वजाके निमित्त यह वृषवाहन प्रदान किया। (१०—१२)

उमा बोली, हे भगवन्! स्वर्गके बीच सब भांतिकी सुन्दरतासे युक्त अनेक प्रकारके निवासस्थान हैं, उन सबको परित्याग करके आप केश और हड्डीसे परिपूरित भयङ्कर कपाल और घटसंकुल बहुतेरे गिद्ध सियारोंसे सेवित, सैकडों चितानलयुक्त, अपवित्र मांस, चर्बी, रुधिर, अन्त्रावली और हड्डियोंसे भरे, सियारोंके शब्दसे निनादित श्मशानमें किसलिये क्रीडा करते हैं? (१३-१५)

महादेव बोले, मैं पवित्र स्थान खोजते हुए इस पृथ्वीमण्डलपर भ्रमण करता हूं, परन्तु श्मशानसे बढके उत्तम और कुछ भी नहीं दीखता; इस ही निमित्त समस्त निवासस्थानोंके बीच वटशाखासे परिपूरित विच्छिन्न स्रग्विभूषित श्मशानमें मेरा मन रत होता है। हे शुचिस्मिते! ये सब भूत उस श्मशानमें ही क्रीडा करते हैं। हे देवि! भूतगणके विना मैं निवास करनेका उत्साह नहीं करता। हे शुभे! मेरा यह श्मशानवास ही पवित्र और स्वर्गीय है, पवित्रताकी अभिलाष करनेवाले इस परम पवित्र स्थानकी उपासना किया करते हैं। (१६—१९)

उमोवाच— भगवन्सर्वभूतेश सर्वधर्मविदां वर।
पिनाकपाणे वरद संशयो मे महानयम् ॥ २० ॥
अयं मुनिगणः सर्वस्तपस्तेप इति प्रभो।
तपोवेषकरो लोके भ्रमते विविधाकृतिः ॥ २१ ॥
अस्य चैवर्षिसङ्घस्य मम च प्रियकाम्यया।
एवं ममेह सन्देहं वक्तुमर्हस्यरिन्दम ॥ २२ ॥
धर्मः किंलक्षणः प्रोक्तः कथं वा चरितुं नरैः।
शक्यो धर्ममविन्दद्भिर्धर्मज्ञ वद मे प्रभो ॥ २३ ॥
नारद उवाच-ततो मुनिगणः सर्वस्तां देवीं प्रत्यपूजयत्।
वाग्भिर्ऋग्भूषितार्थाभिः स्तवैश्चार्थविशारदैः॥ २४ ॥
महेश्वर उवाच-अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतानुकम्पनम्।
शमो दानं यथाशक्ति गार्हस्थ्यो धर्म उत्तमः ॥२५॥
परदारेष्वसंसर्गो न्यासस्त्रीपरिरक्षणम्।
अदत्तादानविरमो मधुमांसस्य वर्जनम् ॥ २६ ॥
एष पञ्चविधो धर्मो बहुशाखः सुखोदयः।
देहिभिर्धर्मपरमैश्चर्तव्यो धर्मसंभवः ॥ २७ ॥

उमा बोली, हे सर्वधर्मभृतांवर सर्वभूतेश पिनाकपाणि भगवन्! मुझे इन मुनियोंके तपस्या विषयमें महान् सन्देह है, नखलोमजटाधारी तपस्वी-वेषवाले अनेक भांतिके लोग जगत्के बीच भ्रमण करते हैं। हे अरिन्दम! इन ऋषियोंकी तथा मेरी प्रिय कामनासे आपको मेरा यह महत् सन्देह दूर करना उचित है। धर्मका क्या लक्षण है और जो मनुष्य धर्मज्ञ नहीं हैं, वे किस प्रकार धर्माचरण करनेमें समर्थ होंगे? हे धर्मज्ञ! आप इसे ही मेरे समीप वर्णन करिये। (२०—२३)

नारद मुनि बोले, अनन्तर उन मुनियोंने ऋग्विभूषित वाक्यों और अर्थविशारद स्तोत्रोंसे उमादेवीकी पूजा की। (२४)

महादेव बोले, अहिंसा, सत्यवचन, सब जीवोंके विषयमें दया, शम और शक्तिके अनुसार दानही गृहस्थोंका श्रेष्ठ धर्म है। पराई स्त्रियोंमें आसक्त न होना न्यास और स्त्रीकी रक्षा करनी, अदत्ता-दानसे विरत रहना और मधुमांसको परित्याग करना, ये पांच प्रकारके धर्म अनेक शाखायुक्त तथा सुखदायक हैं, धर्मपरायण देहधारियोंको शरीरसाध्य

उमोवाच— भगवन्संशयः पृष्टस्तन्मे शंसितुमर्हसि ।
चातुर्वर्ण्यस्य यो धर्मः स्वे स्वे वर्णे गुणावहः ॥ २८ ॥
ब्राह्मणे कीदृशो धर्मः क्षत्रिये कीदृशोऽभवत् ।
वैश्ये किंलक्षणो धर्मः शूद्रे किंलक्षणो भवेत् ॥ २९ ॥
महेश्वर उवाच—न्यायतस्ते महाभागे सर्वशः समुदीरितः ।
भूमिदेवा महाभागाः सदा लोके द्विजातयः ॥ ३० ॥
उपवासः सदा धर्मो ब्राह्मणस्य न संशयः ।
स हि धर्मार्थसंपन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ३१ ॥
तस्य धर्मक्रिया देवि ब्रह्मचर्या च न्यायतः ।
व्रतोपनयनं चैव द्विजो येनोपपद्यते ॥ ३२ ॥
गुरुदैवतपूजार्थं स्वाध्यायाभ्यसनात्मकः ।
देहिभिर्धर्मपरमैश्चर्तव्यो धर्मसम्भवः ॥ ३३ ॥
उमोवाच— भगवन्संशयो मेऽस्ति तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ।
चातुर्वर्ण्यस्य धर्मं वै नैपुण्येन प्रकीर्तय ॥ ३४ ॥
महेश्वर उवाच—रहस्यश्रवणं धर्मो वेदव्रतनिषेवणम् ।

धर्माचरण करना योग्य है । (२५-२७)

उमा बोली, हे भगवन् ! मैं आपसे सन्देहका विषय पूछती हूं, इसलिये आपको मेरे समीप वह विषय कहना उचित है । चारों वर्णोंके बीच निज निज धर्मही सुखदायक है, ब्राह्मणका धर्म कैसा है और क्षत्रिय किस प्रकार धर्माचरण करेगा, वैश्यके धर्मलक्षण क्या हैं और शूद्रोंका कैसा धर्म है ? (२८—२९)

श्रीभगवान् बोले, हे महाभागे ! तुमने न्यायपूर्वक यह संशयका विषय पूछा है, महाभाग द्विजातिगण जगत्के बीच सदा भूमिदेव कहके विख्यात हैं, ब्राह्मणोंके लिये हर समयमें निःसन्देह उपवास ही धर्म है, धर्मार्थयुक्त ब्राह्मण ब्रह्मत्व लाभके योग्य हैं । हे देवि ! न्यायपूर्वक ब्रह्मचर्या ही उनकी धर्मक्रिया, व्रत और उपनयन ही उनका धर्म है, जिससे कि ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति होती है । गुरु और देवताओंकी पूजाके निमित्त धर्मपरायण पुरुषोंको धर्म और स्वाध्याय-पाठ करना चाहिये । (३०–३३)

उमा बोली, हे भगवन् ! मुझे कुछ सन्देह है, आपही उसे दूर करनेके योग्य हैं, इसलिये चारों वर्णोंके धर्म आप निपुण भावसे वर्णन करिये। (३४)

महेश्वर बोले, रहस्य सुनना, वेद-

अग्निकार्यं तथा धर्मो गुरुकार्यप्रसाधनम् ॥ ३५ ॥
भैक्षचर्या परो धर्मो नित्ययज्ञोपवीतिता।
नित्यं स्वाध्यायिता धर्मो ब्रह्मचर्याश्रमस्तथा ॥ ३६ ॥
गुरुणा चाभ्यनुज्ञातः समावर्तेत वै द्विजः।
विन्देतानन्तरं भार्यामनुरूपां यथाविधि ॥ ३७ ॥
शूद्रान्नवर्जनं धर्मस्तथा सत्पथसेवनम्।
धर्मो नित्योपवासित्वं ब्रह्मचर्यं तथैव च ॥ ३८ ॥
आहिताग्निरधीयानो जुह्वानः संयतेन्द्रियः।
विघसाशी यताहारो गृहस्थः सत्यवाक् शुचिः ॥३९॥
अतिथिव्रतता धर्मो धर्मस्त्रेताग्निधारणम्।
इष्टीश्च पशुबन्धांश्च विधिपूर्वं समाचरेत ॥ ४० ॥
यज्ञश्च परमो धर्मस्तथाऽहिंसा च देहिषु।
अपूर्वभोजनं धर्मो विघसाशित्वमेव च ॥ ४१ ॥
भुक्ते परिजने पश्चाद्भोजनं धर्म उच्यते।
ब्राह्मणस्य गृहस्थस्य श्रोत्रियस्य विशेषतः ॥ ४२ ॥
दम्पत्योः समशीलत्वं धर्मः स्याद् गृहमेधिनः।

व्रतका सेवन, अग्निकर्म और गुरुकार्य का निभाना ही धर्म है, सदा यज्ञोपवीत-धारण और भैक्ष्यचर्या परम धर्म है, सदा स्वाध्यायपाठ और ब्रह्मचर्य व्रत करना ब्राह्मणोंका धर्म है, ब्राह्मण गुरुकी अनुमतिसे समावर्त्तन संस्कार करके विधिपूर्वक अनुरूप भार्या परिग्रह करे, ब्राह्मणके लिये शूद्रान्नत्याग, सन्मार्ग-सेवन, उपवास और ब्रह्मचर्य धर्म हैं। (३५—३८)

गृहस्थ मनुष्य आहिताग्नि, अध्ययन-शील, संयतेन्द्रिय, सदा होम करनेवाला, विघसाशी, यताहारी, सत्यवादी और पवित्र होवे। अतिथिसेवा करना गृहस्थ का धर्म है। दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आहवनीय अग्निको धारण करना ब्राह्म-णोंका धर्म है। सब यज्ञों और यज्ञोंमें पशुबन्धन कार्यको ब्राह्मण विधिपूर्वक करे। जीवोंकी अहिंसा और यज्ञ करना परम धर्म है, अपूर्व भोजन और विघसा-शित्व धर्म है; परिजनोंके भोजन करनेके अनन्तर पश्चात् भोजन करना धर्म कहके वर्णित हुआ है, गृहस्थों वा विशेष करके श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको अवश्यही यह धर्माचरण करना चाहिये। (३९-४२)

गृहमेधियोंके लिये समानशीलत्व

गृह्याणां चैव देवानां नित्यपुष्पबलिक्रिया ॥ ४३ ॥
नित्योपलेपनं धर्मस्तथा नित्योपवासिता।
सुसंमृष्टोपलिप्ते च साज्यधूमो भवेद् गृहे ॥ ४४ ॥
एष द्विजजने धर्मो गार्हस्थो लोकधारणः।
द्विजानां च सतां नित्यं सदैवैष प्रवर्तते ॥ ४५ ॥
यस्तु क्षत्रगतो देवि मया धर्म उदीरितः।
तमहं ते प्रवक्ष्यामि तन्मे श्रृणु समाहिता ॥ ४६ ॥
क्षत्रियस्य स्मृतो धर्मः प्रजापालनमादितः।
निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते ॥ ४७ ॥
प्रजाः पालयते यो हि धर्मेण मनुजाधिपः।
तस्य धर्मार्जिता लोकाः प्रजापालनसंचिताः ॥ ४८ ॥
तस्य राज्ञः परो धर्मो दमः स्वाध्याय एव च।
अग्निहोत्रपरिस्पन्दो दानाध्ययनमेव च ॥ ४९ ॥
यज्ञोपवीतधरणं यज्ञो धर्मक्रियास्तथा।
भृत्यानां भरणं धर्मः कृते कर्मण्यमोघता ॥ ५० ॥
सम्यग्दण्डे स्थितिर्धर्मो धर्मो वेदक्रतुक्रियाः।
व्यवहारस्थितिर्धर्मः सत्यवाक्यरतिस्तथा ॥ ५१ ॥

धर्म हुआ करता है। गृहदेवताओंकी सदा पुष्प आदिसे पूजा करनी योग्य है। सदा उपलेपन और उपवास धर्म कहा गया है। उत्तम रीतिसे लिपे पुते गृहमें घृतधूम रहेगा। द्विजगणके लोकधारण इस गार्हस्थ धर्ममें साधु ब्राह्मण सदा प्रवृत्त होते हैं। हे देवि! तुमने क्षत्रियधर्मके विषयमें जो प्रश्न किया है, मैं तुमसे उसका विवरण कहता हूं, सावधान होके सुनो। प्रथम क्षत्रियोंके लिये प्रजापालन धर्म स्मृत हुआ है। निर्दिष्ट फलभोक्ता राजा धर्मयुक्त होता है, जो राजा धर्मपूर्वक प्रजापालन करता है, उसे प्रजापालनरूपी सञ्चित धर्मसे पुण्यलोक प्राप्त होते हैं। (४३—४८)

इन्द्रियदमन, स्वशाखोक्त वेदपाठ, अग्निहोत्र, दान और अध्ययन क्षत्रियका परम धर्म है। यज्ञोपवीतधारण, यज्ञ करना, सेवकोंको पालना और कृत कर्मोंकी सफलता ही धर्म है; दण्डविषयमें पूरी रीतिसे मर्यादाकी रक्षा करनी, वेदोक्त यज्ञ कर्मोंका आचरण, व्यवहारस्थिति और सत्य वचनमें रति क्षत्रियका

आर्तहस्तप्रदो राजा प्रेत्य चेह महीयते ।
गोब्राह्मणार्थे विक्रान्तः सङ्ग्रामे निधनं गतः ॥ ५२ ॥
अश्वमेधजिताँल्लोकानाप्नोति त्रिदिवालये ॥ ५३ ॥
वैश्यस्य सततं धर्मः पाशुपाल्यं कृषिस्तथा ।
अग्निहोत्रपरिस्पन्दो दानाध्ययनमेव च ॥ ५४ ॥
वाणिज्यं सत्पथस्थानमातिथ्यं प्रशमो दमः ।
विप्राणां स्वागतं त्यागो वैश्यधर्मः सनातनः ॥ ५५ ॥
तिलान्गन्धान् रसांश्चैव विक्रीणीयान्न चैव हि ।
वणिक्पथमुपासीनो वैश्यः सत्पथमाश्रितः ॥ ५६ ॥
सर्वातिथ्यं त्रिवर्गस्य यथाशक्ति यथार्हतः ।
शूद्रधर्मः परो नित्यं शुश्रूषा च द्विजातिषु ॥ ५७ ॥
स शूद्रः संशिततपाः सत्यवादी जितेन्द्रियः ।
शुश्रूषुरतिथिं प्राप्तं तपः सञ्चिनुते महत् ॥ ५८ ॥
नित्यं स हि शुभाचारो देवताद्विजपूजकः ।
शूद्रो धर्मफलैरिष्टैः संप्रयुज्येत बुद्धिमान् ॥ ५९ ॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं चातुर्वर्ण्यस्य शोभने ।

धर्म है । प्रीतिपूर्वक हाथसे दान करनेवाले क्षत्रिय इसलोक और परलोकमें पूजित होते हैं, अश्वमेध यज्ञ करनेसे लोगोंको जो लोक मिलते हैं, ब्राह्मणके निमित्त युद्ध करने तथा संग्राममें मरनेवाले, क्षत्रिय उन्हीं लोकोंमें जाते हैं। (४९--५३)

सदा पशुओंको पालना और कृषिकर्म करना वैश्योंका धर्म है। अग्निहोत्र, दान, अध्ययन, वाणिज्य, सत्पथमें स्थिति, अतिथिसेवा, प्रशम,दम,ब्राह्मणोंका स्वागतप्रश्न और धनदान करना वैश्योंका सनातन धर्म है । सन्मार्गमें स्थित वैश्य वाणिज्यकार्यमें नियुक्त होकर सुगन्ध, तिल और चर्बी न बेचे; सब प्रकारसे अतिथिसत्कार करके शक्तिके अनुसार यथायोग्य धर्मार्थकामकी सेवा करे। (५४—५७)

द्विजातियोंकी सदा सेवा करनी ही शूद्रोंका परम धर्म है, जो पुरुष संशितव्रती, सत्यवादी और जितेन्द्रिय होकर उपस्थित अतिथिकी सेवा करते हुए महत् तपस्या सञ्चय करता है, वही शूद्र है, देवताओं और ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाला शुभाचारी बुद्धिमान् शूद्र अभिलषित फल पाता है।

एकैकस्येह सुभगे किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ६० ॥
उमोवाच— उक्तस्त्वया पृथग्धर्मश्चातुर्वर्ण्यहितः शुभः।
सर्वव्यापी तु यो धर्मो भगवंस्तद्ब्रवीहि मे ॥ ६१ ॥
महेश्वर उवाच– ब्राह्मणा लोकसारेण सृष्टा धात्रा गुणार्थिना।
लोकांस्तारयितुं कृत्स्नान्मर्त्येषु क्षितिदेवताः ॥ ६२ ॥
तेषामपि प्रवक्ष्यामि धर्मकर्मफलोदयम्।
ब्राह्मणेषु हि यो धर्मः स धर्मः परमो मतः ॥ ६३ ॥
इमे ते लोकधर्मार्थं त्रयः सृष्टाः स्वयम्भुवा।
पृथिव्यां सर्जने नित्यं सृष्टांस्तानपि मे शृणु ॥ ६४ ॥
वेदोक्तः परमो धर्मः स्मृतिशास्त्रगतोऽपरः।
शिष्टाचीर्णो परः प्रोक्तस्त्रयो धर्माः सनातनाः ॥६५॥
त्रैविद्यो ब्राह्मणो विद्वान्न चाध्ययनजीवकः।
त्रिकर्मा त्रिपरिक्रान्तो मैत्र एष स्मृतो द्विजः॥ ६६ ॥
षडिमानि तु कर्माणि प्रोवाच भुवनेश्वरः।
वृत्त्यर्थं ब्राह्मणानां वै शृणु धर्मान्सनातनान् ॥ ६७ ॥

हे सुन्दरि! हे सुभगे! मैंने तुम्हारे समीप चारों वर्णोंके धर्म कहे और अब क्या सुननेकी इच्छा करती हो? (५७-६०)

उमा बोली, हे भगवन्! आपने चारों वर्णोंके हितकर तथा शुभकर पृथक् पृथक् धर्म कहे, अब जो धर्म सर्वव्यापी हो, उसे ही मेरे समीप वर्णन करिये। (६१)

महेश्वर बोले, गुणाभिलाषी विधाताने सब लोगोंका उद्धार करनेके निमित्त मनुष्योंके बीच भूदेव ब्राह्मणोंको सर्वलोकोंके सारतत्त्वोंसे बनाया है; उनका धर्मकर्मफलोदय कहता हूं। ब्राह्मणोंके धर्म ही परम धर्म हैं, लोगोंके धर्मके हेतु सृष्टिके समय ब्रह्माने नीचे कहे हुए तीन धर्म प्रकट किये थे, उसे सुनो। वेदोक्त धर्म, स्मृति शास्त्रोंमें वर्णित धर्म और शिष्टाचार ये तीनों धर्म ही सनातन कहे गये हैं। तीनों विद्यामें विद्वान् ब्राह्मण ऋङ्मन्त्र अध्ययन करके जीवन बिताते हुए दान अध्यनय और यजन, इन तीनों कर्मोंसे युक्त होवे, त्रिपरिक्रान्त अर्थात् काम, क्रोध और लोभ इन तीनोंको परित्याग करनेवाले और सर्वभूतोंमें समदर्शी पुरुषको द्विज कहा जाता है। लोकेश्वर प्रजापतिने ब्राह्मणोंकी वृत्तिके निमित्त निम्नलिखित छः धर्मोंको विस्तारपूर्वक

यजनं याजनं चैव तथा दानप्रतिग्रहौ।
अध्यापनं चाध्ययनं षट्कर्मा धर्मभाग्द्विजः ॥ ६८ ॥
नित्यः स्वाध्यायिता धर्मो धर्मो यज्ञः सनातनः।
दानं प्रशस्यते चास्य यथाशक्ति यथाविधि ॥ ६९ ॥
शमस्तु परमो धर्मः प्रवृत्तः सत्सु नित्यशः।
गृहस्थानां विशुद्धानां धर्मस्य निचयो महान् ॥ ७० ॥
पञ्चयज्ञविशुद्धात्मा सत्यवागनसूयकः।
दाता ब्राह्मणसत्कर्ता सुसंमृष्टनिवेशनः ॥ ७१ ॥
अमानी च सदाऽजिह्मः स्निग्धवाणीप्रदस्तथा।
अतिथ्यभ्यागतरतिः शेषान्नकृतभोजनः ॥ ७२ ॥
पाद्यमर्घ्यं यथान्यायमासनं शयनं तथा।
दीपं प्रतिश्रयं चैव यो ददाति स धार्मिकः ॥ ७३ ॥
प्रातरुत्थाय चाचम्य भोजनेनोपमन्त्र्य च।
सत्कृत्यानुव्रजेद्यस्तु तस्य धर्मः सनातनः ॥ ७४ ॥
सर्वातिथ्यं त्रिवर्गस्य यथाशक्ति निशानिशम्।

वर्णन किया है। (६५—६७)

यजन, याजन, दान, प्रतिग्रह, अध्ययन और अध्यापन, इन षट् कर्मोंको करनेवाले ब्राह्मण धर्मभागी होते हैं। सदा स्वाध्यायपाठ और यज्ञोंको करना ब्राह्मणोंका सनातन धर्म है, ब्राह्मण शक्तिके अनुसार विधिपूर्वक उत्तम दान करें; साधुओंमें नित्य प्रवृत्त शान्ति ही परम धर्म है। शुद्धाचरणवाले गृहस्थोंका उत्तम श्रम ही महान् धर्म है, जो पंच यज्ञ करनेवाला, शुद्धचित्त, सत्यवादी, असूयारहित, दाता, ब्राह्मणोंका सम्मानकर्त्ता, उत्तम स्वच्छ गृहमें निवास करनेवाला, अभिमानहीन, सदा सरल और कोमल वचन कहनेवाला, अतिथि तथा अभ्यागतोंके विषयमें अनुरक्त रहता तथा शेषमें बचे हुए अन्नको भोजन करता है और जो पुरुष ब्राह्मणोंको पाद्य, अर्घ, आसन, शय्या, दीपक और गृह प्रदान करता है, वही धार्मिक है। (६८-७३)

जो लोग प्रातःकालमें उठनेपर आचमन करके भोजनके निमित्त ब्राह्मणोंको निमन्त्रण करते और उनका संमानपूर्वक अनुगमन करते हैं, उन्हें सनातन धर्म सिद्ध होता है। सब भांतिसे अतिथिसत्कार और शक्तिके अनुसार धर्म, काम और अर्थको रातदिन सेवन

शूद्रधर्मः समाख्यातस्त्रिवर्गपरिचारणम् ॥ ७५ ॥
प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो गृहस्थेषु विधीयते ।
तमहं वर्तयिष्यामि सर्वभूतहितं शुभम् ॥ ७६ ॥
दातव्यमसकृच्छक्त्या यष्टव्यमसकृत्तथा ।
पुष्टिकर्मविधानं च कर्तव्यं भूतिमिच्छता ॥ ७७ ॥
धर्मेणार्थः समाहार्यो धर्मलब्धं त्रिधा धनम् ।
कर्तव्यं धर्मपरमं मानवेन प्रयत्नतः ॥ ७८ ॥
एकेनांशेन धर्मार्थौ कर्तव्यौ भूतिमिच्छता ।
एकेनांशेन कामार्थ एकमंशं विवर्धयेत् ॥ ७९ ॥
निवृत्तिलक्षणस्त्वन्यो धर्मो मोक्षाय तिष्ठति ।
तस्य वृत्तिं प्रवक्ष्यामि शृणु मे देवि तत्त्वतः ॥ ८० ॥
सर्वभूतदया धर्मो न चैकग्रामवासिता ।
आशापाशविमोक्षश्च शस्यते मोक्षकाङ्क्षिणाम् ॥ ८१ ॥
न कुट्यां नोदके सङ्गो न वाससि न चासने ।
न त्रिदण्डे न शयने नाग्नौ न शरणालये ॥ ८२ ॥
अध्यात्मगतिचित्तो यस्तन्मनास्तत्परायणः ।

करना शूद्रोंका विख्यात धर्म है । गृहस्थोंके विषयमें प्रवृत्तिलक्षणयुक्त धर्म विहित है, इसलिये सब प्राणियोंके हितके लिये उस प्रवृत्तिलक्षणयुक्त धर्मका वर्णन करता हूं। (७४—७६)

शक्तिके अनुसार बार बार यज्ञ तथा दान करना चाहिये और ऐश्वर्यकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंको पुष्टिकार्यका विधान करना उचित है। धर्मसे धन पैदा करे, धर्मसे प्राप्त हुआ धन तीन प्रकारका है; मनुष्य यत्नपूर्वक धर्मार्थके हेतु धन वितरण करे। ऐश्वर्यकी इच्छा करनेवाला मनुष्य एक अंश धनके सहारे धर्मार्थ आचरण करे, एक भागसे कामभोग करे और एक हिस्सेसे धर्मकी वृद्धि करनी चाहिये। (७७-७९)

हे देवि! एक निवृत्तिलक्षण धर्मही मोक्षका हेतु हुआ करता है, उसका वृत्तान्त मैं यथार्थ रीतिसे कहता हूं, सुनो, मोक्षकी आकांक्षावाले पुरुषोंके लिये सब जीवोंमें दया, सदा एक गांवमें वास न करना और आशापाशसे रहित होना ही श्रेष्ठ धर्म है। मोक्षार्थी मनुष्य गृह, जल, वस्त्र, आसन, त्रिदण्ड, शय्या, अग्नि और रक्षकके स्थानमें आसक्त न होवे। जिसका चित्त अध्यात्म-

युक्तो योगं प्रति सदा प्रतिसंख्यानमेव च ॥ ८३ ॥
वृक्षमूलपरो नित्यं शून्यागारनिवेशनः।
नदीपुलिनशायी च नदीतीररतिश्च यः ॥ ८४ ॥
विमुक्तः सर्वसङ्गेषु स्नेहबन्धेषु च द्विजः।
आत्मन्येवात्मनो भावं समासज्जेत वै द्विजः ॥ ८५ ॥
स्थाणुभूतो निराहारो मोक्षदृष्टेन कर्मणा।
परिव्रजति यो युक्तस्तस्य धर्मः सनातनः ॥ ८६ ॥
न चैकत्र समासक्तो न चैकग्रामगोचरः।
मुक्तो ह्यटति निर्मुक्तो न चैकपुलिनेशयः ॥ ८७ ॥
एष मोक्षविदां धर्मो वेदोक्तः सत्पथः सताम्।
यो मार्गमनुयातीमं पदं तस्य च विद्यते ॥ ८८ ॥
चतुर्विधा भिक्षवस्ते कुटीचकबहूदकौ।
हंसः परमहंसश्च यो यः पश्चात्स उत्तमः ॥ ८९ ॥
अतः परतरं नास्ति नावरं न तिरोऽग्रतः।

पथमें विचरता है, वह उसहीमें मन लगावे, उसहीमें तत्पर होकर याग और समाधिमें सदा अनुरक्त रहे। (८०-८३)

वृक्षके मूलमें निवास करनेवाले, सूने स्थान, नदी पुलिनशायी तथा नदीके तटपर रहनेवाले जो ब्राह्मण सर्व आसक्ति तथा स्नेहबंधनसे रहित हैं, वे आत्मामें ही निज भावसे समासक्त होवें; मोक्ष दृष्ट कर्मके सहारे स्थाणुस्वरूपसे निराहारी होके रहें। जो लोग योगी होके परिव्रज्या करते हैं, उन्हें सनातन धर्म होता है। एक स्थानमें आसक्त न होवे एक गांवमें सदा वास न करे और एक ही पुलिनमें शयन करना योग्य नहीं है, मुक्त पुरुष निर्मुक्त होकर भ्रमण करे; यही मोक्षवित् साधुओंका वेदोक्त सत्पथस्वरूप धर्म है; जो लोग इस पथके अनुगामी होते हैं, उनके लिये कोई व्यवसाय नहीं रहता। (८४-८८)

कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस भेदसे चार प्रकारके संन्यासी हैं, जो पहलेके पीछे कहे गये हैं, वे उनकी अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। कुटीचक और बहूदक, ये दोनों ही दण्ड धारण करते हैं, उनके बीच पहले कहे हुए भिक्षु गृहमें निवास करते हैं, दूसरे तीर्थोंमें पर्यटन किया करते हैं, तीसरे पुरुष संन्यासाश्रम धर्ममें रत रहते हैं, और चौथे पुरुष निस्त्रैगुण्यपथमें विचरते हैं। परमहंसाश्रमसे बढके सुखदुःखहीन, प्रियदर्शन, अजर,

अदुःखमसुखं सौम्यमजरामरमव्ययम् ॥ ९० ॥

उमोवाच— गार्हस्थ्यो मोक्षधर्मश्च सज्जनाचारितस्त्वया ।
भाषितो जीवलोकस्य मार्गः श्रेयस्करो महान् ॥९१॥
ऋषिधर्मं तु धर्मज्ञ श्रोतुमिच्छाम्यतः परम् ।
स्पृहा भवति मे नित्यं तपोवननिवासिषु ॥ ९२ ॥
आज्यधूमोद्भवो गन्धो रुणद्धीव तपोवनम् ।
तं दृष्ट्वा मे मनः प्रीतं महेश्वर सदा भवेत् ॥ ९३ ॥
एतन्मे संशयं देव मुनिधर्मकृतं विभो ।
सर्वधर्मार्थतत्त्वज्ञ देवदेव वदस्व मे ।
निखिलेन मया पृष्टं महादेव यथातथम् ॥ ९४ ॥

श्रीभगवानुवाच- हन्त तेऽहं प्रवक्ष्यामि मुनिधर्ममनुत्तमम् ।
यं कृत्वा मुनयो यान्ति सिद्धिं स्वतपसा शुभे ॥९५॥
फेनपानामृषीणां यो धर्मो धर्मविदां सताम् ।
तन्मे शृणु महाभागे धर्मज्ञे धर्ममादितः ॥ ९६ ॥
उञ्छन्ति सततं ये ते ब्राह्मयं फेनोत्करं शुभम् ।

अमर और अव्यय आश्रम दूसरा नहीं है, यही सब भयोंसे मुक्त करनेवाला आश्रम है ॥ (८९—९०)

उमा बोली, गार्हस्थ और सज्जनोंसे आचरित मोक्षधर्म, जो जीवलोकका महान् कल्याणकारी पथ है उसे आपने वर्णन किया। हे धर्मज्ञ! इसके अनन्तर मैं ऋषिधर्म सुननेकी इच्छा करती हूं, तपोवननिवासी ऋषियोंके धर्मको सुननेके निमित्त मुझे सदा अभिलाष हुआ करती है। हे महेश्वर! घृतके धूएंसे परिपूरित तपोवनको देखनेसे मेरा मन सदा प्रसन्न होता है। हे प्रभु! हे सब धर्मार्थतत्त्वज्ञ देवेश! मुनिधर्मविषयमें मुझे सन्देह हुआ है। हे महादेव! इस लिये मैंने जो विषय पूछा, आप यथार्थ रीतिसे उसे वर्णन करिये। (९१-९४)

श्रीभगवान् बोले, हे शुभे! संन्यासी मुनिगण जैसा आचरण करके निज तपस्याके सहारे सिद्धि लाभ करते हैं, मैं तुम्हारे समीप वह उत्तम मुनिधर्म कहता हूं। हे धर्म जाननेवाली महाभागे! धर्मवेत्ता फेनप साधु ऋषियोंका जो धर्म है, उसे ही तुम मेरे समीप पहले सुनो। जो लोग ब्रह्म-सजातीय सम्बन्धमें श्रेष्ठ फेनवृत्त अग्राश समूह क्रमसे आदान करते हैं, वेही उस अविनाशी ब्रह्माके द्वारा यज्ञस्थलपीत

अमृतं ब्रह्मणा पीतमध्वरे प्रसृतं दिवि ॥ ९७ ॥
एष तेषां विशुद्धानां फेनपानां तपोधने ।
धर्मचर्याकृतो मार्गो वालखिल्यगणैः शृणु ॥ ९८ ॥
वालखिल्यास्तपःसिद्धा मुनयः सूर्यमण्डले ।
उञ्छे तिष्ठन्ति धर्मज्ञाः शाकुनीं वृत्तिमास्थिताः ॥९९॥
मृगनिर्मोकवसनाश्चीरवल्कलवाससः ।
निर्द्वन्द्वाः सत्पथं प्राप्ता वालखिल्यास्तपोधनाः ॥१००॥
अङ्गुष्ठपर्वमात्रा ये भूत्वा स्वे स्वे व्यवस्थिताः ।
तपश्चरणमीहन्ते तेषां धर्मफलं महत् ॥ १०१ ॥
ते सुरैः समतां यान्ति सुरकार्यार्थसिद्धये ।
द्योतयन्ति दिशः सर्वास्तपसा दग्धकिल्बिषाः ॥१०२॥
ये त्वन्ये शुद्धमनसो दयाधर्मपरायणाः ।
सन्तश्चक्रचराः पुण्याः सोमलोकचराश्च ये ॥ १०३ ॥
पितृलोकसमीपस्थास्त उञ्छन्ति यथाविधि ।
संप्रक्षालाश्मकुट्टाश्च दन्तोलूखलिकाश्च ते ॥ १०४ ॥

अमृत तथा वृष्टि प्रभृति यज्ञाङ्गस्वरूप और स्वर्गमें दिव्य भोगके निमित्त उत्पन्न हुए हैं। हे तपस्विनि! यह उन्हीं पवित्र फेनपायी ऋषियोंके धर्म-चर्याका मार्ग कहा गया, अब वालखि-ल्यगणका धर्म सुनो। (९५—९८)

धर्मज्ञ तपःसिद्ध वालखिल्य मुनिगण सूर्यमण्डलमें शाकुनी वृत्ति अवलम्बन करके उञ्छवृत्तिसे निवास करते हैं, वे मृगचर्म, चीर अथवा वल्कलवस्त्र पहरते हैं; तपस्वी वालखिल्य मुनिगण निर्द्वन्द्व होकर सत्पथको अवलम्बन किया करते हैं। वे लोग अंगुष्ठपर्वसमान होकर निज निज धर्ममें निवास कर रहे हैं और तपश्चरणकी चेष्टा किया करते हैं, उनका धर्मफल अत्यन्त महत् है, सुर-कार्यसिद्धिके निमित्त उन्हें देवताओंकी समता प्राप्त होती है और वे लोग तपस्याके सहारे पापकर्मोको जलाकर दशों दिशाको प्रकाशित किया करते हैं। (९९—१०२)

दूसरे जो सब शुद्धचित्तवाले दया-धर्मपरायण ऋषिवृन्द निवासस्थानसे रहित होकर चक्रकी भांति घूमते हैं और पवित्र होकर चन्द्रलोकमें विचरण किया करते हैं, वे पितृलोकके निकट पहुंचकर चन्द्रकिरण पान करते हैं। जो लोग भली भांति पात्रोंको धोते, दूसरे

सोमपानां च देवानामूष्मपाणां तथैव च ।
उञ्छन्ति ये समीपस्थाः सदारा नियतेन्द्रियाः ॥१०५॥
तेषामग्निपरिस्पन्दः पितृणां चार्चनं तथा ।
यज्ञानां चैव पञ्चानां यजनं धर्म उच्यते ॥ १०६ ॥
एष चक्रचरैर्देवि देवलोकचरैर्द्विजैः ।
ऋषिधर्मः सदा चीर्णो योऽन्यस्तमपि मे शृणु ॥१०७॥
सर्वेष्वेवार्षिधर्मेषु ज्ञेयोऽऽत्मा संयतेन्द्रियैः ।
कामक्रोधौ ततः पश्चाज्जेतव्याविति मे मतिः ॥१०८॥
अग्निहोत्रपरिस्पन्दो धर्मरात्रिसमासनम् ।
सोमयज्ञाभ्यनुज्ञानं पञ्चमी यज्ञदक्षिणा ॥ १०९ ॥
नित्यं यज्ञक्रिया धर्मः पितृदेवार्चने रतिः ।
सर्वातिथ्यं च कर्तव्यमन्नेनोञ्छार्जितेन वै ॥ ११० ॥
निवृत्तिरुपभोगेषु गोरसानां शमे रतिः ।
स्थण्डिले शयने योगः शाकपर्णनिषेवणम् ॥ १११ ॥
फलमूलाशनं वायुरापः शैवलभक्षणम् ।

दिनके लिये कुछ भी सञ्चय करके नहीं रखते तथा सम्प्रक्षाल, अश्मकुट्ट और दन्तोलूखलिक जो सब ऋषि हैं, वे सब कोई तथा सोमप और ऊष्मप मुनिगण देवताओंके निकटवर्ती होके सस्त्रीक और नियतेन्द्रिय होकर उञ्छवृत्ति अवलम्बन किया करते हैं। (१०३–१०५)

अग्निपरिचर्या, पितरोंकी पूजा और पञ्चयज्ञ करना उनका धर्म कहा गया है। हे देवि! चक्रकी भांति भ्रमण करनेवाले देवलोकचारी द्विजोंके द्वारा यह ऋषिधर्म सदा आचरित हुआ करता है; इसके आतिरिक्त और जो सब धर्म हैं, वह भी मेरे समीप सुनो। सबको ऋषिधर्ममें संयतेन्द्रिय होकर आत्मज्ञान साधन करना योग्य है; अनन्तर काम-क्रोधको जीतना चाहिये। मेरे विचारमें अग्निहोत्र, सनातन धर्मका सदा अनुष्ठान, सोमयज्ञ, दान, पञ्चयज्ञ दक्षिणा, सदा यज्ञकार्य, पितरों और देवताओंकी पूजामें अनुराग और उञ्छवृत्तिसे प्राप्त हुए अन्नके सहारे सब प्रकार अतिथियोंकी सेवा ही धर्म है। (१०६-११०)

सब प्रकारके गोरस उपभोगमें निवृत्ति, शम विषयमें रति, स्थण्डिलशयनमें योग, शाकपत्र और फलमूलके भोजन, वायु, जल और शैवाल भक्षण

ऋषीणां नियमा ह्येते यैर्जयन्त्यजितां गतिम् ॥ ११२ ॥
विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने ।
अतीतपात्रसञ्चारे काले विगतभिक्षुके ॥ ११३ ॥
अतिथिं काङ्क्षमाणो वै शेषान्नकृतभोजनः ।
सत्यधर्मरतः शान्तो मुनिधर्मेण युज्यते ॥ ११४ ॥
न स्तम्भी न च मानी स्यान्नाप्रसन्नो न विस्मितः ।
मित्रामित्रसमो मैत्रो यः स धर्मविदुत्तमः ॥ ११५ ॥ [८४२१]

इतिश्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

उमोवाच— देशेषु रमणीयेषु नदीनां निर्झरेषु च ।
स्रवन्तीनां निकुञ्जेषु पर्वतेषु वनेषु च ॥ १ ॥
देशेषु च पवित्रेषु फलवत्सु समाहिताः ।
मूलवत्सु च मेध्येषु वसन्ति नियतव्रताः ॥ २ ॥
तेषामपि विधिं पुण्यं श्रोतुमिच्छामि शङ्कर ।
वानप्रस्थेषु देवेश स्वशरीरोपजीविषु ॥ ३ ॥
महेश्वर उवाच- वानप्रस्थेषु यो धर्मस्तं मे शृणु समाहिता ।

ये ऋषियोंके नियम हैं, इन्हींके सहारे वे लोग अजित गतिको जय किया करते हैं। धूआं, अग्नि और मूषल ध्वनिसे रहित समय, सब लोगोंके भोजन करने और पात्र मंचररहित होने तथा भिक्षुगणके चले जानेपर भी जो लोग अतिथि-कामना करते और शेष अन्न भोजन किया करते हैं, वेही सत्यधर्ममें रत, शान्त पुरुष मुनिधर्मयुक्त होते हैं। जडता और अभिमानयुक्त न होवे, अप्रसन्न तथा विस्मित न होना चाहिये; मित्रशत्रुमें समदर्शी और सर्वभूतोंमें दयावान् पुरुष ही श्रेष्ठ धर्मके ज्ञाता हैं। (१११—११५)

अनुशासनपर्वमें १४१ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १४२ अध्याय।

उमा बोली, रमणीय स्थानों, नदीतट, झरनों, पहाडों, बनोंमें फलयुक्त पवित्र स्थानों और मूलविशिष्ट मेध्यदेशमें उत्तम रीतिसे समाहित सदा व्रत करनेवाले मुनिगण निवास किया करते हैं। हे शङ्कर! मैं उन लोगोंका विविध पुण्य सुननेकी इच्छा करती हूं। हे देवेश! स्वशरीरोपजीवी वानप्रस्थधर्मको भी सुननेकी मुझे इच्छा है। (१—३)

महेश्वर बोले, हे देवि! सावधान

श्रुत्वा चैकमना देवि धर्मबुद्धिपरा भव ॥ ४ ॥
संसिद्धैर्नियमैः सद्भिर्वनवासमुपागतैः ।
वानप्रस्थैरिदं कर्म कर्तव्यं शृणु यादृशम् ॥ ५ ॥
त्रिकालमभिषेकं च पितृदेवार्चनं तथा ।
अग्निहोत्रपरिस्पन्द इष्टिहोमविधिस्तथा ॥ ६ ॥
नीवारग्रहणं चैव फलमूलनिषेवणम् ।
इङ्गुदैरण्डतैलानां स्नेहार्थे च निषेवणम् ॥ ७ ॥
योगचर्याकृतैः सिद्धैः कामक्रोधविवर्जितैः ।
वीरशय्यामुपासद्भिर्वीरस्थानोपसेविभिः ॥ ८ ॥
युक्तैर्योगवहैः सद्भिर्ग्रीष्मे पञ्चतपैस्तथा ।
मण्डूकयोगनियतैर्यथान्यायं निषेविभिः ॥ ९ ॥
वीरासनरतैर्नित्यं स्थण्डिले शयनं तथा ।
शीततोयाग्नियोगश्च चर्तव्यो धर्मबुद्धिभिः ॥ १० ॥
अब्भक्षैर्वायुभक्षैश्च शैवलोत्तरभोजनैः ।
अश्मकुट्टैस्तथा दान्तैः संप्रक्षालैस्तथापरैः ॥ ११ ॥
चीरवल्कलसंवीतैर्मृगचर्मनिवासिभिः ।

होके वानप्रस्थोंका धर्म सुनो और एकाग्रचित्तसे सुनके तुम्हें धर्मबुद्धि-परायण होना योग्य है। नियमोंके द्वारा पूरी रीतिसे सिद्ध हुए वनवासी साधु वानप्रस्थ पुरुषोंको जैसा कर्म करना चाहिये, उसे कहता हूं। सबेरे, मध्यान्ह और सन्ध्या, इन तीनों समयमें स्नान, पितरों और देवताओंकी पूजा, अग्नि-होत्र, इष्टि और होमका अनुष्ठान, नीवा-रग्रहण, फलमूलनिषेवण चिकनाईके लिये इंगुद और एरण्डका तेल मलना कर्त्तव्यरूपसे निर्दिष्ट हुआ है। योगचर्या करना, कामक्रोधको त्यागना सिद्ध वीरस्थान और महारण्यमें निवास करना चाहिये। (४—८)

वीरशय्या उपासक, योगरत, साधु योगीगण जो ग्रीष्म कालमें पञ्चतपा किया करते हैं और जो लोग हर्षयोगमें रत होके सब कार्योंको निभाते हैं, सदोपवेशन रूप वीरासनसे बैठते हैं और स्थण्डिलपर शयन किया करते हैं, वे धर्मबुद्धियुक्त मनुष्य शीतजल और अग्निसे योगयुक्त होके वर्त्तमान रहें। उपवासी, वायुभक्षी, शैवालभोजी, अश्मकुट्ट, दान्त, सम्प्रक्षाल तथा दूसरे चीरवल्कल और मृगचर्म पहरनेवाले

कार्या यात्रा यथाकालं यथाधर्मं यथाविधि ॥ १२ ॥
वननित्यैर्वनचरैर्वनस्थैर्वनगोचरैः ।
वनं गुरुमिवासाद्य वस्तव्यं वनजीविभिः ॥ १३ ॥
तेषां होमक्रिया धर्मः पञ्चयज्ञनिषेवणम् ।
भागं च पञ्चयज्ञस्य वेदोक्तस्यानुपालनम् ॥ १४ ॥
अष्टमीयज्ञपरता चातुर्मास्यनिषेवणम् ।
पौर्णमासादयो यज्ञा नित्ययज्ञस्तथैव च ॥ १५ ॥
विमुक्ता दारसंयोगैर्विमुक्ताः सर्वसङ्करैः ।
विमुक्ताः सर्वपापैश्च चरन्ति मुनयो वने ॥ १६ ॥
स्रुग्भाण्डपरमा नित्यं त्रेताग्निशरणाः सदा ।
सन्तः सत्पथनित्या ये ते यान्ति परमां गतिम् ॥१७॥
ब्रह्मलोकं महापुण्यं सोमलोकं च शाश्वतम् ।
गच्छन्ति मुनयः सिद्धाः सत्यधर्मव्यपाश्रयाः॥ १८ ॥
एष धर्मो मया देवि वानप्रस्थाश्रितः शुभः ।
विस्तरेणाथ संपन्नो यथास्थूलमुदाहृतः ॥ १९ ॥
उमोवाच— भगवन्सर्वभूतेश सर्वभूतनमस्कृत ।
यो धर्मो मुनिसङ्घस्य सिद्धिवादेषु तं वद ॥ २० ॥

मुनिवृन्द यथासमयमें विधिपूर्वक यथायोग्य धर्मयात्रा करें। (९-१२)

वनके बीच सदा निवास करनेवाले वनचर वनस्थ वनगोचर वनवासी मुनि लोग वनको गुरुकी भांति पाके वहांपर वास करें। उन लोगोंके लिये होमकर्म और पञ्चयज्ञभागका अनुपालन ही धर्म है; अष्टमी यज्ञपरता, चातुर्मास्यनिषेवण, पौर्णमास प्रभृति सब यज्ञ तथा नित्य यज्ञ धर्मरूपसे विहित हैं। जो लोग दारपरिग्रहसे रहित हुए हैं और सब सङ्कटोंसे छूटे हैं, वे मुनिगण पापहीन होके वनमें विचरते हैं। जो लोग सदा स्रुग्भाण्ड सञ्चयमें रत रहते, जिनके गृहमें तीनों अग्नि विद्यमान रहती हैं, जो सब साधु लोग सदा सत्पथमें निवास करते हैं, वेही परम गति पाते हैं। सत्यधर्मावलम्बी सिद्ध मुनिगण महापवित्र ब्रह्मलोक और शाश्वत सोमलोकमें गमन किया करते हैं। हे शुभे देवि! मैंने वानप्रस्थाश्रित धर्म जो स्थूलरूपसे सम्पन्न होता है, उसे विस्तारपूर्वक वर्णन किया। (१३-१९)

उमा बोली, हे सर्वलोकनमस्कृत

सिद्धिवादेषु संसिद्धास्तथा वनानिवासिनः ।
स्वैरिणो दारसंयुक्तास्तेषां धर्मः कथं स्मृतः ॥ २१ ॥
महेश्वर उवाच-स्वैरिणस्तपसा देवि सर्वे दारविहारिणः ।
तेषां मौण्ड्यं कषायश्च वासे रात्रिश्च कारणम् ॥२२ ॥
त्रिकालमभिषेकश्च होत्रं त्वृषिकृतं महत् ।
समाधिसत्पथस्थानं यथोद्दिष्टनिषेवणम् ॥ २३ ॥
ये च ते पूर्वकथिता धर्मास्ते वनवासिनाम् ।
यदि सेवन्ति धर्मांस्तानाप्नुवन्ति तपःफलम् ॥ २४ ॥
ये च दम्पतिधर्माणः स्वदारनियतेन्द्रियाः ।
चरन्ति विधिदृष्टं तदृतुकालाभिगामिनः ॥ २५॥
तेषामृषिकृतो धर्मो धर्मिणामुपपद्यते ।
न कामकारात्कामोऽन्यः संसेव्यो धर्मदर्शिभिः॥२६॥
सर्वभूतेषु यः सम्यग्ददात्यभयदक्षिणाम् ।
हिंसादोषविमुक्तात्मा स वै धर्मेण युज्यते ॥ २७ ॥

सर्वभूतेश भगवन् ! जो धर्म मुनियोंकी सिद्धिके सम्बन्धमें है उसे वर्णन करिये। जो लोग सिद्धवादमें सुसिद्ध वनवासी स्वेच्छाचारी और कदाचित् दारपरिग्रह-कारी हैं, उनका धर्म किस प्रकार स्मृत हुआ करता है ? (२०-२१)

महादेव बोले, जो लोग तपस्याके सहारे यथेष्ट आचरण किया करते हैं, उन्हें मुण्डन तथा गरुआ वस्त्र धारण करना उचित है; जो लोग दारपरिग्रह करके विहार करते हैं, उन्हें कहीं भी रात्रिवास करना योग्य नहीं है; स्वैरि-गणकी भांति इन लोगोंके लिये स्वेच्छा-विहार विहित नहीं होता । प्रातः, मध्यान्ह और सन्ध्याके समय स्नान, ऋषिकृत महत् अग्निहोत्र, समाधि-सत्पथमें निवास और यथायोग्य कार्योंको पूरा करना ही वनवासी मुनियोंका धर्म है । (२२—२३)

पहले जो सब वर्णित हुए हैं, वही वनवासी ऋषियोंके धर्म हैं; यदि मनुष्य इन धर्मोंकी सेवा करे, तो महत् फल पाता है । जो लोग निज स्त्रीमें रत और नियतेन्द्रिय होकर दम्पतिधर्मके अनुसार कार्य करते हैं, उन धार्मिकोंका ऋषियोंके द्वारा आचरित धर्म सिद्ध होता है । धर्मदर्शी मनुष्योंको स्वेच्छाचारी होकर कामसेवन करना योग्य नहीं है। जो मनुष्य हिंसारहित चित्तसे सब जीवोंको भली भांति अभयदक्षिणा दान

सर्वभूतानुकम्पीयः सर्वभूतार्जवव्रतः ।
सर्वभूतात्मभूतश्च स वै धर्मेण युज्यते ॥ २८ ॥
सर्ववेदेषु वा स्नानं सर्वभूतेषु चार्जवम् ।
उभे एते समे स्यातामार्जवं वा विशिष्यते ॥ २९ ॥
आर्जवं धर्ममित्याहुरधर्मो जिह्म उच्यते ।
आर्जवेनेह संयुक्तो नरो धर्मेण युज्यते ॥ ३० ॥
आर्जवे तु रतो नित्यं वसत्यमरसन्निधौ ।
तस्मादार्जवयुक्तः स्याद्य इच्छेद्धर्ममात्मनः ॥ ३१ ॥
क्षान्तो दान्तो जितक्रोधो धर्मभूतोऽविहिंसकः ।
धर्मे रतमना नित्यं नरो धर्मेण युज्यते ॥ ३२ ॥
व्यपेततन्द्रिर्धर्मात्मा शक्त्या सत्पथमाश्रितः ।
चारित्रपरमो बुद्धो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ३३ ॥
उमोवाच— आश्रमाभिरता देव तापसा ये तपोधनाः ।
दीप्तिमन्तः कया चैव चर्ययाऽथ भवन्ति ते ॥ ३४ ॥

करता है, वही धार्मिक है। (२४–२७)

जो लोग सब प्राणियोंके विषयमें दयावान् हैं, सब जीवोंके सम्बन्धमें सरलता प्रकाशित करना जिनका व्रत है और सर्वभूतोंको आत्मरूप जानते हैं; वेही धार्मिक हैं। सब वेदोंको पढके स्नान करना और सर्वभूतोंमें सरलता प्रदर्शित करनी ये दोनों ही समान हो सकते हैं, अथवा वेद स्नानसे सरलता श्रेष्ठ है। प्राचीन लोग सरलताको धर्म कहते और कुटिलताको अधर्म कहा करते हैं, मनुष्य इस लोकमें सरलतायुक्त होनेसे धार्मिक होता है। (२८–३०)

जो लोग सरलतामें रत रहते हैं, वे देवताओंके समीप निवास करते हैं, इसलिये जो लोग धार्मिक होनेकी इच्छा करें, वे सरल होवें। क्षान्त, दान्त, क्रोध जीतनेवाले, धर्ममय, अहिंसक और नित्य धर्ममें चित्त लगानेवाले मनुष्य धर्मयुक्त हुआ करते हैं। जो धर्मात्मा मनुष्य आलसरहित होके शक्तिके अनुसार सत्पथको अवलम्बन करता और निज चरित्रकी उत्तम रीतिसे रक्षा करता है, वह बुद्धिमान् मनुष्य ब्रह्मस्वरूप लाभ करनेमें समर्थ होता है। (३१–३३)

उमा बोली, हे देव ! जो सब तपोधन तपस्वीवृन्द आश्रमधर्ममें अनुरक्त हैं, वे कैसे आचरणसे दीप्तिमान् होते हैं, हे भगवन्! निर्धन, महाधनी,

राजानो राजपुत्राश्च निर्धना ये महाधनाः ।
कर्मणा केन भगवन्प्राप्नुवन्ति महाफलम् ॥ ३५ ॥
नित्यं स्थानमुपागम्य दिव्यचन्दनभूषिताः ।
केन वा कर्मणा देव भवन्ति वनगोचराः ॥ ३६ ॥
एतन्मे संशयं देव तपश्चर्याऽऽश्रितं शुभम् ।
शंस सर्वमशेषेण त्र्यक्ष त्रिपुरनाशन ॥ ३७ ॥

महेश्वर उवाच- उपवासव्रतैर्दान्ता ह्यहिंस्राः सत्यवादिनः ।
संसिद्धाः प्रेत्य गन्धर्वैः सह मोदन्त्यनामयाः ॥ ३८ ॥
मण्डूकयोगशयनो यथान्यायं यथाविधि ।
दीक्षां चरति धर्मात्मा स नागैः सह मोदते ॥ ३९ ॥
शष्पं मृगमुखोच्छिष्टं यो मृगैः सह भक्षति ।
दीक्षितो वै मुदा युक्तः स गच्छत्यमरावतीम् ॥४० ॥
शैवालं शीर्णपर्णं वा तद्व्रती यो निषेवते ।
शीतयोगवहो नित्यं स गच्छेत्परमां गतिम् ॥ ४१ ॥
वायुभक्षोऽम्बुभक्षो वा फलमूलाशनोऽपि वा ।
यक्षेष्वैश्वर्यमाधाय मोदन्तेऽप्सरसां गणैः ॥ ४२ ॥

राजा और राजपुत्रगण किन कर्मोंके सहारे महाफल पाते हैं ? हे देव ! वे लोग नित्यस्थानमें गमन करते हुए दिव्य चन्दनसे भूषित होकर किन कर्मोंसे वनवासी होते हैं । हे देव ! हे त्रिपुरनाशन त्रिलोचन ! मेरे इस तपश्चर्याश्रित शुभ सन्देहके विषयोंको आप विस्तारपूर्वक वर्णन करिये। (३४-३७)

महादेव बोले, अहिंसारत, सत्यवादी, दमनशील मनुष्य उपवासव्रतसे अनामय और सम्यक्सिद्ध होके परलोकमें जाकर गन्धर्वोंके सहित आनन्द भोग किया करते हैं। जो धर्मात्मा मनुष्य यथा रीतिसे विधिपूर्वक मण्डूकयोगशय्यामें शयन करके दीक्षा आचरण करते हैं, वे नागगणके सहित प्रमुदित होते हैं। जो लोग दीक्षित और समाहित होके मृगगणोंके सहित मृगके द्वारा उत्सृष्ट शस्योंको सेवन करते हैं, वे अमरावती पुरीमें गमन किया करते हैं। जो लोग शैवाल अथवा सूखे पत्तोंको खाके तपस्या करते और सदा शीलवान् रहते हैं, उन्हें परम गति प्राप्त होती है। (३८—४१)

वायु, जल और फलमूलाशी योगी लोग यक्षलोकमें ऐश्वर्य लाभ करके

अग्नियोगवहो ग्रीष्मे विधिदृष्टेन कर्मणा ।
चीर्त्वा द्वादश वर्षाणि राजा भवति पार्थिवः ॥ ४३ ॥
आहारनियमं कृत्वा मुनिर्द्वादशवार्षिकम् ।
मरुं संसाध्य यत्नेन राजा भवति पार्थिवः ॥ ४४ ॥
स्थण्डिले शुद्धमाकाशं परिगृह्य समन्ततः ।
प्रविश्य च मुदा युक्तो दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् ॥४५॥
देहं चानशने त्यक्त्वा स स्वर्गे सुखमेधते ।
स्थण्डिलस्य फलान्याहुर्यानानि शयनानि च ॥ ४६ ॥
गृहाणि च महार्हाणि चन्द्रशुभ्राणि भामिनि ।
आत्मानमुपजीवन्यो नियतो नियताशनः ॥ ४७ ॥
देहं वाऽनशने त्यक्त्वा स स्वर्गं समुपाश्नुते ।
आत्मानमुपजीवन्यो दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् ॥ ४८ ॥
त्यक्त्वा महार्णवे देहं वारुणं लोकमश्नुते ।
आत्मानमुपजीवन्यो दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् ॥ ४९ ॥
अश्मना चरणौ भित्त्वा गुह्यकेषु स मोदते ।

अप्सराओंके सहित आनन्द करते हैं, ग्रीष्मकालमें विधिविहित कर्मोंके सहारे बारह वर्ष पञ्चतपा करनेसे मनुष्य राजा होता है; बारह वर्षतक मौनावलम्बनपूर्वक आहारका नियम करके यत्नके सहित मरुसाधन अर्थात् जल पर्यन्त परित्याग करनेसे मनुष्य पृथ्वीपति राजा होता है । स्थण्डिलमें विना आसनके बैठकर शुद्ध आकाशमें हर्षपूर्वक जो लोग द्वादश वार्षिकी दीक्षा ग्रहण करते और अनशन व्रत अवलम्बन करके शरीर त्यागते हैं, वे स्वर्गमें सुख समृद्धि भोग किया करते हैं । (४२—४६)

हे भामिनी ! ऋषिलोग यान, शय्या और महामूल्य चन्द्रमाकी भांति सफेद गृहोंको स्थण्डिल शयनका फल कहते हैं, जो लोग सदा आत्माको उपजीव्य करके नियताहारी होकर अथवा अनशन व्रतके सहारे देह परित्याग करते हैं, वे स्वर्गभोग किया करते हैं, आत्मउपजीवी द्वादवार्षिकी दीक्षा ग्रहण करके महाअर्णवमें शरीर परित्याग करनेवाले वरुणलोकमें सुख भोगते हैं। जो आत्मोपजीवी पुरुष द्वादशवार्षिकी दीक्षा अवलम्बन करते और पाषाणके द्वारा दोनों चरण भेदते हैं, वे गुह्यक लोकमें प्रमुदित होते हैं, जो लोग निर्द्वन्द्व और

साधयित्वात्मनाऽऽत्मानं निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ॥५०॥
चीर्त्वा द्वादशवर्षाणि दीक्षामेतां मनोगताम् ।
स्वर्गलोकमवाप्नोति देवैश्च सह मोदते ॥ ५१ ॥
आत्मानमुपजीवन्यो दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् ।
हुत्वाऽग्नौ देहमुत्सृज्य वह्निलोके महीयते ॥ ५२ ॥
यस्तु देवि यथान्यायं दीक्षितो नियतो द्विजः ।
आत्मन्यात्मानमाधाय निर्ममो धर्मलालसः ॥ ५३ ॥
चीर्त्वा द्वादशवर्षाणि दीक्षामेतां मनोगताम् ।
अरणीसहितं स्कन्धे बद्ध्वा गच्छत्यनावृतः ॥ ५४ ॥
वीराध्वानगतो नित्यं वीरासनरतस्तथा ।
वीरस्थायी च सततं स वीरगतिमाप्नुयात् ॥ ५५ ॥
स शक्रलोकगो नित्यं सर्वकामपुरस्कृतः ।
दिव्यपुष्पसमाकीर्णो दिव्यचन्दनभूषितः ॥ ५६ ॥
सुखं वसति धर्मात्मा दिवि देवगणैः सह ।
वीरलोकगतो नित्यं वीरयोगसहः सदा ॥ ५७ ॥

निष्परिग्रह होकर आत्माके सहारे आत्मसाधन करके द्वादशवार्षिकी इस मनोहर दीक्षाको अवलम्बन करके स्वर्गलोक पाते हैं, वे देवताओंके सङ्ग आनन्द भोग करते हैं और जो आत्मोपजीवी पुरुष द्वादशवार्षिकी दीक्षा ग्रहण करके अग्निमें देह परित्याग करते हैं, वे अग्निलोकमें निवास किया करते हैं। (४३—५२)

हे देवी! जो द्विज यथारीतिसे दीक्षित और संयत होकर आत्मामें आत्मसाधन करते हुए ममतारहित होके धर्मकी अभिलाष करता है। और बारह वर्षतक इस मनोगत दीक्षाका अनुष्ठान करके तरुस्कन्धमें अरणीके सहित अग्नि परित्याग कर अनावृत होकर गमन करता है, वह वीरपथसे गमन करते हुए सदा वीरासन गतिसे युक्त होके वीरलोकमें निवास करता और उसे वीरगति प्राप्त होती है; वह इन्द्रलोकमें जाकर सदा सर्वकामके सहारे पुरस्कृत होता और दिव्य पुष्पोंसे युक्त तथा दिव्य चन्दनसे विभूषित होता है, वह धर्मात्मा देवलोकमें देवताओंके सहित सुखसे निवास करता है, वीरलोकमें गये हुए वीर पुरुष वीरयोगको धारण करनेवाले हुआ करते हैं। (५३—५७)

सत्त्वस्थः सर्वमुत्सृज्य दीक्षितो नियतः शुचिः ।
वीराध्वानं प्रपद्येद्यस्तस्य लोकाः सनातनाः ॥ ५८ ॥
कामगेन विमानेन स वै चरति च्छन्दतः ।
शक्रलोकगतः श्रीमान्मोदते च निरामयः ॥ ५९ ॥ [६४८०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे उमामहेश्वरसंवादे द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

उमोवाच— भगवन्भगनेत्रघ्न पूष्णो दन्तनिपातन ।
दक्षक्रतुहर त्र्यक्ष संशयो मे महानयम् ॥ १ ॥
चातुर्वर्ण्यं भगवता पूर्वं सृष्टं स्वयम्भुवा ।
केन कर्मविपाकेन वैश्यो गच्छति शूद्रताम् ॥ २ ॥
वैश्यो वा क्षत्रियः केन द्विजो वा क्षत्रियो भवेत् ।
प्रतिलोमः कथं देव शक्यो धर्मो निवर्तितुम् ॥ ३ ॥
केन वा कर्मणा विप्रः शूद्रयोनौ प्रजायते ।
क्षत्रियः शूद्रतामेति केन वा कर्मणा विभो ॥ ४ ॥
एतन्मे संशयं देव वद भूतपतेऽनघ ।
त्रयो वर्णाः प्रकृत्येह कथं ब्राह्मण्यमाप्नुयुः ॥ ५ ॥

महेश्वर उवाच– ब्राह्मण्यं देवि दुष्प्रापं निसर्गाद्ब्राह्मणः शुभे ।

जो लोग सत्त्वगुणी होकर सब वस्तुओंको त्यागके सदा पवित्र रहके दीक्षित होते और वीरपथसे गमन करते हैं, उन्हें सनातन लोक मिलता है, वे कामगामी विमानपर विचरते तथा वे श्रीमान् मनुष्य निरामय होके इन्द्रलोकमें जाकर प्रमुदित होते हैं। (५८—५९)

अनुशासनपर्वमें १४२ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १४३ अध्याय।

उमा बोली, हे भगनेत्रनाशी पूषादन्तविनाशन दक्षयज्ञविध्वंसी त्रिलोचन भगवन्! मुझे यह महान् सन्देह है, कि ब्रह्माने पहले चारों वर्णोंकी सृष्टि की है। उनके बीच वैश्य किस कर्मविपाकसे शूद्रत्व पाता है, क्षत्रिय वैश्य हुआ करते और ब्राह्मण, क्षत्रिय होते हैं। हे देव! प्रतिलोमगत धर्म किस प्रकार निभ सकते हैं? हे विभु! ब्राह्मण किस कर्मके सहारे शूद्रयोनिमें जन्मता है और क्षत्रिय कैसे कर्मके द्वारा शूद्रत्व लाभ करता है? हे भूतपति अनघ देव! आप मेरे इस सन्देहको दूर करिये। इस लोकमें ब्राह्मण आदि तीनों वर्ण स्वाभाविक हैं, तब किस प्रकार ब्राह्मणत्व प्राप्त

क्षत्रियो वैश्यशूद्रौ वा निसर्गादिति मे मतिः ॥ ६ ॥
कर्मणा दुष्कृतेनेह स्थानाद्भ्रश्यति वै द्विजः ।
ज्येष्ठं वर्णमनुप्राप्य तस्माद्रक्षेत वै द्विजः ॥ ७ ॥
स्थितो ब्राह्मणधर्मेण ब्राह्मण्यमुपजीवति ।
क्षत्रियो वाऽथ वैश्यो वा ब्रह्मभूयं स गच्छति ॥ ८ ॥
यस्तु विप्रत्वमुत्सृज्य क्षात्रं धर्मं निषेवते ।
ब्राह्मण्यात्स परिभ्रष्टः क्षत्रयोनौ प्रजायते ॥ ९ ॥
वैश्यकर्म च यो विप्रो लोभमोहव्यपाश्रयः ।
ब्राह्मण्यं दुर्लभं प्राप्य करोत्यल्पमतिः सदा ॥ १० ॥
स द्विजो वैश्यतामेति वैश्यो वा शूद्रतामियात् ।
स्वधर्मात्प्रच्युतो विप्रस्ततः शूद्रत्वमाप्नुते ॥ ११ ॥
तत्रासौ निरयं प्राप्तो वर्णभ्रष्टो बहिष्कृतः ।
ब्रह्मलोकात्परिभ्रष्टः शूद्रः समुपजायते ॥ १२ ॥
क्षत्रियो वा महाभागे वैश्यो वा धर्मचारिणि ।
स्वानि कर्माण्यपाहाय शूद्रकर्म निषेवते ॥ १३ ॥
स्वस्थानात्स परिभ्रष्टो वर्णसङ्करतां गतः ।

करते हैं। (१—५)

महादेव बोले, हे देवि! ब्राह्मणके स्वभावके अतिरिक्त ब्राह्मण्यप्राप्ति अत्यन्त दुष्प्राप्य है। मेरे विचारमें क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र स्वभावके अनुसार हुआ करते हैं। ब्राह्मण श्रेष्ठवर्ण लाभ करके भी दुष्कृत कर्मोंसे स्थानभ्रष्ट होता है, इसलिये ब्राह्मणको सदा रक्षा करनी उचित है, क्षत्रिय अथवा वैश्य ब्राह्मणधर्ममें स्थित रहके यदि ब्राह्मण्य-उपजीवी होवें, तो उन्हें ब्रह्मत्व प्राप्त होता है। जो लोग ब्राह्मणत्व परित्यागके क्षत्रियधर्मकी सेवा करते हैं, वे ब्राह्मणत्वसे परिभ्रष्ट होकर क्षत्रिययोनिमें उत्पन्न हुआ करते हैं, जो अल्पबुद्धि ब्राह्मण दुर्लभ ब्राह्मणत्व पाके लोभ मोहके वशमें होके सदा वैश्योंका कर्म करता है, उसे वैश्यत्व प्राप्त होता है और वैश्य भी शूद्रकर्म करके शूद्र हुआ करता है। (६—११)

ब्राह्मण निज धर्मसे भ्रष्ट होनेपर शूद्रत्व लाभ करता है, शूद्र होके वर्णभ्रष्ट होनेपर सर्वबहिष्कृत तथा नरकगामी होता है। ब्राह्मण लोग ब्रह्मलोकसे परिभ्रष्ट होकर शूद्रयोनिमें जन्म लेते हैं। हे महाभागे धर्मचारिणि! क्षत्रिय

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रत्वं याति तादृशः ॥१४॥
यस्तु बुद्धः स्वधर्मेण ज्ञानविज्ञानवान् शुचिः।
धर्मज्ञो धर्मनिरतः स धर्मफलमश्नुते ॥ १५ ॥
इदं चैवापरं देवि ब्रह्मणा समुदाहृतम्।
अध्यात्मं नैष्ठिकं सद्भिर्धर्मकामैर्निषेव्यते ॥ १६ ॥
उग्रान्नं गर्हितं देवि गणान्नं श्राद्धसूतकम्।
दुष्टान्नं नैव भोक्तव्यं शूद्रान्नं नैव कर्हिचित् ॥ १७ ॥
शूद्रान्नं गर्हितं देवि सदा देवैर्महात्मभिः।
पितामहमुखोत्सृष्टं प्रमाणमिति मे मतिः ॥ १८ ॥
शूद्रान्नेनावशेषेण जठरे यो म्रियेद् द्विजः।
आहिताग्निस्तथा यज्वा स शूद्रगतिभाग्भवेत् ॥ १९ ॥
तेन शूद्रान्नशेषेण ब्रह्मस्थानादपाकृतः।
ब्राह्मणः शूद्रतामेति नास्ति तत्र विचारणा ॥ २० ॥
यस्यान्नेनावशेषेण जठरे यो म्रियेद् द्विजः।

अथवा वैश्य यदि अपने कर्मको त्यागके शूद्रका कर्म करते हैं, तो वे निज स्थानसे च्युत होकर वर्णसङ्कर होते हैं। वैसे ब्राह्मणों, अथवा वैश्योंको शूद्रत्व प्राप्त होता है। जो लोग निज धर्मसे बोध युक्त हुए हैं, जो लोग ज्ञान विज्ञानयुक्त, पवित्र, धर्मज्ञ और सदा धर्ममें रत हैं, वेही धर्मफल भोग करते हैं। (११-१५)

हे देवि! मैंने जो कहा उसे तथा अन्यान्य विषयोंको ब्रह्माने स्वयं वर्णन किया है। धर्मकी इच्छा करनेवाले साधु पुरुष इस नैष्ठिक अध्यात्म विषयका अनुष्ठान किया करते हैं। हे देवि! उग्र जातिका अन्न अत्यन्त निन्दनीय है। गणान्न, श्राद्धीय अन्न, सूतकान्न तथा दुष्टोंका अन्न भोजन करना उचित नहीं है और शूद्रोंका अन्न कदापि भोजन न करे। हे देवि! महानुभाव देवगण शूद्रान्नको सदा निन्दित जानते हैं इसमें पितामहके मुखके कहे हुए प्रमाण हैं, मुझे ऐसी विवेचना होती है, कि ब्राह्मण आहिताग्नि और याज्ञिक होके जठरमें अवशिष्ट शूद्रान्न रहनेसे पञ्चत्व लाभ करता और उसे शूद्रगति प्राप्त होती है। (१६-१९)

अवशिष्ट शूद्रान्न जठरमें रहनेसे ब्राह्मण ब्रह्मस्थानसे च्युत होकर शूद्रत्व पाता है, उस विषयमें कुछ भी विचार नहीं है, जिसका अवशिष्ट अन्न जठरमें विद्यमान रहनेसे ब्राह्मण प्राण परित्याग

तां तां योनिं व्रजेद्विप्रो यस्यान्नमुपजीवति ॥ २१ ॥
ब्राह्मणत्वं शुभं प्राप्य दुर्लभं योऽवमन्यते ।
अभोज्यान्नानि चाश्नाति स द्विजत्वात्पतेत वै ॥ २२ ॥
सुरापो ब्रह्महा क्षुद्रश्चोरो भग्नव्रतोऽशुचिः ।
स्वाध्यायवर्जितः पापो लुब्धो नैकृतिकः शठः ॥ २३ ॥
अव्रती वृषलीभर्ता कुण्डाशी सोमविक्रयी ।
निहीनसेवी विप्रो हि पतति ब्रह्मयोनितः ॥ २४ ॥
गुरुतल्पी गुरुद्रोही गुरुकुत्सारतिश्च यः ।
ब्रह्मविच्चापि पतति ब्राह्मणो ब्रह्मयोनितः ॥ २५ ॥
एभिस्तु कर्मभिर्देवि शुभैराचरितैस्तथा ।
शूद्रो ब्राह्मणतां याति वैश्यः क्षत्रियतां व्रजेत् ॥ २६ ॥
शूद्रकर्माणि सर्वाणि यथान्यायं यथाविधि ।
शुश्रूषां परिचर्यां च ज्येष्ठे वर्णे प्रयत्नतः ॥ २७ ॥
कुर्यादविमनाः शूद्रः सततं सत्पथे स्थितः ।
देवद्विजातिसत्कर्ता सर्वातिथ्यकृतव्रतः ॥ २८ ॥
ऋतुकालाभिगामी च नियतो नियताशनः ।

करता है, वह जिसके अन्नको उपजीव्य करता था, उसही योनिको प्राप्त होता है। जो लोग दुर्लभ पवित्र ब्राह्मणत्व पाके उसकी अवज्ञा करते तथा अभोज्य अन्न भोजन करते हैं, वे पतित होते हैं। सुरा पीनेवाले, ब्रह्मघाती, शूद्र, चोर, भग्नव्रती, अपवित्र, स्वाध्यायरहित, पापाचारी, लोभी, शठतायुक्त, शठ, अव्रती, वृषलीपति, कुण्डाशी अर्थात् जो पुरुष पाकपात्रमें भोजन करता है, सोम बेचनेवाले और नीचोंकी सेवा करनेवाले ब्राह्मण ब्रह्मयोनिसे पतित होते हैं। गुरुतल्पगामी, गुरुके विषयमें द्वेष करनेवाला और गुरुकी निन्दा करनेमें अनुरक्त ब्राह्मण ब्रह्मवित् तथा ब्रह्मवित्तम होनेपर भी पतित होता है। (२०—२५)

हे देवि! इन्हीं पवित्र कार्यों और पवित्र आचरणोंसे शूद्रभी ब्राह्मण हुआ करता और वैश्यभी क्षत्रियत्व पाता है। शूद्र सदा सत्पथमें निवास करते हुए खिन्नचित्त न होकर न्याय तथा विधिपूर्वक यत्नके सहित ज्येष्ठ वर्णकी सेवा तथा टहल करे; यही शूद्रोंका निर्दिष्ट कर्म है। देवताओं और ब्राह्मणोंका सम्मान करनेवाला, सबका आतिथ्य

चोक्षश्चोक्षजनान्वेषी शेषान्नकृतभोजनः ॥ २९ ॥
वृथामांसं न भुञ्जीत शूद्रो वैश्यत्वमृच्छति ।
ऋतवागनहंवादी निर्द्वन्द्वः शमकोविदः ॥ ३० ॥
यजते नित्ययज्ञैश्च स्वाध्यायपरमः शुचिः ।
दान्तो ब्राह्मणसत्कर्ता सर्ववर्णबुभूषकः ॥ ३१ ॥
गृहस्थव्रतमातिष्ठन् द्विकालकृतभोजनः ।
शेषाशी विजिताहारो निष्कामो निरहंवदः ॥ ३२ ॥
अग्निहोत्रमुपासंश्च जुह्वानश्च यथाविधि ।
सर्वातिथ्यमुपातिष्ठन् शेषान्नकृतभोजनः ॥ ३३ ॥
त्रेताग्निमन्त्रविहितो वैश्यो भवति वै द्विजः ।
स वैश्यः क्षत्रियकुले शुचौ महति जायते ॥ ३४ ॥
स वैश्यः क्षत्रियो जातो जन्मप्रभृति संस्कृतः ।
उपनीतो व्रतपरो द्विजो भवति सत्कृतः ॥ ३५ ॥
ददाति यजते यज्ञैः समृद्धैराप्तदक्षिणैः ।
अधीत्य स्वर्गमन्विच्छंस्त्रेताग्निशरणः सदा ॥ ३६ ॥

करनेमें व्रतयुक्त, ऋतुकालमें भार्यागामी, सदा नियमित भोजी, स्वयं मनोहर और मनोहर लोगोंका अन्वेषी, तथा शेषान्नभोजी शूद्रको वैश्यत्व प्राप्त होता है । (२६—२९)

सत्यवादी, वृथामांस न खानेवाला अहङ्काररहित निर्द्वन्द्व, शमयुक्त, स्वाध्यायरत और पवित्र होकर जो वैश्य यज्ञके द्वारा देवार्चना करता है, जो दान्त, द्विजोंका सम्मान करके सब वर्णोंको भूषित किया करता है और जो गृहस्थ-व्रत अवलम्बन करके दोबार भोजन करता है, जो शेषान्नभोजी, नियताहारी, निष्काम और अहङ्काररहित है, जो अग्निहोत्रकी उपासना करते हुए विधिपूर्वक आहुति प्रदान करता है, सबका आतिथ्य किया करता, बचा हुआ अन्न भोजन करता और दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य तथा आहवनीय अग्निकी परिचर्यामें सावधान रहता है, वह पवित्र वैश्य महत् क्षत्रिय-कुलमें उत्पन्न होता है । जन्मविधि-संस्कृत वह वैश्य क्षत्रिय और उपनीत व्रतयुक्त तथा सत्कृत होकर द्विज हुआ करता है । (३०—३५)

जो लोग दान करते और समृद्ध आप्तदक्षिण यज्ञके सहारे याग किया करते हैं और अध्ययन करते हुए सदा तीनों अग्नियोंके शरणापन्न होते हैं,

आर्तहस्तप्रदो नित्यं प्रजा धर्मेण पालयन्।
सत्यः सत्यानि कुरुते नित्यं यः सुखदर्शनः ॥ ३७ ॥
धर्मदण्डो न निर्दण्डो धर्मकार्यानुशासकः।
यन्त्रितः कार्यकरणैः षड्भागकृतलक्षणः ॥ ३८ ॥
ग्राम्यधर्मं न सेवेत स्वच्छन्देनार्थकोविदः।
ऋतुकाले तु धर्मात्मा पत्नीमुपशयेत्सदा ॥ ३९ ॥
सदोपवासी नियतः स्वाध्यायनिरतः शुचिः।
बर्हिष्कान्तरिते नित्यं शयानोऽग्निगृहे सदा ॥ ४० ॥
सर्वातिथ्यं त्रिवर्गस्य कुर्वाणः सुमनाः सदा।
शूद्राणां चान्नकामानां नित्यं सिद्धमिति ब्रुवन् ॥ ४१ ॥
अर्थाद्वा यदि वा कामान्न किंचिदुपलक्षयेत्।
पितृदेवातिथिकृते साधनं कुरुते च यः ॥ ४२ ॥
स्ववेश्मनि यथान्यायमुपास्ते भैक्ष्यमेव च।
त्रिकालमग्निहोत्रं च जुह्वानो वै यथाविधि ॥ ४३ ॥
गोब्राह्मणहितार्थाय रणे चाभिमुखो हतः।
त्रेताग्निमन्त्रपूतात्मा समाविश्य द्विजो भवेत् ॥४४॥

आर्त्त पुरुषोंको धीरज देते, धर्मके अनुसार प्रजापालन किया करते हैं, जो सुखदर्शन तथा सत्यवादी होके सत्य कार्योंको सदा निभाते हैं, धर्मदण्डके द्वारा धर्मकार्योंका अनुशासन करते हैं, कार्य और कारणके द्वारा निमन्त्रित होके राजग्राह्य छठवां भाग ग्रहण करते हैं, वह अर्थशास्त्र जाननेवाले धर्मात्मा राजा स्वच्छन्दतापूर्वक ग्राम्य धर्मकी सेवा न करें और ऋतुकालमें सदा भार्याके समीप शयन करे। (३७-३९)

सदोपवासी, सदा स्वाध्यायमें रत, पवित्र कर्मसे युक्त, अग्निगृहमें सदा शयन करनेवाला, प्रसन्नचित्तसे धर्मार्थकामके अनुसार सबका आतिथ्यकर्त्ता, अन्न चाहनेवाले शूद्रोंको सदा अन्न देनेवाला मनुष्य अर्थ अथवा कामवशसे किञ्चिन्मात्र अहङ्कार प्रकाश न करे। जो लोग पितरों, देवताओं और अतिथियोंके सत्कारके लिये उपाय विधान करते, निज गृहमें यथा रीतिसे भिक्षादान करते हैं, तीनों कालोंमें विधिपूर्वक अग्निहोत्रमें आहुति प्रदान किया करते हैं, गो-ब्राह्मणके निमित्त संग्राममें मरते हैं, वे क्षत्रिय त्रेताग्नि मन्त्रपूत, वस्त्र पहरके द्विज हुआ करते हैं। (४०-४४

ज्ञानविज्ञानसम्पन्नः संस्कृतो वेदपारगः ।
विप्रो भवति धर्मात्मा क्षत्रियः स्वेन कर्मणा ॥ ४५ ॥
एतैः कर्मफलैर्देवि न्यूनजातिकुलोद्भवः ।
शूद्रोऽप्यागमसम्पन्नो द्विजो भवति संस्कृतः ॥ ४६ ॥
ब्राह्मणो वाप्यसद्वृत्तः सर्वसङ्करभोजनः ।
ब्राह्मण्यं स समुत्सृज्य शूद्रो भवति तादृशः ॥ ४७ ॥
कर्मभिः शुचिभिर्देवि शुद्धात्मा विजितेन्द्रियः ।
शूद्रोऽपि द्विजवत्सेव्य इति ब्रह्माऽब्रवीत्स्वयम् ॥४८॥
स्वभावः कर्म च शुभं यत्र शूद्रेऽपि तिष्ठति ।
विशिष्टः स द्विजातेर्वै विज्ञेय इति मे मतिः ॥ ४९ ॥
न योनिर्नापि संस्कारो न श्रुतं न च सन्ततिः ।
कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम् ॥ ५० ॥
सर्वोऽयं ब्राह्मणो लोके वृत्तेन तु विधीयते ।
वृत्ते स्थितस्तु शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं नियच्छति ॥ ५१ ॥
ब्राह्मः स्वभावः सुश्रोणि समः सर्वत्र मे मतिः ।
निर्गुणं निर्मलं ब्रह्म यत्र तिष्ठति स द्विजः ॥ ५२ ॥
एते योनिफला देवि स्थानभागनिदर्शकाः ।

ज्ञानविज्ञान तथा संस्कारयुक्त वेदपारग धर्मात्मा क्षत्रिय निज कर्मोंके सहारे ब्राह्मण होते हैं। हे देवि! इन कर्मफलोंके द्वारा न्यून जातिकुलमें उत्पन्न हुआ, शास्त्रसम्पन्न शूद्र भी संस्कारयुक्त द्विज होता है। और ब्राह्मण भी असद्वृत्त तथा सब सङ्कर जातिवालोंका अन्न भोजन करनेसे ब्राह्मणत्व परित्यागके शूद्र हुआ करता है। हे देवि! शुद्धचित्तवाला जितेन्द्रिय शूद्रभी पवित्र कर्मोंके सहारे ब्राह्मणकी भांति सम्मानित होता है, ब्रह्माकी आज्ञा तथा मेरे मतसे पवित्र स्वभाव और पवित्र कर्म करनेवाले शूद्रको द्विजातियोंसे श्रेष्ठ जानना चाहिये। (४५-४९)

ब्राह्मणत्वके विषयमें योनि कारण नहीं है, संस्कार, शास्त्रज्ञान और सन्ततिभी कारण नहीं है केवल पवित्र चरित्रही कारण है, जगत्‌में चरित्रसेही लोग ब्राह्मण जाने जाते हैं; उत्तम चरित्रयुक्त शूद्रकोभी ब्राह्मणत्व मिल सकता है। हे कल्याणि! हे सुश्रोणि! ब्राह्मणका स्वभाव सर्वत्रही सम है ऐसा मुझे दीखता है। निर्गुण, निर्मल

स्वयं च वरदेनोक्ता ब्रह्मणा सृजता प्रजाः ॥ ५३ ॥
ब्राह्मणोऽपि महत्क्षेत्रं लोके चरति पादवत् ।
यत्तत्र बीजं वपति सा कृषिः प्रेत्य भाविनि ॥ ५४ ॥
विघसाशिना सदा भाव्यं सत्पथालम्बिना तथा ।
ब्राह्मं हि मार्गमाक्रम्य वर्तितव्यं बुभूषता ॥ ५५ ॥
संहिताध्यायिना भाव्यं गृहे वै गृहमेधिना ।
नित्यं स्वाध्यायिना भाव्यं न चाध्ययनजीविना ॥५६॥
एवंभूतो हि यो विप्रः सत्पथं सत्पथे स्थितः ।
आहिताग्निरधीयानो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५७ ॥
ब्राह्मण्यं देवि संप्राप्य रक्षितव्यं यतात्मना ।
योनिप्रतिग्रहादानैः कर्मभिश्च शुचिस्मिते ॥ ५८ ॥
एतत्ते गुह्यमाख्यातं यथा शूद्रो भवेद् द्विजः ।
ब्राह्मणो वा च्युतो धर्माद्यथा शूद्रत्वमाप्नुते ॥ ५९ ॥ [६५१९]

इति श्रीम० शत० अनुशा० उमामहेश्वरसंवादे त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

ब्रह्म जिसमें निवास करे वही ब्रह्मस्वरूप ब्राह्मण है । हे देवि ! प्रजाकी सृष्टि करनेवाले वरदाता ब्रह्माने स्वयं इस स्थानमें मार्गनिदर्शक योनिफलोंका वर्णन किया है, जगत्में सबकी गति-स्वरूप ब्राह्मण लोग क्षेत्रस्वरूपसे विचरण किया करते हैं उस क्षेत्रमें जो लोग बीज बोते हैं, परलोकमें उनका वह कृषिकार्य सफल होता है । श्रेष्ठ ब्राह्मण सदा विघसाशी तथा सत्पथावलम्बी होवे और जो लोग ऐश्वर्यकी कामना करते हैं, उन्हें ब्रह्मपथ अवलम्बन करके समय बिताना चाहिये । (५०–५५)

गृहमेधी मनुष्योंको गृहमें संहिता अध्ययन करना योग्य है, सदा स्वाध्यायरत होना चाहिये; किन्तु अध्ययन-मात्रकोही उपजीव्य न करे । इसी प्रकार जो विप्र सत्पथमें स्थित रहता और आहिताग्नि होकर अध्ययन करता है, वह ब्रह्मस्वरूप लाभ करनेमें समर्थ हुआ करता है । हे शुचिस्मिते ! यतचित्त ब्राह्मण ब्राह्मणत्व लाभ करके योनि-परिग्रह, आदान और कर्मसे उसकी रक्षा करे, शूद्र जिस प्रकार ब्राह्मण होता और ब्राह्मण धर्मच्युत होकर जिस भांति शूद्रत्व लाभ करता है; मैंने उस गोपनीय विषयको तुम्हारे समीप वर्णन किया । (५६—५९)

अनुशासनपर्वमें १४३ अध्याय समाप्त ।

उमोवाच— भगवन्सर्वभूतेश देवासुरनमस्कृत।
धर्माधर्मौ नृणां देव ब्रूहि मे संशयं विभो ॥ १ ॥
कर्मणा मनसा वाचा त्रिविधं हि नरः सदा।
बध्यते बन्धनैः पाशैर्मुच्यतेऽप्यथ वा पुनः ॥ २ ॥
केन शीलेन वृत्तेन कर्मणा कीदृशेन वा।
समाचारैर्गुणैः कैर्वा स्वर्गं यान्तीह मानवाः ॥ ३ ॥
महेश्वर उवाच-देवि धर्मार्थतत्त्वज्ञे धर्मनित्ये दमे रते।
सर्वप्राणिहितः प्रश्नः श्रूयतां बुद्धिवर्धनः ॥ ४ ॥
सत्यधर्मरताः सन्तः सर्वलिङ्गविवर्जिताः।
धर्मलब्धार्थभोक्तारस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ५ ॥
नाधर्मेण न धर्मेण बध्यन्ते छिन्नसंशयाः।
प्रलयोत्पत्तितत्त्वज्ञाः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः ॥ ६ ॥
वीतरागा विमुच्यन्ते पुरुषाः कर्मबन्धनैः।
कर्मणा मनसा वाचा ये न हिंसन्ति किंचन ॥ ७ ॥
ये न सज्जन्ति कस्मिंश्चित्ते न बध्यन्ति कर्मभिः।

अनुशासनपर्वमें १४४ अध्याय।

उमा बोली, हे सुरासुरनमस्कृत सर्वभूतेश देव भगवन्! हे विभु! मनुष्यों का धर्म और अधर्म वर्णन करिये, इस विषयमें मुझे सन्देह है। मनुष्य वचन, मन और कर्महेतु त्रिविध बन्धनपाशसे बद्ध होता है, अथवा उससे मुक्त हुआ करता है। हे देव! मनुष्य लोग इसलोकमें किस भांतिके चरित्र, कैसे कर्म और किन गुणोंके सहारे स्वर्गमें गमन करते हैं। (१—३)

महादेव बोले, हे धर्मार्थतत्त्वको जाननेवाली, धर्म और दममें रत देवि! तुमने जो प्रश्न किया, वह सब प्राणियोंके लिये हितकर और बुद्धिवर्द्धन है, इसलिये उसका उत्तर सुनो। सत्यधर्ममें रत सर्वलिङ्गविवर्जित जो सब साधुजन धर्मलब्ध अर्थ भोग करते हैं, वे सब मनुष्य ही स्वर्गमें गमन किया करते हैं; जिन लोगोंका सन्देह छूटा है, वे धर्म अथवा अधर्मसे बद्ध नहीं होते। प्रलय और उत्पत्तिके तत्वोंको जाननेवाले सर्वज्ञ सर्वदर्शी रागरहित पुरुष कर्मबन्धनसे मुक्त होते हैं; जो लोग वचन, मन और कर्मसे किसीकोभी हिंसा नहीं करते हैं, तथा मनहीमन किसी विषयमें भी आसक्त नहीं होते, वे कर्मसे बद्ध नहीं होते। (४—७)

प्राणातिपाताद्विरताः शीलवन्तो दयान्विताः ॥ ८ ॥
तुल्यद्वेष्यप्रिया दान्ता मुच्यन्ते कर्मबन्धनैः ।
सर्वभूतदयावन्तो विश्वास्याः सर्वजन्तुषु ॥ ९ ॥
त्यक्तहिंसासमाचारास्ते नराः स्वर्गगामिनः ।
परस्वे निर्ममा नित्यं परदारविवर्जकाः ॥ १० ॥
धर्मलब्धान्नभोक्तारस्ते नराः स्वर्गगामिनः ।
मातृवत्स्वसृवच्चैव नित्यं दुहितृवच्च ये ॥ ११ ॥
परदारेषु वर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ।
स्तैन्यान्निवृत्ताः सततं संतुष्टाः स्वधनेन च ॥ १२ ॥
स्वभाग्यान्युपजीवन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ।
स्वदारनिरता ये च ऋतुकालाभिगामिनः ॥ १३ ॥
अग्राम्यसुखभोगाश्च ते नराः स्वर्गगामिनः ।
परदारेषु ये नित्यं चारित्रावृतलोचनाः ॥ १४ ॥
यतेन्द्रियाः शीलपरास्ते नराः स्वर्गगामिनः ।
एष देवकृतो मार्गः सेवितव्यः सदा नरैः ॥ १५ ॥
अकषायकृतश्चैव मार्गः सेव्यः सदा बुधैः ।

इन्द्रियविषयोंसे जो लोग विरत हुए हैं और जो लोग शीलवन्त तथा दयावान् हैं, वे शत्रुमित्रको समान जाननेवाले दमनशील पुरुष कर्मबन्धनोंसे छूट जाते हैं। जो लोग सर्वभूतोंमें दयावान् सब प्राणियोंमें विश्वासी और हिंसावृत्तिसे रहित हैं, वे मनुष्य स्वर्गमें गमन किया करते हैं। जो लोग सदा परधनमें ममतारहित, परस्त्रीसे विरत रहते और धर्मसे प्राप्त हुआ अन्न भोजन करते हैं, वे सब मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो मनुष्य परस्त्रीके विषयमें मातृवत्, स्वसृवत् और दुहितृवत् व्यवहार करते हैं, वे भी स्वर्गगामी होते हैं; जो लोग सदा चोरीकार्यसे विरत रहते हैं, निजधनसे सन्तुष्ट और स्ववीर्यभाग्य उपजीव्य करके जीवन बिताते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं। (८—१३)

जो लोग निज स्त्रीमें रत तथा ऋतुकालमें गमन करनेवाले हैं और जो लोग ग्राम्यसुख नहीं भोगते, वे सब मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो लोग सदा पराई स्त्रीके विषयमें चरित्रके सहारे नेत्रको छिपा रखते हैं, जो लोग संयतेन्द्रिय और शीलपरायण हैं वे सब मनुष्य स्वर्गमें गमन किया करते हैं, पण्डितों-

दानधर्मतपोयुक्तः शीलशौचदयात्मकः ॥ १६ ॥
वृत्त्यर्थं धर्महेतोर्वा सेवितव्यः सदा नरैः ।
स्वर्गवासमभीप्सद्भिर्न सेव्यस्त्वत उत्तरः ॥ १७ ॥
उमोवाच- वाचा तु बध्यते येन मुच्यतेऽप्यथवा पुनः ।
तानि कर्माणि मे देव वद भूतपतेऽनघ ॥ १८ ॥
महेश्वर उवाच—आत्महेतोः परार्थे वा नर्महास्याश्रयात्तथा ।
ये मृषा न वदन्तीह ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ १९ ॥
वृत्त्यर्थं धर्महेतोर्वा कामकारात्तथैव च ।
अनृतं ये न भाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ २० ॥
श्लक्ष्णां वाणीं निराबाधां मधुरां पापवर्जिताम् ।
स्वागतेनाभिभाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ २१ ॥
परुषं ये न भाषन्ते कटुकं निष्ठुरं तथा ।
अपैशुन्यरताः सन्तस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ २२ ॥
पिशुनां न प्रभाषन्ते मित्रभेदकरीं गिरम् ।
ऋतं मैत्रं तु भाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ २३ ॥

को इस देवपथमें विचरना चाहिये, यह अकषायकृत मार्ग विद्वान् मण्डलीको सदा सेवनीय है। दान, धर्म, तप, शील, शौच और दयायुक्त पथ वृत्तिके निमित्त तथा धर्महेतुसे बुद्धिमान्को सदा सेवनीय है, जो लोग स्वर्गवासकी अभिलाष करते हैं, उन्हें उक्तपथके अतिरिक्त धर्मसेवा करनी योग्य नहीं है। (१३—१७)

उमा बोली, हे अनघ भूतनाथ! जिन वाक्योंके सहारे मनुष्य बद्ध होता है और जिन कर्मोंके द्वारा मुक्त होता है, आप मेरे समीप उसे वर्णन करिये। (१८)

महादेव बोले, अपने लिये अथवा दूसरोंके निमित्त वा परिहासके छलसे भी जो लोग इस लोकमें मिथ्या नहीं कहते, वे सब मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। वृत्तिके निमित्त अथवा धर्मके लिये वा स्वेच्छापूर्वक जो लोग मिथ्या वचन नहीं कहते, वे सब पुरुष स्वर्गगामी होते हैं। जो लोग मृदु, निराबाध, मधुर और निष्पाप भाषण स्वागतपूर्वक करते हैं, वेही स्वर्गगामी होते हैं। जो लोग निठुर और कडवे वचन नहीं कहते, जो पिशुनतारहित तथा साधु हैं, वे सब मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो लोग मित्रभेदकर, चुगलीयुक्त वचन

ये वर्जयन्ति परुषं परद्रोहं च मानवाः।
सर्वभूतसमा दान्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ २४ ॥
शठप्रलापाद्विरता विरुद्धपरिवर्जकाः।
सौम्यप्रलापिनो नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ २५ ॥
न कोपाद्व्याहरन्ते ये वाचं हृदयदारणीम्।
सान्त्वं वदन्ति क्रुद्धाऽपि ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२६॥
एष वाणीकृतो देवि धर्मः सेव्यः सदा नरैः।
शुभः सत्यगुणो नित्यं वर्जनीयो मृषा बुधैः ॥ २७ ॥
उमोवाच— मनसा बध्यते येन कर्मणा पुरुषः सदा।
तन्मे ब्रूहि महाभाग देवदेव पिनाकधृत् ॥ २८ ॥
महेश्वर उवाच- मानसेनेह धर्मेण संयुक्ताः पुरुषाः सदा।
स्वर्गं गच्छन्ति कल्याणि तन्मे कीर्तयतः शृणु ॥२९॥
दुष्प्रणीतेन मनसा दुष्प्रणीततराकृतिः।
मनो बध्यति येनेह शृणु वाक्यं शुभानने ॥ ३० ॥
अरण्ये विजने न्यस्तं परस्वं दृश्यते यदा।

नहीं कहते, सत्य तथा हितकर बात कहा करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो लोग कठोरवचन और परद्रोह परित्याग करते तथा जो सब जीवोंमें समदर्शी और दान्त हैं, वे स्वर्ग-गामी होते हैं। (१९—२४)

जो लोग असत्प्रलापसे विरत रहते, विरुद्ध कार्योंको नहीं करते और प्रिय वचन कहा करते हैं, वे मनुष्य स्वर्ग-गामी होते हैं। जो लोग क्रोधपूर्वक हृदयविदारक वचन नहीं कहते, क्रुद्ध होके भी शान्त वाणी बोलते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। हे देवि! मनुष्योंका इस ही प्रकार वाक्यजनित धर्म सदा सेवन करना योग्य है; यह शुभकर और सत्यफलप्रद है; इसलिये विद्वान् मनुष्योंको मिथ्या वचन कदापि न कहना चाहिये। (२५—२७)

उमा बोली, हे महाभाग देवोंके देव पिनाकधारी! पुरुष मनहीमन जिन कर्मोंको करके बद्ध होता है, आप मेरे निकट उसे वर्णन करिये। (२८)

महादेव बोले, हे कल्याणि! इस लोकमें मनुष्य सदा मानसधर्मोंसे संयुक्त होकर स्वर्गमें गमन करता है, उसे मैं कहता हूं, सुनो। हे शुभानने! दुष्ट-चित्तसे अन्तरात्मा भी दूषित होता है, इस लोकमें जिन कर्मोंसे मन बद्ध होता

मनसाऽपि न हिंसन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ३१ ॥
ग्रामे गृहे वा ये द्रव्यं पारक्यं विजने स्थितम् ।
नाभिनन्दन्ति वै नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३२॥
तथैव परदारान्ये कामवृत्तान् रहोगतान् ।
मनसाऽपि न हिंसन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३३ ॥
शत्रुं मित्रं च ये नित्यं तुल्येन मनसा नराः ।
भजन्ति मैत्राः सङ्गम्य ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ३४॥
श्रुतवन्तो दयावन्तः शुचयः सत्यसङ्गराः ।
स्वैरर्थैः परिसन्तुष्टास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ३५ ॥
अवैरा ये त्वनायासा मैत्रीचित्तरताः सदा ।
सर्वभूतदयावन्तस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ३६ ॥
श्रद्धावन्तो दयावन्तश्चोक्षाश्चोक्षजनप्रियाः ।
धर्माधर्मविदो नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ३७ ॥
शुभानामशुभानां च कर्मणां फलसंचये ।
विपाकज्ञाश्च ये देवि ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ३८ ॥
न्यायोपेता गुणोपेता देवद्विजपराः सदा ।

है, उसे सुनो; जनरहित वनके बीच यदि पराया धन दीख पडे, उस समय जो मनुष्य उसे हरनेके लिये मनसे भी कामना नहीं करते वे स्वर्गगामी होते हैं। ग्राम, गृह वा निर्जन वनमें जो धन रहता है, जो लोग उसे अभिनन्दन नहीं करते, वे स्वर्गमें जाते हैं। जो लोग निर्जनमें स्थित कामवृत्त पराई स्त्रीकी मनसे कामना नहीं करते, वे सब मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो मनुष्य शत्रु वा मित्रको देखकर समान भावसे और मैत्रीसे वार्त्ता करते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं। जो लोग श्रुतवन्त, दयावान्, पवित्र और सत्यप्रतिज्ञ हैं और निज धनसे सन्तुष्ट रहते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। (२९—३५)

जिनका कोई वैरी नहीं है, जो लोग किसी कार्यको करके आसक्तियुक्त नहीं होते, जिनके चित्तमें सदा मित्रभाव रहता है, तथा जो सब जीवोंमें दयावान् हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो लोग श्रद्धावान, दयावान्, मनोज्ञ और मनोज्ञजनप्रिय तथा हर एक धर्मोंको जाननेवाले हैं, वे सब मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। हे देवि! जो मनुष्य शुभाशुभ कर्मोंके फलसंचय

समुत्थानमनुप्राप्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ३९ ॥
शुभैः कर्मफलैर्देवि मयैते परिकीर्तिताः ।
स्वर्गमार्गपरा भूयः किं त्वं श्रोतुमिहेच्छसि ॥ ४० ॥
उमोवाच— महान्मे संशयः कश्चिन्मर्त्यान्प्रति महेश्वर ।
तस्मात्त्वं नैपुणेनाद्य मम व्याख्यातुमर्हसि ॥ ४१ ॥
केनायुर्लभते दीर्घं कर्मणा पुरुषः प्रभो ।
तपसा वाऽपि देवेश केनायुर्लभते महत् ॥ ४२ ॥
क्षीणायुः केन भवति कर्मणा भुवि मानवः ।
विपाकं कर्मणां देव वक्तुमर्हस्यनिन्दित ॥ ४३ ॥
अपरे च महाभाग्या मन्दभाग्यास्तथाऽपरे ।
अकुलीनास्तथा चान्ये कुलीनाश्च तथाऽपरे ॥ ४४ ॥
दुर्दर्शाः केचिदाभान्ति नराः काष्ठमया इव ।
प्रियदर्शास्तथा चान्ये दर्शनादेव मानवाः ॥ ४५ ॥
दुष्प्रज्ञाः केचिदाभान्ति केचिदाभान्ति पण्डिताः ।
महाप्राज्ञास्तथैवाऽन्ये ज्ञानविज्ञानभाविनः ॥ ४६ ॥
अल्पाबाधास्तथा केचिन्महाबाधास्तथाऽपरे ।

विषयमें विपाकज्ञ हैं, वे लोग स्वर्गगामी होते हैं। जो लोग सदा न्यायपूर्वक, गुणयुक्त, देव-द्विजपरायण और सदा सावधान रहते हैं, वे सब मनुष्य स्वर्गमें गमन करते हैं। हे देवि! शुभकर्मोंसे जो अनन्त फल मिलता है, उसे मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया। स्वर्गमार्ग-परायण होकर अब फिर तुम कौनसा विषय सुननेकी इच्छा करती हो? ३९-४०

उमा बोली, हे महेश्वर! मनुष्योंके विषयमें मुझे एक महत् सन्देह है, इसलिये आप मेरे समीप निपुण भावसे उस सन्दिग्ध विषयकी व्याख्या करिये। हे प्रभु! पुरुषको किन कर्मोंसे दीर्घायु प्राप्त होती है? हे देवेश! किस तपस्यासे महत् परमायु मिलती है? भूमण्डलमें मनुष्य किन कर्मोंसे क्षीणायु हुआ करता है? हे अनिन्दित देव! आपको कर्मोंका विपाक वर्णन करना उचित है। कोई कोई महाभाग्यशाली और कोई मन्दभागी हुआ करते हैं, कोई कुलीन और कोई अकुलीन होते हैं। कोई कोई मनुष्य दुर्दशापन्न होकर मानो काष्ठमय रूपसे मालूम होते हैं, कोई प्रियदर्शन और देखते ही दुर्बुद्धिरूपसे मालूम होते हैं। कोई पण्डित, कोई महाबुद्धिमान्, कोई

दृश्यन्ते पुरुषा देव तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ४७ ॥
महेश्वर उवाच- हन्त तेऽहं प्रवक्ष्यामि देवि कर्मफलोदयम् ।
मर्त्यलोके नरः सर्वो येन स्वफलमश्नुते ॥ ४८ ॥
प्राणातिपाते यो रौद्रो दण्डहस्तोद्यतः सदा ।
नित्यमुद्यतशस्त्रश्च हन्ति भूतगणान्नरः ॥ ४९ ॥
निर्दयः सर्वभूतानां नित्यमुद्वेगकारकः ।
अपि कीटपिपीलानामशरण्यः सुनिर्घृणः ॥ ५० ॥
एवंभूतो नरो देवि निरयं प्रतिपद्यते ।
विपरीतस्तु धर्मात्मा रूपवानभिजायते ॥ ५१ ॥
पापेन कर्मणा देवि वध्यो हिंसारतिर्नरः ।
अप्रियः सर्वभूतानां हीनायुरुपजायते ॥ ५२ ॥
निरयं याति हिंसाऽऽत्मा याति स्वर्गमहिंसकः ।
यातनां निरये रौद्रां सकृच्छ्रां लभते नरः ॥ ५३ ॥
यः कश्चिन्निरयात्तस्मात्समुत्तरति कर्हिचित् ।
मानुष्यं लभते चापि हीनायुस्तत्र जायते ॥ ५४ ॥
पापेन कर्मणा देवि बद्धो हिंसारतिर्नरः ।

कोई ज्ञानविज्ञानसम्पन्न और कोई अल्प बाधायुक्त हैं, कितने ही महापीडाग्रस्त दिखाई देते हैं। हे देव! पुरुषोंमें ऐसी विशेषता किसलिये होती है, उसे आपको यथार्थ वर्णन करना उचित है। (४१—४७)

महादेव बोले, हे देवि! अच्छा मैं तुमसे कर्मफलोदय कहता हूं, मर्त्यलोकमें सब मनुष्य जिसके सहारे निज कर्मफल भोगते हैं, उसे सुनो। हे देवि! जो पुरुष प्राणवध करनेमें सदा दण्डहस्त होकर भयङ्कर भावसे उद्यत रहता और शस्त्रसे सदा प्राणियोंको मारता है और जो मनुष्य निर्दयी तथा सर्व भूतोंके विषयमें उद्वेगजनक है; कीट, चींटी प्रभृतिके भी अशरण्य तथा अत्यन्त निर्घृण है, वह मनुष्य नरकमें डूबता है और इसके विपरीत पुरुष धर्मात्मा तथा रूपवान् होकर जन्मता है। (४८-५१)

मनुष्य पापकर्मसे हिंसामें आसक्त, वध्य, सब प्राणियोंको अप्रिय और अल्पायु होता है। हिंसक मनुष्य नरकमें जाता और अहिंसक पुरुष स्वर्गमें गमन करता है। नरकमें पडके मनुष्य घोर कष्टयुक्त यातना भोग करता है; जो कोई पुरुष कदाचित् उस नरकसे

अप्रियः सर्वभूतानां हीनायुरुपजायते ॥ ५५ ॥
यस्तु शुक्लाभिजातीयः प्राणिघातविवर्जकः।
निक्षिप्तशस्त्रो निर्दण्डो न हिंसति कदाचन ॥ ५६ ॥
न घातयति नो हन्ति घ्नन्तं नैवानुमोदते।
सर्वभूतेषु सस्नेहो यथाऽऽत्मनि तथाऽपरे ॥ ५७ ॥
ईदृशः पुरुषोत्कर्षो देवि देवत्वमश्नुते।
उपपन्नान्सुखान्भोगानुपाश्नाति मुदा युतः ॥ ५८ ॥
अथ चेन्मानुषे लोके कदाचिदुपपद्यते।
तत्र दीर्घायुरुत्पन्नः स नरः सुखमेधते ॥ ५९ ॥
एष दीर्घायुषां मार्गः सुवृत्तानां सुकर्मिणाम्।
प्राणिहिंसाविमोक्षेण ब्रह्मणा समुदीरितः ॥ ६० ॥ [६५९९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे उमामहेश्वरसंवादे चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४४॥

उमोवाच— किंशीलः किंसमाचारः पुरुषः कैश्च कर्मभिः।
स्वर्गं समभिपद्येत संप्रदानेन केन वा ॥ १ ॥

बाहिर होता है, वह मनुष्यजन्म पाके हीनायु हुआ करता है। हे देवि! हिंसामें रत मनुष्य पाप कर्मसे बद्ध होते और वे लोग सर्व भूतोंके अप्रिय तथा अल्पायु होके जन्मते हैं। (५२-५५)

और जो लोग पवित्र वंशमें जन्म ग्रहण करते हैं, वे प्राणिहिंसावर्जित, शस्त्ररहित और दण्डहीन होकर कदापि हिंसा नहीं करते; न वे आघात करते हैं और मारनेवालेका अनुमोदन करनेमें विरत रहते हैं, वे सब जीवोंके विषयमें स्नेहवान् हुआ करते हैं, वे अपने समान दूसरेको भी जानते हैं। हे देवि! ऐसे श्रेष्ठ पुरुष देवत्व संभोग करते हैं, वे हर्षित होकर उपपन्न सुखभोगोंको उपभोग किया करते हैं। अनन्तर यदि कदाचित् वे मनुष्यलोकमें जन्म लेते हैं, तो दीर्घायु होकर सुख भोग किया करते हैं। दीर्घायु, सच्चरित्र, सुकर्मशील मनुष्योंका प्राणिहिंसाविमोक्षवशसे यह पथ ब्रह्माके द्वारा वर्णित हुआ है। (५६—६०)

अनुशासनपर्वमें १४४ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १४५ अध्याय।

उमा बोली, पुरुष कैसे स्वभाव, किस प्रकारके आचार और व्यवहारसे युक्त होकर किन कर्मों तथा कैसे दानके सहारे स्वर्गलोक पाता है? (१)

महेश्वर उवाच– दाता ब्राह्मणसत्कर्ता दीनार्तकृपणादिषु ।
भक्ष्यभोज्यान्नपानानां वाससां च प्रदायकः ॥ २ ॥
प्रतिश्रयान्सभाः कूपान्प्रपाः पुष्करिणीस्तथा ।
नैत्यकानि च सर्वाणि किमिच्छकमतीव च ॥ ३ ॥
आसनं शयनं यानं गृहं रत्नं धनं तथा ।
सस्यजातानि सर्वाणि गाः क्षेत्राण्यथ योषितः ॥ ४ ॥
सुप्रतीतमना नित्यं यः प्रयच्छति मानवः ।
एवंभूतो नरो देवि देवलोकेऽभिजायते ॥ ५ ॥
तत्रोष्य सुचिरं कालं भुक्त्वा भोगाननुत्तमान् ।
सहाप्सरोभिर्मुदितो रमते नन्दनादिषु ॥ ६ ॥
तस्मात्स्वर्गाच्च्युतो लोकान्मानुषेषु प्रजायते ।
महाभोगकुले देवि धनधान्यसमन्वितः ॥ ७ ॥
तत्र कामगुणैः सर्वैः समुपेतो मुदा युतः ।
महाभोगो महाकोशो धनी भवति मानवः ॥ ८ ॥
एते देवि महाभागाः प्राणिनो दानशीलिनः ।
ब्रह्मणा वै पुरा प्रोक्ताः सर्वस्य प्रियदर्शनाः ॥ ९ ॥
अपरे मानवा देवि प्रदानकृपणा द्विजैः ।

महादेव बोले, हे देवि ! जो लोग दाता हैं और ब्राह्मणोंका सम्मान करते हैं; दीन, पीडित और कृपण आदिको भक्ष्य, भोज्य, अन्न, पान, वस्त्र, तथा भूषण प्रदान करते हैं; निवासस्थान, सभा, कूप, तालाव, तलाई आदि तैयार कराते और नित्य प्रयोजनीय वस्तुओं तथा जो मनुष्य जिस वस्तुके लिये प्रार्थना करता उसे देते; आसन, शय्या, सवारी, धन, रत्न, गृह सब प्रकारके सस्य, गऊ, क्षेत्र, स्त्रीप्रभृतिका जो मनुष्य प्रसन्नचित्त होकर सदा प्रदान करता है, वह देवलोकमें विराजता है । वह वहांपर बहुत समयतक उत्तम भोगोंको भोग करते हुए अप्सराओंके सङ्ग प्रमुदित होकर नन्दन प्रभृति वनोंमें क्रीडा करता है; स्वर्गलोकसे च्युत होनेपर वह पुरुष मनुष्यलोकमें धनधान्ययुक्त होकर महाकुलमें जन्मता है । हे देवि ! वहां समस्त कामगुणयुक्त और हर्षित होकर वह महाभोग मनुष्य महाकोषसम्पन्न तथा धनवान् होता है । ब्रह्माने पहले ही कहा है, कि ये दानशील महाभाग प्राणिगण सबको ही प्रिय-

याचिता न प्रयच्छन्ति विद्यमानेऽप्यबुद्धयः ॥ १० ॥
दीनान्धकृपणान्दृष्ट्वा भिक्षुकानतिथीनपि ।
याच्यमाना निवर्तन्ते जिह्वालोभसमन्विताः ॥ ११ ॥
न धनानि न वासांसि न भोगान्न च काञ्चनम् ।
न गावो नान्नविकृतिं प्रयच्छन्ति कदाचन ॥ १२ ॥
अप्रवृत्ताश्च ये लुब्धा नास्तिका दानवर्जिताः ।
एवंभूता नरा देवि निरयं यान्त्यबुद्धयः ॥ १३ ॥
ते वै मनुष्यतां यान्ति यदा कालस्य पर्ययात् ।
धनरिक्तं कुलं जन्म लभन्ते स्वल्पबुद्धयः ॥ १४ ॥
क्षुत्पिपासापरीताश्च सर्वलोकबहिष्कृताः ।
निराशाः सर्वभोगेभ्यो जीवन्त्यधर्मजीविकाम् ॥१५॥
अल्पभोगकुले जाता अल्पभोगरता नराः ।
अनेन कर्मणा देवि भवन्त्यधनिनो नराः ॥ १६ ॥
अपरे स्तम्भिनो नित्यं मानिनः पापतो रताः ।
आसनार्हस्य ये पीठं न प्रयच्छन्त्यचेतसः ॥ १७ ॥
मार्गार्हस्य च ये मार्गं न यच्छन्त्यल्पबुद्धयः ।

दर्शन हैं । (८-९)

हे देवि ! दूसरे निर्बुद्धि मनुष्य दान विषयमें कृपण होकर द्विजोंको मांगनेपर धन विद्यमान रहते भी दान नहीं करते, वे जिह्वालोभयुक्त होकर दीन, अन्ध, कृपण, भिक्षुक और अतिथियोंको मांगनेपर भी दनेसे विमुख हुआ करते, हैं । वे लोग धन, वस्त्र, भोग्यवस्तु, सुवर्ण, गऊ तथा अन्नविकार कदाचित् किञ्चिन्मात्र प्रदान नहीं करते, वे लोग दान विषयमें निवृत्त लोभी, नास्तिक तथा दानरहित होते हैं । हे देवि ! ऐसे अल्पबुद्धिवाले मनुष्य नरक में गमन करते हैं। कालक्रमसे जब उन्हें फिर मनुष्यत्व प्राप्त होता है, तब वे अल्पबुद्धि मनुष्य धनहीन कुलमें जन्मते हैं । (१०—१४)

वे लोग भूख-प्याससे युक्त, सब लोगोंसे पृथक् और सब भोगोंसे रहित होकर अधर्मजीविकाके सहारे जीवित रहते हैं । हे देवि ! इन्हीं कर्मोंसे मनुष्य अल्पभोगयुक्त कुलमें जन्मते और अल्पभोगमें रत तथा निर्द्धन हुआ करते हैं । हे देवि ! जो मनुष्य धनगर्वसे अभिमानी,स्तम्भित और पापरत होते हैं, जो लोग अचेत होकर आसन देने योग्य

पाद्यार्हस्य च ये पाद्यं न ददत्यल्पबुद्धयः ॥ १८ ॥
अर्घार्हान्न च सत्कारैरर्चयन्ति यथाविधि ।
अर्घ्यमाचमनीयं वा न यच्छन्त्यल्पबुद्धयः ॥ १९ ॥
गुरुं चाभिगतं प्रेम्णा गुरुवन्न बुभूषते ।
अभिमानप्रवृत्तेन लोभेन समवस्थिताः ॥ २० ॥
संमान्यांश्चावमन्यन्ते वृद्धान्परिभवन्ति च ।
एवंविधा नरा देवि सर्वे निरयगामिनः ॥ २१ ॥
ते वै यदि नरास्तस्मान्निरयादुत्तरन्ति वै ।
वर्षपूगैस्ततो जन्म लभन्ते कुत्सिते कुले ॥ २२ ॥
श्वपाकपुल्कसादीनां कुत्सितानामचेतसाम् ।
कुलेषु तेषु जायन्ते गुरुवृद्धापचायिनः ॥ २३ ॥
न स्तम्भी न च मानी यो देवताद्विजपूजकः ।
लोकपूज्यो नमस्कर्ता प्रश्रितो मधुरं वचः ॥ २४ ॥
सर्ववर्णप्रियकरः सर्वभूतहितः सदा ।
अद्वेषी सुमुखः श्लक्ष्णः स्निग्धवाणीप्रदः सदा ॥ २५ ॥

माननीय पुरुषोंको आसन प्रदान नहीं करते, जो अल्पबुद्धि मनुष्य पथप्रदानके योग्य पुरुषोंको मार्ग नहीं देते, जो तुच्छबुद्धि पुरुष पाद्य देने योग्य मनुष्यको पाद्यप्रदान नहीं करते, अर्घयोग्य पुरुषका सत्कार करके विधिपूर्वक पूजा नहीं करते अथवा जो मूर्ख मनुष्य पूजनीय पुरुषको अर्घ वा आचमनके लिये जल नहीं देते, गुरुको आया हुआ देखकर प्रीतिपूर्वक उसके सङ्ग गुरुयोग्य व्यवहार नहीं करते, अभिमान और लोभसे परिपूरित हुआ करते, माननीय लोगोंकी अवज्ञा करते और वृद्धोंका परिभव किया करते हैं, वे सारे मनुष्य नरकगामी होते हैं। (१५-२१)

वे मनुष्य अनेक वर्षोंके अनन्तर कदाचित् महानरकसे बाहिर होकर अत्यन्त निन्दित नीचकुलमें जन्मते हैं। जो लोग गुरु और वृद्ध लोगोंकी अवज्ञा करते हैं, वे चाण्डाल पुल्कस प्रभृति निर्बुद्धि लोगोंके निन्दित कुलमें उत्पन्न हुआ करते हैं। जो लोग अभिमानी तथा अहंकारी नहीं हैं और देव ब्राह्मणोंकी पूजा करते और मधुर भाषण करते हैं, वे लोगोंके बीच पूज्य होते हैं। जो लोग गुरुजनोंको नमस्कार करते और विनययुक्त होके मधुरवचन कहते हैं, वे सब वर्णोंको प्रिय तथा

स्वागतेनैव सर्वेषां भूतानामविहिंसकः ।
यथार्हसत्क्रियापूर्वमर्चयन्नवतिष्ठति ॥ २६ ॥
मार्गार्हाय ददन्मार्गं गुरुं गुरुवदर्चयन् ।
अतिथिप्रग्रहरतस्तथाऽभ्यागतपूजकः ॥ २७ ॥
एवंभूतो नरो देवि स्वर्गतिं प्रतिपद्यते ।
ततो मानुषतां प्राप्य विशिष्टकुलजो भवेत् ॥ २८ ॥
तत्रासौ विपुलैर्भोगैः सर्वरत्नसमायुतः ।
यथार्हदाता चार्हेषु धर्मचर्यापरो भवेत् ॥ २९ ॥
संमतः सर्वभूतानां सर्वलोकनमस्कृतः ।
स्वकर्मफलमाप्नोति स्वयमेव नरः सदा ॥ ३० ॥
उदात्तकुलजातीय उदात्ताभिजनः सदा ।
एष धर्मो मया प्रोक्तो विधात्रा स्वयमीरितः ॥ ३१ ॥
यस्तु रौद्रसमाचारः सर्वसत्त्वभयङ्करः ।
हस्ताभ्यां यदि वा पद्भ्यां रज्ज्वा दण्डेन वा पुनः ॥ ३२ ॥
लोष्टैः स्तम्भैरायुधैर्वा जन्तून्बाधति शोभने ।

सर्वभूतोंके हितकर हुआ करते हैं । हे देवि ! द्वेष न करनेवाले सुमुखशाली, अत्यन्त मृदुभाषी और जो लोग स्वागतप्रश्नसे सदा कोमल वचन कहते हैं, सब जीवोंकी हिंसा न करते हुए अतिथियोंकी यथायोग्य सत्कारसे पूजा करते हैं, पथप्रदान करने योग्य पुरुषको पथ देते हैं, बडे लोगोंकी गुरुकी भांति पूजा किया करते हैं; जो लोग अतिथिसेवामें अनुरक्त रहते और अभ्यागतोंकी पूजा करते हैं, उनको स्वर्गगति प्राप्त होती है । (२२--२८)

अनन्तर मनुष्यत्व पाके श्रेष्ठ कुलमें जन्म लेते हैं, वहांपर वेही पुरुष सब रत्नोंसे युक्त विपुल भोगके द्वारा पूज्य पुरुषोंको यथायोग्य दान करते और धर्मचर्यापरायण होते हैं । मनुष्य सदाही सब प्राणियोंको मान्य और सब लोगोंके पूज्य होकर स्वकर्मका फल पाता है । ऐसे मनुष्य श्रेष्ठ कुलमें जन्मते और सदा उत्तम महत् कुल और जातिको प्रकाशित किया करते हैं । मैंने जो यह धर्म विषय कहा है, इसे स्वयं विधाताने वर्णन किया था । हे सुन्दरि ! जिस पुरुषका व्यवहार अत्यन्त भयङ्कर है, जिसको देखते ही सब प्राणी भयभीत होते हैं, जो पुरुष हाथ, पांव, रस्सी वा दण्ड, लोष्ट, स्तम्भ अथवा दूसरे किसी उपायसे

हिंसार्थं निकृतिप्रज्ञः प्रोद्वेजयति चैव ह ॥ ३३ ॥
उपक्रामति जन्तूंश्च उद्वेगजननः सदा।
एवंशीलसमाचारो निरयं प्रतिपद्यते ॥ ३४ ॥
स वै मनुष्यतां गच्छेद्यदि कालस्य पर्ययात्।
बह्वाबाधपरिक्लिष्टे जायते सोऽधमे कुले ॥ ३५ ॥
लोकद्वेष्योऽधमः पुंसां स्वयं कर्मफलैः कृतैः।
एष देवि मनुष्येषु बोद्धव्यो ज्ञातिबन्धुषु ॥ ३६ ॥
अपरः सर्वभूतानि दयावाननुपश्यति।
मैत्रदृष्टिः पितृसमो निर्वैरो नियतेन्द्रियः ॥ ३७ ॥
नोद्वेजयति भूतानि न विघातयते तथा।
हस्तपादैः सुनियतैर्विश्वास्यः सर्वजन्तुषु ॥ ३८ ॥
न रज्ज्वा न च दण्डेन न लोष्टैर्नायुधेन च।
उद्वेजयति भूतानि श्लक्ष्णकर्मा दयापरः ॥ ३९ ॥
एवंशीलसमाचारः स्वर्गे समुपजायते।
तत्रासौ भवने दिव्ये मुदा वसति देववत् ॥ ४० ॥

प्राणियोंको मारनेके लिये दौडता है, जिसकी बुद्धिवृत्ति हिंसाके निमित्त निकृष्ट पथमें भ्रमण करती है, जो सब जीवोंको व्याकुल करता है, सदा प्राणियोंको उद्वेगजनक होकर उन्हें आक्रमण करता है, ऐसे व्यवहारोंसे युक्त पुरुष नरकमें गमन किया करता है। (२८–३४)

कालक्रमसे वह पुरुष मानुषत्व पाके अनेक प्रकारकी बाधा और क्लेशोंसे युक्त और अधम वंशमें उत्पन्न होता है। जगत्में द्वेषी मनुष्य सब पुरुषोंसे अधम है। हे देवि! यह जान रखो कि, अपने किये हुए कर्मोंसेही मनुष्य स्वजनों तथा बान्धव प्रभृतिके बीच अधम हुआ करते हैं। दयावान्, शत्रुतारहित, नियतेन्द्रिय, मैत्रदृष्टि मनुष्य पिताकी भांति सब भूतोंको समदृष्टिसे देखता है, वह जीवोंको व्याकुल तथा दुःखित नहीं करता; और भूतोंका घात नहीं करता, उत्तम नियमित हाथ पांवके सहारे सब प्राणियोंका विश्वासपात्र होता है। (३५–३८)

मृदुकर्म करनेवाला दयावान् मनुष्य रसरी, दण्ड, लोष्ट वा शस्त्रोंसे जीवोंको उद्वेगयुक्त नहीं करता, ऐसे स्वभाव और व्यवहारसे युक्त पुरुष स्वर्गलोकमें जाकर सुरपुरके दिव्य स्थानोंमें देवता-

स चेत्कर्मक्षयान्मर्त्यो मनुष्येषूपजायते ।
अल्पाबाधो निरातङ्कः स जातः सुखमेधते ॥ ४१ ॥
सुखभागी निरायासो निरुद्वेगः सदा नरः ।
एष देवि सतां मार्गो बाधा यत्र न विद्यते ॥ ४२ ॥
उमोवाच— इमे मनुष्या दृश्यन्ते ऊहापोहविशारदाः ।
ज्ञानविज्ञानसंपन्नाः प्रज्ञावन्तोऽर्थकोविदाः ॥ ४३ ॥
दुष्प्रज्ञाश्चापरे देव ज्ञानविज्ञानवर्जिताः ।
केन कर्मविशेषेण प्रज्ञावान् पुरुषो भवेत् ॥ ४४ ॥
अल्पप्रज्ञो विरूपाक्ष कथं भवति मानवः ।
एतन्मे संशयं छिन्धि सर्वधर्मविदां वर ॥ ४५ ॥
जात्यन्धाश्चापरे देव रोगार्ताश्चापरे तथा ।
नराः क्लीबाश्च दृश्यन्ते कारणं ब्रूहि तत्र वै ॥ ४६ ॥
महेश्वर उवाच- ब्राह्मणान्वेदविदुषः सिद्धान्धर्मविदस्तथा ।
परिपृच्छन्त्यहरहः कुशलाः कुशलं तथा ॥ ४७ ॥
वर्जयन्तोऽशुभं कर्म सेवमानाः शुभं तथा ।
लभन्ते स्वर्गतिं नित्यमिह लोके तथा सुखम् ॥ ४८ ॥

ओंकी भांति निवास किया करता है। वह मनुष्य कर्मक्षय होनेपर मनुष्य-लोकमें जन्म लेकर अल्प बाधायुक्त और निरातङ्क होकर सुखसमृद्धि भोग किया करता है, वह सुखभागी, निरायास और सदा निरुद्वेगयुक्त होता है। हे देवि ! यही साधु पुरुषोंका पथ है, इसमें कुछ भी बाधा नहीं है। (३९ ४२)

उमा बोली, ये सब पूर्वपक्ष तथा सिद्धान्त विशारद, ज्ञानविज्ञानयुक्त अर्थज्ञ मनुष्य जन्मते हुए दीख पडते हैं। हे देव ! दूसरे लोग दुर्बुद्धि और ज्ञान-विज्ञानसे रहित होके उत्पन्न होते हैं। हे विरूपाक्ष ! किन विशेष कर्मोंसे पुरुष प्रज्ञावान् होता और किस प्रकार अल्पबुद्धि हुआ करता है? हे सर्वधर्मज्ञ-श्रेष्ठ! आप मेरा यह सन्देह दूर करिये। हे देव ! मनुष्योंके बीच कोई कोई अन्धे ही उत्पन्न होते हैं, कितने ही रोगी और कितने ही क्लीब दीखते हैं; इस विषयका कारण वर्णन करिये। (४३—४६)

महादेव बोले, निपुण लोग वेद जाननेवाले धर्मज्ञ बुद्धिमान ब्राह्मणोंको प्रतिदिन कुशल पूछते और सदा शुभ सेवा करते हुए अशुभ कर्मोंको

स चेन्मानुषतां याति मेधावी तत्र जायते ।
श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य कल्याणमुपजायते ॥ ४९ ॥
परदारेषु ये चापि चक्षुर्दुष्टं प्रयुञ्जते ।
तेन दुष्टस्वभावेन जात्यन्धास्ते भवन्ति ह ॥ ५० ॥
मनसा तु प्रदुष्टेन नग्नां पश्यन्ति ये स्त्रियम् ।
रोगार्तास्ते भवन्तीह नरा दुष्कृतकर्मिणः ॥ ५१ ॥
ये तु मूढा दुराचारा वियोनौ मैथुने रताः ।
पुरुषेषु सुदुष्प्रज्ञाः क्लीबत्वमुपयान्ति ते ॥ ५२ ॥
पशूंश्च ये घातयन्ति ये चैव गुरुतल्पगाः ।
प्रकीर्णमैथुना ये च क्लीबा जायन्ति ते नराः ॥ ५३ ॥
उमोवाच— सावद्यं किं तु वै कर्म निरवद्यं तथैव च ।
श्रेयः कुर्वन्नवाप्नोति मानवो देवसत्तम ॥ ५४ ॥
महेश्वर उवाच—श्रेयांसं मार्गमन्विच्छन्सदा यः पृच्छति द्विजान् ।
धर्मान्वेषी गुणाकाङ्क्षी स स्वर्गं समुपाश्नुते ॥ ५५ ॥
यदि मानुषतां देवि कदाचित्स निगच्छति ।
मेधावी धारणायुक्तः प्रायस्तत्राभिजायते ॥ ५६ ॥

परित्याग किया करते हैं; इसीसे वे लोग इस लोकमें सुख भोगकर स्वर्ग-गति प्राप्त करते हैं। यदि वे फिर मनुष्यजन्म पाते तो बुद्धिमान् होते और उनका श्रुत प्रज्ञानुयायी और कल्याण होता है। जो महामूढ मनुष्य पराई स्त्रीकी ओर दृष्टि करते हैं, वे उस ही दुष्ट स्वभावसे जन्मान्ध होते हैं, जो लोग दुष्टचित्तसे नङ्गी स्त्रीको देखते हैं, वे पापी मनुष्य इस लोकमें रोगार्त हुआ करते हैं। जो सब दुर्बुद्धि, दुराचारी, मूढ मनुष्य विरुद्धयोनियों और पुरुषोंसे मैथुन करनेमें रत होते हैं, वे नपुंसक हुआ करते हैं। जो लोग पशुहत्या करते, जो गुरुपत्नीगमन करते और जो लोग सङ्कीर्ण मैथुन करते हैं, वे सब मनुष्य नपुंसक हुआ करते हैं। (४७-५३)

उमा बोली, हे देवसत्तम! कैसे कर्म बुरे और कौनसे उत्तम हैं? किन कर्मोंके करनेसे मनुष्योंका कल्याण होता है? (५४)

महादेव बोले, जो लोग कल्याण-युक्त पथकी खोज करते हुए उस विषयमें ब्राह्मणोंसे प्रश्न करते हैं, वे धर्मान्वेषी, गुणके अभिलाषी स्वर्ग भोग करते हैं। हे देवि! वैसे मनुष्य यदि कदाचित्

एष देवि सतां धर्मो मन्तव्यो भूतिकारकः ।
नृणां हितार्थाय मया तव वै समुदाहृतः ॥ ५७ ॥
उमोवाच- अपरे स्वल्पविज्ञाना धर्मविद्वेषिणो नराः ।
ब्राह्मणान्वेदविदुषो नेच्छन्ति परिसर्पितुम् ॥ ५८ ॥
व्रतवन्तो नराः केचिच्छ्रद्धाधर्मपरायणाः ।
अव्रता भ्रष्टनियमास्तथाऽन्ये राक्षसोपमाः ॥ ५९ ॥
यज्वानश्च तथैवान्ये निर्होमाश्च तथाऽपरे ।
केन कर्मविपाकेन भवन्तीह वदस्व मे ॥ ६० ॥
महेश्वर उवाच-आगमा लोकधर्माणां मर्यादाः सर्वनिर्मिताः ।
प्रामाण्येनानुवर्तन्ते दृश्यन्ते च दृढव्रताः ॥ ६१ ॥
अधर्मं धर्ममित्याहुर्ये च मोहवशं गताः ।
अव्रता नष्टमर्यादास्ते प्रोक्ता ब्रह्मराक्षसाः ॥ ६२ ॥
ते चेत्कालकृतोद्योगात्संभवन्तीह मानुषाः ।
निर्होमा निर्वषट्कारास्ते भवन्ति नराधमाः ॥ ६३ ॥
एष देवि मया सर्वः संशयच्छेदनाय ते ।

मनुष्यत्व लाभ करें, तो वे मेधावी, धारणायुक्त और बुद्धिमान् होके उत्पन्न होते हैं। हे देवि ! इसे ही साधुओंका ऐश्वर्ययुक्त धर्म जानो; मनुष्योंके हितके निमित्त मैंने तुम्हारे समीप इस धर्मको वर्णन किया है। (५५—५७)

उमा बोली, कितने ही धर्मद्वेषी, अल्पविज्ञानयुक्त मनुष्य वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंके समीप जानेकी इच्छा नहीं करते; कोई कोई मनुष्य व्रतयुक्त और कोई श्रद्धाधर्मपरायण हैं। कोई कोई अव्रती, कोई भ्रष्ट नियमवाले और कोई राक्षसके सदृश हैं। कोई विधिपूर्वक यज्ञ करते, कितने ही होमरहित हैं; इसलिये कैसे कर्मविपाकके सहारे इस लोकमें मनुष्यगण ऐसे नैमित्तिक धर्मोंसे आक्रान्त हुआ करते हैं ? आप मेरे समीप इस विषयको वर्णन करिये। (५८—६०)

महादेव बोले, आगम शास्त्रोंमें लोगोंके कर्म और समस्त मर्यादा पहलेसे ही वर्णित हैं; दृढव्रती मनुष्य प्रमाणका अनुसरण करते हुए दीखते हैं; जो लोग मोहके वशीभूत होते हैं, वे अधर्मको ही धर्म कहते हैं, वेही अव्रती, मर्यादाभ्रष्ट और ब्रह्मराक्षस कहाते हैं, वे अधम मनुष्य समयके अनुसार इस लोकमें उत्पन्न होके होम तथा वषट्कार-

कुशलाकुशलो नृणां व्याख्यातो धर्मसागरः ॥ ६४ ॥ [६६६१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे उमामहेश्वरसंवादे पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥

नारद उवाच-एवमुक्त्वा महादेवः श्रोतुकामः स्वयंप्रभुः ।
अनुकूलां प्रियां भार्यां पार्श्वस्थां समभाषत ॥ १ ॥
महेश्वर उवाच-परावरज्ञे धर्मज्ञे तपोवननिवासिनि ।
साध्वि सुभ्रु सुकेशान्ते हिमवत्पर्वतात्मजे ॥ २ ॥
दक्षे शमदमोपेते निर्ममे धर्मचारिणि ।
पृच्छामि त्वां वरारोहे पृष्टा वद ममेप्सितम् ॥ ३ ॥
सावित्री ब्रह्मणः साध्वी कौशिकस्य शची सती ।
मार्कण्डेयस्य धूमोर्णा ऋद्धिर्वैश्रवणस्य च ॥ ४ ॥
वरुणस्य तथा गौरी सूर्यस्य च सुवर्चला ।
रोहिणी शशिनः साध्वी स्वाहा चैव विभावसोः ॥५॥
अदितिः कश्यपस्याथ सर्वास्ताः पतिदेवताः ।
पृष्टाश्चोपासिताश्चैव तास्त्वया देवि नित्यशः ॥ ६ ॥
तेन त्वां परिपृच्छामि धर्मज्ञे धर्मवादिनि ।

रहित हुआ करते हैं। हे देवि! मैंने तुम्हारा सन्देह दूर करनेके लिये मनुष्योंके हिताहितयुक्त समस्त धर्मसागर वर्णन किया। (६१—६४)

अनुशासनपर्वमें १४५ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १४६ अध्याय।

नारदमुनि बोले, सर्वशक्तिमान् महादेवने इतनी कथा कहके स्त्रीधर्म सुननेकी इच्छासे पार्श्ववर्त्तिनी अनुकूल प्रियासे प्रश्न किया। (१)

महादेव बोले, हे परावरज्ञे, धर्म जाननेवाली, तपोवननिवासिनी, साध्वि, उत्तमकेशांतवाली, हिमपर्वतात्मजा! हे दक्षे! शम-दमयुक्त, ममतारहित, धर्मचारिणी वरारोहे! मैं तुमसे प्रश्न करता हूं, तुम पूछनेपर मेरे अभिलषित विषयको वर्णन करो। ब्रह्माकी साध्वी भार्या सावित्री, इन्द्रकी पत्नी शची, मार्कण्डेयकी सती भार्या धूमोर्णा, कुबेरकी पत्नी ऋद्धि, वरुणकी भार्या गौरी, सूर्यकी स्त्री सुवर्चला, चन्द्रमाकी साध्वी पत्नी रोहिणी, अग्निकी भार्या स्वाहा और कश्यपकी पत्नी अदिति, ये सभी स्त्रियें पतिको देवता समझती थीं। हे देवि! इन पतिव्रताओंसे तुमने सदा प्रश्न किया और उनकी उपासना

स्त्रीधर्मं श्रोतुमिच्छामि त्वयोदाहृतमादितः ॥ ७ ॥
सधर्मचारिणी मे त्वं समशीला समव्रता ।
समानसारवीर्या च तपस्तीव्रं कृतं च ते ॥ ८ ॥
त्वया ह्युक्तो विशेषेण गुणवान्स भविष्यति ।
लोके चैव त्वया देवि प्रमाणत्वमुपैष्यति ॥ ९ ॥
स्त्रियश्चैव विशेषेण स्त्रीजनस्य गतिः परा ।
गौर्यां गच्छति सुश्रोणि लोकेष्वेषा गतिः सदा॥१०॥
मम चार्धं शरीरस्य तव चार्धेन निर्मितम् ।
सुरकार्यकरी च त्वं लोकसन्तानकारिणी ॥ ११ ॥
तव सर्वः सुविदितः स्त्रीधर्मः शाश्वतः शुभे ।
तस्मादशेषतो ब्रूहि स्वधर्मं विस्तरेण मे ॥ १२ ॥
उमोवाच— भगवन्सर्वभूतेश भूतभव्यभवोत्तम ।
त्वत्प्रभावादियं देव वाक्चैव प्रतिभाति मे ॥ १३ ॥
इमास्तु नद्यो देवेश सर्वतीर्थोदकैर्युताः ।
उपस्पर्शनहेतोस्त्वामुपयान्ति समीपतः ॥ १४ ॥
एताभिः सह संमन्त्र्य प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ।

की है। हे धर्मवादिनी! धर्मज्ञे ! इस ही निमित्त मैं तुमसे यह विषय पूछता हूं, तुम पहले स्त्रीधर्म वर्णन करो, इसेही मैं सुननेकी इच्छा करता हूं । (२—७)

तुम मेरी सहधर्मिणी, समशीला और समव्रतधारिणी हो;तुम्हारा प्रभाव तथा बल मेरे समान है और तुमने तीव्र तपस्या की है । हे देवि ! इसलिये तुम जो स्त्रीधर्म कहोगी वह विशेष रीतिसे श्रेष्ठ होगा और जगत्के बीच प्रमाण-स्वरूप हुआ करेगा । स्त्रीही स्त्रियोंके लिये परमगति हैं, यह गति परंपरा-क्रमसे सदा भूलोकमें गमन किया करती है । हे सुश्रोणि ! मेरा शरीर तुम्हारे अर्द्धशरीरसे बना है, तुम लोक-विस्तारकारिणी होकर सुरकार्य सिद्ध किया करती हो। हे शुभे ! सब शाश्वत स्त्रीधर्म तुम्हें भलीभांति विदित है; इस-लिये उत्तम रीतिसे विस्तारपूर्वक तुम निजधर्मका वर्णन करो । (८–१२)

उमा बोली, हे सर्वभूतेश भूतभव्य-भवोत्तम भगवन् ! तुम्हारी कृपासे ही मेरा यह वचन प्रकाशित होगा । हे देवेश ! ये सब तीर्थ तथा नदियें जल-युक्त होके भी तुम्हें स्पर्श करनेके लिये

प्रभवन्योऽनहंवादी स वै पुरुष उच्यते ॥ १५ ॥
स्त्री च भूतेश सततं स्त्रियमेवानुधावति।
मया संमानिताश्चैव भविष्यन्ति सरिद्वराः ॥ १६ ॥
एषा सरस्वती पुण्या नदीनामुत्तमा नदी।
प्रथमा सर्वसरितां नदी सागरगामिनी ॥ १७ ॥
विपाशा च वितस्ता च चन्द्रभागा इरावती।
शतद्रूर्देविका सिन्धुः कौशिकी गौतमी तथा ॥ १८ ॥
तथा देवनदी चेयं सर्वतीर्थाभिसंभृता।
गगनाद्गां गता देवी गङ्गा सर्वसरिद्वरा ॥ १९ ॥
इत्युक्त्वा देवदेवस्य पत्नी धर्मभृतां वरा।
स्मितपूर्वमथाभाष्य सर्वास्ताः सरितस्तथा ॥ २० ॥
अपृच्छद्देवमहिषी स्त्रीधर्मं धर्मवत्सला।
स्त्रीधर्मकुशलास्ता वै गङ्गाद्याः सरितां वराः ॥ २१ ॥

उमोवाच- अयं भगवता प्रोक्तः प्रश्नः स्त्रीधर्मसंश्रितः।
तं तु संमन्त्र्य युष्माभिर्वक्तुमिच्छामि शंकरम् ॥ २२ ॥
न चैकसाध्यं पश्यामि विज्ञानं भुवि कस्यचित्।
दिवि वा सागरगमास्तेन वो मानयाम्यहम् ॥ २३ ॥

तुम्हारे समीप गमन करती हैं; इसलिये मैं इनके सङ्ग विचार करके विस्तारपूर्वक सब विषयोंको कहूंगी। हे भगवन्! जो व्यक्ति अनहंवादी है, वही पुरुष कहाता है। (१३—१५)

हे भूतेश! स्त्रियें सदा स्त्रियोंकाही अनुधावन किया करती हैं। ये नदियें सबके बीच श्रेष्ठ हैं, पुण्यनदी सरस्वती सब नदियोंकी अग्रगण्या समुद्रगामिनी, विपाशा, वितस्ता, चन्द्रभागा, इरावती, शतद्रू, देविका, सिन्धु, कौशिकी, गौतमी और सब तीर्थोंसे घिरी हुई सब नदियोंमें श्रेष्ठ देवनदी गङ्गादेवी जो आकाशसे पृथ्वी पर आई हैं, ये सब मुझसे सम्मानित होवें। धर्मवत्सला, देवमहिषी, धर्मचारिणी महादेवकी पत्नी उमाने इतनी कथा कहके हंसकर उन स्त्रीधर्म जाननेवाली नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गा प्रभृतिसे स्त्रीधर्म विषय पूछा। (१६-२१)

उमा बोली, ये भगवान्ने स्त्रीधर्म सम्बन्धीय प्रश्न किये हैं, मैं तुम लोगोंके सङ्ग परामर्श करके शंकरके समीप वह विषय कहनेकी अभिलाषा करती हूं। हे सागरगामिनीगण! भूमण्डल अथवा

एवं सर्वाः सरिच्छ्रेष्ठाः पृष्टाः पुण्यतमाः शिवाः ।
ततो देवनदी गङ्गा नियुक्ता प्रतिपूज्य च ॥ २४ ॥
बह्वीभिर्बुद्धिभिः स्फीता स्त्रीधर्मज्ञा शुचिस्मिता ।
शैलराजसुतां देवीं पुण्या पापभयापहा ॥ २५ ॥
बुद्धया विनयसंपन्ना सर्वधर्मविशारदा ।
सस्मितं बहुबुद्ध्याढ्या गङ्गा वचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥
गङ्गोवाच— धन्याऽस्म्यनुगृहीताऽस्मि देवि धर्मपरायणे ।
या त्वं सर्वजगन्मान्या नदीं मानयसेऽनघे ॥ २७ ॥
प्रभवन्पृच्छते यो हि संमानयति वा पुनः ।
नूनं जनमदुष्टात्मा पण्डिताख्यां स गच्छति ॥ २८ ॥
ज्ञानविज्ञानसंपन्नानूहापोहविशारदान् ।
प्रवक्तॄन्पृच्छते योऽन्यान्स वै नापदमृच्छति ॥ २९ ॥
अन्यथा बहुबुद्ध्याढ्यो वाक्यं वदति संसदि ।
अन्यथैव ह्यहंवादी दुर्बलं वदते वचः ॥ ३० ॥
दिव्यज्ञाने दिवि श्रेष्ठे दिव्यपुण्यैः सहोत्थिते ।
त्वमेवार्हसि नो देवि स्त्रीधर्माननुभाषितुम् ॥ ३१ ॥

स्वर्गलोकमें कोई विज्ञान एक व्यक्ति-साध्य नहीं दीखता, इस ही निमित्त मैं तुम्हारी सम्मानना करती हूं। (२२-२३)

इसही प्रकार जब उमाने कल्याण-दायिनी सब पवित्र नदियोंसे प्रश्न किया, तब देवनदी गङ्गा प्रत्युत्तर देनेमें नियुक्त हुई। अनेक भांतिकी बुद्धिसे युक्त, स्त्रीधर्मको जाननेवाली शुचिस्मिता, पुण्यपापभयापहा, बुद्धिके सहित विनयसम्पन्न, सर्वधर्मविशारदा, बहुबुद्धिशालिनी गङ्गा शैलराजपुत्रीकी पूजा करके मुसकुराकर बोलीं। हे धर्म-परायणे देवि! हम सब कोई धन्या और अनुग्रहकी पात्री हुई हैं; क्यों कि तुम समस्त जगत्की माननीय होकर भी नदीस्वरूपिणी हमारी सम्मानना करती हो। (२४-२७)

जो लोग जिज्ञासु जनोंका सम्मान करते हैं, मेरे मतसे वे धर्मज्ञ पण्डित कहे जाने योग्य हैं, जो ज्ञानविज्ञान-युक्त, ऊहापोहविशारद प्रवक्ताओं तथा अन्यान्य पुरुषोंसे पूंछके कार्य करते हैं, वे कदापि आपद्ग्रस्त नहीं होते, अत्यन्त बुद्धिमान् मनुष्य यदि सभाके बीच वचन कहे तो वह अहंवादी होनेसे दुर्बल वाक्य कहा करता है। हे दिव्य-

ततः साऽऽराधिता देवी गङ्गया बहुभिर्गुणैः ।
प्राह सर्वमशेषेण स्त्रीधर्मं सुरसुंदरी ॥ १२ ॥
उमोवाच— स्त्रीधर्मो मां प्रति यथा प्रतिभाति यथाविधि ।
तमहं कीर्त्तयिष्यामि तथैव प्रश्रिता भव ॥ ३३ ॥
स्त्रीधर्मः पूर्व एवायं विवाहे बन्धुभिः कृतः ।
सहधर्मचरी भर्तुर्भवत्यग्निसमीपतः ॥ १४ ॥
सुस्वभावा सुवचना सुवृत्ता सुखदर्शना ।
अनन्यचित्ता सुमुखी भर्तुः सा धर्मचारिणी ॥ ३५ ॥
सा भवेद्धर्मपरमा सा भवेद्धर्मभागिनी ।
देववत्सततं साध्वी या भर्तारं प्रपश्यति ॥ ३६ ॥
शुश्रूषां परिचारं च देववद्या करोति च ।
नान्यभावा ह्यविमनाः सुव्रता सुखदर्शना ॥ ३७ ॥
पुत्रवक्त्रमिवाभीक्ष्णं भर्तुर्वदनमीक्षते ।
या साध्वी नियताहारा सा भवेद्धर्मचारिणी ॥ ३८ ॥
श्रुत्वा दम्पतिधर्मं वै सहधर्मं कृतं शुभम् ।
या भवेद्धर्मपरमा नारी भर्तृसमव्रता ॥ ३९ ॥
देववत्सततं साध्वी भर्तारमनुपश्यति ।

ज्ञानयुक्त, द्युलोकमें मुख्य दिव्य पुण्यसम्पन्न देवि ! तुमही हमारे निकट स्त्रीधर्म वर्णन करने योग्य हो। अनन्तर सुरसुन्दरी पार्वती गङ्गाके द्वारा अनेक प्रकारसे प्रशंसित होकर पूरी रीतिसे स्त्रीधर्म विषयोंको कहनेके लिये उद्यत हुई। (२८-३२)

उमा बोली, विधिपूर्वक स्त्रीधर्म मुझे जिस प्रकार मालूम है, उसे कहती हूं, सावधान होके सुनो। पहले विवाहके समय बान्धवोंके द्वारा यह स्त्रीधर्म विहित हुआ है, कि स्त्रियें अग्निके समीप पतिकी सहधर्मचारिणी होती हैं। उत्तम स्वभाव तथा श्रेष्ठ वचनवाली, सुशीला, सुखदर्शना, सुंदरमुखवाली है वही धर्मचारिणी है। जो साध्वी स्त्री पतिको देव के सदृश जानती है, वही धर्मपरायण और धर्मभागिनी होती। अनन्यचित्त, सदा सुप्रसन्न, सुखदर्शना, और देवके समान पतिकी सेवा करनेवाली सीमन्तिनी सदा पुत्रके मुखसदृश पतिका मुख देखनेवाली और नियताचारी साध्वी स्त्री धर्मचारिणी होती हैं। सहधर्मकृत शुभदम्पतिधर्म सुनके जो

दम्पत्योरेष वै धर्मः सहधर्मकृतः शुभः ॥ ४० ॥
शुश्रूषां परिचारं च देवतुल्यं प्रकुर्वती ।
वश्या भावेन सुमनाः सुव्रता सुखदर्शना ।
अनन्यचित्ता सुमुखी भर्तुः सा धर्मचारिणी ॥ ४१ ॥
परुषाण्यपि चोक्ता या दृष्टा दुष्टेन चक्षुषा ।
सुप्रसन्नमुखी भर्तुर्या नारी सा पतिव्रता ॥ ४२ ॥
न चन्द्रसूर्यौ न तरुं पुंनाम्ना या निरीक्षते ।
भर्तृवर्जं वरारोहा सा भवेद्धर्मचारिणी ॥ ४३ ॥
दरिद्रं व्याधितं दीनमध्वना परिकर्शितम् ।
पतिं पुत्रमिवोपास्ते सा नारी धर्मभागिनी ॥ ४४ ॥
या नारी प्रयता दक्षा या नारी पुत्रिणी भवेत् ।
पतिप्रिया पतिप्राणा सा नारी धर्मभागिनी ॥ ४५ ॥
शुश्रूषां परिचर्यां च करोत्यविमनाः सदा ।
सुप्रतीता विनीता च सा नारी धर्मभागिनी ॥ ४६ ॥
न कामेषु न भोगेषु नैश्वर्ये न सुखे तथा ।

नारी धर्मपरायण होती है और पतिके सदृश व्रताचरण करती है, वह पतिव्रता पतिको सदा देवतुल्य देखा करती है। जो देवतासदृश पतिकी सेवा टहल करती है, पतिके वशमें होकर सब भाँति अन्तःकरणसे प्रसन्नचित्त, उत्तम-व्रतवाली और सुखदर्शना होती है; तथा जो नारी अनन्यचित्तवाली तथा प्रसन्नमुखी है, वही धर्मचारिणी हुआ करती है। (३३-४१)

पतिके निष्ठुर वचन कहने और क्रुद्ध नेत्रसे देखनेपर भी जो नारी स्वामीके संमुख प्रसन्नमुख होके स्थित रहती है, वही पतिव्रता है। जो स्त्री पतिके सिवा चन्द्र, सूर्य तथा पुरुष नामधारी वृक्षोंकी ओर भी नहीं देखती, वह पतिव्रता वरारोहा स्त्री धर्मचारिणी होती है। जो स्त्री दरिद्र, रोगी, पथसे थके हुए पतिकी पुत्रकी भाँति सेवा करती है, वह धर्मचा-रिणी होती है। जो नारी सावधान और गृहकार्योंमें दक्ष हो, जो पुत्रवती हो, पतिव्रता तथा पतिप्राणा हो, वही धर्म-चारिणी है। (४२-४५)

जो नारी प्रसन्न, विनयवती और अनन्यमना होकर सदा पतिकी सेवा टहल करती है, वह धर्मभागिनी है। जो प्रतिदिन अन्न देकर कुटुम्बका प्रतिपालन करती है, जो पतिके अनु

स्पृहा यस्या यथा पत्यौ सा नारी धर्मभागिनी ॥४७॥
कल्योत्थानरतिर्नित्यं गृहशुश्रूषणे रता।
सुसंमृष्टक्षया चैव गोशकृत्कृतलेपना ॥ ४८ ॥
अग्निकार्यपरा नित्यं सदा पुष्पबलिप्रदा।
देवतातिथिभृत्यानां निर्वाप्य पतिना सह ॥ ४९ ॥
शेषान्नमुपभुञ्जाना यथान्यायं यथाविधि।
तुष्टपुष्टजना नित्यं नारी धर्मेण युज्यते ॥ ५० ॥
श्वश्रूश्वशुरयोः पादौ जोषयन्ती गुणान्विता।
मातापितृपरा नित्यं या नारी सा तपोधना ॥ ५१ ॥
ब्राह्मणान्दुर्बलानाथान्दीनान्धकृपणांस्तथा।
बिभर्त्यन्नेन या नारी सा पतिव्रतभागिनी ॥ ५२ ॥
व्रतं चरति या नित्यं दुश्चरं लघुसत्वया।
पतिचित्ता पतिहिता सा पतिव्रतभागिनी ॥ ५३ ॥
पुण्यमेतत्तपश्चैतत्स्वर्गश्चैष सनातनः।
या नारी भर्तृपरमा भवेद्भर्तृव्रता सती ॥ ५४ ॥

रागके अनुसार कामभोग, ऐश्वर्य और सुखकी अभिलाषा करती है, वह नारी धर्मभागिनी होती है। भोरके समय उठनेका जिसे अनुराग है, गृहके कार्यको करनेमें जिसका मन लगता है, जो गृहको उत्तम रीतिसे धोती और गोमयसे लीपती है, जो सदा अग्निकार्योंमें तत्पर रहती, सदा पुष्प बलि प्रदान करती, पतिके सहित देवताओं, अतिथियों और सेवकोंको यथा रीतिसे दान करके विधिपूर्वक शेषान्न भोजन करती है, जिसके परिजन सदा सन्तुष्ट तथा प्रसन्न रहते हैं, वह नारी धर्मभागिनी होती है। (४६—५०)

जो गुणवती सती सास ससुरकी चरणवन्दना करती और मातापिताके विषयमें भक्ति किया करती है, वही तपस्विनी है। जो नारी ब्राह्मण, निर्बल, अनाथ, दीन, अन्धे और कृपापात्रोंको अन्न देकर प्रतिपालन करती है, वह पतिव्रतभागिनी होती है, जो अल्पप्राण होके भी सदा दुश्चर व्रतोंको करती है, तथा जो पतिमें चित्त लगाती वा पतिकी हितकारिणी है, वही पतिव्रतभागिनी होती है। जो नारी पतिको परम श्रेष्ठ जानती है, जो सती पतिव्रता होती है, उसके लिये पतिकी सेवा ही पुण्य है, पतिसेवा ही तपस्या और वही सनातन

पतिर्हि देवो नारीणां पतिर्बन्धुः पतिर्गतिः ।
पत्या समा गतिर्नास्ति दैवतं वा यथा पतिः ॥ ५५ ॥
पतिप्रसादः स्वर्गो वा तुल्यो नार्या न वा भवेत् ।
अहं स्वर्गं नहीच्छेयं त्वय्यप्रीते महेश्वरे ॥ ५६ ॥
यद्यकार्यमधर्मं वा यदि वा प्राणनाशकम् ।
पतिर्ब्रूयाद्दरिद्रो वा व्याधितो वा कथंचन ॥ ५७ ॥
आपन्नो रिपुसंस्थो वा ब्रह्मशापार्दितोऽपि वा ।
आपद्धर्माननुप्रेक्ष्य तत्कार्यमविशङ्कया ॥ ५८ ॥
एष देव मया प्रोक्तः स्त्रीधर्मो वचनात्तव ।
या त्वेवंभाविनी नारी सा पतिव्रतभागिनी ॥ ५९ ॥
भीष्म उवाच– इत्युक्तः स तु देवेशः प्रतिपूज्य गिरेः सुताम् ।
लोकान्विसर्जयामास सर्वैरनुचरैर्वृतान् ॥ ६० ॥
ततो ययुर्भूतगणाः सरितश्च यथागतम् ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव प्रणम्य शिरसा भवम् ॥ ६१ ॥ [६७२४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे उमामहेश्वरसंवादे स्त्रीधर्मकथने षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४६॥

स्वर्ग है। (५१-५४)

स्त्रियोंके लिये पति ही देवता है, पति ही बन्धु, पति ही गति है, पतिके समान गति नहीं है; जैसा पति है, देवता भी वैसे नहीं हैं, स्त्रियोंके विषयमें पतिकी प्रसन्नता और स्वर्गवास समान नहीं होसकता। हे देव महेश्वर! तुम्हारे अप्रसन्न रहते मैं स्वर्गवासकी अभिलाषा नहीं करती। पति यदि दरिद्र, किसी प्रकारकी व्याधिसे ग्रस्त, दुःखी, शत्रुके वशीभूत अथवा ब्रह्मशापयुक्त होके भी किसी अकार्य, अधर्म अथवा प्राणनाश करनेकी भी आज्ञा करे, उसे भी आपद्धर्म अवलोकन करके निःशङ्क भावसे करना योग्य है। हे देव! यह मैंने तुम्हारे कथाक्रमसे स्त्रीधर्म कहा है, जो नारी इन आचरणोंसे युक्त हो, वह पतिव्रता है। (५५-५९)

भीष्म बोले, देवेश्वर महादेवने ऐसी कथा सुनके पार्वतीका समादर करते हुए अनुचरोंके सहित सब लोगोंको बिदा किया। अनन्तर भूतगणों, नदियों, गन्धर्वों और अप्सराओंने सिर झुकाके महादेवको प्रणाम करके अपने अपने स्थानोंको गमन किया। (६०-६१)

अनुशासनपर्वमें १४६ अध्याय समाप्त।

ऋषय ऊचुः— पिनाकिन्भगनेत्रघ्न सर्वलोकनमस्कृत ।
माहात्म्यं वासुदेवस्य श्रोतुमिच्छामि शङ्कर ॥ १ ॥
ईश्वर उवाच– पितामहादपि वरः शाश्वतः पुरुषो हरिः ।
कृष्णो जाम्बूनदाभासो व्यभ्रे सूर्य इवोदितः ॥ २ ॥
दशबाहुर्महातेजा देवतारिनिषूदनः ।
श्रीवत्साङ्को हृषीकेशः सर्वदैवतपूजितः ॥ ३ ॥
ब्रह्मा तस्योदरभवस्तस्याहं च शिरोभवः ।
शिरोरुहेभ्यो ज्योतींषि रोमभ्यश्च सुरासुराः ॥ ४ ॥
ऋषयो देहसंभूतास्तस्य लोकाश्च शाश्वताः ।
पितामहगृहं साक्षात्सर्वदेवगृहं च सः ॥ ५ ॥
सोऽस्याः पृथिव्याः कृत्स्नायाः स्रष्टा त्रिभुवनेश्वरः ।
संहर्ता चैव भूतानां स्थावरस्य चरस्य च ॥ ६ ॥
स हि देववरः साक्षाद्देवनाथः परंतपः ।
सर्वज्ञः सर्वसंश्लिष्टः सर्वगः सर्वतोमुखः ॥ ७ ॥
परमात्मा हृषीकेशः सर्वव्यापी महेश्वरः ।
न तस्मात्परमं भूतं त्रिषु लोकेषु किंचन ॥ ८ ॥

अनुशासनपर्वमें १४७ अध्याय।

ऋषिवृन्द बोले, हे पिनाकधारी भगनेत्रहारी सर्वलोकनमस्कृत शङ्कर! हम लोग आपके समीप वासुदेवका माहात्म्य सुननेकी इच्छा करते हैं। (१)

महेश्वर बोले, शाश्वत पुरुष हरि पितामह ब्रह्मासे भी श्रेष्ठ और कृष्णवर्ण होनेपर भी अभ्रशून्य अम्बरमें उदित सूर्यकी भांति सुवर्णसदृश प्रभाशाली हैं, वह महातेजस्वी दशबाहुयुक्त और देवताओंके अरिनिषूदन हैं, श्रीवत्स चिह्नधारी हृषीकेश सब देवताओंके पूज्य हैं। ब्रह्मा उनके उदरसे उत्पन्न हुए और मैं उनके शिरसे प्रकट हुआ हूं; उनके केशोंसे अग्नि और रोमावलीसे समस्त सुरासुर उत्पन्न हुए, ऋषिगण और समस्त शाश्वत लोकोंकी उनके देहमे उत्पत्ति हुई है। वह त्रिभुवनेश्वर स्वयं साक्षात् पितामहके गृह, सर्वदेव-गृह तथा इस समस्त पृथिवीकी सृष्टि-कर्त्ता हैं और वही स्थावर–जङ्गम समस्त भूतोंके संहर्त्ता हैं। (२—६)

वही देवश्रेष्ठ स्वयं देवनाथ तथा परन्तप हैं; वह सर्वज्ञ, सर्वसंश्लिष्ट, सर्वग और सर्वतोमुख हैं। वह परमात्मा हृषीकेश सर्वव्यापी महेश्वर हैं, त्रिभुवन

सनातनो वै मधुहा गोविन्द इति विश्रुतः ।
स सर्वान्पार्थिवान्सङ्ख्ये घातयिष्यति मानदः ॥९॥
सुरकार्यार्थमुत्पन्नो मानुषं वपुरास्थितः ।
न हि देवगणाः शक्तास्त्रिविक्रमविनाकृताः ॥ १० ॥
भुवने देवकार्याणि कर्तुं नायकवर्जिताः ।
नायकः सर्वभूतानां सर्वदेवनमस्कृतः ॥ ११ ॥
एतस्य देवनाथस्य देवकार्यपरस्य च ।
ब्रह्मभूतस्य सततं ब्रह्मर्षिशरणस्य च ॥ १२ ॥
ब्रह्मा वसति गर्भस्थः शरीरे सुखसंस्थितः ।
शर्वः सुखं संश्रितश्च शरीरे सुखसंस्थितः ॥ १३ ॥
सर्वाः सुखं संश्रिताश्च शरीरे तस्य देवताः ।
स देवः पुण्डरीकाक्षः श्रीगर्भः श्रीसहोषितः ॥ १४ ॥
शार्ङ्गचक्रायुधः खड्गी सर्वनागरिपुध्वजः ।
उत्तमेन स शीलेन दमेन च शमेन च ॥ १५ ॥
पराक्रमेण वीर्येण वपुषा दर्शनेन च ।
आरोहेण प्रमाणेन धैर्येणार्जवसंपदा ॥ १६ ॥
आनृशंस्येन रूपेण बलेन च समन्वितः ।

में उससे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है, वह सनातन भगवान् मधुसूदन नामसे प्रसिद्ध है। वह मानद मनुष्यशरीर धारण करके देवकार्यके निमित्त युद्धमें सब राजाओंको मारेगा। देवगण त्रिविक्रमके विना किसी कार्यको करनेमें समर्थ नहीं हैं, देववृन्द नायकहीन होके सुरकार्योंको सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं होते, वह सब भूतोंका नायक है और वही सब भूतोंका नमस्कृत है। (७—११)

उस ही देवकार्यरत देवनाथ ब्रह्मर्षि-शरण ब्रह्मस्वरूपी शरीरमें सुखसंस्थित और गर्भस्थ होकर ब्रह्मा निवास किया करते हैं, शर्व सुखसंस्थित होते उसके शरीरमें सुखसे संश्रित हुए हैं। देवता लोग सुखपूर्वक उसके शरीरमें निवास करते हैं। वह देव श्रीगर्भ पुण्डरीकाक्ष लक्ष्मीके सहित निवास किया करता है; शार्ङ्ग धनुष और चक्र उसके आयुध हैं और वह खड्गी तथा गरुडध्वज है। वह उत्तम शील, पवित्रता, दम, शम, पराक्रम, वीर्य, वपु, दर्शन, आरोह, प्रमाण, धैर्य, आर्जव, सम्पत्ति, अनृशं-

अस्त्रैः समुदितः सर्वैर्दिव्यैरद्भुतदर्शनैः ॥ १७ ॥
योगमायः सहस्राक्षो निरपायो महामनाः ।
वीरो मित्रजनश्लाघी ज्ञातिबन्धुजनप्रियः ॥ १८ ॥
क्षमावांश्चानहंवादी ब्रह्मण्यो ब्रह्मनायकः ।
भयहर्ता भयार्तानां मित्राणां नन्दिवर्धनः ॥ १९ ॥
शरण्यः सर्वभूतानां दीनानां पालने रतः ।
श्रुतवानर्थसंपन्नः सर्वभूतनमस्कृतः ॥ २० ॥
समाश्रितानां वरदः शत्रूणामपि धर्मवित् ।
नीतिज्ञो नीतिसंपन्नो ब्रह्मवादी जितेन्द्रियः ॥ २१ ॥
भवार्थमिह देवानां बुद्ध्या परमया युतः ।
प्राजापत्ये शुभे मार्गे मानवे धर्मसंस्कृते ॥ २२ ॥
समुत्पत्स्यति गोविन्दो मनोर्वंशे महात्मनः ।
अङ्गो नाम मनोः पुत्रो अन्तर्धामा ततः परः ॥ २३ ॥
अन्तर्धाम्नो हविर्धामा प्रजापतिरनिन्दितः ।
प्राचीनबर्हिर्भविता हविर्धाम्नः सुतो महान् ॥ २४ ॥
तस्य प्रचेतःप्रमुखा भविष्यन्ति दशात्मजाः ।

सता, रूप और बलसे युक्त है। अद्भुत-दर्शन, दिव्यास्त्रधारी, योगमायायुक्त, सहस्राक्ष, निरवद्य और महामना है। (१२-१८)

वह वीर, मित्रकी श्लाघा करनेवाला, स्वजनों तथा बन्धुजनोंको प्रिय, क्षमा-वान्, अनहंवादी, ब्रह्मण्य और ब्रह्मनायक है। वह भयार्त्तोंका भयहर्त्ता तथा मित्रोंके आनन्दको बढानेवाला है; वह सब जीवोंका शरण्य तथा सबको पालन करनेमें अनुरक्त है। वह श्रुतवान्, अर्थसम्पन्न और सब भूतोंका नमस्कृत है, वह समाश्रितोंका बहुत ही उपकारक और शत्रुओंके भी धर्मको जाननेवाला है। वह नीतिज्ञ, नीतिसम्पन्न, ब्रह्मवादी, और जितेन्द्रिय है; इस लोकमें देवता-ओंकी उत्पत्तिके निमित्त परम बुद्धियुक्त, धर्मसंहित, प्रजापतिसम्बन्धीय, शुभ, मनुष्यपथ तथा महानुभाव मनुके वंशमें उस ही गोविन्दकी उत्पत्ति होगी। (१८-२३)

मनुका पुत्र अंग, उसका पुत्र अन्त-र्द्धामा और उसका पुत्र हविर्धामा अनिन्दित प्रजापति रूपसे वर्णित होगा, हविर्धामाका महान् पुत्र प्राचीनबर्हि नामसे विख्यात होगा, उससे प्रचेता-

प्राचेतसस्तथा दक्षो भवितेह प्रजापतिः ॥ २५ ॥
दाक्षायण्यास्तथाऽऽदित्यो मनुरादित्यतस्तथा ।
मनोश्च वंशज इला सुद्युम्नश्च भविष्यति ॥ २६ ॥
बुधात्पुरूरवाश्चापि तस्मादायुर्भविष्यति ।
नहुषो भविता तस्माद्ययातिस्तस्य चात्मजः ॥ २७ ॥
यदुस्तस्मान्महासत्त्वः क्रोष्टा तस्माद्भविष्यति ।
क्रोष्टुश्चैव महापुत्रो वृजिनीवान्भविष्यति ॥ २८ ॥
वृजिनीवतश्च भविता उषङ्गुरपराजितः ।
उषङ्गोर्भविता पुत्रः शूरश्चित्ररथस्तथा ॥ २९ ॥
तस्य त्ववरजः पुत्रः शूरो नाम भविष्यति ।
तेषां विख्यातवीर्याणां चरित्रगुणशालिनाम् ॥ ३० ॥
यज्वनां सुविशुद्धानां वंशे ब्राह्मणसंमते ।
स शूरः क्षत्रियश्रेष्ठो महावीर्यो महायशाः ।
स्ववंशविस्तरकरं जनयिष्यति मानदः ॥ ३१ ॥
वसुदेव इति ख्यातं पुत्रमानकदुन्दुभिम् ।
तस्य पुत्रश्चतुर्बाहुर्वासुदेवो भविष्यति ॥ ३२ ॥
दाता ब्राह्मणसत्कर्ता ब्रह्मभूतो द्विजप्रियः ।

प्रभृति दक्ष पुत्र होंगे, प्रचेतासे इस लोकमें दक्ष प्रजापतिकी उत्पत्ति होगी, दक्षकी कन्या अदितिसे आदित्यकी उत्पत्ति होगी, आदित्यसे मनुका जन्म होगा, मनुके वंशमें इला और सुद्युम्न जन्मेंगे, बुधके द्वारा इलाके गर्भसे पुरूरवाका जन्म होगा, उससे आयुकी उत्पत्ति होगी, आयुसे नहुषका जन्म होगा; नहुषका पुत्र ययाति, ययातिसे महाबलवान् यदु नाम पुत्र होगा, उससे क्रोष्टा जन्मेगा, क्रोष्टाके महाबली पुत्रका वृजिनीवान् नाम होगा, वृजिनीवान्से अपराजित उषंगु नाम पुत्र जन्मेगा, उषंगुका पुत्र चित्ररथ और चित्ररथका कनिष्ठ पुत्र शूर नामसे विख्यात होगा। (२३-३०)

विख्यातवीर्य, चरित्रगुणसम्पन्न, विधिपूर्वक यज्ञ करनेवाले, अत्यन्त पवित्र, ब्राह्मणसम्मत, यदुवंशमें क्षत्रिय-श्रेष्ठ, महावीर्य, महायशस्वी, मानदाता, शूर, निज वंशकी वृद्धि करनेवाले वसुदेव नामसे विख्यात आनकदुन्दुभी नामक पुत्र उत्पन्न करेगा। चतुर्बाहु वासुदेव उसके पुत्र होंगे, वह दाता, ब्राह्मणोंका

राज्ञो मागधसंरुद्धान्मोक्षयिष्यति यादवः ॥ ३३ ॥
जरासन्धं तु राजानं निर्जित्य गिरिगह्वरे ।
सर्वपार्थिवरत्नाढ्यो भविष्यति स वीर्यवान् ॥ ३४ ॥
पृथिव्यामप्रतिहतो वीर्येण च भविष्यति ।
विक्रमेण च संपन्नः सर्वपार्थिवपार्थिवः ॥ ३५ ॥
शूरसेनेषु भूत्वा स द्वारकायां वसन्प्रभुः ।
पालयिष्यति गां देवीं विजित्य नयवित्सदा ॥ ३६ ॥
तं भवन्तः समासाद्य वाङ्माल्यैरर्हणैर्वरैः ।
अर्चयन्तु यथान्यायं ब्रह्माणमिव शाश्वतम् ॥ ३७ ॥
यो हि मां द्रष्टुमिच्छेत ब्रह्माणं च पितामहम् ।
द्रष्टव्यस्तेन भगवान्वासुदेवः प्रतापवान् ॥ ३८ ॥
दृष्टे तस्मिन्नहं दृष्टो न मेऽत्रास्ति विचारणा ।
पितामहो वा देवेश इति वित्त तपोधनाः ॥ ३९ ॥
स यस्य पुण्डरीकाक्षः प्रीतियुक्तो भविष्यति ।
तस्य देवगणः प्रीतो ब्रह्मपूर्वो भविष्यति ॥ ४० ॥
यश्च तं मानवे लोके संश्रयिष्यति केशवम् ।

सत्कारकर्ता ब्रह्मस्वरूप और ब्राह्मणप्रिय होकर मगधराज जरासन्धके द्वारा कैद हुए राजाओंको छुडावेंगे । (३०-३३)

वह वीर्यवान् वासुदेव गिरिगह्वरके बीच राजा जरासन्धको पराजित करके सब राजाओंकी रत्नराजिके सहारे समृद्धिमान् होंगे और वह निज पराक्रमसे पृथ्वीके बीच अप्रतिहत तथा विक्रमयुक्त होकर सब राजाओंके ऊपर आधिपत्य करेंगे । नीतिज्ञ भगवान् शूरसेन देशमें पूर्णरीतिसे बुद्धियुक्त होकर द्वारकामें निवास करके जयलब्ध वसुन्धरा देवीका सदा पालन करेंगे । आप लोग जिस प्रकार उत्तम अर्हणद्रव्य और वचनरूपी मालासे शाश्वत ब्रह्मकी पूजा करते हैं, वैसे ही उनके निकट जाकर विधिपूर्वक पूजा करिये । (३४-३७)

जो लोग मेरे अथवा पितामह ब्रह्माके दर्शनकी अभिलाष करते हैं, उन्हें प्रतापवान्, भगवान् वासुदेवका दर्शन करना उचित है; उनका दर्शन होनेसे ही मेरा और देवेश पितामहका दर्शन हुआ करता है, इस विषयमें मैं कुछ भी विचार नहीं करता। हे तपस्विवृन्द! तुम लोग यह जान रखो, कि वह पुण्डरीकाक्ष जिसपर प्रसन्न होंगे,

तस्य कीर्तिर्जयश्चैव स्वर्गश्चैव भविष्यति ॥ ४१ ॥
धर्माणां देशिकः साक्षात्स भविष्यति धर्मभाक् ।
धर्मवद्भिः स देवेशो नमस्कार्यः सदोद्यतैः ॥ ४२ ॥
धर्म एव परो हि स्यात्तस्मिन्नभ्यर्चिते विभौ ।
स हि देवो महातेजाः प्रजाहितचिकीर्षया ॥ ४३ ॥
धर्मार्थं पुरुषव्याघ्र ऋषिकोटीः ससर्ज ह ।
ताः सृष्टास्तेन विभुना पर्वते गन्धमादने ॥ ४४ ॥
सनत्कुमारप्रमुखास्तिष्ठन्ति तपसाऽन्विताः ।
तस्मात्स वाग्मी धर्मज्ञो नमस्यो द्विजपुङ्गवाः ॥ ४५ ॥
दिवि श्रेष्ठो हि भगवान्हरिर्नारायणः प्रभुः ।
वन्दितो हि स वन्देत मानितो मानयीत च ॥
अर्हितश्चार्हयेन्नित्यं पूजितः प्रतिपूजयेत् ॥ ४६ ॥
दृष्टः पश्येदहरहः संश्रितः प्रतिसंश्रयेत ।
अर्चितश्चार्चयेन्नित्यं स देवो द्विजसत्तमाः ॥ ४७ ॥
एतत्तस्यानवद्यस्य विष्णोर्वै परमं व्रतम् ।

ब्रह्मादि देवगण भी उसके विषयमें प्रसन्न रहेंगे। मनुष्यलोकमें जो मनुष्य उस केशवका आसरा करेगा, उसका जय तथा कीर्त्ति होगी और उसको स्वर्ग मिलेगा। (३८—४१)

वह धर्मभागी मनुष्य साक्षात् सब धर्मोंका उपदेशक होगा। धर्म जानने-वाले पुरुष सदा उद्योगी होकर उस देवेश्वरको नमस्कार करें, उस सर्व-शक्तिमान् वासुदेवके पूजित होनेसे परमधर्म होता है। उस महातेजस्वी देवेशने प्रजाकी हितकामनासे धर्मके निमित्त कोटि ऋषियोंकी सृष्टि की है। वे सनत्कुमारप्रभृति ऋषिगण उसके द्वारा उत्पन्न होके गन्धमादन पर्वतपर तपोयुक्त होकर निवास करते हैं। हे द्विजश्रेष्ठगण! इस ही निमित्त वह वाग्मी धर्मज्ञ वासुदेव सबके ही नमस्य हैं। (४२—४५)

स्वर्गलोकके बीच सर्वशक्तिमान् भग-वान् नारायण ही श्रेष्ठ हैं, वह वन्दित होनेपर वन्दना, पूजित होनेसे पूजा, सम्मानित होनेसे सम्मान और सदा अर्चित होनेपर प्रतिपूजा किया करते हैं। वह दृष्ट होनेसे दिनरात देखते और संश्रित होनेसे आश्रय किया करते हैं। हे द्विजसत्तमगण! वह देव अत्यन्त पूजित होनेपर सदा पूजा करता और

आदिदेवस्य महतः सज्जनाचरितं सदा ॥ ४८ ॥
भुवनेऽभ्यर्चितो नित्यं देवैरपि सनातनः।
अभयेनानुरूपेण युज्यन्ते तमनुव्रताः ॥ ४९ ॥
कर्मणा मनसा वाचा स नमस्यो द्विजैः सदा।
यत्नवद्भिरुपस्थाय द्रष्टव्यो देवकीसुतः ॥ ५० ॥
एष वोऽभिहितो मार्गो मया वै मुनिसत्तमाः।
तं दृष्ट्वा सर्वशो देवं दृष्टाः स्युः सुरसत्तमाः ॥ ५१ ॥
महावराहं तं देवं सर्वलोकपितामहम्।
अहं चैव नमस्यामि नित्यमेव जगत्पतिम् ॥ ५२ ॥
तत्र च त्रितयं दृष्टं भविष्यति न संशयः।
समस्ता हि वयं देवास्तस्य देहे वसामहे ॥ ५३ ॥
तस्य चैवाग्रजो भ्राता सिताद्रिनिचयप्रभः।
हली बल इति ख्यातो भविष्यति धराधरः ॥ ५४ ॥
त्रिशिरास्तस्य दिव्यश्च शातकुम्भमयो द्रुमः।
ध्वजस्तृणेन्द्रो देवस्य भविष्यति रथाश्रितः ॥ ५५ ॥
शिरो नागैर्महाभोगैः परिकीर्णं महात्मभिः।

उस अनिन्दनीय विष्णुका यही परमव्रत है, महानुभाव आदिदेवके चरितोंका सज्जन लोग सदा आचरण किया करते हैं, वही सनातन देवलोकके बीच सदा देवताओंके द्वारा पूजित होता है। जो लोग उसपर अनुरक्त रहते, वे अनुरूप अभययुक्त हुआ करते हैं; इसलिये द्विजगण सदा उसे वचन, मन और कर्मसे नमस्कार करें। यत्नवान् मनुष्य उपासनाके सहारे देवकीनन्दनका दर्शन करें। (४६—५०)

हे मुनिसत्तमगण! यह मेरे द्वारा आप लोगोंका पथ वर्णित हुआ। उसका सब भांतिसे दर्शन करनेपर सब देवताओंका दर्शन होता है। उस महावराहरूपी, सर्वलोकपितामह, जगत्पति देवेश्वरको मैं भी सदा नमस्कार किया करता हूं। उसमें तुम लोगोंको निःसन्देह त्रिवर्ग दीखेगा, हम सब देवताओंके सहित उन्हींके शरीरमें निवास करते हैं, उनके जेठे भाई श्वेतशैलसदृश प्रभायुक्त, हली, धराधारी बलदेव नामसे विख्यात होंगे। उस देवकी रथपर स्वर्णमय, तृणराज, त्रिशिरा तालवृक्ष चिन्हयुक्त रथकी ध्वजा होगी, उन सर्वलोकेश्वर महाबाहुका सिर महाभोग-

भविष्यति महाबाहोः सर्वलोकेश्वरस्य च ॥ ५६ ॥
चिन्तितानि समेष्यन्ति शस्त्राण्यस्त्राणि चैव ह।
अनन्तश्च स एवोक्तो भगवान्हरिरव्ययः ॥ ५७ ॥
समादिष्टश्च विबुधैर्दर्शय त्वामिति प्रभो।
सुपर्णो यस्य वीर्येण कश्यपस्यात्मजो बली।
अन्तं नैवाशकद् द्रष्टुं देवस्य परमात्मनः ॥ ५८ ॥
स च शेषो विचरते परया वै मुदा युतः।
अन्तर्वसति भोगेन परिरभ्य वसुन्धराम् ॥ ५९ ॥
य एव विष्णुः सोऽनन्तो भगवान्वसुधाधरः।
यो रामः स हृषीकेशो योऽच्युतः स धराधरः ॥६०॥
तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ दिव्यौ दिव्यपराक्रमौ।
द्रष्टव्यौ माननीयौ च चक्रलाङ्गलधारिणौ ॥ ६१ ॥
एष वोऽनुग्रहः प्रोक्तो मया पुण्यस्तपोधनाः।
यद्भवन्तो यदुश्रेष्ठं पूजयेयुः प्रयत्नतः ॥ ६२ ॥ [६७८६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पुरुषमाहात्म्ये सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥

नारद उवाच— अथ व्योम्नि महाञ्छब्दः सविद्युत्स्तनयित्नुमान्।

युक्त महानुभाव नागगणसे परिवेष्टित रहेगा। सब अस्त्र शस्त्र ध्यान करते ही उनके निकट उपस्थित होंगे, वह भगवान् अव्यय हरि ही अनन्त नामसे वर्णित होते हैं, जिनके प्रतापसे कश्यपके पुत्र बलवान् सुपर्ण (गरुड) देवताओंकी आज्ञासे उन्हें प्रदर्शन करते हुए उस देव परमात्माका अन्त देखनेमें समर्थ न हुए। (५१-५८)

वह भोगके द्वारा वसुन्धराको आलिङ्गन करके उसके अन्दर निवास करता है, वह शेष परम हर्षयुक्त होके विचरता है, वही विष्णु, वही अनन्त और वही भगवान् धरणीधर हैं। जो राम वही हृषीकेश, जो अच्युत वही बलदेव हैं। वे दोनों पुरुषश्रेष्ठ, दिव्य तथा दिव्यपराक्रमशाली हैं, वे चक्रधारी और हलधारी दोनों देव दर्शनीय तथा माननीय हैं। हे तपोधनगण! आप लोग यदुश्रेष्ठ राम और कृष्णकी यत्नपूर्वक पूजा करिये, इस ही निमित्त आप लोगोंके लिये अनुग्रहस्वरूप यह पवित्र विषय वर्णन किया है। (५९—६२)

अनुशासनपर्वमें १४७ अध्याय समाप्त।

मेघैश्च गगनं नीलं संरुद्धमभवद् घनैः ॥ १ ॥
प्रावृषीव च पर्जन्यो ववृषे निर्मलं पयः ।
तमश्चैवाभवद् घोरं दिशश्च न चकाशिरे ॥ २ ॥
ततो देवगिरौ तस्मिन् रम्ये पुण्ये सनातने ।
न शर्वं भूतसंघं वा ददृशुर्मुनयस्तदा ॥ ३ ॥
व्यभ्रं च गगनं सद्यः क्षणेन समपद्यत ।
तीर्थयात्रां ततो विप्रा जग्मुश्चान्ये यथागतम् ॥ ४ ॥
तदद्भुतमचिन्त्यं च दृष्ट्वा ते विस्मिताऽभवन् ।
शङ्करस्योमया सार्धं संवादं त्वत्कथाश्रयम् ॥ ५ ॥
स भवान्पुरुषव्याघ्र ब्रह्मभूतः सनातनः ।
यदर्थमनुशिष्टाः स्मो गिरिपृष्ठे महात्मना ॥ ६ ॥
द्वितीयं त्वद्भुतमिदं त्वत्तेजःकृतमद्य वै ।
दृष्ट्वा च विस्मिताः कृष्ण सा च नः स्मृतिरागता॥७॥
एतत्ते देवदेवस्य माहात्म्यं कथितं प्रभो ।
कपर्दिनो गिरीशस्य महाबाहो जनार्दन ॥ ८ ॥

अनुशासनपर्वमें १४८ अध्याय ।

नारद मुनि बोले, अनन्तर आकाशमें बिजलीके सहित,बादलयुक्त महान् शब्द प्रकट हुआ और नीलवर्णवाली निविड घनघटासे आकाशमण्डल परिपूरित होगया। प्रावृट्कालकी भांति पर्जन्यदेव जलकी वर्षा करने लगे, घोर अन्धकार प्रकट हुआ, सब दिशा प्रकाशसे रहित होगई। अनन्तर उस रमणीय, पवित्र, सनातन सुरशैलपर मुनिगण महेश्वर वा भूतगणका दर्शन करनेमें समर्थ न हुए। क्षणभरके बीच आकाशमण्डल निर्मल हुआ, तब ब्राह्मणोंने तीर्थयात्राके निमित्त गमन किया, सब कोई अपने अपने अभिलषित स्थान पर चले गये। (१—४)

उमाके सहित महादेवके संवादके सम्बन्धमें यह अद्भुत और अचिन्तनीय विषय देखकर वे सब मुनिवृन्द विस्मित होकर बोले। हे पुरुषश्रेष्ठ! आप सनातन ब्रह्मस्वरूप हैं, पर्वतके ऊपर जिस भांति महादेवके द्वारा हम लोग उपदिष्ट हुए थे, उस ही भांति यह दूसरा अद्भुत व्यापार आपके तेजसे प्रकट हुआ। हे कृष्ण! इस अद्भुत कर्मको देखकर हम लोग विस्मित हुए और पहला विषय हमें स्मरण हुआ है। हे विभु महाबाहो जनार्दन! यह देवोंके

इत्युक्तः स तदा कृष्णस्तपोवननिवासिभिः।
मानयामास तान्सर्वानृषीन्देवकिनन्दनः ॥ ९ ॥
अथर्षयः संप्रहृष्टाः पुनस्ते कृष्णमब्रुवन्।
पुनः पुनर्दर्शयास्मान्सदैव मधुसूदन ॥ १० ॥
न हि नः सा रतिः स्वर्गे या च त्वद्दर्शने विभो।
तदृतं च महाबाहो यदाह भगवान्भवः ॥ ११ ॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं रहस्यमरिकर्शन।
त्वमेव ह्यर्थतत्त्वज्ञः पृष्टोऽस्मान्पृच्छसे यदा ॥ १२ ॥
तदस्माभिरिदं गुह्यं त्वत्प्रियार्थमुदाहृतम्।
न च तेऽविदितं किंचित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ १३ ॥
जन्म चैव प्रसूतिश्च यच्चान्यत्कारणं विभो।
वयं तु बहुचापल्यादशक्ता गुह्यधारणे ॥ १४ ॥
ततः स्थिते त्वयि विभो लघुत्वात्प्रलपामहे।
न हि किंचित्तदाश्चर्यं यन्न वेत्ति भवानिह ॥ १५ ॥
दिवि वा भुवि वा देव सर्वं हि विदितं तव।

देव कपर्दी गिरीशका माहात्म्य कहा गया। तपोवननिवासी मुनियोंके द्वारा देवकीनन्दन कृष्णने उस समय इतनी कथा सुनके उन सब मुनियोंका सम्मान किया। (५—९)

अनन्तर वे मुनिगण हर्षित होकर कृष्णसे बोले, हे मधुसूदन! आप सदा हम लोगोंको दर्शन दीजिये। हे विभो! आपका दर्शन करनेके लिये हमें जैसा अनुराग है, वैसी स्वर्गमें निवास करनेकी रुचि नहीं होती। हे अरिकर्षण महाबाहो! भगवान् भवने आपको जो यथार्थ कहा, यह वही सब रहस्य वर्णित हुआ। आप अर्थतत्त्वज्ञ हैं, पूछने पर हम लोगोंसे ही जिज्ञासा करते हैं, इसलिये आपकी प्रीतिके लिये यह गोपनीय विषय उदाहृत हुआ, तीनों लोकोंके बीच आपको कुछ भी अविदित नहीं है। (१०-१३)

हे विभो! उत्पत्ति तथा प्रसूति अथवा दूसरे जो कुछ कारण हैं, वे सब आपसे छिपे नहीं हैं, हम लोग बहुतसी चपलतासे गोपनीय विषयोंको धारण करनेमें असमर्थ हैं। हे प्रभु! इसलिये आपके रहते हम लोग जो विषय कहें, वह लघुताहेतुसे प्रलापमात्र है। आप जिसे न जानें, वैसा अद्भुत विषय इस लोकमें कुछ भी नहीं है। हे देव!

साधयाम वयं कृष्ण बुद्धिं पुष्टिमवाप्नुहि ॥ १६ ॥
पुत्रस्ते सदृशस्तात विशिष्टो वा भविष्यति ।
महाप्रभावसंयुक्तो दीप्तिकीर्तिकरः प्रभुः ॥ १७ ॥
भीष्म उवाच– ततः प्रणम्य देवेशं यादवं पुरुषोत्तमम् ।
प्रदक्षिणमुपावृत्त्य प्रजग्मुस्ते महर्षयः ॥ १८ ॥
सोऽयं नारायणः श्रीमान्दीप्त्या परमया युतः ।
व्रतं यथावत्तच्चीर्त्वा द्वारकां पुनरागमत् ॥ १९ ॥
पूर्णे च दशमे मासि पुत्रोऽस्य परमाद्भुतः ।
रुक्मिण्यां संमतो जज्ञे शूरो वंशधर प्रभो ॥ २० ॥
स कामः सर्वभूतानां सर्वभावगतो नृप ।
असुराणां सुराणां च चरत्यन्तर्गतः सदा ॥ २१ ॥
सोऽयं पुरुषशार्दूलो मेघवर्णश्चतुर्भुजः ।
संश्रितः पाण्डवान्प्रेम्णा भवन्तश्चैनमाश्रिताः ॥ २२॥
कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिश्चैव स्वर्गमार्गस्तथैव च ।
यत्रैष संस्थितस्तत्र देवो विष्णुस्त्रिविक्रमः ॥ २३ ॥
सेन्द्रा देवास्त्रयस्त्रिंशदेष नात्र विचारणा ।

द्युलोक वा भूलोकमें जो कुछ आश्चर्य हैं, वे सब आपको मालूम हैं। हे कृष्ण! अब हम लोग जाते हैं, आप बुद्धि और पुष्टि लाभ करिये। हे तात! आपके सदृश अथवा तुमसे भी उत्कृष्ट, महाप्रभाव, दीप्तिमान्, कीर्तियुक्त और सर्वशक्तिमान् तुम्हारे एक पुत्र होगा। (१४—१७)

भीष्म बोले, अनन्तर उन महर्षियोंने पुरुषश्रेष्ठ, यदुवंशधर देवेशको प्रणाम और प्रदक्षिण करके प्रस्थान किया। ये वही श्रीमान् नारायण परम दीप्तिमान् होकर व्रत पूरा करके द्वारकामें आये, दसवां महीना पूरा होने पर रुक्मिणीके गर्भसे परमाश्चर्य शूरवीर सर्वसम्मत वंशधर पुत्र उत्पन्न हुआ। हे महाराज! वही काम सब प्राणियोंके अन्तःकरणमें स्थित है, वह सुरासुरोंके अन्तर्गत होकर सदा विचरता है। ये वही घन-श्याम, चतुर्भुज पुरुषश्रेष्ठने प्रेमवशसे पाण्डवोंको अवलम्बन किये हैं, आप लोग भी इनका आसरा कर रहे हैं। (१८–२२)

कीर्ति, लक्ष्मी, धृति और यह स्वर्ग-मार्ग जिस स्थानमें संश्रित होता है, भगवान् त्रिविक्रम वासुदेव वहां सन्नि-

आदिदेवो महादेवः सर्वभूतप्रतिश्रयः ॥ २४ ॥
अनादिनिधनोऽव्यक्तो महात्मा मधुसूदनः ।
अयं जातो महातेजाः सुराणामर्थसिद्धये ॥ २५ ॥
सुदुस्तरार्थतत्त्वस्य वक्ता कर्ता च माधवः ।
तव पार्थ जयः कृत्स्नस्तव कीर्तिस्तथाऽतुला ॥ २६ ॥
तवेयं पृथिवी देवी कृत्स्ना नारायणाऽऽश्रयात् ।
अयं नाथस्तवाचिन्त्यो यस्य नारायणो गतिः ॥ २७ ॥
स भवांस्त्वमुपाध्वर्यू रणाग्नौ हुतवान्नृपान् ।
कृष्णस्रुवेण महता युगान्ताग्निसमेन वै ॥ २८ ॥
दुर्योधनश्च शोच्योऽसौ सपुत्रभ्रातृबान्धवः ।
कृतवान्योऽबुधः क्रोधाद्धरिगाण्डीविविग्रहम् ॥ २९ ॥
दैतेया दानवेन्द्राश्च महाकाया महाबलाः ।
चक्राग्नौ क्षयमापन्ना दावाग्नौ शलभा इव ॥ ३० ॥
प्रतियोद्धुं न शक्यो हि मानुषैरेष संयुगे ।
विहीनैः पुरुषव्याघ्र सत्त्वशक्तिबलादिभिः ॥ ३१ ॥
जयो योगी युगान्ताभः सव्यसाची रणाग्रगः ।

हित रहते हैं और इन्द्रके सहित तैंतीस देवता वहां निवास करते हैं, इस विषयकी चर्चा करनेका प्रयोजन नहीं है। महात्मा मधुसूदन आदिदेव महादेव सर्वभूतोंके अवलम्ब हैं। वेही अनादि, अनन्त और अव्यक्त हैं। ये महातेजस्वी देवताओंकी प्रयोजन सिद्धिके निमित्त उत्पन्न हुए हैं। माधव अत्यन्त दुस्तर अर्थतत्त्वोंके वक्ता और कर्ता हैं। हे तात! नारायणके अवलम्बसे ही तुम्हारी जय और अतुल कीर्ति हुई तथा सब पृथ्वी तुम्हारे हस्तगत होरही है। ये अचिन्तनीय नारायण तुम्हारे नाथ और गति हैं, इस ही निमित्त तुमने अध्वर्युके निकट रहके राजाओंको युद्धरूपी अग्निमें प्रलयानल सदृश कृष्णरूपी स्रुवसे आहुति प्रदान की है। (२३—२८)

जिस दुर्बुद्धिने क्रोधवशसे हरिको गाण्डीवमूर्ति धारण कराई थी, उस दुर्योधनकी ही पुत्र, भ्राता और बान्धवोंके सहित शोचनीय दशा हुई है। महाकाय, महाबली दैत्य और दानवेन्द्रगण दावानलमें शलभसमूहकी भांति जिसके चक्राग्निके बीच नष्ट होगये; पराक्रम, शक्ति और बलहीन मनुष्योंके बीच उसके सङ्ग प्रतियुद्ध करनेवाला कोई भी नहीं

तेजसा हतवान्सर्वं सुयोधनबलं नृप ॥ ३२ ॥
यत्तु गोवृषभाङ्केन मुनिभ्यः समुदाहृतम् ।
पुराणं हिमवत्पृष्ठे तन्मे निगदतः शृणु ॥ ३३ ॥
यावत्तस्य भवेत्पुष्टिस्तेजो दीप्तिः पराक्रमः ।
प्रभावः सन्नतिर्जन्म कृष्णे तत्त्रिगुणं विभो ॥ ३४ ॥
कः शक्तोत्यन्यथा कर्तुं तद्यदि स्यात्तथा शृणु ।
यत्र कृष्णो हि भगवांस्तत्र पुष्टिरनुत्तमा ॥ ३५ ॥
वयं त्विहाल्पमतयः परतन्त्राः सुविक्लवाः ।
ज्ञानपूर्वं प्रपन्नाः स्मो मृत्योः पन्थानमव्ययम् ३६ ॥
भवांश्चाप्यार्जवपरः पूर्वं कृत्वा प्रतिश्रयम् ।
राजवृत्तं न लभते प्रतिज्ञापालने रतः ॥ ३७ ॥
अप्येवात्मवधं लोके राजंस्त्वं बहु मन्यसे ।
न हि प्रतिज्ञा या दत्ता तां प्रहातुमरिन्दम ॥ ३८ ॥
कालेनाऽयं जनः सर्वो निहतो रणमूर्धनि ।
वयं च कालेन हताः कालो हि परमेश्वरः ॥ ३९ ॥

है । हे महाराज! जयरूपी,प्रलयकालकी अग्निसदृश, योगी,सव्यसाची धनञ्जयने युद्धमें अग्रगामी होकर निज तेजके प्रभावसे दुर्योधनकी सारी सेनाका नाश किया है । (२९-३२)

हिमालय पर्वतपर वृषभध्वजने मुनियोंसे जो पुराण कहा था, उसे मैं कहता हूं, सुनो । तेज, वीर्य और पराक्रमसे यदुवंशकी तुष्टि होती है; प्रभाव, सन्नति और जन्म, ये तीनों गुण कृष्णमें विद्यमान हैं, यदि ऐसा हो, तो कौन इसे अन्यथा करनेमें समर्थ होगा, इसलिये उस विषयको सुनो । जिस स्थानमें भगवान् कृष्ण निवास करते हैं, वहांपर उत्तम पुष्टि विद्यमान रहती है । हम अल्पबुद्धि, पराधीन और अत्यन्त विह्वल हैं, इसलिये ज्ञानपूर्वक मृत्युके अक्षयपथमें शरणागत हुए हैं । (३३—३६)

तुम अत्यन्त ही सरलचित्त हो, पहले प्रतिज्ञा करके अन्तमें उस प्रतिज्ञाको पूरी करनेमें रत होकर राज्य लेनेसे विमुख हुए थे । हे अरिन्दम महाराज ! इस लोकके बीच तुम अपने वधका बहुमान किया करते हो; तथापि जो प्रतिज्ञा करते हो, उसे अन्यथा नहीं कर सकते । ये सब लोग कालके सहारे रणभूमिमें मारे गये हैं, हम भी कालसे

न हि कालेन कालज्ञः स्पृष्टः शोचितुमर्हसि ।
कालो लोहितरक्ताक्षः कृष्णो दण्डी सनातनः ॥ ४० ॥
तस्मात्कुन्तीसुत ज्ञातीन्नेह शोचितुमर्हसि ।
व्यपेतमन्युर्नित्यं त्वं भव कौरवनन्दन ॥ ४१ ॥
माधवस्यास्य माहात्म्यं श्रुतं यत्कथितं मया ।
तदेव तावत्पर्याप्तं सज्जनस्य निदर्शनम् ॥ ४२ ॥
व्यासस्य वचनं श्रुत्वा नारदस्य च धीमतः ।
स्वयं चैव महाराज कृष्णस्यार्हत्तमस्य वै ॥ ४३ ॥
प्रभावश्चर्षिपूगस्य कथितः सुमहान्मया ।
महेश्वरस्य संवादं शैलपुत्र्याश्च भारत ॥ ४४ ॥
धारयिष्यति यश्चैनं महापुरुषसम्भवम् ।
शृणुयात्कथयेद्वा यः स श्रेयो लभते परम् ॥ ४५ ॥
भवितारश्च तस्याथ सर्वे कामा यथेप्सिताः ।
प्रेत्य स्वर्गं च लभते नरो नास्त्यत्र संशयः ॥ ४६ ॥
न्याय्यं श्रेयोऽभिकामेन प्रतिपत्तुं जनार्दनः ।

ही हत हुए हैं, इसलिये काल ही परमेश्वर है। तुम कालज्ञ हो, इसलिये कालसे स्पृष्ट होकर तुम्हें शोक करना उचित नहीं है। काल रक्तसदृश लाल-नेत्र, कृष्णवर्ण और सनातन दण्डधारी है और सबको हरता है, इसही लिये उसका हरि नाम है। हे कौरव-वंशवर्धन कुन्तीनन्दन! इसलिये अब तुम स्वजनोंके लिये शोक मत करो; सदा शोकरहित रहो। (३७–४१)

यह माधवका माहात्म्य जो मैंने कहा, उसे तुमने सुना, सज्जनोंके निद-र्शनमें वह पर्याप्त है। हे महाराज! व्यासदेवका वचन तथा बुद्धिमान् नारद मुनिके उपदेशके अनुसार और पूजनीय कृष्णकी कथा सुनके मैंने ऋषिसमूहका उत्तम महान् प्रभाव वर्णन किया है। हे भारत! शैलसुताके सहित महादेवका संवाद भी कहा गया। हे राजन्! जो मनुष्य इस महापुरुष-संभव विषयको कहता, सुनता अथवा धारण करता है, उसका परम कल्याण होता है। उसकी यथाभिलषित सब कामना पूरी होती और वह मनुष्य परलोकमें जाकर निःसन्देह स्वर्गसुख भोगता है। (४२–४६)

कल्याणकी इच्छा करनेवाले मनु-ष्योंको चाहिये, कि जनार्दनको जानें,

एष एवाक्षयो विप्रैः स्तुतो राजन् जनार्दनः ॥ ४७ ॥
महेश्वरमुखोत्सृष्टा ये च धर्मगुणाः स्मृताः।
ते त्वया मनसा धार्याः कुरुराज दिवानिशम् ॥ ४८ ॥
एवं ते वर्तमानस्य सम्यग्दण्डधरस्य च।
प्रजापालनदक्षस्य स्वर्गलोको भविष्यति ॥ ४९ ॥
धर्मेणाऽपि सदा राजन्प्रजा रक्षितुमर्हसि।
यस्तस्य विपुलो दण्डः सम्यग्धर्मः स कीर्त्यते ॥ ५० ॥
य एष कथितो राजन्मया सज्जनसन्निधौ।
शङ्करस्योमया सार्धं संवादो धर्मसंहितः ॥ ५१ ॥
श्रुत्वा वा श्रोतुकामो वाऽप्यर्चयेद् वृषभध्वजम्।
विशुद्धेनेह भावेन य इच्छेद् भूतिमात्मनः ॥ ५२ ॥
एष तस्याऽनवद्यस्य नारदस्य महात्मनः।
सन्देशो देवपूजार्थं तं तथा कुरु पाण्डव ॥ ५३ ॥
एतदत्यद्भुतं वृत्तं पुण्ये हिमवति प्रभो।
वासुदेवस्य कौन्तेय स्थाणोश्चैव स्वभावजम् ॥ ५४ ॥
दश वर्षसहस्राणि बदर्यामेष शाश्वतः।

हे महाराज! ब्राह्मण लोग इस अक्षय जनार्दनकी स्तुति किया करते हैं। हे कुरुराज! जो सब धर्म महेश्वरके मुखसे बाहिर हुए थे, तुम अहोरात्र मन ही मन उन धर्मोंको धारण करना। इस ही प्रकार तुम पूरी रीतिसे दण्डधारी होके वर्तमान रहने और दक्षता प्रकाशित करनेपर स्वर्गलोकमें गमन करोगे। (४७—४९)

हे महाराज! तुम धर्मपूर्वक प्रजाकी रक्षा करनेमें समर्थ हो, प्रजाकी रक्षाके लिये जो विपुल दण्ड विघृत होता है, वही सम्यक् धर्मरूपसे वर्णित हुआ करता है। हे महाराज! मैंने सज्जनोंके निकट जो यह उमाके सहित महादेवका धर्मसंयुक्त संवाद वर्णन किया है, उसे सुनकर तथा सुननेके अभिलाषी होके जो लोग अपनी उन्नतिकी इच्छा करते हैं, वे पवित्र चित्तसे वृषभध्वजकी पूजा करें। हे पाण्डव! यह उस अनिन्दित महानुभाव नारदमुनिका देवपूजा सन्देश वाक्य है, इसलिये तुम उसे प्रतिपालन करो। (५०—५३)

हे महाराज कुन्तीनन्दन! पवित्र हिमालयमें वासुदेव और महादेवकी यह अप्राकृतिक घटना अत्यन्त अद्भुत हुई

तपश्चचार विपुलं सह गाण्डीवधन्वना ॥ ५५ ॥
त्रियुगौ पुण्डरीकाक्षौ वासुदेवधनंजयौ ।
विदितौ नारदादेतौ मम व्यासाच्च पार्थिव ॥ ५६ ॥
बाल एव महाबाहुश्चकार कदनं महत् ।
कंसस्य पुण्डरीकाक्षो ज्ञातित्राणार्थकारणात् ॥ ५७ ॥
कर्मणामस्य कौन्तेय नान्तं सङ्ख्यातुमुत्सहे ।
शाश्वतस्य पुराणस्य पुरुषस्य युधिष्ठिर ॥ ५८ ॥
ध्रुवं श्रेयः परं तात भविष्यति तवोत्तमम् ।
यस्य ते पुरुषव्याघ्रः सखा चाऽयं जनार्दनः ॥ ५९ ॥
दुर्योधनं तु शोचामि प्रेत्य लोकेऽपि दुर्मतिम् ।
यत्कृते पृथिवी सर्वा विनष्टा सहयद्विपा ॥ ६० ॥
दुर्योधनापराधेन कर्णस्य शकुनेस्तथा ।
दुःशासनचतुर्थानां कुरवो निधनं गताः ॥ ६१ ॥
वैशम्पायन उवाच– एवं संभाषमाणे तु गाङ्गेये पुरुषर्षभे ।
तूष्णीं बभूव कौरव्यो मध्ये तेषां महात्मनाम् ॥ ६२ ॥
तच्छ्रुत्वा विस्मयं जग्मुर्धृतराष्ट्रादयो नृपाः ।

थी; इस शाश्वत वासुदेवने अर्जुनके सह बदरिकाश्रममें दश सहस्र वर्षतक विपुल तपस्या की थी। हे महाराज! ये पुण्डरीकाक्ष वासुदेव और धनञ्जय त्रेतायुगसे नारद तथा व्यासदेवके द्वारा मुझे विदित हैं। इस महाबाहु, महा-तेजस्वी पुण्डरीकाक्षने बाल्य अवस्थामें ही स्वजनोंके परित्राणके निमित्त कंसका महत् बधकार्य साधन किया था। (५४–५७)

हे कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर! मैं इस शाश्वत पुराण पुरुषके कर्मोंकी संख्या करनेका उत्साह नहीं करता। हे तात! ये पुरुषपुङ्गव जनार्दन जब तुम्हारे सखा हैं, तब अवश्य ही तुम्हारा परम मङ्गल होगा। और दुर्बुद्धि दुर्योधन स्वर्गमें गया है, तोभी मैं उसके निमित्त शोक करता हूं, जिसके कारण यह समस्त महीमण्डल घोडों और हाथियोंके सहित विनष्ट हुआ है, दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासन, इन चारोंके अपराधसे सारा कुरुकुल निर्मूल हुआ है। (५८—६१)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पुरुषश्रेष्ठ गंगानन्दन भीष्मके ऐसा कहनेपर युधिष्ठिर उन सब महात्माओंके बीच

संपूज्य मनसा कृष्णं सर्वे प्राञ्जलयोऽभवन् ॥ ६३ ॥
ऋषयश्चापि ते सर्वे नारदप्रमुखास्तदा।
प्रतिगृह्याभ्यनन्दन्त तद्वाक्यं प्रतिपूज्य च ॥ ६४ ॥
इत्येतदखिलं सर्वैः पाण्डवो भ्रातृभिः सह।
श्रुतवान्सुमहाश्चर्यं पुण्यं भीष्मानुशासनम् ॥ ६५ ॥
युधिष्ठिरस्तु गाङ्गेयं विश्रान्तं भूरिदक्षिणम्।
पुनरेव महाबुद्धिः पर्यपृच्छन्महीपतिः ॥ ६६ ॥ [६८५२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे महापुरुषप्रस्तावे अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

वैशम्पायन उवाच- श्रुत्वा धर्मानशेषेण पावनानि च सर्वशः।
युधिष्ठिरः शान्तनवं पुनरेवाभ्यभाषत ॥ १ ॥
युधिष्ठिर उवाच- किमेकं दैवतं लोके किं वाप्येकं परायणम्।
स्तुवन्तः कं कमर्चन्तः प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम् ॥ २ ॥
को धर्मः सर्वधर्माणां भवतः परमो मतः।
किं जपन्मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥ ३ ॥
भीष्म उवाच- जगत्प्रभुं देवदेवमनन्तं पुरुषोत्तमम्।

चुप होरहे। धृतराष्ट्र प्रभृति सब राजा इस कथाको सुनके विस्मित हुए और उन्होंने मनही मन हाथ जोडके कृष्णकी पूजा की। नारद प्रभृति ऋषियोंने भीष्म का वचन प्रतिग्रह करके उनका सम्मान तथा अभिनन्दन किया। पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने भाइयोंके सहित यह उत्तम महाश्चर्य पवित्र भीष्मानुशासन इस ही प्रकार सुना था। बहुतसी दक्षिणा देनेवाले भीष्मदेवके विश्राम करनेके अनन्तर पृथ्वीपति महाबुद्धिमान् युधिष्ठिरने उनसे फिर प्रश्न किया। (६२—६६)

अनुशासनपर्वमें १४८ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १४९ अध्याय।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, युधिष्ठिरने अशेष रीतिसे सब कर्मों और पवित्र विषयोंको सुननेके अनन्तर शन्तनुनन्दनसे फिर प्रश्न किया। (१)

युधिष्ठिर बोले, मनुष्यवृन्द किस देव वा किस परम आश्रयकी स्तुति तथा पूजा करते हुए इस लोकमें शुभ लाभ करते हैं? सब धर्मोंके बीच कौनसा धर्म परम श्रेष्ठ रूपसे आपको सम्मत है? किसका जप करनेसे जीव संसाररूपी बन्धनसे छूटता है? (२-३)

भीष्म बोले, पुरुष सदा जागृत होके

स्तुवन्नामसहस्रेण पुरुषः सततोत्थितः ॥ ४ ॥
तमेव चार्चयन्नित्यं भक्त्या पुरुषमव्ययम् ।
ध्यायंस्तुवन्नमस्यंश्च यजमानस्तमेव च ॥ ५ ॥
अनादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम् ।
लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत् ॥ ६ ॥
ब्रह्मण्यं सर्वधर्मज्ञं लोकानां कीर्तिवर्धनम् ।
लोकनाथं महद्भूतं सर्वभूतभवोद्भवम् ॥ ७ ॥
एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः ।
यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः सदा ॥ ८ ॥
परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः ।
परमं यो महद्ब्रह्म परमं यः परायणम् ॥ ९ ॥
पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
दैवतं देवतानां च भूतानां योऽव्ययः पिता ॥ १० ॥
यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे ।
यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये ॥ ११ ॥
तस्य लोकप्रधानस्य जगन्नाथस्य भूपते ।
विष्णोर्नामसहस्रं मे शृणु पापभयापहम् ॥ १२ ॥

देवोंके प्रभु अनन्त पुरुषोत्तमको सहस्र नामसे स्तुति करते हुए उस अव्यय पुरुषकी भक्तिपूर्वक पूजा करे। यजमान मनुष्य उस अनादिनिधन, सर्वलोक-महेश्वर विष्णुका ध्यान और स्तुति करते हुए उन्हें नमस्कार करे। उस लोकाध्यक्ष नारायणकी सदा स्तुति करते हुए पुरुष सब दुःखोंको अतिक्रम करता है। ब्रह्मण्य, सर्वधर्मज्ञ, सर्वलोककीर्तिवर्धन, लोकनाथ, महद्भूत और सर्वभूतोंकी उत्पत्तिके कारण नारायणकी स्तुति करे; यह धर्म ही सब धर्मोंसे श्रेष्ठ और यही मुझे अभिमत है; जिस धर्मके विषयमें मनुष्य सदा भक्तिपूर्वक स्तुति करते हुए भगवानका पूजन करते हैं। (४—८)

जो परम महत् तेज, जो परम महत् तप, जो परम महत् ब्रह्म तथा जो परम परायण है, सब पवित्र पदार्थोंके बीच पवित्र, जो सब मङ्गलोंका मङ्गल, जो देवताओंका देवता और भूतोंका अव्यय पिता है। हे पृथ्वीनाथ! जिससे आदि युगमें सब प्राणी उत्पन्न होके युगक्षयमें जिसमें फिर लीन लीन होते हैं, उस

यानि नामानि गौणानि विख्यातानि महात्मनः।
ऋषिभिः परिगीतानि तानि वक्ष्यामि भूतये ॥ १३ ॥
ॐ विश्वं विष्णुर्वषट्कारो भूतभव्यभवत्प्रभुः।
भूतकृद्भूतभृद्भावो भूतात्मा भूतभावनः ॥ १४ ॥
पूतात्मा परमात्मा च मुक्तानां परमा गतिः।
अव्ययः पुरुषः साक्षी क्षेत्रज्ञोऽक्षर एव च ॥ १५ ॥
योगो योगविदां नेता प्रधानपुरुषेश्वरः।
नारसिंहवपुः श्रीमान्केशवः पुरुषोत्तमः ॥ १६ ॥
सर्वः शर्वः शिवः स्थाणुर्भूतादिर्निधिरव्ययः।
संभवो भावनो भर्ता प्रभवः प्रभुरीश्वरः ॥ १७ ॥

लोकप्रधान, जगन्नाथ विष्णुका पापभयापह सहस्रनाम सुनो। महानुभाव नारायणके जो गौण नाम विख्यात हैं तथा ऋषियोंके द्वारा वर्णित हुए हैं, वे सब नाम चतुर्वर्ग फलप्राप्तिके हेतु हैं; उन्हीं नामोंका वर्णन करता हूं। (९—१३)

वह विश्वकी सृष्टि करके उसमें अनुप्रविष्ट है, इन्हींसे विश्व १, सर्वव्यापी होनेसे विष्णु २, वषट्कार मन्त्रस्वरूप ३, भूत, भविष्य और वर्तमान—कालके प्रभु ४, भूतकर्ता होनेसे भूतकृत् ५, भूतोंका पालन करता है, इसही निमित्त भूतभृत् ६, भावस्वरूप ७, भूतोंका अन्तर्यामी होनेसे भूतात्मा ८, भूतोंका उत्पादक होनेसे भूतभावन ९, निर्गुण होनेसे पूतात्मा १०, परमात्मा ११, मुक्त पुरुषोंकी परमगति १२, अव्यय १३, अखिलकर्मफलदाता है, इसलिये पुरुषसाक्षी १४, द्रष्टा है, इसलिये क्षेत्रज्ञ १५, अक्षर १६, मनके सहित ज्ञानेन्द्रियोंको संयत करके क्षेत्रज्ञ और परमात्माके एकत्वभावना योगसे प्राप्य है, इसही हेतु योग १७, योगवित् जनोंका नेता १८, प्रकृति और पुरुषका नियन्ता है, इसही निमित्त प्रधान पुरुषेश्वर १९, नारसिंहवपु २०, श्रीमान् २१, लम्बे केशोंसे युक्त है, इसही निमित्त केशव २२, और क्षर अक्षर दोनोंसे उत्तम है, इसीलिये पुरुषोत्तम २३ है। (१४-१६)

कारणरूपसे अनुगत है, इसीलिये सर्व २४, सबकी हिंसा करता है, इसही हेतु शर्व २५, सब कोई उसमें शयन करते हैं, इसही निमित्त शिव २६, स्थिर है इसहीसे स्थाणु २७, भूतादिकोंकी अव्ययनिधि २८, धर्मस्थापन करनेके लिये प्रतियुगमें उत्पन्न होता है, इसलिये संभव २९, सब भोक्ता पुरुषों-

स्वयंभूः शंभुरादित्यः पुष्कराक्षो महास्वनः ।
अनादिनिधनो धाता विधाता धातुरुत्तमः ॥ १८ ॥
अप्रमेयो हृषीकेशः पद्मनाभोऽमरप्रभुः ।
विश्वकर्मा मनुस्त्वष्टा स्थविष्ठः स्थविरो ध्रुवः ॥ १९ ॥
अग्राह्यः शाश्वतः कृष्णो लोहिताक्षः प्रतर्दनः ।
प्रभूतस्त्रिककुब्धाम पवित्रं मङ्गलं परम् ॥ २० ॥

को फल देनेवाला है, इसी हेतु भावन ३०, प्रपञ्चजगत्के अधिष्ठान रूपसे भर्ता ३१, जगदुत्पत्तिके कारण होनेसे प्रभव ३२, सर्वशक्तिमान् होनेसे प्रभु ३३, सबका नियन्ता होनेसे ईश्वर ३४, स्वयम्भू ३५, भक्तोंके सुखका विधान करता है, इसही लिये शंभु ३६, अदितके पुत्र होनेसे आदित्य ३७, कमलके समान नेत्र हैं, इसीसे पुष्कराक्ष ३८, मेरे भक्त विनष्ट न हों इत्यादि वेद उसका वचन है, इस ही निमित्त महास्वन ३९, उसका जन्म और विनाश नहीं है, इसीलिये अनादिनिधन ४०, अनन्तरूपसे जगत्को धारण करनेसे धाता ४१, कर्म और कर्मफलोंका विधान करनेसे विधाता ४२ और विरञ्चिसे भी श्रेष्ठ है, इसलिये धातुरुत्तम ४३ है। (१७-१८)

प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान अर्थापत्ति और अनुपलब्धि प्रभृति शास्त्रीय प्रमाणोंसे, उसे जाना नहीं जाता इसही निमित्त अप्रमेय ४४, इन्द्रियोंका ईश्वर होनेसे हृषीकेश ४५, जगत्कारण पद्म उसके नाभीमें विद्यमान है, इसही लिये पद्मनाभ ४६, अमरणधर्मविशिष्ट देवताओंका ईश्वर होनेसे अमरप्रभु ४७, जगत्की रचना करता है, इसलिये विश्वकर्मा ४८, मननशील होनेसे मनु ४९, प्रलयके समय जगत्का नाश करता है, इसीसे त्वष्टा ५०, अत्यन्त स्थूल होनेसे स्थविष्ठ ५१, स्थिरत्वप्रयुक्त स्थविर ५२ और निश्चय है, इसलिये ध्रुव ५३ है। (१९)

मनके सहित वचनसे अथवा बलपूर्वक उसे ग्रहण नहीं किया जाता, इसही निमित्त अग्राह्य ५४, शश्वत् अर्थात् सब समयमें स्थायी रहनेसे शाश्वत ५५, देखते ही स्त्रियोंका मन हरता अथवा कृष्णवर्ण है, इसीलिये कृष्ण ५६, लोहितनेत्र होनेसे लोहिताक्ष ५७, प्रलयकालमें विश्वसंसारका नाश करता है, इस ही निमित्त प्रतर्दन ५८, ज्ञान, ऐश्वर्य आदि गुणोंसे युक्त है, इस ही निमित्त प्रभूत ५९, ऊर्ध्व, अध और मध्यभेदसे तीनों धाम है, इस ही हेतु त्रिककुब्धाम ६०, पवित्र ६१

ईशानः प्राणदः प्राणो ज्येष्ठः श्रेष्ठः प्रजापतिः ।
हिरण्यगर्भो भूगर्भो माधवो मधुसूदनः ॥ २१ ॥
ईश्वरो विक्रमी धन्वी मेधावी विक्रमः क्रमः ।
अनुत्तमो दुराधर्षः कृतज्ञः कृतिरात्मवान् ॥ २२ ॥
सुरेशः शरणं शर्म विश्वरेताः प्रजाभवः ।
अहः संवत्सरो व्यालः प्रत्ययः सर्वदर्शनः ॥ २३ ॥
अजः सर्वेश्वरः सिद्धः सिद्धिः सर्वादिरच्युतः ।
वृषाकपि (१००) रमेयात्मा सर्वयोगविनिःसृतः ॥ २४ ॥

और परम मङ्गल ६२ है। (२०)

सर्व भूतोंका नियन्ता होनेसे ईशान ६३, प्राणप्रदाता होनेसे प्राणद ६४, सब प्राणियोंका जीवन स्वरूप होनेसे प्राण ६५, अत्यन्त वृद्ध है, इस ही निमित्त जेष्ठ ६६, अत्यन्त प्रशस्त होनेसे श्रेष्ठ ६७, प्रजापति ६८, विरञ्चिस्वरूपसे अथवा हिरण्मयान्तर्वर्ती होनेसे हिरण्यगर्भ ६९, पृथिवीका कारण है अर्थात् पृथिवी उसके गर्भमें है, इसलिये भूगर्भ ७०, माधव ७१, मधुसूदन ७२, अणिमा आदि आठ प्रकार के ऐश्वर्योंसे युक्त है, इसलिये ईश्वर ७३, विक्रमी ७४, धन्वी ७५, मेधावी ७६, वि अर्थात् गरुडपक्षिके द्वारा गमन करता है, इसलिये विक्रम ७७, जगत्‌को आक्रमण कर रहा है, इसही निमित्त क्रम ७८, उससे दूसरा कोई उत्तम नहीं है, इसीसे अनुत्तम ७९, शत्रुओंसे दुराक्रमणीय होनेसे दुराधर्ष ८०, प्राणियोंके पुण्य पाप-जनित सब कर्मोंको जाननेसे कृतज्ञ ८१, पुरुष प्रयत्नस्वरूप है, इस ही हेतु कृति ८२, और निज महिमामें प्रतिष्ठित है, इसलिये आत्मवान् ८३ है। (२१-२२)

सुरेश ८४, दुःख नाश करनेसे शरण ८५, सुखस्वरूप होनेसे शर्म ८६, विश्वही उसका वीर्यस्वरूप कार्य है, इसलिये विश्वरेता ८७, प्रजाकी उत्पत्तिका कारण है, इसलिये प्रजाभव ८८, दिनकी भांति प्रकाशरूप है, इसही निमित्त अहन् ८९, अखण्ड कालरूप होनेसे संवत्सर ९०, बन्धनहीन है, इस ही हेतु व्याल ९१, ज्ञानस्वरूप होनेसे प्रत्यय ९२, अपने भक्तोंको देखता है, इसलिये सर्वदर्शन ९३, जन्मरहित होनेसे अज ९४, ईश्वरोंका भी ईश्वर है, इसलिये सर्वेश्वर ९५, नित्य निष्पन्नरूप होनेसे सिद्धि ९६, ज्ञप्तिरूप होनेसे सिद्धि ९७, सर्वभूतोंका कारण है, इस ही निमित्त सर्वादि ९८, निज रूपसे च्युत नहीं होता, इस ही

वसुर्वसुमनाः सत्यः समात्मासंमितः समः ।
अमोघः पुण्डरीकाक्षो वृषकर्मा वृषाकृतिः ॥ २५ ॥
रुद्रो बहुशिरा बभ्रुर्विश्वयोनिः शुचिश्रवाः ।
अमृतः शाश्वतः स्थाणुर्वरारोहो महातपाः ॥ २६ ॥
सर्वगः सर्वविद्भानुर्विष्वक्सेनो जनार्दनः ।
वेदो वेदविदव्यङ्गो वेदाङ्गो वेदवित्कविः ॥ २७ ॥

लिये अच्युत ९९, समस्त कामनाओंकी वर्षा करता है, इस ही लिये वृष अर्थात् धर्म और वराह अवतार रूपसे कपि है, इस ही लिये वृषाकपि १००, उसका स्वरूप बुद्धिमे जाना नहीं जाता, इस ही हेतु अप्रमेयात्मा १ और सब सम्बन्धोंसे पृथक् असङ्ग पुरुष है, इसलिये सर्वयोगविनिःसृत २ है । (२३-२४)

सब भूतोंमें वास करता है, इसलिये वसु ३, सङ्ग आदि क्लेशोंसे उसका मन दूषित नहीं होता, इस ही निमित्त वसुमना ४, सत्यरूप होनेसे सत्य ५, एकात्मा होनेसे समात्मा ६, अपरिच्छिन्न है, इसलिये असम्मित ७, सब समयमें विकाररहित होनेसे सम ८, सत्यसङ्कल्प होनेसे अमोघ ९, हृदयाख्य पुण्डरीकमें व्याप्त है, इसलिये पुण्डरीकाक्ष १०, उसके सब कर्म धर्ममय हैं, इस हेतु वृषकर्मा ११, धर्म और अर्थ ग्रहण करनेसे ही वृषाकृति १२, शिवके सहित अभिन्न है तथा संहारक समय प्रजासमूहको रुलाता है, इस ही निमित्त रुद्र १३, सहस्रशीर्षा पुरुष है, इस ही हेतु बहुशिरा १४, सब लोकोंको धारण कर रहा है, इस ही निमित्त बभ्रु १५, विश्वयोनि १६, उसके सब नाम पवित्र हैं, इसलिये शुचिश्रवा १७, उसकी मृत्यु नहीं होती, इसलिये अमृत १८, सब समय और सब स्थानोंमें रहनेसे शाश्वत १९, स्थाणु २०, उसमें आरोहण करना ही श्रेष्ठ है, क्यों कि उसे पानेसे पुनरावृत्ति नहीं होती, इस ही निमित्त वरारोह २१ और सब विषयोंका उसे ज्ञान है, इसलिये महातपा २२ है । (२५-२६)

सर्वग २३, हरएक विषयोंको जाननेवाला तथा प्रकाशमान होनेसे सर्वविद्भानु २४, जरासन्ध प्रभृतिकी सेना उसके द्वारा सब दिशाओंमें भगाई गई थी, इस ही निमित्त विष्वक्सेन २५, दस्युओंको पीडित करनेसे जनार्दन २६, ज्ञानदीपस्वरूप होनेसे वेद २७, अर्थ और पाठक्रमसे वह वेदोंको जानता है, इसलिये वेदवित् २८, वह सब सर्वावयवसम्पन्न है

लोकाध्यक्षः सुराध्यक्षो धर्माध्यक्षः कृताकृतः ।
चतुरात्मा चतुर्व्यूहश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्भुजः ॥ २८ ॥
भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता सहिष्णुर्जगदादिजः ।
अनघो विजयो जेता विश्वयोनिः पुनर्वसुः ॥ २९ ॥
उपेन्द्रो वामनः प्रांशुरमोघः शुचिरूर्जितः ।
अतीन्द्रः संग्रहः सर्गो धृतात्मा नियमो यमः ॥ ३० ॥
वेद्यो वैद्यः सदायोगी वीरहा माधवो मधुः ।

इसलिये अव्यङ्ग २९, वेदाङ्गस्वरूप ३०, वेद लाभ करनेसे वेदवित् ३१, और अतिक्रान्तदर्शी होनेसे कवि ३२ है। (२७)

लोकोंको प्रत्यक्ष करता है, इसलिये लोकाध्यक्ष ३३, इन्द्र आदि देवताओंका अधिपति है, इसलिये सुराध्यक्ष ३४, धर्माध्यक्ष ३५, कार्यकारणरूपसे कृताकृत ३६, सृष्टिके प्रारम्भमें पृथक् पृथक् चतुर्विध ब्रह्मा दक्षादिरूपसे चतुरात्मा ३७, वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध रूपसे चतुर्व्यूह ३८, नृसिंहरूपसे चतुर्दंष्ट्र ३९, चतुर्भुज ४०, अत्यन्त दीप्तिमान् होनेसे भ्राजिष्णु ४१, भोज्यरूपसे भोजन ४२, भोजनकर्ता होनसे भोक्ता ४३, सहनशील होनेसे सहिष्णु ४४, हिरण्यगर्भ रूपसे जगत्के आदिकालमें जन्म लेनेसे जगदादिज ४५, निष्पाप होनेसे अनघ ४६, ज्ञान वैराग्य प्रभृति ऐश्वर्योंके द्वारा जययुक्त होनेसे विजय ४७, सबसे उत्कृष्ट है, इसलिये जेता ४८ और विश्वयोनिमें बार बार अवतार लेके वास करता है, इसलिये पुनर्वसु ४९ है। (२८-२९)

उपेन्द्र ५०, वामन ५१, वामन रूपसे तीनों लोकोंको आक्रमण किया, इसलिये इसलिये प्रांशु ५२, अमोघ ५३, अत्यन्त पवित्र होनेसे शुचि ५४, गोवर्धनादि धारण करनेसे ऊर्जित ५५, कल्पवृक्षहरण आदि कार्योंमें इन्द्रको अतिक्रम करनेसे अतीन्द्र ५६, भक्तोंका संहार करता है, इसलिये संग्रह ५७, कार्यरूपसे उत्पन्न होता है, इस ही हेतु सर्ग ५८, एक रूपसे जन्मादिरहित है, इसलिये धृतात्मा ५९, प्रजा समूहको निज निज अधिकारमें नियमित करनेसे नियम ६०, और अन्तर्यामी प्रयुक्त यम ६१ है। (३०)

अज्ञान प्रयुक्त वेदनार्ह है, इसलिये वेद्य ६२, सब विद्या अध्ययन करता है, इस ही निमित्त वैद्य ६३, सर्व क्रियामें कर्तृत्वके रहते भी यथार्थमें अक-

अतीन्द्रियो महामायो महोत्साहो महाबलः ॥ ३१ ॥
महाबुद्धिर्महावीर्यो महाशक्तिर्महाद्युतिः ।
अनिर्देश्यवपुः श्रीमानमेयात्मा महाद्रिधृक् ॥ ३२ ॥
महेष्वासो महीभर्ता श्रीनिवासः सतां गतिः ।
अनिरुद्धः सुरानन्दो गोविन्दो गोविदां पतिः ॥ ३३ ॥
मरीचिर्दमनो हंसः सुपर्णो भुजगोत्तमः ।
हिरण्यनाभः सुतपाः पद्मनाभः प्रजापतिः ॥ ३४ ॥
अमृत्युः सर्वदृक् सिंहः सन्धाता सन्धिमान् (२००) स्थिरः ।

तृत्व युक्त होनेसे सदायोगी ६४, दैत्यदलनाशक होनेसे वीरहा ६५, भगवद्विद्याका ईश्वर है, इसलिये माधव ६६, वसन्तकी भांति प्रीतिप्रद होनेसे मधु ६७, इन्द्रियोंके अगोचर होनेसे अतीन्द्रिय ६८, अत्यन्त कृपावान् होनेसे महामाय ६९, महोत्साह ७० और बाल्यकालमें पूतना आदिका वध करनेके समय अत्यन्त बल प्रकाशित किया था इसलिये महाबल ७१ है । (३१)

महाबुद्धि ७२, महावीर्य ७३, महाशक्ति ७४, महाद्युति ७५, यह है, वह है, इत्यादि रूपसे उसका निरूपण नहीं होता, इसलिये अनिर्देश्यवपु ७६, श्रीमान् ७७, अमेयात्मा ७८ पृथ्वी, गोवर्धन तथा मन्दर पर्वतको धारण किया था, इसलिये महाद्रिधृक् ७९, महाधनुर्धारी होनेसे महेष्वास ८०, महीभर्ता ८१, श्रीनिवास ८२, साधुओंका अवलम्ब होनेसे सतांगति ८३, कोई शत्रु उसे रोकनेमें समर्थ नहीं है, इसलिये अनिरुद्ध ८४, देवताओंको आनन्दित करता है, इसलिये सुरानन्द ८५, पहले समयमें पृथ्वीका उद्धार किया था, इसलिये गोविन्द, ८६ और वेदवादियोंको विशेष रूपसे पालन करता है, इस ही निमित्त गोविदांपति ८७ है। (३२—३३)

दुष्ट लोग उसके द्वारा विनष्ट होते हैं, इसलिये मरीचि ८८, वह दुष्टोंको शासन करता है, इस ही निमित्त दमन ८९, शुद्धत्वप्रयुक्त हंसकी भांति अथवा संसारबन्धनको काटता है, इसीसे हंसपक्षिकी भांति सुपर्ण ९०, शेषरूप होनेसे भुजगोत्तम ९१, सुवर्णकी भांति प्रकाशमान ब्रह्माण्ड उसके नाभिस्थानमें वर्तमान है, इसलिये हिरण्यनाभ ९२, नरनारायण रूपसे सुतपा ९३, पद्मनाभ ९४ और प्रजापति ९५ है । (३४)

अमृत्यु ९६, सर्वदर्शी होनेसे सर्वदृक् ९७, वक्रदन्त आदि दुष्ट दस्युगणको मारनेसे सिंह ९८, सन्धिकर्ता

अजो दुर्मर्षणः शास्ता विश्रुतात्मा सुरारिहा ॥ ३५ ॥
गुरुर्गुरुतमो धाम सत्यः सत्यपराक्रमः ।
निमिषोऽनिमिषः स्रग्वी वाचस्पतिरुदारधीः ॥ ३६ ॥
अग्रणीर्ग्रामणीः श्रीमान्न्यायो नेता समीरणः ।
सहस्रमूर्धा विश्वात्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ ३७ ॥
आवर्तनो निवृत्तात्मा संवृतः संप्रमर्दनः ।
अहः संवर्तको वह्निरनिलो धरणीधरः ॥ ३८ ॥

होनेसे सन्धाता ९९, सन्धिमान् २००, भक्तोंके अन्तःकरणमें स्थिरताके सहित स्थित रहनेसे स्थिर १, शिशुपालके वधके लिये चक्र चलाया था, इस ही हेतु अज २, दुःखसे उसे सहन किया जाता है, इसलिये दुर्मर्षण ३, दुष्टोंको दण्ड देता है, इसही निमित्त शास्ता ४, शास्त्रप्रसिद्ध विराट देहधारी है, इस हेतु विश्रुतात्मा ५ और सुरारिहा ६ है। (३५)

भक्तियोग उपदेश करनेसे गुरु ७, उपदेष्टा पुरुषोंके बीच श्रेष्ठ है, इसलिये गुरुतम ८, सबको धारण करनेसे धाम ९, त्रिकाल बाधारहित होनेसे सत्य १०, अप्रतिहत सामर्थ्ययुक्त है, इसही निमित्त सत्यपराक्रम ११, विशेष रीतिसे दर्शन करनेसे निमिष १२, निमेषहीन होनेसे अनिमिष १३, वैजयन्ती माला धारण करनेसे स्रग्वी १४, वाक्यके अधिपति होनेसे वाचस्पति १५ और महाबुद्धि हेतुसे उदारधी १६ है। (३६)

सबसे पहले पूजनीय है, इसलिये अग्रणी १७, मथुरा ग्रामसे सब लोगोंको द्वारकामें लेजानेसे ग्रामणी १८, श्रीमान् १९, श्रुति, स्मृति और पुराणोंके तात्पर्यको विशेष रीतिसे जानता है, इसलिये न्याय २०, धर्मफल प्रापक है, इसलिये नेता २१, सम्यक् रीतिसे उसका ईरण अर्थात् भाषण होता है, इस ही निमित्त समीरण २२, विराटरूप होनेसे सहस्रमूर्धा २३, विश्वात्मा २४, सहस्राक्ष २५, सहस्रपात् २६, धर्मरक्षाके निमित्त बार बार उत्पन्न होता है, इसलिये आवर्तन २७ उसका चित्त परम वैराग्ययुक्त है, इसही निमित्त निवृत्तात्मा २८, योगमायासे परिपूरित रहनेसे संवृत २९, दुष्टोंका मर्दन करता है, इसलिये सम्प्रमर्दन ३०, सूर्यरूपसे दिनका प्रवर्तक है, इस ही हेतु अह ३१, संवर्तक अग्निरूपसे देवताओंका हवि होता है, इसी हेतु वह्नि ३२, कंसको जीतकर उग्रसेनको पृथ्वी दान करनेसे उसके इला अर्थात् भूमि न थी, इस ही निमित्त अनिल ३३, और अनन्त अथवा वराहरूपसे भूभार

सुप्रसादः प्रसन्नात्मा विश्वधृग्विश्वभुग्विभुः ।
सत्कर्ता सत्कृतः साधुर्जह्नुर्नारायणो नरः ॥ ३९ ॥
असंख्येयोऽप्रमेयात्मा विशिष्टः शिष्टकृच्छुचिः ।
सिद्धार्थः सिद्धसङ्कल्पः सिद्धिदः सिद्धिसाधनः ॥४०॥
वृषाही वृषभो विष्णुर्वृषपर्वा वृषोदरः ।
वर्धनो वर्धमानश्च विविक्तः श्रुतिसागरः ॥ ४१ ॥
सुभुजो दुर्धरो वाग्मी महेन्द्रो वसुदो वसुः ।
नैकरूपो बृहद्रूपः शिपिविष्टः प्रकाशनः ॥ ४२ ॥

धारण करता है, इस ही हेतु धरणीधर २३४ है । (३७-३८)

उसकी प्रसन्नतासे सब प्रकारके आलस दूर होते हैं, इसलिये सुप्रसाद २३५, भक्तोंके अपराध करनेपर भी उसका चित्त अप्रसन्न नहीं होता, इसलिये प्रसन्नात्मा २३६, विश्वधृक् २३७, विश्वभुक् २३८, विविध रूप धारण करनेसे विभु २३९, धर्मरक्षाके हेतु गोब्राह्मणोंका सत्कार करता है, इस ही निमित्त सत्कर्ता २४०, पूजित पुरुषोंसे भी पूजनीय होनेसे सत्कृत २४१, न्यायकार्यसे दूसरोंका कार्य सिद्ध करता है, इसलिये साधु २४२, संहारसमयमें प्राणियोंको हरण करनेसे जह्नु २४३, प्रलयकालमें नारा अर्थात् जल ही उसका अयन अर्थात् आश्रय था, इस ही हेतु नारायण २४४, सनातन परमात्मा होनेसे नर २४५, अनिर्वचनीय होनेसे असंख्येय २४६, अप्रमेयात्मा २४७, सबसे उत्कृष्ट होनेसे विशिष्ट २४८, वेदोक्त कर्म करता है, इसलिये शिष्टकृत् २४९, शुचि २५०, सिद्धार्थ २५१, सिद्धसङ्कल्प २५२, सिद्धिद २५३ और त्रैवार्णिक फल साधन करनेसे सिद्धिसाधन २५४ है । (३९-४०)

धर्मयुक्त द्वादश अह अर्थात् दिवस विशिष्ट होनेसे वृषाही २५५, अभिलषित विषय दान करता है, इसलिये वृषभ २५६, चरण संक्रमणसे जगत्को वेष्टन कर रहा है, इस हेतु विष्णु २५७, धर्म ही उसका सोपान होनेसे वृषपर्वा २५८, धर्म उसके उदरमें विद्यमान है, इसलिये वृषोदर २५९, भक्तोंके किये हुए अल्प विषयोंकी भी वृद्धि करता है, इसलिये वर्धन २६०, वर्द्धमान २६१, पवित्र होनेसे विविक्त २६२, वेदोंके तात्पर्यका विषय होनेसे श्रुतिसागर २६३, सुभुज २६४, दुर्द्धर २६५, वाग्मी २६६, महेन्द्र २६७, वसुद २६८, वसु २६९, नैकरूप २७०, बृहद्रूप २७१, शिपिविष्ट २७२ प्रकाशन

ओजस्तेजोद्युतिधरः प्रकाशात्मा प्रतापनः।
ऋद्धः स्पष्टाक्षरो मन्त्रश्चन्द्रांशुर्भास्करद्युतिः ॥ ४३ ॥
अमृतांशूद्भवो भानुः शशबिन्दुः सुरेश्वरः।
औषधं जगतः सेतुः सत्यधर्मपराक्रमः ॥ ४४ ॥
भूतभव्यभवन्नाथः पवनः पावनोऽनलः।
कामहा कामकृत्कान्तः कामः कामप्रदः प्रभुः॥ ४५ ॥
युगादिकृद्युगावर्तो (३००) नैकमायो महाशनः।
अदृश्योऽव्यक्तरूपश्च सहस्रजिदनन्तजित् ॥ ४६ ॥
इष्टो विशिष्टः शिष्टेष्टः शिखण्डी नहुषो वृषः।
क्रोधहा क्रोधकृत्कर्ता विश्वबाहुर्महीधरः ॥ ४७ ॥

२७३, ओज,बल,तेज,प्रताप,द्युति तथा देवकान्ति धारण करता है, इसही निमित्त ओजस्तेजोद्युतिधर २७४, प्रकाशात्मा २७५, प्रतापन २७६,परिपूर्ण होनेसे ऋद्ध २७७, स्पष्ट २७८, अक्षर २७९, मन्त्रके द्वारा बोधित होनेसे मन्त्र २८० और चंद्रांशु भास्करद्युति २८१ है। (४१-४३)

समुद्र मथके चन्द्रमाको उत्पन्न करनेसे अमृतांशूद्भव ८२, दीप्तिमान् होनेसे भानु ८३, शशसदृश अनेक प्रकार लक्षणोंसे युक्त होनेसे शशबिन्दु ८४, सुरेश्वर ८५, संसाररोग निवर्त्तक होनेसे औषध ८६, जगत्‌में सेतुरूपी होनेसे जगत्सेतु ८७, सत्यधर्मपराक्रम ८८, भूतभव्य ८९, भवन्नाथ २९०, पवन ९१, पावन ९२, अनल ९३, भक्तोंको अपना रूप प्रदान करके उनके कामका विनाश करता है, इसलिये कामहा ९४, प्रद्युम्नका उत्पादक होनेसे कामकृत् कान्त ९५, मुमुक्षुजनोंका काम्य काम ९६, कामप्रद ९७, दिव्यरूपसे प्रकट होनेसे प्रभु ९८, युगादिकृत् ९९, चारों युगोंका आवर्तन करता है, इसलिये युगावर्त ३००, नैकमाय १ महाशन २, अदृश्य ३,अव्यक्तस्वरूप ४,सहस्रजित् ५ और अनन्तजित् ३०६ है। (४४-४६)

परमानन्दस्वरूप युक्त अथवा सबसे पूजित होनेसे इष्ट ७, सर्वान्तर्यामी सर्वाङ्ग रूपसे विशिष्ट ८, शिष्टोंका इष्ट होनेसे शिष्टेष्ट ९, मयूरपूंछसे युक्त होनेसे शिखण्डी ३१०, मायासे भूतोंको बद्ध करता है, इसलिये नहुष ११, अभिलषित विषयोंकी वर्षा करता है, इसलिये वृष १२, भक्तोंके क्रोधको विनष्ट करनेसे क्रोधहा १३, दुष्टोंके विषयमें क्रोध करता है, इस ही निमित्त

अच्युतः प्रथितः प्राणः प्राणदो वासवानुजः।
अपां निधिरधिष्ठानमप्रमत्तः प्रतिष्ठितः ॥ ४८ ॥
स्कन्दः स्कन्दधरो धुर्यो वरदो वायुवाहनः।
वासुदेवो बृहद्भानुरादिदेवः पुरन्दरः ॥ ४९ ॥
अशोकस्तारणस्तारः शूरः शौरिर्जनेश्वरः।
अनुकूलः शतावर्तः पद्मी पद्मनिभेक्षणः ॥ ५० ॥
पद्मनाभोऽरविन्दाक्षः पद्मगर्भः शरीरभृत्।
महर्द्धिर्ऋद्धो वृद्धात्मा महाक्षो गरुडध्वजः ॥ ५१ ॥
अतुलः शरभो भीमः समयज्ञो हविर्हरिः।
सर्वलक्षणलक्षण्यो लक्ष्मीवान्समितिञ्जयः ॥ ५२ ॥

क्रोधकृत् १४, कार्यमात्रके कर्तृत्व युक्त युक्त होनेसे कर्त्ता १५, विश्वबाहु १६, महीधर १७, अच्युत १८, प्रथित १९, प्राण २०, प्राणद २१, वासवानुज २२, अपांनिधि २३, अधिष्ठान २४, अप्रमत्त २५ और निज महिमामें स्थित रहनेसे प्रतिष्ठित २२६ है। (४७-४८)

वायुरूपसे शोषण करनेसे स्कन्द २७, वायुको धारण करनेसे स्कन्दधर २८, जगत्का भार उठाता है, इसलिये धुर्य २९, अभिलषित पदार्थोंके दान करनेसे वरद २३०, वायुकी भांति वेगवान् विनतानन्दन गरुड उसका वाहन है, इस ही निमित्त वायुवाहन ३१, वसुदेवके पुत्र होनेसे वासुदेव ३२, चन्द्र और सूर्यरूपसे बृहद्भानु ३३, आदिदेव ३४, शत्रुपुर विदारण करनेसे पुरन्दर ३५, अशोक ३६, तारण ३७, शत्रुओंका भी उद्धार करता है, इसलिये तार ३८, पराक्रमयुक्त होनेसे शूर ३९, शूरके सन्तान होनेसे शौरि ४०, जनेश्वर ४१, अनुकूल ४२, वह सैकडों बार प्रकट होता है, इसलिये शतावर्त्त ४३, हाथमें पद्म धारण करनेसे पद्मी ४४ और पद्मनिभेक्षण २४५ है। (४९-५०)

पद्मनाभ ४६, अरविन्दाक्ष ४७, पद्मगर्भ, अन्नरूपसे शरीर पोषण करता है, इस ही निमित्त शरीरभृत् ४८, उसकी महती सम्पत्ति है, इसलिये महर्द्धि ४९, प्रपञ्च रूपसे वृद्धरूपी है, इसलिये ऋद्ध ५०, पुरातन आत्मा होनेसे वृद्धात्मा ५१, महाक्ष ५२, गरुडध्वज ५३, उसकी उपमा नहीं है, इसलिये अतुल ५४ शरीरके बीच प्रत्यगात्मरूपसे प्रकाशमान है, इसही निमित्त शरभ ५५, उससे सब कोई डरते हैं, इसीसे भीम ५६, समयज्ञ ५७, हवनीय रूपसे हवि ५८, समस्त पाप हरनेसे हरि ५९, सब

विक्षरो रोहितो मार्गो हेतुर्दामोदरः सहः ।
महीधरो महाभागो वेगवानमिताशनः ॥ ५३ ॥
उद्भवः क्षोभणो देवः श्रीगर्भः परमेश्वरः ।
करणं कारणं कर्ता विकर्ता गहनो गुहः ॥ ५४ ॥
व्यवसायो व्यवस्थानः संस्थानः स्थानदो ध्रुवः ।
परर्द्धिः परमस्पष्टस्तुष्टः पुष्टः शुभेक्षणः ॥ ५५ ॥
रामो विरामो विरजो मार्गो नेयो नयोऽनयः (४००) ।

शास्त्रोंका तात्पर्यविषय होनेसे सर्वलक्षणलक्षण्य ६०, लक्ष्मीवान् ६१,और समरविजयी होनेसे समितिञ्जय ३६२ है। (५१—५२)

उसका विनाश नहीं है, इसलिये विक्षर ६३, मत्स्यरूप धारण करनेसे रोहित ६४, भक्तोंका अन्वेषणीय है, इसलिये मार्ग ६५, निमित्तउपादान, दोनों कारणरूप होनेसे हेतु ६६, रज्जुसे बद्ध होनेसे उदरमें उस चिन्हको धारण करता है, इसलिये दामोदर ६७, सब कुछ सहता है, इस हेतु सह ६८, गिरिरूपसे महीधर ६९, परम भाग्यवान् होनेसे महाभाग ७०, वेगवान् ७१, सर्वसंहर्त्ता होनेसे अमिताशन ७२, उससे संसार उत्पन्न हुआ है, इसलिये उद्भव ७३, शत्रुओंको क्षुब्ध करनेसे क्षोभण ७४, क्रीडा करता है, इसलिये देव ७५, जगत्रूपी विभूति उसके उदरमें विद्यमान है, इसलिये श्रीगर्भ ७६, परमेश्वर ७७, साधकतम होनेसे करण ७८, कारण ७९, कर्त्ता ८०, विकर्त्ता ८१, दुर्विज्ञेय होनेसे गहन ८२,और स्वरूप संवरण करता है, इस ही निमित्त गुह ३८३ है। (५३–५४)

संवित्रूपसे व्यवसाय ८४, जगत् उसहीमें स्थित है, इसलिये व्यवस्थान ८५, उसमें ही सबकी समाप्ति होती है, इसलिये संस्थान ८६, भक्तोंको वैकुण्ठ प्रभृति स्थान दान करता है, इस ही निमित्त स्थानद ८७,अनेक कर्मके कर्तृत्वयुक्त होनेपर भी स्वरूपसे निश्चल है, इसलिये ध्रुव ८८, परम ऐश्वर्यशाली होनेसे परर्द्धि ८९, स्वप्रकाश ज्ञानरूपसे परम स्पष्ट ९०, परमानन्दरूप होनेसे तुष्ट ९१, पूर्णत्वयुक्त होनेसे पुष्ट ९२ और शुभेक्षण ३९३ है। (५५)

उसमें योगिजन रमण करते हैं, इसलिये राम ९४, उसमें जगत्का ठहराव होता है, इसही निमित्त विराम ९५, रजोगुणरहित होनेसे विरज ९६, पथप्रदर्शक है, इसलिये मार्ग ९७, भक्तजन उसे निज हृदयमें लेजासकते हैं, इसलिये नेय ९८, भक्तोंका अल्प उपहार

वीरः शक्तिमतां श्रेष्ठो धर्मो धर्मविदुत्तमः ॥ ५६ ॥
वैकुण्ठः पुरुषः प्राणः प्राणदः प्रणवः पृथुः ।
हिरण्यगर्भः शत्रुघ्नो व्याप्तो वायुरधोक्षजः ॥ ५७ ॥
ऋतुः सुदर्शनः कालः परमेष्ठी परिग्रहः ।
उग्रः संवत्सरो दक्षो विश्रामो विश्वदक्षिणः ॥ ५८ ॥
विस्तारः स्थावरः स्थाणुः प्रमाणं बीजमव्ययम् ।
अर्थोऽनर्थो महाकोशो महाभोगो महाधनः ॥ ५९ ॥

भी ग्रहण करता है, इसलिये नय ९९, अभक्तोंका दिया हुआ अधिक उपहार भी नहीं लेता, इस ही निमित्त अनय ४००, युद्ध, दान, सत्य और दया विषयमें वीर १, शक्तिमान् पुरुषोंके बीच श्रेष्ठ है, इसलिये शक्तिमतां श्रेष्ठ २, धर्म वर्णन करता है, इसलिये धर्म ३ और धर्मज्ञोंके बीच श्रेष्ठ है, इसलिये धर्मविदुत्तम ४०४ है । (५६)

जिनका कुण्ठा अर्थात् प्रतिघात विगत हुआ है, वैसे भक्तोंका बोध्य है, इसलिये वैकुण्ठपुरुष ५, वेदरूप शब्दही उसका प्राण है, इसही हेतु प्राण ६, ब्रह्माको वेददान करनेसे प्राणद ७, प्रकृष्टरूपसे स्तवनीय है, इसलिये प्रणव ८, व्यापक होनेसे पृथु ९, प्रशस्त गर्वनिबन्धनसे हिरण्यगर्भ १०, शत्रुघ्न ११, व्यापक होनेसे व्याप्त १२, सर्वत्र गमन करता है, इसलिये वायु १३, इन्द्रियजनित ज्ञान उसे प्रकाशित नहीं कर सकता, इसलिये अधोक्षज १४ वह ऋतुओंके बीच वसन्त है, इसलिये ऋतु १५, सुदर्शन १६, काल १७, सबसे श्रेष्ठ स्थानमें निवास करता है, इसही निमित्त परमेष्ठी १८, मुमुक्षुजन अन्य देवताओंको परित्याग करके उसे ग्रहण करते हैं, इसलिये परिग्रह १९, सदाशिवरूपसे उग्र २०, जो जैसा कर्म है, उसमें उस ही भांति पूरी रीतिसे वास करता है, इसलिये संवत्सर २१, सत्कर्मोंमें आलसरहित होनेसे दक्ष २२, जगतको विश्राम स्थान है, इसलिये विश्राम २३, और सब विषयोंमें सरल होनेसे विश्वदक्षिण ४२४ है ।(५७–५८)

उसमें जगत् विस्तीर्ण होरहा है, इस ही निमित्त विस्तार २५, सर्वत्र स्थितिशील होनेसे स्थावर २६, स्थिर होनेसे स्थाणु २७, प्रमाता सत्यवादी है, इसलिये प्रमाण २८, अव्ययबीज २९, प्रार्थनीय होनेसे अर्थ ३०, उससे बढके और कोई नहीं है, इस ही निमित्त अनर्थ ३१, आनन्दमय होनेसे महाकोश ३२, महाभोग ३३ और महाधन ४३४ है । (५९)

अनिर्विण्णः स्थविष्ठो भूर्धर्मयूपो महामखः।
नक्षत्रनेमिर्नक्षत्री क्षमः क्षामः समीहनः ॥ ६० ॥
यज्ञ इज्यो महेज्यश्च क्रतुः सत्रं सतां गतिः।
सर्वदर्शी विमुक्तात्मा सर्वज्ञो ज्ञानमुत्तमम् ॥ ६१ ॥
सुव्रतः सुमुखः सूक्ष्मः सुघोषः सुखदः सुहृत्।
मनोहरो जितक्रोधो वीरबाहुर्विदारणः ॥ ६२ ॥
स्वापनः स्ववशो व्यापी नैकात्मा नैककर्मकृत्।
वत्सरो वत्सलो वत्सी रत्नगर्भो धनेश्वरः ॥ ६३ ॥
धर्मगुब्धर्मकृद्धर्मी सदसत्क्षरमक्षरम्।

भक्तोंके कार्यमें निर्वेदयुक्त नहीं होता, इसलिये अनिर्विण्ण ३५, अत्यन्त स्थूल होनेसे स्थविष्ठ ३६, सत्तारूपसे धर्म-यूप सदृश है, इसलिये धर्मयूप ३७, सबकाही महान् सखा है, इसलिये महासख ३८, सुधाकर सदृश आनन्द-जनक है, इसही हेतु नक्षत्रनेमि ३९, उसके जन्मसमयमें श्रेष्ठ नक्षत्र रहनेसे नक्षत्री ४०, अल्प पूजा करनेसे ही अपराध क्षमा करता है, इसलिये क्षम ४१, भक्तोंके दुःखी होनेपर वह भक्त-की भांति कृश होता है, इसही हेतु क्षाम ४२, उसकी सब चेष्टा पूर्ण रीतिसे सिद्ध होती है, इसलिये समीहन ४३, राजसूय यज्ञमें पूज्य होनेसे यज्ञ-इज्य ४४, उसकी महती पूजा हुआ करती है, इस हेतु महेज्य ४५, अनेक कार्य करता है, इसलिये क्रतु ४६, सत्रकी भांति आचरण करता अथवा सत्रयाग स्वरूप है, इसही निमित्त सत्र ४७, साधुओंकी गति है, इसी लिये सतांगति ४८, सर्वदर्शी ४९, विमुक्तात्मा ५०, सर्वज्ञ ५१ और वृत्तिभिन्न ज्ञानरूप होनेसे उत्तम ज्ञान ४५२ है। (६०-६१)

सुव्रत ५३, सुमुख ५४, सूक्ष्म ५५ सुघोष ५६, सुखद ५७, सुहृत् ५८, मनोहर ५९ जितक्रोध ६०, वीरबाहु ६१, विदारण ६२, भक्तोंको सुषा-त्मा समर्पण करनेसे स्वापन ६३, स्ववश, ६४, व्यापी ६५, अनेकोंकी आत्मा होनेसे नैकात्मा ६६, विविध कर्मोंको करता है, इसलिये नैककर्मकृत् ६७, गऊ और गोपियोंको वत्स दान करनेसे वत्सर ६८, भक्तोंके विषयमें स्नेहवान् होनेसे वत्सल ६९, चरानेके लिये उसके बछडे थे, इसलिये वत्सी ७०, रत्नगर्भ ७१ और धनेश्वर ४७२ है। (६२—६३)

धर्मकी रक्षा करता है, इसलिये धर्म-गुप् ७३, धर्मवेत्ता होनेसे धर्मकृत् ७४,

अविज्ञाता सहस्रांशुर्विधाता कृतलक्षणः ॥ ६४ ॥
गभस्तिनेमिः सत्त्वस्थः सिंहो भूतमहेश्वरः ।
आदिदेवो महादेवो देवेशो देवभृद्गुरुः ॥ ६५ ॥
उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः ।
शरीरभूतभृद्भोक्ता कपीन्द्रो भूरिदक्षिणः ॥ ६६ ॥
सोमपोऽमृतपः (५००) सोमः पुरुजित्पुरुसत्तमः ।
विनयो जयः सत्यसन्धो दाशार्हः सात्वतां पतिः ॥६७॥
जीवो विनयिता साक्षी मुकुन्दोऽमितविक्रमः ।
अम्भोनिधिरनन्तात्मा महोदधिशयोन्तकः ॥ ६८ ॥

धर्मी ७५, सूक्ष्मरूपसे सत् ७६, स्थूलरूपसे असत् ७७, विनाशी होनेसे क्षर ७८, अविनाशी भावसे अक्षर ७९, ज्ञातृरूप नहीं है; किन्तु ज्ञानरूप है; इसलिये अविज्ञाता सहस्रांशु ८०, विधाता, उसके सब लक्षण पर्याप्त हैं, इसलिये कृतलक्षण ८१, सब उसका नामस्वरूप है, इसलिये गभस्तिनेमि ८२, सत्त्वस्थ ८३, अत्यन्त विक्रमशील होनेसे सिंह ८४, भूतोंके उत्सवका ईश्वर है, इसही निमित्त भूतमहेश्वर ८५, आदिदेव ८६, महादेव ८७, देवेश ८८ और देवभृद् गुरु ४८९ है । (६४–६५)

सबसे श्रेष्ठ होनेसे उत्तर ९०, गोपति, ९१ रक्षाकर्त्ता होनेसे गोप्ता ९२, ज्ञानगम्य ९३, पुरातन ९४, शरीररूप भूतगणको धारण करता है, इसलिये शरीरभूतभृत् ९५, भोक्ता ९६, सुग्रीवको परम ऐश्वर्यशाली किया था; इसलिये कपीन्द्र ९७, वह अनेक लोगोंके निकट सरल है इसलिये भूरिदक्षिण ९८, रघुनाथ रूपसे अनेक यज्ञ करके सोमपान किया था, इसही निमित्त सोमप ९९, अमर गणकी रक्षा करनेसे अमृतप ५००, चन्द्रमाकी भांति आनन्दजनक होनेसे सोम १, अनेक पुरुषोंको जीतनेसे पुरुजित् २, पुरुषोत्तम ३, विशेष नीतिसंपन्न होनेसे विनय, ४, क्रोधादिका जय करनेसे जय ५, सत्यसन्ध ६, दानपात्र अथवा दशार्हवंशमें उत्पन्न होनेसे दाशार्ह ७ और यादवोंका प्रभु है, इस ही निमित्त सात्वतांपति ५०८ है । (६६–६७)

जीव ९, विनयी लोगोंका विनयिता साक्षी है, इसलिये विनयिता-साक्षी है, १०, मुक्तिदाता होनेसे मुकुन्द ११, अमितविक्रम १२, देवताओंको निधिकी भांति उपादेय है, इसलिये अम्भोनिधि १३, श्रीमान् अनन्त बलभद्रमें उसका चित्त सन्निविष्ट है, इसही निमित्त अन-

अजो महार्हः स्वाभाव्यो जितामित्रः प्रमोदनः ।
आनन्दो नन्दनो नन्दः सत्यधर्मा त्रिविक्रमः ॥ ६९ ॥
महर्षिः कपिलाचार्यः कृतज्ञो मेदिनीपतिः ।
त्रिपदस्त्रिदशाध्यक्षो महाशृङ्गः कृतान्तकृत् ॥ ७० ॥
महावराहो गोविन्दः सुषेणः कनकाङ्गदी ।
गुह्यो गभीरो गहनो गुप्तश्चक्रगदाधरः ॥ ७१ ॥
वेधाः स्वाङ्गोऽजितः कृष्णो दृढः सङ्कर्षणोऽच्युतः ।
वरुणो वारुणो वृक्षः पुष्करक्षो महामनाः ॥ ७२ ॥
भगवान्भगहा नन्दी वनमाली हलायुधः ।

न्तात्मा १४, महोदधिशय १५, अन्तक १६, अशुद्ध हृदयसे उत्पन्न नहीं होता, इसही लिये अज १७, महापूज्य होनेसे महार्ह १८, निज भक्तोंका चिन्तनीय होनेसे स्वाभाव्य १९, जितामित्र २०, प्रमोदन २१, आनन्द २२, नन्दन २३ स्वयं समृद्धि संपन्न होनेसे नन्द २४, सत्यधर्मा २५ और तीनों लोकोंके बीच गरुडके सहारे गमन करता है, इसलिये त्रिविक्रम ५२६ है। (६८-६९)

महर्षि २७, कपिलाचार्य २८, कृत-कर्मोंको जानता है, इसलिये कृतज्ञ २९ रामावतारमें मेदिनीपति ३०, त्रिपद, ३१, त्रिदशाध्यक्ष ३२, महत् प्रभुत्व-युक्त होनेसे महाशृङ्ग ३३, सिद्धान्त-कर्त्ता होनेसे कृतान्तकृत् ३४, लोकोत्तर वराह है, इसलिये महावराह ३५, गऊ चरानेसे गोविन्द ३६, सेनाके सहित भली भांति शत्रुयुद्धमें गमन करता है, इसही निमित्त सुषेण ३७, स्वर्णमय केयूरधारी होनेसे कनकाङ्गदी ३८, परम रहस्यरूपसे गुह्य ३९, गूढाभिप्राय निबन्धनसे गभीर ४०, दुष्प्रवेश होनेसे गहन ४१, इन्द्रियोंका अग्राह्य होनेसे गुप्त ४२ और चक्रगदाधर ५४३ है। (७०—७१)

भक्तोंका हितसाधन करता है, इस-लिये वेधा ४४, स्वभक्तजन उसके अङ्ग हैं, इसलिये स्वाङ्ग ४५, शत्रुगण उसे जीत नहीं सकते, इसही निमित्त अजित ४६, कृष्णवर्ण होनेसे कृष्ण ४७, समर्थ होनेसे दृढ ४८, पूर्णरीतिसे भक्तोंका दुःख कर्षण करता है इसलिये संकर्षण ४९, अच्युत ५५०, अपनेको वरण करनेसे वरुण ५१, वरुण लोकसे आगत होनेसे वारुण ५२, संसारवृक्षको छेदन करता अथवा भक्तजनोंका कल्पतरु है, इसही हेतु वृक्ष ५३, पुष्कराक्ष ५४, उन्नताचित्त होनेसे महामना ५५, समस्त ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य-

आदित्यो ज्योतिरादित्यः सहिष्णुर्गतिसत्तमः ॥७३॥
सुधन्वा खण्डपरशुर्दारुणो द्रविणप्रदः ।
दिवस्पृक्सर्वदृग्व्यासो वाचस्पतिरयोनिजः ॥ ७४ ॥
त्रिसामा सामगः साम निर्वाणं भेषजं भिषक् ।
संन्यासकृच्छमः शान्तो निष्ठा शान्तिः परायणम्॥७५॥
शुभाङ्गः शान्तिदः स्रष्टा कुमुदः कुवलेशयः ।
गोहितो गोपतिर्गोप्ता वृषभाक्षो वृषप्रियः ॥ ७६ ॥
अनिवर्ती निवृत्तात्मा संक्षेप्ता क्षेमकृच्छिवः ।

विशिष्ट है, इसलिये भगवान् ५६, प्रलयकालमें ऐश्वर्य नष्ट करता है, इसलिये भगहा ५७, नित्यसुखी होनेसे आनन्दी ५८, वनमाली ५९, हलायुध ६०, अदितिका अपत्य होनेसे आदित्य ६१, ज्योतिसमूहमें कोटि सूर्य सदृश है, इसलिये ज्योतिरादित्य ६२, सहिष्णु ६३ और गतिसत्तम ५६४ है । (७२-७३)

सुधन्वा ६५, उसका परशु शत्रुओंको खण्ड खण्ड करता है, इसलिये खण्डपरशु ६६, विरोधियोंके विषयमें दारुण है, इसलिये दारुण ६७, धनदाता होनेसे द्रविणप्रद ६८, वामन अवतारमें द्युलोक आक्रमण करनेसे दिवस्पृक् ६९, सर्वदृक् ७०, वेदव्यास रूपसे उत्पन्न हुए इसलिये व्यास ७१, वाचस्पति ७२, अयोनिज ७३, वेदव्रतसमाख्यात नामक तीनों साम उसके प्रतिपादक हैं, इसलिये त्रिसामा ७४, वह ब्रह्मवित् रूपसे सामगान करता है, इसही निमित्त सामग ७५, परमानन्द रूप होनेसे निर्वाण ७६, अच्युतानन्द गोविन्द इत्यादि नामोंके उच्चारण करनेसे रोग नष्ट होता है, इसलिये भेषज ७७, संसारतारक विद्याका उपदेशक होनेसे भिषक् ७८, मोक्षके हेतु संन्यास किया करता है, इस ही निमित्त संन्यासकृत् ७९, संन्यासियोंको शान्तिका विषय उपदेश करता है, इसलिये शम ८०, सुखमें अनासक्त है, इसलिये शान्त ८१, प्रलयकालमें सब भूत उसमें निवास करते हैं, इसही निमित्त निष्ठा ८२ अविद्या निवृत्तिरूपसे शान्ति ८३ और पुनरावृत्तिरहित अवलम्ब होनेसे परायण ५८४ है । (७४—७५)

शुभाङ्ग ८५, शान्तिद ८६, स्रष्टा ८७, पृथ्वीतलमें आमोदयुक्त होनेसे कुमुद ८८, प्रलयकालमें जलमें शयन करता है, इस ही निमित्त कुवलेशय ८९ गौवोंका हितकारी होनेसे गोहित ९०, पृथिव्यादिका पति होनेसे गोपति ९१, गोप्ता ९२, धर्मही उसका नेत्र है, इस-

श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासः (५००) श्रीपतिः श्रीमतां वरः ॥७७॥
श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः।
श्रीधरः श्रीकरः श्रेयः श्रीमाँल्लोकत्रयाश्रयः ॥ ७८ ॥
स्वक्षः स्वङ्गः शतानन्दो नन्दिर्ज्योतिर्गणेश्वरः।
विजितात्मा विधेयात्मा सत्कीर्तिश्छिन्नसंशयः ॥७९॥
उदीर्णः सर्वतश्चक्षुरनीशः शाश्वतः स्थिरः।
भूशयो भूषणो भूतिर्विशोकः शोकनाशनः ॥ ८० ॥
अर्चिष्मानर्चितः कुम्भो विशुद्धात्मा विशोधनः।
अनिरुद्धोऽप्रतिरथः प्रद्युम्नोऽमितविक्रमः ॥ ८१ ॥
कालनेमिनिहा वीरः शौरिः शूरजनेश्वरः।

लिये वृषभाक्ष ९३, धर्म ही उसे प्रिय है, इस ही हेतु वृषप्रिय ९४, कर्मोंसे निवृत्त नहीं होता, इस ही निमित्त अनिवर्ती ९५, विषयोंसे उसका चित्त निवृत्त हुआ है, इसलिये निवृत्तात्मा ९६, वेदोंके अर्थको गीतामें संक्षेप करनेसे संक्षेप्ता ९७, उसे स्मरण करनेसे पवित्रता होती है, इस हेतु क्षेमकृत् शिव ९८, श्रीवत्सवक्षा ९९, श्रीवास ५०० श्रीपति १ और श्रीमतांवर ५०२ है। (७५-७७)

श्रीद ३, श्रीश ४, श्रीनिवास ५, श्रीनिधि ६, कर्मके अनुसार श्रीप्रदान करनेसे श्रीविभावन ७, श्रीधर ८, श्रीकर ९, श्रेय १०, श्रीमान् ११, लोकत्रयाश्रय १२, उसके अक्ष अर्थात् इन्द्रियें उत्तम हैं, इस ही निमित्त स्वक्ष १३ सुन्दर अङ्गयुक्त होनेसे स्वङ्ग १४, अपरिमित आनन्द स्वरूप होनेसे शतानन्द १५, आनन्दित करनेसे नन्दी १६, ज्योतिर्गणेश्वर १७, विजितात्मा १८, कोई उसके सङ्ग विग्रह करनेमें समर्थ नहीं है, इसलिये विधेयात्मा १९, सत्कीर्ति २० और छिन्नसंशय २१ है। (७८-७९)

उदीर्ण २२, सर्वतश्चक्षु २३, उसका कोई ईश्वर नहीं है, इसलिये अनीश २४, सब समय सर्वस्थानोंमें व्याप्त रहनेसे शाश्वतास्थिर २५, सीतान्वेषणके समय समुद्रके तीर भूमिपर शयन करनेसे भूशय २६, सबको भूषित करनेसे भूषण २७, भूति २८, विशोक २९, शोकनाशन ३०, अर्चिष्मान् ३१, अर्चित कुम्भकी भांति उसमें सब प्रतिष्ठित है, इसलिये कुम्भ ३२, विशुद्धात्मा ३३, विशोधन ३४, अनिरुद्ध ३५, अप्रतिरथ ३६, प्रकृष्टधनशाली होनेसे प्रद्युम्न ३७, अमितविक्रम ३८, कालनेमि

त्रिलोकात्मा त्रिलोकेशः केशवः केशिहा हरिः ॥८२॥
कामदेवः कामपालः कामी कान्तः कृतागमः ।
अनिर्देश्यवपुर्विष्णुर्वीरोऽनन्तो धनंजयः ॥ ८३ ॥
ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृद्ब्रह्मा ब्रह्म ब्रह्मविवर्धनः
ब्रह्मविद्ब्राह्मणो ब्रह्मी ब्रह्मज्ञो ब्राह्मणप्रियः ॥ ८४ ॥
महाक्रमो महाकर्मा महातेजा महोरगः ।
महाक्रतुर्महायज्वा महायज्ञो महाहविः ॥ ८५ ॥
स्तव्यः स्तवप्रियः स्तोत्रं स्तुतिः स्तोता रणप्रियः ।
पूर्णः पूरयिता पुण्यः पुण्यकीर्तिरनामयः ॥ ८६ ॥
मनोजवस्तीर्थकरो वसुरेता वसुप्रदः ।

नाम असुरको मारनेसे कालनेमिनिहा ३९, वि अर्थात् गरुडको चलानेसे वीर ४०, शूर अर्थात् वसुदेवके पुत्र होनेसे शौरि ४१, शूरजनेश्वर ४२, त्रिलोकात्मा ४३, त्रिलोकेश ४४, बडे केशोंसे युक्त है, इसलिये केशव ४५, केशी नाम दानवको मारनेसे केशिहा ४६ और पापोंको हरनेसे हरि ५४७है। (८०-८२)

कामनीय रूप होनेसे कामदेव ४८, भक्तोंकी वाञ्छा पूरण करनेसे कामपाल ४९, कामी ५०, कान्त ५१, वेदप्रणेता होनेसे कृतागम ५२, अनिर्देश्यवपु ५३, द्युलोक और भूलोकमें व्याप्त होनेसे विष्णु ५४, वीर ५५, अनन्त ५६, धनंजय ५७, तपस्या प्रभृतिके निमित्त हेतु है, इसलिये ब्रह्मण्य ५८, वेदकर्त्ता होनेसे ब्रह्मकृत ५९, सृष्टिकर्त्ता होनेसे ब्रह्मा ६०, आत्मसंवेद्य ज्ञानस्वरूप है, इसलिये ब्रह्म ६१, तपकी वृद्धि करनेसे ब्रह्मविवर्द्धन ६२, तत्त्ववेत्ता होनेसे ब्रह्मवित् ६३, वेदप्रवर्त्तक होनेसे ब्राह्मण ६४, ब्रह्मतत्त्वयुक्त है, इसलिये ब्रह्मी ६५, जीवरूपसे मैं ही ब्रह्म हूं ऐसे ज्ञानविशिष्ट होनेसे ब्रह्मज्ञ ६६और ब्राह्मणगण उसे प्रिय हैं, इसलिये ब्राह्मणप्रिय ६६७ है। (८३—८४)

महाक्रम ६८, महाकर्मा ६९, महातेजा ७०, महोरग ७१, महाक्रतु ७२, महायज्वा ७३, महायज्ञ ७४, महाहवि ७५, स्तुतियोग्य होनेसे स्तव्य ७६, स्तवप्रिय ७७, गुणप्रतिपादक शब्दरूपसे स्तोत्र ७८, गुणकीर्त्तन क्रियारूपसे स्तुति ७९, स्तुतिकर्त्ता होनेसे स्तोता ८०, रणप्रिय ८१, पूर्ण ८२, पूरयिता ८३, पुण्य ८४,पुण्यकीर्ति ८५, अनामय ८६, मनोजव ८७, तीर्थकर ८८, सुवर्णरेता होनेसे वसुरेता ८९, धनदाता होनेसे वसुप्रद ९०, धनखण्डन

वसुप्रदो वासुदेवो वसुर्वसुमना हविः ॥ ८७ ॥
सद्गतिः सत्कृतिः सत्ता सद्भूतिः सत्परायणः (७००) ।
शूरसेनो यदुश्रेष्ठः सन्निवासः सुयामुनः ॥ ८८ ॥
भूतावासो वासुदेवः सर्वासुनिलयोऽनलः ।
दर्पहा दर्पदो दृप्तो दुर्धरोऽथापराजितः ॥ ८९ ॥
विश्वमूर्तिर्महामूर्तिर्दीप्तमूर्तिरमूर्तिमान् ।
अनेकमूर्तिरव्यक्तः शतमूर्तिः शताननः ॥ ९० ॥
एको नैकः सवः कः किं यत्तत्पदमनुत्तमम् ।
लोकबन्धुर्लोकनाथो माधवो भक्तवत्सलः ॥ ९१ ॥

करता है, इसलिये वसुप्रद ९१, वसुदेवके पुत्र होनेसे वासुदेव ९२, मायासे स्वरूप आच्छादन करता है, इसलिये वसु ९३, सर्वत्र अविनाशी रूपसे उसका मन वसता है, इस ही निमित्त वसुमना ९४ और ब्रह्ममें कर्मफल अर्पित होनेसे हवि ६९५ है। (८५-८७)

सद्गति ९६, सत्कृति ९७, सर्वत्र प्रतीयमान अधिष्ठान रूपसे सत्ता ९८, उससे साधुओंको ऐश्वर्य मिलता है, इसलिये सद्भूति ९९, साधु भक्तोंके अभीष्ट होनेसे सत्परायण ७००, उसकी सारी सेना बलवान् है, इसलिये शूरसेन १, यदुश्रेष्ठ २, साधुओंका आश्रय होनेसे सन्निवास ३, यमुनाके उत्तम तटपर गोपालोंने उसे परिवेष्टन किया था, इसलिये सुयामुन ४, उसमें सर्वभूत निवास करते हैं, इसही निमित्त भूतावास ५, विशुद्ध सत्त्वमें अधिष्ठित होनेसे वासुदेव ६, सब प्राण प्रभृतिका आश्रय है, इस ही हेतु सर्वासुनिलय ७, उसके शक्ति सम्पदकी सीमा नहीं है, इसलिये अनल ८, दर्पहा ९, दर्पद, १०, दृप्त ११, दुर्द्धर १२, अपराजित १३, विश्वमूर्त्ति १४, महामूर्त्ति १५, दीप्तमूर्त्ति १६, अमूर्त्तिमान् १७, अनेकमूर्त्ति १८, अव्यक्त १९, शतमूर्त्ति २० और शतानन ७२१ है। (८८-९०)

स्वगत, सजातीय और विजातीय भेदरहित होनेसे एक २२, मायाके सहारे बहुरूप होनेसे नैक २३, उससे सोम उत्पन्न होता है, इसलिये यज्ञरूपसे सव २४, सुख अथवा ब्रह्मा स्वरूपसे क २५, विचार्य होनेसे किं २६, भक्तोंके हितसाधनके हेतु उनके स्थानोंमें जाता है, इसलिये यत् २७, अनेक लीला फैलानेसे तत् २८, अनुत्तम आश्रय होनेसे अनुत्तमपद २९, लोकबन्धु ३०, लोकनाथ ३१, माधव ३२, भक्तवत्सल ३३, हिरण्यमय पुरुष-

सुवर्णवर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी ।
वीरहा विषमः शून्यो घृताशीरचलश्चलः ॥ ९२ ॥
अमानी मानदो मान्यो लोकस्वामी त्रिलोकधृक् ।
सुमेधा मेधजो धन्यः सत्यमेधा धराधरः ॥ ९३ ॥
तेजोवृषो द्युतिधरः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
प्रग्रहो निग्रहो व्यग्रो नैकशृङ्गो गदाग्रजः ॥ ९४ ॥
चतुर्मूर्तिश्चतुर्बाहुश्चतुर्व्यूहश्चतुर्गतिः ।
चतुरात्मा चतुर्भावश्चतुर्वेदविदेकपात् ॥ ९५ ॥
समावर्तो निवृत्तात्मा दुर्जयो दुरतिक्रमः ।
दुर्लभो दुर्गमो दुर्गो दुरावासो दुरारिहा ॥ ९६ ॥

रूपसे सुवर्णवर्ण ३४, हेमाङ्ग ३५, वराङ्ग ३६, चन्दनाङ्गदी ३७, धर्मरक्षाके हेतु वीर असुरोंको मारनेसे वीरहा ३८, उसके समान कोई नहीं है, इसलिये विषम ३९, सब धर्मोंसे रहित होनेसे शून्य ४०, आशाहीन आप्तकाम होनेसे घृताशी ४१, निजरूपसे विचलित नहीं होता, इसलिये अचल ४२, प्राणी रूपसे चल ४३, अमानी ४४, मानद ४५, मान्य ४६, लोकस्वामी ४७, त्रिलोकधृक् ४८ सुमेधा ४९, गिरियज्ञमें इन्द्रमख निवारण करनेके लिये अन्नकूट भोक्ता रूपसे उत्पन्न होनेसे मेधज ५०, धन्य ५१, सत्यमेधा ५२, और शेषरूपसे धराधर ७५३ है। (९१–९३)

आदित्यरूपसे वर्षा करता है, इसलिये तेजोवृष ५४, द्युतिधर ५५, सर्वशस्त्रभृतांवर ५६, भक्तोंके द्वारा उपहृत पूजा प्रकर्षरूपसे ग्रहण करता है, इसलिये प्रग्रह ५७, दण्डनीय लोगोंके विषयमें दण्डविधान करता है, इसलिये निग्रह ५८, भक्तोंपर अनुग्रह विषयमें विहस्त है, इस ही हेतु व्यग्र ५९, चतुःशृङ्ग मन्त्रवर्ण होनेसे नैकशृङ्ग ६०, गदनाम श्रीकृष्णका भ्राता है, उससे पहले जन्म लेनेसे गदाग्रज ६१, हिरण्यगर्भादि रूपसे चतुर्मूर्त्ति ६२, चतुर्बाहु ६३, चतुर्व्यूह ६४, चारों वेदोंका तात्पर्य विषय होनेसे चतुर्गति ६५, मन, बुद्धि, अहंकार और चित्तस्वरूप होनेसे चतुरात्मा ६६, चारों आश्रमके धर्मरूपसे चतुर्भाव ६७, चतुर्वेदवित् ६८ और जगत् रूपसे एकपात् ७६९ है। (९४–९५)

संसारचक्रको पूर्ण रीतिसे आवर्त्तन करता है, इसलिये समावर्त ७०, विषयोंसे उसका चित्त निवृत्त है, इसलिये निवृत्तात्मा ७१, दुर्जय ७२, दुरतिक्रम, ७३, दुर्लभ ७४, दुर्गम ७५ अत्यन्त

शुभाङ्गो लोकसारङ्गः सुतन्तुस्तन्तुवर्धनः ।
इन्द्रकर्मा महाकर्मा कृतकर्मा कृतागमः ॥ ९७ ॥
उद्भवः सुन्दरः सुन्दो रत्ननाभः सुलोचनः ।
अर्को वाजसनः शृङ्गी जयन्तः सर्वविज्जयी ॥ ९८ ॥
सुवर्णबिन्दुरक्षोभ्यः सर्ववागीश्वरेश्वरः (८००) ।
महाह्रदो महागर्तो महाभूतो महानिधिः ॥ ९९ ॥
कुमुदः कुन्दरः कुन्दः पर्जन्यः पावनोऽनिलः ।
अमृताशोऽमृतवपुः सर्वज्ञः सर्वतोमुखः ॥ १०० ॥
सुलभः सुव्रतः सिद्धः शत्रुजिच्छत्रुतापनः ।
न्यग्रोधोदुम्बरोऽश्वत्थश्चाणूरान्ध्रनिषूदनः ॥ १०१ ॥

दुःखसे प्राप्त होता है, इसलिये दुर्ग ७६ दुरावास ७७, दुरारिहा ७८, शुभाङ्ग ७९, लोकसारङ्ग ८०, उसहीका यह सब उत्तम प्रपञ्च तन्यमान है, इसलिये सुतन्तु ८१, उक्त तन्तुकी वृद्धि करनेसे तन्तुवर्द्धन ८२, इन्द्र उसका कर्म है, इसलिये इन्द्रकर्मा ८३, महाकर्मा ८४, कृतकर्मा ८५ और चतुर्विध पुरुषार्थ प्रापणको उसका आगमन पर्याप्त है, इस लिये कृतागम ७८६ है। (९६-९७)

उससे जगत् उत्पन्न होता है, इसलिये उद्भव ८७, जगत्में अत्यन्त सौन्दर्यशाली होनेसे सुन्दर ८८, चिद्रूप शोभावान् होनेसे सुन्द ८९, रत्न सदृश उसकी नाभि है, इसलिये रत्ननाभ ९० वेदरूपी नेत्रयुक्त है, इस लिये सुलोचन ९१, अर्चनीय होनेसे अर्क ९२, अन्नदान करता है, इसलिये वाजसन ९३, मत्स्यावतारमें उनको शींग था, इसकी निमित्त शृङ्गी ९४, जयशील होनेसे जयन्त ९५, सर्ववित् ९६, जयी ९७, उसके अवयव सुवर्णयुक्त हैं, इसलिये सुवर्णबिन्दु ९८, अक्षोभ्य ९९, सर्ववागीश्वरेश्वर ८००, महाह्रद १, महारथ होनेसे महागर्त २, महाभूत ३ और महानिधि ८०४ है। (९८—९९)

भूमण्डलमें आमोदित होता है, इसलिये कुमुद ५, कुन्दकी भांति स्वच्छफल दान करता है; इसही निमित्त कुन्दर ६, कुन्ददामकृत कौतुक रूपी होनेसे कुन्द ७, मेघकी भांति पापनाशन होनेसे पर्जन्य ८, पावन ९, पवन १०, अमृताश ११, अमृतवपु १२, सर्वज्ञ १३, सर्वतोमुख १४, नामगान नृत्यादिसे सहजहीमें प्राप्त होता है, इसलिये सुलभ १५, सुव्रत १६, सिद्ध १७, शत्रुजित् १८, शत्रुतापन १९, सब भूतोंको

सहस्रार्चिः सप्तजिह्वः सप्तैधाः सप्तवाहनः ।
अमूर्तिरनघोऽचिन्त्यो भयकृद्भयनाशनः ॥ १०२ ॥
अणुर्बृहत्कृशः स्थूलो गुणभृन्निर्गुणो महान् ।
अधृतः स्वधृतः स्वास्यः प्राग्वंशो वंशवर्धनः ॥१०३॥
भारभृत्कथितो योगी योगीशः सर्वकामदः ।
आश्रमः श्रमणः क्षामः सुपर्णो वायुवाहनः ॥१०४ ॥
धनुर्धरो धनुर्वेदो दण्डो दमयिता दमः ।

नीचे रोक रखता है, इसलिये न्यग्रोध २०, अन्नादि रूपसे पोषण करता है, इसही निमित्त उदुम्बर २१, प्रपञ्चरूपसे विस्तीर्ण है, इसलिये अश्वत्थ २२ और चाणूरनामक आंध्रदेशीय कंसके मल्लका नाश किया था, इसही हेतु चाणूरान्ध्रनिषूदन ८२३ है। (१००-१०१)

सहस्रार्चि २४,काली, कराली,मनो जवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्ण,स्फुलिङ्गिनी और विश्वरुचिनामी सप्तजिह्वा विशिष्ट अग्निस्वरूप होनेसे सप्तजिह्व २५, सात समिधायुक्त होनेसे सप्तैधा २६, सूर्यरूपसे सप्तवाहन २७, घनमूर्त्तिरहित होनेसे अमूर्त्ति २८, निष्पाप है, इसलिये अनघ २९ अचिन्त्य ३०, अभक्तोंको भयभीत करता है, इसलिये भयकृत् ३१ और भक्तोंका भय दूर करता है, इसलिये भयनाशन ८३२ है। (१०१-१०२)

सूक्ष्म होनेसे अणु ३३, वृद्धिशील होनेसे बृहत् ३४, कृश ३५, स्थूल ३६, कल्याणधाता होनेसे गुणभृत् ३७, परमार्थ होनेसे निर्गुण ३८, नाममात्रसे ही जगत्का उद्धार करता है, इसलिये महान् ३९, कोई उसे धारण नहीं कर सकता, इसलिये अधृत ४०, स्वमहिमामें प्रतिष्ठित है, इसलिये स्वधृत् ४१, उत्तम वेद उसके मुखसे निकलते हैं इस ही कारण स्वास्य ४२, उसका प्रथमवंश है, इसही निमित्त प्राग्वंश ४३, परीक्षितकी रक्षा करके पाण्डवोंकी वृद्धि करनेसे वंशवर्धन ४४, अनन्त रूपसे पृथ्वीका भार धारण करता है, इसलिये भारभृत् ४५, श्रुतिके तात्पर्य विषयी कृत होनेसे कथित ४६, चित्तवृत्ति-निरोधयुक्त होनेसे योगी ४७, योगीश ४८, सर्वकामद ४९, संसाररूपी वनमें विचरनेवाले जीवोंके विश्रामस्थान होनेसे आश्रम ८५०, भक्त विरोधियोंको खेदित करनेसे श्रमण ५१, प्रलयकालमें प्रजासमूहका नाश करता है, इसलिये क्षाम ५२, उसके उत्तम छन्द संसारवृक्षके पत्ते हैं, इसलिये सुपर्ण ५३ और वायुको चलानेसे वायुवाहन ८५४ है। (१०३-१०४)

अपराजितः सर्वसहो नियन्ता नियमो यमः ॥ १०५ ॥
सत्त्ववान्सात्त्विकः सत्यः सत्यधर्मपरायणः ।
अभिप्रायः प्रियार्होऽर्हः प्रियकृत्प्रीतिवर्धनः ॥ १०६ ॥
विहायसगतिर्ज्योतिः सुरुचिर्हुतभुग्विभुः ।
रविर्विरोचनः सूर्यः सविता रविलोचनः ॥ १०७ ॥
अनन्तो हुतभुग्भोक्ता सुखदो नैकदोऽग्रजः ।
अनिर्विण्णः सदामर्षी लोकाधिष्ठानमद्भुतः ॥ १०८ ॥
सनात्सनातनतमः कपिलः कपिरव्ययः ।

धनुर्द्धर ५५, धनुषके गुणदोषोंका जाननेवाला है, इसलिये धनुर्वेद ५६, दमनकारी होनेसे दण्ड ५७, मन्वादि-रूपसे प्रजा समूहको दमन किया था, इसही निमित्त दमयिता ५८, दण्डके फल दम्यनिष्ठ होनेसे दम ५९, अपराजित ६०, सर्वसह ६१, नियन्ता ६२, नियम ६३, यम ६४, सत्त्वगुणी होनेसे सत्त्ववान् ६५, प्राधान्य रूपसे स्थित है, इसही निमित्त सात्विक ६६, सत्य ६७, सत्यधर्मपरायण ६८, पुरुषार्थकांक्षी पुरुषोंका अभिप्रेत होनेसे अभिप्राय ६९, प्रियार्ह ७०, आसनादिसे पूज्य है, इस लिये अर्ह ७१, प्रियकृत् ७२, प्रीतिवर्द्धन ७३, वह आकाश में गमन करता है, इसही कारण विहायसगति ७४, द्युतिशील होनेसे ज्योति ७५, सुरुचि ७६, देवताओंके उद्देश्यसे दी हुई हवि भोजन करनेसे हुतभुक् ७७, विभु ७८, रस आदान करनेसे रवि ७९, विशेषरूपसे रुचिशील हैं, इसलिये विरोचन ८०, आकाशमें गमन करनेसे सूर्य ८१, जगत् की सृष्टिकर्त्ता होनेसे सविता ८२ और सूर्य उसका नेत्र है, इसलिये रविलोचन ८८३ है। (१०५-१०७)

उसका अन्त नहीं है, इसही निमित्त अनन्त ८४, अग्निरूपसे हवनीय घृतादि भोजन करता है, इसही कारण हुतभुक् ८५, प्रकृतिका कार्यदर्शी होनेसे भोक्ता ८६, अभक्तोंका सुख खण्डन करता है, इसही हेतु सुखद ८७, अनेकवार बहुतेरे स्थानोंमें विविध भक्तोंको धन देता है, इसलिये नैकद ८८, हिरण्यगर्भरूपसे अग्रज ८९, निर्वेदशून्य होनेसे अनिर्विण्ण ९०, साधुओंके विषयमें क्षमा प्रदर्शित करनेसे सदामर्षी ९१, सब लोकोंका अज्ञात कारण होनेसे लोकाधिष्ठान ९२, अत्यन्त शक्तिमान् होनेसे अद्भुत ९३, कालरूप होनेसे सनात् ९४, ब्रह्मादिकाभी कारण है, इसलिये सनातनतम ९५, कर्दम

स्वस्तिदः स्वस्तिकृत (९००)स्वस्ति स्वस्तिभुक् स्वस्तिदक्षिणः ॥१०९॥
अरौद्रः कुण्डली चक्री विक्रम्यूर्जितशासनः ।
शब्दातिगः शब्दसहः शिशिरः शर्वरीकरः ॥ ११० ॥
अक्रूरः पेशलो दक्षो दक्षिणः क्षमिणां वरः ।
विद्वत्तमो वीतभयः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ १११ ॥
उत्तारणो दुष्कृतिहा पुण्यो दुःस्वप्ननाशनः ।
वीरहा रक्षणः सन्तो जीवनः पर्यवस्थितः ॥ ११२ ॥
अनन्तरूपोऽनन्तश्रीर्जितमन्युर्भयापहः ।
चतुरस्रो गभीरात्मा विदिशो व्यादिशो दिशः ॥११३॥

प्रजापतिके द्वारा देवहूतीके गर्भसे कपिल रूपसे उत्पन्न हुए, इसलिये कपिल ९६, वराहश्रेष्ठ रूपसे कपि ९७, जगत् उसमें लीन होता है, इसलिये अव्यय ९८, स्वस्तिद ९९, अभक्त जनोंका स्वस्ति छेदन करता है, इस ही निमित्त स्वस्तिकृत् ९००, कल्याण-रूप होनेसे स्वस्ति १, भक्तजनोंका मङ्गल पालन करता है, इसलिये स्वस्तिभुक् २, कल्याण विषयमें अनुकूल रहता है, इसही निमित्त स्वस्ति ३ और दक्षिण ९०४ है । (१०८–१०९)

अरौद्र ५, कुण्डली ६, चक्री ७, विक्रमी ८, ऊर्जितशासन ९, वचनसे उसका वर्णन नहीं होसकता, इसलिये शब्दातिग १०, शब्दोंका अपने सङ्ग एक तात्पर्य करता है, इसही निमित्त सब्दसह ११, संसारतापनाशक होनेसे शिशिर १२, शर्वरीकर १३, अक्रूर १४, मनोहर होनेसे पेशल १५, शीघ्र-कारी होनेसे दक्ष १६, दक्षिण १७ क्षमिणां-वर १८, विद्वत्तम १९, वीतभय २०, पुण्यश्रवणकीर्त्तन २१, संसारसे उत्तीर्ण करता है, इसलिये उत्तारण २२, पापों को नाश करनेसे दुष्कृतिहा २३, पुण्य करता है वा कहता है, इस-लिये पुण्य २४, दुःस्वप्ननाशन २५, संसारकी विविधिगति हरनेसे वीरहा २६, रक्षा करता है, इसलिये रक्षण २७, विद्या विनय वृद्धिके निमित्त वर्त्तमान है, इसलिये सन्त २८, जीवित रखता है, इसलिये जीवन २९ और विश्वव्यापक होनेसे पर्यवस्थित ९३० है। (११०–११२)

अनन्तरूप ३१, अनन्तश्री ३२, जितमन्यु ३३, भयापह ३४, समवेत होनेसे चतुरस्र ३५, गम्भीरचित्त है, इसही निमित्त गभीरात्मा ३६, विविध-फल दान करता है, इसलिये विदिश ३७, विशेष रूपसे आदेश करता है, इसलिये व्यादिश ३८, वेदरूपसे आदेश-

अनादिर्भूर्भुवो लक्ष्मीः सुवीरो रुचिराङ्गदः ।
जननो जनजन्मादिर्भीमो भीमपराक्रमः ॥ ११४ ॥
आधारनिलयोऽधाता पुष्पहासः प्रजागरः ।
ऊर्ध्वगः सत्पथाचारः प्राणदः प्रणवः पणः ॥ ११५ ॥
प्रमाणं प्राणनिलयः प्राणभृत्प्राणजीवनः ।
तत्त्वं तत्त्वविदेकात्मा जन्ममृत्युजरातिगः ॥ ११६ ॥
भूर्भुवःस्वस्तरुस्तारः सपिता प्रपितामहः ।
यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा यज्ञाङ्गो यज्ञवाहनः ॥ ११७ ॥
यज्ञभृद्यज्ञकृद्यज्ञी यज्ञभुग्यज्ञसाधनः ।
यज्ञान्तकृद्यज्ञगुह्यमन्नमन्नाद एव च ॥ ११८ ॥

कर्त्ता है, इसही निमित्त दिश ३९, अनादि पृथ्वीकी भांति सबका अवलम्ब है, इसलिये भू ४०, पृथ्वीकी शोभा है, इसलिये भुवोलक्ष्मी ४१, सुवीर ४२, रुचिराङ्गद ४३, उसहीसे प्रद्युम्न प्रभृतिकी उत्पत्ति हुई है, इसलिये जनन ४४, जन्ममात्रसेही आदि है, इसलिये जनजन्मादि ४५, भयका हेतु होनेसे भीम ४६ और भीमपराक्रम ९४७ है। (११३–११४)

भौतिकाश्रय महाभूतोंका आधार है, इसलिये आधारनिलय ४८, उसका कोई भी धारक नहीं है, इसही हेतु अधाता ४९, पुष्पकी भांति उसकी हांसी आनन्दजनक है, इसलिये पुष्पहास ५०, प्रकृष्ट जागरणविशिष्ट होनेसे प्रजागर ५१, ऊर्ध्वग ५२, सत्पथाचार ५३, प्राणद ५४, प्रणव ५५, भक्तोंके सहित व्यवहार करता है, इसलिये पण ५६, यादवोंमें मर्यादारूप होनेसे प्रमाण ५७, जीवोंका अवलम्ब है, इसलिये प्राणनिलय ५८, प्राणभृत् ५९, प्राणजीवन ६०, अबाधित सत्यस्वरूप होनेसे तत्त्व ६१, तत्त्ववित् ६२ एकात्मा ६३, जन्म ६४, मृत्यु ६५, जरातिग ६६, भूलोक भुवर्लोक और स्वर्ग लोकमें कल्पवृक्षकी भांति अभीष्टप्रद है, इसलिये भूर्भुवःस्वस्तरु ६७, भक्तोंको तारनेसे तार ६८, सर्व साधारण रूपसे पिता है, इसलिये सपिता ६९, पितामहका पिता है, इसलिये प्रपितामह ७०, पूज्य है, इसलिये यज्ञ ७१, यज्ञपति ७२, यजमान रूपसे यज्वा ७३, यज्ञाङ्ग ७४ और वह यज्ञसे प्राप्त होता है, इसलिये यज्ञवाहन ९७५ है। (११५–११७)

यज्ञभृत् ७६, यज्ञकृत् ७७, यज्ञी ७८, यज्ञभुक् ७९, युधिष्ठिरका यज्ञ अनेक

आत्मयोनिः स्वयं जातो वैखानः सामगायनः ।
देवकीनन्दनः स्रष्टा क्षितीशः पापनाशनः ॥ ११९ ॥
शङ्खभृन्नन्दकी चक्री शार्ङ्गधन्वा गदाधरः ।
रथाङ्गपाणिरक्षोभ्यः सर्वप्रहरणायुधः ।
सर्वप्रहरणायुध ओं नम इति (१०००) ॥ १२० ॥
इतीदं कीर्तनीयस्य केशवस्य महात्मनः ।
नाम्नां सहस्रं दिव्यानामशेषेण प्रकीर्तितम् ॥ १२१ ॥
य इदं शृणुयान्नित्यं यश्चापि परिकीर्तयेत् ।
नाशुभं प्राप्नुयात्किंचित्सोऽमुत्रेह च मानवः ॥१२२॥
वेदान्तगो ब्राह्मणः स्यात्क्षत्रियो विजयी भवेत् ।
वैश्यो धनसमृद्धः स्याच्छूद्रः सुखमवाप्नुयात् ॥१२३॥
धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्ममर्थार्थी चार्थमाप्नुयात् ।
कामानवाप्नुयात्कामी प्रजार्थी प्राप्नुयात्प्रजाम् ॥१२४॥
भक्तिमान्यः सदोत्थाय शुचिस्तद्गतमानसः ।

उपायसे सिद्ध कराया; इसलिये यज्ञसाधन ८०, यज्ञान्तकृत् ८१, यज्ञगुह्य ८२, उसहीसे सब प्राणी भक्षण करते हैं, इसलिये अन्न ८३, भोक्ता, होनेसे अन्नाद ८४, आत्माही उसकी योनि अर्थात् उपादान कारण है, इसलिये आत्मयोनि ८५, स्वयंजात ८६, खनसंवलित होनेसे वैखान ८७, सामगायन ८८, देवकीनन्दन ८९, स्रष्टा ९०, क्षितीश ९१, पापनाशन ९२, शङ्खभृत् ९३, नन्दकनाम खङ्गधारी होनेसे नन्दकी ९४, चक्री ९५, शार्ङ्गधन्वा ९६, गदाधर ९७, रथाङ्गपाणि ९८, अक्षोभ्य ९९, सर्वप्रहरणायुध १००० ॐ नमः। (११८—१२०)

यह कीर्त्तनीय महात्मा केशवका दिव्य सहस्रनाम अशेष रूपसे वर्णित हुआ। जो मनुष्य सदा इसे सुनता, सुनाता वा कहता है; उसे इस लोक अथवा परलोकमें कुछभी अशुभ प्राप्त नहीं होता। ब्राह्मण इसे पाठ करनेसे वेदान्तपारदर्शी होता, क्षत्रियको विजय प्राप्त होती, वैश्य धनसम्पन्न होता और शूद्रको सुख मिलता है। धर्मार्थी मनुष्य धर्म लाभ करते, अर्थार्थी पुरुषोंको अर्थलाभ हुआ करता है। कामीजनोंको काम प्राप्त होता और प्रजार्थी लोगोंको प्रजा प्राप्त हुआ करती है। (१२१-१२४)

जो भक्तिमान् पुरुष सदा उठके प-

सहस्रं वासुदेवस्य नाम्नामेतत्प्रकीर्तयेत् ॥ १२५ ॥
यशः प्राप्नोति विपुलं ज्ञातिप्राधान्यमेव च ।
अचलां श्रियमाप्नोति श्रेयः प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥१२६॥
न भयं क्वचिदाप्नोति वीर्यं तेजश्च विन्दति ।
भवत्यरोगो द्युतिमान्बलरूपगुणान्वितः ॥ १२७ ॥
रोगार्तो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।
भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्न आपदः ॥ १२८ ॥
दुर्गाण्यतितरत्याशु पुरुषः पुरुषोत्तमम् ।
स्तुवन्नामसहस्रेण नित्यं भक्तिसमन्वितः ॥ १२९ ॥
वासुदेवाश्रयो मर्त्यो वासुदेवपरायणः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम् ॥ १३० ॥
न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् ।
जन्ममृत्युजराव्याधिभयं नैवोपजायते ॥ १३१ ॥
इमं स्तवमधीयानः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।
युज्येतात्मसुखक्षान्तिश्रीधृतिस्मृतिकीर्तिभिः ॥१३२ ॥
न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः ।

वित्र और तद्गतचित्त होकर वासुदेवका यह सहस्रनाम पाठ करते हैं, उन्हें विपुल यश, स्वजनोंके निकट प्रधानता, अचला लक्ष्मी और उत्तम कल्याण प्राप्त होता है, उन्हें किसी स्थानमें भय नहीं होता, वीर्य और तेज लाभ करते, अरोगी, द्युतिमान् और बलरूपसे युक्त होते हैं, रोगार्त्त पुरुष इसे सुननेसे रोगरहित होता और बद्ध मनुष्य कारागारसे छूट जाते हैं। भीत मनुष्य भयसे और विपद्ग्रस्त आपदोंसे मुक्त हुआ करते हैं; मनुष्य भक्तियुक्त होकर सदा पुरुषोत्तमका इन्हीं सहस्रनामोंके सहारे स्तव करनेसे शीघ्र ही क्लेशोंसे छूटता है और वासुदेवका आश्रय करने और वासुदेवपरायण होनेसे सब पापोंसे रहित तथा पवित्रचित्त होकर ब्रह्मपद पाता है। (१२५-१३०)

वासुदेवके भक्तोंको कदाचित् अशुभ नहीं होता और न उन्हें जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधिका भय होता है। जो लोग श्रद्धा और भक्तिपूर्वक इस स्तवका पाठ करते हैं, वे आत्मसुख, क्षमा, श्री, धृति, स्मृति और कीर्त्तियुक्त होते हैं। पुरुषोत्तममें भक्तियुक्त पुण्यवान् पुरुषोंको

भवन्ति कृतपुण्यानां भक्तानां पुरुषोत्तमे ॥ १३३ ॥
द्यौः सचन्द्रार्कनक्षत्रा खं दिशो भूर्महोदधिः ।
वासुदेवस्य वीर्येण विधृतानि महात्मनः ॥ १३४ ॥
ससुरासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम् ।
जगद्वशे वर्ततेदं कृष्णस्य सचराचरम् ॥ १३५ ॥
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः सत्त्वं तेजो बलं धृतिः ।
वासुदेवात्मकान्याहुः क्षेत्रं क्षेत्रज्ञ एव च ॥ १३६ ॥
सर्वागमानामाचारः प्रथमं परिकल्प्यते ।
आचारः प्रथमो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः ॥ १३७ ॥
ऋषयः पितरो देवा महाभूतानि धातवः ।
जङ्गमाजङ्गमं चेदं जगन्नारायणोद्भवम् ॥ १३८ ॥
योगो ज्ञानं तथा सांख्यं विद्याः शिल्पादि कर्म च ।
वेदाः शास्त्राणि विज्ञानमेतत्सर्वं जनार्दनात् ॥१३९॥
एको विष्णुर्महद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकशः ।
त्रीन् लोकान्व्याप्य भूतात्मा भुङ्क्ते विश्वभुगव्ययः ॥१४०॥
इमं स्तवं भगवतो विष्णोर्व्यासेन कीर्तितम् ।

क्रोध, मत्सर, लोभ और अशुभ बुद्धि नहीं होती। चन्द्र, सूर्य, स्वर्ग और नक्षत्रोंके सहित आकाशमण्डल, सब दिशा तथा समुद्र महानुभाव वासुदेवके वीर्यसे विधृत होरहा है। सुरासुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और उरगोंके सहित सचराजर जगत् श्रीकृष्णके वशवर्त्ती होकर विद्यमान है। इन्द्रियें, मन, बुद्धि, सत्त्व, तेज, बल, धृति, शरीर, जीव, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ सभी वासुदेवमय हैं। (१३१—१३६)

सब शास्त्रोंकी अपेक्षा आचार ही पहले परिकल्पित होता है, आचारसे धर्मकी उत्पत्ति हुआ करती है और अच्युत वासुदेव ही धर्मके प्रभु हैं। ऋषि, पितर, देवता, महाभूत, सब धातु और स्थावरजंगमात्मक यह जगत् नारायणसे उत्पन्न हुआ है। योग, ज्ञान, सांख्ययोग, सब विद्या, शिल्पकर्म, वेद, शास्त्र, समस्त विज्ञान, ये सब जनार्दनसे प्रकट हुए हैं। भूतात्मा अव्यय एकमात्र विष्णु ही महद्भूत और अनेक रूपसे पृथक् भूत हैं, वही विश्वभुक् त्रिभुवनमें व्यापक होके भोग कर रहा है। जो मनुष्य कल्याण तथा सुखलाभकी इच्छा करे, वह वेदव्यासके कहे हुए

पठेद्य इच्छेत्पुरुषः श्रेयः प्राप्तुं सुखानि च ॥ १४१ ॥
विश्वेश्वरमजं देवं जगतः प्रभवाप्ययम् ।
भजन्ति ये पुष्कराक्षं न ते यान्ति पराभवम् ॥१४२॥ [६९९४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे विष्णुसहस्रनामकथने एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥

युधिष्ठिर उवाच- पितामह महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
किं जप्यं जपतो नित्यं भवेद्धर्मफलं महत् ॥ १ ॥
प्रस्थाने वा प्रवेशे वा प्रवृत्ते वाऽपि कर्मणि ।
दैवे वा श्राद्धकाले वा किं जप्यं कर्मसाधनम् ॥ २ ॥
शान्तिकं पौष्टिकं रक्षा शत्रुघ्नं भयनाशनम् ।
जप्यं यद्ब्रह्मसमितं तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥ ३ ॥
भीष्म उवाच- व्यासप्रोक्तमिमं मन्त्रं शृणुष्वैकमना नृप ।
सावित्र्या विहितं दिव्यं सद्यः पापविमोचनम् ॥ ४ ॥
शृणु मन्त्रविधिं कृत्स्नं प्रोच्यमानं मयाऽनघ ।
यं श्रुत्वा पाण्डवश्रेष्ठ सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५ ॥
रात्रावहनि धर्मज्ञ जपन्पापैर्न लिप्यते ।

भगवान् विष्णुका यह स्तोत्र पाठ करे, जो लोग जगत्‌की उत्पत्ति और प्रलयके कारण, जन्मरहित, कमलनयन, विश्वेश्वर देवका भजन करते हैं, उनकी कदापि पराभव नहीं होती। (१३७-१४२)

अनुशासनपर्वमें १४९ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें १५० अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्वशास्त्रविशारद महाप्राज्ञ पितामह! कैसे जप्य मन्त्रको सदा जपनेसे महत् धर्मफल होता है? प्रस्थानकाल, प्रवेशके समय अथवा कार्य आरम्भ होनेपर दैव वा श्राद्ध-कालमें कौनसा मन्त्र कार्य सिद्ध करता है? जिसे जपनेसे शान्ति, पुष्टि, रक्षा, शत्रुहानि तथा भय विनाश होता है, और जो वेदतुल्य हो, आप उसे वर्णन कर सकते हैं। (१—३)

भीष्म बोले, हे महाराज! तुम एकाग्रचित्त होकर यह व्यासदेवका कहा हुआ मन्त्र सुनो, यह सावित्री-द्वारा विरचित हुआ है और इसे पाठ करनेसे तुरन्तही पापसे छूटता है। हे अनघ! हे पाण्डव! जिसके सुननेसे मनुष्य सब पापोंसे छूटता है, मैं उस मन्त्रकी सारी विधि कहता हूं, तुम सुनो। हे धर्मज्ञ नृपवर! रात्रि और

तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमना नृप ॥ ६ ॥
आयुष्मान् भवते चैव यं श्रुत्वा पार्थिवात्मज ।
पुरुषस्तु सुसिद्धार्थः प्रेत्य चेह च मोदते ॥ ७ ॥
सेवितं सततं राजन् पुरा राजर्षिसत्तमैः ।
क्षत्रधर्मपरैर्नित्यं सत्यव्रतपरायणैः ॥ ८ ॥
इदमाह्निकमव्यग्रं कुर्वद्भिर्नियतैः सदा ।
नृपैर्भरतशार्दूल प्राप्यते श्रीरनुत्तमा ॥ ९ ॥
नमो वसिष्ठाय महाव्रताय पराशरं वेदनिधिं नमस्ये ।
नमोऽस्त्वनन्ताय महोरगाय नमोऽस्तु सिद्धेभ्य इहाक्षयेभ्यः॥१०॥
नमोस्त्वृषिभ्यः परमं परेषां देवेषु देवं वरदं वराणाम् ।
सहस्रशीर्षाय नमः शिवाय सहस्रनामाय जनार्दनाय ॥ ११ ॥
अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी चापराजितः ।
ऋतश्च पितृरूपश्च त्र्यम्बकश्च महेश्वरः ॥ १२ ॥
वृषाकपिश्च शम्भुश्च हवनोऽथेश्वरस्तथा ।
एकादशैते प्रथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः ॥ १३ ॥
शतमेतत्समाम्नातं शतरुद्रं महात्मनाम् ।

दिनमें जिसके सहारे मनुष्य पापपुञ्जसे लिप्त नहीं होता, उसे मैं तुम्हारे समीप कहता हूं, तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। हे नृपनन्दन ! जिसे सुननेसे पुरुष आयुष्मान् होता और सुसिद्धार्थ होकर इस लोक तथा परलोकमें प्रमुदित हुआ करता है। (४—७)

हे महाराज ! पहले समयमें क्षत्रधर्मनिष्ठ, सत्यधर्मपरायण सत्तम राजर्षियोंके द्वारा यह मन्त्र सेवित हुआ था। हे भरतश्रेष्ठ ! जो सब राजा संयत होकर अव्यग्रभावसे सदा इस मन्त्रका जप करते हैं, उन्हें उत्तम श्री प्राप्त हुआ करती है। महाव्रत वसिष्ठदेवको नमस्कार है, वेदनिधि पराशरको प्रणाम करके महोरग अनन्तदेवको नमस्कार है तथा इस लोकमें अक्षय सिद्धों और ऋषियोंको नमस्कार है। श्रेष्ठोंके बीच श्रेष्ठ देवताओंके भी देव, वरणीयोंके वरद शिवस्वरूप सहस्रशीर्ष, सहस्रनाम जनार्दनको नमस्कार है। (८-११)

अजैकपाद्, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, अपराजित, ऋत, पितृरूप, त्र्यम्बक, सुरेश्वर, वृषाकपि, शम्भु, हवनईश्वर, इन नामोंसे त्रिलोकेश्वर ग्यारह रुद्र प्रसिद्ध हैं, शतरुद्रिके बीच उन्हीं महानु-

अंशो भगश्च मित्रश्च वरुणश्च जलेश्वरः ॥ १४ ॥
तथा धातार्यमा चैव जयन्तो भास्करस्तथा।
त्वष्टा पूषा तथैवेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते ॥ १५ ॥
इत्येते द्वादशादित्याः काश्यपेया इति श्रुतिः।
धरो ध्रुवश्च सोमश्च सावित्रोऽथानिलोऽनलः ॥ १६ ॥
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः।
नासत्यश्चापि दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनावपि ॥ १७ ॥
मार्तण्डस्यात्मजावेतौ संज्ञानासाविनिर्गतौ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि लोकानां कर्मसाक्षिणः ॥ १८ ॥
अपि यज्ञस्य वेत्तारो दत्तस्य सुकृतस्य च।
अदृश्याः सर्वभूतेषु पश्यन्ति त्रिदशेश्वराः ॥ १९ ॥
शुभाशुभानि कर्माणि मृत्युः कालश्च सर्वशः।
विश्वेदेवाः पितृगणा मूर्तिमन्तस्तपोधनाः ॥ २० ॥
मुनयश्चैव सिद्धाश्च तपोमोक्षपरायणाः।
शुचिस्मिताः कीर्तयतां प्रयच्छन्ति शुभं नृणाम् ॥२१॥
प्रजापतिकृतानेतान्लोकान्दिव्येन तेजसा।
वसन्ति सर्वलोकेषु प्रयताः सर्वकर्मसु ॥ २२ ॥
प्राणानामीश्वरानेतान्कीर्तयन्प्रयतो नरः।

भाव रुद्रगणके एक सौ नाम वर्णित हैं। अंश, भग, मित्र, जलेश्वर वरुण, धाता, अर्यमा, वैजयन्त, भास्कर, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और विष्णु, ये द्वादश आदित्य कश्यपकी सन्तान कहाते हैं। धर, ध्रुव, सोम, सावित्र, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास ये अष्टवसु वर्णित हुए हैं। नासत्य और दस्र दोनों अश्विनीकुमार विख्यात हैं, ये मार्त्तण्ड अर्थात् सूर्यके आत्मज, संज्ञाके नासिकासे बाहिर हुए हैं। इसके अनन्तर सब लोकोंके कर्मसाक्षी, यज्ञ और सुकृतकार्यवेत्ता, सब भूतोंमें अदृश्य रहके भी जो त्रिदशेश्वरगण शुभाशुभ कर्मोंको अवलोकन करते हैं, वेही मृत्युकाल, विश्वदेवगण, पितृगण, मूर्तिमान् तपोधनगण, तपस्या और मोक्षपरायण, शुचिस्मित सिद्ध मुनिगण, जो कीर्तनकारी मनुष्योंको शुभ सम्प्रदान करते हैं, जो दिव्यतेज प्रभावसे प्रजापतिके बनाये हुए लोकोंमें निवास करते हैं, सर्वलोकों और समस्त कार्योंमें

धर्मार्थकामैर्विपुलैर्युज्यते सह नित्यशः ॥ २३ ॥
लोकांश्च लभते पुण्यान्विश्वेश्वरकृताञ्छुभान् ।
एते देवास्त्रयस्त्रिंशत्सर्वभूतगणेश्वराः ॥ २४ ॥
नन्दीश्वरो महाकायो ग्रामणीर्वृषभध्वजः ।
ईश्वराः सर्वलोकानां गणेश्वरविनायकाः ॥ २५ ॥
सौम्या रौद्रा गणाश्चैव योगभूतगणास्तथा ।
ज्योतींषि सरितो व्योम सुपर्णः पतगेश्वरः ॥ २६ ॥
पृथिव्यां तपसा सिद्धाः स्थावराश्च चराश्च ह ।
हिमवान् गिरयः सर्वे चत्वारश्च महार्णवाः ॥ २७ ॥
भवस्यानुचराश्चैव हरतुल्यपराक्रमाः ।
विष्णुर्देवोऽथ जिष्णुश्च स्कन्दश्चाम्बिकया सह ॥२८॥
कीर्तयन्प्रयतः सर्वान्सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मानवानृषिसत्तमान् ॥ २९ ॥
यवक्रीतश्च रैभ्यश्च अर्वावसुपरावसू ।
औशिजश्चैव कक्षीवान्बलश्चाङ्गिरसः सुतः ॥ ३० ॥
ऋषिर्मेधातिथेः पुत्रः कण्वो बर्हिषदस्तथा ।
ब्रह्मतेजोमयाः सर्वे कीर्तिता लोकभावनाः ॥ ३१ ॥

जो प्रयत हुआ करते हैं, प्राणोंके ईश्वर इन सबके नामकीर्त्तन करनेसे मनुष्य सदा विपुल धर्मार्थ कामसे युक्त होता है और उसे विश्वेश्वरकृत शुभ लोक प्राप्त होते हैं। ये तैंतीस देवगण सब भूतोंके ईश्वर हैं, महाकाय नन्दीश्वर ग्रामणी, वृषभध्वज, गणेश्वर और विनायक सब लोकोंके ईश्वर हैं। (१२-२५)

सौम्यगण, रौद्रगण, योगभूतगण, समस्त ज्योतिष्, नदियें, आकाश, पतगेश्वर, सुपर्ण, पृथ्वीके समस्त सिद्ध तपस्वी, स्थावर-जङ्गम और हिमालय पर्वतके सहित चारों समुद्र, हरसदृश पराक्रमी शिवके अनुचर वृन्द, देवश्रेष्ठ विष्णु; जिष्णु और अम्बिकाके सहित स्कन्द, इन देवताओंको सावधान होके स्मरण करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूटता है। इसके अनन्तर माननीय ऋषिसत्तमोंका नाम कहता हूं, यवक्रीत, रैभ्य, अर्वावसु, परावसु, औशिज, कक्षीवान्, अङ्गिराके पुत्र बल, मेधातिथि और बर्हिषदके पुत्र कण्वऋषि, ये सब कोई ब्रह्मतेजमय और लोकभावन कहके वर्णित होते हैं। (२६—३१)

लभन्ते हि शुभं सर्वे रुद्रानलवसुप्रभाः ।
भुवि कृत्वा शुभं कर्म मोदन्ते दिवि दैवतैः ॥ ३२ ॥
महेन्द्रगुरवः सप्त प्राचीं वै दिशमाश्रिताः ।
प्रयतः कीर्तयेदेतान् शक्रलोके महीयते ॥ ३३ ॥
उन्मुचुः प्रमुचुश्चैव स्वस्त्यात्रेयश्च वीर्यवान् ।
दृढव्यश्चोर्ध्वबाहुश्च तृणसोमाङ्गिरास्तथा ॥ ३४ ॥
मित्रावरुणयोः पुत्रस्तथाऽगस्त्यः प्रतापवान् ।
धर्मराजर्त्विजः सप्त दक्षिणां दिशमाश्रिताः ॥ ३५ ॥
दृढेयुश्च ऋतेयुश्च परिव्याधश्च कीर्तिमान् ।
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चादित्यसन्निभाः ॥ ३६ ॥
अत्रेः पुत्रश्च धर्मात्मा ऋषिः सारस्वतस्तथा ।
वरुणस्यर्त्विजः सप्त पश्चिमां दिशमाश्रिताः ॥ ३७ ॥
अत्रिर्वसिष्ठो भगवान्कश्यपश्च महानृषिः ।
गौतमश्च भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ कौशिकः ॥ ३८ ॥
ऋचीकतनयश्चोग्रो जमदग्निः प्रतापवान् ।
धनेश्वरस्य गुरवः सप्तैते उत्तराश्रिताः ॥ ३९ ॥
अपरे मुनयः सप्त दिक्षु सर्वास्वधिष्ठिताः ।

ये सब रुद्र, अग्नि और वसुतुल्य प्रभाशाली मुनिगण शुभलाभ करते, ये भूलोकमें शुभकर्म करके द्युलोकमें देवताओंके सहित दिव्य लीला किया करते हैं। महेन्द्रके गुरु सप्तर्षि पूर्व दिशाको अवलम्बन कर रहे हैं, जो लोग सावधान होके इनका नाम लेते हैं, वे इन्द्रलोकमें निवास किया करते हैं। उन्मुचु, प्रमुचु, वीर्यवान् स्वस्त्यात्रेय, दृढव्य, ऊर्ध्वबाहु, तृणसोम, अङ्गिरा और मित्रावरुणके पुत्र प्रतापवान् अगस्त्य, ये सातों धर्मराजके पुरोहित होकर दक्षिण दिशाको अवलम्बन किये हैं। दृढेयु, ऋतेयु, कीर्तिमान् परिव्याध, आदित्यतुल्य एकत, द्वित और त्रित, अत्रिके पुत्र धर्मात्मा सारस्वत ऋषि ये सातों वरुणके पुरोहित पश्चिम दिशाको अवलम्बन कर रहे हैं। (३२—३७)

अत्रि, भगवान् वसिष्ठ, महर्षि कश्यप, गौतम, भरद्वाज कुशिकवंशोद्भव विश्वामित्र, ऋचीकके पुत्र उग्र और प्रतापशाली जमदग्नि, ये सातों धनेश्वर कुबेरके गुरु उत्तर दिशामें वास करते

कीर्तिस्वस्तिकरा नृणां कीर्तिता लोकभावनाः ॥ ४० ॥
धर्मः कामश्च कालश्च वसुर्वासुकिरेव च ।
अनन्तः कपिलश्चैव सप्तैते धरणीधराः ॥ ४१ ॥
रामो व्यासस्तथा द्रौणिरश्वत्थामा च लोमशः ।
इत्येते मुनयो दिव्या एकैकः सप्त सप्तधा ॥ ४२ ॥
शान्तिस्वस्तिकरा लोके दिशां पालाः प्रकीर्तिताः ।
यस्यां यस्यां दिशि ह्येते तन्मुखः शरणं व्रजेत् ॥४३॥
स्रष्टारः सर्वभूतानां कीर्तिता लोकपावनाः ।
संवर्तो मेरुसावर्णो मार्कण्डेयश्च धार्मिकः ॥ ४४ ॥
साङ्ख्ययोगौ नारदश्च दुर्वासाश्च महानृषिः ।
अत्यन्ततपसो दान्तास्त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥ ४५ ॥
अपरे रुद्रसङ्काशाः कीर्तिता ब्रह्मलौकिकाः ।
अपुत्रो लभते पुत्रं दरिद्रो लभते धनम् ॥ ४६ ॥
तथा धर्मार्थकामेषु सिद्धिं च लभते नरः ।
पृथुं वैन्यं नृपवरं पृथ्वी यस्याभवत्सुता ॥ ४७ ॥
प्रजापतिं सार्वभौमं कीर्तयेद्वसुधाधिपम् ।
आदित्यवंशप्रभवं महेन्द्रसमविक्रमम् ॥ ४८ ॥

हैं। दूसरे सप्तमुनि सब दिशामेंही अधिष्ठित हैं, ये मनुष्योंके कीर्ति और कल्याणकर तथा लोकभावन कहके वर्णित हुए हैं। धर्म, काम, काल, वसु, बासुकि, अनन्त और कपिल, ये सातों धरणीधर हैं । भृगुराम, व्यासदेव, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा और लोमश, ये दिव्य मुनि हैं। (३८-४२)

इन मुनियोंके बीच प्रत्येक सात सात प्रकारके हैं, लोकमें येही शान्ति और स्वस्ति कर रहे हैं, ये जिस दिशा में रहें, उसही ओर मुंह करके उनका शरणागत होवे, ये सब भूतोंके स्रष्टा और लोकपावन रूपसे विख्यात हैं। संवर्त्त, मेरुसावर्ण, धार्मिक मार्कण्डेय, सांख्य, योग, नारद और महर्षि दुर्वासा, ये अत्यन्त तपनिरत तथा दान्त होनेसे प्रसिद्ध हैं। दूसरे ब्रह्मलोकनिवासी मुनि-गण रुद्रसङ्काश कहके वर्णित होते हैं। इनका नाम लेनेसे अपुत्र पुरुषको पुत्र लाभ होता, दरिद्र पुरुष धन पाते और धर्मार्थ काम विषयमें सिद्धिलाभ किया करते हैं। पृथिवी जिसकी कन्या हुई थी, उस वैन्य, नृपनन्दन प्रजापति

पुरूरवसमैलं च त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
बुधस्य दयितं पुत्रं कीर्तयेद्वसुधाधिपम् ॥ ४९ ॥
त्रिलोकविश्रुतं वीरं भरतं च प्रकीर्तयेत्।
गवामयेन यज्ञेन येनेष्टं वै कृते युगे ॥ ५० ॥
रन्तिदेवं महादेवं कीर्तयेत्परमद्युतिम्।
विश्वजित्तपसोपेतं लक्षण्यं लोकपूजितम् ॥ ५१ ॥
तथा श्वेतं च राजर्षिं कीर्तयेत्परमद्युतिम्।
सगरस्यात्मजा येन प्लावितास्तारितास्तथा ॥ ५२ ॥
हुताशनसमानेतान्महारूपान्महौजसः।
उग्रकायान्महासत्त्वान्कीर्तयेत्कीर्तिवर्धनान् ॥ ५३ ॥
देवानृषिगणांश्चैव नृपांश्च जगतीश्वरान्।
साङ्ख्यं योगं च परमं हव्यं कव्यं तथैव च ॥ ५४ ॥
कीर्तितं परमं ब्रह्म सर्वश्रुतिपरायणम्।
मङ्गल्यं सर्वभूतानां पवित्रं बहु कीर्तितम् ॥ ५५ ॥
व्याधिप्रशमनं श्रेष्ठं पौष्टिकं सर्वकर्मणाम्।
प्रयतः कीर्तयेच्चैतान्कल्यं सायं च भारत ॥ ५६ ॥

सार्वभौम पृथु राजाका नाम लेवे। सूर्यवंशीय महेन्द्रसदृश पराक्रमी त्रिलोकविख्यात इलापुत्र पुरूरवा, जो बुधका प्रियपुत्र है, उस वसुधाधिपका नाम लेवे। (४२-४९)

त्रिलोकविख्यात वीरवर भरतका नाम और जिन्होंने सत्ययुगमें गोमेध यज्ञ किया था, उस परम तेजस्वी महाराज रन्तिदेवका नाम कीर्त्तन करना योग्य है, विश्वविजयी, तपस्यायुक्त, सुलक्षण, लोकहितकर, महातेजस्वी, राजर्षि श्वेतका नाम लेवे। जिसने सगर सन्तानोंको प्लावित तथा उद्धृत किया है, उस परम तेजस्वी राजर्षि भगीरथ का नाम लेवे। अग्निसदृश महारूपवान्, महातेजस्वी, उग्रकाय, महाबल, कीर्त्तिवर्द्धन नृपनन्दनगणका नाम कीर्त्तन करना योग्य है। (५०-५३)

देवगण, ऋषिगण, जगत्के नियन्ता नृपतिगण परम सांख्ययोग और हव्य कव्य परमश्रुतिपरायण परब्रह्मरूपसे वर्णित होते हैं। हे भारत! सर्व भूतोंके मङ्गलकारी अनेक विषयोंको वर्णन किया है, यह सब व्याधियोंका नाश और सर्व कार्योंमें पुष्टिसाधन करता है, इसलिये सबेरे सन्ध्याके समय संयत होके इन्हें

एते वै यान्ति वर्षन्ति भान्ति वान्ति सृजन्ति च ।
एते विनायकाः श्रेष्ठा दक्षाः क्षान्ता जितेन्द्रियाः ॥५७॥
नराणामशुभं सर्वं व्यपोहन्ति प्रकीर्तिताः ।
साक्षिभूता महात्मानः पापस्य सुकृतस्य च ॥ ५८ ॥
एतान्वै कल्यमुत्थाय कीर्तयन् शुभमश्नुते ।
नाग्निचौरभयं तस्य न मार्गप्रतिरोधनम् ॥ ५९ ॥
एतान्कीर्तयतां नित्यं दुःस्वप्नो नश्यते नृणाम् ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यः स्वस्तिमांश्च गृहान् व्रजेत् ॥६०॥
दीक्षाकालेषु सर्वेषु यः पठेन्नियतो द्विजः ।
न्यायवानात्मनिरतः क्षान्तो दान्तोऽनसूयकः ॥ ६१ ॥
रोगार्तो व्याधियुक्तो वा पठन्पापात्प्रमुच्यते ।
वास्तुमध्ये तु पठतः कुले स्वस्त्ययनं भवेत् ॥ ६२ ॥
क्षेत्रमध्ये तु पठतः सर्वं सस्यं प्ररोहति ।
गच्छतः क्षेममध्वानं ग्रामान्तरगतः पठन् ॥ ६३ ॥
आत्मनश्च सुतानां च दाराणां च धनस्य च ।

स्मरण करे। येही रक्षा करते, येही वर्षा करते, येही दीप्ति लाभ करते हैं, येही वहन तथा सृजन करते हैं, येही विनायक, श्रेष्ठ, दक्ष, दान्त और जितेन्द्रिय हैं; इसलिये ये लोग कीर्त्तित होनेसे मनुष्योंके समस्त अशुभ दूर किया करते हैं, ये सब महात्मा पाप और पुण्यके साक्षी स्वरूप हैं, जो लोग भोरके समय उठके इन सब महात्माओंका नाम लेते, वे कल्याणपरम्परा उपभोग किया करते हैं। जो मनुष्य सदा इनका नाम लेते हैं, उन्हें अग्नि और चोरका भय नहीं होता, उनके मार्गको कोई नहीं रोकता तथा उनके दुःस्वप्न नष्ट हुआ करते हैं। (५४-६०)

जो ब्राह्मण संयत होकर समस्त दीक्षाकालमें इसे पाठ करता है, वह सब पापोंसे छूटता और स्वस्तिमान् होके गृहमें गमन करनेमें समर्थ होता है। न्यायवान्, आत्मनिरत, क्षान्त, दान्त, अनसूयक, रोगार्त्त अथवा व्याधियुक्त मनुष्य इसे पाठ करनेसे पापरहित हुआ करते हैं। गृहमें इसे पाठ करनेसे कुलका मङ्गल होता है, जो लोग क्षेत्रमें पाठ करते हैं, उनके क्षेत्रमें सब अंकुर उत्पन्न होते हैं, गमनशील मनुष्यके मार्गमें मङ्गल हुआ करता है, अन्य ग्राममें गया हुआ मनुष्य इसे पाठ

बीजानामोषधीनां च रक्षामेतां प्रयोजयेत् ॥ ६४ ॥
एतान्सङ्ग्रामकाले तु पठतः क्षत्रियस्य तु ।
व्रजन्ति रिपवो नाशं क्षेमं च परिवर्तते ॥ ६५ ॥
एतान्दैवे च पित्र्ये च पठतः पुरुषस्य हि ।
भुञ्जते पितरः कव्यं हव्यं च त्रिदिवौकसः ॥ ६६ ॥
न व्याधिश्वापदभयं न द्विपान्न हि तस्करात् ।
कश्मलं लघुतां याति पाप्मना च प्रमुच्यते ॥ ६७ ॥
यानपात्रे च याने च प्रवासे राजवेश्मनि ।
परां सिद्धिमवाप्नोति सावित्रीं ह्युत्तमां पठन् ॥ ६८ ॥
न च राजभयं तेषां न पिशाचान्न राक्षसात् ।
नाग्न्यम्बुपवनव्यालाद्भयं तस्योपजायते ॥ ६९ ॥
चतुर्णामपि वर्णानामाश्रमस्य विशेषतः ।
करोति सततं शान्तिं सावित्रीमुत्तमां पठन् ॥ ७० ॥
नाग्निर्दहति काष्ठानि सावित्री यत्र पठ्यते ।
न तत्र बालो म्रियते न च तिष्ठन्ति पन्नगाः ॥ ७१ ॥
न तेषां विद्यते दुःखं गच्छन्ति परमां गतिम् ।

करते हुए आत्मसुतके सहारे धन, बीज और ओषधियोंकी रक्षा करे; संग्रामके समयमें इस मन्त्रको जपनेवाले क्षत्रियोंके सब शत्रु विनष्ट होते हैं और उसका कल्याण हुआ करता है। देव और पितृ कार्यमें जो पुरुष इन सब नामोंका पाठ करता है, उसके पितर और देवगण हव्य कव्य भोजन किया करते हैं। (६०-६६)

जो लोग इन नामोंका पाठ करते, उन्हें व्याधि नहीं होती, श्वापदोंका भय नहीं रहता, द्विप और तस्करोंसे भय नहीं होता, पाप घटता तथा वे पापोंसे मुक्त हुआ करते हैं। जो लोग सावित्री पाठ करते हैं उनको यान, पात्र, प्रवास और राजगृहमें अत्यन्त श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त होती है; उनको राजा, पिशाच, राक्षस, अग्नि, उदक, वायु और सर्प इनसे भय नहीं होता। जो लोग उत्तम सावित्री पाठ करते हैं, वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र इन चारों वर्णों विशेष करके सदा आश्रमोंकी शान्ति किया करते हैं। जिस स्थानमें सावित्री पाठ की जाती है, उस स्थानमें अग्नि काष्ठोंको जलाता नहीं, मनुष्य बाल्यावस्थामें

ये शृण्वन्ति महद्ब्रह्म सावित्रीगुणकीर्तनम् ॥ ७२ ॥
गवां मध्ये तु पठतो गावोऽस्य बहुवत्सलाः।
प्रस्थाने वा प्रवासे वा सर्वावस्थां गतः पठेत् ॥ ७३ ॥
जपतां जुह्वतां चैव नित्यं च प्रयतात्मनाम्।
ऋषीणां परमं जप्यं गुह्यमेतन्नराधिप ॥ ७४ ॥
याथातथ्येन सिद्धस्य इतिहासं पुरातनम्।
पराशरमतं दिव्यं शक्राय कथितं पुरा ॥ ७५ ॥
तदेतत्ते समाख्यातं तथ्यं ब्रह्म सनातनम्।
हृदयं सर्वभूतानां श्रुतिरेषा सनातनी ॥ ७६ ॥
सोमादित्यान्वयाः सर्वे राघवाः कुरवस्तथा।
पठन्ति शुचयो नित्यं सावित्रीं प्राणिनां गतिम् ॥७७॥
अभ्यासे नित्यं देवानां सप्तर्षीणां ध्रुवस्य च।
मोक्षणं सर्वकृच्छ्राणां मोचयत्यशुभात्सदा ॥ ७८ ॥
वृद्धैः काश्यपगौतमप्रभृतिभिर्भृग्वङ्गिरोऽत्र्यादिभिः।
शुक्रागस्त्यबृहस्पतिप्रभृतिभिर्ब्रह्मर्षिभिः सेवितम्।

नहीं मरता और पक्षिगण वास नहीं करते। जो लोग सावित्रीगुणकीर्त्तन-रूप महत् वेद ग्रहण करते हैं, उन्हें दुःख नहीं होता और वे परमगति पाते हैं, गौवोंके बीच सावित्री पाठ करनेसे गौवें बहुवत्सला होती हैं। प्रस्थानकाल वा प्रवासके समय जिस किसी अवस्थामें स्थित होके सर्वदा ही सावित्री पाठ करे। (६७-७३)

हे नरनाथ! जपपरायण, होमनिष्ठ और सदा सावधानचित्त ऋषियोंका यह परम जप्य तथा गुप्त मन्त्र है। पहले समयमें यह पराशर-सम्मत पुरातन इतिहास यथार्थ रीतिसे देवराजके निकट वर्णित हुआ था, वही इतिहास पूरी रीतिसे तुम्हारे समीप कहा गया। यह सनातन ब्रह्मस्वरूप, सर्वभूतोंका हृदय तथा सनातनी श्रुति है, चन्द्रवंशीय, सूर्यवंशीय, रघुवंशीय तथा कुरुवंशीय, राजा लोग सदा पवित्र होकर यह परम पवित्र प्राणियोंकी गति सावित्री पाठ किया करते हैं। देवताओंके निकट, सप्तर्षिमण्डल और ध्रुव नक्षत्रके समीप इसे पाठ करनेसे सब पाप विनष्ट होते हैं और इसका पाठ अशुभसे सदा विमुक्त करता है। (७४-७८)

काश्यप और गौतम प्रभृति वृद्धगण और भृगु, अङ्गिरा, अत्रि, शुक्र, अग-

भारद्वाजमतं ऋचीकतनयैः प्राप्तं वसिष्ठात्पुनः ।
सावित्रीमधिगम्य शक्रवसुभिः कृत्स्ना जिता दानवाः ॥ ७९ ॥
यो गोशतं कनकशृङ्गमयं ददाति विप्राय वेदविदुषे च बहुश्रुताय ।
दिव्यां च भारतकथां कथयेच्च नित्यं तुल्यं फलं भवति तस्य च तस्य चैव ८०
धर्मो विवर्धति भृगोः परिकीर्तनेन वीर्यं विवर्धति वसिष्ठनमोनतेन ।
सङ्ग्रामजिद्भवति चैव रघुं नमस्यन्स्यादश्विनौ च परिकीर्तयतो न रोगः ८१
एषा ते कथिता राजन्सावित्री ब्रह्मशाश्वती ।
विवक्षुरसि यच्चान्यत्तत्ते वक्ष्यामि भारत ॥ ८२ ॥ [७०७६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे सावित्रीव्रतोपाख्याने पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥

युधिष्ठिर उवाच— के पूज्याः के नमस्कार्याः कथं वर्तेत केषु च ।
किमाचारः कीदृशेषु पितामह न रिष्यते ॥ १ ॥
भीष्म उवाच- ब्राह्मणानां परिभवः सादयेदपि देवताः ।
ब्राह्मणांस्तु नमस्कृत्य युधिष्ठिर न रिष्यते ॥ २ ॥

स्त्य, बृहस्पति प्रभृति ब्रह्मर्षिगण सेवित ऋचीक पुत्रोंके द्वारा अधिगत यह भरद्वाजसम्मत सावित्री वसिष्ठके निकट पाके देवराज और वसुओंने दानवोंका दल नष्ट किया था। जो लोग वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंको सोनेके सींगसे युक्त एक सौ गऊ दान करते और दिव्य भारत कथाको नित्य पाठ किया करते हैं, उनके सदृश इसे पाठ करनेसे फल होता है। भृगुका नाम लेनेसे विशेष रीतिसे धर्मकी वृद्धि होती है, वसिष्ठको प्रणाम करनेसे वीर्यकी वृद्धि हुआ करती है, रघुको नमस्कार करनेसे पुरुष विजयी होता है और दोनों अश्विनीकुमारोंके नाम लेनेसे कोई रोग नहीं होता। हे महाराज! यह तुम्हारे निकट शाश्वती ब्रह्मसावित्री वर्णित हुई। हे भारत! तुम सब भी विवक्षु हो, इसलिये और जो सुननेकी इच्छा हो उसे कहो। मैं कहता हूं। (७९-८२)

अनुशासनपर्वमें १५० अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १५१ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! पूज्य कोन है? किसे नमस्कार करना चाहिये? किनके सङ्ग कैसा व्यवहार करना होता है? कैसे पुरुषके साथ कैसा आचार करनेसे मनुष्य हिंसित नहीं होता? (१)

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! ब्राह्मणोंको परिभव करनेसे देववृन्द भी अवसन्न

ते पूज्यास्ते नमस्कार्या वर्तेथास्तेषु पुत्रवत् ।
ते हि लोकानिमान्सर्वान्धारयन्ति मनीषिणः ॥ ३ ॥
ब्राह्मणाः सर्वलोकानां महान्तो धर्मसेतवः ।
धनत्यागाभिरामाश्च वाक्संयमरताश्च ये ॥ ४ ॥
रमणीयाश्च भूतानां निधानं च धृतव्रताः ।
प्रणेतारश्च लोकानां शास्त्राणां च यशस्विनः ॥ ५ ॥
तपो येषां धनं नित्यं वाक्चैव विपुलं बलम् ।
प्रभवश्चैव धर्माणां धर्मज्ञाः सूक्ष्मदर्शिनः ॥ ६ ॥
धर्मकामाः स्थिता धर्मे सुकृतैर्धर्मसेतवः ।
यान्समाश्रित्य जीवन्ति प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः ॥ ७ ॥
पन्थानः सर्वनेतारो यज्ञवाहाः सनातनाः ।
पितृपैतामहीं गुर्वीमुद्वहन्ति धुरं सदा ॥ ८ ॥
धुरि ये नावसीदन्ति विषये सद्गवा इव ।
पितृदेवातिथिमुखा हव्यकव्याग्रभोजिनः ॥ ९ ॥
भोजनादेव लोकांस्त्रींस्त्रायन्ते महतो भयात् ।

होते हैं, ब्राह्मणोंको नमस्कार करनेसे पुरुष हिंसित नहीं होता। ब्राह्मण ही पूज्य हैं, वेही नमस्कारके योग्य हैं, उनके समीप पुत्रकी भांति वर्त्तमान रहे, वे मनीषि ब्राह्मण लोकोंको धारण कर रहे हैं। जो लोग धन परित्याग करके अभिराम अथवा जो वाक्यसंयममें रत हैं, वेही सब लोगोंके लिये महान् धर्मसेतु स्वरूप हैं। जो धृतव्रती, रमणीय और सेवकोंके निधान हैं तथा जो लोक शास्त्रोंके प्रणेता हैं, वेही यशस्वी होते हैं। (२–५)

तपस्या ही जिनका नित्यधन और वाक्य ही विपुल बल है, वे सूक्ष्मदर्शी धर्मज्ञ ब्राह्मण धर्मप्रभव हैं, धर्मकामना करनेवाले मनुष्य सदा सत्यधर्ममें स्थित रहते हैं, वे ही धर्मसेतुस्वरूप हैं, जिन्हें सम्यक् रीतिसे अवलम्बन करके चार प्रकारकी प्रजा जीवन व्यतीत करती है। सनातन यज्ञवाह ब्राह्मण लोग सबके नेता और मार्गप्रदर्शक हैं, वेही पितृपितामह सम्बन्धीय गुरुतर भावोंको सदा वहन करते हैं। साधुओंकी भांति जो लोग विषम भार उठानेमें अवसन्न नहीं होते; ब्राह्मण, देवता और अतिथिगण जिनके मुखस्वरूप हैं, जो हव्यकव्यका अग्रभाग भोजन करते और भोजनमात्रसे ही तीनों लोकोंको महत्

दीपः सर्वस्य लोकस्य चक्षुश्चक्षुष्मतामपि ॥ १० ॥
सर्वशिक्षाः श्रुतिधना निपुणा मोक्षदर्शिनः ।
गतिज्ञाः सर्वभूतानामध्यात्मगतिचिन्तकाः ॥ ११ ॥
आदिमध्यावसानानां ज्ञातारश्छिन्नसंशयाः ।
परावरविशेषज्ञा गन्तारः परमां गतिम् ॥ १२ ॥
विमुक्ता धूतपाप्मानो निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ।
मानार्हा मानिता नित्यं ज्ञानविद्भिर्महात्मभिः ॥ १३ ॥
चन्दने मलपङ्के च भोजनेऽभोजने समाः ।
समं येषां दुकूलं च तथा क्षौमाजिनानि च ॥ १४ ॥
तिष्ठेयुरप्यभुञ्जाना बहूनि दिवसान्यपि ।
शोषयेयुश्च गात्राणि स्वाध्यायैः संयतेन्द्रियाः ॥ १५ ॥
अदैवं दैवतं कुर्युर्दैवतं चाप्यदैवतम् ।
लोकानन्यान्सृजेयुस्ते लोकपालांश्च कोपिताः ॥ १६ ॥
अपेयः सागरो येषामपि शापान्महात्मनाम् ।
येषां कोपाग्निरद्यापि दण्डके नोपशाम्यति ॥ १७ ॥

भयसे परित्राण किया करते हैं, वेही सब लोकोंके दीपस्वरूप, वेही नेत्रवान् मनुष्योंके नेत्रस्वरूप हैं, समस्त शिक्षा और श्रुति ही जिनका धन है, वेही निपुण, मोक्षदर्शी, सब लोकोंके गतिज्ञ और अध्यात्मगतिचिन्ताशील हैं। (६-११)

जो आदि, मध्य और अन्तके ज्ञाता हैं, जिनके सब सन्देह दूर हुए हैं, जो परावरविशेषज्ञ हैं, वेही परमगति पाते हैं, जो लोग विमुक्त, पापरहित, निर्द्वन्द्व, निष्परिग्रह, मानार्ह और मानवित् महात्माओंके द्वारा सदा मानित हैं, जो चन्दन और मलपङ्कको समान जानते हैं, भोज्य और अभोज्य वस्तुमें तुल्य बुद्धि किया करते हैं, दुकूल और पटवस्त्रमें जिन्हें सम ज्ञान है, बहुत दिनोंतक विना भोजन किये जो लोग निवास कर सकते हैं, जो संयतेन्द्रिय होकर स्वशाखोक्त वेदपाठके समय शरीर सुखाया करते हैं, वे अदैवको दैव कर सकते और दैवको अदैव करनेमें समर्थ हैं, तथा क्रुद्ध होनेपर दूसरे लोकों वा लोकपालोंको उत्पन्न कर सकते हैं। (१२—१६)

जिन महात्माओंके शापसे समुद्र भी अपेय हुआ है, जिनकी कोपाग्नि आजतक भी दण्डकमें उपशान्त नहीं हुई;

देवानामपि ये देवाः कारणं कारणस्य च ।
प्रमाणस्य प्रमाणं च कस्तानभिभवेद् बुधः ॥ १८ ॥
येषां वृद्धश्च बालश्च सर्वः संमानमर्हति ।
तपोविद्याविशेषात्तु मानयन्ति परस्परम् ॥ १९ ॥
अविद्वान्ब्राह्मणो देवः पात्रं वै पावनं महत् ।
विद्वान्भूयस्तरो देवः पूर्णसागरसंनिभः ॥ २० ॥
अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत् ।
प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतं महत् ॥ २१ ॥
श्मशाने ह्यपि तेजस्वी पावको नैव दुष्यति ।
हविर्यज्ञे च विधिवद् गृह एवातिशोभते ॥ २२ ॥
एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तते सर्वकर्मसु ।
सर्वथा ब्राह्मणो मान्यो दैवतं विद्धि तत्परम् ॥ २३ ॥ [७०९९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे ब्राह्मणप्रशंसायां एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥

युधिष्ठिर उवाच- कां तु ब्राह्मणपूजायां व्युष्टिं दृष्ट्वा जनाधिप ।
कं वा कर्मोदयं मत्वा तानर्चसि महामते ॥ १ ॥

जो देवताओंके भी देवता, कारणोंके भी कारण और प्रमाणोंके भी प्रमाण-स्वरूप हैं; कोई ज्ञानवान् मनुष्य उन ब्राह्मणोंको अभिभव करनेमें समर्थ नहीं होता; जिनके बीच वृद्ध, बालक सभी संमानके योग्य हैं; तप, विद्या विशेषके सहारे वे लोग परस्परमें संमान प्रदर्शित किया करते हैं। अविद्वान् ब्राह्मण भी देवस्वरूप और महत् पवित्र पात्र है, विद्वान् ब्राह्मण उससे अधिक देवतुल्य और पूर्णसमुद्र सदृश है। (१७-२०)

जिस प्रकार संस्कृत और असंस्कृत अग्नि महत् देवता है, उसी प्रकार अविद्वान् अथवा विद्वान् ब्राह्मण भी महत् देवतास्वरूप है। तेजस्वी अग्नि श्मशानमें भी दूषित नहीं होती, विधिपूर्वक हविर्यज्ञ और गृहके बीच विशेष रूपसे शोभित होती है। ब्राह्मण यदि सदा अनिष्ट कार्योंमें भी वर्त्तमान रहे, तौ भी सब भांतिसे माननीय है, उसे परम श्रेष्ठ देवता जानो। (२१—२३)

अनुशासनपर्वमें १५१ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १५२ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे महाप्राज्ञ नरनाथ! किस प्रकारके फलको देखके तथा कैसे

भीष्म उवाच— अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
पवनस्य च संवादमर्जुनस्य च भारत । ॥ २ ॥
सहस्रभुजभृच्छ्रीमान्कार्तवीर्योऽभवत्प्रभुः ।
अस्य लोकस्य सर्वस्य माहिष्मत्यां महाबलः ॥ ३ ॥
स तु रत्नाकरवतीं सद्वीपां सागराम्बराम् ।
शशास पृथिवीं सर्वां हैहयः सत्यविक्रमः ॥ ४ ॥
स्ववित्तं तेन दत्तं तु दत्तात्रेयाय कारणे ।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य विनयं श्रुतमेव च ॥ ५ ॥
आराधयामास च तं कृतवीर्यात्मजो मुनिम् ।
न्यमन्त्रयत सन्तुष्टो द्विजश्चैनं वरैस्त्रिभिः ॥ ६ ॥
स वरैश्छन्दितस्तेन नृपो वचनमब्रवीत् ।
सहस्रबाहुर्भूयां वै चमूमध्ये गृहेऽन्यथा ॥ ७ ॥
मम बाहुसहस्रं तु पश्यन्तां सैनिका रणे ।
विक्रमेण महीं कृत्स्नां जयेयं संशितव्रत ॥ ८ ॥
तां च धर्मेण संप्राप्य पालयेयमतन्द्रितः ।
चतुर्थं तु वरं याचे त्वामहं द्विजसत्तम ॥ ९ ॥

कर्मोदयको जानकर आप उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं ? (१)

भीष्म बोले, हे भारत ! प्राचीन लोग इस विषयमें पवन और अर्जुनके संवादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं। माहिष्मती नगरीमें सहस्र-भुजयुक्त महाबली श्रीमान् कार्त्तवीर्य अर्जुन नाम राजा समस्त जगत्का प्रभु हुआ था। उस हैहयवंशीय सत्य-पराक्रमी वीरने रत्नाकरवती ससागराम्बरा सद्वीपा समस्त पृथ्वी मण्डलको शासित किया था, उन्होंने किसी कारणसे दत्तात्रेय मुनिको निज वित्त प्रदान किया था, उस कृतवीर्यात्मज अर्जुनने क्षत्रधर्म, विनय और प्रश्रयान्वित होकर उस मुनिकी आराधना की थी। मुनिवरने प्रसन्न होकर उसे तीन वर मांगनेको कहा, राजा मुनिके समीप तीन वर पानेकी बात सुनके बोला, कि सेनाके बीच मेरी हजार भुजा होवें और गृहमें इस विषयमें अन्यथा हो। (२—७)

युद्धमें सैनिकपुरुष मेरी हजार भुजा अवलोकन करें, मैं संशितव्रती होकर पराक्रमसे समस्त पृथ्वीमण्डल जय करूंगा और धर्मपूर्वक उसे पाकर

तं ममानुग्रहकृते दातुमर्हस्यनिन्दित ।
अनुशासन्तु मां सन्तो मिथ्योद्वृत्तं त्वदाश्रयम् ॥१०॥
इत्युक्तः स द्विजः प्राह तथास्त्विति नराधिपम् ।
एवं समभवंस्तस्य वरास्ते दीप्ततेजसः ॥ ११ ॥
ततः स रथमास्थाय ज्वलनार्कसमद्युतिम् ।
अब्रवीद्वीर्यसम्मोहात्को वाऽस्ति सदृशो मम ॥ १२ ॥
धैर्यैर्वीर्यैर्यशःशौर्यैर्विक्रमेणौजसाऽपि वा ।
तद्वाक्यान्ते चान्तरिक्षे वागुवाचाशरीरिणी ॥ १३ ॥
न त्वं मूढ विजानीषे ब्राह्मणं क्षत्रियाद्वरम् ।
सहितो ब्राह्मणेनेह क्षत्रियः शास्ति वै प्रजाः ॥ १४ ॥
अर्जुन उवाच-कुर्यां भूतानि तुष्टोऽहं क्रुद्धो नाशं तथा नये ।
कर्मणा मनसा वाचा न मत्तोऽस्ति वरो द्विजः ॥ १५ ॥
पूर्वो ब्रह्मोत्तरो वादो द्वितीयः क्षत्रियोत्तरः ।
त्वयोक्तौ हेतुयुक्तौ तौ विशेषस्तत्र दृश्यते ॥ १६ ॥

आलसरहित होके पालन करूंगा। हे द्विजसत्तम ! मैं इन्हीं तीनों वरोंको मांगता हूं, परन्तु आपके समीप मैं और एक चौथा वर पानेके लिये प्रार्थना करता हूं। हे अनिंदित ! आप मुझपर कृपा करके उसे प्रदान कर सकते हैं, यदि मैं आपके आश्रयमें रहके मिथ्या उद्धत होऊं, तो साधुगण मुझे अनुशासित करें। ब्राह्मणने राजाका ऐसा वचन सुनके उसे तथास्तु कहके वर दिया। इस ही प्रकार उस दीप्त तेजस्वी राजाने ब्राह्मणसे वर पाया था। (८-११)

अनन्तर वह राजा सूर्य और अग्नि-सदृश तेजस्वी रथपर चढकर वीर्य-संमोहके वशमें होकर कहने लगा, "धैर्य, वीर्य, यश, शौर्य, पराक्रम और तेजमें मेरे समान कौन है ?" उसका वचन समाप्त होनेपर आकाशमें अशरीरिणी आकाशवाणी हुई। 'रे मूढ ! क्या तू नहीं जानता, कि ब्राह्मण क्षत्रियसे श्रेष्ठ हैं; क्षत्रिय ब्राह्मणोंके सङ्ग मिलकर इस लोकमें प्रजाशासन करते हैं।' (१२—१४)

अर्जुन बोले, मैं सन्तुष्ट होनेपर सब भूतोंकी सृष्टि कर सकता और क्रुद्ध होनेपर सबको विनष्ट करनेमें समर्थ हूं, इसलिये वचन, मन और कर्मसे मेरी अपेक्षा ब्राह्मण श्रेष्ठ नहीं हैं। ब्राह्मणों-का प्राधान्यवाद पूर्वपक्ष और क्षत्रियों-का आधिक्यवाक्य सिद्धान्तपक्ष है,

ब्राह्मणाः संश्रिताः क्षत्रं न क्षत्रं ब्राह्मणाश्रितम् ।
श्रिता ब्रह्मोपधा विप्राः खादन्ति क्षत्रियान्भुवि ॥१७॥
क्षत्रियेष्वाश्रितो धर्मः प्रजानां परिपालनम् ।
क्षत्राद् वृत्तिर्ब्राह्मणानां तैः कथं ब्राह्मणो वरः ॥ १८ ॥
सर्वभूतप्रधानांस्तान्भैक्षवृत्तीनहं सदा ।
आत्मसम्भावितान्विप्रान्स्थापयाम्यात्मनो वशे ॥१९॥
कथितं त्वनयाऽसत्यं गायत्र्या कन्यया दिवि ।
विजेष्याम्यवशान्सर्वान्ब्राह्मणांश्चर्मवाससः ॥ २० ॥
न च मां च्यावयेद्राष्ट्रात्त्रिषु लोकेषु कश्चन ।
देवो वा मानुषो वापि तस्माज्ज्येष्ठो द्विजादहम् ॥२१ ॥
अद्य ब्रह्मोत्तरं लोकं करिष्ये क्षत्रियोत्तरम् ।
न हि मे संयुगे कश्चित्सोढुमुत्सहते बलम् ॥ २२ ॥
अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा वित्रस्ताभून्निशाचरी ।
अथैनमन्तरिक्षस्थस्ततो वायुरभाषत ॥ २३ ॥
त्यजैनं कलुषं भावं ब्राह्मणेभ्यो नमस्कुरु ।

तुमने हेतुयुक्त दोनों वाक्य कहा, किन्तु उस विषयमें विशेष दीखता है। ब्राह्मण लोग क्षत्रियोंका आसरा किया करते हैं, परन्तु क्षत्रिय ब्राह्मणोंका आसरा नहीं करते, ब्राह्मण वेदाध्ययन छलनिबन्धनसे क्षत्रियोंको उपजीव्य किया करते हैं। (१५—१७)

प्रजासमूहके धर्म क्षत्रियोंके आश्रित हैं, क्षत्रियोंसे ब्राह्मणों की जीविका हुआ करती है, तब उन क्षत्रियोंसे ब्राह्मण किस प्रकार श्रेष्ठ हो सकते हैं ? मैं सब प्राणियोंकी अपेक्षा उन प्रधान, भिक्षावृत्तिशाली ब्राह्मणोंको अपने अधीनमें स्थापित करूंगा। सुरलोकमें इस आकाशवाणीने असत्य वचन कहा है, मैं अवश तथा अजिनवस्त्रधारी ब्राह्मणोंको जय करूंगा। तीनों लोकोंके बीच ऐसा कोई देवता वा मनुष्य नहीं है, जो मुझे राज्यसे च्युत कर सके इसलिये मैं ब्राह्मणोंसे अवश्यही श्रेष्ठ हूं। (१८-२१)

मैं ब्राह्मणप्रधान लोकको क्षत्रिय-प्रधान करूंगा, क्यों कि युद्धके बीच मेरे बलको सहनेमें किसीकाभी उत्साह नहीं है, आकाशवाणी अर्जुनका वचन सुनके भयभीत हुई। अनन्तर आकाशसे वायुने उससे कहा, यह दूषितभाव परित्याग करके ब्राह्मणोंको नमस्कार

एतेषां कुर्वतः पापं राष्ट्रक्षोभो भविष्यति ॥ २४ ॥
अथ वा त्वां महीपाल शमयिष्यन्ति वै द्विजाः ।
निरसिष्यन्ति ते राष्ट्राद्धतोत्साहा महाबलाः ॥ २५ ॥
तं राजा कस्त्वमित्याह ततस्तं प्राह मारुतः ।
वायुर्वै देवदूतोऽस्मि हितं त्वां प्रब्रवीम्यहम् ॥ २६ ॥
अर्जुन उवाच- अहो त्वयाऽयं विप्रेषु भक्तिरागः प्रदर्शितः ।
यादृशं पृथिवी भूतं तादृशं ब्रूहि मे द्विजम् ॥ २७ ॥
वायोर्वा सदृशं किंचिद् ब्रूहि त्वं ब्राह्मणोत्तमम् ।
अपां वै सदृशं वह्नेः सूर्यस्य नभसोऽपि वा ॥ २८ ॥ [७१२७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पवनार्जुनसंवादे ब्राह्मणमाहात्म्ये द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥

वायुरुवाच— शृणु मूढ गुणान्कांश्चिद्ब्राह्मणानां महात्मनाम् ।
ये त्वया कीर्तिता राजंस्तेभ्योऽथ ब्राह्मणो वरः ॥ १ ॥
त्यक्त्वा महीत्वं भूमिस्तु स्पर्धयाङ्गनृपस्य ह ।
नाशं जगाम तां विप्रो व्यस्तम्भयत कश्यपः ॥ २ ॥
अजेया ब्राह्मणा राजन्दिवि चेह च नित्यदा ।
अपिबत्तेजसा ह्यापः स्वयमेवाङ्गिराः पुरा ॥ ३ ॥

करो; ब्राह्मणोंके विषयमें पापाचरण करनेसे राज्य नष्ट होगा अथवा महाबल ब्राह्मण लोगही तुम्हें शान्त करेंगे, वे तुम्हें उत्साहरहित करके राज्यसे निराश करेंगे। राजाने उनसे पूछा, तुम कौन हो? वायुने कहा, मैं देवदूत पवन तुमसे हित वचन कहता हूं। (२२—२६)

अर्जुन बोले, क्याही आश्चर्य है। इस समय तुम ब्राह्मणोंके विषयमें भक्ति अनुराग प्रदर्शित करके ब्राह्मणोंको पृथ्वीके सदृश कहते हो, ब्राह्मणगण वायुके सदृश वा जलके समान, किंवा अग्नितुल्य, सूर्य अथवा आकाशके सदृश हैं। (२७—२८)

अनुशासनपर्वमें १५२ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १५३ अध्याय।

वायु बोले, हे मूढ! महानुभाव ब्राह्मणोंके कई एक गुण सुनो। हे महाराज! तुमने जिनका नाम लिया, ब्राह्मण लोग उनसेभी श्रेष्ठ हैं। पृथ्वी अङ्गराजके सङ्ग स्पर्द्धा करके विनष्ट हुई थी, विप्रवर कश्यपने उस पृथ्वीका फिर उद्धार किया था। महाराज ब्राह्मण लोग इस लोक और सुरलोकमेंभी सदा

स ताः पिबन्क्षीरमिव नातृप्यत महामनाः ।
अपूरयन्महौघेन महीं सर्वां च पार्थिव ॥ ४ ॥
तस्मिन्नहं च क्रुद्धे वै जगत्त्यक्त्वा ततो गतः ।
व्यतिष्ठमग्निहोत्रे च चिरमङ्गिरसो भयात् ॥ ५ ॥
अथ शप्तश्च भगवान् गौतमेन पुरन्दरः ।
अहल्यां कामयानो वै धर्मार्थं च न हिंसितः ॥ ६ ॥
तथा समुद्रो नृपते पूर्णो मृष्टस्य वारिणः ।
ब्राह्मणैरभिशप्तश्च बभूव लवणोदकः ॥ ७ ॥
सुवर्णवर्णो निर्धूमः सङ्गतोर्ध्वशिखः कविः ।
क्रुद्धेनाङ्गिरसा शप्तो गुणैरेतैर्विवर्जितः ॥ ८ ॥
मरुतश्चूर्णितान्पश्य ये ह्यासन्त महोदधिम् ।
सुवर्णधारिणा नित्यमवशप्ता द्विजातिना ॥ ९ ॥
समोनत्वं द्विजातिभ्यः श्रेयो विद्धि नराधिप ।
गर्भस्थान्ब्राह्मणान्सम्यक् नमस्यति किल प्रभुः ॥१०॥
दण्डकानां महद्राज्यं ब्राह्मणेन विनाशितम् ।
तालजङ्घं महाक्षत्रमौर्वेणैकेन नाशितम् ॥ ११ ॥

अजेय हैं। पहले समयमें अङ्गिराने निज तेज प्रभावसे समस्त जलपान किया था, वह महात्मा क्षीरकी भांति जलको पीकेभी तृप्त नहीं हुए। हे पार्थिव! उन्होंने महाप्रवाहसे समस्त पृथ्वीमण्डलको परिपूरित किया था, उनके क्रुद्ध होनेपर मैंने भी जगत् छोडके गमन किया और अङ्गिराके भयसे बहुत समयतक अग्निहोत्रमें निवास किया था, और भगवान् इन्द्र अहल्याकी कामना करके गौतमके द्वारा अभिशप्त होकर धर्मार्थमात्र हिंसित नहीं हुए। (१—६)

हे राजन्! समुद्र मीठे जलसे युक्त प्रकट हुआ था वह ब्राह्मणके शापसे लवणोदक हुआ है। सुवर्णवर्ण निर्धूमयुक्त उर्ध्वशिख कवि हुताशन क्रुद्ध अंगिराके द्वारा अभिशापित होकर पूर्वोक्त गुणोंसे रहित हुए थे। हे राजन्! देखिये सगरके पुत्रगण, जिन्होंने महोदधिकी उपासना की थी, वे सब उत्तम ब्राह्मणवर्णधारी द्विजाति कपिलके द्वारा अभिशापयुक्त हुए। हे नरनाथ! तुम ब्राह्मणोंके सदृश नहीं हो, तुम अपने कल्याणकी चिन्ता करो, भगवान् गर्भस्थ ब्राह्मणोंको भी सदा नमस्कार

त्वया च विपुलं राज्यं बलं धर्मं श्रुतं तथा ।
दत्तात्रेयप्रसादेन प्राप्तं परमदुर्लभम् ॥ १२ ॥
अग्निं त्वं यजसे नित्यं कस्माद्ब्राह्मणमर्जुन ।
स हि सर्वस्य लोकस्य हव्यवाट् किं न वेत्सि तम् ॥ १३ ॥
अथवा ब्राह्मणश्रेष्ठमनुभूतानुपालकम् ।
कर्तारं जीवलोकस्य कस्माज्जानन्विमुह्यसे ॥ १४ ॥
तथा प्रजापतिर्ब्रह्मा अव्यक्तः प्रभुरव्ययः ।
येनेदं निखिलं विश्वं जनितं स्थावरं चरम् ॥ १५ ॥
अण्डजातं तु ब्रह्माणं केचिदिच्छन्त्यपण्डिताः ।
अण्डाद्भिन्नाद्बभुः शैला दिशोऽम्भः पृथिवी दिवम् ॥ १६ ॥
द्रष्टव्यं नैतदेवं हि कथं जायेदजो हि सः ।
स्मृतमाकाशमण्डं तु तस्माज्जातः पितामहः ॥ १७ ॥
तिष्ठेत्कथमिति ब्रूहि न किंचिद्धि तदा भवेत् ।
अहंकार इति प्रोक्तः सर्वतेजोगतः प्रभुः ॥ १८ ॥

करते हैं । दण्डक राजाओंका महत् राज्य ब्राह्मणोंके द्वारा नष्ट हुआ; तालजङ्घ नाम महा क्षत्रिय एकले ऊर्वके द्वारा नष्ट हुआ । तुम्हें भी दत्तात्रेय मुनिकी कृपासे विपुल राज्य, बल, धर्म और परम दुर्लभ आत्मज्ञान प्राप्त हुआ है । (७—१२)

हे अर्जुन ! तुम ब्राह्मणरूपी अग्निदेवकी किस निमित्त सदा पूजा करते हो ? वेही सब लोकोंके हव्य कव्यको वहन करते हैं, क्या तुम उन्हें नहीं जानते ? अथवा श्रेष्ठ ब्राह्मण प्रतिभूतोंके ही पालनकर्त्ता हैं, इसलिये ब्राह्मणोंको जीवलोकका कर्त्ता जानके भी तुम क्यों मुग्ध होते हो ? अव्यक्त और अव्यय प्रभु पितामह ब्रह्मा जिन्होंने इस स्थावर-जङ्गममय निखिल विश्वकी सृष्टि की है, कोई मूर्ख उस ब्रह्माको अण्डसे उत्पन्न हुआ कहनेकी इच्छा करते हैं, अण्ड विभिन्न होनेपर उससे पर्वत, दिङ्मण्डल, जल, पृथ्वी और आकाश प्रकाशित होता है, यह द्रष्टव्य नहीं है, क्यों कि ब्रह्मा अज होकर किस प्रकार उत्पन्न हुए ? आकाश अण्डरूपसे स्मृत हुआ है, पितामह उसही आकाशसे प्रकट हुए हैं, उस समय कुछ भी नहीं था, इसलिये ब्रह्माने वहां किस भांति निवास किया ? उसे वर्णन करो । हे राजन् ! सर्वतेजगत प्रभु अहङ्कार नामसे अभिहित होते हैं,

नास्त्यण्डमस्ति तु ब्रह्मा स राजा लोकभावनः।
इत्युक्तः स तदा तूष्णीमभूद्वायुस्ततोऽब्रवीत् ॥ १९ ॥ [७१४९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पवनार्जुनसंवादे त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

वायुरुवाच— इमां भूमिं द्विजातिभ्यो दित्सुर्वै दक्षिणां पुरा।
अङ्गो नाम नृपो राजंस्ततश्चिन्तां मही ययौ ॥ १ ॥
धारिणीं सर्वभूतानामयं प्राप्य वरो नृपः।
कथमिच्छति मां दातुं द्विजेभ्यो ब्रह्मणः सुताम् ॥ २ ॥
साऽहं त्यक्त्वा गमिष्यामि भूमित्वं ब्रह्मणः पदम्।
अयं सराष्ट्रो नृपतिर्मा भूदिति ततोऽगमत् ॥ ३ ॥
ततस्तां कश्यपो दृष्ट्वा व्रजन्तीं पृथिवीं तदा।
प्रविवेश महीं सद्यो मुक्त्वाऽऽत्मानं समाहितः ॥ ४ ॥
ऋद्धा सा सर्वतो जज्ञे तृणौषधिसमन्विता।
धर्मोत्तरा नष्टभया भूमिरासीत्ततो नृप ॥ ५ ॥
एवं वर्षसहस्राणि दिव्यानि विपुलव्रतः।
त्रिंशतः कश्यपो राजन् भूमिरासीदतन्द्रितः ॥ ६ ॥

लोक-विधाता ब्रह्मा उसके अण्डसे ही प्रकट हुए हैं। वायु उस समय इतनी कथा कहके चुप होरहे, अनन्तर फिर कहने लगे। (१३-१९)

अनुशासनपर्वमें १५३ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १५४ अध्याय।

वायु बोले, हे महाराज! पहले समयमें अङ्ग नामक राजाने ब्राह्मणोंको दक्षिणा स्वरूपमें इस भूमिको दान करनेकी इच्छा की; उस समय पृथ्वीने सोचा, कि मैं सर्वलोकधारिणी ब्रह्मसुता हूं; तब यह राजा मुझे पाके किस निमित्त ब्राह्मणोंको दान करनेके लिये अभिलाषी हुआ है? जो हो, मैं भूमित्व परित्याग करके ब्रह्मलोकमें चलूं, यह राजा राज्यहीन होवे; ऐसा विचार करके धरणी ब्रह्मलोकमें चली गई। अनन्तर कश्यपने पृथ्वीको जाती हुई देखके उसही समय योगबलसे अपना शरीर परित्याग करके निर्जीव महीदेहमें प्रवेश किया। (१—४)

तब पृथ्वी तृण ओषधियोंसे युक्त तथा सब भांतिसे समृद्धिसम्पन्न हुई। हे राजन्! अनन्तर पृथ्वीपर धर्मकी प्रधानता हुई और सब भय नष्ट हुआ। हे महाराज! इस ही प्रकार देवपरिमाण

अथागम्य महाराज नमस्कृत्य च कश्यपम् ।
पृथिवी काश्यपी जज्ञे सुता तस्य महात्मनः ॥ ७ ॥
एष राजन्नीदृशो वै ब्राह्मणः कश्यपोऽभवत् ।
अन्यं प्रब्रूहि वा त्वं च कश्यपात्क्षत्रियं वरम् ॥ ८ ॥
तूष्णीं बभूव नृपतिः पवनस्त्वब्रवीत्पुनः ।
शृणु राजन्नुतथ्यस्य जातस्याङ्गिरसे कुले ॥ ९ ॥
भद्रा सोमस्य दुहिता रूपेण परमा मता ।
तस्यास्तुल्यं पतिं सोम उतथ्यं समपश्यत ॥ १० ॥
सा च तीव्रं तपस्तेपे महाभागा यशस्विनी ।
उतथ्यार्थे तु चार्वङ्गी परं नियममास्थिता ॥ ११ ॥
तत आहूय सोतथ्यं ददावत्रिर्यशस्विनीम् ।
भार्यार्थे स च जग्राह विधिवद्भूरिदक्षिणः ॥ १२ ॥
तां त्वकामयत श्रीमान्वरुणः पूर्वमेव ह ।
स चागम्य वनप्रस्थं यमुनायां जहार ताम् ॥ १३ ॥
जलेश्वरस्तु हृत्वा तामनयत्स्वं पुरं प्रति ।
परमाद्भुतसंकाशं षट्सहस्रशतह्रदम् ॥ १४ ॥

से तीस हजार वर्षतक कश्यपके द्वारा अधिष्ठित भूमि सदा अतन्द्रित हो रही। हे राजन्! अनन्तर पृथ्वीने ब्रह्मलोकसे आके कश्यपको नमस्कार किया और उस समय महानुभाव कश्यपकी कन्या होनेसे काश्यपी नामसे प्रसिद्ध हुई। हे महाराज! कश्यप ब्राह्मण ऐसे पराक्रमी थे; तुम ही बताओ कोई क्षत्रिय कश्यप से श्रेष्ठ है वा नहीं? इतनी कथा सुनके राजा चुप हो रहा। (५—९)

पवन बोले, हे राजन्! आङ्गिरस कुलमें उत्पन्न उतथ्यका वृत्तान्त सुनो। सोमकी कन्या भद्रा परम रूपवती थी, सोमने उतथ्यको उसके योग्य पति जाना था। उस चार्वङ्गीने परम नियम अवलम्बन करके उतथ्यके निमित्त घोर तपस्या की। अनन्तर सोमके पिता अत्रिने उतथ्यको आह्वान करके वह यशस्विनी कन्या दान की, भूरिदक्षिण उतथ्यने भी उसे भार्या रूपसे विधि- पूर्वक ग्रहण किया। श्रीमान् वरुणने पहले उस कामिनीके लिये कामना की थी, इसलिये वह वनस्थलमें आगमन करके यमुनाके तटपर उसे हरके निज पुरीमें लेआये, वरुणपुरीसे बढके और कोई लोक उत्तम न थे, उसमें परम

न हि रम्यतरं किंचित्तस्मादन्यत्पुरोत्तमम् ।
प्रासादैरप्सरोभिश्च दिव्यैः कामैश्च शोभितम् ॥१५॥
तत्र देवस्तया सार्धं रेमे राजन् जलेश्वरः ।
अथाख्यातमुतथ्याय ततः पत्न्यवमर्दनम् ॥ १६ ॥
तच्छ्रुत्वा नारदात्सर्वमुतथ्यो नारदं तदा ।
प्रोवाच गच्छ ब्रूहि त्वं वरुणं परुषं वचः ॥ १७ ॥
मद्वाक्यान्मुञ्च मे भार्यां कस्मात्तां हृतवानसि ।
लोकपालोऽसि लोकानां न लोकस्य विलोपकः ॥१८॥
सोमेन दत्ता भार्या मे त्वया चापहृताऽद्य वै ।
इत्युक्तो वचनात्तस्य नारदेन जलेश्वरः ॥ १९ ॥
मुञ्च भार्यामुतथ्यस्य कस्मात्त्वं हृतवानसि ।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य सोऽथ तं वरुणोऽब्रवीत् ॥२०॥
ममैषा सुप्रिया भार्या नैनामुत्स्रष्टुमुत्सहे ।
इत्युक्तो वरुणेनाथ नारदः प्राप्य तं मुनिम् ।
उतथ्यमब्रवीद्वाक्यं नातिहृष्टमना इव ॥ २१ ॥
गले गृहीत्वा क्षिप्तोऽस्मि वरुणेन महामुने ।
न प्रयच्छति ते भार्यां यत्ते कार्यं कुरुष्व तत् ॥ २२ ॥

अद्भुत पद्मसहस्रशतहृद थे, वह प्रासाद अप्सराओं और दिव्यकामसे शोभित था। (९—१५)

हे राजन्! जलेश्वर उस पुरीके बीच उतथ्यभार्याके सङ्ग क्रीडा करने लगे। अनन्तर नारदने उतथ्यसे उसकी भार्या हरनेका वृत्तान्त कहा, उतथ्य नारदके मुखसे ऐसा समाचार सुनके उस समय उनसे बोले, आप वरुणके निकट जाके उससे परुष वाक्य कहिये, कि मेरे वचनके अनुसार मेरी भार्याको छोड दो, तुमने क्यों उसे हरण किया? तुम लोकपाल हो, लोकोंके विलोपकारी नहीं हो, सोमने मुझे भार्या दी है, तुमने इस समय उसे क्यों हरण किया? उतथ्यका यह सब वचन नारदमुनिके द्वारा जलेश्वर सुनके तिरस्कृत हुए और जब नारदने कहा, तुम उतथ्यकी भार्या परित्याग करो, तुमने उसे क्यों हरण किया है? तब वरुण उनसे बोले, यह भीरु मेरी भी अत्यन्त प्यारी है, मैं इसे परित्याग नहीं कर सकता। जब वरुणने ऐसा वचन कहा, तब नारद रुष्ट चित्तसे उतथ्य मुनिके निकट आके

नारदस्य वचः श्रुत्वा क्रुद्धः प्राज्वलदङ्गिराः ।
अपिबत्तेजसा वारि विष्टभ्य सुमहातपाः ॥ २३ ॥
पीयमाने तु सर्वस्मिंस्तोयेऽपि सलिलेश्वरः ।
सुहृद्भिर्भिक्ष्यमाणोऽपि नैवामुञ्चत तां तदा ॥ २४ ॥
ततः क्रुद्धोऽब्रवीद् भूमिमुतथ्यो ब्राह्मणोत्तमः ।
दर्शय स्वस्थलं भद्रे षट्सहस्रशतह्रदम् ॥ २५ ॥
ततस्तदीरिणं जातं समुद्रस्यावसर्पतः ।
तस्माद्देशान्नदीं चैव प्रोवाचासौ द्विजोत्तमः ॥ २६ ॥
अदृश्या गच्छ भीरु त्वं सरस्वति मरून्प्रति ।
अपुण्य एष भवतु देशस्त्यक्तस्त्वया शुभे ॥ २७ ॥
तस्मिन्संशोषिते देशे भद्रामादाय वारिपः ।
अददाच्छरणं गत्वा भार्यामाङ्गिरसाय वै ॥ २८ ॥
प्रतिगृह्य तु तां भार्यामुतथ्यः सुमनाऽभवत ।
मुमोच च जगद् दुःखाद्वरुणं चैव हैहय ॥ २९ ॥
ततः स लब्ध्वा तां भार्यां वरुणं प्राह धर्मवित् ।
उतथ्यः सुमहातेजा यत्तच्छृणु नराधिप ॥ ३० ॥

बोले, वरुणने मुझे गर्दनमें हाथ लगाकर बिदा किया, तुम्हारी भार्या नहीं दी। अब तुम्हें जो करना हो, वह करो। (१६–२२)

महातपस्वी उतथ्य मुनि नारदका वचन सुनके क्रुद्ध और प्रज्वलित हुए और निज तेजप्रभावसे जलको विष्टम्भनपूर्वक पान किया। जब सब जल उतथ्यने पीलिया, उस समय जलेश्वरने सुहृदोंसे तिरस्कृत होकर भी उनकी भार्या न दी। अनन्तर द्विजवर उतथ्य क्रुद्ध होकर भूमिसे बोले, हे भद्रे! छः हजार एक सौ ह्रद विशिष्ट स्थल मुझे दिखाओ। अनन्तर वह स्थल मरुभूमि और समुद्र भी सूख गया। उस ब्राह्मणश्रेष्ठने सरस्वती नदीसे कहा, हे भीरु सरस्वती! तुम इस देशसे गमन करो, हे भीरु! तुमसे रहित होके यह देश पुण्यहीन होवे। (२३–२७)

अनन्तर उस देशके पूरी रीतिसे सूखनेपर वरुण भद्राको लेकर उतथ्यके शरणागत हुए और उन्हें उनकी भार्या प्रत्यर्पण की। हे हैहय! उतथ्य अपनी भार्या पाके प्रसन्न हुए और जगत् और वरुण दुःखसे मुक्त हुआ। महातेजस्वी धर्मज्ञ उतथ्यने अपनी भार्या पाके

मयैषा तपसा प्राप्ता क्रोशतस्ते जलाधिप ।
इत्युक्त्वा तामुपादाय स्वमेव भवनं ययौ ॥ ३१ ॥
एष राजन्नीदृशो वै उतथ्यो ब्राह्मणर्षभः ।
ब्रवीम्यहं ब्रूहि वा त्वमुतथ्यात्क्षत्रियं वरम् ॥ ३२ ॥ [७१७८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पवनार्जुनसंवादो नाम चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

भीष्म उवाच— इत्युक्तः स नृपस्तूष्णीमभूद्वायुस्ततोऽब्रवीत् ।
शृणु राजन्नगस्त्यस्य माहात्म्यं ब्राह्मणस्य ह ॥ १ ॥
असुरैर्निर्जिता देवा निरुत्साहाश्च ते कृताः ।
यज्ञाश्चैषां हृताः सर्वे पितृणां च स्वधास्तथा ॥ २ ॥
कर्मेज्या मानवानां च दानवैर्हैहयर्षभ ।
भ्रष्टैश्वर्यास्ततो देवाश्चेरुः पृथ्वीमिति श्रुतिः ॥ ३ ॥
ततः कदाचित्ते राजन्दीप्तमादित्यवर्चसम् ।
ददृशुस्तेजसा युक्तमगस्त्यं विपुलव्रतम् ॥ ४ ॥
अभिवाद्य तु तं देवाः पृष्ट्वा कुशलमेव च ।
इदमूचुर्महात्मानं वाक्यं काले जनाधिप ॥ ५ ॥

वरुणसे जो वचन कहा, वह सुनो। "हे जलाधिप! तुम्हारे आक्रोश प्रकाश करनेपर भी मैंने इसे तपस्याके द्वारा पाया है," ऐसा वचन कहके वह अपनी भार्या लेकर निजगृहपर गये। हे राजन्! वह उतथ्य ऐसे श्रेष्ठ ब्राह्मण थे। तब मैं तुमसे पूछता हूं, कि उतथ्यकी अपेक्षा कौन क्षत्रिय श्रेष्ठ है? (२८-३२)

अनुशासनपर्वमे १५४ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १५५ अध्याय।

भीष्म बोले, वह राजा इतनी कथा सुनके चुप होरहा। अनन्तर वायुने कहा, हे महाराज! द्विजश्रेष्ठ अगस्त्यका माहात्म्य सुनो। असुरोंके द्वारा पराजित देवगण निरुत्साह हुए थे, उनका यज्ञ-भाग और पितरोंका स्वधा मन्त्रके द्वारा प्रदत्त कव्यादि भी हृत हुआ था। हे हैहयश्रेष्ठ! ऐसी जनश्रुति है, कि मनुष्यका यज्ञकर्म नष्ट होनेसे देवगण ऐश्वर्यभ्रष्ट होकर इस पृथ्वीतलमें विचरते थे, हे महाराज! अनन्तर किसी समय उन देवताओंने आदित्यसदृश, तपस्वी, प्रदीप्त, विपुलव्रती, तेजसे युक्त अगस्त्यको देखा। हे नरनाथ! वे लोग उस महात्मा अगस्त्यको प्रणाम करके कुशल-

दानवैर्युधि भग्नाः स्म तथैश्वर्याच्च भ्रंशिताः ।
तदस्मान्नो भयात्तीव्रात्त्राहि त्वं मुनिपुङ्गव ॥ ६ ॥
इत्युक्तः स तदा देवैरगस्त्यः कुपितोऽभवत् ।
प्रजज्वाल च तेजस्वी कालाग्निरिव संक्षये ॥ ७ ॥
तेन दीप्तांशुजालेन निर्दग्धा दानवास्तदा ।
अन्तरिक्षान्महाराज निपेतुस्ते सहस्रशः ॥ ८ ॥
दह्यमानास्तु ते दैत्यास्तस्यागस्त्यस्य तेजसा ।
उभौ लोकौ परित्यज्य गताः काष्ठां तु दक्षिणाम् ॥९॥
बलिस्तु यजते यज्ञमश्वमेधं महीं गतः ।
येऽन्येऽधःस्था महीस्थाश्च ते न दग्धा महासुराः ॥ १० ॥
ततो लोकाः पुनः प्राप्ताः सुरैः शान्तभयैर्नृप ।
अथैनमब्रुवन्देवा भूमिष्ठानसुरान् जहि ॥ ११ ॥
इत्युक्तः प्राह देवान्स न शक्तोऽस्मि महीगतान् ।
दग्धुं तपो हि क्षीयेन्मे न शक्यामीति पार्थिव ॥१२॥
एवं दग्धा भगवता दानवाः स्वेन तेजसा ।

प्रश्नके अनन्तर यह वचन बोले, हे मुनिपुङ्गव ! हम लोग युद्धमें दानवोंके द्वारा पराजित तथा ऐश्वर्यभ्रष्ट हुए हैं, इसलिये आप हमें तीव्रभयसे परित्राण करिये । अगस्त्य देवताओंका ऐसा वचन सुनके अत्यन्त कुपित हुए और वह तेजस्वी प्रलयकालकी कालाग्नि-सदृश प्रज्वलित होगये । (१-७)

हे महाराज ! उस समय सहस्रों दानवगण उस प्रदीप्त किरणजालसे एक बारही जलके आकाशसे निपतित हुए । दैत्यगण अगस्त्यके तेजसे दह्यमान होकर भूलोक और स्वर्गलोक परित्याग करके दक्षिण दिशामें गये । बलि उस समय पृथ्वीतलमें अश्वमेध यज्ञ करता था, इसीसे वह और उसके अतिरिक्त जो सब महासुर नीचे तथा पृथ्वीतलमें थे, वे भस्म नहीं हुए । हे नृप ! अनन्तर भय शान्त होनेपर देवताओंके द्वारा सब लोक फिर व्याप्त हुआ, तब देवताओंने फिर अगस्त्यसे कहा, आप भूमिमें रहनेवाले असुरोंका नाश करिये । (८—११)

हे राजन् ! अगस्त्य देवताओंका ऐसा वचन सुनके उनसे बोले, मैं भूमिस्थ दानवोंको जलानेमें समर्थ नहीं हूं, क्यों कि उससे मेरी तपस्या नष्ट होनेकी सम्भावना है । हे राजन् ! इस

अगस्त्येन तदा राजंस्तपसा भावितात्मना ॥ १३ ॥
ईदृशश्चाप्यगस्त्यो हि कथितस्ते मयाऽनघ ।
ब्रवीम्यहं ब्रूहि वा त्वमगस्त्यात्क्षत्रियं वरम् ॥ १४ ॥
भीष्म उवाच— इत्युक्तः स तदा तूष्णीमभूद्वायुस्ततोऽब्रवीत् ।
शृणु राजन्वसिष्ठस्य मुख्यं कर्म यशस्विनः ॥ १५ ॥
आदित्याः सत्रमासन्त सरो वै मानसं प्रति ।
वसिष्ठं मनसा गत्वा ज्ञात्वा तत्तस्य गौरवम् ॥ १६ ॥
यजमानांस्तु तान्दृष्ट्वा सर्वान्दीक्षानुकर्शितान् ।
हन्तुमैच्छन्त शैलाभाः खलिनो नाम दानवाः ॥ १७ ॥
अदूरात्तु ततस्तेषां ब्रह्मदत्तवरं सरः ।
हता हता वै तत्रैते जीवन्त्याप्लुत्य दानवाः ॥ १८ ॥
ते प्रगृह्य महाघोरान्पर्वतान्परिघान् द्रुमान् ।
विक्षोभयन्तः सलिलमुत्थितं शतयोजनम् ॥ १९ ॥
अभ्यद्रवन्त देवांस्ते सहस्राणि दशैव हि ।
ततस्तैरर्दिता देवाः शरणं वासवं ययुः ॥ २० ॥
स च तैर्व्यथितः शक्रो वसिष्ठं शरणं ययौ ।

ही प्रकार पवित्रचित्तवाले अगस्त्यने निज तेजके सहारे दानवोंको जलाया था । हे अनघ ! अगस्त्य ऐसे ही थे, यह मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया । अब मैं कहता हूं, अथवा तुमही कहो, क्या अगस्त्यकी अपेक्षा क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं? भीष्म बोले, राजा ऐसा प्रश्न सुनके चुप होरहा । (१२—१५)

अनन्तर वायु बोले, हे महाराज ! यशस्वी वसिष्ठके मुख्य कर्म सुनो । आदित्यगण मन ही मन वसिष्ठका गौरव जानके उनके समीप वैखानस नाम सरोवरपर जाके यज्ञ करते थे । पर्वतसदृश खलि नाम दानवोंने देवताओंको यजमान और यज्ञदीक्षासे कृश देखकर वध करनेकी इच्छा की । उन लोगोंके निकटमें ही ब्रह्मदत्त नाम तडाग था, दानवगण हताहत होके उस तडागमें स्नान करते ही जीवित होते थे; वे महाघोर पर्वत, परिघ, और वृक्षोंको लेकर एकसौ योजन समुत्थित जलको आन्दोलित करते थे। (१५–१९)

अनन्तर दस हजार दानव देवताओंकी ओर दौडे, देवगण दानवोंसे पीडित होके देवराजके शरणागत हुए; देवराज देवताओंके दुःखसे पीडित

ततोऽभयं ददौ तेभ्यो वसिष्ठो भगवानृषिः ॥ २१ ॥
तदा तान्दुःखितान् ज्ञात्वा आनृशंस्यपरो मुनिः ।
अयत्नेनादहत्सर्वान्खलिनः स्वेन तेजसा ॥ २२ ॥
कैलासं प्रस्थितां चैव नदीं गङ्गां महातपाः ।
आनयत्तत्सरो दिव्यं तया भिन्नं च तत्सरः ॥ २३ ॥
सरो भिन्नं तया नद्या सरयूः सा ततोऽभवत् ।
हताश्च खलिनो यत्र स देशः खलिनोऽभवत् ॥ २४ ॥
एवं सेन्द्रा वसिष्ठेन रक्षितास्त्रिदिवौकसः ।
ब्रह्मदत्तवराश्चैव हता दैत्या महात्मना ॥ २५ ॥
एतत्कर्म वसिष्ठस्य कथितं हि मयाऽनघ ।
ब्रवीम्यहं ब्रूहि वा त्वं वसिष्ठात्क्षत्रियं वरम् ॥ २६ ॥ [७२०४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पवनार्जुनसंवादे पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥

भीष्म उवाच— इत्युक्तस्त्वर्जुनस्तूष्णीमभूद्वायुस्तमब्रवीत् ।
शृणु मे हैहयश्रेष्ठ कर्मात्रेः सुमहात्मनः ॥ १ ॥
घोरे तमस्ययुध्यन्त सहिता देवदानवाः ।

होकर वसिष्ठके शरणमें गये । अनन्तर भगवान् वसिष्ठ ऋषिने उन लोगोंको अभय दिया, अनृशंसतापरायण मुनिने उस समय देवताओंको दुःखित जानके निज तेज प्रभावसे सहजहीमें उन खलि नामक दानवोंको जला दिया । महा-तपस्वी वसिष्ठ कैलासपर्वतसे चलनेवाली गङ्गा नदीको उस दिव्य सरोवरमें लिया लाये, तब वह तडाग गङ्गामें मिल गया गंगासे मिलकर उस सरोवरका सरयू नाम हुआ । (२०—२४)

जिस स्थानमें खलि दानवगण मारे गये थे, उस देशका खलिन नाम हुआ इस ही प्रकार इन्द्रके सहित सब देवताओंकी वसिष्ठ मुनिने रक्षा की थी और ब्रह्मदत्तवर दप्त दैत्योंका महात्मा वसिष्ठके द्वारा नाश हुआ । हे अनघ ! यह मैंने तुमसे वसिष्ठका माहात्म्य कहा, मैं कहता हूं तथा तुम ही कहो, क्या वसिष्ठसे क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं ? (२४–२६)

अनुशासनपर्वमें १५५ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें १५६ अध्याय ।

भीष्म बोले, कार्त्तवीर्य अर्जुनने इतनी कथा सुनके मौनावलम्बन किया था । अनन्तर वायु उससे कहने लगे । हे हैहयश्रेष्ठ ! मेरे समीप महात्मा अ-

अविध्यत शरैस्तत्र स्वर्भानुः सोमभास्करौ ॥ २ ॥
अथ ते तमसा ग्रस्ता निहन्यन्ते स्म दानवैः ।
देवा नृपतिशार्दूल सहैव बलिभिस्तदा ॥ ३ ॥
असुरैर्वध्यमानास्ते क्षीणप्राणा दिवौकसः ।
अपश्यन्त तपस्यन्तमत्रिं विप्रं तपोधनम् ॥ ४ ॥
अथैनमब्रुवन्देवाः शान्तक्रोधं जितेन्द्रियम् ।
असुरैरिषुभिर्विद्धौ चन्द्रादित्याविमावुभौ ॥ ५ ॥
वयं वध्यामहे चापि शत्रुभिस्तमसाऽऽवृते ।
नाधिगच्छाम शान्तिं च भयात्त्रायस्व नः प्रभो ॥ ६ ॥
अत्रिरुवाच- कथं रक्षामि भवतस्तेऽब्रुवंश्चन्द्रमा भव ।
तिमिरघ्नश्च सविता दस्युहन्ता च नो भव ॥ ७ ॥
एवमुक्तस्तदात्रिर्वै तमोनुदभवच्छशी ।
अपश्यत्सौम्यभावाच्च सोमवत्प्रियदर्शनः ॥ ८ ॥
दृष्ट्वा नातिप्रभं सोमं तथा सूर्यं च पार्थिव ।
प्रकाशमकरोदत्रिस्तपसा स्वेन संयुगे ॥ ९ ॥
जगद्वितिमिरं चापि प्रदीप्तमकरोत्तदा ॥ १० ॥

त्रिका कर्म सुनो। देवता और दानवगण घोर अन्धकारके बीच इकट्ठे होकर युद्ध करते थे, उस युद्धमें राहुने बाणसे सूर्य और चन्द्रमाको विद्ध किया। हे नृपश्रेष्ठ! अनन्तर अन्धकारसे ग्रस्त देवगण उस समय बलवान् दानवोंसे मारे जाने लगे। देवताओंने असुरदलसे वध्यमान तथा क्षीणबल होकर तपस्वी अत्रि नाम ब्राह्मणको तपस्या करते देखा। अनन्तर देवगण उस शान्त जितेन्द्रिय अत्रिसे बोले, हम ये सूर्य और चन्द्रमा हैं, दानवोंने बाणोंसे हमें विद्ध किया है, हम लोग अन्धकारयुक्त स्थानमें शत्रुओंके द्वारा व्यथित होते हैं, शान्ति लाभ नहीं कर सकते। हे प्रभु! इसलिये आप हम लोगोंको भयसे परित्राण करिये। ऋषिने कहा, मैं किस प्रकार आप लोगोंकी रक्षा करूंगा? (१-७)

देवगण बोले, आप चन्द्रमा और अन्धकारनाशक सूर्य होकर हमारे शत्रुओंका नाश करिये। अत्रि देवताओंका ऐसा वचन सुनके उस समय तमोनुद शशी हुए और सौम्यभावसे चन्द्रमाकी भांति प्रिय दीखने लगे। हे महाराज! उस समय अत्रिने सूर्य और चन्द्रमाको

व्यजयच्छत्रुसंघांश्च देवानां स्वेन तेजसा ।
अत्रिणा दह्यमानांस्तान्दृष्ट्वा देवा महासुरान् ॥ ११ ॥
पराक्रमैस्तेऽपि तदा व्यघ्नन्नत्रिसुरक्षिताः ।
उद्भासितश्च सविता देवास्त्राता हतासुराः ॥ १२ ॥
अत्रिणा त्वथ सामर्थ्यं कृतमुत्तमतेजसा ।
द्विजेनाग्निद्वितीयेन जपता चर्मवाससा ॥ १३ ॥
फलभक्षेण राजर्षे पश्य कर्मात्रिणा कृतम् ।
तस्यापि विस्तरेणोक्तं कर्मात्रेः सुमहात्मनः ।
ब्रवीम्यहं ब्रूहि वा त्वमत्रितः क्षत्रियं वरम् ॥ १४ ॥
इत्युक्तस्त्वर्जुनस्तूष्णीमभूद्वायुस्ततोऽब्रवीत् ।
शृणु राजन्महत्कर्म च्यवनस्य महात्मनः ॥ १५ ॥
अश्विनोः प्रतिसंश्रुत्य च्यवनः पाकशासनम् ।
प्रोवाच सहितो देवैः सोमपावश्विनौ कुरु ॥ १६ ॥
इन्द्र उवाच—अस्माभिर्निन्दितावेतौ भवेतां सोमपौ कथम् ।
देवैर्न संमितावेतौ तस्मान्मैवं वदस्व नः ॥ १७ ॥

प्रभायुक्त न देखकर निज तेजसे रणभूमिको प्रकाशित किया, जगत् अन्धकार-रहित और प्रकाशमान हुआ । उन्होंने निज तेजके सहारे देवताओंके शत्रुओंको जय किया, देवगण महाघोर विकराल असुरोंको अत्रिके द्वारा दह्यमान देखकर आप भी उनसे रक्षित होकर दानवोंसे युद्ध करने लगे । (७—१२)

अनन्तर सूर्य उदय होनेसे देवताओंका परित्राण हुआ और दानवगण मारे गये, अत्यन्त तेजस्वी अत्रिने दानवोंकी सामर्थ्य हरण की । हे राजर्षि ! द्वितीय अग्निसदृश, मृगचर्मधारी, जपपरायण, फल खानेवाले अत्रिने जो कार्य किया था, उसे अवलोकन करो । मैंने महात्मा अत्रिके कार्यको विस्तारपूर्वक कहा, अब मैं कहता हूं, वा तुम्हीं बताओ, क्या अत्रिसे भी क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं ? अर्जुन ऐसा वचन सुनके चुप होरहा । (१२—१५)

अनन्तर वायु बोले, हे राजन् ! महात्मा च्यवनका महत् कर्म सुनो । च्यवन मुनि दोनों अश्विनीकुमारोंके निकट प्रतिश्रुत होकर देवताओंके सहित इन्द्रसे बोले, इन दोनों वैद्योंको सोमपान कराओ । इन्द्र बोले, हमने इन्हें परित्याग किया है, इसलिये ये लोग किस प्रकार सोमपान कर सकते हैं ?

अश्विभ्यां सह नेच्छामः सोमं पातुं महाव्रत ।
यदन्यद्वक्ष्यसे विप्र तत्करिष्याम ते वचः ॥ १८ ॥
च्यवन उवाच- पिबेतामाश्विनौ सोमं भवद्भिः सहिताविमौ ।
उभावेतावपि सुरौ सूर्यपुत्रौ सुरेश्वर ॥ १९ ॥
क्रियतां मद्वचो देवा यथा वै समुदाहृतम् ।
एतद्वः कुर्वतां श्रेयो भवेन्नैतदकुर्वताम् ॥ २० ॥
इन्द्र उवाच—अश्विभ्यां सह सोमं वै न पास्यामि द्विजोत्तम ।
पिबन्त्वन्ये यथाकामं नाहं पातुमिहोत्सहे ॥ २१ ॥
च्यवन उवाच-न चेत्करिष्यासि वचो मयोक्तं बलसूदन ।
मया प्रमथितः सद्यः सोमं पास्यसि वै मखे ॥ २२ ॥
वायुरुवाच- ततः कर्म समारब्धं हिताय सहसाऽश्विनोः ।
च्यवनेन ततो मन्त्रैरभिभूताः सुराऽभवन् ॥ २३ ॥
तत्तु कर्म समारब्धं दृष्ट्वेन्द्रः क्रोधमूर्च्छितः ।
उद्यम्य विपुलं शैलं च्यवनं समुपाद्रवत् ॥ २४ ॥
तथा वज्रेण भगवानमर्षाकुललोचनः ।

देववृन्द इनकी प्रशंसा नहीं करते, इसलिये आप हमसे ऐसा वचन न कहिये। हे महाव्रत विप्रवर ! हम लोग दोनों अश्विनीकुमारोंके सहित सोमपान करनेकी इच्छा नहीं करते, आप और जो कुछ कहें, उसे हम प्रतिपालन करेंगे। (१५—१८)

च्यवन मुनि बोले, दोनों अश्विनीकुमार तुम्हारे सङ्ग सोमपान करेंगे, हे सुरेश्वर ! ये दोनों अमर और सूर्यके पुत्र हैं। हे देवगण ! मैंने जैसा कहा, उसे प्रतिपालन करो, ऐसा करनेसे तुम्हारा कल्याण होगा, नहीं तो तुम लोगोंके विषयमें अमङ्गल होगा। १९-२०

इन्द्र बोले, हे द्विजवर ! हम अश्विनीकुमारोंके सहित सोमपान न करेंगे। जिनकी इच्छा हो, वे पीयें; किन्तु मैं इनके संग सोमपान करनेका उत्साह नहीं करता। (२१)

च्यवन बोले, हे बलसूदन ! यदि तुम मेरी बात न मानोगे, तो यज्ञमें मेरे द्वारा प्रमथित होके उस ही समय सोमपान करोगे। (२२)

वायु बोले, अनन्तर अश्विनीकुमारोंके हितके निमित्त च्यवनने सहसा यज्ञकर्म आरम्भ किया। उनके मन्त्रसे देववृन्द अभिभूत हुए, इन्द्रने उस कर्मको आरम्भ हुआ देखके वज्रके

तमापतन्तं दृष्ट्वैव च्यवनस्तपसान्वितः ॥ २५ ॥
अद्भिः सिक्त्वाऽस्तम्भयत्तं सवज्रं सहपर्वतम् ।
अथेन्द्रस्य महाघोरं सोऽसृजच्छत्रुमेव हि ॥ २६ ॥
मदं नामाहुतिमयं व्यादितास्यं महामुनिः ।
तस्य दन्तसहस्रं तु बभूव शतयोजनम् ॥ २७ ॥
द्वियोजनशतास्तस्य दंष्ट्राः परमदारुणाः ।
हनुस्तस्याभवद्भूमावास्यं चास्यास्पृशद्दिवम् ॥ २८ ॥
जिह्वामूले स्थितास्तस्य सर्वे देवाः सवासवाः ।
तिमेरास्यमनुप्राप्ता यथा मत्स्या महार्णवे ॥ २९ ॥
ते संमन्त्र्य ततो देवा मदस्यास्य समीपगाः ।
अब्रुवन्सहिताः शक्रं प्रणमास्मै द्विजातये ॥ ३० ॥
अश्विभ्यां सह सोमं च पिबाम विगतज्वराः ।
ततः स प्रणतः शक्रश्चकार च्यवनस्य तत् ॥ ३१ ॥
च्यवनः कृतवानेतावश्विनौ सोमपायिनौ ।
ततः प्रत्याहरत्कर्म मदं च व्यभजन्मुनिः ॥ ३२ ॥
अक्षेषु मृगयायां च पाने स्त्रीषु च वीर्यवान् ।

सहित विपुल पर्वत उठाके क्रोधपूर्वक च्यवनकी ओर दौडे । तपस्वी भगवान् च्यवनने इन्द्रको आते हुए देखकर क्रोधपूर्वक जल छिडकके वज्र और पर्वतके सहित उन्हें स्तम्भित कर दिया । महामुनि च्यवनने आहुतिमय एक मुख बाये हुए महाघोर मद नाम पुरुषको इन्द्रका शत्रु बनाके उत्पन्न किया । उसके सहस्र दांत एक सौ योजन लम्बे थे और उसके परम दारुण दंष्ट्रा दो सौ योजनके बीच व्याप्त थी । उसका एक ओठ भूमि और दूसरा आकाशमण्डलमें जा लगा । (२६-२८)

जैसे समुद्रमें सब मछलियें तिमिके मुखमें समा जाती हैं, वैसे ही इन्द्रके सहित सब देवता उसके जिह्वामूलमें स्थित हुए । अनन्तर देवताओंने आपसमें विचार करके मदके समीप जाकर देवराजसे कहा, इस द्विजवरको प्रणाम करो; हम लोग प्रसन्न होकर दोनों अश्विनीकुमारोंके संग सोमपान करेंगे । अनन्तर इन्द्रने प्रणत होके च्यवनका वचन प्रतिपालन किया; च्यवन मुनिने अश्विनीकुमारोंको सोमपान कराया । अनन्तर मुनिश्रेष्ठ वीर्यवान् च्यवनने वह कर्म प्रत्याहरण किया और जूआ,

एतैर्दोषैर्नरा राजन् क्षयं यान्ति न संशयः ॥ ३३ ॥
तस्मादेतान्नरो नित्यं दूरतः परिवर्जयेत् ॥ ३४ ॥
एतत्ते च्यवनस्यापि कर्म राजन्प्रकीर्तितम् ।
ब्रवीम्यहं ब्रूहि वा त्वं क्षत्रियं ब्राह्मणाद्वरम् ॥ ३५ ॥ [७२२९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पवनार्जुनसंवादे षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

भीष्म उवाच—तूष्णीमासीदर्जुनस्तु पवनस्त्वब्रवीत्पुनः ।
शृणु मे ब्राह्मणेष्वेव मुख्यं कर्म जनाधिप ॥ १ ॥
मदस्यास्यमनुप्राप्ता यदा सेन्द्रा दिवौकसः ।
तदैव च्यवनेनेह हृता तेषां वसुन्धरा ॥ २ ॥
उभौ लोकौ हृतौ मत्वा ते देवा दुःखिताऽभवन् ।
शोकार्ताश्च महात्मानं ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ ३ ॥
देवा ऊचुः— मदास्यव्यतिषिक्तानामस्माकं लोकपूजित ।
च्यवनेन हृता भूमिः कपैश्चैव दिवं प्रभो ॥ ४ ॥
ब्रह्मोवाच- गच्छध्वं शरणं विप्रानाशु सेन्द्रा दिवौकसः ।
प्रसाद्य तानुभौ लोकाववाप्स्यथ यथा पुरा ॥ ५ ॥

मृगया, मद्यपान तथा स्त्रियोंमें मदको विभाग कर दिया। हे राजन्! मनुष्यों का निःसंदेह इन्हीं दोषोंसे नाश होता है, इसलिये मनुष्य इन दोषोंको एकबारगी परित्याग करे। हे महाराज! यह च्यवनके कर्म तुम्हारे समीप वर्णित हुए। मैं कहता हूं; तथा तुम ही कहो, क्या ब्राह्मणोंसे क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं? २९-३५

अनुशासनपर्वमें १५६ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १५७ अध्याय।

भीष्म बोले, अर्जुनके चुप हो रहनेपर पवनने उससे फिर कहा, हे जननाथ! ब्राह्मणोंके जो मुख्यकर्म हैं, वह सब मेरे मुखसे सुनो। जब इन्द्रादि देवता मदके मुखके भीतर चले गये तब च्यवनने उनकी भूमि हरण की। दोनों लोक हरे जानेपर महानुभाव देवगण अत्यन्त दुःखित और शोकार्त्त होकर ब्रह्माके शरणागत हुए। देवगण बोले, हे लोकपूजित! जब हम लोग मदके मुखके भीतर थे, उस समयमें च्यवन मुनिने हमारी भूमि हर ली और कप नामक दानवोंने स्वर्गलोक हर लिया। (१—४)

ब्रह्मा बोले, हे इन्द्रादि देवगण! तुम लोग शीघ्रही ब्राह्मणोंके शरणमें

ते ययुः शरणं विप्रानूचुस्ते कान् जयामहे ।
इत्युक्तास्ते द्विजान्प्राहुर्जयतेह कपानिति ॥ ६ ॥
भूगतान्हि विजेतारो वयमित्यब्रुवन् द्विजाः ।
ततः कर्म समारब्धं ब्राह्मणैः कपनाशनम् ॥ ७ ॥
तच्छ्रुत्वा प्रेषितो दूतो ब्राह्मणेभ्यो धनी कपैः ।
स च तान्ब्राह्मणानाह धनी कपवचो यथा ॥ ८ ॥
भवद्भिः सदृशाः सर्वे कपाः किमिह वर्तते ।
सर्वे वेदविदः प्राज्ञाः सर्वे च क्रतुयाजिनः ॥ ९ ॥
सर्वे सत्यव्रताश्चैव सर्वे तुल्या महर्षिभिः ।
श्रीश्चैव रमते तेषु धारयन्ति श्रियं च ते ॥ १० ॥
वृथा दारान्न गच्छन्ति वृथा मांसं न भुञ्जते ।
दीप्तमग्निं जुह्वते च गुरूणां वचने स्थिताः ॥ ११ ॥
सर्वे च नियतात्मानो बालानां संविभागिनः ।
उपेत्य शनकैर्यान्ति न सेवन्ति रजस्वलाम् ।
स्वर्गतिं चैव गच्छन्ति तथैव शुभकर्मिणः ॥ १२ ॥

जाओ, उन्हें प्रसन्न करनेसे पहलेकी भांति तुम लोग दोनों लोकोंको पाओगे। अनन्तर इन्द्रके सहित सब देवता ब्राह्मणोंके शरणागत हुए। ५-६

ब्राह्मणगण बोले, हम किसे जय करें? देववृन्द ब्राह्मणोंका ऐसा वचन सुनके बोले, इस समय आप लोग कपनाम दैत्योंको जीतिये, द्विजगण बोले, हम भूमिगत दैत्योंको जीतनेमें समर्थ हैं। अनन्तर ब्राह्मणोंने कपनाशन कर्म आरम्भ किया, कपगणने यह वृत्तान्त सुनके धनी नाम दूतको उनके समीप भेजा। धनी उस समय भूलोकविनाशी ब्राह्मणोंसे कपका कहा हुआ वचन कहने लगा। (६-८)

कपगण आप लोगोंके सदृश हैं, इसलिये इस समय यह क्या होरहा है? वे सभी वेद जाननेवाले प्राज्ञ हैं, सभी यज्ञ करनेवाले, सब कोई सत्यव्रती और सभी महर्षियोंके तुल्य हैं, उनमें सदा श्री निवास करती है, वे भी श्रीको धारण करते, वृथा स्त्रीगमन नहीं करते, वृथा मांस भक्षण नहीं करते, जलती हुई अग्निमें होम करते हैं, गुरुवचनके वशीभूत रहते हैं, सभी नियतचित्तवाले हैं, बालकोंको खानेकी वस्तु विभाग करके देते हैं। वे लोग धीरे धीरे गमन करते हैं, रजस्वलाकी सेवा नहीं करते, स्वर्गमें

अभुक्तवत्सु नाश्नन्ति गर्भिणीवृद्धकादिषु ।
पूर्वाह्णेषु न दीव्यन्ति दिवा चैव न शेरते ॥ १३ ॥
एतैश्चान्यैश्च बहुभिर्गुणैर्युक्तान् कथं कपान् ।
विजेष्यथ निवर्तध्वं निवृत्तानां सुखं हि वः ॥ १४ ॥
ब्राह्मणा ऊचुः-कपान्वयं विजेष्यामो ये देवास्ते वयं स्मृताः ।
तस्माद्वध्याः कपाऽस्माकं धनिन्याहि यथाऽऽगतम् १५ ॥
धनी गत्वा कपानाह न वो विप्राः प्रियंकराः ।
गृहीत्वाऽस्त्राण्यतो विप्रान् कपाः सर्वे समाद्रवन् ॥१६॥
समुदग्रध्वजान्दृष्ट्वा कपान्सर्वे द्विजातयः ।
व्यसृजन् ज्वलितानग्नीन् कपानां प्राणनाशनान्॥१७॥
ब्रह्मसृष्टा हव्यभुजः कपान्हत्वा सनातनाः ।
नभसीव यथाऽभ्राणि व्यराजन्त नराधिप ॥ १८ ॥
हत्वा वै दानवान् देवाः सर्वे संभूय संयुगे ।
ते नाभ्यजानन्हि तदा ब्राह्मणैर्निहतान्कपान् ॥ १९ ॥
अथागम्य महातेजा नारदोऽकथयद्विभो ।

गति लाभ करते तथा वे लोग शुभकर्मशाली हैं । (९—१२)

गर्भिणी तथा वृद्धोंके भूखे रहते, वे भोजन नहीं करते, पूर्वाह्णमें क्रीडा नहीं करते और दिनमें शयन नहीं करते इन सब गुणों तथा इनके अतिरिक्त और भी बहुतेरे गुणोंसे युक्त कपगणको तुम क्यों जय करोगे, इस कार्यसे निवृत्त हो जाओ, निवृत्त होनेसे तुम्हारा मङ्गल होगा । (१३—१४)

ब्राह्मणोंने कहा, हम लोग कपगण को जीतेंगे, देवताओंके सहित हम लोग अभिन्नभावसे रहते हैं, इसलिये कपगण हमारे वध्य हैं । हे धनी ! तुम जिस स्थानसे आये हो, वहांही जाओ । धनी कपगणके समीप जाके बोला, ब्राह्मण लोग तुम्हारे प्रियङ्कर नहीं हैं, ऐसा सुनकर कपगण अस्त्र लेकर ब्राह्मणोंकी ओर दौडे । ब्राह्मणोंने कपगणको ऊंची ध्वजाके सहित आते हुए देखकर उनके प्राणनाशके निमित्त जलती हुई अग्नि चलाई । (१५—१७)

हे नरनाथ ! ब्राह्मणोंकी चलाई हुई अग्नि कपगणका नाश करके आकाशमण्डलमें बादलोंकी भांति विराजमान हुई । देवता लोग इकट्ठे होकर युद्धमें दानवोंके दलका संहार करके ब्राह्मणोंके

यथा हता महाभागैस्तेजसा ब्राह्मणैः कपाः ॥ २० ॥
नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रीताः सर्वे दिवौकसः।
प्रशशंसुर्द्विजांश्चापि ब्राह्मणांश्च यशस्विनः ॥ २१ ॥
तेषां तेजस्तथा वीर्यं देवानां ववृधे ततः।
अवापुश्चामरत्वं त्रिषु लोकेषु पूजितम् ॥ २२ ॥
इत्युक्तवचनं वायुमर्जुनः प्रत्युवाच ह।
प्रतिपूज्य महाबाहो यत्तच्छृणु युधिष्ठिर ॥ २३ ॥
अर्जुन उवाच- जीवाम्यहं ब्राह्मणार्थं सर्वथा सततं प्रभो।
ब्रह्मण्यो ब्राह्मणेभ्यश्च प्रणमामि च नित्यशः ॥ २४ ॥
दत्तात्रेयप्रसादाच्च मया प्राप्तमिदं बलम्।
लोके च परमा कीर्तिर्धर्मश्चाचरितो महान् ॥ २५ ॥
अहो ब्राह्मणकर्माणि मया मारुत तत्त्वतः।
त्वया प्रोक्तानि कार्त्स्न्येन श्रुतानि प्रयतेन च ॥२६ ॥
वायुरुवाच— ब्राह्मणान्क्षात्रधर्मेण पालयस्वेन्द्रियाणि च।
भृगुभ्यस्ते भयं घोरं तत्तु कालाद्भविष्यति ॥ २७ ॥ [७२११]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पवनार्जुनसंवादे सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १५७॥

द्वारा कपगणके मारे जानेका वृत्तान्त न जान सके। हे विभु! अनन्तर महातेजस्वी नारद मुनि आके बोले, महाभाग ब्राह्मणोंके तेजसे कपगण मारे गये। नारदमुनिका वचन सुनके सब देवता प्रसन्न हुए और यशस्वी ब्राह्मणों तथा द्विजगणोंकी प्रशंसा करने लगे। अनन्तर देवताओंके तेज और वीर्यकी वृद्धि हुई और उन्होंने तीनों लोकोंमें पूजित होकर अमरत्व लाभ किया। हे महाबाहो नरनाथ! जब पवनने इतनी कथा कही, तब अर्जुनने उनकी पूजा करके जो उत्तर दिया उसे सुनो। (१८—२३)

अर्जुन बोले, हे प्रभु! मैं सब प्रकारसे सदा ब्राह्मणोंके निमित्त जीवित हूं, मैं व्रतनिष्ठ होकर ब्राह्मणोंको प्रतिदिन प्रणाम किया करता हूं। दत्तात्रेयके प्रसादसे मैंने यह बल पाया है और इस लोकमें मेरी परम कीर्त्ति हुई है तथा मैंने महत् कर्म किया है। हे मारुत! तुमने जो ब्राह्मणोंके अद्भुत कर्म वर्णन किये, उसे मैंने सावधान होकर सुना है। (२४—२६)

युधिष्ठिर उवाच-ब्राह्मणानर्चसे राजन् सततं संशितव्रतान्।
कं तु कर्मोदयं दृष्ट्वा तानर्चसि जनाधिप ॥ १ ॥
कां वा ब्राह्मणपूजायां व्युष्टिं दृष्ट्वा महाव्रत।
तानर्चसि महाबाहो सर्वमेतद्वदस्व मे ॥ २ ॥
भीष्म उवाच-एष ते केशवः सर्वमाख्यास्यति महामतिः।
व्युष्टिं ब्राह्मणपूजायां दृष्टव्युष्टिर्महाव्रतः ॥ ३ ॥
बलं श्रोत्रे वाङ्मनश्चक्षुषी च ज्ञानं तथा सविशुद्धं ममाद्य।
देहन्यासो नातिचिरान्मतो मे न चातितूर्णं सविताद्य याति ॥ ४ ॥
उक्ता धर्मा ये पुराणे महान्तो राजन् विप्राणां क्षत्रियाणां विशां च।
तथा शूद्राणां धर्ममुपासते च शेषं कृष्णादुपशिक्षस्व पार्थ ॥५॥
अहं ह्येनं वेद्मि तत्त्वेन कृष्णं योऽयं हि यच्चास्य बलं पुराणम्।
अमेयात्मा केशवः कौरवेन्द्र सोऽयं धर्मं वक्ष्यति संशयेषु ॥ ६ ॥
कृष्णः पृथ्वीमसृजत् खं दिवं च कृष्णस्य देहान्मेदिनी संबभूव।

वायु बोले, तुम ब्राह्मणों और इन्द्रियोंको क्षत्रधर्मके अनुसार पालन करो, समयके अनुसार भृगुवंशसे तुम्हें घोर भय प्राप्त होगा। (२७)

अनुशासनपर्वमें १५७ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १५८ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे जननाथ ! आप संशितव्रती ब्राह्मणोंकी सदा अर्चना करते हैं, परन्तु कौनसा फलोदय देखके उनकी पूजा किया करते हैं ? हे महाव्रत महाबाहो ! ब्राह्मणपूजासे क्या फल दीखता है, जिससे आप उन लोगोंकी अर्चना करते हैं। यह सब वृत्तान्त मेरे समीप वर्णन करिये। (१—२)

भीष्म बोले, ब्राह्मणपूजाके फलदर्शी ये महाव्रत, महाबुद्धिमान केशव तुमसे समस्त फलका विषय कहेंगे। आज मेरा बल, दोनों कान, वचन, मन, दोनों नेत्र और ज्ञान विशुद्ध नहीं है; जान पडता है शरीरत्यागमें अब अधिक विलम्ब नहीं है; सूर्य भी शीघ्र प्रयाण नहीं करता है। हे राजन् ! पुराणोंके बीच ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके जो महत् धर्म वर्णित है, और वे लोग जिस धर्मकी उपासना करते हैं, उसका शेषभाग कृष्णके निकट सीखो। मैं ही इस कृष्णको यथार्थ रीतिसे जानता हूं, इनका स्वरूप तथा इनका पुराण बल मुझे अविदित नहीं है। हे कौरवेन्द्र ! केशव अमेयात्मा हैं, इसलिये येही सन्देहके स्थलमें धर्मका वर्णन करेंगे। (३—६)

वराहोऽयं भीमबलः पुराणः स पर्वतान्व्यसृजद्वै दिशश्च ॥ ७ ॥
अस्य चाधोऽथान्तरिक्षं दिवं च दिशश्चतस्रो विदिशश्चतस्रः ।
सृष्टिस्तथैवेयमनुप्रसूता स निर्ममे विश्वमिदं पुराणम् ॥ ८ ॥
अस्य नाभ्यां पुष्करं संप्रसूतं यत्रोत्पन्नः स्वयमेवामितौजाः ।
येनाच्छिन्नं तत्तमः पार्थ घोरं यत्तत्तिष्ठत्यर्णवं तर्जयानम् ॥ ९ ॥
कृते युगे धर्म आसीत्समग्रस्त्रेताकाले ज्ञानमनुप्रपन्नः ।
बलं त्वासीद् द्वापरे पार्थ कृष्णः कलौ त्वधर्मः क्षितिमेवाजगाम ॥१०॥
स एव पूर्वं निजघान दैत्यान्स पूर्वदेवश्च बभूव सम्राट् ।
स भूतानां भावनो भूतभव्यः स विश्वस्यास्य जगतश्चाभिगोप्ता ॥११॥
यदा धर्मो ग्लाति वंशोऽसुराणां तदा कृष्णो जायते मानुषेषु ।
धर्मे स्थित्वा स तु वै भावितात्मा परांश्च लोकानपरांश्च पाति ॥१२॥
त्याज्यं त्यक्त्वा चासुराणां वधाय कार्याकार्ये कारणं चैव पार्थ ।
कृतं करिष्यत् क्रियते च देवो राहुं सोमं विद्धि च शक्रमेनम् ॥ १३ ॥

कृष्णने ही पृथ्वी, आकाश और स्वर्गकी सृष्टि की है; कृष्णके देहसे ही महीमण्डलकी उत्पत्ति हुई है, येही भीमबल पुराण वराह हैं; इन्होंने ही पर्वतों तथा सब दिशाओंको उत्पन्न किया है। येही पाताल, आकाश, सुरपुर, चारों दिशा तथा चारों विदिशामें व्याप्त हैं, यह सृष्टि इन्हींसे प्रकट हुई है, इन्होंने ही इस दृश्यमान पुरातन जगत्को उत्पन्न किया है; इन्हींकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ था, जिससे अत्यन्त तेजस्वी स्वयं हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुए। हे पार्थ! जिन्होंने घोर अन्धकारको दूर किया है, वेही अतलस्पर्शी अपार समुद्रमें निवास कर रहे हैं। (७-९)

सत्ययुगमें पूरा धर्म था, त्रेतायुगमें विवेक प्रबल हुआ था, द्वापर युगमें बलकी प्रधानता थी। हे पार्थ! कलिकालमें पृथ्वीपर अधर्म आया है। इस कृष्णने ही पहले दैत्योंको मारा, येही पहले देव और सम्राट् हुए थे, येही सब भूतोंकी उत्पत्तिके कारण हैं, यही भूतभविष्यत् और येही समस्त जगत्के रक्षाकर्त्ता हैं। जिस समय असुरवंशमें धर्म ग्लानियुक्त होता है, उस समय कृष्ण मनुष्यलोकमें अवतार लेते हैं। येही विशुद्धस्वभाववाले भगवान् धर्ममें स्थित रहके परापर लोकोंकी रक्षा किया करते हैं। (१०-१२)

हे पार्थ! ये असुरोंके वधके निमित्त त्याज्य पुरुषोंका परित्याग किया करते हैं। यह देव ही कार्य, अकार्य कारण,

स विश्वकर्मा स हि विश्वरूपः स विश्वभुग्विश्वसृग्विश्वजिच्च ।
स शूलभृच्छोणितभृत्करालस्तं कर्मभिर्विदितं वै स्तुवन्ति ॥ १४ ॥
तं गन्धर्वाणामप्सरसां च नित्यमुपतिष्ठन्ते विबुधानां शतानि ।
तं राक्षसाश्च परिसंवदन्ति रायस्पोषः स विजिगीषुरेकः ॥ १५ ॥
तमध्वरे शंसितारः स्तुवन्ति रथन्तरे सामगाश्च स्तुवन्ति ।
तं ब्राह्मणा ब्रह्ममन्त्रैः स्तुवन्ति तस्मै हविरध्वर्यवः कल्पयन्ति ॥ १६ ॥
स पौराणीं ब्रह्मगुहां प्रविष्टो महीसत्रं भारताग्रे ददर्श ।
स चैव गामुद्दधाराग्र्यकर्मा विक्षोभ्य दैत्यानुरगान्दानवांश्च ॥ १७ ॥
तं घोषार्थे गीर्भिरिन्द्राः स्तुवन्ति स चापीशो भारतैकः पशूनाम् ।
तस्य भक्षान्विविधान्वेदयन्ति तमेवाजौ वाहनं वेदयन्ति ॥ १८ ॥
तस्यान्तरिक्षं पृथिवी दिवं च सर्वं वशे तिष्ठति शाश्वतस्य ।
स कुम्भे रेतः ससृजे सुराणां यत्रोत्पन्नमृषिमाहुर्वसिष्ठम् ॥ १९ ॥

कृत, भविष्यत् और क्रियमाण है; इसे ही राहु, चन्द्रमा तथा इन्द्र जानो, येही विश्वकर्मा, येही विश्वरूप, येही विश्वभुक्, येही विश्वस्रष्टा और येही विश्वजित् हैं; येही शूलधारी शरीरधारी कराल हैं; कर्मके द्वारा विदित होनेवाले इस देवकी सब कोई स्तुति किया करते हैं। (१३–१४)

गन्धर्व, अप्सरा और सैकडों देवता सदा इनकी उपासना करते हैं, राक्षसगण इन्हींका कीर्त्तन किया करते हैं, येही एकमात्र धनपोषक और विजिगीषु हैं। यज्ञमें उद्गातृगण इनकी स्तुति करते हैं, सामगान करनेवाले रथन्तर सामके सहारे इनकी स्तुति किया करते हैं, ब्राह्मण लोग ब्रह्ममन्त्रसे इनका स्तव करते हैं, अध्वर्युगण इन्हींके उद्देश्यसे हवि प्रदान किया करते हैं, येही पुरातनी गुहाके बीच प्रविष्ट ब्रह्म हैं। हे भरतकुलप्रदीप! इन्होंने ही पहले पृथिवीका छादन और मज्जन दर्शन किया है। येही श्रेष्ठ कर्मशील पुरुष दैत्य और असुरोंको विक्षोभित करके पृथ्वीका उद्धार करता है। गोवर्द्धन पर्वत धारण करनेके समय इन्द्रादि देवताओंने वाणीके सहारे इनकी स्तुति की थी। (१५–१८)

हे भारत! अकेले येही समस्त जीवों तथा पशुओंके नियन्ता हैं, पण्डित लोग इनका विविध भक्ष्य निर्देश करते और इन्हें युद्धमें जयप्रापक कहा करते हैं। आकाश, पृथ्वी और स्वर्गादि इनके वशमें हैं; इन्होंने ही मित्रावरुणको रेतकुम्भसे उत्पन्न किया, जिसमें उत्पन्न हुए ऋषिको लोग वसिष्ठ कहा करते

स मातरिश्वा विभुरश्ववाजी स रश्मिवान्सविता चादिदेवः ।
तेनासुरा विजिताः सर्व एव तद्विक्रान्तैर्विजितानीह त्रीणि ॥ २० ॥
स देवानां मानुषाणां पितॄणां तमेवाहुर्यज्ञविदां वितानम् ।
स एव कालं विभजन्नुदेति तस्योत्तरं दक्षिणं चायने द्वे ॥ २१ ॥
तस्यैवोर्ध्वं तिर्यगधश्चरन्ति गभस्तयो मेदिनीं भासयन्तः ।
तं ब्राह्मणा वेदविदो जुषन्ति तस्यादित्यो भामुपयुज्य भाति ॥२२॥
स मासि मास्यध्वरकृद्विधत्ते तमध्वरे वेदविदः पठन्ति ।
स एवोक्तश्चक्रमिदं त्रिनाभि सप्ताश्वयुक्तं वहते वै त्रिधाम ॥ २३ ॥
महातेजाः सर्वगः सर्वसिंहः कृष्णो लोकान्धारयते यथैकः ।
हंसं तमोघ्नं च तमेव वीर कृष्णं सदा पार्थ कर्तारमेहि ॥ २४॥
स एकदा कक्षगतो महात्मा तुष्टो विभुः खाण्डवे धूमकेतुः ।
स राक्षसानुरगांश्चावजित्य सर्वत्रगः सर्वमग्नौ जुहोति ॥ २५ ॥

हैं । येही सर्वव्यापी मातरिश्वा वेगवान् अश्व हैं, येही किरणधारी सूर्य और आदिदेव हैं; इन्हींके द्वारा सब असुर पराजित हुए हैं, इन्होंने ही त्रिपादविक्षेपसे त्रिभुवन जय किया है। येही देवताओं, मनुष्यों और पितरोंके आश्रय हैं। पण्डित लोग इन्हें ही यज्ञवित् पुरुषोंका यज्ञ कहा करते हैं। येही कालका विभाग करके उदित होते हैं, इनकी दक्षिण और उत्तर, दोनों गतिको अयन कहा जाता है। इनकी समस्त किरण मेदिनीमण्डलको प्रकाशित करती हुई, ऊपर, नीचे और तिर्यक् प्रदेशमें विचरती हैं। वेद जाननेवाले ब्राह्मण लोग इनकी ही सेवा किया करते हैं, सूर्य इनकी ही प्रभाको पाके प्रकाशित होता है। (१८-२२)

यज्ञकारी होकर प्रतिमासमें यज्ञका विधान करते हैं। वेद जाननेवाले ब्राह्मणगण यज्ञमें इन्हींकी स्तुति किया करते हैं। ये सर्दी, गर्मी, वर्षाका समय गर्भ त्रिनाभियुक्त संवत्सर चक्ररूपसे वर्णित होके सप्ताश्वयुक्त वर्षा, वात, उष्म प्रकार तीनों धाम वहन करते हैं। येही महातेजस्वी सब भांतिसे सब लोकोंकी हिंसा करते हैं, पापोंको आकर्षण करनेसे इनका कृष्ण नाम हुआ है, ये अकेले ही सब लोकोंको धारण किये हुए हैं। हे वीरवर पार्थ! ये ही सूर्यरूपसे अन्धकारका नाश करते हैं, इसलिये इस कृष्णको ही तुम कर्त्ता जानके इनका आसरा करो। (२३—२४)

जिस महात्माने किसी समयमें कक्षगत सर्वशक्तिमान् नित्य सन्तुष्ट धूम-

स एव पार्थाय श्वेतमश्वं प्रायच्छत्स एवाश्वानथ सर्वांश्चकार ।
स बन्धुरस्तस्य रथस्त्रिचक्रस्त्रिवृच्छिराश्चतुरश्वस्त्रिनाभिः ॥ २६ ॥
स विहायो व्यदधात्पञ्चनाभिः स निर्ममे गां दिवमन्तरिक्षम् ।
सोऽरण्यानि व्यसृजत्पर्वतांश्च हृषीकेशोऽमितदीप्ताग्नितेजाः॥ २७ ॥
अलङ्घयद्वै सरितो जिघांसन् शक्रं वज्रं प्रहरन्तं निरास ।
स महेन्द्रः स्तूयते वै महाध्वरे विप्रैरेको ऋक्सहस्रैः पुराणैः ॥ २८ ॥
दुर्वासा वै तेन नान्येन शक्यो गृहे राजन्वासयितुं महौजाः ।
तमेवाहुर्ऋषिमेकं पुराणं स विश्वकृद्विदधात्यात्मभावान् ॥ २९ ॥
वेदांश्च यो वेदयतेऽधिदेवो विधींश्च यश्चाश्रयते पुराणान् ।
कामे वेदे लौकिके यत्फलं च विष्वक्सेनः सर्वमेतत्प्रतीहि ॥ ३० ॥

केतुरूपसे खाण्डववनमें राक्षसों और उरगोंको पराजित करके सर्वत्रगामी होकर अग्निमें सब आहुति प्रदान की थी, उसीने धनञ्जयको सफेद घोडे प्रदान किये हैं, उसहीने घोडों तथा अन्य समस्त जीवोंकी सृष्टि की है। वही संसाररथकी योजना करनेवाला है। ऊर्ध्व, मध्य और अधोलोकमें उसके रथकी गति हुआ करती है; इसलिये उसका रथ त्रिचक्र और त्रिवृत्शिरा नामसे विख्यात है। काल, अदृष्ट ईश्वरेच्छा और संकल्प ये चारों उसके रथके घोडे हैं। श्वेत, कृष्ण और शुक्ल-कृष्ण मिश्रित त्रिविधधर्मगर्भ है, इस-लिये त्रिनाभि और वही पञ्चभूतोंका अवलम्ब है, इसलिये पञ्चनाभि कहाता है। उसने ही पृथिवी, स्वर्ग और अन्त-रिक्षकी सृष्टि की है, उसीने वन पर्वतों-को उत्पन्न किया है। वह विषयेन्द्रियों-का नियन्ता है, इसलिये हृषीकेश कहाता है और वही अपरिमित प्रदीप्त अग्निसदृश तेजस्वी है। (२४-२७)

उसने ही नदियोंकी जिघांसा करते हुए उन्हें लंघन किया था, वज्र प्रहार करनेके लिये उद्यत देवराजको पराजित किया था; एकमात्र वही यज्ञमें महेन्द्र रूपसे ब्राह्मणोंके द्वारा पुरातन ऋग्वेदके सहस्र मन्त्रोंसे स्तुतियुक्त हुआ करता है। हे राजन्! महातेजस्वी दुर्वासको गृहमें निवास करानेके लिये इनके अति-रिक्त और कोई भी समर्थ न हुआ। पण्डित लोग उन्हें ही एकमात्र पुरातन ऋषि कहा करते हैं, वही विश्वकर्ता है, वही अपने सहारे सब जीवोंका विधान करता है। जो देवाधिदेव होकर वेदों-को ज्ञापन करता है, वही अग्निहोत्र प्रभृतिका आश्रय करता है। पुरातन विधि, काम, वेद और लौकिकमें जो

ज्योतींषि शुक्लानि हि सर्वलोके त्रयो लोका लोकपालास्त्रयश्च ।
त्रयोऽग्नयो व्याहृतयश्च तिस्रः सर्वे देवा देवकीपुत्र एव ॥ ३१ ॥
स वत्सरः स ऋतुः सोऽर्धमासः सोऽहोरात्रः सकला वै स काष्ठाः ।
मात्रा मुहूर्ताश्च लवाः क्षणाश्च विष्वक्सेनः सर्वमेतत्प्रतीहि ॥ ३२ ॥
चन्द्रादित्यौ ग्रहनक्षत्रताराः सर्वाणि दर्शान्यथ पौर्णमासम् ।
नक्षत्रयोगा ऋतवश्च पार्थ विष्वक्सेनात्सर्वमेतत्प्रसूतम् ॥ ३३ ॥
रुद्रादित्या वसवोऽथाश्विनौ च साध्याश्च विश्वे मरुतां गणाश्च ।
प्रजापतिर्देवमाता दितिश्च सर्वे कृष्णादृषयश्चैव सप्त ॥ ३४ ॥
वायुर्भूत्वा विक्षिपते च विश्वमग्निर्भूत्वा दहते विश्वरूपः ।
आपो भूत्वा मज्जयते च सर्वं ब्रह्मा भूत्वा सृजते विश्वसङ्घान् ॥३५॥
वेद्यं च यद्वेदयते च वेद्यं विधिश्च यश्च श्रयते विधेयम् ।
धर्मे च वेदे च बले च सर्वं चराचरं केशवं त्वं प्रतीहि ॥ ३६ ॥
ज्योतिर्भूतः परमोऽसौ पुरस्तात्प्रकाशते यत्प्रभया विश्वरूपः ।
अपः सृष्ट्वा सर्वभूतात्मयोनिः पुराऽकरोत्सर्वमेवाथ विश्वम् ॥ ३७ ॥

कुछ फल होते हैं, विष्वक्सेन नारायणको ही फलस्वरूप जानना चाहिये । (२८—३०)

सब लोकोंमें जो सब शुक्लवर्ण ज्योतिके पदार्थ हैं, तीनों लोक, तीनों लोकपाल, तीनों अग्नि, तीनों व्याहृति और समस्त देवगण देवकीनन्दनस्वरूप हैं । वेही संवत्सर, वेही ऋतु, वेही पक्ष, वेही अहोरात्र हैं; वेही कला, काष्ठा, मात्रा, मुहूर्त्त, लव और क्षण हैं । यह सब विष्वक्सेनका ही स्वरूप जानो । हे पार्थ ! चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा सब पर्व, पौर्णमास, नक्षत्रयोग और ऋतु ये सब विष्वक्सेन नारायणसे ही उत्पन्न हुए हैं। रुद्रगण, आदित्यगण, वसुगण दोनों अश्विनीकुमार, साध्यगण, विश्वगण, मरुद्गण, प्रजापति, देवमाता अदिति और सप्तर्षि कृष्णसे ही उत्पन्न हुए हैं । (३१—३४)

वही विश्वरूप वायु होकर जगत्‌को विक्षिप्त कर रहा है, वही अग्नि होकर जगत्‌को जलाता है, वही जल होके सबको डुबाता है और ब्रह्मा होके सबकी सृष्टि करता है । वही वेद-प्रतिपाद्य वेदवस्तुओंका बोध कराता है और विधि होकर वेद तथा विधेय विषयोंका आश्रय करता है । धर्म, वेद, बल तथा चराचरात्मक सब विषयोंको ही केशवस्वरूप जानो ! जिसकी प्रभाके सहारे यह परम ज्योतिस्वरूप पूर्व दिशामें

ऋतूनुत्पातान्विविधान्यद्भुतानि मेघान्विद्युत्सर्वमैरावतं च ।
सर्वं कृष्णात्स्थावरं जङ्गमं च विश्वात्मानं विष्णुमेनं प्रतीहि ॥ ३८ ॥
विश्वावासं निर्गुणं वासुदेवं सङ्कर्षणं जीवभूतं वदन्ति ।
ततः प्रद्युम्नमनिरुद्धं चतुर्थमाज्ञापयत्यात्मयोनिर्महात्मा ॥ ३९ ॥
स पञ्चधा पञ्चजनोपपन्नं संचोदयन्विश्वमिदं सिसृक्षुः ।
ततश्चकारावनिमारुतौ च खं ज्योतिरम्भश्च तथैव पार्थ ॥ ४० ॥
स स्थावरं जङ्गमं चैवमेतच्चतुर्विधं लोकमिमं च कृत्वा ।
ततो भूमिं व्यदधात्पञ्चबीजां द्यौः पृथिव्यां धास्यति भूरि वारि ॥४१॥
तेन विश्वं कृतमेतद्धि राजन्स जीवयत्यात्मनैवात्मयोनिः ।
ततो देवानसुरान्मानवांश्च लोकानृषींश्चापि पितॄन्प्रजाश्च ।
समासेन विधिवत्प्राणिलोकान्सर्वान्सदा भूतपतिः सिसृक्षुः ॥ ४२ ॥
शुभाशुभं स्थावरं जङ्गमं च विष्वक्सेनात्सर्वमेतत्प्रतीहि ।
यद्वर्तते यच्च भविष्यतीह सर्वं ह्येतत्केशवं त्वं प्रतीहि ॥ ४३ ॥

प्रकाशित है, उस सर्व-भूतात्मा विश्वरूपने पहले जलकी सृष्टि करके अनन्तर सब विश्व निर्माण किया है। (३५-३७)

सब ऋतु, उत्पात, विविध अद्भुत विषय, मेघमण्डल, बिजली, ऐरावत और स्थावरजङ्गम सबकोही विश्वात्मा विष्णु जानो। पण्डित लोग उसे विश्वावास, निर्गुण, वासुदेव, सङ्कर्षण और जीवस्वरूप कहते हैं, उससे प्रद्युम्न और चौथा अनिरुद्ध अर्थात् अहङ्कार उत्पन्न होता है। वह आत्मयोनि महात्माही देव, असुर, मनुष्य, श्वापद और तिर्यक्, इन पांचों रूपसे पञ्चजनोत्पन्न पञ्चभूतयुक्त जगत्की सृष्टि करनेके लिये अभिलाषी होकर आज्ञा प्रचार किया करता है। हे पार्थ! अनन्तर वह पृथ्वी, वायु, आकाश, अग्नि और जलकी सृष्टि करता है, वह इस स्थावर-जङ्गमात्मक चतुर्विध लोकोंकी सृष्टि करता और अन्तरिक्ष तथा भूमितलमें भूरिवारि स्थापित करता है। (३८-४१)

हे राजन्! उसने ही इस विश्वको बनाया है, वह आत्मयोनि स्वयं ही सबको जीवित रखता है। अनन्तर वह भूपति सुरासुर, मनुष्यलोक, ऋषिगण, पितृगण, प्रजासमूह तथा प्राणियोंको संक्षेप रीतिसे विधिपूर्वक उत्पन्न करनेका अभिलाषी होकर शुभाशुभ स्थावर और जङ्गमोंकी सृष्टि करता है, इस लिये जानना चाहिये कि विष्वक्सेनसे सब कोई उत्पन्न हुए हैं। जो वर्त्तमान है, जो होगा, तुम वह सब

मृत्युश्चैव प्राणिनामन्तकाले साक्षात्कृष्णः शाश्वतो धर्मवाहः ।
भूतं च यच्चेह न विद्म किंचिद्विष्वक्सेनात्सर्वमेतत्प्रतीहि ॥ ४४ ॥
यत्प्रशस्तं च लोकेषु पुण्यं यच्च शुभाशुभम् ।
तत्सर्वं केशवोऽचिन्त्यो विपरीतमतः परम् ॥ ४५ ॥
एतादृशः केशवोऽतश्च भूयो नारायणः परमश्चाव्ययश्च ।
मध्याद्यन्तस्य जगतस्तस्थुषश्च बुभूषतां प्रभवश्चाव्ययश्च ॥ ४६॥[७३१२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे महापुरुषमाहात्म्ये अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥

युधिष्ठिर उवाच- ब्रूहि ब्राह्मणपूजायां व्युष्टिं त्वं मधुसूदन ।
वेत्ता त्वमस्य चार्थस्य वेद त्वां हि पितामहः ॥ १ ॥
वासुदेव उवाच- शृणुष्वावहितो राजन्द्विजानां भरतर्षभ ।
यथातत्त्वेन वदतो गुणान्वै कुरुसत्तम ॥ २ ॥
द्वारवत्यां समासीनं पुरा मां कुरुनन्दन ।
प्रद्युम्नः परिपप्रच्छ ब्राह्मणैः परिकोपितः ॥ ३ ॥
किं फलं ब्राह्मणेष्वस्ति पूजायां मधुसूदन ।

इस केशवको ही जानो । (४२—४३)

शाश्वत धर्मवाही कृष्ण ही प्राणियोंके अन्तकालमें साक्षात् मृत्युस्वरूप हैं । इस लोकमें जो कुछ अतीत हुआ तथा जो विषय हम लोगोंको मालूम नहीं हैं, उन सबको भी विष्वक्सेन नारायण जानो । लोकमें जो कुछ प्रशस्त अथवा जो कुछ शुभ अशुभ अचिन्तनीय विषय हैं, वे सब केशवके ही रूप हैं; जो उससे भिन्न है, वही विपरीत है । केशवका ऐसा ही प्रभाव है, इसही निमित्त ये नारायण परम अव्यय हैं, येही जगत्‌की आदि, मध्य और अन्तमें निवास करते हैं । येही जगत्‌की उत्पत्तिके कारण हैं, इनका विनाश नहीं है; इन्हें जाननेकी इच्छा करो । (४४-४५)

अनुशासनपर्वमें १५८ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें १५९ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले हे मधुसूदन ! ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे क्या फल होता है, उसे तुम वर्णन करो, तुम ही इस विषयके जाननेवाले हो और पितामह तुम्हें विशेष रीतिसे जानते हैं । (१)

वासुदेव बोले, हे कुरुसत्तम भरतकुलधुरन्धर महाराज! मैं यथार्थ रीतिसे ब्राह्मणोंके गुणोंको वर्णन करता हूं, तुम सावधान होकर सुनो । हे कुरुनन्दन ! पहले द्वारकानगरमें मेरे बैठे रहनेपर

ईश्वरत्वं कुतस्तेषामिहैव च परत्र च ॥ ४ ॥
सदा द्विजातीन्संपूज्य किं फलं तत्र मानद।
एतद् ब्रूहि स्फुटं सर्वं सुमहान्संशयोऽत्र मे ॥ ५ ॥
इत्युक्ते वचने तस्मिन्प्रद्युम्नेन तथा त्वहम्।
प्रत्यब्रुवं महाराज यत्तच्छृणु समाहितः ॥ ६ ॥
व्युष्टिं ब्राह्मणपूजायां रौक्मिणेय निबोध मे।
एते हि सोमराजान ईश्वराः सुखदुःखयोः ॥ ७ ॥
अस्मिँल्लोके रौक्मिणेय तथाऽमुष्मिंश्च पुत्रक।
ब्राह्मणप्रमुखं सौम्यं न मेऽत्रास्ति विचारणा ॥ ८ ॥
ब्राह्मणप्रतिपूजायामायुः कीर्तिर्यशो बलम्।
लोका लोकेश्वराश्चैव सर्वे ब्राह्मणपूजकाः ॥ ९ ॥
त्रिवर्गे चापवर्गे च यशःश्रीरोगशान्तिषु।
देवतापितृपूजासु सन्तोष्याश्चैव नो द्विजाः ॥ १० ॥
तत्कथं वै नाद्रियेयमीश्वरोऽस्मीति पुत्रक।
मा ते मन्युर्महाबाहो भवत्वत्र द्विजान्प्रति ॥ ११ ॥

प्रद्युम्नने ब्राह्मणोंके द्वारा प्रकोपित होकर मुझसे पूछा, हे मधुसूदन! ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे क्या फल होता है और इस लोक तथा परलोकमें किस निमित्त उनका ईश्वरत्व हुआ है? हे मानद! सर्वदा द्विजातियोंकी पूजा करनेसे क्या फल है? आप स्पष्ट रीतिसे मेरे समीप उसका उपदेश करिये; इस विषयमें मुझे बहुत ही सन्देह हुआ है। (२--५)

हे महाराज! जब प्रद्युम्नने ऐसा कहा, तब मैंने उन्हें जो उत्तर दिया था, उसे सावधान होके सुनो। हे रुक्मिणीनन्दन! ब्राह्मणोंकी पूजाका फल मेरे समीप सुनो। हे रुक्मिणीपुत्र! ये सोमराज हैं, येही इस लोक और परलोकमें सुख दुःखके ईश्वर हैं; ब्राह्मणोंसे कल्याण होता है, इस विषयमें मुझे शंका नहीं करता। ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे आयु, यश और बलकी वृद्धि होती है, जो लोग ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं, वे लोकेश्वर होते हैं। त्रिवर्ग, अपवर्ग, यश, श्री और रोगशान्तिविषयमें देवताओं तथा पितरोंकी पूजा करनेके समयमें ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करना हम लोगोंका कर्त्तव्य कार्य है। हे पुत्र! मैं ईश्वर होके भी किस हेतु ब्राह्मणोंका समादर न करूंगा?

ब्राह्मणा हि महद्भूतमस्मिन्लोके परत्र च ।
भस्म कुर्युर्जगदिदं क्रुद्धाः प्रत्यक्षदर्शिनः ॥ १२ ॥
अन्यानपि सृजेयुश्च लोकान्लोकेश्वरांस्तथा ।
कथं तेषु न वर्तेरन्सम्यग्ज्ञानात्सुतेजसः ॥ १३ ॥
अवसन्मद्गृहे तात ब्राह्मणो हरिपिङ्गलः ।
चीरवासा बिल्वदण्डी दीर्घश्मश्रुः कृशो महान् ॥१४॥
दीर्घेभ्यश्च मनुष्येभ्यः प्रमाणादधिको भुवि ।
स स्वैरं चरते लोकान्ये दिव्या ये च मानुषाः ॥ १५ ॥
इमां गाथां गायमानश्चत्वरेषु सभासु च ।
दुर्वाससं वासयेत्को ब्राह्मणं सत्कृतं गृहे ॥ १६ ॥
रोषणः सर्वभूतानां सूक्ष्मेऽप्यपकृते कृते ।
परिभाषां च मे श्रुत्वा को नु दद्यात्प्रतिश्रयम्॥ १७ ॥
यो मां कश्चिद्वासयीत न स मां कोपयेदिति ।
यस्मान्नाद्रियते कश्चित्ततोऽहं समवासयम् ॥ १८ ॥
स संभुङ्क्ते सहस्राणां बहूनामन्नमेकदा ।

हे महाबाहो ! द्विजोंके विषयमें तुम्हें मन्यु न होवे । (६—११)

इस लोक और परलोकमें ब्राह्मण ही महाभूत हैं, प्रत्यक्षदर्शी ब्राह्मण लोग क्रुद्ध होनेसे इस जगत्‌को भस्म कर सकते हैं, और दूसरे लोकों तथा लोकेश्वरोंकी सृष्टि भी कर सकते हैं। जिनमें पूर्ण ज्ञान और सुन्दर तेज है, ब्राह्मणोंके अधीनमें क्यों न वर्त्तमान रहेंगे। हे तात ! मेरे गृहमें चीरवासा, बेलका दण्ड धारण करनेवाला, दीर्घश्मश्रु, अत्यन्त कृश, पिङ्गलवर्ण एक ब्राह्मण वास करता था। भूलोकमें जो सब बडे मनुष्य हैं, वह उन सबसे अधिक बडा था, वह मनुष्यलोक तथा समस्त दिव्य लोकोंमें विचरता था, वह चत्वर और सभाके बीच यह गाथा गाता था, कि दुर्वासा ब्राह्मणको सत्कारपूर्वक कौन गृहमें वास करा सकता है, अल्प अपराध करनेपर भी मैं सर्वभूतोंके विषयमें रोष प्रकाश किया करता हूं, मेरा वचन सुनके कौन मुझे आश्रय देगा ? (१२-१७)

जो कोई मुझे गृहमें वास करावेगा, वह मुझे प्रकोपित न कर सकेगा। दुर्वासा ब्राह्मणके ऐसी कथा प्रचार करते रहनेपर जब किसीने भी उनका आदर न किया; तब मैंने उन्हें निज गृहमें

एकदा सोऽल्पकं भुङ्क्ते न चैवैति पुनर्गृहान् ॥ १९ ॥
अकस्माच्च प्रहसति तथाऽकस्मात्प्ररोदिति ।
न चास्य वयसा तुल्यः पृथिव्यामभवत्तदा ॥ २० ॥
अथ स्वावसथं गत्वा स शय्यास्तरणानि च ।
कन्याश्चालङ्कृता दग्ध्वा ततो व्यपगतः पुनः ॥२१॥
अथ मामब्रवीद्भूयः स मुनिः संशितव्रतः ।
कृष्ण पायसमिच्छामि भोक्तुमित्येव सत्वरः ॥२२ ॥
तदैव तु मया तस्य चित्तज्ञेन गृहे जनः ।
सर्वाण्यन्नानि पानानि भक्ष्याश्चोच्चावचास्तथा ॥२३ ॥
भवन्तु सत्कृतानीह पूर्वमेव प्रचोदितः ।
ततोऽहं ज्वलमानं वै पायसं प्रत्यवेदयम् ॥ २४ ॥
तं भुक्त्वैव स तु क्षिप्रं ततो वचनमब्रवीत् ।
क्षिप्रमङ्गानि लिम्पस्व पायसेनेति स स्म ह ॥ २५ ॥
अविमृश्यैव च ततः कृतवानस्मि तत्तथा ।
तेनोच्छिष्टेन गात्राणि शिरश्चैवाभ्यमृक्षयम् ॥ २६ ॥
स ददर्श तदाभ्याशे मातरं ते शुभाननाम् ।
तामपि स्मयमानां स पायसेनाभ्यलेपयत् ॥ २७ ॥

वास कराया। उन्होंने एक ही बार सहस्र लोगों तथा उससे भी अधिक लोगोंका अन्न भोजन किया, किसी बार थोड़ा ही भोजन किया; पुनर्वार गृहमें न आये। सहसा हंसे कभी अकस्मात् रोदन करनेमें प्रवृत्त हुए। उस समय पृथ्वीपर उनके तुल्य अवस्थावाला पुरुष न था। (१८—२०)

अनन्तर उन्होंने आश्रममें जाके बिछाई हुई शय्या और अलंकृत कन्याओंको जलाकर वहांसे प्रस्थान किया। अन्तमें वह संशितव्रती मुनि मुझसे फिर बोले, हे कृष्ण! मैं शीघ्र ही पायस भोजन करनेकी इच्छा करता हूं। मैं उनका मन जानता था, इसलिये पहलेसे ही परिजनोंको सब अन्न पान तथा अनेक प्रकारकी भक्ष्यवस्तु तय्यार रखनेको कहा था। अनन्तर मैंने उन्हें उष्ण पायस प्रदान किया, वह शीघ्र ही उसे भोजन करके बोले, मेरे सारे शरीरमें पायस लगाओ। (२१—२५)

मैंने उनके वचनमें कुछ भी विचार न करके वैसा ही किया; वह जूठा पायस मेरे शरीर और मस्तकमें लगा

मुनिः पायसदिग्धाङ्गीं रथे तूर्णमयोजयत् ।
तमारुह्य रथं चैव निर्ययौ स गृहान्मम ॥ २८ ॥
अग्निवर्णो ज्वलन्धीमान्स द्विजो रथधुर्यवत् ।
प्रतोदेनातुदद्बालां रुक्मिणीं मम पश्यतः ॥ २९ ॥
न च मे स्तोकमप्यासीद्दुःखमीर्ष्याकृतं तदा ।
तथा स राजमार्गेण महता निर्ययौ बहिः ॥ ३० ॥
तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं दाशार्हा जातमन्यवः ।
तत्राजल्पन्मिथः केचित्समाभाष्य परस्परम् ॥ ३१ ॥
ब्राह्मणा एव जायेरन्नान्यो वर्णः कथंचन ।
को ह्येनं रथमास्थाय जीवेदन्यः पुमानिह ॥ ३२ ॥
आशीविषविषं तीक्ष्णं ततस्तीक्ष्णतरो द्विजः ।
ब्रह्माशीविषदग्धस्य नास्ति कश्चिच्चिकित्सकः ॥ ३३ ॥
तस्मिन्व्रजति दुर्धर्षे प्रास्खलद्रुक्मिणी पथि ।
तन्नामर्षयत श्रीमांस्ततस्तूर्णमचोदयत् ॥ ३४ ॥
ततः परमसंक्रुद्धो रथात्प्रस्कन्द्य स द्विजः ।

दिया, उन्होंने उस समय तुम्हारी शुभानना जननीको देखा और इसके उसके शरीरमें भी पायस लगाया, उस समय मुनिने पायसलिप्ताङ्गी तुम्हारी माताको शीघ्र ही रथमें योजना किया और उस रथपर चढके मेरे गृहसे बाहिर हुए, उस जलते हुए अग्निवर्ण रथ धुर्यवत् धीमान् ब्राह्मणने मेरे सम्मुखमें ही बालिका रुक्मिणीको कोडेसे मारा। उस समय मुझे ईर्षाजनित अल्पमात्र भी दुःख न हुआ, वह प्रशस्त राजपथके द्वारा बाहर निकले। (२८-३०)

दाशार्हगण उस महत् आश्चर्यको देखकर क्रुद्ध हुए, उनके बीच कोई कोई आपसमें वार्त्तालाप करते हुए जल्पना करने लगे, कि ब्राह्मणगण ही यथार्थमें जन्म ग्रहण करते हैं; अन्य वर्ण किसी प्रकारसे पुरुष ही नहीं हैं। दूसरा कौन पुरुष इस रथपर चढके जीवित रहनेमें समर्थ होगा? आशीविष सर्पका विष तीक्ष्ण है, ब्राह्मण उससे भी अधिक तीक्ष्ण है; जो पुरुष ब्राह्मण रूपी विषसे जलता है, उसका कोई चिकित्सक नहीं है। उस दुर्द्धर्ष दुर्वासाके गमन करते रहनेपर मार्गमें रुक्मिणी शिथिल होगई, श्रीमान् मुनिने उस विषयमें क्रुद्ध होकर वेगपूर्वक रथको चलाया। (३१—३४)

पदातिरुत्पथेनैव प्राद्रवद्दक्षिणामुखः ॥ ३५ ॥
तमुत्पथेन धावन्तमन्वधावं द्विजोत्तमम् ।
तथैव पायसादिग्धः प्रसीद भगवन्निति ॥ ३६ ॥
ततो विलोक्य तेजस्वी ब्राह्मणो मामुवाच ह ।
जितः क्रोधस्त्वया कृष्ण प्रकृत्यैव महाभुज ॥ ३७ ॥
न तेऽपराधमिह वै दृष्टवानस्मि सुव्रत ।
प्रीतोऽस्मि तव गोविन्द वृणु कामान्यथेप्सितान् ॥३८॥
प्रसन्नस्य च मे तात पश्य व्युष्टिं यथाविधि ।
यावदेव मनुष्याणामन्ने भावो भविष्यति ॥ ३९ ॥
यथैवान्ने तथा तेषां त्वयि भावो भविष्यति ।
यावच्च पुण्या लोकेषु त्वयि कीर्तिर्भविष्यति ॥ ४० ॥
त्रिषु लोकेषु तावच्च वैशिष्ट्यं प्रतिपत्स्यसे ।
सुप्रियः सर्वलोकस्य भविष्यसि जनार्दन ॥ ४१ ॥
यत्ते भिन्नं च दग्धं च यच्च किंचिद्विनाशितम् ।
सर्वं तथैव द्रष्टाऽसि विशिष्टं वा जनार्दन ॥ ४२ ॥
यावदेतत्प्रलिप्तं ते गात्रेषु मधुसूदन ।

अनन्तर वह द्विजवर अत्यन्त क्रुद्ध होकर रथसे उतरके पादचारी हुए और दक्षिणकी ओर ऊर्ध्वमार्गसे दौडे। उनके ऊर्ध्वमार्गसे दौडनेपर मैंने उस द्विजवरका अनुधावन किया और उस ही भांति पायसलिप्त रहके उनसे कहा, 'हे भगवन्! प्रसन्न होइये।' अनन्तर उस तेजस्वी ब्राह्मणने मुझे देखकर कहा, हे महाभुज कृष्ण! तुमने स्वभावसे क्रोधका जय किया है। हे सुव्रत! इस विषयमें मैंने तुम्हारा कुछ भी अपराध नहीं देखा। हे गोविन्द! इसलिये मैं तुमपर प्रसन्न हुआ हूं, तुम्हें जो अभिलाष हो, वह वर मांगो। हे तात! मेरे प्रसन्न होनेसे जो फल होता है, उसे विधिपूर्वक देखो। जबतक मनुष्योंकी अन्नमें अभिलाष रहेगी, तबतक तुमपर मनुष्योंकी भक्ति रहेगी और लोकके बीच तुम्हारे पुण्यका वर्णन होगा; उतने समयतक तीनों लोकोंके बीच तुम्हें विशिष्टता प्राप्त होगी। (३५—४१)

हे जनार्दन! तुम सब लोकोंमें अत्यन्त ही प्रिय होगे; तुम्हारा जो कुछ टूटा, जला वा नष्ट हुआ है, उन सब वस्तुओंको तुम वैसी ही तथा उससे भी उत्कृष्ट देखोगे। हे मधुसूदन! हे

अतो मृत्युभयं नास्ति यावदिच्छसि चाच्युत ॥ ४३ ॥
न तु पादतले लिप्ते कस्मात्ते पुत्रकाद्य वै ।
नैतन्मे प्रियमित्येवं स मां प्रीतोऽब्रवीत्तदा ॥ ४४ ॥
इत्युक्तोऽहं शरीरं स्वं ददर्श श्रीसमायुतम् ।
रुक्मिणीं चाब्रवीत्प्रीतः सर्वस्त्रीणां वरं यशः ॥ ४५ ॥
कीर्तिं चानुत्तमां लोके समवाप्स्यसि शोभने ।
न त्वां जरा वा रोगो वा वैवर्ण्यं चापि भाविनि ॥४६॥
स्प्रक्ष्यन्ति पुण्यगन्धा च कृष्णमाराधयिष्यसि ।
षोडशानां सहस्राणां वधूनां केशवस्य ह ॥ ४७ ॥
वरिष्ठा च सलोक्या च केशवस्य भविष्यसि ।
तव मातरमित्युक्त्वा ततो मां पुनरब्रवीत् ॥ ४८ ॥
प्रस्थितः सुमहातेजा दुर्वासाऽग्निरिव ज्वलन् ।
एषैव ते बुद्धिरस्तु ब्राह्मणान्प्रति केशव ॥ ४९ ॥
इत्युक्त्वा स तदा पुत्र तत्रैवान्तरधीयत ।
तस्मिन्नन्तर्हिते चाहमुपांशुव्रतमाचरम् ॥ ५० ॥

अच्युत! तुम्हारे शरीरमें जितने परिमाणसे पायस लिप्त हुआ है, तुम जबतक इच्छा करो इसके सहारे तुम्हें मृत्युका भय नहीं है। हे वत्स! तुम्हारे दोनों पादतल किस हेतुसे लिप्त नहीं हुए इस वचनका उत्तर मुझे प्रिय नहीं है। उन्होंने प्रसन्न होकर उस समय मुझसे ऐसा ही वचन कहा था। जब उन्होंने ऐसा कहा, तब मैंने अपने शरीरको श्रीसम्पन्न देखा। (४१-४५)

अनन्तर वह प्रसन्न होके रुक्मिणीसे बोले, हे सुन्दरी! लोकके बीच तुम सब स्त्रियोंसे श्रेष्ठ यश और कीर्त्ति लाभ करोगी। हे भाविनि! तुम्हें जरा, समस्त रोग अथवा वैवर्ण्य स्पर्श न कर सकेगा। तुम पवित्र और सुगन्धयुक्त होकर कृष्णकी आराधना करोगी। केशवकी सोलह हजार स्त्रियोंके बीच तुम वरिष्ठा होगी और कृष्णके तुल्य लोकोंमें निवास करोगी। (४५-४८)

हे पुत्र! प्रस्थान करनेमें उद्यत महातेजस्वी दुर्वासाने अग्निकी भांति महाप्रज्वलित होके तुम्हारी मातासे इतनी बात कहके मुझसे फिर कहा। हे केशव! ब्राह्मणोंके विषयमें तुम्हारी ऐसी ही बुद्धि रहे। वह विप्रवर उस समय इतनी कथा कहके उस ही स्थान में अन्तर्हित हुए। उनके अन्तर्द्धान

यत्किंचिद्ब्राह्मणो ब्रूयात्सर्वं कुर्यामिति प्रभो।
एतद्व्रतमहं कृत्वा मात्रा ते सह पुत्रक ॥ ५१ ॥
ततः परमहृष्टात्मा प्राविशं गृहमेव च।
प्रविष्टमात्रश्च गृहे सर्वं पश्यामि तन्नवम् ॥ ५२ ॥
यद्भिन्नं यच्च वै दग्धं तेन विप्रेण पुत्रक।
ततोऽहं विस्मयं प्राप्तः सर्वं दृष्ट्वा नवं दृढम् ॥ ५३ ॥
अपूजयं च मनसा रौक्मिणेय सदा द्विजान्।
इत्यहं रौक्मिणेयस्य पृच्छतो भरतर्षभ ॥ ५४ ॥
माहात्म्यं द्विजमुख्यस्य सर्वमाख्यातवांस्तदा।
तथा त्वमपि कौन्तेय ब्राह्मणान्सततं प्रभो ॥ ५५ ॥
पूजयस्व महाभागान्वाग्भिर्दानैश्च नित्यदा।
एवं व्युष्टिमहं प्राप्तो ब्राह्मणस्य प्रसादजाम्।
यच्च मामाह भीष्मोऽयं तत्सत्यं भरतर्षभ ॥ ५६ ॥ [७३६८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे दुर्वासोभिक्षा नाम एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥

युधिष्ठिर उवाच- दुर्वाससः प्रसादात्ते यत्तदा मधुसूदन।
अवाप्तमिह विज्ञानं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥

होनेपर मैंने उपांशु व्रताचरण किया, ब्राह्मण लोग जो कुछ कहेंगे, मैं वही करूंगा। हे पुत्र! तुम्हारी माताके सहित मैंने यही व्रत करके अन्तमें परम हृष्टचित्तसे गृहमें प्रवेश किया। ४८-५२

हे पुत्र! अनन्तर निज भवनमें प्रविष्ट होकर उस विप्रके द्वारा जो कुछ भिन्न वा भस्म हुआ था उन सबको मैंने नूतन देखा। हे रुक्मिणीनन्दन! मैं सब वस्तुओंको नवीन तथा दृढ देखके विस्मित हुआ और सदा ब्राह्मणोंकी मनहीमन पूजा करने लगा। हे भरतश्रेष्ठ! उस समय रुक्मिणीपुत्रके पूछनेपर मैंने श्रेष्ठ विप्रका यही सब माहात्म्य कहा था। हे प्रभु कुन्तीनन्दन! आप भी महाभाग ब्राह्मणोंकी सदा धन और गौवोंके सहारे पूजा करिये, मैंने ब्राह्मणोंके प्रसादसे ही इस प्रकार फल पाया है। हे भरतर्षभ! भीष्मने मेरे विषयमें जो कुछ कहा है, वह सब सत्य है। (५२—५६)

अनुशासनपर्वमें १५९ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १६० अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे मधुसूदन! दुर्वा-

महाभाग्यं च यत्तस्य नामानि च महात्मनः ।
तत्त्वतो ज्ञातुमिच्छामि सर्वं मतिमतां वर ॥ २ ॥
वासुदेव उवाच– हन्त ते कीर्तयिष्यामि नमस्कृत्य कपर्दिने ।
यदवाप्तं मया राजञ्छ्रेयो यच्चार्जितं यशः ॥ ३ ॥
प्रयतः प्रातरुत्थाय यदधीये विशां पते ।
प्राञ्जलिः शतरुद्रीयं तन्मे निगदतः शृणु ॥ ४ ॥
प्रजापतिस्तत्ससृजे तपसोऽन्ते महातपाः ।
शङ्करस्त्वसृजत्तात प्रजाः स्थावरजङ्गमाः ॥ ५ ॥
नास्ति किंचित्परं भूतं महादेवाद्विशां पते ।
इह त्रिष्वपि लोकेषु भूतानां प्रभवो हि सः ॥ ६ ॥
न चैवोत्सहते स्थातुं कश्चिदग्रे महात्मनः ।
न हि भूतं समं तेन त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ७ ॥
गन्धेनापि हि संग्रामे तस्य क्रुद्धस्य शत्रवः ।
विसंज्ञा हतभूयिष्ठा वेपन्ते च पतन्ति च ॥ ८ ॥
घोरं च निनदं तस्य पर्जन्यनिनदोपमम् ।

साके प्रसादसे उस समय तुम्हें जो विज्ञान प्राप्त हुआ था मेरे समीप तुम्हें उसकी व्याख्या करनी योग्य है। हे मतिमत्प्रवर! उस महात्माके महत् भाग्य और नामोंको जाननेकी अभिलाष करता हूं। (१—२)

वासुदेव बोले, हे महाराज! अच्छा, मैंने जो कुछ कल्याण लाभ तथा यश उपार्जन किया है, कपर्दीको नमस्कार करके वह सब विषय आपके समीप वर्णन करता हूं। हे नरनाथ! मैं प्रातःकालमें उठकर प्रयत तथा प्राञ्जलि होकर जो अध्ययन किया करता हूं, वह शतरुद्रीय आपके निकट कहता हूं, सुनिये। हे तात! महातपस्वी प्रजापतिने तपस्याकी समाप्तिमें उसे सृजा है, शङ्करने इस स्थानपर जङ्गममय समस्त प्रजाकी सृष्टि की है। (३-५)

हे नरनाथ! महादेवसे श्रेष्ठ कोई प्राणी नहीं है, इस त्रिभुवनके बीच वह सब प्राणियोंके मध्यमें श्रेष्ठ हैं; उस महात्माके आगे कोई भी निवास करनेका उत्साह नहीं कर सकता, तीनों लोकोंके बीच उनके समान कोई भी विद्यमान नहीं है, उनके क्रुद्ध होनेपर संग्राममें शत्रुगण उनकी गन्धके द्वाराही संज्ञारहित तथा बहुतेरे हत होकर कांपते वा गिरते हैं। बादल गर्जनेकी भांति उन-

श्रुत्वा विशीर्येद्धृदयं देवानामपि संयुगे ॥ ९ ॥
यांश्च घोरेण रूपेण पश्येत्क्रुद्धः पिनाकधृत्।
न सुरा नासुरा लोके न गन्धर्वा न पन्नगाः ॥ १० ॥
कुपिते सुखमेधन्ते तस्मिन्नपि गुहागताः।
प्रजापतेश्च दक्षस्य यजतो वितते क्रतौ ॥ ११ ॥
विव्याध कुपितो यज्ञं निर्भयस्तु भवस्तदा।
धनुषा बाणमुत्सृज्य स घोषं विननाद च ॥ १२ ॥
तेन शर्म कुतः शान्तिं विषादं लेभिरे सुराः।
विद्धे च सहसा यज्ञे कुपिते च महेश्वरे ॥ १३ ॥
तेन ज्यातलघोषेण सर्वे लोकाः समाकुलाः।
बभूवुरवशाः पार्थ विषेदुश्च सुरासुराः ॥ १४ ॥
आपश्चुक्षुभिरे चैव चकम्पे च वसुन्धरा।
व्यद्रवन् गिरयश्चापि द्यौः पफाल च सर्वशः ॥ १५ ॥
अन्धेन तमसा लोकाः प्रावृता न चकाशिरे।
प्रणष्टा ज्योतिषां भाश्च सह सूर्येण भारत ॥ १६ ॥
भृशं भीतास्ततः शान्तिं चक्रुः स्वस्त्ययनानि च।
ऋषयः सर्वभूतानामात्मनश्च हितैषिणः ॥ १७ ॥

का घोर शब्द सुनके देवताओंका भी हृदय विदीर्ण होता है, पिनाकधारी क्रुद्ध होके जिन्हें घोर रूपसे देखते हैं, उनका भी हृदय विदीर्ण होजाता है। लोकोंके बीच उनके कुपित होनेपर देवता, असुर, गन्धर्व और पन्नगगण, गुफामें प्रविष्ट होके भी सुख लाभ करनेमें समर्थ नहीं होते। (९-११)

यजमान प्रजापति दक्षके विस्तृत यज्ञको महादेवने निर्भय और कुपित होकर विद्ध किया था। उन्होंने शरासनसे बाण छोडकर घोर निनाद किया, उस शब्दको सुनके सुख और शान्ति कहां ? देववृन्द भयभीत हुए, सहसा यज्ञ विद्ध हुआ और महेश्वरके क्रुद्ध होनेपर उस ज्यातलशब्दसे सब लोक समाकुल तथा अवश हुए। हे पार्थ ! देव, असुर सब कोई विषण्ण हुए, जल उथलने लगा और पृथ्वी कांपने लगी। सब पर्वत विद्रुत हुए और आकाशमण्डल विशीर्ण होगया, सब लोक अन्धतमसाच्छन्न होके प्रकाशरहित हुए। हे भारत ! सूर्यके सहित ज्योतिवाले पदार्थोंकी प्रभा नष्ट हुई। अनन्तर सर्व-

ततः सोऽभ्यद्रवद्देवान्रुद्रो रौद्रपराक्रमः ।
भगस्य नयने क्रुद्धः प्रहारेण व्यशातयत् ॥ १८ ॥
पूषणं चाभिदुद्राव पादेन च रुषान्वितः ।
पुरोडाशं भक्षयतो दशनान्वै व्यशातयत् ॥ १९ ॥
ततः प्रणेमुर्देवास्ते वेपमानाः स्म शङ्करम् ।
पुनश्च सन्दधे रुद्रो दीप्तं सुनिशितं शरम् ॥ २० ॥
रुद्रस्य विक्रमं दृष्ट्वा भीता देवाः सहर्षिभिः ।
ततः प्रसादयामासुः शर्वं ते विबुधोत्तमाः ॥ २१ ॥
जेपुश्च शतरुद्रीयं देवाः कृत्वाऽञ्जलिं तदा ।
संस्तूयमानस्त्रिदशैः प्रससाद महेश्वरः ॥ २२ ॥
रुद्रस्य भागं यज्ञे च विशिष्टं ते त्वकल्पयन् ।
भयेन त्रिदशा राजञ्छरणं च प्रपेदिरे ॥ २३ ॥
तेन चैव हि तुष्टेन स यज्ञः सन्धितोऽभवत् ।
यद्यच्चापहृतं तत्र तत्तथैवान्वजीवयत् ॥ २४ ॥
असुराणां पुराण्यासंस्त्रीणि वीर्यवतां दिवि ।

भूत तथा आत्महितैषी ऋषिगण अत्यन्त भयभीत होकर शान्ति और स्वस्त्ययन करने लगे। (११-१७)

अनन्तर रौद्रपराक्रमी रुद्रदेव क्रुद्ध होकर देवताओंकी ओर दौडे, उन्होंने क्रुद्ध होकर प्रहारके द्वारा भगका दोनों नेत्र विनष्ट किया और रोषित तथा पादचारी होकर पूषाकी ओर दौडे। पूषाके उस समय पुरोडाश भक्षण करते रहनेपर रुद्रदेवने क्रुद्ध होकर उसके सब दांतोंको उखाड दिया। अनन्तर उन देवताओंने कम्पित होकर शङ्करको प्रणाम किया; रुद्रदेवने फिर प्रदीप्त शाणित बाण सन्धान किया, ऋषियोंके सहित सब देवता महादेवका पराक्रम देखके भयभीत हुए। (१८—२१)

अनन्तर उन श्रेष्ठ देवताओंने शङ्करको प्रसन्न किया, देवगण उस समय हाथ जोडके शतरुद्री जप करने लगे, महेश्वर देवताओंके द्वारा सब प्रकारसे स्तुतियुक्त होकर प्रसन्न हुए, देवताओंने रुद्रदेवके यज्ञभागकी विशिष्टरूपसे कल्पना की। (२१—२३)

हे महाराज! देववृन्द डरकर महादेवके शरणमें गये, तब महादेवने प्रसन्न होकर उस यज्ञको सन्धित किया, उस यज्ञमें जो जो वस्तु अपहृत हुई थी, उन्हें वह सब उसही भांति फिर सजीव

आयसं राजतं चैव सौवर्णमपि चापरम् ॥ २५ ॥
नाशकत्तानि मघवा जेतुं सर्वायुधैरपि ।
अथ सर्वेऽमरा रुद्रं जग्मुः शरणमर्दिताः ॥ २६ ॥
तत ऊचुर्महात्मानो देवाः सर्वे समागताः ।
रुद्र रौद्रा भविष्यन्ति पशवः सर्वकर्मसु ॥ २७ ॥
जहि दैत्यान्सह पुरैर्लोकांस्त्रायस्व मानद ।
स तथोक्तस्तथेत्युक्त्वा कृत्वा विष्णुं शरोत्तमम् ॥ २८ ॥
शल्यमग्निं तथा कृत्वा पुङ्खं वैवस्वतं यमम् ।
वेदान्कृत्वा धनुः सर्वान् ज्यां च सावित्रिमुत्तमाम् ॥२९॥
ब्रह्माणं सारथिं कृत्वा विनियुज्य च सर्वशः ।
त्रिपर्वणा त्रिशल्येन तेन तानि बिभेद सः ॥ ३० ॥
शरेणादित्यवर्णेन कालाग्निसमतेजसा ।
ते सुराः सपुरास्तत्र दग्धा रुद्रेण भारत ॥ ३१ ॥
तं चैवाङ्कगतं दृष्ट्वा बालं पञ्चशिखं पुनः ।
उमा जिज्ञासमाना वै कोऽयमित्यब्रवीत्तदा ॥ ३२ ॥
असूयतश्च शक्रस्य वज्रेण प्रहरिष्यतः ।

कर दी । (२१ - २४)

सुरलोकमें वीर्यवान् असुरोंके लोह-मय, रजतमय और तीसरा स्वर्णमय ये तीन पुर थे, इन्द्र समस्त अस्त्रोंसे उसे भेद करनेमें समर्थ नहीं हुए । अनन्तर देववृन्द पीडित होकर महारुद्रके शरणागत हुए, समागत महानुभाव देवगण बोले, हे रुद्रदेव ! पशुगण सब कर्मोंमेंही अत्यन्त भयङ्कर होते हैं । हे मानद ! इसलिये त्रिपुरके सहित दैत्योंका संहार करके सब लोगोंका परित्राण करिये । उन्होंने देवताओंका वचन सुनके कहा, "ऐसा ही होगा" इतनी बात कहके विष्णुको श्रेष्ठ बाण, अग्निको शल्य, वैवस्वत यमको पुङ्ख, वेदोंको धनुष, सावित्रीको रोदा और ब्रह्माको सारथी करके सबके संयोग तथा काल-क्रमसे त्रिपर्वयुक्त तीन शल्यके सहारे उन तीनों पुरोंको भेद किया।(२५-३०)

हे भारत ! रुद्रदेवने प्रलयकालकी अग्निसदृश तेजसम्पन्न आदित्यवर्ण शरके सहार तीनों पुरोंके सहित असुरोंको जलाया था । वेही पञ्चशिख बालक-रूपसे अङ्कगत हुए तब उमाने पूछा, "ये कौन हैं ?" उस समय देवराज असूया करते हुए वज्रसे प्रहार करनेके

सवज्रं स्तम्भयामास तं बाहुं परिघोपमम् ॥ ३३ ॥
न संबुबुधिरे चैव देवास्तं भुवनेश्वरम् ।
सप्रजापतयः सर्वे तस्मिन्मुमुहुरीश्वरे ॥ ३४ ॥
ततो ध्यात्वा च भगवान्ब्रह्मा तममितौजसम् ।
अयं श्रेष्ठ इति ज्ञात्वा ववन्दे तमुमापतिम् ॥ ३५ ॥
ततः प्रसादयामासुरुमां रुद्रं च ते सुराः ।
बभूव स तदा बाहुर्बलहन्तुर्यथा पुरा ॥ ३६ ॥
स चापि ब्राह्मणो भूत्वा दुर्वासा नाम वीर्यवान् ।
द्वारवत्यां मम गृहे चिरं कालमुपावसत् ॥ ३७ ॥
विप्रकारान्प्रयुङ्क्ते स्म सुबहून्मम वेश्मनि ।
तानुदारतया चाहं चक्षमे चातिदुःसहान् ॥ ३८ ॥
स वै रुद्रः स च शिवः सोऽग्निः सर्वः स सर्वजित् ।
स चैवेन्द्रश्च वायुश्च सोऽश्विनौ स च विद्युतः ॥ ३९ ॥
स चन्द्रमाः स चेशानः स सूर्यो वरुणश्च सः ।
स कालः सोऽन्तको मृत्युः स यमो राज्यहानि च ॥ ४० ॥
मासार्धमासा ऋतवः संध्ये संवत्सरश्च सः ।

लिये उद्यत हुए, तब उन्होंने इन्द्रकी परिघसदृश भुजाको वज्रके सहित स्तम्भित किया था; देवगण उस भुवनेश्वरको नहीं जान सके, प्रजापतिके सहित सब कोई ईश्वरविषयमें मोहित हुए थे। (३१-३४)

अनन्तर भगवान् ब्रह्माने उस अत्यन्त तेजस्वी रुद्रदेवको ध्यानके सहारे जाना, कि "येही श्रेष्ठ हैं," ऐसा जानके उन्होंने उमापतिकी वन्दना की थी। अनन्तर देवताओंने उमादेवी और रुद्रदेवको प्रसन्न किया, तब बल-निषूदन देवराजकी भुजा पहलेकी भांति होगई। उस रुद्रदेवने दुर्वासा नामक वीर्यवान् ब्राह्मण होकर द्वारकापुरीमें मेरे गृहके बीच बहुत समयतक वास किया था; उन्होंने मेरे गृहमें अनेक प्रकारके दुःसह व्यवहार किये, तौभी मैंने उदारताके सहित उन दुःसह व्यवहारोंको सहा था। (३५-३८)

वेही रुद्र, वेही शिव, वेही अग्नि, सर्व और सर्वजित् हैं, वेही इन्द्र और वायु हैं, वह अश्विनीकुमार और विद्युत् हैं; वेही चन्दमा, वेही ईशान, वेही सूर्य और वेही वरुण हैं। वेही काल, वेही अन्तक तथा मृत्यु हैं; वेही यम,

स धाता स विधाता च विश्वकर्मा स सर्ववित् ॥४१॥
नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव दिशोऽथ प्रदिशस्तथा।
विश्वमूर्तिरमेयात्मा भगवान्परमद्युतिः ॥ ४२ ॥
एकधा च द्विधा चैव बहुधा च स एव हि।
शतधा सहस्रधा चैव तथा शतसहस्रधा ॥ ४३ ॥
ईदृशः स महादेवो भूयश्च भगवानतः।
न हि शक्या गुणा वक्तुमपि वर्षशतैरपि ॥ ४४ ॥ [७४१२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे ईश्वरप्रशंसा नाम षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥

वासुदेव उवाच-युधिष्ठिर महाबाहो महाभाग्यं महात्मनः।
रुद्राय बहुरूपाय बहुनाम्ने निबोध मे ॥ १ ॥
वदन्त्यग्निं महादेवं तथा स्थाणुं महेश्वरम्।
एकाक्षं त्र्यम्बकं चैव विश्वरूपं शिवं तथा ॥ २ ॥
द्वे तनू तस्य देवस्य वेदज्ञा ब्राह्मणा विदुः।
घोरामन्यां शिवामन्यां ते तनू बहुधा पुनः ॥ ३ ॥
उग्रा घोरा तनुर्योऽस्य सोऽग्निर्विद्युत्स भास्करः।

वेही रात्रि और दिवस हैं। वेही पक्ष, महीना, ऋतु, दोनों सन्ध्या और संवत्सर हैं; वेही धाता, वेही विधाता, वेही विश्वकर्मा और वेही सर्ववित् हैं; वेही सब नक्षत्र, ग्रह, चारों दिशा और विदिशा हैं। वह अमरद्युति भगवान् विश्वमूर्त्ति तथा अमेयात्मा हैं; वेही ब्रह्मरूपसे एक प्रकार और जीव ब्रह्म भेदसे दो प्रकार हैं, प्रपञ्चरूपसे अनेक प्रकार, सहस्र प्रकार तथा सैकडों हजारों प्रकारके हैं। वह भूयान् भगवान् जन्मरहित महादेव ऐसे ही हैं; सौ वर्षमें भी उनके गुणोंका वर्णन नहीं किया जा सकता। (३९—४४)

अनुशासनपर्वमें १६० अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १६१ अध्याय।

वासुदेव बोले, हे महाबाहु युधिष्ठिर! अनेक रूप और अनेक नामयुक्त महानुभाव रुद्रदेवका जो महत् ऐश्वर्य है, वह मेरे समीप सुनो। महेश्वर महादेवको अग्नि, स्थाणु, एकाक्ष, त्र्यम्बक, विश्वरूप और शिव कहते हैं। वेदज्ञ ब्राह्मण लोग उस देवकी द्विविध देह कहा करते हैं; उनमेंसे एक मूर्त्ति घोरा और दूसरी शिवा है; येही दोनों मूर्त्तियें अनेक प्रकारकी हुआ करती हैं। जो

शिवा सौम्या च या त्वस्य धर्मस्त्वापोऽथ चन्द्रमाः ॥४॥
आत्मनोऽर्धं तु तस्याग्निः सोमोऽर्धं पुनरुच्यते ।
ब्रह्मचर्यं चरत्येका शिवा चास्य तनुस्तथा ॥ ५ ॥
याऽस्य घोरतमा मूर्तिर्जगत्संहरते तथा ।
ईश्वरत्वान्महत्त्वाच्च महेश्वर इति स्मृतः ॥ ६ ॥
यन्निर्दहति यत्तीक्ष्णो यदुग्रो यत्प्रतापवान् ।
मांसशोणितमज्जादो यत्ततो रुद्र उच्यते ॥ ७ ॥
देवानां सुमहान्यच्च यच्चास्य विषयो महान् ।
यच्च विश्वं महत्पाति महादेवस्ततः स्मृतः ॥ ८ ॥
धूम्ररूपं च यत्तस्य धूर्जटीत्यत उच्यते ।
स मेधयति यन्नित्यं सर्वान्वै सर्वकर्मभिः ॥ ९ ॥
मनुष्यान् शिवमन्विच्छंस्तस्मादेष शिवः स्मृतः ।
दहत्यूर्ध्वं स्थितो यच्च प्राणान्नृणां स्थिरश्च यत् ॥ १० ॥
स्थिरलिङ्गश्च यन्नित्यं तस्मात्स्थाणुरिति स्मृतः ।
यदस्य बहुधा रूपं भूतं भव्यं भवत्तथा ॥ ११ ॥
स्थावरं जङ्गमं चैव बहुरूपस्ततः स्मृतः ।

उग्र तथा घोरमूर्त्ति है, वही अग्नि, बिजली और सूर्य है, उसकी शिव तथा सौम्यमूर्त्ति धर्म, जल और चन्द्रमा है। (१—४)

उनके शरीरका अर्द्धभाग अग्नि और अर्द्धभाग सोम कहा गया है; उनकी शिवामूर्त्ति ब्रह्मचर्य अवलम्बन करती है और घोरा मूर्त्ति प्रलयकालमें जगत्‌का संहार किया करती है। ईश्वरत्व और महत्त्वयुक्त होनेसे उनका महेश्वर नाम हुआ है। जो जलाके निःशेष करता तथा जो तीक्ष्ण, प्रतापवान् है और मांसशोणित-मज्जा भक्षण करता है, उसे रुद्र कहा जाता है। जो देवताओंमें उत्तम महान् है, महत्त्व जिसका विषय है, जो महत् विश्वको पालन करता है, वही महादेव नामसे स्मृत होता है। (५—८)

धूम्ररूप निबन्धनसे उसे धूर्जटी कहा जाता है। वह सदा कल्याणकी कामना करते हुए सब मनुष्योंको कर्मोंके सहारे पवित्र करता है, इस ही निमित्त उसका नाम शिव है। वह ऊर्ध्वमें स्थित रहके मनुष्योंके प्राणोंको दहन करता है और सदा स्थिरलिङ्ग है, इस ही निमित्त स्थाणु नामसे स्मृत हुआ करता है।

विश्वेदेवाश्च यत्तस्मिन् विश्वरूपस्ततः स्मृतः ॥ १२ ॥
सहस्राक्षोऽयुताक्षो वा सर्वतोऽक्षिमयोऽपि वा ।
चक्षुषः प्रभवेत्तेजो नास्त्यन्तोऽथास्य चक्षुषाम् ॥१३॥
सर्वथा यत्पशून्पाति तैश्च यद्रमते सह ।
तेषामधिपतिर्यच्च तस्मात्पशुपतिः स्मृतः ॥ १४ ॥
नित्येन ब्रह्मचर्येण लिङ्गमस्य यदास्थितम् ।
महयत्यस्य लोकश्च प्रियं ह्येतन्महात्मनः ॥ १५ ॥
विग्रहं पूजयेद्यो वै लिङ्गं वाऽपि महात्मनः ।
लिङ्गं पूजयिता नित्यं महतीं श्रियमश्नुते ॥ १६ ॥
ऋषयश्चापि देवाश्च गन्धर्वाप्सरसस्तथा ।
लिङ्गमेवार्चयन्ति स्म यत्तदूर्ध्वं समास्थितम् ॥ १७ ॥
पूज्यमाने ततस्तस्मिन्मोदते स महेश्वरः ।
सुखं ददाति प्रीतात्मा भक्तानां भक्तवत्सलः ॥१८॥
एष एव श्मशानेषु देवो वसति निर्दहन् ।
यजन्ते ये जनास्तत्र वीरस्थाननिषेविणः ॥ १९ ॥

स्थावर, जङ्गम, भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान भेदसे उसके अनेक प्रकारके रूप हैं, इसी लिये वह बहुरूप नामसे प्रसिद्ध है। विश्वदेवगण उसका आश्रय कर रहे हैं, इसलिये उसका विश्वरूप नाम है। (९—१२)

सब स्थानोंमें उसके नेत्र हैं, इस ही निमित्त उसे सहस्राक्ष और अयुताक्ष कहा जाता है। उसके नेत्रोंसे प्रकट हुए तेजका अन्त नहीं है, वह सब प्रकारसे पशुओंको पालन करता, उनके सङ्ग क्रीडा करता और उनका अधिपति होनेसे पशुपति नामसे प्रसिद्ध है। उसकी मूर्त्ति सदा ब्रह्मचर्यव्रतमें रत रहती है, इसही निमित्त लोग उस महात्माकी प्रियमूर्त्तिकी पूजा किया करते हैं। जो लोग उस महानुभावके विग्रह अथवा लिङ्गकी पूजा करते हैं, वे लिङ्गपूजक सदा महती समृद्धि सम्भोग किया करते करते हैं। ऋषिवृन्द, देवगण, अप्सरा और गन्धर्वगण उस ऊर्ध्वस्थित लिंगकी ही अर्चना करते हैं। (१३-१७)

लिङ्गके सदा पूजित होनेसे महेश्वर प्रमुदित होते हैं और भक्तवत्सल भगवान् प्रसन्नचित्त होकर भक्तोंको सुख प्रदान करते हैं। वह देव श्मशानके बीच निःशेष करके जलते हुए निवास किया करता है। श्मशानके बीच जो

विषयस्थः शरीरेषु स मृत्युः प्राणिनामिह ।
स च वायुः शरीरेषु प्राणापानशरीरिणाम् ॥ २० ॥
तस्य घोराणि रूपाणि दीप्तानि च बहूनि च ।
लोके यान्यस्य पूज्यन्ते विप्रास्तानि विदुर्बुधाः ॥२१॥
नामधेयानि देवेषु बहून्यस्य यथार्थवत् ।
निरुच्यन्ते महत्त्वाच्च विभुत्वात्कर्मभिस्तथा ॥ २२ ॥
वेदे चास्य विदुर्विप्राः शतरुद्रीयमुत्तमम् ।
व्यासेनोक्तं च यच्चापि उपस्थानं महात्मनः ॥ २३ ॥
प्रदाता सर्वलोकानां विश्वं चाप्युच्यते महत् ।
ज्येष्ठभूतं वदन्त्येनं ब्राह्मणा ऋषयोऽपरे ॥ २४ ॥
प्रथमो ह्येष देवानां मुखादग्निमजीजनत् ।
ग्रहैर्बहुविधैः प्राणान्संरुद्धानुत्सृजत्यपि ॥ २५ ॥
विमुञ्चति न पुण्यात्मा शरण्यः शरणागतान् ।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं वित्तं कामांश्च पुष्कलान् ॥ २६ ॥
स ददाति मनुष्येभ्यः स एवाक्षिपते पुनः ।
शक्रादिषु च देवेषु तस्यैश्वर्यमिहोच्यते ॥ २७ ॥

पुरुष उसकी पूजा करते हैं, वे वीरस्थानमें निवास करनेके योग्य होते हैं। वही प्राणियोंके शरीरमें मृत्यु स्वरूप है और वही शरीरधारियोंके शरीरमें प्राण तथा अपान वायुस्वरूप है; उसके रूप घोर, प्रकाशमान तथा अनेक प्रकारके हैं। लोकमें उसके जो सब रूप पूजित होते हैं, उसे विद्वान् ब्राह्मण लोग जानते हैं। उसके कर्म तथा चरितके सहारे देवताओंके बीच बहुत्वयुक्त होनेसे यथार्थ नामधेय हुआ करते हैं। (१८-२२)

ब्राह्मण लोग वेदके बीच उनकी शतरुद्रीय पाठ करते हैं और वेदव्यासने उस महात्माके जो सब नाम वर्णन किये हैं उसे भी जानते हैं। वह सब लोगोंके सुखप्रदाता विश्व और महत् रूपसे वर्णित होते हैं, ब्राह्मण लोग तथा दूसरे ऋषिवृन्द इन्हें सबसे श्रेष्ठ कहते हैं; वेही देवताओंके बीच आदिपुरुष हैं; उन्होंने ही मुखसे अग्नि उत्पन्न की थी। अनेक प्रकारके ग्रहोंसे संरुद्ध प्राण परित्याग करनेसे वह शरण्य पुण्यात्मा शरणागत पुरुषोंको कदापि परित्याग नहीं करता; वही मनुष्योंको आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य और पुष्कल काम प्रदान करता है; फिर वही आक्षेपपूर्वक

स एव व्यापृतो नित्यं त्रैलोक्यस्य शुभाशुभे।
ऐश्वर्याच्चैव कामानामीश्वरः पुनरुच्यते ॥ २८ ॥
महेश्वरश्च लोकानां महतामीश्वरश्च सः।
बहुभिर्विविधै रूपैर्विश्वं व्याप्तमिदं जगत्।
तस्य देवस्य यद्वक्त्रं समुद्रे वडवामुखम् ॥ २९ ॥ [७४४१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे महेश्वरमाहात्म्यं नाम एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

वैशम्पायन उवाच-इत्युक्तवति वाक्ये तु कृष्णे देवकिनन्दने।
भीष्मं शान्तनवं भूयः पर्यपृच्छद्युधिष्ठिरः ॥ १ ॥
निर्णये वा महाबुद्धे सर्वधर्मविदां वर।
प्रत्यक्षमागमो वेति किं तयोः करणं भवेत् ॥ २ ॥
भीष्म उवाच-नास्त्यत्र संशयः कश्चिदिति मे वर्तते मतिः।
शृणु वक्ष्यामि ते प्राज्ञ सम्यक्त्वं मेऽनुपृच्छसि ॥ ३ ॥
संशयः सुगमस्तत्र दुर्गमस्तस्य निर्णयः।
दृष्टं श्रुतमनन्तं हि यत्र संशयदर्शनम् ॥ ४ ॥
प्रत्यक्षं कारणं दृष्ट्वा हैतुकाः प्राज्ञमानिनः।

ग्रहण किया करता है। (२३—२७)

इन्द्रादि देवताओंमें उसका ही ऐश्वर्य वर्णित होता है, वह तीनों लोकोंके बीच शुभाशुभ विषयोंमें सदा व्यापृत होरहा है। वह ऐश्वर्यके हेतु सब कार्यों-का ईश्वर कहा जाता है; वह सब लो-कोंका महेश्वर है और महद्भूतोंका भी ईश्वर है। उसके अनेक भांतिके रूपसे यह विश्व जगत् व्याप्त होरहा है; उस देवका मुख ही समुद्रमें बडवामुख है। (२७-२९)

अनुशासनपर्वमें १६१ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १६२ अध्याय।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, देवकी-नन्दन कृष्ण जब इतनी कथा कह चुके तब युधिष्ठिरने शन्तनुनन्दन भीष्मसे फिर प्रश्न किया। हे सर्वधर्मज्ञश्रेष्ठ महा-प्राज्ञ! निर्णय अथवा प्रत्यक्ष आगम इन दोनोंके बीच कारण क्या है? (१—२)

भीष्म बोले, हे प्राज्ञ! इस विषयमें कुछ सन्देह नहीं है, मेरे मनमें ऐसी धारणा है, कि तुमने सम्यक् प्रश्न किया है; मैं यह विषय कहता हूं, सुनो। इसमें संशय सुगम परन्तु निर्णय अत्य-न्त दुर्गम है, जिसमें संशय दीखता है

नास्तीत्येवं व्यवस्यन्ति सत्यं संशयमेव च ॥ ५ ॥
तदयुक्तं व्यवस्यन्ति बालाः पण्डितमानिनः ।
अथ चेन्मन्यसे चैकं कारणं किं भवेदिति ॥ ६ ॥
शक्यं दीर्घेण कालेन युक्तेनातन्द्रितेन च ।
प्राणयात्रामनेकां च कल्पमानेन भारत ॥ ७ ॥
तत्परेणैव नान्येन शक्यं ह्येतस्य दर्शनम् ।
हेतूनामन्तमासाद्य विपुलं ज्ञानमुत्तमम् ॥ ८ ॥
ज्योतिः सर्वस्य लोकस्य विपुलं प्रतिपद्यते ।
न त्वेव गमनं राजन्हेतुतो गमनं तथा ।
अग्राह्यमनिबद्धं च वाचा संपरिवर्जयेत् ॥ ९ ॥
युधिष्ठिर उवाच—प्रत्यक्षं लोकतः सिद्धिर्लोकश्चागमपूर्वकः ।
शिष्टाचारो बहुविधस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १० ॥
भीष्म उवाच—धर्मस्य ह्रियमाणस्य बलवद्भिर्दुरात्मभिः ।
संस्था यत्नैरपि कृता कालेन प्रतिभिद्यते ॥ ११ ॥
अधर्मो धर्मरूपेण तृणैः कूप इवावृतः ।

वह दृष्टश्रुत अथवा अचिन्त्य है। हेतुवादी लोग प्रत्यक्ष कारणको देखकर अपनेको प्राज्ञ समझके अभिमान करते हैं; संशयको सत्य जानके 'नास्ति' ऐसा वचन कहा करते हैं; जो पण्डिताभिमानी बालकवृन्द ऐसा कहते हैं, वह युक्तिसिद्ध नहीं है। यदि ऐसा समझो, कि पक्षान्तरमें एक मात्र कारण होता है, तो बहुत समयतक निरालस तथा तन्मनस्क होनेसे उसे जान सकोगे। हे भारत! अनेक प्रकारकी प्राणयात्रा है, इसकी जो लोग जल्पना करते हैं, वे तत्पर पुरुषही इसे देख सकते हैं, दूसरे नहीं जान सकते। कारणोंका अन्त जाननेसे विपुल उत्तम ज्ञानज्योति लोगोंके अन्तःकरणमें प्राप्त होती है। हे महाराज! कारणोंका ज्ञान कदाचित् ज्ञान नहीं है, अग्राह्य और अनिबद्ध विषयोंको परित्याग करना चाहिये। ३-९

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! लोकमें सिद्धि प्रत्यक्ष होती है, लौकिक और आगमपूर्वक शिष्टाचार अनेक प्रकारका है, इसलिये आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये। (१०)

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! बलवान् दुरात्माओंके द्वारा ह्रियमाण धर्मकी संस्थिति उन्होंने ही की है, कालक्रमसे वह विभिन्न हुआ है। तृणसे ढके हुए

ततस्तैर्भिद्यते वृत्तं शृणु चैव युधिष्ठिर ॥ १२ ॥
अवृत्ता ये तु भिन्दन्ति श्रुतित्यागपरायणाः।
धर्मविद्वेषिणो मन्दा इत्युक्तस्तेषु संशयः ॥ १३ ॥
अतृप्यतस्तु साधूनां य एवागमबुद्धयः।
परमित्येव सन्तुष्टास्तानुपास्व च पृच्छ च ॥ १४ ॥
कामार्थौ पृष्ठतः कृत्वा लोभमोहानुसारिणौ।
धर्म इत्येव संबुद्धस्तानुपास्व च पृच्छ च ॥ १५ ॥
न तेषां भिद्यते वृत्तं यज्ञाः स्वाध्यायकर्म च।
आचारः कारणं चैव धर्मश्चैकस्त्रयं पुन ॥ १६ ॥
युधिष्ठिर उवाच—पुनरेव हि मे बुद्धिः संशये परिमुह्यति।
अपारे मार्गमाणस्य परं तीरमपश्यतः ॥ १७ ॥
वेदः प्रत्यक्षमाचारः प्रमाणं तत्त्रयं यदि।
पृथक्त्वं लभ्यते चैषां धर्मश्चैकस्त्रयं कथम् ॥ १८ ॥
भीष्म उवाच—धर्मस्य ह्रियमाणस्य बलवद्भिर्दुरात्मभिः।

कूएं की भांति अधर्म धर्मरूपसे प्रकाशित होरहा है, उस ही निमित्त चरित्र विभिन्न होता है। जो लोग शिष्टाचारविहीन, श्रुतित्यागपरायण, धर्मविद्वेषी तथा नीच कहके वर्णित हुए हैं और शिष्टाचार खण्डन करते हैं, वैसे प्रत्यक्षानुमानचारी पुरुषोंमें सन्देह होता है। जिन्होंने साधुओंके निकट तृप्ति लाभ की है, शास्त्रकी आलोचनासे जिनकी बुद्धि शुद्ध हुई है, तथा जो लोग सन्तुष्ट हैं, वेही श्रेष्ठ प्रमाण है; उन्हींकी उपासना करो और उन्हींसे पूछो। लोभमोहके अनुगत काम और अर्थको पीछे करके धर्मबोध करते हुए उनकी उपासना करो. पूंछो; उनके चरित्र, यज्ञ और स्वाध्यायकर्म भिन्न नहीं होते। प्रत्यक्ष दृष्ट चरित्र, शौच आदि आचार तथा वेद, इन तीनोंके मिलनेसे एकमात्र धर्म होता है, वह धर्म ही साधनीय है। (११—१६)

युधिष्ठिर बोले, अपार पथकी खोज करनेवाले पार न पाके जिस प्रकार दीखते हैं, वैसेही फिर मेरी बुद्धि सन्देहसे मुग्ध होती है। वेद, प्रत्यक्षदृष्ट चरित्र और आचार, ये तीनों ही यदि धर्मविषयमें प्रमाण हुए, तौभी इनमें पृथक्त्व मालूम होता है, तीनों प्रमाणोंके द्वारा प्रतिपाद्य प्रमेयधर्म किस प्रकार एक होगा? (१७—१८)

भीष्म बोले, हे राजन्! बलवान्

यद्येवं मन्यसे राजंस्त्रिधा धर्मविचारणा ॥ १९ ॥
एक एवेति जानीहि त्रिधा धर्मस्य दर्शनम् ।
पृथक्त्वे च न मे बुद्धिस्त्रयाणामपि वै तथा ॥ २० ॥
उक्तो मार्गस्त्रयाणां च तत्तथैव समाचर ।
जिज्ञासा न तु कर्तव्या धर्मस्य परितर्कणात् ॥ २१ ॥
सदैव भरतश्रेष्ठ मा ते भूदत्र संशयः ।
अन्धो जड इवाशङ्की यद्ब्रवीमि तदाचर ॥ २२ ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधो दानमेतच्चतुष्टयम् ।
अजातशत्रो सेवस्व धर्म एष सनातनः ॥ २३ ॥
ब्राह्मणेषु च वृत्तिर्या पितृपैतामहोचिता ।
तामन्वेहि महाबाहो धर्मस्यैते हि देशिकाः ॥ २४ ॥
प्रमाणमप्रमाणं वै यः कुर्यादबुधो जनः ।
न स प्रमाणतामर्हो विवादजननो हि सः ॥ २५ ॥
ब्राह्मणानेव सेवस्व सत्कृत्य बहु मन्य च ।
एतेष्वेव त्विमे लोकाः कृत्स्ना इति निबोध तान् ॥२६॥

दुष्टात्माओंके द्वारा ह्रियमाण धर्मके सम्बन्धमें यदि तुम ऐसी शङ्का करते हो, तौभी धर्मकी विवेचना तीन प्रकार से होती है; तीनों प्रमाणोंके संवादसे एकमात्र धर्म परीक्षणीय है । धर्मदर्शन त्रिविध होनेपर भी धर्म एक ही है; तीनों प्रमाणोंके पृथक् होनेपर भी प्रमेय धर्म पृथक् नहीं है; तीनों प्रमाण पृथक् पृथक् रीतिसे धर्मके प्रतिपादक नहीं होते, तीनोंके मिलनेसे एकमात्र धर्म हुआ करता है । तीनों प्रमाणोंका जो पथ वर्णित हुआ है, उसका उस ही प्रकार आचरण करो, धर्मविषयमें तर्क करके प्रश्न करना योग्य नहीं है । (१९—२१)

हे भरतश्रेष्ठ ! इस विषयमें तुम्हें सदा संशय न होवे; अन्धे और जडकी भांति शंकारहित होके जैसा कहता हूं, वैसाही आचरण करो । हे अजातशत्रु ! अहिंसा, सत्य, क्रोधहीनता और दान, ये चारों ही सनातन धर्म हैं, इसलिये तुम इन चारोंकी सेवा करो । ब्राह्मणोंके विषयमें पितृपितामहोचित जो वृत्ति है, उसहीका अनुसरण करो; क्यों कि येही धर्मके उपदेशक हैं । जो अज्ञानी मनुष्य अप्रमाणको प्रमाण करते हैं, वह कदाचित् प्रमाण नहीं होता, केवल विषाद-जनक हुआ करता है, ब्राह्मणोंका स-

युधिष्ठिर उवाच-ये च धर्ममसूयन्ते ये चैनं पर्युपासते ।
ब्रवीतु मे भवानेतत् क्व ते गच्छन्ति तादृशाः ॥२७॥
भीष्म उवाच—रजसा तमसा चैव समवस्तीर्णचेतसः ।
नरकं प्रतिपद्यन्ते धर्मविद्वेषिणो जनाः ॥ २८ ॥
ये तु धर्मं महाराज सततं पर्युपासते ।
सत्यार्जवपराः सन्तस्ते वै स्वर्गभुजो नराः ॥ २९ ॥
धर्म एव गतिस्तेषामाचार्योपासनाद्भवेत् ।
देवलोकं प्रपद्यन्ते ये धर्मं पर्युपासते ॥ ३० ॥
मनुष्या यदि वा देवाः शरीरमुपताप्य वै ॥
धर्मिणः सुखमेधन्ते लोभद्वेषविवर्जिताः ॥ ३१ ॥
प्रथमं ब्रह्मणः पुत्रं धर्ममाहुर्मनीषिणः ।
धर्मिणः पर्युपासन्ते फलं पक्वमिवाशयः ॥ ३२ ॥
युधिष्ठिर उवाच-असतां कीदृशं रूपं साधवः किं च कुर्वते ।
ब्रवीतु मे भवानेतत्सन्तोऽसन्तश्च कीदृशाः ॥ ३३ ॥
भीष्म उवाच-दुराचाराश्च दुर्धर्षा दुर्मुखाश्चाप्यसाधवः ।

म्मान करते हुए अधिक आदरके सहित सेवा करो, यह जान रखो, कि ब्राह्मणों से ही ये सब लोग प्रतिष्ठित होरहे हैं। (२२—२६)

युधिष्ठिर बोले, जो लोग धर्मकी असूया करते और जो मनुष्य धर्मकी सेवा किया करते हैं, वे लोग किन स्थानोंमें जाते हैं ? आप मेरे निकट इस विषयको वर्णन करिये । (२७)

भीष्म बोले, जिनका चित्त रजोगुण और तमोगुणसे ढंका है, वे धर्मविद्वेषी मनुष्य नरकमें गमन किया करते हैं । हे महाराज ! जो लोग सब प्रकारसे धर्म की उपासना करते हैं, वे सत्य और सरल चित्तवाले पुरुष स्वर्गभोग किया करते हैं; आचार्यकी उपासनाके हेतु धर्मही उनकी गति है, जो लोग धर्मकी उपासना करते हैं, उन्हें देवलोक प्राप्त होता है । मनुष्य अथवा देवगण लोभ-द्वेषसे रहित होके शरीरको उपताप देकर धर्मसे सुख लाभ करते हैं । मनीषिगण ब्रह्माके पुत्रको प्रथम धर्म कहते हैं; जैसे भोक्ताका मन पके फलको भोग करता है, वैसेही धार्मिक लोग फलकी उपासना किया करते हैं । (२८-३२)

युधिष्ठिर बोले, दुष्टोंका क्या लक्षण है ? साधु लोग क्या किया करते हैं ? साधु और दुष्टजन कैसे हैं ? यह सब

साधवः शीलसंपन्नाः शिष्टाचारस्य लक्षणम् ॥ ३४ ॥
राजमार्गे गवां मध्ये धान्यमध्ये च धर्मिणः ।
नोपसेवन्ति राजेन्द्र सर्गं मूत्रपुरीषयोः ॥ ३५ ॥
पञ्चानामशनं दत्त्वा शेषमश्नन्ति साधवः ।
न जल्पन्ति च भुञ्जाना न निद्रान्त्यार्द्रपाणयः ॥ ३६॥
चित्रभानुमनड्वाहं देवं गोष्ठं चतुष्पथम् ।
ब्राह्मणं धार्मिकं वृद्धं ये कुर्वन्ति प्रदक्षिणम् ॥ ३७ ॥
वृद्धानां भारतप्तानां स्त्रीणां चक्रधरस्य च ।
ब्राह्मणानां गवां राज्ञां पन्थानं ददते च ये ॥ ३८ ॥
अतिथीनां च सर्वेषां प्रेष्याणां स्वजनस्य च ।
तथा शरणकामानां गोप्ता स्यात्स्वागतप्रदः ॥ ३९ ॥
सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं देवनिर्मितम् ।
नान्तरा भोजनं दृष्टमुपवासविधिर्हि सः ॥ ४० ॥
होमकाले यथा वह्निः कालमेव प्रतीक्षते ।
ऋतुकाले तथा नारी ऋतुमेव प्रतीक्षते ॥ ४१ ॥
नान्यदा गच्छते यस्तु ब्रह्मचर्यं च तत्स्मृतम् ।

आप मेरे निकट वर्णन करिये। (३३)

भीष्म बोले, दुष्ट लोग दुराचारी दुर्द्धर्ष और दुर्मुख हैं और साधुजन शील-सम्पन्न तथा महाशिष्टाचार लक्षणस्वरूप हैं। हे राजेन्द्र! धार्मिक मनुष्य राजमार्ग, गोसमूह और धान्यके बीच मल मूत्र परित्याग नहीं करते। साधु लोग देव, पितर, भूत, अतिथि और कुटुम्ब इन पांचोंको अन्नदान करके शेषमें स्वयं भोजन करते हैं, वे लोग भोजन करते करते जल्पना नहीं करते, आर्द्रपाणि होकर सोते नहीं। जो लोग चित्रभानु, वृषभ, देवता, गऊ, चतुष्पथ, ब्राह्मण, धार्मिक और वृद्ध पुरुषोंकी प्रदक्षिणा करते हैं, जो लोग बूढे, भारसे थके हुए पुरुषों, स्त्रियों, अनेक ग्रामोंके स्वामी, ब्राह्मणों, गौवों और राजाओंको पथ प्रदान करते हैं, वेही साधु हैं। (३४—३८)

अतिथि, प्रेष्य स्वजनों और शरणागत पुरुषोंको प्रतिपालन तथा स्वागत प्रश्न करना चाहिये। सन्ध्या और सबेरे मनुष्योंका भोजन देवनिर्मित है, जो लोग उसके अनन्तर भोजन नहीं करते उसेही उपवासविधि कहते हैं। जैसे होमकालमें अग्नि समयकी प्रतीक्षा

अमृतं ब्राह्मणा गाव इत्येतत्त्रयमेकतः ॥ ४२ ॥
तस्माद्गोब्राह्मणं नित्यमर्चयेत यथाविधि ।
यजुषा संस्कृतं मांसमुपभुञ्जन्न दुष्यति ।
पृष्ठमांसं वृथामांसं पुत्रमांसं च तत्समम् ॥ ४३ ॥
स्वदेशे परदेशे वाप्यतिथिं नोपवासयेत् ।
कर्म वै सफलं कृत्वा गुरूणां प्रतिपादयेत् ॥ ४४ ॥
गुरुभ्यस्त्वासनं देयमभिवाद्याभिपूज्य च ।
गुरुमभ्यर्च्य वर्धन्ते आयुषा यशसा श्रिया ॥ ४५ ॥
वृद्धान्नाभिभवेज्जातु न चैतान्प्रेषयेदिति ।
नासीनः स्यात्स्थितेष्वेवमायुरस्य न रिष्यते ॥ ४६ ॥
न नग्नामीक्षते नारीं न नग्नान्पुरुषानपि ।
मैथुनं सततं गुप्तमाहारं च समाचरेत् ॥ ४७ ॥
तीर्थानां गुरवस्तीर्थं चोक्षाणां हृदयं शुचि ।
दर्शनानां परं ज्ञानं संतोषः परमं सुखम् ॥ ४८ ॥
सायं प्रातश्च वृद्धानां शृणुयात्पुष्कला गिरः ।

करती है, वैसेही ऋतुकालमें स्त्रियें ऋतु की प्रतीक्षा किया करती हैं; ऋतुकालके अनन्तर अन्य समयमें जो लोग स्त्री-संग नहीं करते वही उनका ब्रह्मचर्य कहाता है। अमृत, ब्राह्मण और गौवें, ये तीनोंही समान हैं; इसलिये ब्राह्मणों और गौवों की विधिपूर्वक पूजा करे। (३९—४२)

वेदमंत्रोंसे संस्कारयुक्त मांस भक्षण करनेमें दोष नहीं होता, पृष्ठमांस और पुत्रमांस, ये तीनोंही समान हैं। निज देश तथा परदेशमें अतिथिको उपवासी न रखे; अध्ययन कार्य समाप्त करके गुरुजनोंको दक्षिणा दान करे, बडे लोगोंको प्रणाम करे और पूजा करके आसन देना योग्य है। गुरुजनोंकी पूजा करनेसे परमायु, यश और श्रीके सहित वृद्धि होती है, वृद्धोंकी कदापि निन्दा न करे और उन्हें किसी कार्यके निमित्त प्रेरण करना योग्य नहीं है। बडे लोगोंके खडे रहनेपर बैठा न रहे, इस प्रकार आचरण करनेसे आयु नहीं घटती। वस्त्ररहित स्त्री-पुरुषोंकी ओर न देखे,सदा गुप्तभावसे मैथुन और आहार करे। गुरुजन सब तीर्थोंके भी तीर्थ-स्वरूप हैं, सब पवित्र पदार्थोंके बीच हृदय ही अत्यन्त पवित्र है; इन्द्रियोंके बीच ज्ञानही परम श्रेष्ठ और सन्तोष

श्रुतमाप्नोति हि नरः सततं वृद्धसेवया ॥ ४९ ॥
स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणं पाणिमुद्धरेत्।
यच्छेद्वाङ्मनसी नित्यमिन्द्रियाणि तथैव च ॥ ५० ॥
संस्कृतं पायसं नित्यं यवागूं कृसरं हविः।
अष्टकाः पितृदैवत्या ग्रहाणामभिपूजनम् ॥ ५१ ॥
श्मश्रुकर्मणि मङ्गल्यं क्षुतानामभिनन्दनम्।
व्याधितानां च सर्वेषामायुषामभिनन्दनम् ॥ ५२ ॥
न जातु त्वमिति ब्रूयादापन्नोऽपि महत्तरम्।
त्वङ्कारो वा वधो वेति विद्वत्सु न विशिष्यते ॥ ५३ ॥
अवराणां समानानां शिष्याणां च समाचरेत्।
पापमाचक्षते नित्यं हृदयं पापकर्मिणः ॥ ५४ ॥
ज्ञानपूर्वकृतं कर्म च्छादयन्ते ह्यसाधवः।
ज्ञानपूर्वं विनश्यन्ति गूहमाना महाजने ॥ ५५ ॥
न मां मनुष्याः पश्यन्ति न मां पश्यन्ति देवताः।
पापेनाभिहितः पापः पापमेवाभिजायते ॥ ५६ ॥

ही परमसुख है। (४३—४८)

सन्ध्या और सबेरेके समय वृद्ध लोगोंका पुष्कल वचन सुने, सदा वृद्धों की सेवा करनेसे मनुष्य ज्ञानवान् होता है, वेदपाठ और भोजनके समय दहिना हाथ उठावे अर्थात् यज्ञोपवीती होवे, वचन, मन और इन्द्रियोंको सदा संयत करे। संस्कार किया हुआ पायस, यवागू, कृसर और हविके सहारे ग्रहों की पूजा और पितृदैवत्य अष्टका श्राद्ध करे श्मश्रुकर्ममें मङ्गलवचन कहे, क्षुत होनेपर शतञ्जीव इत्यादि वचनसे अभिनन्दन करे, पीडित पुरुषोंकी परमायुके निमित्त प्रार्थना करे। आपद्ग्रस्त होके कदापि महत् पुरुषोंको "तुम" न कहे विद्वानोंको तुम कहने और वध करनेमें विशेष अन्तर नहीं है; कनिष्ठ लोगों, बराबर वालों और शिष्योंको तुम कहना योग्य है। (४९—५४)

पापकर्म करनेवाले मनुष्योंका हृदय ही सदा उन्हें पापी कहा करता है, अर्थात् कर्मके सहारे उनका हृदय जाना जाता है। महाजनोंके निकट जानके कृतकर्मोंको गोपन करनेसे वह कर्म विनष्ट होता है; दुष्ट लोग ही जानके कृतकर्मोंको गोपन किया करते हैं। मुझे मनुष्य लोग नहीं देख सकते और देवता लोग भी नहीं देखते हैं; ऐसा ही

यथा वार्धुषिको वृद्धिं दिनभेदे प्रतीक्षते ।
धर्मेण पिहितं पापं धर्ममेवाभिवर्धयेत् ॥ ५७ ॥
यथा लवणमम्भोभिराप्लुतं प्रविलीयते ।
प्रायश्चित्तहतं पापं तथा सद्यः प्रणश्यति ॥ ५८ ॥
तस्मात्पापं न गूहेत गूहमानं विवर्धयेत् ।
कृत्वा तत्साधुष्वाख्येयं ते तत्प्रशमयन्त्युत ॥ ५९ ॥
आशया संचितं द्रव्यं कालेनैवोपभुज्यते ।
अन्ये चैतत्प्रपद्यन्ते वियोगे तस्य देहिनः ॥ ६० ॥
मानसं सर्वभूतानां धर्ममाहुर्मनीषिणः ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि धर्ममेव समासते ॥ ६१ ॥
एक एव चरेद्धर्मं न धर्मध्वजिको भवेत् ।
धर्मवाणिजका ह्येते ये धर्ममुपभुञ्जते ॥ ६२ ॥
अर्चेद्देवानदम्भेन सेवेतामायया गुरून् ।
निधिं निदध्यात्पारत्र्यं यात्रार्थं दानशब्दितम् ॥ ६३ ॥[७५०४]

इति श्रीमहा०अनु०आनु०पर्वणि दानधर्मे धर्मप्रमाणकथने द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६२॥

समझके पापसे परिपूरित पापाचारी मनुष्य पापमें ही निमग्न हुआ करता है। जैसे वृद्धिजीवी लोग देहभेदसे वृद्धिकी प्रतीक्षा करते हैं, वैसे ही धर्मसे ढका हुआ पाप धर्मकी वृद्धि किया करता है। जैसे नमक जलमें पडनेसे गल जाता है, वैसे ही प्रायश्चित्तके द्वारा पापकर्म उस ही समय विनष्ट हो जाते हैं; इसलिये पापकर्मोंको न छिपावे, छिपानेसे ही वह बढता है; पाप करनेपर साधुओंके निकट कहनेसे वे लोग उस पापको नष्ट किया करते हैं। (५४-५९)

आशाके सहारे संचित किया हुआ द्रव्य कालक्रमसे उपयुक्त होता है, जो पुरुष सञ्चय करता है, उसके वियोगमें दूसरा उसे भोग किया करता है। मनीषीवृन्द सब जीवोंके मानसको ही धर्म कहते हैं, इसलिये सब जीव धर्मकाही आसरा कर रहे हैं। एक मात्र धर्मका ही आचरण करे, धर्मध्वजी न होवे; जो लोग धर्मको उपभोग करते हैं, वे धर्मवणिक् हैं। दम्भरहित होकर देवताओंकी पूजा करे, निष्कपट होके गुरुकी सेवा करे; परलोकके लिये निधि स्थापन करे और सत्पात्रको दान करे। (६०—६३)

अनुशासनपर्वमें १६२ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर उवाच-नाभागधेयः प्राप्नोति धनं सुबलवानपि ।
भागधेयान्वितस्त्वर्थान्कृशो बालश्च विन्दति ॥ १ ॥
नालाभकाले लभते प्रयत्नेऽपि कृते सति ।
लाभकालेऽप्रयत्नेन लभते विपुलं धनम् ॥ २ ॥
कृतयत्नाफलाश्चैव दृश्यन्ते शतशो नराः ।
अयत्नेनैधमानाश्च दृश्यन्ते बहवो जनाः ॥ ३ ॥
यदि यत्नो भवेन्मर्त्यः स सर्वं फलमाप्नुयात् ।
नालभ्यं चोपलभ्येत नृणां भरतसत्तम ॥ ४ ॥
प्रयत्नं कृतवन्तोऽपि दृश्यन्ते ह्यफला नराः ।
मार्गन्न्यायशतैरर्थानमार्गश्चापरः सुखी ॥ ५ ॥
अकार्यमसकृत्कृत्वा दृश्यन्ते ह्यधना नराः ।
धनयुक्ताः स्वकर्मस्था दृश्यन्ते चापरेऽधनाः ॥ ६ ॥
अधीत्य नीतिशास्त्राणि नीतियुक्तो न दृश्यते ।
अनभिज्ञश्च साचिव्यं गमितः केन हेतुना ॥ ७ ॥
विद्यायुक्तो ह्यविद्यश्च धनवान्दुर्मतिस्तथा ।

अनुशासनपर्वमें १६३ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, भाग्यहीन मनुष्य अत्यन्त बलवान् होनेपर भी धनवान् नहीं होता और भाग्यवान् मनुष्य कृशित तथा बालक होनेपरभी अर्थ लाभ करता है । जब मिलनेका समय नहीं रहता, तब प्रयत्न करनेपर भी नहीं प्राप्त होता और मिलनेके समयमें विना यत्नके ही बहुतसा धन मिलता है । ऐसे सैकडों लोग दीखते हैं, जो कि यत्न करके निष्फल हुए हैं और बहुतेरे पुरुष विना यत्नके ही वर्द्धित होते दीख पडते हैं । यत्न करनेसे मनुष्योंको उस ही समय फल प्राप्त होता । हे भरतसत्तम ! मनुष्योंको न मिलनेवाली वस्तु प्राप्त नहीं होती, देखा जाता है, कि प्रयत्न करनेपर भी बहुतेरे निष्फल होते हैं । कोई सैकडों नीतिवचनके सहारे धन चाहते हैं । कोई बिना प्रार्थना किये ही सुखी होते हैं। (१-५)

देखनेमें आता है, कितने लोग बार बार दुष्कर्म करके निर्द्धन हो जाते हैं और दूसरे लोग निर्द्धन होनेपर भी निज कर्ममें रत होके धनवान् होते हैं। कोई पुरुष नीतिशास्त्रोंको पढके भी मन्त्रित्वपदमें नियुक्त नहीं होते और क्या कारण है, कि कितने ही मूर्ख पुरुष मन्त्रित्व पदपर नियुक्त होते हैं ? क्या

यदि विद्यामुपाश्रित्य नरः सुखमवाप्नुयात् ॥ ८ ॥
न विद्वान्विद्यया हीनं वृत्त्यर्थमुपसंश्रयेत ।
यथा पिपासां जयति पुरुषः प्राप्य वै जलम् ॥ ९ ॥
इष्टार्थो विद्यया ह्येव न विद्यां प्रजहेन्नरः ।
नाप्राप्तकालो म्रियते विद्धः शरशतैरपि ।
तृणाग्रेणापि संस्पृष्टः प्राप्तकालो न जीवति ॥ १० ॥
भीष्म उवाच– ईहमानः समारम्भान् यदि नासादयेद्धनम् ।
उग्रं तपः समारोहेन्न ह्यनुप्तं प्ररोहति ॥ ११ ॥
दानेन भोगी भवति मेधावी वृद्धसेवया ।
अहिंसया च दीर्घायुरिति प्राहुर्मनीषिणः ॥ १२ ॥
तस्माद्दद्यान्न याचेत पूजयेद्धार्मिकानपि ।
सुभाषी प्रियकृच्छान्तः सर्वसत्त्वाविहिंसकः ॥ १३ ॥
यदा प्रमाणं प्रसवः स्वभावश्च सुखासुखे ।
दंशकीटपिपीलानां स्थिरो भव युधिष्ठिर ॥ १४ ॥ [७५१८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे धर्मप्रशंसायां त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥

विद्वान् विद्याहीन है तथा क्या धनवान् दुर्बुद्धि है ? यदि विद्याके अवलम्बसे मनुष्य सुखी होता, तो विद्वान् मनुष्य वृत्तिके निमित्त मूर्खोंका आसरा न करते। जैसे पुरुष जल पाके प्यास बुझाता है, वैसेही इष्टार्थी पुरुष विद्याके सहारे अर्थरूपी प्यासकी शान्ति किया करता है; तथापि विद्या परित्याग नहीं करता। जिसका समय नहीं पहुंचा है, वह सैकडों बाणोंसे विद्ध होनेपर भी नहीं मरता और जिसका काल पहुंच गया है, वह तृणकी नोकसे छुए जानेपर भी जीवित नहीं रहता। (६-१०)

भीष्म बोले, कार्योंकी चेष्टा करते हुए यदि अर्थ लाभ न होवे, तो उग्र तपस्यामें प्रवृत्त होना चाहिये; क्यों कि विना बीजके कदापि अङ्कुर उत्पन्न नहीं होता। मनीषिवृन्द कहा करते हैं, कि दान करनेसे मनुष्य भोगवान् होता है, वृद्धोंकी सेवा करनेसे मेधावी हुआ करता है और अहिंसासे महादीर्घायु होता है। इसलिये दान करे, याचना करना योग्य नहीं है। धार्मिक लोगोंकी पूजा करे, उत्तम वचन कहे; प्रियकारी, शुद्ध और सब प्राणियोंके विषयमें अहिंसक होवे। हे युधिष्ठिर ! जब कर्म और

भीष्म उवाच— कार्यते यच्च क्रियते सच्चासच्च कृताकृतम् ।
तत्राश्वसीत सत्कृत्वा असत्कृत्वा न विश्वसेत् ॥ १ ॥
काल एव सर्वकाले निग्रहानुग्रहौ ददत् ।
बुद्धिमाविश्य भूतानां धर्माधर्मौ प्रवर्तते ॥ २ ॥
यदा त्वस्य भवेद् बुद्धिर्धर्मार्थस्य प्रदर्शनात् ।
तदाश्वसीत धर्मात्मा दृढबुद्धिर्न विश्वसेत् ॥ ३ ॥
एतावन्मात्रमेतद्धि भूतानां प्राज्ञलक्षणम् ।
कालयुक्तोऽप्युभयविच्छेषं युक्तं समाचरेत् ॥ ४ ॥
यथा ह्युपस्थितैश्वर्याः प्रजायन्ते न राजसाः ।
एवमेवात्मनात्मानं पूजयन्तीह धार्मिकाः ॥ ५ ॥
न ह्यधर्मतया धर्मं दद्यात्कालः कथंचन ।
तस्माद्विशुद्धमात्मानं जानीयाद्धर्मचारिणम् ॥ ६ ॥
स्प्रष्टुमप्यसमर्थो हि ज्वलन्तामिव पावकम् ।

स्वभाव दंश, कीट तथा चींटी प्रभृतिके सुख दुःख प्राप्तिविषयमें प्रमाण हैं, तब अपने विषयमें भी वैसा ही जानके तुम्हें स्थिर होना चाहिये । (११-१४)

अनुशासनपर्वमें १६३ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें १६४ अध्याय ।

भीष्म बोले, जो सत् वा असत् कर्म किया जाता तथा कराया जाता है; किंवा कृत वा अकृत हो; उसके बीच सत्कर्म करके उसपर विश्वास करे और असत् कार्योंमें विश्वास न करना चाहिये। कालही सब विषयमें निग्रह अनुग्रह प्रदान करता हुआ प्राणियोंकी बुद्धिमें आविष्ट होकर धर्म और अधर्मका प्रवर्त्तक होता है । जिस समय धर्मार्थ प्रदर्शन हेतु पुरुषकी बुद्धिमें धर्म कल्याणकारी बोध होता है, उस समय धर्मात्मा मनुष्य आश्वस्त होवे; अदृढबुद्धि पुरुष धर्मफलमें विश्वास नहीं करते । प्राणियोंकी इतनी ही धर्ममें विश्वासवत्ता प्राज्ञ लक्षण है । जो लोग कर्त्तव्य अकर्त्तव्य दोनोंको जानते हैं, वे समयके अनुसार जैसा उचित होता है, वैसा ही आचरण किया करते हैं । जैसे ऐश्वर्यशाली मनुष्य रजोगुणसे युक्त सन्तान उत्पन्न नहीं करता, इस लोकमें धार्मिक पुरुष उस ही प्रकार आप ही अपना सम्मान किया करते हैं । (१—५)

काल कदापि दुःखके हेतु स्वरूपसे धर्म दान नहीं करता; इसलिये धर्मचारी मनुष्य अपनेको पवित्र जाने । सन्तत

अधर्मः सन्ततो धर्मं कालेन परिरक्षितम् ॥ ७ ॥
कार्यावेतौ हि धर्मेण धर्मो हि विजयावहः।
त्रयाणामपि लोकानामालोकः कारणं भवेत् ॥ ८ ॥
न तु कश्चिन्नयेत्प्राज्ञो गृहीत्वैव करे नरम्।
उच्यमानस्तु धर्मेण धर्मलोकभयच्छले ॥ ९ ॥
शूद्रोऽहं नाधिकारो मे चातुराश्रम्यसेवने।
इति विज्ञानमपरे नात्मन्युपदधत्युत ॥ १० ॥
विशेषेण च वक्ष्यामि चातुर्वर्ण्यस्य लिङ्गतः।
पञ्चभूतशरीराणां सर्वेषां सदृशात्मनाम् ॥ ११ ॥
लोकधर्मे च धर्मे च विशेषकरणं कृतम्।
यथैकत्वं पुनर्यान्ति प्राणिनस्तत्र विस्तरः ॥ १२ ॥
अध्रुवो हि कथं लोकः स्मृतो धर्मः कथं ध्रुवः।
यत्र कालो ध्रुवस्तात तत्र धर्मः सनातनः ॥ १३ ॥

अधर्म कालके द्वारा परिरक्षित जलती हुई अग्निसदृश धर्मको स्पर्श करनेमें भी समर्थ नहीं है। विशुद्धता और अधर्मका अस्पर्श धर्मके द्वारा ही करना चाहिये; क्यों कि धर्म ही विजयावह है; धर्म ही तीनों लोकोंको प्रकाशित करता है। कोई बुद्धिमान् पुरुष मनुष्य को हाथसे पकडके धर्ममें प्रवृत्त नहीं कर सकता; परन्तु वह धर्मभय तथा लोकभयके छलसे उसे धर्मानुष्ठानके निमित्त प्रेरण करता है, अर्थात् प्राज्ञ पुरुषोंके द्वारा लोकभय प्रभृति छलसे प्रेरित होकर मनुष्य धर्मानुष्ठानमें प्रवृत्त होता है। (६-९)

मैं शूद्र हूं मुझे चारों आश्रमोंके धर्मसेवनमें अधिकार नहीं है" ऐसा वचन कहके दूसरे लोग अधिकारके अनुसार धर्मानुष्ठान किया करते हैं, वह छल नहीं है, इसलिये समस्त प्रवर्त्तना व्यर्थ है। सदृशचित्तवाले प्राणियोंका पाञ्चभौतिक शरीर प्रत्यक्ष होनेपर भी 'यह पवित्र है, यह अपवित्र है', इस ही प्रकार विशेष व्यवस्थापन लोकधर्म और शास्त्रीय धर्म निमित्त-कृत हुए हैं; पशु, पामर, पण्डित प्रभृति प्राणीवृन्द जिस प्रकार पुनर्निर्दिष्ट एकत्व लाभ करते हैं, शास्त्रमें विस्तारपूर्वक वही धर्मनियम वर्णित है, इसलिये चारों वर्णोंका विषय यथार्थ रीतिसे वर्णन करता हूं। लोक अनित्य है और धर्म नित्य है, यह किस प्रकार स्मृत हुआ? लोक और धर्मके कार्यकारण-

सर्वेषां तुल्यदेहानां सर्वेषां सदृशात्मनाम् ।
काले धर्मेण संयुक्तः शेष एव स्वयंगुरुः ॥ १४ ॥
एवं सति न दोषोऽस्ति भूतानां धर्मसेवने ।
तिर्यग्योनावपि सतां लोक एव मतो गुरुः ॥ १५ ॥ [७८११]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे धर्मप्रशंसायां चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥

वैशम्पायन उवाच– शरतल्पगतं भीष्मं पाण्डवोऽथ कुरूद्वहः ।
युधिष्ठिरो हितं प्रेप्सुरपृच्छत्कल्मषापहम् ॥ १ ॥
युधिष्ठिर उवाच– किं श्रेयः पुरुषस्येह किं कुर्वन्सुखमेधते ।
विपाप्मा स भवेत्केन किं वा कल्मषनाशनम् ॥ २ ॥
वैशम्पायन उवाच– तस्मै शुश्रूषमाणाय भूयः शान्तनवस्तदा ।
दैवं वंशं यथान्यायमाचष्ट पुरुषर्षभ ॥ ३ ॥

भाव हेतुसे कार्यकी अनित्यता युक्तियुक्त नहीं होती। हे तात! इसलिये सङ्कल्परूप काल अर्थात् निष्काम धर्म ही नित्य है, उसका फल कभी सकाम नहीं हो सकता; इसलिये धर्मही सनातन है। (१०—१३)

तुल्य देहविशिष्ट तथा सदृशचित्त वाले प्राणियोंके सम्बन्धमें धर्मयुक्त सङ्कल्प ही विशेष रूपसे स्वयं उपदेशक होता है, जब जीवोंका पूर्वकृत कर्म उनके जन्मनेपर सुख दुःख साधनका प्रवर्त्तक हुआ; तब जीवोंको धर्मसेवन अर्थात् कर्मफल भोगनेमें दोष नहीं है, क्यों कि तिर्यग्योनिमें वर्त्तमान जीवोंकी सदसत् प्रवृत्तिविषय पूर्वकर्मके अनुसार लोकमें गुरुतर दीखता है; विधिनियन्त्रित होकर लोक दृष्टान्तके अनुसार लोकसमाज ही उपदेष्टा हुआ करता है। (१४—१५)

अनुशासनपर्वमें १६४ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १६५ अध्याय।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कुरुकुलधुरन्धर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने हिताकांक्षी होकर शरशय्याशायी भीष्मदेवसे पापापह हितविषय पूछा। (१)

युधिष्ठिर बोले, इस लोकमें पुरुषके लिये कल्याण क्या है? क्या करनेसे मनुष्यको सुख मिलता है? किन कर्मोंके सहारे पुरुष निष्पाप होता है और किन प्रकार कर्म पापोंको नाश करता है? (२)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे पुरुषश्रेष्ठ! उस समय शान्तनुनन्दन भीष्मदेव सेवा करनेवाले युधिष्ठिरके निकट

भीष्म उवाच- अयं दैवतवंशो वै ऋषिवंशसमन्वितः ।
त्रिसन्ध्यं पठितः पुत्र कल्मषापहरः परः ॥ ४ ॥
यदह्ना कुरुते पापमिन्द्रियैः पुरुषश्चरन् ।
बुद्धिपूर्वमबुद्धिर्वा रात्रौ यच्चापि सन्ध्ययोः ॥ ५ ॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यः कीर्तयन्वै शुचिः सदा ।
नान्धो न बधिरः काले कुरुते स्वस्तिमान्सदा ॥ ६ ॥
तिर्यग्योनिं न गच्छेच्च नरकं सङ्कराणि च ।
न च दुःखभयं तस्य मरणे स न मुह्यति ॥ ७ ॥
देवासुरगुरुर्देवः सर्वभूतनमस्कृतः ।
अचिन्त्योऽथाप्यनिर्देश्यः सर्वप्राणो ह्ययोनिजः ॥ ८ ॥
पितामहो जगन्नाथः सावित्री ब्रह्मणः सती ।
वेदभूरथ कर्ता च विष्णुर्नारायणः प्रभुः ॥ ९ ॥
उमापतिर्विरूपाक्षः स्कन्दः सेनापतिस्तथा ।
विशाखो हुतभुग्वायुश्चन्द्रसूर्यौ प्रभाकरौ ॥ १० ॥
शक्रः शचीपतिर्देवो यमो धूमोर्णया सह ।
वरुणः सह गौर्या च सह ऋद्ध्या धनेश्वरः ॥ ११ ॥
सौम्या गौः सुरभिर्देवी विश्रवाश्च महानृषिः ।
सङ्कल्पः सागरो गङ्गा स्रवन्त्योऽथ मरुद्गणः ॥ १२ ॥

देववंश वर्णन करने लगे । भीष्म बोले, हे तात ! ऋषिवंशयुक्त इस देववंशका त्रिसन्ध्या पाठ करनेसे सब पाप नष्ट होते हैं । पुरुष दिनमें इन्द्रियोंके सहारे जो पापाचरण करता है अथवा जानके वा विना जाने रात्रि तथा दोनों सन्ध्या में जो पाप करता है, सदा पवित्र होके इस देववंशका पाठ करनेसे उन पापोंसे छूट जाता है। इसे पाठ करनेसे पुरुष कालक्रमसे अन्धा वा बहिरा नहीं होता, सदा स्तुतिमान् होता है, तिर्यक् योनि, नरक और संकरजातिमें गमन नहीं करता, उसे मरनेसे भय, दुःख और मोह नहीं होता । (३—७)

देवासुरगुरु सर्वभूतनमस्कृत अचिन्त्य आनिर्देश्य सर्वप्राण अयोनिज देव पितामह ब्रह्माकी सती सावित्री, वेदभू वेदकर्त्ता विष्णु नारायण, प्रभु उमापति विरूपाक्ष, सेनापति स्कन्द, विशाख, हुतभुक्, वायु, चन्द्रमा, प्रभाकर सूर्य, शचीपति शक्रदेव, धूमोर्णाके सहित यम, गौरीके सहित वरुण और

बालखिल्यास्तपःसिद्धाः कृष्णद्वैपायनस्तथा ।
नारदः पर्वतश्चैव विश्वावसुर्हहाहुहूः ॥ १३ ॥
तुम्बुरुश्चित्रसेनश्च देवदूतश्च विश्रुतः ।
देवकन्या महाभागा दिव्याश्चाप्सरसां गणाः ॥ १४ ॥
उर्वशी मेनका रम्भा मिश्रकेशी ह्यलम्बुषा ।
विश्वाची च घृताची च पञ्चचूडा तिलोत्तमा ॥ १५ ॥
आदित्या वसवो रुद्राः साश्विनः पितरोऽपि च ।
धर्मः श्रुतं तपो दीक्षा व्यवसायः पितामहः ॥ १६ ॥
शर्वर्यो दिवसाश्चैव मारीचः कश्यपस्तथा ।
शुक्रो बृहस्पतिर्भौमो बुधो राहुः शनैश्चरः ॥ १७ ॥
नक्षत्राण्यृतवश्चैव मासाः पक्षाः संवत्सराः ।
वैनतेयाः समुद्राश्च कद्रुजाः पन्नगास्तथा ॥ १८ ॥
शतद्रुश्च विपाशा च चन्द्रभागा सरस्वती ।
सिन्धुश्च देविका चैव प्रभासं पुष्कराणि च ॥ १९ ॥
गङ्गा महानदी वेणा कावेरी नर्मदा तथा ।
कुलंपुना विशल्या च करतोयाम्बुवाहिनी ॥ २० ॥
सरयूर्गण्डकी चैव लोहितश्च महानदः ।
ताम्रारुणा वेत्रवती पर्णाशा गौतमी तथा ॥ २१ ॥

ऋद्धिके सहित कुबेर, सौम्यगऊ सुरभी-देवी, महर्षि विश्रवा, सङ्कल्प, सागर, गङ्गा प्रभृति नदीगण, मरुद्गण, तपसे सिद्ध वालखिल्यगण, कृष्णद्वैपायन, नारद, पर्वत, विश्वावसु, हाहा, हूहू, तुम्बुरु, चित्रसेन, देवदूत विश्रुत, महा भागा देवकन्यागण, अप्सरावृन्द, उर्वशी मेनका, रम्भा, मिश्रकेशी, अलम्बुषा, विश्वाची, घृताची, पञ्चचूडा, तिलोत्तमा, आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, दोनों अश्विनीकुमार, पितृगण, धर्म, श्रुत, तप, दीक्षा, व्यवसाय, पितामह, शर्वरी, दिवस, मारीच, कश्यप, शुक्र, बृहस्पति, मङ्गल, बुध, राहु, शनैश्चर, सब नक्षत्र, सब ऋतु, मास, पक्ष, संवत्सर, वैनतेय, समुद्र, कद्रुज, पन्नग गण, शतद्रु, विपाशा, चन्द्रभागा, सरस्वती, सिन्धु, देविका, प्रभास, पुष्कर, गङ्गा महानदी, वेणा, कावेरी, नर्मदा, कुलंपुना, विशल्या, करतोया, अम्बुवाहिनी, सरयू, गण्डकी, महानद लोहित, ताम्रारुणा, वेत्रवती पर्णाशा,

गोदावरी च वेण्या च कृष्णवेणा तथाऽद्रिजा ।
दृषद्वती च कावेरी चक्षुर्मन्दाकिनी तथा ॥ २२ ॥
प्रयागं च प्रभासं च पुण्यं नैमिषमेव च ।
तच्च विश्वेश्वरस्थानं यत्र तद्विमलं सरः ॥ २३ ॥
पुण्यतीर्थं सुसलिलं कुरुक्षेत्रं प्रकीर्तितम् ।
सिन्धूत्तमं तपो दानं जम्बूमार्गमथापि च ॥ २४ ॥
हिरण्वती वितस्ता च तथा प्लक्षवती नदी ।
वेदस्मृतिर्वेदवती मालवाथाश्ववत्यपि ॥ २५ ॥
भूमिभागास्तथा पुण्या गङ्गाद्वारमथापि च ।
ऋषिकुल्यास्तथा मेध्या नद्यः सिन्धुवहास्तथा ॥ २६ ॥
चर्मण्वती नदी पुण्या कौशिकी यमुना तथा ।
नदी भीमरथी चैव बाहुदा च महानदी ॥ २७ ॥
माहेन्द्रवाणी त्रिदिवा नीलिका च सरस्वती ।
नन्दा चापरनन्दा च तथा तीर्थमहाह्रदः ॥ २८ ॥
गयाऽथ फल्गुतीर्थं च धर्मारण्यं सुरैर्वृतम् ।
तथा देवनदी पुण्या सरश्च ब्रह्मनिर्मितम् ॥ २९ ॥
पुण्यं त्रिलोकविख्यातं सर्वपापहरं शिवम् ।
हिमवान्पर्वतश्चैव दिव्यौषधिसमन्वितः ॥ ३० ॥
विन्ध्यो धातुविचित्राङ्गस्तीर्थवानौषधान्वितः ।

गौतमी, गोदावरी, वेण्या, कृष्णवेणा, अद्रिजा, दृषद्वती, कावेरी, चक्षु, मन्दाकिनी, प्रभास, प्रयाग, पवित्र नैमिषक्षेत्र, विमल सरोवर जहांपर विश्वेश्वरका स्थान है, पुण्यतीर्थोंके बीच उत्तम कुरुक्षेत्र, सिन्धूत्तम, तप, दान, जम्बूमार्ग, हिरण्वती, वितस्ता, प्लक्षवती, नदी, वेद, स्मृति, वेदवती, मालवा, अश्ववती, भूमिके समस्त पवित्र स्थान गङ्गाद्वार, पवित्र ऋषिकुल्या, चित्रवहा नदी, पवित्र नदी चर्मण्वती, कौशिकी, यमुना, भीमरथी नदी, बाहुदा, महानदी, माहेन्द्रवाणी, त्रिदिवा, नीलिका, सरस्वती, नन्दा, अपरनन्दा, तीर्थ महाह्रद, गया, फल्गुतीर्थ, देवताओंसे परिपूरित धर्मारण्य, पुण्या देवनदी, ब्रह्मनिर्मित तीनों लोकोंमें विख्यात सब पापोंको हरनेवाला कल्याणकारी पुण्य-सरोवर, दिव्य ओषधियोंसे युक्त हिमालय पर्वत, धातुओंसे चित्रित विन्ध्य,

मेरुर्महेन्द्रो मलयः श्वेतश्च रजतावृतः ॥ ३१ ॥
शृङ्गवान्मन्दरो नीलो निषधो दर्दुरस्तथा ।
चित्रकूटोऽञ्जनाभश्च पर्वतो गन्धमादनः ॥ ३२ ॥
पुण्यः सोमगिरिश्चैव तथैवान्ये महीधराः ।
दिशश्च विदिशश्चैव क्षितिः सर्वे महीरुहाः ॥ ३३ ॥
विश्वे देवा नभश्चैव नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ।
पान्तु नः सततं देवाः कीर्तिताऽकीर्तिता मया ॥३४॥
कीर्तयानो नरो ह्येतान्मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ।
स्तुवंश्च प्रतिनन्दंश्च मुच्यते सर्वतो भयात् ॥ ३५ ॥
सर्वसङ्करपापेभ्यो देवतास्तवनन्दकः ।
देवतानन्तरं विप्रांस्तपःसिद्धांस्तपोऽधिकान् ॥ ३६ ॥
कीर्तितान्कीर्तयिष्यामि सर्वपापप्रमोचनान् ।
यवक्रीतोऽथ रैभ्यश्च कक्षीवानौशिजस्तथा ॥ ३७ ॥
भृग्वङ्गिरास्तथा कण्वो मेधातिथिरथ प्रभुः ।
बर्ही च गुणसंपन्नः प्राचीं दिशमुपाश्रिताः ॥ ३८ ॥
भद्रां दिशं महाभागा उल्मुचुः प्रमुचुस्तथा ।
मुमुचुश्च महाभागः स्वस्त्यात्रेयश्च वीर्यवान् ॥ ३९ ॥

औषधीयुक्त तीर्थवान् मेरु, महेन्द्र, मलय, रौप्ययुक्त श्वेत पर्वत, शृङ्गवान्, मन्दर, नील, निषध, दर्दुर, चित्रकूट, अजनाभ, गन्धमादन पर्वत, पवित्र सोमगिरि इनके अतिरिक्त अन्य समस्त पर्वत, दिशा, विदिशा, सारी पृथ्वी, समस्त वृक्ष, विश्वदेवगण, आकाश, नक्षत्रगण, ग्रहगण और ये समस्त देवगण जो मेरे द्वारा कीर्तित अथवा अकीर्तित हुए हैं, वे सब कोई सदा हमारी रक्षा करें। (८—३४)

मनुष्य इन्हीं नामोंके पाठ करनेसे सब पापोंसे छूटता है, इन सबकी स्तुति तथा अभिनन्दन करनेसे पुरुष समस्त भयसे मुक्त हुआ करता है। जो लोग देवतास्तवकी प्रशंसा करते हैं, वे सब पापोंसे रहित हुआ करते हैं। देवताओंके अनन्तर तपसे सिद्ध, अधिक तपस्यायुक्त सब पापोंके नाशक, विख्यात ब्राह्मणोंका नाम वर्णन करता हूं। (३५–३७)

यवक्रीत, रैभ्य, कक्षीवान्, औशिज भृगु, अङ्गिरा, कण्व, शक्तिमान् मेधातिथि और गुणसम्पन्न बर्ही, ये पूर्वदिशाको अवलम्बन किये हैं। दक्षिण

मित्रावरुणयोः पुत्रस्तथाऽगस्त्यः प्रतापवान् ।
दृढायुश्चोर्ध्वबाहुश्च विश्रुतावृषिसत्तमौ ॥ ४० ॥
पश्चिमां दिशमाश्रित्य य एधन्ते निबोध तान् ।
उषङ्गुः सह सोदर्यैः परिव्याधश्च वीर्यवान् ॥ ४१ ॥
ऋषिर्दीर्घतमाश्चैव गौतमः काश्यपस्तथा ।
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चैव महानृषिः ॥ ४२ ॥
अत्रेः पुत्रश्च धर्मात्मा तथा सारस्वतः प्रभुः ।
उत्तरां दिशमाश्रित्य य एधन्ते निबोध तान् ॥ ४३ ॥
आत्रिर्वसिष्ठः शक्तिश्च पाराशर्यश्च वीर्यवान् ।
विश्वामित्रो भरद्वाजो जमदग्निस्तथैव च ॥ ४४ ॥
ऋचीकपुत्रो रामश्च ऋषिरौद्दालकिस्तथा ।
श्वेतकेतुः कोहलश्च विपुलो देवलस्तथा ॥ ४५ ॥
देवशर्मा च धौम्यश्च हस्तिकाश्यप एव च ।
लोमशो नाचिकेतश्च लोमहर्षण एव च ॥ ४६ ॥
ऋषिरुग्रश्रवाश्चैव भार्गवश्च्यवनस्तथा ।
एष वै समवायश्च ऋषिदेवसमन्वितः ॥ ४७ ॥
आद्यः प्रकीर्तितो राजन्सर्वपापप्रमोचनः ।
नृगो ययातिर्नहुषो यदुः पूरुश्च वीर्यवान ॥ ४८ ॥

दिशाको अवलम्बन करनेवाले महाभाग उल्मुचु, प्रमुचु, मुमुचु वीर्यवान् स्वस्त्यात्रेय, मित्रावरुणके पुत्र प्रतापवान् अगस्त्य, दृढायु और ऊर्ध्वबाहु नामसे विख्यात दोनों ऋषिसत्तम हैं। ३७-४०

जो पश्चिम दिशाको अवलम्बन करके निवास करते हैं, उनके नाम सुनो। सहोदरगणोंके सहित उषंगु, वीर्यवान् परिव्याध, दीर्घतमा ऋषि, गौतम, काश्यप, महर्षि एकत, द्वित और त्रित, तथा अत्रिके पुत्र धर्मात्मा शक्तिमान् सारस्वत। जो लोग उत्तर-दिशाको अवलम्बन करके वास करते हैं, उनके नाम सुनो। अत्रि, वसिष्ठ, शक्ति, पाराशर्य, विश्वामित्र, भरद्वाज, जमदग्नि, ऋचीकपुत्र राम, उद्दालकि ऋषि, श्वेतकेतु, कोहल, विपुल, देवल, देवशर्मा, धौम्य, हस्तिकाश्यप, लोमश, नाचिकेत, लोमहर्षण, उग्रश्रवा ऋषि, भार्गव और च्यवन। हे महाराज! सर्वपापोंका नाशक ऋषिदेवसमन्वित यह आद्य समवाय संक्षेपसे प्रकीर्तित

धुन्धुमारो दिलीपश्च सगरश्च प्रतापवान् ।
कृशाश्वो यौवनाश्वश्च चित्राश्वः सत्यवांस्तथा ॥ ४९ ॥
दुष्यन्तो भरतश्चैव चक्रवर्ती महायशाः ।
पवनो जनकश्चैव तथा दृष्टरथो नृपः ॥ ५० ॥
रघुर्नरवरश्चैव तथा दशरथो नृपः ।
रामो राक्षसहा वीरः शशबिन्दुर्भगीरथः ॥ ५१ ॥
हरिश्चन्द्रो मरुत्तश्च तथा दृढरथो नृपः ।
महोदर्यो ह्यलर्कश्च ऐलश्चैव नराधिपः ॥ ५२ ॥
करन्धमो नरश्रेष्ठः कध्मोरश्च नराधिपः ।
दक्षोऽम्बरीषः कुकुरो रैवतश्च महायशाः ॥ ५३ ॥
कुरुः संवरणश्चैव मान्धाता सत्यविक्रमः ।
मुचुकुन्दश्च राजर्षिर्जह्नुर्जाह्नविसेवितः ॥ ५४ ॥
आदिराजः पृथुर्वैन्यो मित्रभानुः प्रियंकरः ।
त्रसद्दस्युस्तथा राजा श्वेतो राजर्षिसत्तमः ॥ ५५ ॥
महाभिषश्च विख्यातो निमी राजा तथाऽष्टकः ।
आयुः क्षुपश्च राजर्षिः कक्षेयुश्च नराधिपः ॥ ५६ ॥
प्रतर्दनो दिवोदासः सुदासः कोसलेश्वरः ।
ऐलो नलश्च राजर्षिर्मनुश्चैव प्रजापतिः ॥ ५७ ॥
हविध्रश्च पृषध्रश्च प्रतीपः शान्तनुस्तथा ।

हुआ है । (४१—४८)

नृग, ययाति, नहुष, यदु, वीर्यवान् पूरु, सगर, धुन्धुमार, प्रतापवान् दिलीप, कृशाश्व, यौवनाश्व, चित्राश्व, सत्यवान्, दुष्यन्त, महामना चक्रवर्त्ती भरत, पवन, जनक, राजा दृष्टरथ, महाराज रघु, राजा दशरथ, राक्षसोंके नाशक वीरश्रेष्ठ रामचन्द्र, शशबिन्दु, भगीरथ, हरिश्चन्द्र, मरुत्त, राजा दृढरथ, महोदर्य अलर्क, नरनाथ ऐल, नरश्रेष्ठ करन्धम, नराधिप कध्मोर, दक्ष, अम्बरीष, कुकुर, महायशस्वी रैवत, कुरु, संवरण, सत्यविक्रम मान्धाता, राजर्षि, मुचुकुन्द, जान्हवीसेवित, जन्हु, आदि राजा वेनके पुत्र पृथु, मित्रभानु, प्रियंकर, राजा, त्रसद्दस्यू, राजर्षिसत्तम श्वेत, विख्यात महाभिष, राजा निमि, अष्टक, आयु, राजर्षि क्षुप, नरनाथ कक्षेयु, प्रतर्दन, दिवोदास, कोसलराज सुदास, ऐल, राजर्षि नल, प्रजापति, मनु,

अजः प्राचीनबर्हिश्च तथेक्ष्वाकुर्महायशाः ॥ ५८ ॥
अनरण्यो नरपतिर्जानुजङ्घस्तथैव च ।
कक्षसेनश्च राजर्षिर्ये चान्ये चानुकीर्तिताः ॥ ५९ ॥
कल्यमुत्थाय यो नित्यं सन्ध्ये द्वेऽस्तमयोदये ।
पठेच्छुचिरनावृत्तः स धर्मफलभाग्भवेत् ॥ ६० ॥
देवा देवर्षयश्चैव स्तुता राजर्षयस्तथा ।
पुष्टिमायुर्यशः स्वर्गं विधास्यन्ति ममेश्वराः ॥ ६१ ॥
मा विघ्नं मा च मे पापं मा च मे परिपन्थिनः ।
ध्रुवो जयो मे नित्यः स्यात्परत्र च शुभा गतिः ॥६२॥ [७५९५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे वंशानुकीर्तनं नाम पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥

जनमेजय उवाच- शरतल्पगते भीष्मे कौरवाणां धुरन्धरे ।
शयाने वीरशयने पाण्डवैः समुपस्थिते ॥ १ ॥
युधिष्ठिरो महाप्राज्ञो मम पूर्वपितामहः ।
धर्माणामागमं श्रुत्वा विदित्वा सर्वसंशयान् ॥ २ ॥
दानानां च विधिं श्रुत्वा च्छिन्नधर्मार्थसंशयः ।
यदन्यदकरोद्विप्र तन्मे शंसितुमर्हसि ॥ ३ ॥

हविघ्न पृषध्र, प्रतीप, शान्तनु, अज, प्राचीनबर्हि महायशस्वी इक्ष्वाकु, राजा अनरण्य, जानुजङ्घ और राजर्षि कक्षसेन, इनका तथा इनके अतिरिक्त जो वर्णित हुए, उनके नामोंका भी प्रातःकालमें उठके सूर्योदय और सूर्यास्तके समय दोनों सन्ध्यामें पवित्र और अनावृत्त होकर जो लोग पाठ करते हैं, वे धर्मफलभागी होते हैं। (४८-६०)

देवताओं, देवर्षियों और राजर्षियोंकी स्तुति करनेसे ईश्वर हमारे लिये पुष्टि, आयु, यश और स्वर्ग विधान करेगा, मुझे विघ्न प्राप्त न हो, पाप न हो और मेरे शत्रु न होवें, मेरी सदा निश्चय जय होवे और परलोकमें गति प्राप्त होवे। (६१—६२)

अनुशासनपर्वमें १६५ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १६६ अध्याय।

जनमेजय बोले, हे विप्रवर! कुरुकुल-धुरन्धर भीष्मदेवके शरशय्या तथा पाण्डवगण प्रणीत वीरशय्यापर शयन करते रहनेपर मेरे पूर्वपितामह महाप्राज्ञ युधिष्ठिरने सब धर्मशास्त्र और दानकी विधि सुनके संशयके विषयों तथा धर्मार्थ

वैशम्पायन उवाच- अभून्मुहूर्तं स्तिमितं सर्वं तद्राजमण्डलम्।
तूष्णींभूते ततस्तस्मिन्पटे चित्रमिवार्पितम् ॥ ४ ॥
मुहूर्तमिव च ध्यात्वा व्यासः सत्यवतीसुतः।
नृपं शयानं गाङ्गेयमिदमाह वचस्तदा ॥ ५ ॥
राजन्प्रकृतिमापन्नः कुरुराजो युधिष्ठिरः।
सहितो भ्रातृभिः सर्वैः पार्थिवैश्चानुयायिभिः ॥ ६ ॥
उपास्ते त्वां नरव्याघ्र सह कृष्णेन धीमता।
तमिमं पुरयानाय समनुज्ञातुमर्हसि ॥ ७ ॥
एवमुक्तो भगवता व्यासेन पृथिवीपतिः।
युधिष्ठिरं सहामात्यमनुजज्ञे नदीसुतः ॥ ८ ॥
उवाच चैनं मधुरं नृपं शान्तनवो नृपः।
प्रविशस्व पुरीं राजन्व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ ९ ॥
यजस्व विविधैर्यज्ञैर्बह्वन्नैः स्वाप्तदक्षिणैः।
ययातिरिव राजेन्द्र श्रद्धादमपुरःसरः ॥ १० ॥
क्षत्रधर्मरतः पार्थ पितॄन्देवांश्च तर्पय।

विषयमें सन्देहरहित होकर और जो कुछ कार्य किया था, उसे आप मेरे समीप वर्णन करिये। (१-३)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, वह समस्त राजमण्डली पटलिखित चित्रकी भांति मुहूर्तभर निश्चल हुई। अनन्तर राजाओंके चुप होनेपर सत्यवतीपुत्र व्यासदेव मुहूर्तभर सोचके उस समय सोये हुए नरनाथ गङ्गानन्दनसे बोले। (४—५)

हे राजन्! कुरुराज युधिष्ठिर भाइयों और सब अनुयाई राजाओंके सहित प्रकृतिको प्राप्त हुए हैं। हे नरनाथ! युधिष्ठिर कृष्णके सहित आपकी उपासना कर रहे हैं; अब आप इन्हें नगरमें जानेके लिये अनुमति दे सकते हैं, पृथ्वीपति गङ्गानन्दन भीष्मदेवने वेदव्यासका ऐसा वचन सुनके मन्त्रियोंके सहित युधिष्ठिरको अनुमति दी। हे महाराज! शन्तनुनन्दन भीष्मने राजा युधिष्ठिरसे यह मधुर वचन कहा, हे राजन्! अब तुम नगरमें जाओ; तुम्हारा मानसिक शोक विनष्ट होवे, हे राजेन्द्र! तुम श्रद्धायुक्त और दान्त होकर ययातिकी भांति सम्पन्न, आप्तदक्षिण विविध यज्ञके द्वारा यजन करो। (६—१०)

हे पार्थ! तुम क्षत्रधर्ममें रत रहके

श्रेयसा योक्ष्यसे चैव व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ ११ ॥
रञ्जयस्व प्रजाः सर्वाः प्रकृतीः परिसान्त्वय ।
सुहृदः फलसत्कारैरर्चयस्व यथार्हतः ॥ १२ ॥
अनु त्वां तात जीवन्तु मित्राणि सुहृदस्तथा ।
चैत्यस्थाने स्थितं वृक्षं फलवन्तमिव द्विजाः ॥ १३ ॥
आगन्तव्यं च भवता समये मम पार्थिव ।
विनिवृत्ते दिनकरे प्रवृत्ते चोत्तरायणे ॥ १४ ॥
तथेत्युक्त्वा च कौन्तेयः सोऽभिवाद्य पितामहम् ।
प्रययौ सपरीवारो नगरं नागसाह्वयम् ॥ १५ ॥
धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य गान्धारीं च पतिव्रताम् ।
सह तैर्ऋषिभिः सर्वैर्भ्रातृभिः केशवेन च ॥ १६ ॥
पौरजानपदैश्चैव मन्त्रिवृद्धैश्च पार्थिव ।
प्रविवेश कुरुश्रेष्ठः पुरं वारणसाह्वयम् ॥ १७ ॥ [७६१२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे भीष्मानुज्ञायां षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

समाप्तमानुशासनिकं पर्व ॥

पितरों और देवताओंकी तृप्ति विधान करो; ऐसा करनेसे तुम्हारा कल्याण होगा। तुम्हारा मानसिक दुःख नष्ट होवे, तुम प्रजारञ्जन करो। प्रकृतिगण को सब प्रकारसे धीरज दो और फल सत्कारके सहारे यथायोग्य सुहृदोंकी संमानना करो। हे तात! चैत्यस्थान-स्थित फलयुक्त वृक्षका जैसे पक्षीवृन्द आसरा किया करते हैं, वैसे ही मित्र और सुहृदजन तुम्हें अवलम्बन करके जीवन करें। हे महाराज! सूर्य दक्षिणा-यनसे विनिवृत्त तथा उत्तरायणमें प्रवृत्त होनेपर मेरा समय उपस्थित होगा, उस समय तुम मेरे समीप आना, कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर 'ऐसा ही करूंगा' इतना वचन कहके परिवारके सहित हस्तिनापुरकी ओर चले। हे कुरुश्रेष्ठ महाराज! उन्होंने धृतराष्ट्र और गान्धा-रीको आगे करके ऋषियों, भाइयों, श्रीकृष्ण, पुरवासी और जनपदवासी लोगों तथा मन्त्रियोंके सहित हस्तिना-पुरमें प्रवेश किया। (११—१७)

अनुशासनपर्वमें १६६ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें आनुशासनिकपर्व समाप्त।

अथ भीष्मस्वर्गारोहणपर्व।

वैशम्पायन उवाच– ततः कुन्तीसुतो राजा पौरजानपदं जनम्।
पूजयित्वा यथान्यायमनुजज्ञे गृहान्प्रति ॥ १ ॥
सान्त्वयामास नारीश्च हतवीरा हतेश्वराः।
विपुलैरर्थदानैः स तदा पाण्डुसुतो नृपः ॥ २ ॥
सोऽभिषिक्तो महाप्राज्ञः प्राप्य राज्यं युधिष्ठिरः।
अवस्थाप्य नरश्रेष्ठः सर्वाः स्वप्रकृतीस्तथा ॥ ३ ॥
द्विजेभ्यो गुणमुख्येभ्यो नैगमेभ्यश्च सर्वशः।
प्रतिगृह्याशिषो मुख्यास्तथा धर्मभृतां वरः ॥ ४ ॥
उषित्वा शर्वरीः श्रीमान्पञ्चाशन्नगरोत्तमे।
समयं कौरवाग्र्यस्य सस्मार पुरुषर्षभः ॥ ५ ॥
स निर्ययौ गजपुराद्याजकैः परिवारितः।
दृष्ट्वा निवृत्तमादित्यं प्रवृत्तं चोत्तरायणम् ॥ ६ ॥
घृतं माल्यं च गन्धांश्च क्षौमाणि च युधिष्ठिरः।
चन्दनागुरुमुख्यानि तथा कालीयकान्यपि ॥ ७ ॥
प्रस्थाप्य पूर्वं कौन्तेयो भीष्मसंस्करणाय वै।
माल्यानि च वरार्हाणि रत्नानि विविधानि च ॥ ८ ॥

भीष्मस्वर्गारोहणपर्व।

अनुशासनपर्वमें १६७ अध्याय।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरने पुरवासी और जनपदवासियोंका यथारीतिसे सम्मान करके गृहमें जानेके निमित्त अनुमति दी। उस समय पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर मरे हुए वीरोंकी स्त्रियों वा पतिहीन नारियोंको बहुतसा धन दान करके धीरज देनेमें प्रवृत्त हुए। वह पुरुषश्रेष्ठ महाप्राज्ञ युधिष्ठिरने राज्य पाके समस्त प्रजासमूहको बुलाकर अभिषिक्त हुए। धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर श्रीमान् धीमान् पुरुषश्रेष्ठ ब्राह्मणों, सेनापतियों और वेदशास्त्र जाननेवाले पुरुषोंसे उत्तम आशीर्वाद पाके नगरके बीच पचास रात्रि वास करके कौरवोंमें अग्रगण्य भीष्मदेवका समय स्मरण किया। १-५

वह याजकोंके बीच घिरकर हस्तिपुरसे बाहिर हुए। आदित्यको निवृत्त और उत्तरायणमें प्रवृत्त देखकर भीष्मदेवके संस्कारके निमित्त पहले घृत, माला, पटवस्त्र, सुगन्ध, अगुरु प्रभृति चन्दन, कालीयक द्रव्य, महामूल्यवान्

धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य गान्धारीं च यशस्विनीम् ।
मातरं च पृथां धीमान्भ्रातृंश्च पुरुषर्षभान् ॥ ९ ॥
जनार्दनेनानुगतो विदुरेण च धीमता ।
युयुत्सुना च कौरव्यो युयुधानेन वा विभो ॥ १० ॥
महता राजभोगेन पारिबर्हेण संवृतः ।
स्तूयमानो महातेजा भीष्मस्याग्नीननुव्रजन् ॥ ११ ॥
निश्चक्राम पुरात्तस्माद्यथा देवपतिस्तथा ।
आससाद कुरुक्षेत्रे ततः शान्तनवं नृपः ॥ १२ ॥
उपास्यमानं व्यासेन पाराशर्येण धीमता ।
नारदेन च राजर्षे देवलेनासितेन च ॥ १३ ॥
हतशिष्टैर्नृपैश्चान्यैर्नानादेशसमागतैः ।
रक्षिभिश्च महात्मानं रक्ष्यमाणं समन्ततः ॥ १४ ॥
शयानं वीरशयने ददर्श नृपतिस्ततः ।
ततो रथादवातीर्य भ्रातृभिः सह धर्मराट् ॥ १५ ॥
अभिवाद्याथ कौन्तेयः पितामहमरिन्दमम् ।
द्वैपायनादीन्विप्रांश्च तैश्च प्रत्यभिनन्दितः ॥ १६ ॥
ऋत्विग्भिर्ब्रह्मकल्पैश्च भ्रातृभिः सह धर्मजः ।

माला और विविध रत्न भेजके राजा धृतराष्ट्र, यशस्विनी गान्धारी, माता पृथादेवी और भाइयोंको अगाडी करके जनार्दन, धीमान् विदुर, युयुत्सु, और सात्यकीके सहित राजाओंके योग्य उत्तम महत् परिवारके द्वारा घिरकर तथा स्तूयमान होकर भीष्मके संस्कारक अग्निका अनुगमन करते हुए देवराजकी भांति उस नगरसे बाहिर हुए। अनन्तर वह महातेजस्वी राजा कुरुक्षेत्रमें शान्तनुपुत्रके समीप उपस्थित हुए। (९—१२)

हे राजर्षि! राजा युधिष्ठिरने उस समय पराशरनन्दन बुद्धिमान् व्यासदेव, नारद, देवल, असित और मरनेसे बचे हुए अनेक देशोंके समागत राजाओंके द्वारा उपासित और रक्षकोंसे रक्षित, वीरशय्यापर सोये हुए भीष्मदेवका दर्शन किया। अनन्तर धर्मराजने भाइयोंके सहित रथसे उतरकर अरिंदमन कुरुश्रेष्ठ पितामहको अभिवादन तथा द्वैपायन प्रभृति ब्राह्मणोंको प्रणाम किया; उन सब लोगोंने उन्हें अभिनन्दित किया। धर्मराज युधिष्ठिर ऋत्विग्गण

आसाद्य शरतल्पस्थमृषिभिः परिवारितम् ॥ १७ ॥
अब्रवीद्भरतश्रेष्ठं धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
भ्रातृभिः सह कौरव्यः शयानं निम्नगासुतम् ॥ १८ ॥
युधिष्ठिरोऽहं नृपते नमस्ते जान्हवीसुत ।
शृणोषि चेन्महाबाहो ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ १९ ॥
प्राप्तोऽस्मि समये राजन्नग्नीनादाय ते विभो ।
आचार्यान्ब्राह्मणांश्चैव ऋत्विजो भ्रातरश्च मे ॥ २० ॥
पुत्रश्च ते महातेजा धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
उपस्थितः सहामात्यो वासुदेवश्च वीर्यवान् ॥ २१ ॥
हतशिष्टाश्च राजानः सर्वे च कुरुजाङ्गलाः ।
तान्पश्य नरशार्दूल समुन्मीलय लोचने ॥ २२ ॥
यच्चेह किंचित्कर्तव्यं तत्सर्वं प्रापितं मया ।
यथोक्तं भवता काले सर्वमेव च तत्कृतम् ॥ २३ ॥
वैशम्पायन उवाच- एवमुक्तस्तु गाङ्गेयः कुन्तीपुत्रेण धीमता ।
ददर्श भारतान्सर्वान्स्थितान्संपरिवार्य ह ॥ २४ ॥
ततश्च तं बली भीष्मः प्रगृह्य विपुलं भुजम् ।
उद्यन्मेघस्वरो वाग्मी काले वचनमब्रवीत् ॥ २५ ॥

और भाइयोंके सहित ऋषियोंसे घिरकर शरशय्यापर सोये हुए गङ्गानन्दन भीष्मदेवसे बोले। (१३—१८)

हे नरनाथ जाह्नवीनन्दन ! मैं युधिष्ठिर आपको प्रणाम करता हूं। हे महाबाहो ! यदि आप सुनते हो, तो कहिये मैं आपका कौनसा कार्य करूं ? हे विभु ! मैं अग्नि लेकर आपके समयपर उपस्थित हुआ हूं। आचार्य, ऋत्विग्गण, ब्राह्मणगण आपके पुत्र महातेजस्वी प्रजानाथ धृतराष्ट्र और मन्त्रियोंके सहित वीर्यवान् वासुदेव उपस्थित हुए हैं। मरनेसे बचे हुए सब राजा और कुरुजाङ्गलके सब लोग आये हैं। हे कुरुश्रेष्ठ ! इस लिये आप दोनों नेत्र उघारके सबको देखिये। इस समय जो कुछ कर्तव्य है, वह सब मैंने संग्रह किया है; समयपर आपने जो कुछ कहा था, वह सब कर्म मैंने सिद्ध किया है। (१९-२३)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, बुद्धिमान् कुन्तीपुत्रका ऐसा वचन सुनके भीष्मदेवने नेत्र उघारके देखा, कि सब भारतगण उन्हें घेरकर खडे हैं। अनन्तर बलवान् वाग्मी भीष्मदेव विपुल भुजा

दिष्ट्या प्राप्तोऽसि कौन्तेय सहामात्यो युधिष्ठिर।
परिवृत्तो हि भगवान्सहस्रांशुर्दिवाकरः ॥ २६ ॥
अष्टपञ्चाशतं रात्र्यः शयानस्याद्य मे गताः।
शरेषु निशिताग्रेषु यथा वर्षशतं तथा ॥ २७ ॥
माघोऽयं समनुप्राप्तो मासः सौम्यो युधिष्ठिर।
त्रिभागशेषः पक्षोऽयं शुक्लो भवितुमर्हति ॥ २८ ॥
एवमुक्त्वा तु गाङ्गेयो धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्।
धृतराष्ट्रमथामन्त्र्य काले वचनमब्रवीत् ॥ २९ ॥
भीष्म उवाच- राजन्विदितधर्मोऽसि सुनिर्णीतार्थसंशयः।
बहुश्रुता हि ते विप्रा बहवः पर्युपासिताः ॥ ३० ॥
वेदशास्त्राणि सर्वाणि धर्मांश्च मनुजेश्वर।
वेदांश्च चतुरः सर्वान्निखिलेनानुबुध्यसे ॥ ३१ ॥
न शोचितव्यं कौरव्य भवितव्यं हि तत्तथा।
श्रुतं देवरहस्यं ते कृष्णद्वैपायनादपि ॥ ३२ ॥
यथा पाण्डोः सुता राजंस्तथैव तव धर्मतः।
तान्पालय स्थितो धर्मे गुरुशुश्रूषणे रतान् ॥ ३३ ॥

ग्रहण करके उद्यत मेघसदृश गम्भीर स्वरसे बोले। हे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर! प्रारब्धसे ही तुम मन्त्रियोंके सहित उपस्थित हुए हो; भगवान् सहस्र-किरणधारी दिवाकर परिवृत्त हुए हैं। चोखे बाणोंके अग्रभागपर आज अट्ठावन रात्रिपर्यन्त मैं सोया हूं; परन्तु बोध होता है, मानो एक सौ वर्ष व्यतीत हुआ है। हे युधिष्ठिर! यह चान्द्र माघ मास उपस्थित है, यह शुक्लपक्ष है इस महीनेका तीन भाग इस समय भी शेष रह सकता है। भीष्मदेव युधिष्ठिरसे इतना वचन कहके धृतराष्ट्रको आमन्त्रण करके उस समयके अनुसार वचन कहने लगे। (२४—२९)

भीष्म बोले, हे राजन्! तुम धर्मज्ञ हो, तुमने विषय संशयका उत्तम रीतिसे निर्णय किया है; शास्त्रोंके जाननेवाले बहुतेरे ब्राह्मणोंकी तुमने उपासना की है। हे मनुजेश्वर! तुम्हें सूक्ष्म वेदशास्त्र, सब धर्मों और चारों वेद मालूम हैं। हे कौरव! इसलिये तुम्हें शोक करना उचित नहीं है; जो होनहार था, वह हुआ है। तुमने कृष्णद्वैपायनसे वेदरहस्य सुना है। हे महाराज! पाण्डुके पुत्रगण धर्मपूर्वक तुम्हारे पुत्र ही हैं;

धर्मराजो हि शुद्धात्मा निदेशे स्थास्यते तव ।
आनृशंस्यपरं ह्येनं जानामि गुरुवत्सलम् ॥ ३४ ॥
तव पुत्रा दुरात्मानः क्रोधलोभपरायणाः ।
ईर्ष्याभिभूता दुर्वृत्तास्तान्न शोचितुमर्हसि ॥ ३५ ॥
वैशम्पायन उवाच– एतावदुक्त्वा वचनं धृतराष्ट्रं मनीषिणम् ।
वासुदेवं महाबाहुमभ्यभाषत कौरवः ॥ ३६ ॥
भीष्म उवाच– भगवन्देवदेवेश सुरासुरनमस्कृत ।
त्रिविक्रम नमस्तुभ्यं शङ्खचक्रगदाधर ॥ ३७ ॥
वासुदेवो हिरण्यात्मा पुरुषः सविता विराट् ।
जीवभूतोऽनुरूपस्त्वं परमात्मा सनातनः ॥ ३८ ॥
त्रायस्व पुण्डरीकाक्ष पुरुषोत्तम नित्यशः ।
अनुजानीहि मां कृष्ण वैकुण्ठ पुरुषोत्तम ॥ ३९ ॥
रक्ष्याश्च ते पाण्डवेया भवान्येषां परायणम् ।
उक्तवानस्मि दुर्बुद्धिं मन्दं दुर्योधनं तदा ॥ ४० ॥
यतः कृष्णस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः ।

इसलिये तुम धर्ममें तत्पर रहके उन सेवा करनेवाले पाण्डुपुत्रोंका पालन करो । शुद्धचित्त धर्मराज तुम्हारे आज्ञावर्ती रहें, अनृशंसतापरायण तथा गुरुवत्सल जानो । तुम्हारे पुत्रगण दुरात्मा क्रोधमोहपरायण, ईर्षायुक्त और दुर्वृत्त थे; इसलिये उन लोगोंके निमित्त तुम्हें शोक करना उचित नहीं है । श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कौरवश्रेष्ठ भीष्मदेव, महाराज धृतराष्ट्रसे इतनी कथा कहके फिर महाबाहु वासुदेवसे कहने लगे । (३०-३६)

भीष्म बोले, हे देवदेवेश्वर सुरासुरनमस्कृत शङ्खचक्रगदाधारी त्रिविक्रम भगवन् ! तुम्हें नमस्कार है । तुम वासुदेव, हिरण्यात्मा, सविता विराट् पुरुष हो; तुम ही जीवस्वरूप अनुरूप सनातन परमात्मा हो । हे पुण्डरीकाक्ष पुरुषोत्तम ! तुम सदा मेरा परित्राण करो । हे वैकुण्ठ पुरुषोत्तम कृष्ण ! मुझे अनुमति दो, आप जिनके अवलम्ब हैं, उन पाण्डवोंकी रक्षा करिये । (३७—४०)

पहले मैंने दुर्बुद्धि मूर्ख दुर्योधनसे कहा था, कि जिस पक्षमें कृष्ण हैं, वहां ही धर्म है, जहां धर्म है, उस ही

वासुदेवेन तीर्थेन पुत्र संशाम्य पाण्डवैः ॥ ४१ ॥
संधानस्य परः कालस्तवेति च पुनः पुनः।
न च मे तद्वचो मूढः कृतवान्स सुमन्दधीः।
घातयित्वेह पृथिवीं ततः स निधनं गतः ॥ ४२ ॥
त्वां तु जानाम्यहं देवं पुराणमृषिसत्तमम्।
नरेण सहितं देव बदर्यां सुचिरोषितम् ॥ ४३ ॥
तथा मे नारदः प्राह व्यासश्च सुमहातपाः।
नरनारायणावेतौ संभूतौ मनुजेष्विति ॥ ४४ ॥
स मां त्वमनुजानीहि कृष्ण मोक्ष्ये कलेवरम्।
त्वयाहं समनुज्ञातो गच्छेयं परमां गतिम् ॥ ४५ ॥
वासुदेव उवाच- अनुजानामि भीष्म त्वां वसून्प्राप्नुहि पार्थिव।
न तेऽस्ति वृजिनं किंचिदिह लोके महाद्युते ॥ ४६ ॥
पितृभक्तोऽसि राजर्षे मार्कण्डेय इवापरः।
तेन मृत्युस्तव वशे स्थितो भृत्य इवानतः ॥ ४७ ॥
वैशम्पायन उवाच- एवमुक्तस्तु गाङ्गेयः पाण्डवानिदमब्रवीत्।
धृतराष्ट्रमुखांश्चापि सर्वांश्च सुहृदस्तथा ॥ ४८ ॥

पक्षमें जय है। हे तात! वासुदेवको उपाय अवलम्बन करके पाण्डवोंके संग सन्धि स्थापित करो; सन्धि करनेसे तुम्हारा समय उत्तम होगा। मेरे बार बार ऐसा कहनेपर भी मन्दबुद्धि मूढ दुर्योधनने मेरा वचन न माना। इस समय पृथ्वीके सब राजाओंको मरवाकर स्वयं मृत्युको प्राप्त हुआ है। हे देव! मैं तुम्हें बदरिकाश्रममें नरके सहित बहुकालवासी पुराण ऋषिसत्तम देव करके जानता हूं; नारद मुनि और महातपस्वी व्यासदेवने मुझसे कहा है, कि ये नर नारायण मनुष्य लोकमें अवतार लिये हैं। हे कृष्ण! अब मैं शरीर परित्याग करता हूं, तुम मुझे अनुमति दो, तुम्हारी आज्ञा होनेसे मुझे परम गति प्राप्त होगी। (४०-४५)

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे पार्थिव भीष्म! मैं तुम्हें अनुमति देता हूं, तुम्हें समस्त वसुलोक प्राप्त हों, हे महातेजस्वी! इस लोकमें तुम्हारा तनिक भी पाप नहीं है; तुम पितृभक्त तथा द्वितीय मार्कण्डेय सदृश हो, क्यों कि मृत्यु दासीकी भांति सिर झुकाके तुम्हारे वशमें हो रही है। (४६—४७)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, भीष्म-

प्राणानुत्स्रष्टुमिच्छामि तत्रानुज्ञातुमर्हथ ।
सत्येषु यतितव्यं वः सत्यं हि परमं बलम् ॥ ४९ ॥
आनृशंस्यपरैर्भाव्यं सदैव नियतात्मभिः ।
ब्रह्मण्यैर्धर्मशीलैश्च तपोनित्यैश्च भारताः ॥ ५० ॥
इत्युक्त्वा सुहृदः सर्वान्संपरिष्वज्य चैव ह ।
पुनरेवाब्रवीद्धीमान्युधिष्ठिरमिदं वचः ॥ ५१ ॥
ब्राह्मणाश्चैव ते नित्यं प्राज्ञाश्चैव विशेषतः ।
आचार्या ऋत्विजश्चैव पूजनीया जनाधिप ॥ ५२ ॥ [७६६४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि भीष्मस्वर्गारोहणपर्वणि दानधर्मे सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

वैशम्पायन उवाच-एवमुक्त्वा कुरून्सर्वान् भीष्मः शान्तनवस्तदा ।
तूष्णीं बभूव कौरव्यः स मुहूर्तमरिन्दम ॥ १ ॥
धारयामास चात्मानं धारणासु यथाक्रमम् ।
तस्योर्ध्वमगमन्प्राणाः संनिरुद्धा महात्मनः ॥ २ ॥
इदमाश्चर्यमासीच्च मध्ये तेषां महात्मनाम् ।
सहितैर्ऋषिभिः सर्वैस्तदा व्यासादिभिः प्रभो ॥ ३ ॥

देव कृष्णका ऐसा वचन सुनके पाण्डवगण तथा धृतराष्ट्र प्रभृति समस्त सुहृदोंसे कहने लगे। "मैं प्राण परित्याग करनेके लिये अभिलाषी हुआ हूं, उस विषयमें तुम लोग अनुमति करो। तुम लोग सत्यमें यत्नवान् रहना, सत्य ही परम बल है। हे भारत! तुम लोग सदा अनृशंसतापरायण नियत-चित्त ब्रह्मनिष्ठ धर्मशील और तपमें रत होना।" बुद्धिमान् भीष्मदेव सब सुहृदोंसे इतनी कथा कहके सबको आलिङ्गन करके फिर युधिष्ठिरसे यह वचन बोले। हे प्रजानाथ! ब्राह्मणगण, विशेष प्राज्ञजन, आचार्य और ऋत्विग्गण सदा सर्वदा तुम्हारे पूजनीय हैं। (४८—५२)

अनुशासनपर्वमें १६७ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १६८ अध्याय।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे अरिदमन कुरुनन्दन! वह शान्तनव भीष्मने उस समय सब कौरवोंसे इसी प्रकार कहके मुहूर्तभर मौनावलम्बन किया। अनन्तर यथाक्रमसे मूल धारादि अधिष्ठानमें मनके सहित प्राणादि वायुको धारण करनेसे उस महात्माका प्राणादिवायु सम्यक् निरुद्ध होकर ऊर्ध्वगामी

यद्यन्मुञ्चति गात्रं हि स शान्तनुसुतस्तदा ।
तत्तद्विशल्यं भवति योगयुक्तस्य तस्य वै ॥ ४ ॥
क्षणेन प्रेक्षतां तेषां विशल्यः सोऽभवत्तदा ।
तद् दृष्ट्वा विस्मिताः सर्वे वासुदेवपुरोगमाः ॥ ५ ॥
सह तैर्मुनिभिः सर्वैस्तदा व्यासादिभिर्नृप ।
सन्निरुद्धस्तु तेनात्मा सर्वेष्वायतनेषु च ॥ ६ ॥
जगाम भित्त्वा मूर्धानं दिवमभ्युत्पपात ह ।
देवदुन्दुभिनादश्च पुष्पवर्षैः सहाभवत् ॥ ७ ॥
सिद्धा ब्रह्मर्षयश्चैव साधु साध्विति हर्षिताः ।
महोल्केव च भीष्मस्य मूर्धदेशाज्जनाधिप ॥ ८ ॥
निःसृत्याकाशमाविश्य क्षणेनान्तरधीयत ।
एवं स राजशार्दूल नृपः शान्तनवस्तदा ॥ ९ ॥
समयुज्यत कालेन भरतानां कुलोद्वहः ।
ततस्त्वादाय दारूणि गन्धांश्च विविधान्बहून् ॥ १० ॥
चितां चक्रुर्महात्मानः पाण्डवा विदुरस्तथा ।
युयुत्सुश्चापि कौरव्यं प्रेक्षकास्त्वितरेऽभवन् ॥ ११ ॥

हुए। व्यासादि सब महात्मा ऋषि लोग देखते रहनेपर यह आश्चर्य हुआ। शान्तनुनन्दन भीष्म उस समय जिस जिस अवयवके जिस अंगको परित्याग करने लगे, उस योगयुक्त महानुभावका वह अङ्ग विशल्य हुआ। (१—४)

क्षणभरमें सबके सम्मुखमें ही वह विशल्य हुए। वासुदेव प्रभृति व्यासादि मुनियोंके सहित सब कोई उसे देखकर विस्मित होरहे, उन्होंने सब अवयवोंमें प्राणसंयुक्त मनको निरोध करके मस्तक भेदकर स्वर्गमें गमन किया। आकाशमें पुष्पवृष्टिके सहित देवता लोग दुन्दुभी बजाने लगे। सिद्ध और ब्रह्मर्षिगण साधु साधु कहके हर्ष प्रकाश करने लगे। हे प्रजानाथ! भीष्मदेवके मस्तकसे महोल्काकी भांति कोई पदार्थ निकलकर आकाशमें प्रवेश करते हुए क्षणभरके बीच अन्तर्हित हुआ। हे नृपश्रेष्ठ! इस ही प्रकार वह भरतकुल-धुरन्धर नरनाथ शान्तनुनन्दन उस समय कालके सहित संयुक्त हुए। अनन्तर महानुभाव पाण्डवगण विदुर और युयुत्सुने बहुतसा काष्ठ और विविध सुगन्धि लाकर चिता बनाई, और सब लोग देखने लगे। (५—११)

युधिष्ठिरश्च गाङ्गेयं विदुरश्च महामतिः ।
छादयामासतुरुभौ क्षौमैर्माल्यैश्च कौरवम् ॥ १२ ॥
धारयामास तस्याथ युयुत्सुश्छत्रमुत्तमम् ।
चामरव्यजने शुभ्रे भीमसेनार्जुनावुभौ ॥ १३ ॥
उष्णीषे परिगृह्णीतां माद्रीपुत्रावुभौ तथा ।
स्त्रियः कौरवनाथस्य भीष्मं कुरुकुलोद्वहम् ॥ १४ ॥
तालवृन्तान्युपादाय पर्यवीजन्त सर्वशः ।
ततोऽस्य विधिवच्चक्रुः पितृमेधं महात्मनः ॥ १५ ॥
यजनं बहुशश्चाग्नौ जगुः सामानि सामगाः ।
ततश्चन्दनकाष्ठैश्च तथा कालीयकैरपि ॥ १६ ॥
कालागुरुप्रभृतिभिर्गन्धैश्चोच्चावचैस्तथा ।
समवच्छाद्य गाङ्गेयं संप्रज्वाल्य हुताशनम् ॥ १७ ॥
अपसव्यमकुर्वन्त धृतराष्ट्रमुखाश्चिताम् ।
संस्कृत्य च कुरुश्रेष्ठं गाङ्गेयं कुरुसत्तमाः ॥ १८ ॥
जग्मुर्भागीरथीं पुण्यामृषिजुष्टां कुरूद्वहाः ।
अनुगम्यमाना व्यासेन नारदेनासितेन च ॥ १९ ॥

युधिष्ठिर और अत्यन्त श्रेष्ठ महाबुद्धिमान् विदुर दोनोंनेही कुरुश्रेष्ठ भीष्मको वसन और मालासे परिपूरित किया, युयुत्सुने उनके ऊपर उत्तम छत्र धारण किया। भीमसेन और अर्जुन, दोनों सफेद चवंर लेकर डुलाने लगे। नकुल और सहदेवने उष्णीष धारण किया। स्त्रियां कुरुकुलधुरन्धर भीष्मदेवके पांवके तलेसे सब शरीरपर तालका बेना सञ्चालन करने लगे। अनन्तर सबने उस महात्माका विधिपूर्वक पितृयज्ञ निर्वाह किया; अग्निमें बार बार यजन किया; सामग ब्राह्मणगण सामगान करने लगे। अनन्तर धृतराष्ट्र प्रभृति प्रचन्दनकाष्ट और कालीयक, कालागुरु, प्रभृति अनेक प्रकारकी सुगन्धित वस्तुओंसे गङ्गानन्दनको आच्छादित करके अग्नि जलाकर प्रदक्षिणा की। कुरुकुलधुरन्धर कुरुसत्तमगण कुरुश्रेष्ठ भीष्मका संस्कार करके ऋषियोंसे सेवित पवित्र भागीरथीके तटपर गये। व्यासदेव, असित, नारद, कृष्ण, भरतकुलकी स्त्रियें और जो सब पुरवासी वहांपर इकठे हुए थे, वे सब कोई उनका अनुगमन करने लगे। (१२—१९)

कृष्णेन भरतश्रेष्ठ ये च पौराः समागताः ।
उदकं चक्रिरे चैव गाङ्गेयस्य महात्मनः ॥ २० ॥
विधिवत्क्षत्रियश्रेष्ठाः स च सर्वो जनस्तदा ।
ततो भागीरथी देवी तनयस्योदके कृते ॥ २१ ॥
उत्थाय सलिलात्तस्माद्रुदती शोकविह्वला ।
परिदेवयती तत्र कौरवानभ्यभाषत ॥ २२ ॥
निबोधत यथावृत्तमुच्यमानं मयाऽनघाः ।
राजवृत्तेन संपन्नः प्रज्ञयाभिजनेन च ॥ २३ ॥
सत्कर्ता कुरुवृद्धानां पितृभक्तो महाव्रतः ।
जामदग्न्येन रामेण यः पुरा न पराजितः ॥ २४ ॥
दिव्यैरस्त्रैर्महावीर्यः स हतोऽद्य शिखण्डिना ।
अश्मसारमयं नूनं हृदयं मम पार्थिवाः ॥ २५ ॥
अपश्यन्त्याः प्रियं पुत्रं यन्न दीर्यति मेऽद्य वै ।
समेतं पार्थिवं क्षत्रं काशिपुर्यां स्वयंवरे ॥ २६ ॥
विजित्यैकरथेनैव कन्याश्चायं जहार ह ।
यस्य नास्ति बले तुल्यः पृथिव्यामपि कश्चन ॥२७ ॥
हतं शिखण्डिना श्रुत्वा न विदीर्येत यन्मनः ।

हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर उन लोगोंने विधिपूर्वक महात्मा भीष्मदेवका तर्पण किया। अनन्तर गङ्गादेवी पुत्रका तर्पण होनेपर उस जलसे उठके रोदन करती हुई शोकसे विह्वल होकर विलाप करते करते कौरवोंसे बोलीं, हे निष्पापगण! जो घटना हुई है उसे मैं कहती हूं, सब कोई सुनो। जो मेरा पुत्र राज-चरित्र, प्रज्ञा और नियमसम्पन्न था, जो कुरुवृद्धगणका सत्कार करनेवाला, पितृभक्त और महाव्रत था, पहले जो परशुरामके निकट पराजित नहीं हुआ; आज वही महावीर शिखण्डीके द्वारा दिव्य अस्त्रोंसे मारा गया। (२०-२५)

हे नृपगण! मेरा हृदय निश्चयही पाषाणमय है, क्यों कि उस प्रिय पुत्रको न देखकर अबतक भी विदीर्ण नहीं हुआ। काशीपुरीके बीच स्वयंवर-समाजमें इकठे हुए समस्त क्षत्रिय राजाओंको एक रथसेही जीतकर जिसने तीनों कन्याओंको हरण किया था, पृथ्वीपर जिसके समान बलशाली और कोई भी न था, वह पुत्र शिखण्डीके हाथसे मारा गया है, इस बातको

जामदग्न्यः कुरुक्षेत्रे युधि येन महात्मना ॥ २८ ॥
पीडितो नातियत्नेन स हतोऽद्य शिखण्डिना ।
एवंविधं बहु तदा विलपन्तीं महानदीम् ॥ २९ ॥
आश्वासयामास तदा गङ्गां दामोदरो विभुः ।
समाश्वसिहि भद्रे त्वं मा शुचः शुभदर्शने ॥ ३० ॥
गतः स परमं लोकं तव पुत्रो न संशयः ।
वसुरेष महातेजा शापदोषेण शोभने ॥ ३१ ॥
मानुषत्वमनुप्राप्तो नैनं शोचितुमर्हसि ।
स एष क्षत्रधर्मेण अयुध्यत रणाजिरे ॥ ३२ ॥
धनञ्जयेन निहतो नैष देवि शिखण्डिना ।
भीष्मं हि कुरुशार्दूलमुद्यतेषुं महारणे ॥ ३३ ॥
न शक्तः संयुगे हन्तुं साक्षादपि शतक्रतुः ।
स्वच्छन्दतस्तव सुतो गतः स्वर्गं शुभानने ॥ ३४ ॥
न शक्ता विनिहन्तुं हि रणे तं सर्वदेवताः ।
तस्मान्मा त्वं सरिच्छ्रेष्ठे शोचस्व कुरुनन्दनम् ।

सुनके मेरा हृदय विदीर्ण नहीं हुआ !! कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमें जामदग्न्य राम जिस महात्माके द्वारा सहजमें ही पीडित हुए थे, आज वह शिखण्डीके द्वारा मारा गया !!! महानदी गङ्गाके उस समय इसही प्रकार बहुत विलाप करते रहनेपर विभु दामोदरने उसे सान्त्वना वाक्यसे धीरज दिया। (२५—३०)

हे प्रियदर्शने भद्रे! तुम धीरज धरो, शोक मत करो; तुम्हारा वह पुत्र परम लोकमें गया है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हे शोभने! यह भीष्म महातेजस्वी वसु थे, शापदोषसे इन्हें मनुष्यत्व प्राप्त हुआ था; इसलिये इनके निमित्त शोक करना तुम्हें उचित नहीं है। वह क्षत्रियधर्मके अनुसार रणभूमिमें संग्राम करते हुए अर्जुनके द्वारा मारे गये हैं। हे देवि! शिखण्डीने उनका वध नहीं किया। कुरुश्रेष्ठ भीष्मदेवके महायुद्धमें बाण उद्यत करके स्थित होनेपर साक्षात् शतक्रतु इन्द्र भी उनका वध करनेमें समर्थ नहीं थे। (३०—३४)

हे शुभानने! तुम्हारा पुत्र स्वच्छन्दताके सहित स्वर्गमें गया है, युद्धमें समस्त देवता भी उसका वध करनेमें समर्थ नहीं हैं। हे गंगादेवि! इसलिये तुम कुरुनन्दनके निमित्त शोक

वसूनेष गतो देवि पुत्रस्ते विज्वरा भव ॥ ३५ ॥

वैशम्पायन उवाच- इत्युक्त्वा सा तु कृष्णेन व्यासेन तु सरिद्वरा।

त्यक्त्वा शोकं महाराज स्वं वार्यवततार ह ॥ ३६ ॥

सत्कृत्य ते तां सरितं ततः कृष्णमुखा नृप।

अनुज्ञातास्तया सर्वे न्यवर्तन्त जनाधिपाः ॥ ३७ ॥ [७७०१]

इति श्रीमहाभा० शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि भीष्मस्वर्गारोहणपर्वणि दानधर्मे भीष्मयुधिष्ठिरसंवादे भीष्ममुक्तिर्नाम अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥

॥ इति अनुशासनपर्व समाप्तम् ॥

॥ अतः परमाश्वमेधिकं पर्व भविष्यति ॥

॥ तस्यायमाद्यः श्लोकः ॥

वैशम्पायन उवाच- कृतोदकं तु राजानं धृतराष्ट्रं युधिष्ठिरः।

पुरस्कृत्य महाबाहुरुत्ताराकुलेन्द्रियः ॥ १ ॥

मत करो। यह तुम्हारा पुत्र वसुलोकमें गया है। हे देवि! तुम शोकरहित हो। श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! नदियोंमें श्रेष्ठ जान्हवी, कृष्ण और व्यासदेवका ऐसा वचन सुनके शोक-रहित होके प्रकृतिको प्राप्त हुई। हे प्रजानाथ! कृष्णप्रभृति सब कोई उस समय उनका सत्कार करके तथा उनकी अनुमति लेकर निवृत्त हुए। (३४-३७)

अनुशासनपर्वमें १६८ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्व सम्पूर्ण।

श्लोकसंख्या।

१—१२ शान्तिपर्वके अन्ततक ७१८७४

१३ अनुशासनपर्व ७७०१

सर्वयोग ७९५७५

अनुशासनपर्वकी विषय-सूची।

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१	युधिष्ठिरका भीष्मके समीप शोक-निवारण तथा स्वजनवध जनित पाप दूर करनेका उपाय पूछना और भीष्मके द्वारा उस विषयके उत्तर प्रसङ्गमें गौतमी, व्याध, सर्प, मृत्यु और कालका संवाद वर्णन।	५
२	किस गृहस्थने धर्मके सहारे मृत्युको पराजित किया है? युधिष्ठिरका यह प्रश्न सुनके भीष्मका उस विषयमें सुदर्शन उपाख्यान युक्त इतिहास कहना।	१६
३—४	युधिष्ठिरका विश्वामित्रके ब्राह्मणत्व प्राप्तिका कारण तथा वसिष्ठके पुत्रनाशादि वृत्तान्त पूछना और भीष्म के द्वारा वह सब वृत्तान्त वर्णित होना।	२८
५	युधिष्ठिरका आनृशंस्य धर्म और भक्तोंका गुण पूछना और भीष्मका उस विषयमें शुक-इन्द्र संवादयुक्त इतिहास कहना।	३९
६	युधिष्ठिरका भाग्य और उद्योगकी श्रेष्ठताके विषयमें प्रश्न सुनके भीष्मका उसके उत्तर प्रसङ्गमें ब्रह्मा और वसिष्ठके संवादयुक्त इतिहास कहना।	४१
७	युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा शुभ कर्मोंके फल वर्णन।	५१
८	पूज्य कौन है? किसे नमस्कार करना चाहिये? इत्यादि युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना।	५६
९	दान करनेका सङ्कल्प करके जो लोग ब्राह्मणोंको दान नहीं देते, भविष्यमें उनकी कैसी दशा होती है? युधिष्ठिरका ऐसा प्रश्न सुनके भीष्मके द्वारा उसका वृत्तान्त वर्णन।	६०
१०	उपकारकी इच्छा करके जो उपकार करते तथा उपकारकी इच्छा न करके जो उरुष उपकर्त्ता होते हैं, वैसी मित्रता संबन्धके वशमें होकर यदि कोई नीच जातिको उपदेश करे, तो उसे दोष होता है, वा नहीं? इत्यादि युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना।	६४
११	कैसे पुरुष और कैसी स्त्रीमें लक्ष्मी निवास करती है? इत्यादि युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा उस विषयका वृत्तान्त वर्णन।	७४
१२	स्त्रीपुरुषके संयोगमें वैषयिक	

अध्याय	विषय	पृष्ठ
	सुख किसे अधिक होता है ? युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना ।	७७
१३	ऐहिक शिष्ट व्यवहार और पारलौकिक कल्याणकी इच्छावाले मनुष्यको क्या करना चाहिये तथा कैसे स्वभावसे युक्त होकर मनुष्य लोकयात्रा निर्वाह करे ? इत्यादि युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना ।	८५
१४-१५	युधिष्ठिरका महेश्वरके नाम सुननेके लिये अभिलाषी होना, उस विषयमें कृष्णका पुत्रकामनासे युक्त होकर निज तपस्या, उपमन्युके कहे हुए मेघवाहनोपाख्यान, तथा महादेवके समीप उपमन्युके वर प्राप्तिका वृत्तान्त कहना ।	८९
१६	तण्डि ऋषिको महादेवकी आराधनासे वर मिलना ।	१४४
१७	कृष्णके द्वारा उपमन्युके कहे हुए महादेवके सहस्रनाम वर्णन ।	१५५
१८	व्यासादिका महेश्वरस्तवकी प्रशंसा करके युधिष्ठिरको उसे पाठ करनेके लिये कहना ।	१९०
१९-२१	स्त्रियोंके पाणिग्रहणके समय जो सहधर्म होता है, वह क्या ऋषियोंके कहे हुए मन्त्रके द्वारा प्रकाशित धर्म है अथवा प्रजापतिके सहारे सन्तानके लिये प्रसिद्ध हुआ है ? इत्यादि युधिष्ठिरके प्रश्नानुसार भीष्मका उस विषयसे अष्टावक्रादिके संवादयुक्त इतिहास कहना ।	२०१
२२	युधिष्ठिरके अनेक प्रकारके प्रश्न सुनके भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना ।	२२२
२३	युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा देव और पितरश्राद्धका समय वर्णन ।	२२८
२४	हिंसा न करनेपर भी किस प्रकार ब्रह्महत्या विहित हुई है ? युधिष्ठिरका ऐसा प्रश्न सुनके भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना ।	२४२
२५	युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा तीर्थ दर्शनादिके माहात्म्य वर्णन ।	२४४
२६	भीष्मके समीप महर्षियोंका आगमन ।	२५३
२६	कौन देश, जनपद, आश्रम, पर्वत तथा कौनसी नदियें पुण्य-प्रभावसे श्रेष्ठ तथा जानने योग्य हैं ? युधिष्ठिरका ऐसा प्रश्न सुनके भीष्मके द्वारा इस विषयके उत्तर प्रसङ्गमें शिलोञ्छवृत्ति और सिद्धके संवादयुक्त इतिहास वर्णन ।	२५५
२७-२९	युधिष्ठिरका ब्राह्मणत्व-प्राप्ति विषयक प्रश्न सुनके भीष्मके	

अध्याय	विषय	पृष्ठ

द्वारा उस विषयमें मतङ्ग और गर्दभीके संवादयुक्त इतिहास वर्णन। २६७

३० युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा राजा वीतहव्यके ब्राह्मणत्वप्राप्ति का विषय वर्णन। २७८

३१ तीनों लोकके बीच कौनसे मनुष्य पूज्य हैं? युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना। २८६

३२ युधिष्ठिरका भीष्मसे शरणागतकी रक्षाका फल पूछना और भीष्म के द्वारा उस विषयमें बाज कबूतर तथा राजा वृषदर्भके संवादयुक्त इतिहास वर्णन। २९१

३३-३६ युधिष्ठिरका भीष्मके समीप राजाके गुरुतर कार्य और इस लोक तथा परलोकमें सुख प्राप्त होनेका विषय पूछना और भीष्मके द्वारा उस विषयमें प्रशंसा वर्णन। २९६

३७ पूर्वपरिचित, चिरोषित और दूरदेशका अभ्यागत इन तीनों पात्रोंके बीच कौन पात्र उत्तम है? युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा इस विषयका वृत्तान्त वर्णन। ३११

३८ युधिष्ठिरके पूछनेपर स्त्रियोंके स्वभाव वर्णन करनेके विषयमें भीष्मका पञ्चचूडा और नारदके संवादयुक्त इतिहास कहना। ३१३

३९-४३ युधिष्ठिरका भीष्मके समीप स्त्रीरक्षाविषयक प्रश्न करना और भीष्म का उसके उत्तर प्रसंगमें विपुल उपाख्यान कहना। ३१७

४४ युधिष्ठिरका भीष्मके समीप पितृलोक, देवता, अतिथि, स्वजन, गृह, सब धर्मोका मूल तथा कन्यादान करने योग्य पात्र पूछना और भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना। ३४०

४५-४६ युधिष्ठिरका भीष्मके समीप कन्याके शुल्कप्रद पतिप्रोषित होनेपर उसका व्यवहार पूछना और भीष्मके द्वारा उसका वृत्तान्त वर्णन। ३४८

४७ युधिष्ठिरका धर्ममार्गमें चलनेवाले मनुष्योंके कर्त्तव्यकर्म तथा ब्राह्मण के चार प्रकारकी स्त्रियोंके गर्भसे उत्पन्न हुए पुत्रोंके पैतृक अंश पानेका विषय पूछना और भीष्मके द्वारा उसका वृत्तान्त वर्णन। ३५४

४७ युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा अन्य वर्णोंके दायविभागका नियम वर्णन। ३६०

४८ युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा वर्णसङ्कर जातिके धर्मादि वर्णन। ३६३

४९ युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मका सब वर्णोंके पृथक् पृथक् विषय वर्णन करना। ३७१

५०-५१ दूसरेकी पीडा देखके

अध्याय	विषय	पृष्ठ
	कैसा स्नेह करना चाहिये? दूसरोंके संग किस प्रकार अनृशंसताका अनुष्ठान करना योग्य है तथा गौवोंका कैसा माहात्म्य है? युधिष्ठिरका ऐसा प्रश्न सुनके भीष्मका उसके उत्तरप्रसंगमें च्यवनोपाख्यान कहना।	३७९
५२—५६	युधिष्ठिरके पूछनेपर परशुरामकी उत्पत्ति विषयमें भीष्मके द्वारा च्यवनकुशिक संवादयुक्त इतिहास वर्णन।	३८५
५७	स्वजन और राजाओंके वधसे दुःखित युधिष्ठिरका भीष्मके समीप हिंसाजनित पाप दूर होनेका उपाय पूछना और भीष्मके द्वारा पापनाशक उपाय वर्णन।	४१२
५८	युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा आराम तथा तड़ागोत्सर्गका फल वर्णन।	४१८
५९–६०	युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा दानधर्म वर्णन।	४२३
६१	युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा दान और यज्ञके उत्कृष्ट फल वर्णन।	४३१
६२	युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा सबसे उत्कृष्ट दानका फल वर्णन।	४३६
६३	इस लोकमें राजा किन वस्तुओंके दानकी कामना करके अधिक गुणवाले ब्राह्मणोंको दान करे? इत्यादि युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना।	४४९
६४—६५	युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा नक्षत्रयोगमें दानका फल वर्णन।	४५६
६६	युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा दह्यमान ब्राह्मणको पादुका प्रभृति दानका फल वर्णन।	४६४
६७	युधिष्ठिरके पूछनेसे भीष्मके द्वारा जल दानका फल वर्णन।	४७२
६८	युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा तिल और दीप दानका फल वर्णन।	४७५
६९	युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा सब दानोंकी श्रेष्ठ विधि तथा भूमिदानका फल वर्णन।	४७९
६९–७०	युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा गोदानका फल वर्णन।	४८१
७१	गोदानकी फलप्राप्ति विषयमें भीष्मके द्वारा उद्दालकि और नाचिकेतके संवादयुक्त इतिहास वर्णन।	४८७
७२—७४	युधिष्ठिरका गोदाताके लोकप्राप्तिका विवरण पूछना और भीष्मका उसके उत्तर प्रसंगमें इन्द्र—ब्रह्माके संवादयुक्त इतिहास कहना।	४९५
७५	युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके	

अध्याय विषय पृष्ठ

द्वारा व्रतादिके फल वर्णन। ५०७

७६—८३ युधिष्ठिरका भीष्मके समीप गोदानकी विधि तथा फलादि विविध प्रश्न करना और भीष्मका विविध इतिहास कहके उस विषयमें उत्तर देना। ५१२

८४—८६ युधिष्ठिरका भीष्मसे सुवर्णकी उत्पत्ति तथा उसका स्वरूपादि पूछना और भीष्मका उसके उत्तर प्रसंगमें कार्त्तिकेयकी उत्पत्ति कहना। ५४८

८७—९२ युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा श्राद्धकी विधि वर्णन। ५८५

९२ उपवास तपस्या है, वा अन्य भांतिके किसी नियमसे तपस्या होती है? इत्यादि युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना। ६०९

९३—९४ जो लोग ब्राह्मणोंको विविध वस्तु दान करते हैं, उन देनेवाले और लेनेवालोंमें क्या विशेषता है? युधिष्ठिरका ऐसा प्रश्न सुनके भीष्मके द्वारा उसके उत्तर प्रसंगमें राजा वृषादर्मि और सप्तर्षियोंके संवादयुक्त इतिहास वर्णन। ६१२

९५-९६ युधिष्ठिरका भीष्मके निकट श्राद्धादि कार्यमें क्षेत्र और पादुका दान करनेकी कारण पूछना और भीष्मके द्वारा उस विषयमें सूर्य तथा जमदग्निके संवादयुक्त इतिहास वर्णन। ६३९

९७-९८ युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा गार्हस्थ्यधर्म वर्णन। ६४६

९९—१०० युधिष्ठिरके पूछनेसे फूल, धूप और दीप दानके विषयमें भीष्मके द्वारा अगस्त्य, भृगु तथा नहुषके संवादयुक्त इतिहास वर्णन। ६५८

१०१ युधिष्ठिरके पूछनेसे भीष्मके द्वारा ब्राह्मणोंके धन हरनेवालोंकी गति वर्णन। ६६६

१०२ युधिष्ठिरका भीष्मके समीप सुकृतशाली मनुष्योंके परलोकमें निवासका विवरण पूछना और भीष्मका उसके उत्तरप्रसङ्गमें इन्द्र और गौतमके संवादयुक्त इतिहास कहना। ६७१

१०३ तपस्यासे श्रेष्ठ क्या है? इत्यादि धर्मपुत्रका प्रश्न सुनके भीष्मके द्वारा ब्रह्मा और भगीरथके संवादयुक्त इतिहास वर्णन। ६८०

१०४ किस प्रकार मनुष्य आयुष्मान् तथा अल्पायु होता है? किस भांति कीर्त्ति वा लक्ष्मी प्राप्त होता है? इत्यादि युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा उसका वृत्तान्त वर्णन। ६८७

१०५ युधिष्ठिरका भीष्मसे ज्येष्ठ तथा कनिष्ठका व्यवहार पूछना और भीष्मके द्वारा उसका वृत्तान्त वर्णन। ७०७

अध्याय	विषय	पृष्ठ

१०६ धर्मराजका भीष्मसे सब वर्णोंकी उपवासविधि तथा उपवास-परायण पुरुषोंकी गति पूछना और भीष्मका उसके उत्तर प्रसङ्गमें अङ्गिराके कहे हुए वचन कहना । ७१०

१०७ धर्मराजके पूछनेपर भीष्मके द्वारा दरिद्रोंके निमित्त यज्ञ-विधि वर्णन । ७१९

१०८ युद्धिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा श्रेष्ठ तीर्थका विषय वर्णन । ७३७

१०९ युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा कल्याणकारी, महत् फल जनक और संशयरहित उपवासका वर्णन।७४०

११० युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा रूप, सौभाग्य और प्रियत्वका विषय वर्णन । ७४२

१११-११३ विविध प्रश्नोत्तर प्रसंगमें युधिष्ठिर और बृहस्पतिकी उक्ति प्रत्युक्ति । ७४३

११४ मनुष्य वचन, मन और कर्मसे हिंसा करते हुए किस प्रकार दुःखोंसे छूटता है? इत्यादि युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना ! ७६६

११५-११६ युधिष्ठिरका मांस भक्षण विषयक प्रश्न सुनके भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना । ७६८

११७—११९ जो लोग अकाम वा सकाम होकर महायुद्धमें मरते हैं, उन्हें कौनसी गति प्राप्त होती है? युधिष्ठिरका ऐसा प्रश्न सुनके भीष्मका उसके उत्तर प्रसंगमें द्वैपायन और कीटोपाख्यान कहना । ७८५

१२०—१२२ विद्या, तपस्या और दानके बीच श्रेष्ठ क्या है? युधिष्ठिरका यह प्रश्न सुनके भीष्मके द्वारा उसके प्रसंगमें मैत्रेय और कृष्णद्वैपायनका संवाद वर्णन । ७९४

१२३ युधिष्ठिरका भीष्मसे सती स्त्रियोंका समुदाचार पूछना और भीष्मके द्वारा उस विषयमें सुमना और शाण्डिलीका संवाद वर्णन । ८०३

१२४ साम और दानके बीच श्रेष्ठ कौन है ? युधिष्ठिरका ऐसा प्रश्न सुनके भीष्मका उस विषयमें राक्षस और ब्राह्मणके संवादयुक्त इतिहास कहना।८०६

१२५—१३४ अत्यन्त दुर्लभ कर्मक्षेत्रमें मनुष्यजन्म पाके कल्याण चाहनेवाले दरिद्रोंका जो कर्त्तव्य है, जो सब दानोंके बीच उत्कृष्ट तथा मान्य वा पूज्य लोगोंको जो वस्तु जिस प्रकार देने योग्य है; युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा उसका वृत्तान्त वर्णन । ८१२

१३५-१३६ युधिष्ठिरका ब्राह्मणादिके भोज्यान्नविषयक प्रश्न सुनके भीष्म

अध्याय विषय पृष्ठ

का उस विषयमें उत्तर देना। ८४९

१३७—१३८ दान और तपस्याके बीच कौन विषय श्रेष्ठ है? युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा उसका तथा दानधर्मके सहारे राजाओंके स्वर्गमें गमन करनेका वृत्तान्त वर्णन। ८५५

१३९ युधिष्ठिरका भीष्मसे कृष्णकी महिमा पूछना और भीष्मका उसके उत्तर प्रसङ्गमें ऋषियों तथा श्रीकृष्णके संवादयुक्त इतिहास कहना। ८६०

१४०—१४८ युधिष्ठिरके समीप भीष्मके द्वारा उमामहेश्वर संवाद वर्णन। ८६७

१४९ मनुष्यवृन्द किस देवता तथा परमाश्रयकी पूजा करते हुए इस लोकमें शुभलाभ करते हैं? युधिष्ठिरका ऐसा प्रश्न सुनके भीष्मका उसके उत्तर प्रसङ्गमें विष्णुसहस्रनाम कहना। ९४४

१५० कैसा जप्य मन्त्र जपनेसे महत् फल होता है? इत्यादि युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना। ९७४

१५१ कौन पूज्य और कौन नमस्कार करनेयोग्य है? इत्यादि युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना। ९८४

१५१—१५७ किस प्रकार कल्पको देखके तथा कैसे कर्मोदयको जानके आप ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं? युधिष्ठिरके ऐसा पूछनेपर भीष्मके द्वारा उस विषयमें पवनार्जुनसंवादयुक्त इतिहास वर्णन। ९८७

१५८ युधिष्ठिरका भीष्मसे ब्राह्मण पूजाका फल पूछना और भीष्मका कृष्णसे ब्राह्मणपूजाका विषय पूछनेके लिये युधिष्ठिरसे अनुरोध करना। १०१०

१५९ धर्मराजके पूछनेपर कृष्णके द्वारा ब्राह्मण पूजाका फल वर्णन। १०१७

१६०—१६१ दुर्वासाकी कृपासे उस समय तुम्हें कौनसा विज्ञान प्राप्त हुआ था? युधिष्ठिरका यह प्रश्न सुनके कृष्णका उस विषयको कहनेके प्रसङ्गमें ईश्वरकी प्रशंसा करना। १०२४

१६२ निर्णय और आगम, इन दोनोंके बीच कारण क्या है? युधिष्ठिरका ऐसा प्रश्न सुनके भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना। १०३४

१६२ युधिष्ठिर और भीष्मका विविध प्रश्नोत्तर। १०३५

१६३—१६४ भाग्यहीं मनुष्य अत्यन्त बलवान् होके भी धनवान् नहीं होता, इत्यादि धर्मराजका प्रश्न सुनके भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना। १०४३

१६५ इस लोकमें पुरुषके लिये कल्याण क्या है, इत्यादि युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके भीष्मके द्वारा देववंश

अध्याय विषय पृष्ठ

प्रभृति वर्णन। १०४७

१६६—१६७ जनमेजयके पूछनेपर वैशम्पायन मुनिके द्वारा युधिष्ठिरादिके विषयमें भीष्मके शेष वचन तथा भीष्मके प्राणत्यागनेका विषय वर्णन। १०५४

अध्याय विषय पृष्ठ

१६८ भीष्मके मरनेपर गङ्गाका विलाप तथा कृष्णका गङ्गादेवीको धीरज देना। १०६६

अनुशासनपर्वकी समाप्ति १०६८

अनुशासनपर्वकी विषयसूची
समाप्त।